प्रकाशक : विजय प्रकाश बेरी प्रचारक अन्थावली परियोजना हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स प्रा.लि. पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१०१० फोन :३५०४२५, २५६८५० फैक्स ; (०५४२) ३५०६४७० पंचम संस्करण ; २००१९ मूल्य ; १५०.,० ०

प्रकाशकीय सत कबीर ने न केवल मध्यकाल के हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया था बल्कि आज भी - उनका प्रभाव बना है। ऐसा लगता है कि दिन ब दिन उनके पाठकों, प्रशसकों की सख्या बढ़ रहे' है। उनके पाठक प्रशसक अब न केवल हिन्दी क्षेत्र, भारत के हिन्दीतर क्षेत्र मे है वल्कि कबीर अब एक अन्तर्राष्ट्रीय कवि और दार्शनिक के रूप मे पूज्य हो रहे है। अभी एक अमेरिकी विदुषी से बात हो रही थी | किसी ने उससे भारत के श्रेष्ठ कवि कालिदास का नाम लिया | किन्तु अमेरिका विदुपः की जिज्ञासा कबीर के बारे मे थी । लगा कि सत कबीर ने उसके अत स्थल को गहराई से प्रभावित किया है | इसी प्रकार साहित्य मे भारत के एकमात्र नोबल पुरस्कार प्राप्त महाकवि रवीद्रनाथ ठाकुर पर सत कबीर की रचनाओं का गहरा प्रभाव था | इसका कारण है कि सत कबीर भौतिक सुख सुविधा से घिरे मन को एक नयी दुनिया का दर्शन कराते है | भौतिकता एक प्रकार का बधन है | सुख भोग का आकर्षण एक सीमा पर स्थिर हो जाता है | भोजन कितना भी स्वादिष्ट हो । कितु उसका असल स्वाद तो भूख मे है | बिना भूख के अमृत भी विष जैसा है | यही भोग और सुख के सारे साधन एक स्थान पर ठहर जाते है | इतिहास मे भी देखा गया है | सुखी परिवारों, राजन्य परिवारों मे ही विद्रोही हुए है | राम, कृष्ण, बुद्ध आदि राजपरिवार के व्यक्ति थे | तुलसीदास ने ठीक ही लक्ष्य किया था । राम ने पिता का राज्य वैसे छोड़ दिया | जैसे यात्रीगण रास्ते के पड़ाव सुखखों को छोड़ देते है | इतिहास पुरुष बुद्ध ने भी राज्य का त्याग किया था | जिस राज्य के लिये लोग रक्त बहाते है उसे छोड़ बुद्ध सन्यासी हो गए | इतिहास मे ऐसे शासकों, सपन्नों की कथा आती है जो शासन की समृद्धि के बीच रहकर भी भोग नही योग का जीवन जीते थे | दूसरो को भोग प्रदान करने के लिये वे राज्य शासन मे भाग लेते थे | किन्तु अपना जीवन साधु रखते थे | यहा तक कि अपनी जीविका के लिये भी दूसरा धधा करते थे | इस त्याग का मूल कारण है भोग मे अरुचि | भोग की तुच्छता की अनुभूति | आधुनिक युग मे देखते है | सपूर्ण दिल्ली स्वतत्रता का उत्सव मना रही थी | कितु महात्मा गॉधी दगा पीड़ित नोआखाली मे मानव सेवा मे लगे थे | रामायण के भरत ने राम वनवास के चौदह वर्षो को नदिग्राम मे बिताया | इस समय वे गोमूत्र मे सिद्ध जी की दलिया खाकर जीवन निर्वाह करते थे | तुलसीदास कहते है-अवध राजु सुराजु सिहाई | दसरथ धन सुनि धनदु लजाई। तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा | चचरीक जिमि चपक बागा | अनेक नये-पुराने अनुभव बताते है | मनुष्य भोग से भागना चाहता है | भोग और वैभव स्थूल, ऊबाऊ और बध कारक होते है | इनके मुकाबले त्याग और तपस्या सूक्ष्म, स्पृहणी और मुक्तिवाला होती है । भोग मनुष्य को छोटा बनाता है | त्याग का ससार विराट् है| निस्सीम है । त्याग का कोई अत नही है | इसीलिये एक स्थिति, भोग की चरम स्थिति पर पहुँचा मानव उससे भागना चाहता है | सत कबीर का काव्य असीमता का भोग विरोधी रचना है। आज जहाँ एक ओर भोग साधन]

प्रचुर हो रहे है । भोग और भोग की उत्तेजनाएँ उत्ताल तरयों मे है । वही उनकी गहरी प्रतिक्रिया भी देखी जा रही है। भोग का अस्वीकार पक्ष प्रवल हो रहा है । भोग नही | योग | सत कबीर इस योग के प्रबल पक्षधर है | उन्होंने स्‍्वय योग की साधना की थी | किन्तु योग मे भी विभूतिदर्शन, विभूति लाभ की आशका रहती है | योगी अपने चमत्कार से ससार को आकर्षित करना चाहता है | अतः सत कवीर ने भोगोत्मन्न विभूतियों को भी भगवान् को समर्पित कर दिया था | उनका सब कुछ भगवान के लिये था | यह भक्ति है | भक्त भगवान् का है । अत योग साधना की सारी उपलब्धियाँ भी भगवान् की है । भक्त तो निस्व है । जिसका अहम ही इदम् मे विसर्जित है उसके लिये न भोग है | न योग | केवल है समर्पण । भक्ति भौतिकता तो क्या ? योग को भी अतिक्रात करती है| सत कवीर की भक्ति मे योग, ज्ञान, कर्म, वैराग्य सवका पर्यवसान होता है | कहते है सत कवीर पढ़े लिखे नही थे | किन्तु उनकी रचनाएँ प्रत्येक पढ़े -लिखे के लिये आदर्श है| उनका ज्ञान पक्ष अत्यन्त उच्च स्तर का है । उनकी रचनाओं मे दर्शन, विशेषकर वेदात दर्शन और पुराकथा की अल्न्त निगूढ़ वाते भरी है। जिन्हे सामान्य जन तो क्या विद्वान् भी नही समझ पाते है | इसके साथ यह भी सच है कि कवीर के पाठक या तो अति स्तरी विद्वान् हे या अत्यन्त साधारण जन उनके भजनों का आनन्द लेता है | विना किसी प्रामाणिक पाठ की चिता किये विभिन्न क्षेत्रों की जनता कवीर को दुहराती है । आज करीब ५०० वर्षो से मौखिक परपरा ने कवीर के वचनों की सुरक्षा की है | उनका प्रचार प्रसार किया है | भावों को समझने परखने का सरल मार्ग बनाया है | इस प्रकिया ने कवीर की रचनाओं का विस्तार भी अवश्य किया होगा | फलत स्वयं सत के वचनों और परवर्ती मिलावट को अलगाना कठिन हो गया है। सभी तो अपने को मूल मानते है। इनमे सप्रदाय भेद भी है। सत कवीर मठ स्थापना के चाहे जितने विरोधी रहे हों | आज उनके नाम से अनेक सप्रदाय और मठ है | इन सप्रदायों और मर्ठो ने न केवल अर्थ भेद किया है बल्कि कभी-कभी पाठातर भी है | कवीर की चर्चा चलते ही प्रत्येक भारतवासी कोई न कोई कवीर की रचना सुनाकर पूछता है | यह पाठ आपने लिया है ? ओर कहना पड़ता है | यह तो नही है । किसी भी सग्राहक, सपादक के लिये लोककठ मे प्रचलित सत कबीर के नाम से चलने वाले सभी पाठों का सग्रह असभव सा है | जितने क्षेत्र, जितने व्यक्ति उतने पाठ | इस स्थिति का प्रभाव कबीर के पारठों की भाषा पर भी है। न जाने कितते क्षेत्रों, व्यक्तियों और वाचकों की भाषा ने सत कबीर की रचनाओं को आकार दिया है। सत कवीर की रचनाओं का मूल चित्र कैसा धा ? यह कहना आज अत्यन्त कठिन हो गया है | कभी यही स्थिति बुद्ध वचनों की हुई थी | अनेक सगायनों के वावजूद सर्वसम्मत पाठों का अभाव है। सर्वसम्मत पाठ भाषा और अर्थो के अभाव मे अशोक के समय ही वौद्धों के २४० सप्रदाय, उप सप्रदाय हो जाने का उल्लेख मितत्ता है। इन सप्रदायों के निजी आग्रह है | कोई भी व्यक्ति या सप्रदाय अपने

आग्रहों को छोड़ना नही चाहता है | ये आग्रह ही सप्रदाय शक्ति है। इनकी दृष्टि मे साप्रदायिक आग्रह वुद्ध के मूल वचन की अपेक्षा अधिक महत्व के है | ससार के सभी सत आग्रह मुक्ति का उपदेश देते है | किन्तु कोई भी आग्रह मुक्त नही हो पाता है । क्योंकि आग्रह ही सप्रदाय सगठन के आधार है | कोई भी सप्रदाय आग्रह रहित नही हो सकता है | हालत तो यह है कि आग्रह मुक्ति के आन्दोलनों के भी आग्रह है | जैसे दीवालों पर नोटिस चिपकाने या कुछ लिखने का निषेध दीवालों पर निषेध वाक्य लिखकर ही सभव होता है | सत्त कवीर की इन रचनाओं के विराट फलक और उसकी विविधता को यथावत्त् स्वीकार करना होगा । इसमे ध्यान रखना होगा कि यह विविधता मुख्यत भाषा और रचना सवधी है | इनमे भावों का वैपरीत्य नही 2

है । कोई भी रचना विपरीत भावों की नही है । सभी रचनाएँ सत कबीर के केन्री विचारों को सपुष्ट करती है | केद्री विचारों की इस एकतान सपुष्टता दो प्रकार के सकेत करती है | एक यह कि घुमक्कड़ साधु कबीर जहाँ गए वही की भाषा मे कुछ कहा | रमता जोगी वहता पानी की भाषा भी रमती वहती है। दूसरा यह कि शिष्यों ने इन्हे यथावत ग्रहण किया । इसमे उन्होंने प्रामाणिक पवित्रता के बावजूद अपनी भाषा का प्रभाव छोड़ा होगा | भाषा का सबंध मानवी सस्कारों से है| अत किसी भाषा का प्रयोग करते समय इन सस्कारों का प्रभाव का होना स्वाभाविक है । किसी भी वाह्य पदार्थ को मनुष्य अपने स्वभावके अनुसार ही ग्रहण करता है । आग पानी की ओर नही | आग की ओर आकर्षित होती है । बरसात, शिशिर और हेमत की अपेक्षा ग्रीष्म मे प्रचंड सूर्य से तप्त दारु खड या पत्रों को अग्नि शीघ्र अपना बना लेती है। सत कबीर की रचनाओं के मुख्यत तीन भेद सर्व स्वीकृत है | वे है साखी, सवदी और रमैनी । इनमे साखी दोहों मे है । सबदी पद में है | रमैनी मे मुख्यत दोहा चौपाई का प्रयोग हुआ है | कहते रमैनियाँ छ लाख से अधिक है---& लाख छानबे सहस्र रमैनी एक जीभ पर होय ।* ऐसे ही कबीर ने अपने को चारों युग का महात्मा कहा है | इस स्थिति मे पाठ निश्चय का एकमात्र आधार प्रस्तुत को ही वनाना उचित है| यह बात तव और महत्व रखती है जब अनेक विद्वानों के प्रयलों को पूर्ण विफलता मिल्री है | एक विद्वान् ने पहले अपने शिष्य से पाठ सशोधन कराकर उन्हे विश्वविद्यालय की उपाधि दिलवायी | बाद मे उसे उन्होंने अप्रामाणिक घोषित कर अपना पाठ दिया । यह पाठ मुख्यत 'सभा' का पाठ है। इस प्रकार पारठों को लेकर नाना प्रकार के मतातर रहे है। कबीर पथी साधु प्राय बीजक को ही प्रामाणिक मानते है। बीजकों की भी अनेक शाखा परपराएँ है। असल मे संत्त कबीर जिस प्रकार लोक कठ पर है। उसी प्रकार उनके पाठ का निश्चय भी लोक मे है। विद्वान् मात्र उसके सग्राहक है । पूरा सग्रह भी कर ले | यह बड़ी बात होगी । हिन्दी पूरे देश की भाषा है। किन्तु सभी क्षेत्रों की भाषा शैली, उच्चारणादि भिन्न है। इसी तरह की बात कबीर की भाषा के बारे मे है। लोगों को उनकी भाषा पर पजाबी प्रभाव पर बड़ी आपत्ति है। किन्तु किसी पजाबी से इस आग्रह को छोड़ने का अनुरोध कर देखिए | वह कभी तैयार नही होगा | इसी से कवीर साहित्य के गभीर अध्येता श्री पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव जी ने कबीर की भाषा के पजाबी और राजस्थानी प्रभावों का भी अध्ययन किया है | श्रीवास्तव जी बाबू श्यामसुन्दर दास के शिष्य ,. थे। प० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भाषा अध्ययन के पक्ष को बिल्कुल ही छोड़ दिया | डा० सुभद्र झा ने कबीर की भाषा को मैथिली बनाने का प्रयास किया है | आचार्य शुक्ल इसे पचमेल कहते है | प० परशुराम चतुर्वेदी, त्रिगुणायत आदि का भी यही मत है | डा० श्याम सुदरदास कबीर की भाषा के प्रामाण्य को टेढ़ी खीर मानते है | डा० पारस नाथ तिवारी, उनके गुरु माता प्रसाद गुप्त आदि भी इसी मत के है | इन बातों को ध्यान मे रखकर यथावाद को ठीक जानकर सारे पाठ रखे गए है |

प्रस्तुत सग्रह का ध्यान पाठ की अपेक्षा अर्थ, कबीर के काव्य सौंदर्य और उसकी दार्शनिक उपलब्धियों पर है | इन दृष्टियों से यह सग्रह कबीर के अब तक के सग्रहों मे विशिष्ट है | इतनी महत्वपूर्ण पुस्तक को कम से कम मूल्य पर उपलब्ध कराते हिन्दी प्रचारक सस्थान को गौरव का अनुभव हो रहा है। पुस्तक की पदसूची का निर्माण डा० मनोरमा दुबे ने किया है। प्रकाशक को आशा है वह कवीर साहित्य के इस कार्य को और आगे वढ़ाएगा | बे पु

परिचय कवीर समग्र की रचनाएँ साखी, सवद (पद) और रमनी इन तीन खडों मे बँटी है | सख्या की दृष्टि से साखियों की सख्या सवसे अधिक है | उसके वाद है पद | सबसे कम सख्या रमैनियों की है | विप्रमतीसी, कहरवा आदि को भी पदों के साथ सयुक्त कर दिया है | अधिकाश छटों के शब्दार्थ, अर्थ और विशेषताएँ वनानेवाली टिप्पणियाँ भी दी गयी है | प्राय ही अलकार भी निर्दृष्ट है | कुछ छद अर्थ की दृष्टि से छोड़ दिए है । ये छद प्राय ही सरन और पुनरुक्त भाव वाले है | कुछ छदों के शब्दार्थ मात्र दिए गए है | पाठ भेद देने की अपेक्षा वैकल्पिक पाठ वाले छदों को यथावत ग्रहण कर लिया गया है | कोशिश की गयी है कि सभी उपलब्ध प्रकाशित सामग्रियों का एक जिलल्‍्द मे समाहार हो जायगा । अर्थों की भापा सरल और सुवोध रखी गयी है । कवीर साहित्य मे अनेक पारिभाषिक शब्द हैं | एक ही शब्द कई पारिभाषिक अर्थो मे प्रयुक्त है। अधिकतर पारिभाषिक शब्द सकेत या प्रतीक सूचक है । अनेक उलटवॉसियों के शब्द है| इन मभी शब्दों के अर्थ व्याख्या मे यथास्थान दिए गए है | साथ ही अत मे पारिभाषिक एव प्रतीकात्मक शब्दों की अर्थ सहित सूची है । यह सूची अब तक प्रकाशित सूचियों मे सवसे वड़ी है । खीचतान कर शब्दों की लवी सूची से मोटा कोश बनाने की अपेक्षा मात्र पारिभाषिक एव प्रतीकात्मक शब्दों को अर्थ सहित देना उचित समझा गया | कठिन शब्दों के अर्थ यधास्थान हैं । अव अलग से किसी कोश का निर्माण व्यर्थ लगता है | लेखक द्वारा इस पुस्तक के आरभ मे दो सौ पृष्ठों की भूमिका अत्यन्त महत्व की है। कबीर की दार्शनिक चिताधारा को समझने मे अब तक इतना गभीर और विस्तृत नही हुआ है | लेखक को मान्यता के अनुसार कबीर काव्य की प्रत्येक पक्ति किसी न किसी दार्शनिक चितन से युक्त है इस दृष्टि से कवीर काव्य का प्रत्येक छद विस्तृत व्याख्या की अपेक्षा रखता है । इन व्याख्याओं को टीका के साथ प्रस्तुत करना न सभव है | न उचित ही | इसी से लेखक ने उन छद पक्तियों को आधार वनाकर नमूने के रूप मे कुछ निवध प्रस्तुत किये है । इन निवर्धों को लिखते समय लेखक ने कवीर काव्य की आतरिंक चेतना का साक्षात्कार किया है | इस साक्षात्कार ने लेखक को ऊर्जस्वित और उत्साहित गिया है । अव लेखक सपूर्ण कवीर काव्य के प्रत्येक छद को निवधों मे समेटने की मनस्थिति मे है। यही कार्य उसने (१११ मानस निवध' लिखकर राम चरित मानस के छदों के वारे मे किया है। ऐसा ही पक्ति या छद निवध वह गीता तथा महाभारत पर निख रहा है | कबीर काव्य पर लिखे गए ये निवध कवीर साहित्य की समझदारी मे नया ओर विशिष्ट आयाम प्रस्तुत करते है | इनसे मत कबीर के काव्य ओर दार्शनिक गहराइयों का अनुभव होता है । आशा है ये निवध न केवल पाठक को ज्ञान वृद्धि करेगे वल्कि वह साहित्य के ज्ञानात्मक सौंदर्य का भी आनन्द ले सकेगा | लेखक की स्पष्ट मान्यता है कि सत कबीर अद्वित वेदात के सर्वश्रेष्ठ भापा कवि है | बिना अद्वैत को समझे सत कवीर को समझना कठिन है। किन्तु अद्वैत के साथ ही सत झवीर पर पड़नेवाले हू

दूसरे प्रभावों को भी अस्वीकार नही किया जा सकता है। क्योंकि सत कवीर कोरे दार्शनिक न होकर भाव सपन्न कवि है | ससार को माया मानकर भी वे ससार मे उत्पन्न उचितानुचित का विचार करते है। ससार को माया मानने का मतलब ससार छोड़ना नही है | जव तक देह है ससार रहेगा | तो जो है | जो रहेगा | जो छूट नही सकता | उसके सौन्दर्य और स्वास्थ्य का प्रयल भी आवश्यक है। मायावाद किसी अनाचार की छूट नही देता है । वह जीवन से पलायन न होकर जीवन उचित ढग से जीने का दर्शन है। मुक्ति का अर्थ भोग, विषय एव इनके लिये उत्न्न बन्द, अनाचार आदि से मुक्ति है । एक ऐसे जीवन की कल्पना है जिसमे सबके प्रति प्रेम हो । जिसमे घृणा, द्वेष, क्रोध, मोह, शोषण एव-अकेले भोगने का प्रसग न हो । इसीलिये सभी सत अपना धधा करते है | परिवार के साथ साधु सतों का भी सत्कार करते है। अपने कम से कम लेकर दूसरों की व्यवस्था करते है । लेखक ने अपने निबधों मे कबीर के बारे मे प्रचलित अनेक भ्रमों का भी निराकरण किया है | उदाहरणार्थ धारणा है कि कबीर की पत्नी का नाम लोई था | किन्तु लेखक ने इसे लोक का अपभ्रश वताकर कवीर की स्त्री के इस नाम का खडन किया है | ऐसे ही कुछ विद्वानों ने कवीर की दो पत्नियों को मान्यता दी है | किन्तु लेखक ने इसे माया और भक्ति का रूपक न समझने का भ्रम बताया है | ढाई आखर एक बड़ा भ्रम प्रचलित है | लोग समझते है | कवीर ने ढाई आखर प्रेम का कहा है। किन्तु ढाई शब्द भी गलत है | पूरे कवीर साहित्य मे ढाई की कोई अवधारणा नही है| यह अवधारणा एक की है | 'एक जु अच्छर प्रेम का' | कबीर सर्वत्र ही एक के उपासक है | वे एक से अधिक दो को गाली मानते है | दोइ कहे ते गारि | ऐसे ही कबीर का सबध मगहर बताना भी परपरा विरुद्ध है । मगहर मगध गृह का अपगभ्रश है । दवन्द काशी और मगध का है | कासी मग सुरसरि कविनासा | कबीर काशी की निदा किये बिना मगहर (मगध गृह) को महत्व देना चाहते है | इस दृष्टि से मगहर स्थान विशेष न होकर क्षेत्र और अचल है | कबीर की भाषा का अध्ययन लेखक ने काव्य सौंदर्य की दृष्टि से किया है । उसके व्याकरण रूपों के अध्ययन को आवश्यक नही समझा | क्योकि व्याकरण रूपों की प्रामाणिकता पर अनिश्चय की स्थिति रहती है । लेखक यह मानने के लिये तैयार नही है कि सत कबीर पढ़े- लिखे नही थे । उनके द्वारा प्रस्तुत का विरोध औपनिषदिक परपरा है। सभी सत भक्तों ने पुस्तक ज्ञान, अक्षरज्ञान को हीन बताया है| असल है आलज्ञान, आत्म साक्षात्कार । पुस्तके बाहरी है | इनसे अतर के देव की प्राप्ति सभव नही | सभव है सतत कबीर को यह सारा ज्ञान मौखिक परपरा से प्राप्त था | जैसा कि पहले प्रायः ही होता था । आज भी ऐसे लोग मिलते है | जिन्हे अक्षर नही आता । किन्तु वे पूरा रामचरित मानस, गीता या दूसरे कवियों की सैकड़ों रचनाएँ सुना सकते है। अक्षर पर अत्यधिक बल आधुनिक अवधारणा है | सतों, भक्तों का मार्ग भौतिकता की अपेक्षा आध्यात्मिक है | इसी से कबीर और तुलसी मे भी मूलत अविरोध है। विरोध वहाँ उतना नही

है जितना लोग देखना चाहते है | इस बात की सिद्धि के लिये लेखक ने तुलसी और कबीर के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है | इन निवधों की सारी स्थापनाएँ प्रमाण पुष्ट है । कोई भी बात बिना प्रमाण के लादने का प्रयल नही ९ । स्थापना सामान्य विश्वास से भिन्न होने के कारण चकित कर सकती है । किन्तु वे गलत नही 5

कं है। आशा है इस अध्ययन से भक्ति साहित्य का परपरित किन्तु रुद्ध मार्य पर नया और उचित प्रकाश पड़ेगा | यह पुस्तक हिन्दी प्रचारक सस्थान, वाराणसी की महत्वपूर्ण देन है| प्रकाशन सस्थान के स्वामी श्री कृष्ण चद्र वेरी जी की प्रवल इच्छा और भक्ति काव्य के प्रति अनुराग का परिणाम है | बेरी जी के पुत्र श्री विजय्न प्रकाश बेरी, श्री राजेन्द्र बेरी, श्री अनिल बेरी तथा पौत्र श्री विवेक वेरी ने भी रुचि लेकर प्रकाशन कार्य को पूर्ण किया है। अत ये सभी सत आराधना फल के भागी है । प्पूर्ण ग्रथ भगवताराधना का विनम्र प्रयास है |

४१ ७ छ के का 2 ० २० ३० क्व अम्मी 3 3 0) ७ 5 0 09 «09 09 «9 0 «0 «9 «9 «9 0 ही अं दएण 4० उ3 9 २9 ७ छ की रछ «४2०४ ७9 [| विषय-सूची | विषय प्रकाशकीय परिचय प्रथम भाग भूमिका भक्ति. स्थान और आरम्भ भक्ति द्रविड़ ऊपजी कबीर' हिन्दू सुधारक की बेचैनी कबीर जाति, स्थान भक्ति की उपलब्धि अहिसा जाति व्यवस्था और भक्ति पुस्तकी ज्ञान का विरोध मै न मरी मरिहे ससारा महाठगनी माया पौराणिक अनुभव एक की अनेकता सगुण संकेत विरला एक मनोयात्रा सब उलय दास से साहब भागवत और कबीर ज्यो के त्यो धरि दीनी चदरिया कबीर की स्त्री नकार पानी मे मीन पियासी न हँसने वाला कवि समन्वय एवं साधना की कविता उपास्य ग्यान की औंधी (१) पृष्ठ १-१० ११-१४ १५-२० २१-२९ ३०-३२ ३३-३९ ४०-४३ ४४-४६ ४७-५० ५१-५८ ५९-६२ ६३-६६ ६७-६९ ७०-७४ ७५-०८ ७९-८२ ८३-९० ९१-९५ ९६-९९ १००-१०४ १०५-१०८ 9१०९-१११ ११२-१२० १२१-१२४ १२५-१२८

क्रम संख्या २६ २७ २८ २९ ३० ३१. ३२. ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९. ४० ४१ डर 2० ७ छ «0 का 6६८ ० २० २० 90 90 0 न_0 9 0 0 05 आल कबीर समग्र कवीर की भाषा तुलसी और कवीर वैष्णव भक्त गुरु ईश्वर की अस्वीकृति रमैनी समाज सुधारक ननद भौज परपंच रचो है बाप जनमिया पाछै करनी किया करम का नास कवीरा सत नदी गयो बहिरे बैल वियाइ गाय भई*बाँझ नाम लिये का होई हाम काम हकारी पुरुषहि पुरिषा जो रचै हम तौ जाति कमीना यहि घट चदा यहि घट सूर द्वितीय भाग साखी गुरुदेव की अग सुमिरण कौ अग विरह कौ अग ग्यान विरह की अग परचा कौ अग रस की अग लाबि की अग जर्णा की अग . हैरान कौ अग लै की अग निहकर्मी पतिब्रता कौ अग चितावणी कौ अग मन कौ अग सूषिम मारग कौ अग पृष्ठ १२९-१४० १४१-१४८ १४९-१ ५१ १५२-१५५ १५६-१ ५८ १५९-१ ६० १६१-१ ६४ १६५०-०१ ६७ १६८-१७१ १७२-१७६ १७७-१ ८१ १८२-१८५ १८६-१८९ १९०-१९४ १९५-१९७ १९८-२०० २०१-२०३ २०४-२१३ २१३-२२९ २३०-२३७ २३७-२३९ २३९-२४८ २४८-२४९ २४९-२५० २५०-२५१ २५२-२५२ २५२-२५३ २५३-२५६ २५६-२६६ ३२६६-२७१ २७१-२७२

विषय सूची

क्रम संख्या ४९ ५१ पर ५३ पड ५५ ५६, ५७ ५८ ५९, ६० ६१ दर ६३ द्द्ड ६५ ६६ ६७ ६८ ६५ ७१ छर ७३ ७४ छ५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८१ ८२ कबीर समग्र पारिष की अग उपजणि कौ अग दया निरबैरता कौ अग सुदरी की अग कस्तूरियों मृग कौ अग निद्या कौ अग निगुणों की अग बीनती की अग साषीभूत को अग बोलि की अग अबिहड़ की अग निगुरा नर को अग गुरु शिष्य हेरा को अग सेवक को अग दासातनको अंग यतीकी अग सतीको अग उपदेशको अग सुमरनको अग बेअकलीको अग अकल को अग प्रमोध को अग भक्ति को अग स्वारथको अग परमारथको अग प्रेमको अग विरहको अग ज्ञान बिरहको अग परचाको अंग रसको अग हैरानकी अग भेदी नरको अग जरनाको अग लौको अग पृष्ठ ३४०-३४० ३४१-३४२ ३४२-३४३ ३४३-३४३ ३४४-३४५ ३४५-३४६ ३४६-३४९ ३४९-३५० ३५०-३५१ ३५१-३५२ ३५२-३९० ३९१-३९१ ३९१-३९३ ३९३-३९४ ३९४-३९४ ३९४-३९५ ३९५-३९५ ३९५-३९५९ ३९९-४०३ ४०३-४०३ ४०३-४०३ ४०३-४०४ ४०४-४०५ ४०५-४०६ ४०६-४०६ ४०६-४०७ ४०७-४०९ ४०९-४१० ४१७०-४१ ३ ४१३-४१४ ४१४-४१४ ४9१४-४१५ 3४9५-४१५ ४११५-४१ ६

5म संख्या ११७ ११८, ११९. १२०५ 9१२१ १२२. १२३ १२४ १२५, १२६ १२७ १२८ १२९ १३० १३१. १३२ 9१३३ १३४ १३५ १३६ १३७ १३८ १३९ १४०. १४१ : १४२. १४३ १४४ १५४५ १४६ १४७ १४८ १४९ "१५० कबीर समग्र साधुमहातमको अंग देखादेखीको अग मध्यको अंग समझावटको अंग विचारको अंग असारग्राहीको अग सारग्राहीको अग पीवपिछानको अग विश्वासको अंग धीरजको अग विरक्ताईको अग सामर्थाईकोी अग कुशब्दको अग सुशब्दको अंग दुविधाको अग ऐक्यताको अग पछतावाको अंग कालको अंग सजीवनको अग साक्षीभूतको अग चित्त कपटीको अंग समदृध्को अग हेतप्रीतिको अंग कायरको अग शूरातनको अंग सतीको अग व्यापकको अग जीवत मृतकको अग जीवनमुक्तिको अंग मासाहारीको अंग अमल अहारिको अग अपारखको अंग पारखको अग निन्दाको अग पृष्ठ ४५३-४५७ ४५७-४५७ 3५७-४५५९ ४५९-४५९ ४५९-४६० ४६०-४६१ ४६१-४६१ ४६१-४६३ ४६३-४६४ ४६४-४६४ ४६४-४६५ ४६५-४६६ ४६६-४६७ ४६७-४६९ 3४६९-४७० ४७०-४७० ४७०-४७१ ४७१-४७५ ४७५-४७६ ४७६-४७६ ४७६-४७७ ४७७-४७७ ४७७-४७८ ४७८-४७९ ४७९-४८३ ४८३-४८३ ४८३-४८३ ४८३-४८५ ४ड८५-४८५ ४८५-४८७ ४८७-४८८ ४८८-४८९ ४८९-४९१ ४९१-४९१

क्रम संख्या १५०१, १५०२. १५०३. १५४. १५५, १९६ १५७. १७८. १५६. १६० १६१ १६२. १६३ १६४ परिशिष्ट : १ परिशिष्ट : अनिन्दाको अंग साकटनरको अंग दयाको अंग कुदयाको अंग स्वादीको अंग अनस्वादीको अंग सुन्दरीको अंग उपजनको अग कस्तूरिया मृगको अंग निगुरानरको अंग विनतीको अग वेलिकी अग अबिहड़को अग बेहदकी अग परिशिष्ट साखी (अ) परिशिष्ट साखी (ब) पद परिशिष्ट (पद) विषय सूची तृतीय भाग पद परिशिष्ट पदों के शब्दार्थ चतुर्थ भाग हट । महाकवि रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रशंसित रचनाएँ महाकवि रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रशंसित रचनाएँ रमैनी पंचम भाग विप्रमतीसी आदि विप्रमतीसी आदि षष्ट भाग रमैनी सप्तम भाग प्रतीकात्मक एवं पारिभाषिक शब्दावली प्रतीकात्मक एव पारिभाषिक शब्दावली + +* + ४६२-४६२ ४६२-४६३ ४६३-४६४ ४६४-४६४ | ४६४-४६४ ४६४-४६५ ४६५-४६५ ४६५-४६६ ४६६- ४६६ ४६६-४६७ ४६७- ४६८ ४६८-४६६ ४६६-४६६ ४६६-५०० ५०१-५१२ ५१३-५२२ ५२३-६६१ ६६२-७४१ ७४२-७५२ ७५०३-७८७ छद८-८१० ८११-८६८ ८६६-८६७

तृतीय संस्करण | "कवीर समग्र" का तृतीय सस्करण देख प्रसन्नता होती है। श्रेष्ठ साहित्य के पाठक अभी | भी है। यह प्रमन्नता का विशेष काग्ण है। पाठकाभाव के प्रमुखत दो कारण हें---एक है शिक्षा! का गिरता स्तर! दूसरा है, मौलिक, चिंतित और बौद्धिक साहित्य का अभाव! अभी तक किसी तरह दूर पश्चिम के सुहावने ढोल से काम चलाया गया। अब पता लगा। टोल में पोल है। फलत् पाठक आयायित विचारों से ऊब चुका है। आयायित साहित्य प्राय ही बासी, रुक्ष, उच्छिष्ट और कुदन्न होता है। ऊपर से लदा होने के कारण बोझ ढोना ही पड़ता है| पाठकों ने इस बोझ को अस्वीकार अवश्य कर दिया है) किन्तु श्रेष्ठ विकल्प के अभाव में उलझने हो रही है। औद्योगिक क्रांति की वैचारिक ऊर्जा अग्रेजी राज मे ही चुक गयी थी। कुछ दिनो तक हमने मार्क्स की वैसाखी पकड़ी! किन्तु मार्क्सवाद सौ शग्तू भी न जी सका ओर वृह प्रिनिर्वाण को प्राप्त हुआ। फलत ससार के सामने विचारों का महाशून्य मुँह खोले खडा है॥ एक नवृजागरण दस्तक दे रहा है। इसीसे लोग भारत के वेदात, बुद्ध्, कबीर, तुलसी, गाँधी को आशा से देख रहे हैं। योग नहीं, योगा जीन्स नहीं, भगवा। मशीन नहीं, मनुष्य) वस्तु नहीं, व्यक्ति। दृश्य नही, द्रष्टा। जानता हूँ। अग्रेजी के बधिरकर्ण इस नवजागग्ण के दस्तक को नही सुनेगे। सचार माध्यमो ने उन्हे खोखा बना दिया है! किन्तु दूसरा विकल्प भी नहीं है। प्रत्येक महान् आरम्भ मे उपेक्षित होता है। कबीर समग्र के बार-बार सुस्करण् प्रमाणित कग्ते हैं। भारत का पाठक अब आयायित साहित्य के जुए को अपने कृधो प्र नहीं रखेगा! अब भारत के स्च्चिंतित, प्राणवान् और श्रेष्ठ साहित्य के दिन् लौट रहे हैं। "कवीर समग्र" भारत के आत्मनिर्मर चिन्तन का विनम्र प्रयाम हे ॥ हिन्दी प्रचारक सस्थाव, चाराणसी के स्वामी श्री कृष्णचन्द्र बेरी को इस प्रकार के साहित्य में रूचि है। यह सुखद पक्ष है॥ -- युगेश्वर २०-२-१९५६ चतुर्थ संस्करण "कबीर समग्र" १९९६ मे तृतीय एच् १९९८ मे चतुर्थ संस्करण आश्वग्त करता है। पिछले दिनो एक जापानी पाठक ने अत्यन्त उत्साह से कबीर समग्र की प्रश्सा लिखी थी। डसमे पता || लगता है। कबीर समग्र सार्वभौम् रूप ले रहा है। चतुर्थ सस्करण मे कुछ भूले, छूटे सुधारी गयी हैं। भविष्य के सस्करणो मे अधिक सुधार संभावना है? -- युगेश्वर २५-१२-१९९७

भक्तिः स्थान और आरम्भ भारती जनमानस पर सबसे अधिक प्रभाव भक्ति'' का है। कम से कम पिछले दो हजार वर्षो से इस प्रभाव की निरन्तरता प्रमाणित है। तारीखे कठिनाई मे डाल देती है। सनातन'' की कोई तारीख नहीं। कोई सन् और सवत् नहीं। सनातन अनत और अजन्मा है। खोजी भक्ति का आरम्भ वेदो से ही कहते है। जहाँ तक भारती साहित्य है वहाँ सर्वत्र ही भक्ति है। वेद, उपनिषद्, पुराण, काव्य, प्रबन्धम, भाषा, बौद्ध, जैन, दक्षिण, उत्तर, पूर्व, पश्चिम सब जगह भक्ति है। यहाँ तक कि सूफियो के यहाँ भी। भक्ति ब्रह्म जैसी व्यापिनी है। गीता मे श्रीकृष्ण ने भक्तियोग को पुरातन कहा है। इसे उन्होने सर्वप्रथम सूर्य को बताया था। सूर्य ने अपने पुत्र मनु को। मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को। इसी सूर्य कुल मे भगवान राम का जन्म हुआ था। महाभारत मे भक्ति नारद को श्वेतद्वीप मे भगवान से प्राप्त हुई थी। यह श्वेतद्वीप बदरिका आश्रम के आस-पास है। हिमालय का श्वेत धवल यह स्थान कभी समुद्र से घिरा रहा होगा। आगे चलकर जिस भक्ति का विकास हुआ वह भी नारायणी या भागवत भक्ति है। किन्तु भक्ति का क्षेत्र विष्णु के अतिरिक्त भी है। शिव और विष्णु की भक्ति की दो धाराएँ प्राचीन है। लोकमान्य तिलक ने लिखा है-'भगवद्गीता (९ १४) एवं शिवगीता (१२ ४) दोनो ग्रंथों मे कहा है कि भक्ति किसी की करो, पहुँचेगी वह एक ही परमेश्वर को। महाभारत के नारायणी धर्म मे इन दोनो देवताओं का अभेद यो बताया गया है कि नारायण और रुद्र एक ही है। जो रुद्र के भक्त है, वे नारायण के भक्त है और जो रुद्र के द्वेषी है वे नारायण के भी द्वेषी है (म० भा०० शा० ३४१ २०-१६ और ३४२, १२९ देखो)? इतना ही नही शारदा, दुर्गा, सूर्य, ब्रह्म आदि की भी भक्ति होती थी। आगे चलकर बोधिसत्, बुद्ध, अर्हत आदि की भक्ति होने लगी। सभी भक्तो ने प्राय सभी देवताओ की प्रार्थनाएँ की है। अवतारों की सख्या भी बढ़ती जा दृही है। आस्तिक बुद्धि का श्रद्धालु भक्त और भगवान् मे भेद करने का साहस नहीं करता। झगड़े तो अश्रद्धालुओ के काम है। सभी देवो के प्रति पूज्य भाव के कारण ही समन्वय का विकास हुआ। वेद-विरोधी बुद्ध वेदर्मियो के भगवान् हो गए। जैनो के ऋषभदेव अवतारो मे शामिल कर लिए गये। आत्मा, परमात्मा और सत्ता के विरोधी पूज्य होते-होते स्वय भगवान हे गए। सर्वोच्च सत्ता बन गए। भुक्ति-मुक्ति के दाता बन गए। इतिहास से अधिक पुराण बन गये। भारत का शायद ही कोई सम्प्रदाय, मतवाद और धारा हो जहाँ भक्ति का उदय नहीं हइंआ। सनातन धारा ने विरोधियों को प्रभावित किया। विरोधियों ने सनातन के निर्माण में अपना योग दिया। भारती मनीषा ने कब, कहाँ और किसको प्रभावित किया है, इसका लेखा कठिन है। सनातन की सभी धाराएँ अनत है। वे एक दूसरे के साथ चलती है। विरोधी बौद्ध और जैन धर्म वेद-धर्म से ही विकसित थे। उन्होने सुधार चाहा। एक पिता के विपुल कुमार की स्थिति थी। पिता के गुण-दोष तो इनमे थे ही, उन्होने अपने भाइयो को भी प्रभावित किया। उनसे प्रभावित भी हुए। १. भीता-रहस्य-पृ० ३४३। (१)

२ कबीर समग्र आधुनिक युग मे खण्डित देखने की प्रवृत्ति बढ़ी है। आर्य, अनार्य, द्रविड़, दक्षिण, उत्तर के विभाजन द्वारा भक्ति की शुरुआत आदि पर मत स्थापित किये जाते है। पहली बात तो यह है कि आर्य और द्रविड़ का बँटवारा प्रामाणिक और विश्वसनी नही है। ये देशो और जातियो के आपसी नामकरण है। इनमे सभ्यता, धर्म, सस्कृति और देश-विदेश जैसा बड़ा अलगाव खोजना अधूरी दृष्टि है। इन्हे दो जातियो-देशी-विदेशी के रूप मे देखना इतिहास विरुद्ध और छल वाला है। भारती मेधा इस देश की विशाल्ता, विविधता और प्राचीनता के प्रति सावधान रहने के कारण ही सामजस्य बैठाती है। विष्णु का शयन-स्थल समुद्र है, तो अवतार-स्थरू मध्य देश। शकर की निवास-भूमि धुर उत्तर है, तो उनके अनेक भक्त दक्षिण मे है। भगवान उत्तर के, भगवद्धाम सभी दिशाओं मे। भगवान् की द्वैत, अद्धैत, विशिष्ट आदि मूर्तियों गढ़नेवाले आचार्य दक्षिण मे। आचार्यो के कवि शिष्य प्राय उत्तर के। कहते है शिव ने अपने हाथो से डमरू वजाया। अगस्त्य और पाणिनि दोनो उपस्थित थे। बायी ओर से निकलनेवाली ध्वनियाँ तमिल और दायी ओर से निकलनेवाली सस्कृत का मूलस्त्रोत बनी। अगस्त्य वाराणसी, उत्तर के थे। उन्होने या उनके शिष्य ने प्रथम तमिल व्याकरण का निर्माण किया। स्वयं शिव सावधान थे। तमिल वायी, ओर (उत्तर! से निकली और सस्कृत दायी (दक्षिण) से। शोधी कहते है कि भागवत" का निर्माण दक्षिण मे हुआ। प्रस्थानत्रयी के अधिकतर-टीकाकार आचार्य दक्षिण के थे। किन्तु भारती मेधा भेद के चक्कर मे नही पड़ती। उसके लिए भागवत" दैवी ग्रन्थ है। देवता का कोई एक स्थान नहीं होता। आचार्यो का जन्म दक्षिण मे हुआ होगा। किन्तु वे पूरे देश के है। इसीलिये सन्‍्यासी अपनी जन्मभूमि बताने मे सकोच करते है। जाति पूछने पर तो वे बिलकुल दुखी हो जाते है। फिर भी भक्ति स्थान और काल से कभी-कभी जुड़ती है। महाभारत का श्वेत द्वीप कहा है पता नही। नारद का नाम सही है। नारद भक्ति के मान्य और प्राचीन आचार्य है। प्राय अस्वीकार की मुद्रावाले कबीर भी नारदी भक्ति मे मग्न है (भगति नारदी मगन कबीरा) महाभारत के स्रोत से इतना ही कहा जा सकता है कि भक्ति अनादि है। भागवत मे "भक्ति की उत्त्पत्ति के बारे में दो सकेत है। एक, जिसमे भक्ति स्वय अपने बारे मे कहती है-"मै द्रविड़ देश मे उत्पन्न हुई। कर्नाटक मे बढ़ी। कही-कही महाराष्ट्र मे बढ़ी और गुजरात में बूढ़ी हो गयी। वहाँ घोर कलियुग के प्रभाव से पाखण्डियो ने मुझे अग-भग कर दिया। अपने पुत्र के साथ मे दुर्बह और मन्द हो गयी हूँ। अब वृन्दावन आकर मुझे सुन्दर रूप और यौवन मिला।" (भागवत की प्रस्तावना) नारद को यह भक्ति यमुना के किनारे मिली धी। दूसरा उदाहरण भागवत्त एकादश स्कन्ध के अध्याय पॉच मे है। करभाजन जी कहते है-कलियुग मे द्रविड़ देश मे अधिक भक्त पाये जाते है, जहाँ ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी, परम पवित्र कावेरी, महानदी और प्रतीची नाम की नदियाँ बहती है। राजन जो मनुष्य इन नदियों का जल पीते है, प्राय उनका अन्त करण शुद्ध हो जाता है और

वे भगवान् के भक्त हो जाते है" (३८-४०)। इन दो उद्धरणो के अतिरिक्त कबीर की प्रसिद्ध उक्ति है- "भक्ति द्रविड़ ऊपजी छाए रामानन्द।" इन उद्धरणो और भक्ति के मध्यकाढीन आचार्यो (जो प्राय दक्षिण के है) को आधार बनाकर दक्षिण मे भक्ति की खोज हुई है। दक्षिण की भक्ति का सम्बन्ध आलवारो से जोड़ा जाता है। भक्ति सम्बन्धी सभी लेखको ने आलवारो की चर्चा की है। "कुछ शिलालेखो से पता चलता है कि प्रारम्भ मे यह शब्द आलवार) केवल वैष्णव भक्ते के ढिये न होकर शैव, जैनभक्तो तथा भगवान् बुद्ध के लिये

हु भ्रक्ति स्थान और आरम्भ ३ होता धा।”* आगे चलकर आल्वार शब्द केवल वैष्णव भक्तो के लिये सीमित हो गया। का अजब आलवारो की सख्या १२ गिनी जाती है। अधिकाश विद्वान आल्वारों का काल सामान्य रूप से चौथी शताब्दी से नवी शताब्दी मानते है।”२ इस प्रकार ५०० वर्षो के काल मे ' 9२ आल्वार हुए। सबो ने अपनी रचनाएँ तमिल मे की है। सबो के तमिल के अतिरिक्त -सस्कृत नाम भी है। 'आठ्वरो की विचारधारा वेद और गीता से प्रभावित दीख पड़ती है। प्रथम तीन आलवारो (पोयगे आलवार, भूतत्ताहवार और पेयालवार) ने अपनी रचनाओ मे , बैदिक विचारों को अधिक व्यक्त किया है जिससे उनके वेदो के पाडित्य का पता चलता है। चौथे आलवार (तिरुमलिश आठ्वार) ने ऐसे विचारो को व्यक्त किया है जो पॉचरात्र मत से प्रभावित दीख पड़ते है। नम्माठ्वार की रचनाओ मे तो वेद और गीता के विचार भरे पड़े है।”३ 'अलवारो ने वेद, उपनिषद् और गीता से विचार ग्रहण कर भक्ति का सर्न्नृतम रूप जन - सामान्य के सम्मुख रखा।”४ स्पष्ट है कि आल्वारों की विचारधारा वैदिक विचारधारा है। प्रत्येक आल्वार ने प्राय वेद, गीता, उपनिषद् आदि का उल्लेख किया है। अब आर्य और द्रविड़ सस्कृतियों के अठगाव और सगम की चर्चा कोई अर्थ नही रखती। करीब ५०० वर्षो मे केवल १२ आलवारों का होना किसी आन्दोलन का परिणाम न होकर एक विचारधारा और एक प्रकार की रचना का शनै विकास अवश्य है। आलवारो के समान ही उसे युग मे शिव भक्त नायनमार थे। नायनमारो की सख्या ६३ थी। आलवारो मे पेंचगुनी। किन्तु नायनमार की परम्परा का आगे विकास न हो सका। दक्षिण के आलवारों की अल्पसख्या को देखकर कहा जा सकता है कि “भक्ति आन्दोलन की अपेक्षा जीवन की शाश्वत धारा है। हाँ, समय-समय पर उसमे बरसाती ज्वार अवश्य आता है। यह बरसाती ज्वार दक्षिण मे कम, उत्तर मे अधिक दीखता है। दक्षिण से उत्तर की भक्ति-धारा को प्रभावित बताते समय ध्यान मे रखना चाहिए कि उत्तर के कवि दक्षिण के कवियो से प्रभावित नही जान पड़ते। इसकी अपेक्षा उन पर आचार्यो का प्रभाव है। दार्शनिक क्षेत्र मे सभी भक्त आचार्यो की टक्कर शकराचार्य से है। 'शकराचार्य को प्रच्छन्न बौद्ध भी इन्ही आचार्यो ने कहा। शकर भक्ति विरोधी नही थे। हॉ, उनके यहाँ भवित को प्रथम स्थानन था। कहना इतना ही है कि भक्ति की धारा शकर को छूकर ही निकलती है। वेदान्तकेसरी ने सारे देश को प्रभावित किया। उसी प्रभाव मे मध्यकाल के अन्य भक्ति-दर्शनो का विकास हुआ। दर्शन हो या इतर क्षेत्र, सब जगह सनातन और सनातनविरोधी एक-दूसरे को प्रभावित कर रहे थे। यह प्रभाव अपने मे विचित्र ढंग का था। विरोध और ग्रहण दोनो साथ-साथ चल रहे थे। शकराचार्य वैदिक धर्म के उन्नायक थे। भक्ति के आचार्यो ने भी यही किया। भक्ति के सभी आचार्य शकर की ही विकास परम्परा मे थे। सभी आचार्यो पर सस्कृत और तमिल का प्रभाव था। सभी आचार्य द्विभाषी थे। छोकभाषा तमिल और शास्त्रभाषा सस्कृत। मम्मट ने कवि के लिये लोक-शास्त्र दोनो आवश्यक माना

था। इसी प्रकार इन आचार्यो ने लोक-वेद दोनो से प्रभाव लिये। प्रबन्धम् और सस्कृतम्। गोस्वामी तुलसीदास की एक प्रसिंद्ध उक्ति है- गोरख जगायो जोग भगति भगायो छोग। स्पष्ट है कि तुलसीदास वेद, उपनिषद् गीता, सहिताओ आदि की भक्ति का उल्लेख कर रहे थे। इससे ज्ञात होता है कि गोरख के पहले वैदिक भक्ति का यहाँ प्रचार था। तुलसी उसी शास्त्रसम्मत भक्ति की स्थापना करना चाहते थे। आचार्यों ने अपनी टीकाओ द्वारा भक्ति को शास्त्री डा० मलिक मोहम्मद- आलवार भक्तो का तमिल प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्ण काव्य, पृ० ९३। वही ,पृ० ९५| वही ,पृ० .५६ डा० मलिक मोहम्मद, वैष्णव भक्ति आन्दोलन अध्ययन, पृ० ९५। न पा 0 5

६-० : है कबीर समग्र रूप दिया था, बौद्ध और जैन धर्म के आलोक मे अपनी भक्ति को सँवारा था। बुद्ध को अवतार मानने वाले ग्रथो ने केवल बुद्ध का नाम ही नहीं लिया होगा। उनकी और चीजे भी आई होगी। इस सम्बन्ध मे नारद और शाडिल्य के भक्ति-सूत्रो से एक स्पष्ट अन्तर परवर्त्ती उत्तर और दक्षिण दोनो की भक्ति मे दीख पड़ता है। पूर्ववर्त्ती भक्ति -सूत्रों की भक्ति प्रेम रूपा धी। उसमे दैन्य का भाव गौण था। महाभारत के नारायणी उपाख्यान की भक्ति मै 'ढगाव'' है। प्रेम और दैन्य का सकेत निकाला जा सकता है। किन्तु वह सहज और स्पष्ट नही है। आगे की भक्ति लगाव से बढ़कर पूर्ण समर्पण, दैन्य और गहरे प्रेम में बदल गयी। हिन्दी मे भक्ति की तीन प्रवल धाराएँ दीख पड़ती है-१ सन्तो की, २ राम भक्ति की और ३ कृष्ण भक्ति की। सन्‍्तो मे सबसे बड़े सन्त कबीर ने भक्ति का द्रविड़ से आने की घोषणा की। किन्तु दक्षिण वाली भक्ति का जिन पर सबसे कम प्रभाव है वे है सन्त और कवीर। राम भक्ति और कृष्ण भक्ति का सनातनी भक्ति से सीधा और साथ-साथ का सम्बन्ध है। किन्तु सन्त शास्त्र और सनातन को दूसरे स्तर पर ग्रहण करते है। सन्‍्तो की साधना और शब्दावली पर योग प्रभाव भी है। दक्षिण के भक्त लोक और वेद दोनो के समर्थक थे। मधुर कवि भक्ति को वेद का गूढ़ से गूढ़ तत्व समझाने की विधि बताते है। कबीर छोक और वेद दोनो को अस्वीकार करते है। लोक का अर्थ लोक प्रचलित विश्वास और लोक मे घुसा बौद्ध तथा त॒त्रिक प्रभाव है। वेद-मार्ग का विरोध तो भगवान बुद्ध ने ही शुरू कर दिया था। लोक का विरोध कवीर और आगे के सन्त-भक्त करते है। क्योकि छोक-धर्म के नाम पर वौद्ध सहजयान, वज़्यान आदि ने जो अनाचार फैला रखा था जनता उससे ऊब गयी थी। दक्षिण के प्रसिद्ध शैव सन्त 'नायमारों ने अपनी रचनाओ मे खुलकर बौद्ध और जैनो का खडन किया और उनके 2000 न की हँसी उड़ाई। तुलसी को छोक-वेद दोनो स्वीकार है। किन्तु राम इन दोनो के ऊपर हैं। दक्षिण की भक्ति पर थोड़ा और विस्तार से विचार करने की जरूरत है। एक बात तो स्पष्ट है कि यह भक्ति कोई द्रविड़ भक्ति नही है। यह 'सनातन' भक्ति है जिसमे वेद, उपनिषद् गीता, पुराण, पचरात्र आदि सम्मिलित है। दूसरी वात यह कि इस भक्ति पर भी बौद्ध-जैन प्रभाव है। (ग्रहण तो प्रभाव है ही, विरोध मे भी एक प्रकार का प्रभाव हो सकता है)। शरणागति का सबसे अधिक विकास बौद्ध धर्म की महायान शाखा मे हुआ। ''महायानी स्तुतियो में बुद्ध काया के तीन रूप बताए गए है जो परम सत्ता के तीनो पक्षी के प्रतीक है-१ काया, २ सभोग काया, ३ निर्माण काया।? यह विचारधारा और आगे बढ़ी। 'जनसाधारण के लिये प्रज्ञापरमिताओ मे कुछ सरल मार्ग भी बताए गए हैं। यह मार्ग वोधिसतवो की शरण मे जाना था। इस शरणागति के साथ-साथ पूजा अर्चा का भी सम्यक् विधान मिलता है। इस प्रकार की पूजा न केवल निर्वाण वरन् भौतिक सिद्धियाँ भी प्रदान करती थी।* बौद्ध धर्म की इस अवतार और पूजावाली स्थिति ने उत्तर-दक्षिण दोनो मानस को प्रभावित किया।

बौद्ध और जैन धर्म ई० पू० ही दक्षिण जा चुके थे। ये धर्म दक्षिण के लिए चिन्ता का विषय थे भी। यही कारण है कि दक्षिण के आचार्य को बौद्ध धर्म के विरोध का सेहरा बेंधा। भारत की भौगोलिक दृष्टि से दक्षिण प्रदेश प्राय रक्षित रहा है। इसीलिये मूल भारत वहाँ सुरक्षित रहा है। इसी मे वैदिक और बौद्ध धर्म का मेढ हुआ। 'महाभारत काल तक आते आते वैष्णवधर्म का एक १ डॉ० धर्मवीर भारती-सिद्ध साहित्य,पृ ०११० | २ वही ,पृ०१११ |

भक्ति' स्थान और आरम्भ ए् सुसगठित रूप प्रगट हुआ जो भागवत्त या सात्वतपति कहलाया'।१ नासिक के शिलालेखो से स्पष्ट है कि ईसा के पूर्व ही कृष्ण-भक्ति का प्रचार दक्षिण की ओर भी गया।''२ वैदिक कर्मकाण्डो के प्रति बुद्ध का विद्रोह और उनका जनता मे व्यापक प्रभाव प्रमाणित करता है कि लोग वैदिक कर्मकाड के ऊबे होगे। उसी समय सनातनी भक्ति का आरम्भ हुआ होगा। यह भक्ति वेद से जुड़ी थी। यह सनातनी पद्धति भी है। यहाँ विरोध नही विकास होता है। भक्ति वेद से अलग थी। किन्तु वैदिक थी। स्थितियो के दबाव से उदित हुई थी किन्तु सनातन का अग बनकर। प्राकृतिक आनन्द, देवो के प्रति पृज्यभाव, महत्ता के प्रति आत्मसमर्पण, मानव मन मे रक्षा की इच्छा, प्रभु के सानिध्य की कामना आदि का सम्मिलित रूप भक्ति है। भक्ति शब्द सस्कृत के भज् धातु से निष्पन्न है। इससे भी भक्ति का सस्कृत और सनातन परम्परा सिद्ध है। पूरे भारत मे एक प्रकार की भक्ति धारा रही है। दक्षिण मे शैव भक्त नायनमार थे तो उत्तर मे नाथ सम्प्रदाय मूलत शैव रहा है। विद्यापति मूलत. शिवोपासक है। यहाँ तक कि सूरदास भी आरम्भ मे शैव रहे है। कालिदास ने पार्वती-परमेश्वर की वन्दना की है। शकराचार्य भी शिव उपासक थे। तुलसी ने शिव की पूरी स्तुति की है। पूरी राम-कथा शिव कहते है। रामेश्वर शिव. है। प्राचीन धर्म ग्रन्यों में शिव का महत्त्व स्पष्ट है। किन्तु शिव की भक्ति का विकास विष्णु भक्ति के समान आगे न बढ़ सका। इसका मुख्य कारण शायद यह है कि भक्ति के आचार्य सभी विष्णु-उपासक थे। ऐसे शिव-भक्ति की धारा छोक मे आज भी मौजूद है। शिव प्रेमा भक्ति के अनुकूल न थे। कालिदास शिव की प्रेम-कथा कहकर कोढ़ी हुए थे। आगे पितरो के प्रैम का वर्णन साहस का काम था। तुलसी जगतमाता-पिता के श्रगार-वर्णन पर बिल्कुल नाराज थे। प्रसाद के यहाँ शिव-पार्वती मनु-श्रद्धा हो गए। शैव सन्त सुन्दर ने लिखा है बौद्ध और जैन अहिसा का प्रचार करके भी हिसा द्वारा ही धर्म प्रचार करते है। तपस्या का बहाना करके भी वे अपनी जीभ के दास बने फिरते है। खाखाकर सुस्त और तुदिल बन गए है।३ पूरी भक्ति धारा समन्वय की धारा है। तुलसी-सूर आदि भक्तो मे यह समन्वय शोध का विषय है। जो स्पष्ट है वह सनातनी शास्त्रो, विचारों, मतो और देवो के समन्वय का है। किन्तु कबीर मे यह समन्वय स्पष्ट है। यह नही कि कबीर ने कोई समन्वय किया था। शायद उनका स्वभाव समन्वय का न भी रहा हो। कितु यह समन्वय स्वाभाविक है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर के समन्वय को अच्छे ढंग से कहते है-'कबीर ऐसे ही मिलन बिन्दु पर खड़े थे, जहाँ से एक ओर हिन्दुल्ल निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्व, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है दूसरी ओर अशिक्षा, जहाँ पर एक ओर योग मार्ग निकक जाता है, दूसरी ओर सगुन साधना, उसी प्रशस्त चौरास्ते पर वे खड़े है ।'* डॉ० द्विवेदी की बात केवल समन्वय दिखाने के लिए उद्धृत है। समन्वय के प्रकार से सहमति आवश्यक नहीं। कबीर का समन्वय न तो नया है, न बिल्कुल निजी। वह सगुन

साधको के समन्वय से भिन्न ढग का है। समन्वय का अर्थ सग्रह कर लेना ठीक नही होगा। समन्वय मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। कोई भी बड़ा" व्यक्ति, समाज, आन्दोलन, इतिहास या धारा समन्वय के बिना असम्भव है। भक्ति धारा पूरे देश की है। इसमे नाना प्रकार के प्रभाव आए है। इसीलिए इसमे कई-कई उपधाराएँ- है। उदाहरण के लिए राम भक्ति से सामान्यत तुल्सीदास और विशिष्टाद्वत की भक्ति ही समझी जाती है। किन्तु इधर राम के बहुत १ आलवार भक्तो का तमिल प्रवन्धम्, पृ०६ | ' ३ वही,पृ० ८ | ३ आल्वार भक्तो का तमिल प्रबन्धमू पृ० ५३ ४ कबीर, पृ० १८२ |

पु कबीर समग्र से रसिक भक्त भी प्रकाश में आए है। इसी प्रकार राम की निर्गुनिया धारा का प्रतिनिधित्व कवीरदास करते है। कवीर ने राम को भजा है और रमैनी की रचना की है। तुलसी रामानुज सप्रदाय मे आते है। कवीर भी इसी सम्प्रदाय के आचार्य रामानन्द के शिष्य थे। सूर, नन्ददास आदि कवि आचार्य वल्लभ के शिष्य थे। भक्ति की इस परम्परा और इतिहास को परिभाषाओ में समेटना होगा। भक्ति की नारद* और शाडिल्य" की परिभाषाएँ| उक्त स्थितियों को देखते हुए अपूर्ण है। नारद के भक्ति-सूत्र मे ईश्वर के माहाल्य ज्ञानरे की शर्त है। भागवत की दृष्टि मे गोपियों के प्रेम मे कृष्ण का माहात्म ज्ञान मोजूद है। माहात्यज्ञान के अभाव मे प्रेम जाये के प्रेम के समान हो जाता है।* कृश केवल प्रेमी नहीं समस्त देहधारियो के प्रियतम, वन्धु और आत्मा भी है५॥' उन्होने समपूर्ण जगतू की रक्षा के ठिये.. , यदुकुछ मे अवतार लिया है।६ इन्हे ही ध्यान मे रखकर आचार्य वल्लभ ने 'तत्त्व-दीप-निवन्ध' मे भक्ति की परिभाण दी-'भगवान के प्रति माहल्य-ज्ञान रखते हुए जो सुदृढ़ ओर सदसे अधिक सह हो वही भक्ति है।'* नारद ने माहाल्य को और सपष्ट किया "ईश्वर को भी अभिमान से द्वेष है और दैन्य से प्रिय भाव है।* दैन्य को और भी स्पष्ट रूप में दूसरी जहक कहा गया है'सर्वसाधनहीनस्य पराधीनस्य सर्वथा। पापपीनस्य दीनस्थ कृष्ण एवं गतिर्मम ॥ ' जब तक अभिमान है, दैन््य नही आ सकता। अभिमान का अर्थ है मैं का भाव। मे और मेरा का भाव भगवत्याप्ति मे वाधक है। अभिमानी, अहकारी मूढ़ होते ह अपने को कर्त्ता मानते है, जवकि वे निमित्त मात्र है। नारद को अपनी तपस्या और काम-विजय का 5 धा। अर्जुन अपने कर्त्तापन के अभिमान के कारण ही युद्ध से हिचक रहा था। कृष्ण ने भीत्ता के उपदेशो द्वारा अर्जुन के मन मे बैठे कत्तापन (अहकार) को निकाह दिया। अहकार रहित मन में स्व-अर्थ (स्वार्थ) के रहने का सवाल खतम हो जाता है। भक्ति की सवसे छोटी परिभाष/ इस प्रकार हो सकती है-विराट सत्ता के प्रति एकात सम्बन्ध और आत्मसमर्पण भक्ति है।! इ भक्ति की प्राप्ति और पूर्णता के नौ तरीके बताए गये है- श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेव: अर्चन, बन्दन, दास्य, सख्य, आत्म-निवेदन। * नारद भक्ति-सूत्र में ग्यारह मार्ग बताए गए हैं, * कुछ लोग भगवतृ-प्राप्ति के ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग दो भेद बताते हैं और ज्ञानमार्ग को भक्तिमार्ग से श्रेष्ठ ब्ताते है। ज्ञानमार्ग अव्यक्त, निर्गुण, निराकार, अतीद्रिय की उपासना सर | मार्ग है। व्यक्त, प्रत्यक्ष और सगुण की उपासना भक्ति-मार्ग है। गीता में इन दोनो मार्गों को नाम अध्यात्म दिया गया है।*? ऐसे ठोग यह भी मानते हैं कि "भक्ति का पर्यावसान या है ५ सा लत्मिनू परम प्रेमा रूपा । सा परानुरक्तिरीश्वरे | तत्रापि न माहाल्यज्ञानविस्पृत्यपवाद ॥२२॥ तद्विहीन जाराणामिव ॥२३॥ प्रेष्ठो भवास्तनुभृता कि बन्धुरात्मा ।१०/२९/३२। विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सालता कुले। १०/३१/४॥ माहाल्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ़ सर्वतीडधिक | लेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्या मुक्तिर्न चान्यथा ।-अप्टछाप और वल्ठभ सप्रदाय, पृ० ५१६ पर उद्धृत |

ईश्वरस्थाप्यभिमावद्द्वेषित्वादू दैन्‍्यप्रियत्वाच्च |-नारद भ० सू० ॥२७॥॥ श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पादसेवनम्) अर्चन वन्दन दास्य साख्य आत्मनिवेदम् ॥-भागवत ७/५४२३ | १० गीता १११ । द #0 ६ ०< ब्छ 0 5 नए (७

भक्ति स्थान और आरम्भ ७ ज्ञान है। भक्ति ज्ञान का साधन है। वह कुछ अन्तिम साध्य वस्तु नही है।'? किन्तु आगे अध्यात्म' शब्द प्रचलन न पा सका और भक्ति शब्द व्यापक हो गया। भक्ति के ही ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग दो भेद हुए। ज्ञान मार्ग मे योग, निर्गुण, निराकार, पुस्तक विरोध, व्यक्तिगत साधना आदि ब्रह्म से तादाल्य पर जोर दिया। इसकी साधना शून्य और निराधार की साधना है। सूरदास ने ज्ञानमार्ग को 'निराधार मन चक्रित धावै" कहा है। तुलसी की दृष्टि मे ज्ञान पथ कृपाण की धारा' है। असहज है। वैदिक यज्ञो 'की मुख्यत तीन विशेषताएँ थी-बलि, यज्ञ और प्रार्थना। तीनो मे पुरोहित का महत्त्वपूर्ण स्थान था। इसलिये भी कि ये तीनो अछूग नही बल्कि सपूर्ण यज्ञ के अग मात्र थे। देवता की प्रसन्नता एव आराधना के लिये पशुबलि, अन्न घृतादि का हवन एव प्रार्थना मे व्यक्ति और समाज के कल्याण की कामना की जाती थी। देवताओ का आशीर्वाद माँगा जाता था। इद्र और वरुण से जल, सूर्य से प्रकाश और ज्ञान आदि। इसी प्रकार से गो, अश्व, धन, धान्य पुत्रादि के लिये प्रार्थनाएँ की जाती थी। ध्यान से देखे तो यहाँ दो बाते दीखेगी-- एक यह कि देवता अनेक है तथा दूसरी यह कि सारे कर्मो का उद्देश्य भूतसुख है। इसी से बुद्ध के विद्रोह मे यज्ञ, हिसा एवं भूतसुख का विरोध दीखता है। अक्सर लोग भूल जाते है कि बुद्ध का उद्देश्य भूतसुख को बिल्कुल ही अस्वीकार करना है। क्योकि उनकी दृष्टि मे सपूर्ण भूतसुख दुख के अतिरिक्त कुछ नहीं है। सब कुछ प्राप्त करने के बाद भी सब अनित्य है। बहुत किया तो सौ वर्षो की आयु प्राप्त कर ली। फिर तो सब नाश, अनित्य | इस अनित्य मे नित्य सुख की खोज आवश्यक है | यह बात स्वय वैदिको को सूझी होगी। इसी से वैदिक कर्म की दो धाराएँ हो गयीकर्मकाड, यज्ञादि की मीमासा धारा और दूसरी आरण्यक और उपनिषद् की ज्ञान धारा। इसी से मीमासा को पूर्व मीमासा और उपनिषदो को उत्तर मीमासा कहते है। चूँकि दोनो ही वेद के विकास है इसलिये दोनो ही वेद को प्रमाण मानते है। पूर्व मीमासा मे ब्रह्मण का महत्त्व बना रहा। कितु उत्तर मीमासा मे ब्राह्मण का।महत्त्व नही है। समस्त भक्ति-आन्दोलन इसी उत्तर मीमासा के विकास है। भक्ति धर्म एक उदारवादी आन्दोलन है। न यज्ञ का खर्च, न बलि, न पुरोहित की पूजा और न हुम्बा चौड़ा शास्त्र ज्ञान! न तीर्थ मे जाने की जरूरत, न योग की साधना। वेद के ज्ञान काण्ड का नाम उपनिषद् है। उपनिषदो के ज्ञान के साथ ही सहिताओ आदि मे भक्ति मार्ग का विकास हुआ। कुछ तो भक्ति के स्वतन्त्र ग्रन्थ है। जैसे नारद भक्ति सूत्र, शाडिल्य भक्ति सूत्र, श्रीमद्भागवत। नारद भक्ति सूत्र में गर्गाचार्य के मत का उल्लेख है। आचार्यों ने उपनिषदों को भी भक्ति का आधार बनाया। उपनिषदो की शिक्षा मे ज्ञान है। किन्तु इस ज्ञान का अर्थ, तर्क, शब्द, वाक्य अथवा पुस्तकी ज्ञान नही है। उपनिषदे तर्क, शब्द या वाक्य द्वारा ज्ञान-प्राप्ति को असम्भव मानती है। 'कठ उपनिषद् के अनुसार आत्मा को तर्क 'से नही आत्मयोग से जाना जाता है। सत्य की प्राप्ति बुद्धि के बल से या बहुत अध्ययन से नही

होती है, बल्कि जिसकी इच्छा ईश्वर मे शान्ति से केन्द्रित हो जाती है सत्य उसके सम्मुख प्रगट हो जाता है। हम ईश्वर को ज्ञान के प्रकाश से, 'ज्ञान प्रसादेन' अनुभव करते है।र उपनिषदे बुद्धि की सकुछता के स्थान पर बुद्ध की निर्मलता" मे विश्वास करती है। ज्ञान के ढिये श्रद्धा आवश्यक है। अद्धावन् को ही ज्ञान होता है। यहाँ ज्ञान का अर्थ भक्ति है। ज्ञान मार्ग मे बुद्धि १ तिहक-गीता-रहस्य पृ०-४१ ६ | २ डा० राधाकृणनू-उपनिषदो की भूमिका, प्ृष्ठ० १०३ पर उद्धृत | कट न

पल ३ ८ कबीर समग्र और भक्ति मार्ग मे श्रद्धा का स्थान है। किन्तु जैसे श्रद्धा के विना ज्ञान की प्राप्ति नही हो सकती उसी प्रकार ज्ञान के बिना श्रद्धा अन्धी हो सकती है। यही ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग का मेल होता है। भक्ति के लिये ज्ञान और श्रद्धा दोनो आवश्यक है। ज्ञान को निर्गुन और श्रद्धा को सगुन ब्रह्म से जोड़ा जाता है। किन्तु निर्गुन सगुन भी विल्कुल अछुग-अछग नही है। निर्गुन निराकार अव्यक्त ही सगुन-साकार व्यक्त होता है। निर्गुन सगुन मे अवतरित होता है। सगुन व्यापकता और विस्तार मे निर्गुन स्थिति को पहुँच जाता है। व्यक्ति सगुन है। किन्तु समाज सगुन होकर भी निर्गुन है। समाज का वोध हो सकता है। वह केवल ज्ञान है। साकार है। कृष्ण ने अपने विराट् रूप द्वारा अर्जुन को साकार-निराकार रूप का दर्शन कराया था | आरम्भ मे ही कहा गया है कि भक्ति भारत की सर्वाधिक व्यापक और प्रभावशाली धारा रही है। यह स्वय मे पूर्ण और साध्य है। अपीरुष वेद थोड़े से व्यक्तियों मे सीमित रहें। उपनिषदे, ब्राह्मण, सहिताएँ आदि सस्कृत में है। बौद्ध साहित्य पालि मे होने के कारण तीर्च पिटारियों मे सीमित हो गया। सस्कृत में आते ही उसे ‘'गुह्माचार' ने घेर लिया। जैनो का 'नगापन' जनता को स्वीकार नहीं हुआ। श्वेत धवलित वस्त्र भी सामान्यजन के लिये सम्भव न था। यह भी कि वौद्ध-जैन निवृतिमार्गी और गार्हस्थ्य के विरोधी थे। गृहस्थ उनसे प्रभावित और आतकित होता था। उसमे ग्ृहस्थ अपनी हिस्सेदारी नहीं समझता था। ये धर्म विरोधमूलक थे और विरोध को एक सीमा के बाद छोक अस्वीकार कर देता है। इसीलिये विरोध को कोशिश कर सत्ता का अग बनना पड़ता है। बौद्ध-जैन ने अपनी सत्ता स्थापित की। उन्होंने सनातन धारा को बिल्कुल अस्वीकार किया। यही कारण है कि वे भारत में व्यापक आन्दोलन न बन सके। इनके मुकाबले भक्ति धारा सनातन का अग बनी रही। छोक-वेद दीनो का विरोध करके भी छोक-वेद के साथ रही। जो कुछ कहा ‘'आत्म के प्रति पूरी निष्ठा और आदर से कहा। कही उपेक्षा नही की। अपनी बात को उनके अनुशासन में कहा। उन्होने विरोध देखने की अपेक्षा अविरोध देखा। छोटा-बड़ा देखने को अपराध माना (को बड़-छोट कहत अपराधू) | बहुत से व्यक्ति इसे इस प्रकार कह सकेगे- पचो की बाते सिर पर किन्तु पनाला यही बहेगा। जहाँ तक भारती भाषा की प्राचीनता है वहाँ भक्ति है। उत्तर-दक्षिण की शायद कोई भाषा हो जिसका मख्य विषय भक्ति न हो। प्राय सभी आधनिक भारती भाषाओं का आरम्भ और विकास भी भक्तिभाव से हुआ है। सभी भाषाओ का भक्ति साहित्य सबसे प्रौढ़ साहित्य है। बुद्ध ने भी शायद लोक भाषा का प्रयोग किया था। किन्तु पाली मे बौद्ध धर्म के ही कुछ लेखक तैयार हुए। आगे बौद्धों ने भी पाली को छोड़ दिया। इसके मुकाबले लोकभापाओं मे भक्ति साहित्य ने बड़ा ही व्यापक रूप ग्रहण किया। हजारों लेखक तैयार किये। लोकभाषाओ को सकूचित क्षेत्रो से उगाकर राष्ट्री भाषा बना दिया। जन-भाषाओ के गेंवारूपन को सस्कृत प्रतिश दी। काम, क्रोध, भूख के सामान्य अनुभवो, प्रयोगो, चिन्ताओ

को व्यक्त करनेवाली भाषा को उच्चस्तरी आध्यात्मिक अभिव्यक्ति की भाषा बना दिया। इससे 'सस्कृत'' का लोक जीवन से निष्क्रणण हो गया। क्योंकि भाषाएँ अब काफी समर्थ हो गयी। सस्कृत 'कूपजल' हो गयी और भाषा 'क्षीर सागर'। भक्ति, भगवान, भक्त, गुरु, लीला, धाम आदि के उज्ज्वल रूप सामने आए। भक्ति ने लोकभाषाओ के साहित्य को समृद्ध किया। भगवान् को जन-जन के सुख-दु ख का साथी बना दिया। श्रृगार का तमसू, धर्मरहित युद्ध का रजस् भक्ति के सत्य से छूट गया। इतना ही नही श्रृगार को भी राधाकृष्ण सुमिरन का बहाना करना पड़ा | भक्ति का दरवाजा सबके लिये खुल गया। भगवान के पविन्न मन्दिर मे नम्मालवार हरिजन, ! सदन कसाई, धन्ना नाई आदि प्रमुख हो गएँ। रहीम और रसखानि प्रमुख कवि और भक्त बने ।|

भक्ति स्थान और आरम्भ ९ वैष्णव ग्रथो मे बताए गए ६४ अपराधो मे भक्तो मे जाति-बुद्धि भेद भी अपराध है। गीता ने कहा -है पार्थ । स्त्री, वैश्य और शूद्र या अत्यज आदि जो नीच वश मे उत्तन्न हुए है वे भी उत्तम गति पा जाते है।* पहली वार हरिजन-मन्दिर-प्रवेश और अफछूतोद्धार हुआ। वर्णव्यवस्था के इतिहास में यह क्रान्तिकारी घटना है। नारद भक्ति सूत्र ने और कहा-'भक्तो मे जाति विद्या, रूप, कुल, धन और क्रियादि का भैद नही है" ९ जाति और वर्ग ही नही अन्य प्रकार के भेदो को भी भक्ति अस्वीकार करती है। भक्ति सभी प्रकार की श्रेष्ठा और हीनता के विरुद्ध है। भक्ति नम्रता और साधारणता का सिद्धान्त है। सत्य इसका आधार है। इसमे आडम्बर, सजावट आदि के लिए स्थान नही है। इसकी साधना मे कही जाना नही है। किसी प्रकार का खर्च नही है। अध्ययन या विद्या सग्रह की जरूरत नही है। कष्ट साध्य नही है। देह को तपाना नहीं पड़ता। विफलता नही होती। सभी प्रकार के बाह्य धर्मों को त्यायकर भगवान की शरण जाना है। शरणागत को भगवान वैसे ही पकड़ते है जैसे बिल्ली अपने बच्चे को पकड़ती है। भक्त भगवान् और भगवानू भक्त के सेवक हो जाते है। भक्ति घर बैठे विना साधन के आदमी को ऊँचा उठाने की कला है। केवल इच्छारहित होकर ईश्वर की शरण मे जाने की जरूरत है। सकाम भक्ति निम्नकोटि की भक्ति है। निष्काम भक्ति के द्वारा ही भक्त भगवान बनता है। भक्ति.मनुष्य मे आत्मसम्मान जगाती है। ईश्वर या ब्रह्म बादशाहो का भी बादशाह है। साहब से जुड़ा भक्त चपरासियो को क्यो पूछने ढगे। समाज और व्यक्ति विपत्ति में अपने को स्थिर पाता है। जैसे किसी को मालूम हो कि ऊपर का साहब तो हमारे साथ है ही। इसीलिये तुलसी ने प्राकृत जन (राजा, सामन्त) के गुनगान को निद्य बताया। गुलाम का गीत भी साहब का ही गीत होता है। साहब के गोत्र का होने पर 'प्राकृ" का गुणगान असम्भव है। भक्ति निरामिष और सादे भोजन पर जोर देती है। समान विचार वाले सज्जनो की सगति अनिवार्य है। भक्त किसी विवाद मे न पड़कर सम्पूर्ण सृष्टि के प्रति मित्रभाव रखता है। सुन्दर और श्रेष्ठ भगवान् की विभूति है। सारे ससार को सीताराममय देखना भक्ति का रूप है। भक्ति का दूसरा रूप है प्रतीकोपासना। तीसरे रूप मे भक्त अपने भीतर ही भगवान् का ध्यान करता है। ऐसे भक्त को ज्ञानी और निर्गुण भक्त कहते है। सगुन भक्त भी अपने हृदय मे प्रभु का ध्यान करता है। दोनो प्रकार के भक्त किसी न किसी प्रकार भगवान् से अपने को जोड़ते है। और इतना जोड़ते है कि मानसिक तदाकारता प्राप्त कर छेते है। भक्त का भगवान् से सबध होता है- मो तो नातो अनेक । मानिए जो भावै। भक्त अपनी भावना के अनुसार ही प्रभु की मूर्ति बनाता है। भक्ति पिछड़ो को गछे लगाने का सिद्धान्त है। आलवार और नायनमार भक्तो के बारे मे कहा गया है-बौद्धी और जैनो ने निम्न जातियो के छोगो को और स्त्रियों को भी अपने धर्म मे स्थान दिया था, अत वे लोग जो सामाजिक स्तर पर अनादृत थे, उन बौद्ध जैन धर्मो की शरण मे चले गए थे। उन सबको फिर भक्ति मार्ग मे लाने के लिये

आलवारों और नायनमारो ने भक्ति का द्वार सबके लिये खोल दिया' |३ इस कथन का इतना ही अर्थ है कि भक्ति द्वारा पिछड़ो को समाज में उचित सम्मान मिला। दूसरे सम्प्रदाय मे चले गए लोग स्वधर्म मे लौट आए। क्योकि भक्ति तो आरम्भ से ही जाति-पॉति विरोधी है। भक्ति के लिये अपने पेशे को छोड़ने की जरूरत नही। महाभारत मे व्याध भक्त थे। सदन तो कसाई थे ही। इतना ही नही ईश्वर की प्रतिमा के स्थान पर भक्ति का और भी कोई साधन हो सकता है। महाभारत के व्याध ने ब्राह्मण को १ माम हि पार्य च्यापाश्रित्ययेडपित्यु पाप योनय । स्त्रियों वैश्यास्तथा शूद्रास्तेधपि यान्ति परा गतिम् ।९॥३२। २ नास्ति तेषु जातिविधारूपकुलधन क्रियादिमंद ।७२। ३ मलिक मोहम्मद-वैणाव भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, पृ० ९८।

१० कवीर समग्र अपने वृद्ध माता-पिता के समीप ले जाकर कहा- "यही मेरे प्रत्यक्ष देवता है, और मनोभाव से ईश्वर के समान इनकी सेवा करना मेरा प्रत्यक्ष धर्म है।' भक्ति प्रलक्ष धर्म है। गीता मे श्रीकृष्ण ने कहा है किसी भी देवता की श्रद्धापूर्वक की गयी भक्ति अन्त मे मुझे ही प्राप्त होती है। भक्ति सत्य और सर्व से जुड़ने की प्रक्रिया भी है। मोक्ष को अतिम पुरुषार्थ माना गया है। मोक्ष धर्म, अर्थ, काम तीनो पुरुषार्थी का फल है। मोक्ष पॉच प्रकार का माना गया है। भक्ति का उद्देश्य मोक्ष नही है। कही-कही मोक्ष भक्ति का स्वाभाविक फल है। किन्तु प्राय भक्ति के सामने मोक्ष व्यर्थ है। भक्ति मोक्ष से उच्चतर है।* भक्ति ग्राम जीवन से सबद्ध है। अत इसमे गाँव और वनो की स्वच्छन्दता और सादगी है। रसखानि कोटिक ही कलधौत के धाम करील के कुज्जन पर बारते है। बसीवट, वृन्दावन, जमुना के समान बैकुठ नहीं है। तीनो छोको का राज्य वेकार है। कृष्ण की सेवा सबसे बड़ी मुक्ति है। इसीलिये भक्त की बार-बार इच्छा रहती है कि वह प्रत्येक अवसर पर भगवान् की सम-सेवा में रहे। इस सम-सेवा के लिये भक्त लोक, वेद, कर्म, धर्म, चार मुक्ति को छोड़ता है।२ मानस" मे भगवान् राम ने काक भुसुंडि से कहाकाक धुसुंडि भय. बर् अति प्रसन्न मोहि, जानि। अनिर्मादिक सिधि अपर रियि मोक्ष सकल सुख खानि॥ शान बिदेक पिरति विज्ञाना। मुनि दुर्लम शुन जे जग जाना। आजु दे सब संशय नाही। मागु जो तोहि भाव मन माही।७।८४ इस पर काक ने सोचा प्रभु ने सब दुख देने को कहा। किन्तु अपनी भक्ति देने की बात नहीं की, जो सबसे महत्वपूर्ण है। तुलसीदास कहते है कि रामभक्ति से मोक्ष बिना इच्छा के आता है। किन्तु भक्त मुक्ति का निरादर करता है। भक्ति पर छुब्ध रहता है।३ कवीर पूछते है- राम मोहि तारि कहाँ ले जइहो ? भक्ति स्वय मे पूर्ण है। साध्य भी है। साधन भी है। मुक्ति की अवधारणा संसार विरोधी और नीरस है। आवागमन से छूटना ध्येय है। भक्ति रसात्मक है। यह सामान्य सासारिक और विषय रस से भिन्न है। काव्यरस भी विलक्षण है। किन्तु भक्तिरस काव्यरस से उच्च और भिन्न है। 'रस विशेष' है। मुक्तमार्गी ससार को कोसता है। उसे दुखो का मूल मानकर आवागमन से मुक्त होना चाहता है। भक्त पूरी सृष्टि को प्रभुमय देखता है। जन्म-जन्म रघुपति भक्ति चाहता है। कोई दूसरा वरदान नहीं । मुक्तिमार्गी धर्म की गौण मानता है। भक्तिमार्गी मोक्ष को भक्ति के सामने गौण मानता है। और अन्त में यह कि भक्ति भारती-मेधा की एक अनुपम और विशिष्ट देन है। यह सब जन हिताय, सब जन मुखाय है। भक्ति पलायन की अपेक्षा एक उच्चतर सत्ता के माध्यम से ' ससार से जुड़ने की प्रक्रिया है। भक्त सृष्टि को 'सियाराममय" जानकर सबके प्रति नम्न और ' उदार बना रहता है। यह नम्नता और उदारता उसे सेवा का अवसर देती है। इसीलिये सभी भक्त "दास है। वे सेवा धर्म मे विश्वास करते है। दास दो प्रकार के है-काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के विषय दास। दूसरे है-अनन्त अनादि पूर्ण ब्रह्म परमात्मा के दास। १ श्रेष्ठ पचविधामुक्तेहरिभक्तिरीयती /नारद भक्ति सूत्र पृ० १३५ पर

उद्धत। ० ९७८२ लोक वेद कर्म धर्म छाँडिपुकृति चारि |- हरिराम हा आवगा, पृ० १ मु 0,000 आउवार भक्तो का तमिल प्रवन्धमू, पृ० ३२२ पर उद्धृत । | राम भजत सोई मुकुत गुसाई | अनइच्छित आबै वरिआई | अस विचारि हरि भगत सयाने ! मुक्ति निरादर भगति हुभाने | -मानस ७५११।

भक्ति द्रबिड़ ऊपजी कबीर कहते है "भक्ति द्रविड़ ऊपजी छाए रामानन्द !" तुलसी कहते है-"गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग ।' दोनो ही हिन्दी के मध्यकालीन सन्त है। किन्तु दोनो की बातो में मौलिक अन्तर है। तुलसी भक्ति के भागने से परेशान है। यह भक्ति गोरख के पहले रही होगी। तुलसी के पहले ही कबीर कहना चाहते है भक्ति नयी चीज है। इसे रामानन्द जी रामेश्वरम् से सौगात ले आए। रामानन्द कहाँ के थे यह विवाद का विषय है। यहाँ इस पर विवाद करने की जरूरत नही। भक्ति मे दक्षिण का महत्त्व स्पष्ट है। किन्तु रामानन्द को भक्ति लानेवाछा कहना साप्रदायिक है। रामानन्द के पूर्व के कई आचार्य भक्ति के प्रणेता हैरामानुज, माध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य आदि का नाम भक्ति प्रचार के क्षेत्र में प्रसिद्ध है। नाथ मुनि और यामुनाचार्य रामानुज के भी पूर्ववर्ती है। आचार्य शकर भी रामानुज के पूर्ववर्ती है। भक्ति की भूमिका बनाने मे उनका भी महत्त्वपूर्ण योग है। शकराचार्य के नाम से भक्तिपरक स्तोत्र मिलते है। इसलिये रामानन्द द्वारा भक्ति लाने की बात का कीई सामान्य अर्थ नही है। कबीर की उक्ति के मुकाबले भागवत के उद्धरण अधिक व्यापक है। एक में भक्ति का * द्रविड़ देश मे उत्पन्न और अनेक राज्यो मे घटते-बढ़ते वृन्दावन मे आने की बात है। दूसरी मे| बताया गया है कि भक्ति दक्षिण की नदियों के किनारे पैदा होगी। तुलसीदास के कथन मे दो' बाते है- १ यह कि भक्ति प्राचीन चीज है। यह छोक में प्रचलित थी। गोरखनाथ के योगमार्ग ने उस भक्ति को जनता के मन से निकाह दिया। २. यह कि योग और भक्ति का अनिवार विरोध है। योग की उपस्थिति से भक्ति भाग जाती है। भ्रमरगीत मे भी उद्धव और गोपियो वं सवाद मे यह प्रश्न उठाया गया है। उद्धव गोपियो मे "योग" का प्रचार करते है। उसके मन रं कृष्ण की भक्ति को भगाना चाहते है। गोपियाँ अपने तर्को द्वारा उसी का विरोध करती है गीता में भी ज्ञान, योग और भक्ति के त्रिकोण टकराते है। कृष्ण उनका समन्वय करते है तुलसी, सूर, कबीर आदि सन््तो ने योग और भक्ति का समन्वय किया। योग को गौण और भरि की प्रधान बना दिया। प्राय भक्ति के लिये योग अनावश्वक हो गया। योग वाली परम्परा ६ कबीर ने हठ को छोड़ दिया। सहज साधना, सहज समाधि को उद्देश्य बनाया। सहज से उनक अर्थ है "विषय त्याग" (जिन सहजै विषयातजी सहज कहीजै सोइ)। द्रविड़ भक्ति मे योग औ भक्ति का इन्द्र नही दीख पड़ता। क्योकि द्रविड़ भक्ति वैदिक भक्ति का दक्षिणी रूप है अवैदिक भक्ति का विकास अगर कही हुआ तो वह उत्तर भारत ही, था। इसका कारण सी६ है। अपैदिक धर्म बौद्ध और जैन का विकास उत्तर भारत मे हुआ। इन धर्मो ने भक्ति व प्रभावित किया। जान पड़ता है कि कबीर और तुलसी दोनो इस बात पर एक मत है ६ असली भक्ति वह है जो बौद्ध-जैन प्रभावित नही है। क्योकि दोनो ही दक्षिण से आनेवाली भा के पहले उत्तर मे भक्ति की अनुपस्थिति को स्वीकार करते है। फर्क यह है कि कबीर की उ उक्ति मे गोरख के पहले की भक्ति चर्चा नही है। जबकि तुलसी भक्ति की

उत्तर में गोरख ' पहले मानते है। किन्तु उनके युग मे वह हास को प्राप्त हो गयी। कबीर अपने को नारदी भत्ि वाला कहते है (भगति नारदी मगन कबीरा)। यह नारदी भक्ति वैदिकी, उत्तरी ऊँ (११)

१२ कबीर समग्र शास्त्रसम्मत भक्ति थी। शायद यही भक्ति गोरख के प्रभाव से भगायी गयी। अब कबीर और तुलसी दोनो उसी मे दीक्षित हुए। बावजूद इसके कि दोनो मे बहुत से भेद है। अब द्रविड़ भक्ति की पूरी परीक्षा करनी चाहिए। भागवत माहात्य के अन्तर्गत लिखा है-'मै (भक्ति) द्रविड़ देश मे उत्पन्न हुई, कर्णाटक मे बढ़ी, कही-कही महाराष्ट्र मे सम्मानित हुई, गुजरात मे मुझको बुढ़ापे ने आ घेरा। वहाँ घोर कलियुग के प्रभाव से पाखडियो ने मुझे अग-भग कर दिया। चिरकाह तक यह अवस्था रहने से मै अपने पुत्रों के साथ दुर्बल और निस्तेज ही गयी। अब जब मै वृन्दावन आयी तब से पुन परम सुन्दरी सुरूपवती नवयुवती हो गयी हूँ / स्पष्ट ही यहॉ तमिल प्रदेश की उस भक्ति की ओर ईशारा है जिसका आरम्भ आलवार भक्तो द्वारा हुआ था। किन्तु अन्य स्थानों का वर्णन काल्पनिक-सा है, क्योकि अन्यत्र भक्ति की स्थिति सामान्य है। वृन्दावन तो उसकी शाश्वत राजधानी है। (वृन्दावन सो बसत निरन्तर कवहुँ न होत निनार)। पता नही गुजरात पर ऐसी अकृपा क्यो है ? गुजरात तो सदा से वैष्णव राज्य रहा है। भक्ति बिलकुल उल्टा कह रही है। तमिलनाडु के बाद कर्नाटक में बढ़ी और केरढ तथा आन्ध्र मे किस स्थिति मे रही ? महाराष्ट्र मे भी कही-कही की बात भी स्पष्ट नही है। पूर्वी भारत बिल्कुल छूट गया। जबकि यहाँ भक्ति का प्रचार बहुत तीव्र रहा है। इसी भागवत में कहा गया है--'कलियुग मे द्रविड़ देश मे अधिक भक्त पाये जाते है। जहाँ ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी, परम पवित्र कावेरी, महानदी और प्रतीची नाम की नदियाँ वहती हैं। इनमे कई नदियाँ आन्ध्र और उड़ीसा मे बहती है।जिससे इन क्षेत्रों मे भक्ति के होने की सभावना ढुगती है। लगता है महात्य लेखक को भक्ति के विस्तार का कोई ज्ञान नही है। द्रविड़ देश जिसका मतढ़ूब तमिलनाड से है उसकी भक्ति को बताने के लिये अप्रासगिक बाते भी कह गया। उत्तर भारत मे वृन्दावन का महत्त्व कृष्ण भक्ति की दृष्टि से है और अयोध्या का राम भक्ति की दृष्टि से। किन्तु लेखक को अयोध्या का पता ही नही है। जबकि भक्ति की स्थापना मे अकेले तुलसी की अवधी रामायण का बहुत बड़ा महत्त्व है। रामानन्द द्वारा तो राम भक्ति ही दक्षिण से आयी। केरल प्रदेश जो तमिल प्रदेश जैसा ही है, उसका हिस्सेदार है। वेदान्त केसरी शकराचार्य के इस प्रदेश को भी लेखक भूल गया। जबकि भक्ति के क्षेत्र मे आचार्य शकर की योग्य देन है। थोड़ी ही अवस्था मे शकर ने जो कुछ किया उससे केरल में भक्ति का महत्व स्पष्ट है। कोई कह सकता है सभी राज्यो के बारे मे भक्ति की स्थिति बताना उद्देश्य नही धा। यह सही हो सकता है। किन्तु इससे अपूर्णता अविश्वसनीता और भ्रम बना। अब यदि उक्त कथन की थोड़ी और जॉच हो जाय तो स्थिति और भी स्पष्ट होगी। भक्ति नारद को युवती रूप मे मिली। किन्तु उसके दो बालक ज्ञान और वैराग्य थके-मोदे है। बूढ़े है। यह वृन्दावन की अवज्ञा है। जहाँ ज्ञान-वैराग्य को बूढ़ा कहा जा रहा है। यह रूपक ठीक नहीं है। ज्ञान-वैराग्य भक्ति के बेटे नही, मित्र, सहयोगी और सहजन्मा हैं। भक्ति से ज्ञान-

विराग की उत्तत्ति नही होती। ज्ञान-वैराग्य और भक्ति का साथ-साथ विकास होता है। भक्ति तीन पहियों की सवारी है- ज्ञान, वैराग्य और आत्मनिवेदन। किन्तु उक्त रूपक को मान भी लिया जाय तो इन दोनो के अभाव मे माँ कैसे जबान हो गयी। यह प्रश्न माहाल्य लेखक के सामने है। उत्तर भी है। नारद का उत्तर है-'यह दारुण कलियुग है इसी से इस समय सदाचार, योगमार्ग और तप आदि सभी लुप्त हो गए है | वृन्दावन के सयोग से तुम फिर नवीन तरुणी हो गई हो। अत यह वृन्दावन धन्य है। जहाँ भक्ति सर्वत्र नृत्य कर रही है। परन्तु तुम्हारे इन दोनो पुत्रो का यहॉ कोई ग्राहक नही है इसीलिए इनका बुढ़ापा नही छूट रहा है कया बिना सदाचार के भक्ति रह सकती है ? ज्ञान-वैराग्य भर्क्ति के फल है तथा भक्ति ज्ञान-वैराग्य का फल है। ज्ञान-भवि्ति प्राय पर्यायी है। फिर यह सभव नही कि भक्ति हो और ज्ञान-वैराग्य न

भक्ति द्रबिड़ ऊपजी ੧३ हो। माहाल्य लेखक भक्ति की महत्ता स्थापित करने के चक्कर मे मूल बात को ही भूल गया। कलि प्रभाव और भक्ति विरोधी है। जहाँ राम तहँ काम नहि जहाँ काम तहँ राम नहि। किन्तु ढेखक ने कलि प्रभाव और भक्ति की तरुणाई को एकत्र दिखाया है। कलि भी जबान और भक्ति भी जबान। यह बहुत सामान्य ढग का भ्रम है। अगर ज्ञान-वैराग्य के अभाव में भक्ति जबान है ही तो ज्ञान-वैराग्य की जरूरत ही क्या है ? दक्षिण मे आल्वारों की भक्ति ने वहाँ के आचार्यो को प्रभावित किया। किन्तु पूरे देश मे एक ऐसी भक्ति का साथ-साथ विकास हुआ जो नारद, शाडिल्य, वेदान्त आदि के सम्मिलित विचारों का फल था। इसी भक्ति से जैन और बौद्धों मे भी भक्ति का प्रचार बढ़ा। बौद्धों का त्रिशरण, अहिसा, करुणा आदि का प्रभाव सनातनी भक्ति पर पड़ा। बुद्ध कहते है धर्म, सघ और बुद्ध की शरण मे आओ। कृष्ण कहते है मेरी शरण मे आओ। बुद्ध कृष्ण हो गए। कृष्ण बुद्ध हो गए। एक ही परिवार के बँटवारे मे किसने किसको प्रभावित किया यह निर्णय साप्रदायिक होगा। शकराचार्य बौद्ध धर्म के उच्छेद मे प्रच्छन्‍्न बौद्ध हो गए। दूसरे सनातनियों ने बुद्ध को विष्णु का अवतार मान लिया। बौद्धों के यहाँ बहुत से सनातनी देवो की पूजा होने ढगी। उत्तर के भक्तो ने राम-कृष्ण को भक्ति का आराध्य बनाया। यह पुनर्जागरण था। इस पुनर्जागरण के मूल मे है-'नाना पुराण निगमागम' | उत्तर मे यही सहज था। आचार्यो ने प्राय प्रस्थानत्रयी पर टीकाएँ ढिखी। अपने-अपने “वाद” स्थापित किए। ये वाद प्राय शकराचार्य के अद्वैत के खंडन मे बने थे। इन पर आल्वारों की भक्ति का प्रभाव स्वाभाविक है। किन्तु ये उनके आधार बने कहना कठिन है। आचार्य दार्शनिक चितन को प्रभावित करने वाले थे। रचना को प्रभावित करने वाले प्राचीन साहित्य, आस-पास का जनमानस और कवि की निजी चेतना थी। इंस बात का अभी तक कोई प्रमाण नही मिल सका कि रचना के क्षेत्र मे आलवार सन्तो का उत्तर के भक्ति आन्दोलन पर कितना प्रभाव था ? कबीर, तुलसी, सूर, दरिया, दादू, नन्ददास आदि भक्तो की रचनाओ पर आह्वर प्रभाव का कोई सकेत नही मिल्ता है। भक्ति के सबसे प्रभावशाढ्ली और व्यापक कवि तुलसी स्पष्ट ही गोरख पूर्व की भक्ति के लिये चितित है। यह भवित उन्हे नाना पुराण निगमागम” में मिली थी। 'क्वचिदन्यतो” को स्वयम्भू की रामायण से जोड़ा गया है। जो गलत है। यह तो लोक है। काव्य है। कोई इन्हे तमिल 'प्रबन्धम' से जोड़ सकता है। किन्तु ये अनुमान है। इन्हे प्रमाणो से सिद्ध नही किया जा सकता। सूर आदि व्रजभाषा के कृष्ण कवियो पर मुख्य प्रभाव भागवत का है। वैसे भागवत एक ऐसा ग्रन्थ है जिसने भक्ति और अध्यात्म पर लिखने वाले सबो को प्रभावित किया है। आधुनिक युग के कवि भी उसके प्रभाव से अछग न रह सके। कबीर निर्गुण के कवि माने जाते है। इन पर भी भागवत प्रभाव रक्षित होता है। जैसे इनका ब्रह्म निराकार है उसी प्रकार इनकी परम्परा भी निराकार लगती है। ऐसा लगता है 'सनातन शास्त्रो' से उनका कोई सबध नही है। किन्तु कही-कहीं कबीर इस सबध को

खोलते है। भगति नारदी मगन कबीरा। इससे पता चलता है उन पर नारदी भक्ति का प्रभाव था। वे कही न कही अपने को नारद से जोड़ते है। भागवत भविति भी नारदी भक्ति है। किन्तु कबीर नारद को भी नही छोड़ते। 'सिद सनकादिक नारद सेसा, मन के भीतर-मन उनहुँ न देखा ।' पता नही शुकदेव को कबीर क्यो छोड़ देते है-'जा मन को कोई जानु न भेवा, ता मन मगन भये सुकदेवा !" राम के खोजी कबीर सिहल द्वीप की चर्चा करते है (कबीर खोजी राम का गयासु सिहल द्वीप) | किन्तु कही भी प्रबन्धभ् या आल्वारो दी चर्चा नही करते। दक्षिण की भक्ति में जैन-बौद्ध का विरोध स्पष्ट है। दक्षिण मे भक्ति का विकास पूर्णत वैदिक है। गीता, उपनिषद् प्रभावित है। जैन-बौद्ध प्रतिक्रिया में है। जैन-बौद्ध के मूल विरोधी शकर थे। रामानुज-वल्हभ आदि ने जैन-बौद्ध धारा का विरोध किया। इनका

बढ फकरषा९ 4 समन्वय उत्तर मे अधिक है। दक्षिण मे नही। उत्तर की निर्गुण धारा पर भी यह प्रभाव कठिनाई से देखा जा सकता है। भाषा कवियो पर संस्कृत प्रभाव ही मुख्य है। भक्ति का आरम्भ दक्षिण से बताने के कारण ही कोई भक्ति पर ईसाई और कोई इस्लामी प्रभाव देखता है। इतना ही नही उसे मात्र प्रतिक्रिया का आन्दोलन समझा जाता है। आन्दोलन देश-काल बद्ध होता है। भक्ति को आन्दोलन कहकर उसे सीमित और छिछला करने की प्रछन्त्र कोशिश है। सचाई यह कि पुराणो, काव्यो, स्तोत्रो आदि मे भक्ति की परम्परा बराबर कायम रही है। पाहि, प्राकृत के बौद्ध जैनं साहित्य मे भक्ति प्राप्त है। उनके रूपो मे भिन्नता स्वाभाविक है। किन्तु आत्मनिवेदन, शरणागत्ति, श्रद्धा और पूज्यभाव का नैरतर्य बना है। सगुन भक्तो ने योग का विरोध किया। किन्तु भक्ति को ही योग मान लिया। तुलसी तपस्या पर भी जोर देते है। सूर अष्टाग योग को भक्ति के लिये आवश्यक मानते हैभक्ति पथ को जो अनुसरै। सो अध्यग योग को करै। यम नियमासन प्राणायाम | करि अभ्यास होइ निष्काम |-सू० सा० ३६४ इस प्रकार भक्ति मे कई प्रभावों का समन्वय है। यहाँ विरोध कम है। अपना मत रखकर भी भक्ति अविरोधिनी है। उपनिषद् गीता, भागवत आदि में भी तो योग प्रचुर है। गीता तो साख्ययोग दो निष्ठाओं का समन्वय है। कबीर मे भी तो यही समन्वय है। कबीर दशम स्कध की प्रेमाभक्ति तो स्वीकार करते है। किन्तु रास उन्हे स्वीकार नही है। क्योकि रास सामूहिक है। जबकि कबीर की साधना वैयक्तित है। परकीया नही स्वकीया का प्रेम-मिलन है। कबीर के राम कृष्ण जैसे प्रेमी नही। पति है।गोपियों समर्पिता है। सत कबीर की आत्मा परिणीता है, कितु यौवन के मतवालेपन में वह राधा से कम नही दीखती है।

0 + अरांर कुक उपमही: ओजीक का । वीऑ कि जल जन. अज कबीर : हिन्दू सुधारक की बेचैनी कबीर उदारवादी हिंदू सुधारक है। उदार हिदूधर्म मानवधर्म का पर्याय है। इसका मूलाधार सत्य, अहिसा और धर्म समभाव है। यह सुधार मूलत हिदू है। इस्छाम से इसका विरोध नहीं है। यह दुनिया के सभी मजहबो के प्रति सहिष्णु है। इस्लाम के प्रभाव ने हिंदू समाज को सोचने के लिए बाध्य किया। सुधरो या टूटो। दोनो प्रक्रियाएँ साथ चढी। टूट भी और सुधार भी। सुधार की आवश्यकता ही टूट के संदर्भ मे होती - है। कबीर ने देखा वर्णव्यवस्था हिन्दू समाज को दुहरा नुकसान कर रही है। समाज का एक बड़ा हिस्सा गिरा है। यह गिरावट उसे विजाती बनाती है। न वह सुखी है। न समाज का , कथित उच्चवर्ग | पूरा हिंदूसमाज अशात है। आक्रात है। अपने है अग को दबाए रखने की प्रक्रिया में क्य भी दबा है। दबता जा रहा है। परेशान भी है। उच्चता के अहकार मे ऐंठा भी है। वर्णव्यवस्था आध्यात्मिक नही है। योकि आत्म विरोधी है। मुस्लिम समाज में उनके लिये ऊँचा स्थान न था जिनका स्थान हिंदू समाज में नीचे था। इसलिये मुसरुमान होना व्यर्थ है। कबीर ने भूलकर भी धर्मपरिवर्त्तन को स्वीकृति नहीं दी। उल्टे इस्ठाम की गहरी आलोचना की। इस्लाम के सारे कर्मकाड उन्हे नापसद है। रोजा, बांग, खतना, हलाल, मस्जिद, दाठी आदि सब। तुलसी को वर्णव्यवस्था ठीक नहीं लगती है। किन्तु वर्णव्यवस्था ही व्यवस्था है। यह व्यवस्था टूटी कि हिंदू समाज बिखर जायगा। अराजकता फैल जायगी । व्यवस्था और सगठन की दृष्टि से इसका कोई विकल्प नहीं है। बिना विकल्प खोजे इसे तोड़ने को वे सकट को न्यौतना मानते है। विदेशी ताकत का आना क्या कम सकट है, जो समाज तोड़ने का एक नया सकट और हे छे। तुलसी व्यवस्था को तोड़े बिना ही व्यवस्था मे सुधार करने की कोशिश मे है। कबीर सुधार चाहते है। चाहे व्यवस्था क्यो न दूट जाय। ऐसी - व्यवस्था किस काम की जी करोड़ो को अपावन बनाए है। जिसने स्वय व्यवस्था को खतरे में डाल दिया है। जिसमे व्यव्स्थापफ का पतन हो गया हो। योगी जाति में जन्मे कबीर को हिदुओ ने कब प्रतिष्ठा दी ? यह उनका राष्ट्री और जाती आत्मविश्वास है कि वे नारदी भक्ति को स्वीकारते है। हिदूधर्म का नाश नही, सुधार चाहते है। इस प्रकार की चाह न केवढ़ू कबीर में है बल्कि पूरे भारत मे अनेक संत सप्रदायो में है। जो हिंदूधर्म की आलोचना और उसमे सुधार के लिये सघर्ष को इस्लाम मानते है उनसे कबीर बात नही करते। कबीर और तुल्सी की दृष्टि मे यह अतर क्यो है ? क्या इस अतर का कारण वैयक्तिक है या सामाजिक भी ? नही यह सामाजिक भी है। परंपरागत भी है। कबीर योगी से सत वैष्णव हुए थे। तुलसी वैदिक सनातनी से सत वैष्णव हुए थे। है दोनो ही सत वैष्णव। कितु दोनो की परपरा भिन्न है। सामाजिक परिवेश भी भिन्न है। दोनो की परपराएँ बुद्ध प्रभावित है। सुधार प्रभावित है। कितु एक बुद्ध को अवतार बनाकर उन पर अपना रग दे देता है। दूसरा बौद्ध रग से प्रभावित है। इसीलिये तुलसी सुधार चाहकर भी उसे गोपनी रखना चाहते है। कोई देखे

नहीं। कही कुछ गड़बड़ न हो जाय। बुद्ध और महावीर अपने देश के अपने ही समाज धर्म के सुधारक ये। इन्हे ढे लिया। मुहम्मद साहब के लिये यहाँ स्थान नही। मुहम्मद को न तुलसी ले पाते है, न (१५)

१६ कबीर समग्र कबीर। सैद्धातिक स्तर पर कबीर राम-रहीम को समान कहते है। कितु उपास्य तो राम ही होगे। यहाँ तक कि शक्ति और शिव भी नही। मुहम्मद का तो सवाल ही नही उठता। राम और रहीम के प्रति उदार कबीर शक्ति, शिव, मौनी, जगधर के प्रति कठेर है। तुलसी की वैष्णवता उन्हे हिन्दूधर्म तथा सभी धर्मो के प्रति सहनशील बनाती है। वे विदेशी इस्लाम के प्रति मौन रहते है। कबीर इस्ठाम की आलोचना करके भी समभाव रखते है। ईश्वर एक है तो खुदा और राम भी एक है। कबीर हिन्दू जातियो और सम्प्रदाय दोनों को हानिकारक मानते थे। जाति के समान ही सम्प्रदाय भी खराब है। ये ही हिन्दूधर्म को नाश की ओर हे जाते है। तुलसी हिन्दू सम्प्रदायो मे समानता और समभाव रखते थे। उनकी दृष्टि हिन्दू समाज के सतुलन पर है। तुलसी आदि से अन्त तक हिन्दू है। यद्यपि उन्हे अपने हिन्दू होने का जरा भी पता नहीं है। यह दूसरो का आग्रह है। उन्होने उन्हे हिन्दू माना है। तुलसी कही भी अपने को हिन्दू नहीं कहते। कबीर की बानियो से पता लगता है कि इस देश मे हिन्दू भी है, मुसलमान भी है। और दोनो को राह नही मिली है। दोनो ही भटक गये है। कबीर दोनो से नाराज है। दोनो को सिखाते है। दोनो से ऊपर है। तब कौन है कबीर ? हिन्दू नही है। मुसलमान नही है। समस्या हो गयी। दो ही तो धर्म है। दो ही सम्प्रदाय है। इनमे कबीर को कहाँ रखा जाय। भक्त अपनी कोई जाति नही मानते। वे न हिन्दू है, न मुसलमान, न योगी। वे केवल भक्त है। नानक बानी मे नानक ने कहा है "वे न हिन्दू है, न मुसलमान, न योगी। वे केवल भक्त है ! गोरख अपने को तीनो मानते है। "वे जन्म से हिन्दू, तपस्या से योगी और बुद्धि से मुसलमान उत्पत्ति हिन्दू जरणा जोगी अकल परी मुसलमानी कबीर अपने को जोगी, हिंदू, मुसलमान सबसे ऊपर मानते है। जोगी गोरख गोरख करें, हिंदू राम नाम उच्चरे। मुसलमान कहै एक खुदाई, कबीर के स्वामी घटि रहथी समाई ॥ -कवीर स० पृ० २०० यहाँ कबीर ने हिन्दू की पहचान बता दी। रामरटने वाला हिन्दू है। हिन्दू के उपास्य राम है। राम कबीर के भी उपास्य है। फिर वे हिन्दू क्यो नहीं है ? इसलिये कि कबीर जिस हिन्दू की बात करते है वह सगुणमार्गी सनातनी हिन्दू है। कबीर तो घट-घट वासी राम के उपासक है। जैसे आगे चलकर बौद्धो, जैनो एव सिक्खों मे अलगाव की प्रवृत्ति आ गयी उसी प्रकार कबीर आदि सन्त भी अपनी पहिचान अलूग बनाये रखना चाहते है। वीर शैव और महानुभाव भी अपने को हिन्दू नही कहते थे। भक्तिसार अल्वार ने तो यहाँ तक कह दिया कि चारों वर्णो के किसी गृह में मेरा जन्म नही हुआ है।" सन्त अपने को जानना चाहते है। मै कौन हूँ. को5हम्ू । तुम कौन हो ? कर्त्वम् ? इसी सन्दर्भ मे वे सम्पूर्ण सामाजिक परिचय को न करते है। 28 मराठी उपन्यास "इद्रायणी तीरे" मे एक उद्धारण है। ज्योति कहती "न मनुष्य हूं, न देव, यक्ष, न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र। न ब्रह्मचारी, न गृही वानप्रस्थ, न भिक्षु। मै केवल बोध रूप सच्चिदानन्द हूँ। आओ 22 (नाहं मनुष्यो न व देवयक्षी न ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्राः । न ज्रक्नघारी न गृहीवनस्थो भिश्लु न

चाहं निजबोध रूपः |) -“- . ऊैबीर के युग तक हिन्दू शब्द प्रतिष्ठित हो पाया था इसमे सन्देह है। हिन्दू शब्द

कबीर हिन्दू सुधारक बेचैनी १७ मुसलमानों द्वारा कभी सम्पूर्ण भारतीयों के लिए |कभी भारत के गैर मुसठमानों के ढिये प्रयुक्त होता था। बाद मे जिनके लिये यह शब्द रूढ़ हो गया उनमे यह शब्द प्रतिष्ठित न था। उस समय तक वर्ण व्यवस्था के अतिरिक्त हिन्दू जैसे शब्द को पूर्ण स्वीकृति नही मिली थी। कबीर को नव धर्मातरित मुसलमान कहने की अपेक्षा वैष्णवयोगी कहना अधिक ठीक है। इसीलिये कबीर अपने को न तुर्क कहते है, न मुसलमान। योगी अहिदू जैसे हो गए थे। जैसे आज के बौद्ध, जैन, सिक्खादि है। कबीर मे मुसलमान परिवार मे पलने का कोई सस्कार और सज्ञा नही है। इसके मुकाबले उनमे योग और वैष्णव शास्त्रों की गहराई है। कबीर की सारी चिन्ता और पीड़ा हिन्दू होने की है। हिन्दू धर्म मे पिछड़ा और अछूत होने की है। हिन्दू बाह्य व्यक्ति द्वारा की गई हिन्दू धर्म की आलोचनाओ मे एक प्रकार की तटस्थता होती है। वह सैद्धातिक लड़ाई लड़ता है। उसमे भोगने की पीड़ा नही होती है। कबीर मे वर्णव्यवस्था से मुक्ति की छटपटहट और आक्रोश है। वे हिन्दू परम्पराओ, शास्त्रो, पुराणो आदि को जानबूझकर इनकार करते है। हिन्दू शब्द के समान ही साधुओ और सन्यासियो के विभिन्न सप्रदायो मे भी दृढ़ीकरण नहीं हुआ था। वे अपना लचीलापन बनाए थे। निश्चित जाति में जन्म छेते थे। निश्चित सम्प्रदाय मे दीक्षित होते थे। कितु बराबर उनसे ऊपर उठकर देखते थे। देश-दुनिया के परिवर्त्तनो पर नजर रखते थे। इसी कारण उनमे विरोधी तत्वी का मिश्रण भी दिखाई पड़ता है। कैसा समन्वय है, सनन््तो मे ? प्राय सभी सन्त सबके आलोचक भी है। सबसे प्रभावित भी है। उनका हृदय खुला है। न छोड़ते देर। न डेने मे सकोच। सभी सन््तो में सामाजिक सुधार की बेचैनी है। रास्ते अलग-अलग हो सकते है, किन्तु उद्देश्य एक है। प्राय सभी सन्त विदेशी दरबारो से मुक्त है। हिन्दी क्षेत्र के सन्त अक्सर दरबारो में भी।नही जाते है। हिन्दीतर क्षेत्रो मे कभी-कभी राजा स्वय सन्त होता दिखाई पड़ता है। ऐसे ही मल दरबारों मे जाते है। राज्याश्रय पाते है। दक्षिण के नायनमार सन्तो मे पॉच राजा, चार और चार सेनानायक थे। सन्त पीपा राजवश के थे। मीरा भी राजपरिवार से आई थी। कननड़ सन्त बसवेश्वर एक जैन राजा के मन्त्री थे। लगता है बाद में उन्होने उसे छोड़ दिया। बेसवेश्वर के सम्प्रदाय मे दीक्षित मोलिगये मारय्या कश्मीर का राजा था। स्वय बुद्ध राजपरिवार से आये थे। राजा और बादशाह सन्तो को राज्याश्रय देते थे। जिसे सन्त अस्वीकार करते थे। कभी-कभी स्वीकार भी करते“थे। इस सम्बन्ध मे कुभनदास का अनुभव महत्त्वपूर्ण है। कुभनदास को अकबर ने फतहपुर सीकरी मे बुढाया। वे गए भी। किन्तु उन्हे अच्छा नही लगासन्तन को कहा सीकरी सो काम। आवत जात पनहियाँ दूटी बिसरि गयो हरि नाम। जिनके मुख देखत घिन उपजत तिनकौ करिंबे परी सलाम ॥ इस उद्धरण से स्पष्ट है कि सन्त राज्याश्रयी नही होते थे। इसलिये कि वे दुनियादार भी नही होते थे। वे कुछ विरक्त रहकर समाज-सेवा करते थे। मूछत वे आध्यालिक पुरुष होते थे। किन्तु कभी-कभी सामाजिक सेवा के क्षेत्र मे उतर आते थे। ऐसे

नामो मे स्वामी रामदास का नाम शायद सबसे महत्त्वपूर्ण था। स्वामी रामदास महाराज शिवाजी के गुरु थे। सन््तो का मुख्य काम था जनता मे आत्मविश्वास पैदा करना। मानव मानव की एकता के माध्यम से उन्होने देश और समाज की एकता स्थापित करने की कोशिश की। यह एकता व्यापक थी। इसमे जाति गत, लिग या रगगत भेद-भाव न था। आचरण, सद्विचार, त्याग, साधना जैसे

दा १८ कवीर समग्र तत्त्वो को अपनानेवाले सभी व्यक्ति समान है। सनन्‍्तो ने मानव एकता के माध्यम से राष्ट्री एकता को पाने की कोशिश की थी। आक्रमणकारी इस्लाम से एकता का सवाल नही था। यहाँ एकता का मतलब था शोषित हिन्दू जनता की एकता। कुछ सामान्य मुसलमान जनता की एकता भी। उदार सत एक ऐसी आधार भूमि बनाना चाहते थे, जिसमे सामान्य मुसठमान भी आ सके। इससे कट्टता कम होगी। उदारता का विकास होगा। धर्म-परिवर्त्तन के तूफान से हिन्दू धर्म को बचाने का यही एक मार्ग उन्हे सम्भव दीखा। इसके लिए थोड़ी तटस्थता की भी आवश्यकता थी। फलत कुछ-कुछ मुसलमान भी सन्त मार्ग मे शामिल हुए। जो लोग कबीर की आलोचनाओ पर चमत्कृत है उन्हे यह भूलना न होगा कि कवीर हिन्दू धर्म के पाखडो के विरोधी है। किन्तु उनकी मूल अवधारणा हिन्दू है। बुद्ध, महावीर, सिद्ध और गोरखनाथ आदि के समान वे स्पष्ट देख रहे थे कि जाति-व्यवस्था, छुआछूत जैसी चीजे ही देश को गुलाम बनाती है। जाति व्यवस्था के शिकार मुख्य रूप से शरीर-श्रम करनेवाली जातियाँ है। इन्हे देश का उच्चवर्ग भी परेशान करता है। विदेशी भी ढूटते है। उन्होंने स्पष्ट देखा कि धर्म-परिवर्त्तन से इनका काम चलनेवाला नही है। धर्म-परिवर्त्तन स्वय मे गुलामी है। यह एक अन्यायी राज्य से दूसरे शोषक राज्य मे शरण लेने, जैसा है। धर्म बदलने से समस्याएँ और बढ़ेगी। मूल सवाल है दृष्टि बदलने का। कवीर दृष्टि बदलने के लिये संघर्ष करते है। पडित से शास्त्रार्थ की मुद्रा बनाते है। वहस चलाते है। जी तू वभनी वाभन जाया आन वाट से काहे न आया ? इस्लाम मे अहिसा का स्थान न था। कबीर ने अहिसा पर जोर दिया, क्यो? इसलिये कि बुद्ध अहिसक थे। नही, इसलिये नहीं। मूल बात यह है मारना, काटना ही हिसा नही हैं। शोषण, छुआछूत आदि भी हिसा है। किसी को सताना भी हिसा है। प्रजा को लूटना और बलातू धर्म परिवर्तन भी हिसा है। तत्कालीन शासन अहिसा की यह परिभाषा स्वीकार करने की स्थिति मे न था। क्योकि सत्ता का आधार ही हिसा थी। व्यभिचार, शराब, जूआ,भारी कर, वेगार, सग्रह आदि हिसा के सहयोगी है। कबीर हिसा के इन सहयोगियों का भी विरोध करते है। सामाजिक स्थिरता समृद्धि के मूल मे है। यह स्थिरता सदाचरण से ही आ सकती है। हिसा मूलक समाज में स्थिरता नही रह सकती। वर्ण व्यवस्था और छुआछूत ने समाज की जड़ की हिला दिः:| समाज कमजोर हो गया है। इसे ठीक करने के लिये इन्हे दूर करना होगा। द्वैत मूठक समाज कभी सुखी नही हो सकता। सुख तो अद्वित मे है। अद्वैत कबीर का मुख्य दर्शन है। अद्वैत का अर्थ है मानव-मानव की एकता, शोषणरहित समतामूलक समाज | कबीर अद्वैत मूलक सामाजिक समता, एकता के गायक है। मुसलमान भारत मे शासक जाति के थे। वादशाह उनके थे। अधिकाश मुसलमान बादशाह बिरादरी के थे। धर्मपरिवर्त्तन के मूल मे भी बादशाही विरादरी मे शामिल होने का सुख था। यह मान सिह जैसे उच्चवर्गी परिवार भी कर रहे थे और निम्नवर्ग भी। निम्न वर्ग से तो बलात् भी

धर्मपरिवर्त्तन कराया जाता था। धर्मपरिवर्त्तन मे लोभ, मोह और भय तीनो का स्थान था। कबीर स्वधर्म मे रहने के समर्थक है। हा, स्वधर्म मे नित्य सुधार की आवश्यकता है। इस्लाम मूर्तिपूजा, अवतार, पुनर्जन्म का कट्टर विरोधी है। एक ईश्वर मे विश्वास करता है। सामाजिक समता मे विश्वास करता है। किन्तु धार्मिक दृष्टि से कट्टर है। धर्मो की विभिन्नता के प्रति अनुदार है। कबीर मूर्तिपूजा और अवतार के विरोधी है। किन्तु पुनर्जन््म मे उनका विश्वास है। वे एक ईश्वर मे विश्वास करते हुए जीव, जगत् और ब्रह्म की एकता मे विश्वास करते है। इस्हाम जीव जगत् और ब्रह्म की एकता का विरोधी है। इसलिये जो कबीर के मूर्तिपूजा और ०2 विरोध तथा एक ईश्वर के विचार को इस्छामी मानते वे भूल करते है। इन्ही बातो को नाननवाल्आ आर्य समाज को मुसहमान कौन कहेगा ? असल में कबीर की मुख्य समस्या इस्ठाम

है े र न कबीर हिन्दू सुधारक बेचैनी १९ की चुनौतियो के सन्दर्भ मे सगठन और सुधार है। यही कारण है कि कबीर का मुख्य प्रभाव हिन्दू जनता पर है। मुसलमानो की दुनिया मे तो वे विजाती और विधर्मी है। इसके मुकाबले हिन्दू उन्हे अपने समाज के आदर्श भक्तो मे स्थान देता है। नीमा और नीरू के घर पलने पर भी हिन्दू उन्हे पराया नही मानता। कबीर रामानन्द के शिष्य कहे जाते है। रामानन्द की परम्परा भी हिन्दू सुधार वाली है। कबीर साहित्य और चिन्तन की परम्परा इस्लामी न होकर हिन्दू है। कबीर की आलोचनाओ से परेशान लोग उन्हे अक्खड़, उद्धत और मुसलमान कहकर सन्तोष कर लेते है। सच्चाई यह है कि कबीर की समस्याएँ, समर्थन और विरोध सब हिन्दू धर्म के भीतर की है। कबीर ने आर्य समाज के समान ही कठोर और तथ्यमूलक आधार पर समाज सुधार की कोशिश की। इस सुधार की परम्परा है। किन्तु यह पुनर्निर्मित परम्परा है। कबीर ने परम्परा के अलग टुकड़ो को लेकर जोड़ा है। इसी जोड़ने मे भगवान् से जुड़े कि कबीरदास से कबीर साहब हो गए। वे कयामत तक कब्र मे रहकर फैसले का इन्तजार नही करते। स्वय साधना द्वारा व्यक्ति से ब्रह्म बन जाते है। हिन्दू की एक विशेषता निरन्तर अपना सशोधन है। वैचारिक स्तर पर दुनिया का यह अकेला धर्म है जिसमे सुधार, सशोधन और अनुसन्धान की बराबर कोशिश होती रही है। इसका कोई स्वर अधिक तीचत्र होता था, कोई धीमा। कबीर उस सशोधन सुधार के एक तीत्र स्वर थे। कबीर ने भी अपने धर्म का नाम नही दिया। इसलिये कि उस समय तक हिन्दू शब्द को प्रतिष्ठा नही मिली थी। भारत मे धर्म और समाज की ऐसी एकता थी कि किसी को अपना धर्म या समाज बताने का अभ्यास न था। हिन्दू नाम मुसलमान दे रहे थे। भछा ऐसा नाम कबीर की अपने लिये क्यो स्वीकार होता ? इस्लाम केवल प्रणति वाला धर्म है। अपने धर्म की आलोचना सुनने की उसकी आदत नहीं है। कबीर की आलोचना अगर उसे सुननी पड़ी तो . केवढ इसलिये कि कबीर गैर फिरके के थे। मस्जिद और ईदगाह मे बैठकर आलोचना के लिये मुँह खोलते ही सिर कलम कर दिया जाता। गैर फिरका वाढ़े का असर सीधा नही होता। सीधा होता तो मुसलमान नेतृत्व इस पर अवश्य सोचता। शेख तकी के कहने पर कबीर पकड़कर सिकन्दर लोदी के दरबार मे छाए गए। उन्हे मारने की कोशिश की गयी। कबीर को मरवाने की कोशिश केवल मुसलमान शासक ने ही की। क्योकि कट्टर मुसलमान उन्हे अपना विरोधी मानता था। इसके मुकाबले प्रत्येक हिन्दू ने उहे भक्त माना। भक्ति-आन्दोलन का महत्त्वपूर्ण नेता, सुधारक और कवि घोषित किया। परंम्परा से कबीर हिन्दू भक्ति धर्म के प्रमुख सतो मे है। कबीर को हिन्दू पुराणो, देवी-देवताओ आदि का अर्जित की अपेक्षा परपरित ज्ञान है। वे अपनी बात को उन्हीं के माध्यम से कहते है। उनका मुख्य प्रतीक कमल है। गुलाब को तो वे शायद जानते,भी नहीं। मुसठमान किताब विरोधी नही हो सकता। पवित्र कुरान उसके धर्म का एकमात्र आधार है। कबीर ने किताब का विरोध उपनिषद् एव योग परम्परा से लिया है। मुस

'मान हुक्म पर विश्वास करता है। कुरान का हुक्म, शेख का हुक्म है। कबीर हुक्म विरोधी ' है। हुक्म तो क्या वे किसी भी बाहरी आदेश की उपेक्षा करते है। ईश्वर को स्वर्ग मे न खोजकर अपने भीतर खोजते है। पीरपैगग्बर और किताब के आदेश के स्थान पर आत्मानुभूति पर जोर देते है। पुस्तक सत्य नही, आत्मसत्य। इस्छाम का किताबी और पैगम्बरी ज्ञान सबके "लिए सत्य है। सबको उसके सामने सिर झुकाना है। न बहस। न विवाद। कबीर का सत्य व्यक्तिगत है। सब उसे पा भी नही सकते। गुरु प्रसाद और अपने परिश्रम से विरठा ही उस सत्य तक पहुँच सकता है। सामान्य जन की तो बात ही क्या मुनिजन भी वहाँ महल नही पा ई | ई 4 कक १ मम

विवश पल्मलन् कक. ४ २० कबीर समग्र सकते। कबीर अपने को पूर्वजन्म का वॉमन (ब्राह्मण) कहते है। उन्हे दुख है कि राम देव की सेवा मे चूक न होती तो वे जुलाहा नही बनते। इसीलिये इस जन्म में वे रामदेव की सेवा में लगे है। इसका मतलव नही कि वे ब्राह्मण कर्म करेगे। करेगे वे सुधार ही। इस जन्म को ही सुधारेगे। अपनी व्यक्तिगत साधना के साथ वे हिन्दू धर्म मे सुधार चलाते है। अपनी मुक्ति और समाज मुक्ति दोनो साथ चलना चाहिए। स्वय तो वे मुक्त हो ही गये है। अब दूसरो को भी मुक्ति का रास्ता बताते है। कबीर समाज सुधारक थे। यह वात सर्वमान्य है। तो, क्या कबीर मुसल्मि समाज के सुधारक थे। या मुसलमान होकर हिन्दू समाज मे सुधार कर रहे थे ? फिर उन्हे मुसलमान मानने का आधार मात्र एक किवदती रह जाती है। ऐसा भी नही कि वे अरण्य- रोदन मात्र करते थे। उनके पीछे कोई समाज न था। अवश्य ही उनका समाज हिंदू है। कबीर एकेश्वरवादी है। निर्गुणोपासक है। कितु कबीर का निर्गण और एकेश्वर इस्लाम से बिल्कुल अलग है। वे अवतार नही मानते तो रसूल या पैगबर को भी नही मानते। कबीर अद्वितवादी है। वहाँ रसूछ का कोई स्थान नही है। कबीर रसूल नही स्वय ब्रह्म है। यह बात इस्छाम के गढ़े नहीं उतरेगी। कितु हिंदू को यह अच्छा लगता है। इस्लाम का खुदा दिल मे, घट मे नहीं, सातवे आसमान पर है। इसी बात को कबीर कहते है-मुसलमान कहे एक. खुदाई। कबीरा कौ स्वामी घटि घटि रहयी समाई। पिछले खेवे के सुधारकों और कबीर मे एक अन्तर भी था। पिछले खेवे के सुधारक वैष्णव नही थे। कबीर वैष्णव क्यो हुए ? उन्हे वैष्णव बनने मे कठिनाइयों भी हुई। शुरू मे गुरु रामानन्द उन्हे शिष्य बनाने को तैयार न थे। किन्तु कबीर हठपूर्वक रामानद के शिष्य बने। उन्होने योगमार्ग की जमीन पर वैष्णव भक्ति का वृक्ष तैयार किया। गोरख ने योग जगाकर भक्ति भगायी थी। कबीर ने भक्ति पलल्ठवित की। योग को उखाड़ा नही। उनके लिये योग साधन है, भक्ति साध्य। उनके द्वारा गिनाये गए भक्तो मे हिन्दू शुकदेव, नामदेव, जयदेव आदि है। उन्होने कभी किसी मुसलमान भक्त का नाम नहीं लिया। शेखतकी उनका विरोधी है। कहते है उनकी लाश जलायी जाय या गाड़ी जाय। इस पर हिन्दू भक्तो और मुसलमान भक्तो मे झगड़ा हो गया। कपड़ा हटाने पर देखा गया कि वहाँ छाश के स्थान पर फूल है। कबीरपंथी उनका जन्म भी कमलपत्र पर मानते है। कमल से कमढ्ढ तक का यह विकास हिन्दू पुराकथा है। कवीर द्वारा प्रयुक्त घट और पट का प्रतीक भी हिन्दू प्रतीक है। ये दोनो प्रतीक कबीर के विचारो के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आधार है। इस प्रकार के जाने कितने प्रमाण है जिनसे स्पष्ट होता है कि कबीर मुख्यत उदारवादी हिन्दू समाज-सुधारक थे। उन्होने छोगो को मुसलमान बनने से रोका। शातिप्रिय बादशाह, विद्वान् और नेता यह भी समझ रहे थे कि धार्मिक अशाति, बलातू धर्मपरिवर्त्तन जैसी चीजे स्थायी राज्य के लिये अच्छी नही है। इसलिये उन्होने एक सामान्य धर्म को भी विकसित करने की कोशिश की। अकबर का दीन-इलाही ऐसा ही आन्दोलन था।

कबीर ५ जांति,स्थान कबीर के बारे मे कुछ भी स्थिर नही है। हो भी कैसे ? उनका जन्म शायद सामाजिक दृष्टि से शुद्ध न था। कितु कर्म से वे महान् हो गए। अशुद्धता ऐसी कि माता-पिता नाम भी न है, हमे पुत्र हुआ है'। उनके जन्म पर थाली नहीं बजी। प्रीतिभोज नहीं हुआ। प्रतिभा का धनी पुत्र झाड़ी मे फेक दिया गया। अवैध संतान थी। इसी कबीर ने समाज की सारी अवैधता पर चोट की। केवल हिंदू की अवैधता नही, सबकी ,अवैधता। मुसलमान की अवैधता। बौद्ध, जैन, जोगी, जती, सन्यासी सबकी अवैधता। जहाँ गलत है वहाँ कबीर उँगली उठाए है। दिखावा, आडम्बर, ढोग को नेस्तनाबूद कर देना चाहते है। धर्म एक आदर्श है। मानसिक चितन है। बौद्धिक प्रयल है। इसके अभाव मे धर्म के पाषाण को पूजना व्यर्थ है। योग अच्छी चीज है। योगी श्रेष्ठ है। कितु केवल आँख मूँदने और दाढ़ी बढ़ाने से कोई योगी नहीं हो सकता। योग तो आध्यात्मिक वृत्ति है। मन ग्रक्रिया है। किवदन्ती कहती है, कबीर विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से पैदा हुए थे। ब्राह्मण पाषड का यह विरोधी ब्राह्मणी के गर्भ में नौ मास रहा। कबीर अपने को कही भी ब्राह्मणी से नही जोड़ते। माता-पिता के बारे मे मौन रहते है। हा, पूर्व जन्म मे 'बाभन' थेपूरद जनम हम वांह्न होते, वोठे करम तप हींतां। रामदेव की सेवा चूका, पकरि जुलाहा कीनाँ ॥ -कबी० पृ १७३ क्या कबीर के मन में कही यह बात थी कि वे 'बोछे कर्म! तथा त्पस्था की कमी के कारण जुलाहा हुए ? कया वे अपने को पूर्वजन्म का ब्राह्मण कहकर अपने कथन को प्रामाणिक बनाना चाहते थे ? जुलाहा हुआ तो क्या हुआ, जन्मान्तर का सस्कार ब्राह्मण का है। इससे कथन मे शक्ति मिलती थी ? ब्राह्मण को लछलकारने में आत्मविश्वास स्थैर्य पाता था। जिन्हे ललकार रहे थे उन्हे पूर्वजन्म मे विश्वास था। या वे जनश्रुति का सकेत्त करते है ? सामाजिक मान्यता महत्त्वपूर्णचीज है। जनता ने कबीर को ब्राह्मणी के पेट मे शायद लोक मान्यता के लिये डाला। लोक उन्हे ब्राह्मणी कुपार के रूप में जाने। माने। विशिष्ता का मोह नया नहीं है। ब्राह्मण आज भी विशिष्ट बना है। आज की अनेक जातियाँ ब्राह्मण बन रही है। नाई ब्राह्मण सबसे अच्छा उदाहरण है। लुहार, बढ़ई, नाई आदि अपने को शर्मा लिखते है। यह स्थिति ब्राह्मण को भी स्वीकार हुई होगी। कबीर जैसी प्रतिभा बिना ब्राह्मण ससर्ग से कैसे पैदा होती ? बीज नही तो रज और क्षेत्र तो ब्राह्मण के है। बीज के बारे मे मौन है। क्यो मौन है ? कया बीज भी ब्राह्मण का था ? नहीं। यह शुद्ध कल्पना होगी। हाँ, आचार्य रामानद के आशीर्वाद से विधवा को गर्भ रहा। इस ढंग से बीज को अलौकिक और ब्राह्मण बनाने की कोशिश है। नीमा और नीरू को बार-बार गौण बनाने की कोशिश हुई। वै केंवछ पालनकर्तता है। या ऐसा कि लोक हिंदू धर्म पर व्यग्य करना चाहता है। रूढ़िवादी, अनुदार हिंदू ने इतनी बड़ी प्रतिभा को झाड़ी मे फेक दिया। जुलाहा बनने के लिये मजबूर कर दिया। सामाजिक सदर्भो के अन्वेषक के लिये विधवा ब्राह्मणी वाली बात महत्त्वहीन है। वे उसकी चर्चा नहीं करते। सामाजिक सदर्भ की दृष्टि से उसे महत्त्वहीन समझते होगे। उन्होने कबीर

को जुलाहा मानकर विचार किया है। शायद कोरी भी जुलाहा ही है। 'कुछ पडितो का यह भी (२१)

२२ कवीर समग्र अनुमान है कि मुसलमानी धर्म ग्रहण करनेवाले कोरी ही जुछाहे है /" (कबीर पृ ५) कि पडित हजारीप्रसाद द्विवेदी जी इस राय से सहमत नही है। 'कोरियो और जुछाहो को एक ही श्रेणी की दो जातियाँ मान लेने का कोई प्रमाण नही है)' (वही पृ ५)। कबीर ने अधिकतर स्थानो पर अपने को जुछाहा, कही-कही कोरी और एक वार शूद्र कहा हैतुम कैसे बाम्हण पांडे हम कैसे सूद । इससे जाति का ठीक पत्ता नही लगता। क्योकि शूद्र कोई जाति न होकर जातिसमूह है। साधु अपनी जाति, जन्म और कुल नही बताते। कबीर इसका समर्थन करते हैना मोहि छानि न छपरी ना मोहि घर नहीं गाउ। मति हरि पूछे कौन है मेरे जाति न नाउ॥ फिर भी कबीर अपने को नीची जाति का वताते हैकबीर मेरी जाति को सब कोइ हँसने हारु। बलिहारी इसु जाति कौ जिह जपियो सिरजनहारु ॥ वही पू २५८। इन कथनो से स्पष्ट है कि कबीर किसी पिछड़ी जाति के थे। उन्होने पा से सवद्ध अनेक शब्दी के प्रयोग किए है। इससे लगता है कि वे वुनकर जाति के थे। कितु जुछाहा शब्द एक भ्रम पैदा करता है। जुलाहा जाति है, कितु जुलाहा प्रतीक भी है। सृश्टि-कार्य कपड़ा बुनना जैसा हैं। ईश्वर सृष्टि रूप चादर को बुनता है। सिद्ध ततीपा ने एक चर्या द्वारा अपने को वयनजीवी कहा है। सिद्ध शातिपा की दृष्टि मेतुला धुनि घुनि ऑसु रे आँसु। सूक्ष्म से सूक्ष अश तक रुई को धुनते है। नानक ससार को सूत, शरीर को वस्त्र कहते है। (नानकवाणी पृ ४०२, ८१) श्रीमद्भागवत के अनुसार "ब्रह्मा से लेकर स्थावरपर्यन्त सम्पूर्ण चराचर जीव प्राकृत है और जैसे वस्त्र सूत्रों से ओतप्रोत रहते है, वैसे ही ये सब प्रकृति के उन गुणो से ही ओत प्रोत है ।१ स्वय कबीर जुलाहा शब्द का प्रयोग सृश्िकर्ता के लिये करते हैअस जोलहा को मरम न जाना। जिन जग आनि पसारिन ताना। घर्ती अकास दुट गाड़ खुदाया। चोद सूर्य दुह नरी बनाया।. कबीर, बी० पृ० ९०। स्पष्ट ही यह 22 जाति नही सृष्टि निर्माता है। इसी स्थान पर कबीर ने अपने को कोरी भी कहा है। कोरी कपड़ा बुनता हैसहस्रतार लै पूरन पूरी। अजहूँ बिनैकठिन है दूरी। कहहि कबीर कर्म ते जोरी। सूत कुसूत बिने भल कोरी। वही, पृ० ९०। जुलाहा और कोरी को कबीर पर्याय रूप मे कहते है। ये पर्याय न होते तो एक ही व्यक्ति अपने को कभी जुलाहा और कभी कोरी कैसे कहता? इनकी स्थिति समाज मे शूद्रवत थी। कबीर अपने को कही भी ब्राह्मण या द्विज नही कहते। इसके मुकाबले शूद्र कहते है। जैसे जुलाहाय जाति प्रतीक है उसी प्रकार गोरख ने तेली और सुनार का प्रतीक लिया है- जाति हमारी तेली कहिए। मेरी जाति सुनारी रे ।" गोरख तेली नही थे। बे नहीं थे। गरीबदास अपने को बुननेवाले जुलाहा न कहकर "'कोली" कहते है- 'कोली बने बिहंगम ताना। -सत काव्य, पृ० ४१२। सत शिवदयारू सिह (स्वामीजी महाराज) अपने को गुरु चरनो को धुनने१ भागवत हिंदी, गीता प्रेस ,पू ३७५। गीता ने मृत्यु को वस्त्र-परिवर्त्तन कहा है। गीता मे वस्त्र का अर्थ है देह। सामान्यत लोग

शरीर को चोढछा कहते हैं। चौल माने वस्त्र | इसी से चुनकर चोलवाय है । जुलाहा फारसी रूप चौलवाय के निकट है। जुलहा शब्द फारसी व्युलन्न है | किंतु इसका

कबीर जाति, स्थान २३ 30738 निया कहते है। यह मन को धुनता है। मन कपास है। सूरत रुई है ।? कबीर बार-बार आध्योगिक बुनाई की बात करते हैमैं बुनिकरि सिरांना हो राम | 4 2९ ., ३ मिहीन सूत बिरहिन कारें माँझा भगति का। हर 4 3 जोलहा बीनहु हो हरिनामा। सुन्न सहज महि बुनत हमारी | एक स्थान पर किसान का रूपक भी लिया है। किसी-किसी सत ने अपने को सुनार कहा है। सृष्टि निर्माण के ढिये कनक-कुडल न्याय प्रसिद्ध है। ईश्वर को कुभकार भी कहा गया है। ब्रह्मा कुभकार है। पडित का पर्याय कुभकार हो गया है क्या कबीर जाति के जुलाहा थे ? और जुलाहा को रूपक के रूप मे भी उन्होने प्रयोग किया। कबीर अपनी बात जिस ढग से कहते है उसमे इस बात की सभावना भी कम नही है कि वे जुलाहा को रूपक के रूप मे प्रयोग करते है। कुरल तमिल का अत्यत प्रसिद्ध और आदरणी काव्य है। इसके रचयिता तिरुवल्लुवर हा थे ।२ एलाचार्य (कुकुदाचार्य) भी सभवत जुलाहा थे। प्रसिद्ध तमिल रामायण के रागता कम्बनू भी जुलाहा थे। मु] क्या इससे यह अनुमान नही होता कि जुलाहा जाति की अपेक्षा रूपक है ? यह भी सभव है कि जुलाहो मे भक्तों की परपरा रही हो। कि दो बाधाएँ जान पड़ती है- एक यह कि भक्ति जुलाहो मे ही क्यो हो ? १ की मे होने का कारण तो समझने योग्य है। हक कठिनाई यह है कि यदि वह परपरा थी तो उसे किसी न किसी रूप मे आज भी चाहिए जो नही है। हॉ, शूद्रो मे भक्ति की परपरा आज भी है। भक्ति मे शूद्रो की सख्या (बहुलता) का यह अर्थ भी नही है कि यह कोई पेशे से सबद्ध आन्दोलन था। इसका अर्थ इतना ही है कि भक्ति के क्षेत्र मे सबके लिये गुजाइश थी। यह भेदभाव वाला आन्दोलन न था। यह वैदिक धारा का ही एक विकास था। अथर्ववेद में कहा गया है कि चाडाहू भी यदि राम-राम जपता है तो उसके साथ बोलना, रहना और भोजन करना चाहिए- ८ यश्च चाडालो5पि रामेतिवाच व्रवीत तेन सह संवदेत् तेन सह सवसेत् तेन सह भुजीयात् (मानस पीयूष बाल १, पृ० ३७७)। अधिकतर साधक अपनी जाति नहीं बताते। नानक कहते है-मै न तो हिदू हूँ, न मुसलमान, न योगी हूँ।" फिर कया है ? भक्त है। जाति न पूछो साधु की। और जाति जानना आवश्यक है तो गोरखनाथ उसकी अलग पद्धति बताते हैउत्पति हिंदू जरणा जोगी अकलि परी मुसलमानी। ते राह चीन्हों रे काजी मुलां ब्रह्मा विष्णु महादेव मानी-गोरखबानी, पृ०६॥ हि यह कौन-सी राह है ? निश्चित ही यह भिन्न रास्ता है। साधना का रास्ता है। यह जातिपॉति का रास्ता रे | साधक श्रून्यवादी है। सभी रास्ते व्यर्थ है। साधक का रास्ता ही ठीक है। इसीलिये जाति-पॉति व्यर्थ है। वह हिंदू, मुसलमान, योगी कुछ भी नही है। कबीर को नवधर्मातरित मुसलमान भी क़हा गया है। धर्मातरण "जोगी" जाति का हुआ था। इस सबंध मे पहली बात यह कि नवधर्मातरित नवधर्म (इस्छाम) का विरोध नही करेगा। १ धुन घुन डालू अब मन को । मै धुनिया सतगुरु चरनन को | मन कपास सूरत कर रूई । काम विनौले डाले लोई |-सत काव्य, पू ४९४। २ गोविद शास्त्री-कुरल काव्य !

२४ कबीर समग्र मुसलमान इतने उदार भी नही कि वे किसी को आलोचना की छूट दे। विधर्म के नवागत को न यह छूट होती है। न वह यह छूट लेता है। उल्टे नया मुसलमान अधिक प्याज खाता है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात कबीर को जोगी से जोड़ने की जरूरत ? सत मार्ग भक्ति मार्ग का एक रूप है। यह सारे देश मे फैला है। मुख्य रूप से हिंदू कहलाने वालो मे फैठा। जोगी भी दि है। यो कि ये अपने को ब्राह्मण भी कहते है। प्रचलित मान्यता के अनुसार ये शकराचार्य शिष्य मडल मे सन्यासी है। इन पर निराकार, 8 न्‍्य आदि का प्रभाव है। सन्यासी होने के कारण ये जाति-पॉति का खडन करते थे। समाज में इनका दर्जा गिर गया था। जाति व्यवस्था एक सामाजिक व्यवस्था है। इसका दर्शन भक्ति या साधना के किसी सप्रदाय से सवध जोड़ना कठिन है। जाति का मुख्य समर्थन 2380 करती हैं। जिनका ध्यान सामाजिक व्यवस्था पर है। व्यवस्था वाले तब भी और आज भी जाति को पकड़े है। विशिष्ट के लिये यह बहुत बड़ी हक है। कबीर अपने को योगी नही कहते। बगला विश्वकोश के अनुसार "अधिकांश योगी शिव के उपासक है। यह हिंदू जाति की एक श्रेणी है ।" कबीर शैव नही वैष्णव है। शैव योगी गोरखनाथ के शिष्य थे। नाथ सप्रदाय मुड्त जैव प्रभाव का था। शंकराचार्य स्मार्त थे। शैव थे। विष्णु के भी आराधक थे। योगियो में कृष्णोपासक भी है। विश्वकोश कहता है "कृष्ण की उपासना करनेवाले योगियो की सख्या भी थोड़ी नहीं है ।" कितु कबीर राम भक्त वैष्णव है। वैष्णवता कबीर में बहुत प्रबल है। उन पर सहजिया सप्रदाय का भी प्रभाव है। कबीर नारदी भक्ति, शुकदेव आदि की बातो को भी मान्यता देते है। कबीर पर जो सबसे कम प्रभाव है वह इस्छाम का। वे इस्छाम के रोजा, बॉग, खतना, हलाठ, पा सबके विरोधी है। किताब का), वेद दोनो को अस्वीकार करते है। ऐसी स्थिति मे 53280 जुलाहा मानने का कोई कारण नही है। वे योगी भी नहीं थे, क्योकि वे वैष्णव हैं। वे किसी बुनकर पेशे के व्यक्ति हो सकते है जिनपर बौद्ध, सिद्ध, नाथ भक्ति के निर्गुण मार्ग पार प्रभाव है। उनकी रचनाओ का पौराणिक सदर्भ अत्यत गभीर और विस्तृत है। इसके मुकोवडे इस्छामी सदर्भ विरल, नही के वरावर है। कबीर को योगी मानकर निर्गुण मार्ग को समझा नही जा सकता है। निर्गुण मार्गी कबीर का और परवर्त्ती है। इसमे कबीर जैसे ही प्राय सैकड़ो उच्चकोटि के सत सारे देश मे फैले | ये सत विभिन्न जातियो के है। कवीर स्पष्ट ही योगी से अपने को अलग करते हैंजोगी गोरख गोरख करै, हिंदू राम नाम उच्चरै। मुसलमान कहै एक खुदाई, कबीर के स्वामी घटि घटि रह्मी समाई ॥| निश्चय ही कबीर का रास्ता न तो योगी का था, न परपरित 038 | 38% कातो डे ही नही। यह रास्ता सतो का था। सत अधिकतर पिछड़ी के थे। कबीर किसी जाति के सत थे। कबीर जिस प्रकार से जाति-व्यवस्था पर हमला करते है उससे स्पष्ट है कि वे विधर्मी नहीं है। जाति-व्यवस्था से पीड़ित समाज के अग है। विधर्मी को जाति व्यवस्था की पीड़ा नही होती। वह तो विचार के स्तर पर इसे अस्वीकार करता है। कबीर मे अहिंसा का

प्रवढ भाव है। वे गोहत्या विरोध को स्पष्ट रूप मे सकेतित करते है- 'दिनभर रोजा रखत हो राति हनत ही गाय ! भक्तो का समूह भी प्राय जाति का निर्णायक माना जाता है। कबीर के अधिकतर भक्त पिछड़ी जाति के रे | शूद्र हैं। कबीर के वचनो की स्वीकृति हिंदू के यहाँ है। बहुत थोड़े से मुसकमान कबीर के भक्त है। कबीर हिंदू सत है। हिंदू धर्म के आध्यात्रिक नेता है। गोरखनाथ सभी दिशाओ मे योगियो के रहने की बात कहते हैद््षिणी जोगी रंगायंगा, पूरबी जोगी बादी। पछमी जोगी दालाभोला, सिघ जोगी उत्तराधी। -गोरख वा० पृ० १६

कबीर जाति, स्थान २५ गोरख उत्तर को महत्त्व देते है। कबीर पूर्व को। कबीर की बोली पूरबी है। गोरख पूर्व को रोग का घर मानते है- 'अवधू पूरब दिसि व्याधि का रोग | यह दिशा भेद क्या इस बात का सकेत नही कि कबीर बाययशी योगी नही थे। वे मुसलमान नही थे। मुसलमान पश्चिम को महत्त्व देता है। कबीर इन दोनो से भिन्न पूर्व धुर पूर्व की बात कहते है। इस प्रकार कबीर को सीधे किसी पुराने सप्रदाय से जोड़कर उनकी जाति का पता नहीं छगता। सभी सत प्राय" एक जैसी बाते करते है। इनकी बोली के आधार पर इन सबको "जोगी" जाति का मानना ठीक न होगा। यह भी नही कहा जा सकता कि सभी सत कबीर की परपरा के है या सब उनका अनुकरण मात्र करते है। इस व्यापक धारा को केवल कबीर के आधार पर सीमित नही किया जा सकता है। एक स्थान पर कबीर ने जाति की लबी सूची दी है। यह जाति कर्मानुसार हैकुमरा हवै करि बासन घरिष्ूं धोबी हवे मलधोऊं। चमरा ड्ै करि रंगी अधौरी जातिपांति कुल खोऊं। तेली दै तन कोल्हू करिही, पाप पुंनि दोऊ पीरीं। पंच बैल जब सूध चलाऊं, राम जेवरिया जोरूं। इस प्रकार और अनेक जातियो की चर्चा है। इनमे जुलाहे की चर्चा नही है, न कोरी की चर्चा है। शायद इसलिये कि जुलाहा-कोरी की चर्चा बार-बार आई है। हि ० बगाल मे दशशौच योगिगण अपने को ब्राह्मणी के गर्भ का मानते है ।-बगढा विश्वकोष। क्या कबीर के विधवा ब्राह्मणी के गर्भवाली बात का यही सकेत है ? भक्ति प्रवाह दक्षिण से उत्तर तक व्याप्त था। भक्ति को आगम-निगम के साथ ही बौद्ध जैन परपराओ ने भी विकसित किया था। इस भक्ति मे शुद्रो की महत्त्वपूर्ण 088 थी। दक्षिण मे आलरुवार और नायनमार भक्तो के दो सप्रदाय थे। इनमे अनेक भक्त शूद्र थे। भक्ति मे शूद्रो का महत्त्वपूर्ण स्थान न केवल दक्षिण भारत मे बल्कि उत्तर भारत मे भी था। कोरी 08 जाति थी। कोरी का काम बुनना था। बुननेवाला बुनकर है। जुलाहा है। इसीलिये कबीर को शूद्र और कमीना दोनो कहते है। कबीर पर इस्लामी प्रभाव के कारण उन्हे मुसलमान मानने प्र ्ि कठिनाई यह होगी कि ऐसे सभी प्रभाववालो को हब कहना होगा, जो सभव नही है। क्योकि हमे दूसरे सतो की जाति का निश्चित ज्ञान है। स्वय महानू योगी गोरख ब्राह्मण थे। इससे स्पष्ट है कि दूसरी जातियाँ भी योगी हुआ करती थी। योगी जाति भी थी और साधना सप्रदाय भी। कबीर की मूल दीक्षा योगी सप्रदाय की रही होगी। बाद मे उन्होने वैष्णव सप्रदाय की दीक्षा ली होगी। योगी बनने पर उनके साथ योगियो सबधी धारणाएँ जुड़ी होगी। कितु कबीर बहुत दिनो तक उस सप्रदाय मे टिक न सके। जैसे उनके गुरु रामानद ने रामानुज के सप्रदाय मे सशोधन किया। भिन्न भिन्न सप्रदाय चलाया। गोरखनाथ ने भी अपने गुरु मस्येद्रनाथ के सप्रदाय का शोधन किया था। प्रचलित तो यह है कि उन्होने अपने गुरु को किसी नारी-पाश से मुक्त किया था। योगी सप्रदाय मे परिवर्तन की प्रक्रिया गोरखनाथ से आरभ हो गयी थी। स्वामी रामानद पर भी योग का प्रभाव था। योगी जाति थी यह विचारणी है। जातियाँ पेशे के आधार पर बनी

है। योगी कोई पेशा नही है। निश्चित ही पहले यह साधना मार्ग रहा होगा। उससे सप्रदाय बना और अत मे उसने जाति का रूप ले लिया। स्वयं गोरखनाथ और कबीर ने सर्वत्र योगी शब्द का प्रयोग एक साधना पद्धति के सप्रदाय या उस सप्रदाय के व्यक्ति के लिये किया है। वे कही भी योगी जाति नही कहते है। सामाजिक और साप्रदायिक बहिष्कार के कारण योगी सप्रदाय ने आपस मे ही शादी-विवाह आरम्भ कर दिया होगा। धीरे-धीरे उन्हे एक जाति मान लिया गया होगा। दशनामी साधुओ मे योगी जाति का नाम नही है। कबीर को मुसलमान मानने का मुख्य और महत्त्वपूर्ण कारण है उनके जन्म के सबध की जनश्रुति कि वे मुसलमान के घर पाले गए थे। नीरू और नीमा ने उन्हे रास्ते मे फेका पाया।

२६ कबीर समग्र ऐसी जनश्रुति केवल कबीर के बारे मे होती तो उसे सच मान लेना ठीक था। कितु ऐसी किवदतियाँ अनेक महापुरुषो के बारे मे प्रचलित है। सीता खेत मे फेकी पायी गयी थी। प्रसिद्ध आलवार भक्तिसारसरकडे पर फेके पाए गए थे, जिन्हे व्याध दपति ने पाला था। योगिवाहन (मुनिवाहन) खेत में पाए गए थे। हरिजन द्वारा पाले गये थे। आडाढ' (गोदा) विष्णुचित्त को वन के मार्ग मे मिली थी। महाराष्ट्री भक्तिन वेणावाई सत रामदास की शिष्या थी। यह बचपन में विधवा हो गयी थी। निदा के भय से माता-पिता ने इन्हे विष दे दिया। कितु गुरु-कृपा से कोई असर नही पड़ा। वाल्मीकि रहजन थे। कालिदास गा 20203 सूरदास एव नद्दास परम कामी। शायद ही कोई बड़ा कवि या सत हो जीवन के बारे मे कुछ विचित्र न प्रचलित हो। तुलसीदास मूह नक्षत्र मे पैदा हुए थे। माता-पिता को खतरा था। इन्हे मारना चाहा। मार न सके। बचपन गे भीख मॉगकर खाते थे। भक्ति के प्रथम आचार्य एव ब्रह्मा-पुत्र वैष्णव नारद दासीपुत्र थे। ऐसी कथाओ को यथावत् लेना ठीक नही। ये कथाएँ किसी विशिष्ट सकेत के लिये गढ़ी गयी है। सतो का विश्वास अपना सिद्धान्त बताने मे है। विचार बताने मे है। न कि जाति और जन्य | इन्हे तो छिपाते है। वे जन्म नही कर्म को महत्त्व देते है। केवल ध्यान देने की बात इतनी ही, है कि भक्तिधारा मे पूरे देश के शूद्रो की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। रचना, स्थिति और सख्या तीनो दृश्यों से शुद्र महत्त्वपूर्ण है। संत कबीर का सारा चितन, आक्रोश और पीड़ा किसी जागरूक हिंदू शूद्र की है। कबीर के नाम पर प्रचलित अतर एव बाह्य साक्ष्यों के आधार पर कुछ निर्धारण सभव नही है। कुछ उदाहरण की जॉच पर यह स्पष्ट होता है। उनकी माता के नाम पर एक उदाहरण मुति मुसि रोवे कबीर की माई। ए वारिक कैसे जीवहि रघुराई। तनना बुनना सद तज्यो कबीर। हरि का नाम लिख लियो सपीर। * यहाँ मुसि मुसि का क्या अर्थ है ? मूतन का अर्थ है चुराना। तो क्या कबीर की माँ मैँ चुराती है ? उन्हें रोने मे ठज्जा आती है “ क्या ? क्या कबीर से कुछ बुरा हो गया है योग कहेंगे हाँ बुरा हो गया है। क्या बुरा हुआ है ? यह कि जिसके घर मे कोई राम नही बोलता था वहॉ अब राम बोला जाता ” इससे कबीर की मॉ जुलाहा (मुसलमान) समाज लज्जित है। मेरे छुछ हमे राम कह्घो जद बड़े माला लड्ट निपूते। तब ते सुख न भयो। गा यहाँ तो ढण्जा की बात बिल्कुल नही है। माला से दुखी होने की बात है। अब पा मुसि का अर्थ ५२३४० २683 करले तो सारे प्रसग ठीक बैठेगे। यह माया माँ है जो की साधना से डरी है। यह कबीर अब विषयो मे नहीं जीवित रहेगा। माया मे नही रहेगा। प्रश्न है रोती क्यो है ? रोत्ती भी है मुसकाती भी है ? यह कैसे सभव 8 ? सभव इस प्रकार हुआ मे के लिये रोती है और दूसरो के लिये मुसकाती है और छोग अभी माया मे है। अगर भौतिक माँ नीमा होती तो वह रघुराई सबोधन नहीं करती। उसका सबोधन अल्छाह या खुदा के लिये होता। रोना और मुसकाना का विरोधाभास व्यग्य है। तनना बुनना का अर्थ है

आवागमन से 233: यह सामान्य व्यापार नही है। राम नाम लिखने से आवागमन का है। न कि दैनिक का तनना-बुनना। माया भी माँ ही है। सब माया की उत्पत्ति

कबीर : जाति, स्थान २७ ऐसी ही माँ के मरने पर कबीर खुश हैमुई मेरी माई हो खरा खुशाला। भला भौतिक माँ के मरने पर कोई प्रसन्न होगा ? नही यह माया माँ है जिसकी मृत्यु पर कबीर खुश है। इसके बाद कहते है- बाप ने मुझे द्ाढस बँधायाबाप दिलासा मेरो कीन्हा। तो क्या माँ और बाप की मनोवृत्ति मे अतर था? क्या संत कबीर के मुसलमान पिता उनके राम नाम से छज्जित नहीं थे " माँ और बाप की मनोवृत्ति मे यह अतर क्यो ? क्या बाप को मुसलमान समाज मे लज्जित नही होना होता होगा ? निश्चय ही यह बाप मायापति ब्रह्म है। ब्रह्म] कबीर की राम-साधना से प्रसन्न है। इसलिये दिलासा दे रहा है। इसलिये भी कि बाप बड़ा गुसाई (गोस्वामी) हैबाप हमारों बड़ गुसाई। इस बाप पर कबीर अपने को बलि करते हैबलि तिसु बाप जिन हऊ जाइया। यह वह भौतिक बाप नही है। जिसने इनकी माँ को छोड़ दिया था। इन्हे जन्म लेते ही फेकने पर मजबूर किया था। लोग कहते है कबीर साहब हज करने भी गए थे। उसका उदाहरण देखिएहज कावे होइ होह गया केती बार कबीर। तो क्या कबीर कई बार हज करने गये थे ? एक बार तो मुश्किक है। कितनी बार जाने का तो सवाल ही नहीं उठता। इसका उत्तर दूसरी पक्ति देती हैहज हमारी गोमती तीर जहाँ बसे पीताम्बर पीर। यह हज तो गोमती के किनारे है। गोमती नदी तो भारत में है। काशी के आस-पास है। कितु यह गोमती भी भीतिक नदी नही है। गोमत्ती इद्रिय नदी है। इद्रियाँ है। इद्रियो को जीतना ही गोमती का हज है। इसी गोमती के किनारे पीताम्बर (पीले वस्त्रवाल) पीर (भगवान) बसता है। हज मे पीताम्बर का उल्लेख सभव नहीं। यह हज तो असली हज के विरोध मे है। ही ॥ निराकार के कवि के लिये सृध्टि पीताग्बर भगवान की उपासना ही काशी है। काबा है। हज हैं। वे काबा को और सपष्ट करते है- सत्तरि काबे घट ही भीतरि। कबीर किसी भी भौतिक स्थान तीर्थ को अपनी मान्यता नही देते है। काशी और मगहर में जन्म-मरन भले हुआ हो। कितु इससे वे उपास्य नही हो जाते है। उपास्य तो केवल 48%, है। पीताम्बर भी केवल नाम सकेत है। सगुण साकार परमात्मा नही। कहना है तो कोई न कोई नाम तो लेना ही होगा। कबीर को पौराणिक नाम लेने मे कठिनाई नहीं होती है। नाम ही तो उपासना का साधन है। राम नाम भी तो पौराणिक. है। बिना भौतिक नाम के उपासना सभव नही। हाँ, रूप की अपेक्षा नाम कम से कम रे और सगुण है। इस राम नाम को भी तभी प्राप्त किया जा सकता है जब शरीर अर्थात् शरीर की अहता छूट जायराम रतन तब पाइये जो पहिलै तजहि सरीर। हम इस मान्यता मे विवाद नहीं करते कि कबीर का जन्म काशी मे हुआ था। हॉ, उनकी मृत्यु का स्थान मगहर सदेह पैदा करता है। मगहर शब्द मगध गृह का तद्भव रूप है। सनातनी शास्त्रों मे मगध निद्य है। यहाँ मरने पर अच्छी योनि नहीं मिलती है। स्वय कबीर और तुकवालों का तो यहॉ तक कहना है कि-भग्गह भरे सो गहह होइ। गोस्वामी तुलसीदास ने मगध और कर्मनाशा को पुण्यधाम काशी और पुण्य नदी गगा के

२८ कवीर समग्र विरोध मे पाप के स्थान पर रखा है। और भी उदाहरण है। अपनी साधना को शास्त्र और परपरा की अपेक्षा महवपर्ण माननेवाढे कवीर इसी सदर्भ मे मगधगृह (मगहर) की बात करते है। संभव है वे मगहर में पैदा भी हुए हो और अतकाढ वही जाकर मरे भी हो। जैसा कि पता चलता हैतोरे भरोसे मगहर बसिऔ मेरे तन की तपन जुच्चाई। पहले दरसन मगह् पायो पुनि कासी बसे आई। 'पहले दरसन' का है जन्म लेकर भगवान (तिरें) या मगहर का दर्शन। 'तोरे! तो स्पष्ट ही भगवान् की ओर सकेत है। मगहर मे “तनतपन” शात होती थी। क्योंकि परपरावद्ध शास्त्रसपन्न ब्राह्मण प्रमुख काशी मे स्वाभाविक सम्मान तो दूर विरोध ही रहता होगा। रोज कोई न कोई झझट। तो फिर काशी क्यो आये ? इसलिये कि काशी की मान्यता आवश्यक थी और अगर कबीर काशी मे ही पैदा हुए थे तो मगहर गये होगे। मगध में कोई स्थान बनाया होगा। तुलसीदास के समान ही कबीर भी काशी और मगहर की साथ चर्चा करते हैंहिरदे कठोर मरै वानारसि नरक न बांच्या जाई। हरि का दास मरै जो मगहरि तौ सगली सैंन तराई। मगध मे कोई नहीं तरता है। कितु कबीर स्वयं ही नही पूरी सेना, भीड़ की तारने की बात करते है। स्पष्ट है कि यह 52 है। स्थान नही। स्थान मगहर का कभी कोई महत्त्व नही था। यह जानने का कोई साधन नहीं है कि मगहर पहले से बसा था। यह नाम उसका पुराना है या कवीर के बाद पड़ा ? हो सकता है यह नाम कवीर ने ही रखा हो। अधिक सभावना यह ढगती है कि कवीर काशी मे पैदा हुए थे और मगहर मे मरे थेसकल जनम सिवपुरी गैँवाया। मरनकाल मगहर उठि घाया ॥ कवीर काशी को बुरा नहीं कहते। कितु काशी या किसी भी स्थान से उनकी साधना महत्त्वपूर्ण है। इसीलिये वे कहते हैजो कासी तन तजै कबीर रामहिं कौन निहोरा। राम के चरण (भक्ति) द्वारा मोक्ष का महत्त्व है। राम के चरणो का महत्त्व कबीर काशी को नही देना चाहते है- चरन बिरद कासी छूं न देहूं। कहे कबीर भल नरकरहिं जैहूं। कबीर या सत-साहित्य मे स्थान का महत्त्व नही है। इसी से काशी और मगहर प्रतीक भी है। सत गरीबदास कहते हैकाया कासी छोड़ि चलोगे जाय बसो मन मघरी। (मघरी -+ मगही) | कबीर साहब कहते हैकासी से घुनि उपज कासी जाई। कासा फूटी पंडिता धुनि कहाँ समाई। ध्वनि काशी से उपजती है। काशी जाती है। मतरुव यह कि काशी भी सगुण है। शरीर है। कबीर इस शरीर का वहिष्कार करते है। मगहर भी, वही है। इसीलिये वे पूछते है काशी (शरीर) फूट गयी। शरीर का नाश हो गया। अब ध्वनि कहाँ जायगी ? उत्तर सीधा थाबज हा की रा ध्वनि मगहर नही जायगी। मगहर ऊसरप और मगहर दोनो स्थान है। स्थान से ब्रह्म का सबध नही है। इसीलिये वे कहते है। 32000 क्या कासी क्या ऊसर भगहर राम इृदय बस मोरा। ३ मेंरे हृदय मे राम है। और जिसके हृदय मे राम का निवास है उसका हृदय स्वय पवित्र है

कबीर * जाति, स्थान २९ की है। उसे न काशी न मगहर की चिता करनी चाहिए। कबीर किसी स्थान को महत्त्व नही ते है। भक्तिशास्त्र ब्रह्म के पॉच रूप मानता है- है (अस्ति), चमकता है (भाति), सुदर (प्रिय), रूप और नाम। तीन तो केवल ब्रह्म मे है। शेष दो जगत रूप है |? पुरुषार्थ क्षेत्र है। दैव बीज है। कबीर इसी जाओ क्षेत्र मे राम का बीज डालकर निश्चित है। उन्हे और किसी चीज की आवश्यकता नही है। हि क्या कबीर को काशी छोड़ने का अफसोस भी था ? वे कहते हैतजलों कासी मति भइट मोरी।_' इस पक्ति का अर्थ स्पष्ट है। काशी छोड़ना ठीक नहीं हुआ। विशेषकर उनके लिये यह चेतावनी है जो कबीर साहब की नकल मे काशी छोड़ेगे। परिशिष्ट के एक पद में कहा है- ७ हरि का संत मरे हॉडवैत सगरी सैन तराई। यह हॉडवैत तो राजस्थान का कोई स्थान जान पड़ता है। यहाँ भी मगहर के समान सारी सेना को तराने की बात है। इसके पहले की पक्ति भी ध्यान देने योग्य हैमनहु कठोर मरे वानारस नरकन बॉच्या जाई। ॥ मनहु कठोर का अर्थ है भक्ति रहित। प्रभु प्रेमस हीन मन। अद्रवित मन। ऐसे कठोर मनवाला व्यक्ति बनारस मे भी मरे तो वह नरक जाने से बच नही सकता है। असल है भक्ति | भक्ति से भावित हृदय व्यक्ति हॉड्वैत मे मर कर भी सारी सेना को मुक्त कर सकता है। व्यह हॉडवत प्रततीक से जान पड़ते है। इनका उपयोग भक्ति के महत्त्व की स्थापना के | भक्त राम की कृपा से मगंध (कीकट) को भी पवित्र करता है। पवित्र स्थान वही है जहाँ भक्त रहते है (भागवत ७।१०। १९)। अिन-न«»«०»«, १ अउत्ति भाति प्रिय रूप नाम चेत्यर्थ पचकम् | आध्य त्रय ब्रह्म रूप जगद्रूप ततो द्वयम् ॥ ॥

भक्ति की उपलब्धि अहिंसा अहिसा भक्ति की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। भक्ति मे हिसा के लिये कोई स्थान नही है। वैष्णवो ने अहिसा को वैयक्तिक और सामूहिक धर्म बनाया। गॉधी तक आते-आते यह राष्ट्री धर्म हो गयी। अन्याय से लड़ने का अस्त्र बन गयी। जीवन पद्धति बन गयी। गॉधी की अहिसा जितनी वैयक्तिक है उतनी ही सामूहिक, राष्ट्री और विश्ववादी। यह विश्ववाद उस विश्ववाद से भिन्न है जो अपनी सामाजिक पद्धति को विश्व पर छादना चाहता है। यह सामाजिक सरचना का आधार भी है। अहिसा सामाजिक विकास की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। दुनिण मे सामाजिक विकास के दो आधार है-हिसक और अहिसक। दोनो की दो तकनीकी है। दो विज्ञान है। दो यन्त्र, दो उत्पादन साधन और दो राजव्यवस्थाएँ है। हिसक समाज मूलत भोगवादी है। अपने जीने के लिये दूसरों का जीवन नष्ट करता है। रक्षा का अर्थ है। अपनी रक्षा। रक्षा प्रधान भोगवादी जीवन की दृष्टि वैयक्तिक होती है। हम अकेले है। व्यक्ति है। जितना भोग सके हमारा है। भोग के अतिरिक्त ससार मे कुछ नही है। हम ससार मे भोग के लिए आए है। दूसरो को देखना हमारा काम नही है। दूसरे सभी हमारे भोग्य है। इसी बात को कामायनी के मनु कहते हैआकर्षण से भरा विश्व यह केवल भोग्य हमारा जीवन के दोनों कूलो में बहे वासना धारा। हमे अधिक से अधिक शक्ति अर्जित कर अधिक से अधिक भोग प्राप्त करना है। शक्ति का भोग। भोगशक्ति। इसमे कौन रहता है, कौन नष्ट होता है यह नहीं देखना चाहिए। यह देखनेवाला भोग का सुख नही प्राप्त कर सकता है। असली भोग तो निबधिता मे है। इसीलिये प्राय सभी सत्ताएँ निर्बाध होती है। भोग एक सैनिक अभियान है। इस अभियान के सामने पड़नेवाला कुचल जायगा। सब का परम कर्त्तव्य है कि वह इस अभ्यान को स्वीकार करे। मदद दे, वरना कुचल जाने के लिये गर्दन झुका दे। सहायक बने। इस अभियान मे शक्तिशाली जीता है। कमजोर मरता है। शक्तिशाली का भोग्य बन जाता है। हिसा असुर भाव है। इस रिद्धान्त ने दुनिया मे बड़े-बड़े साम्राज्य बनाए। युद्ध किये। गुढमो की फौज तैयार की। भीमाकार मारक हथियार और यन्त्र बनाये। राज्य द्वारा शासन शक्ति का विकास किया। वैयक्तिक और लघु समूहो द्वारा की गई छूटपाट का स्थान राजकी एवं सामूहिक लूटपाट ने ले लिये। शोषण की प्रणाली को राजकी तथा सामाजिक मान्यता मिली। रंग भेद, धर्म परिवर्त्तन, छआएछूत, सामतवाद, पूँजीवाद, साम्यवाद, विकसित एवं अविकसित समूहो का विकास हुआ। प्रकृति और पर्यावरण का दोहन किया गया। कमजोर और शातिप्रिय जातियो, वर्गों और समूहों को बदूको के द्वारा घेर कर नष्ट कर दिया गया। हिसा दुनिया मे शोषण, दोहन और उत्पीड़न के लिये प्रसिद्ध रही है। इस ससार को सुन्दर और समृद्ध बनाने के नाम पर। इसी ने ससार में (३०)

भक्ति की उपलब्धि अहिसा ३१ प्रलय और विस्फोटो का सृजन किया है। यह मनुष्य को बार-बार क्रूरता, जगल और पशुता की ओर ढकेलती है। हिसा के ठीक विपरीत अहिसा ईश्वर से जुड़ने का साधन है। ससार मे ईश्वर को बुलाने और बसाने का दिव्य पथ है। अहिसा द्वारा मनुष्य ईश्वर तक पहुँचता है। ईश्वर बन जाता है। मनुष्य मे ईश्वर का अवतरण होता है। अवतार हिसा विरोधी है। अहिसा के मदिर मै ही देवता का अवतार होता है। वह मदिर देह हो या गेह। गृहस्थ का हो या सन्यासी का। हिसा का आधार द्वैत है। अहिसा अद्वैत वाली है। भेदभाव हिसा को बढ़ाता है। अभेद अहिसा का साध्य और साधन दोनो है। ईश्वर का अवतार अधर्म, उपद्रव और शोषण के विरुद्ध होता है। अवतार लेकर ईश्वर हिसा तत्त्व का नाश करता है। यही काम भक्त भी करता है। भक्त जगत मे ईश्वर प्रतिनिधि है। भक्ति जोड़ती है।न केवल जीव बल्कि जड़ से भी। सत् (जड़) चित् (चेतन) एवं आनद के सम्मिलित रूप को ही सच्चिदानद कहते है। सच्चविदानद की पूर्णता तो सत् चित् आनद तीनो से होती है। तीनो मे एक कम से सच्चिदानद प्रभु अपूर्ण हो जायगा। शायद अस्तित्वरहित न हो जाय। इसलिये सत को सत् की भी उतनी ही चिता है जितनी चित् और आनद की। घटघटवासी के साथ ही घट भी महत्त्वपूर्ण है। घट फूटेगा। नष्ट होगा। इसलिये कोई भी इसे न तो फोड़ता है। न नष्ट करता है। बल्कि साधना सिद्धि के लिये इसका सुदर उपयोग करता है। प्रत्येक वैष्णव इन तीनो तत्त्वो का उपासक होता है। सत के हृदय मे कोई निजी दुख नहीं है। वह परदुख से द्रवित होता है। वैष्णव दृष्टि भोग और योग के बीच वाली है। राम के भरत राज्य को त्यागकर वैराग्य नही | अहिसा का परिचय देते है। यह राज्य उन्हे हिसा से मिला था। अन्याय से मिला था। वे उसके अधिकारी नही थे। अन्याय हिसा है। भरत ने इस हिसाधारित राज्य को छोड़ दिया। प्रायश्चित किया। स्वय कपड़ा बुनते। अपने भी पहनते, दूसरो को भी पहनाते। ग्रामोद्योग, छोटी या आत्मनिर्भर तकनीकी के मूल मे प्रकृति, पदार्थ और पुरुष के शोषण से बचने का सिद्धात है। अहिसक दृष्टि के अभाव मे शोषण समाप्त नही हो सकता | इस बात को वैष्णवों ने अच्छी तरह समझा था। प्रकृति और पदार्थ का शोषण करनेवाला समाज मनुष्य के प्रति सहिष्णु नहीं हो सकता। इसीलिये देवबलि भले ही समाप्त हो गयी हो कितु देश-समाज के स्तर पर बलि को निदनी नही माना जाता है। सैकड़ो वर्षों की देवबलि किसी भी एक देश का शोषण के'सामने अपनी लघुता मे लज्जित हो जाती है। अहिसा देने की प्रवृत्ति है। हिसा लेने की। इसलिये जिन समाजो ने अहिसा नही अपनायी उनका समाज शोषण पर खड़ा है। समानता की बाते केवल दिखावटी हो गयी। हिसा और समानता का बैर है। समानता मे कैसी हिसा ? हिसा और समानता दोनो साथ नहीं चल सकते। सभी हथियार भक्षक होते है। रक्षक हथियारों की बात कल्पना मात्र है। रक्षक हथियार तो केवल अहिसा है। हथियार मुक्त अहिसक समाज ही आत्मिक विकास की बाते सोच सकता है। कभी हिसा का जन्म पशु-

पक्षियो को मारकर उदर भरण के लिये हुआ था। आगे यही हिसा देशो और समाजो को मारकर घर भरने का साधन बन गयी। वर्ग, वर्ण, छुआछूत, रग-भेद वलात् धर्म परिवर्त्तन आदि का समाज विकसित हुआ। दूसरो के श्रम पर जीने की हिसा। राम का महान् त्याग और कृष्ण का स्त्री-पुरुष प्रेम अहिसा के महान् प्रयोग है। सीता त्याग के समय राम अहिसा को चरम पर ले जाते है। मेरा या हमारा का त्याग अहिसा है। सीता राम की थी। धोबी दूर का था। धोबी की उपेक्षा हिसा होती। सीता त्याग से ही इस हिसा का निवारण हो सकता था। धोबी का कथन समाज मे उपस्थित हिसा की सूचना मात्र है। रावण की बदिनी सीता को गले लगाकर राम ने अहिसा का परिचय दिया था। धोबी ने सीता

३२ कबीर समग्र की निदाकर हिसा व्यक्त की। राम ने प्रिय पली को निष्कासित कर पुन अहिसा की स्थापना की। अहिसक का थैर्य महान् होता है। हिसा में अधैर्य होता है। धोवी ने इसी अधैर्य का परिचय दिया था। अस्तेय, अस्वाद, अपरिग्रह, आर्जव, मुदिता और मैत्री अहिसा के आधार है। दभ, द्वेष, निर्वाध भोग, लोभ, मोह, क्रोध, इद्रिय छोलुपता आदि हिसा के साथी है। हिसक सब कुछ अपने लिये करता है। अहिसक का कर्म भगवान् के लिये होता है। सम्पूर्ण मानव जाति के लिए होता है। चराचर सृष्टि के लिए होता है। अहिसा एक श्रेष्ठ मानवी गुण है। यह मनुष्य को पशु से ऊपर उठाती है। हिसा मे लिप्त राजा की प्रजा दरिद्र और दुखी होती है। श्रीमद्भागवत् मे ठीक कहा हैजो राजा हिसापरायण, दु शील और अजितेंद्रिय होता है, उसे राजा मानकर सेवा करनेवाली प्रजा दरिद्र होकर दुख पर दुख भोगती है और उसके सामने सकट पर सकट आते रहते है।* पश्चिमी सभ्यता अपनी हिसा वृत्ति से आज संकट मे फैंस गयी है। उसके राज्यो न्रे रक्षा के नाम पर बड़े-बड़े हथियार बनाए है। स्वनिर्मित हथियार अपने लिये ही भयावह हो गए है। भोग का रथ रुक गया है। एक का भोग दूसरे के भोग से टकरा रहा है। इस हक ऐसी आग पैदा हो रही है जिसमे सब कुछ नष्ट होने को है। असीमित भोग, शोषण, के दरवाजे पर अनन्त प्रलय का दस्तक है। अहिसक चित्तवृत्तियों के अभाव मे शस्त्र व्यापार नही "क सकते। हिसा भावित चित्त का चितन उल्टा है। हिसा को समाप्त करने के लिये मन मदिर मे धर्म स्थापना न कर धर्म निरपेक्ष बन रहा है। धर्मनिरपेक्ष समाज से अहिसा की स्थापना नहीं क्ले सकती। आज की हिसा का बड़ा कारण धर्मनिरपेक्षता के मूल्य है। जब पशु एव मानव का 'दिक धर्म ही निरपेक्ष हो गया तो मानव का पशु बन जाना स्वाभाविक है। सतो की अहिसा का आधार योग मार्ग भी है। यम योग का प्रथम आधार है। इस यम मे आहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह महत्त्वपूर्ण है। सत इन पॉचो पर विशेष बल देते ' है। भक्ति चाहे किसी की कीजिए उसमे समर्पण महत्त्वपूर्ण है। दास एव सेव्य सेवक भाव। ऐसे में हिसा के लिये कोई स्थान नही है। क अ+ि--+++--त्तहु 5 3 हिसा विहार नृपति दु शीड्मजितेच्धियम् | “7“« भ्रजाभजन्त्प सीदन्ति दरिद्रा नित्य दुखिता |-भागवत १०८९॥ २५।

जाति व्यवस्था और भक्ति भक्ति का निर्गुन-निराकार मार्ग जाति-पॉति मे विश्वास नहीं करता। यह सर्वमान्य है। दिक्कत सगुन मार्ग के लिये है। सगुन और निर्गुन मार्ग के खोत प्राय एक है। प्रभाव और झुकाव का भेद हो सकता है। नारद भक्ति सूत्र, शाडिल्य भक्ति सूत्र आदि भक्तिके मूल ग्रंथ है। महाभारत के नारायणी उपाख्यान में भक्ति है। वेदान्त दर्शनों के द्वारा भक्ति के रूप की स्थापना हुई। गीता और भागवत की स्थापना भी भक्तिवाली है। भागवत का घोषित मत है भक्ति की स्थापना। क्योकि इस समय भक्ति का हाल बहुत बुरा था। अन्य पुराणो मे भी भक्ति स्थापित है। परम्परा की दृष्टि से भी भक्ति अनादि और अनन्त है। भक्ति धारा मे पुस्तकी ज्ञान गीण है। प्राय. हानिकर। यहाँ पुस्तक, तीर्थ, व्रत, उपवास, यज्ञ, दान, कथ्य साधना आदि -सबका निषेध है। अभिमान छोड़कर, सभी धर्मो को त्यागकर भगवान् की शरण मै जाओ। अपने को अकर्ता और निमित्त मात्र समझो। जो कुछ करो ईश्वर को समर्पित करके करो। खाना पीना, उठना-बैठना, सोना जागना, चलना फिरना सब ईश्वर के लिये करो। ससार मे रहो, किन्तु ससार से जुड़ो मत्त। जुड़ो ईश्वर से। ससार के और सभी धर्मों (कर्तव्यों) की आसक्ति छोड़ दो। आसक्ति बुरी है। सभी धर्मों को ईश्वर को समर्पित कर दो। ईश्वर ही तुम्हारे भोजन पानी (योगक्षेम) की व्यवस्था करेगा। साहब है न। सेवक रखेगा तो उसके भोजनादि की व्यवस्था तो करेगा ही। हों वहाँ मजदूरी बढ़ाने के लिये सगठन नहीं बन सकता। ' हड़ताल नहीं हो सकती। मॉगो की सूची नहीं दी जा सकती। उलटे मॉँगी को कम से कम करना पड़ता है। अपने को पूर्णत उसकी इच्छा पर छोड़ना होता है। जो दे दे उसी पर सतुद्ट रहना है। न दे शिकायत नही। यह उसकी इच्छा है किसे दे, कितना दे, कब दे । ? जाति, कुछ,“गोत्र, वर्ग, रण आदि के अहकार है। इनकी सीमाओ मे बन्द व्यक्ति ईश्वर को नही पा सकता। क्योकि भगवान् की शर्त है सब कुछ छोड़कर आओ उसने गोपियो को घर से निकाह लिया। उनका सब कुछ छूट गया। पति, पुत्र, माता-पिता, धन-दौलत, वंश, गोत्र, जाति आदि। वे भगवान् कृष्ण के पास चढी आयी। भगवान् को फिर भी सतोष न हुआ। उन्होंने उनके शरीर के वख्र भी उतरवा लिये। वे बिलकुल प्राकृत रूप में आ गई। सर्वहारा + बने गई। यह प्राकृत रूप, सर्वहारा रूप कृष्ण को प्रिय हुआ। जाति प्राकृत नही, कृत्रिम और मानवी है। यही कारण है भक्ति मे सर्वत्र और समान रूप से जाति का विरोध है। तोडरडिपोडी आलवार कहते है- 'प्रभु के सामाज्य मे पद प्राप्त करने की कामना करनेवाले तुम अपनी जाति के गर्व को त्याग दो। अपने ज्ञान की शेखी बघारना बन्द कर दो। खडनी जाति गर्व के - कारण तुम क्यो उस जनसमूह से दूर जा बैठे हो ? अगर वे अपने करो पर पड़ी मनुष्य निर्मित जाति की श्रृंखह्ताओ को तोड़कर आये तो तुम्हे क्या आपत्ति है ? क्या इतना पर्याप्त नही है कि वे भगवान के सेवक है ? उनकी पूजा करो, उनकी सेवा करो। क्योकि किसको पता है कि उसके मध्य भगवानवास नही करते हो ?? स्पष्ट है कि जाति गर्व के कारण प्रभु के सामाज्य

मे स्थान नही मिल्ता। कोई भी राजा अहकारी को पसन्द नहीं करता। गर्व के कारण सेवा नहीं हो सकती। अहकारी का मन सदा अपने मे हुगा रहता है। वह भगवत् उन्मुख नहीं होगा। |' १ आउवार भक्तो का तमिछ प्रवन्धमू, पृ० ५००। (३३)

३४ कबीर समग्र जाति भाव के कारण मनुष्य व्यापक समाज से नहीं जुड़ पाता। भक्ति का छक्ष्य व्यापक समाज से जुड़ना है। व्यापक समाज ही उसका ईश्वर है। उसका प्रभु सबमे है। सर्वत्र है। विश्यरूप है। भक्त कहते है ईश्वर हममे, तुममे ही नहीं, खड़ग खम्म में भी है। अर्जुन परिवार मोड़ के कारण विराट् रूप को नहीं देख रहा था। कोई भी व्यक्ति जाति मोह में विसद् को नहीं देप पाता। अर्जुन में परिवार मोह होते ही जाति मोह हो गया। कुठ, परिवार, जाति आदि की प्रतिश्च साथ-साथ जुड़ी है। स्त्री की सामाजिक स्थिति भी इसी से जुड़ी है। महाभारत युद्ध से अर्जुन को वर्णसकरता का भय सता रहा हैदोषैरेतैः कुलप्रानां वर्णसंकर कारकीः | उत्सापन्ते जाति धर्माः कुल प्रमश्चि शाशकताः | *गीता १/४३ (कुल घातको के इन वर्णसंकर कारक दोषों से पुरातन जातिधर्म और कुलधर्म उनसनन होते है।) ह कृष्ण ने अर्जुन को जातिधर्म, कुल्धर्म, परिवारधर्म सबको छोड़कर भक्तिधर्म में आने को कहा है। भक्ति द्वारा मनुष्य जाति दोष से मुक्त हो जाता है |? मनुष्य का उद्देश्य भक्ति है, ने कि जाति। भक्ति व्यापक समाज का हित है। विश्व मानवता का हित है। अर्जुन मोह एक परिवार के लिये है। अगर महाभारत युद्ध मे मामा, साला सम्बन्धी न होते नो अर्जुन की दृष्टि मे वह युद्ध ठीक होता। भक्ति इस स्वार्थ दृष्टि का निषेध करती है। क्योकि भक्ति स्वार्स नहीं, परमार्थ है। इसलिये जाति नही, भक्ति चाहिये। सेवकों की एक जाति है। जो स्वयं दास है उनमे कैसा भेदभाव ? फिर भगवान् की सेवा तो एक उपलब्धि है। भगवान तो अपने सेवक मे वास करता है। भगवान सेवक है। सेवक भगवान है। सेवक से भेद भगवान से भेद है। भक्त अपने को अनागारिक समझता है। तोडरडिपोडी आल्वार कहते *-मेता अपना कोई घर नही। अपनी कोई जमीन नही. ' ।१ भा ऐसा अनागारिक जाति मे क्यों विश्वास करेगा इस अनागरिक सर्वहारा को जाति क्या देगी? इस सर्वहारा का अपना कुछ न होकर भी सब कुछ उसका है। क्योंकि वह विराट से जुड़ा है। भगवान का सब कुछ उसका है। वह भगवत् सम्पत्ति का अमानतदार है। भक्ति मे जाति की अस्वीकृति का कारण कुछ लोगी की दृष्टि मे बौद्ध जेन प्रभाव है। यह आशिक सत्य हो सकता है। किन्तु कोई पूछे बुद्ध या महावीर हरिजन तो थे नहीं। उन्होने जाति व्यवस्था का क्यो विरोध किया ? उन्हे तो शाक्य सिह एवं ज्ञातृक का गर्द भी था। बौद्ध धर्म मे वर्ण व्यवस्था को स्वीकृति नही है। किन्तु जाति का यर्व बार-बार आया है। बुद्ध का जन्म चाडाल कुल मे न हुआ, न होता है, न होगा। वेद मे भी जाति व्यवस्था पूरी नहीं हुई थी। बाद में उसे कसने का प्रयल हुआ। बुद्ध ने अपना दल बढ़ाने के लिये इसमे दील दी। मानवतावादी पक्ष भी था। आध्यात्तिक चेतना भी थी[भक्ति उसी वैदिकधारा से जुड़ी है जिसमे जाति मजबूत नही हुई थी। यह इसका ऐतिहासिक कारण है। किन्तु जाति की अस्वीकृति का असल कारण, आध्यात्मिक और मानवतावादी हे। जो वात बौद्ध और जैन के साथ थी वही भक्ति मे भी थी। महाभारत मे भक्त व्याध ने द्राह्मण को उपदेश दिया। यह प्रत्यक्ष धर्म का उपदेश

धा। क्योंकि भक्ति प्रत्यक्ष धर्म है। महाभारत का यह प्रसंग भक्ति मे जाति के अमहत्त्व का प्राचीन उल्हेख है। नारद भक्ति सूत्र भक्ति का प्रसिद्ध ग्रथ है। भक्ति के क्षेत्र मे नारद का महत्त्य सर्वोपरि है। नारद ही भक्ति-क्षेत्र श्वेत द्वीप का वर्णन करते है। कवीर भी नारदी भक्ति में मग्न हैं। कनीनलन १ भागवत ११॥१४॥२१। २ जआाठवार भक्तो का तमिल प्रबन्धमू, पृ० २४५॥

जाति व्यवस्था और भक्ति ३५ (भगति नारदी मगन कबीरा)। नारद भक्ति सूत्र मे जाति ही नही विद्या, रूप, कुल, धन और क्रियादि का भेद भी निषिद्ध है। भक्ति मे हर प्रकार का भेदभाव वर्जित है। नास्ति तैषु जाति विद्या रूप कुल धन क्रियादिभेद ७२ | गोस्वामी तुलसीदास इसी से मिलती बाते कहते है'कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मान एक भगति कर नाता। जाति पौंति कुल धर्म बड़ाई। घन बल परिजन गुन चतुराई। भगतिहीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ।" -मानस वैष्णव शास्त्रों मे ६४ अपराध माने गये है। उनमे भक्तो मे जाति भेद रखना भी एक अपराध है| रामचरित मानस मे तुलसीदास अजीब सकट में फेंस गए। भक्ति के क्षेत्र मे जाति व्यवस्था नही मानते। किन्तु समाज तो जाति मानता है। वहाँ ऊँच-नीच का भेद बना है। भक्तो मे ऊँचनीच का भेद करना अपराध है। इसी मनस्थिति मे भरत और निषाद राज की भेट होती है। निषादराज सावधान है। उसने भरत को पहले अपनी जाति बतायी। नाम बताया। अन्त में धरती पर माथा टेककर प्रणाम किया। भरत राजा थे। जाति से बड़े थे। किन्तु भरत को वशिष्ठ ने पहले से समझा दिया-'भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा ।' समझाने का कारण भी सपष्ट है। वशिष्ठ ने स्वय गुह को आशीर्वाद दिया धा। फल यह हुआ कि भरत रथ से उतर गए। भक्ति क्षेत्र मे कौन बड़ा होता है ? इतना ही नही। प्रेम से उमगते हुए गुह की ओर चलेराम सखा सुनिस्यन्दन त्यागा। चले उत्तरि उमगत अनुरागा। इस गुह ने दक्त प्रक्रिया की। जाति बतायी। नाम बताया) भूमि पर झुककर प्रणाम किया। किन्तु भक्त तो जाति से ऊपर होता है। भरत ने गुह को लक्ष्मण ही समझा। अपना भाई। राम सेवक। राम सेवक चाहे जिस कुल-गोत्र का हो। किसी भी सामाजिक स्थिति का हो। भाई है। यह अन्तरजाती और अन्तर्रष्टी भाईचारे का धर्म है। भरत गुह से लिपट गए। गुह को हृदय से लगा लिया। वहाँ उपस्थित लोग सराहना करने ढगे। देवता फूल बरसाने लगे। क्यो सराहना होने लगी ? क्यो फूछ बरसने छंगे ? भरत ने नया काम किया था। अति उदार और मानववादी कार्य किया था। किन्तु तुलसीदास जानते है- भक्ति के इस आदर्श को अभी सामाजिक मान्यता नही मिली है। लोग इसके लिये तैयार नही है। ऐसा होता तो गुह को उक्त प्रक्रिय अपनाने की जरूरत नही पड़ती। तुलसीदास भरत-गुह मिलन के सैद्धातिक पक्ष पर प्रकाश डालते है। भक्ति मे जाति-पॉति नही है। ऊँच-नीच का भेद नही है। छुआछूत नहीं है। राम भक्ति से कथित नीच जातियाँ भुवन विख्यात हो जाती हैस्वपध सबर खस जमन जड़ पावर कोल किरात। राम कहते पावन परम होत शुबन विख्यात। भरत के इस व्यवहार से गृह अलन्त प्रभावित हुआ। तुलसीदास गुह को विदेह कहते है। विदेह जनक है-'भा निषाद तेहि समय बिदेहू |" तुलसीदास ने लम्बी भूमिका बॉधी। इसलिये कि भक्ति की इस मान्यता पर वर्णव्यवस्थावादी समाज उँगली न उठाए। मान्य करे। यह मान्यता सर्वजन स्वीकृत हो। किन्तु समाज कब मानता है ? उसकी तो अपनी टेक होती है। विनय पत्रिका की टीका मे छाछा भगवानदीन ठीक ही लिखते है-

'वैष्णव धर्म मे सम्मिलित हो जाने पर अधिकाश लोग तुलसीदास जी पर आश्षेप करने लगे विशेषतत उनके जातिपॉति के बंधन तोड़ने पर !" विनय० पृ०७७। इसीलिये तुलसीदास को लिखना पड़ा-'मेरे व्याह न बरेखी जाति-पॉति न चहत हौ |" या 'धूत कहौ अवधूत कही रजपूत कहौ जुल्हा कही कोऊ ।' ये पक्तियाँ प्रमाण है कि जीवदया, सर्वभूतहित, विश्व विग्रह ईश्वर को माननेवाले वैष्णव किस

३६ कबीर समग्र सकट में थे। यह हाल तुलसीदास का है जो जगह-जगह वर्णव्यवस्था को स्वीकार कर चलते | क्योकि वर्ण व्यवस्था यथार्थ है। वर्णी की समानता आदर्श है। मध्ययुगीन भारत मे भक्ति आन्दोलन ने जो निम्न जातियो और गरीबों को समेटने वाला अखिल भारती आन्दोलन था, इस बात पर जोर देकर कि धर्म मे कर्मकाड या जाति की बजाय ईश्वर-भक्ति ही सबसे महत्त्वपूर्णतत्त्व है, पूर्ववर्ती शुद्धतवाद को अधिक गहरा और व्यापक बना दिया। भक्त सनन्‍तो ने सभी धर्मों की मूलभूत समानता और ईश्वर की एकता का उपदेश दिया और यह माना कि मनुष्य का गौरव उसके जन्म पर नही, कर्म पर निर्भर होता है। उन्होंने धर्म मे अधिक कर्मकाड और औपचारिकता और पुरोहितो की प्रधानता के विरुद्ध आवाज उठाई, और हर व्यक्ति की मुक्ति के उपाय के रूप मे सहज भक्ति और आस्था पर जोर दिया। भक्ति आन्दोलन के प्रसाद से कथित नीच जातियो के कुछ व्यक्ति भी, जिनमे हरिजन भी हैं, धार्मिक नेता बन सके। भक्ति आन्दोलन ने स्त्री-पुरुष के भेद को भी अस्वीकार किया और आन्दाल, अक्कमहादेवी और मीरा जैसी भक्त महिलाएँ सनन्‍तो की कोटि मे गिनी जाने ठगी। निर्विवाद रूप से भक्ति आन्दोलन का वास्तविक प्रभाव यह है कि उसने समानता प्राप्ति के लिये एक प्रहार किया और उच्च जातियो को उस व्यापक आक्रमण के लिये तैयार कर दिया जो बाद मे अग्रेजी राज मे हुआ। भक्ति के विभिन्‍न पथ एक और दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। उन्होने सस्कृत हिन्दू धर्म का सार विशाल और अपढ़ जनता तक पहुँचाने के लिये सस्कृत के बजाय प्रादेशिक भाषाओं का उपयोग किया। अन्तत' प्रादेशिक भाषाओ के साहित्य से महान्‌ परम्परा की परिपुष्‍ि हुई। जहाँ भी स्थानी धार्मिक आन्दोलन प्रारम्म तो सस्कृत की प्रेरणा से हुआ पर उनके सुदृढ़ होने का भाषागत वाहन प्रादेशिक भाषाएँ थी, वही सस्कृतीकरण का दूसरा प्रयास हुआ जिसने सस्कृत मे फिर से रचनाएँ उत्पन्न की. प्रारम्भ में जनता को उसकी अपनी भाषाओं मे दी गई सामग्री को सस्कृत मे आत्मसात करने से सस्कृत के भक्ति साहित्व में भी वृद्धि हुई। उदाहरण के लिये तमिल शैवमत मे मदुरै हालास्य महाल्य की कया और तिरसठ शैव सन्तो के चरित सस्कृत मे लिखे गए और तमिल वैष्णव मत मे वेदान्तदेशिक ने वैष्णव आलवारो के तमिल भजनो के साराश सस्कृत में रचे !' ५३ (वी० राघवन "विश्व परिवार का सवन भारत सन्त गायको का सदेश' भारतीय तथा विदेशी समीक्षा पत्रिका मे जनवरी, १,१९६५ मे दिया गया भाषण)। भक्ति के विकास की दृष्टि से द्रविड़ देश का महत्त्वपूर्ण स्थान है। द्रविड़ देश मे नायनमार और आहठवार दो प्रकार के भक्त हो गये हैं। नायनमार शैव थे। आलवार वेष्णव। इन भक्तो मे बहुत से भक्त शूद्र, हरिजन थे। प्रसिद्ध भक्तिन आडाल स्त्री थी। प्रो० एम० एन० श्रीनिवास का कहना है-"रामानुज ने श्री वैष्णव सम्प्रदाय की स्थापना की और वह जैनियो, शैवो तथा नीची जाति के लोगो मे अनेक को अपने पक्ष मे करने मे सफल हुए। ब्राह्मण वासव द्वारा स्थापित लिगायत सम्प्रदाय कन्नड़

तथा तेलगू भाषी प्रदेशों में फैला। इसने हिन्दुओ विशेषकर अब्राह्मणो को केवल शिव की ही पूजा करने मे दीक्षित किया। पर "आधुनिक भारत मे जातिवादा पृ० १६६ उत्तर में नाम-गोत्र-कुलहीन कबीर शायद शूद्र या जुलाहा थे। रेदास चमार। रहीम, ससखान मुसलमान। तुल्सा, पार्वती, रजो, मीरा आदि स्त्री। विष्णुदास छीपी। सूत्तार कारीगर। नरहद्धास गोडिया, भाव जी पटेल, कृष्णदास शूद्र थे। कनड़ भक्त कनकदास अत्यज थे। मुनिवाहन (योगेवाह) तिरुप्पन, नम्माठ्वार, बल्डुवार आदि भक्त भी हरिजन थे। तुकाराम शूद। -अर्खनामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक छाल चमार थे। नानक अपने को हिन्दू मुसलमान और योगी

जाति व्यवस्था और भक्ति ३७ सबसे अलग मानते है। अनुभव मडप मे बेडर दासिमय्या शिकारी, माचय्या धोबी के अतिरिक्त योकरी बुननेवाले, नाई, केवट, ढोलिया, चुगी उगाहनेवाले, किसान, डोम, चाडाढ, तेली, दर्जी आदि थे। दक्षिण के शूद्र भक्तों की रचनाओ का आदर वेद के समान होता है। उत्तर के कबीर ने निर्गुन आत्मशाति और आत्ममुक्ति के लिये गाए जाते है। शूद्र भक्तों के बारे में जो कहानियों प्रचलित है उनसे समाज मे उनके स्थान का पता लगता है। रामायण के वनेचर हनुमान पूज्य हो गए। राम ने भीलनी के जूठे बैर खाए। अवधूत वेश मे घूमनेवाले भक्त विदुर दासीपुत्र और शूद्र थे। नारद भी पूर्व जन्म के दासी पुत्र थे। दक्षिण के प्रसिद्ध भक्त तिरुमलिसई कुम्मकोणम् नगर में स्थित विष्णु मदिर मे दर्शनार्थ गये थे। वहाँ कुछ ब्राह्मण वेदपाठ कर रहे थे। तिरुमलिसई को देखकर उन्हे नीच जातिवाला वेद वाक्य के श्रवण का अनधिकारी समझकर ब्राह्मणो ने वेदपाठ बन्द कर दिया। तिरुमलिसई उनके अभिप्राय को समझकर वहाँ से उठकर अन्यत्र चले गये। जब ब्राह्मणो ने पुन वेदपाठ करना चाहा, तब किसी को भी याद नही आया कि उन्होने कहाँ वेद पाठ बन्द किया था ।१ तिरुमलिसई ने उन्हें वेद का वह वाक्य बताया जहाँ से उन्हे आरम्भ करना था। एक दूसरा प्रसंग यो है--श्री रगनाथ के मदिर का लोक सारग नामक एक ब्राह्मण पुजारी अपने साथियो के साथ श्री रगनाथ की मूर्ति के अभिषेक के लिये घड़े मे कावेरी का जल लेकर जा रहा था। कावेरी तट के मदिर की ओर आते समय उन लोगो ने देखा कि तिरुपपाण आलवार मार्ग के समीप भगवद् भजन मे तल्लीन होकर वीणा बजाते हुये तन्मयावस्था मे बैठे है। यह सोचकर कि तिरुष्पाण निम्न जाति का है और इसीलिये अपवित्र है, उन लोगो ने तिरुप्पाण को मार्ग से हट जाने के लिये कहा। चूँकि आलवार भगवद् भजन में समाधिस्थ थे, इसलिये वे उन लोगो की आवाज न सुन सके।*" लोक सारग को जब क्रोध आया और अहक्रारवश उसने एक पत्थर आलवार पर फेक दिया रंगनाथ ने स्वप्न में प्रगण होकर आदेश दिया। तुम्हारे फेके हुए पत्थर से मेरे सिर पर चोट लगी है _|" तिरुप्पाण मेरे श्रेष्ठ भक्त, मित्र और दास है। अतः तुम अपने प्रायश्चित के रूप मे उन्हे अपने कन्धो पर बिठाकर लाओ और मेरे सम्मुख उपस्थित करो।' दूसरे दिन लोक सारंग ने आलवार से क्षमा मॉगी और उन्हें अपने कन्धो पर बिठाया*। ये जनश्रुतियाँ समाज मे पिछड़ी जाति के भक्तो के महत्त्व पर प्रकाश डालती हैऔर बताती हैं कि भक्ति के क्षेत्र मे जाति व्यवस्था और छुआछूत को स्थान नही है। भक्ति के विकास में सबसे अधिक महत्त्व आभीरो का है। कृष्ण को बार-बार अहीर कहा गया है। वृन्दावन के कृष्ण ही भक्ति के उपास्य है। वृन्दावन के कृष्ण आभीर कुल के है। आभीर शूद्र थे। आभीरो का दर्जा समाज मे ऊँचा न था। स्वय गोपियाँ भी आभीरो पर व्यग्य करती है। कृष्ण भक्ति का अर्थ है पशु चरानेवाले की भक्ति। राम राज्य से निर्वासित हैं। पली छीन ली गई है। वनवासी के बीच वनवासी से रहते है। भक्ति में नगर और राजधानियो का जीवन नही है। गाँव का मुक्त

वातावरण और सादगी है। शिव भक्तों ने तो स्पष्ट ही शिव के औधड़ या बौड़म रूप की भक्ति की। जहाँ कुछ तरतीब नहीं है। सब बेढंगा। शिव के गण सामान्य कोटि के अपूर्ण जीव हैं। प्राय त्रुटिपूर्ण। जंगली। शवर उनके सहयोगी हैं। शबर से शावर मंत्र निकला। शाबर मंत्र शिव को खुश करने का अच्छा साधन है। शिव के वेश से हम निकाल दी जाय तो शिव बिल्कुल अर्धसभ्य हो जायेँ। शिव प्राय. असुरो के देवता टच कफ रैष्णव भक्ति आन्दोलन, पृ० ११८-१९ | २०. यही, पृ० १३९, १४० |

३८ कवीर समग्र कवीर हिन्दू मुसलमान दोनो धर्म की च्रुटियाँ बताते है। इसीलिये कि उनकी जाति बदढठ गई है। भक्त की अपनी जाति है। स्वराजी कार्यकर्ता अपना गाँव काँग्रेस, पिता गॉधी और जाति भारती बताता था। यह भक्ति पद्धति है। देश भक्ति ने भी इसी पद्धति को स्वीकार किया। आखिर देश भक्ति भी तो भक्ति ही है। हरिराम व्यास ने अपनी जाति को अनन्य रसिक कहा है। राधा कुलदेवी है। बरसाना घर। ब्रज के लोग पक्ति मे वैठनेवाले सम्बन्धी, विरादरी। गोपाल गोत्र हैरिसक अनन्य हमारी जाति। कुल देवी राधा, बरसानो खेरी ब्रजवासिन सों पाति। गोत गोपाल जनेऊ माला, लिखा, सिखंडि परिमंदिर माल। अपनी जाति न बताने का कारण भक्ति के क्षेत्र मे समता का भाव है। भक्त समाज का ऐसा प्राणी है जो प्रभु कृपा के लिये समाज की सभी मयदाये अस्वीकार करता है। वह प्रभु प्रेम के वन्धन को छोड़कर किसी वन्धन मे नही वँधना चाहता। उसकी दृष्टि सार्वजनीन और सार्वभीमिक है। अचित्य, अजन्मा, विराट् से सम्बन्ध के कारण उसके घर के घेरे दूट गये हैं। इसीलिये वह कहता है-नहि हिंदू नहि तुरक हम नहीं जैनी अंगरेज। सुमन संवारत रहत नित कुंज बिहारी सेज॥ -भगवत रसिक। ब्रज माधुरी सार। भगवत रसिक अजात है। क्योकि जाति जाति करने से सब कुछ चला जाता हैजात जात मे जात सब सदबही जाति कुजाति। रसिक अनन्य अजात को कहो कौन सी जाति॥ -ब्रजमाधुरी सार | * भक्त की जाति भगवान की जाति है। जो भगवान की जाति का है उसे अब किसी जाति में जाने की जरूरत नही। केवढ जाति जाति चिल्लाने वाले तो कुजाति हैं। कुजाति भ्रष्टाचार है। सूरदास ने स्पष्ट कहा है-जाति पाति कोउ पूछत नाही श्रीपति के दरबार। रामभक्तवत्सल है। उनके यहाँ न जाति है, न धनी गरीब का भेदराम भक्त वत्सल निज बानो, जाति गोत कुल नाम गनत नहि रंक होय के रानो। वे पूछते है--'ब्रह्मदिशिव की क्या जाति थी ? मै ज्ञानी हूँ बताइये। जहाँ जाति की महत्ता है वहाँ प्रभु नही है-ब्रह्मादिक शिव कौन जाति प्रभु हो अजान नहि जाने। भहता जहाँ तहाँ प्रभु नाहीं, सो दैता क्यो मानो ॥ राम कथा के प्रथम गायक वाल्मीकि व्याध थे। इन्हे श्वपच भी कहा जाता है। तुलसीदास ने भक्ति के द्वारा सामाजिक जीवन मे पिछड़ो की प्रगति और उच्च स्थान की पवित्रता की ओर सकेत करते हुए कहा है-स्वपद सबर खस जमन जड़ पावर कोल किरात। रामु कहत पावन परम होत भुदन विख्यात्त। “मानस २। १९४

जाति व्यवस्था और भक्ति ३९. भक्ति द्वारा सामाजिक उन्नति की इस स्थिति को देखकर तुलसी दास ने कहा---'मेरी जाति पाँति, न चहो काहू की जाति पाँति। क्योकि तुलसी की जाति पॉति तो भगवान की जाति पॉति है-'जाति पाँति सब भाँति लागि, रामहि हमारि पति" । राष्ट्री आन्दोलन, बालिक मताधिकार ने पिछड़ो की उन्नति का दरवाजा खोल दिया। कितने ही पिछड़े ऊँचे पदो पर चले गये। भक्ति भी यही करती है। गीता मे कहा है--हे अर्जुन ! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पाप योनिवाले जो कोई भी हो, मेरी शरण मे आकर परम गति को प्राप्त होते है ।-गी० ९॥३२॥ श्रीमद्भागवत्त २,४, १८ में इसी भाव का प्रतिपादन है किरात हणान पुलिन्द पुल्कसा, आभीर कंका यबना खसादयः | येषन्ये थ्र पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णबेनमः | किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कक, यवन, खंस आदि जिस भगवान् विष्णु का आश्रय पाकर शुद्ध हो जाते है, उसे प्रणाम है। कूर्म पुराण अध्याय १४ के श्लोक सिद्ध करते है कि वेद बाह्य समझे जानेवाले व्यक्तियो की रक्षा के लिये केशव ने शिव से प्रेरित हौकर पचरात्रादि तत्रो का निर्माण किया था। भक्तो ने अपना उपास्य इद्र नही उपेद्र को बनाया। इद्र के छोटे भाई को। विष्णु उपेद्र है। इन्द्र से छोटे। वरुण से छोटे। इद्र देवों के राजा है। विष्णु गायो और गोपो के। गोविद कृष्ण को अपनी स्थापना के लिये इद्र से लड़ना पड़ा। इद्र को परास्त कर विष्णु पूजित हुए। तभी से भक्ति की दुनिया मे राजेन्द्र नही गाय चरानेवाले गोविन्द का महत्त्व बढ़ा। भक्ति और जाति विरोध का यह सम्बन्ध टिकाऊ न हो सका। कारण है-सामाजिक व्यवस्था' और जाति व्यवस्था का धार्मिक रूप। हमारा आज का राष्ट्री आन्दोलन नये सामाजिक संगठन के अभाव मे जाति तोड़ने मे विफल रहा। छोभ, चुनाव और अरक्षा के भाव ने जाति को नये रूप मे मजबूत किया है। शायद यही हाल भक्ति आन्दोलन का रहा। भक्तो ने जाति , छोड़ दी। क़िन्तु समाज ने जाति बनाए रखी। भक्ति के साथ ही सामाजिक सगठन का कार्य नं हो सका। भाव, विचार और साधन पद्धति है। यह आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग है। भौतिक जीवन को पवित्र और आनदित करने का साधन है। जाति व्यवस्था का गठन बड़े से बड़े झोको को झेलकर रह जाता है। भक्ति ने उसे धक्का दिया। किन्तु वह उसके सम्पूर्ण बदलाव को मूर्त न कर सकी। राष्ट्री आन्दोलन ने भी शायद यही किया। तुलसी, कबीर, नानक, गाधी लोहिया सब राम भक्त थे। सब जाति को व्यर्थ समझते थे। किन्तु यह टूट न सकी।

पुस्तकी ज्ञान का विरोध जो लोग ज्ञान का मात्र पुस्तकी आधार मानते है उन्हे कबीर के पुस्तक विरोध से बड़ी परेशानी होती है। ऐसे छोग झट से कह देते है कि कवीर पढ़े लिखे नहीं थे। क्योंकि उन्होंने मसि कागद छुआ ही नहीं था। और भला जो कठम कागज नहीं छूएगा 38: पछित कैसे होगा ? इसे उल्टकर भी पूछा जा सकता है कि क्या सभी मसि कागज छूनेवाठे पडित होते है? उत्तर स्पष्ट वे बेहिचक है, नही। कितुः यहाँ तो बात इतनी ही है कि क्या बिना मसि कागज छुए कोई पडित हो सकता है ? उत्तर है, हाँ। विद्वान होने के लिये दोनो की जरूरत नहीं #। जब कागज नही था तब भी तो विद्वान होते धे। छोग ताड़, भोजपत्रों या चमड़ो पर लिखते दे, कितु इनकी मात्रा अत्यल्प थी। अधिकतर लोग श्रुति का भरोसा करते थे। सुनने का, संगति का, आचरण का अभ्यास करते थे। लेखन कला भी तो बाद की। इसलिये एक ऐसा भी युग रहा होगा जब कुछ भी लिखना असमव रहा होगा। फिर भी छोग विद्वान होते थे। आज भी ऐसे व्यक्ति मिल जाते है जो गूँगे अत. वहरे भी और अधे है। कितु वे विद्वान् हैं। हैउन कठन का नाम प्रसिद्ध है। उनके लिये लिखने-पढ़ने के अल्य साधन बने। निश्चय ही ये साधन इतने नही रहे होगे जितने से एक आदमी विद्वानू बन सके। क्योंकि आधुनिक विद्वतता हजारों किताबो, पत्र-पत्रिकाओं और सगोष्ियों आदि पर आधारित है। अब तो विद्या पर यत्रों का भी अधिकार हो गया है। कितावे एक हद तक बेकार हो गयी हैं। रेडियो, टी वी की शिक्षा बिल्कुल ही मौखिक है। वहुत-सी विद्या टेप में बंद रहती है। समय पर निकाली जाती है। कबीर कभी नही कहते कि वे पढ़े लिखे नहीं थे। उनका कहना था-भति कागद छूओ नहीं कसम गही नहिं हाथ! चारो जुग को महातमा कबीर मुख जनाई बात || इसका तो इतना ही मतलब है कि कदीर के वचन लिखित नहीं मौखिक हैं। यही छान सूरसागर के बारे में भी है। सूरदास ने शाध्ट ही ठिखा-पढ़ा हो। क्योंकि सभवत' वे जन्माघ थे। अनेक जन्माध उच्चकोटि के कवि-दा्ध्धीनण और सगीतदश आदि हो गये हैं। कितु कवीर तो लगता है सपूर्ण विद्या के विरोधी ई-"विधा न पढएँ वाद नर्हि जानूँ।" विद्या का अर्थ है माया। माया मे रमा व्यक्तिशी विद्या पढ़ता है। माया के दो भेदों मे एक विद्या माया भी है। फिर सत विद्या क्यो पढ़ने छगे। इस सदर्भ मे स्वय कबीर ने ऐेरुणिक भक्त प्रह्माद की चर्चा की है। शाला मे प्रह्लः वे कहा--मैं केवढ राम नाम पढूँगा। मुझे और कुछ नहीं पढ़ना है। गुरु जी आप मुझे उालजाल क्यों पढ़ाते हैं ? मेरी पटिया पर केवल श्री गोपाल लिख दीजिए ।१ इसलिये कि (म नाम के अतिरिक्त सारी विद्या व्यर्थ है। पडित और काजी के पढ़ते जाने कितने दिन बीत भए।| कितु कुछ नहीं हुआ। होता भी कैसे ? तोता के रटने से उसे शान नहीं होता। इसीलिये कबीर कहते है--पुस्तक छोड़ो। पोयी पढ़-पढ़कर लोग मर गये। कोई १ नहीं छाड़एँ रे बाबा राम नाम, मोहि अउर पद़न सौं नहीं काम | मोकरँ कहा पढावति आठ्जाठ, (४०)

पुस्तकी ज्ञान का विरोध ४१ पडित नही हुआ। पडित होने के लिये एक अक्षर का ज्ञान काफी। राम मे दो अक्षर है। इनमे केवल '९' के ज्ञान से भी काम चल सकता है। शकराचार्य ने बहुत लिखा। कितु आधा श्होक ही महत्त्वपूर्ण है-- ब्रह्म सत्य है। जगनू मिथ्या है। जीव और ब्रह्म मे अभेद है १ स्वयं शंकर शब्दों को जगल कहते थे। इस जगल मे चित्त भटक रहा है [२ यह तब की बात है जब छापाखाना नही था। गद्य का भी विकास पूरी तरह से नहीं हुआ था। आज के कागज की छपाई देखकर ये सत लोग पता नही क्या कहते ? ध्यान सप्रदाय मौन को ही भाषा कहता है। उपनिषदे भी प्रवचन और मेधा को तत्त्व प्राप्ति का साधन नही मानती है। कालिदास अत करण को ही प्रमाण मानते है |३ भारती परपरा समासवाली है। कम से कम शब्द। अधिक से अधिक अर्थ। दोनो लोहो से टकराहट तो एक बार होती है। किंतु उसकी ध्वनि देर और दूर तक फैलती है। कबीर सतगुरु के शब्दो द्वारा वैसी ही ध्वनि उत्पन्न करना चाहते है। इसीलिये वे, केवल गुरु के शब्दो को महत्त्व देते है। वेद भी शब्द प्रधान है। सत भी शब्द प्रधान है। ज्ञान का एक साधन पुस्तक, अक्षर और लेखन अवश्य है। किंतु इनके अतिरिक्त भी साधन है। यह तो आज का विज्ञान भी स्वीकार करता है। उदाहरण के लिये मनुष्य बहुत कुछ व्यवहार या आचरण से सीखता-समझता है। इसी से सत आचरण और व्यवहार पर जोर देते है। कभी प्रयोग और कभी मात्र दर्शन से ज्ञान होता है। कितु ये सारे ज्ञान स्थूल और भूत पदार्थों के है। आत्मतत्त्व का ज्ञान तो आत्मा मे होता है। जहाँ बाहर के किसी भी साधन का वश नही चलता है। मन मे तो केवल मन ही जा सकता है। भूत पदार्थों की सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु भी नही जा सकती है। इसलिये आत्म तत्त्व को प्राप्त करने मे पुस्तकी ज्ञान क्या करेगा ? पुस्तकें तो बाहरी वस्तुओ को बताएँगी। अधिक हुआ तो भीतर की कुछ प्रकियाओ की ओर सकेत कर सकती है। कितु पूर्ण पता तो जाने वाले को ही लगेगा। लग गया तो वह बता नही सकता गूँगे के समान केवल मुसका सकता है। संत की साधना निजी अनुभूति है। व्यक्ति मन की यौगिक प्रक्रिया है। मन एक जगह स्थिर होता है। शरीर मे रहनेवाले चक्र, कुडलिनी का जागरण है। आज्ञा चक्र। फिर उसे भी पारकर ध्यान को केंद्रित करना है। प्रभु के प्रति पूर्ण समर्पण है। इस कार्य मे शास्त्र कोई सहायता नही करते। योगशास्त्र उपाय तो बताता है। उपाय करता नही। उपाय करना साधक धर्म है। शास्त्रों का काम बाह्य व्यापार बताना है। अतर के संसार को स्वय पाना होगा । एक बात और। अलंत प्रेम के कारण माता बच्चे की भूख को समझ जाती है। भूखे बच्चे की याद से उसके स्तनों के दूध स्वय बहने छगते है। अनेक पशुओं को प्रकृति परिवर्त्तन का पूवर्भास हो जाता है। अनेक बार हम दूर स्थित प्रिय की सही स्थिति का स्वप्न देखते है। युगल प्रेमी एक दूसरे की भावनाओं को समझ छेते है। जाने कितने ही कार्य हैं जिन्हे हम बिना प्रत्यक्ष हुए केवढ अपनी रागालिका वृत्ति से जान जाते है। ऐसी ही स्थिति ज्ञान की है। आखिर दो अज्नानियों में अंतर का क्या कारण है। एक साथ जन्मे, बढ़े, पढ़े

बालकों मे बुद्धिभेद के साथ ही ज्ञान भेद भी होता है। निश्चय ही इसका कारण बाह्य नहीं आतरिक है। मेरी पटिया लिखि देहु श्री गोपाल | १. श्लेकार्थेन प्रवक्ष्यामि यदुक््त ग्रंथ कोटिभि' | सत्य ब्रह्म जगन्मिथ्या ब्रह्मोजीवैय नापरम् । २ शब्दजाल महारण्य चित्त भ्रमण कारणम् । ३. प्रमाणमन्त करण प्रहतय ।

४२ कबीर समग्र प्रतिभा, बुद्धि की तीकणता, विचार एवं कछादि अभिरुचि भी बाह्य की अपेक्षा आतरिक है। बाह्य तो सबका प्राय एक-सा है। अंतर तो भीतर मे है। इसी आंतरिक शक्ति के सहारे योगी ज्ञान प्राप्त करता है। यौगिक क्रियाओं और प्रभु की आराधना द्वारा प्राप्त कृपा से आतरिक शक्ति का विकास होता है। बिना पढ़े ही सब समझने की क्षमता हो जाती है। कृष्ण ने अर्जुन को दिव्य चक्षु दिया था। विराट् को देखो। व्यास ने सजय को दिव्य चक्षु दिया। महाभारत को देखो। देखकर धृतराष्ट्र को बताओ। प्रत्यक्ष दो आंखे तो ससार को देखने के लिये है। बाह्य देखने के लिये है। कितु तीसरी आँख, दिव्य चक्षु दुनिया को समझने के लिये है। जानने के लिये है। इस दृष्टि से बाहर-भीतर दोनों दीखते है। अंधेरा या उजाले का कोई प्रतिवध नहीं। किसी भी समय कुछ भी देखो सब दीखेगा। मूलाधार चक्र के मनन से अनेक लाभो मे सर्वज्ञता ढाभ भी है। बुद्धि तीव्र होती है। साधक अपरिचित विद्याओ का सरहस्य ज्ञान प्राप्त कर छेता है। हवा मे उड़ने की शक्ति आ जाती है। योग द्वारा अनेक प्रकार की सिद्धियो की प्राप्ति की बात की जाती है। सत मानते है कि समस्त सृष्टि का आधार परमात्मा है। साधना का उद्देश्य है। परमात्म तत्त्व से तदाकारिता। तदाकारिता के बाद योगी को भी सारी परमात्म शक्तियाँ प्राप्त हो जाती है। यह बात नित्य के व्यवहार मे भी देखी जाती है कि जिस बात को अनेक लोग सिद्धातों की किताबों से जान पाते है उसे वहुत से लोग सामान्य व्यवहार से जानते समझते है। हजारो लोकगीत, लोककथा, छोकमहाकाव्य, दवाएँ, कानून, कृषि सबंधी निश्चय, ज्योतिष एवं विज्ञान की बाते मीखिक परपरा मे चली आ रही है। अनेक तो हमारे जीवन का इतना अधिक अग बन गयी है कि हम उनकी वैज्ञानिकता भूल गये है। कितु सत तो किताब को न केवल अनावश्यक समझते है बल्कि किताबे विरोधी भी हैं। इसीलिये वे पुस्तक को बहा देने की बात करते हैं। सत विवाद से बचते है। आत्म तत्त्व बोध वस्तु है। तर्क द्वारा समझाने की चीज नही है। बोलने से तत्त्व नष्ट हो जाता है- 'बोलत बोलत तत्व नसाई।" पढ़ना एक सीधी प्रक्रिया है। कितु आत्म तत्त्व को तो दुनिया से उलट कर देखा जा सकता है। ऐसे मे पुस्तके साधक नही बाधक है। असल मे आत्मतत्त्व का बोध क्रियाधीन न होकर कृपाधीन भी है। सारे साधन सहायक है। सब कुछ कर लीजिए कितु सद्गुरु या प्रभु की कृपा के बिना सब व्यर्थ है। प्रत्येक साधना कृपाधीन है। यह भी ध्यान रखना होगा कि आत्मतत्त्व की साधना अत्यत निर्गुण-निशकार की साधना है। आत्मा और शरीर मे भेद है। आत्मा के अस्तित्व को नकारा गया है। नकारा जाता है। कितु शरीर के अस्तित्व को कोई भी इनकार नही कर सकता है। ऐसे विशुद्ध अनुभूतिमूलक तत्त्व के साक्षात्कार मे पुस्तके क्या करेगी ? इसीलिये गीता भी देद ज्ञान को गुणात्मक ज्ञान कहती है। कृष्ण अर्जुन से कहते है- त्रिगुणात्मक वेद को छोड़ निर्गुण की उपासत्रा करो ।* वेद-वाद मे रत व्यक्ति को ब्राह्म स्थिति की प्राप्ति नही हो सकती है। वेद कामना वाले हैं। स्वर्गपरक है। स्वर्ग की

कामना वाले को आत्मतत्त्व का बोध नही हो सकता है। आत्मतत्त्य तो कामनाहीन को ही प्राप्त हो सकता है। भागवत मे वेदों के बारे मे और स्पष्ट कहा गया है-.. 'लीकिक व्यवहार के समान ही वैदिक व्यवहार भी सत्य नही है। क्योंकि वेद वाक्य भी अधिकतर गृहजनोचित यज्ञविधि के विस्तार मे व्यस्त है। राग द्वेषादि दोषों से रहित विशुद्ध तत्तनज्ञान की पूरी-पूरी अभिव्यक्ति उनमे भी नही हुई है। जिसे गृहस्थोचित यज्ञादि कर्मो से प्राप्त होनेवाला स्वर्गादि सुख स्वप्न के समान हेय नही जान पड़ता, उसे तत्त्वज्ञान कराने मे साक्षात्

, ? नैगुष्य विषया वेदा नैष्मैगुण्यो भवाड्जन -२/४/४५॥

पुस्तकी ज्ञान का विरोध ४३ उपनिषद्-वाक्य भी समर्थ नही है ।१ गीता ने केवढ वेद कहा था। भागवत जो गीता के बाद की रचना है ने तत्त्व ज्ञान के लिए पूरे वैदिक वाइमय को व्यर्थ घोषित किया है। इसमे कोई आश्चर्य नहीं है। कबीर और भागवत दोनो ही भक्ति को द्रविड़ से आयी बताते है। द्रविड़ भक्ति स्त्री रूप मे नारद को मिली थी। ज्ञान वैराग्य ये दो पुत्र भी उसके साथ थे। कितु इनकी हालत खराब थी। ये कमजोरी के कारण चेतनाशून्य थे। वृद्धावस्था के कारण इनसे उठा नहीं जा रहा था। नारद ने वेदध्वनि, वेदातघोष और बार-बार गीता पाठ द्वारा उन्हे उठाना चाहा। इससे उनमे हरकत तो हुई। कितु वे पूर्णत स्वस्थ नही हो सके। नारद परेशान हो गये। क्या किया जाय ? नारद ने अपनी चिता सनकादि ऋषियो के सामने रखी। तब उन्होने भक्ति का मार्ग बताया। यह भक्ति वेद-वेदात का ही सार है। कितु वेद-वेदात से भिन्न है। यह फल स्वरूपा है। वेद-वेदात वृक्ष है तो भागवत भक्ति फल है। कबीर की भी* यही मान्यता है। वे वेद, वेदात, पेड़ और पत्ता गिनने की अपेक्षा सीधे फल से जुड़ने मे विश्वास करते है। यह फल पुस्तको से नही। साधना और प्रपत्ति से प्राप्त होता है। वसिष्ठ ने कहा है--जो ब्राह्मण चारो वेदो का ज्ञाता होने पर भी सूक्ष्म परब्रह्म का अनुभव नही करता, वह वेदरूप भार से दबा हुआ ब्राह्मण रूप गधा ही है ।९ सभी स्टेशनों पर रुकनेवाली गाड़ी भी दिल्ली ही पहुँचती है। कितु शास्त्र कहता है कुछ स्टेशन जानेवाली, भटककर चलनेवाली, कैसे भी चले, चलती रहे। पहुँचेगी वह दिल्ली ही। आकाश से गिरा सारा जल समुद्र मे जाता है। सभी देवो के प्रति किया गया नमस्कार केशव को प्राप्त होता है ।१ गीता मे इसी प्रकार से कहा गया है कि सभी देवों की पूजा भगवान को ही मिलती है। सभी देवो की पूजा का फल भगवान् ही देते है ।४ सामान्य गाड़ी स्टेशनो पर रुकती है। कितु सत कबीर की गाड़ी सीधे प्रभु के पास पहुँचती है। इसका प्रभाव उनके आत्म-विश्वास और अभिव्यक्ति पर पड़ा है। १ तवथैव राजनुरु गाहमेध वितानविद्योरुविजृम्भितेषु | न वेदवादेषु हि तत्त्ववाद प्रायेण शुद्धो न चकास्ति साधु ॥२। न तस्य तत्त्वग्रहणायसाक्षाद् वरीयसीरपि वाच समासन् | स्वप्ने निरक्तिया गृहमेधि सौख्य न यस्य हेयानुमित स्वय स्थात् । ५/११/३। ७, चतुर्वेदोष्पि यो विप्र सूक्ष्म ब्रह्मन विन्दति | वेदभारभराक्रान्त. स॒ वै ब्राह्मण गर्दभ । -श्रीसनत्सुतीये शाकरभाष्ये | ३ आकाशात् पतित तोय यथा गच्छति सागरम्। सर्व देव नमस्कौर केशव प्रतिगच्छति | ४ गीता, ७/२९।

मैं न मरों मरिहे संसारा? लेगृ कहेगे यह कबीर का घमड है। कोई घोर अहकारी आदमी ही इस तरह की बात कह सकता है। अरे भाई, मरना तो प्राणी का धर्म है। मरने के कारण ही तो ससार मर्त्योक है। सभी तो मरते है। मरेगे। मर रहे है। कभी जन्म दर बढ़ती है। कभी मृत्यु दर बढ़ती-घटती है। कितु इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता है। सभी का मरना निश्चित है। जब सभी निश्चित है तो हे कबीर साहब आप ऐसी असभव बात क्यो करते है ? ५ लगता है कबीर साहब हमारे प्रश्न से परिचित थे। उन्हे स्वयं लगा होगा कि मृत्यु के विरुद्ध कहने पर लोग इसका कारण पूछेगे। इसीलिये उन्होने कारण भी बता दिया। कबीर क्यों नहीं मरेगे ? और ससार क्यो मरेगा ? ससार का मतलब है ससार मे रहनेवाले छोग। इतना ही नही | इससससार मे जो कुछ दिखाई, सुनाई आदि पड़ता है वह सब मरेंगे। कवीर कहते हैचंदो जैहे सुरजो जैहे, जैहे पबनो पानी। कह कबीर हम भगत न जैहे जाकी मति ठहरानी। कुल मिलाकर कहिए कि प्रठयकाल मे सारे प्रकाश लुप्त हो जायेंगे। हवा, पानी, आग आदि पच महाभूत मिलाकर एक हो जायेंगे। पृथ्वी जल मे, जल अग्नि मे, आग हवा मे, हवा आकाश मे मिल जायेंगे। आकाश और ब्रह्म एक हो जायँगे। सभी चेतन अचेतन अलग अस्तित्व खो देगे। इसे ही कहते है ससार का मरना। ससार दो प्रकार से मर रहा है। एक को कहते है नित्य प्रढय। लोग नित्य मर रहे हैं। प्रत्येक वस्तु जो चढ़ती दीखती है वह घटने की ओर है। क्षीण होने की ओर है। दोपहर का सूर्य खूब तप रहा है। सबके माथे पर है। सबको किसी न किसी छाया-सहारा के लिये बाध्य कर दिया है। कितु इसका यह अर्थ भी स्पष्ट है कि सूर्य अस्ताचछ की ओर बढ़ रहा है। वह डूबेगा। प्रातः जब उसकी किरणे अत्यत मंद रहती है। उसकी अनुभूति या तो होती नहीं है या शीतल सुखद होती है। तब सूर्य के डूबने की वात मन में नही होती है। सभी उसके उगने की बात करते है। डूबना पीछे रहता है। कितु दोपहर होते ही डूबना प्रबल और प्रमुख हो जाता है। उदय की अनुभूति गायब रहती है। एक दूसरा प्रढय भी है। इसमें सब समाप्त हो जाता है। केवल शून्य रह जाता है। इस शून्य के बारे मे कुछ कहा नही जा सकता है। कौन कहेगा? उस शून्य मे कौन था ? सब तो विलीन हो गये थे| इसे कहते है सृष्टि का आत्यतिक प्रढय। महाप्रछुय। कबीर कहते हैं वे उस प्रढुय मे भी रहते है। तुलसीदास भी कहते है- तासु नास कल्पांत न होई। सभी भक्त मानते है कि भक्त का कभी नाश नही होता है। गीता कहती है- मेरे भक्त . का कभी नाश नहीं होता है। (न में भक्त. प्रणश्यति)। महाभारत में कहा है कि विष्णुभक्त को हे मागलिक स्तोत्रों द्वारा यमदूत को मूर्छित और अदृश्य कर देते हैं-जैमिनीयाश्वमेधपर्व ५ १, पै न मरीं मरिंहे संसारा, मुन्नको मिला जिवावनिहारा। (४४)

मै न मरी मरिंहे ससारा ४५ भागवत मे अजामिल को यम लेने आये तो विष्णु के पार्षदों ने उन्हे- रोक दिया। कठोपनिषद् के यम नचिकेता के गुरु है। उन्होने नचिकेता को मृत्यु पर विजय: का उपदेश दिया। भक्त काल से परे है। काल ब्रह्म सूटि है। भक्त स्वत परमात्मा का रूप है। इसलिये भक्त पर काल का प्रभाव नही पड़ता है। तुलसीदास कहते हैकबहूँ काल न व्यापिर्डि तोही। सुमरेसु भजेसु निरंतर मोही ॥७।८८।१ । काल क्यो नही व्यापेगा ? शर्त यह कि मुझ भगवान् का नित्य स्मरण, भजन करना। स्मरण-भजन छूटा कि काल ने दबोचा। यही कबीर कहते है- मुझको मिला जिलानेवाला। भगवान् । गुरु। भगवान गुरु। गुरु भगवान। ससार के लोग शरीर को ही व्यक्ति मानते है। मै का अर्थ शरीर समझते है। कितु शरीर से भिन्न आत्रतत्त्व के बोध से अनभिज्ञ रहते है। प्रत्येक व्यक्ति दो आधारो पर खड़ा है। शरीर और आत्मा दोनो एक-दूसरे का आधार लिये है। शरीर नाशवानू है। मृत्यु शरीर की होती है। जन्म शरीर का होता है। दुख सुख शरीर धर्म है। आत्मा जन्म जरामृत्यु रहित है। वह सुख दुख से मुक्त है। जन्मना, रहना, बढ़ना, बदलना, घटना, नष्ट होना इन छ उर्मियो से मुक्त है। इसीलिये गीता के आरभ मे श्रीकृष्ण कहते है- यह आत्मा न जन्म लेती है, न मरती है ।* कुमार, यौवन एव जरा ये सब शरीर के धर्म है। सवाल है जब आत्मा नही मरती तो लोग मृत्यु से इतना डरते क्यो है ?े सभी असुर देहवादी थे। सभी ने अपनी तपस्या द्वारा अमरता का वरदान माँगा है-'प्रभो, हम किसी से भी न मरे। किसी भी स्थान पर, कैसे भी न मरे ।/ कितु कोई भी देवता इस वरदान को दे न सका। साफ इनकार किया। जन्म लेनेवाला, देहधारी मरेगा ही। बिना मृत्यु के जन्म संभव नहीं है। जन्म लेते ही मृत्यु का दर्शन आरम्भ हो जाता है। कबीर इसे बहुत अच्छे ढग से कहते हैखलक चबेना काल का रुछ मुख में छूछ गोद। ससार भगवान् का नाश्ता है। कुछ हिस्से को मुँह मे रखकर चबा रहा है। कुछ हिस्सा उसकी गोदी मे है। गरज कि जो है सब उसके भुंह और गोद मे है। काल के मुँह और गोद के अतिरिक्त कुछ नही है। काछ सबको खा जायगा। खा रहा है। यहाँ तक कि उन्हे भी जो गोद मे है। काल बड़ा क्रूर है। गोद वाले को भी नहीं छोड़ता है। भ्रूण हत्या। शिशु वध। काल कस से बड़ा है। सतो ने एक रास्ता निकाला। देह और आत्मा को अल्ग किया। मै के स्वरूप को पहचाना। शरीर को मै समझनेवाला मरता है। के आला की मै समझनेवाला अमर है। आला के बारे मे दो कल्पना है। आत्मा तो परमात्मा ही है। दूसरा यह कि आला परमात्मा का अश है। इस विवाद मे बिना पड़े कहा जा सकता है कि दोनो पक्ष परमात्मा वाले हैं। आत्मा चाहे अंश हो चाहे पूर्ण, है तो वह परमात्मा ही। अंश क्या अशी से भिन्न होगा। अब क्या परमात्मा की मृत्यु होगी ? परमात्मा की मौत न हुई है, न होगी। सत कबीर कहते है- उपज खपे सो दूजा। जन्म-मृत्यु वाठा कोई दूसरा है। वह भगवान् नही हो सकता है। भगवान् ही जब मरने खपने लगेगा तब तो अनर्थ हो जायगा। प्रश्न है तब कौन है जो मरने जीने का कार्य करता है। सत कहते है- यह सब काम माया का है। माया ही रूप

बदछती है। माया तीन गुणो वाली पेड़ है- माया तरुवर त्रिविध का, साखा दुख सताप। धर्म, अर्थ, काम भी मायाधीन हैं। यही माया तह ससार है। यही अनेक रूप धारण करती है। परिवर्त्तन ही दुख का कारण है। ईश्वर तो सच्चिदानद है। वहो दुख का नाम भी नहीं है। इसी से कबीर आनद की साखी कहते हैं १ न जायते प्रियते वा कदाचिनू २/२०।

४६ कबीर समग्र (साखी कहै अनद)। सुख-दुख दोनो ही माया वृक्ष के पत्ते है। माया मिटी कि सुख-दुख दोनो खत्म।| इसीलिये सत मायाविरोधी होते है। सत के मरने या न मरने का मतलब यह नहीं कि सत के शरीर का नाश नहीं होता। शरीर तो नाशवान् है। नष्ट हो जाता है। किंतु उसके आध्यात्रिक शरीर, आत्मा का नाश नही होता है। अस्तित्व का बोध या मै की चेतना शरीर को नहीं होती है। आत्मा या मन इस चेतना का अधिकारी है। यह आत्मा या मन ही जीवित रहता है। असाधको की यह आत्मा या मन विषद्यों मे फेंस कर मृत्यु को प्राप्त होता है। अह, मै, यह का भाव मन में रहता है। यह मनोभाव आत्मा को परमात्मा से अहूग करता है। परमात्मा से अछगाव की अनुभूति ही माया है। मृत्यु है। कबीर ममता (मै भाव) वाले मन को मारते है। चैतन्यात्मा का जागरण और उन्मनीभाव ही जीवन है और ससार मे फेंसना ही मृत्यु है। जाग्रत भक्त ससार पार हो जाता है। इसलिये मृत्यु पार भी हो जाता है। क्योकि मृत्यु तो ससार मे होती है। ससार के बाद मृत्यु कहाँ है ? विषयो मे बद्ध ससारी वासना की आग मे नित्य जल रहे है। मर रहे है। भगवान् बुद्ध का भी यही अनुभव था- किमाहासो किमानंदो नित्तं प्यजलिते 'सति। ससार के छोगो को देखो। सबहै। कितु फिर भी अतृप्त है। असतोष की आग मे जल रहा है। और, और के सचय में लगा है। कितु साधु है कि एक लगोटी पर पूरे ससार की लक्ष्मी को अँगूठा दिखा रहा है। जिसे कुछ पेट 'समाता लेना है उसे किसका डर ? साधु पेटू भी नहीं है। रूखा-सूखा खाकर ठडा पानी पीकर सो रहता है। कम से कम, लेता है। खानेवाला मर रहा है। भूखो रहनेवाला मृत्यु को जीत रहा है। सतो की बात अब सभी लोग मान रहे है। रूखा खाओ। कम खाओ। खुले मे रहो। घोर भौतिकता को वही पहुँचना है जहाँ सत पहले पहुँचे है। अधिक सग्रह लोभ युद्धो मे बदल जाता है। युद्ध मौत को खुला 20 | इसीलिये सत कहते है कि ससार सग्रह से न जुड़कर |परमात्मा से जुड़ो। अमर हो जाओगे | सतो ने जीवित मृत्यु की कल्पना की। इसका मतलब है विषयो से मुक्ति। परमात्मा से लगाव। कठोपनिषद् मे कहा है- मूढ़ या अज्ञानी व्यक्ति बाह्य विषयो मे लगे रहते है। इसी से विस्तृत काल के फदे मे फेंसते है |१ नअज+ा....ततह. “” .. पराच कामाननुयन्ति वाढास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम् २/१/२।

महाठगनी माया" माया ठगनी ही नहीं, महाठगनी है। क्या ठगनी कहना ही काफी नहीं था ? महा लगाने की जरूरत ? जी हा, महा छगाने से अर्थ का विस्तार हो गया। ठगनी तो ससार के लोगो को ठगती है। एकाध को ठगती है। सबको ठगा भी नहीं है जा सकता। ठग भी थोड़े है। ठगाने वाले भी कम है। सभी ठग हो जायें, ठगाने छंगे तो इस शब्द का अर्थ व्यर्थ हो जायगा। यह माया दूसरे प्रकार का ठग है। यह सबको ठग रही है। सत कबीर ढबी सूची देना चाहते है। कितु लबी सूची ठीक नहीं। लोग ऊबेगे। इसलिये वे कुछ प्रमुख व्यक्तियों की सूची देते है। लोग जिन्हे देवी-देवता समझते है। जो ससार को रचने, रखने और नाश करनेवाले माने जाते है। उन्हे भी माया ठग रही है। केशव, शिव, ब्रह्मा, पडा, योगी, राजा, धनवान, गरीब, भक्त आदि सबको ठग रही है। ये नाम समाज के सचालको के है। विशिध् व्यक्तियो के है। बनाने बिगाड़नेवालो के है। कितु कबीर कहते है माया इन्हे भी ठग रही है। जब इतने बड़े-बड़े लोगो को ठग रही है तो सामान्यो को कौन पूछता है ? इससे कबीर दो बाते कहते है- एक यह कि किसी भी देवी-देवता पर विश्वास मत करो। सभी माया द्वारा ठगे गए है। सब के घर मे माया बैठी है। कही लक्ष्मी, कही पार्वती और कही ब्रह्मणी बनी बैठी है। दूसरी यह कि यह माया गरीबो को भी छूग रही है। अमीर अगर हीरा के चक्कर मे है तो गरीब कानी कीड़ी (तुच्छ सिक्का) के लिये ही परेशान है। क्योंकि मोह-ममता तो सर्वत्र है। धनी को भी है। गरीब को भी है। धरती के लोगो को है। स्वर्ग स्थित देवो को है। यहाँ तक कि भक्तो और योगियों को है। माया को छोड़ना कठिन है। बार बार छोड़ने पर भी वह लिपटती है। ससार मे आदर, मान, रस, जप, तप, योग आदि सब माया से बैंथे है। माता, पिता, स्त्री, पूत्र तो माया है ही जल, थल, आकाश आदि में भी चारो ओर माया फैली है |* जो भी है सब माया है। सांख्य १ माया महा ठगनी हम जानी । तिरगुन फॉस लिये कर डोडै, बोले मधुरी बानी | केसव के कमला होइ बैठी, सिव के भवन भवानी | पंडा के मूरत होइ बैठी, तीरथ में भइ पानी | जोगी के जोगिन होइ बैठी, राजा के घर रानी । काहू के हीरा द्वै बैठी, काहू के कौड़ी कानी । भक्तन के भक्तिन है बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी | कहै कबीर सुनो भाइ साधो, यह सब अकथ कहानी । २ माया तजूँ त्तजी नहिं जाइ, फ़िरि फिरि माया मोहि लपटाइ | माया आदर माया माँन, माया नहीं तहाँ ब्रह्म गियाँन । माया रस माया कर जौंन, माया कारनि तजै परान । माया जप तप साया जोग, माया बाँधे सबही छोग । माया जलूथलि माया अकासि, माया च्यापि रही चहूँ पासि । माया माता माया पिता, असि माया अस्तरी सुता। माया मारि करे ब्यौहार, कहै कबीर मेरे रॉम अधार | (४७)

४८ कवीर समग्र वाले कहते है सृष्टि करनेवाला पुरुष नहीं प्रकृति है। प्रकृति ही पुरुष का आकर्षण करती है। प्रकृति सत्व् ''त, तम तीन गुणों वाली है। ये गुण जब अलग होकर काम करते हैं तो ससार सरकता है। तीनो समान रूप से इकट्ठे हो जाते है, साम्यावस्था को प्राप्त करते है, तब प्ररय हो जाता है। सृधि प्रक्रिया व्यक्त से अव्यक्त हो जाती है। वेदांती इसी प्रकृति को माया कहते हैं। यहाँ भी रचना, रखना और सहार का कार्य माया का है। यह माया स्वतत्र दीखती है। किंतु यह पूर्ण स्वतत्र नही है। यह चेतन के अधीन है। इस चेतन को ही ब्रह्म कहते है। ब्रह्म माया से भी व्यापक है। बड़ा है। फैलता है। फैला है। ब्रह्म वृह- धातु से वना। वृह् का अर्थ है बढ़ना। प्रकृति या माया ब्रह्म की शक्ति है। इसीलिये ब्रह्म ही सृष्टि का उपादान, निमित्त एव कारण है। इसी से एकमात्र सत्य ब्रह्म है। बाकी सारे दृश्य-अदृश्य मिथ्या, माया है। ब्रह्म ही सब कुछ का आधार और अधिष्ठान है। सभी सत इसी ब्रह्म की खोज करते है। जैसे पुत्र मिठाई आदि प्र्ेभनो को छोड़कर रोता है। (ब्रह्म) पिता की खोज मे, उसे पाने के लिये रोता है। उसे प्राप्त करने को बेचैन हो जाता है। यह वेचैनी उत्पन्न हो जाने पर ससार का कुछ भी अच्छा नही लगता है। कथित सुदर से सुंदर वस्तुओ को नश्वर और व्यर्थ समझकर छोड़ देता है। तोड़-फोड़ कर फेक देता है। सीधे पिता के पास पहुँचना चाहता है। ससार है तो झूठा। कितु यह मीठा झूठा है। ऐसा मीठा जिसका अत अच्छा नही है। यह मीठा आगे नुकसान करता है। मनुष्य को असल तत्त्व से अछुगा देता है। यह माया का मीठा है। यह बच्चे के हाथ की मिठाई है। गुरु ज्ञान से बाठक इस मिठाई को फेक देता है। माया मोहिनी है। सब इसके मोह मे पड़े है। सबके घरो मे माया रूप से स्त्री विराजमान है। स्त्री से ही ससार है। स्त्री ससार का मूल है। आधार है। कबीर साहब इन स्त्रियो की सूची देते है। माया मधुर बीलती है। वोले मधुरी बानी। ससार इस माधुरी मे आसक्त है। फँसा है। कबीर साहब कहते हैं मधुर (मीठ) और माधुरी से सावधान। माधुरी मे बड़ी माया है। माधुरी बाणी ठगो की वाणी है। महाठग की वाणी है। पुराने ठग मीठा मे जहर मिला देते थे। इसी से हिंदी मे माहुर वना। माहुर अर्थात् जहर। कबीर कहते है ऐ सछी माया, तुम्हारी आँद्ो मे जहर है। हे बहन, तुम घर छौट जाओ। तुम्हारी आँखो मे विष छगा है ।१ माया के कारण मधुर बदनाम हो गया। माहुर बन गया। इस मधुरी बानी के कारण ही आदमी फैंसता है। मघुरी बानी का उद्देश्य है बॉधना। माया तीन रस्सी लिये घूम रही है ।१ एक बधन ही कठिन है। यहाँ तो तीन बधन हैं- तम, रज, सत। कामैषणा, वित्तेषणा, छोकैषणा। तीनो गुणो से संसार बँधा है। तीनो गुण ही माया है। किसी का बचना मुश्किल है। कबीर इस बधन को स्पष्ट करते हैं। , माया से कहते हैं- ऐ बहन, वहाँ जाओ जहाँ पाट पीताम्बर हो। अगर चदन से देह सजायीः जाती हो। कबीर तो जुढाहा है। कमीना है ।९ मतहूव यह कि सपन्नो के यहाँ माया अधिक है। सपन्नता ही माया है। गरीबो पर माया का विशेष प्रभाव नही पड़ता है। फिर भी सावधानी तो बरतनी ही चाहिए। हीरा वाले को

माया अधिक परेशान करती है तो कानी कौड़ी वालो को भी बिल्कुल छोड़ नहीं देती है। मधुर वाणी, मधुर भोजन और मधुर वस्त्रादि का कैसा मेल बैठाया है कबीर ने। ठीक भी है। माया तो स्वर्ग से आयी है (्रग लोक ते तुम चलि आई) | अब स्वर्ग से आने वाली देवी क्या साधारण के यहाँ रहेगी ? स्वर्ग तो सपन्नता के लिये प्रसिद्ध १ तुम्ह घरे जाहु हमारी वहना, विष छागै तुम्हारे मैंनां । २ तिरगुन फौंस लिये कर डोछै वोह मधुरी बानी । ३ तहाँ जाहु जहाँ पाट पटबर अगर चदन घस्ि ठीना ! जाइ हमारे कहा करौगी हम तौ जाति कमीना |

महाठगनी माया ४९ है। वहाँ सभी प्रकार की संपन्नता है। ऐसी देवी ठहरेगी भी तो वही जहाँ स्वर्ग जैसे साधन होगे। इसीलिये कबीर सपन्नता को माया मानते है। धन बटोरने के विरोधी है। ईश्वर से इतना ही मॉगते है जितने से परिवार का काम चल जाय। किंतु परिवार का काम चलना" तो धोखे का वाक्य है। कभी-कभी बड़ी आमदनी वाले भी झखते है। खर्च न चलने की शिकायत करते है। क्योकि मनुष्य ने अपना खर्चा बहुत बढ़ा लिया है। अनावश्यक साधन इकट्ठे कर लिये हैडनलप, मोटे पर्दे, फ़िज आदि। एक दो वस्त्र के स्थान पर पचीसों पचासो तरह के ड्रेस। घर का सात्विक भोजन छोड़कर रेस्तराँ का तामसिक भोजन। ऐसे ही अनेक प्रकार के श्वगार। कबीर इससे सावधान थे- रूखा-सूखा खाना चाहते है। पेट समाता लेना चाहते है। शरीर को इतना आराम नही देना चाहते है कि वह कागज की पुतली बन जाय। जरा भी बेमौसम की हवा बही कि गलने लगे। वे प्रकृति के वर्जनारहित शरीर मे विश्वास करते है। प्रकृति तो बुरी है ही। किंतु प्रकृति को रोकने के लिये बिल्कुल कृत्रिम या अप्राकृत साधन तो उससे भी बुरे है। प्रकृति को सहजभाव से, सहज साधना से छोड़ना चाहिए। प्रकृतिलिप्सा तो बनी हो और उसे नकली ढंग से पूरा करने का प्रयल भयानक होता है। ससार ही माया है| तो माया के साधनो को बिल्कुल छोड़ा नही जा सकता है। प्रकृति का इतना प्रयोग तो करना ही पड़ेगा जिससे शरीर चढ़ सके। माया का सुख कुछ दिनो का है। सत शाश्वत सुख की खोज में है। माया का सुख अच्छी तरह भोग नही पाया कि काल आ पहुँचता है। बहुत से गरीब धनी बनते ही इतनी बीमारियों से घिर जाते है कि वे केवढ दवा का सुख ही भोग पाते है। कजूस जीवनभर कष्ट सहकर धन न खाते है, न खाने देते है। समय पर वह धन उनके दुख का कारण बन जाता है। ले तो कोई नही जाता है। धन की इस स्थिति से सत में साम्यबुद्धि का विकास होता है। सभी प्रकार के को चाहे उन्हे कितने ही यल से ठीक रखो। सब जल जाते है या गलकर मिट्टी मे मिल जाते है। है सबको माया रूपी डायन ग्रसे है। लोग समझते है वे धन को खा रहे है। किंतु धन की माया उन्हे खा रही है। सारा ससार नष्ट हो रहा है। ऐसी भयकर स्थिति में भगवान का भरोसा है। ससार अँधेरा कुँआ है। सभी मृत्यु के अँधेरे कुंए की ओर बढ़ रहे है। मजा यह कि यह अँधेरा कुओं आंखे बद करने पर दीखता हैजीवत आँधि भूंदि किन देखो, संसार अंध अंधेरा! सब कुछ अजन है। अँपेरा है। एक राम निरंजन है। असली तत्त्व निरजन है। निरजन ही सार है (अजन अल्प निरंजन सार) अजन अल्प है। थोड़े दिनो के लिये है। निरजन शाश्वत हैं। सत ने निरजन की खोज कर ली है। उसे पा लिया है। इसलिये वह विनाशी नहीं, अविनाशी हो गया है। सारे ससार के नाश होने पर भी वह अविनाशी रहता है। रहेगाकहै कबीर सबै जग बिनस्या रहे राम अबिनासी रे। माया आवागमन का खेल करती है। लोग आते है। जाते है। माया मुक्त व्यक्ति आवागमन से मुक्त हो जाता है। आवागमन से मुक्त प्रभु की भक्ति मे छुगा, प्रभु बना कबीर को देखकर माया माँ रो रही है-

-ठाठ्ठी रोबै कबीर की माई। ये लरिका बौराना हो राम। सत्य ही तो है। माया वाले ससार की दृष्टि से मायामुक्त भक्त पागल है। उसका आचरण असामान्य हो गया है। उसने तनना-बुनना छोड़ दिया है। तनना बुनना तो जगत कर्म है। छोभ, मोह का कर्म है। महल, अटारी बुनो। बनाओ। पैसा कमाने, धन जोड़ने का बाना बुनो। कबीर ने यह सब बंद कर दिया। न धन दौलत, न सपत्तिशाली होने का ताना-बाना। केवल अपने तन-मन मे

५० कबीर समग्र राम नाम लिख लिया है |? सत ने ताना-बाना इसलिये भी छोड़ा है कि जिस प्रभु ने जन्म दिया है, जो सभी का प्रतिपाल करता है वह भक्त का प्रतिपाल भी करेगा। जन्म-मरण ईश्वराधीन है। भोजन भी ईश्वराधीन है। सत निश्चित है। उसने अपना खर्च कम कर दिया है। कम से कम लेना चाहता है। इतना तो प्रभु दे ही देगा। इतने से किसी दूसरे का हिस्सा कम नहीं करना होगा। अधिक संग्रह में दूसरे का हिस्सा लेना पड़ता है। फलत एक अमीर और दूसरे गरीब हो जाते है। एक खा-खाकर मरता है। दूसरे बिना खाए मरते है। दूसरे गरीव न हो। दूसरो को भी मिले, दूसरों का शोषण न हो। इसलिये स्वय कम से कम हो। केवल पेट समाता लो। जितना और जैसा वह दे। उतना और वैसा लो। अधिक ढगे तो छोड़ दो। क्योकि ईश्वर सग्रह विरोधी है। सग्रह पर माया का अधिकार है। जहाँ सग्रह है वहाँ राम नही माया होती है। सग्रह ही तो माया का तीन ताग वाला बधन है। तिरगुन फॉस है। ईश्वर को न जाननेवाला पशु इसी तिरगुन फॉस मे बँधा है। बँधे पशु का माया द्वारा आवागमन होता रहता है। मनुष्य को कौन कहे सारे देवी-देवता बंधे है। केवल सत मुक्त है। इसलिये कि वह माया को जानता है। राम को भी जानता है। अत वह राम के साथ है। कबीर कभी माया से आतकित रहे होगे। अब वे माया के आतक से मुक्त है। इसलिये कि राम की शरण में है। राम की शरण वाले पर माया का वश नही चलता है। कितु वे ससार के छोगो के लिये रो रहे है। दुखी है। कैसे है छोग जो माया की भयानकता के प्रति निष्फिक्र है। बेखबर है। कितनी भयानक बाढ़ आनेवाली है। और ये लोग अभी तक सोए हैं। वे सबको आतकित कर रहे है। डरा रहे है। डर को इतना तीव्र कर रहे है कि छोग जगकर माया बाढ़ से बचने का उपाय करे। राम की शरण मे पहुँचकर अपनी सुरक्षा करे। इसके बिना कोई उपाय नही है। राम के बिना माया डायन से बचने का कोई उपाय नही है। और सारी नावे जर्जर है। छेदो से भरी है। केवढ राम नाम की नाव ही सवको बचा सकती है। कबीर तो जर्जर नाव को देखकर फड़क कर उतर गये है |२ महाठगनी माया सबको भरमाये है। कोई उतर न सके। कितु कबीर सबको चिता रहे है। 2५: सा उतरो। माया की जर्जर नाव को छोड़कर राम नाम की दृढ़ और अविनाशी नाव पकड़ लो। माया के आतक को कबीर ने माया के मानवीकरण द्वारा अभिव्यक्त किया है। डायन बच्चों को खा जाती है। माया डायन रस्सी, तीन रस्सी लिये घूम रही है। भोडेभाले छोगो को फैंसाने के लिये मीठा बोलती है। कितु मीठे से असावधान को फेंसाकर नष्ट कर देती है। यह डायन ही महाठगनी है। अल जल तमिल ला 2235 म मल 3१ तनना बुनना तज्यौ कबीर, राम नाम लिखि लियौ सरीर। २ मुसि मुसि रोबे कबीर की माई, ए वारिक कैसे जीवर्हिं » ३२ भेरादेख्या जर्जरा उतरि पड़ा फरकि | 233

पौराणिक अनुभव भागवत वाक्यो से कबीर विचारों की तुलना के बाद इस हिस्से को आवश्यकता नही थी। भागवत की चर्चा पूर्ण है। भागवत में सारी कथाएँ है। फिर लगता है कुछ छूट गया है। उसे इस भाग में देखना होगा। रमैनी का प्रारभ सृष्टि सबधी पौराणिक अवधारणा से होता है। रमैनी का अर्थ पुराण लगता है। यह शब्द रामायण के आधार पर बना है। पुराणों मे पाँच या दस बाते होती हैसर्ग, प्रतिसर्ग, वश, वशानुंचरित, मन्वन्तर ।* इनमे कबीर साहित्य मे वश और वशानुचरित के सकेत मात्र है। कितु शेष तीनो की चर्चा विस्तार से आईं। रमैनी का तो आधार ही सर्ग, प्रतिसर्ग एव मन्वन्तर का वर्णन है। पुराणो के शायद ही कोई देवता हो जिनकी चर्चा छूट गयी हो। कभी-कभी तो कबीर दास जी पुराण देवताओ की ऐसी चर्चा करते है जो सामान्यत. केवर पुस्तकों मे है। उदाहरण के लियेहरि हर ब्रह्मा के मन मन भाई, बिदि अच्छर ले जुक्ति बनाई। दिदि अक्षर का कीन्ह बंधाना, अनहद सब्द जोति परमाना। यहाँ बिवि का अर्थ है दो। हरि और हर दोनो मे दो अक्षर है। ब्रह्म ने इन्ही दो अक्षरों से राह चलाई। सृष्टि की अगुआई की। पुराणों मे भी इस प्रकार के सकेत है। सत कबीर चार आश्रम के स्थान पर छ आश्रम मानते हैघट आश्रम घट दरसन कीन्हा। ब्रहचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास तो प्रसिद्ध है। शेष दो हस और परमहस सन्यास के उपरात है। हस सदसद् विवेक आत्मशक्ति है और परमहस इसकी पूर्णता है। परमहसोपनिषद् मे इसकी चर्चा है। परमहस को कुटीचक भी कहते है। सत कबीर की सृष्टि के विकास की प्रक्रिया वही है जो वैदिक साहित्य मे प्राप्त होती है। वे चौरासी छाख योनियो मे विश्वास करते है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीन मुख्य देवता है। ब्रह्म ने सृष्टि की रचना की। विष्णु पाठक है। महेश नाश के देव है। ये तीनो देवता है। ब्रह्म नही है॥ इसलिये तीनो ही मायाधीन है। सृष्टि भगवान् की इच्छा का परिणाम है। यह प्रसिद्ध वेदांत कथन है। उन्होने ही स्त्री-पुरुष का भेद किया। ब्रह्म की इच्छा से एक गायत्री नामक स्त्री उत्पन्न हुई। ब्रह्मा, विष्णु, महेश इसके तीन पुत्र हुएइच्छारूप नारि अवतरी, तामु नाम गायत्री धरी। तेहि नारि के पुत्र तिन भयऊ, ब्रह्मा विष्णु महेश नाम घरेउ। ब्रह्मा ने माँ से पूछा- तुम्हारा पुरुष कौन है ? तुम किसकी स्त्री हो ? गायत्री ने उत्तर १... सर्मश्च प्रतिसर्गश्च वशोमन्वन्तराणि च | वशाजुचरित चैव पुराण पच उक्षणम् | (५१)

५२ कवीर समग्र दिया-तुम और हम अलग नही है। तुम मेरे पुरुष हो। मै तुम्हारी स्री हूँ। पिता-पुत्र की एक ही स्त्री है। दोनो एक ही माँ से उत्पन्न हैतब ब्रह्म पूछल महतारी, को तोर पुरुष काकरि तुम नारी। तुम हम हम तुम और न कोई तुम मोर पुरुष हमें तोरि जोई। बाप पूत की एके नारी, ओ एके माय बिआय। कितना विचित्र लगता है ? कितु सृष्टि के आरभ की पीराणिक कल्पना यही है। गीता में श्रीकृष्ण कहते है- योनि भी मेरी है। वीज भी मेरा है। विराट प्रकृति मेरी योनि है। में उसमे वीज डालकर गर्भ धारण करता हूँ ।*? वेदात प्रकृति को पुरुष ब्रह्म की ही अचित्य शक्ति मानता है। इसीलिये कबीर के विचार उपनिषद्, गीता और भागवत से मिलते हैं। पुरुष और प्रकृति ने मिलकर चार प्रकार के जीव बनाये है। अधग सृष्टि की रचना की तब अष्टंगी रची कुमारी 4 3 भर एके पुरुष एक है नारी ताते रचेउ खानि मै चारी। यह अधछाग गीता का अष्टग है- भूमि, पानी, हवा, आग, आकाश, मन, दुद्धि एव अहंकार। प्रकृति के ये अध्धा रूप है |? स्पृति वेद की पुत्री है ।३ यह स्पृति विद्वानो की : पहचान है। इसी ने पाप पुण्य का रास्ता निकाला है ।९ सत कबीर ब्रह्मा को वेद रचयिता मानते है। कितु वेद का हाल भी खराब है। ब्रह्मा को भी रास्ता नही मालूम है। वेद भी तो वधन है। वेद ब्रह्मा ने बनाया। वेद महत्त्वपूर्ण भी है। कितु है तो वह रस्सी ही। इसलिये सपूर्ण ब्राह्मी रचना मायाकृत है। सारा दृश्य और इद्रियगम्य प्रकृति द्वारा निर्मित है। और यह प्रकृति ही माया है। इसलिये वेद भी बधन के कारण हैं"आपकी वेदरूपा वाणी ने भी जगत् को वध रखा है। यदि उस वेदवाणी रूप रस्सी से लोग वेंधे न होते, तो वे मोहवश सकाम कर्म क्यो करते ?५ गीता ने वेद को छिछला जलाशय और आलज्ञान को समुद्र कहा है ।६ त्रयी (वेद) की अपूर्णता के कारण ही भक्तिमार्ग का विकास हुआ। कृष्ण ने अर्जुन से कहा-वैद त्रिगुणात्मक है। तुम्हे तीनो गुणो के पार जाना चाहिए | वेद के वचन सुनने मे तो अच्छे लगते है। कितु वे कर्म प्रशंसक एवं स्वर्ग परक हैं। कितु कर्म से तो कर्म छूटता नहीं। कर्म छोड़ने के लिये अकर्म की जरूरत है। कर्म करके भी कर्मफलरहित। आवश्यक कर्म ही करे। वह कर्म भी भगवान् को समर्पित कर दे। क्योंकि उद्देश्य तो उस प्रभु को पाना है जो सारे कर्मधर्म का आधार है। उसकी प्राप्ति के सामने स्वर्गमम योनिर्महद् ब्रह्म तत्मिन्यर्भ दघाम्यहम् [१४/३। भूमिरापोनठो वायु ख मनो बुद्धिरिव च। अहकार इतीय मे भिन्न प्रकृतिरष्धा | ७४ वेद की पुत्री सुप्रिति माई। सुप्रिति आहि गुननि को चीन्हा, पाप पुन को मारग कीन्हा। भागवत्त ४४२०|३० २/४६ २/४५ * "७0० «० छू +. ० 0०,

ध ' पौराणिक अनुभव ५३ सुख भी व्यर्थ है। फिर लोक के सुख की क्या बात है ? वेद अधिक से अधिक स्वर्ग तक ले जायेंगे। इसके आगे वेदो की गति नही है। कबीर को रचनाओ का सारा सदर्भ पौराणिक है। उनके साथी भक्त अधिकतर पौराणिक है। उन्हे भक्त अम्बरीष की कथा पर गर्व है। भक्त के सामने ऋषि की दुर्गति होती है। भगवान् ने अम्बरीष की रक्षा मे चक्र सुदर्शन जारी कियाराज अंबरीष के कारणि चक्र सुदरसंन जरै। तैतीस कोटि देवो और अठासी हजार मुनि की कल्पना भी पौराणिक है जिसे कबीर स्वीकार करते हैसुर तेतीसूं क्रैतिग आए मुनियर सहस अठ्यासी | ब्रह्मा, विष्णु, महादेव के पुराणो मे तीन रूप है। सृष्टि, पालन और सहार। यम मृत्युदेव है। कितु मृत्यु का असली देवता काल है। काल को स्वय भगवान् का प्रतिरूप कहा गया है। कबीर इन पौराणिक प्रतीको को स्वीकार करते है। ८४ लाख योनियाँ, चार प्रकार के जीव, नवग्रह तथा पचभूत की कल्पना भी उन्हे स्वीकार है। स्वर्ग की कामना वैदिक कल्पना है। भक्ति मे स्वर्ग को हीन मानो गया है। कबीर कहते हैजब लग है बैकुंट की आसा। तब लग नहीं हरि के चरन निवासा। ब्रह्मा को कुम्हार कहा गया है। कबीर कहते हैकुंभार एक कमाई माटी बहुनिधि जुगति बणांई । कबीर ने विवाह या मृत्यु आदि के रूपक बॉधे है वे भी हिंदू पुराणो-परंपराओ के अनुसार है। विवाह मे पचसखी (इद्रियाँ) मगल गाती है। दुलहन (साधक) डोछी मे जा रही है। इसमे पॉँच कहार लगे है। उसमे उहार लगा है। नायिका नैहर जा रही है। नैहर जाने मे उसे दुख होता है। (सामान्यत लड़कियो को ससुराल जाने मे दुख होता है)। इसी तरह रावण, ढछका और उसकी समृद्धि, कस और कृष्ण की कथा से कबीर का साहित्य भरा है। स्वयं कबीर ने पैराणिक आधारों को लेकर अपना पुराण रचा। यो तो पौराणिक तत्त्व उनकी सभी रचनाओ मे है। कितु रमैनी तो मूलत पुराण ही है। इसमे ऐसी कथाएँ भी आयी है जिनसे साधारणजन अपरिचित है। कितु वे अप्रामाणिक नही है। उदाहरण के लिये- पार्वती को कबीर ने बॉझ नही कहा है-पारबती को बाँझ् न कहिए ईस न कहिए भिखारी। क्या पार्वती बॉझ थी ? हॉ। पार्वती के दो पुत्र थे कार्तिकेय (स्कं)) और गणेश। कार्तिकेय के जन्म मे शकर का वीर्य ख्खलित हो गया था। जिसे गगा, अग्नि आदि ने धारण किया। शकर तेज के स्खलन से इनका नाम स्कद हुआ। इन्हे कृतिकाओ ने पाला था। गणेश और कार्तिकेय दोनो ही पार्वती की क्षेत्रम या आल्ज नही है। गणेश पार्वती की मैल से तैयार हुए थे। इसी तरह शिव को सामान्यत धनहीन माना जाता है। कितु कबीर इन्हे धनहीन नहीं कहते है। ऐसा कहने से दूसरो को भी मना करते है। सत कबीर कहते हैतबही विष्णु कहा समुझाई। मैथुन आठ तुम जीतहु जाई। सवाल है यह आठ मैथुन कया है ? आठ प्रकार के विवाह है। कया इन्हे ही आठ मैथुन गन जाय ? कुछ लोग मन, बुद्धि, अहकार और पॉच ज्ञानेद्रियो के भोग को मैथुन कहते है।

५ कवीर समग्र कामसूत्र (२/४४) के अनुसार कामकला के आठ भैद है- आलिगन, चुवन, नखच्छेदन, दशनच्छेद, सवेशन, सीतकार, पुरुषायित, औपरिष्टक। इनमे प्रत्येक के आठ-आठ भेद हैं। इसी से इन्हे ६४ कला भी कहते है। सत कबीर का ज्ञान कितना गहरा है ? वे ६४ कला को चौसठ दीपक और आठ काम की भी चर्चा करते है। अष्ट मैथुन जीतने का उपदेश विष्णु ने किसे दिया ? सनकादि को--ततब सनकादि तत्व विचारा। ज्यों घन पावहिं रंक अपारा। सनकादि सभी भाई नैछिक ब्रह्मचारी हैं। अब पता ठगा कि वे विष्णु के आदेश से ब्रह्मचारी है। उन्हे दुनिया की सबसे महत्वपूर्ण सपत्ति मिल गयी हैब्रह्मचर्य एव भगवान् की कृपा | भगवान ने वामन अवतार लिया। ब्राह्मण का रूप धरकर राजा दलि को छठकर उसका पूरा राज्य छे लियाबावन रूप छलेउ बलि राजा। ब्राह्मन कीन्ह कौन को काजा। अर्जुन ने अग्नि को तृप्त करने के लिये खाडव वन दाह किया था। कवीर के शब्दों मेंतीसर बूड़े पारव भाई। जिन बन दीन्हों दहा लगाई। पारध 5 अर्जुन। दहा 5 दग्ध। आग। 'सशयात्मा विनश्यति' गीता का यह कथन कबीर के यहाँ सशय का हिंसक पशु हो गया हैसंसय सावज दसे सरीरा। तिन्ह झायो अनबेधा हीरा। वेद चार वृक्ष है। वेदाग उसकी छ शाखाएँ है। यो तो विद्या अनगिनत हैचारि वृक्ष छब सखा बखाने। विधा अगनित गने न जाने । यह ससार एक चित्र है। ईश्वर इसका सूत्रधार है। इस चित्र को समझना कठिन है। वे ही लोग भले है जो इस चित्र को समझ ठेते हैजिन यह चित्र थनाइया, सोचा सूतरघार। कहहिं कबीर ते जन भले, जो वित्रहिं लेहिं निहार। अन्य दार्शनेक भी ससारचित्र और उसकी विचित्रता की चर्चा करते है। सूत्रधार को सॉचा कहकर कबीर ने सकेत किया कि चित्र सत्य नही है। केवल सूत्रधार सत्य है। तुलसीदास ने भी शून्य भीति पर चित्र बनने की वात की है। पुराणो की मान्यता है कि पहले जल ही जल था। जल मे एक अडाकार पैदा हुआ। इसी अडे से त्रह्माड (ब्रह्म + अड) वना। ब्रह्मा निकछे। द्रह्मा ने सात द्वीप (जम्बू, कुश, प्लस, क्रोच, शक, पुष्कर, शाल्मलि) ओर पृथ्वी के नौ खंड जिसे वर्ष भी कहते है (भारत, इलावृत, किपुरुष, भद्राश्व, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य, कुश) बनाया। प्रकृति के आठ रूपो की चर्चा हो चुकी है। इस प्रकृति पर तीनो लोक मुग्ध है। पार्वती भी प्रकृति है। जिन्होने शिव को पाने की तपस्या की। पहले केवल प्रकृति (नारी) और पुरुष थे। बाद मे अडुज, पिडज, स्वेदज, उद्भिज ये चार योनियाँ उत्पनन हुई। उन्ही से शर्मा (ब्राह्मण), वर्मा (क्षत्रिय), देव (गुप्त, वैश्य), दास (शूद्र) हुए। सत, रज, तम तीन गुणो से धरती और आकाश भर गये। ये सभी प्रकृति प्रसार है। इसलिये सभी स्त्रियों है। पुरुष तो केवल एक राम है। यह मान्यता अनेक भक्ति सप्रदायों की है। इसीलिये कवीर, सूरदास, मीरा आदि प्रभु को परम प्रिय मानकर उपासना करते हैब्रह्मा को दीन्हो ब्रह्मांड। सात दीप पुहुमी नव खंडा। सत्य सत्य कहि विष्णु डुठाई। तीन लोक मे राखिन आई।

पौराणिक अनुभव ण्प् लिंग रूप तब शंकर कीन्हा। घरती कीलि रसातल दीन्हा। तब अएछ्ंगी रची छुमारी। तीनि लोक भोहिनि सम झारी। दुतिया नाम पार्वती भयऊ। तप करते शंकर को दयऊ। एके पुरुष एके है नारी ताते। रची खानि भौ चारी। सर्बनन बर्बन देव औ दासा। रज सत तम गुन घरति अकासा। एक अंड ओंकार ते, सभ जग भया पसार। कहहि कबीर सब नारी- राम की, अबिचल पुरुष भरतार। जो पढ़े तो है। कितु उसके बाद भी अतर्दष्टि विहीन है। उनके लिये शास्त्र अधे के लिये दर्पण के समान है। जैसे कलछुल सब्जी मे डूबी रहकर भी उस रस को नही जान पाती है। इसी बात को सत कबीर कहते हैअंध सो दरपन बेद पुराना, दरबी कहा महारस जाना। शास्त्र पढ़कर भी मूर्ख रहनेवाले को-लोचनाभ्याम् विहीनस्य दर्पण कि करिष्यति और दूसरे के लिये दब्वी सूप रस यथा। यह वचन महाभारत और धम्मपद मे यथावत् है। पुराणो के प्रतिनाययों की ओर सकेत करते कबीर कहते है- जरासध, शिशुपाल, महसार्जुन, सोने की दीवालो वाला लका का राजा रावण, दुर्योधन ये सब अहकारवश चले गये। पाडवो को भी भेद नही मिला। सभी उत्तम, मध्यम, नीच चले गये। कबीर कहते है कि उस परमतत्त्व का आदि अत स्वय शिव को भी नही मिला। उमा दम क खोजते रहे। जब उन जैसे सिद्ध-साधक का यह हाल है तो साधारणजन का क्या होगामहादेव मुनि अंत न पाया, उमा सहित उन्ह जन्म गैंबाया। उनते सिघ साधक नहिं कोई-«पुराणो मे कथा आती है कि विष्णु का मोहिनी रूप देखकर शिव मोहित हो गये। उनके साथ उमा भी थी। शायद कबीर उसी घटना की ओर सकेत कर रहे है। प्रसिद्ध है कि कबीर अवतारों मे विश्वास नही करते थे। अवतार कल्पना सगुणोपासना और वैष्णव कल्पना है। क्योकि प्राय विष्णु के ही अवतार देखे जाते है। कबीर ने इस अवतार की अत्यत सूक्ष्म आलोचना की है। अनेक पुराणो मे कथा आती है कि शाल्ग्राम गडक के पत्थर का अश है। कबीर कहते है शाल्ग्राम गडक का-पत्थर नही है-.' गंडक सालिगराम न सीला*** ऐसे ही प्रभु ने द्वारका में शरीर नहीं छोड़ा था। जगननाथपुरी मे पिड नही गाड़ा था। कबीर की दृष्ि में प्रभु ने जब शरीर ही धारण नही किया तो छोड़ने और गाड़ने का सवाल कहाँ उठता है? पुराणो ने कभी-कभी देवताओ को रजोगुणी और तमोगुणी तक कहा है। वे लोभी द्वेषी और कामी है। देवेद्र, चद्रमा आदि का काम अत्यत प्रसिद्ध है। इसी बात को कबीर कहते हैदेब चरित्न सुन्हु रे भाई, सो तो ब्रह्मा घिया नसाई। ऊ जे सुनी मंदोदारि तारा तिन घर जेठ सदा लगवारा। सुरपति जाय अहीर्लईहिं छरी, सुरगुर घरनि चंद्रमे हरी। कहै कबीर हरि के गुन गाया, कुन्ती करन रुँवारहिं जाया। ये कथाए प्रसिद्ध है। सबने कही है। बालि के मरते समय राम ने वालि से कहा कि तुमने जैपनी अनुजवधू को रख लिया। ब्रह्म की कथा तो शुद्ध रूपक है। फिर भी, पुराणों मे भी

धर कवीर समग्र इसकी आलोचना है। लोग ऐसे रूपको को भी अच्छा नहीं मानते हैं। और सब कथाएँ प्रसिद्ध है। कबीर ने पुराणो की ये कथाएँ इसलिये नही लीं कि वे पुराणों को दुहराना चाहते थे। वे पुराण प्रतीको का प्रचार भी नहीं करना चाहते थे। केवठ इतना कि पुराण कधाओ, उनके नायको और प्रतीको द्वारा उस जनता को निर्गुण, निराकार, माया और ससार की मिथध्या स्थिति को समझाना चाहते थे। स्वाभाविक है कि इस कार्य के लिये पुराणो की कथाएँ महत्त्वपूर्ण थीं। कबीर द्वारा पुराण कथाओं के प्रयोग वाहुल्य से दो बाते स्पष्ट है- १. ये कथाएँ लोकचित्त में अत्यत बैठी थीं। २ स्वयं कबीर जिस परपरा में थे वह परपरा इन कथाओ को अच्छी तरह जानती थी। क्योकि इसमे एक भी ऐसी बात नही आई है जो पुराण-शास्त्र से अप्रामाणिक हो। कवीर को पौराणिक परंपरा का जितना अच्छा ज्ञान है उसके मुकावले उन्हे किसी दूसरी परपरा का ज्ञान है इसमे सदेह है। शायद उन्हे दूसरी परपरा के ज्ञान, विशेषकर उस ज्ञान की अभिव्यक्ति की कोई आवश्यकता नहीं थीं। क्योकि जिस जनसमुदाय से वाते कर रहे थे, जिसे शिक्षित करने पर उनका मुख्य जोर था वे सब इसी पौराणिक परपरावाले थे। जिन्होंने अपने पुराणों और धर्मग्रथो मे अपनी इतनी आलोचना कर रखी है कि अब दूसरी आलोचनाएँ मनोरजन मात्र करती है। पुराणी को पचम वेद कहा गया है। इससे एक बात स्पष्ट है कि पुराण वेद विरोधी नहीं है। उसी परपरा के विकास है। कितु वेद नही है। वेद से भिन्न हैं। कैसी भिन्नता है ? पहली बात यह कि वेद विशिष्टजन के लिये और शब्दप्रधान है। पुराण सामान्यजन के लिये अर्थप्रधान है। पुराणो को कभी-कभी विस्तार का पर्याय भी माना जाता है। उसके दस लक्षणो मे बहुत-सी बाते आती है। भागवत में पुराण के दस? लक्षण बताये गये हैं॥ इससे पुराणो की व्यापकता स्पष्ट है। इनमे अनेक बाते है। कितु कबीर ने सब नहीं लिया। अपनी आवश्यकतानुसार छॉटकर लिया। फिर भी सत कबीर में अनेक बातों का मेल दीखता है। उदाहरण के लिये उनका ब्रह्म निर्गुण निराकार भी है और प्रेम का आधार भी है। पूछिए निराकार से प्रेम कैसे हो सकता है ? प्रेम को तो साकार होना होगा। कबीर सॉई, पति, खसम आदि शब्दो द्वारा निराकार को साकार रूप देते है। सत कबीर की पौराणिक चर्चा सामान्य से कुछ भिन्न है, यह कहा जा चुका है। भागवत, अन्य पुराणो एवं भाषा के कृष्ण काव्य मे भ्रमर गीत का प्रसंग प्रसिद्ध है। यहाँ उद्धव गोपियो को निर्गुण-निराकार का उपदेश देते है। सामान्यत समझा जाता है कि वृदावन सगुणोषासक है। कितु कबीर ऐसा नही मानतेनिर्गुन ब्रह्म मते डूंदावन, अजदूँ रामि खुमारी। कवीर यह कहना चाहते है कि वृदावन की भी मूल उपासना सगुण नहीं निर्गुण की है। इसलिये उद्धव का यह उपदेश अस्थान नही था। वृदावन के इस प्रसंग से भ्रमर गीत पर नया प्रकाश पड़ता है| क्रषि श्रेगी ने राम की बहन शाता से विवाह किया था। श्रृगी ऋषि ने ही दशरथ को सतानोत्त्ति के लिये यज्ञ कराया था। इस प्रकार श्रृगी ऋषि राम के बहनोई और यज्ञकारक पिता से छगते है।

कबीर कहते हैदेखहु लोगो हरि की सगाई, हम यहनोई राम मोर सारा, हमहि बाप हरि पुष्द हमारा। कबीर ने पौराणिक कथा का उपयोग निर्गुण साधना के लिये किया है। पुरुष और प्रकृति है सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशकथा, निरोध, मुक्ति, आश्रय।
२१०९

पौराणिक अनुभव ५७ दोनो साथ पैदा हुए है। फिर जीव माया (प्रकृति) मे बेंध जाता है। ब्रह्म दौनो का पिता है| सगुण साकार अवतारी राम माया के भाई है। साधक कबीर ने माया से अपना सबंध जोड़कर अपने को राम का बहनोई कहा। कबीर ब्रह्म भी है। अत अवतारी राम इस ब्रह्म के पुत्र हुए। कबीर यह भी कहते है कि ससारी सबध अस्थिर है। जो पुत्र है, वही पिता बन जाता है। ऐसे ही सबध बदलते रहते है। कबीर अपने विचारों की पुष्टि के लिये पुराणो का उपयोग करते है। उदाहरण के लिये वे मानते है कि ससार मे कोई सुखी नहीं हैतन धरि काहू न सुखिया देखा, जो देखा सो दुखिया हो। इस सिद्धात को वे सर्वत्र गाते है। राम भी जब शरीर धारण करते है तो उन्हे भी दुखी होना पड़ता है। ससार के सारे छल छद्यो मे जाना पड़ता है। क्योकि देह का भी कुछ नियम है। वह नियम सब तनधारी पर लागू होता हैकहै कबीर तेई भये दुखिया, जिन यह राह चलाई। क्योकि राम भी पूर्व कर्म से बँधे थे। सभी को कर्मो का फल भोगना होता है। राम ने भी भोगागुरु बसिष्ट मिलि लगन सोधाई, सूर्य मंत्र एक दीन्हा। जो सीता रघुनाथ विवाही, पल एक सच न कीन्हा। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि वसिष्ठ का ज्योतिष तो कर्मफलभोग के सामने विफल ही हो गया। सूर्य मत्र जो अत्यत प्रभावशाली एव गोष्य मत्र है वह भी विफल हो गया। सूर्य मत्र की जानकारी इस बात का प्रमाण है कि कबीर को पुराण साहित्य का गहरा ज्ञान था। क्योकि सामान्यत लोग सूर्य मत्र से अपरिचित है। सत कबीर पूछते है कृष्ण नद के पुत्र है। कितु नद किसके पुत्र है ? जब धरती और आकाश दोनो नही थे। अर्थात् सृष्टि नही थी तब नद कहाँ थे ? कबीर ने यह "कहां" कृष्ण के बारे मे नही पूछा। क्योकि कृष्ण तो ब्रह्म रूप मे थे ही। वे तो सनातन है ।१ इसी कृष्ण को लोग गोवर्धनधारी कहते है। कबीर के लिये यह आश्चर्य की बात है। औठो कुल के पर्वत जिसके पैर की धूल है। सातो समुद्र ऑखो के अजन है, जो विराट् रूप है उसे गोवर्धनधारी कहना क्या उचित है ?२ ब्रह्म का जन्म कमल से हुआ है। गगा विष्णु के चरण से निकली है। जन्म के बाद ब्रह्मा कमलनाल मे अपना उत्तत्ति स्थान खोजते है। ये सब पुराणों की प्रसिद्ध कहानियाँ है ।३ नलनील ने वरदान से समुद्र बॉँधा था। उनके द्वारा फेके गये पत्थर डूबते नही थे। भीलनी के जूठे वैर राम ने खाए थे। गणिका अर्थात् पिंगला। पिगला एक पौराणिक नाम है जो प्राय निराश वेश्या के लिये प्रयुक्त होता है |४ इसी के आगे कबीर निगम की साक्षी को भी स्वीकार करते है ।५ ब्रह्म और जीव मे बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव है। ससार दर्पण है। इसमे ब्रह्म का प्रतिबिम्ब १ लोक तुम जो कहत ही नद के नदन, नद कही धू काकौ रे । २ लोग कहे गोबरधनधारी | ताकौ मोहि अचभौ भारी | अष्ट कूली परबत जाके पग की रैना | साती सागर अजन नैना) ३ ब्रह्मा खोजि परयो गहि नाह । कहै कबीर वै राम निराल | डे भजन को परताप ऐसो, तिरे जल पाषान | अधम भीछ अजाति गनिका चढे जात विंवान | ५ निगम जाकी साखि बोले, कहै सत सुजान ।

५८ कबीर समग्र जीव है। दोनो एक है। कितु यह बात जीव को समझ में नही आती है। सशय बना रहता है। यह सशय तब मिटता है जब महाप्रल्य मे सारे तत्त्व एक हो जाते है। सव मिलकर एक ही रह जाता है ।१ ' पुराण अपनी बात को वेद, उपनिषद्, स्मृति आदि द्वारा प्रामाणिक बताने के लिये आरभ में! ही कहते है- श्रुति सम्मितम् (महा०हरि०पर्व १/२७)। इद भागवत नाम पुराण ब्रह्म सम्मितम्। सर्व वेदेतिहासाना सार सार समुद्धृतम् (भा० १/३/४०-४२) | अब कबीर साहब का देखिएकबीर कहै भें कयि गया, कदि गये ब्रह्म महेश ! राम नाम ततसार है, सब काहू उपदेस | इसमे ब्रह्म तो स्पष्ट ही ऊपर उद्धृत भागवत का ब्रह्म है। आध्यात्म रामायण और मानस की कथा महेश कहते है। भागवत मे भी शिव रामभकत के रूप में आये है “सब काहूं उपदेश' मे ऊपर के 'सर्व! का अनुवाद है। इसी को तुलसीदास 'नाना' शब्द से व्यक्त करते है| सत कबीर बार-बार अपने को दासो का दास कहते हैंकहहिं कबीर दासन के दास, काट्टू सुख दे काहू निरात र् 3 मं जप कवीर घेरा संत का दासनि का परदास। तुलसी राम से अधिक रामदास को महत्त्व देते हैं। अध्यात्म रामायण में सुतीक्षण अपने को तव दासदास (भगवान के दासो के दास) कहते है। नारद ने कहा- मैं आपके भक्तों के भक्त और उनके भी भक्तो का दास हूँ. २ आदिपुराण मे भगवान ने कहा है--मेरा भक्त भक्त नही है। मेरे भक्तो का जो भक्त है सही मे वही मेरा भक्त है |३ | ज्यों दरपन प्रतिव्यव देखिए, आप दवासूँ सोई | ससो मिट्यौ एक को एके महाप्रड़ै जब होई । २ जह ल्वद्भक्तभक्ताना तद् भक्ताना च किकर |-आध्यात्त०१/१/३० ३ ये मे भक्त जना पार्थ ! न मे भ्ताश चते जना । मद्भक्ताना च ये भक्ता मम भक्तास्तु ते जना |

एक की अनेकता वेदांत की स्थापना स्पष्ट है--ब्रह्म एक है। इस एक से अनेक दीखता है। एक ने ही अनेक विस्तार किया है। सत इसे एक ब्रह्म का पसारा (प्रसार) कहते है। एक ने अपनी अनिर्वचनी माया के द्वारा यह सब प्रसारित किया है। माया ब्रह्म की शक्ति है। कितु साधारण नही असाधारण शक्ति है। इस पर साख्य के प्रकृति पुरुष का प्रभाव है। साख्य प्रकृति और पुरुष दो, अलग अलुग और स्वतत्र मानता है। साख्य का अर्थ है बुद्धि, ज्ञान। कहना यह कि वेदात का मूल ज्ञान भी प्रकृति पुरुष वाला है। कितु उसे इससे सतोष नहीं है। उसने प्रकृति पुरुष से भी आगे, बढ़कर एक ऐसी चेतना की खोज की जो दोनो का नियत्रक है। दोनो से परे, ऊपर और विलक्षण है। यह नियत्रक भ्रकृति से काम तो लेता है। कितु प्रकृति से अलग, मुक्त, नि.सग, निर्ठेप रहता है। प्रकृति उसे प्रभावित नही कर सकती। प्रकृति उससे बहुत कम दर्जे पर स्थित है। इसलिये भी कि प्रकृति बदलती है। अस्थिर है। फैलने और सिमटनेवाली है। इसका प्रसार और सकोच होता है। कितु ब्रह्म सदा एक रस और अखड रहता है। प्रकृति स्थूल है। ब्रह्म सूक्ष्म है। इसलिये सारा इद्रिय गम्य, इद्रियो से ज्ञात होनेवाला प्रकृतिपरक हैं। अत नाशवान् है। सत्य नही, मिथ्या है। इसके मुकाबाले ब्रह्म अपरिवर्त्तनशील और अत्यत सूक्ष्म है। किसी भी स्थूल से उसे समझाया नहीं जा सकता है। इद्रिय सवेदना से मुक्त होने पर ही उसका बोध होता है। वैज्ञानिको के सारे यत्र इद्रिय सवेध को पकड़ पाते है। कितु इद्रिय सवेदना से परे ब्रह्म को समझने का कोई यत्र न बना है। न बनेगा। इसे समझने का यत्र स्वय उसी ने बनाया है। विचित्र है यह यत्र, जहाँ सारे यत्र समाप्त हो जाते है। अपनी शक्ति खो देते है। वहाँ से इस यत्र का कार्य प्रारभ होता है। सच्चाई तो यह है कि यह कोई यत्र है भी नही। यत्रहीनता का यत्र है। यत्र का नाम रूप इसे व्यक्त करने मे भ्रम पैदा करता है। यह कोई यत्र नही है बल्कि सब यत्रो का विराम है। ब्रह्म को जानने का यत्र स्वय ब्रह्म है। ब्रह्म को जानना हो तो ब्रह्म बन जाइए। ब्रह्म बनने के साधन मौजूद है। यह साधन भी कोई बाहरी नही है। क्यो बाहरी नही है ? इसलिये कि बाहरी मे तो अनेकता है। बहुरूपता है। किसको ले ? किसको छोड़े ? इस लेने-छोड़ने से भी क्या होगा ? सारे प्रयल व्यर्थ है। ब्रह्म तो भीतर है। सर्वत्र है और सबमे है। तो इसे भीतर देखो। अपनी वृत्तियो, इच्छाओ, कामनाओ, भावनाओं को भीतर हे जाओ। बाहर देखना हो तो सर्वत्र उसी को देखो। उसी मे सबको देखो, और कुछ मत देखो। अनेक नही एक देखो। एक को जानो। सब पता चल जायगा-कबीर एक न जानई, सब जाने क्या होय ? एकहि से सब होत है, सब ते एक न होय। सब एक से होता है। सब मिलाकर भी चाहे जितनी कोशिश करो एक नहीं बन सकता है। सारी कोशिशे तो व्यर्थ जायेंगी या फिर वही जायेंगी जहाँ एक है। अभी-अभी बाहर देखने की भी बात थी। बाहर देखने से दो स्थितियाँ पैदा होती है-पहली है नाश। केवढ बाहर-बाहर देखो। सबको प्राप्त करने के चक्कर में कुछ भी नहीं प्राप्त होगा। क्योकि बाहर का तो सब नाशवान् है। नाश की ओर स्थिर है। बढ़ रहा है।

दूसरी स्थिति है बाहर मे भी एक को देखो। एक की खोज करो। बाहर और भीतर को ऐसे देखो जैसे दोनों (५९)

६० कबीर समग्र एक है। एक को एक से, एक रूप मे, एक,की तरह देखो। भीतर कौ बाहर को समान देखो । भीतर भी खतरे कम नहीं है। भीतर भी मैल भरी है। नाना प्रकार की वासनाएँ, इच्छाएँ। शास्त्र कहता है। हर व्यक्ति के छ दुश्मन उसके भीतर बसते है--काम, क्रोध, ठोभ, मोह, मद,मत्सर। चार दिशाएँ है। दुश्मन छ है। चारो दिशाओ के अतिरिक्त दो दिशा और। शायद धरती और स्वर्ग। स्वर्ग की कल्पना भी विषयो वाली है। स्वर्ग देवी मे भी ये विकार हैं। इसीलिये कबीर स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा नही करते। उसकी चर्चा से भी घवराते है | स्वर्ग के कई दोष है-एक तो वह स्थायी नही है। पुण्य क्षीण होने के वाद वहाँ से गिरना पड़ता है। दूसरे यह कि वह कामना-युकत है। और जहाँ कामना है वहाँ मुक्ति नही है। वहाँ ब्रह्म या भगवान् नही मिल्ते। कामना है तो काम की वस्तुएँ लो। ईश्वर तो अकाम, अनिच्छित को प्राप्त होता है। फिर जैसा कि कहा गया है ये छ दुअमन स्वर्ग को भी घेरे है। जब स्वर्ग मे भी ये दुश्मन है तो स्वर्ग प्राप्ति से फायदा ? इसीलिये कबीर की दृष्टि मे स्वर्ग नरक की कल्पना बेकार है। तो इन छ विकारों को जो भीतर हैं।मार डाछो। इनसे मुक्त हो जाओ। ये सूक्ष्म स्थूल दुश्मन सबको परेशान किये है। सभी इससे परेशान है। इनके रहते कुछ नहीं होगा। इनके रहते एक की प्राप्ति को कौन कहे संसार का सुख भी नही प्राप्त हो सकता है। मृगमरीचिका के समान भटकना पड़ता है। किसी को प्राप्त करने के लिये पहले उसे जानना होता है। वेदात और कबीर ने उसे जान लिया है। वह एक है। आग, हवा, आकाश, जल, पृथ्वी आदि के समान। आग, हवा आदि हा नफ५ मे अलग-अलग दीखती है। कितु सब एक है। उपनिषद् इसका अच्छा वर्णन करती है'एक ही आग सारे ससार मे अनेक रूपो मे दीखती है। इसी प्रकार सभी भूतो मे स्थित एक ही परमात्मा सभी मे अलग-अलग भासित होता है |!" यही बात सूर्य, हवा, पृथ्वी आदि के लिये है।* इसी बात को कबीर कहते हैहंम तो एक एक करि जांनां। दोइ कहे तिनही की दोजग, ते नांहिन पहिचाना। एके पवन, एक ही पानी, एक ज्योति संसारा। एक ही खाक घड़े सब भांडे, एक ही सिरजनहारा। एक पर यह जोर इसलिये है कि विविधता देखना आसान है। सभी देख हछेते है। प्रत्येक शरीर मे कितने ही अग है। सभी जानते है। सभी अगो के अछूग-अहुग रूप है। नाम है। ऐसे ही ससार मे जो भी हैं| सब भिन्न-भिन्न रूप नाम वाल है। कितु इस नाम रूप से अलग भी कुछ है। चछती चक्की सभी देखते है। उसमे दो पाट है। कितु ये दोनो पाट व्यर्थ है ।यदि दोनो के वीच में कीठ न हो। खभा ही वह तत्व है जो इन पाटो को उपयोगी बनाता है। पाट दो और कील एक। एक ही शरीर के विभिन्न अग व्यर्थ होते यदि उन्हे चलानेवाला भीतर नहीं होता। कितु शरीर सब देखता है। शरीरी को कोई नही देखता है। बाहर से देखने पर भी शरीर क्या है ? सब तो अग हैं? इनमे शरीर कौन है ? सबके मिलने पर ही एक नाम बना शरीर। कितु इस शरीर को भी दूसरा अरीरी चला रहा है। भूतवादी उसे मन कहते है। कितु वेदात और स॒त मन से भी आगे जाते है। मन भी

मरणशीर्रूरू है। विषयाधीन है। १ अमग्निर्यवैको भुवन प्रविष्टो रूप रूप प्रतिरूपो बभूव। एकस्तया सर्वभूतान्तराला रूप रूप प्रतिरूपो बहिश्च। -कठ० २२/९ कस

एक की अनेकता ६१ वेदात और सत ने ऐसे तत्त्व की खोज की है जो नष्ट नही होता है। वह सबको नष्ट करता है। रखता है। पैदा करता है। इसे कहते है जन्म, मृत्यु और स्थिति। एक की खोज अत्यत महत्त्वकाक्षी योजना है। सभी नाशवान् को खोजते है। उसे खोजते है जो कालदेव की मुट्ठी मे है। कुछ मुख मे है। कुछ गोद़ मे है। कितु वेदात और संत ने इन सबके उस मालिक की खोज की है जो सबको नचाता है। इनका सबंध परम पुरुष से है। पुरुष नाशवानू है। परम पुरुष अनश्वर है। किसी का सबध राजा से हो जाय तो वह प्रजा को क्या समझेगा ? प्रजा तो उसके लिये अत्यत तुच्छ है। वेदात और सत इसी एक को प्राप्त कर मग्न है। आलाराम मे विचरण करते है। दुनिया के सारे भोग इस एक के सामने व्यर्थ है। प्रत्यक्ष जगतू इन्हे मिथ्या ढगता है। क्योकि एक विराट सत्य से साक्षात्कार हो गया है। कितु प्रत्यक्ष जगत की भी अपनी सत्ता है। मिथ्या सत्ता भी एक सत्ता है। स्वप्न मे देखना भी देखना है। >> स्वप्न है वह सत्य सा भसता है। इसी प्रकार ससार भी भासमानू है। मिथ्या का अर्थ यह नहीं कि योगी को चोट नही लगती है। उसे काटो तो खून नही निकलेगा। निकलेगा अवश्य निकलेगा। अब सत उस सत्य और इस मिथ्या मे सतुलन बैठाता है। सत्य के प्रति समर्पित रहता है। मिथ्या को आसक्तिरहित होकर भोगता है। जब तक शरीर है। शरीरी (आत्मा) उसमे विराजमान है। तब तक शरीर की रक्षा भी आवश्यक है। अनेकता के प्रति उदासीनता और तटस्थता ही बरती जा सकती है। उसे बिल्कूल छोड़ा नही जा सकता है। रेल की यात्रा जब तक है तब तक रेल के नियमो का पालन आवश्यक है। हाँ, वह यात्रा का साधन है। यह ज्ञात है कि रेल को छोडना है। यह अतिम नही है। यह गतव्य का साधन मात्र है। इसलिये भी कि वह एक कही अन्यत्र नही है। इसी देह, गेह और लोक मे व्याप्त है। अदर भी है। बाहर भी है। अदर बाहर के आधार पर टिका है। बाहर की शक्ति अदर के देवता के हाथो मे है। बाहर अगर कठपुतली है तो अदर सूत्रधार है। दोनो के समन्वय से ही नृत्य होता है। खाली सूत्रधार क्या करेगा ? किसे नचाएगा ? सूत्रधार के अभाव मे कठपुतली काठ रह जायगी। पुतढी नही बन सकेगी। खाली एक का बोध आदमी को विक्षिप्त बना सकता है। वह प्रत्यक्ष के भूत जगत बी उपेक्षा करने लग जायगा। उसे भूलना नही चाहिए कि इस अनेकता का कारण वही एक है! एक से ही अनेक बना है। अनेक मे भी एक के तत्त्व विराजमान है। अत अनेक की सेवा, प्रतिष्ठा और सवर्धन भी एक की ही सेवा है। अच्छा योगी, सत, महात्मा अनेक की उपेक्षा केवल उसी सीमा तक करता है जिस सीमा मे वह उसे भूल न जाय। वह स्वयं अनेक का एक अश है। अनेक न होता तो वह ही कहाँ होता। एक की इच्छा से ही अनेक हुआ है और है। इसलिये अनेक का बोध बिल्कुल छोड़ना सभव नहीं। उचित भी नहीं। एक को भूलकर अनेक की उपासना बुरी है। ऐसे ही अनेक को छोड़कर एक की उपासना न सभव है, न उचित । लोकजीवन मे केवल एक की बात नही हो सकती है। केवल एक खतरनाक ना बन जायगा। यहाँ अनेकता

आवश्यक है। अनेकता तो है ही। किंतु इस अनुपेक्षणी अनेकता के बीच एक की खोज आवश्यक है। इसीलिये संत अनेक मे 'एक'' और एक से उत्पन्न अनेक का उपासक है। देह रहते जगत और ब्रह्म की एकता आवश्यक है। विरोध है केवल एक और अनेक के बीच। भेद, भ्रम और बिलगाव करनेवाले तत्त्व की। इसी तत्त्व को माया कहते हैं। यह माया ही जगत, जीव और ब्रह्म को अलग करती है। अनेक को एक और एक वे; अनेक रूप को ठीक-ठीक समझने मे बाधक बनती है। माया के कारण ही एक अनेक दीख़ता है। '
इसीलिये वेदात और संत का विशेध न एक से है, न अनेक से। उसका विरोध तो दोनों के ज्ड बीच की माया से है। सत उस घड़े को तोड़ देना चाहता है जिसके कारण समुद्र और घड़े का जल भिन्न दीखता है।

६२ कबीर समग्र यहाँ एक प्रश्न उठ सकता है। क्या कबीर बहुदेवोपासक है ? वे तो अनेक के भी उपासक है। अनेक तो एक ही है। यह भ्रम है। एक और अनेक मे अतर है। एक तो सल है। कितु अनेक मिथ्या है। बालक खेल के लिये घरीदा बनाता है। तो उपासना बालक की होगी। घरींदे की नही। कितु घरींदे को मिटाने का दूसरों को कोई हक नहीं है। यह हक तो उसे ही है जिसने उसे बनाया है। उसने स्व इच्छा से अपनें साधनो से बनाया है। जब तक चाहे खेले। जब चाहे मिटा दे। हम तो केवल उस खेल का आनद ले सकते है। हमारे मिटाने से घरीदा न मिटेगा। मिटा तो वह बालक दुखी होगा जिसके कार्य मे अनावश्यक दखल दिया गया है। इसीलिये वेदात और सत कबीर ससार नही मिटाते। ससार मिटाने की बात सोचते तक नहीं। केवल माया को मिटाते है। इसलिये ससार एक की अनेक सृष्टि है। वह न मिट सकता है। न उसे मिटाने की हमारी सामर्थ्य है। न उसे बनानेवाले की इच्छा के बिना मिटना चाहिए। इसी से कबीर बहुदेववादी नहीं है। केवल यही कहते है कि अनेक मे एक है अवश्य। कितु अनेक को एक नही कहा जा सकता है। देवता अनेक है। कबीर सारे देवी देवता और अवतार अंजन हैअंजन ग्रह्मा संकर इंद, अंजन गोपी संगि गोरविंद। कहे कबीर कोह दिरला जागै, अंजन छाड़ि निरंजन लागै। पुराणो मे भी जिन्होने ब्रह्म को एक देखने की कोशिश की विराट् रूप दिखाया गया। विराट् को एक रूप दिखाया गया। एक के भीतर विराट् है। एक ही विराट है। विराट ही एक है। एक अनेक दन्द्र जैसा भासता है। कितु यह इन्द्र नही है। एक ही सत्ता के आभास है। दर्पण में दूसरा मुख नही है। एक ही मुख दर्पण और दर्पण मे बहुत दीखता है। इस एक को लोगो ने ढाई बना दिया। ढाई की कल्पना कही नहीं है। यह अप्रमाणिक कल्पना है। एक ओकार का वाचक है। प्रेम मे ढाई आखर होता है। कितु प्रेम तो साधन है। साध्य तो राम है। ओकार ब्रह्म का वाचक है। जैसा कि कहा गया है ओकार एकाक्षरी या तीन अच्छरो वाला है। फिर ढाई की कल्पना व्यर्थ है। कबीर सर्वत्र ही एक की बात करते है। तीन भी उन्हे पसंद नहीं। एक तीन (्रह्मा, विष्णु, महेश) हुआ। कितु इस तीन को भी वे माया मानते है। प्रमाणिक पुस्तको मे सर्वत्र ही एक ही पाठ आता हैएक जु अच्छर प्रेम का पढ़े सो पंडित हो। जिसनें राम नाम का एक अच्छर भी जान लिया वह पडित हो गया। पूरा (ढाई) पढ़कर पडित होने मे क्या रह जायगा? पूरा पढ़कर तो सभी पडित हो जायेंगे? ढाई मे प्रेम की तीव्रता नही है। साधना का उत्कर्ष नही है। एक, दो, तीन की परपरा है। कही भी ढाई की परपरा नही है। ढाई की कल्पना अज्ञानमूलक है। सत कबीर एक को प्राप्तकर एकमेव, एक होना चाहते है। इसके बाद कुछ नही!

सगुण संकेत सपूर्ण सगुण झूठा है। निर्गुण सत्य है। कितु बिना सगुण के निर्गुण कहा नही जा सकता हे।१ निर्गुण का आधार सगुण है। सगुण निर्गुणः द्वारा व्युलन्न है। प्रकृति सगुण है। तीन गुणो सत्व, रज, तमवाली है। साख्य दृष्टि से प्रकृति जड़ है। पुरुष के ससर्ग से वह सक्रिय होती है। प्रकृति मे आकर्षण है। चह पुरुष मे इच्छा जाग्रत करती है। यो पुरुष निरीह है। इच्छा रहित है। पुरुष जो कुछ भी करता है वह प्रकृति को, गुण को आधार बनाकर। इसीलिये कबीर प्रकृति को झूठ मानकर भी अभिव्यक्ति के लिये उसका सहारा लेते है। आदमी न हो। उसे 3 न हो तो कोई क्रिया सभव नही। क्रिया के लिये सगुण-साकार व्यक्ति और उसकी इंद्रियो की आवश्यकता है। इसीलिये सगुण का सपूर्ण त्याग सभव नही। शरीर धर्म नही, कितु धर्म साधना का आधार है। ही सत सगुण की उपेक्षा भर करते है। सगुण को व्यक्ति नही मानते। आत्मा ही सब कुछ है। प्रतिबिम्ब के लिये दर्पण या जल चाहिए। जह के लिये उसका आधार घटादि चाहिए। उसी प्रकार शरीर आत्मा का अधिष्ठान है। आधार है। इस अधिष्ठान के अभाव मे आत्मा की अभिव्यक्ति सभव नही। आत्मा के अभाव मे शरीर मिट्टी है। उसे जलाओ, काटो या गाड़ो कुछ फर्क नही पड़ता है। फर्क तो आत्मा के सयोग से पड़ता है। उपाधि या आवरण मे आने पर दुख सुख की अनुभूति होती है। इस आवरण से छूटना ही मुक्ति है। जब तक आत्मा शरीर के आवरण मे है उसे सगुण का सहारा लेना होगा। सत की अनुभूति निर्गुण की है। कितु उसकी अभिव्यक्ति सगुण है। सत कबीर अवतार मे विश्वास नही करते। कितु राजा राम सबोधन बार-बार करते है। राम तो किसी प्रकार समझ मे आ सकता है। कितु यह “राजा” क्या है ? क्या इस राजा शब्द के पीछे सगुण राम राजा की पूरी अवधारणा सन्निहित नही है ? कबीर बार-बार रूपक बॉधते है। किसलिये ? रूपक का उद्देश्य है रूप को और स्पष्ट करना। रूप ही तो सगुण है। निर्गुण रूप नहीं हो सकता। राजाराम भतार है। आत्मा कबीर दुहहन है। राजा राम इस दुलहन के घर आते है। बारात सजती है। भॉवरे फिरती है। यह इतना सगुण हो उठता है कि निर्गुण पार्श्व मे चढा जाता हैं। सामने रह जाती है। राजा राम की दूलह मूर्ति । आत्मा-परमात्मा युगल मूर्ति की साधनाजन्य शादी, परमात्मा से पति-पल्ली के जिस संबध की चर्चा की जा रही है वह सगुण है। सबध शून्य से सभव नही। राजा राम से पति-पतली सबध सामाजिक बन जाते है। सत कबीर ने राम के प्राय वे ही नाम लिये है जो सगुण मार्ग मे स्वीकृत है- गोविद, मुरारी, सारगपाणि, केशव, दामोदर आदि। ये नाम न केवल सार्थक है। बल्कि प्रत्येक अपना देता कु है। इन अर्थो का इतिहास है। न केवल भाषिक बल्कि साप्रदायिक और पौराणिक इतिहास भगवान् की कल्पना ही सगुण मूलक है। सत कबीर ने भगवान् शब्द का एक ही प्रयोग १ सगुन कहूँ तो झूठ निर्गण कथा न जाय । अगुन सगुन के बीच में कबिरा रहा भ्रमाय | (६३)

६४ कवीर समग्र किया हो। क्योकि भगवान् छ ऐश्वर्यों वाठा है। कबीर इन ऐश्वर्यों से बचना चाहते होगे। कितु भगवान् के अनेक पर्याय ओर कर्म है। कबीर के प्रभु भक्तवत्सल है। कृपालु है !? शरणागत रक्षक है |? बैकुठ है। वहाँ जाने से मुक्ति मिलती है २ भजन से नीच ऊँचा हो जाता है। ईश्वर ही परम गुरु है। भजन का प्रभाव सिद्ध करने के लिये सिद्ध भक्तो का उदाहरण देना आवश्यक है। भगवान भक्तों की मदद करते है, अवतार लेकर। कबीर अवतार को अस्वीकार करते है। कितु अवतार के कर्म को स्वीकारते है | राजा अम्बरीष की कथा प्रसिद्ध है। दुवसा ने भक्त राजा अग्बरीष को शाप दिया था। भगवान् ने अपने भक्त की रक्षा के लिये सुदर्शन चक्र को भेजा त्रृषि दुर्वासा की पराजय हुई ।५ ऐसी ही कथा प्रह्नमाद की है। नरसिह अवतार लेकर भगवान् ने भक्त की रक्षा की। एक पद मे सूरदास के समान ही सत कवीर भक्त प्रह्नमाद की कथा के मुख्य अशो को कह डालते है। अत मे कहते है कि खभा से प्रभु प्रगट हुए और हिरनाकुश को नखो से विदीर्ण कर डाला। भक्त के लिये भगवान ने नरसिह अवतार ग्रहण किया। ऐसे ही उन्होंने अनेक बार प्रह्माद का (प्रह्माद जैसे भक्तो का) उद्धार किया है ।६ कबीर के राम सुदर है। इसलिये उनका रूप ध्यान से बढ़कर आँखो का विषय है। वे राम का सुदर रूप देखकर प्रसन्न होते हैं | यह रूपदर्शन अरूप का नही, विग्रहवान् राम का है। कबीर भी तुलसी के समान ससार को दृश्य और प्रभु को द्र्य मानते है। द्रष्म राम ससार को कठपुतली के समान नचा रहा है। न केवल कि यह ससार बल्कि तीनो भुवन उसकी प्रेक्षागृह है। प्रेक्ष्य है। वह नेपथ्य मे भी नेपथ्य के बाहर दर्शक दीर्घा मे भी है ।८ एक स्थान पर 'सारगपानी"' का बहुत अच्छा प्रयोग किया है। सारगपाणि का अर्थ है. जिसके हाथ मे सारग धनुष हो। यह सारगपाणि यम को रोकता है। जरा, रोग, काल, यमदूत है। इनके आने पर वाणी क्षीण हो जाती है। अत कबीर कहते है कि सामर्थ्य रहते सारग-पाणि को भजो। वे इन यमदूतो से तुम्हारी रक्षा करेगे ।* भगवान के रक्षक रूप की चेतना कवीर की भक्ति का महत्वपूर्ण भाग है। कबीर की भक्ति केवल ज्ञान का विषय नही है। ज्ञान के साथ कृष्ण भक्तों जैसी प्रेम व्याकुढता और मिलन-विरह भाव है। तुलसीदास या गीता जैसा रक्षक रूप भी है। स्वय कबीर को हाथी से कुचलवाने की कोशिश हुई थी। कितु प्रभु ने उनकी रक्षा की। प्रभु कृपा से हाथी ने कबीर का कुछ नही बिगाड़ा। उल्टा वह सत कबीर के सामने नम्नर « दीनदयाल कृपाल दमोदर भगतबछल भयहारी | सरनाई आयी क्यूँ गहिये, यह कौन बात तुम्हारी । चलु रे वैकृठ तुमहिं है तारठ, हियहि त प्रेम ताज मारठ | है हरि भजन को परवान । नीच पावँ ऊच पदवी,वाजते नीसान | भजन कौ परताप ऐसो, तिरे जल पायान ! अघम भीढ अजाति गनिका, चढे जात बिवान | राजा अवरीक के कारणि-चक्र सुदरसन जारि। खभा हैं प्रगटयी गिलारि, हिरनाकस मारयौ नख बिदारि | परम पुरख देवाधिदेव भगति हेत नरसिंघ भेव | कहै कबीर कोई लहै न पार प्रहलद उधारे अनिक बार ! ७ खुले नयन मे हंस हँस देखू सुदर रूप निहास | ८ तीन

लोक पूरा पेखनों नाचन चादै एके जना। कहै कबीर ससा करि दूरि त्रिभुवन नाय रहा । ९
जव ढगि जुरा रोग नहिं आया, जब लगि 3 नहि कोया। जब छगि हीन पड़े नहिं बानी, तब छागि भजि मन सारगपानी | ७ 3 0 +9 ट्री

सगुण सकेत ६५ हो गया। क्योकि हाथी के हृदय मे भगवान् का निवास था ।* ऐसी कथाएँ अनेक भक्तों के बारे मे प्रचलित है। प्रह्माद; मीरा आदि को भी अनेक प्रकार से मारने की कोशिश की गयी। कितु प्रभु कृपा से उनका बाल बॉका भी नहीं हुआ। वे त्रिभुवन-परमाल्ा की आरती भी उतारते है। आरती प्रगट देवता की उतारी जाती है। भगवान् की यह ज्योति प्रगट भी है। पत्तो और पुष्पो से पूजा भी करते है ९ इसी सारगपाणि प्रभु से अभयपद का वरदान मॉगते है। वे केवल राम से याचना करते है। क्योकि सभी देवता उनके सेवक है |३ इसलिये कि राम न केवल दीनदयालु है, बल्कि वत्सल भी है | कबीर ससार को उपदेश भी इस कारण दे रहे है क्योकि दयालु ईश्वर ने उन्हे उपदेश देने की आज्ञा दी हैमोहि आज्ञा दई दयाल दया करि, काहू के समझाई। एक पतिव्रता के समान कबीर प्रभु के रूप को आंखों में लेकर झाँप लेना चाहते है। जिससे न वे किसी को देखे, न दूसरे को इस भगवान् के रूप को देखने दे। यह तभी सभव है जब पूर्ण समर्पण का भाव हो। इसीलिये वे सपूर्ण भाव से अपना सब कुछ हरि को समर्पित करते है। क्योकि सब कुछ ही तो ईश्वर का है। अपना कुछ नही है। जब उसी का है तो उसे समर्पित करने मे कौन सी कठिनाई है ।५ इस समर्पण वाले दोहे पर सस्कृत श्लोक-त्वमेव बस्तु गोविद तुभ्यमेब समर्पयामि का स्पष्ट प्रभाव है। यह प्राय भोग छुगाते समय कहा जाता है। दास और साहब का विचार अलग हुआ है। कितु यहाँ देखना यह है कि साहब की दृष्टि से सतो की उपासना मे क्या अतर आया ? असल मे निर्गुण की उपासना असभवप्राय है। अत सतो ने अवतार नही माना। कितु सगुण-साकार भगवान् की जरूरत उन्हे भी पड़ी। निर्गण निराकार का ध्यान स्थायीत्व न पा सका। शिष्य और अनुयाय्रियो को तो एकदम नहीं। स्वय ऊँचे साधको ने भी गुरु को भगवान् मान लिया। सगुण भगवान् का अवतरण मानता है। निराकार शरीर मे साकार होता है। यहाँ भगवान् से भगवान् बनने की प्रक्रिया है। भगवत्ता प्राणियों की प्रार्थना पर उनके कल्याण या स्वलीला द्वारा आनद उत्पन्न करने के लिये अपना प्राकट्य करती है। निर्गुण मार्ग मे भगवत्ता का कार्य गुरु द्वारा होता है। भक्त, शिष्य, अनुयायी अथवा जीव गुरु या उच्च साधक मे भगवत्ता की अनुभूति करता है। गुरु की मूर्ति, विग्रह भगवानू की मूर्ति हैं। गौतम कुछ का एक युवक पहले सिद्धार्थ (सिद्धि के लिये) बना। सिद्धि के बाद बुद्ध (ज्ञानी) बना। बुद्ध से महात्मा बुद्ध। फिर भगवान् बुद्ध | सतो के बारे मे ये ही बाते है। अधिकतर सत आरभ मे साधारण है। कितु साधना द्वारा भागवततत्त्व को प्राप्त कर १ भुजा बाँधि मेला करि डासयो हस्ती कोपि मूड महि मारयौ । भाग्यौ हस्ती चीसा मारी या मूरहि की हीं बलिहारी | ५ ७ हस्ती न तारै धरे धियान बाके हंदे बसे भगवान | २ ऐसी आरती त्रिभुवन तरै, तेज पुज तहाँ प्रान उत्तारै | पाती पच पुहुप करि पूजा, देव निरजन और न दूजा ! तन मन सीस समरपन कीन्हों प्रगट जोति तहाँ आतम लीनॉ | ३ जौ जाचउँ तौ केवल राम | कहे कवीर सुनि सारगपानि, देहि अभै पदु मागउ दान | दीनदयाल क्रिपाल

दमोदर भगतवछत भैहारी | ५ नैना अतरि आवतू नैन झाँपि तोहि हेठेँ, ना ही देखो और कूँ ना तुझ देखन देऊँ | मैरा मुझमे कुछ नही, जो कूछ है सो तेरा | तेरा तुझ को सौपता क्या छागै है मेरा ! ०

द््द् कबीर समग्र लेते है| मदिर, मूर्ति, तीर्थ, पुस्तक और पूजा विरोधी स्वय मदिर, मूर्ति, तीर्थ, पुस्तक और पूजा बन जाते है। सपूर्ण बाह्य चिन्हो और आडबरो को छोड़ने की चेतना देनेवालो के पास ही वाह्य चिन्हो, आडवरोंी और सजावट का चक्र घूमने लगता है। उनके कट्टर संप्रदाय बन जाते ह#ै। सप्रदाय के रख-रखाव के लिये नाना प्रकार के विधि-विधान, छापा तितक, वेश-भूषा गढ़े जाते है। ध्यान रखना है कि ससार सगुण-साकार है। अत यहाँ बिल्कुल शून्य नही चल सकता है। अत प्रत्येक समाज मे किसी न किसी प्रकार के अवतार की कल्पना है) प्राय समाज तीन वर्गो मे बेटा है-सामान्य, विशिष्ट और नेता। ईसा, मुहम्मद, कन्फूशियस, जरथुस्र आदि क्या अवतार नहीं हैं ? क्या छोग इन्हे अवतार जैसा नहीं मानते है ? इनकी अवतारी जीवनी नहीं गढ़ी गयी है ? अवतार चार प्रकार के माने गये है-आवेश, प्रवेश, प्राकट्य एव स्फूर्ति। जैसे आग का पानी मे आवेश एवं छोहे मे प्रवेश, विजली मे स्फूर्ति एवं पत्थर की टंकी से आविर्भाव होता है। आवेश एवं प्रवेश का अवतार तो सर्वस्वीकृत होना चाहिए। लाखो और करोड़ो मे कोई एक ही जब नेता बन जाता है तो निश्चय ही उसमे प्राकट्य एवं स्फूर्ति देखना भी गलत नहीं है। यही कारण है कि न संत कबीर पूर्णत निराकारवादी है, न उनके अनुयायी।

विरला हैं; पुस्तकी ज्ञान के विरोध को ही 'विर' शब्द से समझना है| गीता में कहा गया है'हजारो मनुष्यों में कोई एक साधना करता है। साधना करने वालो में कोई ही परमतत्त्व को जान पाता है ।१ सस्कृत के 'कश्चितः और 'कोडपि'' जैसे प्रश्नवाचक सर्वनामी के लिये ही 'विरला'' या 'कोई विरला'' का प्रयोग होता है। सतो की साधना सार्वजनिक साधना नहीं है। गुरु भी सबको मार्ग नही बताते। सबको शरण मे नही लेते। इसे कहते है 'अधिकारी''। गुरु ही निर्णय करते है कि योगमार्ग, साधनामार्ग का अधिकारी कौन है ? ऐसे मे निर्जीव किताबे क्या करेगी ? यद्यपि सत का मार्ग पूर्णत योग मार्ग नही है। इस मार्ग मे समर्पण और प्रेम का मेल है। कितु समर्पण या प्रेम का सबध भी बाह्य से न होकर अतर मन से है। अत करण से है। कृष्ण ने दिव्य दृष्टि केवल अर्जुन को दी। कौरवो को देने का तो सवाहू नही था। पाडवो मे भी सबको नही, केवल अर्जुन को। अर्जुन जो स्वय कृष्ण है। जय है। विजय है। भक्त और सखा। कृष्ण से इतना जुड़ा है कि स्वयं कृष्णमय है। कृष्ण का प्रतिरूप) कृष्ण ने अपनी इच्छा की पूर्ति के लिये, अपने कर्म के लिये जैसे अपना ही एक रूप अछंग कर रखा है। जिसके चचल अश्वो की ढुगाम उनके हाथ मे है। महाभारत मे अर्जुन ही कृष्ण प्रतिनिधि है। कृष्ण की अनुपस्थिति मे अर्जुन व्यर्थ है। कृष्ण नहीं रहे। कृष्ण ने अपना कृपा हाथ खींच लिया। अर्जुन को उसी के पुत्र बभुवाहन ने मार गिराया। अत मे कृष्ण की पलियो को लेकर अर्जुन द्वारका से हस्तिनापुर लौट रहे थे। बीच मे आभीरो ने उन स्त्रियों को ढूट लिया। अर्जुन देखते रहे। उनके पास वे सारे शस्त्र थे जिन्होने जय युद्ध मे कमाल किया था। सब था। कितु कृष्ण नही थे। कृष्ण के बिना सब व्यर्थ हो गया। अर्जुन दुखी होकर कहते है- वही मेरा गाडीव धनुष है, वे ही बाण है, वही रथ हैं, वही घोड़े है, और वही मै रथी अर्जुन हूँ जिसके सामने बड़े-बड़े राजा लोग सिर झुकाया करते थे। श्रीकृष्ण के बिना ये सब एक ही क्षण मे नही के समान सारशून्य हो गये ।९ कहना इतना ही है कि प्रभु कृपा सबको नही मिलती। वह दुर्लभ है। विरल है। तुलसीदास ने इसे यो कहा है- जनम जनम मुनि जतन कराही, अंत राम कहि आवत नाही |'' तो कया यत्न नही करना चाहिए। यत्न के बिना कोई उपाय भी नही है। कितु फल ईश्वराधीन है। क्या होगा कहना कठिन है। प्रणति ही एकमात्र मार्ग है। सत कबीर बार-बार बिरला' शब्द का प्रयोग करते है। निर्गुण भक्तो के यहाँ यह शब्द अधिक प्रचलित है। क्योकि निर्गुण भक्ति संगुण भक्ति की अपेक्षा कठिन मानी जाती है। जातिपॉति, छुआछूत की निदा करके भी सत कबीर कोई सामाजिक व्यवस्था नहीं बनाते। १ मनुष्याणाम् सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये | यततामपि सिद्धाना कश्चिन्मा वेत्ति तत्तत ॥ ७/३ २ तदी धनुस्त इषव स् रथो हयास्ते, सो5ह रधी नृपत्तयों यत्त आनपन्ति । सर्व क्षणेन तदभूदसदीश रिक्त ॥ १/१५/२१ (६७)

द्८ कवीर समग्र समाज और परिवार की उन्हे चिता नही है। वे व्यक्ति की मुक्ति के समर्थक है। विर्‌ला शब्द तुलसी मे शायद मिले। क्योकि तुलसी की भक्ति सबके लिये है। कवीर की भक्ति भी सबके लिये है। कितु ज्ञान और योग तो किसी विर की साधना है। ज्ञान और योग हजारो मे एक साध सकते है। जो छोग सत कबीर के सामाजिक पक्ष पर विचार करते है, उन्हे समाज सुधारक मानते हैं, उन्हे विरला शब्द को ध्यान मे रखना होगा। सत मार्ग व्यक्ति साधना का मार्ग है। व्यक्ति के सुधार, ज्ञान, उन्नति, उपदेश से जितना समाज कल्याण हो सकता है यही सत कबीर की सीमा है। सत उपदेश इसलिये देते हैं कि समाज सुधरे। इसमे सामाजिक व्यवस्था का निकलना भी स्वभाविक है। उदाहरण के लिये छुआछूत, बलि, हिंसा, यज्ञ, तीर्थ, व्रत, खतना, मूर्त उपासना आदि का विरोध। सभी धर्मो की विसगतियौं बताकर एक निर्गुण-निराकार की उपासना का उपदेश। अपना रोजगार करते हुए थोड़े मे, रूखा-सूखा मे निर्वाह जैसी चीजे उनकी सामाजिकता और समाज सुधार के अग है। किंतु उनके जीवन का असली पक्ष वैयक्तिक साधना और मोक्ष मूलक भक्ति है। इस भक्ति मे सब निषेध है। जो भी प्रभु की प्राप्ति मे बाधक हो उसे छोड़ो | क्योंकि एक ईश्वर के अतिरिक्त सव माया, मिध्या और वधन के कारण हैं। कितु माया, मिथ्या या बधन का अर्थ क्रूरता नही करुणा है। ईश्वर ट्विविध रूप हैं। एक तरफ वह सबसे अलग है। दूसरी ओर सब मे है। सब मे न होता तो हिंसा अहिंसा का सवाल नही उठता। चूकि प्रभु सब जड़-चेतन मे है इसलिये सबके प्रति प्रेम और करुणा आवश्यक है। नास्तिक केवल अपने को देखता है। बहुत हुआ तो अपने वर्ग-वर्ण की चिता करता है। क्योकि उसका अस्तित्व वर्ग-वर्ण पर ही आधारित है। कितु आत्मवादी प्रभु को सर्वत्र देखता है। नास्तिक की क्रिया प्रत्यक्ष है। इसलिये उसका द्रष् और प्रतिबधक भी प्रत्यक्ष है। अपरोक्ष से उसे कुछ लेना देना नही। अपरोक्ष के अभाव मे वह प्रत्यक्ष को धोखा भी दे सकता है। उसकी सामाजिकता चालाकी भी है। जहॉ तक उसकी रक्षा का प्रश्न है वही तक सामाजिकता और उसकी व्यवस्था की चिता करता है। किसी की हत्या से अगर उसकी व्यवस्था नही विगड़ती है तो उसकी हत्या को वह बुरा नही अच्छा मानता है। भूतवादी होने के कारण उसकी सीमाएँ ' है। कभी वर्ण, वर्ग, धर्म, सप्रदाय, देश या कभी अतर्राज्य संबध। कितु संपूर्ण सृष्टि के प्रति करुणा के लिये उसके पास कोई प्रेरणा नही है। इतना ही नहीं सबमे एक चेतन सत्ता को देखने के अभाव मे वह सबके प्रति उदार नही हो सकता है। उसकी करुणा व्यवस्था और सतुलन बनकर रह जाती है। यह व्यवस्था और सतुलन उसे चालक भी बना देती है। विराट चेतना के अभाव मे स्वय को नियता मानने के परिणामस्वरूप वह निर्भय रहता है। अपने राग को सीमित किये रहता है। जब कि आत्मवादी सर्वत्र ही अपने प्रभु का दर्शन करता है। सबके प्रति राग रखता है। प्रभु नि सीम है। अनत है। राग और करुणा भी नि सीम है। अनंत है। संत कबीर का सारा प्रयल इस नि

सीम और अनत की खोज है। उसे प्राप्त करने का उपाय है। यह नि सीम और अनंत जहाँ पूरी सृष्टि और सृष्टि के बाहर है वही प्रत्येक व्यष्टि के भीतर है। जैसे कुछ अक्षरों के आधार पर सारी पोधियो का ज्ञान समझ मे आने लगता है। एक स्थान का स्वाद सपूर्ण शरीर मे फैल जाता है, उसी प्रकार व्यक्ति के अतर स्थित आत्मतत्त्व को समझते ही सपूर्ण सृष्टि का वोध हो जाता है। द्रौपदी के एक बटुए से लाखो लोग भोजन कर सकते थे। वैसे ही अपने भीतर के आत्मतत्त्व की समझदारी और तदाकारिता सपूर्ण सृष्टि से जोड़ देती है। बार-बार 'विरला'' या 'कोई विरला'' का प्रयोग कर कबीर साहब साधना की कठोरता की है सकंत करते हैं। क्योकि उन्हे उस स्थान पर पहुँचाना है जो शून्य है। जहाँ चद्रमा, सूर्य ₹ तारे भी नही हैं। जहाँ बड़े-बड़े मुनि महात्मा भी नही पहुँच पाते है। साधना की दृष्टि से यह ह्ध

विरला ६९ बिल्कुछ ही वैयक्तिक धर्मसाधना है। सामाजिक या भौतिक धरातल पर सर्वधर्म एव प्राणी के प्रति समानता और समन्वय का धर्म है। साधना की अत्यत आतरिक गूढ़ता ही साधक को पुस्तक विरोधी बनाती है। विरला करती है।

एक मनोयात्ना कबीर तेज गाड़ी से दौड़ रहे है। उन्हे कलकत्ते से दिल्ली की यात्रा करनी है। लम्बा मारग दूरि घर। रास्ते मे बहुत सी वाधाएँ है। इसलिये एक्सप्रेस बने है। किसी स्टेशन पर नहीं रुकते। अपने न रुकने का कारण बताते है। उन्हे तो दिल्ली जाना है। राम के यहाँ पहुँचना है। राम जो सबके आधार है। सभी नाशवान् मे वही एक अविनाशी हैं। बीच के सभी देवता, स्टेशन है। कितु राम के यहाँ पहुँचनेवालो को उनसे क्या काम ? वीच के स्थानों पर रुकने से बाधा होगी। देर होगी। हो सकता है यहीं समय बीत जाय। इसलिये सत तेज चलते है। राम के यहाँ। वे राम के दरवारियो को भी कुछ नहीं समझते। राम का कोई दरवारी है भी नहीं। दरबारी की वात झमेला है। कवीर किसी झमेले मे नही पड़ना चाहते। अपनी भक्ति का आत्मविश्वास और गुरु के मार्गदर्शन से किसी को कुछ नहीं समझते। सीधे राम की ओर दौड़ रहे हैं। लोग समझते है। कबीर और स्टेशनों के विरोधी है। कितु कबीर न विरोधी है, न समर्थक। वे इन स्थानो की ओर देखते ही नही। क्यो देखे ? किसलिये देखे ? जो दिल्ली से जुड़ा है, जुड़ना चाहता है वह ग्राम सभापतियो की पूजा क्यो करेगा ? इसीलिये वे ठोक को छोड़ते है। वेद को छोड़ते है। उनका पूर्ण (पूरे) से परिचय हो गया है। राम पियारा छाड़ि के करै कौन को जाप ? हरि सागर है। दूसरे देवता गड़ही है। राम को पूजने वाला राम होगा। भूतो की पूजा करनेवाला भूत होगा (भुतवा के पुजले भुतवा होई) | छोटा मन, छोटी वुद्धि और छोटी साधना के लोग बीच मे रुक जाते है। नाशवानू देवीदेवताओं की पूजा मे छग जाते है। उन्हे पूर्ण का पता ही नही चलता है। कितु कबीर को गुरु कृपा से परम तत्त्व का ज्ञान हो गया है। वे बीच मे नही रुकेगे। वे वीच के विरोधी दीखते है। है भी। इसलिये कि बीच के स्टेशन से गंतव्य तक नही पहुँचा जा सकता है। लोग समझते हैं कबीर सवके विरोधी है। उसका मतलब यह नही कि दूसरे "ठहराव को कबीर स्वीकार नहीं करते। दूसरे ठहराव भी है। कितु उच्च साधना और परात्वर ब्रह्म की प्राप्ति की दृष्टि से वे व्यर्थ है। बाधक भी है। जब दिल्ली जाने का अवसर है तो बीच मे क्यो रुका जाय ? सीधे चढो। एक देव की उपासना करो। बहुदेव भटकाव मात्र है। सत एक को जानते है। एक को जानो। बहुत जानने से क्या फायदा ? एकहि से सब होत है। सब ते एक न होइ। सत उसी एक के यहाँ दौड़े चले जा रहे है। और सब ठहराव छूट रहे है। एक से ही बहुत हुआ है -एकोउहम् वहु स्थाम| एक दिन ऐसा आयगा बहुत -एक मे वींन हो जायगा। बहु मध्य की स्थिति है। आदि अत दोनों ही एक है। जहाँ से, आये है। जहाँ जाना है। वह सब एक है। बहुत 23% उस एक द्वारा निर्मित है। उस एक में समाहित है। सूर्य एक है। चंद्रमा एक है। किंतु हजारो-छाखो घड़ो मे हजारो छाखो दीखता है। प्रत्येक लहर के साथ लहराता है। हर लहर मे दीखता है। अनत लहरों के साथ अनत दीखता है। कितु है वह एक। लहर और घट जल की माया से अनेक दीखता है। एक के बोध का अभाव। अनेक समझने का भ्रम ही माया है। अनेक दीखता भर है। कितु है वह एक। सारी साधना इस अनेक को देखने

के भ्रम का निवारण है। साधनाओ से अनेक के भ्रम का बोध हो जाता है। एक के सत्य का ज्ञान हो (७०)

एक मनोयात्रा ७१ 'जाता है। सत कबीर एक का ज्ञान करते है। कठिन काम है। सरल भी है। इतने बड़े विस्तार को, नानात्व को एक समझना साधारण बात नही है। कितु साधारण और सरल भी इसलिये है कि लहर और घट जल का उदाहरण मौजूद है। किसी भी शरीर को देखिए। अनेक इद्रियाँ। आजकल लोग कहते है मन भी कई है-दो या तीन। पुराने लोग अत करण को चार भागो में बोंटते' है -मन, चित्त, बुद्धि और अहकार। और भी बंटवारे है। कितु है सब एक के अधीन। व्यक्ति तो एक है। अभिव्यक्ति एक की है। कबीर इसे ही आत्मा कहते है। आत्मा सच है और सब झूठ है (आतमराम बिना सब झूठा)। इसलिये कि नाना दीखनेवाला उसी एक का विस्तार है। नाशवान् विस्तार है। एक तो सदा रहेगा। नाना का नाश हो जायगा। संत इस विस्तार को छोड़ रहे है। विस्तार मे बने जगह जगह के ठहराव, पड़ाव, स्टेशनों को छोड़ रहे है। अब ये ठहराव, पड़ाव कौन से है ? पहला पड़ाव और असली पड़ाव है देहगेह। सुत दारा। तीन एषणाओ मे काम (स्त्री) और पुत्र की एषणा महत्वपूर्ण है। प्रत्येक व्यक्ति कामतुष्ट होना चाहता है। काम से सतान चाहता है। देह के बारे मे स्पष्ट है। कबीर साहब देह को अस्वीकार नहीं करते। कितु इस ठहराव की सेवा नही करना चाहते है। वे जानते है कि यह ठहराव कभी भी नष्ट हो जायगा। इस ठहराव को उन्होने जर्जर या छेदो वाली नाव कहा है। इस पर कभी भरोसा नहीं करना चाहिए। भरोसा तो दूर इसे विभिन्न सुगधित वस्तुओ से सजाना भी नही चाहिए। शरीर को मोटा भी नहीं करना चाहिए। घी आदि खाने से शरीर मोटा होता है। भैस जैसा शरीर लेकर क्या होगा ? मोटे शरीर से भजनभाव नहीं हो सकता है। धम्मपद मे आया है कि सूअर के समान लोटने से मुक्ति नही मिलती है। इसलिये शरीर को सयम मे रखते है। शरीर के सभी विकारों पर अकुश रखते है। देह (शरीर) के बाद है गेह। स्त्री, पुत्र, धनदौलत की ममता। कबीर साहब इन्हे भी अस्वीकार करते है। कोई सपत्ति नही इकट्ठी करते। क्यो करे ? किसके लिये करे ? अपनी जरूरते अत्यत सीमित है। परिवार या तो है नहीं। है तो उसे भी अत्बल्प में जीना है। अत्यल्प। कोई सग्रह नही। घर से आगे बढ़िए। अनेक देवी-देवता पूजा लेने के लिये खड़े है। कुलदेव, ग्रामदेव, पत्थर, मिट्टी, बालू, धातु आदि के देवी-देवता और देवमूर्तियाँ। उसके बाद आते है अनेक प्रकार के अवतार। सारा ससार मूर्तिपूजा और अवतार पूजा मे उलझा है। आकार साकार की उपासना करता है। अवतारों को भगवान मानता है। भगवान् को अवतारी मानकर पूजा करता है| कबीर कहते है-मूर्तियों मे भगवान् नही है। अवतार भी भगवान् नही है। भगवान् का कोई अवतार नही होता है। अवतार के साथ है तीर्थ, व्रत, रोजा, हज, नमाज आदि। कबीर इन्हे भी अस्वीकार करते है। केवल नाम जप को स्वीकार करते है। शायद इसलिये नाम शब्द है। निर्गुण के अधिक समीप है। जैसा कि तुलसीदास कहते है-नाम सगुण-निर्गुण दोनो के बीच है। दोनो को जोड़ता है। दोनो का साक्षी है। यह नाम ओकार का पर्यायवाची है। कबीर साहब शब्द को स्वीकार करते है-जे बेघे गुरु

अक्खिरा। नाम ही गुरु का अक्षर है। नाम जप भी अनाहत उच्चारण है। कबीर साहब मे आहत उच्चारण की कल्पना नहीं है। अनाहद नाद। नाम स्मरण, नाम रट से भीतर स्फोट होता है। वेदो, तत्रो मे अनेक शब्द है। केवल ध्वनि है। स्फोट वाले। वे अर्थ नही केवल ध्वनि से प्रभाव उत्पन्न करते है। उच्च कोटि के वाद्यो मे केवल ध्वनि होती है। ध्वनि सगीत का आधार है। ध्वनि सगीत से बहुत से कार्य होते है। कितु कबीर का ध्वनि सगीत अनाहत है। भीतर होता है। जप की, योग की, साधना, ध्यान आदि की प्रक्रिया बाहर से भीतर की ओर है। ऐसा एक पड़ाव है शास्त्र का अध्ययन। पुस्तकी ज्ञान। सत कबीर इस पड़ाव को भी

७२ कबीर समग्र अस्वीकार करते है। छोक-वेद की कोई मर्यादा, वधन उन्हे स्वीकार नहीं है। यह बात प्रायः सभी भक्तो के बारे मे है। तुलसीदास मर्यादा वाले है। शास्त्र वाले है। किंतु जिनका राममक्ति से विरोध है उन्हे वे एक क्षण भी स्वीकार नहीं करते। ज्ञान वही है जो रामभक्ति युक्त हो। राम भक्ति को बढ़ानेवाठी हो। उन्हे केवल राम नाम का भरोसा है। राम नाम के अतिरिक्त कही विश्वास नही होता। राम नाम के कारण ही पड़दर्शन तथा वेदों का अध्ययन नहीं करना पड़ा। व्रत, तीर्थ, तप, योग, जप, मैँहगे यज्ञों से बचे रहे। क्योंकि राम नाम ही सत्य है। [१ श्रीमद्भागवत मे कृष्ण की वशी ध्वनि सुनकर गोपियाँ अपने घरो से निकल आयी। सारे धर्म कर्म छोड़ दिये। यहाँ तक कि कृष्ण ने उनका वस्त्र भी उतरवा लिया। सभी प्रकार की ममता ओर मर्यादा से मुक्त गोपियों ने ही कृष्ण को प्राप्त किया। भगवान के सामने सभी मर्यादाएँ छोटी है। हीन है। इसीलिये सभी भक्त केवल राजा राम की राजधानी पहुंचना चाहते हैं। सत कबीर वार-बार राजा राम की चर्चा करते है। वही दोड़ रहे हैं। बीच में कही रुकना नही है। सतगुरु ने रास्ता बता दिया है। गाड़ी पटरी पर दोड़ती है। सत सतगुरु द्वारा बताए मार्ग पर दौड़ रहे है। सत केवल सतगुरु को प्रमाण मानते है। एक प्रमाण। सतगुरु प्रमाण। और अत मे है अत प्रमाण। सतगुरु प्रमाण ओर अत प्रमाण मे विरोध नहीं है। क्योकि दोनों की प्रमाण का आधार शास्त्र नही, स्वानुभूति है। स्वमाधना है। चित्तवृत्तियो के निरेध द्वारा आत्मतत्त्व के बोध की साधना है। आरभ में योग साथ देता है। आगे केवल प्रणति हे। समर्पण है। कबीर साहव ने योग द्वारा वृत्तियों को सगठित किया है। किंतु यहाँ भी वे रुकते नहीं। ज्ञान या योग का पड़ाव कुछ देर के लिये है। जाना तो है वहाँ जहा मात्र समर्पण है। प्रपत्ति है। केवल देना है। वे राम का कूता (कुत्ता) वन जाते हैं। इसके लिए कोई वेश भी नहीं बनाते। दाढ़ी बढ़ाना, जगा रखना, भस्म लगाना, गुफा में बास करना, चदन, छापा, माला, कठी कुछ भी उन्हे स्वीकार नही है। वे तो सब छोड़कर दोड़ रहे हैं। वे जहाँ जा रहे है वहाँ बाहर का कुछ जा भी तो नहीं सकता है। वह स्थान अत्यत सूक्ष्म हे। उसे स्थान कहना भी ठीक नही। वह तो आसमान है। शून्य है। वहाँ तो शून्य वनकर ही जावा जा सकता है। पानी में पानी मिलता है। हवा मे हवा मिलती है। तो सूक्ष्म मे क्या स्थूल मिलेगा ? इसीलिये कवीर किसी सप्रदाय मे नहीं जाते। सभी सप्रदायों की उपासना को गह्य मानकर अपूर्ण कहते है। क्योकि जिस उपासना से प्रभु की प्राप्ति होती है वह उपासना तो केवल अनुभूति का विषय है। उसे कहा नही जा सकता है। राजधानी पहुँची गाड़ी छोट नहीं सकती। राजधानी का अनुभव दूसरों को कैसे बताया जाय ? यह अनुभव तो एकाकी है। एक का है। एक का, एक द्वारा, एक के लिये, एक भाव का है। यद्यपि कबीर राम नाम के उपासक है। दूसरे नामो से भी उन्हे परहेज नहीं है। राम के ही अनेक नाम है। अल्ला, खुदा भी उसी का नाम है। नाम भी तो एक पड़ाव है। लोग नाम के ठहराव को लेकर लड़ते है। मदिर, मस्जिद आदि के ठहराव को लेकर हल्ला मचाते है।

कबीर गा जे राम चुन लिया है। यो उन्हे किसी भी नाम पर एतराज नहीं है। नाम तो प्रतीक
१ विश्वास एक राम नाम को | मानत नहि परततीति अनत ऐसोइ सुभाव मन वाम को ।
पढ़िवो परुयो न छठी छमत कऋ्रगुजजुरअ अथर्वन साम को। ब्रत तीरथ, तप सुनि सहमत
परि मरै करै तन छाम को ? करमजाह कलिकाल कठिन आधीन सुसाधित दाम को ।
विनयपत्रिका १५५॥

एक मनोयात्रा ७३ | अब सवाल है कि इस बिना रुके भागनेवाली यात्रा से वे जाना कहाँ चाहते है। यह कहा जा चुका है कि वह राजा राम की राजधानी है। जहाँ राम रहते है। कहाँ रहते है राजा राम ? कहाँ है राजा राम की राजधानी ? इसका उत्तर बड़ा विचित्र है। राजा राम की राजधानी कही दूर नही है। भागते-दौड़ते सत कही दूर नहीं जाते। अपने भीतर जाते है। इद्रियो की प्रवृत्ति बहिर्गत होती है। मन बाह्य विषयो की ओर दौड़ता है। सत उन्हे भीतर दौड़ने के लिये मजबूर , करते है। असाधको के लिये भीतर कुछ नही है। जैसे बाहर से किसी के सिर दर्द का ज्ञान नही होता | 'केवढ रूप देखकर किसी का पाडित्य नही समझा जा सकता। उसी प्रकार बाहर से भीतर का विस्तार नही समझा जा सकता है। बड़े-बड़े विद्वानो की विद्या, अनेक शास्त्रों का धाराप्रवाह ज्ञान कहा होता है यह किसी को पता नहीं। कितु वह होता है। इससे पता लगता है कि भीतर अनंत शक्ति है। विश्वरूप- की कल्पना केवल भगवान् मे ही नही मनुष्य मे भी है। मनुष्य शरीर से जेल मे रहता है, कितु मन विश्वभ्रमण के लिये दौरे पर रहता है। योग की साधना का कबीर को यह फल़ मिला है कि वे भीतर की अनत सभावनाओ से परिचित हो गए है। सगुण भक्तों को भगवान् दिव्य दृष्टि देकर अपना रूप दिखाते है। कभी कभी स्नेहवश भी कौशल्या और नदरानी यशोदा को दिखा देते है। इस दिव्य दृष्टि को कबीर ने साधना द्वारा, योग द्वारा प्राप्त किया है। प्रभु कृपा भी कहिए। उन्होने दिव्य दृष्टि से घट-घट मे स्थित राम से साक्षात्कार कर लिया है। घट-घट वासी राम को पाने के लिये ही सत की अ है। मन को घटवासी राम की खोज मे लगाते है। मन मन मे समाता है। उनमन होता है। कहे कबीर मन मनहि समाना। तब .आगम निगम झूठि करि जानां। बाहर खोजत जनम गँवाया। उनमनीं ध्यांन घट भीतरि आया। कबीर का मुख्य क्षेत्र भीतर है। मन है। मन को मारते भी है। चलाते भी है। उनूमन भी करते है। असल मे भीतर मन ही सब कुछ है। मन को वश मे कर लीजिए सब ठीक हो जायगा। मन ठीक करना कठिन होता है। क्योकि मन अत्यत चचल है। यही द्वैत और दुविधा का कारण है। यह हर स्टेशन पर रुकता है। इसे राजा राम के यहाँ पहुँचने मे कोई रुचि नहीं है। कितु तैयार तो करना ही होगा। मन से मन की तैयारी। इस दृष्टि से यह यात्रा मन से मन की यात्रा है। एक मन से दूसरे मन मे जाना भी नही है। मन दो नहीं है। मन एक है कितु इस मन मे विकार बसा है। इस विकार को हटाना है। मन का विकार मन ही हटाएगा। जैसे हाथ की मैल हाथ ही साफ करता है। आँख को ऑख ही देखती है। सीधे नही, दर्पण द्वारा हा ही मन मेन को रोकता है। गुरुदेव माध्यम बनते है। वे साधना मार्ग बताते है। कृपा करते | यह यात्रा कही जाने-आने वाली न होकर भी अत्यत कठिन है। बार-बार बाधाएँ आती है। जितने देवी-देवताओ और प्रोभनो के नाम गिनाए गए है सभी इस यात्रा को रोकने की कोशिश करते है। किंतु सतगुरु की कृपा से यह रास्ता निर्विष्न समाप्त होता है। राजा राम की राजधानी मे पहुँचा व्यक्ति कभी हौटता नही। ताकर आवागमन न

होई। प्रत्येक यात्रा मे कुछ साथ लेना पड़ता है। इस यात्रा मे सब छोड़ना होता है। यह छोड़ने की यात्रा है। ससार को छोड़ो। परमात्मा को पकड़ो। जीव को ब्रह्म के पास पहुँचा दो। इसे ही कबीर अनेक ढंग से कहते है। कभी राजा राम 'भतार' आते है। कभी स्वयं उसकी शरण मे जाते है। जीव और ब्रह्म मे विम्ब प्रतिबिग्ब भाव है। मन दर्पण विषय की मैल हटाकर साफ कर दीजिए। प्रभु स्वय प्रतिबिम्बित होने लगेगा। कही आने जाने की जरूरत नही है। किंतु मन दर्पण को साफ करना असान नही है। इस पर जाने कितने जन्मो के सस्कारों की मैढ बैठी है। लगातार

छ्४ कबीर समग्र साधना यात्रा से ही यह मैठ मिट सकती है। यह मिटते ही साधक देखता है कि वह तो वहीं खड़ा है जहाँ उसे जाना है। ख्न का आदमी कही न आ जाकर भी सर्वत्र जाता है। सब कुछ करता है। लेकिन सव केवल मानसिक विकार है। तो यह यात्रा भी मन से मन की यात्रा है। से! मे" की यात्रा है। मन मे मन की यात्रा है। माया मन को छोड़ ब्रह्मप्राप्ति की यात्रा है। इस यात्रा के सबध मे उपनिषद् कहता है.... आसीनो दूरं ग़जति शयानो याति सर्वतः ।-कठ० बैठा दूर जाता है। सोया सर्वत्र जाता है। इसीलिये कहा गया है कि बिना पैर के चल्ता है। बिना कान के सुनता है। विना हाथ के अनेक प्रकार के कर्म करता है। बिना मुँह के सारे रसो का भोग करता है। बिना जीभ के बड़ी-बड़ी बाते करता है। उसके सारे कार्य अछोकिक होते है। शरीर के बिना स्पर्श करता है। अखो के विना देखता है। नाक के बिना संब साँघता है। मतछ्व यह कि उसके सारे कार्य इद्रियातीत होते है। जैसे ब्रह्म निर्गुन निराकार है। इद्रियारहित है। वैसे ही साधक योगी इद्रियर्हित होकर उस तत्त्व को जानता है। उसका रस नेता है। इस प्रक्रिया को सूक्ष्म से सूक्ष्म की यात्रा कहते हैं। जेन नगे रहते हैं। योगी नाक कान छिंदाते है। मजूषा पहनते हैं। कुछ सप्रदाय आसन साधते हैं। चंदन, भस्म लगाते हैं। कबीर साहव सबको छोड़कर आगे बढ़ जाते है। दाढठी तो बकरे को भी होती है| या केव इद्रिय सयम ही पूर्ण नही है। कितु इद्रिय सयम भी आवश्यक है। कबीर साहब ने लक्ष्य किया है कि वेद कितेव व्यवहार और लोकाचार कहते हैं ।१ आत्म ज्ञान से इनका कोई सबंध नहीं है।२ १. बिनु पद चै सुन बिनु काना। कर बिनु करम करे विधि नाना । आनन रहित सकठ रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी | तन बिनु परस नयन विनु देखा | गे प्रान बिनु बास असेया । -मानस ।9।११ ८ २ तायें कहिए लोकाचार, बेद कतेब कर्य व्यौहार |

ससार भोग है। भोग कर्म) बिनी के भोग कैसा या कर्म क्षेग॥ भोग हीं भोग की संसार देना योग हैं उल्टे इस भोग को? इस संसार को? क्यों कषोग बुरा है ? कि भोग संसार का जहाँ तक सं्सीरे है। (वहाँ तक नह कक उस भा रह है दस है शुतवा स्थिरता खोज की सज्ञा यीत है। जब संसार की स्वभाव ही भागनेवाल है। सरकनेवाली है तो स्थिरता की खोज अप्राकृत नहीं है। इस अप्राक्र्त के पीछे क्यों झुगा जाये ? उलय काम करने से फायदा 7 आखिर , पागल कहते किसे है ? जो नियम से न चले। व्यवस्था में न् रहे। उलट करें। कितु स्थिरता आवश्यक सरक के लिये लिये। उसे पाने के लिये जिसने इसे बनाया हैं। जो इसके मूल में है। मूल सत्ता या मातृ-पितृ सत्ता की खोज में। कितु यह होगा कैसे ? क्योंकि भोगनेवाला स्वैंये अस्थिर हैं। वर समझता है वह दूसरों को खा रहा हैं। भोग रहा है। कितु पीसनेवाठी चक्की खुद भी घिस रही हैं। पिस रहीं है। गेहूँ के साथ पत्र क्षी पिस रहा हैं। झोगनेवाल भोगा क्षी जा रहा हैं। वह एक साथ ही भुक्त हैं। हर आदमी भोगना चाहती है। भुक्त नहीं होना चाहता। बाद ही पलटी खोन करता है। कक चह जो है। किंतु पत्थर की पिसतें, दोनो से अलग है। योगी है कह जो दुनिया की दृष्टि में पादड ता बनी से के बीच तारधय बैठान चाहे कक ठहरे। कुछ चढें। स्थिरता। पिसते गेहूँ और पत्थर ५ तट्स्थ ै। कह अरे है। सहारा न होता तो पर पीसमे-पिसने की क्रिया न होती। योगी इस लौह स्कम को देख रहीं को पहचान रहा है है। न गेहूँ। ने आदा। न पत्थर। इनके बीच इतना सू आकाश स्ध् एक तत्व हैं। भूत और महाभूत हैं। इ्रियगम्य है। कितु खँभे की जानकारी कठिन है। एक हीं खभा हममे तुममे खंडग खरे में है। इसे कौन देखेगा ? किसे इसकी अनुभूति होगी? वहीं साधक उलदा देखती है। सभी सोते है। वह जागता है। सबके हँसने पर रोता डै। रोने पर हँसता है। मछली का स्वभाव है पानी के उल्टे चलना। सब नहीं है। संत हा है "ली हा की जय सकल बी है! है| संस से देखते है। योगी अतीद्रिय देखता हैं। इंद्रियो से देखा, सुनी समझा, संब मिथ्या है। सत्य को देखने-परखने उसकी कसौटी दूसरी है। क्या है ? वह जानता है। बता नहीं सकता। बताना इंद्रियकर्म है। 3253 है। उल्य की बताया नहीं जा सकता है। बताने की भाषा भी उल्टी है। । सृध्ि मे चौरासी राख जीवयोनियाँ है। उनमे भीड़ केवल मनुष्य के पास है। साथर्क भाषा। अन्य जीवो के पास केवल ध्वनियोँ है। शॉर्थिद उनका अर्थ से सर्बध नहीं है। मतठब (७५)

छद्द कबीर समग्र यह कि भाषा कितनी छोटी चीज है। बड़ी भी कह सकते हैं क्योकि यह केवल मनुष्य को मिली है। जो हो, इतना कहना पड़ेगा कि मनुष्य को भी यह पूर्णता मे नहीं मिली है। जैसे तोता रटाए गए शब्दों का उच्चारण करता है। वैसी ही स्थिति मनुष्य की है। मनुष्य भी वह सब नहीं कह सकता जो वह सोचता है। अनुभव करता है। कहेगा भी तो अपूर्ण कहेगा। फिर जो तत्त्व उसके अनुभव से परे है। मन के भी वाद की अनुभूति है।उसे वह कंसे कह सुन सकता है? भाषाविज्ञानी कहते हैं कि भाषा सामाजिक अभिव्यक्ति है। सामाजिक अर्थात् समूह की। याद रखिए, समूह या भीड़ मोटी बातों को समझने की ही क्षमता रखती है। समूह की मानसिकता बाहरी एवं स्थूढ होती है। ऐसी स्थिति मे जो तत्त्व बाहरी तो क्या भीतरी इद्रियों से भी परे हैं उसे भाषा कैसे कह सकेगी ? भाषा के सभी साधन जीभ, कान आदि तो बाहरी है। सत इसे उलटना चाहते है। शायद कुछ काम बने। आखिर उपाय भी क्या है ? जो भी धोड़ा बहुत हो सके, वही ठीक। योगी उल्टवाँसी का प्रयोग करता है। उल्टी भाषा। कितु उससे भी कुछ वता नही सकता। सबके वश का रोग नहीं। अनुमान भी वही कर सकता है जो उठ्टे रास्ते पर हो। सीधी राह वाला अनुमान का अधिकारी नहीं है। यह अनुमान तर्क के अनुमान प्रमाण से भिन्न है। अनुभूति मूलक है। योगी की दुनिया उल्टी लगती है। इसकी जड़ ऊपर है। शाखाएँ नीचे है। उर्ध्व मूलमधः शाख | सब वहाँ पहुँचना चाहते है । जहाँ कुछ हो। कितु योगी शून्य में पहुँचता है। आकाश मे। उसका आदर्श शून्य है। वस्तु नही। अवस्तु | राग नहीं। विराग। स्थूल नही। सूक्ष्म। इस शून्य मे ही शायद उस पेड़ की अत्यत सूक्ष्म जड़ है। सद रेतस को नीचे ले जाने की व्याकुलता मे है। योगी उसे ऊपर ले जाता है। उध्वरिता। मोह, माया, ममता, सबके उल्टे वह निवृत्ति का उपासक है। ससार से दूर एकात दोजता है। किताबो को बुरा मानता है। पुस्तकी ज्ञान व्यर्थ है। खराब है। झञान पन्ना पलटने में नहीं है। चित्त का ससार से पलटने मे है। जो जितना पल्टेगा उतना ही ज्ञानी होगा। ज्ञान बाहर नहीं भीतर है। यह ज्ञान विद्या, वेद, पुराण, कुराण एवं किताबों मे नही है। इसीलिये किताबे भटकाती है। वेद तो वेद्य को बताते है। कितु सत्य तो कुछ ओर है। और उसे कोन बताएगा ? अच्छा ससारी भी उलट करता है। समाज सेवा के लिये अप्नी सेवा बद करनी होती है। बड़ा बनने के लिये छोटो को प्यार करना चाहिए। शायर, सिह, सपूत लीक छोड़कर चलते है। सिर शासन स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है। अको की गति उल्टी होती है। अकानाम् वाम को * गति | परिवर्त्तन उल्टने का नाम है। सत्ताएँ कई प्रकार की होती है। सर्वप्रथम मन की प्रवृत्ति को, विचारों की बदलना होता है। विषय से उल्टकर वैराग्य की ओर ले जाना पड़ता है। विद्वान, चितक, बौद्धिक पागल कहे जाते है। क्यो ? इसलिये कि वे प्रचलित मान्यताओं के विरुद्ध सोचते है। लोक-वेद दोनो की स्वीकृत अवधारणाओ को छोड़कर बिल्कुल नया सोचते है। इसी मे भारत का वाममार्ग बदनाम हो गया है। उल्य सोचा भी। उल्टा किया भी। फलत वे समाज

से बिल्कुल कट गए। उलटना सोद्देश्य और साधार होना छाहिए। वरना वह बेकार हो जाता है। उल्टा सोचा तो ठीक। उल्टा चलने से गड़बड़ी आ गयी। गोल दुनिया में सीधा चलना भी उल्टना है। कोई भी कितना सीधा चले उसे उलट जाना होगा। सूर्य के उल्टने से रात-दिन बनते है। काल गति बनती है। देश काल की स्थिति और आकार बदलते है। इसीलिये ससार विरोधी रसो का सगम है। पैर सिर का सहयोगी है। आधार है। कितु लोग उसे उल्टा मानते है। राम और काम उल्टे है। सहयोगी भी है | ससार किसने बनाया? राम ने या काम ने ? कहना कठिन है। आयद दोनो ने। सत हे छोड़ने का उपदेश देते है। कितु काम को छोड़कर कहाँ जायेंगे ? राम के यहाँ भी काम | । काम न होता तो राम सृष्टि क्यो रचते ? काम बुरा नहीं है। बुरा है काम को राम मान

सब उल्टा छछ हेना। तुलसीदास ने प्रारभ मे यही गछती की थी। काम को राम मान लिया था। सभी लोग यही गलती करते है। काम को राम मान लेते है। रलावली ने तुलसीदास को राम-काम का भेद बताया। काम साधन है। राम साध्य। इस बात को समझते ही तुलसी महान् हो गए। सामाजिक जीवन का श्रेष्ठ काव्य लिखा। राम को छोड़ रलावडी (काम) के पीछे गए थे। अब रलावली को छोड़कर राम के पीछे दौड़े। दोनो उछटी पद्धति थी। बाद में दोनो मे समन्वय किया। रात दिन का समन्वय ही जीवन है। इस मन को उल्टते रहिए। बड़ा आनद मिलेगा। सीधी राह का सुख सब छेते है। आप थोड़ा उलटने की कोशिश कीजिए। आपको असामान्य सुख प्राप्त होगे। अपना सुख छोड़ दीजिए। दूसरों के सुख की चिता कीजिए। आप नंगे रहिए। भूखों रहिए। दूसरो के भोजन वस्त्र की चिता कीजिए। आप महान हो जायेंगे। उद्धारक, नेता और महात्मा हो जायेँगे। सत कपड़ा सीधा वुनते है। कितु विचार उल्टा बुनते है। क्योंकि वस्त्र तो स्थूछ है। भूत के लिये है। विचार उल्टते है। उठटकर असली जगह पहुँचते है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि & दुश्मनों से घिरे समाज में उलटे सोचते है। उछटे चलते भी है। चलते क्या है, चलना बद कर देते है। चलकर भी बैठे रहते है। बैठे-बैठे चलते हैं। इन छ दुश्मनों को छोड़कर णीछे मुड़ जाते है। सीधे चलने वालो को ये दुश्मन बहुत परेशान करते है। ये सभी घरो मे घुसे है। इसीलिये कबीर उस घर को जला देते है। जहाँ इनका निवास है। असाधक को ये जले है। साधक इन्हे जलाता है। उल्टवासी का अर्थ उलठावास। सभी माया मे वास करते है। सत माया के उढटे ब्रह्म मे वास करते है। इससे इसे उलट वेद भी कहा है (है कोई गुरु ग्यानी जगत मे उलंटि बेद बूझे) | इस उल्टा वैद को ज्ञानी ही बूझ सकता है। ज्ञोनी वह जिसे गुरु ने वाट दिखाई हो। ज्ञान दीप का प्रकाश हुआ हो। साधना की हो। साधना से ज्ञान प्राप्त हुआ हो। इद्रिय-विषयो से मुक्त हुआ हो। इसे उलट भाष (बोली) से भी व्युसनन कहा जा सकता है। इसे ही सधा भाषा भी कहते है। वह भाषा जो प्रकाश और अँधेरे, ज्ञान और अन्नान, जीव और ब्रह्म के बीच मे खड़ी है। उल्टवॉसी या सधा भाषा के प्रयोग से क्या होता है ? कबीर कहते है इससे वैरी (विषय) मित्र बन जाते है। नाशवान सनातन हो जाता हैबैरी उलदि भये हैं मीता। साखत उलदि सुजन भए चीता। . अब मन डुछटि सनातन हूबा। तब जानां जब जीवन मूवा | उलटने का कारण है। यह सर्वमान्य बात है कि ससार से इद्रियो का सबध है। देखने, “सुनने, स्पर्शादि के सारे ब्यापार इंद्रियो के माध्यम से होते है। कितु इद्रियाँ जो सबको देखती, रिनती और छूती आदि है के अपने भीतर कुछ भी करने मे असमर्थ हैं। क्योकि उनकी प्रवृत्ति बहिर्मुडी है? जब तक विषय स्रामने है इंद्रियाँ विषयों को देखती है। प्रयलपूर्वक इद्रियो को विषयों से अछुय कर इद्रियो का प्रमुख मन जब भीतर देखता है, बाहर देखने का स्वभाव छोड़ पराचि खानि व्यतृणल्वयभूस्तस्मासरा् पश्यति नानतरालन् । कश्विद्धीर प्रालानमैश्षदावृत चश्ुर्मृत्त्वममिच्छन् | -कठोप निषद 9२% ईश्वर मे इंद्रियो को

बहिर्मुख बनाया है | इसी कारण मनुष्य चाह्य विषयों को देखता है। अदर की जाला को नहीं देखता है | कोई बुद्दिमान् आलत्तत्त्व की इच्छा करता हुआ इद्रियो को विषयो ब्रह्म को देखल है। अर्थात् उलट देता है। हुआ इंडरयों को विषयों से हटकर अततर्यानी

७८ कवीर समग्र उल्टा देखता है, तब विंषय तृष्णा छूटती है। मन अमन हो जाता है। क्योकि मन की विषय तृष्णा छूट जाती है। सत या योगी इसी अमनी या मनोमनी भाव में रहकर ब्रह्म साक्षात्कार करते है। ब्रह्म साक्षात्कार विषय साक्षात्कार से उल्टा है। जब व्यक्ति और ब्रह्म के वीच विषय (जिसे माया भी कहते हैं) हट जाते है तो सच्चे ज्ञान का उदय होता है। जीव का ब्रह्म मे पर्यावसान हो जाता है। जैसे नदी का समुद्र मे | सत कबीर ने मन को उल्टा धा। इद्रियो को उल्या धा। आँखे देखे। किसे देखे ? भीतर के प्रभु को। सबके भीतर ईश्वर बैग है। आतमराम बिना जग झूठा। आत्रतत्त्व का दर्शन करो। इसीलिये वह गुफा मे बैठकर सब जग को देखता है। बाहर कुछ भी नहीं दिखाई देता है। बाहर का सब नश्वर है। नाशवान् और मिध्या हैबैठि गुफा मे सब जग देखा। बाहर कछू न सूचै। नही बोलने वाली जीभ बोलती हैअनबोला नित गाबै। यही जीव भीतर ही भीतर स्वाद लेता है। अम्रृत बेलि को क्षण-क्षण पी रहा है-अप्ृत बैली छिन छिन पीवै। कहे कबीर जुग जुग जीवै। इस रस को पीने वाले का कभी नाश नहीं होता। क्योकि यह अमरवेठ का रस है। ज्ञानरस है। भागवत रस हैगुड़ करि ग्यान ध्यान करि महुआ, भवभाटी कर भारा, पीबे महारस मीठा। . कानो से अनाहत नाद सुनता है। इसी रस मे रामानद भी मस्त है। नाक से अदभुत गध की अनुभूति करता है। एक ऐसा जप हो रहा है जिसमे किसी इद्रिय की जरूरत नहीं हैहाथ पांव मुख स्रवन जीम विनु काकहि जपहु हो प्रानी। यहाँ धरती उल्टकर आकाश मे लगती है--. घरती उलटि अकासे जाई। धरती यहाँ मूलाधार चक्र है। योगी इस चक्र से उठकर अपना ध्यान ब्रह्मरध्ध आकाश मे स्थापित करता है। योगी का ज्ञान सासारिक ज्ञान का उल्टा होता है। सारा पानी जब नीचे बहता है तो मछली उल्टे ऊपर चढती है। कबीर कहते हैवहि जोगिया का उलठा ज्ञाना। काला चोला नाहिं मियाना। आत्मतत्त्व के बोध के लिये विषयो से उल्टकर, गुण से निर्गुण होकर भीतर जाना होगाआपा पर जब दीन्टिया, तब उलदि समाना मोहि।

दास से साहब दास आदोलन ने सम वर्णव्यवस्था को निष्प्रभावी बनाने की कोशिश की। वर्णव्यवस्था के विरुद्ध प्राय ध्वसमूर्क आन्दोलन होते रहें है। किंतु यह आन्दौलन रचनात्मक था। इसने वर्णव्यवस्था को जेंडर से अस्वीकार किया। सामाजिक के बदलने की प्रतीक्षा नही की। खय में बदलाव क्षो प्रोत्साहित किया। वर्णव्यवस्था में चारो वर्णो की क्रमश शर्मा, वर्मा, गुप्त एव दास थे चार उपाधियाँ है। इसी प्रकार उत्तत्ति भी चार स्थानो से मानी गयी। चारो वर्ण है तो ब्रह्म से उलन । कितु ब्राह्मण ब्रह्ा। के मुख, क्षत्रिय बॉर्ड बैश्य जधा और थैह पैर से उतने है। इस संबंध म्रे उल्त्ति वाढें सि्धात के अतिरिक्त दी बाते और है। एक यहें कि जातियाँ सृष्टि रूपी ब्रह्म के क्रमश मुख, बाई कमर और पैर हैं। दूसरी यह कि के देने के कारण मुख वाला है। बोलना उसका धर्म है। इसके मुकाबले क्षत्रिय 'कर्ता' है। बीलती नही। क्षत्रिय है। बी ही माना जाता। उसकी निया लेगी क्षत्रिय का कार्य करना है। युद्ध करना है। राज करना है। इसकी मुख्य क्षेत्र बाद है। इसी से बाहुबठ शरद बना। शेष दो वर्णो को इसी ढंग से समझना चाहिए। इनके बावजूद जन्म वाला विचार अधिक देर हमारे शरीर की सबसे निचला भाग है। इसलिये शूद्र को नीचे रखा गया। इसका एक उनका कर्म भी है। थशई श्ल्पकार था हींथ से काम करने वाले है। जिसे की भाषा में अबीद्धिक ते कर्म कहना चाहिए। या् कम यीं चाहिए। ऐसे कर्म किसी प्राज भी नहीं है। हाथ का काम हर समाज मे प्राय सामान्य माना जाता है। महात्मा गाँधी वरखे की चाहे जितनी तारीफ करे वे मात्र चरखावाला होते तो उन्हे कौन मानता ? होना तो दूर सामान्य मानवी प्रतिष्ठा भी मिलती इसमें पूरा सदेह हैं। शिल्प अथवा हस्त कर्म उत्सादन की बुनियाद है। फिर इस बुनियादी कर्म करनेवालो की उपेक्षा हुई। उपेक्षा का अदेसा दो ब्राह्मण की भी थीं। कितु अपनी बौद्धिकता, कम से कम हेने का निश्चय और क्षत्रिय तथा चैश्य को नित्य देनेवाढी कल्याण कामनाओ ने उसे बचा लिया। ब्राह्मण चाहे अपने को कितना थी श्रेष्ठ कहे कितु आर्थिक दृष्टि से वह पगु एवं निर्भर था। ः इस स्थिति में भक्तों ने बढ़ा महत्वपूर्ण परिवर्तन किया। पहले तो यह कि वर्ण व्यवस्थ का सिरमौर ब्राह्मण भक्ति में कोई स्थान नही रखता हैं! इसलिये कि भ्रक्ति आन्दोलन में वर्णव्यवस्था नहीं हैं। प्रक्ति व्यक्ति साधना है। सामूहिक नहीं। कबीर कहते है, साधुओं (भक्तों) की जमरते नही चलती है। यहाँ 'विरला' ही पहुँच पाता है। जहाँ समाज होगा वहाँ किसी न किसी प्रकार का वर्ण बन जायगा। सभव है यह वर्ण परिवर्तनशील हो। चल हो। कबीर और तुलसी में एक अतः यह भी है। तुरुसी एक समाज चाहते है। राज्य चाहते है। ज्यो ही यह चाहा कि वर्णव्यवस्था भी आ गयी। जैसे आजकल का राज दढ) न चाहकर क्षी चुनाव के आधार पर छड़ता हैं। पद और प्रतिष्ठा जाति के आधार पर पाता ह्ठै। इस बात को याद रखना चाहिए कि मध्यकाढ की सारी आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था वर्ण पर आधारित थी। ऐसे मे वर्णव्यवस्था के सामाजिक विरोध का कोई अर्थ न था। वह तो (७९)

८० कबीर समग्र वैयक्तिक ही हो सकता था। भक्तो ने इस दिशा मे महत्वपूर्ण कार्य किया। भक्तो ने भक्ति क्षेत्र सबके लिये खोल दिया। बिना किसी भेदभाव के। वेद का स्थान मिला वेदात को। प्रणव ओं का राम कृष्ण को। इस क्षेत्र मे पूर्ण समानता है। भक्त और गुरु कोई भी हो सकता है। चाहे उसकी कोई जाति हो, योनि हो, आचार विचार हो। फठस्वरुप मीरा और झाला जैसी क्षत्राणियो के गुरु रैदास चमार हो गए। अनेक ब्राह्मणो ने शूद्र कवीर से दीक्षा ली। पैर का महत्त्व बढ़ा। भगवान, भक्त, गुरु एवं साधु की पदपूजा होने लगी। चरणोदक, चरण-वदना, चरणरज, चरणसेवा आदि अत्यत प्रसिद्धि पा गये। ऐसी स्थिति में चरण से उत्पन्न शूद्र के प्रति अपमान का सवाल खत्म हो गया। यह सब हुआ अपने धंधो मे रहते हुए। कोई धधा छोटा बड़ा नही है। तब उसे छोड़े क्यो ? छोड़े तो करे क्या ? भक्तिसूत्र के रचयिता, भक्ति को श्वेत द्वीप से लानेवाले दक्षिणी भक्ति को आश्रय देनेवाले देवर्षि नारद पूर्व जन्म के शूद्र थे। जेसे कवीर पूर्वजन्म के ब्राह्मण तथा इस जन्म मे ब्राह्मणीपुत्र (यह कही नही है कि उनका पिता ब्राह्मण नही था)। नारद भगवान के सर्वश्रेष्ठ भक्त है। कृष्ण अपने को देवषियो में नारद भी कहते है। ये नारद एक ओर ब्रह्मा के पुत्र है, दूसरी ओर दासी के। पूरे देश मे शूद्र तथा अत्यज भक्तो का महत्त्व बढ़ा। शूद्र भक्त को अपमानित करने वालो को भगवान् दडित करने छगे। आलवारों मे अनेक अत्यज थे। इनकी रचनाओं को तमिल वेद कहते है। इन भक्तों की प्रतिष्ठा ब्राह्मणो के स्तर पर हुई। ब्राह्मण से बढ़कर हुई। भक्त भगवान् वन गये। अनेक भक्त भगवान् जैसे पूज्य हुए। भक्तो ने अपनी जाति उपाधियाँ छोड़ दी। शूद्र उपाधि धारण करने ढंगे। सभी अपने को दास कहने ढगे। जातिगत अभिमान को भगवान् के प्रति अपराध माना जाने लगा। शूद्र उपाधि 'दास' का प्रचलन बढ़ा। किसी भी सप्रदाय का भक्त हो। किसी भी राज्य या क्षेत्र का हो 'दास' सवकी उपाधि हो गयी। रामदास, तुलसीदास, नददास, सुदरदास, मलूकदास आदि। भक्तो मे जातिगत उपाधियाँ बहुत कम है। 'दास' उपाधि के अतर्गत सभी जातियो के भक्त है। वह महाक्रति का दिन था जब तुलसी दुबे से दास बने होगे। निर्गुण भक्त प्रारभ मे दास रहते थे बाद मे साहब हो जाते थे। पलटू साहव, कबीर साहब, दरिया साहव, मलूक साहव आदि। कितु सगुण साधक को कभी ऐसा अवसर नहीं मिला। वे 'दास' ही रह गये। तुलसीदास, सूरदास, नददास, नागरीदास, पुरदरदास, कनकदास आदि। सवाल उठता है ये किसके दास है ? भगवान के। भक्त के। गुठ के। साधु और सियाराम समाज के। यह दासभाव इतना बढ़ा कि दास भक्त का पर्याय वन गया। भगवान् की अपेक्षा दास की सेवा भक्ति के लिये आवश्यक मानी जाने लगी। इस दास भक्ति को सेवकसेव्य भाव भी कहा गया है। भक्ति का ही एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ किसी साधन की आवश्यकता नही है। कृष्ण ने गीता मे स्पष्ट कहा है कि सभी साधनो को त्याग कर मेरी शरण मे आओ। इसीलिये भक्ति उसे मिछती है, जिसके पास कुछ नही है। अपना अहम भी नहीं है। 38 शून्य है। इसे

'अकिचन'' कहा गया है। भक्त भगवान् का सेवक है, शरण मे है। दास है। भगवान् विराट्र है। सर्वशक्तिमान है। सारी शक्तियां वही से उत्पन्न है। सृष्टि, स्थिति और नाश के कारण है। भगवान् की सृष्टि की कल्पना भी नही की जा सकती है। मनुष्य कुछ करने में स्वत्त्र नही है। ऐसी स्थिति मे उस सर्वशक्तिशली विराट् सत्ता से जुड़कर मनुष्य को नयी ताकत मिलती है। राजा और रक, सम्राट और सेवक दोनो उसके दरबार मे बरावर है। वह सबको एक प्रकार की समता प्रदान करता है। यह भी होता है कि वह राजा का न सुने। रक जज ढे। इसीलिये बड़े बड़े राजाओ को साधुओ, सतो, भकतो के पैरो पर गिरते देखा गया

दास से साहब ८१ है। निश्चित ही वह राजा का नही सुनता है। गरीब का सुनता है। अकिचन सर्वहारा उसकी भक्ति पाने का सर्वप्रथम अधिकारी है। रामायण के भरत ने सब कुछ छोड़ दिया। अयोध्या का राज्य छेते तो राम नही मिल्ते। राम को लिया तो राज्य को छोड़ा। ये भरत अकेले नही है। पुराणो मे तो बहुत से है। नही ऐसे भक्त जीवन मे भी है। महाराज शिवाजी रामदास के शिष्य थे। अब्दुल रहीम खानखाना मुगल दरबार के महान पुरुष थे। कितु तुलसीदास से अत्यत नम्रता से मिलते थे। तुलसीदास के सामने अपने को अत्यत छोटा समझते थे। कश्मीर का राजा कन्नड़ भक्त अल्लम प्रभु के दरबार मे लकड़ी चीरता था। इन भक्तो ने सेवा को अपना धर्म बनाया। सेवा जो वर्णव्यवस्था मे शूद्र धर्म था। सेवा को गहन धर्म बताया। सेवा धर्मो परम गहनो योगिनामप्यगम्यम्। किकर, सेवक, दास आदि कहने पर गर्व की अनुभूति होने लगी। यह अभिमान जाय नहि भोरे, मै सेवक रघुपति पति मोरे | भक्त के साथ दो महत्त्वपूर्ण तथ्य और भी देखने को मिलते है। एक है भाषा सबधी परिवर्त्तन। भक्ति ने सस्कृत, प्राकृत से अछग छोक भाषाओ को प्रतिष्ठा दी। तमिल, कनन्नड़, तेलगु, बगला, असमी, हिंदी आदि सभी प्राती भाषाओं से भक्ति साहित्य को निकाल दीजिए ये भाषाये शून्य मे पहुँच जायेंगी। इनके पास भक्ति का साहित्य ही श्रेष्ठ, समृद्ध और विपुरु साहित्य है। दूसरा तथ्य है- सपूर्ण देश के कोने-कोने मे शूद्र भक्तो का नेतृत्व और प्रतिष्ठा। रहीम, रसखान, जायसी आदि मुसलमान थे। तुलसी, रजो, मीरा, पार्वती, झाला स्त्री। विष्णुदास छीपी। कनकदास अत्यज। मुनिवाहन (योगवाह) तिरुप्पन, नम्माठ्वार, बल्लुवार आदि तमिल भक्त हरिजन थे। तुकाराम शूद्र। अलखनामी सप्रदाय के प्रवर्तक लाल चमार थे | - देखने मे भक्ति भगवान् से जुड़ी है। यह सही भी है। कठोर राजव्यवस्था मे प्रत्येक व्यक्ति को राजा के ऊपर एक निर्गुण-निराकार राजा की जरूरत पड़ी है। जिस राजा से जुड़कर वह अपनी स्थिति मजबूत कर ले। ऐसे ही राजा से जुड़कर तुलसीदास कहते हैहम चाकर रघुबीर के पटों लिखो दरबार। तुलसी अब क्या होहुगे नर के मनसबदार ? कितु यह भक्ति भगवान् के स्वरूप मनुष्य की सेवा का भी बड़ा भारी साधन बना। कृष्ण ने गाय चराईं। इंद्र की पूजा बद करा दी। अहीरो की बस्ती मे बसे। राम ने भीलनी के जूठे वैर खाए। क्या यह सयोग है। आधुनिक भारत का सबसे बड़ा मानव सेवक और रामभक्‌त भी दास था- मोहनदास। इसे ही महात्मा गॉधी के नाम से जाना जाता है। निर्गुण भक्त दास से साहब हो गये। कबीरदास, कबीर साहब। ऐसा क्यो हुआ ? ऐसा तादाल्य के कारण हुआ। भक्त भक्ति के माध्यम से तदाकार हो गया। मैं उसका हूँ (तस्वैवाउहम्) | वह मेरा है (तदैवाउसौ) | मै वही हूँ (स एवाडहमिति त्रिधा) | आत्मा परमात्मा, जीव ब्रह्म, भक्त भगवान् तो एक थे ही। माया की उपाधि से भिन्नता थी। साधना से माया गा मिटते ही जीव ब्रह्म और भक्त भगवान् की एकता हो गयी। फलस्वरूप दास साहब हनुमान को देखिए। सुग्रीव का दास रामदास बना। रामदास स्वय राम सा पूज्य

हो गया। गौतम सिद्धार्थ बने। सिद्धार्थ से बुद्ध और बुद्ध से भगवान्। शून्यवादी बुद्ध की करोड़ो मूर्तियाँ ससार मे फैल गयी। कवीरदास भगवान् की लाली देंखने निकलते है। कितु साधना (भक्ति) के

८२ कबीर समग्र प्रभाव से दृश्य और द्रथ्य में एकाकार हो जाता है। वे भी छाल हो जाते है। लाठी देखन मै गयी मै भी हो गयी छाल। इस लाल की सज्ञा साहब हुई। कबीर और राम एक ही है- कोई कही कबीर कोई कहौ राम राई हो। राम और कबीर एक है तो कबीर साहब कहना उचित ही है। 3०3 है कबीर को साहब उनके भक्तों ने कहना प्रारभ किया। क्योकि कबीर तो दास ही कहते हैप्रीति जांनि राम जे कहे | ड - दास नांउ सो भगता लहै।

भागवत और कबीर भागवत और कबीर दोनो की भक्ति दक्षिण मे पैदा हुई थी, इस बात को कबीर कहते “भ्रक्ति द्रबिड उपजी, लाये रामानंद। प्रगट करी कदीर ने, नवदीप सत खंड। डे दक्षिण से भक्ति को लानेवाढे रामानद थे और प्रचारक कबीर। भगवत मे यह नहीं कहा गया है। वहाँ न रामानद है। न-कबीर। वहाँ है नारद। भागवत मे एक से अधिक बार भक्ति के दक्षिण मे उत्पन्न होने की बात कही गयी है। भूमिका मे भी और बीच मे भी। इससे इतना तो समझ मे आया कि कबीर भक्त थे और भागवत वाली भक्ति से उनका कोई न कोई सबंध रहा होगा। सत कबीर अपने को नारदी भक्ति का कहते हैभगति नारदी मगन कबीरा। कबीर नारदी भक्ति मे मग्न है। भक्ति की भागवत कथा शुकदेव कहते है। कबीर शुकदेव को न केवल जानते है बल्कि उनकी प्रति श्रद्धा भी रखते हैभजि नारदादि सुकादि बंदित चरन पंकज भामिनी। ऐसे ही शुकदेव के बारे मे कहते हैजा मनु को कोह जान न भेवा। ता मन मगन भये शुकदेवा। -: शुक को यह अवसर क्यो मिला ? इसलिये कि बचपन से ही शुकदेव योगी थे-, 'सुकाचार्य दुख ही के कारण, गर्भहि माया त्यागी । इसी विरागी शुक को कबीर मानते है। शुक को कबीर आचार्य कहते है। इसलिये कि शुकदेव भागवत कहते है। जन्म से योगी है। भागवत के शुक अपने को निर्गुणोपासंक कहते है। (परिनिष्ठितोडपि नैर्गुण्य २/१/९) कहते है भागवत व्यास की रचना है। अत कबीर, नारद, व्यास, शुकदेव तीनो को साथ याद करते है-नारद कहै व्यास यों भाषै शुषदेव पूछी जाई। कबीर को वह कथा मालूम होगी जिसमे स्नान करती स्त्रियाँ शुक का परमहस स्वरूप देख लॉज्जत नही हुई। कितु व्यास की साधना को छोटा माना। भेदवाला मानकर लम्जित हो गयीं । शुक्र की दृष्ि में स्त्री-पुरुष भी भेद नहीं है। कबीर की भी यही दृष्टि है। शुक विरल है। ये 'पुरुंष से पुरुष की रचना करते है- पुरुषहि पुरुषा जो रचै सो विरले ससार। स्त्री से स्त्री रचना नही होगी। पुरुष-स्त्री के द्वारा माया की रचना होगी माया रचेगी। किंतु निर्मुण, नि्रे्पए, अविकारी पुरुष द्वारा होनेवाली रचना ही सही रचना है। यहाँ प्रसग इतना ही है कि कबीर की भक्ति भागवत्त से मिलती है। केवक दशम स्कध ही _(८३)

८ढड कवार समग्र भागवत नही है। भागवत के शेष ११ स्कधो मे कृष्ण भिन्न चर्चाएँ प्रचुर है। वल्कि मात्रा की दृष्टि से वे ही अधिक है। कबीर के सर्दर्भ मे दशम स्कंध का इतना ही महत्व है कि कवीर की भक्ति भी प्रेममूला है। कवीर का भाव भी राधा भाव है। कवीर पुरुष नही | स्त्री है। राम की बहुरिया है। आराधिका है। राधिका जैसी। राधा गोपी मे मिलन भी है। कितु कवीर में मिलन की अपेक्षा विरह तीव्र है। तीव्र क्यो ? विरह ही असली है। इसलिये भी कि मिलन मे चितन और स्मरण सभव नही। मिलन स्थूल है। विरह सूक्ष्म और मानसिक। विरह मे प्रकृति अतर्मुखी रहती है। भागवत भक्ति एक पूर्ण ग्रथ है। इसमे भक्ति सबधी शायद कोई बात छूटी हो। निर्गुण भक्ति एवं योग मूलक भक्ति की भी इसमे विस्तार से चर्चा है। सत कवीर जानते है कि निर्गुण निराकार का मूलाधार उपनिषदों से आया है। वेदात ही भक्ति का मूल स्रोत है। इसीलिये रमैनी के आरभ मे उपनिषद् की चर्चा करते है। उपनिषद् का आधार है- तत्त्वमसि। वे कहते हैतत्त्वमसी इन्ह के उपदेसा। ई उपनिषद कहहीं संदेसा। उपनिषद् मे याज्ञवल्क्य और जनक सवाद प्रसिद्ध है। योगवासिष्ठ मे राम को वसिष्ठ के ज्ञानयोग का उपदेश है। यही बात कृष्ण ने उद्धव से कही है। जनक विदेह कहे जाते थेयाज्ञगलिक औ जनक सेंबादा। दत्तात्रेय वहै रस स्वादा। वहे वसिष्ठ राम मिल गाई। वह कष्न ऊपव समुप्राई। उहै बात जे जनक दृढाई। देह घरे विदेह कहाई। ये सभी नाम और कथाएँ भागवत मे आई है। यह भी कहा है कि वेद के पहले ओकार हुआ। ेऊ ही सृष्टि का आदि| 3 एक अक्षर भी है। तीन अक्षर भी है। & भेद और अभेद दोनो का प्रतीक हैके ओकार आदि नहीं बेदा। ताकर कौन कहहु कुल भेदा। माडक्योपनिषद् मे ओकार को ब्रह्म और आदि कहा है। गीता ने & तल्सदिति से ब्रह्म के तीन भेद किये है। कितु ओकार न भागवत का, न कबीर का उपास्य है। भागवत के उपास्य कृष्ण हैं ओर कबीर के राम। भागवत ने राम की पूरी कथा कही है। इसलिये भागवत को राम से विरोध नही है। वैसे ही कवीर ''हरि की सरन''' मे जाते हैं। ''बिना गोपाल ठौर नहि' पाते है। केशव, माधव, गोविद, कमलाकत, बीठल, बनवारी, हरि, गोपाल जैसे नामो का राम नाम के पर्याय के रूप मे प्रयोग करते है। सत कबीर की आलोचना का अर्थ निंदा नही अपूर्णता या निषेध दिखाना मात्र है। कितु उद्देश्य तो तत्त्व को पाना है। इसलिये केवल निषेध से बात नही बनती है। वे कहते हैजहाँ बहि लागे सनक सनंदन, रुद्र ध्यांन भरि बैठे | सुयय प्रकास आनंद बमेक में घन कबीर द्ै पैठे। कग्रपू १४९ कबीर सत सगति की बात करते है। उक्त नाम सतो के हैं। उन्ही सतो के साथ बैठकर कबीर ध्यान कर रहे है। कबीर दूसरे भक्तो के समान ही साधु सगति पर अधिक बल देते है। यह साधु सगति भगवत्सानिध्य का पर्याय है। क्योकि भक्त या साधु स्वय भगवान् है। भक्ति करते करते भक्त स्वयू भगवान् हो जाता है। भगवतू भाव मे पहुँचकर ही भगवान् को समझा जा सकता है। इसीलिये भक्ति, भगवान्, भक्त और गुरु मे अभेद है। कबीर साहब गुरु को भगवान् से भी के

भागवत और कबीर ८५ बड़ा मानते है। क्योकि गुरु निराकार ब्रह्म का साकार विग्रह है। वही साधक को भगवान् तक पहुँचाता है। भागवत मे प्रचेताओ ने कहा है- हम तो भगवद्सतो के क्षणभर के सग के सामने स्वर्ग और मोक्ष को भी कुछ नही समझते, फिर मानवी भोगो की तो बात ही क्या है। आपके भक्त जन तीर्थों को पवित्र करने के उद्देश्य से पृथ्वी पर पैदल ही विचरते है |? * सत तीर्थों को भी पवित्र करते। अत वे तीर्थों से महत्वपूर्ण है। इसीलिये सत कबीर किसी स्थान को तीर्थ नही जानते है। भक्त भगवान है। स्वय भगवान ने कहा है- मेरे प्रेमी भक्त मेरे हृदय है। उन प्रेमी भक्तो का हृदय मै स्वयं हूँ। वे मेरे अतिरिक्त और कुछ नही जानते। मै उनके अतिरिक्त और कुछ नही जानता ।* जैसे सूर्य आकाश मे उदय होकर लोगो को जगतू और अपने को देखने के लिये नेत्रदान करता है, वैसे ही संत पुरुष अपने को तथा भगवान् को देखने के लिये अतर्दृष्टि देते है। सत अनुग्रहशील देवता है। सत अपने प्रियतम आत्मा है। और अधिक क्या कहूँ स्वयं मै ही सत के रूप मे विद्यमान हूँ ।३ कबीर इसी सत के महत्व को बार-बार स्थापित करते है। वे कहते है तीर्थों मे जाना व्यर्थ है। साधु सगति और हरि भक्ति ही काफी हैकबीर मथुरा जावे द्वारिका, भावै जाउ जगनाव। साध संगति हरि भगति बिन कछू न आवै हाथ। लोक-वेद (शास्त्र) दोनो व्यर्थ है। इनके द्वारा भगवान् की प्राप्ति नही हो सकती। ये आत्म ज्ञान मे बाधक है। इसीलिये कबीर लोक वेद देनो को गले की फॉसी समझकर छोड़ते है। भागवत मे कहा है- लौकिक व्यवहार के समान ही वैदिक व्यवहार भी सत्य नही है ।४ लौकिक और वैदिक दोनो ही प्रकार के कर्म जीव को ससार की ही प्राप्ति करानेवाले है |५ भागवत मे लोक-वेद से निरपेक्षता भी महत्त्वपूर्ण तथ्य है। छोक वेद दोनो ही भगवान् से निकलते है। अत जो भगवान् का हो गया। भगवान् के पास पहुँच गया। उसे उससे नीचे के स्तर की वस्तुओ की आवश्यकता समाप्त हो जाती है। यो कि नीचे की स्थिति मे मन लगाने पर बाधा की सभावना है। निर्गुण भक्ति मे साधना की शक्ति की चेतना भी दिखाई पड़ती है। इसीलिये कबीर बार-बार अपनी साधना की विजय पर भी जोर देते है। इस साधना मे मन ऐसे स्थान पर पहुँचता है जहाँ शून्य के अतिरिक्त कुछ नही है। चैतन्यवोध और आत्मबोध मे एकता हो जाती है। यहाँ तो मन, पवन की गति नही है। लोक-वेद के स्थूल व्यापारों को कौन पूछता है। भागवत मे दत्तात्रेय और जड़भरत इसके अच्छे उदाहरण है। सत कबीर सिद्धात मे छोक-वेद विरोधी है। कितु उसकी व्यावहारिक सत्ता को अस्वीकार नही करते थे। लोक-वेद विरोधी जीवन नहीं जीते है। क्योकि भक्त लोक-वेद को वही अस्वीकार करता है जहाँ भक्ति मार्ग मे बाधक हो। इसीलिये कबीर अवधूत नही, ग्रहस्थ, भक्त और गुरु है। वैराग्य की साधना वन मे नही घर पंर करते है। सत कबीर ज्ञानी भक्त १ तुल्याम ठवेनापि न स्वर्ग ना पुनर्भवम, भगवत्सगिसगस्य मर्त्यना किमुताशिष | ४/३०/३४ तेया विचरता पदुभ्या तीर्थाना पावनेच्छया | ४/३०/३७ २ साधवो हृदय मह्य साधूना हृदय त्वहम्

मदन्यत् ते न जानन्ति नाह तेभ्यो मनागपि ९/४/६८ 3 सतो दिशन्ति चक्नूषि बहिरर्क समुत्यित' । देवता बान्यवा सन्त' सन्त आल्ाहमेव च ।११/२६/३४ * न वेदवादेषु हि तत्त्ववादः ५/११/२ «५ तस्मादुभयथापि हि कर्मास्मिन्नात्मनः ससारावपन मुदाहरन्ति | ५(१४/२३ (तिलक >करपतनत उलक। 4 380 8 88 ०830-78 5 00: 0५, | के, के.» > तन

८६ कबीर समग्र है। अत वे अपनी गृहस्थी का सब कार्य करते हुए भक्ति करते है। भक्ति गृहस्थ धर्म है। गृहस्थी से वैराग्य नही है। गृहस्थी मे रहते हुए काम, क्रोध, मोहादि को जीतना है। इस दृष्टि से उनकी तुलना विदेह जनक से की जा सकती है। उनके आचरण से सामाजिक आचरण बाधित नही होते है। भक्ति का आधार सामाजिक और जीव समता है। इसीलिये सामाजिक और जैविक समता का आचरण करते है। योग की शिक्षा मे यम, नियम एवं सयम के अंग अहिंसा की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। कबीर अहिसा पर जोर देते है। अहिंसा के कारण ही वे शाक्तो के विरोधी है। भ्रागवत भी शिव और विष्णु का समन्वय तो करता है। किंतु शाक्त समन्वय के बारे मे मौन है। कबीर शाक्तो के परम विरोधी है। इसके दो कारण है-एक यह कि शक्ति ब्रह्म न होकर माया है। दूसरे यह कि शाक्तो का संबंध हिसा एवं पशुवलि है। कवीरदास जी हर प्रकार की हिंसा के विरोधी है। भागवत का स्पष्ट आदेश है कि योगी कभी स्त्री के पास न जाय-जो पुरुष योग के परमपद पर आरूढ़ होना चाहता है अथवा जिसे मेरी सेवा के प्रभाव से आत्मा ४ का विवेक हो गया हो, वह स्त्रियों का सग् कभी न करे। क्योकि स्त्रियाँ नरक का द्वार |१ सत कबीर भी नारी को नरक का द्वार मानते है। क्योकि नारी तिनको से ढँके हुए कुए के समान मृत्यु है ।९ सत कबीर बाह्य साधना के विरोधी है। ईश्वर कही वाहर नहीं है। अज्ञानी उसे वाहर दूँढते है। भा वह वाहर कहाँ मिलेगा ? बाहर की वस्तुएँ तो भगवत् रूप अवश्य है। इसलिये उनके प्रति समताभाव आवश्यक है। किंतु वे भगवान् नही है। भगवान् तो सबके भीतर है। किंतु लोग उसे बाहर खोजते है। कस्तूरी हिरण के कुंडल में है। उसकी गध वाहर आती है। अज्ञानी हिरण इस गध से प्रभावित हो कस्तूरी के लिये बाहर भटकता हैकस्तूरी कुंडल बसे मृग दूँढे वन मोहि। यहाँ वन शब्द का अर्थ है वासना के वन मे ढूँढता है। भला काम, क्रोधादि वासना-तृष्णा के वन में भगवान कहाँ मिलेगे। उन्हे तो इस वन से अलग अपने हृदय मे दूँढ़ना होगा। भागवत मे कहा हैयोग का यथार्थ रहस्य न जाननेवाले पुरुष अपने हृदय मे छिपे हुए भगवान् को बाहर खोजते है ।३ गीता मे भी भगवान् ने इस बात को अत्यत स्पष्ट और जोरदार ढग से कहा हैहै अर्जुन ! ईश्वर सभी जीवो के हृदय मे स्थित है। अपनी माया से सभी जीवो को यत्रवतू घुमाता है ।९ अब अगर भगवान् भीतर है तो बाहर की सभी वस्तुएँ माया है। यहाँ तक कि इद्रिय सवेद्य सभी माया है। कबीर माया की प्रबलता का वर्णन अत्यत गभीरता से करते है। ससार के सारे जीव तो माया मे पड़े है ही, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सारे देवता भी मायाधीन है। इस दृष्टि से कबीर ने ब्रह्म के दो रूप माने है- एक वह जो निर्गुण, निर्लेप, अव्यक्त, अजन्मा और अविनाशी है। सबके हृदय मे अज्ञातभाव से रहकर अपनी माया द्वारा सबका सचालन करता सग ३३४० प्रमदासु जातु योगस्य पार परमारुरुक्षु ।३/३१/३९ तामी मृत्यु तृण क्ृपमिवावृतम् शिविप हि हे यया निगूढ़ पुरुष कुयोगिन ४/१३/४८ ईश्वर

सर्वभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन् सर्वभूतानि यत्रारूढानि मायया | १८/६१ न बण०
4० +०

भागवत और कबीर ८७ है। तो यह माया क्या है? निश्चय ही ब्रह्म नही है। फिर ? ब्रह्म से परे भी कुछ होता है क्या ? नही। जो कुछ है वह ब्रह्म ही है। ब्रह्म की सत्ता सर्वोपरि है। वस्त्र मे धागे के समान वह सबमे स्थित है। जैसे बर्त्तन का मूल मिट्टी है। कुडल का सोना है। कबीर सभी देवताओ और अवतारो को मायासृध् मानते है। ये मायासृध्ट माया मे ही फंसे है। माया भुक्त है। योगी, यत्ती, मुनि, महात्मा, देव, दानव सब माया विवश हैकहे कबीर कछू संपष्ठि न परई बिदम तुम्हारी माया। माया अज्ञान है। मायाधीन को कुछ भी समझ में नहीं आता है। वे किसे पुकारे " सभी तो माया से डरे है- | में किहि गुहराँऊँ आप लागि। उकरी डर बड़े-बड़े गये हैं भागि। ब्रह्मा बिस््न अरु सुर मुयंक। किहि किहि नहीं छावा करलंक। माया महाठगनि" पद में माया सभी देवो को नचा रही है। श्रीमद् भागवत का भी कहना है कि सभी देवता मायाधीन है। यमराज कहते हैमै, इद्र, निर्क्रति, वरुण, चद्रमा, अग्नि, शकर, वायु, सूर्य, ब्रह्मा, बारहो आदित्य, विश्वे देवता, आठो वसु, साध्य, उनचास मरुतू, सिद्ध, ग्यारहो रुद्र, रजोगुण-तमोगुण रहित भूगु आदि प्रजापति और बड़े बड़े देवता सब के सब सत्त्व प्रधान होने पर भी माया के अधीन है तथा भगवान् कब किस रूप मे क्या करना चाहते है इस बात को नही जानते है।? . प्रश्न उठता है जब सब माया के अधीन है, किसी को माया से मुक्ति मिली ही नहीं तो प्रयल व्यर्थ है। नही, ऐसी बात नही है | कुछ लोग तो है ही जिन्होने माया छोड़ दी है। भागवत की दृष्टि मे वे है- धर्मराज, ब्रह्मा, नारद, शकर, सनत्कुमार, भीष्म, बलि, शुकदेव। ये बारह छोग ही भागवत धर्म का रहस्य जानते है ॥९ सत कबीर मायामुक्त भक्तो की सूची कठिनाई से बनाते है। फिर भी उनके पास एक छोटी सी सूची है। छोटी तो होगी ही। साधुओ और भकक््तो की भीड़ थोड़े ही होती हैजागे सुक उधव अक्रूर। हणबंत जागे है लंगूर। संकर जागे चरन सेब। कलि जागे नांमां जैदेव। कबीर की सूची का भागवत से विरोध नही है। हाँ, कलि मे भी भक्त होते है। इसलिये जयदेव और नामदेव का नाम भी जोड़ दिया। भागवत में कई बार उल्टवासियाँ भी आई है। इसे वहाँ कूट वचन भी कहा गया है। स्वयं नारद ने दक्ष पुत्र हर्यश्वों को कूट वचनो का अर्थ बताते हुए कहा-एक देश है, जिसमे एक ही पुरुष है। एक ऐसा बिल है, जिससे बाहर निकलने का रास्ता नही है। एक ऐसी स्त्री है जो बहुरूपिणी है। एक ऐसा पुरुष है जो व्यभिचारिणी का पति है। एक ऐसी नदी है जो दोनो ओर बहती है। एक विचित्र घर है, जो पच्चीस तत्त्वो से बना है ।३ आश्चर्य नही कि कबीर की 23754 ले पर भी भागवत का प्रभाव हो। भागवत मे शरीर और ससार के रूपक बार-बार आये है। ससार का प्रसिद्ध रूपक वस्त्र से है। इसीलिये कबीर ने वस्त्र चादर को भोगा नहीं। जस १ अह महेद्रो नैर्कति प्रचेता' सोमोउग्निरीश' पवनो5कों विरचि | आदित्य विश्वे वसवो5थ साध्या मरुद्गणा रुद्रणणा ससिद्धा | ६३१४ भागवत्त ६(३/२०-२१ २ वही ६/५/७-९

८८ कबीर समग्र के तस धर दिया। यह चादर झीनी है। क्योकि यह त्रिगुणात्मक है। इसीलिये झीनी अर्थात् अपूर्ण और नाशवान् जीर्णशीर्ण है। झीनी शब्द सस्कृत का जीर्ण है। जीर्ण का अर्थ है पुराना| फटा हुआ। तो यह जगत पुराना भी है। फट भी है। शीघ्र ही नष्ट होनेवाला है। भागवत मे कहा है- ब्रह्मा से लेकर स्थावरपर्यत सपूर्ण चराचर जीव प्राकृत है और जैसे वस्त्र सूत्रों से ओतप्रोत रहते है, वैसे ही ये सब प्रकृति के उन गुणो से ही ओतप्रोत है ।१ इसी बात को एक और प्रसंग मे कहा गया है- समस्त प्राणियो के आत्मा रुद्रदेव तुम्हारा वेग धारण कर छेगे। क्योकि जैसे साड़ी सूतो से ओतप्रोत है वैसे ही यह सारा विश्व भगवान् रुद्र मे ही ओतप्रोत है ।९ _ नाम जप को भागवत और कबीर दोनो महत्व देते है। भगवान् की छ सेवा मानी जाती है-- नमस्कार, स्तुति, सर्वकर्म समर्पण, सेवा पूजा, चरणकमलढ चितन, छीला कथा श्रवण। इसे षडग सेवा कहते है |१ सत कबीर की भक्ति मे छ तत्व मौजूद है। इनमे सगुण साधना के तत्वों की पूर्तिगुस और साधु सेवा से होती है। क्योकि जैसा कि पहले कहा जा चुका है गुरु और साधु भगवान् के साकार विग्रह है। इन्हे पूर्ण या अशावतार भी कहा जा सकता है। यह विषय अत्यत व्यापक है। यहॉ यह नही कहना है कि सत कबीर ने भागवत पढ़कर उपासना की थी। कहना केवल इतना ही है कि सत कबीर भागवत परपरा से प्रभावित है। जो भक्ति दक्षिण से उत्तर तक आई उसने जाने कितने रूप लिये |यह भी आश्चर्य है कि दक्षिण की भक्ति मे जो पवित्रतावादी या शुद्ध वैदिक तत्व की कल्पना है वह उत्तर मे शायद नही है। दक्षिण मे बौद्ध-जैन के विरोध मे भक्ति की स्थापना हुई थी। शकराचार्य ने ही बौद्ध विरोध का प्रारभ कर दिया था। कितु उत्तर तक आते-आते उस पर यहाँ के बचे खुचे बौद्ध प्रभाव पड़े हो तो इस पर आश्चर्य नही। यह भी हुआ होगा कि बौद्ध जैन धर्म दक्षिण मे तो प्राय शास्त्र और सिद्धात के रूप मे गया। कितु उत्तर मे वह सामाजिक जीवन का अभिन्न अग था। इसका सकेत इस बात से भी मिलता है कि लोगो ने बुद्ध को विष्णु का अवतार मान लिया। बौद्ध तो मूलत वैदिक धर्म के विद्रोही थे ही। वैदिक जनता ने भी उन्हे ग्रहण करने मे सकोच नही किया। हाँ, उनकी सामाजिक निवृत्ति, तत्रयान, वज्रयान आदि का कुचलन को अस्वीकार कर दिया। यहाँ ध्यान रखना होगा कि भागवत ने बुद्ध को विष्णु नही, परब्रह्म नही केवल अवतार माना है। फिर कबीर साहब ने जैनो और बौद्धो की आलोचना की। इसलिये कि वे मूलत वैष्णव थे। उनकी दृध्ि मे ब्राह्मण और वैष्णव एक है-.. ब्राह्मन वैष्णव एकहि जाना। वे जैनियो और बौद्ध सन्यासियो की ओर ईशारा कर कहते हैका नांगे क्र दांधे चाम। . जी नही धीन्डसि आतम राम। रे रद ९ लुंचित मुंडित मोनि जदाघर ऐ जु कहैं सिधि पाई। 2 २६ 4 9 १०/४०/११ २ धारविष्यति ते वेग रुद्रस्वात्मा शरीरिणाम्| यस्मिन्नोतमिद प्रोत विश्व शाटीव तन्तुषु ९/९/७ डे ७९५०

भागवत और कबीर ८९ भूंड मुंडाइ फूलि का बैठे कांननि पहरि मंजूसा। इन पक्तियों मे नागे, छुचित का सबध जैन साधुओं से है। मुडित बौद्ध है। बॉघे चाम, मोनि एवं जटाधर दूसरे सप्रदाय है। यही बात यो भी कही गयी है- जैन बौद्ध अरू साकत सैनां, चारवाक चतुरंग विहूनां। कबीर सहज शून्य की बात भी करते है। इसका अर्थ भिन्न है। सहज तो हठयोग के विरुद्ध सहज योग या साधना है। शून्य ब्रहारंध्र है। यह बौद्धी के शून्य से भिन्न है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म होने के बावजूद अधिष्ठान रहित नही है। राम के कारण कबीर शून्यवादी नहीं है। सत कबीर पर केवल भागवत का प्रभाव है यह कौन कहेगा ? वैदिक साहित्य बौद्ध साहित्य के बहुत बड़े अशो को भी अपने -मे समेटे है। भारत के सभी साहित्य, साधना और भाषा-चितन का आधार वैदिक साहित्य है। बौद्ध साहित्य भी उसका ही विद्रोही विकास है। अत कबीर पर भी बौद्ध प्रभाव को अस्वीकार नही किया जा सकता है। कितु उसे खोज निकालना कठिन है। क्योकि कबीर का मूल स्वरूप वैदिक परपरा के मिश्र भक्ति वाल है। अत मे एक ज्ञानवर्धक तुलना दऋध्व्य है। एक प्रपन अत्यत मौकिक है कि संसार सृष्टि के पहले क्या था ? कैसा था ? कौन से लोग थे या नही थे ? यह जिज्ञासा इतनी स्वाभाविक है कि सभी परेशान छोगो को सत कबीर इसका उत्तर देते हैजब नही होते पवन नहीं पानी। तब नहीं होती सृष्टि उपानी। जब नहीं होते प्यंड न बासा | तब नही होते धरनि अकासा। जब नहीं होते गरभ न मूला। तब नहीं होते कली न फूला। जब नहीं होते सबद न स्वाद । तब नहीं होते विद्या न वाद। जब नहीं होते गुरू न चेला। > गम अगमें पंथ अकेला। इसे ऋवेद के नासदीय सूक्त से प्रभावित कहा जाता है। कितु यह भागवत मे भी है। अन्य पुराणों मे भी है। क्योकि नासदीय सूकत मे सबको प्रेरित किया है। उपनिषदों मे भी , आया है। भागवत का यह छद देखेजब यह सृष्टि नही थी, तब केवल मै ही था और वह भी निष्क्रिय रूप मे। बाहर भीतर और कही भी कुछ न था। न कोई द्रध था, न दृश्य | मै केवल ज्ञानस्वरूप और अव्यक्त था।१ सत कबीर और भागवत की यह तुलना इतनी अधिक है कि 'राम न सकहिं नाम गुन गाई ।" इसीलिये इसे कही न कही रोकना है। हरि हर, शिव इनमे दो अक्षर है। कबीर कहते हैबिदि अच्छर का कीन्ह बेंधाना--पु 4 3 १ अएमेवासमेवाग्रे नान्यत् किचान्तर बहिः | सज्ञानमात्रमच्यक्त प्रसुप्मिव विश्वता') ६/४/४७

९० कबीर समग्र हरिहर ब्रह्मा के मन भाई। दिवि अच्छर लै युक्ति दनाई। भागवत मे शिव को अक्षरों वाढ्ा कहा है ? भागवत की टीका में कहा है- जिसकी जिह्ना के नोक पर हरि! ये दी अक्षर बसते है. ।२ भागवत के कथावाचक सूत विछोमज है। कबीर को भी लोककथा विलोमज कहती है। वैष्णव भक्त चाडाल श्रेष्ठ है, बारह गुणों से विमुख ब्राह्मण की अपेक्षा भगवान् का भक्त चाडाल श्रेष्ठ है ।१ आपका नाम स्मरण से कुत्ते का मास खानेवाछा चाडाल भी सोमयाजी ब्राह्मण के समाज पूज्य हो जाता है [९ इसी बात को सत कबीर कहते है- साकत बाभन ना मिले बैस्नो मिले चंडाल। 2024-22 न बल पलक लक और तक ए अर कट जन यद् द्यक्षरनाम मिरेरिति नृगा. ४/४/१४ जि्नाग्रे वर्तते यस््य हरिरित्य क्षरद्यम् ६(२/१९ की टीका। विप्राद् द्विपड्गुणयुतादर विन्दनाभ पादारविद विमुखाच्छूवपच वरिष्ठप् ७/९/१० श्वादो5पि स्य सवनाय कल्पते ३/३३/६ ० 40 0 0

ज्यों के त्यों धरि दीनी चदरिया एक चादर है। झीनी झीनी बीनी है। क्यो झीनी झीनी बीनी है ? क्या उसे कई जुलाहो ने मिलकर बुना है ? अलग-अलग बुना है ? नही, जुलाहा तो एक ही है। कितु सूत अलग-अलग है। कितना है ? कबीर साहब वह भी बताते है- नौ मन सूत अरुश्लि नहिं सुरक्षे, जनमि जनमि उरझेरा। इस जुलाहे का मर्म कोई नही जानता (ई जोलहा का मरम न जाना) है। क्यों नौ मन सूत लगाया ? लेकिन पूछे कौन ? वह किसको बताएगा ? केवढ अनुमान करना है। अगर वह किसी को बता भी दे तो जानने वाला दूसरे को नही बता सकता। क्योकि वह बाहर तो बताएगा नही। हृदय, मन या चित्त के किसी कोने मे, अत्यत एकात, रहस् में बताएगा। यहाँ के ज्ञान अनुभूति और वाणी मे तदाकारिता होती है। भारत के छोगो ने वाणी के पॉच विभाग किये है- परा, पश्यंती, मध्यमा, द्योतमना, वैखरी। वैखरी वाणी ही सुनी-सुनायी जाती है। बाकी चार तो भीतर ही रह जाता है। ऐसें मे कौन समझे-समझाएगा ? परा और पश्यती रहस्य की वाणी है। आगे बढ़ने पर बिल्कुल बदल जाती है। नेपथ्य और पर्दे के नट की आकृति मे अतर होता है। इससे भी अधिक अतर है परा और वैखरी मे। नही, नही। परा वैखरी तक आते-आते वाणी बिल्कुल बदल जाती है। परा भागवत वाणी है और वैखरी माया प्रकृति की वाणी है। खैर, यहाँ इतने से ही सतोष करना होगा कि नौ मन सूत (मन, पाँच ज्ञानेंद्रियाँ और तीन गुण) है। और वह उल्झा है। स्वाभाविक है। इतना अधिक सूत उछझ ही जायगा। सूत का स्वभाव है उलझना। नौ मन सूत का यह अर्थ तो बड़ा सरल हो गया। सतो का अर्थ इतना सरल होता नही। सरल अर्थ उस अध्यापक की लाचारी है जो अज्ञानी छात्रो को कुछ समझा देने के धधे की रोटी खाता है। पहले तो देखिए यह सूत क्या है ? अध्यापक कहेगा इसका अर्थ तो सीधा है- धागा। बात ठीक है। कितु सत जब सूत्रात्मा की बात करता है तो उसके दिमाग मे धागा की अपेक्षा 'सूक्ष्म! अर्थ अधिक है। "सूत्रात्मा" मे सूत्र सूक्ष्म का अर्थ देता है। सत का सूत्र सूक्ष्म मनोभावो, विकारो, पॉच या दस प्राणो, शरीर की नसो, धमनियो, प्रवृत्तियो और प्रकृति विकार से प्राप्त सभी चीजे है, जो आपस में उलझी है। सब एकदूसरे के सहारे से बनी है। निर्भर है। प्रकृति का नाम प्रधान है। सृध्ि की सारी वस्तुएँ इसी प्रधान का लघु रूप है। यही हाल नौ का है। नी के भी जाने कितने अर्थ है। नवग्रह भी है। पॉच प्राण+ अत करण'चार। नव निधि। इद्रियो के नौ द्वार। नौ नाड़ियाँ आदि। कहते है भक्ति श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि नौ प्रकार की है। तो अभक्ति, भक्ति विरोधी तत्त्व माया को भी नौ प्रकार का होना चाहिए। चचढ मन एक नही है। एकाग्र नही होता है। नवो ग्रहो के चक्कर में भटकता है। इसलिये नौ मन के सूत्र कही व्यवस्थित नही होकर उलझ रहे है। ये सूत नहीं सुलझेगे। जब तक जीवन है तब तक उलझे रहेगे। बाद मे भी जन्मातर के बाद भी उलझे रहेगे। जब तक इन सूत्रों को एक नही करेगे। नी मन का बोझ छोड़ना होगा। नौ मन को एक, एकाग्र करना होगा। नौ मन भला कुछ कर सकता है। नौ मन तो जीवन पर बोझ है। मनुष्य बैठ

बन जाता है। उसी के नीचे दबा .. रहता है। कबीर साहब कहते हे कि गतव्य स्थल तक एक चींटी नही जा सकती। और लोग है । कि ब्रैल छादकर छे जाना चाहते है- 'पॉव न टिके पिपीलिका छोगन लादै बैल ।? (९१)

९२ कवीर समग्र कर्म का यह बोझ कोई छोड़ना नही चाहता। काम, क्रोध, छोभादि के बोझ बढ़ रहे हैं। नौ मन सूत तृष्णा के पानी से भींगकर और भारी हो गया है। आदमी क्या आदमी रह गया है -? इस बोझ ने उसे जानवर बना दिया है। मनुष्य समझता है कि इस नौ मन सूत से वह कुछ कर रहा है। कितु सच्चाई यह है कि वह दबा पड़ा है। उसका उच्चतर विकास रुक गया है। उसे तो किसी न किसी प्रकार इस दबाव से मुक्त होना होगा। इस दबाव को हटाकर इनके द्वारा चादर बुनना भी चाहो तो यह चादर झीनी होगी। स्वय ईश्वर ने ही चादर झीनी बुनी है। झीनी का अर्थ है छिद्रो वाठी। अनेक छेद है इस चादर मे। पुरानी भी हो गयी है। झीनी चाहे जितनी हो कितु यह चादर मैली नहीं थी। मैली तो ससार मे आकर हुई है। इसी लिये कबीर कहते है- धन मैली पिउ ऊजला, लागि न सकूँ पाँव। विषयो ने इस चादर को मैठा कर दिया है। मनुष्य ही क्यो देवता और मुनियो ने भी इस चादर को मैठा कर दिया है। मन, शरीर और ससार चादर को विषयो, वासनाओ, तृष्णाओ की कीचड़ में छपेटकर अत्यत गदा कर दिया है। असीम गदगी। कहाँ तो यह चादर बिल्कुल सत्त्व प्रधान थी। साफ और साफ थी। कितु मनुष्य ने उसे बिगाड़ दिया है। वह भूल गया कि इसमे कामनाओ के प्रवेश के अनेक छिद्र हैं। इसीलिये कबीर गाढ़ा बुनते हैतांगे दाणै पड़ी अनंबासी, सूत कहै बुणि गाठी। श्वासो और प्राणो के असख्य धागो से डा यह शरीर, मन, जीवन और जगत को ईश्वर ने बुना है। ईश्वर जुलाहा है। कबीर 2 | हम सभी जुलाहे है। सभी वुन रहे है। अच्छाबुरा बुन रहे है- सूत कुसूत बुनै भल कोरी । अनेक सूत है। कभी तौढकर नौ मन बताते है। कभी सात या दस सौ गिनती में कहते है- दस सै सूत्र की पुरिया पूरी, चांद सूर दोइ साखी। सात सूत का अर्थ है शरीर के सप्त धातु- अस्थि, पक्वाशय के रस, रक्त, मास, मेद, मज्जा, वीर्य | हो गया- सात सूत मिलि बनिज कीन्ह | स्वाभाविक है कि इन सूतो मे गॉठ पड़ जाय। इस गॉठ को तोड़ना महत्त्वपूर्ण कार्य है। तुलसीदास ने भी कहा है- जड़ चेतनहि ग्रथि परि गयी, जदपि मृषा छूटत कठिनई। आधुनिक मनोविज्ञान के चितन का आधार भी यह ग्रथि है। सत कवीर की ग्रथि टूट गयी है- -तूटी गाठि दया धरम उपज्या। अब समझा। यह ग्रथि गाठ दया, धरम के विरोधियों की थी। काम, क्रोध, दवेष की थी। इन्ही गॉठो के कारण न कपड़ा बन पाता है। न संसार ठीक हो पाता है। न ईश्वर से मिलना होता है। आत्मा और परमात्मा एक है। एक जगह रहते है। किंतु गाँठ के कारण अलग है। मिल नही पाते। अनेक स्त्री पुरुष एक बिस्तर पर तड़पते रहते है। मन मे गॉठ है। बाहर गॉठ है। बिना गॉठ खुले मिलन नही हो सकता। इसीलिये तोड़ना भी चाहिए। जोड़ना भी चाहिए। विषयो से तोड़ो और प्रभु से जोड़ोधागा ज्ूँ तूटै त्यूँ जोरि। तूदे तूटनि होइगी रे, नां ऊँ मिले बहोरि। सत कबीर पूरे चौकस व्यक्ति है। धागे से ढेकर कपड़े तक पर नजर रखते है। सबको ठीक करते हैं। धागा भी ठीक। कपड़ा भी ठीक। क्योंकि धागा ही तो आधार है। धागा टूटा नही कि शब्द का आकाश का नाश हो जायगा। आकूश

में शब्द टिका है। शब्द मे सारा ज्ञान है। ज्ञान ही सृष्टि है। इसीलिये सत चाहते है कि उन्मन धागे का प्रयोग करे। मन को विष्यो से हटाकर ईश्वर की ओर उन्मुख करे। आकाश जो ब्रह्म का वाचक है। शब्द ब्रह्म की योनि ' जजन्मस्थान) उसका रक्षण ढिग है। टूटने बेंधने की प्रक्रिया वहुत हुई। अब उन्मनी भाव के

ज्यो के त्यो धरि दीनी चदरिया ९३ कारण इस गगन का नाश नहीं होगातूटे बंचे बँदै पुनि तूटे, जब तब होइ दिनासा। कहै कबीर यह गगन न बिनसे, जो धागा उनमांना। सत कबीर का यह रूपक बधान है तो शरीर के लिये। कितु यह ससार शरीर पर भी छागू होता है। इस पद मे प्रश्नोत्तर है। स्वय पूछते है। स्वय उत्तर देते है। चादर है तो ताना-बाना किस चीज का हैराहे क ताना कष्टे के भरनी, कौन तार से दीनी चदरिया। उत्त है-. इंगला पिंगला ताना भरनी, सुषमन तार से बीनी चदरिया। इड़ा नाड़ी और पिगला नाड़ी दोनो का ताना बाना है। इसमे सुघुम्ना के तार लगे है। अब सवाल होता है इन तारो या सूत्र को काता कहाँ गया है ? सूत किस यत्र पर तैयार हुए है ? कबीर कहते है-- अष्टकमलू का एक चरखा है। इसी चरखे पर सूत काता गया है। यह शायद वही कमर है जिस पर कबीर साहब के अवतरण की बात साधु समाज मे प्रचलित है। ब्रह्मा का जन्म भी इसी कम पर हुआ था। कमल सृष्टि का मूल है। कहते है गर्भाशय भी कमलाकार है। यह चर्खा स्थिर नही है। स्थिर से सूत नही काट सकता है। अत डोठता है। चक्कर लगाता है। ससार चक्र है। संसार चरखा सा घूमता है। चरखा ससार सा घूमता है। पृथ्वी गोल है। चरखा गोल है। कमल गोल है। कमल पखुड़ियाँ फैलाता है। शाम को समेट लेता है। सूर्योदय पर पुन फैलता है। फैठना और सिमटना। सिमटना और फैलना। सृष्टि और प्रढय | प्रठझय और सृध्टि। यही कमढ्र और संसार का स्वभाव है। इस चादर मे पॉच तत्व (धरती, जल, आग, हवा, आकाश) और तीन गुण (सत्व, रज, तम) है। यह जगत चादर, शरीर चादर इनसे ही बनी है। इसे ईश्वर ने बनाया है। दस मास मे बनाया। शरीर दस मास मे तैयार होता है। किंतु यह मास महत्त्वहीन है। (शब्द की सीमा को _३ होगा) क्योकि कारीगर तो चादर नित्य बुन रहा है। तैयार वह चाहे जितने दिनो मे | प्रत्येक व्यक्ति (आत्मा, जीवात्त्मा) को यह चादर दी गयी है। शरीर चादर। जीवन की चादर। मनुष्य होने की चादर। सृष्टि, ससार, लोकलोकांतर तथा दिशादिशातर की चादर। कहते है पृथ्वी को जल घेरे है। जल को आग। आग को वायु। वायु को आकाश। सब क्रमशुदसदस गुणे है। आकाश ब्रह्म से घिरा है। स्वव ब्रह्ममय है। ब्रह्म है। ईश्वर ने इस चादर को सुंदर बनाया है। ठोक ठोक के बीनी.चदरिया। देह, गेह सब अच्छा। ऐ भाई, तुम्हारे पास प्रभु की धरोहर है। तुम स्वय प्रभु भी हो। धरोहर भी हो। प्रभु की इस धरोहर को सेभाल के रखो। राजा ने अपने कर्मचारी को पूरा अधिकार दिया है। उसके पास राजकी मुद्रा है। वह है 20083: सौदर्य एव औदार्य का प्रतीक है। जो करे सब मान्य होगा। इसलिये राजा बनकर करो। भगवान् बनकर करो। राजा का प्रतिनिधि राजा ही तो होता है। तुम भी तो राजा हो। भुग़वानू हो। फिर गलत क्यो करते हो ? गढत करोगे राजा निकाल देगा। राजा से सबध छूट जायेगा। राजकी मुहर गायब हो जायगी। अब तुम्हे कौन पूछेगा ? हीनता का बोध होगा। यम के साधारण सिपाही भी बॉध छेगे। इस जात का ध्यान रखो। राजा की धरोहर खराब न हो। जैसे दिया वैसे लौटा दो। जस के तस लौटा दो। आखिर दूसरे

की अमानत का उपयोग या ' बरतने का तुम्हे दया हक है ? अच्छा भाई उपयोग भी कर लिया। उसने भी तुम्हे अवसर दिया

९४ कबीर समग्र उसे बरत छो। तुम्हारे द्वारा उपयोग किया जाना उसे अभीषथ्ट है। कितु खराब मत करो। गदा मत करो। गदगी से प्रभु को बहुत चिढ़ है। साफ चादर को वह छीनना भी नही चाहता। चादर को मैली करनेवाले भी साधारण नही, असाधारण है- सुर, नर, मुनि। सब ने ओढ़ा। सबको ओढ़ना पड़ा। बिना चादर ओढ़े कोई रूप बनता ही नही है। चादर हटी कि. सब समाप्त। यह चादर पहले नहीं थी। बाद मे नही रहेगी। भूत और भविष्य दोनो अव्यक्त है। व्यक्ी तो केवल वर्तमान है। वर्तमान की अभिव्यक्ति ही व्यक्ति है। इस व्यक्ति को चादर ने घेर रखा है। चादर न हो तो क्या होगा ? बिना चादर के कोई एक क्षण नही रह सकता। बता तो दिया चादर कैसे बनी है। इड़ा, पिगला, सुषुम्ना, पाँच भूत और तीन गुणो से। ये ही चादर है। चादर कैसे मैठी होती है ? कैसे साफ रहती है। चादर को ओढ़कर भी चादर से अलग रहो। चादर साफ रहेगी। तन मन को साफ रखो। विचित्र चादर है यह। इसे ब्रह्मा . जुलाहे ने बुना है। इसलिये यह शरीर से नही मन की गदगी से गदी होती है। मन को साफ रखो। सुर, नर, मुनि का दोष है। उन्होने मन को साफ नहीं रखा- मन मे मैठ अपारा। फलत चादर गदी हो गयी। यह जीवन तो गया ही। भविष्य के लिये भी खतरा हो गया। अगढे जीवन का बीज सूत्रात्मा, लिग शरीर, सूक्ष्म देह कर्म सस्कारो से भर गया। इनके कारण वबारबार जन्म मरण होगा । सुर, नर, मुनि सब बार-बार जन्म छे रहे है। मर रहे है। तृष्णा मे मर रहे हैं। केवल एक कबीर है जिन्होंने बड़े यल से यह चादर ओढ़ी है। कौन-सा यल ? मन को शुद्ध रखनेवाला यल। वासनामुक्त मन। काम, लोभ, क्रोध रहित मन। योग और भक्ति का यल। साधु सगति मे रहकर सब भगवान् को समर्पित करने वाला यल। यलपूर्वक जीविका चलाकर, साधारण जीवन जीकर भगवान् से जुड़ने का यत्न। यह चादर भगवान् के सेवको से गदी नही होती है। प्रभु दृष्टि मे रहने पर सदा साफ रहती है। सूर्य की रोशनी मे अंधेरा नही रहता है। भगवान् की भक्ति एवं उनकी कृपा के प्रकाश मे चादर को मैल छू नही पाती है। गदा होने का तो सवाल ही नही है। यही कारण है कि कवीर साहब ने चादर जैसी धी वैसी ही रख दिया । औरो की चादर छिन जाती है। मैल से नष्ट हो जाती है। झीनी तो थी ही। आसानी से नष्ट हो गयी। कितु कबीर साहब की चादर नष्ट नही हुई। वे आवागमन, जन्म-पमृत्यु से मुक्त हो गये। उन्होने तनना-बुनना दोनो छोड़ दियातनना बुनना तज्या कबीर। राम नाम लिखि लिया शरीर। राम नाम लिखी, रामनामी चादर को मैल नही हुगती है। राम तो सतोगुणी है। सत्त्व मे ग्रैढ कैसे लगेगी? अब ताना-बाना दोनो नाच रहे है। जन्म-मृत्यु का परिवर्त्तन हो रहा है। कितु कुंबीर इस परिवर्त्तन से मुक्त है। चूहे ने (मृत्यु ने) ताने को तन को काट दिया है। चूहा. काट्या ताना री भाई। ताना तन है। तन मरेगा। आत्मा अमर रहेगी। सत कबीर इस स्थिति से शात है। मन स्थिर हो गया। भगवान् के ध्यान मे समाधि लग गयी है। उनकी इस समाधि को भगवान भी जानते है- जानत है भगवाना हो राम। कबीर की माया मा रो रही है- ए लरिका क्यो जीवै खुदाई।

कबीर कहते है- पूरनहारा त्रिभवन राई। परमात्मा ही पूर्ण करता है। उसका कार्य जल्द पूर्ण होता है जिसकी चादर साफ है। आला शुद्ध है। मन निर्मछ है। मैठी चादर वार्ली मैली धन्या तो प्रिय के पॉव भी नहीं छग सकती है-- पिउ उजला धन मैली लागि न सकई पाँव ।
कितना अच्छा होता यदि सभी लोग इस चादर को साफ रखते। साफ रखने मे लगे रहते।

ज्यों के त्यो धरि दीनी चदरिया ९५ काम, क्रोध, द्वेष मुक्त रहते। मन को विकार मे नही पड़ने देते। सभी छोग संत हो जाते। कम से कम इतना होता कि इस चादर की अनुभूति, इसकी मैली न होने का ज्ञान बना रहता। इसके झीने स्वरूप का बोध रहता। जैसे छिद्र युक्त बॉध से पानी बह जाता है। बॉध टूट जाता है। वैसे ही इस चादर मे अनेक छेद है। अनेक दरवाजे है। नौ, दस। इन्हे ही गोस्वामी तुलसीदास कहते है- इद्रिय द्वार झरोखा नाना। देवता इनके पहरेदार है। ये देवता अधिदेव कहे जाते है। ईश्वर मे इन्हे इंद्रिय द्वारो की रक्षा के ढिये बैठाया है। ये द्वारपाल जीव और जीवन की रक्षा करते है। खाली द्वारो की रक्षा का कया मतरुब है? इसलिये चादर को साफ रखो। ऐसा न करो कि देव के स्थान पर दानव बैठ जायेगे। दानव हर समय घूमते रहते है। देवों से उनकी दुश्मनी पुरानी है। जरा भी अँधेरा हुआ कि दानव बली हो जाते है। देवता कमजोर पड़ जाते है। अँधेरे मे देवों को नींद आने लगती है। इसलिये अँधेरे को कभी पास नही फटकने दो। मैठी चादर और अँधेरे का बड़ा साम्य है। दोनो काले है। तम और तमस है। कबीर प्रत्येक के भीतर के देवों को सावधान कर रहे है। मजबूती से पहरा दो। लोभ, मोह वाल्म पहरेदार पहरा नही दे सकता। उसे विषयचोर धोखा दे देते है। जो विषयों से धोखा नही खाता है। वासनाओ के चक्कर मे नहीं पड़ता है। उसकी चादर साफे रहती है। ऐसा व्यक्ति ही अच्छा सामाजिक प्राणी भी हो सकता है। हर श्रेष्ठ व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा (पश काय) बचाता है। बढ़ाता है। उसे कभी मैली नही होने देता है। वैसे ही हर व्यक्ति को अपनी सामाजिक 2823 न हा सचेत रहना चाहिए। इसीलिये इस झीनी झीनी मे भी कबीर मस्त है। मगन । भय रहित है। फ झीनी चादर के समान ही यह शरीर घर छिनृहर भी है। इसे बद रखनेवालली टटूटी भी झिरहर है। टटूटी ही घासफूस, बॉस के डठलो से बनी होती है। किवाड़ जैसे मजबूत नही होती है| उस पर छिरहर भी है। इस छिनहर और झ्‍िरहर मे कुछ रुक नही सकता। बचाव नही है| आवागमन होगा ही। इसीलिये कबीर इस घर को छोड़ना चाहते है। यह घर पक्का नही, मिट्टी का है। मिट्टी से सकेत नाशवान्‌ का है। मिट्‌टी का घर छिनहर होगा ही। टाटी भी झ्चिरहर है! ऐसे में सारे पहरे के बावजूद कितना भी जागिए चोरी हो ही जायगी। चोरी होगी। जब दूर जाना है तो इस घर को छोड़ना ही होगा। यहाँ से जाने पर हरि मिलेगे। हरि ही स्थायी और नाश रहित है। कबीर कहना चाहते है कि जैसे उन्होने चादर को बर्बाद नही होने दिया, वैसे ही इस घर मे भी सुरक्षित रह गये। औरो जैसी चोरी नही हुई। कितु इसे छोड़ना ही होगा। पता नही यह कब नष्ट हो जायगा ? कबीर औरो के घरो की दशा देख रहे है। इस लिये इसे छोड़ने का निश्चय कर लिया है ।१ कननननससत-3 सन १ इब न रहौ माटी के घर मै, इब मै जाइ रहू मिलि हरि मै । छिनहर घर अछु ज्‍िनरहर टाटी, घन गरजत कपै मेरी छाती । चहूँ दिसति बैठे चारि पहरिया । जागत मुसि गये मोर नगरिया ।

हर कबीर की स्त्री कबीर के बारे मे बहुत सी अनुश्रुतिया है, उनमे एक है उनकी स्त्री का नाम लोई। क्या कबीर की स्त्री का नाम छोई था ? भारत के लेखकों कवियो आदि मे अपना परिचय बताने की प्रथा न थी। छोग प्राय आत्मकथा के स्थान पर प्रभुकथा लिखते थे। किन्तु आधुनिक लोग किसी न किसी बहाने रचना मे साहित्यकार की आत्मकथा खोजते है। डा० मुन्शीराम शर्मा ने भक्ति का विकास" नामी अपने ग्रथ मे लिखा है-'जनश्रुति के अनुसार कबीर की पतली नाम लोई था। सभव है उसी का नाम धनिया भी रहा हो |" (पू० ४१९) जनश्रुति कबीर की पतली की है। किन्तु अर्थ 'लगानेवाले विद्वान दो पतली की कल्पना करते है। "कबीर का हुआ था। उनकी स्त्री का नाम धनिया था, पर कबीर साधुओ के ससर्ग से रामरमीआ अर्थात् राम में रमण करनेवाले भक्त बन गये थे, अत उनकी पत्नी को भी लोग रामजनी अटप्धात् भगवान् की भगतिन कहा करते थे!" भक्ति का विकास, (प० ४१९)। इस कल्पना का आधार निम्नलिखित पक्तियाँ है-मेरी बहुरिया को घनियां नाऊँ। ले राख्यो रमजनियाँ नाउं। डा० मुन्शीराम शर्मा कहते है-"तो क्या कबीर के दो विवाह हुये थे ? दो स्त्रियों के नाम हम अभी लिख चुके है. धनिया और लोई। इनमे कौन प्रथम विवाहिता थी कहा नहीं जा सकता | पृष्ठ ३०५ पद सख्या १३६ में भी कबीर ने अपने दो विवाहो की ओर सकेत किया है पहली कुरूप कुजाति कुलखनी सछूरे पेहये दुरी। अबकी सरुप सुजाति सुलबखनी सहजे उदर भरी। भली सरी मुई मेरी पहली बरी। जुग जुग जीवी मेरी अबका घरी। यहाँ कबीर पहली स्त्री को विवाहिता या परिणीता और दूसरी को धरी हुई (बिना विवाह सस्कार के ही जिसे घर मे स्त्री की तरह रख लेते है) कहते है -भक्ति का वि०, पृ० ४२१। डॉ० रामकुमार वर्मा भी सत कबीर की दो पलियो मे विश्वास करते है। कबीर की दो पत्नियों की कल्पना और उस पेर पहली दूसरी का अनुमान हिन्दी की कविता के अध्ययन का अच्छा उदाहरण है। इस प्रकार की कल्पनाएँ विलुकल छिछढी और सतही हैं। आश्चर्य तब होता है जब यह प्रसिद्ध विद्वानो द्वारा कही जाती है। इसमे पहली बात (तो यह कि कबीर रूपको मे बात करते है। उन्होंने कही भी अपनी पली का नाम लोई नही कहा। हाँ धनिया अवश्य कहा है। किन्तु धनिया और रमजनियाँ केवल तुक के लिये है। ध्यान रखना होगा कि कबीर अपने को भक्त और भगवान दोनो मानते है। इसीलिये वे स्त्री मात्र का पयार्य धनन्‍्या का तदूभव धनिया अपनी पतली का नाम बताते है। घनिया और रमजनिया केवल ! प्रतीक है। उनकी न तो कोई पहली पतली थी। न कोई दूसरी। जिसे वे पहली कहते है वह है माया और दूसरी है भक्ति। तुलसी ने माया-भक्ति दोनो को स्त्री कहा है। कबीर आगे है। दोनो से सबध कर लिया। किन्तु एक इनके साधु होने पर दुर गई। क्योकि यह तीन कु वाली थी- कुरूप, कुजाति, कुलक्खनी। दूसरी तीन सु वाली है सुरूप, सुजाति, सुक्खनी। पता नही डॉ० शर्मा ने पहली को परिणीता कैसे मान लिया। यह भी नहीं सोचा कि अगर कबीर (९६)

कबीर की स्त्री ९७ मुसलमान थे तो चार तक तो परिणीता हो सकती थी। फिर सु, कु गाने की जरूरत स्पष्ट है कबीर कुछ दूसरी बात कह रहे है। पहली मर गई। क्योकि वह माया थी। दूसरी भक्ति है। इसे ही कबीर युग युग जीने का आशीर्वाद देते है। धनिया को प्रथम और लोइ को दूसरी स्त्री मानना मन की उड़ान मात्र है। इसका सत्य से कोई सबध नहीं है। आध्यात्तिक और रहस्यवादी कवियों के अर्थ सपाट ढंग से नही छगाए जा सकते। इनकी दार्शनिक गहराई को छोड़कर अभिधामूलक अर्थ अनेक सकट पैदा करते है। लोई का कबीर की पत्नी होना तो शुद्ध रूप से भाषा दोष है। लोई सस्कृत छोक का तदूभव रूप है। मध्यकालीन साहित्य मे छोइ शब्द का लोग जनता के अर्थ मे बार-बार प्रयोग हुआ है। ढोला मारू का दूहा मे लोइ शब्द जनता के अर्थ मे छह बार आया है।' सबरस के उद्धरण राहुल सास्कृत्यायन ने अपनी पुस्तक दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा मे लिया है। इसमे लोक के लिये लोका शब्द आया है. लोका बोलेकि इस कोटका नाव है (हिदायत । पू ३४)। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा सपादित संदेश रासक में लोक का तदूभव लोउ है। डॉ० माता प्रसाद गुप्त द्वारा सपादित मधु मालती मे लोइ का प्रयोग लोग के अर्थ मे आया है कलि औतरिमा अमरन कोई। अंत हाव पछिताबा लोई। बुच्चि पढ़े आखर मोर लोइ।४२।४। शेख अब्दुल कुह्दडूस गगोही की अलखवानी मे छोई शब्दके प्रयोग अनेक बार हुए हे अलूखदास आखे सुन लोई। पृ० ३१ बोलत गोरख सुनिहों लोय। पृ० ५७ डॉ० गोविद त्रिगुणायत् लिखते है-“कबीर ने अपनी रचनाओ मे कई बार लोई शब्द का प्रयोग किया है। वह भी अधिकतर सबोधन मे है। जिस प्रकार शिवजी ने पार्वतीजी को उपदेश दिये थे | सभवत उसी प्रकार कबीर ने अपने बहुत से उपदेश लोई, जो संभवत* उनकी स्त्री थी, को सबोधित कर प्रवर्तित किये थे। लोई के सबध मे प्रवाद है कि वे किसी बनखंडी वैरागी को छोई मे रुपेटी हुई नवजात कन्या के रूप मे गगाजी के तट पर मिली थी। उन्होने उस कन्या का पालन पोषण किया था। बड़ी होने पर उसका विवाह कबीर से हो गया।। सबंध बड़ा उपयुक्त और सम था। अगर वर के पिता का पता न था तो दुलरूहिन के माता-पिता दोनो ही अज्ञात थे। एक अन्य किवदती है कि लोई पहले तो कबीर की शिष्या थी। कितु बाद को उनकी पत्नी बन गयी थी। कुछ भी हो, परम्परा के आधार-पर हम कबीर की स्त्री का नाम लोई मान सकते है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने अत साक्ष्य के आधार पर अनुमान किया है कि कबीर के दो स्त्रिया थी। उनके मतानुसार पहली सभवत कुरूप थी। पहली स्त्री का नाम लोई था और दूसरी का धनिया। लोग इसे रमजनिया भी कहते थे। उनका अनुमान है कि रमजनिया वेश्या रही हो ।”* ये उद्धरण अद्भुत निष्कर्ष देते है। लोई को सत कबीर ने वैसा ही उपदेश दिया जैसा शिव ने पार्वती को दिया था। कितु पार्वती ने तो पूछा था। लोई तो बोलती ही नहीं। कबीर साहित्य मे कही भी कथित लोई का कोई हक नहीं है। तो क्या सत कबीर बिना पूछे ही उपदेश दे रहे थे ? ईं की जन्म कथा प्रसिद्ध भक्तिन अंडाल (गोदा) से

मिलती है। वह भी एक साधु को तुलसी वन मे फेकी मिली थी। यह कथा रूढ़ि है। शिष्या से विवाह वाली बात तो अत्यत आपत्ति जनक है। क्या सत कबीर विश्वविद्यालयी अध्यापक थे ? कबीर जैसे सत का शिष्या १ कबीर की विचारधारा, पृ० ३५-३६।

९८ कबीर समग्र से आनुमानिक विवाह की बात करना अपराध है। उनके सतसाहित्य एव परपरा को न समझना है। कितु शोधियो को इतने से ही सतोष नही हुआ उन्होने सत कबीर को वेश्यागामी भी बना दिया। शोध की कैसी विडबना है। कबीर साहब की सप्रदाय परपरा उन्हे अविवाहित मानती है। स्वय सत कबीर की स्त्री को माया मानकर उसे साधना मे बाधक मानते है। कितु विश्व विद्यालयी शोध उन्हे वेश्यागामी मानने मे भी नही हिचकता है। कलिकाल जो न करा ले। सत कबीर पहली को कुरूप मानते है। दूसरी को सुलक्षणी। कितु आलोचक मानते है कि फिर भी कबीर साहब का पारिवारिक जीवन सुखी न था ।!१ उसी मे नाथ सिद्धों की वाणिया, पृ० २६ एक उद्धरण हैचरपट कहै सुणो ९ लोह। बरतणि दै पणि जो गन होइ | पृ०५८ गोरखबानी मे लोई शब्द तीन बार हैबदंत गोरखनाव सुणोनरलोई। पृ० ११६,१३९ चामे चांम घसंता लोई, दिन दिन छीजै काया। पु० १४४ लोगो का ध्यान गोरखनाथ के अतिम उद्धरण पर नही गया वरना गोरख की पली का नाम भी लोइ हो जाता। कुतुब शतक मे लोइ शब्द का प्रयोग लोक के ही अर्थ मे है लण्जा लोयिन नच्च मालोह हसंदे कल्हि ।३४ गरीबदास की वाणी मे ऊँच नीच इस विधि है लोई। कर्म कुकर्म कही पै दोई। इस प्रकार मध्यकाल के विभिनन ग्रन्थो को देखकर स्पष्ट है कि लोइ, लोई लोग के अर्थ मे प्रयुक्त है। जो सस्कृत लोक का तद्भव है। सस्कृत राज हिंदी मे राय, राव, राइ, राई, राऊ, राउ आदि रूप ग्रहण करता है। यही हाल लोक का है। ऊपर के उद्धरणों मे लोक ने लोइ, लोय, लोउ, लोई रा गा है। भाषा विकास का जिन्हे थोड़ा भी ज्ञान होगा उन्हे यह विकास स्वाभाविक लगेगा गा ग्रन्धावली के परिशिष्ट मे पृ० ३२२ की पद सख्या १८५ मे लोई का प्रयोग इस प्रकार कहत कबीर सुनहु रे छोइ्ट रामनाम विन मुकुति न होई। स्पष्ट ही यह लोइ लोक के अर्थ मे है। कबीर जनता को सबोधित कर रहे है। दूसरा प्रयोग है. सुनि अध्ध लोई बेपीर। इन मुड़ियन भजि सरन कबीर | पृ० २९६, पद १०९, यहाँ अली प्रवाह पतित लोगो के लिये प्रयुक्त हुआ है। जो माया मे फसॉकर ईश्वर को नही देख रहा है वह अधा है। वे पीर का अर्थ तमस् हृदय वाला। जिसमे ईश्वर को समझने की सहदयता नही है। एक दोहा इस प्रकार है करिए तौकरि जाणि ये सारीषासू संग। लीर लीर लोई थई, लऊ न छाड़े रंग।२६।३ लोई शब्द आते ही डॉ० मुशीराम शर्मा ने अर्थ किया- कबीर ने इस दोहे मे छोइ की प्रशसा की है। वह जल मे बहती हुई आई थी, फिर भी उसका रग ज्यो का त्यो बना हुआ था। लोइ क्यो जल मे बहती आयी। कबीर फेके गये थे। लोई भी फेकी गई थी क्या? असल मे यहाँ भी लोई का अर्थ लोग है। सपूर्ण सृष्टि जल मे स्थित है। जल मे उतपति जल मे वास ज+ ; नी वही, पृ० ३६।

कबीर की स्त्री ९९ में नलिनी तोर निवास। थइ स्थित का तदभव है। रग का अर्थ है स्वभाव। लोइ को कबीर की स्त्री मानने की धारणा बनाने के कारण अर्थ ढगाने मे भी भ्रम स्वाभाविक है। कबीर छोइ के और भी प्रयोग किये है रंग न चीन्हे मूरख लोइ जिहि रंगि रंग रहा सब कोह। यहाँ भी लछोइ लोग के अर्थ मे है। आगे पडित लोग से पूछते है४ सो कछू विचारहु पंडित लोइ। साफ है कि कबीर कही भी लछोइ को अपनी स्त्री नही कहते। छोइ को कबीर की स्त्री कहना किसी पडित की भाषाविज्ञानी भूल थी। इस प्रभावशाली पडित के कारण छोई कबीर की पली के रूप मे जनश्रुति बन गयी। यह भी हो सका है कि कभी किसी ने इसका दार्शनिक प्रयोग किया हो। कबीर पुरुष है और पूरी सृध्टि उनकी स्त्री है ऐसा दार्शनिक प्रयोग किया हो। कबीर ईश्वर पुरुष है। इस जनश्रुति की खोज आवश्यक है। अभी इतना ही। कबीर ग्रयावली और प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर लोइ व्यक्तिवाचक नाम नही है। इसलिये इसके कबीर की पतली होने का सवाल नही उठता। कबीर तो स्वय ही राम की बहुरिया है। ये स्वय राम भी है ''हमही आपु कबीर कहावा' | कबीर की पतली का नाम लोई बिल्कुल ही काल्पनिक और भ्रममूलक आधारों पर प्रचहित है। कबीर स्त्री (बहुरिया) भी है। पुरुष भी है। मधुरोपासक प्राय. सप्रदाय पुरुष केवल ईश्वर को मानते है। पुरुष एक है। परमात्मा पुरुष है। सभी जीवात्मा प्रकृति या स्त्री है। कहानी है- असिद्ध भक्तिन मीरा वृदावन गयी। रूप या जीवगोस्वामी ने उनसे मिलना अस्वीकार कर दिया। क्योकि मीरा स्त्री थी। मीरा ने उन्हे ध्यान दिलाँया। पुरुष तो केवल कृष्ण है। शेष जीव स्त्री है। इसे गोपी भाव की उपासना भी कहते है। गोस्वामी को अपनी भूछ तुरत समझ मे आ गयी। वे मीरा के सामने नतमस्तक हुए।

- भकार भारत के धर्म दर्शन मे नकार की महत्वपूर्ण भूमिका है। श्रुतियाँ ब्रह्म को नकार से ही व्यक्त करती है। सत कबीर का दर्शन इनकार का, नही, नकार का है। भागवत मे इसे निषेध कहा गया है | नेति नेति। कुछ कुछ ऐसी ही पद्धति सतो की है। सत सभी को नकारते है। शायद ही कोई पूर्ववर्ती है जिसे कबीर ने नकारा न हो। वे सबके आलोचक है। ऐसा इसलिये है कि उनका मार्ग आतरिक साधना का है। निर्गुण और निराकार है। गुरु उन्हे राह जरूर बताते हैं। कितु वे किसी बनी बनायी राह पर नही चलते। प्रत्येक सत अपने भीतर देखता है। निजी अनुभव और निजी साधना के द्वारा सत्य का साक्षात्कार करता है। जिस सल का साक्षात्कार करता है वह अत्यत सूक्ष्म है। 'पानी ही ते पातला, धूवाँ ही तै झीण'। वह तत्त्व इनसे भी सूक्ष्म है। कितु उसे कहा कैसे जाय ? अनुभूति का सकट तो है ही। उसे व्यक्त करने का संकट उससे भी गहरा है। इसीलिये सत पहले तो कुछ कहना नही चाहते। कहने, बोलने से तत्त्व नथ् हो जाते है- बोलत-बोलत तत्त्व नसाई। कितु बिना बोले रहा भी नहीं जाता है। बोलना कठिन है। नही बोलना भी मुश्किल है। इसीलिये कबीर सर्वप्रथम पडित को छलकारते हैं। पडित सर्वप्रथम तो अपनी बात न कहकर दूसरो की बाते कहता है। शास्त्र उसका अपना अनुभव नही है। कागज का लिखा है। इसीलिये शास्त्र क्रंतिकारी और परिवर्त्तनकारी नही हो सकता है। उसका अनुभव प्रमाणिक, अपना और ताजा नही होता है। सकट के समय पडित जल मरते है और भाग जाते है- 'पडित पडित जल मुये मूरख उबरे भागि ।'' यह इसलिये होता है कि पडित हर समस्या का समाधान पुस्तक मे दूँढ़ता है। पुस्तक का अनुभव पुराना है। दूसरो का है। समस्या से प्रत्यक्ष सम्बद्ध नही है। इसके मुकाबले सत का अनुभव प्रत्यक्ष है। उसका आत्मविश्वास पडित की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली हैं। इसीलियें सत का रास्ता सप्रदाय की अपेक्षा पंथ हैं। यह पथ उसने स्वय खोजा है। शास्त्र की दृष्टि अधी हो सकती है। उसे सत्य नही दीखता है। जो आँख रहित है उसे सब दिखाई पड़ता है। बाहही आँखो की अपेक्षा भीतरी आँखों के प्रयोग की आवश्यकता है। सतो की अनुभूति का ढंग भी सामान्य लोगो की अनुभूति से भिन्न है। कबीर ने जिनसे सीखा है उनके प्रति भी उन्हे संदेह है। गोरखनाथ के प्रति भी उन्हे सदेह है। वे भी झगड़े मे पड़ गये। इसीलिये कालपुर मे अटक गए- हे झिलमिल झगता झूलते, बाकी छूटे न काहु। गोरख अठके कालपुर, कौन कहावै साहु। १ सबवैन देवासुर मर्लतिर्यड नस्त्री न षण्ढो न पुमानू न जन्तु । नाय गुण कर्म न सन्न चासन् निषेघशेषों जयतादशेष' ॥ वे भगवान न देवता हैं, न असुर । वे मनुष्य और पशु पशी भी नहीं हैं | न वे स्त्री हैं, न पुरुष और न नपुस्क । वे साधारण या असाघारण प्राणी भी नहीं है | वे गुण, कार्य, कारण, कर्म भी नहीं है | सबका निषेध हो जाने पर जो बच जाता है वही उनका स्वरूप है। ८|३/२४ (१००)

नकार १०१ चौरासीं सिद्धो का कबीर पर बड़ा प्रभाव माना जाता है। कितु कबीर उन्हे भी नही छोड़ते। सिद्ध भी माया मे खेल रहे है- * सिध चौरासी माया महि खेला। 4 २ >५ छिय जती माया के बंदा। नबै नाथु सूरज अरु चंदा। तपे रखीसर माया महि सूता। माया महि काल अरु पंचदूता। छ जती षडदर्शनो के प्रणेता है। नाथ नव है। सूर्य, चद्रमा, ऋ्लीश्वर भी माया में सोये है। यहाँ तक कि काढ और उसके पाच दूत भी माया के आधीन है। माया काल से भी बड़ी है। मथुरा, द्वारिका, जगन्नाथ जाना व्यर्थ है। कुछ हाथ आनेवाला नही है। मूल बात है साधु की सगति। कितु केवल वेश बनाना यहाँ भी खतरनाक है। बहुत से छोग वेश तो अतीत का बनाते है कितु भीतर से अपराधी होते हैकबीर भेद अतीत का, करतूति करै अपराष। काशी मे रहनेवाले कबीर ने काशी को भी नही छोड़ा। काशी की निदा नहीं की, कितु काशी या वाराणसी को मथुरा और द्वारिका के समान बाहरी साधन बताया। इससे आत्रतत्त्व की प्राप्ति नही हो सकती है। वे वैष्णवो के मित्र है। अपने को वैष्णव कहना भी चाहते है। इसीलिये शाक्त के मुकाबले चाडाल वैष्णव भी अच्छा है। वह मा अच्छी है जिसने वैष्णव पुत्र पैदा किया हैकबीर धनि ते सुंदरी, जिनि जाया बैसनों पूत। कितु यह वैष्णव भी कबीर की आलोचना से नही बचता। क्योकि वहाँ भी बाह्याडबर है। संप्रदाय बनाकर सत्य की खोज नही हो सकती है। सत्य तो व्यक्तित अनुभव की चीज है। सबके अनुभव अलग अलग है। एक है। इसलिये कि मनुष्य अलूग-अलछग होकर भी एक है। व्यथि है। समष्टि है। व्यक्ति ही व्यथि और समध्टि का आधार है। इसीलिये नकार मे इनकार नही है। नकार कहने की मजबूरी के कारण है। नकार का एक दूसरा अर्थ है प्रसार को अस्वीकार करना। यह प्रसार ही बाधक है। रोकता है। रुकावट है। बाधा बना खड़ा है। सत्य का प्रभु इस प्रचार-सचार मे नही है। तो प्रसार-सचार क्या उससे भिन्न और स्वतत्र है ? नही, भिन्न और स्वतत्र तो नही है। कितु सत्य नही है। सत्य नही तो असत्य भी नहीं है। पूर्णत असत्य होते इनकार कर देते, किंतु यहाँ तो केवल नकार है। यह नही है। यह नही है। इसका मतलब यह नही कि इसमें या इनमे नही है। विचित्र स्थिति है। इसमे है।' इनमे है। कितु यह नही है। बिल्कुल नही भी नहीं कह सकते हैं। हाँ ना के बीच की, बाद की स्थिति है। हाँ और ना की अनुभूति न केवल आध्यात्मिक है बल्कि इसे भूत दुनिया मे भी नित्य देखा जाता है। पचमहाभूत कहों नही है ? पानी गर्म है। ताप की अनुभूति होती है। छाले पड़ते है। सहा नही जाता है। किंतु आग कहाँ है ? और नही है तो ताप कैसे है ? ढक देने पर आग बुझती है। इसका मतलब है कि उसमे हवा है। हवा बद कर देने पर जीव भी मरता है। आग भी मरती है। इस बात को शोधार्थी विज्ञानी और ज्ञानी समझते है। सामान्यजन देखता तो है। कितु इसके भीतरी तथ्य जानने की कोशिश नही करता है। यही स्थिति आध्यात्म विद्या से अपरिचित सामान्य जन की है। अतर की दुनिया से अपने को छगातार अल्ग रखने के

 कारण वे बहुत सी उपलब्धियों से वचित रह जाते है। संत इसे समझने-समझाने की कोशिश करते है। सत तो समझ गए है। अब दूसरो को भी समझाना चाहते है। यह उनकी क्वपा है। बहुत से सत महात्मा है जो समझाने के चक्कर मे नही पड़ते है। जाने कैसी कैसी और कितनी साधनाएँ करते है। कितु कभी किसी को न बताते है। न दिखाते है। अपनपा भी दुराए रहते है। नगन अमगल वेश मे कही पड़े रहते है। पागल-सा घूमते रहते है। ऐसे महात्माओ की सख्या भी असख्य है। हम इन्हे न जानते है। न जानने की कोशिश करते है। ये एक प्रकार से योनि परिवर्तित व्यक्ति है। इन्हे सिद्ध सत योनि का कहा जा सकता है। ऐसा नही कि ये शरीर बदल देते है। शरीर वही रहता है। कितु साधना से स्वभाव बदल जाता है। जो सत अपने अनुभव को कहना चाहते है। वे अत्यत रहस्यमय और सूक्ष्म अनुभव को भाषा द्वारा कहते है। भाषा एक सामाजिक अनुभव है। इसलिये स्थूल है। क्योकि समाज तो सबका है। ऐसी स्थिति मे जो अनुभव सामाजिक नही है। व्यक्तिगत से भी परे आतिक है। उन्हे स्थूल भाषा के माध्यम से कैसे व्यक्त कर दिया जाय ? और व्यक्त कर भी दे तो उसे समझेगा कौन ? समझनेवाले के पास भी तो भाषा चाहिए। सत इसे कभी भाषा और कभी मौन से व्यक्त करते है। नकार मौन और भाषा के बीच की एक पद्धति है। तर्कशास्त्री अभाव की सत्ता भी स्वीकार करते है। वैसे ही यह नकार अभाव की सत्ता के निकट है। यद्यपि यह अभाव नही है। यह तो पूर्ण स्थिति के सूक्ष्म बोध की अभिव्यक्ति का ढंग मात्र है। पूर्ण सत्य अक और अक्षर के माध्यम से नही बताया जा सकता है। जिन्हे अक और अक्षरों के माध्यम से समझने की आदत है वे इनकार कर देते है। प्रभु नही है। वह मनुष्य की कल्पना है। भय और विश्वास है। ऐसे व्यक्ति न केवढ ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार करते है। वल्कि छाखोकरोड़ो सतो-योगियो और भक्तो की उन अनुभूतियो को भी अस्वीकार करते है। जो मनुष्य जाति लाखो वर्षों से अपना धन बनाये है। यह इसलिये भी महत्त्वपूर्ण है कि ससार मे पूर्ण नास्तिक शायद मिले। कितु पूर्ण आस्तिक की सख्या करोड़ो है। है की अनुभूति ही संभव है। नहीं की कोई अनुभूति नही हो सकती है। और नही की अनुभूति के अभाव मे नास्तिकता विधेयात्मक नहीं हो पाती है। मन को टिकने के लिये जगह चाहिए। अधिष्ान चाहिए। अधिष्ठानरहित नास्तिक मन भटकता है। अगर अधिष्ठान पर मन टिक जाय तो फिर उसे नास्तिक कहना कठिन हो जायगा। सत कबीर का नकार एक विराट आस्तिक मन की खोज है। एक आधार की प्राप्ति है। मन एक अधिष्ठान में टिका है। कितु यह अरूप अधिष्ठान है। शून्य है। कितु शून्य के सामान्य अर्थ से भिन्न है। पूर्ण शून्य हो तो अधिष्ठान कैसे बनता ? मन कहाँ टिकता ? कितु कबीर है कि अधिष्टान की परछाही से भागते है। ना, ना करते है। कही रुकने की जगह नही है। सबसे भाग रहे है। किसी को साथ नही छेते। अकेले जाते है। साथ जाना कठिन है। वह अनुभूति सामूहिक नहीं हो सकती है। नितात वैयक्तिक अनुभूति है। जो

अनुभूति सामाजिक और सामूहिक है वह नकार का विषय है। नकार का इतना विराट काव्य अत्यत दुर्लभ है। यह विराट् नकार इसलिये बन पड़ा कि कबीर ने विराट् आकार क़ा दर्शन किया है। उस विराट् के सामने सारे साकार तुच्छ लगते है। जैसे समुद्र को पाकर सारे जलाशय हीन लगते है। क्षुद्र हो जाते है। समुद्र प्राप्त प्राणी दूसरे जलाशयो को अस्वीकार कर देते है। उनके अस्तित्व की उपेक्षा कर देता है। समुद्र के सामने आखिर ये क्या है? कुछ भी नहीं। इनकी किचित्ू भी स्थिति नही है। जलाशय और समुद्र के उपसान द्वारा गीता इसी तरह का सकेत करती है। ब्रह्मज्ञान समुद्र है और शेष सारे ज्ञान, सारी

नकार १9०३ संवेदना छोटी गड़ही है ।? इसीलिये ब्रह्म को जानो। ब्रह्म को इसलिये भी जानो कि समस्त जलाशय समुद्र मे ही विसर्जित होते है ।९ सारे जलाशय अपूर्ण है। कालाधीन नाशवानू है। सूखनेवाले है। सूखते और नष्ट होते है या समुद्र मे मिलकर अपने को पूर्ण से सम्बद्ध करते है। जब सभी ज्ञान जलाशयो को समुद्र मे ही मिलना है तो सीधे समुद्र से ही क्यो न मिला जाय ? यही कारण है सत कबीर सबको नकारते बढ़े जा रहे है। जहाँ बाद मे शायद पहुँच सके वहाँ वे पहले पहुँचते है। सीधे पहुँचते है। सरल और सीधी गति से पहुचते है। बीच मे रुककर समय और शक्ति का अपव्यय नहीं करते है। गतव्य स्थल सामान्य नहीं है। क्या है ? कहा नही जा सकता है। फिर वही नकार। वह रूपरहित एवं आदिमध्य की प्रतिष्ठा से मुक्त है । इसीलिए वहाँ न सूर्य चमकता है। न चद्रमा और अप्य की रोशनी होती है। इसीलिये वहाँ जाकर कोई लौट नही पाता है [४ सत कबीर का यह नकार न उनका निजी है। न नया है। यही अनुभव योगेश्वर कृष्ण का है। यही दूसरे सतो का है। साधना की दुनिया निराधार को आधार बनाती है। यहा आधार वाला डूब जाता है। निराधार पार हो जाता है। यह साधना का मार्ग तो है, कितु साधन का मार्ग नही है। क्योकि साधन तो सभी स्थूल, सगुण, अत नाशवान होते है। नाशवान् एक सीमा के बाद साधना का आधार नही रह जाता है। योगी देहरहित लोक मे पहुँच जाता है। कहा तो। जहाँ कोई नही, कुछ नही है। शून्य है। उसे शून्य कहना भी ठीक नहीं। क्योकि शून्य की कल्पना भी मानवी है। वह तो सपूर्ण मानव कल्पना से परे और पूर्ण है।कितु इस पूर्ण को भी मनुष्य अपनी अपूर्णता के कारण कहता है वरना पूर्णता क्या है ? समुद्र क्या समुद्र का परिचय दे सकता है ? क्या समुद्र से समुद्र का परिचय दिया जा सकता है ? अछुगाव के अभाव में परिचय कैसा ४) 00380 तो अपरिचितो का होता है। जहाँ एक है वहाँ कभी किसी परिचय की जरूरत नहीं ड््तों है। सत कबीर उसी एक की खोज मे सबको नकार रहे है। उसी एक की बात लिखते है। यह लिखना भी नकार का अग है। पूर्ण को कोई लिख नहीं सकता है। वह तो अलेख है। उसकी सुधि तो बिना कलम, स्याही, दावात, कागज और स्याही के होती हैमसि बिनु द्वात कलम बिनु कागद बिनु अच्छर सुधि होई। इस नकार मे सत कबीर अकेले नही है। अन्य सत भी ऐसा ही कहते है। सत ज्ञानेश्वर सबंधी प्रसिद्ध उपन्यास है इद्रायनीतीरे'। इसमे कहा गया है- मै न मनुष्य हूँ, न देवता एवं यक्ष हूँ। न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्र हूँ। न ब्रह्मचारी, गृही, वानग्रस्थ एव भिक्षु हूँ। मै केवल निजबीध रूप हूँ (५ सत कबीर भी यही निज बोधरूप है। इसमे ''निज' अत्यत महत्त्वपूर्ण है। १. यावानर्थ उदपाने सर्वत सप्लुतोदके । तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानत । २/४द। २ आपूर्यमाणमचल प्रतिषठ समुद्रमाप प्रविशन्ति तदवतू । तद्वत्कामा य प्रविशति सर्वे से शातिमाण्नोति न कामकामी। २७० 3. न रूपमत्येह तथोपलभ्यते, नान्तो न चादिन च सप्रतिष्ठा | ३/१५ ४ न तदभासयते सूर्यो न शशाको न पावक । यदगत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम

परम मम । १५/६ ५. नह मनुष्यो न चदेव यक्षी न ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रा | न ब्रह्मचारी न गृही वनस्थो भिक्षु न चाह निज वोध रूप !-इद्रायनीतेरे ।

 इसलिये बोध तो गुणो का होता है। गुणो से होता है। तदनुसार सभी बोध माया है। भगवान् ने इस सृष्टि की रचना माया से की है। महाभारत मे कहा हैनारद, मैने सब माया से निर्मित किया है। जो भी गुण युक्त है सब माया है ।९ बोलने, आँख से दीखने, कान से सुनने एव मन से कल्पना करनेवालढ्य सब भाया है। नष्ट होनेवाला है। मऩ की कल्पना है ।* इसीलिये 'एक' के अतिरिक्त दिखाई पड़नेवाला सब मृत्यु को देखना है। अतद् मे तद् को देखना है। केवछ आत्मज्ञान ही महत्त्वपूर्ण है। आत्मा से आत्मा को देखना चाहिए। इस ज्ञान का ही नाम ब्रह्म है (प्रज्ञान ब्रह्म) | नकार और निषेध मे कबीर अपने और अपने छोगो की आलोचना भी नही भूलतेसाखी सब्दहि गावत भूले, आतम खबरि न जाना -बीजक। ऐसे व्यक्ति को क्या कहेगे ? कुछ नही। आत्मतत्त्व इतना सूक्ष्म, अत. दुर्बोध है कि उसे किसी बाहरी तत्व से नही समझा जा सकता है। समझना तो दूर, हर बाहरी तत्त्व उसकी बाधा बना खड़ा है। ७ १ बा गम यन्मा पश्यसि नारद | सर्वभूत गु व त्व ज्ञातुमहसि | भा शा (गीता रहस्य पृ ७३४ पर उद्धृत २ यदिद मनसा वाचा चद्लुर्भ्या श्रवणादिभि || प हा नश्वर गुह्ममान च विद्धि माया मनोमयम् |-भा 9१/७/७

पानी में मीन पियासी कबीर हँस रहे है। मछली पानी मे प्यासी है। लेकिन बाबा आप हँसते क्यो है ? आप तो रोनेवाढे सत है। ससार को दुखी देखकर रोते है। यह भी कोई बात है कि कोई प्यास से तड़पे और कोई हँसे ? कितु बाबा कबीर है कि अपना रोना बदकर । हँस रहे है। नही, नही, वे हँसते नही है, उन्हे हँसी आ रही है। मोहे सुनि सुनि आवै हॉसी। हँसना चाहते नही। हँसी आ जाती है। बरबस आती है। रोके नही रुकती है। सुन सुनकर हँसी आती है। देखते तो पता नही कया होता ? सुनने पर तो यह हाल है। शायद हँसना भूल जाते। रोने छगते। कितना कष्ट है ससार मे। कितने दुखी है छोग। सुनते क्यो है ? देखते क्यो नही ? देखना नजदीक मे होता है। अपने मे होता है। अपने को तो कोई दुख है नही। जिस पर प्रभु कृपा है उसे कैसा दुख ? साधुजन तो दूसरों के दुख से दुखी रहते है। वे जहा रहते है वहाँ भी दुख नही होता। सत अपनी उपस्थिति से ससार को सुखी बनाए रहते है। इसलिये सत कबीर दुख देखते नही, सुनते है। सतो का चित्त नवनीत सा कोमल होता है। वे परदुख से द्रवित होते है। नवनीत अपने दुख से द्रवित होता है। कबीर भी पर दुख से रोते है। सत को अपना कौन सा दुख है ? वे तो समर्पित है। अपने को अपने दुख को, सुख को सबको. भगवान को समर्पित कर दिया है। दूसरो के, दुख से दुखी होनेवालो के पास अपना दुख नही होता। हृदय मे थोड़ी तो जगह है। दूसरो के दुख को वहाँ बैठा दीजिए। अपना दुख स्वयं भाग जः4गा। नही भागा तो उसी में विलीन हो जयगा। क्योकि हर हालत मे दूसरो के दुख की मात्रा अधिक होगी। व्यक्ति से समूह बड़ा है। सख्या मे, मात्रा मे, वजन में। जैसे भी सोचिए, समूह का दुख अधिक होगा ही। इसीलिये बाबा लोग परदुख से दुखी होते है। परदुख कातरता ही सत का छक्षण है। सामान्य आदमी अपने दुख से दुखी होता है। सत परदुख से। बस यही तो अतर है सत और सामान्य मे। फिर भी सत कबीर को हँसी क्यो आ रही है ? वे बराबर विरोधाभास देखते हैं। उल्टवॉसी कहते है। यह भी विरोधाभास है। उल्टवॉसी है। मछली पानी के बाहर तड़पती है। प्यास से तड़पती है। पानी के लिये तड़पती है। कितु यहाँ तो पानी का समुद्र है। इसमे क्यो तड़पती है रे मछली ? आयी थी समुद्र मे। खूब सुख मिलेगा। खूब सुखी रहेगी। आनद करेगी। कितु अपना भाग देख। वहाँ भी तू तड़पती है। प्यासी है। तृप्ति नही होती है। रलाकर मे तड़पती है। धन से कही किसी की तृप्ति होती है ? धन का स्वभाव गर्म है। धन की गर्मी से और भी प्यास बढ़ती है। जहाँ जहाँ धन है वहॉ-वहाँ प्यास है। छटपटाहट है। इसीलिये रा बड़वानल है। आग है। उफान और उद्देलन है। समुद्र उछलता है। चद्रमा की शीतलुता । अब बेचारी मछली का क्या होगा ? उसका पूरा घर जल रहा है। समुद्र तो खुद तड़प रहा है। उछल रहा है। भाग रहा है। भाग भी नही सकता। नदी नही है कि दौड़कर समुद्र से मिल जाय | समुद्र न कही से आया है। न कही जाता। केवल तड़पता है। उछलता है। और उँछलता है। और तड़पता है। नदी को भी अपने मे मिला लिया है। नदी को मिलाकर उछलता (१०५)

१०६ कबीर समग्र है। चचल मछली को तालाब और नद्री के जल से सतोष नही हुआ। वह समुद्र सा सुख चाहती थी। कितु समुद्र मे सुख कहाँ है ? जो समाज खुद दुखी है वहाँ व्यक्ति कैसे सुखी रह सकता है। समाज को सुखी बनाए बगैर केवल व्यक्ति सुख की कामना से ही तो मछली दुखी है। और सत कबीर का हेंसी आ रही है। पगछी, जिस समाज में तुम हो वह तो स्वय दुखी है। परेशान है। आग पर खड़ा उबल रहा है। उसमे तुम सुख चाहती हो। यह कैसे सभव है ? कबीर बेलाग कहते है। कब्र मे रहनेवाला कैसे निश्चित रह सकता है ? "जाका वासा गोर मे सो क्यो सोव निचित | कबीर समृद्धि के समाज पर हस रहे है। अधिकतम और इफरात के समाज को देखकर उन्हे हँसी आ रही है। वहाँ के युवक और युवतियों शति की खोज मे कबीरचौरा आ रहे है। समृद्ध समाज परेशान है। सुख के सग्रह से मन ऊब रहा है। टी. वी, मोटर, मशीन, हवाई जहाज, ऊँचे-ऊँचे भवनो मे गैस भर रही है। हवा गायब है। हवा का स्थान छे लिया है गैस के प्रदूषण मे | इस प्रदूषण से बचना होगा। चारो ओर फैली गैस पानी का समुद्र बन जायगी। प्रढ्य आ जायगा। प्रतय मे सब डूब जायगा क्या ? मशीनो ने बनाए है बड़े-बड़े घातक हथियार। वै घातक हथियार एक दूसरे को मारना चाहते है। दूसरों को मारने की दहशत मे स्वय भी मर रहे है। दूसरों को मारनेवाला स्वय मर रहा है। उसे भय है दूसरों के हथियारों का। अपने हथियारों का। हथियारों का प्रेत पूरे नगर पर गैस के रूप मे फैल रहा है। धुध की तरह छा गया है। यह धुध बढ़ रहा है। इसमे सब कुछ रखकर भी मनुष्य असतुद्ट है। अरक्षित और भयभीत है। समृद्धि के बीच रहकर तड़पता है। समृद्धि के लिये नही, सुख के लिये नहीं। तृप्ति के लिये। वह तृप्ति आनद जिसका पर्याय है। जिसके लिये उसने इस सभ्यता का निर्माण किया धा। मशीन, महल, तोप, टेक, बम, जहाज, टी वी और वी डी ओ का निर्माण किया था। कितु उसे न नहीं है। उसकी सभ्यता समुद्र सी फैली है। खुद भी उबल रही है। चद्रमा की ओर जाती है। शायद कोई रास्ता मिल जाय | कितु उसका भाग्य तो देखिए। चद्रमा सबको शीतलता देता है। औषधीश है। अनेक रोगो को हरता है। वहाँ विज्ञान को केवल पत्थर और गड्ढे दीख रहे है। न जीव। न जतु। न हरियाली। न हवा। न पानी। अभागे, तुम्हारी खोज ही गलत है। तुम व्यर्थ में तड़प रहे हो। अभी चद्रमा पर जाने की कया जरूरत थी? धरती पर गड्ढे और पत्थर कम है क्या जो तुम चद्रमा पर चले गए ? अभी तो धरती का आधा से अधिक हिस्सा पत्थर है। सूखा है। रेत सा मूर्छित है। उन्हे पहले समृद्ध करो। सुखी करो। ज्ञान विज्ञान के रूमाल से इनके ऑसुओ को पोछ दो | जले कटे जख्मो पर तकनीकी का मलहम लगा दो। सभ्यता की पट्टी बॉध दो। जहाज और मोटर की कौन रहे। उन्हे साइकिल तो दो। भरपेट भोजन तो दो। छदमा भी तुम्हारी मन्शा समझ गया है। वहाँ भी लूटने की नीयत से गए हो। इसीलिये सब खाली मिला। तुम अभी तक चद्रमा का कोई उपयोग नही कर सके। तुम्हारी दुनिया तड़प रही है। तुम्हारी सभ्यता व्याकुल है। तुम्हारा चद्रमा पत्थर

और गड्ढा है। तुम हॉफ रहे हो। सब कुछ पाकर भी दुखी हो। इस सभ्यता का पानी तुम्हारे गले मे अटक गया है। वह हलक से नीचे उत्तरता नही है। तुम्हारी प्यास बुझे तो कैसे " और पानी मे रहकर भी मछली प्यासी है। समृद्धि के बीच भी मनुष्य दुखी है। तड़प रहा है। हिप्पी बना घूम रहा है। फकीरी ठाट वाले सत कबीर को हँसी आ रही है। हजारो युवक-युवतियों उनके गरीब देश मे शाति की खोज मे आ रहे है। शायद कुछ मिल जाय। पानी की मछली सूखे मे आना चाहती है। पानी को तो उसने देख लिया है। . /- फेबीर हंस रहे हैं। भारत के छोग धन की खोज मे गोरे देशो मे जा रहे है। गोरे देशो की

पानी में मीन पियासी १०७ समृद्ध युवक-युवतियों भारत आ रही है। दोनो तड़प रहे है। एक अभाव से। दूसरा समृद्धि से। सत कबीर को हैसी आ रही है-पागल, चित्त को शात कर। सुख भीतर है। बाहर तो केवल बेचैनी है। बाहर सुख होता तो संपन्न जगत शात होता। हथियार क्यो जुटाता ? महासमर क्यो लड़ता? आनद की अनुभूति करता। वे भी तो परेशान है। तड़प रहे है। कुछ समृद्धि के लिये व्याकुल है। कुछ समृद्धि के भावी परिणाम से चितित हैं। कोई सुखी नहीं है। सुखी है केवल सत कबीर। जिन्हे ह्ॅसि आ रही है। इस बेपढ़े आदमी को केवल हँसी आती है। यह है ज्ञानविज्ञानरहित व्यक्ति का सुख। केवल हँसना। केवल हँसना। समस्या गंभीर है। इसे केवल हँसकर टाछा नही जा सकता। रोकर मुक्त नहीं हुआ जा सकता। इस पर तो केवल हँसी आती है। कितु बाबा ज्यादा हँसो मत। क्योकि तुम्हारी यह हँसी स्वाभाविक नही है। कही तुम हँसते-हँसते रोने न रूगो। क्योकि रोना तुम्हारा स्वधर्म है। तुम्हारी इस हँसी मे भी कही न कही भीषण रुदन अट्हास कर रहा है। सत कंबीर एक रास्ता सुझाते हैसाईं इतना दीजिए, जामे कुटुम समाय | मैं भी भूखा ना रहें, साथु न भूखा जाय॥ ‘‘दीजिए’’ पर जोर है। दीजिए। अवश्य दीजिए। कौन कहता है सत विरागी था ? हों, विरागी तो था ही। दीजिए’’ कितु शर्त के साथ। यह शर्त है ‘‘इतना’’ | इतना कितना ? जितने से परिवार, मेरी और अतिथियो की भूख मिट सके। बस। अधिक नही। अधिकतम तो विल्कुल ही नही। दूसरा होता तो अधिकतम मॉगता। जब देने वाला स्वय अथाह सपत्ति का स्वामी है तो अथाह मॉगो। हो सके तो उसका सब कुछ मॉग लो। कोई हर्ज नहीं अगर वह दरिद्र हो जाय। आज का विज्ञान धरती, आकाश, हवा, पानी आदि प्रकृति साधनों से सब मॉग रहा है। अधिकतम कौन कहे उसका अस्तित्व भी मॉग रहा है। यह असत दृष्टि है। सत दृष्टि है शरीर रक्षा भर मॉगो। शरीर रक्षा भर छो। वह पूरा दे भी तो। पूरा मत लो। अधिक लेकर क्या होगा ? शरीर न अधिक मोटा हो। न असमर्थ। इसलिये थोड़ा लो। बाकी छोड़ दो। दूसरो के लिये छोड़ दो। सबको मिले। लेने मे भी, मॉगने मे भी साप्यभाव हो। यह है साम्य योग। अधिक मॉगना चोरी है। सत कबीर की इस बात का समर्थन भागवत से होता है। भागवत की भी यही दृष्टि है- मनुष्य का अधिकार केवल उतने ही धन पर है, जितने से उसकी भूख मिट जाय। इससे अधिक सपत्ति को जो मानता (मॉगता) है, वह चोर है। उसे धन नही, दड मिलना चाहिए।१ अर्थ यह कि आवश्यकता से अधिक लेना चोरी है। अपराध है। दडनी अपराध। लोग नित्य ही यह अपराध करते है। उनका दड इकट्ठा होता जाता है। एक दिन वे महादड पायेगे। आज की वैज्ञानिक तकनीकी समृद्धि उसी दड, महादड की तैयारी मे लगी है। संत कबीर उसी अपराध, उसी दड की ओर सकेत करते है। एक ऐसा समाज रचो जिसमे अपने कूटुब के खाने भर। थोड़ा दूसरो की सहायता भी हो। साधु सेवा भी हो १ यावद् भ्रियते जठर तावत् स्वत्व हि देहिनाम् अधिक यो5भिमन्येत स स्तेनो दडमहति ।9१४।८

१०८ कबीर समग्र साई इतना दीजिए, जामे कुटुम समाय | मै भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ॥ दूसरो को खिलाने, देने की अनुभूति करो। तभी प्यास बुझेगी। केवल खुद खाने से प्यास नही बुझनेवाली है। हाँ, तो। खुद खाने। लूटने वाली मछली प्यासी है। वासना, लोभ, लालच के समुद्र मे प्यासी है। ७

न हँसनेवाला कवि ससार मे दुख अधिक है। सुख कम। बुद्ध ने ससार के दुख को देखा था। यो कहिए कि उनकी मुलाकात दुखो से ही हुई थी। ऐसा दुख जो सबको होता है। राजा, रक, फकीर सबको |१ रोग का दुख, बुढ़ापा और मृत्यु का दुख। दुख इसके अतिरिक्त भी है। गरीबी और अभाव का दुख। महीनो, वर्षो और जीवनभर भोजन, कपड़ा और दवा न मिलने का दुख। वर्ग, जाति और वर्ण व्यवस्था का दुख। किन्तु इन दुखो को सब नही देखते। "सर्व दुखम्: मे गरीबी का दुख नही है। जाति और वर्ण व्यवस्था का दुख नही है। किन्तु इन दुखो का समर्थन भी नही है। हॉ, इतना अवश्य कि ये छोटे दुख है। एक दुख और है। इस दुख की अनुभूति तो सबको होती है। कितु इसे समझ पाना सबके बूते का नही है। वह है अधिक खा लेने पर भी असतुष्ट या भूखे रह जाने का दुख। बहुत स्वाद और रस लेकर बेस्वाद एव नीरसता का दुख। सभी रसो के नष्ट हो जाने का दुख। रस रस करते हुए रस के सूख जाने का दुख। यद्यपि बीद्ध धर्म मे समानता की बात है। किन्तु इनकी पीड़ा और बेचैनी नही है। कबीर ने भी दुख देखा था। ऐसा ही दुख। उनकी माया दुख देनेवाली है। सबको बॉधती है। ठगती है। गिरफ्तार करती हैं। घर में घुसकर नाश करती है। प्यार से, दुलार से, ख्री, धन और सेविका बन कर कष्ट देती है। बुद्ध नित्य जल रहे थे। उनके जीवन मे हँसी नहीं थी | आनन्द नहीं था (किमा हासो किमा नदो नित्त पज्जलिते सति)। अपने दुख से जल रहे थे। परिवार और समाज के दुख से जल रहे थे। कबीर की माया भी सबको जलछाती है। वे इससे मुक्त होना चाहते है। एक शाश्वत तत्त्व की खोज मे थे। जो उनका दुख दूर कर दे। सबका दुख दूर कर दे। किन्तु दुख दूर करने की प्रक्रिया निराली है। दुख दूर करनेवाले को पाने का ढंग विचित्र है। दुख को दूर करने के लिये दुखी होना होगा। लोहा लोहा से कटता है। विष की औषधि विष ही है। कबीर इसी लोहे से लोहे को काट रहे थे। दुख के विष से दुख के विष को ठीक कर रहे थे। कबीर स्पष्ट कहते है हँसो मत। हँसने से दुख दूर नही होगा। दुख दूर करनेवाला हैसने से नही मिलता। प्रसन्न रहनेवालो से उस स्वामी की कोई सहानुभूति नहीं है। उसके दरबार में हँसने की मनाही है (अधिकतर दरबार ऐसे ही होते है, जहाँ हँसना धृध्ता है। अपराध है)। राजा किसी की हँसी बर्दाश्त नहीं कर सकता। हँसने का काम केवल सरकार बहादुर का है। सरकार बहादुर प्रजा को ढूटकर, मारकर, छीनकर भी हेंसती है। मुस्कुराती है और अट्टहास करती है। दरबारी केवल उसी हँसी का साथ देता है। प्रजा को केवल रोना चाहिए। रोने से मालिक खुश होता है। रोनेवालो पर वह दया करता है। शरण मे ले लेता है। अपना बना लेता है। इससे मालिक का अहम सतुष्ध होता है। दुनिया का यही कायदा है। यही कायदा भगवान् के यहाँ चलता है। इसलिये कि दुनिया भगवान् की बनायी है। दुख दूर करनेवाला ईश्वर है। भगवान् है। यह भगवान् कबीर का प्रिय है। प्रियतम है। दुखियो का स्वामी है। सभी दुखिया उससे नाता जोड़ते है। अनेक नाते है। किन्तु कबीर की दृष्टि मे प्रिय और प्रिया १ (क) राजा दुखिया

परजा दुखिया तपसी के दुख दूना। (ख) राणा राव रक को व्यापै करि करे प्रीति सवाई।
(१०९)

कर क ११० कबीर समग्र का नाता मुख्य है। कबीर को भगवान् कत प्रिय है। कत भगवान् को कवीर प्रिय है। किन्तु यह कत हैंसी विरोधी है। (हँस हँस कत न पाइए जिन्ह पाया तिन्ह रोइ)। ससार के प्रेम में हँसी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रेमी से हँसी दिछगगी चलती है। जहाँ दिल लगा कि दिलग्गी शुरू हुई। मनहूस प्रेम नहीं कर सकता। प्रेम के लिए प्रसन्नता आवश्यक है। दो की प्रसन्ता और रजामदी का नाप्र प्रेम है। शायद इसीलिए प्रेम मे दो अक्षर हैं। ढाई कह लीजिए। एक है मात्रा कक की मात्रा । यह मात्रा प्रेम की प्रौढ़ता की पहिचान है। आखिर प्रेम की साक्षी भी तो होना | कबीर अक्सर प्रेम मे दो की चर्चा करते है। हँसने का प्रभाव बुरा होता है। हँसने वाला नरक जाता है। जाना है स्वर्ग | १0 हँसी का प्रभाव उल्टा होता है। नरक जाना पड़ता है। भरा नरक कौन जाना चाहेगा ? हसो मत | पहले भी हँसनेवालो का बुरा हुआ है। वे नरक गए है। आज भी हँसनेवाले नरक जायेंगे (केते अजई जाइसी नरक हसत हसत)। प्राय लोग सुन्दरियाँ देखकर प्रसन्न होते हैं। उनसे हँसते है। मजाक करते है। दिल बहलाते है। किन्तु यह हँसी,मजाक, दिल्बहढाव ठीक नही, क्योकि सुन्दरी से शूछी भठी है। ऐसे सोने से लाभ क्या जिससे फॉसी पड़ जाय। ससार मे सामान्यत खुशी के दो साधन है-कचन और कामिनी। किन्तु कवीर दोनो को देखकर रोते हैं। प्रसन्नता की तो वात ही व्यर्थ है। दोनों को देखकर आग लगती है। विष चढ़ता है। 'देखहीये . विष चढ़े खाये सूँ मरि जाय | कहते है कबीर को पत्नी भी थी। बच्चे भी हुए थे। कितु सब बिना हँसे हुआ था। शायद यही कारण है कि उनकी सतानोत्पत्ति को लेकर एक दल रोता है 'सदगुरु को सतान नहीं थी, लोग झूठे ही उन पर सतान ऐदा करने का आरोप ढगाते हैं | ठीक भी है जो हँस नही सकता वह सतान क्या पैदा करेगा ? सतान तो प्रसन्नता की बात है। पुत्र को नन्द' कहते है। नदलाल। नंद आनद देता है। किन्तु कवीर के लाल तो भगवान् हैं। वे उसी छाल की लाली देखते है। उसी छाल की लाली मे लीन हो जाते है। भूलकर भी नदलाला होने की खुशी नहीं मनाते। ऐसा दुखवादी कवि शायद कही मिले। दुखवादी स्त्री, पुत्र, पति, परिवार से परहेज करता है। भगवान् बुद्ध ने भी परहेज किया था। प्रछन्न बौद्ध शकराचार्य ने भी ससार को दुख और मिथ्या माना। सन्यास को प्रधान कर दिया। गेरुआ वाला सन्यासी पूज्य हो गया। गृहस्थ की अपेक्षा सन्यासी महान् है। क्योंकि सन्यासी ससार के दुख से मुक्त है। उसने स्त्री, पुत्र, पति, भाई, बधु की ममता त्याग दी है। औरो पर इसका असर पड़ा। ममता त्याग ससार का सबसे बड़ा पुरुषार्थ हो गया। तुलसीदास भी कहते है। “ममता त्याग करहि जिमि ज्ञानी । ज्ञानी वह है जो ममता का त्याग कर दे ! परिवार समाज और ससार की ममता। कवीर इसे जीवन-मृत्यु कहते है। उनका भग्रह है कि जीते जी मरो। जीवन ते मरिवो भठो। मरने से जग डरता है। और कबीर को आनद आता है। मरना उनके लिये प्रसन्नता की बात है। वे मरने मे ही प्रसन्न रहते है। जिस मरने थै जग डौरै सो मेरे आनद। यह मृत्यु ससार में राग से मृत्यु है। राग ही जीवन है।

राग घटा कि जीवन गया। कितु कबीर का ध्यान तो परमानद पर है। यह परमानद राग छोड़ने पर मिलेगा। मरने पर मिलेगा। मरना बह्दुरी है। कायर नही मर सकता। वह तो पहले से मरा है। कबीर नही हँसते तो कोई तो हँसेगा। काल हँसता है। ससारी जीवो के व्यवहार पर हँसता है। उनकी असावधानी पर ईसता है। ममता, मोह और गफलत पर हँसता है। कबीर के बदले हँसता है। हम सबके बदले हँसता है। कबीर उसको जीतना चाहते है। कालजयी होना चाहते हैं। उसे कबीर के व्यवहार पर हँसना आता है। वहू, सावधान है। कितनो को खा गया। द्रृषि, ा और, दिगम्बर को खा गया। मनुष्य को इससे शिक्षा लेनी चाहिए थी। कितु कौन शिक्षा तो है ? यद्यपि सभी काल के फॉँस मे फेंसे है। मनुष्य बेधड़क घूम रहा धा। इसलिये काल

न हँसनेवाला कवि १११ हँसता है। काल को हँसते देखकर कितनो की हँसी गायब हो जाती है। काल ने सबका केश एकड़ लिया है। सभी घबड़ाएँ है। इसमे काल मजा छे रहा है। गरज यह कि हँसने का काम मनुष्य का नहीं। काल का है। मनुष्य को इसी हँसी से भयभीत होना चाहिए। काल की हँसी से सभी उरे है। डर का अर्थ है काल की हँसी। भागवत के अनुसार हास भगवान् की माया है। वह गया, जो जनता मे उन्माद पैदा करती है। (हासो जनोन्मादकरी च माया) हास का सबंध माया से है। अब तो कबीर का विरोध स्वाभाविक हो गया। हँसी माया है और माया पापिनी है। कबीर उससे नफरत करते है। इसी पापिनी से सारी दुनिया परेशान है। कबीर उन्मनी अवस्था को पहुँच गए है। हँसना तो दूर। बोलते तक नही। चचलता को मारकर फेक दिया। हिंसे न बीढे उन्मनी चचल मेल्हा मारि)। रुठनेवाला व्यक्ति हँसना बोलना सब बद कर देता है। कबीर भी ससार से रूठे है। किन्तु कबीर को कोई मना नही रहा है। यह रूठा व्यक्ति ही सबको मना रहा है। अरे भाई, तुम भी रूठो। मेरे समान रूठो | ससार से रूठने का मजा लो। कबीर सुख के लिये जा रहे थे। सामने दुख दीख गया। उन्होने सुख को वापस भेज दिया। दुख का साथ कर लिया। सुख से पिड छूटा। अब वे दुख से अपना समझेगे। कबीरसुख की चिता बिल्कुल नही करते। यहॉ 'तक कि भूख की भी परवाह नही है। भूखे ढोगो से कहते है-'भूख भूख क्या करता है? क्यो लोगो को भूख की बात सुनाता है ? जिसने शरीर रूपी भाड़ा गढ़कर मुँह दिया है वह भोजन भी देगा।' यह कबीर तीनो लोकों के दर्द को जानते है। मनुष्य तिह के समान सुख के लिये पहाड़ सा दुख झेलता है। सुख की अल्प कल्पना भी मनुष्य को गहरे दुख मे डाल देती है। यही कारण है कि पड़ितो का नाश हो जाता है और मूर्ख, कथित मूर्ख दुख से छूट जाते है। सबसे अच्छा है सुख-दुख दोनो को छोड़ दे। दुख भी बुरा। सुख भी बुग। नही सुख तो और भी बुरा है। आनंद केवल राम को पाने मे है। यहाँ न सुख है, न दुख। सुख-दुख से अलग एक चीज है। इसे आनद कहते है। इसी आनद को पाने के ढिये कबीर हँसी का बहिष्कार करते है। तिरस्कार करते है। हँसी तो साधन है। साध्य है आनद। कबीर साधन को छोड़कर सिद्धि और साध्य चाहते है। राह नही मजिरु। दुस-सुद्ध दोनो साधन है। राह है। मजिल है आनद। इस आनन्द मे न सुख है, न दुख। वहां हँसी का सर्वधा अभाव है। उसका अनुभव गूँगे के गुड़ सा है। अकथनी, अवर्णनी है। ५

समन्वय एवं साधना की कविता कई लोग कबीर साहब को समन्वयवादी कहना चाहते हैं। कितु किसी ने इस शब्द का प्रयोग नही किया है। इसलिये कि हिदी मे समन्वय शब्द गोसाई तुलसीदास के साथ इतना जुड़ गया कि अन्यत्र न जा सका। समन्वय के प्रमुख प्रवक्ता आचार्य शुक्ठ कबीर साहब के बारे मे कहते है-जहाँ तक पत्ता चलता है "निर्गुण मार्ग" के निर्दिष्ट प्रवर्त्त कबीरदास ही थे जिन्होंने एक ओर तो स्वामी रामानद जी के शिष्य होकर भारतीय अद्वितवाद की कुछ बाते ग्रहण की और दूसरी ओर योगियो और सूफियो के सस्कार प्राप्त किये। वैष्णवी से उन्होने अहिसा और प्रपत्तिवाद लिये। इसीलिये उनके तथा "निर्गुणवाद" वाले और दूसरे सतो के वचनों में कही भारतीय अद्वितवाद की झलक मिलती है, कहीं योगियो के नाड़ी चक्र की, कही सूफियो के प्रेम तत्त्व की, कही पैगम्बरी कट्टर खुदावाद और कही अहिसावाद की. मिलाजुला भाव इनकी बानी मे मिलता है। -(हि सा. इ पृ ७०)। '"मिलाजुछा' कहकर भी कवीर को समन्वयवादी नही कहा गया? क्यों ? शायद इसलिये कि इससे तुलसी का समन्वय बाधित होता। जबकि तुलसीदास बिल्कुल ही समन्वयवादी नही है। उन्हे चाहे तो कोई परिवारवादी कह सकता है। वैदिक परिवार के देवताओ का समन्वय तुलसी को परपरा मे मिला था। शैव और वैष्णव के जिस समन्वय की बात की जाती है वह समन्वय महाभारत, भिव पुराण, लिग पुराण, भागवत्त, अध्यात्म रामायण आदि मे स्वत प्राप्त है। इस परिवार मे कभी-कभी हन्द्र भी है। कितु समन्वय भी गहरा है। महाभारत के अर्जुन का रथ सूत्र कृष्ण के हाथ में है। ध्वजा पर शकर पुत्र हनुमान है। युद्ध मे शकर अर्जुन के आगे-आगे अदृश्य रूप मे चलकर कौरवों का नाश कर रहे है। अर्जुन को अस्त्र-शस्त्र देनेवालो मे अग्नि, इद्र और शकर सभी देवता आते है। फिर भी हिंदी मे तुलसीदास को समन्वयवादी और कबीर को समन्वयरहित देखा गया। जब कि कवीर हिंदू-मुसढमान मे भी एक प्रकार का समन्वय देखते हैं। दोनो के देवों की अपूर्णता बताकर सर्वधर्म समभाव स्थापित करते है। आचार्य शुक्ल इस बात को पहचान कर ही कहते हैं कि "भक्ति आन्दोलन की जो लहर दक्षिण से आई उसी ने उत्तर भारत की परिस्थिति के अनुरूप हिंदू मुसलमान दोनो. के लिये एक सामान्य भक्ति मार्ग की भी भावना कुछ लोगो में जगाई' (वही, पृ०६४)। यह सामान्य भक्ति मार्ग) महत्वपूर्ण उक्ति है। सामान्य का अर्थ है जो सभी मनुष्य को सामान्यत स्वीकार्य हो। जिसमे किसी विशेष का आग्रह न हो। यह तभी सभव है जव कि सभी धर्मों को या तो छोड़ा जाय या सबसे कुछ-कुछ ले लिया जाय। कुछ कुछ लेने मे छोड़ना स्वत आ जाता है। असल में सत कबीर के वारे मे आचार्य शुक्ल कुछ निश्चित करने की स्थिति मे नही है। लगता है कबीर उन्हे पसद नहीं है। क्योंकि सत कबीर व्यक्त के उपासक नही है। आचार्य शुक्र व्यक्त, सगुण और स्थूछ को अधिक पसद करते है। सामान्यत सभी छोगो को यही समझ मे भी आताहै। कितु कबीर को अस्वीकार करना भी कठिन है। इसलिये कबीर पर धड़ल्ले से आरोप लगाते है

कि उनका एकेश्वरवाद, मूर्ति पूजा, जाति व्यवस्था आदि का खंडन आदि भी इस्लाम प्रभावित है। जबकि ऐसा कुछ नही है। वैदिक धर्म की विभिन्न शाखाओ मे चीजे बार-बार मिलती है। द्विज कहलानेवालो ने भी ये बाते कही है। जाति व्यवस्था का विरोध (११२)

समन्वय एवं साधना की कविता ११३ पदा रहा है। भक्ति मे जाति व्यवस्था का स्थान नही है। निर्गुण भक्ति को कठिन मानकर : छोड़ा गया है। कोई भी सगुणमार्गी निर्गुण विरोधी नहीं हो सकता है। ज्ञानी को सर्वश्रेष्ठ भक्त कहा गया है। निर्गुण निराकार का ही अवतार होता है। इसलिये निर्गुण निराकार व्यर्थ कैसे कहा जा सकता है ? आचार्य शुक्ल तो सामान्य भक्ति मार्ग और समन्वय को सिद्दो-नाथो मे ही देखते है। सच्चाई यह है कि कबीर जिस वैष्णव परपरा मे है वह स्वत समन्वय देखती है। एकेश्वरवाद, अहिसा, प्रपत्ति, योग आदि तो उसके मूल मे है। भक्ति का कोई भी संप्रदाय योग विरोधी नही है। शायद दुनिया का कोई भी धर्म योग का विरोधी नही। जिस दक्षिण से कबीर ने भक्ति ली थी वहाँ योग था। डॉ. नागेन्द्रनांथ उपाध्याय ने ठीक ही लक्ष्य किया है-"भक्ति उत्तत्ति के लिये प्रयुक्त योग को वहा भागवत योग कहा गया है। जयाख्य सहिता ने भक्त को योगी कहा है। पचरात्र का आधार अशत वैदिक है और अशत तात्रिक | शाडिल्य के सूत्रो मे कहा गया है कि योग, ज्ञान और भक्ति दोनो का अग है अडगिय वैष्णव आचार्यो मे नाथमुनि योगी थे तथा उन्होने योग रहस्य नामक एक ग्रथ भी लिखा था। उन्होने अध्यग योग का साधन किया था | रामानुज और उनके अनुयायियो ने तीन प्रकार के प्रमाण माने थे-प्रत्यक्ष, अनुमान और शास्त्र | प्रत्यक्ष तीन प्रकार का है-१ ईश्वर प्रत्यक्ष, २ योगि प्रत्यक्ष, ३ छोक प्रत्यक्ष । योगि प्रत्यक्ष योगाभ्यास के विशेष प्रकाश के कारण होता है। वैष्णवमताब्जभास्कर कबीर के गुरु स्वामी रामानद का महत्वपूर्ण ग्रथ है। "भास्कर अध्ययन से स्पष्ट है कि योग (राजयोग, हठयोग, तात्रिक योगादि) भक्ति के साधन है, भक्ति ही साध्य है, फल रूप है। यमादि अष्टागो को उस भक्ति का अवयव कहा गया है |? 5४ 5 पूर्णता को पाकर योग व्यर्थ हो जाता है। इसीलिये कबीर योग को भी नाशवान् मानते हैजो तुम पवना गगन चढ़ाओ, करो गुफा में बासा। गगना पवना दोनों बिनसे, कहें गया जोग तुम्हारा। खुदावाद कबीर मे नही है। हाँ, वे राम और अल्लाह या खुदा मे भेद नहीं मानते। भेद नाम का है। है दोनो ही मूलत एक। इसे चाहे तो समन्वय कह सकते है। कितु है यह वेदाती एकेश्वरवाद ही। प्रेम तत्व तो कृष्ण भक्ति शाखा मे भरा है। भक्ति का आधार ही ईश्वर मे परानुरक्ति। ईश्वर तो प्रेम रूप है। परम प्रेम रूप। सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा। भक्ति मे यह अवधारणा प्रसिद्ध है कि पुरुष केवढ एक है। शेष सब प्रकृति है। स्त्री है। जीव साधिका है। इसे सूफियों से लिया बताना समस्त भारती चितन को अस्वीकार करना है। कितु आचार्य शुक्ल यह मानने के लिये तैयार नही है। वे नही मानना चाहते कि सत कबीर के यहाँ कोई व्यवस्था है। व्यवस्था तो केवल वे तुलसीदास मे देखते है। कितु कबीर मे भी व्यवस्था देखना उन्हे अच्छा नही ढगता है। वे कहते है-"निर्गुण पंथ के सतो के सबध मे यह अच्छी तरह समझ रखना चारिए कि उनमे कोई दार्शनिक व्यवस्था दिखाना व्यर्थ है (वही, पृ०९२)। यहाँ कोई पूछ,सकता है कि क्या तुलसीदास के दार्शनिक मत के/बारे मे विद्वान् एकमत है ? नहीं। तो कबीर पर ही

यह आरोप,क्यो ? सत कबीर मूलत कवि है। कोई व्यवस्थित दर्शन ग्रथ नही लिख रहे थे। हाँ, इतना मान्य है कि वे एक कट्टर वैष्णव थे। रामानद के शिष्य थे। प्रभाव सभी लेते है। उनमे भी होगा ही। होना भी चाहिए। सारे प्रभावों के बीच एक व्यवस्थित भक्ति पद्धति है।
४02 02 १ डॉ नागेद्रनाथ उपाध्याये-नाथ और सत साहित्य (वैष्णव और शैव, शाक्त योग, पृ २१६-२६३)।

११४ कबीर समग्र आचार्य शुक्ल को कबीर को कवि मानने मे भी कठिनाई होती है। वे कहते है-कवीर मे ' जो कुछ रहस्यवाद है वह एक भावुक या कवि का रहस्यवाद नही है। (जायसी ग्र, पृ०१६४) | कबीर के चित्रों (इमेजनरी) की न वह अनेकरूपता है, न वह मधुरता (वही, पृ० १६५) । आ०शुक्‌ल का निर्णय डॉ श्यामसुन्ददास को पसंद नही आया। उन्होंने इसके जवाब मे कहा, 'रसिको की सम्मति मे कबीर का रहस्यवाद रूखा है, उनका माधुर्यभाव भी उन्हे फीका लगता है, उनके चित्रो मे उन्हे अनेकरूपता नहीं दिखाई देती है। * कवीर मै चित्रो की अनेकरूपता न देखना उनके साथ अन्याय करना है। जो उन्हे बिल्कुल ही रूखा समझते है, उन्हे उनकी रहस्यमयी अन्योत्तियों को देखना चाहिए'काहे री नलिनी ! तू कुमिलानी। तेरे ही नालि सरोबर पानी। जल में उतपति जल में बास। जल में नलिनी तोर निवास। ना तलि तपति न ऊपर आगि। तो हेत कहु कासनि लाग। ३०९०००५१००००००५००+१०००९९००७००७०००००००७०००५१७०००००७७७०००७० ७००७० ५००००१००००५००००००००० कैसा मृदुल मनोमोहक चित्र है। इस सहज माधुर्य किसे न मोह लेगा" (कबीर ग्र, पृ ६१)। बाबू श्यामसुन्दरदास का यह जवाब इतना पूर्ण है कि इसके आगे कुछ भी कहना व्यर्थ होगा। आचार्य शुक्ल ज्ञानी पुरुष है। उन्हे मालूम है भक्ति के क्षेत्र मे प्रेमतत्त्व श्रीमद्भागवत मे भरा है। प्रेमतत्त्व की गहनता के कारण ही रासपचाध्यायी की ख्याति है। वे यह भी बताते है कि प्रेम का सबध दक्षिण भारत की देवदासी प्रथा से है। सूफी कव्वालो मे हाल दशा (प्रेम मे मूर्छित होना) महत्त्वपूर्ण है। कबीर मे प्रेम दशा तो है, कितु हालदशा का वर्णन कही नही है। ऐसे ही सूफी सेव्य को स्त्री मानकर उपासना करते है। जबकि भारती परपरा सेव्य को पुरुष मानती है। कबीर का प्रिय भी सूफी परपरा से भिन्न पुरुष है। साई है। प्रियतमा नही प्रियतम | इस पर भी शुक्ठ जी को सत कबीर का प्रेममार्ग सूफी क्यो लगता है यह समझ मे नहीं आता। जबकि इस्लाम की सूफी धारा के अद्वैत को भारत के उद्दित से प्रभावित माना जाता है। आचार्य शुक्ल के प्रभाव के कारण कवीर के बारे मे कई असगत बाते प्रचारित हुई। यह कि निर्गुण मार्ग सगुण मार्ग से बिल्कुल भिन्न है। स्वय शुक्ल जी बताते है कि नामदेव मे यह भिन्नता नहीं है। हिदी मे मीरा मे यह भिन्नता नहीं है। कबीर आदि मे भी अवतार' की अस्वीकृति तो है। कितु साकारता मिलना कठिन नही है। दूसरी बात यह कि निर्गुण मार्ग के भक्त अधिकतर पिछड़े है। निर्गुण का प्रचार भी मुख्यत पिछड़ो मे है। वे शास्त्ररहित पिछड़ी बाते भी करते है। निर्गुणमार्गी पढ़े-लिखे नही थे। ये सभी बाते अर्धसत्य है। कबीर साहब 55 कि साधुओ की, निर्गुण साधुओ की जाति मत पूछो। इस मार्ग मे सभी जातियो के धु हैसाए ब्राइमन साध छत्तरी साए जाती बनियाँ। साधन माँ छत्तीस कौम है, ठेठ़ी तोर पुछनियाँ। साथै नाऊ सामै धोबी साथ जाति है बरियां। साथन माँ रैदास संत है सुपध ऋषि से भेंगियाँ। निर्गुण और सगुण मार्ग मे आज अधिक भेद देखा जा रहा है। इस भेद दृष्टि का कारण भव्ि‍ति नही।

राजनीतिक आवश्यकता है। इसी राजनीतिक आवश्यकता ने सत कबीर को अध्याल के विराट विश्व से निकालकर एक समाज सुधारक मात्र बना दिया है। जब कि समाज

समन्वय एवं साधना की कविता ११५ सुधार उनका मुख्य लक्ष्य न था। शूद्रे के कथित आधुनिक वकील भूल जाते है कि पिछड़ो के लिये समग्र कबीर महत्त्वपूर्ण ये। जाति आदि सबधी सूक्तियो से भी अधिक महत्त्वपूर्ण अनुभव के पद थे। उल्टवासियो का रहस्यवाद था। कबीर की महत्ता खडन मे नही मनुष्य को विषय मुक्त करने मे है। कबीर रो रहे है। इसलिये नही कि वे दुखी है। भूख से या कपड़े के लिये परेशान है। उनका सकट तो माया मे पड़े लोग है। बेचारे नही जानते कि उनका आमोद क्षणभंगुर है। काठमार्जार के हाथो से नष्ट होनेवाला है। मेरा तेरा उसका के सारे सबंध व्यर्थ है। कबीर कहते है कि सबसे परिचय करना चाहते हो। जान पहचान बढ़ा रहे हो। कितु अपना परिचय नही है। बाहर का परिचय व्यर्थ है। असल है आत्मपरिचय है। हम सभी इस विश्व मे है। यह विश्व हममे है। शायद अनेक विश्व हममे है। क्या है ? कितना है ? कुछ कहा नही जा सकता है। कहने के साधन सीमित है। समझने के साधन उससे महत्त्वपूर्ण है। अधिक है। कितु अनुभूतियाँ तो नि सीम है। कहाँ तक है कौन बताए? नि सीम की अनुभूति तो निसीम को निसीम में जाकर होती है। ऐसे मे सीमावाढा सीमित माध्यमी से कैसे बता सकता है ? कबीर साहित्य का असली प्रयास नि सीम को पाना है। उस लोक मे विचारण करना है। ऐसे छोक मे पहुँचना है, जहाँ सूर्य चद्रमा का भी गम नहीं है। जहाँ पिपीलिका के पॉव भी नही टिकते है। यह स्थान, यह लोक समस्त नाम-रूपो से परे है। यहाँ बड़े-बड़े मुनि महात्मा नही पहुँच पाते है। इसी छोक, इसी लोक की अनुभूति, परिचय और प्रेम मे सत कबीर मस्त है-मन मस्त हुआ तब क्यो बोले ? यहाँ एक हीरा पाया है। इस हीरे को गॉठ मे गँठिया लिया है। सारा ससार गॉठ खोलता है। खोलना चहता है। गॉठ ही तो कुठ है। कुठा की समाप्ति ही विकुठ है। वैकुठ है। कितु कबीर गॉठ बॉधते है। इसलिये हीरा पाकर मस्त है। इस हीरा को पाकर अब कुछ पाना नही हैमन मस्त हुआ तब क्यों बोडै। हीरा पाया गांठ गठियायो, बार बार बाको क्यों खोले। यह हीरा क्या है ? हीरा का मूल हीर है। हीर भत्त्व अर्थात् मूल |तत्त्व | वह तत्त्व जो सबमे है। सबका आदि है। सनातन है। अनश्वर है। सबके नष्ट होने पर भी रहता है। प्रभु और परमात्मा है। कबीर ने जो कुछ पाया है उसे इसी घट के भीतर पाया है। उन्हे मालूम है। सब इसी कुछ घट में है। इस घट के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इसलिये वे कोशिश कर, यौगिक प्रक्रियाओं द्वारा, ध्यान को बाहर से हटाकर भीतर देखते है। भीतर आना आसान नही है। कितु कबीर इस कठिन कार्य को पूरा करते है। कहते हैचंदा झलक यहि घटमाही। अंधी ऑखिन सूत्र नाहीं। यहि घट चंदा यहि छद सूर। यहि घट बाजै अनहद तूर। यहि घट बाजै तबल निसान। बहिरा शब्द सुनै नहि कान। हि यह देखना विराट् को देखना है। विराट् बाहर भी है। भीतर भी है। बीज मे वृक्ष है। वृक्ष मे फल है। अंडे मे मुर्गी है। मुर्गी अडा देती है। इस विराट् को कैसे देखा जाय ? क्या हम उस बीज को देख रहे है जिसमे वृक्ष छिपा है। सामान्य उत्तर होगा हॉ देख रहे है। बीज तो हमारी मुट्ठी मे है। कितु यह उत्तर गलत है। हम

जिस बीज को देख रहे है वह जड़ वृक्ष है। सभावना वाला बीज नहीं है। सभावना का ज्ञान तो उस बीज को भी नही है। यह बीज क्या ि‍न्डा१4 फकामेए-दाफ७पककाा+गकक-जतकाआ ७ ७३७,

११६ कबीर समग्र देगा, कौन जानता है। गीली मिट्टी पर गिरा तो वृक्ष बनेगा। सूखी भूमि पर सूखा रहेगा। आग मे गिरा तो सारी सभावनाएँ नष्ट हो जायँगी। इस बीज वृक्ष-न्याय से मनुष्य को ध्यान मे रखे तो कुछ भी नही कहा जा सकता है। बालक बीज है। बालक की सभावना को कौन बताएगा? प्रत्येक व्यक्ति हर क्षण बालक है। बढ़ रहा है। घट रहा है। पता नही कया हो रहा है ? पता नही वह मृत्यु की ओर बढ़ रहा है या नये जन्म की ओर ? आप प्रतिभाशाली है, वीर है। बहुत दिनो से शोध कर रहे है, लड़ रहे है, कुछ नही बनता है। अचानक कोई बड़ी सफठता आपको इतिहासपुरुष बना देती है। आप जैसा ही ग्रतिभाशाढी आपका साथी रह जाता है। छोग उसे भूछ जाते है। सेवा निवृत्त कर देते है। ज्योतिष आदि के द्वारा पता लगाई गयी सभावनाएँ भी कभी-कभी और एकाध ही सच होती देखी गयी है। इसलिये कि ज्योतिष का क्षेत्र भी नक्षत्रों, ग्रहो पर आधारित है। ये सभी दृश्य और भूत सत्ताएँ है। इनकी अपनी स्वतत्रता नही है। सत्ता नही है। यही बात विज्ञान के बारे मे सत्य है। ज्योतिष भी एक विज्ञान है। अब क्या होगा ? इस बीज को कैसे देखा जाय ? कैसे पता लगे इस विराट की सपूर्णता का ? विराट्ता का ? व्यक्ति या पुरुषवाची सर्वनाम चार है- मै, तुम, यह एवं वह। ये चारो कौन है ? क्या है? कैसे है? कहाँ से क्यो एव कहाँ के लिए आए है? क्या ये पहले भी थे ? आगे भी रहेगे ? अभी ये दीखते है। कितु यह देखना क्या सही है ? कही हम गलत तो नही देख रहे है ? देखना भ्रम तो नही है ? हमे दृष्टि दोष तो नही है ? कही ऐसा तो नही कि वस्तु को हम वस्तु से भिन्न देख रहे है ? सत कबीर इन सारे प्रश्नो से जूझ रहे है। उनका कहना है कि इन प्रश्नो के उत्तर बाहर नही है? प्रश्न उत्तर की सभावना पर ही खड़ा होता है। उत्तर की क्षमता से रहित व्यक्ति में प्रश्न भी नही पैदा होता है। इन प्रश्नो मे भी अदर देखने की प्रवृत्ति है। कभी कभी बाहर से बहुत थककर, निराश होकर मन भीतर देखने लगता है। कभी कभी वबद आँखो से देखने मे भी कुछ दीख जाता है। कभी कभी प्रभु या गुरु कृपा से भीतर देखने की इच्छा जग जाती है। असल मे भीतर देखने की इच्छा जागरण को भी ठीक-ठीक वही जान सकता है जिसके भीतर यह इच्छा जगी है। जो भीतर देख सका है। देख सकता है। कृष ने माता यशोदा और राम ने माता कौशल्या को उनकी सेवा से प्रसन्न होकर अपने भीतर का विराट् दिखलाया था। क्या दिखलायादेखराबा मातहि निज, अदूछुत रूप अखंड। रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि द्रह्मंड। राम के एक एक रोम मे करोड़ो करोड़ो ब्रह्मंड है। यह कब दिखाया ? हँसकर दिखाया। यही काकभुसुडि को दिखाया था। दिखाने के बाद माता से कहायह जनि कतहूँ कहसि जिनि माई। क्यो नहीं कहना ? इसलिये कि इसे कहा नहीं जा सकता ? जो कहा जायगा उस पर विश्वास नही होगा। फिर तो असत्वभाषी समझकर लोग माता का अपमान करेगे। इस तत्त्व के बोध का अधिकारी दूसरे लोग है भी नहीं। इस तत्त्व के अधिकारी तो केवल वे लोग है जिल्हे प्रभु कृपा प्राप्त है। जिन्होने ससग किया है। साधना की है। अपने

को प्रभु चरणो में समर्पित कर दिया। इसी प्रसग मे कृष्ण ने अर्जुन को दिव्य दृष्टि दी। देखो, मेरे भीतर का विराद देखो। मेरे भीतर देखकर अपने भीतर का विराट भी देख सकोगे। क्योकि मै और तुममे अभैद जो है। सजय को यह दृष्टि केवल महाभारत देखने के लिये मिली थी। सत कबीर कहते

समन्वय एवं साधना की कविता ११७ हैं, कोशिश करो तुम्हे भी दिव्य दृषि प्राप्त होगी। विराट् का दर्शन होगा। सत कबीर विराट दर्शन के लिये कई तरीका अपनाते है। यही इनका समन्वय है। यौगिक प्रक्रिया पूरी करो। नाड़ियो और चक्रो की साधना करो। चित्तवृत्तियो का निरोध करो। विषयों का साथ छोड़ दो। विषयो के सगसाथ से भीतर जाना सभव नही। इद्रियो के बहिगर्मन को उल्टकर भीतर करो। यौगिक प्रक्रिया तो एक साधन है। इस एक साधन से काम नही चढेगा। दूसरा तरीका है सत संगति करो। भगवान के नाम का स्मरण करो। नवधा भक्ति करो। पूर्ण आत्म समर्पण करो। सारे कर्म धर्म प्रभु के लिये करो। अपने लिये कुछ भी नही। प्रभु की कृपा प्राप्त करो। प्रभु कृपा के माध्यम है गुरुदेव। अत अहकार छोड़ गुरुदेव की शरण मे जाओ। इस प्रकार सत कबीर ने वेदात के ब्रह्म को ज्ञानयोग द्वारा, ईश्वर को भक्ति द्वारा और परमततल को विषयशून्य अमनीभाव द्वारा प्राप्त किया। करने का उपदेश दिया। इन्हे प्राप्त करने में जो भी बाह्याडम्बर दीखे उनका विरोध किया। कबीर के ब्रह्म, ईश्वर एवं परमतत्त्व अलग अलग न होकर एक है। ब्रह्म या परम तत्त्व के अवतार को न मानकर भी उन्होने इनमे अनेक भक्तवत्सलता, पालक, शरणागत रक्षा, प्रेमतत्त्व जैसे उच्च गुणो की कल्पना की। इन गुणो के कारण कबीर साहब के भगवान् नीरस और शुष्क होने से बच गये। वे केवल ज्ञान विषय न होकर आनद का विषय भी है। इसी सगुण-साकार प्रभु को वे अपनी आँखो से देखते हैखुले नयन में हँस हँस देखूँ सुंदर रूप निहारूँ। कितु सत कबीर इस रूप तक ही रुकते नहीं। वे इससे अपने अतर्तम मे एकाकार होते है। लाली देखने मे स्वय छाल हो जाते है। परमतत्त्व के रूप का वर्णन नही हो सकता। इसलिये वर्णन करनेवाला अलग नही है। उसी रूप का एक भाग है। ऐसे मे रूप रूप का कया वर्णन करे ? पिया को रूए कहाँ लगि बरनूँ, रूपहि मौहि समानी। जो रेंग रैगे सकल छवि छाके, तन मन सभी भुलानी॥ संत कबीर अपने रूपको द्वारा अरूप-रूप के ध्यान मे मग्न रहते है। परमात्मा, आत्मा या जीव का प्रभु या पति है। कबीर इस प्रभु पति के मिलन के रूपक द्वारा ईश्वर की साकारता का पूरा आनद लेते है। कोई चाहे तो कह सकता है कि इसमे एक लीकिक-अलीकिक आनद की समरसता भी है। आत्मा परमात्मा के विवाह का वर्णन, उनका मिलन एवं वियोग मे तड़पना, यह सब केवल अलौकिक नही छौकिक भी है। हाँ, यह लीकिक दूसरे श्रुगारी की लौकिकता से भिन्न है। लौकिक श्रृगार के सारे भाव (सुख-दुख) वास्तविक और स्थूल होते है। कबीर का सुख दुख वस्तु रहित है। इसमे वस्तु स्थूल नही कल्पनामूलक है। वस्तु के अभाव मे इसे वास्तविक नही कहा जा सकता है। कितु इसे अवास्तविक भी नहीं कह सकते। क्योकि इसमे काल्पनिक ही सही वस्तु का बोध है। शून्य शून्य है फिर भी उसकी एक स्थिति है। सत्ता है। नाम का अर्थ ही है सत्ता। सत्ता न होती तो नाम कहाँ से आता ? नाम के साथ रूप किसी न किसी प्रकार से जुड़ा है। चाहे वह कितना ही सूक्ष्म क्यो न हो। रूप रहित नाम की कल्पना नही हो सकती।

नाम का आरभ वस्तु चेतना से होता है। नाम को सज्ञा कहते है। सज्ञा चेतना का पर्याय है। चेतना वस्तु की होती है। वस्तुहीनता की कोई चेतना नही होती है। कितु कबीर की चेतना वस्तु से भिन्न है। वस्तुरहित चेतना ।*ऐसा नाम-रूप जो काल्पनिक है। जो होकर भी नही है। जो न होकर भी है। अस्ति नही है। नास्ति नही है। अस्ति-नास्ति से भी परे है। इन तीनो को कबीर और तुल्सीदास दोनो भ्रम मानते है। संत कबीर दार्शनिक नही है| साधक है, कवि है। अपनी अनुभूतियाँ सप्रेषित करना चाहते है। दार्शनिक की अनुभूति नही

११८ कवीर समग्र होती। वह देखता है। वाहर देखता है। भीतर की जाँच करता है। गणना करता है। गणित लगाकर णरिभाषित भब्दो में प्रचारित करता है। कवीर बोध कराते हैं। ज्ञान, बोध, संप्रेषण की भाव सत्ता स्थापित करना चाहते हैं। केवल जानना मानना काफी नहीं है। जाने माने से तादाल्य की आवश्यकता है। दार्शनिक तादाल्य नहीं करता। तादाल्य की उसे जरूरत भी नहीं है। तादाल्य होने पर वह कुछ नहीं कह सकेगा। कवि और दार्शनिक का क्षेत्र अठग अलग है। कविकर्म दर्शनकर्म से कठिन है। कवि एक ऐसी दुनिया मे प्रवेश करता है जो तिलस्म के समान खतरों भरा है। जहाँ गिरफ्तार होने का भय है। कितु यह सब तो कवि की बाते है| पाठक को इससे क्या लेना-देना ? इस प्रश्न का उत्तर है। साफऔर सीधा। श्रुृगार के कवि का उद्देश्य है पाठक में श्रृंगाररस का बोध कराना। श्‌ृगार का रस | श्रृगार का आनंद। ऐसा ही उद्देश्य संत साहित्य का है। सत ने जिस तत्त्व की अनुभूति की। उसकी अनुभूति पाठक को भी हो। पाठक भी उस लोक मे पहुँचे। जहाँ सत पहुँचा है। णठक भी उस सत्य का साक्षात्कार करे जिस सत्य का साक्षात्कार कवि को हुआ है। जिस सत्य को पाने के लिये कवि को तरह तरह के रास्तो से गुजरना पड़ा है। कवि की यह दयालुता या शक्ति हैं कि जिस सत्य की अनुभूति उसे अनेक साधनो से हुई उसे वह पाठक को अपनी कविताओं द्वारा करा देना चाहता है। शायद इसीलिये वह ऐसे रूपको, अन्यीक्तियो, उल्टवर्सियो एव अन्य अठलकारो का प्रयोग करता है जिनसे पाठक को उस तत्व की अनुभूति हो सके। ये अभिव्यक्ति मार्ग कवि की अनुभूति को सहज सप्रेषणशील बनाते है। इनके द्वारा समझाना और समझना दोनो में सरलता आ जाती है। एक अगम, अगोचर, सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व को कबीर ने जिस ढग से पाठकों तक पहुँचाया है उसकी तारीफ करनी ही पड़ेगी। यही कवीर के वेपढ़े होने की वात याद आती है। पूरी वात पर विचार करने से ठगता है कि जितने वे पढ़े नही थे उससे अधिक वे अपने को वेपढा बताना चाहते हैं | क्यो ? इसलिये कि वे लोक-वेद दोनो के शास्त्र और अक्षर (शब्द) को तर्क और न्याय को साधना की भट्टी मे झोक एक घोल तैयार करते हैं। इसी घोल को कबीर "महारस" कहते है। इसी महारस को प्रीकर उनका मन मस्त है, मतवाला हैअवधू भेरा मन मतिवात। उन्मनि चढा गयन-रस पीदे, धिधुदन भया उजियारा। गुड़ करि शञाद ध्याद करि महुया, भवभाठी करि मारा। सुघमन नारी सहऊ समांनी, पीगे पीवसहारा। दोड युड जोड़ि चियाई भाठी, चुआ महारस भीटठा। इसी महार्‌स को स्वय पीते हैं। उनका पाठक पीता है। शायद तुलसी ने इसी महारस को रस विशेष" (रामचरित जे सुनत अघाहीं से रस विसेष जाना तिन्ह नाही) कहा था। इसीठिये कवीर और तुढसी दोनो झौक-वेद के शास्त्रभार से मुक्त कुछ भिन्न ढंग के कवि है। कवीर का यह महारस पढ़ा, वेपढ़ा, विद्वान, अविद्वान सभी समान भाव से पी सकते है। यो कि शास्त्रज्ञ विद्वान की अपेक्षा शास्नरहित को इसमे विशेष रस मिढता है। क्यो यह वहुत कुछ उसी को ठक्ष्य कर

शास्त्ररहित होकर लिखी गयी कविता है। शास्त्र मे एक खतरा भी है। शस्त्राधीत मूर्ख भी हो सकता है। किंतु शास्त्ररहित इस घोल को पीनेवाला ज्ञानी ही होगा। क्योकि इस महारस का सर्वध मन से नहीं, बुद्धि से नही, बुद्धि से भी जो परे है उससे है (मनसस्तु परा बद्धिर्बुद्धेराता महान्पर. 5 मन से परे बुद्धि है। बुद्धि से परे महान् आत्मा है-कठ०) | शस्त्र रहित का चित्त पहले से मुक्त है। इसलिये वह कवीर को पढ़कर महामुक्त होता।

समन्वय एवं साधना की कविता ११९ शास्त्रज्ष को अशास्र का नया एवं भिन्न स्वाद मिलता है। उसका अशाशत्री मन प्रसन्न होता है। कबीर का काच्य मनुष्य के अशासत्री मन को कुरेदता है। उसका स्पर्श या शास्त्रों के बोझ से दबे मन के भीतर का चैत्तन्य और चैतन्य, अति चैत्तन्य हो जाता है। याद रखना होगा कि प्रत्येक शास्त्री के पास भी एक अशाख्त्री चैतन्य है। कबीर इसी जअशांखी चैतन्य के कवि है। यही कारण है कि कबीर गाँव गेंवार और रवीद्र जैसे विद्वानों को समभाव से प्रभावित करते है। इसलिये भी कि दोनो का अशासत्री मन एक है। किसी न किसी भाव से जुड़ा है। शाश्र बुद्धि का व्यापार है और कविता चैतन्यात्मा का बधु है। अब थोड़ा कबीर की सूक्तियो पर विचार- करे। इन्ही सूक्तियो को देखकर शास्त्रज्ञ आलोचक कबीर का कवि रूप अस्वीकार करते है। निश्चय ही कबीर मै सूक्तियाँ भी बहुत है। सूक्तियों मे चमत्कार की प्रधानता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूक्तियो के बारे मे प्राय, ठीक ही कहा है-'सूक्तियों से मेरा अभिप्राय वैचित्र्यपूर्ण उक्तियो से है जिसमे वाकचातुर्य ही प्रधान होता हैं। कोई बात यदि नये और अनूठे ढग से कही जाय तो उससे छोगो का बहुत कुछ मनोरजन हो जाता है। इससे कविलोग वाग्वैदग्ध्य से प्रायः काम लिया करते है। नीति संबधी पधों मे चमत्कार योजना अकसर देखने मे आती है। (जायसी ग्रथावली, पृ. १६८)। इस पर और गंभीरता से विचार करते हुए आचार्य ने सूक्तियों के तीन विभाजन किये -१ केवल चमत्कार प्रधान, २ जिसमे रस एवं भावुकता हो, ३. जिसमे रस और चमत्कार हो। ऐसा लगता है इस विभाजन मे काव्य सबधी वाक्यो को भी सूक्ति मान लिया गया। सूक्तियो के इस परिभाषा या विभाजन में चमत्कार रहित सूक्तियो को छोड़ दिया गया है। ऐसी सूक्तियाँ भी होती है जिनमे किसी भी प्रकार का चमत्कार नहीं होता है। सूक्ति का अर्थ सुउक्ति, सुदर कथन। कोई सुदर जीवनानुभव। कोई सुदर दविचार वाक्य। निश्चय ही ये विचार खडकाव्य की रसात्मक भूमिका को नही प्राप्त करते। कितु मनुष्य की मेधा को अवश्य प्रभावित करते है। काव्य या रस की एकतरफा व्याख्या ने कभी कभी केवल श्ृगार को रस मानने की प्रवृत्ति पैदा की है। कितु सूक्तियो की एक निश्चित और ठोस परपरा है। बिना किसी चमत्कार के राखो सूक्तियाँ समाज मे प्रचलित है। स्वयं कबीर की सूक्तियो मे समाज को प्रभावित करने की शक्ति है। आधुनिक लोगो का एक महत्वपूर्ण समाज कबीर की सूत्तिय़ों से ही प्रभावित है। समाज सबधी बहुत सी सूक्तियाँ इतनी प्रचलित और प्रभावी है कि बहुत से लोग इन्हे ही कबीर मानते है। दो उदाहरण काफी होगामसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हात। चारिउ युग को महातमा कबीर मुखहि जनाई बात। चलती चक्की देखि के, दीया कबीरा रोय। दोइ पाटन के बीच में, साबित बचा न कोय। ये अत्यत प्रचलित दोहे है। इनमे थोड़ा चमत्कार भी है। प्रथम विरोधाभास है तो दूसरा दो पाटो का बिम्ब बचाता है। अब जो लोग बिम्ब को ही कविता मानते है उन्हे इन दोहो को पूर्ण कविता कहना चाहिए। कितु नही कहेंगे। क्योकि ये भाव

नही, विचार जगाते है। भावात्मक गुहा मे न ले जाकर वैचारिक चेतना उत्चनन करते है। यही बात सभी सूक्तियो के लिये है। सूक्तियाँ साहित्यशास्त्र के 'लिये चुनौती सी है। अधिकतर साहित्याचार्य सूक्तियो की प्रभावान्विति पर विचार करने के लिये तैयार नही है। रस की पूर्णता मे इसे 'रसाभास' कहकर अपमानित करने की कोशिश की गयी है। कितु भावरस के अतिरिक्त ज्ञानसस की कसौटी भी माननी होगी। इसे बुद्धिसस भी कहा गया है। सूक्तियो का उद्देश्य ही है ज्ञानरस पैदा करना। भावक

१२० कबीर समग्र कवि के समान ही ज्ञानी, दार्शनिक एवं विज्ञानी भी ज्ञानरस मे तल्लीन रहते है। किसी विषय की खोज स्वय मे एक सुखात्मक अनुभूति है। यह अनुभूति भावात्मक न होकर ज्ञानात्मक है। इसीलिये शायद भक्ति मे ज्ञानी भक्त को सर्वश्रेष्ठ भक्त कहा गया है। गीता के चार प्रकार के भक्तो मे पहछा है आर्त। आर्त अर्थात् ज्ञान प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा, इच्छा। यह इच्छा जिज्ञासा पैदा करती है। जिज्ञासा अर्थ के लिये। अर्थ मतलव तत््ववोध। यह तीसरी सीढ़ी है तत्त्ववोध का प्रयास (अर्थी)। चौथी स्थिति ज्ञान की है। ज्ञान स्वत पूर्ण है। ज्ञान स्वत ब्रह्मस्वरूप है। ज्ञान ब्रह्म पर्याय है। प्रज्ञान ब्रह्म । तो सत कबीर का सपूर्ण काव्य इसी ज्ञान ब्रह्म की प्राप्ति के लिये है। कबीर ने विभिन्न प्रक्रियाओ द्वारा इसी ज्ञानब्रह्म एव चैतन्यात्मा को प्राप्त करने कराने की कोशिश की। चूँकि सभी उसी ब्रह्म का है। ब्रह्म सवद्ध है ।अत सबका समन्वय भी आवश्यक है। हे छ

उपास्थ कबीर वैष्णव नहीं है, क्योंकि वे राम को विष्णु का अवत्तार नहीं मानते है। ती कबीर क्या है ? उनकी सपूर्ण रचनाओ की ध्वनि है कि वे वैष्णव है। वे अपनी रचनाओ में किसी की स्वीकृति नहीं देते है। केवल वैष्णव ही उन्हे मान्य है। अत. प्रच्छनन मे वे अपने को वैष्णव ही कहना चाहते है। इसे दूसरे सप्रदायो से मिलाकर देखा जाना चाहिए। तुलसी और सूर के राम-कृष्ण क्या विष्णु के अवतार है ? इसका उत्तर भी 'हाँ' 'ना' मे है। तुलसीदास राम को विष्णु का अवतार स्वीकार करते है। कितु उनके राम स्वयं परब्रह्म है। यही बात कृष्ण के लिये है। सूर और तुलसी सगुण को भी निर्गुण के समान ही पारमार्थिक मानते है। तुलसीदास ने स्पष्ट कहा है कि ब्रह्म के दो स्वरूप है-“अग्रुन संगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध, अनादि, अनूपा ।” इसमे “अनादि' शब्द महत्वपूर्ण है। अनादि का अर्थ है अवताररहित। क्योकि अवतार की आदि है। श्री यामुनाचार्य जी ने एक श्लोक मे सगुण स्वरूप को प्रियतर, अद्भुत और मूर्त बताया है-शातानत महाविभूति परम यद् ब्रह्म रूप हरेगमूर्त ब्रह्मतत्तोषडपि यत्रियतर रूप यतत्यदभुतम्। राम स्वय ब्रह्म है। इन्हे किसी दूसरे का अवतार ग्रहण की आवश्यकता नहीं है। भगत हैतु भगवान प्रभु राम धरेठ तनु भूष। स्पष्ट है कि तुलसी के राम स्वयं अवतार है। विष्णु के नहीं। काम की इस महत्ता के सदर्भ मे ही कहा गया है-सकर सहस विष्णु अज तोही, राखि सकहि न राम कर द्रोही। अथवा रामविरोध न ऊबरसि सरन विष्नु अज ईस। सूरदास का भ्रमरगीत तो कृष्ण रूप की पूर्ण प्रतिष्ठा ही करता है। सूर और तुलसी इस बात का खडन भी नहीं करते कि क्ृष्ण-राम विष्णु के अवतार नहीं है। इसके अतिरिक्त तुलसी बार-बार विष्णु के अवतार की याद दिलाते है। कितु राम ही विष्णु के अवतार है इस पर प्राय मौन रहते है। भारती शास्त्रो मे विष्णु की तीन स्थितियाँ है-कहीं वे इन्द्र से छोटे उपेद्र है। कहीं ब्रह्म और कहीं मात्र एक देवता है। कबीरदास जी इनमे न जाकर राम से सीधे जुड़े है। निर्गुण राम। ब्रह्म राम। कहना इतना ही है कि राम का ब्रह्मस्वरूप सभी भव्िति सग्रदायों में स्वीकृत है। हाँ, कबीर उन्हे अवतार नहीं मानते। कबीर को किसी अवतार मे विश्वास नहीं है। जबकि गे के राम जितना ब्रह्म, निर्गुण, निराकार है उतने ही अवतार भी। दोनो रूप राम के ही | कबीर ने राम की जगह-जगह वंदना की है। लगता है वे अपना उपास्य राम को मानते है। फिर भी कहते है कि राम के उपासक हिंदू है-हिंदू राम-नाम उच्चरै। कबीर के राम घटघट व्याप्त है। इस स्थिति को देखना होगा। राम के दो भेद सगुण-निर्गुण तो थे ही। एक तीसरी स्थिति भी है क्या ? कबीर कहते हैजोगी गोरख गोरख करे, हिन्दू राम नाम उच्चरे। मुसलमान कहै एक खुदाई, कबीर के स्वार्मी घटि-घटि रध्यो समाई। इन पक्तियो से लगता है कि राम हिंदुओ के उपास्य है। कबीर के उपास्य (स्वामी) अनाम है। नाम रहेत है। रूप तो है ही नही। नाम भी नहीं है। यही ठीक है। कबीर एक ऐसे स्वामी के उपासक है जिसका रूप नहीं है। नाम भी नहीं है। जो नाम-रूप रहित है। राम नाम त्तो

१२२ कबीर समग्र उन्होने वैसे ही रख लिया है जेसे किसी का कोई नाम होता है। यही कारण है कि उन्हे राम ओर रहीम मे अतर नहीं लगता है। विराट प्रभु को राम रहीम कुछ भी कहो क्या फर्क पड़ता है ? असल मे तो वह न राम है, न रहीम है। कहने के लिये वह राम भी है। रहीम भी है। स्वय हिंदू परपरा मे एक-एक देवता के हजारों नाम-रूप की कल्पना है-विष्णु सहस्त्रनाम, गोपाल सहस्त्रनाम आदि। अनेक नाम कर्म से जुड़े है। परमतत्त्व को समझना कठिन है। केवल बड़ा होने से कोई उसे नहीं समझ सकता है। उसे शिव सनकादि नहीं समझ सके। वह देवता अनगढ़ है-अनगढिया देवा। सभी लोग गढ़े देवता की पूजा करते है। वह देवता एक तरफ अनगढ़ हे। दूसरी ओर पूर्ण है।' कबीर की दृष्टि मे अनगढ़ और पूर्ण एक हैं। यह स्थिति भी है कि वह देवता सगुण-निर्गुण दोनो से भिन्न है।* इसीलिये जो भी रूप नाम वाला है उसे नहीं समझ सकता है। निराकार-साकार की यह बात दर्शन मे तो ठीक है। जीवन एव साधना मे इससे काम नहीं चलेगा। इसीलिये कवीर आकार-निराझार से परे उस तत्त्व को समझने की कोशिश करते हैं। साधना करते है। आनद लेते है। यह साधना की विशेषता है कि निर्गुण-निराकार से भी परे के तत्त्व की साकार अनुभूति होती है। सब कुछ प्राय साकार सा होता है। कितु कबीर उसे साकार तो क्या निराकार भी कहने की स्थिति मे नहीं है। वे सगुणियों के समान उसकी लीढछा की भी अनुभूति करते है-- चेला रहा सो रस चुन खाया। गुरु निरंतर खेला। यह गुरु भगवान है। परमात्मा है जो निरतर अपना खेल खेल रहा है। छीछा दिखला रहा है। कबीर लीला शब्द भी प्रयोग करते है। यह लीछा निजी है। आप-आप मे है। आत्म मे है। आललीता है। क्योंकि आत्म से अलग कुछ भी नहीं है। न कोई रोगी है। न कोई वैद। सब आत्तत्त्व का विस्तार है। आत्मा मे आत्मा की लीला हो रही है। द्रष्म और दृश्य दोनो एक हैं। नाना प्रकार के दीखनेवाले अछगाव सब एक है। काफी सोचा वबिचारा है। कोई भी निर्गुण कहने में समर्थ नहीं है। इसीलिये सभी गुणी और पडित मिलकर लीला, प्रभु की यथ लीला, कर्म छीला का गायन करते है।१ 'लीछा पद गावै" को देखकर सूर का ध्यान आता है। क्योंकि सूर कृष्णलीला का ही गान करते है सब विधि दियारे तातें, सूर सगुन लीला पद गागे। कभी-कभी कबीर को लगता है कि वह अनगढिया देवता सगुण-निर्गुण का मिलाजुला रूप है। गुण मे निर्गुण है और निर्गुण मे गुण है |? कठिनाई केवल कहने की है। सगुण साधक हनुमान ने हृदय मे चीरकर राम की स्थिति दिखाई थी। कवीर यह करने की स्थिति मे नहीं है। हृदय चीर भी दे तो वह वहाँ 'है' नही है। क्योंकि परमात्म तत्त्व जितना भीतर है उतना ही बाहर है। अगर कहे कि भीतर है।तो प्रश्न उठता है बाहर कौन है ? अगर बाहर कहे तो भीतर को १ अनगढिया देवा कौन करे तेरी सेवा। गढे देव को सव कोइ पूजे नित ही लावै सेवा । पूरन ब्रह्म अखडित स्वामी, ताको न जाने भेवा | २ कोई ध्यावै निराकार को, कोई ध्यावै आकारा, या विधी इन दोनो ते न्यारा, जाने जाननहारा | ३ राणा डव कवन सू कहिए,

कवन वैद को रोगी | इनमैं आप आप सवहिन मै, आप आप सूँ खेले । नाना भांति घड़े सब भाड़े, रूप घरे धरि मेढै। सोभि विचारि सवै जग देख्या निरगुण कोई न बतावै। कहै कवीर गुणी अरु पडित मिलि छीछा जस याव। गुन मै निरगुत, निरगुन में गुन वाट छाडि क्यो बहिए रे ।

उपास्य १२३ खाली बताना होगा। दोनो जगह कहे तो उसकी उपस्थिति बतानी होगी। तब वह अनगढ़ नही रह जायगा। वह अनगढ़ इसी अर्थ मे है कि उसे बताया नही जा सकता है। वह सर्वत्र है। कितु सभी जगहों से ऊपर है। अछग है। सारे कर्म उसके है। कितु वह सभी कर्मों से अछुग है। अछूग न हो तो कर नहीं सकता। बिल्कुल अलग हो तो कर नही सकता है। वह कर्त्ता भी है। कार्य भी है। कारण और करण भी है। इन सबसे अलग भी है। वाच्य भी है। वाचक भी है। किसी के पास उस तत्त्व को बताने की शक्ति नहीं है। छोग है कि जानना चाहते है। बताओ न प्रभु वह कौन है? क्या है ? कैसा है ? कहाँ रहता है ? बौद्धों का एक सप्रदाय शून्यवादी है। वह कहता है वह शून्य है। निश्चय ही यह शून्य सामान्य शून्य से भिन्न है। फिर भी वह है तो शून्य ही। वेदाती शून्य न कहकर पूर्ण कहता है। शून्य से अस्तित्वहीनता का बोध होता है। उसे अस्तित्वहीन कैसे कहेगे ? अगर उसका अस्तिल्ल नही है तो सारे अस्तित्व प्रश्नो के घेरे मे आ जायेंगे। भ्रमो का आधार भी कोई न कोई अस्तित्व होता है। रस्सी न हो तो सर्प का, शुक्ति न हो तो रजत का, सूर्य की रोशनी न हो तो पानी का भ्रम नही हो सकता। प्रत्येक भ्रम के पीछे कोई न कोई अधिष्ठान है। हम किसी को न जानें, न बता सके ' तो इससे उसकी अस्तित्वहीनता नही प्रमाणित होती है। प्रमा और प्रमाण की सीमा है। यह सीमा नि सीम को नहीं बता सकती है। कितु नि.सीम भी नि सीम को नहीं बता सकता है। निसीम तो अवाक् है। उसे क्या गरज पड़ी है जो कुछ भी बताए ? बताने के लिए उसे भी सीमा मे आना होता है। जो सीमा मे दीख रहा है नि सीम ही तो है। कितु सीमा मे आते ही बताने की शक्ति समाप्त हो जाती है। अजीब विडबना है। नि सीम बता नहीं सकता। सीमा वाला बता नहीं सकता। तो बताएगा कौन? सत छोग एक उपमान देते है। अधो और हाथी का। चार अंधो ने हाथी देखा। देखा क्या? देख तो सकते नहीं थे। पकड़ा। देखनेवाले को छुआ। आँख का काम हाथ से लिया। त्वचा से लिया। किसी ने हाथी को पूरा नही पकड़ा पूरा पकड़ना असभव था। किसी ने पॉव, किसी ने पूँछ और किसी ने सँढ़ पकड़ा। सबसे बताया। ठीक ही बताया। हाथी खभा है। हाथी मोटी रस्सी है। हाथी सिकुड़नेवाला बस सा है। किसी ने गत नही बताया। सबने ठीक कहा। कितु सबने गलत कहा। हाथी यह सब 'ै' नहीं है'। यही स्थिति हमारी है। हम भी उस पूर्ण के अश को बताते है। बर्ता सकते है। हमारी स्थिति भी उन अधी से अधिक नही। कोई भी च्यक्ति पूर्ण को बताने का दावा नही कर सकता है। कोई बता दे तो वह पूर्ण रह नहीं जायगा। बतानेवाला पूर्ण हो जायगा। जो बताया जा रहा है वह छोटा हो जायगा। अश हो जायगा। इसीलिये उसके लिये कुछ सकेत मात्र है। कुछ सकेत है। आखिर करोड़ो अरबों को बताने के लिये भी तो सकेत है। एक से नौ तक के सकेत चिन्ह | एक और शून्य। इन दस सकेत चिन्हों से सभी सख्याएँ बताई जाती है। इनमे सबसे महत्त्वपूर्ण अक है शून्य । कितु इतना महत्त्वहीन कि अकेले कुछ भी नहीं बता सकता है। अकेले उसका कोई अस्तित्व नही है।

कितु किसी के साथ जुड़ते ही तेजी से भागने लगता है। एक से सटा नहीं कि दसगुणा हो जायगा | यही स्थिति सगुण निर्गुण की है। इसीलिये कबीर कहते है-'सैन करै मन ही मन मुसके गूँगे के मिठाई ।" मिठाई का आनद तो लिया जा सकता है। कितु उसे बताना कठिन है। असभव है। जानने के लिये कुछ सकेत्त मात्र है। शायद साधक की मुस्कान भी एक सकेत है। असल है स्वय चख कर देखो। जिसने गुड़ नही खाया है उसे गुड़ का स्वाद नहीं बताया जा सकता है। अगर जीभ में कोई रोग हो तो दया होगा? सभी गुड़ मिट्टी ढगेगे। मनुष्य को माया का रोग लग गया है। जब तक यह रोग है वह गुड़ का आनद नही ले सकता है। इसीलिये अं निवी शनि

१२४ कवीर समग्र माया रोग को दूर करो। मन रूपी जीभ की मैठ हटाओ। तभी भगवत् मिश्रन्न का आनंद मिलेगा। क्योकि ब्रह्म का स्वाद आनदमय है। आनद ब्रह्मणो मूर्ति' | इस रोग को ठीक करने के लिये कोई वैद्य तो चाहिए। हाँ, ठीक कहा। वैद्य हैं। गुरुदेव, सत्गुरु वैद्य है। तुम सो वैद न हम सो रोगी। गुरु रूपी डाक्टर के पास दीन वन कर जाओ। डाक्टर साहब में तीन विशेषताएँ हैं- द्रह्मस्वरूप परम ज्ञानी है। इनमे और परमात्मा मे भेद नही है। यो कि वैद्य गुरु निर्गुण-निराकार परमात्मा के ही सगुण-साकार रूप धारण कर पृथ्वी पर विराजते है। गुरुदेव शातच्त्ति है। उदार है। गुरु वैद्य के पास माया मुक्ति की औषधि है। कितु दो शर्त है-एक यह कि इनके पास अह को छोड़कर जाओ। अल्यंत्त आर्त भाव से जाओ। दूसरा यह कि इन्हे प्रमाण मानो। इनके वचनो पर आस्था रखो। सत्त साहित्य वेदागम प्रमाण न मानकर सत्गुरु वचनो (शब्दों) को प्रमाण मानता है। शब्द प्रमाण। गुरु की वाणी ही ब्रह्म वाणी है। वेद ब्राह्मण की वाणी है। सगुण-साकार की वाणी है। कितु सतगुरु की वाणी कहाँ से आती है जहाँ वेद-शास्त्रो की पहुँच नही है, वहाँ रात-दिन भी नहीं होते ऐंदिवस भ रैनि वेदु नहिं सासत तहाँ बरे निरंकारा। सतगुरु इसी निरकार की वाणी बोलते है। भूले को राह पर लाते ह8। माया के अंधकार में शिष्य के हाथ मे ज्ञान दीपक देते है। बिना गुरुदेव के अनगढ़िया देवता को समझना असम है। इसका मतलूव यह कि गुरुदेव एक ऐसे वैद्य है जो दवा देकर भवरोग छुड़ाते है। प्रभु से भेट कराकर स्वस्थ करते है। पुष्टि देते हैं। शायद इसीलिये कबीर भगवान और सतगुरु थे अतर नही छरते है। कहना इतना ही है, कवीर अनगढ़िया देव के उपासक है। यह न गढ़ा गया है, नं गढ़ा जा सकता है। इसे कहना, सुनना, समझना, देखना दिखाना आदि सब अनगढ़ है। उसे जो कहो सब ठीक। कुछ न कहो वह भी ठीक। यह राम है। नरी है। रूप तो है ही नहीं। नाम भी जो चाहो रख लो। छ

ग्यान की आधी ग्यान की आँधी आ गई। सामान्य ज्ञान नहीं। ज्ञान का तूफान। सामान्य ज्ञान से काम नहीं चलेगा। सामान्य ज्ञान सामान्य स्थिति के लिये है। यहाँ तो स्थिति असामान्य है। असामान्यता दो प्रकार की है। पहली है माया की विकरालता। माया का विनाशकारी रूप। माया सबको खा रही है। नष्ट कर रही है। दूसरी यह कि माया का उपद्रव देखकर भी लोगो में उस उपद्रव की चेतना का अभाव है। लोग माया को ही सत्य समझकर उसी मे उलझे है। सारा ससार माया की नींद सो रहा है। अपने कर्त्तव्य को भूला है। इसीलिये सबके सोने पर सत जागता है। भूले रहने पर ज्ञान प्राप्त करता है। कबीर स्पष्ट कहते हैएक न भूला दोह न भूला, भूला सब संसारा। एक न भूला दास कदीरा, जाके राम अधारा ॥ यह भूल कैसे सुधरेगी ? एक उपाय है सतगुरु की शरण। एक और उपाय है। आत्मदर्शन का। अपने भीतर देखने का। अपने मे स्थित राम को देखने का। क्योकि राम (परमतत्त्व) भीतर-बाहर सर्वत्र है। कितु आत्ज्ञान-तत्ज्ञान के लिये भीतर के राम का दर्शन आवश्यक है। भीतर देखे बिना बाहर का राम नहीं दीखता है। यह देखना अजीब देखना है। देखते है भीतर। कितु दीखता है बाहर भी। यो कहो कि बाहर ही दीखता है। नहीं, तब बाहर भीतर का भेद नहीं रह जाता है। बाहर भीतर को अलग करनेवाली दीवाढ टूट जाती है। ऑगन के पार द्वार और द्वार के पार ऑगन दीखता है। नऑगन।न द्वार। जब सब ऑगन ही ऑगन, है तो द्वार कैसा ? कितना खुला यह आँगन २ महादेवी कहती है-विस्तृत जग का कोना-कोना, मेरा न कभी अपना होना। वही ऑगन जहाँ कभी द्वार से जाते थे वह अब आसमान जैसा खुला मैदान हो गया है। अब इस आसमानी मैदान मे भी जाने मे कभी रुकावट हो सकती है क्या ? कबीर यहाँ साधना के दरवाजे से जाते है। कितु उनके जाने के बाद दरवाजा स्वय लुप्त हो जाता है। ज्ञान की ऑधी मे भ्रम उड़ता है। भ्रम की ट्टी उड़ती है। स्वय दरवाजा उड़ जाता है। महादेवी और कबीर मे एक अतर है। कबीर जिस मैदान को प्राप्त करते है उसमे एकाकार हो जाते है। महादेवी मे तदाकारिता नहीं है। वे अपने व्यक्तित्व के हठ मे है। स्त्री होकर भी महादेवी मे पुरुष कबीर जैसा समर्पण नहीं है। महादेवी मे व्यक्तित्व के कारण प्रिय के प्रति उलाहना भी है। प्रिय चिता क्या है यदि मेरा दीपक बुझ जाता है। उससे तो तुम्हारा पीड़ा राज्य अँधेरा हो जायगादिंता क्या है हे निर्मम। बुच्च जाये दीपक मेरा। हो जायेगा तेरा ही। पीड़ा का राज्य अँधेरा। कबीर प्रभु के प्रति अत्यत विश्वस्त है। वह उनका प्रतिपालक भी है। उसने गर्भ मे रक्षा की है। यहाँ भी भोजन देगा। रक्षा करेगा? । कबीर को मालूम भी है। माँगना व्यर्थ है। अधिक १ जाके राम सरीखा साहिब भाई, सो क्यो अनत पुकारन जाई । (१२५)

१२६ कवीर समग्र मॉगना तो और भी व्यर्थ है। क्या होगा मॉगने से ? अधिक जमा करना भी वेकार है। सब तो जा रहा है। राजा, राव, रक सब नष्ट हो रहे है। कोई लेकर नही जा रहा है। भगवान् कवीर की माँ है। इसीलिये वे इनके सारे अपराधों को क्षमा करते है। भक्त मार भी दे तो माँ प्रभु क्रोध नहीं करते। अपना प्रेम नहीं छोड़ते। उठटे वे वालक के दुख से दुखी होते है?। यही प्रभु साहब है। भक्त गुलाम है। यह स्वामी उसे बेच भी सकता है। क्योंकि भक्त का तन मन धन सब राम के ल्यि है।१ महादेवी का सर्वंध केवल प्रेमिका का है। भ्रम कौन था ? क्या था ? यह भ्रम माया थी। माया का भ्रम। माया द्वारा भ्रम। भ्रम माया से वेंधा था। अव न बॉधनेवाली रस्सी रह गयी। न माया की वाधा। ''बॉधी' रस्सी है बाधा है, बधन है। यह पूरा रूपक है। माया की रस्सी का वधन टूटने से हितचित की दो थूनी गिर गयी। यह थूनी विषयासक्ति और वाह्याचार की थी। चित्त ने विषयासक्ति और वाह्माचार को ही अपना आधार बना रखा था। इसमे मोह की बल्ली लगी थी। ज्ञान होने विषयासक्ति और मोह छूट गये। अब वाह्माचार की भी जरूरत नहीं रह गयी। क्योकि वाह्याचार भी तो आसवित ही है। इस घर पर तृष्णा का छप्पर रखा था। यहाँ कुवुद्धि का वर्त्तन (भाड) था। ये सब नष्ट हो गये। इसके इस रूपक का दूसरा पक्ष है। नये घर की युक्ति योग वाली है। इसमे एक दूँद पानी भी नहीं चूता है। शरीर कपट का कूड़ा निकल गया। तब प्रभु की शक्ति समझ मे आयी। कितु कवीर साहव की दूसरी विशेषता यह है कि वे केवल ज्ञान मे विश्वास नहीं करते है। प्रेम के बिना ज्ञान अपूर्ण है। ज्ञान साधन है। साध्य है प्रेम। किसका साधन है ज्ञान? यही यहाँ बताया गया है। ज्ञान है साधन विषयासक्ति, तृष्ण और उनके आधारो, उनके कर्मियो एव उनके उपयोग को समझने का। मोह से छूटने का। कुबुद्धि को नष्ट करने का। यह मुख्यत बुद्धि का विषय है। बुद्धि मे समझदारी तो है कितु क्रिया नहीं है। क्रिया का आधार ज्ञान नहीं भाव है। ज्ञानयोग नहीं। भावयोग। भाव ही क्रिया को प्रेरित करता है। ठहराता है। ठहरने का आधार देता है। प्रेममूलक है। प्रे भी दो प्रकार का होता है-अधा और ज्ञानमूलक। कबीर का प्रेम ज्ञानमूलक है। अंधमूलक नहीं। क्योकि अधमूलक मे तो फिर एक प्रकार का अज्ञान है। अज्ञानवश ही माया और उसके विषयो से अध प्रेम हो गया था। स्त्री का प्रेम अध प्रेम है। पतग अंध प्रेम का प्रतीक है। भ्रमर अध प्रेम का प्रतीक है। काठ काटता है और कमल मे बैंध जाता है। कमल के प्रति उसका अधानुराग है। कबीर अंध अनुराग वाले नहीं है। उन्होने प्रेम तक पहुँचने के लिये ज्ञान की साधना की है। पहले ज्ञान तब प्रेम। इस ज्ञान योग की युक्ति है-योग, ज्ञान और प्रेम। योग-ज्ञान पर आधारित प्रेम। प्रेम भी किसका २ हरि का प्रेम। प्रभु से प्रेम। यह प्रेम जछ ज्ञान आंधी के वाद बरसा है। भक्त कबीर उसी जल से भीगे है। भगवद्मेम का जढ। विषय जल नहीं। विषय तो आग है| वह आग तो प्रभु प्रेम जल से बुझ गयी। सूर्योदय के बद तम नष्ट हो जाता है। ज्ञान सूर्य के उदय से अज्ञान का अँधेरा दूर हो गया। ज्ञान सूर्य को विषयो के बादल ने

ढेंक लिया था। फलत चारो ओर अँधेरा फेल गया था। अब प्रेम जल बरसा है। जा तिरि तीनि लोक को भरा, सो क्यूँ न कौ जन को प्रतिपारा । २ हरि जननी मैं वालक तेरा, काहे न औगुण बकसहु मेरा । हर 7 हर कर गहि केस करे जी घाता, तऊ न हेत उतारे माता । कहे कवीर एक युधि विचारी, वालक दुखी,-दुखी महतारी । १ जाके राम सरीडा साटिव भाई, सो क्यो अनत पुकारन जाई। मा जा सिरि तीनि ठोक को भारा, सो क्यूँ न करै जन को प्रतिमपारा |

है ग्यान की ऑधी १२७ बादल छेट गये है। ज्ञान सूर्य के प्रकाश मे सब कुछ स्पष्ट दीख रहा है। मतर्ुब यह कि ऑधघी का सबध प्रेम जल की वर्षा से था। इस आधी का उद्देश्य अज्ञान भगाना या ठाटी उड़ाना भर न होकर प्रेम पैदा करना ही था। क्योंकि प्रेम ही भक्ति का मूल तत्व है। भक्ति, भगवान और भवत तीनो ही प्रेम रूप है। राधा और कृष्ण में तादाल्य है। कृष्ण तो भगवान् है ही। कभी राधा भी आराध्य बन जाती है। इसीलिय भक्तों मे तीन सप्रदाय बने-कृष्ण की प्रधान माननेवाले, राधा को प्रधान माननेवाढे, राधा कृष्ण की सयुक्त भक्ति करनेवाले। यही सीता राम के लिये भी है। कबीर का यह पद ज्ञान की ऑधी से आरभ होकर प्रेम वर्षा मे समाप्त होता है। यह रचना और विचार दोनो दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। संत कबीर के मन मे कहीं न कहीं उस ज्ञान का विरोध है जिसे विषय ज्ञान कहते है। वस्तु का ज्ञान। जो ज्ञान कि पुस्तक का विषय है। विषय का ज्ञान बाह्य ज्ञान है। यह पुस्तकी ज्ञान आधी नहीं बन सकता है। इसलिये कि पुस्तकी ज्ञान आल ज्ञान न होकर पर ज्ञान है। सूचना का ज्ञान है। साक्षात्कार का ज्ञान नहीं है। इस ज्ञान मे योग का कोई स्थान नहीं है। इस ज्ञान मे मनोग्रथि नहीं खुलती है। सारे छिद्र बद रहते है। द्वार बंद रहते है। ऐसे में इस ज्ञान को सिसकना पड़ता है। खुले मैदान के अभाव मे यह ज्ञान ऑधी बने भी तो बहेगा कहाँ ? ऑधी के लिये तो विस्तार चाहिए। बद कमरे मे ऑधी काम करेगी नहीं। अधिक से अधिक किबाड़ खड़काकर लौट जायगी। कबीरदास जी की यह ऑधी निर्गुण वाली है। यह संपूर्ण सगुण को उड़ा देती है। सत कबीर का सारा साहित्य जीवन के दैनिक मर्म से कट जाता है। ससार मिथ्यात्व इतना बढ़ता है कि ससार शून्य और रूक्ष लगने छगता है। ससार छोड़ो, माया कुल आदि की प्रबल ऑधी मे जीवन का प्रत्यक्ष रस सूख जाता है। एक अलौकिक रस बनता है। जागतिक उपमानो, प्रतीको, रूपको आदि से जो रस बनता है वह अत्यधिक प्रभावशाली नहीं हैं। कितु सत कबीर तो जागतिक रस तैयार भी नहीं करना चाहते है। जीवन की नश्वरता एव माया का भय के बीच में भक्त भगवान् से जुड़ता है। यह भगवान् सनातन है। इसलिये यहाँ नाश का भय नहीं है। यहाँ शाति है। प्रेम और आनद भी है। कितु यह पक्ष विस्तार से नहीं आया है। शायद यही कारण है कि समाज मे “निर्गुण” का एक विशिष्ट अर्थ रहा है। निर्गुण गाना सब समय नहीं हो सकता है। जन्म और विवाह आदि शुभ कर्मो के समय कोई भी व्यक्ति कबीर के भजन नहीं गाता है। कबीर ही क्यो गीता और महाभारत जैसे ग्रन्थ भी हर समय, हर अवसर पर पाठ्य नहीं है। कारण शायद यही है कि उनमे निर्गुण ज्ञान की ऑधी है। इस आधी मे। सामान्यत लोक जिसे जीवन कहता है।वह जीवन भी उड़ जाता है। कबीर के साहित्य का उद्देश्य अहमर्थ से उठकर परमार्थ पर जाना है। ज्ञान की ऑधी बताती है कि यह जीवन छोटा, नाशवान्ू, एव छोड़ने लायक है। परा जीवन ही श्रेष्ठ है। ज्ञान, आत्मा और जीव का प्रतीक हस अकेले ही यहाँ से जाता है। ज्ञान की ऑधी पाकर उड़ जाता है-हस अकेला

जाई। जाना अकेला होगा, अत सामूहिक जीवन व्यर्थ है। इसीलिये कबीर मे पारवारिक जीवन का अभाव है। वे सामाजिक एकता की जो भी बातें कहते है उनका आधार निर्गुण है। निर्गुण अभेद है तो भेद की सारी बाते व्यर्थ है। बिना निर्गुण के जो लोग साम्य की , बाते करते है उन्हे इस पक्ष पर ध्यान देना होगा। साम्य के लिये लोभ, मोह, काम आदि से तटस्थता आवश्यक हैं। क्योकि लोभ और मोह ही वैषम्य के मुख्य कारण है? इसकी पूर्ति निर्गुण से होती हैं। सत कबीर तो जगत को पूर्णतः उलट देनां चाहते है। अब मन उलटि सनातन पा । तब हम जाना जीवत मूवा। कबीर कहना चाहते है कि उनका काच्य जीवित मृत्यु का काव्य हैं। जिओ और मृत बनकर जिओ। विषय से अलग ही मृत्यु है। इसी मृत्यु को संत

१२८ कबीर समग्र आनद मानते है-जिस मरने से जग डरे सो मेरे आनद। कबीर मे जो ऑधी बह रही है। जिस आँधी को वे बहाना चाहते है वह उस ज्ञान की ऑधी है जिसमे काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि नहीं होते। वैषम्ध टूटकर साम्य की प्राप्ति होती है ([* कालिदास ने मरण की प्रकृति और जीवन को उसकी विकृति कहा था। यह मान्यता साख्यो की है। सभव है वेदात मे यह साख्य से ही आया है। गीता के कृष्ण युद्ध मे मरो पर उदासीनता की शिक्षा देते है। क्योकि मृत्यु तो शरीर की होती है। आत्मा अमर है। इसीलिये मृत्यु पर शोक नहीं करना चाहिए। सपूर्ण महाभारत और अपने परिवार का नाश देखने पर भी कृष्ण प्रसन्न है। सच्चिदानंद है। कठोपनिषद् का नचिकेता मृत्यु का उपासक है। मृत्यु देवता यम ही उसके आचार्य है। इस सदर्भ मे आधुनिक सत महात्मा गॉधी का उद्धरण आवश्यक है। गॉधी जी एक पत्र मे लिखते है-'मृतद्यु तो जन्म का साथी ही है और है बड़ा वफादार। कभी धोखा नहीं देता।' इससे भी बढ़कर कहते है-जो चीज जन्म के साथ ही लेकर हम इस जगत में प्रवेश करते है इसका शोक क्यो? शोक हो तो जन्म का हो।' (उत्तर प्रदेश मे गोंधीजी, स० तमनाथ सुमन, पृ० ६०३ एवं ५८६) | इसका मतलब इतना ही है कि इस प्रकार के विचार मनुष्य को मृत्यु और दुख की ऑधघी मे स्थिर रहने का आधार वनते है। क्यो कि मनुष्य का सबसे बड़ा भय मृत्यु है। और यह अटल भय भी है। कबीर इस अटल मृत्यु के भय को अपने काव्य द्वारा कुछ कम भर कर देना चाहते है। 9 मैं गुलाम मोहि बेचि गुलाई, तन मन घन मेरा राम जी के ताई। 5 २ सतौ भाई आई ग्यान की आधी रे। भ्रम की टाटी सकत् उड़ार्णी माया रही न दौंधी । हित चित की द्वै धूनी गिरानी, मोह बर्ठीज् तूया । त्िस्ता छानि परी घर ऊपरि, कुबुधि का भाडा फू । जोग जुगति करि सर्ती रादी, विरचू चुवे न पाणी । कूड कपट मावा का निकस्या हरि की गति जब जाणी । आधी पीछै जी जल बूठा, प्रेम हरी जन भीना | कहै कबीर भान के प्रगटे, उदित भया तप पीना |

कबीर की भाषा कबीर की विचारधारा को खोज लेना आसान है। उनकी भाषा के बाह्य रूप के व्याकरणिक अध्ययन मे भी विशेष कठिनाई नही है। कठिनाई है कबीर की भाषा के अतर-पक्ष का समझने मे। भाषा का वह कौन सा चमत्कार है जब कबीर अन्य कवियो से भिन्न पड़ते है। सवेदना का इतना गहरा ताना-बाना तानते है कि सब उसी मे समा जाता है। इनकी भाषा सस्कृत नही है। विचारों मे उपनिषद् के पास रहकर भी भाषा मे उपनिषद् भाषा का गठन नहीं है। पुराणो जैसा विस्तार भी नही है। सस्कृत सूत्र प्रधान भाषा है। इसके श्लोक सूत्र से अधिक विस्तार वाले है। कितु इनमे भी शास्त्री सगठन है। हिंदी की प्रकृति भिन्न है। यह भाषा सधि, समास और विभक्ति से मुक्तप्राय है। सस्कृत शब्द प्रयोग के समय पद कहे जाते है। ये पद प्रकृति प्रत्यय युक्त होते है। इनमे मुख्यत दो प्रत्यय लगते है- क्रिया मे तिड् और शेष मे सुप् - आदि। वहाँ पद की परिभाषा है- सुप्तिहत पदम्। हिंदी दोहो मे सगठन एवं विशेष लाघवता है। बिहारी अपनी लाघवता के लिये प्रसिद्ध है। उनके दोहे नावक के तीर जैसे है। देखन मे छोटो लगे, घाव करै गभीर। के कितु बिहारी के दोहो मे खुलेपन का अभाव है। ये सदर्भ मूलक है। इसी से आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इन्हे रीति सिद्ध कहा है। जिसने सपूर्ण आचार्य एवं काव्य परपरा को दोहो मे रखने की क्षमता प्राप्त कर ली है। इसी से बिहारी के दोहो का सौदर्य देर मे खुलता है। अर्थ खुलते-खुलते प्रभान्विति बासी पड़ने लगती है। इससे कुछ कम दूसरो के दोहो की स्थिति है। इसीलिये दोहा लिखना सबके लिये सभव भी नही है। कितु कबीर के दोहे, पद या रमैनी हिदी की इस परपरा से भिन्न है। कबीर की भाषा अत्यत खुली है। उद्दाम है। आचार्य शुक्ल ने ठीक ही इस भाषा को सधुक्कड़ी कहा था। कितु उनकी 'सधुक्कड़ी अर्थात् राजस्थानी पजाबी मिली खड़ी बोली है।' आचार्य शुक्ल इनकी भाषा को पचमेल भी कहते है। आचार्य शुक्ठ कबीर की प्रतिभा को स्वीकार करते है। कितु निर्गुण पथ के बारे मे उन्हे शिकायत है-"इस पथ का प्रभाव शिष्ट और शिक्षित जनता पर नही पड़ा, क्योकि उसके लिये न तो इस पथ मे कोई नयी बात थी, न नया आकर्षण। संस्कृत बुद्धि, सस्कृत हृदय और सस्कृत वाणी का विकास इस शाखा मे नही पाया १ है जो शिक्षित समाज को अपनी ओर आकर्षित करता !' (हिंदी सा० इ० पृ०: ७१)। आचार्य शुक्ठ ने ठीक समझा। पूरा निर्गुण काव्य सस्कृत पद्धति से मुक्त है। सस्वृत से उसे परहेज है। सस्कृत ही रहती तो हिंदी की जरूरत क्या है ? हिंदी सस्कृत का भार्षांतरण नही है। सतो की बाते तो है परपरा वाली, कितु भाषा और अभिव्यक्ति कौशल सर्वथा नया है। इन्हे सस्कृत की बिल्कुल परवाह नही है। ये अनागारिक एवं घर जलानेवाले लोग है। जलाने की क्रिया क्या रीतिबद्ध या रीतिसिद्ध हो सकती है? खुली आग धधक रही है। सारे बधन, आडबर और अधविश्वास जले। मै, तुम एव वह भी जले। तीनो सर्वनाम जले। रह जाय केवल अनाम। रूप-नाम सहित केवल अनुभूति तत्त्व।

हिदी तो सस्कृत को छोड़कर खड़ी ही हुई। वेद छोड़ा। शास्त्र छोड़ा। छोक से जुड़ी। "(१२९
)

१३० कवीर समग्र सामान्यजन की अभिव्यक्ति बनी। सस्कृत ही बनना, बनाना था तो इसके लिये संस्कृत भाषा तो थी ही। और संस्कृत कभी भी न व्यर्थ हुई है, न कमजोर। कितु हिंदी भाषा के विकास को दूसरे ढग से देखना चाहिए। नाना पुराण निगमागम वाले तुलसी ने भी क्वचिदन्यतो5पि कहा। यह क्वचिदन्यतो5पि अत्यत महत्वपूर्ण है। क्योकि क्वचिदन्यत् ? इसलिये कि सस्कृत पूर्ठ नहीं पड़ती है। इसमे लोक को जोड़ा गया। तुलसी का मानस सस्कृत और लोक के समन्वय पर खड़ा है। इसीलिये वह शिष्ट और सामान्य सबको प्रिय हैं। कितु कवीर की भाषा पूर्णत. सस्कृत मुक्त है। शुक्ल जी ने एक अजीब प्रश्न उठा दिया है। उनके कथन का भावार्थ तो यह है कि तुलसी संस्कृत (शिष्ट) जन के कवि है और सत कवीरादि सामान्य जन के कवि है। ऐसी बात है नहीं। कौन ऐसा शिष्ट है जिसे कवीर के दो-एक निर्गुण याद न हो। दो-चार दोहे न सुनाए। प्रत्येक मन दुहरा है। वह सामान्य से शिष्ट बनता है। कितु शिष्ट बने रहने पर भी सामान्य मन विल्कुल छूट नही पाता है। कहा जा सकता है कि पिछड़ो मे कबीर का प्रचार अधिक है। इसका कारण कबीर का पिछड़ा होना नही है। पिछड़ा को पिछड़ा गाता हो यह धारणा नासमझी और छिछली है। गरीब जनता के साथ अन्याय है। बड़े पडित निर्गुणमार्गी हो गये है। जाति का भी कोई वधन नही था। गोरख, ज्ञानेश्वर दोनो ही द्राह्मण और विद्वान थे। ज्ञानेश्वर तो वेद विरोधी भी नहीं थे। कितु थे निर्गुणमार्गी। यही वात अनेक सतो के वारे में कही जा सकती है। समस्या सस्कृत असस्कृत की नहीं हैं। समस्या बधन ओर मृक्ति का। कबीर का सपूर्ण अरूप है। वे किसी भी बाह्य अनुशामन को मानने के लिये तेयार नहीं है। अतर्गुहा मे बैठकर बोलते है। उस मन से बोलते है जो है ही नही। अमनी हो सकता है। एक समाधि भाषा थी कृष्ण की) दूसरी समाधि भाषा है कबीर की। मुक्त समाधि। मन मस्त हुआ तद क्या बोले ? कबीर मुक्त मन से बोलते हे। कबीर की भाषा उपदेश नही देती है। केवढ गाती है। एक विदशाट् अनुभव का थोड़ा सा प्रकाश करती है। इससे अगर उपदेश या चेतावनी निकले तो कवीर को दुख नहीं होगा। वे जैसे अपने को समझाते है वैसे ही जगत को समझाते हैं। कबीर दो हैं- एक वे जद गाते है। बोलते है। साधुओ की गति मे कुछ न कुछ कहते है। किंतु इसके पूर्व के कबीर भीतर ही भीतर अनुभव करते है। मनोछोक की यात्रा पर निकले हैं। यहाँ संसार नही है। मन नहीं है। सासारिक मन छूट गया है। इसकी अनुभूति का बाँध टूटता है। कुछ अनुभूतियाँ छठक कर बाहर आती है। जब त्तक शरीर है कुछ न कुछ तो बोलना-सुनना होगा ही। कबीर की भाषा में पुस्तकी ज्ञान या रटत, घोषत एवं पठत नही है। सारा ज्ञान अल्यत सुपाच्य स्थिति मे है। विराट अनुभूति के कुछ कण है। उनका सबंध अत्यत सूक्ष्म से है। वे किसी भो स्थूल में बंधे नहों ह। स्वय लोकपरक यात्रा की है। दूसरो के शास्त्र लोक सस्कारो को तोड़ रहे है। झकझोर कर नया दीज वो रहे है। पौध ठगा रहे है। कौन सी पोध? कौन बताए ? कौन बोले? बोलने से तो तत्त्व नष्ट हो जाता है (वोलत

बोलत तत्व नसाई)। कितु बिना बोले रहा भी नही जाता। कबीर की रचनाओ के तीन भाग है- साखी, सवद और रमैनी। तीनो की तीन प्रकृति है। साखी दोहो मे है। साखी का अर्थ है साक्षी। १. परमात्मा के दर्शन की साखी। ये 'साखियाँ बताती है कि हमे परमात्मा का दर्शन हुआ है। २ इन साखियो द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार हो सकता है। ३ परमात्मा को साक्षी बनाकर साधना पथ की बातें कहता हूँ। सबद मे साखी से गहरी अनुभूति है। यह साधक के शब्द हैं। सिद्धावस्था के शब्द है। सबदी साखी की अपेद्धा हि अतरोन्मुख है। कवीर साहब की मूल शक्ति एव चेतना का आधार है सबद। सबद की हि और खुलापन का कोई मुकाबला नही। सबद की भाषा के अनेक आवर्त्त है। बैंधने की भा वह बार-बार दूटती है। हर आवर्त पर ताजी हो जाती है। गहरे जाती है। मन और मन उनकी >3>>नमकक 3 ०>-२०५-००-१००.. 2.

कबीर की भाषा १३१ के गहर मे उतरती है। पाठक को उतारती है। हर पद विशिष्ट आवर्त लिये है। रस निर्झर बहानेवाले अनेक काव्य है। उनमे गहराई सरलता और सीधापन होता है। कितु आवर्त पर तो एकमात्र कबीर का अधिकार है। रमैनी सीधे ढग से कहना चाहती है। कथा है न। कितु सीधा कथन सत स्वभाव के विरुद्ध है। शुद्ध अनुभूतिषकक कथन कभी सीधा नहीं हो सकता है। इसलिये रमैनी मे न कथा की पूर्ण स्थूछता है, न बिल्कुल सीधापन। यह कथाबधन और स्वच्छदता के बीच स्थित है। ग्र साखी मे अनुभव की अभिव्यक्ति मे उपदेश की सादगी दीखती है। यद्यपि प्रतीको की भरमार हैचौंसठि दीवा जोइ करे, चौदह चंदा मांहि। तिहि घरि किसको चांनिणौ जिहि घरि गोब्यंद नांहि। यह उपदेशात्मक दोहा है। अर्थाभिव्यक्ति कठिन है। चौसठि दीवा और चौदर्ह चदा का अर्थ लगाना कठिन है। कितु माहि अर्थात् अत करण मे ६४ दीपक और १४ चद्रमा के प्रकाश की कल्पना का अर्थ ढगने पर एक गहरा बौद्धिक बोध देता है। मध्ये से व्युत्पन्न माहि में अत करण की पूरी अभिव्यक्ति है। पूरा दोहा तदूभव शब्दों एव सप्तमी कारक चिन्हों से जगमगा उठा है- चौसठि, माहि, घरि मे सप्तमी 'ए' (गृहे) 'इ'' घरि बना बैठा है। दीवा के स्थान पर दीपक, चदा की जगह चद्रमा, चाणिणो के स्थान पर चाँदनी या चद्रिका अर्थ देते कितु काव्यरस नही ला पाते। सप्तमी द्वारा भीतर प्रवेश की ध्वनि बनती है। गोव्यद भी इद्रियो से सम्बद्ध है। गोविद का पर्याय यहाँ के लिये उपयुक्त न होता। सत कबीर मे विम्ब ग्रहण कराने की अद्भुत क्षमता हैसतगुर मारया बाण भरि धरि करि सूधी मूदि। बाण से मारना ठीक है। वह बाण भी सीधी मुट्ठी से मारा गया था। इससे दावाग्नि फूटी और विषयो का वन जलने लगा। बाण क्या लगा >आग लग गयी। हथियार भेदन तो ठीक है। कितु हथियार भेदन से चचल मारा नही काया जाता है। ऐसे मार काट साथ चलते है। कितु हधियार का काम काटना तब मारना है। आधुनिक हथियार दूर तक मार करते है। कितु कबीर का हथियार तो भीतर मे भिदा है। अत करण को विद्ध किया है। अच्छा इससे मन की चचलता नष्ट होती।समाप्त होती। हुआ भीखही। कितु मारि से वह बात बनी नहीं। यह 'इ! भी सकट पैदा करता है। कभी तो वह सप्तमी 'ए' का रूप लेता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है। कितु 'हथियारि' मे आकारात पुलिग एक वंचन का मागधी प्राकृत रूप 'ए' का अवशेष है। 'मारि' मे भी उसी का प्रभाव है। प्राकृतो मे अकारात कर्त्ता एकवचन ने दूसरे कारकों को भी प्रभावित किया है। अनुप्रास तो कबीर पा भाषा के स्वस्फूर्त अग है। शायद ही कोई छद हो जिसमे अनुप्रास न हो। अनुप्रास ध्वनि संगीत की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते है। कवितार्थ मे वीणा की मधुरता आ जाती है। कबीर के अनुप्रास बड़े नही है। प्राय दो वर्णो के है। अनुप्रास उद्देश्यमूलक है। न कि केवल शोभाधायक। उदाहरण के लिये- काबा और काशी, राम और रहीम, मोठ और मैदा ये केवछ अनुप्रास नही है। ये अनुप्रास विचारों की सगति बैठाते है। सर्वधर्ममाव की भावना उल्लसित करते है। विषयो के मोटे आटे को और

पीस कर मैदा किया। तभी भगवत्तत्त्व का आनद लिया जा सकता है। मैदा यद्यपि फारसी बताया जाता है। कितु इसमे मर्दन की ध्वनि स्पष्ट है। इसीलिये सत कहते है मोठ चून मैदा भया। मोटा आटा रगड़ कर बिल्कुल मैदा हो गया। चून (चूर्ण) तो वह पहले ही हो गया था। अब बिल्कूल मैदा हो गया। विषयो के सपूर्ण नाश

१३२ कबीर समग्र के लिये इतना अच्छा प्रतीक शायद मिले |इसमे ध्वनि के साथ ही क्रिया चित्र भी है। व्यक्तित्व युक्त विषयो को भक्त कबीर ने पैर से मसढ़ू कर मैदा बना दिया। नष्ट विषय का भोग बधन नही बनता। 'बैठि कवीरा जीम' में ध्वनि है कि कबीर की पा समाप्त हो गयी। विषयो का इन्द्, भागदौड़ समाप्त है। अब बैठकर आनद पान करना है। जीम में शाति एवं पूर्णता की ध्वनि है। खाने या भोजन करने मे जीम जैसी पूर्णता एवं शाति नहीं है। ‘‘बेठि’’ में इ पूर्वकालिक क्रिया चिन्ह है। बैठकर जीम | तुको का सयोजन भी प्रभावशाली है। साथि और हाथि दो तुक है- लोक वेद के साथि। दीपक दीया हाथि। यहाँ ध्वनि रस भी है। स ह हो जाता है। पहली स ध्वनि ही जैसे ह की ओर बढ़ती दिखाई देती है। साथ और हाथ का मेल है। हाथ साथ का पर्याय भी है। साथ वह जो हाथ बटाएं। साथ के लोग ही हाथ होते हैं। हाथ वह है जो साथ रहे। एक और तुक है अघटूट और हटूट। प्राकृत का अवशेष लगता है। प्राकृत द्वित्व व्यजनो एव मूर्धन्यता के लिये प्रसिद्ध रही है। यहाँ दोनो है। कितु पूरा दोहा और महत्त्वपूर्ण हैदीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट। पूरा किया बिसहुणां बहुरि न आऊं हटूटद। प्रथम पक्ति में दिव्य अनुप्रास का चमत्कार है- तीन द हैं। इनमे दो 'दी' है। दई का अर्थ दी भी मन मे है। दीया क्रिया है। सज्ञा मान नही सकते | कितु मन उधर भी जाता है। ऐसे मे तेल और दिये का वर्गगत अनुप्रास भी है। तेल, दिया एव वाती का सयोग चित्र भी बनता है। इस बत्ती को जलाया नहीं गया है। फिर भी वह जल रहा है। अघट्ट इसका प्रमाण है। जलता नही तो अघटूट शब्द देने की जरूरत नही थी। जो सदा जलकर भी घटता नहीं है। स्नेह बत्ती। न कि जीवन बत्ती। अघटूट की बत्ती जलकर भी गुप्त है। अप्रगट रोशनी। अघट्ट मेघ« महाप्राण है। यह घ ह होता है। क्योकि प्रत्येक महाप्राण मे ह ध्वनि है। हटूट अधट्ट से बनता नही | कितु 'बहुरि न आऊँ मे अघटूट कर्म पूर्णता का अर्थ तो है ही। सत कबीर की असली शक्ति शब्द सयोजन मे नहीं है। उनका सब स्फूर्त है। परावाणी का चमत्कार है। नदी की तल्स्पर्शी गहराई का सहज प्रवाह है। इसे स्फोट कहिए या विस्फोट। इसीलिये कबीर की भाषा अधिक अर्थ देती है। कछाकार की सजावट मे अतिरिक्त सोचनेसमझने का अवसर कम होता है। कितु इन अनगढ़ कथनो की शक्ति अधिक है। शब्द पर कबीर का अधिकार देखते बनता है। ये शब्द शास्त्री हैं। शास्त्र के बाहर के है। कितु शास्त्री शब्द भी शास्त्र बनकर नही सामान्य बनकर आये है। इसीलिये विधि अर्थ उत्पन्न करते है- शास्त्री भी। सामान्य मनोवैज्ञानिक और अत-साधना भी। एक ही शब्द की कई आवृत्ति का नाद सगीत चित्रवृत्तियो को उक्षिप्त करता हैमैं मे में जब लग मैं कीन्हां। तब लग में करता नहीं चींहां। ् ० ५ अब का उरूँ उर इर्रहे सर्मान। जब में मोर तोर पहिचान। जब लग मोर तोर करि लीन्हा। भे मै जनमि जनमि दुख दीनहां। 4 >् # - बोलनों का कहिये रे भाई। बोलत बोलत तत्त नसाई।

कबीर की भाषा १३३ डोलत बोलत बढ़े बिकार | बिन बोल्यां क्यूं होइ विधारा॥ संत मिले कछु रहिये कहिये। मिले असंत मुष्टि करि रहिए। ग्यांनी सूं बोल्यां हितकारी। मूरिख सूं बोल्यां ष्प मारी । इन पदो मे शब्दों की अनुवृत्ति को देखिए। एक ही पक्ति मे मै पॉच बार आया है। बारबार के इस मै प्रयोग मे अहम् का स्फोट होता है। अहम् का घटियापन व्यक्त होता है। मेरा ही 'मै' मुझे धोखा दे रहा। एक घटिया के पीछे दौड़ता रहा। इसके कारण मै कर्त्ता को पहचान नहीं सका। 'करता' कर्त्ता सज्ञा भी है। क्रिया भी है। कर्त्ता अर्थात् करनेवाला ईश्वर। आत्मा, परमात्मा। नाशवान् देह नहीं। करता अर्थात् जो करने योग्य कर्म था उसे नहीं कर सका। करनेवाले तत्त्व से पहचान ही नही हुई। कीन्हा और चीन्हा मे तुक तो है ही। क का च होना भी भाषा सिद्ध है। कीन्हा और चीन्हा दोनो एक ही है। पहचान से कर्म और कर्म से पहचान की प्रक्रिया है। कवि इसी पहचान प्रक्रिया को आगे बढ़ाता है- तीन बार डर शब्दों के प्रयोग मे बताया कि मम त्त्वम् के तत्त्व को पहचान गया हूँ। इस कारण सभी प्रकार के डर समाप्त हो गये। अब इरने की कोई बात नही है। ज्ञान हो जाने पर डर तो डरकर डर मे ही समा गया। ढीन हो गया। डर की चेतना असत्य की चेतना है। अतः असत्य डर जहाँ से पैदा हुआ था वही विढीन हो गया। इसका कारण मोर (मम) तोर (त्वम) की पहिचान है। कवि तीन डर के बाद मोर तोर का अनुप्रास और भें भै, आगमनिगम, मनवा मन माहि समाना का अनुप्रास ध्वनि पैदा करता है। इतने अनुप्रास व्यर्थ और उबाऊ हो जाते। कितु ये अर्थगर्भित है। प्रायः अलकारो का लोभ अर्थ की उपेक्षा कर देता है। कबीर के अलकार अर्थ के लिये आते है। मात्र भीतर का अनाहत शब्द नही है। वह शब्द और अर्थ का संपृकत रूप है। परा और पश्यंती वाणी मे शब्द और अर्थ तदरूप रहते है। यह एकरूपता बाहर आकर भी एक दूसरे से युगनद्ध रहती है। शब्द और अर्थ की एकता ही ब्रह्मतत्त्व की अनुभूति है। बोध है। यह बोध कहा नही जा सकता। क्योकि यह तो पराबोध है। इसे बोलने लगिए तो यह तत्त्वनष्ट हो जाता है। इस बात को कहने के लिये कवि ने एक पद मे नौबार बोलना शब्द की आवृत्ति की है। एक ही शब्द की इतनी आवृत्ति का कारण है जबोल को बोलकर समझाने की कोशिश। जिसे कहा नहीं जा सकता उसे कहने का प्रयास। कितु वह कहा नहीं गया। केवल इतनी ही सूचना हो पायी कि तत्त्व नष्ट हो गया। इतना ही नहीं समझाने की कोशिश जितनी अधिक होगी तत्त्व नष्ट हो जायगा। ब्रह्मतत्त्व समझाने, बोलने से नष्ट हो जाता है। नौबार बोलना के अतिरिक्त संत मिल्‍ठै कछु 'कहिये कहिये'' | यह कहिये भी बोलना ही है। बोलना और कहना मे भेद है। कितु कबीर दोनो का प्रयोग एक ही अर्थ मे करते है। सत से कहते है और ज्ञानी से बोलते है। संत और ज्ञानी एक ही है। मूर्ख और असत में भेद है। असत के सामने मौन रहनाचाहिए। मुष्टि « मौन। मूर्ख को कहना व्यर्थ है। झख मारने जैसा फालतू है। झख मारना मुहावरे का अर्थ है व्यर्थ समय बर्बाद करना | कबीर के प्रतीक कभी-कभी अत्यत सरल होते है। इस सरहृता

का कारण उन प्रतीको की प्रसिद्धि है। घट शरीर का प्रसिद्ध प्रतीक है। इस में आधा जोड़कर आधा घट बनाया। किंतु इसका अर्थ आधा शरीर नही है। अर्थ है अर्ध ज्ञान। इसे ही लोक मे अध जल गगरी छलकत जाय कहते है। कबीर ने इसे ही बिना जल जोड़े कर ''आधा घट डोहै' कर दिया है। किंतु इस सक्षेप से भी पूरा विम्ब उतर आया है। ''भरा'' [पूर्ण ज्ञान है। भरता का अर्थ है पूर्ण ज्ञान। व्यव्हार मे आधा का विलोम भरा या पूर्ण नहीं है। किंतु यहाँ यही विलोम चलेगा। आधा से

१३४ कबीर समग्र अनेक सप्रदायो, साधनाओ एव ज्ञानियो की ओर सकेत है। यह बात खाली कहने से नही बन सकती। इस प्रकार इसमे मुहावरा, सक्षिप्तता और कबीरदास के भाषा प्रयोग की विशिष्ता तीनो का मेल है। कबीर अनेक स्थलों पर परपरागत प्रतीको का ही प्रयोग करते है। उनके प्रतीक या उपमान प्राय सरल और परिचित है। इसके कारण उन्हे सक्षेप मे गभीर एवं सूक्ष्म की ओर सकेत करने का आधार मिल जाता है। प्रतीक ही काफी थे। उसमे भी सक्षिप्त और सकेत। यह सुविधा वे उलटवॉसियो मे नही देते। उलटवॉसी के प्रतीक परिचित होकर भी बदलते रहते है। इससे कठिनाई हो जाती है। कभी-कभी अत्यत कठिन। अगर नया प्रतीक लिया तो और भी कठिन। वहाँ अनुमान के लिये पूरी गुजाइश हो जाती है। उदाहरण के लियेबैल वियाई गाह भई दांज्। बछरा दूच्त तीन्यूँ सांध। मकड़ी घरि माषी छछिह्ारी। मांस पसारि चीन्ह रखवारी। मूसा खेवट नाव बिलड्या। मीडक सोने सांप पहरइया। यह उल्टवॉसी है। उल्टवॉसी मे शब्द देखने मे उल्टे ढगते है। यह एक प्रकार का शब्द चमत्कार है। बैल का ब्याना और गाय का बॉझ होना शब्द चमत्कार है। सचमुच ही कबीर ऐसा मानते है । इसमे पहले है. 'चचल पुरुष विचषन नारी ।'' यह भी उल्टवॉसी है। चचलता स्त्री धर्म है। पुरुष तो स्थिर रहता है। यह स्त्री आत्मा है। मन पुरुष है। मन तो चचल कहा ही गया है। बैठ अविवेक और माया बुद्धि है। लोक मे भी बैल अज्ञानी को कहते है। गाय विवेक, बुद्धि या आत्मा है। बछड़ा इद्रियाँ है। तीनो सॉझ तीन काल है। ऐसे ही अन्यो के अर्थ होगे। इन अर्थी मे विरुद्धता की पूरी गुजाइश है। ये रूढ़ प्रतीक नही है। अत बैल, गाय या बछड़े कुछ भी अर्थ निकाला जाता है। रूढ़ प्रतीको के अभाव मे अर्थ अत्यत कठिन हो जाते है। कबीर अपनी उल्टवॉसियो के लिये प्रसिद्ध है। आशा की जाती है कि उन्होने उल्टवॉसियो का प्रयोग अत्यत सावधानी से किया होगा। कितु इसके विपरीत भी हो सकता है। उछटवॉसियों स्वसवेद्य न होकर परसवेद्य है। इनकी संवेदना देर से और किसी के समझाने पर समझ मे आती है। इसलिये उल्टवॉसियों चमत्कारिक आनद देती है। चमत्कार बौद्धिक होता है। इस दृष्टि से सतो को बौद्धिक रस का कवि कहा जा सकता है। उल्टवॉसियो का प्रयोग परपरित चेतना के विरुद्ध है। मायाबद्ध जीवो की नीद पर गहरा आक्रमण करना ही इनका उद्देश्य है। माया परपराबद्ध मन सामान्य कथनो से बदलने का नहीं। उल्खॉसियों की भाषा ने पिछड़ो मे एक प्रकार का आत्मविश्वास पैदा किया। एक तो वे देर तक इसके अर्थ की खोज करते रहे। खोजा तो उस पर चमत्कृत रहे। चमत्कृत हुए तो फिर काफी देर तक उस चमत्कार ने मन को घेरा। बुद्धि उसी मे उलझी रही। क्या खूब या वाह, वाह की चेतना। दूसरी बात यह कि उनके पास कुछ विशिष्ट ढग का ज्ञानबोध है जो औरो के पास नहीं हैं। यह ज्ञानबोध एक अलौकिक लोक एवं अपरपार ब्रह्म तत्त्व से जोड़ता। उलटवॉसियो को पढ़ना, समझना और उनके समाज अर्थाना एक वीरतापूर्ण बौद्धिक प्रक्रिया है। * उल्टवॉसियो मे भक्ति की

नम्रता की अपेक्षा ज्ञान की अहचेतना दीखती है। ज्ञानी ससार से ऊपर है। ससार तो माया मे डूब रहा है। इसीसे इसने स्तरी या बौद्धिक मन को भी प्रभावित किया। उलखॉसियो के विरोधाभास से चमत्कार पैदा होता है। इन्ही चमत्कारों को देखकर * अनेक आलोचको ने कबीर आदि सतो को काव्य जगत से बाहर रखना चाहा था। कितु अपनी फियो, विरोधाभास, अनुप्रास, यमक, प्रासगिक सरलता, अर्थगर्भित शब्दप्रयोगो, बिम्बो आदि - » कारण इन्हे काव्य से अलग नही किया जा सका। एक उदाहरण

कबीर की भाषा १३५ दे दै दीपक घरि घरि जोया, मंदिर सदा अंधारा। घर घेहर सब आप सवारथ, बाहरि कीया पसारा। उजाले के लिये एक दीपक ही काफी है। कितु दो दीपक जलाने पर भी अधघेरा है। यो भी कि दो दीपक के कारण अँधेरा और बढ़ गया। दीपक ज्ञान है। ज्ञान एक है। एक का है। अब यदि दो और दुविधा वाला ज्ञान हो गया तो यह कौन सा ज्ञान होगा ? यह ज्ञान तो अज्ञानाधकार ही बढ़ाएगा। दूसरी पक्ति मे घेहर घेहर देहर) जान पड़ता है। घर और देहर पर सभी स्वार्थी है। फिर भी बाहर अनेक प्रकार का दिखावा करते है। सबध बनाते है। असल मे वे सारे दिखावे व्यर्थ है। घेहर मे दुहरे घर की ध्वनि है। गृहे गृहे से घेहर बना जान पड़ता है। जैसे गृह से घर और हर (खड्हर, पीहर, नेहर) दोनो बनते है। घरि घरि मे सप्तमी 'इ'' घर के भीतरी भाग का सूचक है। 'जोया' जलाना नही। ज्योतित करना है। ज्योतित किया मे जलाना की अपेक्षा प्रकाश प्रभावशाली और सीधा है। मदिर का अर्थ है देव मदिर। हृदय, जहा चैतन्य आत्मा का निवास है। वहाँ अधेरा रहने से और सारे प्रकाश व्यर्थ है। दवैतववाद पर व्यग्य का कितना अच्छा तरीका है। कबीर के शब्दो मे शास्त्री अर्थ गभीर भले न ढगे। कितु इन्हें रहस्यमूलक अर्थगाभीर्य कहना चाहिए। यह योग साधना के द्वारा खुलनेवाले मानस कपाट से आया है। कभी-कभी उल्टवॉसियोँ लोकतत्त्व लिये होती हैदेस मालवा गहर गंभीर। डग डग रोटी पग पग नीर। _ लगता है यह कोई लोकोक्ति हो। कितु है यह प्रतीक। इसी पक्ति के आधार पर लोगी. ने कबीर का सबध मालवा से भी जोड़ा है। मालवा बिल्कुल ही अप्रचलित प्रतीक है। यह बागड़ या मरुस्थल का उल्टा है। मालवा माल वाला है। यहाँ योग क्षेम की पूरी व्यवस्था है। यह प्रभु का क्षेत्र है। इसलिये कभी सूखता नहीं। मालवा के तत्त्वको साधक ही जानता है। कुछ पद तो पूर्णत लोक सपृक्त लगते हैराम चरन मनि भाये रे। " अस ढरि जह रांड के करहा, प्रेम प्रीति लयौ लाये रे। आंब चदी अंबली रे अंबली, बबूर चठी नगबेली रे। दै धुर चढि गयी रांड को करहा, मनह पाठ की सैली रे। कंकर कई पातालि पानियां, सोनें बूंद बिकाई रे। बजर परथौ इहि मथुरा नगरी, कांन्ह पियासा जाई रे। एक दहिड़िया दही जमायौ, दुसरी परि गई सारी रे। न्यूंति जिबाऊं अपनों करहा, छार मुनस की दादी रे। इहि बंनि बाजै मदन भेरि रे, उहि बंनि बाजै तूरा रे। इहि बनि खेले राही रुकमनि, उहि बंनि कान्ह अहीरा रे। आसि पासि तुरसी कौ बिरवा, मांहि द्वारिका गांऊं रे। तहां मेरी ठाकुर राम राह है, भगत कबीरा नांऊं रे। एक दो पक्ति को छोड़ पूरा पद लोक तत्त्व से जुड़ा है। कितु इसमे लोकसिधाई नही, उल्टवासी की गहनता और अस्पष्टता है। सुनने मे जितना ही सुखद है अर्थ उतना ही कठिन। सारे अप्रस्तुत नये है। मायामय जगत और मायामुक्त स्थिति की अभिव्यक्ति के लिये इतना

१३६ कवीर समग्र बधान बॉधा गया है। मथुरा नगर अर्थात् माया के ससार मे किसी की तृप्ति नहीं होती है। इस नगर का नाश हो। वज्र पड़ना नाश होने के अर्थ मे मुहावरा है। माया नगर मे मदन का बाजा बजता है। माया रहित वन मे ज्ञान का तूर्य निनादित होता है। इस नगर मे राधा रुक्मिणी आदि माया नर्तकियाँ है। कृष्ण यहॉ नही है। वे मायारहित क्षेत्र मे रमण करते है। द्वारका में तुलसी वन है। तुलसी विटप है तो छोटा विरवा। किंतु ससार के बड़े-बड़े पेड़ो से बड़ा, महत्त्वपूर्ण और पवित्र है। यहाँ माया नही आती। आसि पासि मे आर्श्वे पाश्वे के ए का इ है। तुलसी का तुरसी और भी ग्रामीण हो गया है। राधिका का राही यात्री का सकेत भी है। कान्ह का विशेषण अहीरा कृष्ण के स्वच्छद स्वरूप की ओर सकेत है। अहीर जो गो, इद्रियो का स्वामी है। साहित्य के और भागो मे राधा, रुक्मिणी एवं कृष्ण साथ खेलते है। किंतु यहाँ प्रकृति और पुरुष का खेल अठग-अठग होता है। कबीर शायद उस जागतिक तथ्य की ओर भी सकेत करते है । जब कृष्ण को जितना आनद गोकुल मे मिला था।उतना मथुरा मे नही। भक्ति परपरा मे भी वृदावन के बाद द्वारका का ही स्थान है। कबीर की भाषा अपनी है। भाषा के क्षेत्र मे वे अकेले है। ऊपर का उद्धरण लोकभाषा का होकर भी उल्टवॉसी के कारण लोकोक्ति से दूर चला गया। इसी प्रकार अर्ध लोक साहित्य के प्रयोग भी देखे जा सकते हैगालिब नगर गांव बसाया, हांम कांम अहंकारी। घालि रसरिया जब जम खैचे, तब का पति रहै तुम्हारी। यह अर्ध छोकतत्व वाला पदाश है। किंतु सीधा है। इसमे कोई उल्टवॉसी नही है। विम्ब भी सीधा बनता है। काम के अनुप्राश मे अहम् का हाम वना दिया। नगर और गाँव दोनों गालिव अर्थात् रोब का बसाया। रोव गालिब किया। किंतु जैसे पशु की रस्सी कसाई खीचता है वैसे ही यम खीचेगा। यहा सपन्न और शक्तिशाली व्यक्तियो की दुर्दशशा और विपन्नावस्था का सुदर चित्रण हुआ है। अहम् और काम के खूँटे से बँधा अहकारी पशु जाना नही चाहतः। किंतु उसकी रस्सी अर्थात् इच्छाओ का बधन यम के हाथ मे है। वह उसे खीच रहा है। लोकतत्त्व को उजागर करते हुए कबीर कहते हैका काजर सिंदूर के दीये। सोलह सिंगार कह भयौ रे अंजन मंजन करे ठगौरी। का पि मरे निगौड़ी बोरी। इसमें लोकतत्त्व पूरा है, किंतु यह लोकतत्त्व से भिन्न है। लोक वेद के विरोधी कबीर अपनी भाषा को भी इनरी भिन्न बनाते है। काजर और सिदूर के बाद सोलह श्रुगार, फिर अजन लगाना (मजन)। मजन का अर्थ दत मजन भी हो सकता है। ये सारे श्रगार भरीर के है। 'पचि मरे'' अत्यत परिश्रम करना है। कवीर कहते है कि बहुत परिश्रम कर श्रृगार कर देह सजाने से क्या फायदा ? शरीर की सजावट का दृश्य विरोधमूलक है। क्योंकि कबीर शरीर की सुज्जा को व्यर्थ मानते है। शरीर सज्जा का पूरा चित्र देकर उसकी व्यर्थता व्यक्त करते है। यह चित्र एक चचला स्त्री का है। भाषा और उससे उत्पन्न चित्र गृहस्थ नारी का चित्र न बनाकर एक चचला एवं वासनामूलक शरीर व्यापारिणी स्त्री का चित्र बनाता है। इसमे श्रगार की सरसता नही, वासना की

कुरूपता है। यह रूप ठगौरी है। माया है। कबीर इस छल रूप से सबको सावधान भी करना चाहते है। कवीर ग्रामीण उपमानो द्वारा भी अपनी बात कहते हैदिन प्रति पसू करे हरिहाई। गरे काठ वाकी बांनि न जाई।

दि+ -- कप सिप ३० की की की ऑल मे डी _........-.4३5२८-०-४३+ >अंकिल ६... पेड: पदिलनिकन >> 33 222206000एशओ कल ०288 कबीर की भाषा १३७ यह उपमान उस पशु का है जिसे अधिक दौड़ने से रोकने के लिये गले मे काठ बॉध दिया जाता है। दोड़ते समय चोट लगती हैं। चोट के डर से वह धीरे-धीरे चलता है। इस पशु हरिहाई कहते है। किसान ऐसे जानवरो के गले मे हल, खाट का पावा या कोई लकड़ी हार रूप में लटका देता था। शायद इसीलिये इसे हलहार कहते थे। इसी से हरिहाई बन गया। हलघात भी हो सकता है। यहाँ हरिहाई विषय ३ में और चिपके रहनेवाले व्यक्ति के आया है। इसी प्रकार देवता को प्रसाद चढ़ाने का विरोध करते हुए कहीलप्सी आप संघारे। दर गाढ़ा रा | आरभ के दो शब्द छुचरी लप्सी विशिष्ट भोज्य पदार्थ के प्रतीक है। इनके साथ सघारे जोड़कर उस भोजन को गभीर बना दिया है। सघार तो नाश है। इधर भोजन का संहार उधर आराम की अंतृत्ति। कितना विकराढ विरोधाभास है। 'राम पुकार भीख मॉगना है। भीख की आवाज जोर से लगा रही है। कोई सुन नही रहा है। पहले खड में माया है। दूसरे मे राम। कबीर कहते है कि यह भव्य समारोह का प्रसाद माया है। इसका आत्मतत्त् कोई संबध नहीं है। आतराम तो भूखा है। भीख के लिये दरवाजे पर पुकार रही है। भोग में लिप्त च्यक्ति आम्राम की पुकार भी नही सुन रहा है। इस भोजन का स्वाद कैसा है ? दूसरे पद में कहा है धालगल स्वाद ।' गढग्ल का अर्थ है सड़ता हुआ। नाश की और। गलंगल से अर्थबिम्ब गलना, सड़ना या नाई से नही बन सकता था। गले गल ध्वन्यात्मक शब्द है। जैसे ध्वनि करता हुआ नष्ट हो रहीं है। कबीर ने कामधेनु को भी माया ही माना है। कामंधनु माया अधी है। सबके वर्त्तनो का नाश कर रही हैं। गाय और ग्वाले के माध्यम से माया और साधक के इन्द्र पर प्रकार डाला गया है। पूरी कविता कामधिनु के रूपक पर चलती है। कितु कबीर अक्सर रूपक को कभी पूराकर और कभी बीच में ही छोड़कर दूसरी बात कहने छगगते है। इससे उनके भीतर विचारों की भारी टकराहट का पता चलता है। इसी में शब्दों की बार-बार आवृत्ति होती हैदिन हाथन पांइन बिन कॉननि, दिन जिभ्या गुण गावे। 44 4 २५ 2५ दिनही ताला ताल बजादे, बिन मंदल पटताला) दिनही सबद अनाहद बजे” । ना चोलना जिनां कंचुकी, बिर्नाह संग संग होई। ९ श्वेताश्वतर उपनिषद् में भी यही बात कहीं गयी हैंसर्वेन्द्रिय गुणाभास सर्वेन्द्रिय बिवर्जितमू ।१७ अपाणिपादो जबनो ग्रहीता पश्यत्यचलु: से श्रृणोतिकर्ण: स वेत्तिवेध न तस्यास्ति वेत्ता तमछुरगय पुरुष महान्तम्। १ ३ पद्म पुराण भूमिखड अध्याय ८६ में कहा गया है हस्तपादादिहीनश्च अत्वचः स्पर्शमिवापि'॥ ७४ इसी औपनिषदिक तंथा पौराणिक वर्णन को (तुलसी के समान) कबीर ने भी स्वीकार किया है। कितु कबीर की अपनी शैठी है। वे सीधे अनुवाद नहीं करते। अपने भाषा कथन को न 23

१३८ कबीर समग्र अनोखा ही रूप देते है। कुछ कुछ समस्या भी भिन्न रखते है। यद्यपि वह कोई अलग समस्या नही है। उदाहरण के लिये-बिना ताला का ताल, बिना शब्द का अनाहत आदि सब वही है। किंतु भिन्न प्रस्तुति के कारण भिन्न हो जाते है। पूरा पद जैसे अरूप का सामूहिक कीर्तन वन गया है। जगत के सारे कार्य अरूप रूप के है। इस विचार को कवीर ने वार बार और बहुत ही अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है । कृष्ण भक्तो के यहाँ कन्हैया है। तो कवीर के रमइया है। इस पर पूर्वी प्रभाव है गइया, बिलइया जैसा रमइया। इसी प्रकार वरतिया (केस लूचि लूचि मूये वरतिया) का पूर्वी प्रयोग भी भीड़ का व्यग्य पैदा करता है। कभी झूठा और कभी जूठा की झड़ी लगाकर प्रभावान्विति का विस्तार करते है। जैसेतेरा घूठा मीठा छागा। छूठे के घर चूठा आया, घूठा खांज पकाय। झूठी सहनक, झूठा दह्या झूठे झूठा खाग्ग। झूठा ऊठण चूठा बेठण, झूठी सदै सगाई। इस पूरे पद मे झूठा शब्द १० बार आया है। एक दूसरे पद मे माटी की झड़ी है। जीवत माटी मूवा भी माटी" उसके बाद है जूठामाता जूठी पिता एनि जूझ जूठे फलचित लागे। जूठा आबन जूठा जांना ड अँन जूठा, पानी पुनि जूठः, जूठी देठि पकाया। कवि ने एक पद मे १४ बार जूठे का प्रयोग किया है। इस प्रकार के प्रयोग दूसरे कवियों में है। जैसे तुलसीदास मे, लोभ को लेकर-लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। किंतु कबीर मे यह प्रयेग अधिक और अधिक शब्दो का है। इसकी चर्चा पहले भी आ चुकी है। कबीर के तद्भव शब्द स्वतः रस उत्पन्न करते हैं। ऊपर रमइया और बरतिया है तो आगे तोहरा शब्द का पूर्वीपन स्वत रस उत्पनत करता है-. जो तोहरा के ब्राह्मन कहिए, तो काको कहिए कसाई। काको ने काम विगाड़ दिया। यहा भी पूर्वी प्रयोग होता तो रस और भी गाढ़ा हो जाता। पूर्वी प्रयोग के साथ ही दूसरी भाषाओं के प्रयोग भी कम नही है। भायद पूर्वी से अधिक है। राजस्थानी प्रयोगबांध्यी जमपुरि जासी। यह प्रयोग हासी का तुक मिलाने के लिये है। यह संस्कृत के भविष्य काल गमिष्यति से वना रूप है। इसकी पूर्व पक्ति है- साची प्रीति विषय माया सू, हरि भगतनि सू हासी। यह हासी विषयमाया प्रीति के विरोध मे है। उलट है। माया की प्रीति और भक्तों से हैंसी मे ढोग, अज्ञानता एव मोह की ध्वनि है। गोड का पउवा भी पूर्वी प्रयोग है। कबीर काव्य मे भाषा की विविधता ने अनेक रूप ग्रहण किये है। कही सस्कृत का भ्रम है- व्याकरणा, मरणा, रमणा, भ्रमणा, ऊबरणा आदिपांडे न करिसि बाद बिबादं। या देही दिन सद दन स्वार्द। न चूकि विवाद (शास्त्रार्थ) पडित है इसलिये विवाद विवाद स्वाद स्वाद है। देही आत्मा मुक्त शुद्ध सस्कृत है। पृथ्वीराजरासो मे भी अनुस्वार बहुलता की प्रवृत्ति है। लोग विदु

/////॥/॥/श/7//श70एश/शएशएशएशश/श/शशश ताज कपल कबीर की भाषा
१३९ विसर्ग को ही सस्कृत मान लेते है। मीया से बात करते समय अरबी-फारसी शब्दो का प्रयोग करते हैरोजा करे निवाज गुजारै, कलमें भिस्तिन होई। सत्तरि कावे इक दिल भीतरि जे करि जाने कोई। कभी-कभी 'राम रहिमाना' 'अलरूह मुकामा' औरत मरदा एवं ‘‘काजी माह रमजान’’ जैसे शब्दों मे भी अनुनासिकता देखी जाती है। लोगो ने शब्दों की दृष्टि से कबीर की भाषा को पचमेल कहा है। सही है। कितु एक बात और। षड़भाषा के आदर्श मे भी एक प्रकार की मिली जुली भाषा रहती थी। कबीर मे भी यह है। कितु इसके अतिरिक्त उनके पदों की भाषा अलग-अलग है। कही सीधा तदूभव लोकतत्व युक्त, कही सीधा सादा तदूभव, कही मुल्छा से बात करने मे अरबी-फारसी वाली, कही योग के पारिभाषिक शब्दों द्वारा योग प्रक्रिया को व्यक्त करनेवाली। उलटवॉसियो की चर्चा तो बहुत हो चुकी। निर्गुण-निराकार के कवि को रूपको का बहुत भरोसा होता है। यद्यपि सगुण के कवि तुलसी भी अपने बड़े-बड़े रूपको के लिये प्रसिद्ध है। तुलसी शायद रूपक छोड़ सकते थे। कितु कबीर के लिये तो रूप कुछ आवश्यक है। इन्ही रूपको मे पारिभाषिक शब्द मिल जाते है तो कविता कठिन हो जाती है। कठिन कविता के बावजूद कबीर को कठिन काव्य का प्रेत या चमत्कारवादी क्यो नहीं कहा गया ? इसका कारण है कि कबीर की कठिनाई की गॉठ खुलते ही जिस लोक का परिचय होता है वहाँ से लौटना नही होता। मन उसी आनद छोक मे रम जाता है। कबीर स्पष्ट कहते है- यह मत जानो गीत है, यह तो ब्रह्म विचार। न तो राम खिलौना है- छोगनि राम खिलौना जाना। निर्गुण के नाम पर कबीर के पद ही गाये जाते है। साखियाँ सादगी एवं सृक्तियो के लिये उद्धृत की जाती है। प्रसिद्ध है कि कर्म बधन का कारण है। इसलिये बहुत से छोग कर्म को छोड़ने की बात करते है। कितु कर्म छूट नही सकता है। कर्म छोड़ना भी एक कर्म है। तो कर्म से ही कर्म छूटता है। इसके लिए एक ही शब्द है कर्म। कितु कबीर ने करणी और करम दो बनायाकरणी यें कारण मिटि गया। करणी किया करम का नास। पावक मांहि पुहुप प्रकास। पहुप मांहि पावक परजरै "| प्रथम करणी का अर्थ है फलेच्छारहित कर्म | क्यो कर्म तो किसी फल के लिये होता है। यदि फलेच्छा नही है तो कर्म कर्म नही है। वह अकर्म हो जाता है। इसीलिये ऐसा कर्म (करणी) कर्म (फलेच्छा वाला) अर्थात् बधन कारण कर्म का नाश कर देता है। पावक गीता का ज्ञानाग्नि है- ज्ञानाग्नि. सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुत तथा। गी० ४/३७। ज्ञानाग्नि से जले कर्म वालो को ही पडित कहा जाता है। (ज्ञानाग्निदग्ध कर्माण तमाहु पडित बुधाः ४॥१९)। गीता जिस बात को सीधी भाषा मे कहती है उससे पडित का लाभ होता है। बुद्धिमान समझते है। इसी को कबीर आग और फूल के माध्यम से कहते है--- आग। साधना की आग। पुहुप। ज्ञान। दोनो एक दूसरे से जुड़े है। आग मे फूछ और फूछ मे आग। ज्ञान और साधना दो नही है।

जैसे करणी और कर्म दो नही है। इसी प्रकार कर्म और कारण मे भी एकता है। इसीलिये 8408 की समाप्ति होती है। शुद्ध कारणत् की प्राप्ति होने पर कर्म की जरूरत नही रह |

१४० कबीर समग्र कबीर एक ढग का सवाद भी चलाते हैजब हंम दनजी लोग सुपारी। तब तुम्ह काहे बनजी खारी। जय हम बनजी प्रमल कसतूरी। तब तुम्ह काहे बनजी कूरी। इस पद्धति मे आत्मता का गहरा तत्त्व है। निर्गुण-निराकार तत्त्व साकार हो उठता है। उससे बात करने का रस अलग है। कबीर परम गुरु (भगवान) से कहते हैथोर तुम्हारा तुम्घारी आग्या, मुसियत नगर तुम्हारा। इनके गुनह हमह का पकरी, का अपराध हमारा। इस सवाद शैली ने अतिरिक्त रस उत्पन्न कर दिया है। सवाद के द्वारा रागात्मकता घनी हो उठी है। यद्यपि यह सवाद एकतरफा है। कितु इसमे रागात्मक उत्तर एवं स्वीकार की ध्वनि हैं। लगाव क्षण का नही स्थिर और सनातन है। यह कबीर की शी है। उत्तर पक्ष न बोलकर भी मुखर है। यह पूरा सवाद नही है। सवाद का दूसरा पक्ष मौन है। कितु कवीर की प्रस्तुति से लगता है कि वह ध्यान से सुन रहा है। अपनी स्वीकृति भी दे रहा है। जैसे मौखिक कहानियों में कभी-कभी ही हाँ होता है। सुननेवाला सो गया है। फिर भी कहने वाला इस विश्वास से कहता है कि वह सुन रहा है। कहने वाले का उत्साह बहुत देर के बाद भग्र होता है। कितु सत का उत्साह अभग है। कबीर की भाषा को आध्यात्रिक कहना उचित होता। क्योंकि उनका मूल विषय आध्यात्मिक है। आध्यात्रिक जागरण के लिये ही वे प्रयलशील है। कितु आध्यात्मिक कहते ही ध्यान सस्कृतनिष्ठ परपरा की ओर जाता है। जहाँ दुद्धि की गहनता और चैतन्य का कसाव है। इसलिये कबीर की भाषा को मुक्त, आत्मिक आध्यात्मिकता कहना अधिक ठीक होगा। आध्यात्मिकता तो है। कितु वह बौद्धिक की अपेक्षा आतिक एग भावात्मक है। वह भी मुबत। खुलापन लिये। हाँ, उल्टवॉसियॉ रोकती है। कितु प्रभाव को वासी नहीं होने देती है अर्थ खुलने में देर लगती है। इससे प्रभाव और भी आतरिक वन जाता है। मन की मस्ती नये-नये आनद लोको मे डूबने-उतराने छुगती है। भाषा के क्षेत्र मे कबीर अकेले है। अन्य सतो को भाषा का आतरिक सयोजन नही प्राप्त हुआ। इसका कभी यह मतलब नही है कि दूसरे सतो की भाषा में किसी प्रकार की हीनग्रंथि है। सतत और हीनग्रथि दो विरोधी चीजे है। साधना तो ग्रथियो के नाश के लिये होती ही है। रैदास की भाषा मे नम्नता और विनय की सादगी किसी हीनता का द्योतक नही है। वे इतने नम्र और विनयी है कि उनकी भाषा किसी प्रकार का उत्पात नही मचाती। कितु गोरखनाथ की भाषा उछलती है। आक्रमण करती है। आक्रमण के समय कबीर की भाषा गोरखनाथ और नानक के पास है। तो विनय में वे रेदास की ओर झुकी लगती है। यद्यपि रेदास जैसा एकात विनय कठिन है। रैदास का विनय भी अकेला है। वह विनय जीवन के सारे छल्मष को चदन सा घिसकर सुगधितकर रहा है। चदन और पानी के प्रतीक मे द्वैत की सभावना है। कितु कबीर कही द्वैत के लिये स्थान नही छोड़ते है। भासमान् द्वैत की मिटाना ही उनके प्रतीको और भाषा का उद्देश्य है। &

+ तुलसी और कबीर तुलसी और कबीर मे बहुत सी समानताएँ एवं असमानताएँ है। आचार्य रामचद्र शुक्ल एव उनकी परपरा के आलोचक दोनो सत भक्त कवियों मे किसी भी प्रकार की समानता नही देख . पाते। इनकी अपेक्षा डॉ० रामविछास शर्मा जैसे व्यक्ति दोनों को 'सत' के खाते मे डालकर ऐक्य खोजने का प्रयल करते है। डॉ० शर्मा कहते है-"सत-साहित्य भारतीय जीवन की अपनी परिस्थितियों से पैदा हुआ था। उसका स्रोत बौद्ध धर्म या इस्लाम मै-या हिदू धर्म में ढूँढ़ना सही नही है। इन धर्मों का उन पर असर है लेकिन ये उसके मूल स्रोत नही है। मलिक मुहम्मद जायसी कुरान के भाष्यकार नही है, न कबीर और दादू त्रिपिटकाचार्य है, न सूर और तुलसी वेद, गीता या मनुस्पृति के टीकाकार है (छोक जीवन और साहित्य पृ १८) ।" डॉ० शर्मा की पहली दिक्कत तो यह है कि वे धर्म को, सुपर स्ट्रक्चर मानते है। फिर उससे सबद्ध साहित्य का मूल म्लोत उसमें नही ढूँढ़ते है तो आश्चर्य नही ।सत' साहित्यः परिस्थितियो से पैदा हुआ है था / यह एक स्थायी वाक्य है। किसी भी साहित्य और किसी भी आन्दोलन के लिये यह रेडीमेड वाक्य है। जहाँ चाहिए चस्पा कर दीजिए। दूसरी बात यह है कि जायसी को कुरान का भाष्यकार, कबीर-दादू को त्रिपिटकाचार्य, सूर तुलसी को वेद, गीता या मनुस्मृति का टीकाकार किसने कहा है जो आप उसका खडन कर रहे है। कितु तुलसीदास ने स्वयं अपनी रचना की नानापुराण निगमागमसमत कहा है। सूर के गुरु ने भागवत का गान करने की आज्ञा दी थी। वे श्री रंगनाथ के मदिर मे भजन गाते थे। इनकी रचनाओं मे बार-बार राम, कृष्ण के स्मरण है। कबीर ने आत्मा-परमात्मा के मिलन को उद्देश्य बनाया। राम नाम को अपना सिद्ध मत्र बनाया। कया इन तथ्यो से कोई इनकार कर सकता है ? हा, इनकार करते है। कौन ? डॉ० रामविलास शर्मा। डॉ० शर्मा समस्त भक्ति साहित्य का सामाजिक आधार ढूँढ़ते हुए कहते है-"सत साहित्य का सामाजिक आधार क्या है ? इसका सामाजिक आधार जुलाहो, कारीगरों और व्यापारिया का भौतिक जीवन है (वही पृ० १८)। कितना गहरा चमत्कार है ।" डॉ० शर्मा ने कम की एक नोक से हिंदी के सपूर्ण आध्यालिक साहित्य को भीतिक आधार वाला बना दिया। कबीर जुलाहा थे यह तो ठीक। कित्तु सूर, तुलसी, नददास, जायसी आदि कवि न तो कारीगर थे। न व्याघारी। फिर इनके साहित्य में कुछ भी ऐसा नहीं है जिसका लाभ केवल जुलाहो, कारीगरों और व्यापारियों को मिले। कितु डॉ० शर्मा की छाचारी है। साहित्य जो बाहरी ढॉचा मात्र है उसके मूल ढॉँचे की खोज मे उन्हे जुलाहा, कारीगर और व्यापारी की खोज करनी ही होगी। ऐसे दृध्कोण तथ्य की खोजकर न कर तथ्य को आरोपित करते है। जो नहीं है उसकी भी कल्पना कर लेते है। तुढली और कबीर की रचनाओं को आधार बनाकर अध्ययन करना चाहिए। तुलसी और कबीर मे अनेक समानताएँ है। दोनो ही प्राय एक जैसे काल के है। दोनो मे लोकभाषा का प्रबल आग्रह है। दोनो के उपास्य राम हैं। राम नाम। दोनो वैष्णव है। रामानंद सप्रदाय के है। कवीर के राम

और तुलसी के राम में मौलिक अतर है। तुलसी के राम राजा, मर्यादा पुरुषोतम एवं परब्रह्म है। कबीर के राम केवल परब्रह्म है। कितु कबीर भी उन्हे बार-वार राजाराम कहकर लीला पुरुषोत्तम की ओर (9४१)

१४२ कबीर समग्र सकेत करते से दीखते है। परमात्मा से सबध जोड़ने की कल्पना मे पति-पत्नी का रूपक तुलसी की अपेक्षा सूर से मिलता है। तुलसी और कबीर दोनो ही योग के समर्थक है। हाँ, कबीर योग को ब्रह्म प्राप्ति का साधन भी मानते है। तुलसी उसे बहुत महत्त्व नही देते। दोनो ही सत सेवक सेव्यभाव मे विश्वास करते है। तुलसी और कबीर दोनो मे दीनता, विनय और आर्तभाव है। इनके बिना भक्ति सभव नही। तुलसी अपने तन के चाम का प्रभु की जूती वनाना चाहते है तो कवीर राम की कुतिया है। दोनो गुरु को महत्व देते है। दोनो में गुरु की वदना है। दोनो के गुरु अलीकिक हैं। लौकिक भी हो सकते है। कितु उनका सम्मान अलौकिक है। कबीर पुस्तकी ज्ञान के विरोधी है। तुड्सी भी वाक्य ज्ञान (पुस्तकी ज्ञान) को मुक्ति के लिये व्यर्थ मानते है। तुलसी ने स्वय लिखा है। कवीर ने मसि कागद छुए बिना मौखिक ही चारो युगो की वात कह दी। दोनो ही सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक अभिव्यक्ति के पक्ष मे है। दोनो हिसा विरोधी और अहिसा के समर्थक है। सत्य को प्रतिष्ठा देते है। दोनो ही पड़ विकारों को त्यागने के पक्ष में हैं। भोग विरोधी है। दोनो ही छुआछुत के विरोधी है। क्योंकि भगवान् के दरवार में सभी समान हैं। कवीर पूर्णत निर्गुण निराकार के प्रचारक है। इसलिये वे किसी सामाजिक स्वरूप की कल्पना नही करते है। सामाजिक स्वरूप निर्धारण करनेवाले कवि हैं तुलसीदास | तुलसी भक्ति मे जाति को न मानकर भी सामाजिक व्यवस्था मे इसे स्वीकार करते है। कबीर जाति व्यवस्था को किसी भी स्तर पर नही मानते। कितु अपने को जुलाहा कहते है। कवीर संसार और समाज, सामाजिक सबधो इनके प्रति रागादि को पूर्णत व्यर्थ माते है। अत* उन्होंने सामाजिक सबंधो की चर्चा नही की। ससार की अनित्वता का स्वर कबीर साहित्य मे अत्यत तीव्र और शक्ति के साथ प्रस्तुत हुआ है। इसीलिये निर्गुण का मतलब ही हो गया ससार की अनित्यता का वर्णन। राम नाम सत्य का पर्याय। तुलसीदास को भी यह सब स्वीकार है। कितु वे समाज निरपेक्ष नही है। उनकी रचनाओ मे समाज और सामाजिक सवध विस्तृत और पुष्ट है। दोनो कवियो के यहाँ श्रृगार को स्थान नही है। कितु कवीर स्त्री मात्र को एकभाव माया मानकर देखते है। जबकि तुलसी के यहाँ स्त्रियों के अनेक रूप है। शूर्पणखा जैसी कामिनी माया है। तो कोशल्या और सीता जैसी माता और पली भी है। कभी-कभी तो लगता है कि तुलसीदास आध्यालिकता की अपेक्षा सामाजिकता के कवि है। जो छोग तुलसी मे केवल लछोकमगल देखते हैं वे उनके आध्यात्मिक पक्ष को भू जाते है। ऐसे ही छोग कवीर को सामाजिक परिवर्तन का कवि मानते है। उनकी गहरी आध्यात्मिकता उन्हे नही दिखाई पड़ती है। सामाजिकता को तुलसी अत्यंत विस्तार देते है तो कवीर आध्यात्रिकता मे बहुत ऊँचे जाते है। समाज या किसी प्रकार के भूत के अभाव मे वे वहाँ जातें है जहाँ जाने मे चींटी के पाँव भी लड़खडाते हैं। तुलसी कथाओं के माध्यम से सासारिक संबधो और घटनाओ के मार्मिक स्थले की अनुभूति कराते हैं। कितु कबीर को ससार से कुछ भी लेना-

देना नही। वे हर समय ससार की नश्वरता का वर्णन करते हैं| तुलसी के राम रक्षा का आश्वासन देते है। बहुत कठिनाई हुई तो स्वय उपस्थित हो जाते है। कितु कवीर के राम को समाज से कुछ लेना-देना नही। वे समाज नहीं व्यक्ति (विरला) की मुक्ति मे विश्वास करते है। असल मे तो व्यक्ति मुक्ति भी उनका कार्य नही है। वे तो किसी भी प्रकार के कार्य-कारण से परे हैं। कबीर मे निषेध की प्रधानता है। तुलसी सभी का निषेध नही करते। इसलिये कि तुलसी के राम सामाजिक है। मर्यादा पुरुषोत्तम और राजा हैं। निषेध के कारण ही कबीर किसी शास्त्र को नही मानते। किसी वचन को प्रमाण नही मानते। सदूगुरु -.. क वताए मार्ग पर चलते है | उसे भी अतिम नही मानते। स्वय खोज करते है। इसलिये कबीर

तुलसी और कबीर १४३ की शब्दावढी परपरित हो सकती है कितु उनकी अनुभूतियाँ निजी है। तुलसी निजी अनुभूति नही, सामाजिक अनुभव के कवि है। निजी अनुभव व्यक्ति के साथ नध्ट हो सकता है। कितु सामाजिक अनुभव समाज के साथ रहकर शास्त्र बन जाता है। इसीलिये तुलसीदास नाना पुराण निगमागम को आधार मानते है। पुराणो का प्रभाव कबीर पर भी है। कितु वे पुराणो की गहराई मे न जाकर कुछ गिनी-चुनी छोक प्रचलित बातो को ही स्वीकार करते है। वे परपरा के बिल्कुल विरोधी नही है। हा, साधना मे सामाजिक अनुभव की अपेक्षा वैयक्तिकता का आधार कबीर को पुराकधाओ से दूर रखता है। बौद्ध परपरा का प्रभाव उतना नही है जितना वैदिक परंपरा ने प्रभावित किया है। इसलिये कि कबीर मूलत वेदाती है। वेदात दर्शन के स॒त है। कबीर वेदातिक परपरा के रहस्यवादी है। रहस्यवाद का मुख्य आधार वेदात है। कबीर के नाम प्रचलित रमैनी तुलसीदास के मानस से बिल्कुल भिन्न है। इसमे राम, सीता, रावण की कथा न होकर निर्गुण साधना एवं सृष्टि विकास की वेदाती दृष्टि की प्रमुखता है। दोनो ही कवि मायावाद से प्रभावित है। कबीर पर माया का विशेष प्रभाव है। कबीर की माया तुलसी की माया से अधिक विकराल है। कबीर के त्रिदेव भी माया के शिकार है। तुलसी में इसका संकेत भर है। इसीलिये कबीर मे नारी पूर्णत त्याज्य है। वे नारी के पूर्णत छोड़ने के पक्ष : मे है। नारी बड़ा विकार। उनके यहाँ नारी केवढ कामिनी है। नारी के अन्य पक्षी की चर्चा -कबीर नही करते है। कबीर की माया अविद्या है। जबकि तुलसी के यहाँ माया के निर्माणकारी रूप भी है। तुलसी भक्ति समर्थक और मुक्ति विरोधी है-सगुणोपासक मोच्छ न छेही। कबीर भी भक्त है। मोक्ष को एकाध बार अस्वीकार भी करते है-राम मोहि तारि कहाँ है जैहो। कितु उनकी मूल दृष्टि मोक्षप्रधान है। माया और मायाविलास से पूर्ण मुक्ति। नारी के प्रति करुणा तुलसी मे कबीर की अपेक्षा अधिक है-कत विधि सृजी नारि जग माही। पराधीन सपनेहु सुख नाही। ऐसा लगता कि तुलसी मनु के उस कथन का खडन कर रहे थे जिसमे कहा गया है कि न स्त्री स्वातत््यमर्हति। कबीर के राम अकेले है। तुलसी के राम सीता सहित है। इसके विपरीत कबीर के यहाँ शिव, ब्रह्मा, विष्णु सबकी स्त्रियाँ माया है। माया ही इनके घरो मे पल्ली बन बैठी है। कबीर पर बीद्ध, वेदांत और योग तीनो का प्रभाव है। इन तीनो मे स्त्री त्याज्य है। उप्त कबीर ने गृहस्थ जीवन को पूर्णत अस्वीकार किया। लगता है तुलसीदास संसार को सुदर बनाना चाहते थे और कबीर ससार से मुक्त होना चाहते थे। कितु विरक्ति दोनो मे है। बिना विराग के मुक्ति तो सभव ही नही है। ससार का सुधार भी नही हो सकता है। तुलसी और कबीर दोनो ही आदर्शवादी है। कितु दोनो की दृष्टि उर्ध्वगामी है। दोनो के आदर्श ऊपर से आते है। कबीर राम को हृदय मे देखते है और तुलसी उन्हे बाहर भी देखते है। सबमे, सबको राममय देखते है। कबीर इतने स्पष्ट न होकर भी सबकी एकता तो देखते ही है। सभी जीव ब्रह्म है। सभी मायाधीन है। दोनो ही कवि उदारता एवं

सहिष्णुता का उपदेश करते है। परमात्मा के असाम्प्रदायिक रूप को स्थापना करते है। कबीर मे झाड़ फटकार अधिक है। वे सभी सप्रदायो को अपूर्ण मानते है। तुलसीदास मुख्यत. अपनी बात कहते है। खडन-मडन के चक्वर मे कम पड़ते है। कबीर मे तक और आवेश की प्रधानता है। कितु तुढसी सहज ढंग से कहते है। कबीर अपने समाज और बाहरी आक्रमणकारी दोनो से पीड़ित है। कितु तुलसी केवछ बाहरी आक्रमण से प्रभावित है। फिर भी वे प्राय किसी आक्रमण की चर्चा से बचते है। सामयिकता की अपेक्षा शाश्वत एव सनातन मूल्यों पर अधिक जोर देते है। पुराने कवि सामयिक और सामाजिक सुधार की अपक्षा मानव चरित्र सुधार के सनातन तत्त्वों को प्रतिष्ठित करते थे। उनमे सामयिकता का आग्रह कम से कम होता था। ब

१४४ कवीर समग्र सत कबीर श्रद्धा विरोधी नही है। कितु वे श्रद्धा की अपेक्षा ज्ञान पर अधिक जोर देते है। तुलसी मे ज्ञान, भक्ति, वैराग्य का समन्वय है। ये ही वाते कमोवेश कबीर मे भी कही जा सकती है। तुलसीदास उपास्य के नाम, रूप, ठीला, धाम चारो के उपासक है। कबीर केवल नाम के समर्थक है। अवतार मे विश्वास के अभाव में रूप, छीला ओर धाम का सवाल नहीं उठता है। तुलसी को ईश्वर का निर्गुण-सगुण दोनो रूप स्वीकार्य है। केवठ तो केवल निर्गुण है। सगुण को कवीर केवल अभिव्यक्ति या साधना की दृष्टि से साधन रूप में स्वीकार करते है। क्योकि भजन, कीर्तन, प्रेम, भक्ति आदि के लिये किसी न किसी प्रकार की सगुणता स्वीकार करनी ही पड़ती है। दोनो ही कवि मायामय जीव को तुच्छ मानते है। इसीलिये दोनो का उद्देश्य ब्रह्मज्ञान है। ब्रह्म सबके भीतर है। उसकी जानकारी की कोशिश ही साधना है। इसीलिये दोनो कवि भक्त को, गुरु को परमात्मा जैसा मानते है। कवीर गृहस्थी का विरोध कर भी गृहस्थ थे। तुलसी गृहस्थ धर्म के समर्थक होकर सन्यासी थे। तुलसी प्रवध और मुक्तक दोनो के रचनाकार है। कबीर केवल मुक्तक के रचनाकार है। निर्गुण मे प्रबध के लिये स्थान नही है। तुलसी की दृष्टि सपूर्ण जीवनवाली है। कबीर जीवन की विविधता में विश्वास नहीं करते है। परपरा की दृष्टि से कवीर भी नारदी भक्ति मे विश्वास करते है | तुलसी ने कलिकाल को अपने युग की विपत्तियों का रूपक बनाया है। जबकि कवीर इसे माया के माध्यम से व्यक्त करते है। तुलसी वहुदेववादी भी है। कबीर बहुदेववाद के विरोधी है। कितु दोनो ही इस्छामी एकेश्वरवाद को अस्वीकार करते है। कबीर की दृष्टि मे अन्यदेव माया हैजी जांचा तो केवल राम। आन देव सूं नाहीं काम। नवधा भक्ति दोनो को स्वीकार्य है। कितु तुलसी सख्यभाव को नहीं स्वीकार करते है। जबकि कवीर के यहाँ पाद सेवन का स्थान नही है। दोनो ही सत्सग को आवश्यक मानते हैं। सब कुछ को गुरु कृपा का फल मानते है। अमानी भक्ति, विषय विरति, सृष्टि को ब्रह्ममय सा सतो का आदर, छलहीनता, सरलता, दैन्य, अनन्य शरणागति आदि दोनो मे सामान्य | काशी की प्रतिष्ठा को कवीर भी अस्वीकार नही करते। भक्ति की महत्ता की दृष्टि से वे मगध मे मरना चाहते है। मतलूव कि वे मगध को भी पवित्न वनाना चाहते है। कया कबीर ने काशी छोड़कर गलती की ? तजलो कासी मति भइ भोरी। प्राननाथ कहु का गति मोरी। तुलसी काशी मे तवहर से आए थे। कबीर काशी मे ही पैदा हुए थे। दोनो देशी भाषा के लेखक है। कितु तुलसी पर सस्कृत का गहरा प्रभाव है। जबकि कबीर की भाषा मिली जुडी ओर ऊबड़-खाबड़ है। कबीर मे उछटवॉसी है। वे अपनी बात किसी न किसी प्रतीक के माध्यम से कहते है। कबीर के प्रतीक कठिन है। तुलसी सीधी भाषा मे बोलते है। तुलसी सृष्टि मे फैले परमात्म सत्य की अनुभूति कराना चाहते है। जबकि कबीर हृदय मे स्थित ब्रह्म का साक्षात्कार कराना चाहते है। बस तुलसी ने भाषा के माध्यम से वैदिक शास्त्र परपरा को जनसुरूभ बनाया। आध्यालिक, नैतिक और शास्त्री मन का

विश्वास बनाने मे उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। उन्होंने किसी जाति या धर्म का विरोध न कर स्वयं को बुलद बनाने की शक्ति विकसित की। कबीर की पद्धति भिन्न है। वे मनुष्य को वहाँ ले जाते है जहाँ सारे भेद, दुख और चिताएँ लुप्त होकर केवल परम आनदसत्ता की अनुभूति रह जाती है। मनुष्य मनोलोक का आनद छेता है। कबीर की रचनाएँ विना किसी शास्त्री तैयारी या प्रशिक्षण के एक ऐसा पुष्ट मन तैयार करती है जहाँ शोक का नाम नही है। इसीलिये कबीर का प्रचार उन लोगो मे भी अधिक हुआ जो औपचारिक शिक्षा

तुलसी और कबीर १४५ से वंचित थे। दोनो कवियों की रचनाओ ने एक ठोस आधार पर देश के मानस किया। इन्ही दोनों कवियों की शिक्षा का फल है कि आगे आनेवाली सभी अभारत शिक्षाएँ प्रभाव नही डाल पाती है। कबीर चाहे जिस-जाति के रहे हो कितु उनका मुख्याधार वेदात है। वे विधर्म को रोकते है। धर्म परिवर्तन को रोकने मे दोनो की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। किसी भी समाज को निर्गुण-सगुण दोनो की आवश्यकता है। केवल निर्गुण समाज नहीं चला सकता। उससे व्यवस्था की आलोचना हो सकती है। निर्गुण आलोचना संगुण की अपेक्षा अधिक प्रभावी होती है। समाज तो सगुण ही होगा। कितु निर्गुण के अभाव मे सगुण समाज जड़ हो जाता है। इसीलिये तुलसी और कबीर दोनो की महत्ता समान रूप की है। गृहस्थी और सन््यास। कर्म और ज्ञान। दोनो को मिलाकर ही भक्ति पूर्ण हुई है। कबीर के मुक्तको ने तुलसी के मुक्तको से अधिक प्रसिद्धि पाई। तुलसी के प्रबंध ने समाज को स्थायी और ठोस रचना(मक आस्था दी। ऐकातिक भक्ति की दृष्टि से योग, यज्ञ, तप, तीर्थ, अध्ययनादि दोनो भक्तो को अस्वीकार है। दोनो ही शब्द प्रमाण मे विश्वास करते है। अंतर यह है कि तुलसी के प्रामाणिक शब्द शास्त्रों के है। कबीर के सदूगुरु के है। सदूगुरु के प्रति अगाध श्रद्धा ही उन्हे शब्द प्रमाण की ओर ले जाती है। वे सदगुरु के शब्दों की आत्मानुभूति भी करते है। तुलसी भी आत्मानुभूति को स्वीकार करते है। इसलिये वे कहते है कि वाक्य ज्ञान की अत्यत निपुणता प्राप्त कर कोई भी व्यक्ति मन के अज्ञानाधकार को दूर नही कर सकता है। भीतर के अधकार को दूर करने के लिये तो भीतर की साधना आवश्यक है। कितु भीतर की साधना के साथ ही शास्त्र परपरा द्वार प्राप्त ज्ञान भी महत्त्वपूर्ण है। सत तुलसीदास जब कहते है कि “गुरु कध्यो रामभजन नीको मोहि लागत राज डगरो सो” तो वे गुरु वाक्य को महत्व देते है। गुरु ने ही दोनो (कबीरतुलसी) को राम मत्र दिया है। दोनो राम को भजते है। न रॉ रामाय नम , न ओ नारायणाय नम, न ओ वासुदेवाय नम | सत कबीर तो जैसे राम के अतिरिक्त किसी को जानते ही नही। तुलसीदास भी स्पष्ट कहते हैविश्वास एक राम नाम को। मानत नहि परतीति अनत ऐसोइ सुभाव मन बाम को। पढ़ियो पर्‌यो न छठी छमत ऋगु जजुर अर्थवन साम को। ब्रत तीरथ, तप सुनि सहमत, पचि मरे करै तन छाम को ? ज्ञान, बिराग, जोग, जप, तप, भय, लोभ, मोह, कोह, काम को |-विनय० | तुलसीदास और कवीर दोनो ही केवल बाह्य साधन के विरोधी है। बाहर तो ठीक हो ही। कितु असली है भीतर को शुद्ध रखना। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर ये षट्विकार मन मे रहते है। अत इन्हे मन से भगाना है। मन को पवित्र करना है। बिना मन को शुद्ध किये भगवद्माप्ति सभव नही। विनयपत्रिका मे कहा गया हैबाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रंवि न छूटै। २६ हर ५ अंतर मलिन, बिघय मन अति, तन पावन करिय पखारे। मै न उरग अनेक जतन बलमीक विविध विधि मारे।* तुलसिदास

हरि गुर करुना बिनु बिमल विवेक न होई। बिनु बिबेक संसार घोर निधि पार न एवै कोई।
पद११ ५

१४६ कबीर समग्र जब दोनो को सृष्टि के चोर, डाकू (काम, क्रोधादि) लूटने छगते है तो एक ही उपाय है प्रभु की शरण में जाना। कबीरदास कहते हैचोर तुम्हारा तुम्हारी अग्या, मुसियत नगर तुम्हारा। ऐसी ही बात तुलसीदास कहते है- ' में एक अमित बटपारा, कोउ सुनै न मोर पुकारा। दोनो ही भक्त शरीर की प्राप्ति को महत्त्वपूर्ण मानते है। इसलिये इस शरीर से परमार्थ साधन करना चाहिए। बाद मे यह शरीर मिले या नही ? मालुख तन पायौ बड़े भाग-कबीर बड़े भाग मानुस तन पाबा-तुलसी दोनो की भाषा भी एक है। दोनो ने भक्ति विरोधी की निदा की है। दोनो के उपमान तीखे है। अत्यंत प्रभावकारी है- हे आपुन देहीं चुरुआ पांनी, तिहि निदहि जिन गंगा आँनी ।--कबीर भारी देत नीच हरिचंद हू दधीच हू को आपने चना चबाई हाथ चाटियतु है ।-तुलसी दोनो के उपमान पौराणिक है। दोनो के प्रभु भक्तवत्सल है। इसीलिये कभी-कभी तुलसी और कबीर की पक्तियाँ एक जैसी लगती हैदीनदयाल क्रिपाल दमोदर भगत बछल मै हारी। यह पक्ति कबीर की है। कितु तुलसी की भी हो सकती है। ऐसी ही दूसरी पक्ति हैहै हरि भजन को परबान। नीच पावै ऊँच पदबी बाजते नीसात। यह कबीर की पक्ति भी तुलसी से मिलती है। ऐसी जाने कितनी ही बाते कबीर और तुलसी मे समान है। कितु असमानता भी कम नहीं है। दोनो का रामानद या उनके सप्रदाय मे दीक्षित होना छोक का दृढ़ विश्वास है। दोनो ही राम भक्त है। अत समानता का मिलना स्वाभाविक है। कठिनाई तब आती है जब अनिवार्य विरोध दिखलाने के लिये तुलसी की कुछ पक्तियाँ उद्धृत की जाती है। ये हैसाखी सबदी दोहरा कहि किहिनी उपखान। भगति निरूपहिं भगत जन निंद्हिं बेद पुराना -तुल्सी तुम जो कहा राम कोउ आना! तुल्सी . अलखंहि अलखहि कया जपै, रामनाम जपु नीच। -तुल्सी ऐसे ही उद्धरण सत सूरदास से दिए जा सकते है। कहा जाता है कि कृष्ण द्वारा ब्रज भेजे गए उद्धव निर्गुण मार्ग के उपदेध्य है। उनके उत्तर मे गोपियाँ सगुण मार्ग की प्रस्थापना करती है। इस प्रकार निर्गुण और सगुण मार्ग के निश्चित इन्द्र ही उभर कर आए है। कितु निर्गुण सगुण का विभेद अनिवार्य नहीं है। हिदी साहित्य के बाहर तो निश्चय ही नहीं। हिंदी मे भी दोनो में दोनो का मेल दीखता है। सगुण का तो आधार ही निर्गुण है। स्वय शंकराचार्य सिद्धात में अद्वैतववादी और व्यवहार मे सगुणोपासक जैसे थे। वेदात ने पारमार्थिक और व्यावहारिक दो प्रकार के सत्य की कल्पना की है। परमार्थ मे जगत मिथ्या है। कितु व्यवहार मे वह है'। भूख पारमार्थिक सत्य नहीं है। कितु उसे व्यावहारिक सत्य तो मानना ही पड़ेगा। इसीलिये प्रत्येक . भक्ति को आग जलती है। पानी गलाता है। हवा सुखाती है। यह सब शरीर को होता है।

तुलसी और कबीर १४७ परमतत्त्व आत्मा इन सबसे अलग है। सत कबीर की मुख्य दृष्टि उस परम तत्त्व पर है। तुलसी परम तत्व और व्यवहार तत्व दोनो को जोड़ कर चलते है। कबीर परम तत्व को प्राप्त कर स्वय वह हो जाने का उपदेश देते है। जबकि तुलसीदास परम तत्व का अवतरण नर रूप मे करते है। यह नर तत्व उद्धारक भी है। आदर्श भी है। इसे प्राप्त कर फिर कोई कष्ट नही रह जाता है। दोनो ही साधक दो रास्तो से उसी परम तत्त्व को महत्त्वपूर्ण मानकर उससे जुड़ते है। तुलसीदास का रास्ता थोड़ा स्थूल, सर्वजन सुलभ है और कबीर की राह सूक्ष्म अत विरद्ध के लिये है। तुलसी और कबीर दोनो की दृष्टि मे ससार शून्य की दीवाल पर बना चित्र जैसा है। ससार चित्र का आधार कोई भूत पदार्थ न होकर निर्गुण निराकार अमूर्त परम तत्त्व है। यह परम तत्त्व स्वय अपनी उपाधि से जुड़कर ईश्वर बनता है। इसीलिये वेदात भी माया की स्वतत्र सत्ता नहीं मानता। माया जो परम तत्त्व की भी उपाधि बनती है। वह परमेश शक्ति है। माया-की परिभाषा देते हुए कहा गया हैअव्यक्त नाम्नी परमेश शक्तिः अनाध विद्या त्रिगुणात्मिका परा। ' कार्यनुमेया सुधियैव माया यया जगत् सर्वमिदं प्रसूयते। -शैकर यह माया सतसत् रहित, अनादि अनिर्वचनी, त्रिगुणात्मिका एव ज्ञान विरोधिनी है। माया का यह स्वरूप दोनो सतो को मान्य है। तुलसीदास की विनयपत्रिका का प्रसिद्ध पद हैसून््य भीति पर चित्र रंग नहि तनु बिना लिखा घितेरे। इसी बात को कबीर कहते है१. पाहन होय के सब गए, बिनु भितियन के चित्र । २. जिन यह चित्र बनाइया, साँचा सूतरधार | कहहिं कबीर ते जन भले, जो चित्रहि लेहिं निहारि। तुलसीदास जब सत्य, असत्य एवं सत्यासत्य तीनो को भ्रम बताते है तो उसका मतलब कबीर के नकार से है। क्योकि जो भी कहा जायगा वह भ्रम होगा। परमतत्त्व मौन या अनुभूति का विषय है। उसे बताया नहीं जा सकता है। बोलने से तत्व नष्ट हो जाता है (बोलत बोलत तत्व नसाई)। जब ससार के लोग सोते है तो तुलसी और कबीर दोनो ही जागते हैजेहि निलि सकल जीब सूर्ताहें तब कृपापात्र जन जागै -विनय ११९ इसी बात को तुलसीदास ने अन्य जगह भी कहा हैएहि जड़ जामिनि जागहि जोगी।|परमारथी परपंच वियोगी। इसे ही सुभिरन की अग मे सत कबीर बार-बार कहते हैकबीर सूता क्या करै, जागि न जपै मुरारि। । एक दिनाँ भी सोबणों लंदे पाँव पसारि। ये सभी छद गीता के उस श्लोक जैसे है जिसमे कहा गया हैया निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी । यसयां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः । २।६९। 5 सत कबीर ने सहज साधना और महासुख का प्रयोग किया है। इन्हे ही तुलसीदास सहज सुख कहते हैनिसि दिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, जहेँ तह इंद्रिन तान्यो। जदपि विषय सेंग सहे दुसह दुख बिदम जाल अरुझान्यो। -विनय० ८८ ;

१४८ कबीर समग्र स्पष्ट है कि विषयो का साथ दुस्सह दुख है और प्रभु का साथ सहज सुख है। तुल्सीदास के अनुसार भक्ति और माया दोनो स्त्री है। इसलिये भक्ति पर माया का वश नही चलता है। ज्ञान का रास्ता कठिन है। ज्ञानी को माया का डर बना रहता है। ज्ञानी माया मे फेंस सकता है। कितु भक्त का माया कुछ नही बिगाड़ सकती है। क्योकि स्त्री स्त्री को नही मोह सकती है-मोह न नारि नारि कर रूपा। अब कबीरदास तो अपने को राम की बहुरिया ही कहते है। माया भी राम की शक्ति है। ऐसे मे दोनो का विरोध हो सकता है। मोहने का कहाँ सवाल है? भक्तो पर माया का वश नही चलता है। भक्ति माया को खूब समझती है-तिरिया के तत तिरिये पै जाना। माया कुछटा है। इसलिये प्रभु को माया नही भक्ति प्रिय है। क्यों कुल्टा है माया ? इसलिये कि यह सबको भ्रम मे डालती है। परमात्मा विमुख करती है। परम पुरुष को पहचानने मे बाधा डालती है। इसकी अपेक्षा भक्ति प्रभु से जोड़ती है। जीव को प्रभु बना देती है। माया की उपाधि से जीव अपने स्वरूप को नही पहचान पाता है। भक्ति माया के अज्ञानाधकार को हटाकर परम प्रकाश प्रभु का साक्षात्कार कराती है। राम कथा के गायक शिव है। आध्यात्मरामायण और रामचरितमानस मे तो यही है। कबीर के समय मे सभव है आध्यात्मरामायण हो। राम कथा की शिव कथन परपरा हो। कबीर शायद उसी की ओर सकेत कर कहते हैमहादेव मुनि अंत न पाया। उमासहित उन जन्म गैंवाया। शिव अविनाशी माने जाते है। कितु कबीर कहते है अविनाशी शिव भी मर गये। सगुण मे निर्गुण की उपासना करनेवाले भी मर गयेमरि मरि गए भक्ति जिन्हि ठानी। सगुन माहि निर्गुन जिन्ह आनी। अगर कबीरदास तुलसी के बाद होते तो आलोचक इन्हे तुलसी की आलोचना समझते। कितु यह आलोचना सबके लिये है। सगुण मे निर्गुण लाने का अर्थ है सगुणोपासना। सगुणोपासना सत तुलसी के पहले भी थी। अत यह आलोचना तुलसी के पूर्ववर्तियों की है। , तुलसी की विनयपत्रिका और रामचरितमानस दोनो ही दो ढग की भक्ति कहते है। करते हैं। वैसे ही तुठढतली और कबीर दोनो की पद्धति भिन्न है। कितु दोनो ही एक ब्रह्म के उपासक है। तुलसी के यहाँ वह सगुण भी होता है। कबीर भी सगुण मे व्याप्त, व्यापक ब्रह्म के उपासक है| इसीलिये दोनो ही जीव की सत्ता मे आस्था रखते है।

वैष्णव भक्त कबीर वैष्णव को पसद करते है। कितु स्वय को कही भी वैष्णव नहीं कहते। तुलसी ने अवतार की बात कही है। कितु तुलसीदास राम को विष्णु का अवतार नहीं कहते है। कहते भी है तो प्रकारातर है। दोनो ही सत अगर रामानद सम्प्रदाय से जुड़े थे तो स्पष्ट है कि रामोपासना इन्होने रामानद से छी। राम स्वय ब्रह्म है। कबीर साहब तो किसी अवतार में विश्वास नही करते। उनकी दृष्टि मे दशो अवतार, सभी अवतार मरने खपनेवाले है। माया है। ब्रह्म तत्त्व इनसे भिन्न है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव सभी माया प्रसूत हैइच्छा रूप नारि अबतरी। तासु नाम गाइन्नी धरी। तेहि नारी के पुत्र तिन भयऊ। ब्रह्मा बिष्तु महेसर नाऊँ।--रमैनी गो० तुलसीदास इतनी दूर तक नही जाते। उनके राम स्वय ब्रह्म है- शाम ब्रह्म चिनमय अविनासी। सर्बरहित सब उर पुर बासी ।-मानस, १।१२० प्रभु जे मुनि परमारथबादी। कहहिं राम कहूँ ब्रह्म अनादी।-मानस १।१०८ यही अनादि ब्रह्म राम अवतार लेते है। इसीलिये राम के नाना भाँति के अवतार है (नाना भाँति राम अवतारा १।३३)। राम की मिति नहीं है। राम अनत है। उनके गुण अनत है। उनकी कथा का विस्तार असीम है-राम अनत अनत गुन अमित कथा बिस्तार-१।३३। यही राम भक्त का कल्याण करने के लिये नर शरीर धारण करते है। (राम भगत हित नर तनुधारी १|२४)। यही राम अतर्यामी भी है। सब कुछ के सूत्रधार है (राम सूत्रधर अतरजामी १|१०५) | इसी राम को आगम, निगम, पुराणादि नेति (न+इति) कहते है। राम नित्य स्वतत्र है। व्यापक है। सपूर्ण भुवनो के स्वामी और माया के पति है। जिसे सिद्ध योगी विमल मन से ध्यान करते है। ये शिव के इश्देव हैमुनि धीर जोगी सिद्ध संतत विमल मन जेहि ध्यावहीं। कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं। सोइ रामु व्यापक ब्रह्म भुबन निकाय पति माया धनी। अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी। १।५१ इसमे "अवतरेउ" को छोड़कर शेष सारी विशेषताएँ सत कबीर को भी स्वीकार है। दोनो नाम के महत्व को स्वीकार करते है। तुलसीदास की दृष्टि मे राम नाम ब्रह्म राम से भी बड़ा है। जिस उद्देश्य से तुढसीदास इस बात को कहते है उसमें सत कबीर को भी एतराज नही होगा। चूँकि उनके यहाँ केवल नाम ही नाम है। रूप और चरित नहीं हैं इसलिये नाम को ब्रह्म राम से बड़ा बताने की आवश्यकता उन्हे नही हुई। कितु कबीर भी कहते है राम की अपेक्षा राम ज्ञान महत्वपूर्ण है-राम बड़ा कि रामहि जानै। कबीर के ब्रह्म राम उपनिषद् वाले है। कबीर की दृष्टि मे इस ब्रह्मतत्व के अधिकारी सनकादि, नारद, शुकदेव, याज्ञवल्क्य, जनक, दत्तात्रेय, वसिष्ठ आदि ऋषि है। ये नाम पौराणिक है। सत तुलसी का सरोकार भी इन नामो से रहा है। उनकी परपरा आगम निगम पुराण की है। कितु इतना कहने पर भी उसे और स्पष्ट किया। राम को ब्रह्म कहना है तो उपनिषद् चर्चा आवश्यक है। क्योंकि ब्रह्म स्थापना का मुख्य ल्क (१४९)

१५० कवीर समग्र केद्र उपनिषदे है। इसी बात को ध्यान मे रखकर तुलसीदास कहते हैराम नाम कर अमित प्रभाव। संत पुरान उपनिषद गावा १४६ राम के अवतार पक्ष से ध्यान हट न जाय इसलिये तुलसीदास ने पुराण को भी जोड़ा है। कबीर को इसकी जरूरत नहीं। कितु परपरा उल्लेख आवश्यक है। तुलसीदास ने केवल'सत" से जिनका उल्लेख किया उन्हे कबीर साहब ने नाम से गिनाया। दोनो के राम मूठत निर्गुण निराकार ब्रह्म है। राम की यह ब्रह्म मान्यता उपनिषद् की है। परपरामूलक है। तुलसीदास और कवीर के यहाँ विष्णु एक देवता है। राम विष्णु, शिव और ब्रह्मा को नचाते है-जग पेखन तुम्ह देखनिहारे। विधि हरि सभु नचावनिहारे। २।१२७। ये तीनों देवता ब्रह्म राम के महत्व को नही जानते है। तेऊ न जानहि मरम तुम्हारा। ये देवता तथा अन्य देवता राम का महत्व क्यो नहीं जानते है ? इसलिये कि ये भी मायाधीन हैंविधि हरि हर ससि रबि दिसिपाला। माया जीव फरम कुलिकाला। ३॥२५४॥। ब्रह्मादि सभी देवता राम की माया के वशवर्ती है- यन्मायावशवर्ति विश्वमखि ब्रह्मादि देवासुरा। ब्रह्म राम का वल पाकर ही ये देवता सृजन, पालन और सहार करते हैं। इनकी शक्ति के मूल मे ब्रह्म राम की शक्ति है-जाके बल बिरचि हरि ईसा। पाठत, सृजत, हरत, दससीसा |-५।५६ | इसीलिये सबको अन्य देवताओ को छोड़कर राम की शरण मे आना चाहिए। राम ही सबके प्रभु है। राम विरोधी विष्णु, शिव और ब्रह्मा की मुक्ति भी सभव नहींराम विरोध न उबरति सरन बिस्नु अज ईस। ५॥५६। इसी बात को सत कबीर कहते है। सभी अवतार और देवता मायाधीन हैं। माया सबके घर मे मौजूद है। वह विष्णु के घर कमला, ब्रह्मा के ब्रह्मणी और शिव के भवन भवानी बनी है। इन देवो मे शक्ति होती तो माया इनके पास कभी न जाती। गो० तुलसीदास भी इन देवियो को माया कहते हैं। राम ब्रह्म हैं तो सीता उनकी आदिशक्ति माया है। यही माया सृष्टि का सृजन, पालन और सहार करती हैश्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी | जो सृजति जगु पालति हरति रुछ पाइ कृपा निशान झी। २। १२६ माया की अपनी शक्ति नही होती है। वह ब्रह्म का सकेत (रुख) पाकर सब कुछ करती है। इसीलिये अवतार मे भी सीता राम के साथ लगी है। बिना माया के रामलीला नही हो सकती है। तुलसीदास कहते हैआदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवत्तरेउ मोरि यह माया। १।१५२। राम और देवता मे अतर यह है कि देवता मायाधीन हैं और माया रामाधीन है। कबीर कहते है-राम की माया दुन्द मचावै। पार्वती भी माया हैठुम माया भगवान सिदर सकल जगत पितु मातु।9८१। कबीरदास राम को छोड़कर किसी दूसरे देवता को महत्त्व नही देते है। तुलसीदास ने अन्य देवताओ को तो रावण से भयाक्रात बताया है। केवल ब्रह्मा, विष्णु और शिव को महत्त्व प्रदान 8 । उसमे भी विष्णु और शकर को अधिक। अतवत्तार के टिये प्रार्थी ब्रह्मा भी विष्णु के 5 दम जान पड़ते है। वे कहते है-मोर न कछू बसाई। १॥१८४ | तुलसीदास यह नहीं हे ब्रह्म गो बनी धरती और देवताओ को लेकर किसके पास गये ? केवल कहते है कि

The text on this page is estimated to be only 41.04% accurate

दैपावे पाइन १२१ ह +्े ल्थ् है ह, दे शय हैये। प्रशू कौन है ? बाहों है? हुयाया इस का ही ईैसे है| हई हरी हाट हि सता नियदधमा। किंतु इसी प्राय, थाए बढ़ा धागे भाग रद गटतामी पदिलत की 75 मदरगत पी कै। प्रम था आध्यामिन दिया याएी मे होचा बहा गाए है हद हटा बानी धि थाना। गूरप कि गया देय जदामा। वाकटओो। सिंध सह दिदगीण के पिच८ के इश्मप हाट है। हुली एकाए मे शक खानी पा विधा के आयितर की द्वाव पी की गयी है- दिया फो है हद समुदारी। ३७१ शहिहत रिपतू मनुज फू गत ११% 2९) इस प्रकाय हा हा पडता हि, हम और विधा: डिस्काह शित्र #ै। गत हे परदाया की आम को लगे दिया के! पंदाए ही शागर है। नश्यीदाम परयाा की दिलाल डनीडाओ भरी मे हाई अबू दि और शाघ दो शक मानने के ए५ हो शत पर मप्र । काश में पूग भा साहित्य राम और दूध को परद्राट सय रए (नेडाइर] हदपार मामा है| गमव्युधा स्वत, प्राव्रणा है। तो ध्भी शस्थ मे भी फट भाते ऊाते मैं! पो) मशामात में कृपा हेंद् से ऐैटे तथा हृट्रएफ रूप भी माने गा 5 डुसरी कोर दरुधा दी एकशर्दिक मरा भी स्वीकृत है

गुरु सत कबीर ने गुरु के महत्त्व को बार-बार स्वीकार किया है। कितु उनके गुरु कौन थे इस पर उन्होने कुछ भी नही लिखा। सामान्य मान्यता के अनुसार उनके गुरु आचार्य रामानद जी थे। कितु स्वय कबीर साहब इसे नही कहते। उन्होने कही भी रामानद जी के रामावत सप्रदाय का उल्लेख भी नहीं किया है। बाबू श्यामसुदरदास लिखते है-''कासी में हम प्रगट भये है रामानद चेताए'' कबीर का यह वाक्य इस बात के प्रमाण मे प्रस्तुत किया जाता है कि रामानद जी उनके गुरु थे। जिन प्रतियो के आधार पर इस ग्रथ का सपादन किया गया है उनमें यह वाक्य नही है और न ग्रथ साहब ही मे यह मिलता है। अतएव इसको प्रमाण मानकर इसके आधार पर कोई मत स्थिर करना उचित नही जँचता। केवल किवदती के आधार पर रामानद को उनका गुरु मान लेना ठीक नहीं। यह किवदती भी ऐतिहासिक जॉच के सामने ठीक नहीं ठहरती। रामानद की मृत्यु अधिक से अधिक देर मे मानने से सवत् १४६७ मे हुई, इसके १४. या १५ वर्ष पहले भी उनके होने का प्रमाण विद्यमान है। उस समय कबीर की अवस्था ११ वर्ष की रही होगी, क्योकि हम ऊपर उनका जन्म सवत् १४५६ सिद्ध कर आए है। ११ वर्ष के बालक का घूम फिरकर उपदेश देने लगना सहसा ग्राह्म नही होता। और यदि रामानद जी की मृत्यु सवतू १४५६ के लगभग हुई तो यह किवदती झूठ ठहरती है, क्योकि उस समय तो कबीर को ससार मे आने के लिये अभी तीन-चार वर्ष रहे होगे। पर जब तक विरुद्ध दृढ़ प्रमाण नही मिलते, तब तक हम इस लोक प्रसिद्ध बात को कि रामानद जी कबीर के गुरु थे, बिल्कुल असत्य भी नही ठहरा सकते। (क ग्र, भूमिका, प् १८)। बाबू श्यामसुदरदास के इस लबे उद्धरण से स्पष्ट है कि रामानद कबीर के गुरु थे। यह प्रमाणपरक नही परपरापरक है। इस परपरा मे कुछ अन्य बाधाएँ भी है) पहली तो यह कि क्या रामानद जी महाराज आचार्य रामानुज की शिष्य परपरा मे आते है ? प्राय कबीर दास जी और तुलसीदास जी दोनो की गुरु परपरा रामानुजाचार्य और आचार्य रामानद की मानी जाती है। कितु कबीरदास जी और तुछसीदास जी की मान्यताओं मे अनेक मौलिक भिन्नताएँ है। आचार्य रामानुज, आचार्य रामानद एवं गो० तुलसीदास अद्वैत की अपेक्षा विशिष्द्वैतवादी है। जबकि कबीर साहब अद्वैतवादी है। जैसे गो० तुलसीदास को अद्वैतवादी मानने मे कठिनाई होती है वैसे ही कबीरदास जी को विशिष्द्वैतवादी मानने मे कठिनाई होती है। यो आग्रही विद्वानों को कभी कोई कठिनाई नही हुई। दूसरी कठिनाई यह है कि स्वय रामानद जी के लोग उन्हे रामानुज संप्रदाय से भिन्न मानते है। उनका तर्क है कि रामानद और रामानुज मे अनेक महत्वपूर्ण भेद है-उदाहरण के लिये श्रीमठ, पचगगा घाट, वाराणसी की स्मारिका (१९८९) पृ ७२,७३ पर कहा गया हैरामानंद संप्रदाय रामलुज संप्रदाय १ परातर ब्रह्म श्री राम जी है। १ रामानुज सप्रदाय के परात्पर ब्रह्म श्री े नारायण है। रे नद सप्रदाय का मत्रराज रा रामाय. २ रामानुज सप्रदाय का मत्रराज ओमू नमो (१५२)

१५ 3६ १७ १८, 9१९ २० गुरु नम है। इस सप्रदाय का नाम श्री सम्प्रदाय, ३ रामानद सप्रदाय, रामावत या वैरागी सप्रदाय है। सपूर्ण भगवन्नामो से प्रेम रखते हुए. ४ ओऔराम मंत्र सर्वोत्कृष्ट है। रामानद सप्रदाय मे ऋक, यजु, साम, ५ अथर्व ही वेद माने जाते है। | नाम दासान्त, प्रसादात एव शरणान्त ६ रहता है। तुलसी की कठी सततू धारण करना ७ होता है। किसी भी व्रत मे रात दिन उपवास | ८ भक्ति का अधिकारी मनुष्य मात्र। ९ पूजन मे शख प्रयोग। १० शाल्ग्राम के साथ गोमती चक्र | ११ पच सस्कार। १२ हनुमान पृज्य, उनका प्रसाद ग्रहण। १३ मदिरों मे राम, लक्ष्मण, जानकी की १४ प्रतिमा | चतु सप्रदाय (रामानद, विष्णु स्वामी १५ महत्त्व एव निम्बार्क) के मदिरो मे साथग दडवत् की प्रथा | रक्तश्री, श्वेतश्री (लश्करी) गोल श्री (विन्दुश्री) लुप्तश्री (चतुर्भुजी) १६ एव चद्र विदु इत्यादि तिलक भेद है। ध्येय श्रीरीम और गेय बाल्मीकि १७ रामायण। विरक्त परपरा। १८ जटा भस्म आदि। १९ दीक्षा सस्कार सभी प्रकार के विरक्तो २० को देने का अधिकार । १५३ नारायणाय है। रामानुज के संप्रदाय का नाम श्री सप्रदाय या रक्ष्मी संप्रदाय है। रामानुज सप्रदायो मे श्री राम के अलावे और मत्र तुच्छ है। रामानुज संप्रदाय मे द्रविड़ प्रबधम् भी माना जाता है। ” इनका प्रयोग नही होता है। मंत्र जप के बाद कठी उतार दी जाती है। रामनवमी एवं जन्माध्मी को जन्म के बाद पारण। वेदादि पढ़ा द्विज ही। शख अस्पृश्य | ् ऐसा नही होता। पच सस्कार नही हनुमान की पूजा नही, उनका प्रसाद अस्पृश्य | लक्ष्मीनारायण की प्रतिमा। अन्य सप्रदाय दडवत् की प्रथा नही। मात्र रक््तश्री लगायी जाती है। ध्येय लक्ष्मीनारायण, गेय कुछ भी नही। गृहस्थ परपरा अधिक। जटा भस्म कदापि नही। दीक्षा सस्कार केवल गद्दीधारी ब्राह्मण ही दे सकता है। हर १2 इस सूची को देखने से स्पष्ट है कि इनमे समानता और असमानता दोनो है। मूल बात है श्री को लेकर। श्री रक्ष्मी भी है। सीता भी है। हा, नारायण और राम का अतर महत्त्वपूर्ण है।

१५४ कवीर समग्र तो क्या किसी बड़े आचार्य को अपने सम्रदाय मे इतना अंतर करने का अधिकार नही है ? यह भी सभव है कि आचार्य रामानद ने रामानुज, दक्षिण की कोई दूसरी परपरा (विशेषकर कुलशेखर आलवार की) एवं कुछ उत्तर की आवश्यकताओं के अनुसार जोड़ा हो। इसलिये भी दोनो आचार्यो का सिद्धात पक्ष विशिष्द्वत है। जो थोड़ी भिन्नता है वह उपास्य के नाम और साधना पद्धति सवधी। इस पर अधिक विस्तार का अवसर नही है। रामानद और रामानुज की तुलना की उक्त चर्चा का उद्देश्य यह दिखाना है कि अपने आचार्य और पीठ की स्वतत्रता के स्थापना के कारण आजकल अधिक विचार हो रहे है। ऐसा नहीं होता तो स्मारिका मे सत कवीर एवं आचार्य रामानद के सप्रदाय की उपासना की भी तुलना की जाती है। क्योंकि कवीरपथ और रामानंद सप्रदाय मे ऊपर के दो संप्रदायो सें अधिक अतर है। उदाहरणस्वरूप कुछ बाते कही जा सकती हैकबीर पंथ रामानंदी संप्रदाय १. दड नही १, दडधारी २ वस्त्र सफेद २ गेरुआ ३ कबीर मठ ३ औओऔ गठ ४. मूर्ति पूजा का विरोध ४. मूर्ति पूजा ५ वैदों से कोई मतलव नहीं ५ वेद की मान्यता ६ सीता की चर्चा तक नही ६. सीता श्रीरूप मे उपास्य ७ ठक्ष्मण, हनुमान भी नहीं ७ हठक्ष्मण, हनुमान भी उपास्य ८ सस्कृत विरोधी ८, सस्कृत समर्थक ९ लोकभाषा के परम प्रचारक ९ लोकभाषा के प्रति आग्रह नहीं १० निर्गुण मार्ग १०. सगुण, निर्गुण मार्ग ११ पथ का सगठन ११ वैरागी (लड़ाकू) संगठन १२ (राम मत्र १२ रा रामाय नम इस प्रकार अनेक बताए जा सकते हैं। कवीर साहव अपनी रचनाओ मे कहीं भी तुलसी की माला की चर्चा नही की है। जबकि रामानद के सम्रदाय मे तुलसी माला अनिवार्य है। कबीर साहब संपूर्ण वाह्याइवर के विरोधी हैं। रामानद ने बाह्याडबर का वैसा खडन नहीं किया। बाद में कवीर पथ मे कवीर साहव की आराधना आरभ हो गयी। यह आराधना इतनी प्रबल हुई कि इसके नियमादि वने। कितु सत कबीर के साहित्य मे आराधना एवं परवर्त्ती कर्मकाडी की चर्चा नही है। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि सभी वैष्णव सप्रदाय अहिसावादी है। हिसा और बलि मे किसी का विश्वास नहीं है। रामानदी सप्रदाय मे भक्ति, ज्ञान और योग का मिश्रण है। यही वात सत कबीर के साहित्य मे भी है। जातिपॉति, छुआछूत का विरोध भी समान है। दोनो सप्रदायों मे व्रह्मचर्य पर जोर दिया गया है। रामानदी सप्रदाय के श्रीमठ के आचार्य स्वामी श्री रामनरेशाचार्य कबीर सप्रदाय, निरंकारी, रविदासी, घीसापथी, रामस्नेही, गरीबदासी इत्यादि को अपनी शाखा मानते है। कितु इनकी तुलना नहीं करते। क्यो और कैसे इन सप्रदायो से इनकी इतनी भिन्नता है ? रामानंद सप्रदाय शुक्ल यजुर्वेद अ ३१, मत्र २२ में आए श्रीश्चते लक्ष्मी च पल्यौ के आधार पर ब्रह्म की दो है 38 का विचार करता है। इनके यही श्री सीता है। रामचरितमानस से अनेक बार सीता को ... भरी कहा गया है- *

| टर7॥ पे पट कै रु च्ए 50९. “>> गुरु १५५ १ आगे राप सहित शी प्राता। 9 ५४ ४ २ उप्य बीच श्री सो्ति कैसी । ३ ७४३ ३, तदपि अनुज सहित खरारी। ३। १११८ ड़ डसहु इदय श्री समता) ३) १ ३) ? इस प्रकार सीता के छिये करीब बारई श्री शब्द का प्रयोग है। इस दृधि से तुलसीदास अधिक निकट दिखाई पड़ते है। कबीर साहब का श्री, सीता थीं लक्ष्मी से शमानदी कोई संबंध नहीं है। कबीर संप्रदाय काताभाव का स्थान नहीं हैं। रामानद जी ने वैष्णवमताब्ज विधान पर जोर दिया हैं। कबीरदास जी इस पर मौन है। इसी ग्रथ में शर, चाप, ऊर्ध्वपुड़, तीर्थ स्यीत्सव आदि का महत्व स्थापि कबीर से भिन्न है। किंतु भक्ति है योनि आदि के किसी भी निषेध दोनो विरोधी हैं। यद्यपि यह भी अनेक समानताओं का होना स्वाभाविक हैं। कि असमानताओ की करती है कि संत कंबीर रामानद जी से दीक्षित नही ये। जैसे रामानद के नही थे। यह भी संभव हैं उपाय पाकर इन्होने अपने को गुर सुन से भिन्न कर ढिया। यह भिन्न करने प्रवृत्ति प्रथा न होती तो सभव न था। शोध चाहे भी कहे कितु लोक और रामानद की परपरा का आचार्य रामानद की आचार्य रामानुज और संत कबीर ' मानता हैं। शोधी से इस में अंतर कठिन है। बीजक में एक स्थान पर कबीर रामानद को राम रस मत्त मानते है रामरस इससे भी कुछ पता नही ठगता हैं। हाँ, रामरस माते से एक सकेत है कि रामानद के चाहते है। कबीर भी विष्णु के उपासक नहीं शे। यही बात रामानदी संप्र लोग भी कहनी के राम भी विष्णु अवतार के गे ह अत दोनो में विष्णु या नारायण शमोपासना रामानद वाली सारी बात परवर्ती जान पड़ती हैं। नाभादास जी के कबीरदास का गुरु मारा गया हैं। किंतु रामानद नाभादास के कथन की प्रामणिकता कैसे पु होगी ? ने अपने गुरू का सथ नाम आचार्य है। कबीर और तुलसी मे स्पथ्ता नहीं है। इसकी कारण है चरमोपलब्धि में गुरु का महत्व भी नहीं हैं। जैसा कि योगवारसि८ठ (६.११८ ४) में कहा है शास्लैनोपि ईश्वर का दर्शन न शास्त्र न गुरु से होता है। यह तो अपनी सत्त्वस्थ बुद्धि ढरि भीतर ेल देखने की वस्तु हैं।

ईश्वर की अस्वीकृति यह सर्वमान्य बात है कि संत कवीर अवतार को अस्वीकार करते है। इस सदर्भ मे उनकी प्रसिद्ध उक्ति हैदसरथ सुत तिहुँ ठोक बखाना, राम नाम का मरम है आना। कहते है गो० तुलसीदास ने इस “आना” को आधार बनाकर ही पार्वती को शिव द्वारा कहलायातुम जो कहा राम कोड आना। जेहि च्ुति गाव धरहि मुनि ध्याना। कितु बात इतनी ही नहीं है। यह बात कही जा चुकी है कि कबीर के राम पूर्णत निर्गुण नहीं हो सकते। क्योकि पूर्ण निर्गुण का कथन सभव नहीं। स्वय तुलसीदास ने नाम को निर्गुण और सगुण के बीच की स्थिति माना है। उभय प्रवोधक कहा है। भगवान् के अस्ति, भाति, प्रिय ये तीन रूप है। नाम और रूप जगत रूप हैं। कवीर पूर्णत रूप वाले भले न हो नाम तो उनका महत्वपूर्ण आधार है। नाम सभी भक्तो सतो मे सामान्य एवं सर्वमान्य तत्त्व है। स्मरण और अभिव्यक्ति का आधार नाम ही है। इससे कभी नहीं समझा जा सकता कि कबीर सगुणोपासक है। सगुण तत्त्व आ जाने के बावजूद वे सगुण की प्रत्येक सभावना को अस्वीकार करते है। नकार उनका महत्वपूर्ण क्षेत्र है। 5 कितु एक दूसरी बात कहनी है। वेदातानुसार ईश्वर की सत्ता भी सोपाधिक है। वेदात सार (सदानद योगीन्द्र कृत) मे निखिलानंद का कथन है कि ईश्वर शब्द वेदांत मे विशिष्ट अर्थ रखता है। वेदातिक ईश्वर की निरपेक्ष सत्ता मे विश्वास नही करता है। अज्ञान सबद्ध ्ह्म ही ईश्वर कहा जाता है। पू० ७९। जब ईश्वर ही सोपाधिक है तो उसके अवतारों को मानने का कहाँ सवाल उठता है? ऐसे मे कवीर न केवल कि अवतार विरोधी हैं बल्कि वे ईश्वर की सत्ता के भी विरोधी है। वे वेदात की मान्यता से पूर्ण सहमत है। ईश्वर का सबंध सगुण-साकार से है। वेदात दृष्टि मे सभी सगुण साकार नाशवान है। सगुण का अर्थ है सत्त्व, रज, तम से बना या इन तीन गुणो से युक्त अगर कबीर इन गुणों की स्वतत्र सत्ता स्वीकार कर ले तो उनका निर्गुण बाधित हो जायगा। फिर सब कुछ सगुण की परिधि मे आ जायगा। इसलिये कबीर केवल ब्रह्म को ही सर्वनिरपेक्ष सत्ता मानते है। यही कारण है कि कबीर बार-बार यह भी नही, यह भी नही का प्रयोग करते है। जो भी दृश्य है वह सब मिध्या है। अज्ञान मूलक है। इसीलिये अवतार तो क्या ईश्वर की सत्ता भी भ्रम है। ईश्वर को मानने मे एक कठिनाई और है। वेदांत मान्यता मे तदाकारिता अतिम उपलब्धि है। ब्रह्म] को जाननेवाला ब्रह्म ही हो जाता है-ब्रह्मविद् ब्रहैव भवति। यह तभी सभव है जब आत्मा और परमात्मा की सत्ता एक हो। जीव ब्रह्म से भिन्न न हो। आचार्य शकर स्पष्ट कहते हैं जीवो ब्रहौव नापर । एक ही पानी वर्तनो की भिन्नता के कारण भिन्न दीखता है। वैसे ही माया का आधान पाकर जीव और ब्रह्म अलग-अलग दीखते है। अलग-अलग अनुभूति करते हैं। जीव मे जड़ के प्रति वासना का विकास होता है। जड़ की वासना के कारण लोभ, मोह, (१५६)

ईश्वर की अस्वीकृति १५७ देषादि पड़वर्गो की स्थिति उत्पन्न होकर दुख का कारण बनती है। सतो का काम है लोक को जड़ की वासना से निवृत्ति की शिक्षा देना। उन्होंने आला और परमात्मा की एकता की अनुभूति की है। अनुभूति के बाधक-साधक तत्वधर्मों को समझा है। समझकर ऐक्य विरोधी तत्त्वो से मुक्ति पायी है। उसे ही वे लोक कल्याणार्थ कहते है। जीव और ब्रह्म भिन्न होते तो इनकी एकता सभव नही थी। दो भिन्न तत्त्वो की एकात्मकता नही होती है। अढठ सवाल उठता है दोनो एक ही है तो भक्ति कौन करेगा ? किसकी करेगा ? यह प्रश्न तब और महत्त्वपूर्ण बन जाता है जब हम कबीर को भी भक्ति करते देखते है। बहुतो का ख्याल - है कि वेदाती या अद्विती दृष्टि से भक्ति समव नही। कितु कबीर तो वेदात के अद्वैत और भक्ति दोनो मे विश्वास करते है। इसे अज्ञानमूलक कहकर नहीं टाला जा सकता है। पुन वेदात की ही बात आती है। योगी सदानद ने ईश्वर का रूप जीव से भिन्न और विशिष्ट माना है- इस (उपाधि) से युक्त चैतन्य को सर्वज्ञता, सबका ईश्वर तथा सर्वनियता आदि गुणो वाला अव्यक्त, अतर्यामी, ससार का कारण रूप तथा ईश्वर आदि (नामों से) व्यवहत किया जाता है। जो सर्वज्ञाता, सर्ववित् है, इत्यादि श्रुत्यनुसार यह सपूर्ण अज्ञान का प्रकाशयिता है (वही, पृ ७८)। इसी के समर्थन मे मुडकोपनिषद् का एक उद्धरण प्रस्तुत हैयः सर्वक्षः सर्वबिद् यस्य ज्ञानमय तपः । तस्मादेतद् ब्रह्मनाम रूपमर् च जायते। अर्थ- "जो सबको (सामान्य रूप से) जाननेवाला और सबका विशेषज्ञ है तथा जिसका 30३२ तप है उस (अक्षर ब्रह्म) से ही यह ब्रह्म (हिरण्य गर्भ), नाम, रूप और अन्न उत्तन्न ता है।" इस श्लोक मे य (जो) तथा तस्माद् (उस) ये दोनो शब्द ब्रह्म के दो रूपो की ओर सकेत करते है। पहले को अक्षर ब्रह्म और दूसरे को हिरण्यगर्भ कहा गया है। हिरण्यगर्भ को ही आचार्य शकर ने कार्यब्रह्म कहा है (पुडको० १। १। ९)। इससे पता लगतो है कि जिसे ईश्वर कहा जाता है वह ब्रह्म का एक विशिष्ट रूप है। जीव से भिन्न और विशिष्ट। इसे पेड़ और धन के भेद से भी बताया गया है। ईश्वर समूह उपाधि वाला और जीव व्यध्ि उपाधि वाला है। ईश्वर वन है और जीव वृक्ष। समूह उपाधि महान् है। ईश्वर की यह समष्टि (समूहोपाधि) सबका मूल कारण होने के कारण कारणशरीर, आनद का प्राचुर्य होने के कारण समष्िभूत अज्ञानात्मा को कोश के तुल्य आवश्यक होने के कारण 'आनदमयकोश' तथा सूक्ष्म व स्थूल जगतू प्रपच के लयस्थान होने के कारण सुषुप्ति कहलाती है। (वेदात सार ३९ का अनुवाद) । इन उद्धरणो से एक बात स्पष्ट है कि ईश्वर की सगुणता जीव और जगत जैसी नही & | ईश्वर मूलत ब्रह्म ही है। ब्रह्म से उसका अल्गाव कामचलाऊ है। इसीलिये सत कबीर एक तरफ तो सबका निषेध करते है। क्योकि दृश्य ब्रह्म नही हो सकता। दूसरी ओर भक्ति करते हैं। भजते है। नाम जपते है। आँखो मे रूप देखते है। योग प्रक्रियाओ द्वारा साक्षात्कार करते है। सेवक बनकर समर्पण करते है। प्रतीक मे बने पति- पली भाव को भी सगुण आधार देते है। बिना किसी. आधार के पूर्णतः शून्य

का प्रतीक भी नहीं बन सकता। प्रतीक स्थूल मूर्ति है। किंतु उसके पहले मानसी मूर्ति की सृष्टि होती है। मानसी सृष्टि भी सगुण है। क्योकि मन भी का है। मन की सगुणता के कारण ही कबीर परमतत्त्व को मन की पकड़ के भी बाहर मानते जहाँ न दींदी घढ़ि सके, राई ना ठहराह। मन पवन का गमि नहीं, तहाँ पहुँचे जाइ।

१५८ कबीर समग्र इस प्रकार स्पष्ट है कि सत कबीर ईश्वर का सगुणीपासक जैसा रूप न मानकर भी वेदात की सीमा मे भक्ति का आधार खोज ठेते है। फिर भी कबीर ने ईश्वर को स्पष्त स्वीकार नही किया। फलस्वरूप सदगुरु ही ब्रह्म या ईश्वर का पर्याय हो गये। सदगुरु की पूजा का आरंभ हुआ। इसलिये कि सदगुरु पूर्णत स्थूछ ह॥ स्पष्ट है। इद्रिय सवेदना का विषय है। सत कवीर के साहित्य मे गुरु को पूज्य सेव्य मानने के तत्त्व मौजूद है। जब वे गुरु को गोविंद से भी बड़ा कहते है तो स्पष्त इसी बात की ओर सकेत करते है। एक दो वार तो उन्होने अपने को ही परमात्मा के रूप मे घोषित किया हैं- हमही आपु कवीर कहावा | गोस्वामी तुलसीदास के राम के भी तीन रूप है- राजा राम, मर्यादा पुरुषोत्तम राम एव ब्रह्म राम। कहा जा सकता है कि कबीर के ब्रह्म निरपेक्ष भी हैं। कितु साधना और भक्ति के लिये उनका एक उस ब्रह्म रूप से कुछ भिन्न रूप भी है। इसे स्पष्टतः ईश्वर न कहकर भी कुछ ईश्वर जैसा ही कहा गया है। ।

रमेनी रपैनी नाम देखकर स्पष्ट होता है कि यह शब्द रामायण के वजन पर बना हैं। आज-कल रामायण से सामान्य तातर्य तुलसी के रामचरितमानस से है। सामान्य छोग रामचरितमानस ही क्यो कवितावढी को कवित्त रामायण, राधेश्याम कथा वाचक द्वारा लिखी राम कथा को राधेश्याम रामायण कहते है। कबीरदास भी राम के उपासक थे। सभव है शिष्यो के मन में राम की रमैनी की कल्पना आयी हो। स्थय कबीर साहब ने ही रमैनी लिखी हो। एक सदेह उपजता है। इस सदेह के कारण है। एक यह | तुलसीदास जी ने एक दोहे मे साखी सबदी का उल्लेख किया हैसाखी सबदी दोहरा किहि कहिनी उपखान। भगति निरूपहि भगत कलि निदर्हिं वेद पुरान। इसमे रमैनी की चर्चा नहीं है। इससे संदेह होता है कि उस समय तक रमैनी नही लिखी गई थी। सभव है रमैनी के अति प्रचलन के अभाव मे गोस्वामी तुलसीदास की दृष्टि उधर न गयी हो। क्योंकि छोक मे प्राय साखी और सबद ही अधिक प्रचलित है। सत कबीर का सामान्य पाठक साखी अर्थात् दोहरा & दोह और सबद अर्थात् पद को ही अधिक गाता है। सभव है कि रमैनी सप्रदाय मे ही रह गयी हो। बीजक मे, सभी बीजको में रमैनी है। और बीजक गुप्त धन के समान है। इसे सामान्यत. छोक या अनाधिकारी से बचाया जाता है। सप्रदाय की मान्यतानुसार रमैनी की सख्या ६ छाख ९६ हजार मानी जाती है ।-छ छाख छानबे सहस रमैनी एक जीव पर होय-बीजक की भूमिका, श्री हुजूरमणि प्रकाश साहब, सीया बाग, बड़ौदा १९५५ ई. (डॉ० शुकदेव सिह-सपादक, बीजक, पू १ पर उद्धृत)। स्पष्ट ही यह सख्या अल्युक्ति पूर्ण लगती है। कितु डॉ० शुकदेव सिह के मतानुसार सभी बीजको मे रमैनी की संख्या ८४ है (वही, पृ २)। फिर गो० तुलसीदास ने रमैनी का उल्लेख क्यो नहीं किया ? क्या कहिनी और उपखान में रमैनियो को सम्मिलित माना जाय ? कितु कहानी और उपाख्याव का संकेत तो प्रेममार्गी कवियों से लिया जाता है। यह भी पता लगता है कि दोहे और चौपाई की परपरा पुरानी है। सभव है कबीर साहब ने कुछ रचनाएँ इन छदो मे की हों। नाभादःस ने कबीर की रमैनी को स्वीकार किया है-हिदू तुराक प्रमान रमैनी सबदी साखी। . एक कठिनाई और है। स्वयं कबीर साहब ने एक जगह कहा है-साखी सबदी गावत भूछे आतमराम न चीन्हा। यहाँ भी रमैनी का उल्लेख नहीं है। अब तो कहा नही जा सकता कि कबीर साहब भी रमैनी से अपरिचित थे। अगर रमैनी उनकी रचना है तो उसका उल्लेख करना चाहिए था। यहाँ तो किहेनी और उपखान का उल्ल्लेख भी नही है। रमैनी का विषय भी साखी, सबदी से बिल्कुल तो नहीं कुछ भिन्न है। इसमे सिद्धात पक्ष अधिक है। कितु अनेक रमैनियाँ ऐसी भी है जो स्पथ्त पदों (सबदी) के भावों से मिलती है। ऐसी भी रमैनियाँ है जो डॉ० श्यामसुंदरदास की प्रति मे पदावली के अतर्गत है, एवं डॉ० शुकदेव सिह के बीजक और डॉ० जयदेव सिह एवं डॉ० वासुदेव सिह द्वारा सपादित रमैनी के अतर्गत है। इनमे मात्र दो का उदाहरण संभव है। डॉ० श्यामसुंदर दास एवं डॉ० माताप्रसाद गुप्त की कबीर ग्रथावली मे(१५९)

 जौ पै करता बरण बिचरै, तौ जनमत तीनि डॉड़ि किन सरै ॥ टैका। उतपति ब्यंद कहाँ थें आया, जो घरी अरू छागी माया। दूसरा है-. बोलनों का कहिए रे भाई, बोलत बोलत तत्त नसाई। बोलत बोलत बढ़े बिकारा, दिन बोल्यों क्यूँ होई बिचारा। के तीनो सपादको ने इन्हे रमैनी के अतर्गत रखा है। यह तुलना और भी अधिक हो सकती है। कहना इतना ही है कि रमैनी विल्कुल भिन्न रचना नही है। एक कई प्रकार की भाषाशैी तथा विषयवस्तु का प्रयोग करता है। फलत लोगो को एक ही लेखक को कई लेखक मानने का भ्रम हो जाता है। निराला जी ने राम की शक्ति पूजा लिखी है तो कुकुरमुत्ता की भाषा शैली बिल्कुल भिन्न है। ऐसे ही प्रसाद के 'काव्य कछा तथा अन्य निवध" की भाषा शैली प्रसाद की कहानियो और नाटको की भाषा से विल्कुल भिन्न है। प्रेमचद ने जब जो समझा लिखा। अब उन्हे अपनी पार्टी विचारधारा के अधिक नजदीक हछाने के क्रम में ठोग उनकी कुछ ही रचनाओं को प्रमाणिक मानते है। शेष के बारे मे कहना चाहते है कि वे प्रेमचंद की प्रतिनिधि रचनाएँ नही है। प्रेमचद ने उन रचनाओ से मुँह मोड़ लिया था। जिन्हे वे मानते है उनकी व्याख्या भी पार्टी पक्ष मे करते है। ऐसे ही कबीर की साखियो, सबदों और रमैनियो का विभाजन भी स्वय कबीर साहब का न होकर दूसरों का है। अपनी सुविधा के लिये छोगो ने साखियो मे जीव, सदद मे ब्रह्म एव रमैनी मे जगत सबधी विचारों की चर्चा की है। वस्तुत जीव, जगत और ब्रह्म विचार ही सतो के विचार है। इसीलिये तीनो मे तीनो के विचार मिले है। रमैनी मे एक स्थान पर स्पष्ट कहा है कि परमतत्त्व अकथनी है। परमतत्त्व राम की रमैनी अर्थात् चरित्र का गुणगान नही हो सकता हैजाकर नाथ अकहुआ रे भाई, ताकर काह रमैनी गाई। यहाँ रमैनी से अर्थ है राम की कथा या गुणानुवाद। अब स्पष्ट है कि रमैनी का विषय क्या है ? यहाँ सकेत ब्रह्म से हैं। सत कबीर उच्च कोटि के साधक थे। अत उनकी सभी रचनाएँ परमतत्न के साक्षात्कार का परिणाम हैं। इसलिये साखी (साक्षी) शब्द के आधार पर केवल साखियो को स्वसवेद्य या स्वानुभूत मानना ठीक नही है। सभी रचनाओ मे समानता हो। सभव है सत कबीर ने दोहो और पदो मे अलग-अलग समयो मे गाया हो। इन्हे साखी, सबदी, रमैनी नाम शिष्यो ने अपनी सुविधा के लिये दिया हो। कहरा, वसत, बेलि, विरहुली, चाचरि, हिडोला चौंतीसा, विप्रमतीसी आदि काव्यरूपो को कबीर की रचना मानने मे कठिनाई जान पड़ती है। कबीर के जिस मुक्त व्यक्तित्व की कल्पना हमारे दिमाग में है, लोक चित्त मे है उसमे ये रचनाएँ बाधा पहुँचाती ह। केवल मिलते विचारो के आधार पर कुछ कहना कठिन है। कवीर के नाम पर जो अनेक 'कवीरा', 'जोगीड़ा' आदि का प्रचार पाया जाता है उनका आरभ इनसे जोड़ा जा सके तो आश्चर्य नहीं। अनेक सग्रहकारों ने इन्हे अप्रामाणिक मानकर अप्ने सग्रहो मे स्थान नही दिया है। अत मे यूँह कि रमैनी के बारे मे जब तक कुछ निश्चय न हो जाय परपरा के अनुसार इन्हे सत कबीर की रचना मानकर सग्रहो मे स्थान देना ही होगा। एक महान् रचनाकार जिसकी सारी की सारी रचनाएँ अलिखित और

लोककठ, वह भी अव्यवस्थित लोककठ मे प्रचलित है उनके प्रमाणिक पाठ के बारे मे अतिम निर्णय हो भी क्या सकता है? केवल मानने की बात है।

समाज सुधारक पुराने कवियो का अध्ययन समाज सुधारक के रूप में नहीं किया जाता था। कालिदास, भवभूति, माघ, दही आदि को कोई समाज सुधारक नही कहता है। इसके दो बड़े कारण है-एक यह कि ये कवि अपनी कविता के लिये प्रसिद्ध है। कविता का अर्थ है सौदर्य त्त्‌्व। भावो का सौदर्य, भाषा का सौदर्य, अभिव्यक्ति का सौदर्य और अत मे पुरुष, प्रकृति एव जगत का सौदर्य | इसी प्रकार विद्यापति, जयदेव, चडीदास, केशव, देव, बिहारी, घनानद आदि कवियों का अध्ययन भी समाज सुधारक के रूप मे नही किया जाता है। क्यो ? क्या ये कप्रि समाज निरपेक्ष थे. इन्हे समाज से कुछ भी लेना देना न था ? क्या ये समाज विरोधी तो नहीं थे २ कितु समाज विरोध भी एक ढंग की सामाजिक चेतना है। विरोध मे भी सामाजिकता का महत्त्वपूर्ण लगाव और चेतना है। कितु संत्तो और भक्तों की सामाजिकता का अध्ययन बड़े पैमाने पर हुआ है। जब कि सच्चाई यह है भक्त और सत उक्त कवियों की अपेक्षा अधिक समाज निरपेक्ष कहे जा सकते है। सभी भक्त संत मुक्ति साधना में मस्त है। हाँ, एक अतर भी है। निर्गुण-त्रिगरिकार की ओर झुके सत की मुख्य दृष्टि मुक्ति की ओर है। जब कि सुगणोन्मुख भक्त भक्ति पर जीर देते है। निर्मुण की अपेक्षा सगुण साधना मे सामाजिक सुधार की सभावना अधिक है। भक्ति का उद्देश्य परमात्म एकामकता है। सत (या साधु) का उद्देश्य समाज सुधार न भी हो तो उनकी वाणी मे ही सुधार की प्रेरणा रहती है। उनका आचार छोक को आचारवान्‌ बनाता है। उनका व्यक्तित्व सकेतित करता है। वे मानवता के माडल होते है। इसीलिये वे एक होते है। जब कि कबीर कहते है कि साधुओं की जमात नहीं चलती तो उनका सकेत उसी माडठ की ओर है। माडरू या आदर्श प्रतिमा अनेक नहीं एक होगी। यहाँ बहुवचन के लिये स्थान नही है। साधु, सत, महात्मा ये सब एक वचन शब्द है। संत, महात्मा, साप्रदायिक या पथी बनने का उपदेश नहीं देते। उनका आचरण किसी खास समुदाय या देश काल के लिये न होकर सार्वकालिक और सार्वदेशिक होता है। इसीलिये संत कबीर ने अहिसा, सत्य और शाति (भीतरी बाहरी) पर जोर दिया। जब वे दूसरे सप्रदायो या पथो के आचरण की निदा करते है तब उसके पीछे कोई द्वेष नही होता। अपने को बड़ा , कहने का भाव नही होता। भाव कैवरू यह होता है कि बाहरी आचरण में आनेवाले|तत्त्वों को भीतर की शात्ति, अहिसा और सत्य से जोड़े रखना चाहिए। धर्म का मूल भीतर है। भीतर को शुद्ध रखकर ही बाहर को शुद्ध रखा जा सकता है। जब वे कहते है कि “दढ़िया बढाइ जोगी हो गइले बकरा” तो इसका इतना ही अर्थ है कि दाढ़ी का भीतर की शुद्धता से सबंध होना चाहिए। इसीलिये प्रथम वाक्य मे कहते है-मन न रयायो रगायो जोगी कपरा। मूल बात है मन रगना। मन का परिवर्तन। क्योकि इद्रियो मे मन सबसे महत्त्वपर्ण है। मन अगर चचल रहा। विषयों मे दौड़ता रहा तो बाहर के सारे उपाय व्यर्थ है। मन परिवर्तन के अभाव मे बाहर के सारे परिवर्तन व्यर्थ है। ससार का एक भी सुधारक ऐसा नही है जो मन परिवर्तन को अस्वीकार

करता हो। बिना मन परिवर्तन के मत परिवर्तन सभव नही। गीता मे अर्जुन ने कृष्ण से कहा था मन चचल है (चंचल 'हि मन ।३४))। । ऐसी सत कबीर भी कहते है- ह कृष्ण ६।३४!)। । ऐसी ही बात बुद्ध ने कही थी। (१६१ ४

१६२ कबीर समग्र चंचल मनुवा चेत रे, सौथे कहा अजान। यम घर जब ले जायगा, पड़ा रहेगा ग्यान। इसलिये कोई यह नही समझे कि कबीर बाहरी रूपरग या अचारण को महत्त्व नही देते है। देते है। कितु वे बाहर को भीतर का प्रतिबिम्ब बताना चाहते है। भीतर की शुद्धता कठिन है। साधना संभव है। अत वह आवश्यक है। भीतर शुद्ध हो तो वाहर के कर्मकाड मे भिन्न होकर भी कुछ अतर नही आता। कबीर जब हिंदू और मुसलमान, जैन और बौद्ध सबको ललकारते है। दोनो, चारो या सभी के कर्मकाड को व्यर्थ कहते है। तो केवल इस बात का सकेत करते है कि कर्मकाड महत्त्वहीन है। असल है मन की पवित्रता। चूँकि मन सभी का एक है इसलिये सबको समान मत का होना चाहिए। मन की शुद्धता की दो पद्धति नही हो सकती है। ऐसा नहीं हो सकता है कि हिंदू का मन और मुसलमान का मन अल्ग-अछग ढग से सुधारा जाय। कठिनाई तब आती है जब साप्रदायिक आग्रह के कारण मन विकृत रहता है। यह विकृत मन ही भेदभाव उत्पन्न करता है। विकृति या विकार के हटते ही भेदभाव समाप्त हो जाते हैं। सतो ने अपने मन को सुधारा था। वे चाहते थे कि दूसरो के मन भी सुधरे। साफ हो। विकार दूर हो। इसी सदर्भ मे सत कबीर निदक का महत्त्व भी स्वीकार करते है। मन बाह्य नही अत्तर्तत्त्व है। इसलिये मन के सुधार या स्वच्छता के उपाय भी भीतरी है। बाहर के प्रयतलो से मन के विकार दूर नही हो सकते। कबीरदास जी ठीक कहते हैएक जो दोस्त हमहूँ किया, जिहि गल लाल कबाय, सब जग धोबी धोड़ मरे, तो भी रंग न जाय। कहना इतना ही है कि मन बाहरी प्रयलो से शुद्ध नही हो सकता है। हाँ, एक बाहरी के के लिये गुजाईश है। वह है निदक। कबीर शायद एकमात्र व्यक्ति है जो निदक को महत्त्व निंदक नियरे राखिए आंगन कुटी बँघाई। दिन सावण पोंणी बिना निरमल करै सुभाद। यह निदक महत्त्वपूर्ण है। यह त्रुटियाँ बताने मे महत्त्वपूर्ण होता है। जैसे साबुन और पानी * अपने को नथ्कर वस्त्रादि को स्वच्छ करते है वैसे ही निदक अपना समय बर्बाद कर दूसरों के मन की मैल को दूर करता है। उसकी कमजोरियों बताता है। यह बात स्वय सत कबीर पर भी लागू होती है। वे जब सप्रदायवादियो के बाह्याचारो और आडबरो की निदा करते है तो उसका मतलब उन्हे नीचा दिखाना नही, सुधारना है। इस प्रकार कहा जा सकता है सत कि कबीर की दृष्टि मे मन सुधर जाय तो सारे सुधार स्वय हो जायें। मन तो प्रत्येक व्यक्ति के भीतर है। कही बाहर और दूर नही है। इसलिये उसके सुधार के प्रयल भी शातिपूर्वक बिना किसी हल्लागुल्छा के ही सभव है। इसीलिये कबीर अजान एवं घटाघड़ियाल, मदिर-मस्जिद दोनो को व्यर्थ बताते है। यहॉ तक कि जपना भी हो तो भीतर मे जपो। अजपा जाप जपो। भीतर सुधारना है ती भीतर मे जपो। बाहर मे जपने से फायदा ? बाहर की आवाज कौन सुनता है ? मन को सुनाना है तो मन मे, मन ही मन-जपो। कितनी का स होगी, विकार होगा, कुछ न कुछ प्रभाव तो पड़ेगा ही, जैसे रसरी से पत्थर घिस जाता इसीलिये मन के दो भाग है। विकृत

मन और विकाररहित मन। विकाररहित मन ही _ रमाला में तदाकार होता है। इसे अमनीभाव भी कहते हैं। अमन ।मनरहित/मन। मन का

समाज सुधारक १६३ स्वभाव है चचलता। तो यह मन निश्चल हो जाता है। किसी भी विषय की उत्तेजना से मुक्त । मन व्यक्तिगत है। अत व्यक्ति मन-का सुधार ही समाज सुधार है। सुधरा व्यक्ति मन ही समाज सुधारक हो सकता है। मन के सुधार के अभाव मे किसी समाज सुधार की आशा व्यर्थ है। यह बात अब प्राय. सर्वस्वीकृत हो रही है। बिना मन बदले किसी भी बदलाव की बात व्यर्थ है| मन बदल कर सत कबीर एक पूर्ण मनुष्य की कल्पना करते है। वह मनुष्य जो स्वत पूर्ण हो। जिसे अपनी पूर्णता और आवश्यकताओं के ठिये दूसरो पर निर्भर न रहना पड़े। जो दूसरो की पूर्णता मे बाधक न हो। जो अपनी आवश्यकताएँ इतनी सीमित रखे कि वह दूसरो की आवश्यकताओ मे बाधक नही बने। सत कबीर जब कहते है-. साईं इतना दीजिए, जामे कुदुम समाइ। में भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाइ। ग तो वे कई बाते एक साथ कहते है-देना प्रभु के हाथ मे है। प्रभु ही दाता है। उससे अधिक नही मॉगना है। अपने परिवार और अपने समाज के लिये मॉगना है। कितना ? जितने से शरीर यात्रा हो सके। भूख भर मिट जाय। हम्बा चौड़ा नहीं। साजसज्जा और आडम्बर नहीं। केवल 'पेट समाता छेइ'। मत्ततब यह कि जितने से भूख की निवृत्ति हो सके। बस | यह एक भिन्न ढग की समाज व्यवस्था की कल्पना है। यह ऐसा साधु समाज है जिसमे शोषण, सग्रह और हिसा के लिये स्थान नही है। यह अस्तेय और अपरिग्रह का समाज है। आदमी अधिकतम सुख की आशा मे अधिकतम परतत्रता स्वीकार करता है। यह परतत्रता मनुष्य, मशीन या भौतिकता की हो सकती है। किसी भी परतत्रता के मूल मे अधिकतम सग्रह का छोभ है। अधिकतम सुखो का सग्रह। इसीलिये वे सुख और दुख दोनो को ला है। सुख का सग्रह तो बुरा है ही। दुख का रहना भी बुरा है। सुख और दुख दोनो दुखिया मूवा दुख को, सुखिया सुख को झूरि। सदा आनंद राम के, जिनि सुख दुख मेल्हे दूरि। सग्रह का अर्थ है जो पकड़ ले। सुख या दुख दोनो की पकड़ मनुष्य को परतत्र बनाती है। आचार्य शकर ने ढोभ, मोह को दुख का कारण कहा है। लोभ, मोह ही ससार है। सत हा ससार पर अधिकार चाहता है। वह लोभ, मोह का दास न रहे। लोभ, मोह ही उसके दास महाकवि रवीद्रनाथ ने बहुत अच्छी बात कही है--हे प्रभु, मै यह नहीं चाहता कि आप विपत्ति मे मेरी रक्षा करे। चाहता यह हूँ कि व्यक्तित्व अभय वाला हो। दुख एव व्यथा मे तुम भले ही मुझे सौत्वना न दो। कितु मेरा व्यक्तित्व ऐसा बना दो जो दुख पर विजय प्राप्त करसकै-विपदे भोरे रक्षा करो ए नहे मोर प्रार्थना, बिपदे आपि ना येन करि भय। दुःख तापे व्यवित घिते नाइ वा दिले सान्त्वना, दुग्खे येन करिते पारि जय। यह इस बात का प्रमाण है कि व्यक्ति वस्तु नही व्यक्तित्व चाहता है। वस्तु की मॉग एक प्रकार की भीख जैसी है। नही, भीख नही। व्यक्तित्व का निर्माण। ना किक रवीद्र और कबीर दोनो ही अतर का विकास चाहते है। कबीर का आत्म विकास प्रसिद्ध है। रवि

१६४ कबीर समग्र वाबू भी 'अतर्विकास' की प्रार्थना करते है। सतो का विश्वास है कि सच्चा व्यक्ति कभी भूखा नही रह सकता हैभूखा भूखा कया करै, कहा सुनाबै लोग। भौंडा घड़ि जिनि मुख दिया, सोई पूरन जोग। इसलिये आर्थिक पक्ष से मनुष्य को निश्चित रहना चाहिए। सपत्ति ईश्वर विरोधी है। सपत्ति मे ईश्वर नही है-सपटि मॉहि समाइया सो साहिब नहि होइ। इसलिये सत मधुकरी को पसद करते हैमीठा खाण मधुकारी भाँति भाँति को नाज। दावा किसही का नहीं बिन बिलाइति बड़ राज । दूसरी ओर वे 'मॉगण'' को मरण समान भी कहते है। इसका इतना ही मतलब है कि आवश्यकता से अधिक सग्रह न करो। आर्थिक क्षेत्र मे नही सामाजिक क्षेत्र मे भी संत कबीर किसी पारिवारिक सबंध को उपयोगी नही मानते है। सारे सबंध निरर्थक है। केवल परमात्मा से सवध ठीक है। मनुष्य की निजी शक्ति नही है। जो भी शक्ति दीखती है वह उसी परमात्मा की शक्ति हैकबीर करणी क्या करे जे राम न करे सहाइ। प्रभु की कृपा से ही दुख-सुख की प्राप्ति होती है। मनुष्य तो केवठ कर्म कर सकता है। फल प्रभु के अधीन है। सतत कवीर जब जाति व्यवस्था की निदा करते है तो उसका धार्मिक एवं दार्शनिक आधार है। प्राय सभी धर्म दर्शन समतामूलक है। इसीलिये धर्म दर्शन की समता में जाति, उसके क्रम या ऊँच नीच का कोई सवाल नही हो सकता है। इस दृष्टि से कबीर जाति व्यवस्था को अस्वीकार करते है। इसी प्रकार राजा, बादशाह और सम्राट् की अपेक्षा साधु (भक्त) बड़ा हैअर्ब खर्ब हां द्रव्य है उदय अस्त लीं राज। भक्ति महातम ना तुडै, ई सभ कौने काज। कहना चाहिए कि सत कबीर भौतिक समृद्धि के समर्थक न होकर आत्रिक ज्ञान की समृद्धि के विश्वासी है। भौतिक समृद्धि तो माया है। धन सपत्ति का लोभ मनुष्य को प्रभु विमुख बनाता है। इसलिये वह त्याज्य है। सत गठरी नही बॉधते। पेटभर ही लेते हैसंत न बाँधे गॉठरी पेट समाता लेइ। मतलब कि जो आवश्यकता से अधिक छेता है वह असत है। संत केवल जीवन निर्वाह के लिये लेता है।

उपील लय कलनन कननिनननलननन+ न नाप कुणनकान रन कल न न+
>> ननद भौज परपंच रचो है परपच (प्रपच) क्या है ? प्रपच का अर्थ है सृष्टि। ससार। जगत। इसलिये कि यह जगत पच का विस्तार है। पच विस्तार का अर्थ है पॉँच से बना। पच महाभूत। आकाश, वायु, अग्नि पानी और पृथ्वी। यह ससार इन्ही पॉचो से बना है। यह, वह, मै, तुम सभी इन्ही पाँचो के निर्माण है। अत सारी सृष्टि प्रपष कही जाती है। सृष्टि अत्यत उलझन भरी है। नाना प्रकार के कर्म, अकर्म और विकर्म है। पूरा कर्म जाल है। ससार मे जो भी है, इस जाल के भीतर है। इस जाल को और बढ़ानेवाला जालिया है। इस जाल को नष्ट करनेवाला, तोड़नेवाला सॉवलिया है। इसीलिये कृष्ण भक्त बार-बार इस सावलिया का स्मरण करते है। राम कृष्ण के रूप मे जो भी विश्वास करते है वे इन्हे सॉवला ही बताते है। साँवला ही इस जाल से मुक्त करने मे सक्षम है। कबीरदास इस सॉवलिया का स्मरण नही करते। कितु सावलिया का रग नीला है। आकाश रग। वह आकाश सा नीला । सूक्ष्म और व्यापक है। बाहर विराट् है और घट मे व्यधि है। इसीलिये एक ही आकाश को दो नाम देते है-आकाश और घटाकाश। आकाश भी घट-घट मे व्याप्त है और प्रभु भी घट-घट निवासी है| ऐसे घटि घटि राम है, दुनिया देख नॉहि। ज्ञानी प्रपच से मुक्त रहना चाहता है। मुक्त रहता है। इसलिये प्रपंच का मुख्य धधा अज्ञानियो का है। स्वय अज्ञानी है। दूसरो को भी अज्ञान मे रखना चाहते है। अज्ञान उनका : स्वभाव बन गया है। अज्ञान बढ़ता है। जाल बढ़ता है। दोनो का परस्पर सबध है। सभी जीव मछली के समान जाल मे फंसे है। प्रपण जाल। गो० तुलसीदास कहते है-. * जलचरबुंद जाल अंतर्गत सिमिट होंहि इक पासा। एकहिं एक खत लालच बस नहिं जानहि निज नासा ।-विनय० अब एक बात साफ है कि प्रपच और कुछ नही सारा ससार ही प्रपच है। सभी प्रपच जाल मे फँसे है। एक दूसरे का नाश कर रहे है। अपना नाश कर रहे है। जाल होता ही नाश के लिये है। नाशकारी ही जाल बिछाता है। नाशकारी अर्थात् शिकारी। शिकारी पहले फंसाता हैं। लोभ देकर। फिर पकड़ता है। पकड़कर मारता है। मारकर स्वाद लेता है। वाह, खूब बना। प्रत्येक जीव जाल मे है। अत स्वाद बननेवाला है। किसी न किसी का भोज्य बनेगा। उसके भूख और स्वाद को तृप्त करेगा। हो सकता है वह ऐसा शिकारी हो जो कभी तृप्त न हो। तृप्ति क्या सहज है ? 'सहज होता तो नित्य शिकार क्यो होता ? शिकारी का पेशा क्यो होता ? पेशेवर शिकारी क्यो होते ? इसलिये कि भूख नित्य है। नित्य भूख नित्य शिकार की मॉग करती है। अत नित्य शिकार हो रहा है। बड़ी मछढी छोटी मछली एवं बलवान् कमजोर का शिकार कर रहे है। उत्तरोत्तर बलवान शिकारी बन रहा है। सभी कमजोर शिकार बन रहे है। ताकतवर और कमजोर सापेक्ष्य शब्द है। कोई कही कमजोर है। कोई कही बलवान है। समाज मे देखा जाता है कि सब एक दूसरे को दबाने में »गे है। अब सवाल उठता है इस प्रपंच को रचा किसने ? सत कबीर कहते है यह रचना ननद भीज की है। एक नही दो की रचना है। क्यो

दो ? रचना एक से भी तो हो सकती थी। दो है तो दोनो की प्रकृति मे कुछ अंतर भी होगा। दो है तो दोनो के स्वभाव का अतर भी देखना होगा। एक ननद|है। दूसरी भीजाई। असल होना तो चाहिए था दोनो मे झगड़ा। किंतु झगड़ा (१६५) न लिन लिन जी भननन रन चित >>

१६६ कबीर समग्र नही मेल है। मेल भी सामान्य नहीं। षड़यत्री मेल। प्रपची मेल। सत कबीर व्यग्य से सकेत करते है। ननद भौजाई दोनो दुष्ट है। शरीफ औरते नही है। छड़ानेवाली है। फेंसानेवाली है। शिकारी है। इन्होने ही सबको फेंसाने का जाल फैला रखा है। सत कबीर इनके कर्म से प्रसन्न नही है। कोई भी प्रसन्न न होगा। भठा यह भी कोई बात है कि जाल पसारनेवाले से कोई प्रसन्न हो। कभी शिकार शिकारी से प्रसन्न होता है। सारे जीव तो शिकार है। ये दो महिलाएँ ही शिकारी है। लोगो को फेंसाने के लिये जाल पसार रखा है। कबीर के ही शब्दों मे तिरगुन फॉस लिये कर डोलै, बोढै मधुरी बानी। मधुरी बानी भी धोखा। तीन रस्सियाँ है-सत, रज, तम। तीनो गुण। तो सारे जीव इन्ही रस्सियो से बँधे है। वहाँ तो सत ने स्पष्ट कहा माया ठगनी के हाथ में रस्सी है। माया ही सबको बॉधना चाहती है। फेंसाना चाहती है। मीठी बोली से, सुदर रूप से। स्वाद, गध और स्पर्श से। इसी माया ने घर मे बड़ा भारी झगड़ा लगा रखा हैसंतो घर में झंगरा भारी। राति दिवस मिलि उठि उठि लागे, पाँच ढोटा एक नारी। न्यारो न्यारो भोजन चाहै पाँचो अधिक सवादी। पॉच ढोटा अर्थात् पॉच ज्ञानेद्रियाँ। जीभ, आँख, कान, नाक, त्वचा। ये बुद्धि से रोज झगड़ा करते है। बुद्धि इन्हे समम सिखाना चाहती है। कितु ये इतने सवादी है कि बुद्धि का कुछ भी सुनना नहीं चाहते है। सवादी का अर्थ है स्वाद की इच्छा वाढा। स्वाद मे निमग्न रहनेवाला। यह सवादी मे स्वाद की इच्छा अधिकाधिक बढ़ने का भाव है। जैसे आग मे घी से आग और तीव्र होती है। ' कितु यहॉ भी एक ही नारी है। कबीर तो दो नारियो की.बात करते है-ननद, भौज। माया जाल पसारती है। तीन रस्सी लेकर चलती है तो स्पष्ट है कि ननद भौज का सबंध भी माया से है। कितु कबीरदास माया के दो रूप नहीं मानते। उनके लिये माया एक है। माया स्‌्क बुरी है। बुरी है। बस। माया राम की है-यह माया रघुनाथ की खेलन चढी अहेरै। राम तेरी माया दुद मचावै। यहाँ इससे कुछ नही निकलता है कि माया किसकी है ? मूल प्रश्न है कि माया दो कैसे है ? इसका उत्तर कबीर साहित्य मे नही है। इसका उत्तर अन्यत्र से लेना होगा। माया के दो रूप माने गए है-विद्या माया और अविद्या माया। वेदात के प्रसग मे इसकी चर्चा आ चुकी है। 'जिस समय जीव ब्रह्म से पृथक्‌ हुआ उसी समय माया ने उसे घेरा। उसके हृदय मे अह भाव उत्पन्न हुआ। मै और मोर के पश्चात्‌ तू और तेरा भाव भी आ जाता है (मानस पीयूष, अरण्य०, १५४) | इसके दो भेद है-विद्या और अविद्या। अविद्या दुख और अतिशय दुख रूप है। इसके वश मे पड़कर जीव भवकूप मे गिर जाता है। दूसरी गुणो के बस 8 या गुणो को बस में कर ससार की रचना करती है। इसका बल निजी न होकर प्रभु ते सबक एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा। जा बस जीव परा भवकूपा। एक रचे जग गुन बस जाके। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें।३।१ ५॥५-६ सामान्यत सत कबीर इस भेद को नही मानते दीखते है। कितु जब वे दो स्त्रियो के प्रपच की बात करते है तब उनके मन मे इन्ही दोनो (विद्या, अविद्या) का ख्याल रहा होगा। क्यो ससार रचना और उसकी सारी

अशाति के मूल मे ये ही दोनो है। दोनो ही ननद और भौजाई एक ही परिवार की है। विद्यामाया जीव की बहन जैसी है। क्योकि जीव ब्रह्म से उत्नन्न है तथा माया ब्रह्म की शक्ति है। अविद्या का सबध पूर्णत जीव है। ध् जीव उसी के कारण भवकूप, विषयकूप मे पड़ा है। उससे विषय सुख की अनुभूति करता है।

ननद भौज परपच रचो है १६७ अत अविद्या विद्या की भौजाई है। चैतन्यात्ा इन दोनो ननद भौजाई के प्रपच को देखती है। ये चालाक है। यह प्रपच है तो इनका, कितु वे इसे परमात्मा का बताती है-मोर नाम कहि लीन्हा। वास्तव में आत्मा से असग है। प्रघष उसका काम नही है। कितु वह सारे कर्मो का अध्यक्ष है। आश्रय है। अत* उसका नाम ढंग जाता है। असर मे तो प्रपच से उसका कोई मतलब नही है। कबीरदात जी ने एक स्थान पर ब्रह्म को ननद का भाई कहा भी है- अब मोहि हे चल ननद के बीर अपने देसा। ननद का भाई अर्थात् पति। ;$ मोर नाम कहि लीन्हा मे ध्वनि यह है कि संसार मे जो कुछ होता है सब माया करती है। कितु माया इसे अपने नाम से नहीं चला सकती। जैसे नम्बर दो का धधा करनेवाले छेबढ किसी प्रमाणिक कपनी का लगाते है। ये महिल्ाएँ वदचलन भी है। निस्सीम बदचढनपिता सगहि भई बावरी। कन्या रहलि कुँवारी। खसमहि छोड़ि ससुर सग गौनी, सो किन लेहु बिचारी। . माया और अविद्या की इस बदचलनी से संतो को, विचारवान् पुरुषों को आश्चर्य होता है। माया कुमारी कन्या है। ब्रह्म उसके पिता है। क्योंकि वह ब्रह्म अचिन्त्य शक्ति है। कितु ब्रह्म न पीछे ही पागल है। ब्रह्मश जीव को परेशान करती है। आखिर जीव भी तो ब्रह्म ही है। व और ब्रह्म का भेद तो इसी माया के कारण है। जैसे कोई फोई बहू आकर घर मे फूट ल देती है। पिता पुत्र, भाई भाई, माँ बेटे मे झगड़ा करा देती है, वैसे ही माया ने पिता ब्रह्म गे पागल होकर बुर कर रही है। माया का कोई भरोसा नही, कब किससे क्या संबंध कर | ब्र करती है माया। प्रपच माया खेल है। कितु नाम प्रभु का लिया जाता है। मोर नाम कहि ना। प्रपच माया का है। अतः बुरा है। मुक्त होने के लिये है। प्रपच प्रभु का होता तो मुक्ति | आवश्यकत्ता नही थी।

बाप जनमिया पाछै पहले जनम पूत का भयउ, बाप जनमिया पौ्। क्या कहते है कबीरदास? कैसा विरोधाभास है ? पुत्र पहले और पिता पीछे ? भला ऐसा कही होता है ? लोग कहेगे होता क्यो नही है ? हर पुत्र बाद मे पिता बन जाता है। कितु ऐसा भी पुत्र हो सकता है जो पिता बने ही नही। पुत्र ही बना रह जाय। कितु यह तो आशा के विपरीत हुआ। सामान्य नहीं, असमान्य हुआ। कवीरदास जी कया असामान्य की बात कहते हैं ? नही, वह न सामान्य है न असामान्य।| हर पुत्र मे पिता बनने की शक्ति है। वह पिता का पुत्र है। पिता बनने के लिये है। पिता से पिता। पुत्रत्व तो बीच की स्थिति है। हर व्यक्ति पिता के यहाँ से आया है। पिता बनकर जायगा। पिता की यही इच्छा है। शायद पिता ने उसे यहाँ भेजा ही इसीलिये है। पेड़ शायद इसीलिये फलता है कि उससे नये पेड़ो का विकास हो। कुछ पेड़ अपनी डाली से ही पेड़ पैदा करते है। किसी न किसी रूप मे यह पेड़ का फलना है। बढ़ना और विकसित होना है। यही प्रकृति का नियम है। तो क्या सत कबीर यही कहना चाहते है ? शायद। नही। यह भी कि सृष्टि तो निराकार की सृष्टि है। निराकार से साकार होता है। भूतवादी , साकार से साकार की सृष्टि मानते है। कितु यह साकार आया कहाँ से ? उत्तर शून्य है। क्यो होती है सृष्टि ? भूतवादी कहते है प्रकृति का नियम। प्रकृति का नियम क्यो बना ? क्यो, प्रकृति सृजन, सहार और पालन करती है ? उत्तर फिर शून्य है। प्रकृति के अतर को न जानना ही शायद निराकार की खोज है। कितु निर्गुण-निराकारवादी यह नहीं मानते। निगम आगम प्रमाण इस तर्क को नही मानते। वे मानते हैं। उन्हे पूरा विश्वास है सृष्टि चेतन का धर्म है। सपूर्ण सृष्टि के मूल मे एक ऐसा चेतन है जिसे प्रमाणो से नही, विश्वास से बताया जा सकता है। निगम प्रमाण, शब्द प्रमाण, आर्ष प्रमाण पर विश्वास करना ही होगा। ससार में बहुत से कार्य विश्वास पर होते हैं। ऐसा नही कि सभी कार्यों के पीछे अविश्वास है$ तो निगम आगम प्रमाण को मानो। उससे बात बनेगी। सत गुरु को प्रमाण मानते हैं। सदगुरु। सद्गुरु के वचन ही आर्ष प्रमाण है। गुरु ऋषि है। अनेक वर्षो की कठोर तपस्या, साधना द्वारा उसने सत्य का साक्षात्कार किया है। इसलिये सद्गुरु के वाक्य प्रमाण हैं। कितु सद्गुरु के वाक्य मार्मदर्शक भर है। चलना तो स्वयं होगा। खाली सदगुरु के वाक्य मानकर वैठा नही जा सकता है। सद्गुरु की राह पर चलकर स्वय साधना करो। गुरु सहायक है। मददगार है। इसमे श्रद्धा और विश्वास की आवश्यकता है। श्रद्धा रहित को ज्ञान की प्राप्ति नही हो सकती है-अश्रद्धावान् लभते ज्ञानमू। तो साधक का एक विज्ञान है। उस विज्ञान से भिन्न जो बाहर को देखता-दिखाता है। यह विज्ञान है अपने भीतर प्रठेश करने का। बाहर की दुनिया एक है। दूसरी दुनिया है भीतर की। बाहर की दुनिया से विराट्। सूक्ष्म और शक्तिशाली। इस दुनिया का साक्षात्कार आवश्यक है। इस दुनिया का साक्षात्कार साधना से होता है। ऋषियो ने इस दुनिया का साक्षात्कार किया था। इसीलिये उनके वाक्य प्रमाण

हैं। कोई भी व्यक्ति इसका साक्षात्कार कर देख सकता है। इस दुनिया को कबीरदास कहते है कि वहाँ कोई भी भौतिक तत्त्व|नहीं दिखाई पड़ता। उपनिषदे कहती है(१६८)

बाप जनमिया पाछै १६९ न तप्र सूर्यो भाति न चंद्र तारक। . भेमा बिद्युतों भान्ति कुतोषपमग्निः। -कठ० २२१५ यहाँ पिपीलिका के पॉव भी नहीं ठहरते। इतना सूक्ष्म यह संसार। बिल्कुल शून्य में टिका है। कितु शून्य नही है। कुछ है। कहना कठिन है। बोलने पर, कहने पर वह तत्त्व कहा नही जा सकता है। नष्ट हो जाता है। बोलत बोलत तत्व नसाई। इसे मौन द्वारा समझा जा सकता है। यह बुद्धि का खेल नही। प्रवचन, शास्त्र और मेधा इसे बताने मे बिल्कुल असमर्थ है। इसके लिये बहुश्रुत होना आवश्यक नही है। यहाँ भौतिक विज्ञान कुछ नही कर सकता है। भौतिक विज्ञान की प्रवृत्ति तो बहिर्मुखी है। बाहर की खोज है। बाहर को देखना है। अतर के अनत को देखने की शक्ति उसमे नहीं है। ह इसीलिये सत कबीर जब कहते है कि पुत्र पहले हुआ। पिता बाद में हुआ तो लोग आश्चर्य मे पड़ जाते है। कितु उपनिषदे कहती है कारण ब्रह्म ने आकार गढ़ा। उस आकार मे स्वय प्रविष्ट हुआ। आकार का मतलब है जीवाकार। इस जीवाकार मे प्रभु प्रविष्ट हुआ। माइक्योपनषिद् भाष्य मे आचार्य कहते है- यह अंतर्यामी है अर्थात् समस्त प्राणियों के भीतर अनुप्रविष्ट होकर उनका नियमन करने वाला भी यही है (एषोउन्तर्याम्यन्तर प्रविश्य सर्वेषा भूताना नियन्ताप्येष एव। ६। गीता में भगवान् स्पष्ट कहते है- मैं ही सब प्राणियो के हृदय में अतर्यामी रूप से स्थित हूँ (सर्वस्य चाहं हदि सनिवि्टे १५ १५)। यही बात पुन कही गई है-- ईश्वर सर्वभूताना हृद्देशेडर्जुन तिष्ठति (ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय मे स्थित है १८। ६१।। बार-बार के इस "मे स्थित'' का क्या अर्थ है ? ‘‘मे’’! अधिकरण है। अधिकरण की व्याख्या है- अधारोइधिकरणमू। परमात्मा शरीर को अपने ठहरने का आधार बनाता है। इसीलिये वह हृदय मे प्रवेश करता है। कारण ब्रह्म के द्वारा सभी प्रकार की सृष्टि आकार ग्रहण करती है। अब वही ईश्वर के प्रवेश से जीवात्मा का रूप ग्रहण करती है। पहले केवल सतू (जड़) होता है। उसमे चित् (चेतना) का प्रवेश होता है। कितु यह चित् भी पूर्ण नही है जब रा उसका सयोग आबद से न हो जाय। इन तीनो के सम्मिलित रूप को ही सच्चिदानद कहते | संत कबीर का एक प्रसिद्ध दोहा हैझल ऊठी झोली जली खपरा फूटिम फूटि। जोगी वा सो रमि रहा आसनि रही बिभूति। स्पष्ट है कि यहाँ झोली और खपरा के जलने और फूटने के बाद योगी चला गया। क्योंकि योगी के रहने का स्थान समाप्त हो गया। योगी अर्थात् आत्मतत्त्व ने इसी खपरे मे अनुप्रवेश किया था। अब वह वहाँ नही रहेगा। रहने की जगह नही है। जहाँ उस योगी का आसन लगता था वहाँ अब राख (विभूति) है। कितु इस विभूति को गीता की विभूति से मिलाकर देखे। कैसा छगता है ? गीता का दशम अध्याय विभूति योग है। यहाँ अर्जुन भगवान् की * विभूतियो को जानना चाहते हैं। भगवान् अपनी विभूतियों के बारे मे कहते है। सभी नही। कुछ प्रधान विभूतियाँ ही कही जा सकती हैं। सभी तो अनंत है। क्योंकि भगवान् के विस्तार का अत नही है। सभी विभूतियों को अधिकरण मे बताया गया है। कबीर भी जब कहते है ‘‘आसनि रही विभूति’’ तो यह आसनि

सप्तमी में है। अर्थ की दृष्टि से भी और आसनि के नि मे लगी इ इस बात को पूर्णत. प्रमाणित करती है। इ सप्तमी एक वचन ए का विकसित रूप है। अपभ्रश और हिंदी आदि भाषाओं में यह इ रूप मे मिछता है। योगी के चले जाने के बाद भी विभूति रह गयी। यश रह गया। उसकी तपस्या रह गयी। उसका प्रभाव रह गया। यह तपस्या

१७० कबीर समग्र ही बीज है जो जन्म ग्रहण करता है। इसीलिये भगवान् सबके "बीज" (सर्वभूताना बीजं) है। बीज अश है। विभूति अश है (मम तेजोश १०| ४१) | 'इसीलिये सृध्ि की प्रक्रिया मे दो चीजे है बीज और वृक्ष। दोनो एक है। सुविधा के लिये अल्ग दीखते है। प्रत्येक बीज मे वृक्ष की विभूति है। प्रत्येक बीज विभूति है। वृक्ष मे विभूति बीज है। बीज मे विभूति वृक्ष है। इसीलिये योगी के रम जाने पर भी विभूति है। यह विभूति ही भविष्य की आशा है। आसन ही विभूति का अधिष्ठान है। गीता ने जिसे हृदय देश कहा था उसे ही कबीर ने आसनि कहा। दोनो ही विभूति के आसन है। कबीर दास कहना चाहते है कि आसन पर या मे अधिकरण का प्रयोग तभी होगा, जब आसन का निर्माण पहले हो जाय। अत कारण ब्रह्म पहले सत्त्व सृष्टि का निर्माण करता है, पुन उसमे चित् एव आनद की स्थापना करता है। अश रूप मे स्वयं निवास करता है। अश अशी मे अभेद के कारण यह कभी नही कहा जा सकता कि कितने अंश मे और कैसे निवास करता है। अत कारण ब्रह्म जो जीव का निर्माता पिता है वह बाद मे जीव शरीर मे स्थित होता है। तभी तो अधिकरण की ठीक-ठीक संगति बैठेगी। कबीर कहते हैसकल मॉड मै रमि रह्मा साहिब कहिए सोइ। यहाँ भी वही सप्तमी, अधिकरण। क्योकि मॉड (मडित) तो जड़ है। चेतन और आनद सत्ता ब्रह्म की है। मनुस्मृति मे कहा गया है नर भगवान् से नार (जल) पैदा हुआ। नार (जढ) मे घर बनाने के कारण ही भगवान् नारायण कहलाये। सूक्ष्म, अव्यक्त ब्रह्म से एक अडा पैदा हुआ। सूर्य के समान प्रकाशित यह सुवर्ण अंडा ही बीज है। कबीर भी कहते है- एके अंड सकल चवरासी। इसी से सबके उत्तिकर्तता पिता ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई।सपूर्ण सृष्टि के कारण, अव्यक्त, नित्य, सत्, असत् स्वरूप जो पुरुष उससे उत्पन्न हुआ उसे ससार मे (ब्रह्मा) नाम से कहते है १। ११। इस प्रकार अव्यक्त से व्यक्त बीज, अडा रूप सृष्टि उत्पन्न हुई है। यह कारणब्रह्म का पुत्र है। इसके बाद कार्यब्रह्म जगत का विकास हुआ। इसीलिये भगवान् ने अकाश, पृथ्वी, स्वर्ग, दिशाओ, समुद्रो आदि को भी अपना रूप कहा है १| १३। यही बात गीता और भागवतादि मे भी कही गयी है-गीता मे भगवान् ने अपनी दो प्रकृति बताई है- परा और अपरा। सारे भौतिक तत्त्व उस अव्यक्त प्रभु के अपरा स्वरूप है। उसके निर्माण है। अत पुत्र हैं। फिर परा प्रकृत रूप मे वह पिता उनमे जन्म लेता है। हि प्रश्न होता है कि क्या अपरा भगवान् से अछग है कि वह इसमे प्रवेश करे ? इसी प्रश्न को ध्यान मे रखकर वेदात ने सारे स्थूल को, भौतिक या जड़ को प्रकृति (माया) के अधीन कर दिया। परमात्मा स्वय सृष्टि न कर इस कार्य को अपनी अचित्य, अनिर्वचनी शक्ति माया के द्वारा करता है। माया उसकी शक्ति है। अत माया की सपूर्ण रचना उसकी सतान हुई। कंवीरदास इस मायामय देह या जीव को उसकी प्रकृति, स्त्री मानकर साधना करते है। यह माया निर्मित शरीर व्यर्थ होता यदि इसमे पिता साकार न होता। वह इसमें अनुप्रवेश करता है। यही पिता ब्रह्म का पश्च जन्म है। ह एक बात और। जीव सत् और चित् है। कितु आनदांश

छुप्त है। इस आनद को प्राप्त करना उसका उद्देश्य है। साधना और समर्पण द्वारा आनदाश को प्राप्तकर जीव ब्रह्म बन जाता है। सच्चिदानद| जीव शरीर मे पॉच कोश है-अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमयं, आनदमय। साधारण जीव अन्नमय कोश मे स्थित है। अन्नमय कोश प्रथम पड़ाव है। जीवन रक्षा का पड़ाव। शरीर जो प्रत्येक धर्म साधना का आधार है वह अन्नमय का प्रथम पड़ाव है। अन्नमय से आनदमय की यात्रा ही जीव का उद्देश्य है। अन्नमय मे वह जड़ पशु है। कितु आनदमय मे वह ब्रह्म वन जाता है। जीव आनद से ही बना है। कितु जैसे पहाड़ से गिरने के जा पहाड़ छूट जाता है वैसे ही आनद का कैलास उससे छूट गया है। कितु इतना नहीं कि वह

बाप जनमिया पाछे १७१ उसे पुन न प्राप्त कर सके। वह उसके पास है। कही अन्यत्र खोजने की जरूरत नही है। वह आनद कृपापूर्वक उसके भीतर बैठा है। केवल देखने, खोजने की जरूरत है। इसीलिये सत कबीर के प्रभु कहते है-... मोंको कहाँ ढूँढे बंदे में तो तेरे पास में। ना मैं देवल, ना मैं मस्जिद, ना काबे केलास में। कस्तूरी हिरण की नाभि मे है। कितु वह उसे बाहर खोजता है। बाहर तो है नही। बाहर तो उसकी सुगध मात्र है। अत परेशानी होती है। इसीलिये परमात्मा को अपने भीतर खोजना चाहिए। परमात्मा की प्राप्ति होते ही जीव का नया जन्म होता है। वह जीव नामी पुत्र से जगतू पिता ब्रह्म बन जाता है। जीव बनने की प्रक्रिया पहले है और ब्रह्म बनने की प्रक्रिया बाद मे होती है। जीव पहले बनता है। ब्रह्म बाद मे। कहना यह है कि जीव जो अव्यक्त की सतान है, साधना द्वारा पिता ब्रह्म बन जाता है। इसे ही सत कबीर कहते हैपहले जनम पूत को भयठ। बाप जनमिया पाछे। जो लोग इस प्रक्रिया को केवल इतना ही समझते है कि जीव द्वारा ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर लेना ही पिता का जन्म है वे अपूर्ण समझते है। जानना तो जरूरी है। कितु इस जानकारी से होता क्या है ? जानकारी होते ही बड़ा परिवर्तन होता है। तुलसीदास के शब्दो मेजेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे जथा सपन होड जाई। जानने पर ससार की अनुभूति, उसके विकार, उसके बंधन और अत मे उसकी स्थिति समाप्त हो जाती है। सब कुछ समाप्त हो जाता है। रह जाता है केवल ब्रह्म। ब्रह्मानुभूति। इस स्थिति को सभी नही समझ सकते है। केवल साधक समझता है। केवल वही समझता है जिसने परमतत्त्व की अनुभूति की है- जिहि बिरियों साई मिले, तस न जाने और। प्रभु प्राप्ति की अनुभूति असाधारण है। इसे केवल साधक ही जानता है। क्योकि वह जीव 'स्थिति से मुक्त होकर ब्रह्म स्थिति को प्राप्त हो गया है। | पिता पुत्र की अद्वैत स्थिति भी है। जैसे पानी बर्फ और बर्फ पानी बनता है वैसे ही पिता पुत्र और पुत्र पिता बनता है। अद्दैत द्वैत और दैत अद्दैत बनता है। ससार मे भी देखा जाता है बा मूर्ति, बनती है। फिर उसमे प्राणप्रतिष्ठा का विधान है। प्राणप्रतिष्ठा रहित मूर्ति पूज्य नही है।

करनी किया करम का नास . एक अचंभा ऐसा भया, करनी वें कारन मिदि गया। करनी किया करम का नास, पाबक माँहि पुष्ठप परगास। पुहुप मोहि पावक परजरै, पाप पुंन दोऊ भ्रम टरै। एक आश्चर्य हुआ। हुए तो- कई आश्चर्य, कितु सब है एक ही। क्या आश्चर्य हुआ ? करनी ने कर्म का नाश कर दिया। तो क्या करनी और कर्म दो है ? क्या दोनो भिन्न-भिन्न है या अभिन्न है ? दोनो अभिन्न है। भिन्न है। योकि भिन्न-भिन्न स्थिति है। यहाँ कर्म का अर्थ सामान्य कर्म। सांसारिक कर्म। वह कर्म जिससे संसार चलता है। बनता, रहता और बिगड़ता है। इस कर्म मे ससार को ही सत्य मानने की प्रवृत्ति है। ससार ही सब कुछ 5। जो कुछ है ससार है। ससार मे है। ससार से भिन्न कुछ भी नही है। सुख, दुख, मै, मेरा, इसका, उसका, तुम, तुम्हारा सब ससार में है। यो कि यही ससार है। इसे ही देख आचार्य शंकर कहते हैं ससार बीज भूती शोक मोहौ। शोक मोह ससार के बीज है। ससार इन्ही से उत्पन्न है। ये नहीं तो ससार नहीं। इनका आधार अहम प्रत्यय है। मै हूँ। कितु मैं होने का भाव ही महत्त्वपूर्ण नही है| महत्त्वपूर्ण है मै कौन हूँ ? मै देह हूँ जीव हूँ या स्वय ब्रह्म हूँ। सामान्यत लोग अपने को देह, गेह मानते है। इससे बढ़े तो देहगेह वाला जीव मानते है। कितु मै ब्रह्म हूँ यह मानना ही असली मानना है। इस मान्यता से ससार मे रहकर भी नही रहने के बराबर हो जाता है। देह बुद्धि वाला व्यक्ति ससार और माया का दास बना रहता है। वह सब कुछ देह के लिये, देह दृष्टि से करता है। देह सुदर हो, मोटी हो, शक्तिशाली और स्थायी हो। कितु ऐसा होता नही। कोई भी देह स्थायी नही रह सकती। सभी देह गेह नश्वर है। ऐसे ही देह से आगे बढ़कर जब जीव सोचता है- मै जीव हूँ। तो उसे कुछ-कुछ सफलता मिलती है। वह अपने को अश, परमात्माश समझने लगता है। ससार देह से मुक्ति का यह एक सोपान सा है। कितु आत्म साक्षात्कार के वाद अपने को ब्रह्म समझने की प्रक्रिया पूरी होती है। जीव ब्रह्म बन,जाता है। ससार मे जो भी है उसे हर क्षण कोई न कोई कर्म करना होता है। यहाँ तक कि जब वह कर्म को छोड़कर आराम करता है तो वह भी कर्म है- आराम कर्म। इसीलिये कर्म का छोड़ना भी कर्म है। और कर्मों का नियम यह है कि कर्म से कर्म पैदा होता है। सभी कर्म कर्म परिणाम है। सभी कर्मों से कोई न कोई कर्म निकलता है। जैसे कर्म छोड़ देने पर भी कर्म छोड़ने का कर्म निकहा। इसे कहते है कर्मचक्र। कर्म से कर्म अनुवर्तित होता है। यह अनुवर्तित कर्म जीव का बधन बन जाता है। कर्म बधन। मनुष्य जब तक कर्मबधन।मे है उसे कर्म करना होगा। मरने पर भी छुट्टी नही। कमनुसार योनि तो मिलेगी ही। भव चक्र में भी बार-बार आना होगा। हमारे कर्मो के मूल मे हमारा यही कर्मचक्र है। एक कर्म पूरा नहीं हुआ कि दूसरे कर्म का आरभ हो जाता है। इसीलिये कर्म के तीन विभाजन है-प्रारब्ध, क्रियमाण और सचित। यह शरीर कर्माधीन है। हमारे सारे कर्म सचित हो रहे है। उनके फल को भोगना कर्म विपाक है। सभी कर्म विपाक या कर्मफल को

भोगते है। इसीलिये कर्मबंधन है। कर्मों की रस्सी मे बँधा जीव कर्म करता है। उसका अच्छा-बुरा फल भोगता है। कर्म भोग से छुटकारा (१७२)

करनी किया करम का नास १७३ नहीं है। बड़ी भयावह स्थिति है। मनुष्य को पता भी नहीं कि उसके कौन-कौन से कर्म है ? अब अगर वह उनसे मुक्त भी होना चाहे तो क्या करे ? पुराने कर्ज को अदा तो करना ही होगा। उसका सूद भी बढ़ गया है। इस बीच जो कर्म किया उसका फल भोग भी जाकर जमा हो गया। एक कर्मफल खतम नही हुआ कि दूसरा जुड़ गया। ऐसे ही प्रति क्षण कर्म सचित हो रहा है। मनुष्य परेशान है। क्या करे ? कितु परेशान होने की कोई बात नही। यह सच है कि कर्म से छुटकारा नही मिलेगा । कितु कर्म का उद्देश्य और स्वरूप बदल दिया जाय तो उससे मुक्ति मिल सकती है। गीता कर्म का पॉच विभाजन करती हैएक कर्म तो है जब मनुष्य उन्हे करने के लिये आवश है। उसके किये बिना शरीर की यात्रा सभव नही। शरीर रहेगा ही नही। और शरीर न रहे तो कर्म और कर्म फल का नाश सभव नही। क्योकि कर्मफल का सबध केवल शरीर से नही है। वह मानव सस्कार से जुड़ा है। सस्कार का अग है। भागने से यह सस्कार और गहरा होगा। कर्जा देने से ही कर्जा पटता है। भागने से तो वह और बढ़ता है। इसलिये कर्म से भागने की बात सोचना ठीक नही। इससे कोई लाभ होनेवाला नही है। उल्टे हानि होगी। ससार मे रहना है तो शरीर रक्षा की दृष्टि से कर्म करो। इस कर्म को करने की विवशता है। शरीर यात्रा जब चलने लगे तो हृदय की शुद्धि के लिये कर्म करना चाहिए। क्योकि हृदय में अपार मैठ भरी है। मन सारी गंदगियो का भडार है। हृदय या मन ही बधन, मोक्ष का कारण है। यही ग्रदा रहे तो कुछ नही हो सकता है। इसे तो साफ रखना ही होगा। साफ करोगे तो यहाँ देवता वरना शैतान का निवास हो जायगा। देवता किसी गदी जगह पर नहीं बैठते है। इसे आत्मशुद्धये कर्म कहते है। मन की मैल सभी बाहरी मैंठो, शरीर की मैलो से भयानक है। यहाँ काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर, भय आदि की मैल बैठी है। इस मैल के बैठने का कारण मन का इद्रियो के अधीन होकर विषयो का'सग करना है। विषयो का सग बुरा है। सग से काम, क्रोधादि बुराइयों पैदा होती है। अत मे सर्वनाश हो जाता है। विषयो के सग को कभी मन से सटने नही देना चाहिए। विषयो मे बड़ी जबर्दस्त आकर्षण शक्ति है। जरा भी उनके पास गए कि वे दबोच लेती है। फिर तो मन उनके वश मे हो जाता है। उसकी अपनी शक्ति समाप्त हो जाती है। इसलिये कि मन का स्वभाव भी ठीक नही है। वह चचल है। कभी स्थिर नही रहता है। जब देखो तब विषयो की ओर मड़राता रहता है। कभी यहाँ, कभी वहाँ। सदा असतुष्ट रहता है। इस मन की शुद्धता का अर्थ है विषयो की तृष्णा को मन से निकालकर मन को साफ रखना | इससे मन स्थिर होगा। यह तभी होगा जब विषय और उसके फलो के प्रति समबुद्धि हो। सबको समान समझा जाय। सबके सुख-दुख को अपने सुख-दुख जैसा समझा जाय। इसे कहते है समत्वबुद्धि। समत्व बुद्धि को अपनाने से वैयक्तिक सकोच का स्थान सामूहिक कल्याण को मिलेगा। अब धीरे-धीरे कर्म का रग ढग बदल रहा है। कर्म की प्रथम सीढ़ी के बाहर से देखने मे लगता है कि यह कर्म असग है। हम

इसे मजबूरीवश करते है। किंतु ऐसी बात है नही। हम जो कुछ करते है यह सोचकर करते है कि शरीर ही सब कुछ है। शरीर ठीक तो सब ठीक। इसलिये सबको छोड़कर शरीर को ठीक रखो। यह बुद्धि ठीक नही | इसमे स्वार्थ है। साथ मे यह भी कि शरीर ही सब कुछ नही है। शरीर हो और मन खराब हो तो शरीर भी ठीक नहीं रह सकता है। इसलिये दूसरी सीढ़ी बनी। मन की मैठ साफ करो। मन को साफ रखो। शरीर तो बाहरी साधन है। असली साधन तो मन है। शरीर की सभी इद्रियो का राजा मन है। राजा ही गड़बड़ हुआ तो सब गड़बड़ा जायगा। तो राजा को वश मे करो। किंतु विचित्र है यह राजा। इसका

१७४ कबीर समग्र छू काम खुशामद से नही होता। सभी राजा खुशामद से खुश होते है। यह खुशामद पाकर और बिगड़ जाता है। जैसे बालक दुलार पाकर बहक जाते है। तो इस राजा पर शासन करो। यह इंद्रियो के घोड़ो का लगाम है। इस लगाम को अच्छी तरह खीचो। यह इद्रियो को ढील न दे। स्वय कसा रहे। इद्रियाँ कसी रहे। यह कौन करेगा ? मन करेगा। मन ही मन को कसता है। हॉ, बुद्धि की सहायता आवश्यक है। क्योकि बुद्धि मन से ऊपर है- मनसस्तु परा बुद्धि | इससे मन शुद्ध होगा। पवित्र होगा। पवित्र मन बड़ा उपयोगी है। , यह शुद्ध मन समत्व बुद्धि से काम करेगा। सबका भला सोचेगा। सवका भला करेगा। स्वार्थी नही। परमार्थी बनेगा। आत्मीपम्य दृष्टि रखेगा। सबको अपने समान और अपने को सबके समान देखेगा। इससे इसकी व्यक्तिवादिता नष्ट हो जायगी। इसमे सामूहिकता एवं सामाजिकता का विकास होगा। तुम व्यक्ति नही समाज हो। समाज के विना तुम नही रह सकते। माता-पिता ने तुम्हे जन्म दिया है। तुम उनका आदर करते हो। अपने साथ जन्मे भाईबहनो को प्यार करते हो। तो, समझ लो कि यही सब मिलकर समाज बनता है। सभी सबंध समाज के अग है। समाज अगी है और सबधो मे दीखनेवाले लोग उसके अंग है। अग के साथ ही अगी पर ध्यान दो। मन बदलता है। सबका और सबके साथ हो जाता है। अपना ख्याल तो भूल ही जाता है। दूसरो की चिता मे रहनेवाले को अपनी चिता की कहाँ फुर्सत रहती है। बच्चे को दूध पिछाती माँ यह कभी सोचती है कि वह दूध पीती है या नही ? वह तो केवल एक बात जानती है यह दूध बच्चे के लिये है। बच्चे को पिलाना है। वच्चे की खुशी ही उसकी खुशी है। ऐसे ही व्यक्ति मन समाज की खुशी को देखकर खुश होता है। अब वह समाज के लिये ही उठता, बैठता, चलता, फिरता, सोता, जागता, खाता और पीता है। स्वप्न भी देखता है तो समाज के सुख का देखता है। उसका सब कुछ समाज को अर्पित हैयत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कीौतिय तत्कुरुष्ष मदर्पणम् ।-- भी. ९। २७ जो भी दोगे समाज उसे स्वीकार करेगा। पत्र, पुष्प, फल, पानी जो भी हो। ये सभी प्राकृत साधन है। इन्हे प्राप्त करने के लिये अधिक परिश्रम की आवश्यकता नही है। थोड़े ही परिश्रम से प्राप्त होनेवाली वस्तुएँ है। अत, थोड़ा देकर भी समाज सेवा की जा सकती है। थोड़ा का मतलव यह नही कि बहुत रखो और धोड़ा दो। नहीं। बहुत ना भी हो तो कम से कम इतना तो होगा ही। देना तो पूरा है। अब किसके लिये कौन रखेगा ? जब सब एक हैं। अपने सुख से बड़ा है दूसरो का सुख।| तो फिर अपने लिये क्यो रखेगे? सब दे दो। मूल बात तो यह कि अपने को ही दे दिया है। अपने को दिये बिना समत्बुद्धि आ नहीं सकती। आत्मौपम्य दृष्टि तीसरी सीढी है। इसमे सपूर्ण सृष्टि को अपना समझने का भाव आ गया। वसुपैव कूटुम्बकम्। मैं समाज का हूँ। समाज मेरा है। मै व्यक्ति नही समाज हूँ। जैसे माँ पुत्र को रोते देखकर स्वय भी रोने लगती है। जब वह बच्चे को चुप भी कराती है तो वह बच्चे के दुख से आविष्ट रहती है। बच्चे को चुप कराना, रुदन को रोकने की कोशिश मो

का परमार्थ नही स्वार्थ है। क्योंकि माँ और बच्चे मे अद्वयभाव है। ¬ प्रत्येक माँ एक श्रेष्ठ रचनाकार है। कवि है। चित्रकार है। मूर्तिकार है। नही, इनसे बढ़कर है। कवि, चित्रकार, मूर्तिकार, सगीतज्ञ, नर्तक मे एक मनोरजन का भाव भी हो सकता है। 3 है| किंतु मा बच्चे को अपने रक्त से पैदा करती है। रक्त से पालती है। इसमे मनोरजन लिये स्थान नही है। यह उसके भीतर ही सृजनात्मक पीड़ा का सपूर्ण रूप है। यही कारण है

करनी किया करम का नास १७५ कि बच्चे के भूख लगने पर माँ को अगिया भीग जाती है। उसे रोते देख आँखो मे पानी स्वत बहने लगता है। बहुत से रचनाकार है जिन्होने अपनी रचना को उपयुक्त न समझकर उसे फेक दिया है। कितु कोई मॉ नही मिलेगी जो अपनी रचना को फेकने या फाड़ने की कल्पना भी करे। आत्ौपम्य दृष्टि का सबसे अच्छा उदाहरण माँ है। भारत की स्त्रियाँ कभी पुत्र, कभी बहन, कभी पली और कभी माँ बनकर ससार मे इस आत्मौपम्य दृष्टि का संकेत करती है। उदाहरण बनती है। समल्वबुद्धि आएगी कैसे ? इसके लिये कहते है कर्म यज्ञ के ढिये करो। जीवन एक यज्ञ है। जो कुछ करो यह सोचकर करो कि यह मै अपने लिये नही | दूसरो के लिये। समाज सुख के लिये कर रहा हूँ। अपने को और समाज को एकाकार कर लो। अपने को समाज के व्यक्तित्व मे इतना मिला दो कि समाज रह जाय। तुम्हारा व्यक्तित्व बिल्कुल उसी मे लुप्त हो जाय। जैसे पानी मे नमक घुल जाता है। कोयछा जलकर छाढ हो जाता। काछा। फिर छाल और लाढ बुझकर सफेद। तमस्, रजस् और सत्व। स्वार्थी मनुष्य कोयला है। धीरे-धीरे वह रजस् एवं सत्व गुणो की ओर बढ़ता है। फिर तो उसके सामाजिक कर्म उसके स्वभाव बन जाते है। सॉप का स्वभाव है काटना और वृक्ष का स्वभाव है फूलना, फलना, पकना और पके को गिराना। बिना भेदभाव के सबको देना, उसे भी देना जो उसे काटने आया है। जो उसे नष्ट कर देगा। इसलिये कि पेड़ो का कोई निजी स्वार्थ नही है। काटने वाला स्वय सोचे कि यह कार्य क्या उसके हक मे है। शायद इसीलिये भारत मे हरे और फलदार वृक्षी को काटना पाप माना जाता है। वृक्ष के सामन काम करने वाला कर्म के लिये कर्म करता है। किसी फल की आशा से नही करता है। ऐसा कर्म स्वभाव बन जाता है। उद्देश्य की दृष्टि से यह लछोक सग्रह के लिये होता है। चूकि कर्महीन स्थिति सभव नहीं। अत मनुष्य छोक सग्रह के लिये भगवत्समर्पित कर्म करता रहता है। इसीलिये गीता जब समाप्त होने लगती है, १८ वे अध्याय मे भगवान् अर्जुन से कहते हैसभी धर्मो को छोड़ दो। छोड़कर मेरी शरण मे आ जाओ। यहाँ धर्म से अर्थ है कर्तव्य कर्म । कर्तव्य कर्म भी छोड़ो मतहब सब मेरे लिये करो। उतना ही करो जितने की मुझे जरूरत है। स्वय के लिये कुछ मत करो। इसे कहते है समर्पित कर्म | समर्पित कर्म का पाप पुण्य या कर्मफल करनेवाले को नही भोगना होता है। जैसे सरकार के आदेश से गोली चलानेवाला सिपाही अपराधी नही माना जाता है। उसने जो कुछ किया उसमे उसका कोई स्वार्थ नही है। वह तो सरकार का आदेश है। वह जो भी करता है सरकार के आदेश से | सरकार के लिये करता है। इसी तरह यज्ञ या ईश्वर के लिये किया कर्म बधन नही बनता है। इतना ही नही कि बधन नही बनता है बल्कि पुराने बधन भी नष्ट हो जाते है। जैसे कोई पुराना कर्ज चुकाकर अपने को कर्ज मुक्त कर छे। और अगर पुराना कर्ज रह भी गया तो वह धीरे-धीरे चुक जाता है। बिना किसी कष्ट के चुक जाता है। कर्म ही पुनर्जन्म का कारण होता है। प्राय कर्म किसी न किसी फल की आशा मे किये जाते

है। इससे तृष्णा बढ़ती रहती है। यह आशा, तृष्णा तथा कर्मफल लिगशरीर मे सचित होते है। लिग शरीर ही पुनर्जन्म का कारण है। लिग शरीर ही एक शरीर से दूसरे शरीर मे जाता है। लिग शरीर के साथ ही आशा तृष्णादि घूमते रहते है। ये मनुष्य के सचित और प्रारब्ध कर्म बनतै-बनाते है। अब यदि मनुष्य स्वार्थपरक कर्म छोड़ दे तो आशा, तृष्णा भी छूट जायगी। कर्म से मिलनेवाले फल की इच्छा भी नहीं रह जायगी। कितु अभी एक खतरा है। कही ऐसा न हो कि मै दूसरो की सेवा कर रहा हूँ यह भाव मन मे हो। जैसे दानी को अपने दान का अहकार और लेनेवाले को लेने की हीनता होती है। यह तो ठीक नही है। इससे तो कर्म जाल छूटा नही। खाली उसके ढग मे परिवर्तन हो गया। इसीलिये यज्ञार्थ कर्म मे अर्थ लगा है। अर्थ

१७६ कबीर समग्र का मतलब है लिये, उद्देश्य। ऐसा कर्म स्वार्थकर्म से आगे तो है किंतु पूर्णत. मुक्त नही। जब सारे कर्म भगवान् को समर्पित कर दिये जाते है तब कर्म कर्म के लिये अर्थात् किसी अन्य हेतु से रहित होता है। कर्म का हेतु उद्देश्य कर्म हो जाता है। कोई चित्रकार अगर बेचने के लिये चित्र बनाएगा तो निश्चय ही वह ग्राहक का ध्यान रखेगा। ग्राहक को कैसा चित्र पसद आएगा ? उसका ध्यान चित्र की अपेक्षा ग्राहक पर रहेगा। यह अपेक्षा चित्र की उपेक्षा कर देगी। इसीलिये/ श्रेष्ठ कछा कला के लिये होती है। इसी प्रकार श्रेष्ठ कर्म कर्म के लिये होता है। चित्र के समान कर्म मे स्वय सौदर्य, सदगुण और शील है। ऐसा कर्म किसी आशा, तृष्णा, हेतु या फलाशा रहित है। ऐसे कर्मों की बीज शक्ति नष्ट हो जाती है। जैसे भुना चना जन्म नहीं हे सकता। उसी प्रकार फल हेतु रहितकर्म बीजरहित हो जाता है। इसी बात को भगवान् गीता में कहते है-ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेडर्जुन | कैसा ज्ञान ? किस बात का ज्ञान ? ज्ञान इस बात का कि मै भी ईश्वर हूँ। ब्रह्म हूँ। उनका, उन जैसा और वही हूँ। इसीलिये कोई ऐसा कर्म नही करना चाहिए जो पुनर्जन्म या वधन का कारण हो। उस कर्म का ज्ञान आवश्यक है जिस कर्म से ज्ञान पैदा होता है। ज्ञान से ही कर्मफलो का नाश होता है। ज्ञान की अग्नि से पुनर्जन्म के सस्कार नष्ट हो जाते है। यह कब होता है। जब हृदय कमल मे मनस् या मानसरोवर के प्रसन्न कमल मे ज्ञान की आग जलने लगती है। इस ज्ञानाग्नि के जलने के बाद पाप-पुण्य दोनो ही भ्रम लगते है। समर्पित कर्म तो प्रभु को दे दिया। मनुष्य उसके फल से मुक्त हो गया। अब सरकार जाने और कर्म जाने। सिपाही ने तो अपने जन्म-मरण के कारण ढिग शरीर को मिटा दिया। उसमे कोई इच्छा है ही नही। इच्छावश उसने कोई काम किया ही तो फिर लिगशरीर व्यर्थ हो गया। इसीलिये निराशी कर्म से भवचक्र का कारण लिग शरीर समाप्त हो गया। लिगशरीर को कारणशरीर भी कहते है। कारण के साथ ही अब कर्म का भी नाश हो गया। अब किसी कर्म की आवश्यकता नही है। जो हो रहा है वह हो रहा है। करनी शब्द बड़ा महत्त्वपूर्ण है। करनी साधारण कर्म नही है। यह बीरता का कर्म है। जेहि सब भॉति अलौकिक करनी। सूर समर करनी करहि। करनी सामान्य कर्म से भिन्न है। अलौकिक है। इसीलिये यह करनी बधनमुक्त करती है। कर्मफल से उत्मन्न बंधन का नाश करती है। करनी करने वालो मे प्रत्येक क्षण ज्ञानाग्नि रहती है। इसी ज्ञानाग्नि के बीच उस पुष्प का प्रकाश होता है जो मुक्ति है। मुक्ति प्रदाता है। यही सहस्दल कमल है। जो स्वरयं प्रभु का प्रतीक है। स्वय प्रभु है। और प्रभु तो कारणरहित है। स्वयं चाहे तो कार्य कारण बने या न बने। डा किसी भवचक्र की आवश्यकता नही है। सब कुछ, सारे कार्य कारण इसकी लीलामात्र है। ।

कबीरा संत नदी गयो बहि रे कबीर कहते है सत नदी मे बह गया। बह रहा है। बहता रहेगा। क्या सत पागल हो गया है ? क्यो बह गया ? क्यो बहता रहेगा ? क्यो बह रहा है ? नदी मे बहना क्या अच्छी बात है ? हॉ, अच्छी बात है। नौका नदी मे बहती है। कितु आदमी तो नदी मे नही बहता। हाँ, आदमी नदी पार करता है। नौका का सहारा लेता है। कितु यह कबीर सत तो बिना किसी सहारे के बह रहा है। बह रहे है तो दुखी होना चाहिए। प्राण बचाने के लिये चिल्हाना चाहिए। सहायता की याचना करनी चाहिए। कुछ न मिले तो तिनके का सहारा लेना चाहिए। कितु कबीर की बातो से, उनके कहने के ढग से पता लगता है कि वे इस पर खुश है। अच्छा हुआ बह रहे है। स्वय तो बह ही रहे है। छूगता है दूसरे सत भी बह रहे है। क्योकि पूरी पक्ति इस प्रकार है 'कबीरा सत नदी गयो बहि रे।'' ये केवल संत कबीर भी हो सकते है। कबीर कहनेवाले भी हो सकते है। तदनुसार नदी मे सत बह रहे है। कितु सत बह रहे है तो कबीर क्यो प्रसन्न हो रहे है ? क्या वे इतने निर्मम है कि सतो को नदी मे बहते देख उन्हे प्रसन्नता होती है ? नही, ऐसा कहना ठीक नही होगा। कितु यह कहा भी जा सकता है। क्योकि कबीर सत न केवल बहते है बल्कि बहनेवालो के नाम गिनाते है। परपरा बताते हैजहाँ यहि लागे सनक सनंदन, रुद्र ध्यान धरि बैठे। लगता है यह और कोई नदी है। इसमे सतो का बहना बुरा नही है। यो कहिए कि इसमे संत ही बहते है। सतो को छोड़ कौन बह सकता है? .. जब सतो का बहना जरूरी है तब दुख काहे का ? किंतु माता को दुख हो रहा हैठाठी माइ कराहै रोबै, है कोई ल्यावे गहिरे। ममतामयी माँ रो रही है। किनारे पर खड़ी रो रही है। कबीरदास जी कहते है किनारे पर - खड़ी होकर रो रही है। अरी माता, इतना क्यो डरती हो ? बड़ा मोह है १स्वय क्यो नही पानी में कूद जाती ? बच्चे को बचा लो। अपनी जान इतनी प्यारी है कि बच्चा डूब रहा है। बह रहा है और तुम दूसरो की प्रतीक्षा कर रही हो। कितु यह माता उस नदी मे नही घुस सकती। ऐसी इसकी सामर्थ्य नही है। उसे बच्चे के प्रति मोह नही है। बच्चा तो वह रोज जनमती है और रोज उसे खा जाती है। उसे बच्चे के मरने की चिता नही है। उसे चिता इस बात का है कि बच्चे ने उसे छोड़ दिया है। वह उस नदी मे बहने का आनद ले रहा है जहाँ सनक, सनदन आदि भगवत्पुत्र बहते है। वह अब भगवत्‍त्र हो गया है। इसीलिये माया माता रो रही है। ऐसे ही सभी माया से छूटने लगे तो माया का क्या होगा ? यह नदी क्या है जहाँ भगवस्‍ुत्र, निर्विकार सत तैरते है। बहते है। यह है ज्ञान नदी। भक्ति नदी। और भक्ति नदी मे घुसने का साहस माया मे कैसे हो सकता है? जहाँ राम भक्ति है, प्रभु ज्ञान है। वहा माया ठहर ही नही सकती | इसलिये वह किनारे खड़ी है। माया ही ससार की ममता है। ज्ञान से ममता समाप्त। ससार समाप्त। माया समाप्त। किनारे का अर्थ है ज्ञान मे 'चूके कि माया। एक नदी और है-विषय नदी। इस नदी मे मछली तड़पती है। जीव को कभी तृप्ति नही होती। सारा जीवन तृषा मे बीत जाता है। माया ममता जीव को तड़पाती है। सुख का प्रढोभन -< (१७७)

 देकर दुख देती है। इस पानी मे रहकर भी छोग जछते है। यहाँ नाना प्रकार की आग जला करती है। कनक (सोना) कामिनी (स्त्री) की आग सबको जला रही है। कमलिनी, जीवात्मा ने विषय सागर मे ही घर बना लिया था। वही रहने लगी थी। कितु यहाँ दावाग्नि उठी। बहुतेरी आग उठी।| बेचारा जीव जल मे ही जलकर नष्ट हो गया। इसमें उसके पूर्व जन्म के पापों का भी हाथ धानलिनी सायर घर किया, दीं छागी बहुतेणि। जलही माँहें जलि मुई, पूरब जनम लघेणि। यह ससार तो उभयवाहिनी है। इधर विषय नदी है। उधर ज्ञान नदी है। सभी लोग विषय नदी मे बहते हैं। कितु सतजन ज्ञान भक्ति की नदी मे बहते है। स्वय वहते है। किस रूप मे बहते है ? दूसरो के लिये नौका वनकर बहते है। स्वय तो मुक्त हुए ही। दूसरो' को भी मुक्त करते है। माया इससे और परेशान होती है। नालायक अपने तो गया ही। दूसरो को भी साथ ले जा रहा है। माया माता का दुख दुहरा है। यो कहिए कि जीव पिता के पास पहुँच गया। माया माता है तो ब्रह्म पिता। माया माता ने पैदा किया। बॉधा। तो परम पिता परमात्मा मुक्त करेगे। यहाँ साधक की शक्ति का भी सकेत है। "गहि छाओ" पकड़ लाओ का अर्थ है वह स्वय नही आएगा। बचाओ नही। वह तो जान चूझकर डूबने गया है। उसे बलात् निकालो। भक्ति ज्ञान से बाहर करो। कौन सुनेगा माया माँ की आवाज ? वही जो माया के कार्रिदे है। इद्रियो के विषय। काम, क्रोध, लोभ मोहादि। कितु माँ पुकारती रही। कोई भी सत को पकड़कर बाहर न ला सका। किसकी हिम्मत है जो ज्ञान नदी मे कूदे। न माया कूद सकी, न माया के कार्रिद कूद सके। ज्ञान की धारा भी प्रवल होती है। जब बहती है तो फिर उसमे विषयो के बड़े-बड़े हाथी भी वह जाते है। नदी भी उमगी है और "बादल बॉनी राम घन! "भी" 'उनया' हुआ है। 'अमृतधारा बरस! रही है। राम प्रेम की अमृत धारा। राम ज्ञान का वादढक। सदगुरु के उपदेश का बादल। अमृतधारा। अमर वाणी। अमर करनेवाली वाणी। भक्ति की अमृतधारा को पाकर किसी की मृत्यु नही होती है। क्योकि जन्म-मृत्यु दोनो ही माया है। यह सब प्रत्यक्ष हो रहा है। सूर्य प्रकाश में आनद विवेक की वर्षा हो रही है। इससे ज्ञान नदी मे और उफान आ गया है। सत कबीर उस नदी का आनद ले रहे हैं। दूसरे साधक (सखी) ने गगा जल भरकर छाया है। गगा जल अर्थात् राम प्रेम का जढ़। उसे जीव के प्राण पीकर तृप्त हो रहे हैं। वही प्राणों के आधार भी है। आनद का कारण भी है। इसी आनद के ध्यान मे रुद्र बैठे हैं। रुद्र सदा ही आनद का ध्यान करते है। ज्ञान का आनद बिना ध्यान के समझ मे भी नही आ सकता। यह योग साधना भी है। तपस्या भी है। तो ज्ञान नदी मे बहने का अर्थ किसी नदी में बहना नहीं, तपस्या करना है। सनक, सनदन तो सहज सरल भक्ति के सत हैं। वालक है। नगे रहते हैं। इतने सरल कि कपड़ा पहनने का भी ख्या नही। परमात्मा से अछग कोई अनुभूति नहीं है। फिर लछज्जा किस बात की? वस्त्र तो लज्जा की अनुभूति को ढॉकने के लिये पहना जाता है। अगर किसी मे छज्जा और उसकी अनुभूति न हो तो

उसे ढाँकने की जरूरत नही। सत ही इस नदी मे बह भी सकता-है। यह नदी तो सर्वत्र है। प्रत्येक क्षण प्रत्येक जीव नदी मे है। संसार सागर मे है। सभी जीव मछठी है। मल्य न्याय से ससार चल रहा है। भक्ति हु मत््य न्याय को रोकने का साधन है। सारे भक्त मत्स्य न्याय के विरोधी है। अत राम की शरण

कबीरा सत नदी गयो बहि रे' १७९ में है। रामानद मे बह रहे है। इसी आनद मे दुनिया को कुछ नहीं समझते। इसलिये उनकी भोगवाली दुनिया तो जढ गयी है। भोग छोड़कर ही तो वे भक्ति योग मे आये है। यहाँ आनद ही आनद है। दुख का नाम नही। प्रभु के सामने दुख कहाँ टिकता है ? प्रभु तो तीनो तापो सहित भवमोचन है। कपड़ा बुननेवाले सत कबीर ने यहा नगो को ही अपना उदाहरण बनाया। सनक, सनदन एवं महादेव | ये क्यो नगे है ? इसीलिये वे ईश्वरी ज्ञान, अनुभूति और साक्षात्कार की नदी मे बह रहे है। मछली कहाँ वस्त्र पहनती है ? वह तो हर समय पानी मे है। पानी बिना उसका अस्तित्व नही है। पानी ने ही मछली को पैदा किया। रखा, बढ़ाया और पाला है। उसका मन तन सब पानी से बना है। पानी ही उसकी सॉस है। पानी और उसका अद्वय भाव है। ऐसे मे कैसा वस्त्र ? कहाँ का वस्त्र ? प्रभु ही तो सब कुछ है। निज प्रभुमय देखहि जगत। सत कबीर के इस सुख को उसकी माँ ही नही देख पा रही है। माँ माया, ममता है। ज्ञान नदी मे बहने मे माया ममता ही बाधक है। साधना के दुश्मन प्रिय लोग है। क्योंकि साधना से प्रिणता मे बदलाव आ जाता है। ज्ञान के पूर्व प्रियता की सीमा अत्यंत छोटी थी। हम एक अत्यत सकुचित ससार मे रहते थे। छोटा परिवार था। कितु ज्ञान नदी का परिवार बड़ा है। जहॉ-जहां नदी बहती है सबको अपना बना लेती है। जहाँ नही भी बह पाती वहाँ उसका नाम चला जाता है। लोग दौड़े आते है। पता नही कहाँ कहाँ से आते है? चलो, अपने को पवित्र कर। इस नदी मे गुप्त सरस्वती बहती है। यह भी एक प्रतीक है। प्तरस्वती कब प्रगट होती है। वह तो सदा ही गुप्त रहती है। तो सत इसी गुप्त गोदावरी, गुप्त सरस्वती एवं गुप्त गगा का आनद लेते है। नदी जितना बढ़ती है आनद भी उसी अनुपात मे बढ़ रहा है। यह ज्ञान नदी सबके लिये सुलभ है। जो भी-नप्रभाव से जाय। गुरु शरण मे जाय उसे यह नदी प्राप्त होगी। एक नदी मथुरा (मधुरा) मे बहती है| कितु यहाँ किसी की प्यास नही बुझती। और तो और स्वय श्रीकृष्ण प्यासे है। प्यासे चठे गये। कबीर इस मथुरा नगरी को धिक्कारते है। नाश चाहते है। मधुरा की नदी कैसी है जो भगवान् कृष्ण की प्यास नही बुझा सकती है। कहना यह भी है कि भगवत्ता की प्यास किसी सासारिक नदी से पूरी नही हो सकती। अत यमुना की सारी क्रीड़ा क्रीड़ा है। इससे आत्म तृप्ति संभव नहीं। आत्मतृप्ति के अभाव मे मुक्ति भी सभव नहीं। इसीलिये सत कबीर कुछ-कुछ क्रोध मे कहते हैंबजर परौ इहि मथुरा नगरी कॉन्ह पियासा जाई रे। जो नगर, नदी कृष्ण जैसे महापुरुष को तृप्त नही कर सकती उसका नाश कौन नहीं चाहेगा ?,मथुरा से अतृप्त कृंष्ण ही भागे थे। द्वारका। कितु इसमे नदी का क्या दोष ? एक तो मथुरा की नदी प्यास बुझाने की सामर्थ्य नही रखती। दूसरी यह कि इस नगर के आर-पार दो बन है। एक बन मे राधा और रुक्मिणी खेल्ती है। यहॉ मदन देवता का डका बजता रहता है। राधा और रुक्मिणी इसी डके की अश्लाज पर खेलती है। क्रीड़ा करती हैइषहि बेनि बाजै मदन भेरि रे। . इहि बेनि खेले राही रुकमिनि। इस खेल मे कृष्ण की

प्यास बुझाने का ध्यान भी नही आता। कृष्ण भी तो गजब जीव है। इस वन मे न खेलकर दूसरे वन मे जाते है जहाँ तूर्यनाद हो रहा हैउहि बन बाजै तूरा रे। उहि बन कान्ह अहीरा रे। किंतु यह और वह। वन दो होकर भी एक है। एक ही विषय नदी के दो किनारे है।

१८० कवीर समग्र सुख-दुख के किनारे। रागविराग के किनारे | इन्हीं किनारो पर खड़ी माया माँ पुकारती है। भा इन किनारो पर खड़े जीव को कभी तृप्ति मिल सकती है क्या ? यह तो वासना की नदी है। विषयो के किनारे है। प्रवृत्तियो के वन है। इनमे तो माया की देवियाँ राधा रुक्मिणी के नृत्य चलते है। राधा-रुक्मिणी ने कब किसको तृप्त किया है ? ये तो अतृत्ति को और बढ़ाती हैं। इनके साथ खेलनेवाले की अतृतप्ति और बढ़ती है। छगता है कि जीव तृप्त हो रहा है। कितु यह भ्रम है। कभी तृप्ति नहीं होतीं है। इसीलिये कान्ह पियासा जाई रे। जब कान्हा (कृष्ण) ही अतृप्त है तो दूसरों की तृप्ति की बात व्यर्थ है। सत कबीर की बाते कठोर और कटु छग सकती हैं। कितु[सच यही है। सत कबीर कट्ठु सत्य कहते हैं। तो रास्ता क्या है ? रास्ता क्यों नहीं है ? परमात्मा की लीला मे कोई भी रास्ता बद नहीं है। शर्त यह है कि तुम उस रास्ते पर आना चाहते हो या नहीं ? अगर राधा और रुक्मिणी की क्रीड़ा का सुख लेना हो तो रास्ता नही है, क्योकि राधा-रुक्मिणी के खेल अतृप्ति पैदा करने वाले है। यह बंद गली का रास्ता है। यहाँ का रास्ता सीमित है। मृत्यु में जाकर बद हो जाता है। इस बद गली मे जो फेंसा वह व्यर्थ हो गया। उसकी संसार यात्रा विफल गयी। ऐसा जीव ज्ञान नदी मे बहने का आनद नहीं ले सकता। उन्मुक्त होकर नहीं पैर सकता है। यह नदी बॉधनेवाली है। इस नदी मे विषयो के जाल बिछे है। जो गया वह फंसा। यहाँ माया ने जाल फैला रखा है। राधा रुक्मिणी माया के जाल है। कितु कृष्ण को क्या कहिए। वह तो उसी जाल मे फेंसा है। फेंसा रहना चाहता है। चाहता है कि यहाँ सुख मिले। इसलिये दुख के वन से सुख के वन मे खेलता है। कितु अहीर कृष्ण बेचारा है। अज्ञानी है। नहीं जानता कि सुख और दुख दोनो ही वेदना है। संसार की सारी अनुभूतियों, अनुभूति मात्र इंद्रिय सवेदना से उत्नन्न है। और सारी इद्रिय सवेदनाएँ दुख है। जो सुखद लगती है वे भी दुख है। पहले तो इद्रिय सवेदना का सुख इद्रियातीत सवेदना से अत्यत निचले स्तर का है। उसमे सख्यातीत छोटापन है। दूसरे यह कि वे किसी को भी तृप्त करने मे असमर्थ हैं। वे तो अतृप्ति का आघार है। उन्हे अतृप्ति के लिये ही ससार के साथ पैदा किया है। ये ही तृप्त करती तो परमात्मा की क्या आवश्यकता थी ? आखिर परमात्मा गुरु है न। एक दाँव शिष्य को नही बताता है। अतिम, स्थायी और सनातन तृप्ति के लिये सभी को उसी परमात्मा गुरु का आश्रित रहना होगा। उसी गुरु के पास जाना होगा। इसीलिये गुरु परमात्मा है। गोविद है। गोविद का अर्थ है इद्रियो का स्वामी। कहना यह है कि तृप्ति इंद्रियो मे नहीं। इद्रियो द्वारा उत्न्न विषय सुख मे नहीं है। तृप्ति तो इद्रियो के स्वामी गोविद की कृपा मे है। शरण मे जाने पर है। इसीलिये सत कबीर एक और वन की ओर सकेत करते हैं। वह है, तुलसी वन। तुलसी विरवा का वनआसि पासि तुलसी का विरदा, भोहि दारिका गाँऊँ रे। वहाँ मेरी खकुर रांम राह है, भगत कबीरा नौंऊ रे। द्वारका। मधुरा (मघुरा) नहीं द्वारका। भगवद्माप्ति का द्वार। द्वारका। द्वारका भी नगर है। कितु बड़े-बड़े वनो का नगर नही। बड़े-

बड़े वनो मे तो अनेक प्रकार के हिसक जीवजंतु रहते है। इन वनो मे किसी की खैर नही। जो भी गया, फँसा। राधा-ठक्मिणी माया सबको फँसा रही है। खा रही है। लोग कहेगे कैसे है कवीर, राधा और रुक्मिणी जैसी कोमल नारियो के वारे में ऐसा कठोर भाव रखते है। राधा तो सीदर्य की देवी हैं। प्रेम की पुतली है। असख्य कवियों एवं कृतिकारो ने कोमढागी राधा को अपनी सौंदर्य चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम वनाया। भला ऐसी राधा के बारे मे इतनी कठोरता क्या उचित है ? यही तो रोना है, राधा -. उक्त नहीं भोग की देवी है। राधा के सारे अग ऐसे है जो कृष्ण (जीव) को नचाते है

कबीरा सत नदी गयो बहि रे १८१ हरि नच्चावह पंणगौ बिम्भउ पाड़ि लोउ। एम्बड्ट राहि पयोहरम जिमि भावई तिमि होउ। (छोग विस्मय मे पड़ गये है। कृष्ण ऑगन मे नाच रहे है। यह राधा के पयोधरों का कमाल है। वे जो चाहेगे वही होगा)। और रुक्मिणी तो कामदेव की माता ही ठहरी। कामदेव अनिरुद्ध होकर इसी देवी के गर्भ से पैदा हुए थे। इसीलिये सत कबीर ने कृष्ण की अन्य स्त्रियों मे से केवल इन्ही दोनो को प्रतीक रूप मे चुना। ये ही लोक वेद के प्रतीक भी है। राधा और रुक्मिणी मथुरा मे है। मथुरा के विशाल वन में है। भगवत् प्राप्ति की द्वारका मे इनका कया काम ? यहाँ तो पवित्र तुलसी है। विरवा तुलसी | तुलसी का विरवा इतना छोटा है कि इसमे राधा-रुक्मिणी के खेलने का सवाल नही उठता। छोटा होकर भी गहरी पविन्नता का भाव है। यह विरवा द्वारका गाँव मे है। द्वारका तुलसी के बीच मे है। द्वारका तुलसीमय है। द्वारका और तुलसी पर्याय हो गये है। इस तुलसी मे राधा नही। रुक्मिणी नहीं। तो कौन है ? कबीर साहब इस प्रश्न से परिचित थे। उत्तर देते है- तहाँ मेरो ठाकुर राम राइ है. | उसी पवित्र तुलसी वन मे दो है- ठाकुर राजा राम और भक्त कबीर। न राधा, न रुक्मिणी, न अतृप्त अहीर कृष्ण। यहाँ माया का स्थान नही है। यह भगवत्त्थान है। भक्ति मुक्ति दोनो यही सभव है। कृष्ण अहीर था। अज्ञानी था। कितु राम राजा है। ठाकुर है। अर्थ कि सर्व समर्थ है। कृष्ण जैसा असमर्थ नही। असमर्थ कृष्ण को राधा रुक्मिणी फेंसा छेती है। समर्थ राम स्वय मुक्त है। भक्तो को भी मुक्त करते है। परम तत्त्व मुक्ति तत्त्व तुलसी के विरवा जैसा देखने मे लघु होकर भी महत्ता मे विराटू है। लघुता से ही प्रभुता मिलती है। प्रभुता से प्रभु दूर चले जाते है। मथुरा नगर है। विशाढताओ एवं वैभव का नगर है। बड़ी-बड़ी स्त्रियो का नगर। कितु ये सब वृक्षवत् व्यर्थ है। द्वारका गॉव है। यहाँ के लोग तुलसी विरवा जैसे साधारण क्वितु पवित्र चरित्र के है। यह पवित्रता ही मनुष्य की उपलब्धि है। यह पवित्रता लघुता से मिक्ती है। अपने को छोटा और प्रभु को महान् समझने से प्रभु की प्राप्ति होती है। द्वारका मे प्यासा नही रहना होगा। यहाँ भक्ति-साधना द्वारा पताल तोड़कर पानी निकलता हैकंकर कूई पतालि पानियाँ, सूनै बूँद बिकाई रे। भक्त पाताल का पानी पीता है। यह पाता उसके भीतर है। इस पाताल का ज्ञान प्रभु कृपा, प्रभु के प्रति भक्ति एव यौगिक क्रियाओ द्वारा होता है। यह एक ज्ञान नदी है। यह-नदी पाताल फोड़कर निकलती है। हर नदी पाताल से निकलती है। गहरे ज्ञान से आनद जल निकलता है। यह पाताल ककरो से भरा है। इसीलिये इसके जल का स्वाद महारस है। इसका एक-एक दूँद मूल्यवान् होता है।

बैल बियाह गाय भई बॉस कवीर परेशान है। परेशान तो वे रहते ही है। परेशान रहना उनका स्वभाव बन गया है। हर समझदार आदमी परेशान रहता है। परेशानी नासमझ को भी होती है। क्रितु नासमझ की परेशानी दूसरी है और समझदार की दूसरी। नासमझ अपने स्वार्थ के लिये परेशान है। अधिक से अधिक जोड़ने के लिये परेशान है। जो है उसमे और बढ़ जाय। कितना और कंसे सग्रह हो इसके लिये परेशान है। किंतु समझदार और सत यह देखकर परेशान होते हैं कि दखी इस आदमी को। इसकी आवश्यकताएँ कितनी कम है। फिर भी कितना बटोर रहा है। जिस सुख के लिये बटोरता है वह सुख भी इसे प्राप्त नहीं है। फिर भी बटोरने में लगा है। न्याय-अन्याय पर ध्यान दिये बिना बटोर रहा है) भोगता कम है। जोड़ता अधिक है। जोड़ के मुकाबठे भोग अलत्वल्प है। बड़े-बड़े महल वालो का जीवन यात्राओं में ही बीत जाता है। सड़क पर गिरकर मर जाते है। कभी-कभी तो उन्हे कोई पहचाननेवाठा नहीं होता है। निकले थे घूमने, हवा खाने और चले गये स्वर्ग। जाते समय अपनी मिट्टी भी यहां छोड़ देते हैं। दूसरे लोग उसे जला या गाड़ देते है। कभी-कभी गिद्धों को खिला देते हैं। सग्रह के क्रम मे ठोग यह भी भूल जाते है कि उनके जन्म ठेने का कोई उद्देश्य भी है या नही। ससार मे आये क्यो है ? स्वयं आए है या किसी ने उन्हे भेजा है ? भेजा है तो क्यो भेजा है ? उनके द्वारा भेजनेवाला क्या काम छेना चाहता है ? इन बातो पर न सोचनेवाले वैलो को देख सत कवीर हैरान है। अरे बैलो, कुछ तो सोचो। क्या कर रहे हो ? कैसे नगर करी कुटबारी कुटवारी मतलब कोर्टपाल, कोतवाल का कार्य। कोतवाली अर्थात् देखभाल कैसे की जाय ? रक्षाकार्य अत्नत कठिन हो गया है। नगर तो देह है। कितु कोतवाल संत कबीर को देह रक्षा की उतनी चिता नही है जितनी चिता उन्हे देह ग्रहण करने के उद्देश्यों की है। ऐसा न हो देह ग्रहण का उद्देश्य पूरा ही न हो। अगर सत कबीर को भी देह रक्षा की ही चिता होती तो उनमे तथा सामान्य जन में क्या अतर होगा ? शरीर की चिता असत को और शरीर प्राप्ति के उद्देश्यो की चिता सत को होती है। कितु प्रतीको के धनी कबीर नगर और कुटवारी दोनो को प्रतीक माध्यम से व्यक्त करते हैं। बेचारे सत क्या करे ? प्रतीक तो अपनाना ही होगा। जब यह सृध्ि ही प्रतीक है तो उसकी समस्याओ की अभिव्यक्ति भी प्रतीको के माध्यम से होगी। यी कहिए कि सत कबीर ससार प्रतीक के लिये दूसरा प्रतीक गढ़ते है। प्रतीको से समझदारी मे सुविधा होती है। मासु पसारि गीध रखवारी। फिर प्रतीक। पूरा पद प्रतीक है। मासु है रूप, रस, गध, स्पर्श एवं शब्द | ये ही चारो ओर फैले हैं। पसरे है। जब इद्रियो के ये विषय फेले है तो इंद्रियो का लोभी होना स्वभाविक है। यहाँ फैछा या बिखरा से पसरा अधिक महत्त्वपूर्ण शब्द है। पसरा का अर्थ है जैसे किसी ने मेले मे वस्तुएँ फैला दी है। जिसकी जो इच्छा हो देखे। खरीदे। पसरा प्रदर्शनी का भाव देता है। वासना को ठुभाने और उत्तेजित करने वाली इन वस्तुओ को पसरा देखकर छोभ का जागना स्वाभाविक है। लाख कोई समझाए कि किसी के धन पर गृद्ध

दृष्टि मत रखो (मा गृध कस्य स्विद्धनमू-ईश० १)। किंतु गृद्ध की दृष्टि तो अपार होती है।
मौंस या (१८२)

बैल बियाइ गाय भई बॉझ १८३ लोभ की चीजे कही भी रहेगी वह देख ही लेता है। ऐसी स्थिति मे शरीर धारण के उदेश्यो की रक्षा करना कठिन हो गया है। कहाँ पसरा है यह मॉस ? सारा ससार ही तो मास का पसारा है। और गीध भी कही दूर नही है। मास और गीध साथ-साथ है। गीध को कही दूर से नही - आना है। उसका तो यही काम है। हर समय मॉस की खोज करना। रखना। गीध तो पक्षी है। छोभ की कल्पना मे उड़नेवाल्ा पक्षी। लोभ मोह इसके दो पख है। इन्ही दोनो पखो से यह ससार यात्रा करता है। आकाश से धरती और धरती से आकाश तक जाता “ है। कोई जगह इस गृद्ध से खाली नही है। विषय मांस कहाँ नही है। मासभक्षी (अत्यत लोभी) | होने के कारण ही गृद्ध की प्रतिष्ठा नही हुई । वरना यह पक्षियों मे बड़ा है। तीव्र दृष्टि वाला है। भगवान राम को सहायता प्रदान करनेवाला भी रहा है। यह वैष्णव दृध्टि तो है ही। मानवी दृष्टि भी है। क्योकि मनुष्य मूलत अहिसक है। वह मांस खाकर भी उसे लोभ के अतर्गत ही गिनता है। इसलिये मासभक्षी और लोभी को एक बनाकर उसकी सज्ञा गीध कर दी गई। ईशोपनिषद् मे गृद्ध का अर्थ लोभ ही है। गो० तुलसीदास कहते है कि लोभी की दृष्टि अपार होती है। वह वहाँ भी देख लेता है जहाँ सामान्य छोग नही देख पाते है। ऐसे मे लोभ की वस्तुएँ अगर बिखरी हो तब का तो कहना ही कठिन है। इसीलिये सत कबीर अपनी परेशानी व्यक्त कर रहे है। इस ससार मे शरीर की रक्षा कैसे करे ? कठिन स्थिति है। कठिनाई तब और बढ़ जाती है जब विवेक बुद्धि भी नष्ट हो गई हो। बॉझ हो गयी हो। उसने अपना कार्य करना बद कर दिया हो। अच्छे-बुरे का विवेक समाप्त हो गया हो। भगवान् जानते है कि जीव माया मे पड़ा है। उस पर माया का गहरा प्रभाव है। इसलिये उन्होने उसे बुद्धि प्रदान की है। बुद्धि गलत-सही का विवेक करेगी। कितु ऐसा होता नही देख सत परेशान है। बुद्धि निश्चयात्मिका होनी चाहिए। वह निश्चय करे। क्या करने मे जीव की भलाई है। इसीलिये बुद्धि का स्थान ऊँचा है। कितु बुद्धि अपना कार्य बद कर दे तो क्या होगा ? एक तरफ बुद्धि गाय गभीर नही हो रही है दूसरी ओर बैल अविवेक अपना कार्य कर रहा है। सब उलट गया है। जिन्हे कार्य करना था वे चुप है। अपना कर्तव्य छोड़े बैठे है। जिन्हे शात रहना था। मूर्ख बनकर बैठना चाहिए था वे सक्रिय है। ऐसी स्थिति मे क्या किया जाय ? कोई भी शासक अपना कर्तव्य न निभाए तो उपद्रवी तत्त्व सक्रिय हो जाते है। यहाँ यही हुआ है। बुद्धि ने काम करना बद कर दिया है और अज्ञान बैल सक्रिय है। फलत ससार का उद्देश्य ही खतम हो रहा है। जीव के जन्म लेने का उद्देश्य ही खतरे मे पड़ गया है। ग अब यह अज्ञान-अविवेक बैल बछरहि दूहै तीनिउ साझ। इद्रियाँ बझड़ा है। अज्ञान बैल इन्ही इंद्रियों को सक्रिय किये है। अविवेक की स्थिति मे इद्रियाँ मुक्त भोग करने लगती है। बुद्धि के प्रतिबध से मुक्त हो जाती है। यह भी नही सोचती कि भोग, अबाध भोग का परिणाम क्या होगा ? वे तीनो सॉझ, हर समय विषय रस को दुहते रहती है। विषय रस मे लिप्त रहती है। उन्हे ध्यान भी नही रहता कि विषय रस के

अतिरिक्त भी कोई रस है। राम रस। भक्ति रस। ज्ञान से उत्पन्न रस। कौन समझाएगा इन्हे ? बेचारी गाय दो बार दुही जाकर ही काफी थी। अब हर समय दुही जा रही है। इद्रियो की छोलुपता अज्ञान का साथ पाकर और बढ़ गयी है। इद्रियाँ प्रत्येक क्षण सक्रिय है। सतो का काम है। इद्रियो का दमन। प्रवृत्तियो का शमन। किंतु इद्रियो का दमन कौन करे ? यह काम तो बुद्धि का है। उसे ही यह कार्य सौपा गया था। अहकार, चित्त और मन इस कार्य को नही कर सकते। इन तीनो का यह कार्य नही है। फलस्वरूप अत करण विकृत हो रहा हैमूसा खेबट नाव बिलइया। सोबै दछुर सर्प पहरिया। नित उठि स्यार सिंघ सौ जूझ, कहे कबीर कोई बिरला बूच्े।

१८४ कवार समग्र समाज मे उपद्रव वढ़ रहे है। सारे समाज का नेता काम या लोभ हो गया है। यह कामलोभ ही ससार की नाव खे रहा है। जो पुरुष समझदार बनकर काम विषय के चूहे को मार सकते थे वे स्वय नाव वन गये है। वे विषय वासना द्वारा सचालित हो रहे है। वे समझते ई विषयो द्वारा ससार सागर को पार कर छेगे। कितु उनकी पतवार वो काम के अधीन है। विषय वासना के हाथ में है। ऐसे मे क्या हो सकता है? विषयो का चूष्टा जो उनके पुण्य-पवित्र घर को धीरे-धीरे नष्ट कर रहा है उसे ही उन्होंने नाविक बना दिया है। निश्चयात्मिका दुद्धि रूणी बिल्ली को विषय चूहे को पकड़ने के लिये दोड़ाना चाहिए था। कितु उल्टे ही बिल्डी ने नाव की पतवार उस छुद्र चूहे के हाथ मे दे दी है। छुद्र काम चूहा निर्दन्द्र है। केसी भयानक स्थिति है ? जब भक्षक भक्ष्य बन जाय। रक्षक रक्ष्य बन जाय। चोर सिपाही और सिपाही चोर बन जाय। कितु विषयो मे फँसी दुनिया की यही स्थिति है| मोह मेढक सो रहे है। मोह निश्चिंतता की स्थिति है। मोह निसा सब सोवनिहारा। इन्हे पता ही नही कि ससार मे क्या हो रहा है ? अपने भविष्य के प्रति अज्ञान ही इनकी विशेषता है। मोह और अज्ञान का नाश करनेवाले शास्त्रों ने भी अपने कार्य बद कर दिया है। वे नाना मतातरो मे पड़े हैं। आत्मचैतन्य से उनका कोई सबंध नहीं रह गया है। वे ज्ञानमूलक शास्त्र न होकर मोह बढ़ानेवाले हो गये है। मोह के रक्षक बन गये है। शास्त्र, मतो, धर्मण्यों एवं सतो का काम है मोह को समाप्त करना। आखिर मोह, लोभ, आदि की हैसियत क्या है ? हैं तो ये मेढक के समान। अज्ञान जल में उछलते रहते है। कभी ज्ञानी के हृदय स्थल पर भी आ जाते > | इसलिये ज्ञानी का काम है इन्हे समाप्त कर दे। कितु ज्ञानी तो स्वयं इनकी रक्षा कर रहा | विषयो की कामना का गीदड़ नित्य ही जीव सिह से ठड़ता है। जीव में कामना उत्तन्न होती है। मनुष्य अपनी ही कामना से लड़ता है। मानो मनुष्य मन एक जगठ है। इस जगल में उसका एक मन सिह है। वह मन जो विषय मुक्त रहता हे। क्योंकि मन में अनंत शक्ति है। इसलिये वह शेर है। कितु मोह में पड़ा मनुष्य मन तियार बन जाता है। प्रत्येक व्यक्ति मे अहम् है। मै ब्रह्म हूँ की चेतना है। इस चेतना के रहते सारे विषय गीदड़ के समान भागते फिरते हैं। दुबके रहते है। कितु सियार दुनिया की माया मे प्रवल होता है। वह सिंह को भी कुएँ में गिरा देता है। कव गिरता है सिह कुएँ मे ? जद वह कामना सियार के वहकावे में आ जाता है। क्रोध की स्थिति मे। अपने अहम् की तामसिक स्थिति में। अपने स्वरूप को ठीक-ठीक न समझने की स्थिति मे। अपने ही प्रतिविम्ब को दूसरा समझने की स्थिति मे। कहना यह है कि इन स्थितियों मे सिह स्थार से भी कमजोर हो जाता है। मोह मनुष्य की विवेक शक्ति को नष्ट कर देता है। उसे मूर्ख वना देता है। पचतत्र की प्रसिद्ध कया में इसी मोह, क्रोध वाले सिह को सियार ने मार डाला। मोह अक्सर काम साधक होता है वह छठवल से अपना काम करता है। ऋषि मुनियो को भी प्रभावित कर लेता है। कौन ऋषि ऐसा है जिसे कामना नहीं हुई। कामना रा मोह के बाद क्रोध हुआ।

क्रोध से उसका पतन हुआ। सत कदीर इसी स्थिति को कह रहे | कामना से दूर रहो। कामना के गीदड़ को कभी, किसी हालत मे पास न फटकने दो। यह काम साधक हर हालत मे तुम्हे धोखा देगा। तुम्हारा सिह-सा सपन्न और शक्तिशाली व्यक्तित्व नष्ट कर देगा। काम-सियार ने कभी किसी का छाभ नहीं किया है। अनेक-अनेक लोक-कधाओं मे यह लोभ को बढ़ाने के लिये प्रसिद्ध है। यह जितना सटता है उसका उतना ही शीघ्र नाश करता है। भला करने के लिये इसके पास कुछ भी नहीं है। इसने न कभी किसी की भलाई की है।न करने की क्षमता रखता है। हों, बुरा करने की इसकी क्षमता अद्भुत है। मित्र बनकर लि बन

है बैल बियाइ गाय भई बॉझ् १८५ दुश्मनी का कार्य करने में इसका कोई मुकाबला नही है। दुष्ट इतना है कि किसी न किसी बहाने से जीव सिह से रोज झगड़ा करता है। उसे परेशान करता है। उठि' का मतलब ज्ञान सिह इसे सुछा देता है। कितु जगा भी असावधानी हुई कि यह जग जाता है। नित्य उठना और झगड़ना इसका स्वभाव है। इसलिये सावधान। यह उठ न पाए। इसे उठने न दो। इतना मारो कि यह उठ न सके। बिल्कूल नष्ट कर दो। मार डालो। सत कबीर कहते है कि मेरी बात स्पष्ट है। कितु इसको कोई कोई ही समझ पाते है। यही कारण है, सभी कामना के वशीभूत होकर अपने को नष्ट कर रहे है। कबीर के इन प्रतीकों का अर्थ है कि कुप्रवृत्तियाँ जो जानवर है ही। उनको न समझनेवाला। समझकर उसके अनुसार हा न करनेवाला तथा अपने कर्त्तव्यों से रहित, इनके वश मे पड़े व्यक्ति भी जानवर ही |

नाम लिये का होई भक्ति की प्राय सभी शाखाओ मे नाम स्मरण का महत्त्व है। इसे भक्ति का एक महत्त्वपूर्ण 250५ जाता है। नाम को सगुण-निर्गुण के बीच का माना गया है। नाम स्मरण, नरम जप, सगुण निर्गुण सभी भक्तो को स्वीकार्य है। यह बात कवीरदास भी स्वीकार करते है। तो नाम लिये का होई क्यो कहते है ? इसका तो सामान्य अर्थ ठीक नही लगता। क्या सत कवीर को नाम स्मरण मे कही अविश्वास है ? है भी और नहीं भी। इसका कारण है। वे इस बात से शकित है कि नाम स्मरण कही रूढ़ि न बन जाय? आचरण न बदले। भीतर कुछ हो और नाम स्मरण केवल बाहर-बाहर रह जाय | कथनी केवल बदनी में रह जाय। बहुत से छोग कहते कुछ है, करते उसके विपरीत है। कथनी करनी मे एकता होनी चाहिए। यह एकता तब आएगी जब भीतर बाहर एक ही बात हो। आचरण भी कथनी के अनुसार हो। आचरण कथनी को प्रतिविम्बित करे। कथनी आचरण से गहरे मे जुड़ी हो। कथनी और करनी की भिन्नता से छाभ के स्थान पर हानि की सभावना है। सभावना क्या हानि होती ही है। इसी हानि के प्रति कवीर सजग है। सत कबीर सावधान है। कुछ भी ऐसा न हो कि धोखा हो जाय | छल कहाँ नही है ? नाम जप मे भी धोखा है। नाम तो जपो राम का और काम करो वासना का। विषय का। ऐसा जप तो व्यर्थ है। न केवल व्यर्थ है बल्कि धोखा भी है। ऐसा व्यक्ति अपने को भी धोखा देता है। समाज को भी धोखे मे रखता है। इस धोखे से नुकसान होता है। सत कबीर इस नुकसान से परेशान है। सबको सावधान करते है। खाली खाली नाम जप साधुता नही है। बाहरी नाम जप से सावधान । तो, उन्होने एक रास्ता निकाला अजपा जाप। ऐसा नाम स्मरण जो मन में हो। चित्त और बुद्धि मे हो। जो अहकार का अग बन जाय। मन, चित्त, बुद्धि और अहकार। अत करण की ये चारो शक्तियाँ, चारो रूपो मे नाम स्मरण हो। ये चारो है। कितु अरूप है। इनका कोई रूप नही है। इन अरूप को राम जप का आधार बनाओ। नाम जप भी अरूप हो जाय। बाहर कुछ नही। बाहर राम न भी दीखे तो कोई हर्ज नही। कितु भीतर का पूरा अत करण राममय है। राम से जुड़कर, वार-वार, हर समय राम को दुहराने से अत करण राममय हो जायगा। अपना रूप छोड़कर राम बन जायगा। कीट भूग सा तादाल्य हो जायगा। तब जपनेवाला और जिसका जप हो रहा है दोनो एक हो जायँगे। तन्‍्मयी भवन की स्थिति हो जायगी। यह तन्मयी भवन की स्थिति ही नाम जप का उद्देश्य है। राम जपते-जपते राम होना ही मनुष्य का उद्देश्य है। जीव है तो मूलत राम ही। कितु ससार मे आने के कारण वह राम से छूट गया है। अलग हो गया है। उसकी सारी परेशानी, बेचैनी इसीलिये है कि वह राम होकर भी ज्प़ से अलग है। राम न होता तो उसे राम बनने की बेचैनी क्यो होती ? राम होकर भी वह राम नही रह गया है इसलिये राम वनने की उसकी बेचैनी है। इस बेचैनी की पूर्ति बाहर नही भीतर है। अगर वेचैनी भीतर है तो बाहर के नाम जप से क्या फायदा होगा ? अदर से जुड़ना है। नाम जप भी अदर ही अदर करो। अत करण की चारो

वृत्तियाँ बदलेगी तभी व्यक्तित्व मे परिवर्तन होगा। व्यक्ति शरीर नही है। शरीर तो केवल आधारमात्र है। इस आधार की:*रक्षा बहुत थोड़े प्रयलो से होती है। शरीर (१८६)

नाम लिये का होई १८७ एक छोटी और स्थूल चीज है। इसलिये इसकी रक्षा छोटी और मोटी-मोटी स्थूछ वस्तुओ से हो जाती है। कितु शरीर की अपेक्षा शरीर मे रहनेवाली ये चारो वृत्तियाँ अत्यत बड़ी है। यह बात हम रोज देखते है। शरीर की दृष्टि से गॉधी का कोई महत्त्व नही था। शकराचार्य का शरीर भी वैसा ही था जैसा और लोगो का होता है। कितु इनके भीतर अत करण मे कुछ था जो सबसे भिन्न और विशिष्ट था। अत्यत बड़ा, विराट् और सूक्ष्मातिसूक्ष्म था। ये छोग भी नही जानते कि वह क्या था ? शरीर नापा, तौला जा सकता है। उसकी प्रतिमूर्ति गढ़ी जा सकती है। भीतरबाहर के अगो के चित्र लेने की व्यवस्था भी हो गयी है। कितु अत'करण का चित्र कोई नही ले सकता है। यह अत करण इतना विराट, इतना विचित्र है कि इसका चित्र बन नहीं सकता है। असली बात तो यह कि यह सूक्ष्म भी नहीं है। ससार की किसी भी वस्तु द्वारा इसे समझाया नही जा सकता है। कितु यह है, इसे किसी न किसी रूप मे सभी समझते है। भिन्नता नामो की हो सकती है। गिनतियो की हो सकती है। कोई एक मन माने। कोई दो या तीन। कोई मन के अतिरिक्त भी कुछ माने। कोई मन मे ही सबको समेट छे। जैसे भारत मे मन, चित्त, बुद्धि और अहकार की एक सज्ञा अत करण दी गयी है। इनके अतिरिक्त अन्न, प्राण, मन, विज्ञान और आनद नामी पॉच सूक्ष्म कोशो की कल्पना की गयी। ये सब विराट् होकर भी सूक्ष्म है। होकर भी नही से है। इन्हे दिखाया नही जा सकता। समाझाने मे भी अत्यत कठिनाई है। अपनी अनुभूति के अभाव मे इन्हे बताना असभव है। सारा मनोविज्ञान शास्त्र इस बात पर खड़ा है कि मन हमारे विश्वास मे है। अनुभूति और अनुभव मे है। ऐसा न हो तो मन को बताना, समझाना और उसका शास्त्र बनाना सब व्यर्थ है। कितु मन को कोई अस्वीकार नही करता। क्यो ? इसलिये कि सभी जीवित मनुष्य इस शरीर के अतिरिक्त एक ऐसी सत्ता की अनुभूति करते है जो जड़ शरीर से भिन्न है। जो सही मे ससार के सारे दुख-सुखादि की अनुभूति करती है। उस सत्ता की उपस्थिति ही जीवन है। उसकी अनुपस्थिति मृत्यु बन जाती है। यह वह सत्ता है जो शरीर को छोड़कर चलती है। शरीर है भारत मे तो यह अमरीका का मजा छेती है। शिथिल होकर शरीर के गिर जाने जिसे सोना कहा जाता है। जब चेतना लुप्त सी लगती है। यह भी नही पत्ता रहता कि हम है या नही ? ऐसे मे भी यह सत्ता सक्रिय रहती है। स्वप्न के माध्यम से काम करती है। स्वप्नो को भूलती भी है। याद भी करती है। बीते कल और आगमी कल के कार्यक्रम को नोट किये रहती है। सोने से कोई बात भूल नही जाती है। जैसे मृत्यु के बाद सारे स्मरण समाप्त हो जाते है वैसा नीद मे नही होता है। ऐसा क्यो ? ऐसा इसलिये कि नींद मे यह सत्ता हमारा साथ नही छोड़ती है। जब कि मृत्यु का आर्थ ही है इस सत्ता का शरीर से अछग हो जाना। जब तक यह सत्ता शरीर नही छोड़ती, हजार गोली खाकर पर नही होती है। हाँ, कभी-कभी एक सामान्य धक्के से भी यह सत्ता शरीर से अलछग हो जाती है। इसीलिये सत कबीर अजपा जाप पर जोर देते

है। सूक्ष्म को प्रभावित करना है तो उसकी पद्धति भी सूक्ष्म होनी चाहिए। हाँ, दुनिया को दिखाना हो, बाहर के लोगो को प्रभावित करना हो तो बाहर मे जपो। किंतु कबीर साहब और सावधान होते है। वे कहते है बिनु देखे बिनु अऱस परस बिनु नाम लिए का होई। मतलब की नाम जप के साथ ही मन मे प्रभु तत्त्व का दर्शन करने की कोशिश भी करो। उसका स्पर्श करो। कौन है प्रभु ? जिसका जैसा है प्रभु। जिसने प्रभु को जैसा जाना ही। उसी रूप को देखते रहो। स्पर्श करो। जप जीभ का काम है। देखना और स्पर्श आँख एवं त्वचा के कांम है। इस प्रकार तीन प्रमुख इद्रियो को प्रभु सेवा मे, स्मरण मे 4 शेष बची दो इद्रियाँ नाक और कान। इनका काम है सूँघना और सुनना। इनकी चर्चा रह गैथी (किंतु इससे फर्क नही पड़ता है।

746८५ जग5ज।६ जात इद्रियो के स्वभाव को जानना होगा। इद्रियाँ मन राजा के अधीन है। मन राजा इद्रियो के अधीन है। इसलिये मन भी एक इद्री मान लिया गया है। राजा प्रजा के मेल से काम होता है। अत ऐसा नही हो सकता कि मन अलग रहे और इद्रियाँ अलग चली जायेँ। मन के अभाव मे इद्रियाँ चाहकर भी कुछ नहीं कर पाती है। पहले तो मन के अभाव मे इंद्रियो मे किसी प्रकार की चाहज़ा सभव नही। क्योकि इद्रियाँ जड़ होती है। मन के अभाव मे कुछ नहीं कर् सकती है। इद्रियाँ जड़ है इसीलिये सभी इद्रियो का आपरेशन सभव हुआ। केवल मन का आपरेशन नही हो सकता है। क्योकि मन आकाश से भी सूक्ष्म है। कहना यह है कि इद्रियो और मन का अलगाव असभव है। अगर है तो वह निरर्थक है। सत कबीर यही तो कहते है राम नाम मन मे जपो। वाहर-जपना सुग्गे सा जपना है। सुग्गा राम-राम करता है। कितु उसकी मूल बोली टे-टे नही बदलती। मौका पाते ही टे-टे करने लगता है। इस टे-टे मे राम नाम नही है। टे टे का राम नाम'से दूर का संबध भी नही है। राम नाम से इतना जुड़ो कि रूप, रग, ध्वनि, स्पर्श प्राण और स्वाद सब में उसी की अनुभूति हो। यह तब होगा जब अजपा जाप द्वारा मन राममय हो जायगा। तब सारी इद्रियाँ भी राममय हो जायेंगी। राजा बदढा सेवक भी बदल गये। प्रजा मे भी परिवर्तन आ गया। राममय मन का रूप भिन्न होगा। उसकी आँखे प्रेमारक्त दीखेगी। त्वचा मे नयी शक्ति आ जायगी। जीभ का स्वाद बदल जायगा। अब सालिक आहार ही पसद होगे। थोड़े भोजन, थोड़े वस्त्र, छोटी सी छाया मे भी सुख मिलेगा। सुग्गा राम नाम दूसरों के लिये बोलता है। अपनी पीड़ा, अपना सुख वह राम-राम नहीं टे टे से व्यक्त करता है। कितु मनुष्य को तो राम अपने लिये जपना है। अपनी आत्मा को शुद्ध करना। ऐसे मे बाहर राम रटने से फायदा ? कितु लोग है कि वाहर चिल्लाते है। मुसलमान तो चिल्लाते ही है। हिंदू भी लाउडस्पीकर लगाकर लोगो की नींद मुश्किल कर देते है। पूछिए वह राम नाम कैसा जो दूसरो का सोना कठिन बना दे। रोगी को जगाए रखे और छात्र को पढ़ने में बाधा डाले। कवीर जानते है ऐसा राम नाम जप भक्ति नही माया है। अपने लिये नही दूसरो के लिये है। किसी से कहिए कि लाउडस्पीकर मत बजाओ तो वह कहेगा मुहल्ले के लोग जानेगे कैसे ? अच्छा तो आपके राम नाम का उद्देश्य भक्ति नही मुहल्ले को जनाना है। जगाना। शाति मे बाधा डालना। पीड़ित सिर की पीड़ा को और तेज करना है। अनिद्रा की गोढी को व्यर्थ करना है। तो यह भी समझ लीजिए इससे आपको राम की प्राप्ति नहीं होगी। हाँ, जैसे आप दूसरो को ध्वनि प्रदूषण का शिकार बना रहे है वैसे ही ध्वनि प्रदूषण आपका भी नाश कर रहा है। कान की दवा सदा अपने पास रखिए। बोलते है दूसरो को सुनाने के लिये। जपते है अपने भीतर की चेतना को जगाने के लिये। इसलिये आपका भीतरी जप जितना ही भीतर होगा आप उसी स्तर पर प्रभावित करेगे। प्रभावित होगे। अपने को प्रभावित करना है तो भीतर जपी। भीतर जप का एक कारण और है। इसे आध्यात्तिक कारण कहना चाहिए। जिस प्रभु को पाना है

वह भीतर ही है। जहाँ जपना है वही है। उसी अत करण मे है। बात उल्टी हो गयी। जो भीतर है उसे बाहर पुकारो। जो नजदीक है उसे दूर पुकारो। इससे क्या फायदा ? सत कबीर हर समय दिखावा या आडबर से परेशान रहते है। सारी बाहरी साज-सज्जा अपूर्ण है। इससे मनुष्य के -भीतर के देवता असतुष्ट रह जाते है। राम स्मरण से भी महत्वपूर्ण है राम मे रमना। राम न रमसि मोह का माते। है प्रभु तो सबके भीतर है ही। जैसे फूल मे गध। फूलनि मे जैसे रहति बास। किंतु फूल तो सभी देखते है। उसकी गध नजदीक जानेवालो को मालूम होती है। भ्रमर उससे और विशिष्ट

नाम लिये का होई ' १८९ प्रकार के गध रस का स्वाद लेता है। अजपा जाप से मनुष्य में प्रभु गध रस को जानने, / समझने और उपयोग करने की क्षमता आ जाती है। फूल के पास पहुँचा व्यक्ति बिना प्रयास के स्वय उससे प्रभावित होने रगता है। क्योकि गध के पास जो भी नाक जायगी गध उसे प्रभावित करेगी। वह अपने को रोक नही सकती है। इसी प्रकार परमात्मा अपने पास आये को अपना छाभ देता है। देना उसका स्वभाव है। फूल की गध के समान वह भी सबको सुगंधित करता है। परमाला का कोई रूप नही है। सभी रूप उसके है। जो सब रूपो मे है उसका निजी रूप क्या हो सकता है ? इसीलिये उसे अपाणिपादो कहा गया है। वह मुँह बिना खाता है। कान बिना सुनता है। जीभ के बिना बोलता है। हाथ के बिना सारा कार्य करता है। कर्ता होकर भी सबसे अलग है। अढ़ूग होकर भी सबमे है। क्योकि वह रूपरहित है। रूप की सीमा है। रूप असीमित नही हो सकता। अरूप निस्सीम है। इस अरूप को अरूप मन ही समझ सकता है। स्थूल और रूपवानू इद्रियाँ इसे समझने मे बिल्कुल असमर्थ है। मन का यह विषय मन द्वारा ही जाना जा सकता है। यो कि मन की भी जब अमन स्थिति हो जाय। मन अपने पूर्व ग्रहो को छोड़ दे। विषयो से मुक्त अविषय हो जाय। क्योकि जहाँ विषय है वहाँ प्रभु नही रह सकता। इसीलिये नाम तो छो। कितु नाम के साथ ही नामी को समझने की कोशिश करो। नामी का साक्षात्कार करो। यह काम आतरिक जप से ही सभव है। बाहर के तोता रटत से कुछ नहीं मिलेगा। भीतर ठीक हुआ तो बाहर भी ठीक हो जायगा। सारा बाहर तो भीतर का ही प्रकाशन है। इसीलिये तुलसीदास कहते है जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। दृश्यमान सारा जगत उसी सूक्ष्म, अविज्ञात, अजन्मा प्रभु का आत्मप्रकाश है। उसी के प्रकाश से सब प्रकाशित है--तस्य भासा सर्वमिद विभाति। कहना यह कि कबीर नाम जप के विरोधी नही है। केवल नाम जप को ठीक रखने की प्रक्रिया बताते है। नाम जप ठीक ठीक कैसे उपयोगी हो सके, यही बताते है। बहुतो को राम नाम जपने पर भी सफलता नही मिली। यह नित्य देखा जाता है। कबीरदास भी ऐसे छोगो को गिनाते है। ये छोग निराश होकर नाम की महत्ता को अस्वीकार करते हैं। वे भूल जाते है कि नाम जप साधारण कार्य नही है। साधारण होता तो सत कबीर यह क्यो कहते कि सुग्गे सा नाम रट व्यर्थ है। गुड़ कहने से कोई मीठ खाने की अनुभूति नही कर सकता। गुड़ का स्वाद तो खानेवाला ही जानता है। वह भी नहीं जान सकता जिसकी जीभ , खराब है। अत. हृदय को शुद्ध कर अजपा जाप ही लाभदायक है। बिना हृदय को शुद्ध किये न तो जाप सभव है, न उससे कोई फायदा है ? जप का तो उद्देश्य ही है हृदय में बैठे काम, क्रोध, अहकार आदि चोरों को बाहर करना। अब अगर ये हृदय मे बैठे है तो कितना भी जपो लाभ नही पहुँचेगा। चोर घर मे हो और उसे पकड़ने की कोशिश बाहर व्यर्थ है। सर्प के बिल पर लाठी पटकने से सर्प नही मरता। काम, क्रोध के सर्प को हृदय बिल से बाहर करना होगा। तभी वे निराश्रित होकर मरेगे। इनसे

मुक्त हृदय मे जप ठीक से चलेगा। प्रभावी, परिवर्तनकारी और लाभदायक होगा। इसलिये जिन्हे सफलता नही मिली उन्हे अपने पर ध्यान देना चाहिए। नाम जप की अशक्तता पर नही। राम नाम का तीर पत्थर पर नही, कोमल हृदय और स्वच्छ चित्त पर काम करता है। विषय भोग मे नीरस, ढूँठ हृदय पर उसका कया असर होगा ? जैसे तैयार होकर आया विद्यार्थी शिक्षा को शीघ्र ग्रहण कर लेता है। उसके मर्म को समझ जाता है। किंतु शीघ्र समझकर भी उसका अभ्यास करता रहा है। अभ्यास से न केवल कि शिक्षा याद रहती है बल्कि वह शिक्षा सस्कार बन जाती है। अब वह शिक्षा बाहरी नहीं है दूसरे की नही है। सीखी नही है। अपनी है। भीतर की है। अनुभूति का अग है।

हांम काँम हंकारी मूंड मुड़ाइ फूलि का बैठे, काननि पहिरि मंजूसा। बाहरि देह खेह लपदानी, भीतरि तो घर मूसा॥| गालिद नगरी गाँऊँ बसाया, हांम कांम हंकारी। घालि रसरिया जब जम खैचे तब का पति रहै तुम्हारी ॥ सत कबीर अहम, अहकार और काम के विरोधी है। सभी सतो ने इनकी निदा की है। कितु इतनी निदा के बावजूद ये छूटते नही। रहते है। शायद रहेगे भी। क्या यह संभव है कि मनुष्य अहमू अहकार और काम से मुक्त हो जाय ? शायद नहीं। शायद भी व्यर्थ है। नहीं। इनसे मुक्ति असभव है। क्यों ? यही तो विचित्रता है| जब तक ससार है। जब तक मनुष्य संसार का प्राणी है इनसे मुक्ति असभव है। इसलिये कि काम तो सबका पिता है। सभी कामोत्लन्न है। काम से पैदा हुए है। काम ने सबको पैदा किया है। काम न होता तो कोई न होता। इसीलिये वेद ने काम को सृष्टि का पूर्व पुरुष कहा। सृष्टि मे सवसे पहले काम उत्तन्न हुआ-कामस् तदग्रे समवर्तताधिमनसो* रेत प्रथम यदासीत्। ऋग्वेद १०॥ १२९॥ ४। परमेश्वर के मन मे सर्वप्रथम काम उत्पन्न हुआ। काम का अर्थ सिसक्षा। सृजन करने की इच्छा। सृजन करने की इच्छा ही काम है। अगर यह परमेश्वर की इच्छा है तो क्या सत कबीर परमेश्वर की इस इच्छा के विरोधी है। वे नही चाहते कि सृष्टि हो। क्या उनके न चाहने से सृजन बद हो जायगा ? क्या सत कबीर कोई असभव कल्पना मे खुद भी पड़े है। दूसरों को भी उसमे डालना चाहते है। कौन मानेगा उनकी बात) अरे भाई वह करो जो स्वाभाविक हो। सबकी भलाई वाली हो। एक तरफ तो परमेश्वर को मानते हो। दूसरी ओर उसकी इच्छा का विशेध करते हो। सृजन से इतनी नफरत है तो सारी दुनिया मे आग लगा दो। सब जलकर गख हो जाय। न रहेगा बॉस न बजेगी बॉसुरी। कितु याद रखना। एक तो सब जलेगा नहीं। सब जलाने की शक्ति किसी मे नहीं है। सृजन और पालन के समान ही सहार भी प्रभु के हाथ मे है। उसकी इच्छा होगी तभी संहार भी होगा। बिना उसकी इच्छा के पीपल का पत्ता तो हिल्वा नही। सपूर्ण का सहार कैसे होगा ? सब जलने के बाद भी कुछ न कुछ रह जायगा। उसी में से ऋतु पाकर पुन सृष्टि के अकुर निकल आएँगे। देखते नहीं पत्थर पर दूब जम जाती है। पत्थर पककर चूना और पिसकर सीमेट बन जाता है। ससार को उज्वरु करता है। ईट से ईंट को बजाता नही जोड़ता है। वह तुम हो जो ईंट से ईंट बजा रहे हो। कभी किसी जड़ पदार्थ को ईट से: ईट बजाते नहीं देखा गया। और तुम शायद इस कर्म को इसलिये करते हो, तुम्हे भ्रम हो गया है कि तुम ससार का सुधार कर रहे हो। सुधार की भावना के पीछे भी काम है। सुधार की इच्छा है। सुधार की सृष्टि। सब ठीक रहे की इच्छा। सृष्टि सृष्टि के समान रहे। कैसी सृष्टि ? जिस परमेश्वर ने सृष्टि का निर्माण किया है उसके स्वरूप के अनुसार सृष्टि। परमेश्वर सुदर है। अत सुदर सृष्टि। परमेश्वर बन जानेवाली सृष्टि। परमात्मा को तो सब कुछ है। वही तो सब कुछ है। फिर उसी को जब सृध्ि की इच्छा हो गयी तो मनुष्य को भी सृष्टि की इच्छा होना न बुरा है। न अस्वाभाविक। यो कि सृजन (१९०)

हाम काम हकारी १९१ की इच्छा मनुष्य का मानव धर्म है। यह नही है तो समझो वह विकृत मानव है। उसमे कुछ गड़बड़ हो गया है। तीन तो एषणाएँ है-लोकेषणा, वित्तेषणा, कामेषणा। लोक मे मेरा सम्मान हो। लोगो द्वारा मै अच्छा समझा जाऊँ। लोक मेरा तिरस्कार न करे। इसकी इच्छा। दूसरी मुझे ससार चलाने के लिये धन की प्राप्ति हो। मै अभावग्रस्त न रहूँ। मुझे किसी को मॉगना न पड़े। बल्कि मै छोगो को कुछ देने की स्थिति मे रहूँ। तीसरी है सृजन की इच्छा। मै अपनी संतान बढ़ाऊँ। अपने परिवार, समाज और दुनिया को लाभ पहुँचाऊं। किसी न किसी प्रकार से उन्हे शिव और सुदर बनाऊँ। सत्य वाला बनाऊँ। भला कौन होगा जो अकल्याणकर, असुदर तथा झूठे छोगो को पसद करेगा ? नुकसान पहुँचानेवालो से सभी छोग घृणा करते है। उन्हे अपराधी मान लेते है। ऐसे ही सूखे फूल फेक दिए जाते है। फूटी आँखे और टूटे दाँत किसी को अच्छे नही लगते। ईश्वर भी तो यही चाहता है। उसने बहुत से खिलौने फैला दिए है। सब रग-बिरगे है। अब मनुष्य की बुद्धि किसे चुनती है ? किसे छोड़ती है ? वही प्रभु दृश्य भी है और द्रप्य भी है। वह देखता है। सबकी बुद्धि की परख लेता है। सत कबीर कोई अज्ञानी नहीं सब समझकर भी काम और अहकार को छोड़ने की बात करते है। असल मे तो ये दोनो एक ही है। जो काम है वही अहकार है। अहंकार ही काम है। काम या सृष्टि इच्छा तो उसी मे होगी जिसे अपने अस्तित्व का बोध हो। अह और कुछ नही अपनी स्थिति या सत्ता का बोध है। मै हूँ। यह सत्ता का निरपेक्ष बोध है। प्रसाद जी का वाक्य महत्त्वपूर्ण हैमे हूँ यह वरदान सदृश क्यों लगा गूँजने कानों मे। में भी कहने लगी ? "में रहूँ" शाश्वत नभ के गानो में ।-कामायनी। मनुष्य पहले अपने अस्तित्व का बोध करता है। यही अस्तित्वबोध उसकी शक्ति है। सभी जीव अपने अस्तित्व का बोध करते है। यह अस्तित्वबोध ही प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व है। इसके बिना व्यक्ति रहेगा इसमे सदेह है। मुर्दो मे कोई बोध नहीं होता। यहाँ तक कि अपना और अपने अस्तित्व का बोध भी नही होता। जिनमे अपने अस्तित्व का बोध नही है वे जीवित होकर भी मुर्दा है। मरे है। जब कबीर कहते है कि 'मै न मरी मरिंहे ससारा' तो वे इसी अस्त्रिबोध का सकेत करते है। जीवन के लिये अस्तित्ववोध आवश्यक है। अस्तित्वबोध व्यक्ति और समाज दोनो का आवश्यक है। अस्तित्ववोधहीन समाज व्यक्ति के समान ही मुर्दा है। महात्मा और सत्युरुष समाज मे व्यक्ति के माध्यम से इसी अस्तितवबोध का जागरण करते है। व्यक्ति के समान ही समाज भी समझे कि वह कौन है ? कहाँ से आया है ? उसका यहाँ आने, रहने और न रहने का उद्देश्य क्या है ? वह क्यो रहे और क्यो न रहे ? व्यक्ति शब्द का अर्थ है किसी अप्रगट का प्रगट होना। अप्रगट भी एक स्थिति है। अप्रगट का अर्थ शून्य या समाप्ति नही है। व्यक्ति का अर्थ है जो अप्रगट था वह अभिव्यक्त हो गया। यह कैसे सभव है। व्यक्ति या अभिव्यक्ति किसकी होगी ? कोई सत्ता तो होनी चाहिए। जो नही है। बिल्कुल शून्य है उसकी अभिव्यक्ति क्या कभी संभव है।

कोई भी देश काल ऐसी अभिव्यक्ति नही कर सकते जो हो ही नहीं। नास्ति की अभिव्यक्ति असभव है। अभिव्यक्ति सदा अस्ति अर्थात् है से होती है। सत कबीर इस अस्ति को स्वीकार करते हैं। नास्ति नही अस्ति। नास्ति की सत्ता नहीं हो सकती। नास्ति का मतलब केवल इतना ही है कि वह प्रगट नही है। प्रगट मतलब वह इंद्रियगोचर नही है। इद्रियातीत है। जिसे हम इद्रियो से नहीं जान सकते है। किंतु जो इद्रियातीत है, जिसे हम इंद्रियो से नही जान सकते वह नही है ऐसा कहा जा सकता है। लोग कहेगे जो इद्रियो का विषय नही है उसे कैसे जाना जा सकता है ? क्योंकि जानकारी के सभी साधन तो इंद्रियाँ ही है। इद्रियाँ न रहे तो कुछ भी नही जाना जा सकता है। सामान्यत. यह

१९२ कबीर समग्र ठीक छगता है। कितु इन प्रत्यक्ष इद्रियो के भीतर भी एक इंद्रिय है जो भिन्न ढग से देखती है, सुनती, समझती और स्वाद लेती है। सामान्य जीवन मे भी इसे देखा जा सकता है। इद्रियाँ तो प्राय सबके पास एक जैसी होती है। इसके बावजूद लोग भिन्न-भिन्न व्यवहार करते है। कभी-कभी देशकाह वाधिक कार्य करते है। ससार के महापुरुषो को ध्यान में रखना होगा। उनकी इद्रियाँ सामान्य थी। कितु उनके कार्य असामान्य थे। इद्रियो के किसी नाप तौढ से इनका निर्णय संभव नहीं। आप कहेगे मन भी तो इद्री है। महापुरुषो का मन बड़ा और विशाल होता है। ठीक है मन। तो इस मन की कोई सीमा नहीं है। इस निस्सीम मन मे क्या क्या है, कौन बताए ? मन को कभी कोई देख नही सकता। वह यत्र का विषय नहीं। तो फिर इस मन के परे भी कुछ हो सकता है ? मन ही ऐसा हो जाय जो भिन्न प्रकार से सोचे समझे। अनत का ज्ञान प्राप्त कर छे। कितु मन को अपने या अपने से भिन्न किसी का बोध तो होना ही चाहिए। मै की चेतना आवश्यक है। मै की चेतना के अभाव मे तो मन मरा रहेगा। मै की यह चेतना ही अहम् और अहकार है। मै हूँ त्तो मै कुछ कर सकता हूँ। मुझे कुछ करना भी चाहिए। यही काम है। काम की प्रेरणा चाहे बाहरी हो या भीतर की। कितु प्रेरणा है। तभी तो अहम् बोध वाला मै व्यक्ति कुछ करने की स्थिति मे आता है। कुछ करता है। इसलिये प्रत्येक कर्म का कोई न कोई कर्त्ता है। साथ ही प्रत्येक कर्ता चाहे जैसा हो, जिस रूप मे हो उसे अह और काम की प्रेरणा है। ये दोनो ही उसके अस्तित्व है। अस्तित्व के अतरबाह्य क्षण है। इसलिये अहम् और काम को अस्वीकार नही किया जा सकता। इन्हे अस्वीकार का अर्थ है जीव की सत्ता या संपूर्ण चेतना की अस्वीकार करना। क्योकि जहाँ भी चेतना होगी ये दोनो ही रहेगे। इसीलिये वेद ने काम को पूर्व पुरुष कहा। बुद्धि का आधार अह है। अत संख्य ने महत् को बुद्धि और महत् से ही अहंकार को उत्पन्न बताया। मतलब कि अह महत् है। यह बुद्धि भी है। बुद्धि के वाद का भी है। इनके वाद अन्य सूध्यां आती है। इस प्रकार शास्त्रो मे काम और अह को सृष्टि का मूल माना गया है। जब भगवान् कहते हैं कि मै कर्त्ता हूँ तो इसमे काम और अहम दोनो की स्वीकृति है। ऐसे ही जब जीव भगवान् को कर्तुमू अकर्तुम् सर्वसमर्थ मानकर उनके कर्त्ता रूप विराट सत्ता की प्रार्थना करता है तो स्पष्ट ही वह उनके काम हाम को स्वीकार कर रहा है। कितु सत कबीर तो हाम काम के प्रचंड विरोधी हैं। उनके उदाहरणो को ध्यान से देखना होगा। वे किसी दार्शनिक वाद मे नही जाते है। वे तो एक सामाजिक एवं सासारिक स्थिति की ओर इगित करते है। समुद्र पर पुल बनाने के लिये वानरो ने पत्थर इकट्ठे किये। थे तो वे लोग वानर ही। अब वे पत्थरों से आपस मे लड़ने ढुगते। एक दूसरे पर फेककर मारने लगते। यह कि उसे एक-एक कर हका में फेकते, जिससे लका नष्ट हो जाय। बिना किसी आधार के पत्थरो के समुद्र मे यत्र तत्र फैला देते। ऐसे मे न पुल बनता। न रावण का नाश होता। पत्थरों का सग्रह उचित होकर भी व्यर्थ हो जाता है। इसीलिये पत्थरों का उपयोग

सर्वप्रथम नल-नील ने किया। नल-नील मे पत्थर तैराने की शक्ति थी। उसके बाद अन्य वानरो ने पत्थर रखे। पुल बैंध गया। नल-नील ने उसका आधार बना दिया था। स्पष्ट है कि हाम कांम आधार हैं। नीव के , पत्थर है। इन्हे नीव से हटाया नही जा सकता है। नीव से हटा कि सब नष्ट। कितु बेतरतीब इस्तेमाल भी पुल को नष्ट कर देगा। सत कबीर इसी बात की ओर सकेत करते हैं। ._सामान्यजन तो हाम काम मे पड़े ही है। अपने को साधक सन्यासी कहनेवाले भी सिर मुज्कर कानो मे कुडक पहनकर हाम काम मे पड़े है। इन्हे पहना तो था यह बताने के लिये »,.. "| काम छूट चुके है। वे कोई दिखावा नही करेगे। कितु यह बाहरी दिखावा उनके भीतर

हाम काम हकारी १९३ को प्रभावित नही कर रहा है। बाहरी मन की गदगी का प्रभाव भीतरी मन पर भी पड़ा है। यो कि बाहर के दिखावे के चक्कर मे भीतर को कभी ठीक करने की कोशिश ही नही की। हाम काम का पत्थर खतरनाक भी है। इससे पुल भी बन सकता है और सिर भी दूट सकता है। सत कबीर इसी बात की ओर सावधान करते है। हाम काम का ठीक उपयोग सीखो। पुर बाँधने मे उपयोग करो। तभी विषय रावण को पराजित किया जा सकता है। इनका ठीक सयोजन नही हुआ तो रावण के स्थान पर राम ही पराजित हो जायेंगे। और हो यही रहा है। लोग रावण को न पराजित कर राम को ही पराजित कर देते है। पुल को न बँधता देख रावण और गरजता है। सत्ती सीता पर अत्याचार करता है। साधु सन््यासी भी अगर हाम काम के वश होकर काम करने लगे तो नया खतरा पैदा होता है। सीता की मुक्ति कौन कहे। सीता और भी पराधीन हो जायगी। रावण सन्यासी बनकर ही तो सीता को हर छाया था। वह सन्यासी क्यो बना ? कया बिना इस वेश के वह सीताहरण नही कर सकता था ? कदापि नही। सामान्य आदमी मे सीताहरण की शक्ति नहीं थी। सन्यासी को समाज ने कुछ विशेष छूट दे रखी है। उनकी विश्वसनीयता सामान्यजन की विश्वसनीयता से बढ़कर है। उसे दडित करते समय भी बार-बार सोचना होता है। ऐसे मे सन््यासी को अपने कर्त्तव्यों के प्रति और भी सावधान रहना चाहिए। इसीलिये सत कबीर दूसरों का उदाहरण न देकर सन्यासियो का देते है-मुडित अर्थात् बौद्ध सन््यासी। मजूषा वाले अर्थात् कनफटे योगी। नाथ पथी | ह कितु खाली सन्यासियो को कहने से बात नही बनती। सन्यासी तो हाम काम मे लिपटे ही, गृहस्थ भी कम नही है। हाम काम से सृष्टि नही, सृष्टि का नाश कर रहे है। किसी को पता नही कि वे कौन है। अपना अस्तित्व कीट पतग मानकर भी हो सकता और देवता मानकर भी। तो भाई, अपने को कीट पतग क्यो मानते हो ? देवता क्यो नही मानते ? भारत के लोगो की ही नही, सारी दुनिया के सभी धर्मो की मान्यता है। मनुष्य मूलत देवता है। कितु अनेक कारणो से वह राक्षस जैसा व्यवहार करता है। दूसरे धर्मो मे इस राक्षस को सुधारने और मुक्त करने देवदूत आते है। भारत के धर्मों का विश्वास है कि मनुष्य स्वय देवता बन सकता है। देवता तो वह है ही। केवल समझने की देर है। आग भीतर है। केवल एक उद्दी्त चिनगारी से दहकने छगेगी। तो आवश्यकता है इस अह काम को ठीक से समझने की। समझकर उपयोग करने की। जड़ जतु अपने को ही नोचकर खाते है। समझते है वे अपनी भूख मिटा रहे है। कितु इससे भूख मिटती नहीं। जिस शरीर की रक्षा के लिये भोजन किया जाता है वह शरीर और भी क्षीण होकर नथ्ट हो जाता है। यही स्थिति इस अह और काम की है। इनके पीछे या इनके वश में रहने से ये सबको नष्ट कर देते है। इसलिये कि मनुष्य के सेवक नही है। परमात्मा के सेवक है। मनुष्य इनसे इतना काम लेने का अधिकारी है जितने से उसकी रक्षा हो सके। अस्तित्व रक्षाभर। अधिक लेने का अर्थ परमात्मा के अश को लेना।

जैसे बकरी बाघ का भाग लेना चाहे। क्या परिणाम हो यदि बकरी बाघ का हिस्सा लेना चाहे ? 82 नष्ट हो जायगी। तो इस नाश से बचने के लिये भी आवश्यक है कि परमात्मा को इन सेवकों का योग्य उपयोग करे। यह बात सतो की समझ मे आती है। क्योकि वे भी परमात्मा के सेवक है। उन्हे मालूम है कि स्वामी की सपत्ति मे उसका उतना ही अधिकार है जितने से उसका निर्वाह हो सके। निर्वाह से अधिक लेनेवाला सेवक स्वामी का विरोधी और निष्ठारहित माना जाता है। स्वामी उसे अपनी सेवा से हटा देता है। और स्वामी की सेवा से हटे व्यक्ति की दुर्दशा का क्या कहना। ये हाम काम तो उसे एक क्षण में नष्ट कर देगे।' इसीलिये सत कबीर बार-बार इनसे क

१९४ कवीर समग्र बचने को कहते है। बहुत कहेगे तभी कोई विरल्ा सुनेगा, समझेगा और उस पर आचरण करेगा, लोग तो अहकार (गालिब) का नगर बसाते है। अह ही नही अहकार का नगर। यह भूल जाते है कि इन दोनो का भी असली मालिक कौन है ? लोग असली मालिक से न जुड़कर केवल सेवक से सबध रखना चाहते है। सत कबीर इसी भूछ की ओर सबका ध्यान आकर्षित कर रहे है।

पुरुषहि पुरिषा जो रचे" . स्त्री द्वारा पुरुष और पुरुष द्वारा स्त्री की रचना होती है। दोनो मिलकर दोनों की रचना करते है। स्त्री और पुरुष दो विपरीत तत्त्व है। ये विपरीत ही मिलकर, रचना करते है। कितु पुरुष द्वारा पुरुष की रचना सभव है क्या? यह सर्वप्रथम प्रश्न उठता है, पुरुष द्वारा पुरुष की बात क्यो कही गयी? स्त्री द्वारा स्त्री की रचना की बात क्यो नही कही गयी? क्या स्त्री द्वारा स्त्री की रचना सभव है? अथवा स्त्री द्वारा स्त्री की रचना असभव है, इसलिये उसकी चर्चा ही व्यर्थ है। बात ऐसी ही है। स्त्री द्वारा स्त्री की रचना नही हो सकती। तो क्या स्त्री पुरुष की " रचना कर सकती है? उत्तर है, अकेले वह भी नही कर सकती है। क्यो ? इसलिये कि स्त्री शक्ति तो है। कितु वह शक्तिमान् नही है। शक्तिमान् कोई दूसरा है। वह शक्तिमान् परमेश की शक्ति है (अव्यक्त नाम्नी परमेश शक्ति)। उसमे कोई निजी शक्ति नही है। वह तो स्वय दूसरे की शक्ति है। वह कार्यो द्वारा अनुमानित होती है। उसका कारण भिन्न है। अनादि होकर भी कारण नही, कार्य है। स्पष्ट है कि सत कबीर प्रथम पक्ति मे सासारिक स्त्री पुरुष की ओर सकेत कर रहे है। इस पक्ति का अर्थ है-स्त्री प्रकृति है और पुरुष पुरुष है। प्रकृति अर्थात् माया। पुरुष अर्थात् स्रथ् परमात्मा | प्रकृति या माया तो जड़ है। त्रिगुणात्मिका है। इसके द्वारा स्वतत्र रूप से सृष्टि सभव नही। सृष्टि अगर स्त्री या माया की होती तो मुक्ति का सवाल कहाँ उठता है? क्या कभी कोई कर्ता से मुक्ति चाहता है? सृष्टि परमात्मा की है। बधन माया का है। माया अविद्या है। अज्ञान है। मुक्ति का मतलब है माया (अज्ञान) की निवृत्ति और आत्मतत्त्व (परमात् तत्त्व) की प्राप्ति कितु परमात्मा तो निर्गुण निराकार, निष्क्रिय है। फिर कैसे यह सृजन करता है? इसका उत्तर यह है कि सृजन का कार्य उसका न होकर उसकी अचित्य अवर्णनी शक्ति माया का है। इसीलिये माया के लिये 'प्रसूयते" शब्द आया है। कितु इस प्रसूयते का मतलहूब नया बनाना नहीं * है। माया कही से कुछ नया-पुराना छाकर नही बनाती है। वह छाएगी कहाँ से? न तो उसकी निरपेक्ष शक्ति है, न तो ब्रह्म से अतिरिक्त उसके पास कोई क्षेत्र है जहाँ से वह लाये। जो साधन है, वे भी उसके लिये कारण है। वे भी स्वतत्र रूप या स्वतत्र अस्तित्व मे उनके पास ही है, क्योंकि जिसकी स्वतत्रता स्वय बाधित है. उसका अपना क्या होगा? फिर वह स्वतत्र दीखती है। चूकि ब्रह्म को भी प्रभावित कर छेती है इसलिये ब्रह्म से भी या ब्रह्म जैसी ही प्रभावशाली दीखती है। इसलिये ब्रह्म की शक्ति होकर भी वह अनिर्वचनी और अनाद्य शक्ति है। असीमित शक्ति जैसी है। इसीलिये सृष्टि तो ब्रह्म की है। आवरण और विक्षेप नामक अपनी दो शक्तियो द्वारा माया एक नयी सृष्टि खड़ो करती है। यह भ्रम की सृष्टि है। आवरण का अर्थ सत्य स्वरूप का ढक जाना एव विक्षेप का अर्थ है एक नये रूप की अनुभूति। इस भ्रामक रूप की अनुभूति ही माया कार्य है। रज्जु मे सर्प की अनुभूति आवरण और विक्षेप का कार्य है। इस दृष्टि से माया कोई १ नारि रचते पुरुष हैं पुरुष रचते नारि। पुरुषहि पुरुषा जो रचै, सो बिरले ससार। (१९५)

१९६ कबीर समग्र सृष्टि नही करती। वह केवल सृष्टि का भ्रम वनाती है। रस्सी का सर्प देखने में है। वस्तुत. है वह रस्सी ही। कुंडल मूलत सोना है। यह माया भी ब्रह्म की इच्छा है-इच्छा रूप नारि अवतरी, तासु नाम गायत्री धरी। परमात्मा अपनी इच्छा इसी से पूर्ण कराता है। स्वय अकर्त्ता बना रहता है। उसे जब कभी कर्ता कहा जाता है तो इसका मतलब कि वह माया को माध्यम बनाकर अपना कार्य करता है। माया के सारे निर्माण त्रिगुणात्मक है। क्योकि माया त्रिगुणात्मक है। ये सभी निर्माण प्रभु- इच्छा के परिणाम हैं। अत नाशवान् है। सृजन और पालन के समान ही नाश भी उसकी इच्छा है। नाश भी वह माया द्वारा कराता है। प्रतिक्षण सृजन, पालन और संहार हो रहा है। मृत्यु मायाधीन है।- इसीलिये सत कबीर कहते है-मै नहीं मरूँगा। ससार मरेगा। ससार के छोग मरेगे। सासारिकता मरेगी। यह सारा पसारा माया नारी का है-एके नारी जाल पसारा। यही माया नारी सारे पुरुषो को खा जाती है-नारी सकल पुरुष को खायो। पुरुष तो एक है। फिर इसे सकल क्यो कहा ? यहाँ नारी माया है। माया नारी पुरुष अर्थात् सभी प्राणियों को नष्ट कर रही है। नारी सामान्य स्त्री भी है। इस स्त्री नामा जीव ने सपूर्ण पुरुष जीव को भोग मे लगाकर समाप्त कर दिया है। पुरुष का पुरुषत्व नष्ट हो गया। ब्रह्म को प्राप्त करने की उसकी शक्ति जाती रही। सभी जीव स्त्री है। चाहे वह पुरुष हो चाहे वह सनी हो। पुरुष जीव का पर्यायवाची है। स्त्री भी जीव का पर्याय है। माया बँधा जीव या साधक स्त्री है। पुरुष तो अकेले राम हैंकहहि कबीर सब नारी राम की, अविचल पुरुष भतार। सत कबीर जब राम को, परमतत्त्व को खसम और अपने को राम की बहुरिया कहते हैं तो उसका यही मतलब है। गीता मे भगवान् ने कहा है-महतद् ब्रह्म अर्थात् संपूर्ण प्रकृति मेरी योनि है। मै ही उसमे बीज डालनेवाला पिता हूँमम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भ दधाम्यहम् | संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत। १४।३ सर्व योनिषु कौतेय मूर्तयः संभवंति याः | तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता 9 ४४) १] हू हक ओक्ज ला और आम म2 पक] अं >सक-नन अं र्लिीइलदीजन ल्टललल कल ++ ० ++. >> +++ +>+>+5+ 32 इसी महद् योनि को सत कबीर कहते है-नारी मोचित गर्भ प्रसूती। स्वाग धरे बहुत... करतूती। इसी बात को और स्पष्ट करते हैं। नारी एक है। पुरुष भी है। तो क्या ये दो है? नही है। नददास ने कहा है- प्रकृति पुरुष एके करि जानो, बातनि भेद करायो। स्त्री और पुरुष प्रकृति और पुरुष एक हैं। भेद समझने का है। प्रसाद की दृष्टि मे एक तत्त्व ही प्रधान है। कहो उसे जड़ या चेतन। इसी अर्धनारीश्वर से चारो प्रकार के जीव उत्पन्न है-एके पुरुष एक है नारी। ताते रची खानि भी चारी। स्त्री और पुरुष दो नही हैं। एक है। इस एक को सिद्ध पुरुष समझता है। सिद्धि का अर्थ है परमतत्त्व. की सत्यता और माया की निस्सारता को समझना, परमतत्त्व का रूप पुरुष का है। नारी का है। वस्तुत तो वह न स्त्री है, न पुरुष, न नपुसक। वह तो इन सबसे परे है। कितु रचना के समय उसे नाम रूप ग्रहण करना होता है। नाम रूप ग्रहण करने के

सिलसिले मे ही वह स्त्री या पुरुष कहलाता है। कठिनाई माया या प्रकृति को समझने की है। माया परम पुरुष से अंग है क्या? अगर पूर्णत अलग माने तो उसकी स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करनी होगी। किंतु दो की स्वतत्रता नहीं हो सकती। सर्व स्वतंत्र तो एक ही है। इसलिये माया की स्वतत्रता परमसत्ता की स्वतंत्रता से . बाधित है। भाया को पूर्ण स्वतत्न माने तो उससे मुक्ति के ढिये ब्रह्म की उपासना व्यर्थ होगी। नीजिन अिज ++->>

पुरुषहि पुरिषा जो रचै १९७ नही माया दासी है। प्रभु की दासी। इसीलिये प्रभु के भक्तो पर उसका वश नही चलता। माया की पराधीनता के कारण ही सृष्टि का कार्य माया का होकर भी वह प्रभु कार्य कहा जाता है। क्योकि सेवक के सारे कार्य स्वामी द्वारा ही वृत्त माने जाते है। 3 माया मे पड़ा जीव माया मे फेंस जाता है। जैसे हाथी हाथी के द्वारा पकड़ा जाता हैहस्ति के फंदे हस्ति रहई, मृग के फंदे मिरगा रहई। कितु लोहा ढोहे को काटता है। लौह पुरुष अर्थात् ज्ञानी व्यक्ति ज्ञान से अज्ञान को, मिथ्या ज्ञान को नष्ट करता है। मिथ्या ज्ञान के रहते वह मायायुक्त है। स्त्री है। कितु ज्ञान होने पर, माया नाश के बाद वह पुरुष होता है। जीव पुरुष नहीं। परमात्म पुरुष। आत्मा और परमात्मा की एकता वाला पुरुष। ऐसा पुरुष जो माया से निकल गया है। माया ससार से उठ गया है। ऐसा ही विरला साधक पुरुष से पुरुष की रचना करता है। उसकी माया नष्ट हो गयी है। सत कबीर कहते है-जब मै था तब तू नही, अब तू है मै नाहि। मै का अर्थ माया। माया की उपस्थिति मे ब्रह्म नही था। माया हटी। तब केवल ब्रह्म है। अब कबीर को, साधक को पूर्ण ब्रह्मत्व की प्राप्ति हो गयी है। वह जीव पुरुष से बढ़कर परम पुरुष हो गया है। ऐसे में वह जो भी रचेगा वह पुरुष द्वारा पुरुष की रचना होगी। पहले के सारे कार्य मायाछन्न थे। अब ब्रह्म- द्वारा ब्रह्म का प्रसार होगा। जित देखो तित लाल। अब केवल लाल (ब्रह्म) दिखाई पड़ता है। सब कुछ ब्रह्ममय है। ब्रह्म द्वारा, ब्रह्म के लिये, ब्रह्म की है। ॥ सत कबीर का सकेत एक ऐसी रचना से है जो मायिक रचना से भिन्न है। इसीलिए वह सर्वजन सुलभ न होकर विरला (क्वचित्) की रचना है। कबीर यह भी कहना चाहते है कि ब्रह्मात्तैक्य भूत पुरुष एक विशेष प्रकार का निर्माता हो जाता है। यही है, पुरुष से पुरुष की रचना। यह पूर्णता का दर्शन भी है। जहाँ पूर्ण से पूर्ण ही होता है। वेदात ने सृध्टि और परमात्मा के बीच मे मार्या को शायद इसीलिये रखा। ब्रह्म तो पूर्ण है। पूर्ण ब्रह्म कभी अपूर्ण, मिध्या और असत्य की रचना नही कर सकता था। वह शायद उसकी प्रतिष्ठा के भी अनुकूल न था। इसलिये उसने अपूर्ण मिथ्या और नाशवानू के निर्माण की जिम्मेदारी के लिये माया को माध्यम बना लिया। गीता मे भगवान् कहते है-अपनी त्रिगुणमयी माया को अगीकार करके स्वभाव के वश से परतत्र हुए इस सपूर्ण भूत समुदाय को बारबार रचता हूँप्रकृति स्वामवष्टय विभ्सुजामि पुनः पुनः । भूत ग्राममिर्म कृत्स्नमवर्श प्रकृतेबशात् ।९।८ यहाँ तो कहा कि मै प्रकृति को आधार बनाकर रचता हूँ। आगे कहते है कि प्रकृति रचती है। मै उसका अध्यक्ष हूँ--है अर्जुन, मुझ अधिष्ठाता के सक्राश से (यह मेरी) माया चराचर सहित सर्व जगत् को रचती है। मयाध्यक्षेण प्रकृति सूयते सचराचरम् ९।१०। इस प्रकौर हम देखते है कि रचना का कार्य कभी पुरुष का है। कभी प्रकृति का। असल मे है पुरुष का। कितु वह इस कार्य को अपनी दासी प्रकृति से कराता है। सत कबीर ने इन दोनो का भेद स्पष्ट किया है। माया से माया की रचना। ब्रह्म से ब्रह्म की रचना। ब्रह्म से ब्रह्म की रचना का अर्थ है आत्मा परमात्मा की एकता। एक

ऐकातिक आनंदलोक की अनुभूति और उसी मे रमर्णं, विहार। मुक्ति की एक दशा का नाम है-सार्थि; जिसका अर्थ है समान स्थिति, दशा, पद की प्राप्ति। इस ब्रह्मदशा को प्राप्त साधक फिर माया मे न पड़कर परम पुरुष के ही साथ क्रीड़ा करता है। वही हो जाता है (ब्रहौव भवति) |

हम तो जाति कमीना संत कबीर माया से कहते है। ऐे माया, हम तो गरीब जाति के हैं। हम गरीब के यहाँ क्यो आई हो? गरीब माया का स्वागत नहीं कर सकता है। भला गरीव के पास क्या है जो * वह तुम्हारा, माया का, स्वागत करे? गरीब तो केवल जीवन यापन करता है। जीवन जीता है। शरीर क्या है? गरीब केवल उसकी रक्षा करता है। ईश्वर की दी हुई चादर को, घट को जस के तस रखता है। नष्ट नही होने देता है। कमीना का अर्थ है। शरीर का काम करने वाला। परिश्रमी। सही परिश्रमी का माया में पड़ने की कहाँ फुर्सत है ? कहाँ अवकाश है? गरीबों और मेहनतकशो के पास माया का स्थान नही है। उनके पास ऐसा कुछ नही है कि माया का पोषण » कर सके। माया को तो बहुत कुछ चाहिए। वह बहुत कुछ गरीब नही दे सकता है। अपनी गरीबी बताने का भी एक कारण है। कवीर उनमे नही जो व्यर्थ मे अपनी गरीबी का वखान करते है। गरीबी को धन कमाने, इकझ करने का साधन बना लेते है। यहाँ कवीर , ने अपने को गरीब कहा तो उसका विशेष सदर्भ है। माया ने कवीर से कहा था-सरग लोक थे हम चलि आई, करन कवीर भरतारो। मै कबीर को पति बनाने स्वर्ग से आई हूँ।” अच्छा तो बड़ी कृपा की देवी। स्वर्ग की देवी हो। स्वर्ग से आई हो। कवीर को पति बनाने। कबीर को स्वर्ग का लोभ देती है। कितु क्या है तुम्हारा यह स्वर्ग ? विष लागै तिहारे नैना। विषेत्ी आँखो वाला स्वर्ग। काम के जाल मे फंसाने वाला स्वर्ग। वासना विष से मारने वाला स्वर्ग माया का श्गार कदीर को रक्तसनी तलवार लगती है। राती खॉडी देखि कवीरा, देखि हमारा सिगार। समस्त श्ुगार माया है। समस्त श्रृंगार रक्त सनी तलवार है। साधना, शक्ति और सत ' को समाप्त कर देने वाली तलवार || कितु कबीर आसानी से मान जाने वाले नहीं है। वे पूछते हैं-हे देवी, तुम्हे स्वर्ग मे क्या कष्ट हुआ? रू्ग तो सुख की जगह है। तुम कलिकाल से भरी धरती पर क्यो आई हो? ' इसका मतलज यह कि कर्म करने वाला, मेहनतकश स्वर्ग से अधिक महत्त्वपूर्ण है। तभी तो माया स्वर्ग छ * पर एक कर्मकर को पति बनाने आई है। मेहनत की कमाई स्वर्ग से महत्त्वपूर्ण है। स्वर्ग माया है। कितु असतुष्ट माया। स्वर्ग मे सतोष और सुख होता तो माया धरती पर क्यो आती? कर्मकर को क्यो खोजती ? यह भी कि माया ने स्वर्ग को तो नष्ट किया ही। अब मजदूर को भी नष्ट करने आई है। कवीर सत है न। सावधान है। माया समझती है। गरीब माया से तुरन्त प्रभावित हो जायगा। कितु सावधान हैं सत। शायद केवल मजदूर होते तो यह सावधानी नहीं आती। सावधानी के कारण है साधक होना। संत होना। संत है जो हर समय माया से सावधान रहता है। तो सत कवीर पूछते है-ऐे माया स्वर्ग लोक मे तुम्हे क्या कष्ट हुआ कि धरती पर आयी? , कितु वे माया को उत्तर देने का अवसर नही देते। स्वयं कहते है- । तहाँ जाहु जहाँ पाठ-पटबर, अगर चदन घसि लीना। ऐ माया, ऐ रोग, ऐ धुर्त्ता, ऐ सजावट, ऐ अलकरण गरीब के यहाँ मत आओ। वहाँ जाओ। जहाँ सम्पत्ति है। सजावट है। अधिकता का सुख है। सचय और अपूर्व सचय है। जहाँ के लोग काम नही करते। केवल अपने को

सजाते है। शोभित करते है। जहाँ राजपाट है। जहाँ के लोग पीताग्वर धारण करते है। अपने को नाना प्रकार के कृत्रिम साधनों से सजाते हैं। आक (१९८) | 2 का जय मम नल

हम तो जाति कमीना १९९ अलकरणो मे अपने व्यक्तित्व को। सत्य को छिपाते है। सत्य से दूर रहने के लिये आवरण करते है। सुंदर बनने, सुदर दीखने-दिखाने के चक्र मे अपनी प्रकृति को नष्ट करते है। नाना प्रकार के उपकरणो, अलकरणो मे अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते है। झूठा प्रदर्शन। झूठ का मिथ्या ससार। वह ससार जो उसे प्रभु से अलग करता है। जिसका सबंध उसकी आत्मा से नही। मात्र शरीर से है। आत्मा की स्वच्छदता से नहीं। देह के बधन से है। जो देह को सब कुछ समझता है। जो देह के अतिरिक्त कुछ नही जानता है। ' जो भौतिकता, सजावट और अलकरण की गुलामी से दबा है। जिसने देह सजाने मे बाहर को अलकृत करने मे भीतर की उपेक्षा की है। अत करण की चेतना को मारा है। भीतर की गदगी को दूर न कर। उसे और गदा किया है। जो स्वार्थी है। स्वार्थ मे भीतर के काम, क्रोध, मद, मोह आदि को हटाना तो दूर। उन्हे और पोषित किया है। उसका सारा समय शरीर सज्जा। बाहय आवरण मे। धर्म रखवाली मे व्यतीत हुआ है। जो धर्म नही। चर्म उद्योगी है। खाल की खबर रखता है। चर्म चिता मे रहता है। चर्म चिता ने जिसके चित्त को चिकृत कर रखा है। चेतना को धूमिल बना दिया है| है माया। तुम कमीना कबीर को पति बनाने की वात छोड़ो। कबीर कर्मकर है। मेहनत कश है। यह कर्मकर पानी सा है। पानी मे माया की आग नही लगेगी। पाणी आगि न लागै। परिश्रम की साधना ने कबीर को पत्थर बना दिया है। साधना के पत्थर पर माया पानी का प्रभाव नही पड़ेगा। पानी से पत्थर नहीं भीगता है।. ऐ माया, यहाँ तुम्हारा श्रम व्यर्थ होगा। माया के श्रगार का असर श्वगार करने वालो पर होता है। कर्मकर जुलाहो पर श्रृंगार का असर नही होता है। कर्मकर के रखवाले भगवान् है। क्योकि वह माया नही। राम से जुड़ा है। सत कबीर स्पष्ट देख रहे है। माया मानसिक रोग है। माया के साधन काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष से घड़ विकार मन को, विकृत करते है। मन मे आधि रूप मे उपजते है। मन की आधि। बाहर आकर व्याधि बन जाती है। सपूर्ण भीतर-बाहर के दुखो का मूल माया है। यह माया गरीब की अपेक्षा अमीर को अधिक पकड़ती है। अमीर के अनेक रोग है। पहले भी। अब भी। जैसे-जैसे माया की सभ्यता बढ़ती है। रोग बढ़ते है। सभ्यता परेशान है। भौत्तिक समृद्धि के बावजूद आत्मिक शाति नही है। बढ़ती समृद्धि के साथ अशाति बढ़ रही है। मन की आधि हिसा बढ़ रही है। मन हिसक बना है। हिसा और दुर्भावना बढ़ रही है। युद्ध और आतक बढ़ रहे है। भारत का चितन। कबीर का चितन साधना और सरलता पर जोर देता है। सजावट नहीं। सज्जनता। अलकार नही। अहिसा। सजावट हिसा है। अधिक आवश्यकता। अधिक उपभोग की प्रवृत्ति है। अलकर प्रकृति को। स्वाभाविकता को समाप्त करते है। स्वाभाविकता, प्रकृति का नाश रोग, शोक और दुख का घर है। माया-मोह मे पड़ा व्यक्ति, समाज प्रकृति को नष्ट करता है। सारा सतुलन बिगाड़ दिया है| निर्गुण का पाना तो दूर। सगुण, सनातन की रक्षा भी नहीं कर रहा है। मन दुविधा मे है। पाना चाहता है निर्गुण को।

कितु सगुण भी छूट रहा है। भगवान् नहीं। माया को ही भगवान समझ रहा है। माया मनुष्य से भी महत्त्वपूर्ण हो गयी है। माया श्रुगार मे सृष्टि श्रुगार प्रकृति नष्ट की जा रही है। वनो, पहाड़ो, नदियो और देशदेशातरो की प्रकृति तो नष्ट की ही जा रही है। अपनी प्रकृति। अपने भीतर-बाहर की स्वाभाविकता, सरलता सादगी और सदाचार सभी का नाश हो रहा है। घरो पर रग। शरीर पर रंग। रंग के बढ़ते व्यापार को नष्ट कर दिया है। अपने ही विरुद्ध एक जंग छिड़ा है। चेतना नही। मात्र चमक। धन बढ़ा है। मन छोटा हुआ है। गर्व ने ज्ञान को दवा दिया है। कक न

२०० कबीर समग्र सत कबीर कहते है। गर्व माया है। ज्ञान परमात्मा है। क्यो आई? किसका गर्व है तुम्हे ? तुमने ससार मे क्या प्राप्त किया है? जिसका गर्व है तुम्हें ? शरीर तो तुम्हारा नही है। यह तो / दूसरों का दिया है। नाशवान् है। नाश पर गर्व? नाश को सजाने, सवारने का गर्व? नही। यह ठीक नही। ज्ञान का गर्व करो। ज्ञान तुम्हारा होगा। अज्ञान माया का है। माया है। कितु तुम देखोगे। ज्ञान आते ही गर्व नष्ट हो जायगा। गर्व और ज्ञान साथ नहीं रह सकते। गर्व तुम्हे सबसे, प्रभु से, प्रभु के वाशिदों से अलग करता है। ज्ञान जोड़ता है। सवकी, सबकी स्थिति का अनुभूति कराता है। विस्तार करता है। तुम विराट्। विराट के अग बनते हो। यह विराट तुम्हे विराटू, बड़ा बनाता है। गर्व ने तुम्हे लघु बनाया था। तुच्छता दी थी। ज्ञान ने तुच्छता का उन्मूलन कर दिया। तुम स्वय परमात्मा हो गये। सव को अपना और अपने को सबका समझने लगे। ज्ञान की ऑधी ने सबको अपने साथ कर लिया। सब अपने है तो लोभ, क्रोध, मोह, दवेष आदि की आग स्वत' समाप्त हो गयी। अभी तक जिस आग मे तुम जल रहे थे। अग्नि शाति के लिये चोवा, चदन, अरगजा पोत रहे थे। चर्म चर्चित कर रहे थे। उसकी आवश्यकता समाप्त। खुली देह। पुरुष की परुष देह। श्रम से कठोर। पुष्ट देह को माया कया करेगी ? माया तो कोमलता खोजाती है। कमजीर पर चोट करती है। पुष्ट पर उसके दाँत खट्टे हो जाते हैं। बॉधना चाहे भी तो। बधन टूट जाता है। पीताम्बर के चिथड़े हो जाते है। कोई कह सकता है। यह पीताम्बरधारी कृष्ण की आलोचना है क्या? सभव है। यही तो | कृष्ण तो पीताम्बरधारी है। तो जुलाहे ने पीताम्बर नहीं बनाया था क्या? ह्ण का सवध तो पाट (राज्य सिहासन) और पीताम्बर दोनो से है। कबीर दोनो के विरोधी है। पाट भी नही। पीताम्बर भी नही। दोनो मे माया का खतरा है। कितु सूरदास भी कम सावधान नहीं है। वे पाट पीताम्बर को गोचारन, गाय, गोरक्षा, कछार और वंसी से जोड़ते है। गॉव और वन की सरलता। गो सेवा। कृषि। कालिया, शा. वकासुर आदि दुष्टे का वध और इन्द्र के उत्पात से ब्रज की मुक्ति। कृष्ण सब कुछ करते है। कितु राजकी ठाट से नहीं। सामान्य वन कर। अहीर . बाल का वन कर। चरवाहा बन कर चराने वाला। उधर जुलाहा। इधर ग्वाला। अहीर। यहाँ ' भी माया का वश नहीं है। माया तो केवल आडबर और अनावश्यक सज्जा को घेरती है। सूर और कंबीर दोनो ही माया विरोधी हैं। सूर के यहाँ राधा-गोपी नाम है। कितु कबीर स्वय राधा गोपी है। राधा गोपी भाव मे राम के पति मान कर भजते है। सूर का गोपी भाव और कबीर का बहुरिया भाव एक है। कहने का ढग और शैली का अतर तो रहेगा ही। कबीर ने कही अपने को राधा गोपी नही कहा। कितु स्री राधा बन कर ही प्रिय परमात्मा को पाते है। सूर कही सहजता नही खोते। गोचारण, उन्मुक्त बाल केति के श्रम और गोवर्धन पर्वत उठाकर माया को रोकते है। इन्द्र माया है (इंद्रो मायाभि) कृष्ण ने इंद्र माया को पराजित किया। साधारण वन, पर्वत एवं पशु के साथ सामान्य ख्ृरी-पुरुष को जोड़ा। पहाड़ उठाकर। पहाड़ की ' रक्षा की। रक्षा माया नही है। भोग माया

है। कृष्ण रक्षा, सरलता एवं आनद के देवता हैं। सत कवीर माया से, स्री से अधिक त्रस्त है। अत स्वयं स्नी बन कर साधना करते है। अब माया का प्रभाव समाप्त। स्लरी पर बेअसर। स्री बन कर अपने को समर्पित कर दिया। दूसरे के। परमात्मा के हो गये। अब माया परमात्मा की वस्तु नही छीन सकती है। सत कबीर माया को वहाँ भेज रहे है जहाँ आवश्यकता से अधिक है। अधिकता ने आवश्यकता को दाब रखा है। व्यक्ति की आवश्यकता अधिकता की आवश्यकता की सेविका बन गयी है। अत. व्यक्ति की आवश्यकता व्यर्थ और बोझ है। आवश्यकता व्यक्ति का सहज मित्र है। अब इस ' आवश्यकता को भी जो दबा दे उस अपराधी को क्या कहा जाय ? ', _ तब अब बात यह बनी कि कबीर अपना कर्मकर रूप नही छोड़ेगे। क्योंकि इस पर माया | का असर नही होता। माया गरीब नही। अमीर को अधिक प्रभावित करती है। _्। २

यहि घट चंदा यहि घट सूर सत कबीर अगम देश में वेगम मस्त रहते है। इस देश और स्थिति की अनुभूतियों असामान्य है। जैसे कोई धरती उठा। आकाश से सब को देखता हो। सब छोटे लगते हो। जहाँ न भूख है। न काम। न द्वेष और अद्वेष। अकेले मे मस्त। सारी जागतिक अनुभूतियो से ऊपर। उनका पाठक भी। उन्हे पढ़कर आकाश में पहुँच जाता है। बिना किसी योग और साधना के। मनोलोक मे उड़ता है। कितु किसी अतल गहराई की अनुभूति भी करती है। आकाश और पाताल के सगम मे स्थिति का सुख। यह सुख वही जानता है जो इसमे है। यहाँ है| स्थूल और सूक्ष्म। सगुण एव निर्गुण के द्वारा सृष्टि को नही समझा जा सकता है। सृष्टि, सृष्टि की स्थिति और सृष्टि की समस्याओं को समझने का एक भिन्न तरीका है। वह तरीका क्या है? सत कबीर उसी तरीके को बताते है। ससार के लिये दी उपमान प्रसिद्ध है-धट और पट। ससार वच्र के समान बुना है। इसीलिये ईश्वर जुलाहा है। ईश्वर जुलाहा ससार वच्न को बुनता “ है। कितु बात इससे पूरी नही होती है। व्यक्ति घट है। इस घड़े मे सब भरा है। गीता ने शरीर को वच्न कहा था। कितु घड़ा और महत्वपूर्ण है। वद्ध केवल बुनावट का सकेत करता है। कितु घट अनत आयाम को छिपाये रखने की स्थिति मे है। भारत चितन मे एक दुनिया बाहर है। इसे ही हम सृष्टि, ससार के नाम से जानते है। यही हमारी सवेदना के प्रत्यक्षीकरण का विषय है। कितु इसके अतिरिक्त एक ससार शरीर घट मे है। शरीर घट भी क्या कहिए? मानस में है। अत करण मे है। शरीर घट तो स्थूल है। चीर का देखा जा सकता है। कितु चीरने पर क्या मिलेगा ? चीरने पर तो वही रक्त, मज्जा, मास, अस्थि आदि। नही। भीतर की दुनिया को 8 हम पाया जा सकता है। यह एक अनुभव है। इस अनुभव की प्रक्रिया सारे अनुभवों न्नहै। गीता मे श्री कृष्ण ने अर्जुन को अपने घट के भीतर सब दिखलाया था। रामचरितमानस में राम माता कौशल्या को अपने भीतर का अखड ब्रह्माड दिखलाते है। गीता और मानस भीतर के ब्रह्माड को जानकर भी उससे अनजान रहना चाहते है। क्योकि उनका उद्देश्य भीतर की अपेक्षा बाहर है। भीतर की कठिनाई है कि भीतर गया मन फिर बाहर नहीं आना चाहता है। वहाँ इतना सुख और आनद है कि कौन लौटे ? अपना देश होकर भी यह अधिक अपना हो जाता है। फिर तो स्थूल, सगुण, साकार सब को भूल जाने की स्थिति आ जाती है। यह भूलना ठीक नही। भूले कि वह आधार समाप्त। जिसका सहारा लेकर घट के भीतर की दुनिया टिकी है। घट भी आवश्यक है। घट के भीतर की दुनिया भी आवश्यक है। बिना घट के इस दुनिया का अस्तित्व हो भी तो उसे पाना कठिन है। घट के भीतर को घट रहते ही समझा, “ परखा जा सकता है। उसका आनद भी घट के रहने पर ही है। घट प्यूटने पर क्या होगा? घड़े का जल ही उपयोगी है। समुद्र मे मिल जाने पर तो वह समुद्र का हो गया। विराट का व्यष्टि बनना ही ससार सृष्टि है। ॥ कठिनाई तब आती है जब हम बाहर के प्रसार को ही सब समझ लेते हैं। यही है। केवल यही है। ऐसे ही केवल का यह समझना कि यह नही। केवल भीतर है। यह

समझ भी ठीक नहीं। इसीलिये सत कबीर इसे मै से मै की माया बताते है। मै ही मैं को खोजता है। मै के दो (२०१)

२०२ कबीर समग्र रूप है स्थूल (घट) और शून्य (मीतर)। दूसरे मैं को सूक्ष्म भी कहना कठिन हैं। किंतु सूक्ष्म भी नही है। सूक्ष्म से ऊपर और भून्य से भिन्न हे। ऐसा भून्य जिसका बोध हो सके। आनंद या पीड़ा सूक्ष्म शून्य अनुभूति मात्र हे। यही कारण है। इनकी अनुभूति घ्य्टानुसार होती है। एक घट की पीड़ा या आनदानुभूति दूसरे घट मे उलटी हो सकती है। होती है। सबकी अनुभूति। सभी घटो की चेतना। सुख-दुख एक जेसी हो। इसके लिये सत कवीर रास्ता बताते है। घट में रहते हुए अपने घट के भीतर की दुनिया को दूसरे घटो की दुनिया से जोड़ देने की पद्धति। किंतु यह तो तब होगा जब पहले अपने घट की दुनिया को जाने। अपने घट की दुनिया को जानने की प्रक्रिया से अन्य घटो की दुनिया का भी बोध हो जाता है। क्योंकि घट अनेक है। दुनिया तो एक है। कई घटो का पानी समुद्र मे मिल कर एक ही तो होता है। यह कार्य घंटो के भीतर के जल की एकता की अनुभूति से समव है। कवीर की मुख्य चिता है कि जो अपने भीतर है। उसे व्यर्थ मे लोग मंदिर, मस्जिद, काबा, कैलास मे खोजते है। बाहर ढूँठने से अलग-अलग दीखता £। किनु भीतर, भीतर से देखने पर सब एक सा लगता है। भीतर की एकता की अनुभूति होते हो दाहर भी एक दीखेगा। दीखता है। मूल तत्त्व जल को समझ लिया। समझ लिया कि जल एक है। अब चाहे वह जहाँ हो। उसमे भेद नहीं किया जा सकता है। कहीं सफाई या गंदगी की अनुभूति समव है। किंतु जल एक है कि अनुभूति महत्त्वपूर्ण है। अब अगर कहीं कुछ दुराई है तो उसे दूर करना है। इसलिये घट या जल द्वेप या घृणा का पात्र नहीं है। सतो ने भीतर की दुनिया की खोज का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। घर बेंठे सभी लोक लोकातर की यात्रा पूरी हो गयी। क्योकि सभी तो इसी शरीर में है-सूर्य, चंद्रमा। सात समुद्र। नौ लाख तारे। पारस मोती। पारस को पहचानने वाला। अनाइत ध्वनि। फुहारा। फूलते जगल। फतते वृक्ष आदि। भीतर की यात्रा के कारण सतो के देवता अनग्रढ़िया है। अनगढ़िया कौन करे तेरी सेवा। इस देवता के अनगढ़ होने का कारण महत्त्वपूर्ण है। यह देवता व्यक्ति की खोज है। किसी शात्र या सिद्धात ने इसे पहले से नहीं गढ़ा है। इसे प्रत्येक व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार गढ़ता है। अत. यह आरोपित नहीं। साधना से प्राप्त है। व्यक्ति की साधना। साधक की सामर्थ्य। इसलिये इसमे कलात्मक एवं अलकारिक सौष्ठव नहीं है! अनगरढ़पन ही इसका सीदर्य है। रूप हीन। अरूप देव। सत कबीर की इस आतरिक खोज को विश्वेतर विश्व कहना चाहिए। यह विश्वेतर विश्व पहाड़, नदी, पत्थर, वन, मिट्टी आदि से शून्य है। यहाँ तक कि इसमें हवा, आकाश भी नही। किंतु इसी शून्य मे कवीर तैरते हैं। चलते है। दौड़ते हैं। देठते है। बिना साँस लिये जीवित रहते हैं। कुछ न कर भी सब करने के सुख की अनुभूति करते है। निष्क्रिय होकर भी गहरी सक्रियता है। विना किसी ध्वनि ओर पदक्षेप चिहन के सब हो रहा है। भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, आदि कुछ नहीं। किंतु किसी अभाव की अनुभूति भी नहीं। भरे होने का भारी बोझ भी नही। भोतिकता का अधिकता या अभाव से पीड़ित मन यहाँ सक्रिय

विश्राम पाता है। अधिक को अधिक नही लगता है और अभाव को अभाव की अनुभूति नही होती है। अभाव तो भाव की अपेक्षा है। किंतु यहाँ भाव शून्यता मे कैसा अभाव! इसमे नीरस रस है। विना रस के रस। शून्य होकर भी सहज है। निराधार मे टिका शरीर। किसी का सहारा नहीं। किसी की अपेक्षा नहीं। एकाकी शून्य। शून्य मे एकाकी। अकारण आनदित। केवल एकभाव। आनंद, रूप, रंग, रेखा, ध्वनि रहित निर्जन आनद। जे ही 3 कमनानकनन-नशननेनाजन गणज ७ कै +

यहि घट चदा यहि घट सूर २०३ और तब लगता है। मै हूँ। केवल मै निजबोध। भीतर प्रविध्ट मे खुलता है। एक और मन। और मन ही मन। अनगिनन। असख्य मन। असंख्य सृष्टि। पलपल दृश्य बदलती सृष्टि। अनत काल की सृष्टि क्षण भर की लगती है। क्षण अनत काल लगता है। कौन खोजे? खोज के पीछे तो इच्छा है। यहॉ तो इच्छा का अभाव है। इच्छा तो शरीर मे। शरीर मे मन को होती है। यहाँ शरीर वाला मन भी तो नही। फिर इच्छा किसे हो? किसी प्रकार की कल्पना भी नहीं है। कबीर इसे शून्य महल। वेगम देश कहते है। यहाँ कोई गम नहीं। दुख नहीं। यहाँ सदा प्रकाश रहता है। करोड़ो सूर्य के प्रकाश होता है। यद्यपि यह वेगम देश विचित्र है। यहाँ न धरती है। न आकाश। कुछ नही। सब नही। सब से है। सब से विचित्र है। इस देश दर्शन के फलस्वरूप। सत कबीर को यह भौतिक देश पराया लगने लगा है। पराया देश है। विदेश है। दूसरों का, माया का है। अत नाशवान् है। वे माया के इस नाशवान् देश मे क्यो रहे? नही रहेगे। यो भी कागद झाड़ झखाड़ एवं कॉटे के घर मे कौन रहता है? यहाँ तो सकट ही सकट है। यह बागड देश लू से भरा है। लोग यहाँ नित्य जलते रहते है। दूसरा देश मालवा है। माल वाला गभीर है। कभी नाश न होने वाला माल। यहाँ पग-पग पर पानी और डग-डग पर रोटी है। कभी भूखों मरने की समस्या नहीं। मालवा ही अपना असली देश है। यह भौतिक देश तो पराए का है। इसे अपना समझना भूल है। एक तो यहाँ कुछ है नही। दूसरे यह नाशवान् है। इतना ही नहीं। इतना ही होता तो शायद रह लेते। नहीं। यहाँ एक बुढ़िया डाइन रहती है। यह डाइन है तो बुढ़िया कितु अपने को जबान कहती है। यह पर पुरुष का शिकार करती है। ज्ञानी इसके भोजन है। अज्ञानी से यह श्रगार करती है। अपने पति पुत्र को खाकर प्रसन्न रहती है। इसकी आँखो मे विषय है। तीन गुणो की रस्सी से बॉध कर सब को खाती है। इसके पॉच लड़के भी बदमाश है। नित्य सबको नचाते रहते है। सत कहते है अब कभी इस देश मे नही आऊँगा। जो गया, कोई तो नही आया। भला उस आनद देश को छोड़ इस डाइन के देश मे कौन आएगा ? यह भी कोई रहने लायक देश है? उस देश मे जाने पर एक अत्यत महत्त्वपूर्ण बात मालूम हुई। यह देश तो भेद-भाव शून्य है। यहाँ बैठकर सब समान दीखता है। कभी ऊँचे पहाड़ या हवाई जहाज से देखिए। नीचे सब बराबर दीखेगा। मतलब कि भेद दृष्टि नीचे की, नीचे रह जाने की दृष्टि है। उर्ध्वगामी + समता मूलक, समता की है। इस समता दृष्टि के कारण वहाँ बारह मास बसत (होय) होता है। ज्ञानाग्नि की अखड धारा बरसती है। भव वन सदा हरियर रहता है। बरिसे अगिनि अखड धार। हरियर भौ बन अ ठारह भार। यह आनद समता का आनद है। विषमता मे दुख है। समता दुख रहित है। यह की है। नाशरहेत नगर। इस नगर मे केवल सत रहते है। यह निर्गुण-निराकार क्षेत्र है। इसी को पाना कबीर का उद्देश्य है। कण भी वे गा ण को इनकार नही करते। सच तो यह है कि अगम, अमरपुर सगुण 2 दोनो से परे है। इसीलिए संत कबीर सगुण की सेवा। निर्गुण का

ज्ञान और संगुण- परे का ध्यान करते हैसर्गुन की सेवा करौ, निर्गुण का करु ज्ञान | निर्गुण सर्गुन के परे, तहै हमारा ध्यान। कबीर निर्गुण को भी अस्वीकार करते लगते है। सही है। निर्गुण करते-करते निर्गुण भी सगुण रा जाता है। अत दोनो से परे जाना चाहते है। इस जगह कोई नाम-रूप नही। !$ अगम देश

साखी (9) गुरुदेव को अंग सतगुर सवा न को सगा, सोधी सई न दाति। हरिजी सवा न को हितू, हरिजन सईं न जाति ॥१॥ शब्दार्व-सर्वों न समान। सगा (स स्वक) 5 अपना। सोधी - (< सं. सुधी) विद्धान्। उदार। दाति 5 (स. दातृ ८ दानी) देनेवाला। हितू 5 हितैषी। हरिजन 5 भक्त । सई 5 समान अर्थ-सदगुरु के समान कोई अपना नहीं है। विद्वान् के समान कोई देनेवाला नही है। भगवान् के समान कोई हितैबी नही है। भक्त के समान कोई जाति नही है। हर विप्पणी-कई विद्वानो ने सोधी का शुद्धि तथा दाति का अर्थ दान किया है। अलकार- अनुप्रास डइलिहारी गुरु आपएें घींहाड़ी के बर। जिनि मानिष ते देवता, करत न लागी बार॥२॥| शब्दार्व-वलिहारी 5 उत्सर्ग करना। बलिदान करना। आपणं - अपने। द्ौहाड़ी ८ (सं दिवि गृह) स्वर्ग लोक। के 5 का। बार 5 (< स द्वार) दरवाजा। बार 5 देर। अर्थ-साधक गुरु पर अपने को बलिदान करता है। क्योंकि वे स्वर्ग दर्शन के द्वार है। जिन्हे साधक को मनुष्य से देवता बनाने मे जरा भी देर नहीं लगी। यहाँ स्वर्ग और देवता का संयोग द्रष्व्य है। देवता बनने पर ही मनुष्य स्वर्ग का अधिकारी होगा। क्योकि स्वर्ग देवों का निवासलोक है। दिव् का अर्थ आकाश भी है। योग मार्ग मे गुरु शिष्य को आकाश जिसे शून्य या सहस्नार चक्र कहते है, का दर्शन कराता है। टिप्पणी-युगलानद जी ने इस साखी का पाठ यो दिया है- बलिहारी गुरु आपना, घरी घरी सौ बार। मानुष ते देवता किया, करत न लागी बार॥ इसमे और तो प्राय समान है। 'घरी घरी सौ बार" का अर्थ है-घड़ी घड़ी सौ बार। डा० माता प्रसाद गुप्त ने पाठ तो धौहाड़ी' रखा है। इसका अर्थ दिवस किया है। सभवत वे चींहाड़ी को स दिवस + हि. ड़ी से व्युतनन्न मानते है। सतगुर की महिमा अनंत, अनेत किया उपकार। लोचन अरनेत उधाड़िया, अनेत दिखावणहार ॥३॥) अर्व-सद्गुरु की महिमा (महत्त्व) अपरम्पार है। उन्होंने शिष्य (भक्त) पर अनत उपकार किए है। उन्होने विषय-वासनाओ से बद शिष्य की आँखों को, ज्ञान द्वारा खोलकर उसे सान्त नही अनंत तत्त्व ब्रह्म का दर्शन करा दिया है। अलंकार- यमक राम नाम के पटतरे, देबे को कुछ नौहि। क्या ले गुर संतोषिए, हींस रही मन मौहि ॥४॥ शब्दार्थ--पटतरे + (< स. परत) समान। बराबर। हींस 5 (

साखी २०५ अर्व-गुरु ने शिष्य को राम नाम का मत्र दिया। यह इतना महत्त्वपूर्ण दान है कि इसके बदले मे कुछ नही दिया जा सकता। राम नाम से बढ़कर तो क्या राम नाम के मुकाबले का भी कुछ नही है। शिष्य गुरु दक्षिणा में गुरु को कुछ देकर संतुष्ट करना चाहता है। कितु यह नहीं हो सकता है। इसलिये गुरु दक्षिणा देने की प्रबल इच्छा मन में ही रह गयी। (पुराने जमाने मे शिष्य गुरु दक्षिणा अवश्य देता था|) इस साखी मे एक ओर गुरु की महानता तथा दूसरी ओर शिष्य की नम्नता अभिव्यक्त है। सतगुर के सदके करूँ, दिल अपणी का साछ। कलयुग हम स्यूँ लड़ि पड़घा, मुहकम मेरा बाछ॥५॥ शब्दार्थ-सदके + निछावर। साछ - साक्ष्य। मुहकम - (अर) दृढ़। बाछ > वाछा। आकाक्षा | " अर्थध-शिष्य कहता है कि मै हृदय को साक्षी बनाकर (सांच > सच्चे हृदय से) सद्गुरु के ' प्रति अपने को निछावर करता हूँ। सदगुरु की कृपा और उनके प्रति मेरा समर्पण देखकर कलियुग (सासारिक विषय-वासनाएँ) मुझसे लड़ने लगा। वह मुझे गुरु समर्पण से विचलित करना चाहता है। कितु मै दृढ इच्छावाला हूँ। कलियुग मुझे विचलित नही कर सकता है। सतगुर लई कर्मोण करि, बॉहण लागा तीर। एक जुबाध्या प्रीति हूँ, भीतरि रध्या सरीर॥६॥ अर्थ-सदगुरु ने प्रेम से आत्मज्ञान रूपी धनुष से राम नाम (शब्द) रूपी तीर चलाया। राम नाम रूपी यह तीर शिष्य के पूरे शरीर मे प्रविष्ट कर गया जिससे तन-मन सभी प्रभावित है। दिष्पणी-धनुष एव तीर का यह रूपक गुरुवाणी के महत्त्व की ओर सकेत करता है। सतगुर साँचा सूरिवों, सबद जु बाध्या एक । लागत ही में मिलि गया, पढ़या कलेजे छेक ॥७॥ दर शब्दार्थ-सॉचा - सच्चा। सूरिवाँ > सूरमा। बाह्या 5 (< सं वेध्या) भेदन किया। छेक *द्। अर्थ-सद्गुरु सच्चा वीर है जिसने शिष्य को राम नामक एक शब्द का ज्ञान दिया। यहाँ इसी ज्ञान को बाह्या अर्थात् बाण बेधना कहा गया है। इस शब्द बाण के लगते ही हृदय में बैठा जन्म जन्मान्तर का वासना रूपी अधकार नष्ट हो गया। यह वासना या जज्ञान का अधकार पर्त दर पर्त बैठा था। यह मात्र गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान से ही छेदा जा सकता था। अलंकार-सागरूपक सतगुर मारधा बाण भरि, घरि करि सूधी मूदि। अंगि उधाडै लागिया, गई दबा सूँ फटे ॥८॥ शब्दार्ब-सूधी मूठि 5 सीधी|मुट्ठी अर्थात् सीधा लक्ष्य कर तथा मुद्ठी कर, जिससे चूक न हो। दवा 5 वनाग्नि। अर्व-सदूगुरु ने शिष्य का अज्ञानाधकार् मिटाने के लिये सीधा और प्रखर शब्द-बाण चलाया। वह न केवल शिष्य के अंगो को उघाड़ने लगा बल्कि उसने विषय-वासना के सारे प्रपंचो को नष्ट कर दिया। एक ऐसी आग लगी जिससे वासनाओ का जंगल जलने लगा।

२०६ कबीर समग्र अलंकार- सागरूपक उपमा। हँस न बोले उनमनी, चंचल मेल्ट्या मारि । कहै कबीर भीतरि भिया, सतगुर के हथियार ॥९॥ शब्दार्व-उनमनी 5 जहाँ मन और प्राण एक हो जाते है। मन का विषय चंचलता से हटकर ब्रह्म भाव मे स्थिर होना। मेल्हया 5 मिला दिया। भिद्या 5 भेद गया। अर्थ-सदगुरु का राम नाम रूपी हथियार मन के भीतर प्रविष्ट कर गया। इससे विषयो के पीछे भागनेवाले मन की चचलता समाप्त हो गयी। अब मन ब्रह्म से एकाकार है। ब्राह्मी स्थिति मे है। यह स्थिति न बोलने या शाति की स्थिति है। टिप्पणी-गीता मे अर्जुन ने श्री कृष्ण से जिस चचल मन (चंचलस्तु मन कृष्ण) की शिकायत की थी उसे ही गुरु कृपा से कबीर साहब ने अचचल बना दिया है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | गूँगा हूवा बावला, बहरा हुआ कान। पाऊँ वै पंगुल भया?, सतगुर मारथा बाण ॥१०॥ अर्य-सदगुरु ने राम नाम का जो उपदेश दिया उससे शिष्य बिल्कुल बदल गया। उसकी सभी इंद्रियाँ जो पहले पागल होकर विषयो के प्रति दौड़ती थी वे गूँगी, बहरी और छैंगड़ी हो गयी है इनके कारण अब वे विषयो की ओर नही दौड़ती है। उल्टे अब राम के छिये पागल रहती है। का ने गूँगा, बहरा और लगड़ा इन तीन शब्दो द्वारा इद्रियो की विषयहीनता की सूचना | पीछे छागा जाइ था, लोक बेद के साथि । आगे? वै सतगुर मिल्या, दीपक दीयार हाथि ॥११॥ अर्थ-शिष्य कहता है कि मै तो शास्त्राचार और लोकाचार के पीछे चलता था। कितु इससे मुक्ति नही मिली । बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्र मे घूमतां रहा। सद्गुरु ने कृपा कर ज्ञान दीपक हाथ में थमा दिया। इससे भीतर-बाहर का अज्ञानाधकार दूर हो गया। टिप्पणी-यहाँ वेद का अर्थ है शास्त्र और लोक का अर्थ परंपरा। गो तुलसीदास ने इन्हे 'लोकवेदमत मजुढ कूलाः कहा है। भगवान् की ऐकातिकभक्ति मे छोक-वेद की मर्यादाएँ दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अधघष्ट । पूरा किया बिसाहूणों, बहुरि ग आबीं हट्ट ॥१२॥ शब्दार्व-अघट्ट > न घटनेवाली। बिसाहूणों + खरीद-ब्रिकी। सांसारिक व्यापार। अर्व-सद्गुरु ने मन रूपी दीपक मे भगवत् प्रेम का तेल भर दिया है। उसमे कभी न . बाधक होती है। : समाप्त होने वाली स्मरण की बाती जला दी है। इससे जीव के भीतर का अँधेरा (अज्ञान) दूर हो गया। इससे सासारिक व्यापार पूरा हो गया। अब जीव को इस भव सागर मे नहीं आना ' पड़ेगा। यहाँ सकेत इस बात का है कि भक्त के सचित, क्रियमाण और प्रारब्ध तीनो प्रकार के कर्म नष्ट हो जाते है। ये कर्म ही भवबधन या भव चक्र के कारण है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति |

साखी २०७ ग्यान प्रकास्या गुर मिल्या, सो जिनि बीसरि जब गोबिंद कृपा करी, तब गुर मिलिया आइ ॥9३॥ शब्दार्थ-बीसरि 5 भूलना। जिनि < नहीं। अर्व-सदगुरु ने जो ज्ञान दिया है (प्रकाशित किया है) उसे कभी भूछ मत जाना। ऐसा जुलभ ज्ञान बार-बार नहीं मिलता है। यह तो स्वय < की #$पा है कि उन्होने सदगुरु का र्शन करा दिया। दिप्पणी-भक्ति क्षेत्र मे भगवत् कृपा ही सब कुछ है। साधन और साध्य दोनो $| भक्ति भी उनकी कृपा का फल है। इसे गो तुलसीदास नेकहा है- 'जा पर कृपा करहु जन जानी। कवि उर अजिर नचावहु बानी।' कबीर गुर गरवा मिलया, रलि गया आटे जाति पौति कुल सब मिटे, नाव घरौगे शब्दार्थ-गरवा ८ (< सं गर्व या गुरु) भारी। ग्रुरुत्त घुलना-मिलना | नाव € नाम। लूँण न नमक। अर्थ-कबीरदास जी कहते है कि सदगुरु अत्यत गभीर औं गुरुत्व वाढे मि गये। उनकी कृपा से साधक और साध्य, भक्त और भगवान्, आता आदे-नमक के समान मिलकर एकाकार हो गये। इससे सासारिक जाति-पॉति तो मिं ही गयी। भक्त और भगवान् का अलगाव भी समाप्त हो गया। अब ये अलग-अलग दो, नहीं रह गये। क्यो कि भगति, भगत, भगवंत, गुरु नाम, रूप, वपु एक ही होते है।/्ति के कारण भक्त भी भगवान् के जाति कुल का हो गया है। ' अलंकार-प्रतिवस्तृपमा || जाका गुर भी अंघला, चेला रह निरंधः । अंधा अंधा ठेलिया, दून्यूँ कूप #7 ॥१ ५॥ मा ल जिसका। अधला > ऑरप। खरा 5 बिल्कुक। निरध 5 (नि निरतर+ अध) सदा अधा रहने वाल। अर्थ-जिसका गुरु भी अधा या अज्ञानी/ स्वाभाविक है कि उसका शिष्य सदा अधा होगा। बिल्कुल अधा। अधा गुरु अगर शिष्य को उपदेश करेगा तो वह उपदेश आत्मकल्याणकारी न होकर भवकूप मे होता है। इस प्रकार के उपदेश से गुरु शिष्य दोनो का नुकसान होता है। टिप्पणी-यहाँ 'ठेलिया' शब्द इस सूचक है कि अधा गुरु उचित रास्ते की ओर न ले जाकर केवल धक्का देता है। शिष्य नि अधेपन के कारण सुमार्ग पर न जाकर गुरु को ही धक्का देता है। फलत दोनो गलत रा पर चले जाते है। इस साखी मे योग्य गुरु पाने है। दूसरे, अज्ञानमूलक विकृत संप्रदायो की आलोचना है। दिप्पणी-यह एक परपरित भाव का दोहा प्रसिद्ध है!। जाव ण अपा जाणिज्णइ ताव अधे अध कढ़ावइ, तिम वेण्णा कूंव पड़ेइ॥ हुए ॥9 ४॥ । महत्त्वपूर्ण। रलि गया || प्रसिद्त सिद्द सरहपाद (सरहपा) के नाम भी इसी ' दु | 7 गुरु चेठा है जा चध।

२०८ कबीर समग्र | नो गुर मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाब । दुन्यूँ बूटे धार मे, चड़ि पावर की नाव ॥१६॥ शब्दार्थ-ठाव - दाव (का मूर्धन्यीकरण)। दुन्यूँ 5 दोनो। ; अर्थ-न योग्य गुरु मिढत। न उपयुक्त शिष्य की प्राप्ति हुई। गुरु और शिष्य दोनो लोभी थे। दोनो ने ज्ञानमूलक निष्यम भक्ति न कर फलाशा मे पत्थर के देवताओ (पूर्ति) की पूजा की। फलत दोनो लोभी गुरु शिष्य मुक्त न होकर भव सागर की धोरा मे डूब गए। इसलिये कि उनकी नौका ज्ञान और भक्ति के काष्ठ की न होकर षड्विकारों के पत्थर की थी। अलंकार-उपमा चौसठि दवा जोड़ करि, चोदह चंदा माँहि | तिहि घरि किसको चानिणों, जिहें घरि गोबिन्द नोहि १ ७॥ शब्दार्थ-चौसठि दीवा 5 चौसठ दीपक चौसठ कलाओ का प्रतीक है। चौदह चंदा चौदह विद्या। चानिणी 5 चौँदगे| जिहँ > जिस | घरि - घर मे। अर्थ-बाह्य या अनात्म शक्तेयों चाहे कितनी भी बयोर ली जायें। कितु उनसे आत्मप्रकाश नही हो सकता है। आत्मप्रका१ के लिये हृदय मे भगवान् की स्थापना आवश्यक है। चौसठ कढाएँ और चौदह्विद्याएँ अर्थात् सपूर्ण शास्त्रों का ज्ञान हो गया। फिर भी जिस हृदय में भगवद्अकाश नहीं है, हाँ अँधेरा ही रहेगा। टिप्पणी-भक्ति के क्षेत्र "अत साधना महत्त्वपूर्ण है। यहाँ कछा और विद्या को स्थान नही है। गो तुलसीदास कहते “कवि न होउँ नहिं बचन, बे सकल कला सब विद्या हीनू।' १/९/८ यह गोस्वामी जी की 80% है। भक्ति का स्वीकृत सिद्धात भी है। कठोपनिषद् ने 40003 के लिये प्रवचन का । कैया है। कठ का “प्रवचन” गोस्वामी जी का 'वचन' | ६४ कल्एँ- १ गीत, २ वाद्य, नृत्य, ४ नाट्य, ५. आलेख्य, ६. विशेषकच्छेध, ७ तडुलकुसुमवलिविकार, ८ पुष्पास्तरण, ९ दशनवसनागराग, १० मणि भूमिका कर्म, ११ शयन रचना, १२. उदकवाद्य, १३ दकघात, १४. अद्भुत दर्शनवेदिता, १५ माला प्रन्थन-कल्प, १६ शेखरापीडयोजन, १णपथ्ययोग, “१८ कर्णपत्रभंग, १९ गधयुक्ति, २० भूषण योजना, २१ इन्द्रजाल, २२ कौचुमारयोग,._ २३ हस्तलाधव, २४ चित्रशाकापूषपविकार क्रिया, २'पानकरागा, वेयोजन, २६ सूचीवापकर्म, २७ सूत्रक्रीओ, २८ वीणा डमरू वाद्य, २ प्रहेलिका प्रतिमाला, ३० दुवचिक योग, ३१ पुस्तकवाचन, ३२ नाटिकाख्यायिकादर्शन, ३ काव्यसमस्यापूरण, ३४. पटष्टिकावेत्र बाण _ विकल्प, ३५ तक कर्म, ३६ तक्षण, ३७ वास्वेद्या, ३८. रूप्पुल परीक्षा, ३९ धातुवाद, ४० मणिरागज्ञान, ४१ आकरज्ञान, ४२ वृक्षाद्, ४३. मेबकुक्कुटलावक युद्ध विधि, ४४ शुकसारिका प्रढायन, ४५ उत्समून, ४६ केश्र्जनकौशल, ४७ अक्षर मुष्टिका कथन, ४८ म्ठेछित कवि कल्प, ४९ देशभाषा ज्ञान ५०, पुष्प शकटिका निमित्त ज्ञान, ५१ यत्र मातृका, ५२ धारण मातृका, ५३ ज्वाच्य सपाठ्य मानसी काव्यक्रिया, ५४ छलितक योग, ५५. अभिधान कोशच्छदोज्ञान, : क्रिया विकल्प, ५७ ललित विकल्प, ५८ वस्त्रगोपन, ५९ चूत विशेष, ६० आकर्षक्रीडा, ५ बाल क्रीडनक, ६२ वैनायिकी विद्या ज्ञान, ६३. वैजयिक विद्या ज्ञान, ६४ वैतालिकी विद्या भ। ये ६४ कलाएँ

शैवागम के अनुसार है।-मानस पीयू१/९/८ १४ विद्या-१ षडग मिश्रिता वेदा धर्मशास्त्र पुराणव मीमांसा तर्कमपि च एता विद्याश्चञ्ञ| -आप्टे कोश

साखी - २०९ २ पुराण न्यायमीमासा धर्म शास्त्राग मिश्रिता वेदा स्थानानि विद्याना धर्मस्य च चतुर्दश | * (याज्ञवल्क्यस्पृति उपोद्धात प्रकरण-१) अथीत् ब्रह्म आदि अठारह पुराण,तर्क विद्या न्याय, मीमासा (वेद वाक्य), धर्मशास्त्र (मनु स्मृति आदि), वेद के छह अग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्‍त, ज्योतिष और छद) और चारो वेद- ये मिलकर १४ बिद्याएँ है। -मानस पीयूष १/९/८ ३ अगानि वेदाश्चत्वारो मीमासा न्याय विस्तर । पुराणम् धर्मशास्त्र च विद्या हयेताश्चतुर्दश, -विष्णु पुराण ३/६/२८ निस अँधियारी कारणै,चौरासी लख चंद । - अति आतुर ऊदै किया, तऊ दिष्टि नहिं मंद ॥१८॥ अर्थ-जीवन रात्रि के अज्ञानाधकार को दूर करने के लिये ८४ छाख चद्रमा अत्यंत जल्दीजल्दी उदित किये गये। तब भी ज्ञान-दृष्टि मद ही बनी रही। न दृष्टि खुली, न आत्माज्ञान आ। ॽ यहॉ ८४ छाख चद का सकेत सभवत ८४ लाख योनियो से है। जीव ८४ लाख योनियो मे भटकता रहा | कितु उसे ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ। ज्ञान तो तभी प्राप्त होगा जब सद्गुरु की प्राप्ति हो। प अलंकार-विशेषोक्ति। भली भई जु गुर मिल्या , नही तर होती हॉणि । दीपक दिष्टि? पतंग ज्यूँ, पड़ता पूरी जोणि ॥१९॥ अर्थ-अच्छा हुआ कि सद्गुरु मिल गये। वरना बड़ा नुकसान होता। जैसे सामान्य जन फतिगे के समान माया की चमक-दमक मे पड़कर नष्ट हो जाते है वैसे मेरा भी नाश हो . जाता। जैसे फतिगा दीपक को छा समझ लेता है| सामान्य जन माया को पूर्ण समझकर उस पर अपने को न्यौछावर कर देते है। वैसी ही दशा मेरी भी होती | सकेत यह है कि पूर्ण (पूरा) माया नही, ब्रह्म है। इसीलिये केवल ब्रह्म सत्य है और मायानिर्मित-जगत् मिथ्या है। ब्रह्म की पूर्णता का श्छोक निम्नलिखित हैऊँ पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णायूर्णमुदच्यते | पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते | अलंकार-उपमा | माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवे पड़ंत । कहै कबीर गुर ग्यान वै, एक आध उबरंत ॥२०॥ अर्थ-माया दीपक के समान चमक वाली है। मनुष्य अज्ञानवश फतिगे के समान है। अज्ञानी मनुष्य घूम-घूमकर या भ्रम मे पड़-पड़ कर फतिगे के समान माया के पीछे नष्ट होता रहता है। यहाँ भ्रमि का अर्थ बार-बार जन्म लेने से भी है। सत कबीर कहते है कि कोई एकाध (बिरला) ही सदगुरु का ज्ञान पाकर माया से उबर पाता है। भ्रम के कारण जीव मे देहात्म बुद्धि उत्त्पन्न हो जाती है। टिप्पणी-इसी प्रकार का रूपक गो० तुलसीदास के मानस मे भी हैदीप सिखा सम जुवती तन मन जनि होसि पतग । १. युगज्योति। ३ आप।

२१० कबीर समग्र भजहि राम तजि काम मद कर्हि सदा सतसंग । सतगुरु बपुरा क्या करै, जे सिषही मोह चूक । भाव त्यूँ प्रमोधि ले, ज्यूँ बंसि बजाई फूक ॥२१॥ शब्दार्थ-वपुरा 5 वेचारा। सिष + शिष्य। मोहै 5 मे। चूक - त्रुटि। भूछ। भावै त्ूँ « जैसे भी हो। परमोधि ले 5 (स प्रवोध) अर्थ निकाले। | अर्थ-अयोग्य या साधना मे भूल करने वाले शिष्य को बेचारा गुरु कैसे प्रवोधित कर सकता है ? त्रुटियुक्त अयोग्य शिष्य अर्थ का अनर्थ कर देता है। जैसे कोई व्यक्ति वशी से वेसुरा राग निकलता है। इसमे वंशी का कोई दोष नहीं है। इसी प्रकार गुरु भी निर्दोष है। अलंकार-उदाहरण | संस खाया सकल जगु, संसा किनहुँ न खद्ध । जे बेघे गुर अष्विरां, तिनि संता चुणि चुणि खद्ध ॥२२॥ शब्दार्थ-ससै < सशय। खद्ध 5 खाया । नष्ट किया। अष्यिरा 5 [स अक्षर) अक्षरों से। वेघे - विद्ध | प्रविष्ट।) अर्थ-संत कबीर कहते हैं कि सशय (जिसमे शब्द, आगम या गुरु बचनो के प्रति श्रद्धा का अभाव हो) ने सारे संसार को नष्ट कर दिया। कितु सशय को कोई नही समाप्त कर सका। सशय को केवल वही भक्त चुन-चुन कर समाप्त करता है जिसका हृदय सदगुरु के अविनाशी एवं साधना प्रसूत उपदेशो से विद्ध है। वेघे का अर्थ है उपदेश का हृदयगम होना । टिप्पणी-इस साखी पर गीता के 'सशयात्मा विनश्यति'' का स्पष्ट प्रभाव है। बैसि करि, सतगुर दीन्हों धीर । निरमे होइ निसंक भजि, केवल कहै कबीर ॥२३॥ अर्थ-सत कवीर कहते है कि आत्मज्ञानरूपी चौकी पर बैठकर सदूगुरु ने शिष्य को वैर्य बेंधाया। विषय व्याकुल या साधना पथ की कठिनाइयों से विचलित मन को स्थिरता प्रदान की। सदगुरु' ने कहा कि तुम निर्भय और नि शक होकर भगवान् का भजन करो। किसी साधना के प्रारभ मे कठिनाइयाँ आती ही रहती है।केवल माने एक परमाता। सतगुर मिल्या त का भया, जे मनि पाड़ी भोल। पासि बिनंठा कप्पड़ा, क्या करै बिचारी चोल ॥२४॥ शब्दार्थ- मनि - मन मे | पाडी ८ पड़ा | भोल < भूल | पासि ८ (विनष्टठ । चोल ८ मजीठ रग। अर्थ-सद्गुरु मिलने से ही क्या हुआ यदि शिष्य ने मन से विषयो को नहीं हटाया और विषयो मे ही भूछा रहा। विषय मे भूले मन पर गुरुवचनो का कोई प्रभाव वैसे ही नही होता है जैसे धूल से भरे कपड़े पर मजीठ के रग का असर नही होता है अर्थात् धूल धूसरित वस्त्र पर मगीठ रग नही चढ़ता है। अलंकार-दृष्टात | बड़े थे परि ऊबरे, गुरु की लहरि चरमंकि। भेरा देख्या जरजरा, (तब) उतरि पड़े फरंकि ॥२५॥ शब्दार्व-भेरा 5 एक प्रकार की नाव। जरजरा 5 (< स् जर्जर) पुराना। फंरकि 5 फड़क कर | उछलकर | अर्व-मैं पुरानी और जर्जर नाव अर्थात् परपरागत रूढ आचार-विचार द्वारा ससार सागर की यात्रा मे करीब-करीब डूब चुका था। किंतु सदगुरु के अनुग्रह भरे वचनो की लहर ने चमक कर मुझे बचा लिया। बस, मै उछलकर परंपरागत रूढ आचार-विचार की नाव से अलग हो

साखी २११ गया। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | गुरू गोविंद तो एक है, दूजा यहूं आकार। आपा मेट जीवत मरे, तो पावै करतार ॥२६॥ शब्दार्व -दूजा 5 दूसरा। दो। आकार - रूप | शरीर। आपा 5 अंहकार। अहता- ममता। करतार 5 परमात्मा। ईश्वर। अर्थ-गुरु भगवान् ही है। गुरु और परमात्मा दोनो मूलत एक ही सत्ता के दो नाम हैं। केवल आकार या रूप की भिनता है। गुरुकृपा से जो जीवित मरता है अर्थात् जिसकी अहताममता समाप्त हो जाती है वह परमात्मा को प्राप्त कर छेता है। अलंकार--विरोधाभास | कबीर सतगुर नो मिल्या, रही अधूरी सीष। स्वॉग जती का पहरि करि, घरि घरि माँग भीष॥२७॥ शब्दार्व-जती < (कसौटी। ताई < तप्त करना। ततसार तत्त्व सार। सार तत्त्व। अर्थ-सदूगुरु सच्चा सूरमा है जो लोहे के समान तामसिक वृत्ति से भरे शिष्य को भी साधना की आग मे गर्म कर आकार देता है। उसका तमस् दूर करता है। इसमे गुरु का दृष्टात लुहार (श्रमा) और शिष्य का तमस् भरे लोहे से दिया गया है। दूसरे मे गुरु को सुनार कहा गया है जो सोने के समान शिष्य को साधना की आग मे गर्म कर शुद्ध करता है और ज्ञान कसौटी. पर घिस कर उसकी दा द्धता प्रमाणित करता है। अलकार- उपमा यापणि पाई थयिति? भई, सतगुर दीन्हीं घी... कबीर हीरा बणजिया , मानसरोबर तीर ॥२९॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि सदगुरु के उपदेश से मन की चचलता समाप्त हो गयी और मन परमात्मा के ध्यान मे स्थिर हो गया है। साधक अब मानसरोवर अर्थात् आत्मचैतन्य के किनारे ज्ञानरूपी हीरे का व्यापार करता है। यहाँ ज्ञान को हीरा कहने मे हीरे की उज्ज्वलता और मूल्यवत्ता द्वारा ज्ञान के महत्त्व पर रा डाला गया। मानसरोवर मनस् का प्रतीक है। हीरा सार या मूल तत्त्व का भी सकेत | अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | निहचल निधि मिलाइ तत,सतगुर साहस धीर। निपजी मैं साइठी घणों , बाटे नहीं कबीर ॥३०॥ शब्दार्च-निहचल - स्थायी | अक्षय। निपजी < उपजी। उत्पन्न हुई। तत तत्त्व अर्व-सद्गुरु ने साहस और घैर्य द्वारा अक्षय तत्त्व परमात्मा से मिला दिया है। आत्मा और परमात्मा के इस मिलन से उत्पन्न आनद को छेनेवाले बहुत-से तैयार हो गये हैं। किंतु १ युग-पिर |

/ २१२ कबीर समग्र कबीर (साधक) उस आंनद से इतना तदाकार है कि इस आत्मानंद की अनुभूति किसी दूसरे को कराने की स्थिति मे नही है। दिप्पणी-बॉटे को भोजपुरी बाटे (स॒वर्तते) माना जाय तो अर्थ होगा 'कबीर है नही/। अहता-ममता छोड़ परमात्म में लीन हो गये है। ऐसी तदाकारिता की अनुभूति दूसरो को देना असभव है चोपड़ि मोडी चौहटे, अरघ उरप बाजार। कहै कबीरा राम जन, खेलौ संत विचार ॥३१॥ शब्दार्थ-चौपडि, - चौसर। एक प्रकार का खेल जो चार रग की गोटियों के आधार पर - खेला जाता है मॉडी 5 बिछाया। चौहटे 5 चौराहे पर। अरध उरध 5८ (

साखी २१३ अर्थ-सत कबीर कहते है कि प्रेम के बादलो की वर्षा हो गयी। यह प्रेम गुरुकृपा का प्रेम है। ऐसी प्रेमवर्षा जिससे बरसानेवाला और जिस पर बरसाया जाता है दोनो भीगते है। बाहर भी भीगता है। भीतर भी भीगता है। जो जीवन वन वासना की आग में जढ रहा था वह भगवत् प्रेम वारि की वर्षा से हराभरा हो गया। अलंकार-रूपक | पूरे सूँ परचा भया, सब दुख भेल्या दूरि । निर्मल कीन्ही आत्मों ताथें सदा हजूरि॥३५॥ शब्दार्-पूरे - पूर्ण ब्रह्म । परचा & परिचय। भेल्या 5 हुआ। तायै 5 इस कारण या स्थापित। हजूरि > हाजिर | अर्थ-भक्ृत का पूर्ण ब्रह्म से परिचय हो गया जिससे सारे दुख दूर हो गये। दुखो को दूर हटा दिया। इस परिचय से आत्मा पर पड़ी मैल दूर हो गयी। जो प्रभु हृदय से सदा दूर रहते थे वे अब इस निर्मलता के कारण सदा हृदय मे स्थित रहते है। (२) सुमिरण को अंग कबीर कहता जात हूँ, सुणता है सब कोह। राम कहे भला होइगा, नहि तर भला न होइ ॥१॥ अर्थ-सत कबीर कहते है। सभी छोग सुनते है। राम कहने से सब की भलाई होगी। जो राम नही भजेगा उसका कल्याण नही होगा। कबीर कहै में कथि गया, कवि गया ब्रहम महेस। राम नॉव ततसार है, सब काहू उपदेस ॥२॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि न केवल उन्होने कहा है बल्कि ब्रह्मा और महेश ने भी यही कहा है कि राम का नाम सार तत्त्व है। यह सभी का उपदेश है। तत तिलक तिहूँ लोक मैं, राम नौंब निज सार। जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार॥३॥ अर्थ-इस लोक मे ही नही तीनो छोको में राम नाम ही सार तत्त्व है। श्रेष्ठ तत्त्व है। तिलक ठगाने से माथा सुशोभित होता है। कितु राम छाप के तिलकं से वह और सुदर लगता है। मस्तक मे राम के तिलक को स्थान देने से मनुष्य का सपूर्ण व्यक्तित्व सुदर हो जाता है। भगति भजन हरि नाव है, दूजा दुक्ख अपार। मनसा बाधा क्रमनों, कबीर सुमिरण सार ॥४॥ अर्व-सत कबीर कहते है कि भगवान की भक्ति और भजन यही सार तत्त्व है। मन, वचन और कर्म से हरि स्मरण करते रहना चाहिए। ससार के दूसरे कार्यो मे अपार दु ख है। इसमे सर्वम् दु.खम् की ध्वनि है। कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल। आदि अंति सब सोधिया, दूजा देखो काल ॥५॥ अर्थ-सत कबीरदास कहते है, हमने आदि-अत अथवा ससार के सभी लोक-वेद की खोज कर ली। अब स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि राम का स्मरण ही सारतत्त्व एव सनातन है |. शेष सभी सासारिक प्रपच तथा विनाशकारी काल है या काल द्वारा नष्ट खुद को भी नष्ट क़रते है तथा जो उनके पीछे रहता है उसे भी नष्ट कर देते हैं।

२१४ कबीर समग्र च्यंता तो हरि नॉव की, और न चिंता दास। जे कुछ चितवै राम बिन, सोइ काल को पास ॥६॥ ३ अर्व-दास (भक्त) को केवल हरिनाम स्मरण की चिंता है। वह और किसी कर्म-धर्म के बारे मे कभी नही सोचता है। जो व्यक्ति रामरहित होकर किसी चीज की चिता करता है वह काल के फेंदे (पाश) मे पड़ता है। पंच सेंगी पिव पिव करे, छठा जु सुमिरे मन्न। आई सूति? कबीर की, पाया राम रतन्न ॥७॥ शब्द-पच सगी 5 आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा पॉच ज्ञानेन्द्रियाँ। सूति 5 स्मृति | स्मरण अर्थ-सत कबीर कहते है कि परमात्मा की स्मृति भूली थी। गुरुकृपा से परमात्म तत्त्व का स्मरण हो आया। फठत आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा ये पाँच ज्ञानेन्रियाँ तथा छठा मन भी राम-राम रटने छगा। गुरुकृपा से भक्त को रामनाम का रल प्राप्त हो गया है। पॉचो इद्रियो का राम नाम स्मरण का अर्थ है ये इद्रियाँ अब राममयी हो गयी हैं। जो कुछ करती है राम के लिये करती है। तन्मयीभवन की स्थिति है। अलंकार-रूपक | मेरा मन सुमिरे राम कूँ, मेरा मन रामहें आहि। अब मन रामहें दै रह्मा, सीस नवाबों काहि ॥८॥ अर्व-मेरा (भक्त) मन राम का स्मरण करता है। राम का स्मरण करता-करता स्वय राम हो गया है। जब मन स्वय राम हो गया तो वह अब किसके सामने सिर झुकाए ? अलंकार-तद्‌गुण | टिप्पणी-भक्ति के क्षेत्र मे तीन स्थितियाँ आती है-तस्यैवाह, ममैवासौ, स एवाहमिति त्रिधा। मै उसका हूँ। वह मेरा है। मै वही हूँ। तूँतूँ करता तूँ भया, मुझ में रही न हूँ । बारी फेरी बलि गई, जित देखों तित तूँ॥ ९॥ अर्थ-भगवान्‌ का स्मरण तो तू तू करता हुआ प्रारंभ हुआ। अर्थात्‌ प्रारंभ मे मैं तू का भेद वना था। कितु बार-बार स्मरण से मेरे मै की बलि हो गयी। मेरा हूँ (अहम) समाप्त हो गया। अब केवल तू है। यह अहम का लमू मे विसर्जन है। फलत अब सभी ओर केवल तू (ब्रह्म) ही दिखाई पड़ता है। अलंकार-तदगुण | कदीर निरभे राम जपि, जब लग दीवै बाति |, तेल घव्या बाती बुच्ची, (तब) सोदैगा दिन राति ॥१ ०॥। शब्दार्व-दीवै - शरीर। बाति - प्राण। तेढ - शक्ति। सामर्थ्य | अर्व-सत कबीर कहते है कि जब तक शरीर मे शक्ति और प्राण है तब तक राम का स्मरण करो। जैसे तेल खत्म होने पर बत्ती बुझ जाती है उसी प्रकार शक्ति समाप्त होने पर चेतना समाप्त हो जायगी। फिर तो मृत्यु रूपी महानिद्रा मे सोना ही है। अलकार-रूपकातिशयोक्ति | कबीर सूता क्या करै, जागि न जपै मुरारि। एक दिनों भी सोव्णों, लंबे पाँव पसारि॥१ १॥ अर्थ-सत कबीर कहते हैं कि ससार के विषयो मे क्यो सोये हो अर्थात्‌ विषयो मे क्यो कक अल कक कर 34 5:64 :6 कक एक ुग-सुरति।

हर ५5आ 5 55:7 (४9 जी: 590 २१५७ | साखी है भूले हो ? जागो, विषय दृष्णा से मुद्रत होकर भगवान का भजन करो। एक दिन तो ऐसा आयेगा ही जब पाँव फैला कर चिसनिद्रा मे पड़ जाना है। आलंकार-पर्यायोक्ति कबीर सूता क्या करे कहे न देख जागि। जावए संग तैं बीछुड़या, अर्थ-सत कबीर के अभक्त प्राणियों को संबोधित में क्यो पढ़े हो '' जागते या ज्ञीन नही हो? तुम्हारा दुख तो द्वारा उसी की सगति करो। पैदा होते है। वियोगजन्य हैं। जिस परमात्मा से ॽ यहाँ सग महत्त्वपूर्ण शब्द है। विषयो के संग मे काम, क्रोध आदि घड्विकार परमात्मा के सम से मुक्ति है। दुख की निवृत्ति होती हैं। यह साखी अद्वैत और अशाशी भाव का संकेत करती हैं। जीव उसी परमात्मा का बद्धरूप या अंश हैं) ऋबीर सूता क्या करे उठि न रोदे दुब्ख । जाका बासा गोर मै, सो झ्पूँ सोबे सुख ॥१ +॥॥ _ निवास । गोर ₹ के । क्यूँ > क्यी। निद्रा पड़े हो ? ससार के कष्टों को देखकर ड्ख हम > 5 आ| अर्थ-सत कबीर कहते है कि ज्ञान रोते क्यों नहीं ? ज्ञानी रोना चाहिए। रोनैवाले को ही प्रभुकृपा भ्राप्त होतीहै। .. ४०६ जिसे कब्र में जाना हैं वह कैंस है सो सकता है ? क्योंकि मृत्यु तो अटल हैं। साख्यवादी मणण प्रकृति और जीवन को उसकी विकृति मानते हैं-मरण प्रकृति" जीवनम् विकृति प्राणिनाम्। प्र अलंकार-अर्थातरन्यास। कबीर सूता क्या कौ, गुण गोकिद के गई ॥ तेरे सिर परि जम खड़ा, खरच कदे का खाई ॥१ ४) _कदे 5 कभी का। खरच खाइ - खर्च खाना। खाना खर्च। खाइ 5 खाद्य गाई गण # आओ। खरच - दैनिक भोजन।) छा आर्द-संत कबीर कहते है कि मत सोओ। उठों और भगवान की (६ गुणानुवाद करो। देखते नहीं, हर प्राणी के सिर पर यम (मृत्यु) खड़ा है। वह सभी को दैनिक भोजन के रूप मे खा रहा या सभी उसके खाद्य बन रहे है। _खलक चबीना का का कुछ मुख मे कछ गोद। कबीर सूता क्या कर, तो होइ अकाज। भ्रद्या का सुनत काल की गाज॥१ ५! अर्द-सत कबीर कहते है कि क्यो सो रहे हो ? सोने से बड़ा नुकसान होता है। सभी द्क्ा ग कालदेवता की गर्जना सुन रहे है। उस गर्जना की से ब्रह्मा का डगमगाने ; पाप लगता है। काल ब्रह्म जैसो को भी आसन या शासन से खिसका देता है। _>सत कबीर के इस कथन मे वह पौराणिक मान्यता है जिसमे ब्रह्मा सोते है और सृष्टि प्रतय में दूं जाती हैं। अलंकार-अर्थातिरन््यास। केसौ कहि कहि कूकिये, नं सोइये अगर राति दिवस के कूक्णों, (मत)कबहूँ लो पुकार ॥१६॥ < बोलिये३ असरशार ₹ः (< अण्इसार) हंठ गो (हि शद्धार्ष-कैसी > केशव) ईशवर। कूंकिये

२१६ कबीर समग्र करना। बार-बार कहना। ढुगातार | अर्थ-सत कबीर कहते है कि हर समय दृढ़तापूर्वक भगवत् स्मरण तथा नाम जप करते रहो। कभी सोओ मत। रातदिन चिल्लाने-बोलने से कभी तो तुम्हारी पुकार उसे प्रभावित करेगी | जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि रसना नहि राम । ते नर इस संसार में, उपजि घये बेकाम ॥१७॥। शब्दार्थ-फुनि 5 पुन, फिर। घटि 5 शरीर। हृदय। रसना 5 जीभ। षये < नष्ट हुए। अर्थ-जिस व्यक्ति के हृदय मे भगवद्प्रेम तथा जीभ पर राम नाम नही है। अर्थात् जो जीभ से राम नाम का उच्चारण नही करता है वह व्यक्ति ससार मे व्यर्थ ही जन्मा और मरा। ऐसे व्यक्ति का जीवन निरर्थक है। कबीर प्रेम न चाविया, चषि न लीया सावे । सूने घर का पहुणों, ज्यूँ आया त्यूं जाब ॥१८॥ शब्दार्थ-साव > स्वाद। चंषि - चाखकर। पाहुणों > [स प्राघूर्ण) अतिथि) अर्थ-जिस व्यक्ति ने भगवद्रेम न चखा। चखकर उसका स्वाद नही लिया। वह व्यक्ति सूने घर के अतिथि के समान है। जिस अतिथि का कोई सत्कार नही होता है। जो उस घर के किसी गुण अवगुण से परिचित नही होता है। उसे निराश होकर व्यर्थ लौटना पड़ता है। अर्थात् मनुष्य जन्म का उद्देश्य भगवतभक्ति करना है| अलंकार-दृष्टात | * पहली युरा कमाइ करि, बॉघी विष? की पोट। कोटि करम फिल पलक मै, (जब)आया हरि की ओट॥१ ९॥ शब्दार्थ-पोट पोटली। गॉठरी। कोटि < करोड़। फिल ** फिराकर। ओट 5 शरण। अर्थ-पहले तो बुरे कर्मों की कमाई करके विष की गाँठरी बाँधी। तब सद्गुरु की कृपा पाकर करोड़ो कर्मो से मन को पल में फिराकर भगवान् की शरण में आया। कोटि क्रम पेलै पलक मैं, जे रंचक आगे नाएें। अनेक जुग जे पुन्नि करै, नहीं राम बिन हाँ ॥२०॥ शब्दार्थ-क्रम 5 कर्म | पेडे - छोड़ता है। रचक थोड़ा। नाउँ < नाम। पुन्नि € पुण्य। अर्थ-थोड़ा भी राम नाम जीभ पर या हृदय मे आ जाए तो करोड़ो कर्मभोग तुरन्त समाप्त हो जाते है। अनेक जन्मो के पुण्य भी व्यर्थ हैं। राम ही सब की शरणागति है। राम के बिना ससार मे किसी का कोई स्थान नही है। राम नाम ही आधार है। राम नाम बिना सभी आधारहीन है। अलंकार-चपलातिशयोक्ति | जिहि हरि तैसा जाणियाँ, तिन कूँ तैसा छाभ। ओसौ प्यास न भाजई, जब/लग घसै न आभ ॥२१॥ शब्दार्थ-जिहि > जो। तिन 5 उसे। तैसा 5 वैसा। ओसौ 5 ओस से भी। भाजई भागती है। आभ 5 (स आप) आव। पानी। धसे > प्रवेश करना। अर्थ-जो ईश्वर को जैसा जानता या जैसे भजता है उसे वैसा लाभ होता है। कम भजने युग-विषय |

साखी २१७ से कम लाभ होता है। अधिक से अधिक फल मिलता है (अधिकस्य अधिक फल)। ओस चाटने से किसी की प्यास नही बुझती है। प्यास बुझाने के लिये तो पानी मे प्रवेश करना होता है। ईश्वर गहरे जल सा अधाह और अगाध है। इसलिये भक्ति मे पूरी तल्लीनता या डूबकर ही भक्ति का असली सुख प्राप्त होता है। दिप्पणी-'जे यथा मा प्रपचन्ते तास्तवैव भजाम्यहम्''-गीता। अलेकार-निदर्शना | राम पियारा छाड़ि करि, करै आन का जाप। बेस्थों केरा पूत ज्यूँ, कहे कौन सूँ बाप ॥२२॥ अर्व-जो व्यक्ति अनत अखंड ब्रह्म राम को छोड़कर दूसरे की उपासना करता है वह वेश्यापुत्र के समान है। जैसे वेश्या पुञ अपने असली पिता के बारे मे नही जानता है वैसे ही राम को न भजने वाला व्यक्ति परम पिता परमात्मा को नही जान सकता है। अलंकार-उपमा। कबीर आपण राम कहि, औरों राम कहाइ। जिहि मुखि राम न ऊचरे,तिहि मुख फेरि कहाह ॥२३॥ शब्दार्थ-ऊचरे - उच्चारण होना। तिहि 5 उस। अर्व-व्यक्ति को स्व्य तो राम कहना ही चाहिए। औरो से भी राम कहवाना चाहिए। जिसके मुख से राम नाम नही उच्चरित होता है उसे भी राम नाम उच्चारण के लिये फेर देना चाहिए। जैसे माया मन रमै, यूँ जे राम रमाह (ती) तारा मंडल छोडि करि, जहाँ के सो तहाँ जाइ॥२४॥ अर्व-मनुष्य का मन जैसे माया मे रमता है उसी तीव्रता से अगर राम की भक्ति मे रमे तो आकाशमंडल भेदकर भगवान् के पास पहुँचा जा सकता है। सके तौ लूटियो, राम नाम है लूटि । पीछे ही पछितहुगे, यह तन जैहै छूदि ॥२५॥ अर्थ-चारों ओर राशि-राशि राम नाम फैला है। इसलिये इसे सामर्थ्य भर लूटना चाहिए। अधिक से अधिक ग्रहण करना चाहिए। यह काम तभी तक हो सकता है जब तक यह मानव देह है। मानव देह की समाप्ति पर राम का भजन नही हो सकता है। तो लूटियौ, राम नाम भंडार। काल कंठ तें गहैगा, रूँपे दसूँ दुबार ॥२६॥ अर्थ-ऐ मनुष्य, राम नाम का भडार पड़ा है। सदगुरु छुटा रहे है। अच्छा अवसर है छूट सको तो ढूट छो। जब काल या यम दसो द्वार बद कर देगे। कठ रुद्ध हो जायगा अर्थात् मृत्यु हो जाएगी तो कुछ नही कर सकोगे। यह सत्य है कि दरवाजे बद हो, वह भी काल के द्वारा तो लूट नही हो सकती है। छूट का माल भी भीतर नही जा सकता है। राम नाम छूटने का अर्थ है स्मरण, कीर्तन, ध्यान, धारणदि द्वारा राम को अपने हृदय मदिर मे स्थापित करना। टिप्पणी-शरीर के दस द्वार-दो कान, दो आँखे, दो नाके, मुख, गुदा, जननेद्रिय, ब्रह्मरंध्र। लंबा मारग दूरि घर, बिकट पंथ बहु मार । कही संतौ क्यूँ पाइये, दुर्लभ हरि दीदार ॥२७॥ शब्दार्थ-मार 5 कामदेव। डाकू। बटमार। विकट 5 कठिन। दुर्गम। दीदार (फा०) « दर्शन | कृपा।

२१८ कबीर समग्र अर्थ-ईश्वरप्राप्ति का मार्ग छवा है। ईश्वर का निवास स्थान भी बहुत दूर है। वहाँ पहुँचने का मार्ग भी कठिन है। रास्ते मे काम, क्रोध लोभ, मोह आदि बहुत से वटमार परेशान करते है। सत कबीर पूछते है-हे सतो, ऐसे मे आँखो के लिये दुर्लभ भगवानू को कैसे प्राप्त किया जा सकता है अथवा भगवान का दर्शन कैसे हो सकता है ? "दुलर्भ हरि दीदारः का अर्थ दूसरे प्रकार से भी हो सकता है-भगवान की क्रृपादृष्टि दुर्लभ है। कठिन है। उसकी प्राप्ति कैसे सभव है ? गुण गायें गुण ना कटै, रटे न राम बियोग। अह निसि हरि ध्यावै नहीं, क्यूँ पावै द्रढर्भ जोग ॥२८॥ अर्व-केवढ भगवान् के गुणो का कथन करने से त्रिगुण-माया नहीं कटती है। इसके लिये भगवत् विरह की पूरी व्याकुढता होनी चाहिए। उस विरह व्याकुलता मे भी जब तक पूरी तरह तनन्‍्मय होकर रामनाम न रठा जाय। दिन रात भगवान् का ध्यान हो तभी दुर्लभ प्रभु को प्राप्ति हो सकती है। अलंकार-यमक | कबीर कठिनाई खरी, सुमिरतों हरि नाम । सूली ऊपरि नद विद्या, गिरे त नाहीं ठाम ॥२९॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि राम नाम के स्मरण मे अनेक प्रकार की सासारिक वाधघाएँ आ खड़ी होती है। भगवत्मक्ति करना नयविद्या के समान कठिन है। थोड़ी भी असावधानी (लोभ, मोहादि) हुई कि साधना बेकार हो जाती है। इसीलिये भक्त को अपनी साधना मे नट के समान सावधान रहना चाहिए। वह चारो ओर से अपनी वृत्तियों को समेट कर केवल भगवत्साधना मे दृष्टि रखे। १ सूढी ऊपर सेज पिया की केहि विधि मिलनो होय। -मीरा २ होइ घुनाक्षर न्याय ते पुनि प्रत्यूह अनेक -तुलसी | कबीर राम ध्याई लै, जिभ्या सौं करि मंत । हरि सागर जिनि बीसरै, छीलर देखि अनंत ॥३०॥ शब्दार्थ-छीलर >-छोटे छिछले ताढाव आदि | अर्व-मनुष्य को चाहिए कि वह मन से राम के रूप का ध्यान करे और जीभ से राम नाम का स्मरण करे। ससार मे बहुत से प्रढ़ोभमन है। अनेक भूत-प्रेत, देवी-देवता छिछले तालाब के समान है। इनकी उपासना नहीं करनी चाहिए। राम समुद्र है। इसीलिये सनातन और संपूर्ण है। भक्त को कभी राम नाम नही भूलना चाहिए। यावानर्थ उंदपाने सर्वत. सप्छुतोदके | तावान्सरवेंषुवेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥-गीता कबीर राम रिश्लाइ लै, मुखि अमृत गुण गाइ। फूठा नग ज्यूँ जोड़ि मन, संभे संग मिलाइ ॥३१॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि राम नाम अमृत्न नुल्य है। इसलिये राम का स्मरण करो। उनके लीला गुणो का गान कर उन्हे प्रसन्न करो। राम नाम और तुम्हरे मन का संबंध टूटे नग के समान है। दोनो एक थे। कितु माया के कारण दोनों टूटकर अलग हो गये है। अब साधना और स्मरण द्वारा सधि को सधि से मिला पुन ऐक्य स्थापित कर लो। संधियों को ऐसे मिलाओ 34

साखी २१९ जिससे जोड़ का निशान भी न रह जाय। अलंकार-उपमा। कबीर चित्त चमंकिया, चहुँ दिस लागी लाइ। हरि सुमिरण हापूँ घड़ा, बेगे लेड़ु बुझ्ाइ ॥३२॥ शब्दार्थ-चमकिया 5 चकमकाना। दुखी होना। छाइ 5 आग। अर्थ--सत कबीर कहते हैं कि ससार मे चारो ओर षड्विकारों (काम,क्रोध, लोभ, मोह, * मातसर्य, मद) की आग जल रही है। इस आग की अनुभूति कर चित्त चकमका रहा है। दुखी हि जल 2 ५०+ननननननी ननननानन तर कि ननजन-" व मिनिशिवीकिल जी विअ आ नमई है। यह आग भगवत्मरणरूपी घट जल से ही जल्दी से जल्दी बुझायी जा सकती है। हे मनुष्य, तुम ऐसा ही करो। अलंकार-सागरूपक | दंडबत गोविंद गुरु, बदूँ अविजन सोय। पहले भये प्रणाम तिन, नमो जो आगे होय ॥३ ३७ शब्दार्व-अधविजन < (स अभिजन) श्रेष्ठ। सोय 5 सो | उस। अर्थ-उस श्रेष्ठ पुरुष गुरु की वदना करता हूँ। दडव्त करता हूँ। ये गुरु महाराज साक्षात् गोविद रूप है। भूत और भविष्य के सभी गुरुओ को बार-बार प्रणाम है। शुरु को कीजे दण्डवत, कोटि कोटि परनाम । कीट न जाने भंग को, यों गुरुकरि आप समान ॥३४॥ अर्थ-कीड़े के न जानते हुए भी उसे भ्रमर बना लिया जाता है। उसी प्रकार गुरु, शिष्य को अपने जैसा बना लेता है। ऐसे गुरु को कोटिश. प्रणाम है। अलंकार -तदूगुण। गुरू गोविंद करि जानिये, रहिये शब्द समाय । पिले तो दण्डवत बंदगी, नहिं पल पल ध्यान लगाय ॥३५॥ अर्थ-गुरु को गोविद के समान जानना चाहिए। हर समय उनके बताए शब्दमंत्र मे ही डूबा रहना चाहिए। मिले तो प्रणाम करे। नही तो हर क्षण ध्यान छगाए रहे। गुरू गोविंद दोनों खड़े, किसके लागों पांच । बलिहारी गुरु आपने गोविंद दिया दताय ॥३६॥ अर्व-भगवान और गुरु दोनो पास-पास छड़े हैं। शिष्य दुविधा मे है कि पहले किसका पालागन करे ? निश्चय ही गुरु वह व्यक्ति है जिसने गोविद को बताया। गुरु ने न कृपा की होती तो गोविद कहाँ मिलते ? इसलिये शिष्य अपने को गुरुचरणो मे ही निछावर करता है। अलंकार-अनुप्रास | कबीर रामांनद को, सतगुरु भये सहाय | जग में जुगति अनूप है, सो सब दई बताय ॥३७॥ शब्दार्थ-सहाय - मददगार । जुगति * युक्ति। दई - दिया। अर्थ-सत कबीर कहते है कि सद्‌गुरु रामानंद जी ने मदद की। उन्होने भगवान्‌ को पाने की सभी अनुपम युक्तियाँ बता दी। अलंकार-अनुप्रास | है सतगुरु के परताप तें मिदि गयो सब दुख द्वंद।

२२० कवीर समग्र कहें कबीर दुविधा मिटी, गुरु मिलिया रामानंद ॥३८॥ अर्थद-सदगुरु की वृग्रा से सभी सासारिक दुख द्न्द्द समाप्त हो गये। आचार्य रामानद जैसे गुरु के मिलने से सारी दुविधा समाप्त हो गयी। सतगुरु के उपदेश का, सुनिया एक विचार । जो सतगुरु मिलता नहीं, जाता जम के द्वार ॥३ ९॥ यम दारे में दूत सब, करते ऐंचातानि । उन ते कभू न छूटता फिरता चारों खानि ॥४०॥ शब्दार्थ-ऐचातानि - खीचतान। खानि - जीवो की चार कोटिया। अर्थ-यम के द्वार मे कोई यमदूत इधर खीचता, कोई उधर खीचता। उनसे छूटना कठिन था। सद्गुरु की वृत्रा न होती तो चार खान (अडज, पिंडज, ऊष्मज, उद्धिज) में जन्म-मरण के चक्र मे घूमता रहता। चारि खानि मे भरमता, कबहुँ न लगता पार। , _ सो फेरा सब मिदि गया, सतगुरु के उपकार ॥४१॥ शब्दार्ध-फेरा + आवागमन। चारिखानि 5 जरायुज, अडज, ऊष्मज, उद्धिज चार योनियों | भली भई जो गुरु मिला, जाते पाया ज्ञान । घटही मांहि चबूतरा, घटही मांहि दिवान ॥४२॥ शब्दार्थ-दिवान ८ दरवार। न्यायकर्त्ता। चवूतरा > जहाँ बैठकर न्याय किया जाता है। अर्थ-सदूगुरु के कारण ज्ञान प्राप्त हुआ। इस ज्ञान से पता छगा कि न्याय पाने के ठिये बाहर नही जाना है। हमारा हृदय ही दीवान के बैठने का स्थान (चबूतरा) है। ईश्वर-रूपी दीवान इसी चबूतरे पर बैठकर शासन करता है। तुलनीय-ईश्वर सर्वभूताना हद्देशेडर्जुन तिष्ठति |-गीता १८६२ गुरु को मानुष जो गिनै, चरणामृत को पान । ते नर नरके जाहिगें, जन्म जन्म होय स्वान ॥४३॥ अर्व-गुरु को मनुष्य समझकर जो व्यक्ति उनके चरणामृत का पान करता है वह निश्चय बार-बार नरक जायगा और कुत्ते की योनि ग्रहण करेगा। गुरु मानुष करिजानते, ते नर कहिये अंब । होय दुखी संसार मे, आगे यम का फंद ॥४४॥| शब्दार्थ-अध - अज्ञानी। आगे 5 मरने पर | फद 5८ फदा। फॉसी। अर्थ-उस व्यक्ति को अज्ञानी कहना चाहिए जो सद्गुरु को मनुष्य समझता है। ऐसा व्यक्ति इस ससार मे तो दुखी रहता ही है, मरने पर यम द्वारा फॉसी का शिकार होता है। कबीर ते नर अंप है, गुरु के कहते और। हरि के रुठे ठौर है, गुरु रुठे नहि ठौर॥४५॥ कबीरा हरि के रूठते, गुरु के शरने जाय । कहै कबीर गुरू रूठते, हरि नहिं होत सहाय ॥ ४६॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि भगवान नाराजु,हो जायेँ तो गुरु की शरण मे जाकर बचा जा सकता है। कितु गुरु के नाराज होने पर भगवान् भी सहायता नही कर सकते है। गुरु हैं बड़े गोविंद ते, मन में देखु विचारि । हरि सिरजे ते बारहैं, गुरु सिरजे ते पार ॥४७॥

साखी २२१ शब्दार्ब-वारहै - वर्जित है। अर्थ-गुरु भगवान् से बड़े है इस बात को मन मे विचार कर देखो। भगवान् ने जिसको पैदा किया है वह मोक्ष से वर्जित रह जाता है यानी वह भगवान् को नही पा सकता है। कितु गुरु द्वारा सृजित-शिक्षित ससार सागर के पार हो जाता है। गुरु सों ज्ञान जो लीजिए, सीस दीजिए दान। बहुतक भोंदू बहि गये, राखि जीव अभिमान ॥४८॥ शब्दार्थ-भोदू - अज्ञानी | अर्थ-गुरु से जो ज्ञान लीजिए उसके बदले अपना सिर दान कीजिए। सिर दान का अर्थ है अहकार छोड़ना। बहुत से अज्ञानी जीवात्मा के अभिमान रखने के कारण ससार सागर मे बह गये। विलीन हो गये। अलंकार-परिवृति । गुरु की आज्ञा आवई, गुरु की आज्ञा जाय। कहै कबीर सो संत है, आवागमन नसाय ॥४९॥ अर्थ-ससार मे आवागमन निश्चित है। किंतु जो व्यक्ति गुरु के उपदेशानुसार आवागमन करता है, वह सत है और उसका आवागमन मिट जाता है। उसे मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। तुलनीय-पुनरपि जननं पुनरपि मरण पुनरपि जननी जठरे शयनम्। -शकराचार्य (चर्पटपजरिका) लक्ष कोस जो गुरु बसे, दीजै सुरति पठाय। शब्द तुरी असवार है, क्षण आवै क्षण जाय ॥५०॥ शब्दार्व-लक्ष 5 लाख | सुरति > ध्यान। स्मृति। तुरी ८ तुरग। घोड़ा | अर्थ-गुरु तो छाख कोस अर्थात् दूर है। फिर भी गुरु का स्मरण करो। उनकी कृपा से साधक शब्द रूपी घोड़े पर सवार होकर क्षण मे कही भी आ-जा सकता है। मतलब यह कि शब्दरूप अश्व को साथ लेने से सारी सृष्टि सुलभ हो जाती है। अलंकार -रूपक। + गुरु पारस गुरु परस है, गुरु चंदन सुख बास । सतगुरु पारस जीव का, (जिन) दीया मुक्ति निवास ॥५१॥ शब्दार्व-पारस 5 एक प्रकार का पत्थर। इसे मणि भी कहते है। परस > स्पर्श। बास « गघ। निवास। - अर्व-गुरु का स्पर्श पारसमणि के समान है, जो लौह जैसे तमोगुण युक्त शिष्य को सोना बना देता है। गुरु के पास बैठना चदन के वृक्ष के पास बैठने का सुख है या गुरु चंदन वृक्ष के समान है स्वय तो सुगधित रहता ही है ससार मे भी सुखगध प्रसारित करता है। अलकार-रूपकातिशयोक्ति | गुरू पारस को अंतरो, जानत है सब संत । बह लोहा कंचन करे, ये करि लेइ महंत ॥५२॥ अर्व-सदूगुरु और पारसमणि का अतर सभी सत जानते है। पारस लोहे को सोना बना देता और सदूगुरु शिष्य को महत बना देते है। | अलकार-व्यतिरेक। गुरु समान दाता नहीं, जाचक शिष्य समान । तीन लोक की संपदा, सो गुरु दीन्हीं दान ॥५३॥ दि

२२२ कबीर समग्र अर्थ-गुरु के समान दाता नही है। शिष्य के समान मॉगनेवाला नहीं है। गुरु ने तीनो लोको की सम्पदा शिष्य को दे दी । तुलनीय- जो सपत्ति दस सीस अरपि करि रावन शिवसन लीली | सोइ सम्पदा विभीषण कहाँ अति सकुधि सहित हरि दीन्ही | पहले दाता शिष्प भया, तन मन अरपा सीस | पीछे दाता गुरु भए, नाम किया बखशीस ॥५४॥ शब्दार्थ-बखशीस - पुरस्कार। अरपा 5 अर्पण किया। दिया। मन दीया जिन सब दिया, मन के संग शरीर । अब देबे को कया रहा, यों कवि कहै कबीर ॥५५॥ शब्दार्व-कथि - कथा। तन मन दिया तो क्या हुआ, निज मन दिया न जाय । कहै कबीर ता दास सों कैसे मन पतियाय ॥५६॥ शब्दार्थ-पतियाय - विश्वास करना | अर्व-तन मन देने से क्या हुआ ? यदि निजत्व वाला मन, जिस मन मे अहकार या कर्तुत्व का बोध रहता है नही दिया तो सब देना व्यर्थ है। निजमन (अहकार) की समाप्ति न करने वाले व्यक्ति की भक्ति बेभरोसे की होती है। उस पर कोई विश्वास नही कर सकता है। तन मन दीया आपना, निजमन ताके संग । कहें कबीर सदके किया, सुनि सतगुरु परसंग ॥५७॥ अर्व-अपना तन मन दे दिया कितु निजत्व (अहकार) वाला मन अभी अपने पास रखा है। मतलब कि भक्ति मे भी अह बना है। सत कबीर कहते है कि जब सदगुरु का ज्ञान प्रसंग सुना तो अपने को पूर्णत न्यौछावर कर दिया। निजमन माना नाम सो, नजरि न आवबे दास | कहै कबीर सो क्यो करै, राम मिलन की आस ॥५८॥ अर्थ-अपना मन राम नाम मे ूग गया। फलत दास अब भगवान से अलग नही दीखता है। जो मन देकर राम नाम मे मिल गया है। तदाकार हो गया है वह अब राम से मिलने की आशा क्यो करे ? निज मन तो नीचा किया, चरन कमल की ठौर | कहें कबीर गुरुदेव बिन, नजर न आबै और ॥५९॥ अर्थ-भक्त ने भगवान के चरणकमल मे मन को लगा दिया है। और अपने को ही श्रेष्ठ समझने की प्रवृत्ति से उतर कर सबसे नीर्चे प्रभुचरण मे स्थान (ठौर) पा गया है। अब गुरुदेव को छोड़कर कुछ दूसरा नही दीखता है। तन मन दिया तो भल किया, सिर का जासी भार। जो कभू कहे में दिया, बहुत सहे शिर भार ॥६०॥ शब्दार्व-जासी + जायगी। भार बोझ, अज्ञान। कभू 5 कभी | अर्व-तन मन देकर अच्छा किया। सिर का बोझ दूर हो गया। कितु अगर कभी यह कहे, मै मैने दिया" तो उसे सिर पर यम की मार सहनी होगी। "मैंने दिया" कहने से घमड का बोध होता है। ऐसे घमंडी तो अवश्य यम दंड के शिकार होते है। तन मन ताको दीजिये, जाकै विषया नारहि । आपा सबही डारिके, राख साहिब माहि ॥६१॥

साखी २२३ अर्थ-तन मन उस गुरु को समर्पित कीजिए जिसकी विषयासक्ति समाप्त हो गयी। आपा अर्थात् अहकार को हटाकर अपने भीतर साहब (भगवान) को रखिए। शिष्य खाँड़ा गुरू मसकला, चढ़े शब्द खरसान | शब्द सहे सन्मुख रहै, निपजे शिष्य सुजान ॥६२॥ शब्दार्थ--खॉड़ा + खड़। तछ्वार। मसकला 5 सिकलीगरो का एक औजार जिसके रगड़ने से धातुओ मे चमक आती है। निपजे ८ (स निष्मध्चते) उपजना। खरसान - अस्त्र-शस्त्र तेज करने का यत्र। सान धराना। अर्थ-शिष्य रूपी तलवार को गुरुरूपी औजार चमकाने वाले ने शब्द सान पर चढ़ा दिया है। गुरुशब्द के सान पर चढ़नेवाला शिष्य सुजान होता है। अलंकार-रूपक। सब जग भरमा यों फिरै, ज्यों रामों का रोज। सतगुरु सों सुधि भई, पाया हरि का खोज ॥६३॥ शब्दार्य-रामों 5 (सं आराम - बगीचा) अरण्य। जगढु। रोज 5 रोझ। नील गाय । अर्थ-सारा ससार वन की नील गाय के समान विषयों मे भटकता फिरता है। सदूगुरु ने शब्द सुधि दिलाई तो हरि की खोज पूरी हुई। ईश्वर का ज्ञान हुआ। अलंकार- उदाहरण । कबीर हीरा बनीजिया, हिरदे प्रगटी खान। पारबह कृपा करी, सतयुरू मिले सुजान ॥६४॥ अर्थ-भक्त सद्गुणरूपी हीरे की खोज कर रहा था। भगवत् कृपा से अच्छे गुरु मिल गये। उन्होने हृदय मे ही सदगुणरूपी हीरे की खान प्रगट कर दी। दिष्पणी- हदय मे सदगुण तो थे ही। कितु वे माया से दीख नही रहे थे। सद्गुरु के शब्द ज्ञान से वे दीखने छगे। उन्‍्मीलन हो गया। सतगुरू साँचा सूरमा, नखशिख मारा पूर । बाहर घाव न दीसई, भीतर चकनाचूर ॥६५॥ अर्थ-सद्गुरु सच्छे वीर है। उन्होने ऐसा शब्दबाण मारा कि बाहर से कुछ नही दीखता है। कितु अत करण की सारी कुप्रवृत्तियों, सारे विकार नष्ट हो गये हैं। सतगुरू मेरा सूरमा, बेघा सकल शरीर । बान दुबासों फूटिया, (क्‍यों) जीबे दास कबीर ॥६६॥ शब्दार्व-दुवा - दावा। दावाग्नि। वनाग्नि । अर्थ-मेरे सदगुरु बहादुर है। उन्होंने ऐसा शब्दबाण चलाया कि सारा शरीर विद्ध हो गया। शरीर में विषयो का जंगल जल रहा है क्योंकि बाण दावाग्नि के रूप मे फूटा है। अब दास का जीना कठिन है। अर्थात् दास अब विषयो मे नही रहेगा। टिप्पणी-आचार्य शंकर ने शोकमोह को ससार बीज (ससार बीज भूती शोक मोहौ) कहा है। गुरुज्ञान से ये ससार बीज समाप्त हो जाते है। जब ससार नही तो मृत्यु कैसी? मृत्यु तो केवल ससार मे है। इसीलिये ससार का नाम मर्त्यलोक है। सतगुरू मारा तानिके, शब्द सुरंगे बान । मेरा मारा फिर जिये, तो हाथ न गई कमान ॥६७॥ अर्थ- सद्गुरु ने सुदर शब्दों के तीखे बाण खीच कर मारे। कबीरदास जी कहते हैं कि)

 उनका मारा अगर विषयो में फिर जी जाय या रुचि रखने लगे तो वे फिर कभी हाथ में कमान नही लेंगे। उनका निशान अचूक होता है। सतयुरु मारा बान भरि, टूटि गई सब जेब | आप कहूँ आसा कहूं, तसदी कहूँ कि तेब ॥॥६८॥ शब्दार्व-जेब < बधन। रस्सी। तसबी < माला। तेव 5 उसे। आप - अहंता | अर्थ-सद्गुरु के बाण से अहता, आशा, माला, किताबों आदि के सारे बधन टूट गये। सतगुरु मारा बान भरि, निरखि निरखि निज सैर | राम अकेला रहि गया, चित्त न आबै और ॥६९॥ अर्थ-जहॉ-जहाँ विषयो के ठिकाने थे वहाँ वहाँ सदगुरु ने वाण मारा। फलस्वरूप सभी विषयो का नाश हो गया। अब चित्त मे राम के अतिरिक्त कुछ भी नही दीखता है। तुलनीय-इद्रिय द्वार झरोखा नाना। तेंह तेंह सुर बैठे करि थाना |--तुलसी कर कमान सर सौधिकै, खैंचि जो मारा मांह। भीतर बंधे सो मरिंहे, जीवै पै जीवै नाहें ॥७०॥ अर्थ-हाथ मे धनुष-बाण साधकर गुरुदेव ने भीतर मारा। शब्दबाण के भीतर बिधने से साधक जीवित रहकर भी जी:ःए नही है। शरीर तो ससार मे है कितु मन ससार से भर गया है। विषय विरक्त हो गया है। जब ही मार्‍या खैंचिकै, तब मैं मूआ जानि। लागी चोट जो शब्द की, गई कलेजे छानि॥७१॥: अर्थ-सदगुरु ने जब शब्दवाण खीचकर मारा तो मैने अपने को मरा जाना। शब्द की चोट ऐसी लगी कि विषयो से भरा अत करण छलनी हो गया। सारे विषय भाग गये। नष्ट हो गये। सतगुरु मारी प्रेम की, रही कटारी दूटि । बैसी अनी न सालई, तैसी साठै मूठि ॥७२॥ अर्थ-सद्गुरु ने प्रेम की तलवार ऐसी चलायी कि वह छूगकर टूट गयी। बाण की नोक वैसा दर्द नही पैदा करती थी जैसा दर्द तलवार की मूठ से हो रहा है। दिल ही में दीदार है, बादि झखै संसार । सतगुरू शब्द का मसकला, मुझे दिखावनहार ॥७३॥ शब्दार्थ-दीदार दर्शन! झखै - दुखित होना। मसकला 5 एक औजार जो धातुओ को रगड़कर चमकाता है। अर्व-भगवत्दर्शन तो हृदय के भीतर ही होता है। सदगुरु राम नामरूपी शब्द को चमकाकर शिष्य को दिखाता है। इसी कारण अपने भीतर ही भगवत्दर्शन होता है। जो दीसे सो विनसि है, नाम घरा सो जाय । कबीर सो ही तत्त्व गह्यो, सतगुरु दीन्ह बताय ॥७४॥। अर्व-जो नाम रूपात्मक दृश्य ससार है वह नाशवान् है। उसका अवश्य नाश होगा। सदगुरु ने भगवतूतत्त्व नामक ऐसे तत्त्व का दर्शन करा दिया है, जो अविनाशी है। अस्ति भाति प्रिय रूप नाम चेत्यर्थ पचकम् | आध्यत्रय ब्रह्म रूप जगत् रूप ततो द्वय।

का प] बसा साखी २२५ इनमे अस्ति (है), भाति (्रकाश), प्रिय (सुन्दर) ये तीन ब्रह्म के सनातन रूप है। रूप-नाम जगतू है। ये ही नाशवान है। कुदरत पाई खरीसों, चित्र सो वित्त मिलाय। | भंवर विलम्बा कमल रस, अब कैसे उड़ि जाय [७छ५॥ 7 ् अर्थ- ईश्वरी शक्ति प्राप्त हो गयी। अब चित्तवृत्तियो का निरोध हो गया है। चित्त-चित्त ही मिला हुआ है। अब चित्त विषयो की ओर नहीं है। फठत मनरूपी भौरा ब्रह्म कमर (परमात्मा के चरणारविद) मे लगा है। अब वह विषयो मे नही जायगा। राम नाम छाँडू नही, सतगुरु सीझ दई। - अबिनासी सों परसि के, आत्मा अबर भई ॥७६॥ शब्दार्ब--अवर > अपर। दूसरी। है अर्थ-गुरुदेव ने राम नाम की शिक्षा दी। अब इसे कभी नही छोड़ँगा। अविनाशी परमात्मा का स्पर्श कर आत्मा और कुछ (ब्रह्म जैसी) हो गयी है। चित चोखा मन निर्मला, बुधि उत्तम मति धीर । सो धोखा नहीं विरहिहीं सतगुरु मिले कबीर ॥७७॥ शब्दार्ब-विरहिही 5 अलग होना। अर्थ-सद्गुरु के मिलने से चित्त चोखा, मन स्वच्छ, मति- बुद्धि उत्तम धैर्य वाली हो गयी। अब इनसे धोखे से भी अलग नही होगे। सतगुरू बड़े जहाज हैं, जो कोई बैठे जाय। पार उत्तरै औरको, अपनो पारस लाय ॥७८॥ अंर्व-सद्गुरु बड़े जहाज के समान है। जो कोई उनकी शरण मे जाता है उसे वे अपना स्पर्श (सहायता) देकर ससार सागर से पार कर देते है। बिन सतगुरु बधिहे नही, फिर बूड़े भव मांहि। भवसागर की त्रास से, सतगुरु पकड़े बॉँहि ॥७९॥ अर्व-सदूगुरु ने बॉह पकड़कर भवसागंर मे डूबने से बचा लिया। उन्ही की कृपा से बचा रहा जा सकता है वरना पुन डूब जाने का भय है। सतगुरु बड़े सराफ हैं, परखें खरा अरु खोद। भवसागर ते काढ़ि के, राख अपनी ओट ॥८०॥ पु सर्रफ। सोने, चांदी एवं रलो का व्यापारी। खरा ८ उत्तम। खोट + बुराई | हे अर्व-सदगुरु सर्राफ है। रलो के व्यापारी है। उन्हे अच्छे-बुरे, शुद्ध-अशुद्ध की पहचान है। भक्तरुपी रल भवसागर मे डूब रहा था। सदगुरु ने कृपा कर उसे पहचाना और निकाल का | अब उसे अपनी आड़ मे रखते है। इससे भक्त को विषय वटमारों का कोई भय नही कबीर महल बलाहइया, ज्ञान गिलावा दीन्ह । हरि देखन के कारने, शब्द झरोखा कीन्ह ॥८१॥ अर्थ-ज्ञान का गिलावा (गारा) देकर भक्ति का महल बनाया है। इसमे भगवद्दर्शन के लिये । शब्दों की (राम नाम) खिड़की खोल दी है। राम नाम द्वारा ही परमात्मा का दर्शन होता है। अलंकार-रूपक |

२२६ कवीर समग्र जन कबीर बन्दन करी, किस विध कीजै सेव | बार पार की गम नहीं,नमो नमो गुरु देब ॥८२॥ अर्थ-सत कबीर कहते हैं कि भक्त गुरुदेव की वंदना करता है। उनकी सेवा कैसे की जाय इसका ज्ञान नही है। उनकी कृपा से आर-पार या जन्म-मृत्यु की चिता छूट गयी है। ऐसे गुरुदेव को बार-बार प्रणाम है। के जानीता जब बूझा नहीं, बूत्षि न कीया गौन । अन्धे को अन्धा मिला पन्ि्य बतावै कौन ॥८३॥ अर्थ-जानता था तब समझ मे नही आया। समझा तो उसके अनुसार गमन नही किया। अब तो रास्ता बतानेवाला गुरु भी अज्ञानी (अधा) मिला। शिष्य तो अज्ञानी है ही। ऐसे मे परमात्मा की प्राप्ति का रास्ता कौन बताए ? जानीता जब बूक्षिया, पैंडा दिया बताय | _ चलता चलता जहाँ गया, तहां निरंजन राय ॥८४॥ शब्दार्य-पैडा 5 रास्ता। निरजन 5 परमात्मा | अर्य-गुरु ने रास्ता बताया तब समझ मे आया। उनके बताए रास्ते पर चलते-चढते परमात्मा के यहाँ पहुँच गया। माह मूई उस गुरु की, जाते भरम न जाय । आपुन बूड़े घार मे, चेला दिया बहाय ॥८५॥ " अर्थ-उस गुरु की माँ को मूँद दूँ या मुडित कर दूँ, जिसके द्वारा भ्रम नही दूर होता है। यहाँ माइ माया है। अर्थ यह कि जो गुरु अभी माया मे पड़ा है। माया में पड़ा गुरु स्वय तो वासना नदी की धारा मे डूबता ही है। चेले को भी डुवो देता है। गुरू गुरू मे भेद है, गुरू गुरू मे भाव । सो गुरू नित बंदिये, शब्द बतावै दाव ॥८६॥ अर्थ-गुरु गुरु मे अतर है। एक ज्ञानी और सदगुरु है। दूसरा गुरु मायावी है। दभ वाला गुरु है। इसलिये दोनो के भावो मे भी अतर है। उसी गुरु की नित्य वदना करनी चाहिए जो शब्द-दाव अर्थात् शब्दसाधना बताता है। पूरे सतगुरु के बिना, पूरा शिष्य न होय। गुरू लोभी शिष्य लालची, दूनी राप्नन सोय ॥८७॥ शब्दार्थ-दूनी - दोनो | अर्थ-पूर्ण सदगुरु के बिना शिष्य पूर्णता नही प्राप्त करता है। लोभी लाहची गुरु शिष्य दोनो जलाने योग्य है। पूरा सहजे गुण करे, गुण ना आवै छेह । सायर पोषे सर भरे, दान न मांगे मेह | (८८ |! शब्दार्व-पूरा > पूर्ण । छेह 5 छोटा। टुकड़ा। पोषै + पोषण करता। मेह 5 मेघ। बादल । सायर 5 सागर। सर > तालाब | अर्थ-पूर्ण गुरु या साधना सहज गुणकारी है। छोटे गुरु या साधना से गुण नहीं होता। पूर्ण साधना समुद्र का पोषण करती है। तालाब को भरती है। वह कभी सासारिक बादलो से दान नही मॉगती है। है ॥ पूरा सतगुरु ना मिला, सुनी अघूरी सीख। निकसा था हरि मिलन को, चालि त्त सक्या बीख | ।८ ९।।

' साखी २२७ शब्दार्व-सीख - शिक्षा। निकंसा 5 निकलना। बीख >'विष। विषय। अर्व-पूर्ण गुरु के 'अभाव मे शिष्य की शिक्षा अधूरी रही। कहाँ तो परमात्मा से मिलने निकला धा। कहाँ विषय-विष को भी दूर नही कर सका। सतगुरु मिलि निरभय भया,रही न दूजी आस | जाय समाना शब्य मे, राम नाम विश्वास | ।९०।। अर्थ-सदूगुरु से मिलकर विषयवासना के बटमारो से निर्भग हो गया। अब परमात्मा को छोड़ किसी दूसरे की आशा नही है। राम नाम के विश्वास को आधार बनाकर शब्बब्रह्म मे एकाकार हो गया। शुरू किया है देह का, सतगुरु चीन्हों नाहिं । भव सागर के जाल मे, फिरि फिरि गोता खाहिं ।॥९१।। अर्थ-गुरु भी एक निर्गुण तत्त्व है। शरीर ही गुरु नही है। जो शरीर को गुरु समझते है। वे सदगुरु को नही समझते। ऐसे लोग विषयो के भवसागर मे बार-बार गोता खाते है, डूबते है। देह नाशवान् है। इसका भरोसा नही करना चाहिए। जा गुरु तें भ्रम ना मिंटे, आति न जीव की जाय । शुरु तो ऐसा चाहिए, देई ब्रह्म बनाय ।। ९ २।। अर्थ-वह गुरु व्यर्थ है जिससे भ्रम न मिटे। गुरु तो ऐसा चाहिए जो माया का भ्रम मिटाकर साधक को सिद्ध (ब्रह्म) बना दे । कनफुक्का गुरु हदूद का, बेहद का गुरु और | बेहद का गुरू जब मिले, लहै ठिकाना ठौर ।।९३।। शब्दार्थ-कनफुक्का कानमे मत्र देनेवांठा। हद्द 5 सीमा। ससार। बेहद 5 असीम | परलोक। लहै - प्राप्त करे। अर्थ-कान मे मत्रदाता गुरु सासारिक होते है। निर्गुण-निराकार असीम ब्रह्म की प्राप्ति कराने वाले गुरु दूसरे होते है। जब असीम की प्राप्ति कराने वाले गुरु मिलते है तब साधक लक्ष्य की प्राप्ति करता है| गुरू को तो गम्य नही, पाहन दिया बताय | ५ सिख सोधे बिन सेड्या, पारि न पहुँचा जाय !। ९४।। अर्व-गुरु को तो कुछ पता नही, शिष्य को पत्थर पूजने के लिये बता दिया। शिष्य भी, अज्ञानी था। उसने गुरु की बातो का कोई शोध नही किया और पत्थर पूजने छगा। फलत ससारसागर में ही भटकता रह गया। पार न जा सका। सतगुरु ने तो गम कही, भेद दिया अरधाय । सुरति केवल के अन्तरै, निराघार पद पाय ।।९५।। अर्थद-सदगुरु ने तो समझदारी (गम) की बात कही। अतर्जगत के सारे रहस्यो को अर्थ सहित बता दिया। भेद भी बताये। फलत बिना किसी प्रतीक या मूर्त साधनो के शिष्य सुरति कमल मे ध्यान लगाए है। सुरति कमल से मतलब है 'त्रिकुटी' जहॉ योगी ध्यान केद्रित करता है। शुरू नाम है गम्य का, शिष्य सीख ले सोय। बिनु पदई मरजाद बिन गुरू शिष्य नहिं कोय ।९६।। शब्दार्थ-गम - पहुँच। ज्ञान

चर खरा 3॥। 4 अर्थ-ज्ञान को पहुँचे व्यक्तित्व को गुरु कहते है। शिष्य को ऐसे गुरु से ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। बिना मर्यादापद या पदमर्यादा की सेवा किये शिष्य गुरु नहीं होता है। जाका गृरु है गिरही, गिरही चेला होय। कीच कीच को घोवते, दाग न छूटे कोय | ९७।। अर्य-जो गुरु शिष्य गृहस्थ चित्तवाले है। उनमे सनन््यास का भाव नही होता है। वे कीचड़ से कीचड़ धीने जैसा प्रयास करते हैं। इससे दाग नही छूटेगा। कीचड़ से कीचड़ धोने का अर्थ है बुराई से बुराई हटाना। दाग का अर्थ विषयवासना भोग से उत्नन्न विकर्म | कुमति कीच चेला भरा, गुरुनज्नान जल होय। जनम जनम का मूरचा, पल में झरे घोष ।। ९८।। अर्थ-चेला 'दुर्दुद्धि के कीचड़ से भरा है। गुरु मे ज्ञानरपी जल है। ऐसा गुरु शिष्य के जन्म जन्मातर के मुरचे को छण भर में धो डाछता है। जन्ममरण के चक्र को मिटा देता है। कर्म के भोग काल को समाप्त कर देता है । अलंकार-रूपक | गुरुआ तो ससता भया, पैसा केर पचास। राम नाम घन बेचिके, करे शिष्य की आस ।।९९।। अर्व-गुरु इतना सस्ता हो गया है कि एक पैसे मे पचास के वरावर है। वह शिष्य को क कुछ गे तो क्या उल्टे शिष्य से आशा करता है। राम नाम का मत्र साधना नहीं पैसे पर बेचता है। दिप्पणी-मुहा० पैसा केर पचास - सस्ता | गुरुषा तो घर घर फिरै,दीक्षा हयारी लेहु। के बूरो के ऊछलौ,टका पर्दनी देहु |१ ० ०।। शब्दार्व--टका < पैसा। पर्दनी 5 (< स. कपर्दिका) कौड़ी | अर्व-सस्ते गुरु दीक्षा देने के लिये घर घर घूम रहे हैं। तुम डूबो चाहे निकलो, उन्हे पैसा कीड़ी कुछ भी दो। यह कथन लोभी गुरु के प्रति है। घर में घर दिखलाय दे, सो गुरु चतुर सुजान। पाँच शब्द घुनकार घुन, बाजै शब्द निसान ।।१०१।। शब्दार्ब-घर मे घर 5 लौकिक घर मे पारलौौकिक निवास । शरीर मे चैतन्यात्मा | पॉच शब्द 5 १. प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान। २ परा, पश्यती, द्योतमना, मध्यमा, बैखरी। धुनकार > ध्वनि करनेवाला। धुन 5 रागात्मक ध्वनि। निसान 5 एक बाजा। नगाड़ा। अर्व-वह गुरु अत्यत चतुर है जो ससारमे रहते हुए परमात्मा की निवास भूमि (पारलीकिकता) से परिचित करा देता है। जो बिना किसी नगाड़े पर पड़ी चोट के. भी अतःकरण मे परा, पश्यन्ती, द्योतमना, मध्यमा और बैखरी की अनाहत ध्वनि सुनाता है। पच प्राणो मे अनाहत स्वर पैदा करता है। छीपा रंगे सुरंग रंग, गीरस रस कर लेय। ऐसा गृरु पै जो मिठै, शिष्य मोश् एुनि देय ।8१ ० २।। शब्दार्ब--छीपा - कपड़े पर बूटा बनानेवाला। छीट छापनेवाला। अर्थ-गुरुरूपी छीपा सुरग रग से रगता है। नीरस को भी सरस बना देता है। गुरु रूपी

साखी. २२९ छीपा ही शिष्य को मोक्ष दे सकता है। झूठे गुरू के पक्ष को, तजत न कीजे बार। पार न पावै शब्द का भरमें बारंबार | । १० ३।। अर्व-असत्य का आचरण करनेवाले नकली गुरु को छोड़ते समय देर मत कीजिए। ऐसे गुरु के मत्रज्ञान से ससारसागर पार नहीं किया जा सकता है। बार-बार आवागमन बना ही रहता है। न सांचे गुरु के पक्ष में, मन को दे ठहराय। चंचलते निश्चल भया, नहिं आबै नहिं जाय |! १० ४ अर्थ-सच्चे गुरु के पक्ष मे मन को स्थिर कर देना चाहिए। चचलता समाप्त होने पर समाधि दशा की प्राप्ति होती है। फिर तो आवागमन समाप्त हो जाता है। वी शुरू सिकिलीगर कीजिए, ज्ञान मसकला देह। हि मन का मैल छुड़ाई के, चित दर्पण करि लेइ ।१ ० ५।। अर्थ-गुरु धातुओ को चमकाने वाले के 'समान ज्ञानरूपी औजार से शिष्यरूपी छोहे की मैल ये। मन की कुवासना को छुड़ाकर चित्त को दर्पण जैसा स्वच्छ कर देता है। भाव यह कि इस स्वच्छ दर्पण मे साधक अपना स्वरूप देखता है। देखकर स्व मे स्थित होता है। अलंकार- रूपक | ; मैं उपकारी ठेठ का, सतगुरु दिया सुहाग। दिल दरपन दिखलाय के, दूर किया सब दाग ।। १०६।। शब्दार्च-ठेठ ८ निर्मल। सादा। सुहाग 5 सौभाग्य । अर्व-शिष्य निर्मलता की खोज मे था। गुंरु ने सौभाग्य दिया। दिलरूपी दर्पण दिखलाकर सारे दाग (वासना) को दूर कर दिया। अलंकार-रूपक | सतगुरु का सारा नहीं, शब्द न लागा अंग। कोरा रहिगा सीदरा, सदा तेल के संग ।।९ ०७।॥। दा शब्दार्ध-सारा 5 सहारा। अग 5 हृदय। मन। कोरा 5 सादा। अप्रभावित। सीदरा « दुरी। ह़ अर्व-सदूगुरु का कोई सहारा न रहने से मत्र हृदय मे नही असर डालता है। हृदय खाली है। खाली होने से दुखी है। जैसे तेल के साथ कोई वस्तु नही चिपकती है उसी प्रकार हृदय मे ज्ञान असर नही कर रहा है। इस हृदय को वासना के तेल ने चिकना कर दिया है। अलंकार-उदाहरण। ॥ * गुरू बताबै साधु को, साधु कहै गुरु पूजि। अरस परस के खेल में, भई अगर की सूझि।।१०८।। शब्दार्ब-अरस-परस - मिलना-जुलना। अगम > परमात्मा। अर्द-गुरु साधु पुरुषो की सगति करने को कहते हैं। साधु पुरुष गुरु की पूजा करने को कहते है। इस मिलने-जुलने मे परमात्मा का दर्शन हो गया। जी ५
.._सरनननरन१+- क५३ ५०१०३...

बिरह को अंग

रात्यूं रूँनी बिरहनीं, ज्यूं बंची कूँ कुंज। कबीर अंतर प्रजल्या, प्रगट्या बिरहा पुंज ॥१॥ शब्दार्थ-विरहनी 5 साधक। बचौ 5" (सुवचिता) प्रिय वियुक्त। कुज > क्रौच। अतर हृदय। अत करण । प्रजल्या > विरहाग्निदग्ध | पुज 5 ढेर । अर्थ-साधक के हृदय मे प्रभु वियोग की आग जल रही है। इससे वह रात-रात भर वैसे रोता है जैसे क्रीच पक्षी प्रिय वियोग मे रोता है। रात के एकात में साधना तीव्र हो जाती है। तुलनीय-येहि जड़ माजिनि जागहिं जोगी। परमारथी परपच वियोगी। -तुलसीदास अलंकार--उपमा | अँबर कुंजों कुरलियाँ, गरजि भरे सब ताल। . जिनि थें गोबिंद बीछुटे, तिनके कौण हवाल ॥२॥ शब्दार्--अवर 5 आकाश। मनाकाश। कुजों 5 क्रौच। कुरलियाँ 5 चिल्छाना। ताल तालाब। अत करण | हवाढ 5 हाल। दशा। अर्थ-आकाश मे क्रौच पक्षी ने रो-रोकर, चिल्ला-चिल्ला कर पूरे ताल को भर दिया है। यह पक्षी तालाब के ऊपरवाले आकाश मे ही चिल्लाता है। जब अपने प्रिय से बिछुड़े पक्षी का यह हाल है तो जो व्यक्ति अखडानद परमात्मा से अल्ग हो. गया है उसका क्या हाल होगा ? चकवी बिछुटी रैणि की, आइ मिली परभाति। जे जन बिछुटे राम सूँ, ते दिन मिले न राति ॥३॥ अर्थ-चकवी रात मे अलग होती है और सबेरे प्रिय से मिलती है। किंतु वासना लिप्त मनुष्य परमात्मा से सदा के लिये अलग हो जाता है। वह न रात को मिल सकता है # न दिन मे मिलता है। बासुरि सुख नो रेणि सुख, ना सुख सुपिन माँहि। कबीर बिछुट्या राम सूँ, नो सुख धूप न छोह ॥४॥ शब्दार्थ--वासरि ८ दिन | रैणि 5 रात। मॉहि - मे। । अर्थ-प्रभु वियुक्त व्यक्ति को न रात में सुख होता है। न दिन मे, न सपने मे, न धूप मे न छाया मे सुख होता है। अर्थात् वह हर समय दुखी रहता है। सर्व दु खम् का यही कारण है। दिरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूसे घाइ। एक सबद कहि पीव का, कब रे मिलेंगे आइ॥५॥ शब्दार्व-ऊभी 5 (स ऊर्ध्व)खड़ी। सिरि 5 सिरे पर। छोर पर। धाइ 5 दौड़कर। पक्षी ल साधक । गुरु। अर्थ-प्रभु विरह से व्याकुल जीव उस रास्ते पर चलनेवाले साधको से खड़ा होकर पूछता है-हे पथिक, प्रियतम परमात्मा का एक शब्द कहो। वे आकर मुझसे कब मिलेगे बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम। जिव तरसे तुझ मिलन कूँ, मनि नाहीं विश्राम ॥६॥ शब्दार्थ-जोवती 5 इन्तजार करना। वाट 5 रास्ता। मनि 5 मन में। विश्राम 5 शाति।

साखी २३१ अर्थ-हे राम, बहुत दिनो से तुम्हारी प्रतीक्षा मे हूँ। रास्ते पर बैठकर तुम्हारे आने का इन्तजार कर रहा हूँ। तुमसे मिलने के लिये मन लालायित है। मन को किसी भ्रकार से शातति नही मिल रही है। दिरहिन ऊठे भी पड़े, दरसन कारनि राम। भूवाँ पीछे देहुगे, सो दरसन किहिं काम ॥७॥ | अर्थ-हे राम, तुम्हारे वियोग मे पड़ी जीवात्मा उठती है। कितु दुर्बहता के कारण फिर गिर पड़ती है। वह तुम्हारे दर्शन के लिये व्याकुल है। मृत्यु के बाद अगर तुम्हारा दर्शन हो भी गया तो वह दर्शन किस काम का होगा ? इस शरीर से ही तो धर्म साधना होती है। शरीर ही नहीं रहेगा तो दर्शन का क्या लाभ है ? ; मर हे - भूतराँ पीछे जिनि मिलै, कहै कबीरा राम। पायर घाटा लोह सब, (तब) पारस कौणे काम ॥८॥ अर्थ- मरने के बाद यदि राम का दर्शन हुआ तो वह दर्शन व्यर्थ है। जैसे लोहा अगर घटकर पत्थर हो जाय तो पारसमणि की कया उपयोगिता रह जायगी ? ', अलंकार-दृष्टात || ह प अँदेसड़ा न भाजिसी, संदेसो कहियाँ। के हरि आया भाजिसी, के हरि ही पासि गयाँ॥९॥ शब्दार्व-अदेसड़ा 5 चिता | दुख। भाजिसी > भागेगी। अर्थ-है राम, केवल सदेसा कहने से दुख की निवृत्ति नही होगी। यह तो तभी समाप्त होगा जब या तो हरि ही आ जायें या भक्त ही उनके पास चला जाय। अर्थात् सेंदेसा नही प्रत्यक्ष मिलन ही विरह-दुख की निवृत्ति का एक मात्र उपाय है। आइ न सकी तुझ्न पें, सकूँ न तुन्न बुलाह। जियरा यौही लेहुगे, बिरह तपाह तपाइ॥१०॥ अर्थ-मै तुम्हारे पास आ नही सकता। तुझे भी अपने पास बुलाना कठिन है। हे राम, ऐसा लगता है कि इसी तरह विरह की आग मे जछते जछते मेरी मृत्यु हो जायेगी। यहु त्तन जाली मसि करूँ, ज्यूं घूषों जाइ सरण्णि। हे मति बै राम दया करै, बरसि बुझावे अग्गि ॥१ १॥ शब्दार्थ-मसि 5 कालिख | मति > शायद। अर्य-साधक कहता है कि इस तन को जला कर कालिख करूँगा। इसका धुँआ स्वर्ग (जहाँ प्रिय परमात्मा का निवास है) तक जायगा। इस धुएँ से जो बादल बनेगा शायद परमात्मा वृप्राकर उसी बादल को बरसा कर मेरे विरह की आग को बुझा देगा। अलंकार-अतिशयोक्ति। ह यहु तन जालों मसि करी, लिखों राम का नाएउँ। लेखणि करूँ करंक की, -लिखि लिखि राम पठाऊँ॥१ २॥ अर्थ-इस शरीर को जला कर स्याही और हाड्डियो की कलम बनाऊँगा। उस कलम से अपना वियोग पत्र लिखूँगा। यह वियोग पत्र राम के नाम होगा । ल्! अलंकार-अतिशयोक्ति | कबीर पीर पिरावनी, पंजर पीड़ न जाइ। एक जु पीड़ पिरीति की, रही कलेजा छा ॥१ ३॥

२३२ कबीर समग्र अर्व-सामान्य पीड़ा तो शरीर की कष्ट देती ही है। कितु प्रेम की पीड़ा और गहरी हैं। यह हृदय मे छाई रहती है। चोट सतोणी बिरह की, सब तन जरजर हो | मारणहारा जाणिहै, कै जिहिं छागी सोह ॥१४॥ अर्थ-विरह का दर्द सता रहा है जिससे सारा शरीर जर्जर हो गया है। इस दर्द को तो मारने वाला प्रभु जानता है या तो जिसे यह दर्द होता है। यह रहस्यवादी प्रेम का दर्द है। कर कमाण सर सांघि करि, खैधि जु मारधा माहि। भीतरि भिषा सुमार है, जीने कि जीवै नोहि ॥१ ५॥ अर्थव-सतगुरु ने धनुष-वाण साधकर खूब खीचकर मारा। हृदय मे मारा। इससे पूरा अत कारण (मन, बुद्धि चित्त और अहकार) प्रभावित हुआ। जब साधक के पुन' जीने अर्थात् विपयो की ओर आने की सभावना नही है। अलंकार-सदेह | जब मारथा खेघि करे, तब मैं पाई जॉण। लागी चोट मरम्म की, गई कलेजा छौंणि॥१६॥ अर्थ-जब गुरुदेव ने खीचकर शब्द वाण मारा तभी मेरी समझ मे आया कि शब्द बाण की चोट क्या होती है। यह चोट मेरे मार्मिक स्थलों को पीड़ित करती हुई कलेजे को छेद गयी। जिहि सरि मारी काल्हि, सो सर मेरे मन बस्या। तिट्टि सरि अजहूँ मारि, सर बिन सच पाऊँ नहीं॥१७॥ अर्व-हे गुरुदेव जिस प्रेम बाण से आपने कल मारा था (उपदेश दिया था) वह मेरे मन मे वसा है। अत्यत अच्छा लगता है। वही प्रेम बाण आज पुन मारिए। बिना प्रेम बाण की चोट के सुख नही पाता हूँ। घुलनीय-प्रेम बान अनियाले | बिरह भुवंगम तन बसे, मंत्र न छागै कोइ | राम वियोगी ना जिवै, जिदे त बोरा होड़ ॥१ ८॥ अर्थ-विरह रूपी सर्प शरीर मे बसा है। अत कोई सांसारिक मत्र काम नही कर रहा है। राम का वियोगी या तो जीता नहीं है और अगर जीता है तो पागल होकर जीता है। टिपप्णी-यहाँ मृत्यु और बावढापन(पागलपन) एक ही है। क्यो कि विषयो से विराक्ति ही मृत्यु भी है। पागलपन भी है। अलंकार-रूपक | बिरह भुवंगम पैसि करि, किया कलेजै घाव । साधू अंग न मोड़ही, ज्यूँ भावे त्यूँ खाब॥१९॥ अर्थ-विरह रूपी सर्प ने घुसकर कलेजे मे घाव कर दिया है।' कितु इससे साधु पुरुष। जा नही है। जैसे अच्छा छगे वैसे खाओ। हम अपना अग नहीं मोडेगे। विरह ही तो वन है। हुलनीय-विरह का जल्जात जीवन |-महादेवी ॥ सब रग तंत रबाब तन, बिरह बजाने नित्त। रद और न कोई सुणि सके, कै साईं के चित्त ॥२०॥। हि शब्दार्थ-रग - नस। तत - तत्री। तात। रबाब 5 एक बाजा।

चा २२ अर्थ-विरह मे शरीर रबाब बाजा और नसे उस बाजे के तातो के समान है। इन्हे विरह नित्य बजाता रहता है। इनसे जो अनाहत ध्वनि निकलती है उसे दूसरा कोई नही सुन सकता है। या तो परमात्मा सुनता है या साधक चित्त मे उसकी ध्वनि सुन पड़ती है। अलंकार-रूपक | बिरहा बिरहा जिनि कहौ, बिरहा है सुलितान। जिह घटि बिरह न संचरे, सो घट सदा मसान ॥२१॥ अर्थ-विरह को बुरा मत कहो। विरह सुलतान है। जिस शरीर मे विरह का सचार नही है वह शरीर श्मशान जैसा है। अंघड़ियाँ झाईं पड़ी, पंथ निहारि निहारि। जीभडियौं छाला पड़्या, राम पुकारि पुकारि ॥२२॥ अर्थ-हे प्रभु, तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा करते-करते आँखों मे अंधेरा छा गया। तुम्हारा नाम पुकारते-पुकारते जीभ मे छाले पड़ गये। दुख के जी दर्शन अब तक नही हुआ। इस तन का दीवा लोही सीधों तेल ज्यूँ, कब मुख देखी पीव ॥२३॥ अर्थ-साधना के लिये इस शरीर को दीपक और जीव को बत्ती बनाना चाहता हूँ। उसमे लहू (रक्त) रूप तेल डालना चाहता हूँ। ऐसे दीपक के प्रकाश से अज्ञानाधकार दूर कर प्रियतम परमात्मा का मुख देखूँगा। अलंकार-उपमा। ह भैंनों नीझ्र लाइया, रहट बहै निस जाम । पपीहा ज्यूँ पिव पिब करो, कबरु मिलहुगे राम ॥ २४॥ अर्व-आँखे नित्य झरने और रहट के समान रात्रि-प्रहर मे बह रही है। जैसे पपीहा प्रिय से मिलने के लिये पिउ पिउ किया करता है उसी प्रकार साधक भी पिउ पिउ किया करता है। अलंकार-उपमा | अंपषड़ियों प्रेम कसाइयों, लोग जोजै दुखंड़ियाँ। साईं अपणें कारण, रोइ रोइ रतड़ियाँ॥२५॥ शब्दार्व-कसाइयों + १ काषाय, रक्त वर्ण। २ दर्द होना। रतड़ियाँ 5 छाल। 2 अर्थ-विरह के कारण प्रेमी की आँखे छाल और दर्द से युक्त हो गयी है। लोग समझते है कोई अन्य दुख है। हे स्वामी, आपके कारण ही रो-रोकर आँखे छाल हो गयी है। सोई आँसू सजणों, सोई जे लोइण लोही चुवै, तौ जोणों हेत हियौंहि ॥२६॥ शब्दार्थ-बिड़ाहि + निकलता है। लोइण 5 लोचन। आँख। लोही 5 रक्त । हेत > प्रेम। हियौंहि + हृदय मे। सजणों 5 स्वजन। अर्थ-अपने लोगो और लोक के सुख-दुख मे एक ही प्रकार के आँसू बहते है। किंतु हृदय मे सच्चा प्रभु प्रेम हो तो आँखो से छहू टपकना चाहिए कबीर हसणों दूरि करि, करे रोबण सौं चित्त । बिन रोयों क्यूँ पाइये, प्रेम पियारा मित्त ॥२७॥ अर्थ-सत कबीरदास जी कहते है कि हँसना दूर कर अर्थात् विषयो से प्रीति नकर। विषय सुख को सुख न समझ कर उसे दुख की,वस्तु समझ। यह समझ कर रो कि इन विषयो १3०88 ही व्यक्तियो का नाश किया है। बिना रोये या दर्द पैदा किये प्रिय परमात्मा नही | न 3 मम लटक ली जज यम दी 2, का पा लटक जल ली तक मल जम अकाल जनी >> अकत हए सीअ पद भक जकर क आम

२३४ कबीर समग्र अलंकार-काव्यलिग | जौ रोऊँ तो दल घंटे, इसी तो राम रिसाइ। मनही माहि बिसूरणों, ज्यूँ घुंण कार्डहि खाइ॥२८॥ अर्व-यदि रोता हूँ तो शक्ति क्षीण होती है। हँसता हैँ तो भगवान्‌ को बुरा छुगता है। इसलिये रोने का दिखावा न कर सत जन मन ही मन भगवत्‌ वेदना की अनुभूति मे घुलते रहते है। जैसे/काठ को घुन भीतर ही भीतर खा जाता है। अलंकार-उदाहरण। हैँसि हंसि रूुत न घाइए, जिनि पाया तिनि रोह। जो हॉँसे ही हरि मिडै, तौ नहीं ठुह्मगनि क्ोह॥२९॥ शप्यार्व-दुहागनि < घोर दुख। दुर्भागिन। हि अर्व-विषयो से हँसते हुए या प्रसन्न प्रेम करते हुए परमात्मा को नहीं प्राप्त किया जा सकता है। विरक्त होने पर ही परमात्मा मिलते है। यदि विषय भोग से परमात्मा की शक्ति हो जाय तो विरह मे जलने का कष्ट कोई नहीं उठाएगा | अल्लकार-अर्थातरन्यास | हँसी खेती हरि मिऊे, तो रोण सहे घरसान | काम क्रोध त्रिष्णों ते, ताड़ि भिड़े झगवार ॥३ ०॥ शबदार्थ-घरसान > तीक्ष्ण धार | अर्द-विषयो मे हँसते-खेल्ते यदि परमात्मा की प्राप्ति हो जाय तो कौन है जो तीक्ष्ण शान पर 8 अपने शरीर की दुर्गति करायेगा ? काम, क्रोध, तृष्णा के त्याग से ही भगवद्ज्प्ति होती है। ! अलंकार--अर्थातरन्यास | हे पति पियारो पिता कीं, गौंहनि छागा शाह । लोभ पिठाई हाथि दे, आपण गया भुलाइ॥३१॥ शब्दार्व-गीहनि - संग | पीछे छगना। आपण - आत्मतत्त्व | अर्थ-जीवात्मा परमात्मा का प्रिय पुत्र है। यह पुत्र परमात्मा के साथ-साथ या पीछे-पीछे चल रहा था। माया से यह नही देखा गया। उसने जीव को विषय लोभ की मिठाई थमा दी। जीव अपने पिता (परमात्मतत्त्व) को भूछ कर माया के,पीछे चलने गया। अलकार-रूपक, रूपकातिशयोक्ति। डारी खाँड़ पटकि करि, अंतरि रोस उपाह। रोबत रोदत मिलि गया, पिता पियारे जाइ ॥३ २॥ मु शब्दार्व-डारी 5 फेक दी। खॉँड़ & गुड़। मिठाई। अंतरि 5 हृदय। रोस 5 क्रोध | उपाइ - (

साखी २३५ वह। ् | अर्च-हे प्रिय, तुम मेरी आँखो के भीतर आ जाओ। तुम्हे आँखो मे बद कर ढूँ। दिन-रात तुम्हे ही देखता रहूँ। है हरि, वह दिन मेरे लिये कब आयेगा जब तुम्हारा दर्शन होगा ? तुलनीय-बसो मेरे नैननिमे नदढाल |-मीरा। मु > कबीर देखत दिन गया, निस भी देखत जाह। ख,.._बिरहणि पिव पावै नहीं, जियरा तलपें माइ॥३४॥ । अर्व-- सतत कबीरदास जी कहते है कि प्रिय परमात्मा की प्रतीक्षा करते-करते दिन बीत हा गया। रात भी बीत जायगी। विरहिणी प्रिय को नहीं प्राप्त कर रही है। वह हृदय के भीतर ही तड़प रही है। | के बिरहिन कूँ मीच दे, के आपा दिखलाह। आठ पहर का दाक्षणों, मोपैसह्यान जाह्॥३५॥ ._ अर्व-हे प्रभु, या तो विरहिणी को मृत्यु प्रदान करो या आतलतत््व का दर्शन करओ। वियोग की आग मे दिन-रात जलना अब मुझसे बिल्कुल नही सहा जा रहा है। .; बिरहणि थी तो क्यूँ रही, जली न पीब के नालि। रहु रु मुगध गहेलड़ी, प्रेम न लाजूँ मारि ॥ ३६॥ शब्दार्थ-नालि 5 साथ | मुगध.- मुग्धा। मूढ। गहेलड़ी - गर्वीढी। लाजूँ मारि 5 लाज से मरना या दुखी होना। अर्थ-ऐ साधक विरहिणी, अगर तेरा विरह सच्चा था तो रह क्यो गई ? प्रिय के साथ ही क्यो नहीं जल गयी ? ओ, मूढ गर्वीली (प्रिय के प्रेम पर गर्व करने वाली), अब क्यो लज्जित होती है ? दुखी होती है ? प्रेम को लज्जित क्यो करती हो ? हो बिरहा की लाकड़ी, समझश्लि समझ्ि परूँधाउँ। छूटि पड़ों यों बिरह ते, जे सारीही जलि जाउँ॥३७॥ शब्दार्व-सारी 5 १ पूरा। ३ चिता। ह अर्थ-साधक आत्मा प्रिय वियोग की लकड़ी के समान है। जैसे-जैसे सोचती है और धुआँ उठता है। पूरी धधकती नही धुँधुआती है। अगर चिता पर ही पूर्णत. जल जाऊँ तो विरह धीरे-धीरे जलनेवाली यह पीड़ा समाप्त हो जाय। 2 कबीर तन मन यो जल्या, बिरह अगनि सूँ लागि। मृतक पीड़ न जॉणई, जांणैगी यहु आगि।॥॥३ ८॥ अर्थ-सत कबीरदास जी कहते है कि विरह की आग मे बिना किसी प्रकार की वेदना की अनुभूति और अभिव्यक्ति करते हुए मृतक के समान जल गई। उस पीड़ा को जलनेवाली नही जानती। आग जानती है। * ; " टिप्पणी-यहाँ दो बाते,है- एक यह कि मे विरही धैर्य और सहनशीछता से जलन को धारण करता है। दूसरी यह कि साधक चेतन से जड़ रूप हो जाता है। तभी उसकी पीड़ा से प्रभावित आग की अनुभूति होती है। साधक को जलने की अनुभूति नही होती है। , अलकार-असगति। हु बिरह जलाई मैं जलौं, जलती जल हरि जाएँ। मो देख्यों जलहरि जले, संतों कहाँ बुझाउँ॥३९॥ शब्दार्थ-जलहरि 5 (< सॖ जलगृह) जलाशय। विषय जलगृह। अर्व-मै विरह की आग से जल रही थी। इस जलन को बुझाने जलाशय गयी। कितु मैने देखा कि जलाशय. तो स्वयं जल रहा है। वहाँ विषयो की आग धधक रही है। अब मै अपनी

आग कहाँ बुझाऊँ ? ससार के सारे जलाशय व्यर्थ है। बिना आनदकद भगवान् के मेरी विरहपीड़ा दूर नही हो सकती है। परवति परबति मैं फिरधा, मैंन गेंबाये रोइह्। सो बूटी पारऊँ नहीं, जातें जीननि होइ॥४०॥ अर्थ-साधक बड़े-बड़े साधको, संन्यासियो एव गुरुओ के पास गया। सच्चे तपस्वियो की खोज मे |वन-पर्वतो में भटका। रोता रहा। इतना रोया कि आंखे चली गयी। कितु संजीवनी बूटी नहीं मिली। यहाँ बूटी से सकेत भगवान् के लिये हे। फाड़ि झुटोला घज करों, कामलड़ी पहिराँ। जिहि जिहि भेषों हरि मिडै, सोइ सोह भेथ कराएँ ॥४१॥ शब्दार्थ-फूटोला 5 पटोर, रेशमी वस्त्र। धज 5 टुकड़ा। कामलड़ी ८ कम्बढ। अर्थ-विलारिता द्वारा ईश्वर की प्राप्ति नही होती है। मै चाहता हूँ कि रेशमी वस्त्रो को त्याग कर टुकड़े-टुकड़े कर डाढूँ और कम्बल पहन ढूँ (साधुओ का एक सम्प्रदाय कम्बल ही ओढ़े रहता है)। जिस ०8: द्वारा ईश्वर की प्राप्ति होगी वही पहनूँगा। चैन हमारे जलि गये, छिन छिन लो तुन्न। नो हूं मिले न में खुसी, ऐसी बेदन मुष्त ।४२॥ भ्षब्दार्द-लोड़ें - (लोरे) 5 लोर। आँसू। अर्य-हे प्रभु, तुम्हारा रास्ता देखते-देखते मेरी ओखे जल गयी हैं। ये हर समय तुम्हारे लिये आँसू गिराया करती है। तुम्हारे न मिलने से मैं खुश भी नहीं हूँ। मुझमे गहरी वेदना है| भेला पाया सरप का, भौसागर ऊे मांह। जे छोड़ी तौ डूबिहीं, गहीं त इसिये बॉड ॥४३॥ शब्दार्व-भेठा 5 एक प्रकार की नाव| सरप सर्प। अर्थ-हमने भवसागर पार करना चाहा। कितु हमारा साधन गलत था। उसके लिये हमने विषयो को चुना। जैसे कोई व्यक्ति सर्प की नाव बनाकर नदी पार करना चाहे। अब उसे छोड़े 2०3५ का भय है। पकड़े रहे तो सर्प काट लेगा। कहना यह है कि काम को छोड़ना अन्यत न है। अलंकार-सागरूपक ! रैणा दूर बिछोहिया, रहु रे संषम घूरि। देवलि देवलि धाहड़ी, देसी ऊये सूरि॥४४॥ शब्दार्थ-रेणा 5 रात। बिछोहिया < विछुड़ गया। सषम >शख। झूरि 5 सूखा। देवलि देवाल्य। धाहड़ी > दौड़ना। देसी 5 दिखाई देगा। अर्थ-हे जीवात्मा रूप शख तुम अज्ञानाधकार के कारण सागर प्रभु से दूर पड़ गये हो। अब दुखी (झूरिं) होते रहो। सूर्योदय या ज्ञान प्रकाश होने पर भी तुम चेत नहीं रहे ही। इसलिये तुम शख के समान मदिर-मदिर मोक्ष के लिये दौड़ोगे और तुम्हे मोश्ष की प्राप्ति नही होगी। क्योकि मोक्ष मदिरों से नही मिलता है। मोक्ष तो आत्मज्ञान का विषय है। अलंकार-अन्योक्ति | सुद्धियों सब संसार है, खाये अरू सोबै। दुखिया दास कबीर है, जागै अरू,रोबै॥४५॥ अर्व-सारा ससार विषयासक्त है। विषयों मे आसक्त होकर खाता और सीता है। उसे ५. अपने नाश की कोई चिता नही है। इस स्थिति को देख कबीरदास साधना मे जागे है। वे

,. साखी २३७ प्रियतम प्रभु की प्राप्ति और अज्ञानी जीवो के उद्धार के लिये रो रहे है। छुलनीय-मै विरहिणी बैठी जागूं, जगत सब सोवै री आली -मीरा | (४) ग्यान बिएह कौ अंग दीपक पाक ऑणिया, तेल भी ऋए्या संग। तीन्यूँ मिलि करे जोइया, (तब) उड़ि उड़ि ५$ पतंग ॥१॥ शब्दाई-जोइया - ज्योतित किया। प्रज्वलित किया। अर्थध-दीपक, तेल और आग तीनो साथ-साथ लाया। मतरूब कि हृदय दीपक में परमात्म स्नेह (प्रेम) के साथ तीव्र साधना की आग भी जला दी। इससे जो ज्ञान ज्योति जली तो वासना के कीड़े स्वय नष्ट होने लगे।. अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। मारपा है जो मरैगा, दिन सर थोथी भालि। - पड़या पुकरै ब्रिछ तरि, आजि मरे के काल्हि॥२॥ अर्थ-गुरुदेव ने चिकनी-चुपड़ी बातो द्वारा नही बल्कि रूखे वचनो द्वारा शब्ददाण मारा है। कितु इन वचनो मे साधना को शक्ति ऐसी है कि नुकीला (अनलकृत) न होने पर भी पूरा असर हुआ। अब साधक गुरुकृपा वृक्ष की छाया मे भगवान् को पुकार रहा है। संसार के प्रति जो थोड़ी बहुत असक्ति है वह भी आज कल मे समाप्त हो जायगी। अलंकार-विभावना। हिरदा भीतरि दीं बलै, थूँढों प्रयट न होह। जाके लागी सो रूख, कै जिहि लाई सोइ॥३॥ .., शब्दार्ब--दी + दावाग्नि|। जगल जलाने वाली आग। लाई - लगाई। अर्प-दावाग्नि (भगवद्नेम की आग) हृदय वन मे जल रही है। इसका धुआऑँ बाहर नहीं दीख, रहा है। साधक शांत है। भगवद्मेम की आग जिसे लगती है वही जानता है या जो (गुरु) लगाता है वह जानता है। 'अलंकार-विशेषोक्ति, विभावना। " झल ऊठ झोली, जली, खपरा फूटिम फूटि। जोगी था सो रमि गया, आसणि रही बिभूति ॥ ४॥ शब्दार्उ-झल - ज्वला। लपट। झोली 5 साधु की झोली या शरीर। अर्थ-भगवद्मेम की आग जली तो जिस हृदयरूपी झोली मे इच्छाओ का भडार था वह जलगयी। योगी खप्पर रखते है। जिस खप्पर (खोपड़ी, माथा) मे विषय चितन भरे थे वह भी नष्ट हो गया। योगी (चेतन आत्मा) परमात्मा मे रमण करने लगा। अब उसके स्थान पर राख है। उसकी विभूति (यभथ) चारो ओर फैली है। /टिप्पणी-ज्ञानाग्नि से केवल कर्म की समाप्ति होती है। प्रेमाग्न से तदाकारिता प्राप्त होती है। धहाँ योगी तदाकार हो गया है। ' अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | अगबि जू छागि नीर मैं, ऊंदू जलिया झारि। उतर दक्षिण के पंडिता, रहे बिचारि विधारि॥ ५॥

 शब्दार्य-कदू - कर्दम। कीचड़। झारि < समूह। अर्थव-विषयो की नदी मे ज्ञान की आग लग गयी। यह आग इतनी तीव्र है कि पानी तो पानी कीचड़ अर्थात् वासना के सभी आधार जल गये। यह कैसे हुआ इस पर दक्षिण और उत्तरमार्गी दोनो प्रकार के पडित विचार कर रहे है। उन्हे कुछ समझ में नहीं आ रहा है। क्योकि यह पाडित्य का विषय नही है। अलंकार-विरोधाभास | दीं लागी साइर जल्या, पंषी बैठे आइ। दाधी देह न पालबै, सतगुर गया लगाइ ॥६॥ शब्दार्थ-दी - दावाग्नि। साइर 5 सागर। पषी > पक्षी। दाधी > दग्ध हुईं। जली। पाठवै ल्‍ पलुहै। पल्लवित होना। अर्थ-सतगुरु ने भगवद्प्रेम की आग लगा दी। इस आग से विषयो का अनत प्रवहमान समुद्र जलकर समाप्त हो गया। इस सागर मे रहनेवाले पक्षी (विषयों मे अनुरक्त जीव) सदगुरु की शरण मे आ बैठे। जली देह पुन नही पलल्‍्छवित होगी। मतरूब यह कि अब मन मे विषयों की उत्पत्ति नही होगी। अलंकार-अन्योक्ति। शुर दाघा चेला जल्या, बिरहा छागी आगि। तिणका बपुड़ा ऊबरधा, गलि पूरे कै छागि॥७॥ अर्थ-गुरुदेव ने विरह्व की आग लगाई। इससे शिष्यज्ञान विरहठ की आग मे जलने लगा। आग मे सामान्यत सभी जलते है। तिनका तो अवश्य जलता है। कितु ज्ञान विरह की इस आग से तिनका (अकिचन भ्रक्त) पूर्णव्रह्म से लपकर बच गया। अलंकार-विरोधाभास | आएऐड़ी दीं छाइया, मुग पुकारे रोइ। जा बन में क्रीला करी, दाह्तत है बन सोह ॥८॥ शब्दार्व-आहेड़ी > आखेटक। शिकारी। दौ - दावाग्नि। मृग 5 विषयासक्त मन | क्रीला > क्रीड़ा। दाझ्मत 5 जलाता। बन 5 विषय वन। विषययुक्त मन। अर्थ-शिकारी रूप गुरुदेव ने शिष्य मन के विषय-वन मे ज्ञान विरह की आग ढगा दी। इससे विषयासक्त मन रो रहा है। विषयो के जिस वन मे क्रीड़ा करता था वह वन जल रहा है। सदगुरु का सकेत है कि विषयो को छोड़ने मे बड़ी कठिनाई होती है। मोह लिप्त मन रागात्मक वेदन की अनुभूति करता है। पार्णी मोह प्रजडी, भई अप्ररल आगि। बहती सलितः रछि गई, मंछ रहे जल त्यागि॥९॥ शब्दार्थ-प्रजली - प्रज्वलित हुई। अप्रबल - प्रबल सलिता 5 सरिता। नदी। मछ > शुद्ध चेतन जीव । मन | अर्थ-विषय नदी मे ज्ञान विरह की अत्यत प्रबल आग लग गयी। बहनेवाली विषय नदी जलती रही। कितु हृदय के भीतर का निवासी शुद्ध चैतन्य मन उससे अलग हो गया। . अलंकार-अन्योक्ति | समंदर लागी आगि, नदियाँ जलि कोइला पघटठें। देखि कदीरः जागि, मंछी रूषों चढ़ि गईं।॥१ ०॥ “77 अर्व-विषययुक्त संसारसागर मे ज्ञान विरह की आग रूग गयी। फलत विषय नदी -जढ कब

साखी २३९ कर कोयला हो गयीं। संत कबीर कहते है- देखो, मन मछली पेड़ अर्थात् ब्रह्माड (शून्य) पर पहुँच गयी | (५) परचा को अंग कबीर तेज अनंत का, मानी ऊगी सूरज सेजि। पति सेंगि जागी सूंदरी, कौतिय दीआ तेणि ॥१॥ शब्दार्ब-परचा 5 परिचय। अर्नंत & परमात्मा। सेनि 5 श्रेणी। कीतिग 5 विचित्रता कौतुक। दीठा & दीख पड़ा। तेनि 5 उसे। अर्थय-अनत परमात्मा का प्रकाश अनेक सूर्य के एक साथ उगने जैसा है। कितु परमात्मा का यह प्रकाश केवल वही साधक सुदरी देख सकती है जिसने परमात्मा पति के साथ सोने का सौभाग्य प्राप्त किया है। ; * अलंकार-उसठ्रेक्षा | * कौतिग दीठा देह बिन, रदि ससि बिना उजास। साहिब सेवा माहि है, बेपरवोही दास ॥२॥ अर्य-ज्ञान प्रकाश से देह के बिना अर्थात् निराकार ब्रह्म का खेल दीखा है। ब्रह्मस्थान बिना किसी सूर्य-चद्रमा के प्रकाशित रहता है। इसे देखकर साहब ईश्वर की सेवा करनेवाला भक्त सदा निश्चित रहता है। तुलनीय-न तत्र सूर्यो भाति न चद्र तारकम् -कठोपनिषद्। दिप्पणी-साहब सेवा मे दास की बेपरवाही दो कारणों से है-एक, साहब के सेवक पर माया का प्रभाव नही होता है। दूसरा, साहब साधक के योग क्षेम का वहन करता है। अलंकार-विभावना | पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमा7। कहिदे कूँ सोभा नहीं, देख्याहों प्रदान ॥३॥ शब्दार्द-उनमान 5 अनुमान मान। परवान > प्रमाण। अर्थ-पारब्रह्म परमात्मा का प्रकाश कैसा और कितना है इसका पता अनुमान से नहीं रुम सकता है। इस प्रकार शोभा को कहना कठिन है। देखनेवाढा ही इसका प्रमाण पा सकता हैं। क्योकि यह शास्त्र नही आत्मानुभूति का विषय है। टिप्पणी- प्रमाण के प्राय'' चार आधार है-अनुमान, शब्द, उपमान, प्रत्यक्ष। इनमे तीन से भीतिक वस्तुओं का बोध होता है। ब्रह्म तो प्रत्यक्ष साक्षात्तार का विषय है। * अलंकार-वक्रोक्ति | अगम अगोचर गमि नहीं, तहाँ जक्मगै जोति। जहाँ कबीरा बंदिगी, ''तहाँ' पाप पुन्य नहीं छोति ॥४॥ अर्व-पारब्रह्म अगम है। इद्रियो के परे है। वहाँ किसी प्रकार गमन नहीं किया जा सकता है। वहाँ अखंड अनत का प्रकाश होता है। कबीर साहब इस ज्योति को प्रणाम करते है। इस से ३ प्राप्ति स्थान में पापएुण्य, छुआछूत कुछ भी नही है। यह ससार की सभी अनुभूतियों न्त्ूहै। टिप्पणी-ब्रहा प्रकाश प्राप्त व्यक्ति की स्थिति निम्नलिखित है

२४० कबीर समग्र यदा पश्य पश्यते रुक्‍म वर्ण, करत्तरिमीश फुरुष, ब्रह्म योनिम्। तदा विद्वान् पुण्य पापे विधूय निरजन पा पैति || (मुडेकोपनिषद् ३/१/३) जिस समय द्रष्टा सुवर्ण वर्ण और ब्रह्मा के उत्पत्ति स्थान सृष्टिकर्त्ता ईश्वर को देखता है, उस समय वह पाप-फुण्य को त्याग कर निर्मल होकर परम साम्य को प्राप्त कर लेता है। छाड़ि बेहदि गया, हुवा निरंतर बास | कबल जू फूल्या फूल बिन, को निरषै निज दास ॥५॥ अर्थ-साधक दृश्य प्रपच से मुक्त होकर अनत ब्रह्म मे जा मिछा। वही उसका स्थायी निवास हो गया। वहाँ निर्गुण- निराकार कमल खिला है। सामान्यत गर्भ भी कमलाकार होता है। कितु सृष्टि कमल साकार न होकर निराकार है। इस कमल को दास (भक्त) ही देख सकता है। ६ अलंकार-विभावना | कबीर मन मधुकर भया, रध्या निरंतर बास। कबल जू फूल्या जलह बिन, को देखै निज दास ॥६॥ अर्द-मनरूपी भौरा निर्गुण-निराकार ब्रह्म कमल मे निरतर निवास कर रहा है। यह कमढ बिना किसी जल के सदा फूला रहता है। इसको कोई भक्त ही देख सकता है। अलंकार-विभावना। अंतर कबल प्रकासिया, ब्रह्म बास तहाँ होइ। मन भवरा तहाँ लुबंधिया, जाजैगा जन कोइ ॥७॥ अर्थ-हदय मे ब्रह्म निवास का कमल प्रकाशित हो रहा है। मन भ्रमर उसी कमल मे छुब्ध है। इस वात को भक्त ही जान सकता है। टदिप्पणी-छादोग्य उपनिषद् मे-अथ यदिदमस्मिन्त्रह्म पुरे दहर पुण्डरीक वेश्म' अर्थात् इस ब्रह्मपुर मे सूक्ष्म कमल जैसा वेश्म (निवास स्थल) है। ८/१/ अलंकार-रूपक | सायर नाहीं सीप बिन, स्वाति दूँद भी नाहिं। कबीर मोती नीपजै, सुन्दि सिघर गठ मरहि॥८॥ अर्व-सत कबीर कहते है कि शून्य शिखर अर्थात् सहस्नार चक्र मे सागर, सीप, स्वाति दूँद कुछ भी नही है। फिर भी वहाँ ज्ञान के मोती उपजते रहते है। मोती गहरे समुद्र मे उपजता है। यहाँ शिखर पर उपजता है। यह विरोधाभास है। अलंकार-विभावना | घट माहें औदर लघ्या औघट माँहें घाद। कहि कबीर परवा भया, गुरू दिखाई बाट ॥९॥ के अर्थ-इस शरीर के भीतर ही निर्गुण-निराकार के मार्ग की प्राप्ति हो गयी। जहाँ घाट नही था या अत्यत विकट था वहाँ घाट की प्राप्ति हो गयी। परिचय होते ही गुरुदेव ने परमात्म प्राप्ति का रास्ता दिया। टिप्पणी-घट शरीर का प्रतीक है। औधट - निर्गुण निराकार ब्रह्म है। घाट 5 साधना, भक्ति और भगवान तीनो है। .. लेकार-विरोधाभास। डा

साखी ्र २४१ सूर समाणों चंद मे, दहूँ किया घर एक। मन का च्यंता तब भया, कछू पूरबला लेख ॥१०॥ शब्दार्व-सूर - सूर्य नाड़ी। दक्षिण नाड़ी। पगला नाड़ी। चद 5 इडा नाड़ी। वाम नाड़ी। चद्र नाड़ी। घर एक सुषुम्ना नाड़ी। अर्थ- योग क्री प्रक्रिया मे योगी इडा-पिगला दोनो को सुषुम्ना मे मिलता है। तब योगसिद्धि होती है। यह पूर्वकृत कर्मों के फलस्वरूप होता है। हह छाड़ि बेहद गया, किया सुन्नि असनान। मुनि जन महल न पावई, तहाँ किया विश्राम ॥१ १॥ अर्थ-सीमित ससार को छोड़कर असीम मे पहुँच गया। शून्य सहस्रार चक्र मे पहुँचकर निरतर झरनेवाले अमृत मे स्नान किया। यह स्थान बड़े-बड़े मुनियो को दुर्लभ है। साधक यहाँ विश्राम करता है। ससार चक्र मे विश्राम नही मिलता है। ससार दुख है। सुख शाति यही है। टिप्पणी-योगी छोग सिर के ऊपरी हिस्से मे एक रघ्न मानते है। यह सूक्ष्म है। स्थूल से भिन्न है। यह रश्न सुषुम्ना के मध्य से होकर मूलाधार चक्र तक पहुँचता है। इस रध्र के ऊपरी भाग पर सहस्रदल कमल है। इसका नाम ब्रह्मरॆध्र है। शून्य शिखर शून्यावस्था का दूसरा नाम है। गोरखनाथ ने इसे गगन शिखर कहा है- गगन शिखर मे बालक रोवे। ताका नाम धरहुगे कैसा। अलंकार-सबधातिशयोक्ति | देखो कर्म कदीर का, कछु पुरब जनम का लेख। जाका महल न मुनि लहै, (सो) दोसत किया अलेख ॥१ २॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि जन्म के कर्म अर्थात् भाग्य का फल देखो। जिस ” इद्रियातीत प्रभु का स्थान मुनियो को भी दुर्लभ है उस अलक्ष्य के यहाँ कबीर ने अपना स्थान बना लिया है। अलंकार--सबधातिशयोक्ति | पिजर प्रेम प्रकासिया, जाग्या जोग अनंत। संसा खूटा सुख भया, मिल्या पियारा कंत ॥१ ३॥ शब्दार्थ-पिजर 5 हड्डियोवाला शरीर। ससा 5 सशय। खूटा 5 (स खड ?) समाप्त हुआ। अर्थ-योगसाधना द्वारा शरीर मे भगवद्येम का प्रकाश हुआ। इससे भगवत्तत्त्व के प्रति सशय समाप्त हो गया। सशय,समाप्त होते ही भगवद्याप्ति हो गयी। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | य्यंजर प्रेम प्रकासिया, अंतरि भया उजास। मुख कसतूरी महमही, बाँणी फूटी दास ॥१४॥ अर्य-शरीर मे भगवद्येम का प्रकाश हुआ। फलुत अंतरग ज्ञान की उज्ज्वलता से भर गया। मुख और वचन से कस्तूरी की सुगध आ रही है। टिप्पणी-यह कस्तूरी वही है जिसे भगवान् तिलक के रूप मे छलाट पर ढुगाते है। कस्तूरी तिलक ललाट पटले' | सगुण उपासना मे कस्तूरी चदन स्थूल और बहिरग है। निर्गुण मे सूक्ष् और अतरग है। दूसरे स्थान पर सत कबीर ने कहा है- 'कस्तूरी कुडल बसे मृग ढँढ़े बन माहि' | यह कस्तूरी भगवत्तत्त्व है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति |

२४२ कबीर समग्र मन लागा उन मनन सौं, गगन प्हुँचा जाइ। देख्या चंदविहूणों, चादिणों, तहों अलख निरंजन राह ॥१ ५॥ अर्थ-ससार मे भटकनेवाला मन उन्मनी अवस्था (प्रभु चरणों) से लगकर आकाश (सहस्नार चक्र) मे पहुँच गया। यहाँ चद्रमारहित चॉँदनी मे निर्मल प्रभु का दर्शन हुआ। टिप्पणी-चन्दविदूँणों, का अर्थ उस प्रकाश का कोई आधार नही है। वह स्वाधिष्ठान पर स्थित है। अछख निरजन का अर्थ त्रिगुणात्मक मल से रहित है। अलंकार-विभावना | मन लागा उनमन सौं, उनमन मनहि बिलग। लूँण बिलगा पाणियाँ, पॉणी ऍूँणा बिलग ॥१६॥ शब्दार्थ-बिलग 5 विशेष लग्न। अधिक लगना। ढूँग 5 नमक। अर्थ-मन उन्मनी अवस्था मे पहुँच गया है। यह तब हुआ जब मन का मन मे विलय हो गया। मन ने अपना कार्य बद कर दिया है। जैसे पानी मे नमक घुलकर एक हो जाता है उसी प्रकार आत्मा-परमात्मा की एकता हो गयी है। दिप्पणी-सत कबीर इसे मन ही मन समाना कहते है। गीता इसे “आलमन्येवात्मना तुष्ट या इद्रियानीन्दियार्थेभ्य ” कहती है| अलंकार-निदर्शना | पाणीं ही तें हिम भया, हि है गया बिलाड। जो झुछ था सोई भया, अब कछू कद्या न जाइ ॥१७॥ अर्द-सत कबीर कहते है कि सूक्ष्म और स्थूल, चेतन और जड़ मे मूल भेद न होकर स्थिति का भेद है। जैसे पानी वर्फ बनता है। दर्फ पुन पानी बन जाती है उसी प्रकार निर्गुणनिराकार सूक्ष्म ब्रह्म ही सगुण-साकार-स्थूल रूप ग्रहण करता है। फिर इसका निर्गुण-निराकारसूक्ष्म मे प्रत्यावर्तन होता है। जीव के रूप मे बद्धआत्मा पुन अपने परमात्म रूप मे मिल गई है। टदिप्पणी-मूल एक है। वह जड़ चेतन दोनो रूप ग्रहण करता है। “जड़ चेतनहिं ग्रथि परि गई | जदपि मूषा छूटत कठिनई |।'-तुलसी | "एक तत्त्व की ही प्रधानता कहो उसे जड़ या चेतन ।'-प्रसाद | भली भई जु मे पडया, गई दशा सब भूलि। पाला गलि पाणी भया, ढुलि मिलिया उस छूलि॥१८॥ शब्दार्य-भै 5 भय | दशा 5 जीव दशा। शरीर की छह दशाएँ है- जन्म, वृद्धि, परिणति (बदलना), अपक्षय, व्याधि और नाश। इन्हे पड विकार भी कहते है। दे० विवेक चूडामणि, २५९। अर्थ-अच्छा हुआ जो मुझे भविष्य का भय हुआ। यमदड का भय हुआ। जन्म-मृत्यु चक्र का भय हुआ। फलत मै संसार की छह दशाओं से मुक्त हो गया। क्योकि ये दशाएँ आल ज्ञानी को नही प्रभावित करती है। बर्फ जैसी मेरी जड़ता (देहात्म बुद्धि) समाप्त हो गयी है। मै परमात्मा मे मिल गया। परमात्मा ही सपूर्ण सृष्टि का किनारा है। अलंकार-दृष्टांत | चीहरे च्यंत्तामंणि घटी, हाडी मारत हाथि। भीरों मुन्नसूँ मिहर करि, इच मिलो न काहू साथि॥१ ९॥ शब्दार्थ--चौहटे > चौरास्ता। पंषि उडाणी गगन छूँ, प्यंड रहा परदेस। पाणी पीया चंद दिन, भूलि गया यहु देस॥२०॥

साखी २४३ शब्दार्व-पषि 5 जीवात्मा रूपी पक्षी। गगन < सहस्रार चक्र।| पिड 5 शरीर। चंच + चोच। इद्रियाँ। परदेस 5 ससार। अर्व-जीवात्मारूपी पक्षी कुडलिनी शक्ति के सहारे आकाश (सहस्रार चक्र) पहुँच गया। कितु शरीर ससार मे ही रह गया। वहाँ पहुँचकर जीवात्मा ने विना किसी इद्रिय की सहायता के लगातार झरनेवाले अमृतरस का पान किया। यह रस इद्रियो से नही, इद्रियातीत होकर ही पीया जाता है। अब जीवात्मा इस वासनावाले प्रपची स्वदेश को भूल गयी है। यहाँ नही आना चाहती है। अलंकार-विभावना | पंषि उडानी गगन रुँ, उड़ी चढ़ी असमान। जिहँ सर मंडल भेदिया, सो सर लागा कान ॥२१॥ अर्थ-जीवात्मारूपी पक्षी आकाश (सहस्नार चक्र) मे जा पहुँचा है। जीवात्मा के कान मे वह अनाहत नादरूपी बाण लग गया है, जिस बाण से ब्रह्मांड विद्ध है। अलंकार-अन्येक्ति | सुरति समाणों निरति मैं, निरति रही निरघार। सुरति निरति परचा भया, तब खूले स्पंभ दुवार ॥२२॥ शब्दार्व-सुरति ८ १ स्मृति। २ श्रुति। शब्द। निरति 5 १ निरतर प्रेम। २ निर्क्री। अशब्द। शून्य । आनद पद। स्यभ दुवार 5 स्वय द्वार या सिह द्वार | अर्थ-भगवान् का स्मरण अटूट प्रेम मे परिणत हो गया। इस प्रेम का कोई स्थूल या भौतिक आधार नही है। निर्मुण-निराकार के प्रति स्थूल आधार रहित प्रेम है। स्मरणजन्य प्रेम जब निरतर प्रेम मे बदल गया तो प्रभु प्रेम का सिह दरवाजा या आत्मद्वार (आत्ज्ञान) खुला। शब्द से शब्दातीत की स्थिति आ गयी। तुलनीय-डा० गोविद त्रिगुणायत ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है- सुरति (प्राप्त आत्मा) साधना करके निरति (प्रातव्य आत्मा) मे छीन हो जाती है। निरति (प्रातव्य आत्मा) शुद्ध, बुद्ध, मुक्त नित्य ब्रह्म होने के कारण निराधार रहती है। इस प्रकार जब सुरति और निरति तादाम्य हो जाता है तभी स्यभु अर्थात् कल्याण और आनद के द्वार खुल जाते है। सुरति समोणी निरति मे, अजपा मोहे जाप। लेख समोर्णों अलेख में, यूँ आपा मोह आप ॥ २३॥ अर्थ-प्रभु के प्रति स्मरण निरतर स्मरण मे बदल गया। नाम जप का बाह्य रूप अतर जप में परिणत हो गया। अभ्यासवश योगी के अतर मे हर समय जप चलता रहता है। जब आत्मा को आत्मा मे पाया तो भाग्यडेख बदल गया या जो दृश्य जगत था उसके स्थान पर केवल अदृश्य, निराकार ब्रह्म का दर्शन होने ढगा। आया था संसार मै, देषण को बहु रूप। कहै कबीरा संत की,पड़ि गया नजरि अनूप ॥२४॥ शब्दार्ध-अनूप 5 अनुपमेय। ब्रह्म। अर्थ-सामान्यत लोग समझते है कि उसका जन्म इस बहुरुपिया ससार को देखने के लिये हुआ है। कितु सतो की दृष्टि भिन्न है। साधना के कारण उनकी दृष्टि ससार की नाशवान् चीजो पर न पड़कर अनुपमेय एवं निरजन प्रभु पर पड़ती है। पड़ गयी है। अंक भरे भरि भेटिया, मन मैं माही धीर। कहै कबीर ते क्यूँ मिलें, जब लग दोह सरीर॥२५॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि भगवान् से सच्चे प्रेम के लिये तन, मन, वचन की एकता

२४४ कबार समग्र होनी चाहिए। द्वैतभाव से परमात्मा नहीं मिलते है। जिसके मन में साधना का घैर्य है वही प्रभु को आलिगन कर पाता है। सचु पाया सुख ऊपनों, अर दिल दरिया पूरि। सकल पाप सहजैं गये, जब साई मिल्या हजूरि ॥२६॥ शब्दार्व-ऊपनों 5 उपजा | अर्य-परमात्तत्त्व की अनुभूति होते ही सत्य की उपलब्धि हो गयी। सुख प्राप्त हुआ। हृदय नदी भगवलद्लेम जल से पूर्ण हो गयी। सारे पाप सहज रूप मे नष्ट हो गये। अलंकार-रूपक | घरती गगन पवन नहीं होता, नहीं तोया, नहीं तारा। तब हरि हरि के जन होते, कहै कबीर बिचारा ॥२७॥ अर्व-सत कबीर भगवान् के साथ ही भक्ति को अविनाशी मानते है। इसलिये कहते है कि सृष्टि प्रसार के पूर्व जब धरती, आकाश, हवा, पानी, तारा आदि पचभूतो तथा दूसरी भूत वस्तुओ का विकास नही हुआ था तव केवढ भगवान् और उनके भक्त थे। जा दिन कृतमनों ना हुता, होता हट न पट। हुता कबीरा राम जन, जिनि देखे औधट घट ॥२ ८॥ शब्दार्थ-कृतमनों < सृष्टिकर्त्ता। ब्रह्मा । हट 5 बाजार। पट < सृष्टि रचना रूपी वस्त्र। हुता + था। औघट > टेढ़ा रास्ता। घाट 5 जहाँ पहुँचना है। गतव्य | अर्थ-परमात्मा ब्रह्म के भी रचयिता है। जब न ब्रह्मा थे। न ब्रह्मा के सृष्टि व्यापार का प्रसार हुआ था। न वस्त्र के समान यह ससार बुनकर तैयार किया गया था। भरत उस समय भी था | जिसने सृष्टि निर्माण और भगवद्वयाप्ति के टेढ़े रास्ते को देखा है। विति पाई मन विर भया, सतगुर करी सहाह। अनिन कथा तनि आचरी, हिरदे म्रिभुवन राइ॥२९॥ शब्दार्थ-थिति - स्थिर तत्त्व। प्रतिष्ठित तत्त्व। अनिन 5 अनन्य। तनि 5 तनमे। आचरी - आचरित हुई। सचरित हुई। राइ 5 राजा। अर्व-सदूगुरु की सहायता से, कृपा से चचल मन स्थिर हो गया है। उसने स्थिर तत्त्व को पा लिया है। हृदय मे प्रभु विराजमान है और शरीर अनन्य की कथा या भाव से भावित हो गया है। हरि संगति सीतलू भया, मिटा मोह की ताप। निस बासुरि सुखनिध्य लघ्या, जब अंतरि प्रकट्या आप ॥३०॥ अर्थ-भगवान् का सान्निध्य पाकर ससार के (त्रिविध) ताप ठडे हो गये। मोह का दुख भी दूर हुआ। सुखनिधि प्राप्त हो गयी | जब हृदय मे स्वय भगवान का प्राकट्य हुआ। तन भीतरि मन मानियाँ, बाहरि कहा न जाइ। ज्याला तै फिरि जल भया, बुझी बलंती लाइ॥३१॥ शब्दार्व-मानियों - माना। बलती 5 जलती। लाइ 5 (स अछात) आग। अर्थ-शरीर के भीतर मन स्थिर हो गया। मन की चचलता दूर हो गयी। इसे बाहर नहीं कहा जा सकता है। आग से पुन पानी हो गया। अर्थात् वासना की ज्वाला ठडी हो गयी। -आग वासना और जल वासना नाश का प्रतीक है। वेदात दर्शन मे आग से जढ की उत्पत्ति मानी गयी है। इसीलिये जल आग को वुझाता है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। तत पाया तन बीसरयथा, जब मुनि धरिया ध्याव ।

साखी २४५ तपनि गई सीतल भया, जब सुनि किया असनान ॥३ २॥। शब्दार्ब-तत < तत्त्व। आत्मतत्त्व। परमात्म तत्त्व। सुनि 5 शून्य। सहस्रार चक्र। मुनि मन में | अर्थ-जब मनमे ब्रह्म का ध्यान धारण किया तो परमात्म तत्त्व की प्राप्ति हो गयी और शरीर की चिता छूट गयी। जो मन विषय की आग में तप रहा था वह ठढा हो गया। क्योकि शून्य स्थान सहस्नार चक्र में झरनेवाले अमृत रस मे स्नान करने छगा। स्नान से ही तो तन-मन की गर्मी समाप्त हुई। ताप का अर्थ दैहिक, दैविक, भौतिक इन त्रितापो से भी है। जिनि पाया तिनि सुगह गह्या, रसनों छागी-स्वादि। रतन निराला पाईंया, जगत ढठाल्पा बादि ॥३ ३॥ शब्दार्थ-जिनि 5 जिन्होने। सुगह + (< स़ुसुग्रह) सुदर ढग से पकड़ा। गह्या > पकंड़ा। रसनों जीभ | ढढाल्या 5 ढूँठा। बादि > व्यर्थ। अर्थ-उस परमतत्त्व को जिस किसी विरल व्यक्ति ने पाया है उसकी जिह्ना को उसका स्वाद लूग गया है। इस अनुपम तत्त्व को प्राप्त कर लेने के बाद अब जगत मे कुछ ढूँढ़ना व्यर्थ है। अलंकार-व्यतिरेक | कबीर दिल स्याबति भया, पाया फल संप्रथ्व। सायर माँहि दंदोलताँ, हीरे पड़ि गया हथ्थ ॥३४॥ शब्दार्थ-स्याबति 5 पूर्ण। साबूत। सम्रध्य 5 समर्थ। सायर 5 सागर। ढढोलताँ > दढूँढ़ना | हथ्थ < हस्त । है अर्थ-सत कबीर कहते है कि हृदय मे पूर्ण ब्रह्म की प्राप्ति हो गयी। पूर्ण ब्रह्म का समर्थ फल पा गया। ससार समुद्र मे ढूँढ़ रहा था। इसी खोज मे उसके हाथ हीरा पड़ गया। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | जब में था तब हरि नहीं, अब हरि है में नाहि। सब अँधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या मौहि॥३ ५॥) अर्थ-जब तक हृदय मे अह भाव था तब तक ईश्वर का बोध नही था। अब परमात्मतत्त्व का बोध होने पर ईश्वर है और मै नही हूँ। जब हृदय मे आत्म-ज्ञान का दीपक जला तो सारा अज्ञान (अँधियारा) समाप्त हो गया। अलंकार-विरोधाभास | जा कारणि मै दूंढता, सनमुख मिलिया आइ। घन मैली पिव उजला, लागि न सकीं पाह ॥ ३६॥ अर्थ-जिस प्रभु को मै ढूँढ़ रहा था वह आत्म प्रत्यक्षीकरण होते ही सामने दीख गया, कितु कठिनाई यह है कि जीव (धन) वासनाओ की मैल से भरा है। रजोगुण और तमोगुण वाला है। कितु प्रभु प्रिय सात्त्विक गुण वाला निर्मल है। इससे उसके पैर छूने मे कठिनाई होती है। जा कारणि मै जाइ था, सोई पाई ठौर। सोई फिरि आपण भया, जासूं कहता और ॥३७॥ अर्थ-जिस प्रभु को प्राप्त करने के लिये मै जा रहा था वह प्रभु पास ही मिल गया। वह फिर अपना हो गया। अब उसे अन्य कहने की जरूरत नही रह गयी | व्थिणी-यहों भक्ति की तीन स्थितियो का वर्णन है न-मैं उसका हूँ (तस्वैवाह), वह मेरा है (ममैवासौ), मै वही हूँ (स एवाहमिति त्रिधा)। क देख्या एक अंग, महिमा कही न जाह। तेज पुंज पारस धर्णी, नैंनू रहा समाइ ॥३ ८॥

 अर्थ-ब्रह्म को एक अग या एकागी दृष्टि से देखने पर उसकी महिमा का ठीक-ठीक बोध नही हो सकता है। क्योकि जैसे ब्रह्म पूर्ण है वैसी ही दृष्टि भी पूर्ण होनी चाहिए। वह पूर्णब्रह्म अपने सपूर्ण तेज और पारसमणि के रूप मे मेरी आँखों मे समाया है। भाव यह है कि उसका तेज तो दीख ही रहा है। उसके स्पर्श से मेरे भीतर परिवर्त्तन भी हो रहा है| अलंकार-उल्लेख | मानसरोवबर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं। मुकताहल मुकता चुगें, अब उड़ि अनत न जाहिं॥३९॥ शब्दार्थ-मानसरोवर 5 सहस्नार चक्र। सुभर ८ खूब भरा। शुभ्र। केहि > क्रीड़ा। मुकताहल > मोती। मुकता > मुक्त पुरुष। अनत 5 अन्यत्र। अर्व-साधक जीव (मुक्तात्मा) सहस्रार चक्र मे पहुँचकर लवालव स्वच्छ अमृत जढ का पान कर रहा है। मुक्त पुरुष मोक्ष (मुक्ता) का आनद ले रहा। अब वह यहाँ से अन्यत्र नही जायगा। अलंकार--अन्योक्ति। यमक | गगन गरजि अंप्ृत्त चवै, कदली कबल प्रकास। तहां कबीरा बंदिगी, के कोई निज दास॥४०॥ शब्दार्व-गगन 5 आकाश। कदली < केला। कवुठ 5 कमठ। बदगी ८ नमन।| अर्थ-साधक सहस्नार चक्र मे पहुँच गया है। वहाँ निरतर अनाहत (अनहद) नाद हो रहा है और अमृत झर रहा है। कदली वन और कमल वन अर्थात् सहस्रार चक्र मे सूर्य-चंद्र नाड़ियो का प्रकाश हो रहा है। दास कवीर इस स्थिति को नमन करते है। नीब बिहूंणां देहरा, देह बिहूणां देव | कबीर तहां बिलंबिया, करे अलष की सेव ॥४१॥ शब्दार्थ-बिहूणा 5 विना। देहुरा 5 देवालय। अलष 5 अलक्ष्य। निराकार। अर्थ-सहस्रार चक्र या आकाश मे साधक एक ऐसे देवालय का साक्षात्कार करता है जो बिना किसी भौतिक आधार के टिका है। इसका देवता भी देहरहित, निराकार है। संत कवीर ऐसी जगह टिककर अलख निर्गुण निराकार पुरुष की सेवा करते हैं। अलंकार-विभावना | देवल मांहे देहरी, तिल जेहे बिसतार। मांहे पाती मांहि जल, मांहें पूजणहार ॥ ४२॥ शब्दार्व-देवल - देवालय | देहुरी > देहठी। दरवाजा | माहै 5 मे। भीतर मे। अर्व-सव कुछ शरीर मे ही है। मंदिर और उसकी देहरी भी भीतर ही है। है तो वह तिल जैसा छोटा या सूक्ष्म कितु उसका विस्तार बहुत अधिक है। इसकी पूजा मे किसी बाहरी पत्ती और जल की जरूरत नही पड़ती। पूजा करनेवाला आत्रतत्त्व और पूजा के साधन सभी निर्गुण है। इसे मानसी पूजा कहते हैं। कदीर कवल प्रकासिया, ऊग्या निर्मल सूर। निस अंपधियारी मिटि गई, बागे अनहद तूर ॥४३॥ अर्व-साधक सहस्नार चक्र मे स्थित है। यहाँ नाड़ी प्रकाश से सूर्योदय जैसा उजाला है। मन की सारी वासना मिट गयी है। भीतर अनाहत नाद हो रहा है। अलंकार-अन्योक्ति। अनहद बाजै नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियान। डर अबिगति अंतरि प्रगटे, लागै प्रेम घियान ॥४४॥

साखी २४७ अई-साधक प्रेम ध्यान मे छग गया है। फलत हृदय में अनाहत नाद हो रहा है तथा सहस्रार चक्र मे अमृत झर रहा है। ब्रह्म का ज्ञान हो गया है। अव्यक्त ब्रह्म प्रगट हो गया है। आकासे मुखि औषधा रुबों, पाताले पनिष्ठारि। ताका पांणी को हंसा पीबे, बिरछा आदि बियारि॥४५॥ शब्दार्च-आकाशे < शून्य मे। कुओँ 5 सहस्नार चक्र। पाताढे # मूलाधार मे। पनिहारि 5 कुडलिनी। हसा - शुद्ध मुक्त जीव | आदि - मूलतत्त्व | अर्य--आकाश अर्थात् शून्य मे सहस्नार चक्र एक कुएँ-सा है। कुडलिनी नाड़ी पनिहारिन के समान है। यह पनिहारिन (पानी भरनेवाली) मूलाधाररूपी पाताढ में है। यह कुडलिनी जायृत हीकर सहस्रार चक्र की ओर जाती है। तब यहाँ अमृत जल निकलता है। इस जल को मुक्तात्मा पीती है। इस तत्त्व को कोई-ही समझ सकता है। इसे कुडलिनी जागरण भी कहते है। इसका एक दूसरा अर्थ भी लिया जाता है-योगियों के यहाँ मान्यता है कि प्रत्येक मनुष्य के कपाल विवर मे एक रस (अमृत) टपकता रहता है। कितु अयोगी का यह रस मूलाधार चक्र मे स्थित सूर्य नष्ट कर देता है। इससे शरीर क्षीण होता है। साधक इस प्रक्रिया को रोक कर उस रस का पान करता है। खेचरी मुद्रा से पान करता है। खेचरी मुद्रा मे जीभ को उलट कर तालु मूल मे ले जाता है। यही सुषुग्ना का छिद्र (जिसे ब्रह्मरध्भ कहते है) है। शून्य कुओआँ है। जीभ पनिहारिन है। पनिहारिन शून्य से टपकनेवाले रस का पान करती है। सिब सकती दिसि कौंण जु जोबै, पछिष दिसा उठे घूरि) * जल मै स्पंघ जु घर करे, मछली चढ़े खजूरि॥४६॥ शब्दार्थ-सिव - पिंगला नाड़ी। सकती < इड़ा नाड़ी। जीवै 5 जोहना। प्रतीक्षा करना। पछिम दिसा * पृष्ठ भाग। सुषुम्ना। स्थध > जीव। जलू 5 मानस का उच्च स्वरूप। मछली ल कुडलिनी या मन। खजूरि - शून्यचक्र | अर्थ-यहाँ कुडलिनी जागरण की प्रक्रिया का वर्णन है। सुघुम्ना पृष्ठभाग (पश्चिम) मे उठी। इतनी तेज पछुवा हवा बही कि धूल उठने लगी। विषय-वासना उड़ने छगी। कुडलिनी या मनरूपी मछली शून्यचक्र खजूर मे पहुँच गयी। जीव सिंह मानसरोवर में स्नान करने लगा। मन उच्च भूमिका मे जा लगा। अब कोई इड़ा और पिंगला नाड़ियो की प्रतीक्षा नही करता है। दोनो नाड़ियाँ पीछे छूट गयी है। अलंकार-विरोधाभास। गप्ृत बरिस हीरा निपजै, घंटा पे दकसाल। जुलाहा भय पारषू, अनभे उतरधा पार ॥४७॥ शब्दार्थ-हीरा 5 भगवत्सन्निधि। टकसारू 5 मानसतत्त्व। घटा - अनाहत नाद। जुलाहा 5 कबीर साहब। पारषूर परीक्षण करने वाढा। पारखी अनभे 5 अनुभव। आत्मानुभूति। उतरया पार 5 ससार मुक्त । अर्व-सत कबीर कहते है कि जीव हृदय मे परमतत्त्व की अनुभूति कर ससारसागर की पार कर गया है। वह टकसाल अर्थात् जहाँ द्रव्य (मूलतत्त्व) ढलतें है वहाँ पहुँच गया है। यहाँ न नाद होता है। अमृत (आनद) की वर्षा होती है और भगवत्सन्निधि तत्त्व प्राप्त होता मप्िता मेरा कया करे, प्रेम उघाड़ी पौलि। दरसन भय दयाल का, सूल भई सुख सीड़ि ॥४८॥ शब्दार्व-पौलि - दरवाजा। दयाक 5 प्रभु। सूछ 5 दुख। सौड़ि + सफेद चादर। सौरि।

२४८ कबीर समग्र अर्व-ममता और मेरा का भाव समाप्त हो गया। प्रेम का दरवाजा खुल गया। भगवरत्दर्शन से सुख हो गया और प्रेमानद की निर्मल-स्वच्छ चादर बिछ गयी है। (६) रस की अंग कबीर हरि रस यों पिया, दाकी रही न थाकि। पाका कलस कुँभार का, बहुरि न चट़हि चाकि ॥१॥ शब्दार्व-थाकि ८ (दुर्लभ। कठिन। सीस अहकार। कलाढ 5 कलवार। गुरु। रसाइन 5 १ जिसके खाने से काया कल्प होता है। २ एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ मे परिवर्तन होता है। जैसे तॉबा सोना हो जाता है। ! अर्थ-राम नाम रूपी रसायन का सेवन और प्रेमरस पीना अत्यत रसीछा है। रस से भरा है। इसका पीना अत्यत कठिन है क्योकि रामरस (भक्तितत्त्व)े को पिलानेवाला गुरु सीस अर्थात् पूर्ण समर्पण चाहता है | अलंकार-व्यतिरेक | कबीर भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आइ। सिर सौंपे सोई पिवे, नहीं तो पिया न जाइ॥३॥ अर्य-सत कबीर कहते है कि सतगुरुखपी कलाल की भट्टी या सान्निध्य मे बहुत से शिष्य आकर बैठ गंए। कितु जो अहकार का पूर्ण विसर्जन कर प्रणत होगा उसे ही गुरुकृपा से भगव्स की प्राप्ति होगी। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। व्यतिरेक। हरि रस पीया जाणिये, जे कबहूँन जाए छुमार | मैमंता घूंमत रहे, नोही तन की सार॥४॥ शद्ार्व-जे + जो। खुमार 5 नशा उतरने पर उत्पन्न आल्स्य। मैमता 5 मतवाला मन। सार पु पि | खयाल। (सबकर सार सभार गुसाई। करब जनक जननी की नाई-तुलसी ||) -साधक ने भगवत्तत्त्व का रस पी लिया है। वह भागवती चेतना मे मस्त घूमता है। वह ऐसे खुमार मे है जो कभी उतरनेवाला नही है। उसे अपने शरीर की कोई सुधि नही है। क्योकि अब वह देह की वासना से मुक्त है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | मैंमंता तिण नो चर, साले चिता समेह |)बारि जु बॉध्या प्रेम कै,डारि रह्म सिरि थेह ॥५॥ हर .. वरिज बधा कछाछ के (दूसरी प्रतियो में)।

साखी २४९ _ शब्दार्ब-मैमता 5 १ मतवाला मन। २ हाथी। तिण 5 तृण। विषय । चरै 5 १ खाना। २ आचरण करना। चलना। सालै 5 चुभना। दर्द होना। बारि ८ द्वार। षेह 5 १ धूछ। २ . वैराग्य। अर्थ-साधक मतवाले हाथी के समान है जो घास नही खाता है। घास नही खाने का अर्थ है विषयो मे न जाना। वह भगवद्मेम के द्वार पर बधा है और सिर पर धूल डाल रहा है अर्थात् वैराग्य धारण किये है। अथवा वह वारिज (कमल) से बधा है। कमल से मतलब है भगवत्वरणारविद मे छीन है। अलंकार-रूपकातिशयीक्ति। पभैमंता अविगत रता, अकलप आसा जीति। राम अमलि माता रहे, जीवत मुकति अतीति॥६॥ शब्दार्ब-अविगत - जिसे इद्रियो से नही जाना जा सकता है। इद्रियातीत। रता अनुरक्त। अकलप 5 अकल्पनीय। अमलि 5 नशा। माता 5 मतवाला। अतीति 5 विषयातीत। दृद्धातीत। अर्थ-जो मन पहले विषयो मे मतवाढ्ा था अब वह इद्रियातीत ब्रह्म मे अनुरक्त हो गया। अकल्पनीय आशा उसे दुख देती थी। उसने उस आशा को जीत लिया है। अब वह राम-भक्ति के नशे मे बुत्त रहता है। वह जीवन और विषय द्वद्द से मुक्त हो गया है। जिहि सर घड़ा न डूबता, अब मैंगल मलि मलि नहाइ। देवल- बूडा कलस सूँ, पंषि तिसाई जा ॥ ७॥ शब्दार्थ-मैगल + मतवाला हाथी। सर ८ तालाब । देवर मदिर | तिसाई ८ प्यासा। अर्थ- जिस तालाब मे घड़ा नही डूबता है वहाँ मतवाले हाथी मल-मलकर नहाते है। नहलाये जाते है। जिस जल मे मदिर का ऊपरी कलश तक डूब गया है उससे पक्षी प्यासा ₹ जाता है अर्थात् जिस हृदय मे बिल्कुल प्रेम न था वहाँ अब विषय मुक्त मन आनद कर रहा है। कितु विषयो के जिस जल मे मदिर के ऊपरी शिखर तक डूबे है वहाँ मुक्तात्मा पक्षी प्यासा ही रह जाता है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। सबै रसाइण में किया, हरि सा और न कोइ। तिल इक घट मैं संचरे, तौ सबतन कंचन होइ ॥८॥ अर्व-यह कायाकल्प की प्रक्रिया की ओर सकेत है। कायाकल्प के लिये सारी दवाएँ कर चुका। कितु परमात्मा जैसी और कोई दवा नही मिली। परमात्मा के प्रेम का एक छोटा कण भी शरीर मे सचरित हो जाय तो शरीर सोना हो जाता है। यहाँ घट का अर्थ है शरीर (घट) मे रहने वाला मन। तन सोना होने का अर्थ है तनमन का शुद्ध और पवित्र होना। राम रसायन से मन वासना मुक्त होता है। शरीर मे नयी काति पैदा हो जाती है। (७) लांबि कौ अंग कया कमंडल भरि लिया, उज्जल निर्मल नीर। तन मन जोबन भरि पिया, प्यास न मिटी ससीर॥१॥ शब्दार्थ-लाबि < हम्बाई। निर्मल नीर 5 स्वच्छ जला भगवद्रेम। आनद। जोबन

२५० कबीर समग्र यौवन | अर्थ-तन मन यौवन रस भर पीया, कितु शरीर की प्यास कभी नही मिटी। अतृप्ति बनी ही रही। कितु शरीररूपी कमडल भगवश्रेमानद से भर गया तो तृप्ति हो गयी अलंकार-रूपक, विशेषोक्ति। मन उलस्या दरिया मिल्या, लागा पलि मलि नहॉन। घाहत थाह थे आवई, छू पूरा रहिमान ॥२॥ शब्दार्थ-दरिया 5 गहरी नदी | रहिमान > दयालु | अर्थ-मन को विषयो के छिछले नाशवानू प्रवाह से उलट दिया। फिर तो भगवप्रेम की गहरी नदी मिली। यहाँ स्थिर होकर स्नान करने या आनंद लेने छगा। क्योकि इस शाश्वत नदी के नाश या सूखने का भय नही है। इसमे ई»वर की इतनी गहरी दया भरी है कि कभी इसकी धाह नही लगाई जा सकती। हेरत हेरत है सणी, रह्या कवीर हिराइ। बूंद समानी समंद में, सो कत हेरी जाह ॥३॥ अर्थ-ईश्वर की खोज मे कीट भृग न्याय सी तदाकारिता हो गयी। प्रभु की खोज करतेकरते कबीर स्वय खो गये, अर्थात् भक्त का अहकार समाप्त हो गया। व्यक्ति जो भगवत् को अश था वह पुन उसीमे मिल गया। इसलिये अब उसकी खोज नहीं की जा सकती है| दिप्पणी-अश-अशी, व्यष्टि-समष्टि, आत्मा-परमात्मा मे विलीन हो गयी। अलंकार-दृष्टात | मीलित। हेरत हेरत हे सली, रत्या कबीर हिराह। समंद समाना डूँद भें, सो कत हेर्या जाइ ॥४॥ अर्थ-परमात्मा को खोजते-खोजते खोजने वाले साधक का व्यक्ति उसी मे छुय हो गया। खोजने पर साधक ने पाया कि विराट प्रभु व्यक्ति के भीतर समाया है। ऐसी स्थिति मे उसे कही बाहर ढूँढ़ने की आवश्यकता नही है। अलंकार-मीलित | टिप्पणी-परमात्मा सभी प्राणियों के अत करण मे स्थित है। कृष्ण कहते है- सब पदार्थों के भीतर मै ही हूँ। अर्जुन ने भगवान् से कहा- हे देव, आपकी देह के भीतर सभी देवताओं को, विभिन्‍न पदार्थों के सघो को, कमलासन पर बैठे ब्रह्मा को, सभी ऋषियों और अलौकिक सर्पों को देख रहा हूँ।- गीता ११/१५ | यह है बूद मे समुद्र का समाना। ह (८) जर्णा को अंग भारी कहीं त एहु डरीं, हलका कहूँ तो झूठ। में का जोजी राम रूँ , नैनूं कबहें न दीठ ॥१॥ शब्दार्द--जर्णा > जीर्ण। प्राचीन | हि र अर्थ-निर्गुण-निराकार ब्रह्म प्रमारहित है। उसे किसी नाप-तौछ से नहीं बताया जा सकता

साखी २५१ है। क्योंकि सगुण-साकार रूप धारण कर वह सब्से भारी और निर्गुण रूप मे सदसे हल्का हो जाता है। इसलिये उसे भारी-हल्का कुछ भी नही कहा जा सकता है। वह ईश्वर (राम) आँखों से कभी दिखाई भी नही देता है। टिप्पणी-उपनिषद् मे परमात्मा को जीवात्मा की हृदय गुफा मे रहनेवाला और अणु से भी सूक्ष्म तथा महत् से भी महान् बताया हैअणोरणीयान्महतो महीया नात्मास्य उन्तोर्निहतो गुहायाम् -कठ०२/२(२० दीठा है तो कस कहूँ, कहा न को पतियाह। हरि जैसा है तैसा रहौ, हूँ हरिवि हरिधि गुण गाइ ॥२॥ । अर्थ-परमात्म तत्त्व का वर्णन कठिन है। जिसको देखा है अर्थात् जिसकी अनुभूति हुई है अपनी क्षुद्रतावश उस पर कोई विश्वास नहीं करेगा। इसलिये कहने की कोई जरूरत नही। ईश्वर को उसी रूप मे रहने दिया जाय। केवल प्रसननत्तापूर्वक्त उनका गुण गाया जाय। भजन हो। ऐसा अद्धुत जिनि कवै, अदभुत राजि लुकाइ। बेद कुरानों गमि नहीं, कध्या न को पतियाह ॥३॥ शब्दार्थ-लुकाइ 5 छिपाकर। गमि नही 5 अगम्य। पता नही। पहुँच के बाहर। कह्योँ कहने पर | अर्थ-परमात्म तत्त्व अत्यत अद्धुत है। इस अदूभुत तत्त्व को गुप्त रखना चाहिए। जो वेद-कुरान की पहुँच के बाहर है उस तत्त्व को कहने पर कौन विश्वास करेगा। टिप्यणी-गीता कहती है कि भगवत्तत्त्व 'सर्व गुह्यतमम्'' है। गुह्यात् गुह्यतरम् है। इसीलिये इसे तपस्याहीन, अभक्त, न सुनने की इच्छावाला या जो भगवत्‌निदक है उसे कभी नही सुनाना चाहिए। इंद ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन | न चाशुश्रूषवे वाच्य न च मां यो 5भ्यसूयति गीता १८/६७ करता की गति अगम है, तूँ चलि अपणे उनमान। धीरे धीरे पाव दे, पहुँचेगे परदान ॥४॥ शब्दार्थ-करता - ब्रह्म । अगम> जानने मे कठिन। अपणै > अपने | उनमान 5 अनुमान। पाव - पैर। परवान प्रामाणिक जगह | उचित स्थान। अर्थ-प्रभु अत्यत गोपनीय है। तुम अनुमान द्वारा ही धीर-धीरे उसके पास पहुँच सकते हो। भगवत्तत्त्व अनुमान-प्रमाण का विषय है। और किसी प्रमाण से इसकी प्राप्ति नही हो सकती है। न शास्त्र, न प्रत्यक्ष अलंकार-विरोधाभास | पहुँचेगे तब कहेंगे, अमड़ैगे उस ठाँह। कम अजहूँ बेरा समेंद मे, बोलि बिगूचें कोइ ॥५॥ शब्दार्द * मंडित होगा। ठहरेगा। ठॉइ < स्थान। बेरा > बेड़ा। नाव। समेंद « समुद्र | बिगूचे 5 असमुज़ड्र ' कॉइ 5 क्‍यो। ि अर्थ-परमात्मा '' पर पहुँचकर अर्थात् भगवततत्‌व की । कक तोपु संसार सागर मे है। अभी क्यो... ''र५प

२५२ कबीर समग्र (९) दैशन की अंग पंडित सेती कहि रहे, कहा न माने कोइ। ओ अगाघध ए का दहें, भारी अधिरज होह ॥१॥ अर्थ-पडितो को समझाता हूँ। कितु कोई पडित मेरी बात मानने को तैयार नही है। उस अगाध परमात्मा को ये (ए) लोग क्या (का) कहते है ? मतहूब कि उसके असली तत्त्व को रा कहते है। यह भारी आश्चर्य का विषय है कि पडित होकर भी उन्हे ठीक-ठीक ज्ञान नही | टिप्पणी--आचार्य शकर तीन प्रकार का अध्यास मानते है- लोकवासना, देहवासना, शास्त्रवासना। शास्त्रवासना (अध्यास) वाले पडित भी सत्यको नही समझ पाते है। इसे हैरान या आश्चर्य का अग कहते है। बसे अर्पिडी पिठ में, तागति लथे न कोह। कहै कबीर संत ही, बड़ा अचंभा मोहि ॥२॥ शब्दार्थ--अपिडी - अशीरी। आत्मा | पिड ८ शरीर | अर्थ-पिडरहित आत्मा का निवास स्थान शरीर है। कितु उसको कोई देख नही पाता है। सत कबीर कहते है कि सत होने पर भी बहुतो को समझ में नही आता है। यह आश्चर्य की बात है। अलंकार-विरोधाभास | (५०) ले को अंग जिहि बन सीह न संचरे, पंछि उड़े नहि जाइ। रैनि दिवस का गमि नहीं, तहाँ कबीर रहा ल्यो छाह ॥१॥ शब्दार्व-है 5 लव। सीह 5 सिह। अहकार। सचरै 5 सचरण। पषि - पक्षी। इंद्रिय, मन। लल्यो 5 लव | प्रेम। लाइ < छागि। लगा। अर्व-ससाररूपी जगल से भिन्न एक दूसरा जगल है। अतीच्च्रिय वन। निराकार वन। जहाँ अहकार रूपी सिह का सचार नही है। जहाँ इद्रिय रूप पक्षी नही पहुँच सकते। वहों रात-दिन नही होता अर्थात् वह काछ की सीमा से भी परे है। सत कबीर ने ऐसे ही स्थान पर ध्यान लगा रखा है। सुरति ढीकुली ले जल्यौी, मन नित ग्रेलन हार। कंबल कुवों में प्रेम रस, पीवै बारंवार ॥२॥ शब्दार्य-ठीकुली 5 एक यत्र जिसके द्वारा कुएँ से पानी निकाला जाता है। लेज > रस्सी। ल्‍्यो - प्रेम। ढोलनहार - ढोनेवाला। अर्थ- सहस्नार चक्र कुओं है। सुरति ढेकुली है;। प्रेम की रस्सी ढेकुली से बधी है। मन सुरति ढेकुली में रस्सी (प्रेम) लगाकर भगवदानद का जल खीचती है। उसे बार-बार पीकर प्रसन्न होती है। ७० है

साखी २५३ अलंकार-सागरूपक || गंग जमुन उर अंतरे, सहज सुंनि स्यौ णाद॥ तहाँ करबीरे मठ रच्या, मुनि जन जोदे दाद ॥३॥ अर्थ-संत कबीर बाह्यसाधना के विरोधी है। इसलिये वे कहते है, गगा-जमुना (इड़ापिगल) तुम्हारे भीतर ही विद्यमान है। शून्य शिखर (आकाश) मे घाट है। सत कबीर ने वही मठ मे डेरा छाल दिया है। अर्थात् परमात्म ध्यान मे मन है। मुनि लोग वहाँ पहुँच नही पाते है। वे पुस्तको मे वहाँ पहुँचने का रास्ता खोज रहे है। अलंकार-व्यतिरिक | (११) निहकर्मी पतिब्रता कौ अंग कबीर प्रीतड़ी तौ तुझ सौं, बहु गुणियाले कंत। जे हँसि बोलो और सौं, तो नील रंगाऊँ दंत ॥१॥ शब्दार्थ-प्रीतड़ी > प्रीति। गुणियाढे > गुणवाले। कत प्रिय। प्रभु। नील रगाऊँ दत (मुहा०) 5 घिक्कार। मुँह काछा। और सौ 5 और सो (यहाँ) माया। अर्थ-हे प्रभू, तुम सर्वगुणसपनन हो। इसलिये प्रेम तो केवल तुमसे किया जा सकता है। और से या माया से हँसकर बोढ़ूँ तो मुझे धिक्कार है। मेरा मुँह काला हो। नैनों अंतरि आव तूँ, ज्यूँ हो नैन झँपेउ। नो हों देखों और कूँ, नो तुझ्न देखन दे ॥२॥ . अर्थ-हे प्रभु, तू मेरी आँखो मे आकर निवास कर। तेरा रूप आँखो मे भरकर आँखे बंद कर लेना चाहता हूँ। न मै दूसरे को देखूँ। न तुझे दूसरे को देखने दूँ। तादाल्य से भरा यह ऐकातिक प्रेम का उदाहरण है। मेरा मुझ्न मे कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा। तेरा तुश्तकों सोपता, दया लागे है मेरा ॥३॥ अर्थ-मुझ मे मेरा कुछ नही है। सब कुछ तेरा यानी भगवान का है। “मै? भी तेरा हूँ। इसलिये मै (अहम) को तुझे यानी ईश्वर को अर्पित करने मे क्या लगता है ? टिप्पणी-अहम् अर्थात् व्यक्तित्व का समर्पण ही भक्ति है। इसमे “त्वदीयमू वस्तु गोविद तुभ्यमेव समर्पये” की प्रंतिध्वनि है। कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाह। नैनूँ रमइया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ ॥४॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि सिदूर के स्थान पर काजल नही छुगाया जा सकता है। उसी प्रकार जिन आँखो मे राम बसे है वहाँ विषयो के लिये कहाँ स्थान है ? यह भी हो सकता है हा जिन आँखो ने राम की साधना की उन आँखो से दूसरे देवताओं की साधना नही हो सकती । राम रूप से दृष्टि बढ़ती है और विषय काजल से दृष्टिदोष पैदा होता है। कबीर सीप समंद की, रटे एिंग्यल पियास। समदहि तिणका करि गिण स्वॉति बूंद की आस ॥५॥ उर्थ-सत कबीर कहते है कि समुद्र की सीपी प्यासी रटती है। समुद्र मे रहकर भी समुद्र

२५४ कबीर समग्र को तिनके के समान व्यर्थ गिनती है। स्वाति जल चाहती है। सीपी व्यक्ति है। समुद्र विषय ससार है। व्यक्ति विषय समुद्री ससार को कुछ नही समझता। वह भगवानूरूपी स्वाति को चाहता है। अलंकार-अन्योक्ति | कबीर सुख को जाइ था, आगे आया दुख। जाहि सुख घरि आपणें, हम जारी अठ दुख ॥६॥ अर्थ-सुख खोजने पर दुख मिलता है। यह ससार का सामान्य नियम है। मै भी ससार , सुख के चक्कर मे दौड़ रहा था। कितु सदगुरु की कृपा से नकली ससारिक सुख को हमने भगा दिया और अनत ब्रह्माड पति के प्रेम का सुख प्राप्त कर लिया। दोजग तो हम अंगिया, यहु उर नाहीं मुझ्न। भिस्त न मेरे चाहिये, बा पियारे तुन्न ॥७॥ शब्दार्च-दोजग 5 दोजख। नरक। अगिया > स्वीकार किया। भिस्त 5 बिहिश्त स्वर्ग बाझ > वर्ज्य। छोड़कर। अर्व-हे प्रभु, तुम्हारे साथ नरक भी स्वीकार है। कितु तुम्हारे बिना स्वर्ग मुझे नहीं चाहिए | जे वो एके न जॉणियाँ, तो जोण्यौँ सब जाँण। जे वो एक न जॉणियों, तो सबहीं जाँण अजाँण ॥८॥ अर्थ-एक ईश्वर की ही जानने की कोशिश करो। उस एक को जानना सपूर्ण को जान लेना है। अगर जिस एक से सब हुए है तो सब जानने पर भी अज्ञान नही मिटेगा। क्योंकि प्रभु प्रज्ञान ब्रह्म है| कबीर एक न जाणियों, तौ यहु जॉण्यों क्या होह। एक ते सब होत है, सब तें एक न होह ॥९॥ अर्थ-एक प्रभु को न् जाना तो बहुत से देवी-देवता और सासारिक वस्तुओ को जानने से क्या छाभ है ? एक से सब होते है। सबसे एक नही होता है। टिप्पणी-उपनिषद् मे कहा है- 'एको5हमू बहुस्याम् |" एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एक रूप बहुधा य करोति |-कठ० | - जब लग भगति सक्कॉपता, तथ लग निर्फल सेव। कहै कबीर वे क्यूँ मिले, निकामी निज देव ॥१०॥ शब्दार्थ-सकॉमता 5 कामनायुक्त। इच्छा से भरा। निर्फल 5 निष्फल। व्यर्थ। सेव सेवा। निहकामी + निष्कामी। अर्थ-प्रभु कामनारहित है। इसलिये वह कामनारहित को ही मिलता है। जब तक ईश्वर से कुछ पाने की इच्छा है तब तक उसकी उपासना व्यर्थ है। आसा एक जु शम की, दूजी आस निरास। पाणी माँहें छर करे, ते भी मरे पियास ॥११॥ अर्व-आशा केवल राम की है। और किसी देवी-देवता की आशा व्यर्थ है। यह आशा वैसी ही है कि आदमी पानी मे प्यासा मरे। क्योकि और सभी देवी-देवता विषयो की पूर्ति करने वाले है। केवल राम है विषय से उठाकर परम तत्त्व मे परिणत करते है। छतुलनीय-जल मे मीन पियासी-कबीर० हि जे मन लागे एक ऊँ, तौ निरदात्या जाइ। तूरा दुइ मुखि बाजणों, प्याह तमादे खाइ ॥१ २॥

साखी २५५ शब्दार्थ-निरबाल्या ८ निस्तार। तूरा 5 बाजा। | अर्य-दो की साधना ठीक नही है। एक परमात्मा मे मन लगाने से ही निस्तार है। जो बाजा दोनो ओर से बजाया जाता है वह उचित ही दोनो ओर से तमाचा खाता है। अलंकार-अर्थान्तरन्यास | कबीर कलि जुग आइ करि, कीये छहुतज मीत। जिन दिल बंधी एक सूँ, ते सुखु सोने नर्चीत ॥१ ३॥ अर्थ-मत कबीर कहते है कि कलियुग (विषय) ने मुझसे मित्रता करनी चाही। कितु मेरा दिल तो एक परमात्मा से बध गया है। अब मै निश्चित सो रहा हूँ। कलियुग मेरा क्या करेगा ? अलंकार-अन्येक्ति। 5 कबीर कूता राम का, भुतिया मेरा नाएँ। गलै राम की जेबड़ी जित खैचे तित जाउँ।॥१४॥ अर्थ-यह प्रपनन भक्ति का सर्वोत्तम उदाहरण है। कबीरदास जी कहते है कि मै (भक्त) राम का कुत्ता हूँ। मेरा नाम मुतिया (मुक्ति चाहने वाला) है। मेरे गले मे राम भक्ति की रस्सी पड़ी है। वह प्रभु जिधर खीचता है उधर ही जाता हूँ। तो तो करे त बाहड़ो दूरि दूरि करे तो जाउँ। ज्यूं हरि राजे त्मू रहो, जो देगे सो खाऊँ।॥१ ५॥ शब्दार्य-बाहुड़ो 5 बहुरना। लौटना। अर्थ-भक्त श्री राम का कुत्ता है। बिल्कुल उन्ही पर निर्भर। वे तू तू करते है तो छौट आता हूँ। दुर दुर करते है तो चला जाता हूँ। ईश्वर की इच्छा है जैसे चाहे रखे। जो दे वह खाऊँ। इसलिये कि भक्त ने सर्वस्व समर्पित कर दिया है। योग-क्षेम उसी प्रभु के अधीन है। भक्त की कोई निजी इच्छा नही होती है। मन प्रतीति न ग्रेम रस, नो इस तम मै ढंग। कया जाणों उस पीव ऊँ, कैसे रहसी रंग ॥१ ६॥ शब्दार्व-रहसी - रहेगा। रग 5 व्यवहार | अर्थ-भक्त अपनी नम्रता व्यक्त करते हुए कहता है कि मुझमे न तो पूर्ण विश्वास है। न पूरा भगवत्रस (प्रेम) है। न भक्ति का ठीक-ठीक छग या पद्धति का ही ज्ञान है। पता नहीं है] प्रभु मेरे साथ कैसा व्यवहार करेगे। (जैसा भी हो मैने तो आत्म समर्पण कर ही दिया] उस संप्रव का दास हों, कदे न होइ अकाज। पतिज्ता नांगी रहे, ती उसही पुरिस कौ लाज ॥१७॥ श्दार्य-सम्रथ + समर्थ | कदे > कभी | अकाज 5 नुकसान | नॉगी 5 नगी। अर्थ-मै उस समर्थ पुरुष का दास हूँ जो सपूर्ण सृष्टि के उद्धव, पालन, प्रढ्य का स्वामी है। मेरा कभी अहित या नुकसान नही हो सकता। मै पतिव्रता स्त्री के समान हूँ। जैसे पतिब्रता नगी रहे तो उसके पुरुष के लिये छज्जा की बात है वैसे ही भक्त का दुख भगवान् का दुख है। अलंकार-दृष्टात | घरि परमेसुर पॉहुणों, सुणी, सनेही दास। घट रस भोजन भगत्ति करि, ज्यू कूदे न छड़े पास ॥१ ८॥ अर्थ-ओ प्रेमी भक्तो, सुनो। तुम्हारे मन मदिर मे परमेश्वर अतिथि रूप मे विराजमान है। छह रसो का भोजन उसे कराओ। अपने षड रसो (काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर, मोह) को छोड़ दो। ऐसी स्थिति मे प्रभु तुम्हे कभी नही छोड़ेगा |

२५६ कबीर समग्र टिप्पणी-गीता में कहा गया है कि ईश्वर सभी भूतो के हृदय में विराजमान हैईश्वर सर्वभूतानाम् हृद्देशेडर्जुन तिप्ठति। पूर्वी भाषाओ में पहुना दामाद ओर वबहनोई को कहते हैं। यहाँ पहुणों पति के लिये आया है। राजस्थानी मे पहुणा पति को कहते है। अलंकार-रूपक | (१२) चितावणी कौ अंग कबीर नीदति आपणी, दिन दस छेहु बजाह्। एपुर पट्ठन ए गली, बहरि न देखै आह ॥१॥ शब्दार्थ-चितावणी < चेतना उत्पन्न करने के वाक्य। नोवंति & दरवारों की उद्योढ़ियों पर बजने वाले बाजे | पट्टन 5 पत्तन। नगर। दिन दस कुछ दिन। अर्थ-सत कवीर कहते है कि अपनी शक्ति एवं शान का प्रदर्शन कुछ दिन कर लो। मृत्यु अनिवार्य है। उसके बाद इस पुर नगर ओर इन गल्यो को देखने का अवसर नहीं मिलेगा। यह मूलत व्यग्य है। कहना यह है कि सर और न्याय का जीवन विताओ। जिनके नौदति बाजती, मैंगल बेंपते बारि। एके हरि के नोॅव बिन, गए जन्म सब हारि॥२॥ अर्व-सामान्य जन की तो बात ही क्या 8? जिनके दरवाजे पर नीदत दजती थी। मत्त हाथी वेंघे रहते थे, भगवान का नाम न जपने के कारण उनका मानव जन्म व्यर्थ हो गया। ढोल दमामा दड़बडी, सहनाई सेंगि भेरि। औसर चल्या बजाह करि, है कोइ राख फेरि ॥३॥ अर्थय-ढोल, दमामा (धीसा, बड़ा नक्कारा), उग्गी, शहनाई, भेरी (म्रदग के समान एक बाजा) आदि वाजे वजाकर समय आने पर चले गये। मतठव यह कि राजपाठ की सारी भक्ति रहते हुये भी यमदूत उन्हे ले गये। अब कोई ऐसा नहीं है जो उनको छोटा कर ला सकता है। चल्या मे व्यग्य है। जैसे किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति को जाते समय अल्यत उपेक्षा होजाय। न चाहकर भी समय पूरा होने पर खेल खत्म कर देना पड़ा। अलंकार-वक्रोक्ति | सातो सबद जु बाजते, परि घरि होते राग। ते मंदिर खाली पड़े, बैसण लागे काय ॥४॥ अर्थ-पहले व्यक्ति की दशा ब्ताई। अब उस व्यक्ति के निवास महल की दशा दताते है! जिस मदिर मे सातो स्वर बजते थे। प्रत्येक घड़ी मे राग-रागनियो की ध्वनि उठती थी।वह मदिर खाली पड़ा है। उस पर कोए बैठने लगे है। यह घर का वर्णन है और शरीर का भी। शरीर भी तो घर है। कोआ बैठना मुहावरा, है जिसका अर्थ है घर का नाश होना। सदीर थोड़ा जीवर्णों, भाड़े बहुत मेंग्रण | सबटी ऊभा मेल्हि गया, राब रंक सुलितान ॥५॥ शब्दार्व-माड़े -मडित किये। मैंडाण > निर्माण। ऊभा > ऊर्ध्व। ऊँचा। मेल्हि गया मिट गया। ० रा

साखी २५७ अर्थ-सत व्यग्य करते हैं कि थोड़े दिन की जिदगी मे कितने बड़े-बड़े भवन बनाए। किंतु मृत्यु देव ने राजा, रक और सुल्तान सब के भवनो को गिरा दिया। सभी नाशवानू है। इक दिन ऐसा होइगा, सद सूँ पड़े बिछोइ। राजा राणा छनत्नपति, सावधान किन होइ ॥६॥ अर्थ-मृत्यु एक दिन अवश्य आयेगी। तब सब से बिछोह, अछगाव हो जायगा। ऐ राजा, राणा, छत्रधारी अभी क्यो नही सावधान हो जाते ? ऐसा करो जिससे बिछोह का दुख कम कष्ट दे | कबीर पटण कारियाँ, पंच चोर दस द्वार। जम रॉणों गढ़ भेलिसी, सुमिरि लै करतार॥७॥ शब्दार्थ-पटण - पत्तन। नगर। कारिवाँ 5 काफिला। पच चोर 5 पॉच इद्रियाँ और उनके विषय- रूप, रस, गध, स्पर्श, शब्द | दस द्वार 5 दो आँखे, दो कान, दो नाके, मुख, मल द्वार, ब्रह्म रध्र,। भेलिसी > भेदन करेगा। करतार 5 सर्जक। ईश्वर। अर्थ-यह शरीर एक नगर के समान है जिसमे लुटेरे तो पाँच है। कितु दरवाजे दस है। उन्हे दरवाजों से रोका भी नही जा सकता है। रक्षा का साधन कौन कहे उल्टे अरक्षा की विशेष स्थिति है। यही कारण है कि जब यमराज इस शरीररूपी नगर पर चढ़ाई करता है तो यह शरीर जिसे चोरो ने बिल्कुल खोख़ला कर दिया है तुरन्त पराजित हो जाता है। ऐसे मे ईश्वर के स्मरण से ही जान बच सकती है। क्योकि ईश्वर सब का रक्षक है। स्वामी है। अलंकार-रूपक । कबीर कहा गरबियो, इस जीवन की आस। फूले दिवस चारि, खंखर भये पलास ॥८॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि इस जीवन की कोई' आशा मत करो। कोई गर्व न करो। यह जीवन पलाश फूल (टेसू) के समान चार दिन (बाल्यकाल, किशोरावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था) का है। चार दिन चमकने के बाद जैसे टेसू के छाल फूल सूख (खखर) जाते है वैसे ही यह जीवन समाप्त हो जाता है। अलंकार--निदर्शना | कबीर कहा गरवियी, देही देखि सुरंग। बीछड़ियों मिलिदो नहीं, ज्यूं कॉचली भुबंग ॥९॥ शब्दार्थ-सुरग 5 सुदर रग। देही 5 शरीर। कॉचली 5 केचुल। भुवग ८ भुजग। सर्प। अर्थ-ऐ मनुष्य, इस शरीर की सुदरता को देख-देख कर क्यो घमड करते हो। यह शरीर जब आत्मा से अलग हो जायगा तब मिलना वैसे ही नही होगा जैसे केचुठ सॉप से पुन नही मिल पाता है। यह शरीर केचुल के समान अलग होने वाला है। अलंकार-उपमा | कबीर कहा गरबियौ, ऊँचे देखि अवास। काल्हि परबूँ भ्वैं लेटणों,-ऊपरि जामै घास ॥१ ०॥ शब्दार्थ-अवास > अवास। निवास। भ्वै > भूमि। अर्थ-सत कबीर कहते है कि ऊँचे-ऊँचे महलो को देखकर गर्व क्यो करते हो ? कल (भविष्य मै) जब ये भवन गिर जायेंगे तो इन पर घास जम जायगी। कोई मनुष्य या जीव नही दिखाई पड़ेगा। | कबीर कहा गरबियौ, चॉम लपेटे हडडू। हैबर ऊपरि छन्न सिरि, ते भी देवा खड्ढ ॥११॥

२५८ कबीर समग्र शब्दार्थ-हैबर - श्रेष्ठ घोड़े। खड्डे 5 गड्ढा। कब्र | हड्ड ८ हड्डी अर्थ- सत कबीर कहते है कि हड्डियो पर चाम लिपटे शरीर पर गर्व क्यो करते हो ? वे राजा जिसके सिर पर क्षत्र रहते थे और जो श्रेष्ठ घोड़ो पर चढ़ते थे उन्हे भी कब्र के गड्ढे मे जाना पड़ा है। कबीर कहा गरबियो, काल गहे कर केस। नो जॉाणो कहाँ मारिसी, के घरि के परदेस ॥१ २॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि गर्व क्यो करते हो ? काल सभी के केश (बाल) को पकड़े है। अपनी मुट्ठी मे किये है। सभी काल के वश मे है। वह अवश्य ही सबको मारेगा। यह भी पता नही कि मृत्यु घर मे होगी या परदेश मे ? यह ऐसा संसार है, जैसा सैबल फूल। दिन दस के ब्योहार की, झूठे रंगि न भूल ॥१ ३॥॥ अर्थ-यह ससार सेमल के फूल के समान सिर्फ देखने मे सुदर है। कितु यह नाशवान् तथा असुदर है। निस्तत्त्व है। ससार मे मात्र थोड़े (दस दिन) दिनो तक रहना है। कोई झूठे रगो को देखकर भ्रम न करे। क्योकि इस ससार की रचना रगहीन है। तुलनीय-शून्य भीति पर चित्र रग नहि तनु बिनु लिखा चितेरे |-तुलसी अलंकार-उपमा | जॉमण मरण विधारि करि, कूड़े कॉम नियारि। जिनि पंपूँ तुझ्न चालणों, सोई पंथ सेंवारि ॥१४॥ अर्थ-जीवन मरण के बारे मे अच्छी तरह सोच कर बुरे कर्मो को छोड़ो। तुम्हे भगवत्मक्ति के जिस रास्ते पर चलना है उस रास्ते को 8358 सरल बनाने की कोशिश करो। दिन रखवाले बाहिरा, चिड़ियें खाया खेत। आधा प्रधा ऊबरे, चेति सके तो चेति ॥१ ५॥ शब्दार्थ-रखवाले 5 रक्षक | आत्मा या गुरु। चिड़िया 5 विषय पक्षी। प्रधा 5 परार्ध। दिन का उत्तर पक्ष । खेत > क्षेत्र। जीवन | अर्थ-बिना आत्ममचैतन्य सा सदगुरु की कृपा के विषयपक्षी तुम्हारे जीवन क्षेत्र को खा रहे है। दिन का पूर्वार्ध और परार्ध बीतने की स्थिति मे है। अब जीवन की सध्या आने ही वाली है। अब चेत सको तो चेतकर सदूगुरु या प्रभु की शरण मे जाओ। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | हाड़ जले ज्यूँ छाकडी, केस जले ज्यूँ घास। सब तन जलता देखि करि, भया कबीर उदास ॥१ ६॥ अर्थ-ऐ मनुष्य, देखो, मरने के बाद हड्ड्डियाँ छकड़ी के समान जलती है। केश घास, जैसे जलते है। सारे शरीर को जछते देखकर सत कबीर दुखी हो गये। इस शरीर की क्यो इतनी सेवा की गयी ? अलंकार-उपमा | कबीर मन्दिर ढहि पड़या, सेन्ट भई सैयार। कोई चेजारा चिणि गयो, मिल्या न दूजी यार॥१७ शब्दार्थ-मदिर 5 घर। शरीर। सेट 5 (स+ईट) ईट सहित। सैबार 5 (स शैवाल)। घास फूस। चेझजारा 5 कारीगर। चिणि 5 चुनना। बनाना | अर्थ-यह शरीर एक भवन के समान है। किसी विशेष कारीमर ने इसका निर्माण किया है। वह कारीगर दूसरी बार नही मिला कि इस गिरे शरीररूपी भवन का पुन निर्माण करे।

साखी २५९ शरीर के हाड़-मॉस ही ईटे और शैवाल है। ये पुन भवन निर्माण के काम मैं नही आ सकते है| अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | कबीर देवल दहि पड़या, इंट भई सैवार। करि चेजारा सौं प्रीतिड़ी, ज्यों ब्हे न दूजी बार ॥१ ८।॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि शरीररूपी मदिर गिर गया। ईटे या शरीर के सारे तत्त्व जिन तत्त्वो. के आधार पर शरीर मदिर खड़ा था ढछहकर सेवार बन गये। ऐ लोगो, उस निर्माता (ईश्वर) से प्रेम करो। इसलिये कि यह शरीर भवन दूसरी बार न गिरे। दूसरा जन्म-मरण न हो। मुक्ति मिल जाय | अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। हु कबीर मंदिर लाष का, जड़िया हीरें लालि। दिवस चारि का पेषणों, बिनस जाइगा काल्हि॥१९॥ अर्थ-यह शरीररूपी भवन लाखो का है। इसमे वासना के हीरे, छाल आदि जड़े है। कितु इतने सुदर शरीर भवन को चार दिन (बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था) ही देखा जा सकता है। कल (भविष्य मे) इस शरीर का नाश हो जायगा। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। श्लेष | कबीर धूलि सकेलि करि, पुड़ी ज बॉधी एह। -. दिवस चारि का पेषणाँ, अंति षेह का घेह ॥२०॥ शब्दार्थ-सकेलि - सग्रह। घेह 5 धूल। पुड़ी ८ पुड़िया। अर्व-यह शरीर धूल को इकट्ठा कर बनाया गया था। जैसे किसी ने धूल की पुड़िया बॉधी हो। यह शरीरपुड़िया चार दिनो तक ही देखी जायगी। फिर तो पुड़िया नष्ट हो जायगी और रह जायगी केवल धूल | कबीर जे घंघे तो धूलि, बिन धंधे धूले नही। ते नर बिनठे मूलि, जिनि धंधे में ध्याया नहीं॥२१॥ शब्दार्य-धघे ८ धधा। कार्य । दौड़-धूप। कर्म। धूल नही 5 साफ नही होता) बिनठे विनष्ट हुए। ध्याया 5 ध्यान किया या दौड़े। ..अर्थ-सत कबीर कहते है कि यदि कर्म मे छगते है तो धूलि लगती है। कर्मबधन बन जाता है। कितु बिना कर्म मे छंगे कर्ममरधन समाप्त नही होता है। वह व्यक्ति तो निश्चित नष्ट हो गया, मूलत नष्ट हो गया जो कर्म निरत नहीं हुआ या कर्म का ध्यान नही किया या कर्म में दौड़ा नही। टिप्पणी-स्वामी सहजानद सरस्वती ने देहकर्म से लेकर कर्म के पॉच प्रकार बताये है। कर्म से बधन और मोक्ष दोनो की प्राप्ति होती है ।-गीता हृदय । कबीर सुपने रैनि कै, ऊघड़ि आये नैंन। जीव पड़या बहु लूटि मै, जागे तो लैण न दैण ॥२२॥ अर्थ-यह जीवनस्वप्न के समान है। जैसे रात के सपने मे आँखे खुलती है और जीव अपने को लुटता पाता है। कितु जागने पर लूट से उसका कुछ लेना-देना नही है। कही कोई लूट नही देखता है। इसी प्रकार जीवन के सुख-दुख स्वप्नवत् है। सुख-दुख दोनो अज्ञान है। अलंकार-समासोक्ति | कबीर सुपने रेनि कै, पारस जीय मैं छेक। जे सोऊँ तो दोह जणौं, जे जायूँ तौ एक ॥२३॥

२६० कबीर समग्र शब्दार्थ-पारस > स्पर्श। छेक 5 अतर। भेद । अर्थ-व्यक्ति जब अज्ञान रात्रि मे सपना देखता है तो वह जीव-ब्रह्म मे भेद या अलगाव का स्पर्श या अनुभूति करता है। कितु अज्ञान निद्रा से जागते ही आत्मा-परमात्मा, जीव और ब्रह्म एक दिखाई पड़ते है। कबीर इस संसार मे, घणँ मनिष मतिहींण। राम नाम जाणी नही, आये टापी दीन ॥२४॥ मुहा०-टापी दीन ८ पट्टी बॉधना। अज्ञानी होना। अर्थ-ससार के अधिकतर (घर) मनुष्य बुद्धि-हीन है। मूर्ख है। ज्ञानचक्षु पर विषयो की पट्टी बॉघे रहते है। फलत राम नाम नही जान सकते है। कहा कियो हम आइ करि, कहा करेंगे जाइ। इत के भए न उत के, चाले मूल गेंवाह ॥२ ५॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि जीव इस ससार मे क्यो आया ? आया तो क्या किया ? अब यहाँ से जाकर क्या करेगा ? वह न यहाँ का हुआ न वहाँ का। यहाँ का साधक ही परमात्मा के यहाँ आदर पाता है। जिसका छोक नही उसका परलोक नही। उल्टे उसने सचित कर्मों की मूल पूजी भी गँवा दी। आया अणआया भया, जे बहुरता संसार। पडया भुलावों गाफिलाँ, गये कुबुधी हारि ॥२६॥ अर्थ-इस ससार मे आना, न आना बराबर हो गया। यह ससार तो बहुतो मे अनुरक्त है। वह भूल में गाफिल था। कुबुद्धि के कारण उसकी पराजय हो गयी। ऐसा न होता तो वह भगवान् से जुड़ कर अपने जीवन को सुधार छेता। कबीर हरि की भगति बिन प्रिगि जीमण संसार। धूँवों केरा धौलहर, जात न लागै बार ॥२७॥ शब्दार्-प्रिगि घिक्। जीमण 5 जीवन। धौलहर 5 धवल गृह। ऊँचा भवन। बार देर। अर्थ-सत कबीर कहते है कि परमात्मा की भक्ति के बिना यह सासारिक जीवन व्यर्थ (धिक) है। इसे घिक्कार है। जैसे धुएँ का ऊँचा भवन क्षण मे नष्ट हो जाता है वैसे ही यह जीवन है। कहना यह है कि हरि भक्ति ही असली चीज है। अलंकार-दृष्टात। जि हरि की चोरी करी, गये राम गुण भूलि। ते बिधना दागुल रचे, रहे अरध मुखि झूलि॥२ ८॥ अर्थ-जो व्यक्ति प्रभु के गुणो को भूलकर उनकी भक्ति से जी चुराता है। विधाता ने उसे बगुला बनाया है। वह केवढ लोभ पर ध्यान रखता है। मुख झुकाकर मछली पर ध्यान करता है। वकु़ध्यान प्रसिद्ध है। यहॉ लोभी की निदा है। 'झूलि'मे ध्वनि यह है कि लोभ की पूर्ति कभी होती नही। वह सदा अतृप्ति के झूले मे झूलता रहता है। अलंकार-गग्योव्ेक्षा | माटी मलणि कुँभार की, घणी सहै सिरि लात। इंहि औसरि चेत्या नही, थूका अब की घात ॥२९॥ शब्दार्थ-मलणि 5 मलना। गूथना। घणी 5 घना। बहुत अधिक। इहि > इस। अर्थ-मिट्टी कुम्हार द्वारा मली जाती है। वह उसे छात से पीसता है। पीसने के बाद घड़ों बनता है। ऐसे ही मनुष्य अत्यत कष्ट से पैदा होता है। जनमते-मरते दुस्सह दुख होता है। लिन मब+

साखी २६१ मनुष्य को चाहिए कि वह चेत जाय। चेतकर प्रभुशरण मे जाय जिससे जन्म-मरण का चक्र छूट जाय। इहि औसरि चेत्या नहीं, पसु ज्यूँ पाली देह। राम नाम जाण्या नही, अंति पड़ी मुख षेह ॥३०॥ अर्थ-इहि औसरि अर्थात् ससार मे रहते हुए भागवत चेतना नही आयी। केवल जानवरो के समान आहार, निद्रा, मैथुन आदि मे मस्त रहा। देह मोटी हो गयी। राम नाम नहीं जाना। फलत अत समय मे मुख मे धूल पड़ेगी। मिट्टी मे मिलना होगा। अलंकार-उपमा | राम नाम जाण्यौ नही, लागी मोटी षोड़ि। काया हॉडी काठ की, ना ऊ चढ़े बहोड़ि॥३१॥ शब्दार्थ-षोडि 5 खोट। दोष। बहोड़ि - दुबारे।' | अर्थ-राम नाम नही जाना। इससे बड़ा पाप लगा। यह शरीर काठ की हड़िया जैसा है। जैसे काठ की हड़िया दुबारे आग पर नही चढती वैसे ही मनुष्य को बार-बार राम भजने का अवसर नही मिलता है। अलंकार-रूपक | राम नाम जाण्यो नही, बात बिनंठी मूलि। हरत इहाँ ही हारिया, परति पड़ी मुख धूलि॥३२॥ अर्थ-हे जीव, राम नाम नही जानने से तुम्हारा मूल ही बिगड़ गया। तुम मूलत नष्ट हो गए। ससार मे धन, यश आदि का हरण करने मे तुम स्वय हार गए। तुम्हारे पुण्यो का हरण हो गया। अत मे मिट्टी मे मिल गए। राम नाम जाण्यो नही, पाल्यो कटक कुटुंब | धंधा ही मे मरि गया, बाहर हुई न बंध ॥३ ३॥ हर अर्थ-राम नाम से प्रेम न कर परिवार समूह (कटक) बढ़ाया। धधे (उन्द) मे ही मर गया। कभी अपने अहकार वामी (बब) से बाहर नही आ सका। अहकार मे भूला रहा। मनिषा जनम दुलभ है, देह न बारंबार। तरवर ये फल भ्ड़ि पड़या, बहुरि न लागै डार ॥३४॥ अर्थ-मनुष्य जन्म अत्यत कठिन है। मानव देह बार-बार नही मिलती है। जैसे पेड़ से गिरा फल पुन पेड़ मे नही लगता वैसे ही मनुष्य का शरीर छूट जाने पर पुन नही प्राप्त होता है। अलकार-दृष्टात | कबीर हरि की भगति करि, तजि विषिया रस चोज। बार बार नही पाइए, मनिषा जन्म की मौज ॥३५॥ शब्दार्य-चोज - हँसी ठट्ट | मौज 5 आनद | अर्थ--म्त कबीर कहते है कि हे जीव, हरि भक्ति कर। विषयो का रस और हंसी ठट्टा छोड़। मनुष्य जन्म का आनद बार-बार नही मिलेगा। | कबीर यहु तन जात है, सके तो ठाहर लाइ। सेवा करि साध की, के गुण गोबिंद के गाइ॥३ ६॥ शब्दार्य-ठाहर 5: ठहराने वाला। ठहरने का स्थान। अधिष्ठान | अर्थ-सत कबीर कहते है कि यह शरीर छूट रहा है। मृत्यु आ रही है। सभव हो तो किसी सहारे (अधिष्ठान) की खोज करो। यह अधिष्ठान या तो साधुओ की सेवा होगा या भगवान का गुणानुवाद होगा।

 कबीर यह तन जात है, सके तो लेहु बहोड़ि। नागे हायूँ ते गए, जिनके लाख करोड़ि॥३७॥ अर्व-सत कवीर कहते है कि यह तन जा रहा है। मृत्यु आ रही है। इस शरीर को लौटा सको तो लौटा लो। कैसे लौटेगा यह शरीर ? भगवत्मक्ति से। क्योकि हरि भक्त की मृत्यु नही आती है। वाकी तो जिनके पास लाख करोड़ थे वे भी नगे हाथ चले गए। कुछ और कोई उनके साथ न जा सका। सब खाली हाथो गये। यह तनु काचा कुंभ है,चोट थहूँ दिसि खाइ। एक राम के नाव बिन, जदि तदि प्रले जाइ॥३ ८॥ अर्थ-यह शरीर कच्चे घड़े के समान है। चारो ओर से विषय-वासनाओं की चोट खाता है। प्रढय तो बदा कदा होता ही रहता है। इसलिये राम नाम का सहारा छे। राम नाम रूपी नाव के बिना यह कच्चा घड़ा प्रढय मे गल जायगा। जो घड़ा राम नाम की प्रेमाग्नि से पक गया है वह प्रठय मे भी बचा रहेगा। अलंकार-विनोक्ति। यह तन काचा कुंभ है, लिया फिरे था साथि। ढबका लागा फुटि गया, कछू न आया हाथि ॥३ ९॥ शब्दार्थ-ढबका 5 चोट | अर्थ-यह शरीर कच्चा घड़ा है। मै इसे साथ लिये घूम रहा था। कितु काल की हल्की चोट से टूट गया। वह इतना बेकार था कि फूटने पर कुछ भी हाथ नही छगा। बहुत से टूटे वर्तन भी विक जाते है। कितु शरीर-वर्त्तन टूटते ही व्यर्थ हो गया। काँची कारी जिनि करे, दिन दिन बच्चे बियाधि। राम कबीरे रुचि भई, याही ओषदि साधि ॥४०॥ शब्दार्-कॉची > कच्चा । कारी > कर्म।| साधि 5 साधो। भलीभॉति प्रयोग करना। अर्थ-सत कबीर कहते है कि कच्चाकर्म मत करो। यह कर्म नाशवान् होता है। इस कर्म के करने से भव रोग की वृद्धि होती है। रामरूपी औषध मे तुम्हारी रुचि हो गयी है। इसी औषध का भडीभॉति प्रयोग करो । तुलनीय-करिही कोसलनाथ तजि जवहेँ दूसरी आस । जहॉ हज पाइही तब 2383 दास |-दोहा०७१ कबीर अपने जीवते, ए दोइ बाते घोड़। लोभ बड़ाई कारणै, अछता मूल न खोइ ॥ ४१॥ शब्दार्व-अछता > अक्षत। अछूता | अर्थ-संत कबीर कहते हैं कि अपने जीवन से दो बाते धोकर निकाल दो। एक लोभ और दूसरी अपनी बड़ाई। इनके रहते मूलधन भी खो जाता है। अर्थ यह है कि प्रतिष्ठा बढ़ना तो दूर मूल प्रतिष्ठा भी नष्ट हो जाती है। खंभा एक गइंद दोइ, क्यूं करि बंधसि बारि। मानि करै तो पीव नहीं, पीव तौ मानि निवारि ॥४२॥ शब्दार्थ-गड़द - गयन्द | हाथी। बारि >द्वार। मानि 5 अहता-ममता। अर्थ-एक खभे मे दो हाथी नही बॉधे जा सकते हैं। इसी प्रकार अहता-ममता वालो को प्रभु प्राप्ति नही होती है। प्रभु को प्राप्त करना है तो अहता-ममता को छोड़ो। अलकार-अर्थातरन्यास | अन्येक्ति।

साखी २६३ दीन गँवाया दुनीं सो, दुनी न चाली साथि। पाइ कुहाड़ा मारिया, गाफिल अपणै हाथि ॥४३॥ शब्दार्ष-दीन - धर्म। दुनी 5 ससार। गाफिल 5 असावधान। पाइ > पैर। पाइ कुहाड़ा मारिया 5 अपने से अपना नुकसान करना (मुहा)। अर्थ-ऐ मनुष्य, तुमने जिस माया की दुनिया के लिये भक्तिधर्म छोड़ दिया वह तुम्हारे साथ नही गयी। तुमने स्वय अपने असावधान हाथो से अपने पैर मे कुल्हाड़ी मारी है। अर्थात् खुद अपना नुकसान किया है। अलंकार-लोकोक्ति। यह तन तो सब बन भया, करंम भए कुहाड़ि। आप आप कूं काटिहे, कहै कबीर बिचारि ॥४४॥ अर्थव-यह शरीर विषयो का जगल है। निष्काम कर्म की कुल्हाड़ी से इस जगल के पेड़पौधो को काट दो। इसे दूसरा कोई नही काट सकता है। तुम्हे स्व्य काटना होगा। इस बात को सत कबीर अत्यंत विचार कर कहते है। अलंकार-रूपक | कुल खोया कुल ऊबरे,कुल राख्यों कुल जाह। राम निकुल कुल भेटि ले, सब कुल रह्मा समाह ॥४५॥ शब्दार्थ-कुल ८ कुटुम्ब| कुल > पूर्ण। निकुछ 5.बिना कुल का। अर्थ-परिवार या सासारिक रिश्तो को छोड़ने से ही पूर्ण कल्याण होता है। परिवार मोह मे सब कुछ नष्ट हो जाता है। इसलिये कि राम (ब्रह्म) का कोई परिवार नहीं है। वे पारिवारिक मोह से ऊपर है। क्योकि सपूर्ण सृष्टि कुल तो उसी राम के भीतर समाया है। जिसने ब्रह्म को पा लिया उसने सपूर्ण कुलो का कल्याण किया । अलंकार-यमक। विरोधाभास। दुनियाँ के धोखे मुवा, चले जु कुल की कॉणि। तब कुल किसका लाजसी, जब ले धरथा मरसांणि॥४६॥ अर्थ-दुनिया धोखा है। जीव इसी धोखे मे मरता रहा। कुल-कुटुम्ब की मर्यादा (कॉणि) के चक्कर मे हरि से प्रेम न कर सका। कितु जब मसान मे नगा जलेगा तब किसका कुटुम्ब रे होगा, इस पर कभी नहीं सोचा। मतलब यह कि अत मे कुटुमब कोई काम नही आता | अलंकार-कक्रोक्ति। दुनियां भांडा दुख का, भरी मुहॉमुह भूष। अदया अलह राम की, कुरलै ऊँणी कूष ॥४७॥ शब्दार्थ-भाँडा > वर्तन। मुहॉमुह 5 छबालब। अदया 5 दया बिना। ऊँणी 5 (अप्राप्त। कुरलै > किलोल करना। भूष (भूख) इच्छाएँ। अर्थ-ससार दुख का वर्तन है। इसमे कभी न पूरी होनेवाली अनेक प्रकार की इच्छाएँ भरी है। कितु छोग राम की अकृपा प्राप्त कर रहे है। क्योकि वे मकड़े के समान स्वय अपना बधन बने है और उसी मे प्रसन्न है| टिप्पणी-वेदात मे आत्मबधन की उपमा मकड़े के जाल से दी गयी है। जिहि जेवड़ी जग बंधिया, तूँ जिनि देंधे कदीर। डैसी आटा ढूँण ज्यूँ, सोना सँवों शरीर ॥४८॥

२६४ कबीर समग्र अर्थ-काम, क्रोध आदि वासनाओ या माया की जिस रस्सी मे ससार के सभी प्राणी बच्चे है, है कवीर, तुम कभी उसमे मत बँधना या माया मे मत पड़ना। तुम्हारा यह मानव देह लेना व्यर्थ हो जायगा। मायारूपी आटे मे नमक के समान मिलकर तुम्हारा व्यक्तित्व नष्ट हो जायगा। माया तुम्हे वर्बाद करु देगी। अलंकार-उपमा। रूपकातिशयोक्ति | कहत सुनत जग जात है, विषै म सूझें काल। कबीर प्याहै प्रेम कै, भरि भरि पिवे रसाल॥४९॥ अर्थ-ससार के सभी लोगो का समय एक दूसरे की निदा मे बीत रहा है। ऐसे विषयी लोगो को काल (यम) देवता नही दीखते है। केवछ साधक ऐसा है जो निदा-स्तुति से अढुग होकर राम प्रेम का प्याला भर-भर कर पीता है। पूरे मन से पीता है। अलंकार-रूपक | कबीर हद के जीव सूँ, हित करि मुर्खों न बोलि। जे लागे बेहद सूँ, तिन सूँ अंतर खोलि॥५०॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि हद के जीवन अर्थात् सासारिक वासनाओ की सीमा में बंधे व्यक्ति से न बोलकर कल्याण कर। जो भक्त निस्सीम (वेहद) परमात्मा से जुड़ गया है उसके सामने अपने मन की सारी बाते कह दे। टिप्पणी-किसी प्रकार का उपदेश ऐसे व्यक्ति को नही देना चाहिए जो भगवत्मक्त न हो। कबीर केवल राम की, तूँ जिनि छोड़ा ओद। घण अहरणि बिचि लोह ज्यूँ, घणी सहै सिर चोट ॥५१॥ शब्दार्व-घन < हथौड़ा। अहरण 5८ (पड़ेगा। काल्हि 5 काल। अर्घ-सत कबीर कहते है कि केवल राम कहो। राम कहते हुए शुद्ध (पूर्णत) गरीबी 33 | (क्योकि भक्ति अकिचन आन्दोलन है।) जब काल भारी पड़ेगा. तो बड़ाई डूब जा | काया मंजन क्या करै, कपड़ घोह्म घोह। उजल हूबा न छूटिए, सुख नींदड़ीं न सोह ॥५३॥ अर्थ-शरीर तो कपड़ा है। इसके धोने से विषयो की मैल नही धुलेगी। बिना विषय मैल दूर हुए सुख की नीद नही आयेगी। अत मन को स्वच्छ करो। उजल कपड़ा पहरि करि, पान सुपारी खाँहि। ' एक हरि का नोंव बिन, बॉघे जमपुरि जोहि ॥५४॥ अर्थ-खूब अच्छा वस्त्र पहना। अन्य प्रकार की शौकीनी की। कितु राम नाम को आधार न बनानेवाले सभी व्यक्ति बेंध कर यमपुर जायेंगे। अलंकार-विनोक्ति | न ! तेरा संगी कोइ नहीं, सब स्वारथ बंधी लोड । मक्ति परतीति म ऊपजै, जीब बेसास न होइ ॥५५॥

साखी २६५ अर्य-ऐ जीव, ससार मे तुम्हारा कोई मित्र नहीं है। सभी लोग स्वार्थ से जुड़े है। यही कारण है कि कोई किसी की प्रतीति नही करता। किसी मे किसी का विश्वास नही है। माँद बिड़ोणों बाप बिड़, हम भी मंश्‌ि बिड़ोंह। दरिया केरी नाव ज्यूँ, संजोगे मिलियोंह ॥५६॥ शब्दार्थ-विड़ॉणो + बीरानी |गैर। बिड़ 5 बीराना। मझि - मध्य | बिड़ॉह 5 पराया। अर्व-माता, पिता, पुत्र सब पराये है। कोई किसी के साथ न आया है। न जायगा। यह ससार नदिया नाव सयोग है। नदी मे नौका और नौका मे विभिन्‍न यात्री। ये सब साथ हुए। फिर अछग हो जायेंगे। न कोई माँ रहेगी, न बाप होगा, न पुत्र होगा। अलंकार--उपमा। इत प्रघर उत घर, बड़जण आए हाट। करम किरोणों बेचि करि, उठि जा लागे बाट ॥५७॥ शब्दार्थ-इत - यहाँ । प्रघर & पराया घर। बड़ जण - बहुत से लोग या वाणिज्य करण | किरॉणों + पसारियों के यहाँ मिलने वाला सौदा (स शब्दसागर) अर्थय-यह संसार पराया अर्थात्‌ माया का घर है। आत्मा का घर तो परम धाम है। यहाँ सासारिक बाजार मे बहुतेरे कर्म व्यापार करने आये। कितु बाजार उठने पर सभी छोग उठ गये (मर गए) | अपने-अपने रास्ते छंगे अर्थात्‌ यम धर गये। टदिप्पणी-रवीन्द्रनाथ की कहानी 'होम कमिग" दो घरों के आधार पर है। अलंकार-रूपक। रूपकातिशयोक्ति। नान्‍्हों काती चित दे, महँगे मोलि बिकाह। गाहक राजा राम है, और न नेड़ा आह ॥५८॥ अर्थ-जैसे जुलाहे की महीन कताई महँगी बिकती है उसी प्रकार जीव को चाहिए कि वह ससार मे श्रेष्ठ कर्म करे क्योंकि राम राजा है। वे अच्छा सामान ही खरीदते है। बुरे सामानों को नजदीक भी नही आने देते है। अलंकार-अन्योक्ति | डागल उपरि दौड़णों, सुख नींदड़ी न सोह। पुनें पाए घोहड़े, ओछी ठौर न खोड ॥५९॥ शब्दार्थ-डागल - ऊँची -खाली भूमि। पुनै > पुण्य से। चौहड़े 5 देवगृह या शरीर। ओछी हुद्र। खराब। अर्थ-यह ससार कठिन है। ऊँची-खाली भूमि पर दौड़ने के समान है। सुख की नींद सोनेवाला इस ससार के कठिन मार्ग को नही पार कर सकता। पूर्व पुण्य वश देवगृह जैसी पवित्र मानव देह मिलती है। इसे क्षुद्र कार्यो मे छगा कर बर्बाद मत करो। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। में मे बड़ी बलाइ है, सके तो निकसी भाजि। कब लग राखो है सखी, रूई पलेटी आगि॥६०॥ अर्थ-मै मै अर्थात्‌ अहकार बहुत बुरी चीज है। मौका मिलते ही इसे छोड़ दो। भाग । जैसे रूई मे लिपटी आग जला देती है उसी प्रकार अहकार व्यक्तित्व को नष्ट कर देता | अलंकार-दृष्टात | मे मे मेरी जिनि करे, मेरी मूल बिनास। मेरी पण का पेंघड़ा, मेरी गल की पास ॥६१॥

३६ कबीर समग्र शब्दार्थ-पैषबड़ा - बधन | पास ८ पाश। फॉस। मै मैं मेरी + अहकार | अर्थ-मै मेरा का अहकार विनाशक है। विनाश का मूल है। यह मेरा है, भाव बधन है यह। मेरा है, यह गले की फॉसी है। अहता-ममता ही दुख का मूल है। * अलंकार-उल्लेख | कबीर नाव जरजरी, कूड़े खेवणहार। हलके हलके तिरि गए, बूड़े तिनि सिर भार ॥६२॥ अर्थ-सत कवीर कहते है कि यह जीवन या देहरूपी नौका जर्जर है। नाशवान् है। खेनेवाले भी अज्ञानी है। फलत जो विषयो को छोड़कर हल्का हो गए वे तो भवसागर पार कर गए। कितु विषयो और कामनाओ का बोझ उठाये लोग संसार सागर में डूब गए | अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | अन्योक्ति | (१३) मन को अंग मन के मते न चालिये, छाड़ि जीव की बाणि। ताकू केरे सूत ज्यूँ, उलदि अपूठा ऑणि॥१॥ अर्थ-सामान्य लोगो की आदत होती है कि वे मन के अनुसार चलते है। और मन तो विषयो मे दौड़ता है। चचल है। इसलिये इस आदत को छोड़ना चाहिए। जैसे ताकू मे लिपटे सूत को खोलकर कपड़ा बुनते है वैसे ही अपूठे (अपुष्ट) मन को खोलना चाहिए अर्थात् विषयो की ओर से उल्टना चाहिए। अलंकार-उपमा | चिता घिति निबारिए, फिर बूझिए न कोइ। इंद्री पसर मिठाइए, सहजि मिलैगा सोह ॥२॥ अर्थ-दो काम कीजिए। एक यह कि चित्त को विषय चितन से मुक्त कीजिए। दूसरा, विषयोसे इंद्रिय प्रसारको समाप्त कीजिए । इतना करनेसे वह प्रभु सहज ही प्राप्त हो जायगा। आसा का ईंघण करूँ, मनसा करूँ बिभूति। जोगी फेरी फिल करी, यो बिनवाँवें सूति ॥३॥ शब्दार्थ-ईधण < जलावन। विभूति - क्षार। फेरी 5 चक्कर। फिल ८ नष्ट। सूति ८ सूत्र | जीवन सूत्र | विनवॉ > बुनना | अर्थ-आशा परम दुख है। अत योगी आशा को जलावन बनाता है और मनस्तत्त्व को राख। चक्कर लगानेवाले मन को नष्ट कर जीवन-सूत्र बुनना चाहिए। अलंकार-सागरूपक | कबीर सेरी सॉकड़ी, चंचल मनवों चोर। गुण गाबै लैलीन होइ, कछू एक मन मैं और ॥४॥ शब्दार्थ-सेरी (फा०) 5 गली। सॉकड़ी - सेंकरी। सकीर्ण। ढैलीन 5 अत्यत लीन। अर्थ-प्रभु तक पहुँचने का रास्ता अत्यत सेंकरा है। पतला है। इसमे उच्चकोटि के साधक ही जा पाते है। जिनका मन चचल और चोर है वे इस सकीर्ण रास्ते पर नहीं जा सकते। इसलिये कि चोर भागता है और भागने के लिये चौड़ा रास्ता चाहिए। यह मन जब अत्यत

१४५#५-आर्ड ््त साखी २६७ तनन््मय होकर भी प्रभु गुण गाता है त्तो उसके मन मे वासना रहती है। सकाम उपासना करता है। अलंकार-भेदकातिशयोक्ति। कबीर माँ मन कूँ, टूक टूक ड्ै जाइ। बिष की क्यारी बोह करि, लुणत कहा पछिताइ ॥ ५॥ शब्दार्थ-लुणत > कास्ते हुए। अर्थ-मन ही सारे बधन-मोक्ष का कारण है। अत दुख का कारण भी है। कबीर दास जी इस मन को मारना चाहते है। टुकड़े-टुकड़े कर देना चाहते है। यह मन ही विषय-विष को उपजाता है। कितु उसका फल भोगने मे अफसोस करता है। यह कैसे सभव है कि कर्म का फल न मिले ? कर्म फल तो सबको भोगना ही पड़ेगा। इस मन को बिसमल करो, दीठा करों अदीठ। जे सिर राखों आपणों, तो पर सिरिज अँगीठ ॥६॥ शब्दार्थ-बिसमठ < घायल। दीठा दृष्ट | अर्थ-इस चचल मन को गुरुवचन बाण से घायल कर दूँ। इससे दृश्य जगत के स्थान पर मन अदृश्य को देखने लगेगा। क्योकि सारा दृश्य प्रपच नाशवान् है। अब स्थिति उल्टी हो जायगी, दृश्य अदृश्य और अदृश्य दृश्य हो जायगा। यह तभी होगा जब अपने, सिर अर्थात् अहकार का नाश हो। क्योकि अहमू ही सभी दुखो का कारण है। मन जॉणे सब बात, जाणत ही औगुण करे। काहे की कुसलात, कर दीपक कूँबे पड़े ॥७॥ भ्र्थ-मन सभी बाते जानता-समझता है। फिर भी अवगुणों से भरा है। हाथ मे दीपक रहते हैए भी कुएँ मे पड़ना जैसी स्थिति है। ऐसे मनवाले व्यक्ति का कुशल कैसे हो सकता है? इसलिये मन को ही ठीक रखने की जरूरत है। ' अलंकार-वक्रोक्ति | हिरदा भीतरि आरसी, मुख देषणों न जाइ। भुखु तो तौपरि देखिए, जे मन की दुबिधा जाइ ॥८॥ अर्थ- स्वच्छ हृदय ही दर्पण है। दर्पण के लिये किसी बाहरी तत्त्व की आवश्यकता नही है। कितु हृदय की मलिनता के कारण मुख स्पष्ट नही दिखाई पड़ता है। मुख अर्थात् स्वरूप तो तभी दिखाई पड़ेगा जब मन विषयो और प्रभु भक्ति मे दुविधा को छोड़कर एकाग्र हो। अलंकार-विशेषोक्ति | मन दीयों मन पाइए , मन बिन मन नहीं होड़ । मन उनमन उस अंड ज्यूं, अनल अकासों जोह ॥९॥ अर्थ-उस प्रभु के प्रति जो मन लगाता है उसका मन स्वच्छ और पवित्र होकर स्वरूप ग्रहण करता है। मन को पवित्र किये बिना भागवत मन की प्राप्ति नही हो सकती है। सकेत यह भी है कि प्रभु मन अथवा कृपा के लिये मन का पूर्ण समर्पण आवश्यक है। जैसे अनल पक्षी आकाश मे अडा देता है उसी प्रकार उन्मनी अवस्था अथवा प्रभु प्रेम में अनुरक्त मन ऊर्ध्वचेतना मे आनद की अनुभूति करता है। ऊर्ध्व चेतना मे मन वासना मुक्त रहता है। वासना ही दुख का कारण है। वासना मुक्ति ही सहजावस्था की प्राप्ति है। >सहज मे मन का छूय करना सहज योग है। इसी छय की अवस्था को उन्मनावस्था भी कहा गया है। यह उन्मनावस्था समाधि की अवस्था है। हठयोग प्रदीपिका मे ' उन्मनी सहज का ही पर्याय है ।-कबीर की विचारधारा पृ० २२६।

२६८ कवीर समग्र मन गोरख मन गोबिंदी, मन हीं औपड़ होड़ | जे मन राखै जतन करि, तौ आपें करता सोड़ ॥१ ०॥* अर्थ-मन ही गोरख (प्रसिद्ध साधक) है। मन ही भगवान है। मन ही औघड़ है। जो साधक मन को यलपूर्वक विषयो से अठग रखता है तो वह स्वय 'करता' (कर्ता) अर्थात् प्रभु रूप हो जाता है। ईश्वर और जीव मे एकता है। भेद का कारण विषयी मन है। विषयी मन प्रभु से अलग रहता है। विषय मुक्त होते ही भक्त और भगवान् मे तादाल्य की स्थिति आ जाती है। अलंकार-उल्लेख | एक ज दोसत हम किया, जिस गलि लाल कबाह। सब जग धोयी घोह मरे, तो भी रंग न जाइ ॥१ १॥ शब्दार्थ-कवाइ 5 (अरबी-कवा) चोगा। एक ठीलाढाला लवा पहनावा। अर्थ-मन ही विषयो मे वहकता है। मन को प्रभु प्रेमी वनाना चाहिए। सत कबीर ने मन को प्रभु भक्त बनाकर उसके गले मे प्रेम का छाल चोगा पहना दिया हैं। अब सासारिक धोबियो अर्थात् विषयो का कितना भी साथ करेगा यह प्रभु प्रेमरपी रग कभी धुढ न सकेगा। ससार के सभी धोवी धोकर मर जायेगे। टिप्पणी-लाल प्रेम का रग है। इसलिये प्रेम को अनुराग कहते है। अलंकार-विशेषोक्ति। पॉँणी ही तें पातला, घूवों ही तें क्षीण। पवनों वेगि उताबला, सो दोसत कर्बीरे कीन्ह ॥१२॥ अर्थ-सत कवीर ने अत्यत सूक्ष्म तत्त्व ब्रह्म को अपना दोस्त वना लिया। यह ब्रह्म पानी से भी अधिक पतला और धुएँ से भी अधिक झीना है। इसमे हवा से भी अधिक उतावला वेग है। कहना यह है कि वह पॉचो तत्त्वों से अधिक विशिष्ट है। अलंकार-व्यतिरेक | है कबीर तुरी पलॉड़ियों, चाबक लीया हाथि। दिवस था साई मिलों, पीछे पड़िईहैं राति॥१३॥ शब्दार्थ-तुरी 5 घोड़ा। पढॉड़ियोँ > जीन कसा। अर्थ-मन घोड़े के समान चचल है। सत कबीर ने उस पर रागहीनता या संयम का जीन कस दिया है। हाथ मे सावधानी का चावुक ले रखा है। मोहरात्रि पीछे छूट गयी है और भगवत् ज्ञान रूपी दिन रुक गया है। अब रात नहीं आयेगी। यहाँ परमात्मा का अखड साथ बना रहेगा। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। मनवों तो अधर बस्या, बहुतक झीणों होइ। आलोकत सचु पाइया, कबहूँ न ्यारा सोह ॥ १४॥ अर्थ-मन तो स्व आधार पर स्थित ब्रह्म पर जा टिका है। यह ब्रह्म बहुत ही झीना है। इसे देखने से सुख मिलता है। अब इस ब्रह्म तत्त्व से कभी अलग नही होना है। मन न मात्या मन करि, सके न पंच प्रहारि। सील साध सरधघा नही, इंद्री अजहुँ उघारि ॥१ ५॥ अर्य-ऐ साधक, आज भी तुमने दृढ़ मन से मन की प्रवृत्तियो को नष्ट नही किया। पॉचो इंद्रियो और उनके विषयो पर चोट नही की। तुममे शीठ, सत्य और श्रद्धा का अभाव है। तुम्हारी इद्रियाँ विषयो मे उघड़ी है। विषय लिप्त है। इन्हे सयम से ढेंको | (१4६

साखी २६९ कबीर मन बिकरे पड़या, गया स्वादि के साथि। गलका खाया बरजतों, अब क्यूँ आबै हाथि ॥१ ६॥ अर्थ-स्वाद के चक्कर मे पड़कर यह मन काम, क्रोध, छोभ, मोह, मद, मत्सर के विकारों में पड़ गया। गले तक विषयों मे डूबा है। अब यह हाथ कैसे आयेगा ? (गुरु कृपा युक्त साधना से आयेगा |) कबीर मन गाफिल भया, सुमिरण लागै नाहें। घणी सहैगा सासनाँ, जम की दरगह माहेँ ॥१७॥ शब्दार्थ-सासनों - सॉसत | कष्ट। दरगह ८ दरबार। माहँ 5 मे। गाफिल 5 असावधान | अर्थ-सत कबीर कहते है कि भगवत्मजन के प्रति मन असावधान है। पूरा मन नहीं लग रहा है। इससे स्मरण, भजन आदि ठीक ढ़ग से नही हो रहे है। ऐ जीव, अभी सावधान हो जाओ, यम दरबार मे बड़ा कष्ट सहना होगा। भजनहीन प्राणी को यमराज अत्यत पीड़ित करते है। कोटि कर्म पल में करै, यहु मन बिधिया स्वादि। सतगुर सबद न मानई, जनम गैंवाया बादि ॥१ ८॥ शब्दार्थ-बादि - व्यर्थ। अर्थ-विषयो के स्वाद मे चक्कर लगानेवाला मन करोड़ो कल्पना-कर्म क्षण मे कर डालता है। सदगुरु का कहना न मानकर जन्म को बर्बाद कर दिया। मैमंता मन मारि रे, घटही माँहें घेरि। जबही चाहें पीठि दे अंकुस दे दे फेरि॥१९॥ शब्दार्थ-मैमता - मदोन््मत्त। हाथी जैसा मतवाला। घट > घड़ा। शरीर। चाहे पीठिदे « (पीठ देकर चलना) उपेक्षा करना। अर्थ-ऐ जीव, मन मदोन्मत्त हाथी जैसा है। यह विषय-वन मे बहुत दूर निकले इसके पूर्व ही शरीर मे घेर छो। बहुत दूर वन मे जाने पर पकड़ मे नही आयेगा। जब यह तुम्हारी साधना की उपेक्षा करे तो इसे गुरुज्ञानरूपी अकुश से ठीक करो। अलंकार-रूपक | मैमंता मन मारि रे, नॉन्हों करि करि पीसि। तब सुख पावे सुंदरी, ब्रह्म झलक सीसि॥२०॥ दे अर्थ-ऐ साधक, हाथी जैसे मतवाले मन को मारो। खूब महीन पीसों। विषयो मे विचरते वह अत्यत मोटा हो गया है। उसे अनन्य भक्ति मे लगाकर महीन करो। ऐसा करने पर साधक-सुन्दरी को सुख मिलता है। उसके शीश पर ब्रह्मज्योति का प्रकाश होता है। उसमे दिव्यता आ जाती है। अलंकार-रूपक | कागद केरी नाव री, पाणी केरी गंग। कहै कबीर कैसे तिरूँ, पंच कुसंगी संग ॥२१॥ अर्थ-यह शरीर कागज की नाव के समान नाशवान है। गगा अर्थात् ससार सागर मे विषयों की लहरे उठ रही है। साथ मे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर ये पॉच बुरे साथी है। विषय बुरे साथी है। जो विषयो मे डुबोना चाहते है। सत कबीर परेशान है। इनके साथ कागज की नाव द्वारा भवसागर कैसे पार होगा ? अलंकार-अन्यीक्ति |

२७० कबीर समग्र कबीर यह मन कत गया, जो मन होता काल्हि। डूँगरि बूठा मेह ज्यूँ, गया निबॉणों चालि॥२२॥ शब्दार्थ-कत > कहॉ। डूँगरि - ऊँचा टीला। दूह। मेह > वर्षा। बूठा 5 वरसा। निवॉणों > निर्वाण। नीची जमीन। चालि 5 चला गया। अर्थ-सत कबीर कहते है कि विषयो मे रहनेवाढा मन सद्गुरु की कृपा से नप्ट हो गया। जैसे वर्प्रा से ऊँचा टीला डूब जाता है वैसे ही मेरा मन जो अहकार का दूह बना था वह गुरु उपदेश पाकर निर्वाण की ओर चला गया। उसका अहकार गल गया है। ; अलंकार-उपमा। मृतक कूँ घी जी नहीं, मेरा मन बी है। बाजै बाव बिकार की, भी मूवा जीवै ॥२ ३॥ शब्दार्थ-धी > बुद्धि। वोध | वी 5 भी। वाव 5 वायु। विकार 5 विषय | अर्थ-मेरा मन मुर्दे के समान हो गया है। उसका विषयराग छूट गया है। कितु कभी जब विकारो की हवा का वाजा बजता तो मन जी उठता है और विषयो मे दौड़ने लगता है। काटी कूटि माछली, छीके घरी चहोड़ि। कोइ एक अपिर मन बस्या, दह में पड़ी बहोड़ि ॥२४॥ शब्दार्थ-मछली > मन | छीके - ब्रह्मरध्र। चहोड़ि 5 चढ़ाकर। अपषिर ८ अक्षर। वासना की आवाज | दह (

(साखी २५४१ लहर-लहर फहराता है अर्थात् विषयो मे आनन्द लेता है। मन जिधर जाता है शरीर भी उधर - ही चछा जाता है तो ऐसे व्यक्ति का सर्वस्व नाश हो जाता है। अलंकार-सागरूपक | मनह मनोर्थ छाड़ि दे, तेरा किया न होइ। पाँणी मै घीव नीकसे, त्तो रूता खाइ न कोइ ॥२९॥ अर्थ-मन मनोर्‌थ करता है। अनेक भोगो की कल्पनाएँ करता है। हे जीव, इस मन को छोड़ दो वरना तुम कुछ नही कर सकोगे। जैसे पानी से घी निकलता तो कोई रूखा न खाता उसी प्रकार मनोरथो से कुछ नही होता है। मनोरथ भ्रम है। नाश के कारण है। अलंकार-दृष्टात | काया कसूँ क्मोण ज्यूँ, पंचतत्त करि बाण । मारी तो मन मृग कौ, नहीं तौ मिथ्या जॉण ॥३०॥ अर्थ-साधक कहता है शरीर को धनुष, पचतत्त्वो (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) को बाण बनाकर मनरूपी हिरण मारूँ तभी साधक जानो वरना सारी तपस्या झूठी है। अलंकार-सागरूपक | (१४) सूषिम मारग कौ अंग कौंण देस कहाँ आइया, कह क्यूँ जाण्यों जाइ। उहु मार्ग पायें नहीं, भूलि पड़े इस माहि ॥१॥ अर्थ-जीव ब्रह्म छोक का निवासी था। भूलकर मर्त्यलोक मे चला आया। क्यो और कैसे आया इसका भी उसे पता नही है। विषयो मे रहने के कारण ब्रह्मलेक का मार्ग भी नही पा रहा है। इस मर्तललोक मे भूला-भटका फिर रहा है। उतीय कोइ न आबई, जाऊँ बूझों धाइ। इतये सबै पठाइये, भार लदाइ लदाइ ॥२॥ अर्थ-वहाँ (परमधाम) से कोई लौटकर नही आता, जिससे दौड़कर वहाँ के बारे मे पूछेँ। केवल छोग इस लोक से कर्मो के भार से रूद-लद कर जाते है। सबकूँ बूझ्त मै फिरो, रहण कहे नहीं कोइ । प्रीति न जोड़ी राम सूँ, रहण कहाँ थें होइ ॥३॥ अर्थ-सब से पूछता हूँ। कोई अमरता के बारे मे नही बताता है। राम से प्रेम ही मनुष्य को अमर बनाता है। बिना राम प्रेम के अमरता सभव नही है। चलौ चली सबको कहै, मोहि अँदेसा और। साहिब सूँ पर्चा नही, ए जाँहिगें किस ठौर ॥४॥ अर्थ-सभी लोग चलने की बात करते है। सबको मरना है। सत कबीर के मन मे सदेह है कि जिसने भगवान् से परिचय नहीं किया वह मरने के बाद कहाँ जायगा ? कहना यह है उसका इसी ससार मे आवागमन होता रहेगा। जाइदे कौ जागा नही, रहिये कौ नही ठौर। कहै कबीरा संत हो, अविगति की गति और ॥५॥ शब्दार्थ-जागा 5 जगह | और - दूसरा। अलग |

२७२ कबीर समग्र अर्थ-जाने की कोई जगह नही है। यहाँ भी रहने की जगह नहीं है। सत कबीर कहते है कि अविगत परमात्मा से प्रेम का ढग ससार के सभी कार्यों से अछग है। उसी ढग को अपनाने पर परमात्मा के यहाँ जगह मिलेगी। कबीर मारिग कठिन है, कोड न सकई जाह। गए ते बहुड़े नहीं, कुसल कहै को आइ ॥६॥ अर्थ-त्रह्मतत्त्व को पाने का मार्ग कठिन है। वहाँ कोई नही जा सकता है। जो गए वे लौटे नहीं। वहाँ की कठिनाइयो के बारे मे कौन बता सकेगा ? अलंकार-वक्रोक्ति | जन कबीर का सिधषर घर, वाट सठैली सैल। पाव न टिकै पपीलका, लोगनि लादे बैल ॥७॥ शब्दार्थ-जन भक्त। सिषर 5 शून्य शिखर। सलैली 5 शैलीवाली। पथरीली। फिसलनयुक्त | पपीलका - चीटी | अर्थ-भक्त कवीर का घर शून्य शिखर (ब्रह्मरप्र) पर है। कितु उसका रास्ता ऊँचा पहाड़ी है। पथरीला है। फिसलन भरा है। यहाँ चीटी (सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तुएँ) के पैर भी डगमगाने ५ है। कितु लोग वासनाजन्य कर्म सस्कारो का बोझ लेकर चलना चाहते है। यह कैसे सभव ? अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। जहाँ न घीटी चढ़ि सके, राई ना ठहराइ। मन पवन का गमि नहीं, तहाँ पहुँचे जाइ ॥८॥ अर्य-सत कवीर साधना के उस स्थान पर पहुँच गए है जहाँ चीटी नही चढ़ सकती है। राई भी नहीं ठहर सकती है। हवा और मन जैसे सूक्ष्म तत्त्व भी वहाँ नही पहुँच सकते है। ग और राई से मतलूव यह है कि वासना का लघु अश भी इस चोटी पर पहुँचने मे असमर्थ | तुलनीय-नैव वाचा न मनसा प्राप्तु शक्यो न रक्षुषा। वह परमात्मा वाणी, चक्षु, मन आदि किसी के द्वारा नहीं प्राप्त हो सकता है| कठो० २/३/१२ जेहि बण पवन न सचरइ, रबि ससि णाह पवेश। तेहि बढ़ चित्त विसाम करु, सरहे कहिउ उएसु |-सरहपा। कबीर मारग अगम है, सब मुनिजन डैठे थाकि। तहाँ कदीरा चलि गया, गहि सतगुर की साथि॥९॥ अर्थ-ब्रह्मप्राप्ति का रास्ता अत्यत कठिन है। बड़े-बड़े मुनि भी थक कर बैठ गए। कितु सदगुरु को साक्षी बनाकर सत कवीर वहाँ पहुँच गए। ठतुलनीय-गीता कहती हैमनुष्याणा सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये। यततामपि सिद्धाना कश्चिन्मावेत्ति तत्त्वत |-७/३ सुर नर थाके मुनि जनों, जहां न कोई जाइ। मोटे भाग कबीर के, तहाँ रहे घर छाइ॥१ ०॥ शब्दार्-मोटे भाग > बड़ा भाग्य। सौभाग्यशाली | अर्थ-जिस ब्रह्म को प्राप्त करने का प्रयल करने मे देवता, मुनि, नर आदि थक गये। कोई वहाँ पहुँच न सका। कितु सत कवीर भाग्यशाली है। वहाँ पहुँच भी गये और वहाँ निवास भी कर रहे है। यह योग भक्ति के प्रभाव से हुआ। शा शत

साखी २७३ (१५) सूषिम जनम कौ अंग कबीर सूषिम सुरति का, जीव न जॉणें जाल। कहै कबीरा दूरि करि, आतम अदिष्टि काल ॥१॥ अर्व-सत कबीर कहते है कि जीव सूक्ष्म ध्यान तत्त्व को नही जानता है। आत्म अदृष्टि को दूर करो। आत्मदृष्टि से देखो। तुम्हे तत्काल सब दीखेगा। प्राण पंड को तजि चले, मूवा कहै सब कोह। जीव छतों जाँमें, मरे, सूषिम लखे न कोइ ॥२॥ ब्दार्थ-पड़ > पिण्ड। शरीर ॥/ मूवा & मरा। छतों (

२७४८ कबीर समग्र टिप्पणी-भर्तृहरि ने कहा है, भोग कभी नहीं चुकतै। भोगनेवाल्ा ही नष्ट हो जाता हैभोगा न भोक्तुम्वयमेव भुक्ता। श्री मलिक मुहम्मद जायसी कहते हैतन बूढ़ा मन बूढ न होई, बल न रहा पै छालच सोई। कबीर माया पाषणीं, हरि सूँ करे हराम। मुखि कड़ियाली कुमति की, कहण न देई राम ॥४॥ शब्दार्थ-हराम > विरुद्ध। विमुख। कड़ियाली 5 कड़ी। लगाम। अर्थ-माया बड़ी पापिनी है। यह मनुष्य को प्रभु से विमुख करती है। लोगो मे विपरीत बुद्धि पैदा कर राम नाम लेने मे मुँह वद कर देती है। मुख पर विरुद्ध मति की हगाम हग जाती है। अलंकार-रूपक | जाणीं जे हरि कीं भजीं, मो मनि मोटी आस। हरि बिचि घाले अंतरा, माया बड़ी बिसास ॥५॥ शब्दार्थ-मो > मेरे। मनि 5 मन मे। घाड़े डालती है। अतरा 5 भेद पैदा करना। विसास - विश्वासघातिनी। जाणी 5 जानकर। विश्वास से। अर्थ-जीव विश्वास के साथ हरि भजन करता है। कितु माया बीच में भेद पैदा कर देती है। वह विश्वासघातिनी जीव को हरि भजन से रोकती है। कबीर माया मोहनी, मोहे जोॉण सुजोण। भागों ही छूटे नही, भरि भरि मारे बाण ॥६॥ अर्थ-माया बड़ी लुभावनी है। समझदारो को भी मोह लेती है। भागने पर भी नहीं छोड़ती है। कस-कस कर मोह-ममता के बाण मारती है| अलंकार-विशेषोक्ति। कबीर माया मोहनी, जैसी मीठी खाँड़। सतगुर की कृपा भई, नहीं तौ करती भाड़ ॥७॥ अर्थ-माया मीठा जहर है। देखने मे मीठी कितु प्रभाव मे जहर। सद्‌गुरु की कृपा न होती तो माया के प्रभाव से बड़ा नुकसान होता। अलंकार-उपमा। कबीर माया मोहनी, सब जग घाल्या घोंणि। कोइ एक जन ऊबरै, जिनि तोड़ी कुल की कोणि॥८॥ शब्दार्य-घाल्या 5 डाल दिया। घोंणि > घनी। अधिक। जन > भक्त । कॉणि मर्यादा। - अर्य-सत कबीर कहते है कि माया अत्यत मोहक है। सारे ससार को बहुत अधिक प्रभावित किये है। सव पर अपना प्रभाव डाल रखा है। एकाध भक्त जिन्होंने लोक-वेद दोनो की मर्यादाएँ छोड़ दी है माया से मुक्त हो पाते है। टिप्पणी-लोक-वेद की मर्यादाएँ (नियम) माया युक्त है। मीरा कहती हैं-'लोकवेद कुल, की मर्यादा यहै गले की फॉसी |" कबीर माया मोहनी, मांगी मिले न हाथि। मनह उतारी झूठ करि, तब लागी डोलै साथि ॥९॥ अर्थ-सत 'कबीर कहते है कि माया मोहिनी है। प्रार्थना करने पर यह वश में नही है। इसे बिल्कुल झूठ समझ मन से बाहर कर दे तो अनुचरी हो जाती है। / टिप्पणी-इसमे तीन मुहाबरे है-मॉगी मिले न हाथि 5 प्रार्थना से, अनुनय-विनय से (# /

साखी २७५ न होना। मनह उतारी 5 मन से छोड़ देना। विमन हो जाना। लागी डोडै साथि 5 अनुचर होना | अलंकार-विरोधाभास | * भाया दासी संत की, ऊँभी देई असीस। बिलसी अरु लातौ छड़ी, सुमरि सुमरि जगदीस ॥१ ०॥ शब्दार्थ-ऊँभी 5 खड़ी। लातौ छड़ी - लात मारने पर। अर्थ-माया जगदीश का स्मरण करनेवाले सत की दासी हो जाती है। उन्हे खड़ी होकर, जागृत होकर आशीर्वाद देती है। माया को छात मारने पर वह अनुकूल हो जाती है। टिप्पणी-सत माया से मुक्त होकर सत से भगवत बन जाते है। अत माया उनके वश में हो जाती है। वशीकृत माया से नुकसान नही फायदा होता है। सत कहते है कि माया छोड़ना नही उसे वश मे करना चाहिए। हैं माया मुई न मन मुवा, मरे मरि गया सरीर। । आसा त्रिष्णों नो मुई, यो कहि गया कबीर ॥१ १॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि मन मे माया का, माया की शक्तियों (आशा, तृष्णा आदि) के अनत प्रवाह चलते रहते है। इसलिये ये तो शाश्वत है। केवल इन्हे भोगनेवाले शरीर का बार-बार नाश होता है। ह 8 दृष्टि मे पुरुष और प्रकृति दोनो अनादि है। माया ब्रह्म की अनिर्वचनीय शक्ति है। प्रकृति पुरुष चैव विद्धघनादी उभावपि-गीता १३/१९ आसा जीबै जग मरै, लोग मरे मरि जाइ। सोडह मूजे धन सेंचते, सो उबरे जा खाई ॥१ २॥ अर्थ-आशा सदा जीवित रहती है। मरते है सासारिक लोग, जिन्हे धन इकट्ठा करने का चसका छग गया है। वे ही लोग इससे मुक्त हो पाते है जो धन आदि भूत पदार्थों की छाल्सा को नष्ट (खाइ) कर देते है। अलंकार-विरोधाभास | तुलनीय-आशा पाशशतैर्बद्धा कामक्रोध परायणा । ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थ सचयानू ।-गीता १६/१२ कबीर सो घन संधिए, जो आगे कूँ होइ। सीस चढट़ाए पोटली, ले जात न देख्या कोइ ॥१ ३॥ अर्थ-धन के दो प्रकार है- एक धन है जो ससार मे ही रह जाता है। दूसरा परलोक मे भी साथ जाता है। सत कबीर कहते है कि अध्यात्म या परमात्मप्रेम के धन का सचय करो। यही धन इस ससार के बाद काम देता है। सासारिक धन को सिर पर ले जाते किसी को नही देखा गया है। इसीलिये ससार मे सतकर्म करना चाहिए | अलंकार-रूपकातिशयीक्ति | हर ज्रीया त्रिष्णों पापणी, तासूँ प्रीति न जोड़ि। पैड़ी चढ़ि पाछाँ पड़े, लागे मोटी खोड़ि ॥१४॥ शब्दार्थ-त्रीया 5 स्त्री। तासूँ & उससे। पैड़ी > रास्ता। खोड़ि + खोट। दोष । अर्थ-स्त्री की तृष्णा बड़ा भारी पाप है। इस तृष्णा से कभी प्रेम नही करना चाहिए। स्त्री शै तृष्णा जिसके पीछे लग जाती है वह बड़े-बड़े दोषो से भर जाता है। अलंकार-रूपक | ह 5 प्र

श्ष्द्ब कवीर समग्र त्रिष्णों सींची नो बुच्चे, दिन दिन बढ़ती जाई। जवासा के रूष ज्यूं, घण मेहों कुमिलाइ ॥१ ५॥ शब्दार्थ-जवासा 5 (< स. यावासक) एक प्रकार का कॉटेदार पौधा जिसकी पत्तियाँ वर्षा पाकर कुम्हला जाती है। कुमिलाइ - कुम्हलाना। मेहों + मेघ।| घन -+ घना। अर्थ-विषय वासनाओ के भोग से तृष्णा नष्ट होने की अपेक्षा बढ़ती जाती है। कितु प्रभु प्रीति का गहरा जल डालने पर नष्ट होती है। जैसे अधिक वर्षा से जवास नथ् हो जाते है। ठुलनीय-अर्क जवास पात विनु भयऊ |-तुलसी | न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्तसेव भूय एवाभिवर्धते |-मनु० २/९४ कबीर जग की को कहै, भो जलि बूड़े दास। पारब्रह्म पति छाड़ि करि, करे मानि की आस ॥१ ६॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि इस ससार के बारे मे क्या कहा जाय ? यहाँ भक्त भी डूब जाते है जो परमात्मा की आशा छोड़ ससार में सम्मान की आशा करते है। माया तजी तौ का भया, मानि तजी नहीं जाइ। मानि बड़े मुनियर गिले, मानि सबनि की खाइ ॥१७॥ अर्थ-यहाँ संत कबीर ने माया और मान में भेद किया है। माया से अर्थ है सासारिक भोग। विशेषकर धन सबधी भोग। कितु इस माया से भी महत्त्वपूर्ण है सासारिक मर्यादा की इच्छा। पहली को वित्तेषणा और दूसरी को लोकेषणा कहते है। छोकेषणा वित्तेषणा से अधिक भयानक है। लोकेषणा बड़े-बड़े साधु सतो को भी मोह मे डालकर नष्ट कर देती है। इसी को ध्यान मै रखकर सत ने कहा है-राजा दुखिया, परजा दुखिया, तपसी के दुख दूना। रॉमह्ि , दुनियाँ आगें जीवों कौ राजा कहें, माया के आधीन ॥१ ८॥ अर्थ-राम की महत्ता बहुत अधिक है। कितु लोग राम को थोड़ा समझकर सासारिक लोगो के आगे दीन बने रहते है। दीनता केवल राम के आगे व्यक्त होनी चाहिए। राजा केवल राम है। कोई जीव राजा नही हो सकता है। क्योकि सभी जीव माया के अनुचर है। रज बीरज की कली, तापरि साज्या रूप। रॉम नॉम दिन वृड़हि, कनक कॉमणी कूप ॥१ ९॥ अर्थ-मनुष्य जीवन स्त्री रज और पुरुष वीर्य का प्रस्फुटन मात्र है। इस पर भी रूप सजाते है। कितु राम नाम के अभाव मे सभी लोग स्त्री और धन के कुएँ मे गिरते है। नष्ट होते है। अठंकार-रूपक | माया तरवर निविध का, साखा दुख संताप। सीतंलता सुपिने नही, फल फीकी तनि त्ताप॥२०॥ अर्य-माया सत्त्व, रज, तम का पेड़ है। दुख इसकी शाखाएँ है। इस माया तरु के नीचे रहनेवाला कभी सुखी नहीं रह सकता है। ऐसा व्यक्ति सपना भी दुख का ही देखता है। इसका फल (परिणाम) तो दु खद होता ही है। शरीर भी तापो (दुखों) मे जलता रहता है। दिप्पणी-ससार मे दैहिक, दैविक, भौतिक तीन प्रकार के दुख है। अलंकार-सागरूपक। कबीर माया ठाकणी, सब किसही कौ खाइ। दाँत उपाणों पापणीं, जे संतो नेड़ी जाइ॥२१॥ शब्दार्थ-ढाकणी +- डाकिनीं। राक्षसी। नेड़ी > नजदीक । उपाणी 5 उखाड़ना। जे

साखी २७७ अर्थ-माया राक्षसी है। यह सब को खाती है। कितु भक्तो के पास पहुँचने पर प्रभुकृपा से भक्त उसका दाँत उखाड़ देते है। उसकी शक्ति खतम हो जाती है। मोह, मद, मत्सर आदि ही माया राक्षसी के दौत है। अलंकार--रूपक | नलनी सायर घर किया, दी लागी बहुतेणि। जलही माँहे जलि मुई, पूरव जनम लिपेणि॥२२॥ शब्दार्थ-नलनी - जीवात्मा। सायर 5 ससारसागर | दौ 5 (स दावाग्नि) यहाँ वाडवाग्नि या आग। लिषेणि 5 लिखने से। अर्थ-जीवात्मा ने ससारसमुद्र मे घर बनाया है। मन छगाया। कितु वासना की आग से परेशान है। वासना प्रवाह मे ही परेशान होती रही। जलती रही। यह प्रारब्ध के कारण हुआ | अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। विरोधाभास। कबीर गुण की बादली, तीतरबाणी छाँहिं। बाहरि रहे ते ऊबरे, भीगे मंदिर माह ॥२३॥ शब्दार्व-तीतरवाणी - तीतरवर्णवाल्ली अर्थात् मिश्रित रगवाली। छॉहि > प्रभाव। अर्थ-सत कबीर कहते है कि ससार तीन गुणों वाला होने के कारण तीतर रग या कई मिश्रित रगो का भडार है। इसका प्रभाव भी वैसा ही रग-बिरगा है। इसके प्रभाव से दूर रहनेवाला मुक्त हो जाता है। किंतु इसके भीतर रहनेवाला वासना जल से भीग जाता है। वासना से प्रभावित हो जाता है। अलंकार-रूपक। विरोधाभास। कबीर माया मोह की, भई अँधारी लोह। जे सूते ते मुसि लिये, रहे बसत कूँ रोह॥२४॥ शब्दार्थ-लोक - सृष्टि। ससार। मुसि 5 चुरा लिये गये। बसत - वस्तु। बसना। निवास। अर्थ-सत कबीर कहते है कि ससार मे माया-मोह का अँधेरा छाया है। इस अज्ञानजन्य अँधेरे मे जो सोए उनका सब कुछ चुरा लिया गया। वे लूट लिये गये। अब वे अपनी आध्यातिक वस्तु के लिये रो रहे है। अतिम पक्ति का दूसरा अर्थ बसत को क्रिया मान कर इस प्रकार होगा-सोने वालो का सब कुछ चला गया। अब वे ससार में रहने (स्थिरता) के लिये भी रो रहे है। क्योकि जिनकी आध्यातिक वस्तु गायब हो गयी उन्हे कौन पूछेगा ? संकल ही ते सबलहै, माया इहि संसार। ते क्यूँ छूटे बापुड़े, बांधे सिरजनहार ॥२५॥ शब्दार्थ-सकल < बधन। अर्द-इस ससार मे रहनेवाले सभी छोग माया के बधन मे बधे है। वे बेचारे कैसे छूट सकते है जिन्हे स्वय विधाता ने बॉध रखा है ? भाव यह है कि विधाता की कृपा पाकर ही मुक्ति मिलती है। अलंकार-व्यतिरेक | बाड़ि चढंती बेलि ज्यूं, उलसी, आसा फंध। तूटे पणि छूटे नही, भई ज बाचा बंध ॥२६॥ शब्दार्थ-बाड़ि >|घिरा। चढती 5 चढ़ती। वेलि 5 छता। आशा फध 5 आशापाश। तूटै टूटती है। पणि - परतु। बाचावध ८ वचनवद्ध। शास्त्रवचन। शब्दजाल। अर्व-मनुष्य आशा के बधन मे बेंधा उस लता के समान है जो क्रोध, काम आदि के घेरे |

 पर लिपटी चढ़ी है। आशारूपी बधन के टूटने पर भी विल्कुल मुक्ति नहीं मिलती क्योकि शास्त्रों के शब्दजाल उसे माया मे वधि रहते है। टिप्पणी-यहाँ शास्त्रों की निरर्थक्ता की ओर सकेत है। सत तुलसीदास कहते है-वाक्य ग्यान अत्यत निपुन भव पार न पावै कोई। अलंकार- उपमा | "सब आसण आसा तणां, निवर्ति कै को नाहि। निवरति के निबहे नहीं, परिवर्ति परपंच माँहि ॥२७॥ शब्दार्थ-आसन - योगासन। आसातर्णा 5 आशान-तृष्णा। निवर्तिक « निवृत्ति। को « कोई। निवरति > निवृत्ति। निवहै 5 निर्वाह। परिवर्ति > प्रवृत्ति। माँहि « मे। अर्थ-योग के सारे आसन भी आशा तृष्णा वाले है। उनसे कोई निवृत्त नहीं हो सकता। निवृत्ति का निर्वाह कठिन है। प्रवृत्ति मे अनेक प्रपच है। कबीर इस संसार का, झूठा माया मोह। जि्टि घरि जिता बेंधावर्णों, तिहि घरि तिता अँदोह ॥२ ८॥ शब्दार्थ-वेंधावणों > वधावा। समारोह। तिष्ठि > उस! घरि 5 घर मे। तिता 5 उत्तना। अँदोह > दुख | अर्थ-सत कबीर कहते है कि इस ससार के सारे माया मोह झूठे है। मिथ्या है। जहाँ समारोह और तड़क-भड़क जितना अधिक है वहाँ उतना ही अधिक दुख है। अलंकार-विरोधाभास | माया हमसी यो कह्मया, तू मति दे रे पूठि। और हमारा हम बलू, गया कदीरा रूठि ॥२९॥ अर्थ-माया ने हमसे कहा कि तुम मुझे पीठ मत दो। हमसे मत भागो। और सभी लोग हि वल के भीतर है। केवल कबीर हमसे रूठा है। रूठनेवालो पर माया का बस नही चलता | बुगली नीर बिटालिया, सायर चढ़या कलंक | और पँखेरू पी गए, हंस न बोवे चंच॥३०॥॥ शब्दार्य-वगुली 5 माया। नीर 5 पवित्रता। विटालिया 5 गंदा करना। सागर ३०8 | कलक < गदगी। पँखेर > जीवात्मा। हस 5 पवित्रात्मा। बोचै 5 डुबवोना। चच * चोच। अर्थ-मायारूपी बगुली ने सारे ससार-सागर के जल को गदा कर रखा है। वासना फैली है। वासना मे पड़ी अज्ञानी जीवात्माएँ वह पानी पी रही हैं। कितु मुक्तात्मा (हस) उसे पीना तो दूर उसमे चोच भी नही डुबोती है। अलंकार-अन्योक्ति। कबीर माया जिनि मिले, सौ बरियाँ दे बॉह। नारद से मुनियर गिले, किसी भरोसौ त्याँह ॥३१॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि सौ बार भी माया गलबॉही दे तो उससे मिलना ठीक नहीं है। भगवान् के साक्षात् पुत्र नारद का भी उसने नाश कर दिया। अब दूसरे किसका भरोसा किया जाय ? माया की झल जग जल्या, कनक कॉमणी लागि। कहें धी किहि बिघि राखिये, रुई लपेटी आगि ॥३२॥ अर्थद-धन (सोना) और स्त्री माया है। सारा ससार इन्ही की तृष्णा मे जल रहा है। यह

साखी २७९ तृष्णा रूई मे लिपटी आग के समान है। मतलब यह कि माया के चक्कर मे पड़े व्यक्ति का कभी कल्याण नही हो सकता है। वह जलता ही रहेगा। अलंकार-निदर्शना | (१७) चाँणक को अंग जीव बिलंब्या जीव सौं, अलष न लखिया जाइ। गोदिद मिले न झल बुझे, रही युझाइ बुझाह ॥१॥ शब्दार्थ-चॉणक < १ चाणक्य नीति। २ इसकी व्युत्तत्ति अचानक से भी मानी जा सकती है। अचानक स अज्ञानात् से व्युपनन्न है। स आज्ञानातू। हि अचानक। चानक। चॉनक। बिलब्या 5 बिलमना। अछूख 5 अलक्षित प्रभु। झल 5 (भेड़। कूँ को। के लिये। ' अर्थ-स्वामी होना सरल है। दास होना कठिन है। जैसे कोई व्यक्ति ऊन के लिये भेड़ पाढे। कितु ऊन तो मिला नही उलटे भेड़ कपास की पौध भी चर जाय | टिप्पणी-यह किसी महत साधु पर व्यग्य है। जिसने वैराग्य की साधना की। कितु भगवल्माप्ति के स्थान पर मठ की सपत्ति का अधिकारी बन विषयासक्त हो गया। प्रभुप्राप्ति तो दूर रही। सन्यासी का सामान्य धर्म भी न अपना सका। स्वॉर्मी हुवा सीतका, पैकाकार पचास। राम नॉम काटे रह्या, करें सिघों की आस ॥४॥ शब्दार्व-सीतका - सुखद। पैकाकार 5 खुदरा व्यापारी या पैरोकार। कॉठे 5. किनारा | सिर्षों > शिष्य। अर्व-स्वामी अर्थात् महत होना अत्यत सुखद है। क्योकि पचासो खुदरा व्यापारी अर्थात्

२८० कबीर समग्र भक्ति का व्यापार करने वाले छोटे-छोटे शिष्य मिल जाते है। राम नाम तो दरकिनार हो जाता है और शिष्यो द्वारा प्राप्त दक्षिणा की आशा बढ़ जाती है। कबीर तष्टा टोकर्णी, लीए फिरे सुभाई। राम नॉम चीन्हें नही, पीतलि ही के चाह ॥५॥ शब्दार्य-तष्टा तसढा। टोकनी > टोकना। एक वर्त्तन। सुभाइ 5 स्वभावत. | पीतढि « पैसा। चाइ 5 चाह। इच्छा। अर्थ-सत कबीर सन्यासियो पर व्यंग्य करते कहते है कि जिन्हे करपात्री होना चाहिए वे तसला, टोकना आदि वर्त्तनो को स्वभावत. वेझिझक लिये घूमते है। राम नाम जानते भी नही हर समय पैसे की इच्छा करते है। टिप्पणी-यह कविता उस समय की है जब पीतल के सिक्के चलते थे। कहठि का स्वॉर्मी लोभिया, पीतलि परी घटाइ। राज दुबारों यी फिरै, ज्यूँ हरिहाई गाइ॥६॥ शब्दार्व-पीतलि धरी षटाइ & पीतल के बर्त्तन खट्टा रखने से खराब हो जाते है। हरिहाई - नटखट। बदमाश | अर्व-कलिकाल के महथ लोभी होते है। छोभ ख़टाई भक्ति के पीतलपात्र मे डालकर उसे भी खराब कर देते है। नटखट गाय के समान दरवारों मे फिरा करते है। भला संन्यासी को दरवार से क्या लाभ ? अलंकार-उपमा | कलि का स्वार्मी लोभिया, मनसा घरी बधाई। दैहि पईसा ब्याज को, लेखों करता जाइ ॥७॥| अर्थ-कलिकाल के सन्यासी लोभी है। उनके मानस मे हर समय धन-दौलत आदि बढ़ाते रहने की आशा रहती है। वे सूदखोर है। मूल्धन तथा उसके व्याज का लेखा रखते है। कबीर कलि खोटी भाई, भुनियर मिले न कोइ | छालथ लोभी मसकग, तिनकूँ आदर होइ ॥८॥ अर्य-सत कबीर कहते है कि कठियुग खोटा है। बुरा है। इस युग मे कोई मुनि नही मिला। सभी लाढची, लोभी और मसंखरे मिलाते है। उन्ही का आदर भी होता है। जो कह झूठ मसखरी जाना। कल जुग सोइ गुनवन्त बखाना -मानस। चारिउ थेद पढ़ाइ करि, डरि सूँ न लाया हेत। वालि कबीश छे गया, पंडित दँड्ें खेत ॥९॥ शब्दार्व-बालि 5 बाल। अनाज के दाने। गा .अर्व-चारो वेद पढ़ने से क्या हुआ यदि ईश्वर से प्रेम नही हुआ ? यह वैसा ही है जैसे खेत की उपज का सार भाग कोई ले भागे और पडित उसे शास्त्र के खेत मे ढूँढ़ते रहे। क्योंकि भगवपग्येम शास्त्रज्ञान से बाहर की चीज है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। टिप्णणी-गीता वेदों को त्रिगुणात्मक कहती है- त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन -२/४५ ह ब्रॉह्मण गुरू जयत का, साधू का गुरु नाहिं। पुरक्ति करे मरि रहा, चारिठें बेदों माहिं॥१०॥ अर्व-द्राह्मण सांसारिक जीवों का गुरु होता है। साधुओ का गुरु नहीं होता है। ब्राह्मण

साखी २८१ चारो 2 उलझ कर मर जाता है। उसे कभी मुक्ति नही मिलती है। क्योकि वेदाध्ययन भी भोग ही है। टिप्पणी-शकराचार्य शास्त्रानुवर्तन को भी त्यागने को कहते है।-विवेक चूडामणि। ह साषित सण का जेवड़ा, भीगाँ सूँ कठठाह। म दोह अषिर गुरु बाहिरा, बॉध्या जमपुरि जाइ॥११॥ शब्दार्थ-साषित ८ शाक्त।| जेवड़ा 5 रस्सी। कठठाइ > कठोर होना। अषिर > अक्षर | बाहिरा 5 ब्रिना | अर्थ-शाक्त (भ्रष्ट आचारणवालढ़ा असाधु) सनकी रस्सी के समान है। विषयों मे भीग कर वह और भी कड़ा हो जाता है। उसके भीतर की नग्रता (प्रभुप्रे) खत्म हो जाती है। गुरु द्वारा प्राप्त राम नाम के दो अक्षरों के बिना वह बँध कर यमपुर को जाता है। पाड़ोसी सू रूसणों, तिल तिल सुख को हॉणि। पंडित भए सराबगी, पाणी पीबे छोणि ॥१ २॥ शब्दार्य-सरावगी + श्रावक। जैन साधु | अर्थ-आत्मा का पड़ोसी परमात्मा से विमुख होना छोटे से छोटे सुख की हानि है। पडितो का हाल जैन साधुओ जैसा हो गया है जो पानी तो छान कर पीते है कितु शेष आचरण मे शुद्धता का ध्यान नही रखते है। पंडित सेती कहि रहा, भीतरि भेद्या नाहिं। औछरूँ को परमोघता, गया मुहरकाँ माह ॥१ ३॥ शब्दार्थ-भेद्या न भेदन होना। परमोधतों - प्रबोधन करना। मुहरकोँ 5 (< अर० मुहर्रिक) अगुआई। अर्थ-विद्या सपन्न व्यक्तियो को सतो की बाते समझ मे नही आती है। पडित को राम साधना का तत्त्व कितना भी समझाइए उसके भीतर कुछ धँसता ही नही। दूसरो का प्रबोधन करता है, शिक्षा देता है और स्वय मृत्युमुख मे जानेवालो की अगुआई करता है। अर्थात् सबसे पहले मरता है। चतुराई सूबै पढ़ी, सोई पेंजर मा्हिं। फिरि प्रमोधे आन कौं, आपण समझे नाहिं ॥१४॥ अर्थ-पढ़ने से चतुराई तो आ जाती है। जैसे सुग्गे को राम-राम बोलना आ जाता है। कितु इससे उसके पिजड़े पर अर्थात् बदी जीवन पर कोई असर नही होता है। दूसरो को रामराम रटने की शिक्षा देता है। कितु स्वयं अपने भीतर कुछ भी नही समझता है। अलंकार--अन्योक्ति | रासि पराई राषताँ, खाया घर का खेत। औरी कौ प्रमोधता, मुख में पड़िया रेत ॥१ ५॥ अर्थ-विद्वान् उस किसान के समान है जो दूसरे के खेत की रक्षा करते है। उनके घर का खेत जानवर खाते रहते है। अर्थ यह कि विद्वानों की विद्या उनकी अनुभूति या अत करण की न होकर दूसरो से उत्पन्न है। वे उसे प्राप्त कर केवढ उसकी रखवाली करते है। उससे आलज्ञान का काम भी नही छे सकते है। दूसरों की विद्या द्वारा लोगो को ज्ञान भी देते है। कितु स्वय उनके मुँह मे राख पड़ती है यानी यमराज के अधीन होते है। पराई और बाह्य विद्या उन्हे मृत्यु से नही बचा सकती है। अलंकार-अन्योक्ति ।

 तारा मंडल बैसि करि, चंद बड़ाई खाइ। उदे भया जब सूर का, स्यूँ तारों छिपि जाइ ॥१ ६॥ अर्थ-ताराओ के बीच मे चद्रमा की प्रतिष्ठा होती है। कितु सूर्योदय के वाद तारा सहित चद्रमा छिप जाता है। यही बात पडितो की है। पडित भी असाधको के बीच चमकता है। कितु सच्चे ज्ञानी साधक को देखकर छिप जाता है। अलंकार--अन्योक्ति | देषण के सबको भले, जिसे सीत के कोट। रवि के उदै न दीसही, बेंद्रे न जल की पोट ॥१७॥ शब्दार्व-जिसे - जैसे ! सीत के कोट 5 ओस का किला। पोट - गॉठरी | अर्थ-विद्वान और उनके आडबर वर्फ के किले के समान भड़कीले होते है। कितु ज्ञानसूर्य वाले सत को देखते ही नष्ट हो जाते है। क्योकि जल की गॉठरी नही वॉधी जा सकती है। अलंकार-उपमा | तीरथ करि करि जग मुवा, ईंधे पोणी नहाइ। रॉमहि राम जपंतडों, काल घसीट्यों जाइ॥१ ८॥ शब्दार्थ-डूँघे 5 गहरा | अर्व-लोग तीर्थों मे जाते है। गहरे तीर्थ जल मे स्नान करते है। राम-राम भी जपते है। कितु फिर भी काल इन्हे घसीट ले जाता है। क्योकि इनका विश्वास राम नाम की अपेक्षा तीर्थो पर अधिक रहता है। ये राम नाम को द्वितीय स्थान देते है। कासी काठें घर करें, पीबे निर्मल नीर। मुकति नही हरि नाव बिन, यीं कहै दास कबीर ॥१ ९॥ अर्थ-काशी के किनारे काठ घर किया। गगा का निर्मल जल पीते है। कितु भगवान् की भक्ति के बिना मुक्ति नही हो सकती है। यह दास कबीर कहते है। कबीर इस संसार कीं, समझाऊं के बार। पूँछ जू पकड़े भेड़ की, उतरण चाहे पार॥२०॥ का शब्दार्थ-भेड़ की पूँछ पकड़ना 5 गतानुगतिक होना। सासारिक भेड़ियाधसान में शामिल ना। अर्थ-सत कबीर इस ससार के लोगो को बार-बार समझाते हैं। कितु कोई सुनना नही चाहता है। सभी लोग भेड़ियाधसान जैसे विषयो के पीछे भाग रहे है। कबीर मन फूल्या फिरे, करता हूँ मैं प्रंम । कोटि क्रम सिरि ले चल्या, चेत न देखे भ्रम ॥२१॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि लोग फूले फिरते है अर्थात् अहंकार मे घूमते है कि मैं बड़ा भारी धर्म करता हूँ। कितु धर्म के नाम पर वह कर्मो का बोझ सिर पर लादे रहता है। कभी अपने भ्रमो पर ध्यान नही देता है। मोर तोर की जेवड़ी, बलि बंध्या संसर। कॉसिंकडूबॉसुत कलित, दाझड़ बारंबार ॥२२॥ शब्दार्थ-जेवड़ी - रस्सी। वि - बल पूर्वक। कॉसि 5 कॉस। कड्>ूँबा न घास। कलित (सं कलुत्र) 5 सत्री। दाझड़ 5 जल्ना। . अर्थ-मेरा तेरा की रस्सी मे सारा ससार बँधा>है। कितु स्त्री, पुत्र आदि कुट्ठमब कास घास के समान है। जो बार-बार जछते है। बा हि

साखी २८३ (१८) करणीं बिना कथणी कौ अंग कथणीं कथी तो क्या भया, जे करणीं नो ठहराइ। कालबूत के कोट ज्यूँ, देषतही ढहि जाइ ॥१॥ शब्दार्-कालबूत - कच्चा ढाँचा जिसपर मेहराब बनाई जाती है। अर्थ-आचरणंरहित शास्त्र विचार व्यर्थ है। आचरण रहित विचार कालबूत या वह कच्चा ढॉँचा है जो टिकाऊ नही होता है। अलंकार-उदाहरण | जैसी मुख तें नीकसें, तैसी चाले चाल। पारब्रह्म नेड़ा रहे, पल मै करे निहाल।॥२॥ अर्व-कर्म और वचन मे एकता रहनी चाहिए। जो बोले वही करे। इससे परब्रह्म का सामीय् प्राप्त होता है। एक क्षण मे भी धन्य होने या सब कुछ पा जाने की स्थिति आ जाती है। जैसी मुष ते नीकसें, वैसी चाल नाहिं। मानिष नही ते स्वान गति, बॉघ्या जमपुर जॉर्हि ॥३॥ अर्थ-जैसा बोले वैसा कर्म न करे तो उस मनुष्य को कुत्ता समझना चाहिए। वह बँधकर यमपुर जाता है। अलंकार-अपहनुति | पद गोएँ मन हरधियों , साषी कह्यों अनंद। सो तत नाव न जाणियाँ, गल में पड़िया फंद ॥४॥ शब्दार्थ-गोऐएँ < छिपाए। लगाए | अर्थ-प्रभु चरणो मे मन लगाने से प्रसन्नता हुई। इसी आनद के साक्षी का कथन किया। जो उस तत्त्व का नाम नही जानते है उनके गले मे यम की रस्सी पड़ती है। करता दीसे कीरतन, ऊँचा करि करि लूँड। ' जोंणै बूझे कुछ नही, यो ही आँधों रूँड॥५॥ शब्दार्थ-तूँड 5 सिर। रूँड + धड़। बिना सिर का शरीर। अर्थ-जो बिना भीतरी प्रेरणा के मुँह उठा-उठा कर कीर्तन करता है वह कुछ समझता नहीं। ऐसा अज्ञानी सिरविहीन शरीर के समान व्यर्थ प्रयास करता है। कीर्तन मे आत्मज्ञान आवश्यक है। तुलनीय- हु पडित ग्यानी षरतर बोडे सतिका सबद उछेदे | काया के बलि करड़ा बोर भीतरि तत्त न भेदे |-गोरख | (१९) कथणी बिना करणी कौ अंग मे जान्यूँ पढ़ियो भलौ, पढ़िया यें भलौ जोग। रॉम नॉम सूँ प्रीति करि, भल भल नींदो लोग ॥ १॥

 अर्थ-मैने समझा पढ़ना अच्छा है। कितु पढ़ने की अपेक्षा मन का प्रभु प्रेम लगाना अधिक अच्छा है। राम नाम से प्रीति अच्छी चीज है। चाहे लोग कितनी ही निदा क्यो न करे पढ़ने की अपेक्षा राम नाम से प्रीति अधिक अच्छी है। कबिरा पढ़िवा दूरि करि, पुस्तक दे बहाइ। बॉवन आपिर सोधि करि, रे ममे चित लाइ ॥२॥ शब्‍्दार्थ-ररै मम 5 राम नाम। अर्थ-पढ़ना छोड़ो। पुस्तके पानी मे बहा दो। पुस्तकी ज्ञान व्यर्थ है। बावन अक्षरों से उत्पन्न 33040 की अपेक्षा दो अक्षरों का राम नाम मन मे धारण करो। इसी से कल्याण होगा। तुलनीयएक छद्‌चु एक मुकुट मनि, सब बरननि पर जोठ। तुलसी रघुबर नाम के, बरन विराजत रोठ ।--मानस कबीर पढ़िवा दूरि करि, आधि पढ़या संसार। पीड़ न उपजी प्रीति सूँ, तौ क्यूँ करि करे पुकार ॥३॥ शब्दार्थ-आधि - अस्त। नाश | अर्थ-पुस्तके पढ़ना बेकार है। इससे नाश को नहीं रोका जा सकता है। पुस्तक पढ़नेवालो को आत्मज्ञान न होकर आत्मनाश होता है। इससे प्रभु प्रीति नही उपजती है। अगर पुस्तको के पढ़ने से प्रभु प्रेम होता तो कोई साधक वियोग व्याकुल होकर भगवान की पुकार क्यो करता ? तुलनीय-षडित ग्यान भरी क्या झूझि। औरै लेहु परमपद बूझि |-गोरख। पोयी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोड । एके अषिर पीब का, पढ़े सु पंडित होइ ॥४॥ अर्थ-ससार के सारे पडित पुस्तके पढ़-पढ़ कर मरे गये। कितु किसी को आलज्ञान नही हुआ। परब्रह्म के नाम का एक अक्षर भी पढ़ लिया तो असली पाडित्य आ गया। (२०) कामी नर कौ अंग कॉमणि काली नागर्णी तीन्यूँ लोक मैंझारि। राम सनेही ऊबरे, विषई खाये झारि॥ १॥ शब्दार्थ-झारि ज्वाला | अर्थ-कामिनी काली नागिन के समान तीनो लोकों मे फैली है। इससे राम भक्त ही छूट पाते है। विषयी लोग तो उसकी ज्वाला (कामाग्नि) मे जलते रहते है। अलंकार-रूपक | कॉमणि मीनी घोणि की, जे छेड़ों तौ खाइ। जे हरि चरणों राधियाँ, तिनके निकटि न जाइ॥२॥ शदार्थ-मीनी - मधुमक्खी। षोंणि + खान। राचियाँ - अनुरक्त | अर्थ-कामिनी मधुमक्खी की खान है। जो इसको छेड़ता है उसे काटती है। किंतु जो प्रभुचरणो में अनुरक्त है उसके पास नही जाती है। जेलकार-रूपक |

साखी २८५ परनारी राता फिरे, चोरी बिठता खाँ्दिं। दिवस चारि सरसा रहै, अंति समूला जॉर्हि ॥३॥ शब्दार्थ-राता 5 अनुरक्त। बिढता > कमाई। सरसा + आनद भरा। अर्थ-पराई स्त्री मे अनुराग और चोरी की कमाई दोनो चार दिनो के आनद है। अत मे ऐसे व्यक्ति का नाश अवश्य होता है। पर नारी पर सुंदरी, बिरला बचे कोह। खाताँ मीठी खाँड सी, अंति कालि विष होइ॥४॥ अर्थ-परायी स्त्री के-प्रति प्रेम से शायद कोई बचा हो। यह खाने मे (उपयोग) गुड़ जैसी है कितु अत मे जहर बन जाती है। अलंकार-उपमा। पर नारी के राचण, औगुण है गुण नोहें। ,...घार समंद मैं मंन्नला, केता बहि बहि जाएँ ॥५॥ अर्थ-परायी स्त्री से प्रेम मे गुण एक भी नही, अवगुण बहुत से है। जैसे खारे समुद्र की मछली उस समुद्र मे सुख नही पाती है वैसे ही परनारी के विषय मे डूबा व्यक्ति ससारसागर मे व्यर्थ चक्कर लगाता है|. अलंकार--उपमा | पर नारी कौ राचणों, जिसी ल्ठसण की एॉनि। घूणें बैसि रघाइए, परगट होई दिवानि ॥६॥ शब्दार्थ-घॉनि 5 खाना। दिवानि 5 दीवानखाने मे। सार्वजनिक स्थान पर। षूणै ८ एकात | ४ . अर्थ-परायी स्त्री से प्रेम छिपता नही है। यह लहसुन खाने की गध जैसी है। एकात मे भी लहसुन खाइए तो उसकी गध दूर-दूर तक जायगी। अैहेकार-उपमा | , नर नारी सब नरक है, जब लग देह सकाम। कहे कबीर ते राम के, जे सुमिरि निहकाम ॥७॥ अर्थ-सकाम देह वाले स्त्री-पुरुष सभी नरक है। जो निष्काम भाव से भगवान् का स्मरण करते है वे ही राम के सच्चे भक्त है। कर नारी सेती नेह, बुधि वियेक सबही हरे। काँइ गमावे देह, कारिज कोई, नो सरे॥८॥ अर्थ-स्त्री से प्रेम बुद्धि, विवेक आदि सबको नष्ट कर देता है। हे जीव, इससे केवल देह नष्ट होगी। कोई काम पूरा न होगा। तुलनीय-. बुधि बल सत्य सील सब मीना। प् बसी समतिय कह्टहि प्रबीना ।-तलसी नाना भोजन स्वाद सुख, नारी सेती रंग। बेगि छाड़ि पछताइगा, डै है मूरति भंग ॥९॥ अर्थ-अनेक प्रकार के भोजनो मे स्वाद का सुख और स्त्री के साथ आनद इन्हे जल्दी गेड़ो | वरना पछताना होगा। शरीर नष्ट हो जायगा। नारी नसाये तीनि सुख, जा नर पासे होह। । भगति मुकति निज ग्यान में, पैसि न सकई कोड ॥१ ०॥ , जर्थ-स्ूरी मे अनुरक्त मनुष्य की भक्ति, मुक्ति और ज्ञान तीनो समाप्त हो जाते है। ऐसा हु

२८६ कबीर समग्र व्यक्ति तीन मे किसी में भी प्रवेश नहीं पा सकता है। एक कनक अरु कॉमनी, बिष फल कीएउ पाइ। देखे ही थे विष चढ़े, खाँये सूँ मरि जाइ ॥१ १) अर्थ-सोने और स्त्री को विष का फल समझो। इन्हे देखने से विष चढ़ता है। खाने से मृत्यु होती है। टिप्पणी-यहाँ कनक का अर्थ धतूरा भी होने से कनक मे श्छेष है। इसी से मिलता दोहा बिहारी का हैकनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय। वाखाये बौराय नर या पाये बौराय | एक कनंक अरु कॉमनी, दोऊ अगनि की झाल। देखें ही तन प्रजले, परस्यों है पेमाल ॥१ २॥ अर्थ-सोना और स्त्री आग की ज्वाला है। इन्हे देखते ही कामाग्नि जलती है। छूने पर तो नाश ही हो जाता है। अलंकार-रूपक, व्यतिरेक। कबीर भग की प्रीतड़ी, केते गए गडंत | केते अजहूँ जायसी, नरकि हसंत हसंत ॥१ ३॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि स्त्री की प्रीति ने कितनो को बर्बाद कर दिया। आज भी कितने हँसते-हँसते नरक जायेगे | टिप्पणी-कबीर साहब हँसने मे नही रोने मे विश्वास करते है- कबीर हँसना दूरिकर रोवण सो कर प्रीति। जोरू जूठणि जगत की, भले युरे का बीच । उत्यम ते अठगे रहें, निकटि रहे तें नीच ॥१४॥ अर्थ-स्त्री ससार मे जूठन के समान है। भले बुरे का फर्क इसी से होता है। उत्तम या भले लोग इससे अलग रहते है। कितु नीच पुरुष इसके निकट रहते है। अलंकार-रूपक || नारी कुंड नरक का, बिरला थंभे बाग। हृ कोई साधू जन ऊबरे, सब जग मूँबा छाग ॥१ ५॥ शब्दार्थ-धभे + टोकना। बाग (स वल्गा) 5 छगाम। लाग > प्रेम कर। छगकर | अर्थ-स्त्री नरक कुड है। इस नरक कुड मे छोग काम-अश्व को दौड़ाकर कूदते है। शायद कोई हो जिसने कामंअश्व की ढुगाम पर काबू रखा हो। सभी लोग तो इस कुंड मे डूबकर मर गए। केवल भक्त इससे उबर सका है। अलंकार-रूपक | सुंदरि थे सूली भली, बिरला बंचे कोय। लोह निहाला अगनि मै, जलि बलि कोइला होय ॥१ ६॥ अर्थ-स्त्री को स्वीकार करने की अपेक्षा फॉसी पर चढ़ना अधिक अच्छा है। कितु शायद कोई हो जो स्त्री से बचा हो। जैसे आग मे डाछा छोहा जलकर कोयला हो जाता है। उसी प्रकार स्त्री वासना की आग मनुष्य को नष्ट कर देती है। अलंकार-निदर्शना | भगति बिगाड़ी कॉमियोँ, इंद्री केरे स्वादि। हीरा खोया हाथ दें, जनम गँवाया बादि ॥१ ८॥

साखी २८७ अर्थ-कामी छोगो ने इद्रियो के स्वाद के कारण अपनी भक्ति बिगाड़ ली। भक्ति जैसे हीरे को खोकर नर जन्म को व्यर्थ बना लिया। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | कामी अमीं न भावई, विषई की ले सोधि। कुबधि न जाई जीव की, भावै स्यंभ रहो प्रमोधि ॥१ ९॥ शब्दार्व-अमी--अमृत | सोधि 5 खोजकर। स्थभ 5 स्वय। भावै > चाहे। प्रमोधि प्रबोधन करना। अर्थ-विषयी व्यक्ति को प्रभुप्रेम अच्छा नही रूगता है। वह विषय की ही खोज करता रहता है। चाहे स्वय परमात्मा ही उसका प्रबोधन क्यो न करे कितु उसकी दुर्बुद्धि नही जाती है। दुर्बद्धि तो तब जायगी जब विषयो का साथ छोड़ दे। विषयो के सग से तो नाश अवश्यभावी है। टिप्पणी-गीता की दृष्टि मे विषय सग से काम, काम से क्रोध, क्रोध से समोह, समोह से स्मृति भ्रश, स्पृति भ्रश से बुद्धि नाश, बुद्धि नाश से पूर्ण नाश होता है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। विषे विलंदी आत्मों, ताका मजकण खाया सोधि। श्यॉन अंकूर न ऊगई, भावे निज प्रमोधि ॥२०॥ शब्दार्थ-मजकण१ (स मध्य कण) > सार भाग। २ (स मत्कुण) 5 खटमल। अर्थ-जो आत्मा विषयो मे बिलमी है उसके सार भाग का नाश हो जाता है या विषय खटमल उसे चाट कर नाश कर देते है। ऐसे नष्ट व्यक्ति पर भगवान् के उपदेश का भी प्रभाव नही होगा। अलंकार-रूपक | विधे कर्म की कंचुली पहरि हुआ नर नाग। सिर फोड़ सूचे नही, को आगिला अभाग ॥२१॥ शब्दार्थ- विष + विषय-वासना। कचुली 5 केचुल। आगिला - पूर्व जन्म का। अर्य-विषयवासना युक्त कर्म की केंचुल पहन कर मनुष्य अधानाग (सर्प) बन गया। अब उस विषयाध को मुत्तिम्ार्ग नही दिखाई पड़ता है। चाहे कितना ही सिर पटके। यह सब पूर्व जन्म कृत पामो का परिणाम भी है। अलंकार-सागरूपक | कामी कदे न हरि भजै, जपै न कैसी जाप। रॉम कह्यों वे जलि मरे, को पूरिबला पाप॥२२॥ अर्थ-कामी पुरुष कभी हरि को नहीं भजता है। केशव की आराधना नही करता है। राम कहने मे जल मरता है। यह सब पूर्व जन्म के पाप से होता है। कॉमी लज्जा ना करें, मन मोहे अहिलाद। नींद न माँगे सॉवरा, भूष न मांगे स्वाद ॥२ ३॥ शब्दार्थ-अहिलाद + अहलाद | सॉथरा ८ रूखा बिछावन। अर्थ-कामी को ढज्जा नही होती है। वह मन में आहलादित रहता है। जैसे नीदवाला ' व्यक्ति रखे बिछावन और भूखा स्वाद पर ध्यान नही देता है। अलंकार-दृष्टात । नारि पराई आपणीं भुगत्या नरकहि जाइ। आगि आगि सबरी कहै, तामै हाथ न बाहि॥२४॥

२८८ कबीर समग्र अर्थ-स्त्री चाहे अपनी हो या परायी। इनके अनावश्यक सेवन से नरक भोग होता है। काम का भी सम्यक् सेवन स्वीकृत है। सभी आग एक है। कितु सीमित मे ही हाथ डालना चाहिए। अधिक आग हाथ क्या पूरे गाव को जला देती है। टिप्पणी-कालिदास ने रघुवश मे कहा है कि रधुवशी केवल सतानोत्पत्ति के लिये विषयों का सेवन करते है। अलक्कार-दृष्टात | कबीर कहता जात हों चेते नहीं गाँवार। वैरागी गिरही कहा, कॉमी बार न पार॥२५॥ अर्थ-सत कबीर कहते जाते है कितु विषय मे डूबे मूर्ख नही सुनते है। विरागी साधु हो या ग्रहस्थ अगर वह कामी है तो उसका उद्धार (वारपार) नही होगा। ग्यॉँनी तो चींडर भया, मॉने नॉही संक। इंद्री केरे बसि पड़या, भूंथे बिये निसंक ॥२६॥ शब्दार्थ-भूँचे + भोगना। अर्थ-ज्ञानी का पतन हो गया। वह इद्रियो के वश मे हो गया। अब नि शक होकर विषय भोग करता है। दिप्पणी-ज्ञान के पतन का कारण भक्ति या प्रपनन स्थिति का अभाव है। ग्यॉनी मूल गंवाइया, आपण भये करंता। ताये संसारी भला, मन मै रहे उरंता॥२७॥ अर्थ-ज्ञानी का आत्मसमर्पण नही हो पाया। वह अपने को ही कर्त्ता मान रहा है। इससे तो ससारी लोग अच्छे है जिनके मन मे हर समय भगवान् का डर बना रहता है। टदिप्पणी-अहकार विमूढात्मा कर्त्ताइहमिति मन्यते |-गीता (२१) सहज को अंग सहज सहज सबकी कहे, सहज न चीन्‍्हें कोइ। जिन्हे सहज विषिया तजी, सहज कहीजै सोह ॥ १ ॥ अर्थ-यह सहजिया सप्रदाय के लोगो पर व्यग्य है। सभी लोग सहज-सहज की बात करते है। कितु किसी को सहज की पहचान नही है। जिन्होने सहज ही विषय को छोड़ दिया उन्हे ही सहज साधक कहना चाहिए अलकार-पुनरुक्ति प्रकाश | सहज सहज सबकी कहै, सहज न चीन्हे कोइ । पॉँचू राखे परसती, सहज कहीजै सोइ ॥२॥ ४ अर्थ-सहज कथन मात्र से सहज की पहचान नही होती है। जो विषयो का स्पर्श करके भी इद्रियो को वश मे रखता है उसे ही सहज कहना चाहिए ह अलकार-पुनरिक्त प्रकाश | सहजै सहजै सब गए, सुत बित कामणि काम । है; मिलि रह्मा, दास कबीरा राम॥३॥ अर्थ-साधक ने धीरे-धीरे पुत्र, स्त्री और धन की आसक्ति छोड़ दी। फलत वह राम से

साखी २८९ एकाकार हो गया। अलंकार-पुनरुक्ति प्रकाश । सहज सहज सबको कहे, सहज न चीन्हें कोइ। जिन्हे सहजै हरिजी मिले, सहज कही जै सोह ॥४॥ अर्थ-सहज की बात सभी करते है कितु सहज को कोई भी पहचानता नहीं है। जिस सहज साधना से प्रभु की प्राप्ति होती है उसे ही सहज कहना चाहिए। अलंकार-पुनरुक्ति प्रकाश। (२२) साँँच कौ अंग कबीर पूँजी साह की, तूँ जिनि खोबे ष्वार। खरी बिगूचनि होइगी, लेखा देती बार ॥१॥ शब्दार्थ-ष्वार ख्वार। खराब। बिगूचनि न असमजस। अर्थ-सत कबीर कहते है कि यह मानव जीवन प्रभु की सपत्ति है। किसी जीव को इसे खराब करने का अधिकार नही है। जब प्रभु सासारिक यात्रा का लेखा-जोखा मॉगने लगेगा तो खराब कर्मों द्वारा भगवत्सपत्ति के नाश के बारे मे क्या बताओगे ? अलंकार-रूपकातिशयोक्ति लेखा देणों सोहरा, जे दिल साँचा होइ। उस चंगे दीवॉन में, पला न पकड़े कोइ ॥२॥ * शब्दार्थ-सोहरा 5 सरल | चगे दीवॉन - पवित्र दरबार। पछा 5 पललू। दामन। अर्थ-जिसका दिल सच्चा है उसके लिये भगवान् के सामने जीवन का छेखा-जोखा सरल है। जिसके दामन मे विषय दाग नहीं है उसका उस प्रभु के पवित्र दरबार मे कोई दामन नहीं पकड़ सकता है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | कबीर चित्त चमकिया, किया पयाना दूरि। काइथि कागद काढ़िया, तब दरिगह लेखा पूरि ॥३॥ शब्दार्थ- चमकिया > चौंका। पयाना > प्रयाण। काइथि चित्रगुप्त | अर्थ-जीव ने दूर प्रयाण किया। वहाँ चित्रगुप्त उसके कर्मो का लेख-जोखा लेने लगे। जीव यह देखकर चौंक उठा कि यमराज के दरबार मे सारे कागज उसके विरूद्ध भरे हैं। क्योकि उसने जीवन मे कोई अच्छा काम नही किया है। ॥ काइवि कागद काढ़िया, तब लेखे बार न पार। जब लग साँस सरीर मै, तब लग राम सैंभार॥४॥ अर्थ-ऐ जीव, जब तक शरीर मे सॉस है तब तक राम की कृपा को सेभालकर रखो। क्योकि रामकृपा के बिना चित्रगुप्त के कागज मे तुम्हारा कुछ भी ठिकाना न रहेगा। क्योंकि तुमने जीवन मे कोई अच्छा काम नही किया है। यह सब झूठी बंदिगी, बरियों पंच निवाज। साधै मारे झूठ पढ़ि काजी करै अकाज ॥५॥ अर्थ-दिन मे पाँच बार नमाज और बदगी (प्रार्थना) ये सब झूठ है यदि तू सत्य का

२९० कबीर समग्र आचरण न कर सत्य की हत्या करता है और झूठ पढ़ता है। आत्मज्ञान से ही कार्य होगा। काजी के ज्ञान से कार्य बिगड़ने की आशा है। कबीर काजी स्वादि बसि, ब्रह्म हते तब दोह | चढ़ि मसीति एके कहै, दरि क्यूँ साधा होड़ ॥६॥ अर्थ-संत कबीर कहते है कि काजी स्वादवश जीव हत्या करता है। स्वाद भ्रम के कारण उसे 'जीवो ब्रहौव ना पर ” का ज्ञान न होकर उल्टे जीव और ब्रह्म के द्वैत का बोध होता है। वही काजी मस्जिदों मे 'लाइलाह इल्लिल्लाह' के द्वारा एकेश्वरवाद की घोषणा करता है। इस दवैत मतिवाला काजी ईश्वर के दरबार मे किस सत्य को प्रमाणित करेगा ? काजी मुलों भ्रमियों, चल्या दुनीं के सावि। दिल ये दीन बिसारिया, करद लई जब हाथि ॥७॥ अर्थ-काजी और मुल्ला दोनो भ्रम मे पड़कर अज्ञानाश्रित सासारिक लोगो के साथ चहते है। दिल मे रहनेवाले धर्म(दीन) को भूले रहते हैं। विशेषता जब हलाल करने के लिये छुरी (करद) उनके हाथ मे होती है। छुरी उन्हे अपने दीन से डिगा देती है। जोरी कलिर जिहे करे, कहते है ज हलाल। जब दफतर देखेंगा दई, तब द्वैगा कीण हवाल ॥८॥ अर्थ-जोर देकर जिवह करता है। उसे हछाल कहता है। कितु ईश्वर के कायलिय मे तेरी क्या दशा होगी ? क्या जबाव देगा ? क्योकि जिसे तू हलाल कहता है वह पूर्णत हिंसा है। जीव वध है। जोरी कीयों जुलम है, माँगे न्याव ख़ुदाड। खालिक दरि खूनी खड़ा, मार मुष्टे मुहि खाइ ॥९॥ शब्दार्थ-खालिक 5 ईश्वर। खूनी > हत्वारा। अर्व-खूब जुल्म किया। अब ईश्वर के दरवार मे खड़ा होकर न्याब माँगता है ? इस हत्यारे का न्याय यही है कि यह वार-वार मुँह मे मार खाए। साईं सेती चोरियों, थोरां सेती गुन्न। जाणेगा रे जीवड़ा, मार पड़ेगी तुन्न ॥१०॥ शब्दार्थ-गुझ < घनिष्ठता | मित्रता। अर्थ-भगवान् के साथ चोरी और चोरो से मित्रता यह ठीक नही है। हे जीव। इस, कार्य का फल तभी मालूम होगा जब तुझ पर यमदड का प्रहार होगा। सेष सयूरी दाहिरा, क्या हज काबै जाइ। जिनकी दिल स्याबति नहीं, तिनकी कहाँ ख़ुदाइ ॥११॥ शब्दार्ध-सेष 5 शेख। सवूरी < सतोष | स्थावति - पूर्ण। सच्चा। अर्थ-ऐ शेख, संत्तोष तो तुम्हारे भीतर है नहीं। फिर काबे मे हज को जाने से फायदा क्या है ? दिल द्वैत रहित पूर्ण नही है तो उस व्यक्ति को खुदा नहीं मिल सकता है। खूब खाट है ख़्रीचडी, मोहि पड़े ठुक टूंण। पेड़ा रोटी खाइ करि, गला कठावै कौण॥१२॥ अर्थ-स्वाद का चक्कर मनुष्य को वर्वाद कर देता है। खीचड़ी खाँड़ के समान मीठी है यद्वि उसमें थोड़ा नमक पड़ जाय। पेड़ा-रोयी खाकर कौन है जो गला कयवेगा २ अर्थात् सादा भोजन मुक्ति देता है। वैभववाला भोजन बधन बन जाता है। पापी पूजा बैसि करे, भषै मास मद दोड़। तिनकी दष्या मुकित नही, कोटि नरक फल होड़ ॥१ ३॥

साखी २९१ अर्थ-पापी छोग(यहाँ शाकत) पूजा मे बैठकर भी मॉस, मदिरा आदि खाते पीते है। उन्हे _भी मुक्ति नही मिल सकती है। वे करोड़ो बार नरक मे पड़ते है। सकल बरण इकत्र दे, सकति पूजि मिलि खाँहि। ह हरि दासनि की श्रांति करि केवल जमपुरि जॉहि॥१४॥ अर्थ-सामान्यत वर्णव्यवस्था मे लोग अलग-अलग खाते पीते है। कितु शक्ति आराधना $ नाम पर मॉस, मदिरा आदि का सेवन भेदभाव रहित होकर करते है। भगवान् की भक्ति का भ्रम फैलाकर ये लोग सीधे जाते है। कबीर जया हो की, सुमिरे नॉही साथ। जानि बूझि कंचन तजै, काठा पकड़े काच ॥१ ५॥ अर्व-बहुत नकली भक्त सच्चे मन से स्मरण न कर लोकलज्जा वश भगवान का स्मरण फरते है। ऐसे लोग जान बूझकर सोने जैसी प्रभु भक्ति को छोड़ तत्त्ववीन काठ और शीशे को कड़ते है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। कबीर जिनि जिनि जॉणियाँ, करता केवल सार। सरो प्राणी काहै चलै, झूठे जग की लार ॥१ ६॥ शब्दार्थ-लार 5 लाड़। प्यार। प्रेम | अर्थ-जो लोग जानते है कि सृष्टिकर्त्ता प्रभु ही सार तत्त्व है। वे ससार के झूठे प्रेम के पीछे क्यो दौड़ेगे ? झूठे कौ झूठा मिले, दूणों बंधे सनेह | झूठे कूँ साथा मिले, तब ही तूटे नेह ॥१७॥ अर्थ-दो असत्य मे प्रेम होता है। दो सत्य मे प्रेम होता है। सासारिक प्रेम दो झूठो, नाशवानो के बीच है। इसलिये दोनो स्नेह के बधन मे बँधते है। जब झूठे (नाशवान) व्यक्तिको सत्य परमात्मा मिलते है तब ससार के प्रति उसका मोह भग होता है। * (२३) भ्रम बिधोंसण कौ अंग पांहण केरा पूतला, करि पूजै करतार। इही भरोसे जे रहे, ते बूड़े काली घार ॥१॥ शब्दार्थ-बिधौंसण - विध्वस। पाहन > पत्थर। पूतला - मूर्ति। कालीधार 5 भवनदी की भयानक धारा। अर्व-लोग पत्थर की मूर्ति बनाकर पूजते है। प्रस्तरमूर्ति को कर्त्ता मानकर जो उसके भरोसे रहते है वे भवनदी की भयानक धारा मे डूब जाते है। उन्हे कभी मुक्ति नही मिल सकती है। काजल केरी कोठरी, मसि के कर्म कपाट। पाहनि बोई प्ृथमी, पंडित पाड़ी बाट॥ २॥ शब्दार्द-मसि - स्याही। कपाट 5 किबाड़। बोई > फैलाई। पृथमी > पृथ्वी। बाट पाड़ी (मु) नष्ट कर डाला। ह अर्व-यह ससार काजल की कोठरी के समान है। इसमे आनेवाले को कर्मवासऩा करा दाग अवश्य हढगता है। इसमे कर्म रूपी मसि का किबाड़ लगा है। मसि कर्म का अर्थ है फलाकाक्षी

२९२ कवीर समग्र कर्म | सारे ससार मे पत्थर विछा है। पडितो ने इसका रास्ता और भी खराब कर दिया है। पाहिन कूँका पूजिए, जे जनम न देई जाब। आधा नर आसामुषी, योही खोबे आब ॥३॥ शब्दार्थ-जाव 5 जबाव | आसामुखी 5 आशामुखी। आब मर्यादा। आँधा ८ -अधा। अर्थ-पत्थर को क्यो पूजते हो ? यह पत्थर जन्म भर कभी तुम्हारे किसी प्रश्न का उत्तर नही देता है। आशा करनेवाला व्यक्ति अधा है। वह इसी प्रकार आशा मे निस्तत्त्व की पूजा करता है और अपनी प्रतिष्ठा समाप्त करता रहता है। हम भी पाहन पूजते, होते रन के रोहन । सतगुर की कृपा भई, डारया सिर यें बोन्न ॥४॥ शब्दार्थ-रन 5 अरण्य। रोझ >जानवर। नील गाय | अर्थ-सद्गुरु की कृपा से मेरे सिर से अज्ञान का वोझ उतर गया है। उनकी कृपा न होती तो हम भी पत्थर की पूजा करते और जगल के जानवर होकर इधर-उधर भटकते रहते। जेती देषो आत्मा, तेता सालिगराम। ; साधू प्रतषि देव हैं, नहीं पावर सूकांम ॥५॥ अर्थ-जितनी आत्माओ (व्यक्तियों) को देखता हूँ सभी शाल्ग्राम विष्णु जैसे पवित्र है। साधु प्रत्यक्ष-देवता है। जो इस प्रत्यक्ष देवता की पूजा करता है उसे किसी पत्थर को पूजने की जरूरत नहीं है। सेवे सालिगराम कूँ, मन की भ्रांति न जाइ। सीतलता सुपिने नही, दिन दिन अधकी लाइ ॥६॥ अर्थ-जो लोग शाढग्राम विष्णु की पूजा करते है कितु मन मे भ्रम बना रहता है उनको स्वप्न मे भी सुख-शाति नही मिलती है। उलटे दुख की आग (लाई) बढ़ती जाती है। अलंकार-विशेषोक्ति | सेबें सालिगराम कूँ, माया सेती हेत। बोढ़े काला कापड़ा, नाव धरावें सेत ॥७॥ अर्थ-शालग्राम की पूजा करते है और प्रेम माया से है। नाम के लिये श्वेत वस्त्र पहनते है या सत्य का आचरण करते है। कितु भीतर से काले है। असत्य आचरण वाले है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | जप तप दीसें थोयरा, तीरव ब्रत बेसास। सूवै सैबल सेबिया, यो जग चल्या निरास ॥८॥ शब्दार्थ-दीस - दीखना। थोथरा 5 थोथा। बेसास 5 धोखा । सूबे 5 शुक पक्षी। सुग्गा। सैबल + सेमलू। ह अर्थ-जप और तपस्या थोथे है। तीर्थ धोखा है। ये वैसे ही है जैसे सुग्गा सेमल फूल की प्राप्ति की आशा मे रहता है कितु फ़टने पर उससे निस्तत्त्व रुई निकलती है। वह निराश हो जाता है। जप, तप, तीर्थों आदि से किसी आशा की पूर्ति नही होती है। __ अलकार-उदाहरण, भ्रातिमान्। त्तीरथ त सब बेलड़ी, सब जग मेल्या छाइ। कबीर मूल निकंदिया, कोण हलाहल खाइ ॥९॥ अर्व-सारे तीर्थ वल्लरी (लता) है। यह लता सारे ससार पर छाई है। इस लता मे केवल जहर फलता है। इसलिये सत कबीर ने इसकी जड़ उखाड़ दी। तीर्थों आदि को छोड़ सीधे प्रभु . ” शरण मे पहुँच गये है।

साखी २९३ अलंकार-रूपक | ४ मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जॉणि। दसकवों द्वारा देहुरा, तामे जोति पिछोंणि ॥१ ०॥ अर्व-मन को मथुरा, दिल को द्वारका, शरीर को काशी जानो) वहाँ जाने की जरूरत नही। सब तुम्हारे शरीर मे ही है। दस द्वारो वाले देह मदिर मे प्रभु का निवास है। भीतर ही उस प्रभु ज्योति को पहचानो | अलंकार-रूपक | ह कबीर दुनियाँ देहरे, सीस नवॉवण जाइ। हिरदा भीतर हरि बसे, तूँ ताही सौं लयौ लाइ॥११॥ अर्य-सत कबीर कहते है कि लोग व्यर्थ मदिरों मे जाकर सिर झुकाते है। भगवान् तो हृदय मे ही निवास करते है। हे मन, तुम उसी हृदयस्थ पुरुष से लग जाओ । तुलनीय-ईश्वर सर्वभूतानाम् हृद्देशेडर्जुन तिष्ठति |-गीता। (२४) भेष कौ अंग कर सेती माला जप, हिरदे बहै डंडूल। पग तौ पाला मै गिल्या, भाजण लागी सूल ॥१॥ अर्व-हाथ मे राम नाम जप की माला जपता है और हृदय में छोभ, मोह, कामादि का बर्बंडर बहता है। पैर तो बर्फ मे गल रहा है। भागना चाहता है तो शूल चुभता है। कर पकरे अँगुरी गिने, मन धावे चह)ं वोर। जाहि फिरायों हरि मिलै, सो भया काठ की ठोर॥२॥ अर्थ-हाथ की उँगलियो से माछा के दाने मिनता है और मन विषयो मे चारो ओर दौड़ता है। जिस मन को विषयो से लौटाना चाहिए वह तो काठ स्थानी हो गया है अर्थात् वह प्रभु रस प्रभावित न होकर विषयो मे जम गया है। माला पहरे मनमुषी, तावे कछू न होइ। मन माला को फेरतों, जुग उजियारा सोइ ॥३॥ शब्दार्व-मनमुषी + मन की ओर उन्मुख। अर्थ-जो जप मन की ओर उन्मुख है। मन विषयो मे उन्मुख है उससे कुछ नही होगा। मनरूषी माला को विषयो से हटाकर प्रभु-प्रेम मे फेरा जाय तो पूरा युग प्रकाशित हो जायगा | युग का अर्थ दोनो लोक इह और पर हे तो दोनो छोको मे कल्याण होगा। माला पहरे मनमुषी, बहुते फिरे अचेत। गागी रोलै बहि गया, हरि सूँ नॉही हेत ॥४॥ अर्थ-मन की ओर उन्मुख माला पहने बहुत से छोग अज्ञान मे घूमते है। ऐसे छोगो मे प्रभुप्रेम नही होता है। वे गगा की धारा मे बह जाते है। गगा की धारा मे बहने का अर्थ है प्रवाह पतित होना या मृत्यु को प्राप्त होना (गगालाभ)। ' कबीर माला काठ की, कहि समझा तोहि। मन न फिराबे आपणो, कहा फिराबै मोहि ॥५॥ अर्व-सत कबीर कहते है कि काठ की माला तुमसे क्रहती है कि मन को विषयो से

। । २९४ कबीर समग्र लौटाकर प्रभु प्रेम मे घुमाओ। निरर्थक माला घुमाने से कोई फायदा नही है। कबीर माला मन की, और संसारी भेष | माला पहरथों हरि मिले, तो अरहद के गलि देष ॥६॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि सच्ची माला तो मन बदलना है। मन बदले बिना माढा जप ससारी वेश हो जाता है। माछा पहनने मात्र से हरि मिले तो रहट की माला को देखो। उसे सबसे पहले मुक्ति मिल जाय | टिप्पणी-रहट मे बहुत सी बाल्टियाँ मालाकार मे छगी रहती है। माला पहरयों कुछ नहीं, रूल्य मुवा इहि भारि। बाहरि ढोल्या हीगलू भीतरि भरी भँगारि॥७॥ शब्दार्थ-रूल्य 5 दवकर। ढोल्या 5 वहन किया। हीगलू 5 ईगुर। छाल रग। भगारि ८ कूड़ा | अर्थ-माठा पहनी कितु मन शुद्ध नही है, तो ऐसी माला केवल दवाने वाली (बोझ) वन जाती है। वाहर लाल वस्त्र पहना और भीतर(मन मे) वासनाओ का कूड़ा भरा है। इस तरह के वाह्याडबर से कोई छाभ नही होता है। माला पहरयों कुछ नही, काती मन के साथि। जब लग हरि प्रगंटे नही, तब लग पड़ता हाथि ॥८॥ अर्थ-माला तो शुद्ध आचरण ओर मन का प्रतीक है। कितु मन मे तो छल की छुरी भरी है। ऐसी माला पहनने से क्या लाभ है ? जब तक हरि हृदय मे प्रकट नही होते तब तक हाथ घुमाना व्यर्थ ही समझना चाहिए | माला पहसयों कुछ नही, गाँठि हिरदा की खोड़। हरि चरनूँ चित्त राखिये, ती अमरापुर होइ ॥९॥ अर्थ-माला पहनने से कुछ नही होगा। हृदय मे पड़ी वासना की ग्रथि खोलो। भगवान् के चरणो मे चित्त लगाओ तो प्रभुधाम की प्राप्ति होगी। माला पहर्‌या कुछ नही, भगति न आई सावि। मादी मूँछ मुँडाइ करि, चल्या जगत कै साथि ॥१ ०॥ अर्थ-केवल माला पहन लेने से भक्ति नहीं मिलती है। सिर और मूँछ मुड़ाकर अगर ससारी प्राणियों जैसा ही आचरण किया तो फिर सन््यासी का वेश बनाने से क्या फायदा हुआ ? साई सेती साँच चलि, और सूँ सुघ भाई। भाव लंबे केस करि, भाव घुरड़ि मुड़ाइ ॥११॥ ॥‌ अर्थ-अरे भाई, प्रभु के प्रति सच्चे बनो। दूसरे लोगो के साथ सिधाई का व्यवहार करो। अब चाहे लबे वाल रखो या पूरा मुडन करा दो। बाह्य भूषा से कोई फर्क नही पड़ता है। केसी कहा बिगाड़िया, जे मूँडे सौ बार। मन की काहे न मूँडिए, जाम विषे बिकार ॥१२॥ अर्थ-बाल्दे ने क्या विगाड़ा है जो उन्हे बार-बार मूड़ते हो ? बाल मूड़ने की अपेक्षा मन का सस्कार करना चाहिए। क्योकि विषय विकार बालो मे नही, मन मे रहते है। अत मन को शुद्ध करर' चाहिए। 3 भगवान् को पाता है। मन मूँड़ि ले, केसी मूँडे कोड। जे कुछ किया सु मन किया, केसी कीया नॉहि॥१ ३॥ शब्दार्व-मैवासी + किले का नायक। कॉइ > क्‍यो।

साखी २९५ अर्थ-मन ही बधन और मोक्ष का कारण है। अत मनरूपी गढ़नायक को ठीक करो। बालो को मूड़ने से क्या फायदा है ? बाल तो कुछ नही करते। जो कुछ भी करता है वह मन करता है। मूँड मुँडाबत दिन गए, अजहूँ न मिलिया राम । राम नाम कह क्या करें, जे मन के औरे काम ॥१ ४॥ अर्थ-सिर मुड़वाते-मुड़वाते जाने कितने दिन बीत गए। कितु राम आज भी नही मिले। जब तक मन में कामभाव बना है तब तक राम नाम से क्या होने वाला है ? स्वॉग पहरि सोरहा भया, खाया पीया घूँदि। जिहि सेरी साधु नीकले, सो तौ मेल्ही मूंद ॥१५॥ अर्थ-नाना प्रकार के स्वॉग बनाये। खूब कूद-कूदकर खाया पीया। कितु जिस रास्ते से साधु-सत गमन करते है उस रास्ते को तो बद कर दिया है। कौन है वह रास्ता ? भगवद्प्रेम का रास्ता। टिप्पणी-सोरहा का सबंध सोलह श्रुगार से भी हो सकता है। सोछह का सोरह होना आसान है। १६ श्रगार स्त्रियो के होते हैं। कभी उसका प्रयोग पुरुष के सदर्भ मे होता होगा। किसी सज्जन ने सोहदा पाठ कर दिया। बैसनो भया तौ का भया, बूझा नहीं बियेक। छापा तिलक बनाइ करि, दगध्या लोक अनेक ॥१ ६॥ अर्थ-वैष्णव होने मात्र से क्या हुआ विवेक तो आया नही? बिना विवेक के छापा तिरक लगाकर सन्यासी का वेश बनाया। कितु अनेक लोको मे जलते-जलाते रहे। कही शाति नहीं मिली। तन कौ जोगी सब करें, मन को बिरला कोइ। सब सिघधि सहजै पाइए, जे मन जोगी होइ ॥१७॥ अर्थ-तन को योगी करने का अर्थ है तन को सन्यासी वेश मे सजाना। सभी लोग तन को सजाते है। आठो सिद्धियोँ सहज मिलती है यदि कोई व्यक्ति मन को योगी बनाता है। कबीर यहु तो एक है, पड़दा दीया भेष। भ्रम करम सब दूरि करि, सबहीं मोहि अलेष ॥१ ८॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि सभी जीव भीतर से एक है। भेद का कारण बाहरी वेश का पर्दा है। भ्रमात्मक कर्म को दूर करो। सब के भीतर उस अठक्षित परमात्मा का दर्शन होगा। भरम न भागा जीव का, अनतहि घरिया भेष। - सतगुर परचे बाहिरा, अंतरि रह्या अलेष ॥१ ९॥ अर्व-हदयगत जीव ने नाना योनिवश तथा मनुष्य जीवन मे अनेक वेश धारण किये। कितु मन का भ्रम नही भागा। जब तक वह सद्गुरु के ज्ञान से बाहर था तब तक हृदय स्थित प्रभु नही दीख रहा था। अब गुरुकृपा से वह प्रभु दीखता है। जगत जहंदम राधिया, झूठे कुल की लाज। तन बिनसे कुल बिनसिहै, गह्म न राम जिहाज॥२०॥ शब्दार्थ--जहदम 5 (< फा जहन्नुम) नरक। अर्थ-संसाररूपी नरक की रचना हुई है। यहाँ जीव कुछ की झूठी लज्जा मे पड़कर प्रभु विमुख हो रहा है। कितु कुल तो शरीर सा बाहरी और नाशवान् है। हे जीव, नाश से बचना चाहते हो तो राम जहाज की शरण गहो। पष ले बूड़ी पृथमी, झूठी कुल की लार।

२९६ कबीर समग्र अलष बिसारो भेष मै, बूड़े काली धार ॥२१॥ अर्थ-सारे ससार के लोग कुल के झूठे प्रेम और पक्षपात मे डूब गये। नाना प्रकार का वेश बनाकर उस अलक्षित को भूल गये। फलत वासना की काली धारा में डूब गए। चतुराई हरि ना मिले, ए बातों की बात। एक निसप्रेही निरधार का, गाहक गोपीनाव ॥२ २॥ अर्थ-बीद्धिक व्यायाम तथा चतुराई से ईश्वर की प्राप्ति नही होती है। नि स्पृह, निराधार व्यक्ति यदि शरण मे जाय तो भगवान् गोपीनाथ उसे ग्रहण कहते है। ; टिप्पणी-गोपीनाथ कहने का अर्थ है गोपियो की तरह सरलता और समर्पण होना चाहिए । नवसत साजे कॉमनी, तन मन रही सँजोड़। पीव के मन भावे नहीं, पटम कीये क्या होह॥२३॥ अर्व-स्त्री ने १६ श्रगार किये। तन-मन को सजाया। फिर भी प्रिय उसे पसंद नहीं करता है तो ऐसी सजावट से क्या फायदा ? यही स्थिति जीव की है। जीव के कार्यो को अगर प्रभु पसद नही करता है सारी साधना व्यर्थ है। मतलब कि प्रभु को प्रसन्न करनेवाली अत साधना करनी चाहिए। अलंकार-अन्येक्ति | जब लग पीव परचा नही, कन्यों केंवारी जोणि। हथलेवा होसे लिया, मुसकल पड़ी पिछोंणि॥ २४॥ अर्थ-साधक कुमारी कन्या के समान है। जब तक प्रभु-प्रिय से पूर्ण परिचय नही हो जाता है तब तक कुछ होनेवाला नही है। पाणिग्रहण (हथलेवा) तो उत्साहपूर्वक किया। स्पष्ट जानपहचान कठिन है। असली परिचय तो पूर्ण समर्पण के बाद ही प्राप्त होगा। अलंकार-अन्योक्ति। कबीर हरि की भगति का, मन में परा उत्हास | मैवासा भाजै नही, हूँण मते निज दास ॥२५॥ शब्दार्थ-उल्हास 5 उल्लास | मैवासा 5 किला। भाजै 5 भजन। हूँण < होना। अर्थ-सत कबीर कहते है कि प्रभुभक्ति का उल्लास मन मै छाया है। कितु बिना पूर्ण समर्पण या दास भाव के वासना का किला नही टूट सकता है। जब तक मन मे रहनेवाले अहकार का नाश न हो जायगा त्तब तक दास होना कठिन है। भैवासा मोई किया, दूरिजन काढ़े दूरि। राज पियारे राम का, नगर बस्या भरिपूरि॥२६॥ अर्थ-मनरूपी गढ से वासना के दुर्जनी को बाहर करो। यह राज्य राम का है। इस नगर मे राम ही पूर्णत बसते है। यहाँ वासना के लिये स्थान नही है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। (२५) कुसंगति की अंग निरमल बूँद अकास की, पड़ि गई भोमि बिकार। मूल विनंठा मॉनवी, बिन संगति भठछार ॥ १॥ अर्थ-परमात्मा का अश होने के कारण यह जीव (बूँद) मूलत अच्छा है। कितु आकाश

साखी हु २९७ से धरती पर आने के बाद वह विकारग्रस्त हो गया है। फलत मनुष्य का मूल ही नष्ट हो गया है। यह सब हुआ भ्रष्ट सगति के कारण। इसलिये बिना अच्छी सगति के सासारिक भ्रष्टाचार से मुक्ति सभव नही है। ' भूरिष संग न कीजिए, लोहा जलि न तिराइ। कदली सीप भवंग मुष, एक बूँद तिहुँ भाइ ॥२॥ शा अर्व-पूर्ख का कभी साथ नही करना चाहिए। जैसे छोहा कभी पानी मे नही तैरता है वैसे ही तमोगुणी व्यक्ति का कभी उद्धार नही होता। केले, सीप और सर्प मुख मे एक ही पानी की बूँद गिरती है। कितु सगति या ग्रहणशीछ्ता के कारण केले मे कपूर, सीप मे मोती और सर्प मुख मे विष बन जाती है। इसलिये भले छोगो का साथ करना चाहिए। अलंकार-उदाहरण-दृष्टात। हरिजन सेती रूसणों, संसारी सूँ हेत। ते नर कदे न नीपजै, ज्यूं कालर का खेत ॥३॥ शब्दार्थ-हरिजन 5 भक्त। सत। सेती 5 से। हेत > प्रेम। करे + कभी। नीपजै > उत्पन्न होना। सुखी होना। कालर 5 ऊसर। अर्थ-जैसे ऊसर भूमि मे एक तृण भी नही जन्मता है उसी प्रकार सतो से विराग और ससारी छोगो मे प्रेम सेकभी कल्याण नहीं होगा। सत सगति से ही भक्ति की पौध जमती है और पल्लवित, पुष्पित होती है। मारी मरूं कुसंग की, केला कॉठे बेर। वो हालै वो चीरिये, साषित संग न बेरि ॥४॥ अर्थ-शाक्तो का साथ बड़ा भारी कुसग है। जैसे बैर के पास रहने वाला केला कभी सुखी नही रहता। बैर बराबर उसके पत्तो को चीरता रहता है उसी प्रकार शाक्त की सगति से बचना चाहिए। शाक्त सगति नुकसान करने वाली है। अलंकार-निदर्शना | मेर नसोंणी मीच की, की कुसंगति ही काल। कबीर कही रे प्रॉणिया, बोणी ब्रह्म संभाल ॥५॥ शब्दार्व-मेर > मेरापन। ममत्व। मीच - मृत्यु। बॉणी 5 सदगुरु वचन। अर्थ-सत कबीर कहते है कि ममत्व मृत्यु की निशानी है। कुसगति ही काल है। ऐसे मे सदूगुरु की वाणी से ही ब्रह्मप्राप्ति की सैभाल हो सकती है। माषी गुड़ मैं गड़ि रही, पंष रही लूपटाइ। ताली पीट सिरि धुनै, मीठे बाई माइ॥६॥ अर्थ-मक्खी गुड़ मे सन गयी। उसके पंख भी लिपट गए। फलुत वह भाग नहीं सकती है| ताली पीटना का अर्थ है हाथ पैर पटकना। वह सिर धुनती है। सिर पटकती है। हाथ पैर पटकती है। मीठे से भर पाई। मीठा खाने की दशा देख ली। “ यही दशा वासना मे डूबे मनुष्य की होती है। अलंकार-अन्योक्ति | ऊंचे कुल क्या जनमियाँ, जे करणीं ऊँच न होइ। सोबन कलस सुरे भर्‌या सापूँ निंधा सोइ ॥७॥ अर्थ-ऊँचे कुछ का जन्म महत्त्वपूर्ण नही है। ऊँचा कर्म महत्त्वपूर्ण है। जैसे शराब भरे सोने के घड़े की निदा होती है वैसे ही वासना भरा शरीर निद्य है। अलंकार-दृष्टात ||

(२६) संगति की अंग

देखा देखी पाकड़ै, जाइ अपरचे छूटि। विरला कोई ठाहरे, सतयुर सॉमी मूठि ॥१॥ अर्थ-देखा-देखी भक्ति (साधना) प्रभु से अपरिचय के कारण छूट जाती है। विना सद्‌गुरु स्वामी की मुट्ठी (शरण) मे गए शायद कोई है जो भक्ति के मार्ग मे ठहर सके | देखा देखी कदे न चढ़ई रंग। बिपति पड़या यूँ छाड़सी, ज्यूँ कंचुली भवंग ॥२॥ अर्थ-साधनारहित देखा-देखी भक्ति का रग कभी नही चढ़ता है। यह रग कच्चा होता है। थोड़ी विपत्ति पड़ने पर भी यह भक्ति छूट जाती है। जैसे सॉप केचुल छोड़ देता है। अलंकार--उपमा | कहिए तौ करि जाणिये, सारीषा सूं संग। लीर लीर लोई थई, तऊ न छाड़ै रंग॥३॥ शब्दार्थ-सारीषा 5 सरीखा। समानधर्मा। लीर-लीर 5 टुकड़ा-टुकड़ा। छोई >> कम्बल | धई < स्थित । अर्थ-कहिए तो कीजिए और जानिए भी। समानधर्मा सतो का साथ कीजिए। यह साथ लोई के रग जैसा कीजिए। जैसे टुकड़े-टुकड़े हो जाने पर भी रग नहीं छोड़ती है। हे भक्त को भी कितनी ही विपत्तियाँ आये। भगवद्रीति का रग नही छोड़ना चाहिए अलंकार-दृष्टात | यहु मन दीजे तास कौ, सुठि सेवय भल सोह। सिर ऊपरि आरा सहै, तऊ न दूजा होह ॥४॥ अर्थ-यह मन उस परमात्म तत्त्व को समर्पित कीजिए जिससे यह सुदर सेवक बन जाय | ऐसा सेवक जिसके सिर पर आरा भी चले तो वह द्वैत बुद्धिवाला न बने। भक्ति न छोड़े । पॉहण टौंकि न तोलिए, हाडि न कीजे बेह। माया राता मानवी, तिन सूँ किसा सनेह ॥५॥ शब्दार्थ-पॉहण - पत्थर। छोटा तराजू। धातु। टॉकि 5 फोड़ना। हाडि # हाड़ी या हड्डी। वेह - वेध | छेद | अर्थ-जैसे टॉकी मारने से धातुओ के वजन कम होते जाते है और हाड़ी या हाड़ मे छेद करने हा टूटने का भय रहता है उसी प्रकार मायालिप्त मनुष्य से प्रेम का निर्वाह नही हो सकता है। अलंकार--अर्थन्तिरन्यास | कबीर तामूँ प्रीति करि, जो निरबाहै ओड़ि। बनिता विविध न राचिये, दीषत लागे घोड़ि।१६॥ | "_ अर्थ-सत कबीर कहते है कि प्रेम उसी से करना चाहिए जो अत तक उसका निर्वाह कर सके। ऐसा प्रेम तो प्रभुप्रेम ही होगा। स्त्रीग्रेम से तो देखते ही खोरि (पाप) पैदा होती है। कबीर तन पंषी भया, जहाँ मन तहाँ उड़ि जाइ। जो जैसी संगति करे, सौ तैसे फल खाइ ॥ ७॥ अर्थ-तन पक्षी हो गया है। मन के साथ उड़ जाता है। सगति के अनुसार अच्छे-बुरे फल आल आई

साखी २९९ मिलते है। श # काजल केरी कोठड़ी, तैसा यहु संसार। बलिहारी ता दास की, पैसि रे निकसणहार॥८॥ , अर्थ-यह ससार काजलरू की कोठरी है। जो आया उसे कालिख लगती ही है। भक्त ही इसमे प्रवेश कर भी बेदाग निकल पाते हैं। । अलंकार-उदाहरण | (२७) असाध कौ अंग कबीर भेष अतीत का, करतूति करै अपराध। बाहरि दीसे साथ गति, माँहें महा असाध ॥१॥ शब्धार्ष-अतीत 5 एक प्रकार का साधु। असाध - असाघु। अर्थ-वेश तो अतीत सन्यासी का बनाया। कितु कार्य अपराधी का करता है। बाहर से साधु दीखता है और मन में बड़ी असाधुता भरी है। - - उज्जल देखि न धीजिये, बग ज्यूँ माडे ध्यान। , धीरे बैठि चपेटसी, यूँ ले बूड़ें ग्यान ॥२॥ शब्दार्थ-धीजिए 5 विश्वास कीजिए। बग 5 बगुला। मंडे 5 लगाता है। चपेटसी चपेटा मारेगा। अर्थ-केवल बाहरी सफाई देखकर कभी विश्वास नही करना चाहिए। साफ तो बगुला भी होता है। कितु वह बड़ा गहरा ध्यान लगाकर धीरे-धीरे बैठता है और मौका पाते ही मछली को चपेट मे छे आता है। इसी प्रकार ढोगी और छली ज्ञान मे डूबे रहते है। धोखेबाजो के लिये वक ध्यान प्रसिद्ध है। | जेता मीठा बोलणों, तेता साध न जाँणि। पहली थाह दिखाई करि, ऊँडे देसी ऑडि ॥३॥ शब्दार्व-ऊँडे > गहरा | अर्थ-जितना मीठा बोलता है उतना ही साधु होगा यह कभी मत समझना । होशियार छोग पहले कम पानी की थाह दिखाकर बाद मे गहरे मे फेंसा देते है। (२८) साध कौ अंग कबीर संगति साध की, कदे न निरफल होइ। न 3३०३७ नीब न कहसी कोइ ॥१॥ अर्थ-सत्त कबीर कह साधु सगति कभी बेकार चदन अगर छोटा हो तो क्या लोग उसे नीम कहेगे ? कभी नही। 20% 20040 अलंकार-निदर्शना | कबीर संयति साध की, बेगि करीजै जाह। दुरमति दूरि गेंवाइसी, देसी सुमति बताइ॥२॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि सतो की सगति जाकर तुरन्त कीजिए। सत तुम्हारी दुर्बुद्धि

३०० कबीर समग्र दूर करेगे। सुमति बताएँगे। मधुरा जावै द्ारिका, भावे जाबै जगनाव। साध संगति हरि भगति बिन, कछु न आबै हाव ॥३॥ अर्थ-म्थ्रा, द्वारका या जगन्नाथ पुरी चाहे कही भी जाओ। कितु साधु सगति तथा हरिभक्ति के अभाव मे कुछ भी हाथ आनेवाला नही है। मेरे संगी दो जणों एक वैष्णो एक राम। वो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै नाम ॥४॥ अर्थ-मेरे सगी दो है-राम और वैष्णाव | राम मुक्ति देते है और वैष्णव राम स्मरण कराते कबीरा बन बन में फिरा, कारणि अपणे राम। राम सरीखे जन मिले, तिन सारे सब काम ॥५॥ अर्थ-कबीर राम की खोज मे वन-वन घूमे। जब राम जैसे ही सतो से मुलाकात हुई तो उन्होने सारा कार्य पूर्ण कर दिया। अर्थ यह कि सत ने भगवान् से भेट करा दी। कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाहि। अंक भरे भरि भेटिया, पाप सरीरी जाँहि ॥६॥ अर्थ-वह दिन अच्छा है जब किसी सत से भेट होती है। सत से अकवार भरकर भेंटिए। सारे शरीर का पाप चला जायगा। कबीर चंदन का बिड़ा बैठया आक पलास। आप सरीखे करि लिए, जे होते उन पास ॥७॥ शब्दार्य-बिड़ा + विटप। बैठया 5 बेधा | आक > मदार। पलास टेसू। अर्थ-सत कबीर कहते है कि चदन का पौधा या छोटा पेड़ यदि आक-पलाश के पास हो चदन आक-पलाश को सुगधित कर जाता है। यह बात सतो के लिये है। सतो के पास जो जाता है उसे वे सत बना देते है। अलंकार-अन्योक्ति। तद्गुण। कबीर खाई कोट की, पाणी पीवे न कोइ। आई मिलै जब गंग मैं, त्तब सब गंगोदिक होह ॥८॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि किले के चारो ओर बनी खाई का पानी कोई नही पीता है। क्योकि वह गदा होता है। कितु गगा मे मिलने पर वह पानी गगोदक हो जाता है। अलंकार-अन्योक्ति। जॉनि बूज्ि साचहि तजै, करे झूठ से नेहु। ताको संगति राम जी, सुपिने ही जिनि देहु ॥९॥ अर्थ-जान बूझकर सत्य परमात्मा को छोड़ झूठी माया से प्रेम करता है। हे प्रभु, ऐसे व्यक्ति का साथ स्व मे भी न हो। कबीर तास मिलाइ, जास हियाली तू बसे। नहिं तर वेगि उठाइ, नित को गंजन को सहै ॥१ ०॥ अर्घ-सत कबीर कहते हैं कि हे प्रभु, जिस सत के हृदय मे तुम स्वयं बसते हो उससे मिलाओ। ऐसा नही कर सकते तो उठा छो। नित्य दिन दुर्जनी के साथ रहने का दुख (गजन) कोन सहेगा ? केती लहरि समंद की, कत उपजै कत जाइ। बलिहारी ता दास की, उलटी माँहि समाइ ॥११॥ है|

|+ साखी ३०१ अर्थ-यह ससार विषय समुद्र है। इसमे कामनाओ की लहरे उठती है। गिरती है। वह भक्त धन्य है जो मछली के समान उल्टी धारा में चलता है। वासना मुक्त होकर प्रभु चरणो मे अनुरक्त हो जाता है। काजल केरी कोठड़ी, काजल ही का कोट। बलिहारी ता दास की, जे रहे राम की ओट॥१२॥ अर्थ-ससार बुराई से भरा है। यहाँ की कोठरी और किले भी काजल के है। वह भक्त धन्य है जो राम नाम का सहारा लेकर रहता है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | भगति हजारी कपड़ा, तामें मल न समाइ। साथित काली कॉवली, भावें तहाँ बिछाह॥१३॥ अर्थ-भक्ति बहुमूल्य वस्त्र है। इसमे गदगी नही प्रवेश कर सकती है। शाक्त साधना काले कंम्बल-सी है। जहाँ चाहे इच्छानुसार बिछा ले। शाक्तो को पवित्रता अपवित्रता का ध्यान नही रहता है। ' अलंकार-रूपक | (२९) साध साषीभूत कौ अंग निरबैरी निहकॉमता, साईं सेती नेह। विषिया सूँ न्यारा रहे, संतहि का अँग एह ॥१॥ अर्थ-वैररहितता, कामनारहितता, ईश्वर से प्रेम, विषय से अलग रहना ये ही सतो के पक्ष संत न छड्टे संतई, जे कोटिक मिले असंत। चँदन भुदंगा बैठिया, तठ सीतलता न तजंत ॥ २॥ अर्थ-करोड़ो दुष्टो (असतो) के मिलने पर भी सत अपनी सज्जनता नही छोड़ते है। चदनपेड़ सर्पों से विद्ध रहता है। फिर भी वह कभी अपनी शीतलता नही छोड़ता है। अलंकार-दृष्टात। हि कबीर हरि का भाँवता, दूर वें दीसंत। तन घषीणा मन उनमनों, जग रूठड़ा फिरंत ॥३॥ शब्दार्-भावँत 5 भावना करनेवाला। प्रेमी। षीणा > क्षीण। उनमनों ८ उन्मत्त। रूठड़ा > खठा। अर्य-सत कबीर कहते है कि हरि का प्रेमी भक्त दूरी से ही दीखता है। क्योकि वह शरीर से दुर्बड, मन से उन्मत्त और ससार से उदासीन रहता है। कबीर हरि का भावता, झीणों पंजर तास। रैणि न आबै नींदड़ी, अंगि न चढ़ई मास ॥४॥ सिम ख 8 न अर्थ-सत कबीर क हरि का प्रेम अस्थि-पजर से दुर्बल होता है। उसे रात मे नहीं आती है। उसके अगो मे मुठापा नही होती है। हे की तुलनीय-या निशा सर्वभूताना तस्यां जागरति सयमी। (गीता २-६९) है। ध

३०२ कबीर समग्र अणरता सुका सीवणों, रातै नींद न आइ | ज्यूं जल टूटे मंछली, यूँ बेलंत बिहाइ ॥५॥ अर्थ-अणरता अर्थात् भक्तिरहित व्यक्ति सुख से सोता है। अनुरक्त को नींद नहीं आती है। जैसे जल की धारा टूट जाने पर अर्थात् जल कम हो जाने पर मछली छटपटाती (वेलत) घूमती है। अलंकार-उदाहरण | जिन्‍्य कुछ जाण्या नहीं तिन्‍्ह, सुख नींदड़ी बिहाइ। भैर अबूझी बूझिया, पूरी पड़ी बलाइ॥६॥ शब्दार्-विहाइ - वीतता है| अर्व-जो प्रभु प्रेम के बारे मे कुछ नहीं जानते है वे सुख की नींद सोते हैं। मैरे जैसा 008 जब उसे समझने लगा तो वला (दुख) मे फेंस गया। क्योकि भगवद्यात्ति मे कष्ट होता | अलंकार-विरोधाभास | जॉण भगत का नित मरण, अणजोंणे का राज। सर अपसर समझे नहीं, पेट भरण सूँ काज ॥७॥ अर्व-ज्ञानी भक्तो की नित्य मृत्यु है। अज्ञानी माया मे पड़ा राज करता है। उज्ञानी ऊँचनीच कुछ नहीं समझता । उसे पेट भरने से मतलव है। घटि जॉण बिनॉण है, तिहि घटि आवटणों घणों। बिन पड़े संग्राम है, नित उठि मन सी चृष्णों ॥८॥ शब्दार्थ-घटि 5 शरीर। जॉण-विनॉण > ज्ञान-विज्ञान। आवटर्णों > उथल-पुथलू। घर्णों > अधिक । षड़े 5 तलवार । अर्थ-जो व्यक्ति ज्ञानी-विज्ञानी हैं उनमे भगवद्माप्ति और ससार चक्रादि के वारे में चिता है। उधल-पुथल है। वे विन तलवार का युद्ध करते है। नित्य उठकर अपने मन से ही जूझते है। इस कहते है समझदार की मौत। बिलोम-विभावना | राम वियोगी तन बिकल, ताहि न चीन्हे कोइ | तंबोली के पान ज्यूँ, दिन दिन पीला होइ ॥९॥ अर्थ-जो व्यक्ति प्रभु प्रेम मे व्याकुल है उसे कोई नहीं पहचानता। उसका शरीर तमोली के हो सा दिन-दिन पीला होता है। इसलिये कि वह ससार के हवा-पानी से दूर एकात मे रहता | अलंकार-उदाहरण | पीलक दीड़ी सोंइयौं, छोग कहै पिंड रोग । छाने लंघण नित करे, राम पियारे जोग ॥१०॥ शब्दार्व-पीलक < पीलापन। पिंडरोग > पीलिया। पाडुरोग। छोने प्रच्छन्न | अर्व-प्रभुप्रेम की साधना मे सारा शरीर पीला हो गया। लोग समझते है, पीलिया रोग हुआ है। वह तो प्रच्छन्न उपवास करता है जिससे प्रभु का शीघ्र दर्शन हो। अलंकार-पभ्रान्तिमान | काम मिलाबे राम कूँ, जे कोइ जांणे राषि। कबीर बिचारा क्या करे, जाकी सुखदेब बोले साथि॥११॥ मा अर्थ-अगर कोई व्यक्ति काम का सही उपयोग जानता है तो काम रामप्रेम का साधन बन

साखी ३०३ जाता है। यह बात बेचारे कबीर नहीं कह रहे हैं। भागवत मे स्वय शुकदेव मुनि ने यह बात कही है। टिप्पणी-भागवत मे कहा गया है कि भगवान् को क्रोध, लोभ, काम आदि किसी भाव से भजा जा सकता है। गोपियो ने कृण भगवान को कामभाव से भजा था। कॉमणि अँग बिरकत भया, रत भया हरि नॉहि। साथी गोरखनाव ज्यूं अमर भए कलि माँहि॥१२॥ अर्थ-काम स्त्री के पास पहुँच कर विकृत हो जाता है। कितु भगवान से जुड़कर मोछ साधन बन जाता है। गोरखनाथ ने प्रभु से कामग्रेम की साधना की, वे कलिकाल मे अमर हो गए। जदि विधे पियारी प्रीति सूँ, तब अंतर हरि नॉहि। जब अंतर हरि जी बसे, तब विषिया सूँ चित नाँहि॥१ ३॥ अर्थ-यदि विषयो से प्रेम है तो समझ लो ईश्वर तुम्हारे भीतर नहीं है। जब हृदय मे ईश्वर बसते है तो विषयो से विरक्ति हो जाती है। ंजि घट में संसो बसे, तिहि घटि राम न जोह। राम सनेही दास विधि, तिणों न संचर होइ ॥१४॥ अर्थ-जिसके शरीर मे सशय का निवास है उस शरीर मे परमात्मा नहीं रह सकते। राम प्रेमी के हृदय मे तृणवत्् सशय भी नहीं रह सकता है। क्योकि सशयात्मा का विनाश होता है। भक्ति संशय नही निछा का मार्ग है। | स्वारथ को सबको सगा, सब सगलाही जोणि। बिन स्वारथ आदर करै, सो हरि की प्रीति पिछोंणि ॥१ ५॥ अर्थ-सारे ससार के लोग स्वार्थवश प्रेम करते है। कोई नि स्वार्थ प्रेमी तभी होता है जब उसकी प्रीति प्रभु से हो जाती है। तुलनीय-सुर नर मुनि के यह सब रीती। स्वारथ छागि करहि सब प्रीती ॥-तुलसी | स्वार्थभय ससार की अति है अनोखी रीति, कौन किससे सर्वदा करता यहाँ पर प्रीति ?-आरसी प्रसाद सिह। जिहि हिरदे हरि आइया, सो क्यूँ छानों होइ। जतन जतन करि दाबिए, तऊ उजाला सोहइ॥१ ६ ॥ अर्व-जिस हृदय मे प्रभु का वास होगा वह कैसे छिपेगा? कोशिश करके भी छिपाइए तो उजाला हो ही जायगा। जैसे सूर्य को. नहीं छिपाया जा सकता है। वह जहाँ रहेगा प्रकाश रहेगा ही। वैसे ही ज्ञानस्वरूप प्रभु की उपस्थिति मे अज्ञान का अँधेरा नहीं रह सकता है। फाट दीदे मैं फिरी, नजरि न आबै कोह। जिहि घटि मेरा सॉइयोँ, सो क्यू छाना होइ ॥१७॥ शब्दार्थ-दीदे - आँख । छाना ८ छिपा। अर्व-मै आँखे फाड़-फाड़ कर देखताहूँ। कहीं कोई भक्त नहीं दिखाई देता है। भरा बताओ जिस शरीर मे भगवान् का वास होगा वह छिपा रहेगा? कहना यह है कि जागृत प्र्भु भक्त शरीर मे अनोखी चमक भर देते है। उसका व्यवहार भी बदल जाता है। सब घटि मेरा साँइयों, सूनी सेज न कोई। भाग तिन्ही का हे सखी, जिहि घटि परगट होइ ॥१ ८॥ अर्थ-प्रत्येक हदयशय्या पर प्रभु विराजमान है। कोई हृदय शब्या प्रभुरहित नहीं है। कितु भाग्यवश ही उसका प्रत्यक्षीकरण हो पाता है।

३०४ कबीर समग्र पावक रुपी राम है, घटि रह्या समाह | धित चकमक छागे नहीं, तादे घुँवा ड् है जाइ ॥१९॥ अर्च-प्रभु अग्नि के रूप में सभी प्राण-घट में समाया है। चित्त ती चकार्चाध में रहता है। ठीक ढग से एकात भाव से नहीं ठगता है। इसी से प्रभु का साक्षात्कार नहीं हो पाता है। धुएँ से प्रभु की उपस्थिति का बोध तो होता हैं किंतु चित्तरूपी उकमक पत्थर पर सही चोट न पड़ने के कारण प्रेमाग्नि नहीं धधक पाती है। केवठ आह, ऊर्ध्व श्वास आदि रूप धुएँ से सकेत होता है| अलंकार-सांगरूपक | कबीर खालिक जागिया, और न जागे कोड़। के जाये बिनसई विय भर्मा, के दास बंदगी होड़ ॥२०॥ अर्व-कंवल सृध्किरत्ता ई/वर जागता है और सभी सोते है। फिर या तो विषयुक्त विषयी जागते ह या प्रार्थना में स्थित भक्त जागता है। छतुलनीय-येहि जड़ जामिनि जागाहिं जोगी +-तुलसी कबीर चलया जाड़ था आगे मिलया खुदाड़ ! मीऐं मुझ सौ थीं क्या, किनि फुरमाई गाइ ॥ २१॥ शब्दार्थ-मीरों # स्वामी | गाइ 5 गाकर | अर्थ-सत कबीर चढे जा रहे थे। आगे ईश्वर से भेट हो गयी। स्वामी ने मुझसे कहा कि गाकर सुनाओ। तभी से में अपनी भागवत्ती अनुमूतियों को गाकर सुना रहा हूँ। (३०) साध महिमां कौ अंग चंदन की कुटकी भली, नो बंबुर की अवरॉर्। बैसनोी की छपरी भलो, नो सापत का बड गाउँ ॥१॥ अर्य-बबूल को अमराई (बगीचे) की अपेक्षा चदन का टुकड़ा (सुगध के कारण) अच्छा है। उसी प्रकार बसने के लिये भाक्ती के गाव की अपेक्षा वैष्णव द्वारा डाले गये छप्पर का एकात ही काफी है | तुलनीय- . सतन की झुगिया भी मठि कुसती गाँव | आगि छगो तिह धउल्हर,जह नाहीं हरिनाव ॥-गुरुग्रय साहब | अलंकार-दृष्धत | हे पुरपाटण सुयत्त बसे, आनेंद ठॉये ढाँड | राम सनेही बाड़िरा, ऊँजड़ मेरे भाड़ ॥२॥ अर्थ-नगर और गाँव अच्छी तरह बसे हैं। जगह-जगह आनंद भी हो रहा है। किंतु अगर वहाँ भगवान् का भक्त नहीं है तो मेरे विचार से वह उजाड़ के समान है। सकेत यह है कि भगवत्मक्ति के अभाव मे समृद्धि स्थायी नहीं रह सकती है।. -जिहँ घरि साध न पूजिये, हरि की सेवा नॉहि। ते घर मुड़डट सारपे, भूत बसे तिन मोह ॥ ३॥ अर्थ-जिस घर में साधु की पूजा नहीं होती हे। जहाँ ईश्वर की सेवा नहीं होती है। वह घर मरघट के समान है। वहाँ भुत का निवास होता है।

साखी ३०५ अलंकार-उपमा | है गे गेवर सघन घन, उतत्र धजा फहराइ। ता सुख थे भिष्या भली, हरि सुमिरत दिन जाइ ॥४॥ शब्दार्थ-है 5 घोड़ा | गै 5 हाथी। गैवर > श्रेष्ठ हाथी अर्व-घोड़ा, हाथी, धन दौलत वाले राजा की स्त्री उसके मुकाबले व्यर्थ है जो हरिभक्त की पनिहारिन है। अलंकार-व्यतिरेक | क्यूँ नृप नारी नीदये, क्यूँ पनिहारी को मान। व माँग सेंवारे पीब कौ, वा नित उठि सुमिरि राम॥६॥ अर्थ-क्यो रानी की निदा और पनिहारिन का मान हो? जो प्रभुपति के वामाग अर्थात् आराधिका होती है। राम उसी का स्मरण करते है। कबीर धनि ते सुंदरी, जिन जाया बैसनो पूत। राम सुमरि नरिभे हुवा, सब जग गया अऊत ॥७॥ अर्थ-वह स्त्री धन्य है, जिसने वैष्णव पुत्र पैदा किया। इससे रामनाम का स्मरण कर यम के भय से निर्भर हुआ। बाकी ससार के प्राणी तो अपुत्र (अऊत) रहे। तुलनीय- पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुवर भगतजासु सुत होइ॥ नतरु बॉझ भलि बदि बियानी। राम 22738 ख सुत ते बड़िहानी |-तुलसी | कबीर कुल तौ सो भला, जिहि कुल उपज दास। जिहि कुल दास न ऊपजै, सो छुल आक पलास॥८॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि जिस परिवार मे राम दास पैदा होते है वही कुल धन्य है। जिस परिवार मे भक्त नहीं उत्पन्न हुआ वह परिवार आक और पलाश के समान बेकार है। अलंकार-उपमा | साधषत बॉभण मति मिले, बैसनों मिले चंडाल। अंकमाल दे भेटिये, मानो मिले गोपाल ॥९॥ अर्थ-शाक्त ब्राह्मण की अपेक्षा वैष्णव चाडाल अधिक अच्छा है। वैष्णव चाडाल मिले तो अँकवार भर कर ऐसे मिलिए जैसे भगवान से भेट हो गयी हो | अलंकार-उत्रेक्षा | राम जपत दालिद भला, टूटी घर की छाँनि। ऊँचे मंदिर जालि दे, जहाँ भगति न सारंगपॉनि ॥१ ०॥ अर्थ-राम की उपासना करते हुए दरिद्रता भी ठीक है। घर का टूटा छप्पर अच्छा है। वह ऊँचा भवन जला दो जिसमे भगवान् के भक्त नहीं रहते है। कबीर भया है केतकी, भवर भये सब दास। - जहाँ जहाँ भगति कबीर की, तहाँ तहाँ रामनिवास ॥१ १॥ अर्थ-सत कबीर केतकी पुष्प जैसा है और सब भक्त भ्रमर के समान है। जहाँ जहॉ कबीर की भक्ति होती है वहॉ-वहाँ राम का निवास होता है। अलंकार--रूपक |

३० कबीर समग्र (३१) मधि कौ अंग कबीर मधि अंग जेको रहे, तो तिरत न लागे बार | दुइ दुइ अंग सूँ लागि करि, डूबत है संसार.॥१॥ शब्दार्थ-मधि ८ बौद्धो मे यह मध्यमा प्रतिपदा के नाम से प्रसिद्ध है। इसका अर्थ है दो अतिवादो के बीच का मध्यममार्ग। मधि - हृदय के मध्य जहाँ परमात्मा का निवास है। अर्थ-सत कबीर कहते है कि जो राग-विराग के बीच मे रहता है उसे ससारसागर पार करने मे देर नहीं छूगती है। प्रवृत्ति और निवृत्त, भोग और मोक्ष के द्वन्द्वो मे पड़कर ससार डूब रहा है। कबीर दुविधा दूरि करि, एक अंक है लागि। यहु सीतल बहु तपति है, दोऊ कहिय आगि॥२॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि दुविधा दूर करो। प्रभु प्रेम में लगो। ससार की सभी ये वे वस्तुएँ या तो अत्यत शीतल है या अत्यत आग प्रभु दोनो के बीच शाति देनेवाला है। अनल अकाॉसों घर किया, मधि निरंतर बास। बसुधा ध्योम बिरकत रहे बिनुठाहर बिसवास ॥३॥ अर्थ-अनल पक्षी ने आकाश के बीच मे घर बनाया। क्योकि धरती और आकाश दोनो मे विकृति है। धरती और आकाश के बीच कोई ठाहर (स्थान) नहीं है। कितु विश्वास के बढ टिका है। मतलब कि शून्य मे टिका है। बासुरि गमि न रेणि गमि नौ सुपने तरगंम। कबीर तहाँ बिलंबिया, जाहैँ छाहड़ो न घंम ॥४॥ अर्थ-न रात, न दिन, न सपने मे सुख है। इसलिए सत कबीर कहते हैं कि जहाँ धूप न हो। छाया नहीं हो। सुख-दुख के द्वन्द्वों से परे या बीच मे रहना चाहिए। जिहि पैडे पंडित गए, दुनिया परी बहीर। औघधटद घाटी गुर कही, तिहि घढ़ि रह्मा कबीर ॥५॥ अर्थ-जिस रास्ते से शास्त्रज्ञ पंडित गए। बहरी दुनिया चल रही है। कितु सत कबीर इन दोनो से भिन्न गुरु के बताये औघट रास्ते पर चल रहे है। श्रग चृकवें दुर रह्मा, सत्तगुर के फसादि। चरन कवेल की मौज मे, रहिरयूँ अंतिस आदि॥६॥ अर्थ-मै (कबीर) सद्गुरु की कृपा (प्रसाद) से स्वर्ग, नरक से दूर रहा। प्रभु चरण कमल के आनद मे आदि से अत तक सदा रहूँगा। हिंदू'मूये राम कहि, मुसलमान खुदाइ। कहै कबीर सो जीवता, दुइ्व मैं कदे न जाइ ॥७॥ अर्थ-हिदू राम कहते है। मुठढसमान खुदा। कितु कबीर दोनो से अहूग रहते है। मतृरुब कि कबीर के राम हिंदू के राम और मुसलमान के खुदा से भिन्न है। दुछिधया मूवा दुख को, सुखिया सुख को झूरि। सदा अनंदी राम के, जिनि सुख दुख मेल्हे दूरि॥८ || अर्य-दुखिया दुख से मरता है। सुखी सुख से सूखता है। सबसे अच्छे राम भक्त है, जिनके सुख दुख दूर हुए।

साखी ३०७ कबीर हरदी पीयरी, चूना ऊजल भाई। राम सनेही यूँ मिले, दुन्यूँ बरन गेंबाइ ॥९॥ अर्थ-हल्दी पीली और चूना सफेद होता है। दोनो अपने-अपने रग छोड़कर मिलते है। इसी प्रकार दो राम प्रेमियो को अपनी जाति और अहकार छोड़कर मिलना चाहिए। काश फिर कासी भया, राम भया रहीम। मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम ॥१०॥ अर्थ-आग्रहो को छोड़ दीजिए तो काबे, काशी, राम, रहीम मे वैसे ही भेद नहीं है जैसे मोटा चूर्ण मैदा बन जाता है। वस्तु एक ही है। केवल मुटाई-महीनी का फर्क है। कबीर दास दोनो का उपयोग (जीम) करते है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति ! धरती अरु असमान बिचि, दोइह तूँबड़ा अबध। घट दरसन संसे पड़या, अरु चौरासी सिध ॥११॥ शब्दार्ता-दोइ तूँबड़ा 5 सूर्यचद्र नाड़ियाँ इड़ा पिगला नाड़ियाँ। अबध 5 अबाधित। षट दरसन - साख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमासा, उत्तर मीमासा। अर्थ-धरती और आसमान के बीच मे सूर्य-चद्र ये दो तुम्बे खड़े है। यह देखकर षट्दर्शन और ८४ सिद्ध के मन मे सशय हो गया। (३२) सारग्राही कौ अंग घीर रूप हरि नाव है, नीर आन व्यौहार। हंस रूप कोइ साथ है, तत का जॉनणहार ॥१॥ अर्थव-ईश्वर नाम दूध है। अन्य व्यवहार पानी है। तत्त्व को जाननेवाल्ना हस रूप साधु पुरुष दूध और पानी अछूग-अलग कर लेता है। अलंकार-रूपक। कबीर साधत को नहीं, सबे वैशनों जौंणि। . जा मुखि राम न ऊचरे, ताही तन की हॉणि॥२॥ अर्थ-शाक्त नहीं, सभी वैष्णव है। जिस मुख से राम का उच्चारण नहीं होता है, उस शरीर का नाश समझना चाहिए। कबीर औगुण ना गहें, गुण ही की है बीनि। घट घट महु क मधुप ज्यूं, पर आत्म ले चीन्हि ॥३॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि अवगुण का ग्रहण मत करो। गुणो को ही चुन लो। जैसे भौरा 2202 फूल से शहद निकाल लेता है। उसी तरह सभी जीवो मे स्थित आत्मतत्त्व को पहचा अलंकार-उपमा। “ बसुधा बन बहु भाँति है, फूल्यो फल्यी अगाघ। मिष्ट सुबास कबीर गहि, विषम कहे किहि साथ ॥४॥ अर्व-यह पृथ्वी एक जगल है, जिसमे नाना प्रकार के फूल फूले है। सुवास और मीठी गध

३०८ कबीर समग्र वालो को सत कबीर स्वीकार करते है। विषम (दूषित) को कोई साधु कहो क्यो स्वीकार करेगा ? अलंकार-अन्योक्ति | (३३) विचार को अंग राम नाम सब को कहै, कहिये बहुत बिचार। सोई राम सत्ती कहै, सोई कौतिग हार ॥१॥ अर्थ-राम नाम सभी कहते है। कितु सबके विचार भिन्न-भिन्न है। उसी बात को सत्य पुरुष (सती) कहता है और उसी को निष्ठारहित तमाशबीन कहता है। दोनो के कहने मे स्पष्ट अतर होता है। दोनो का प्रभाव भी भिन्न है। आगि कह्याँ दाझे नहीं, जे नहीं चंपे पाइ | जब लग भेद न जॉणिये, राम कट्या तो काइ॥२ | अर्थ-पर से दवने पर ही आग जलाती है। केवल नाम लेने से नहीं जलाती है। इसी प्रकार जब तक राम तत्त्व को निछापूर्वक न जाने, केवल नाम कहने से कुछ होनेवाला नहीं है। कबीर सोधि दिचरिया, दूजा कोई नाँहि। आपा पर जब चीन्हिया, तब उलटि समाना माँहि॥३॥ अर्व-सत कबीर ने सोचा बिचारा। उन्हे ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं दिखाई पड़ा। आत्मतत्त्व और परतत्त्व को जब पहचाना तो सासारिक विषयों से मन हटकर अपने भीतर ही आलतत्त्व का साक्षात्कार किया। इद्रियाँ जो विषयो के चक्कर मे बहिर्मुखी थीं उन्हे अन्तर्मुखी किया। न पाणी केरा पूतला, राख्या पवन सेंवारि। नॉनों बॉणी बोलिया, जोति घरी करतारि॥४॥ अर्व--यह जीवन पानी के पुतले जैसा है। इसे पचप्राणो (हवा) ने सजाया है। इसमे सृध्किर्ता का प्रकाश (आग) है। इसीलिए यह नाना प्रकार के शब्दों का उच्चारण करता है। शब्द आकाशोत्न्न है। सत कबीर इस शरीर को पॉच तत्वो से निर्मित बताते है। पानी, पवन, आग, आकाश, पृथ्वी | छिति जल, पावक गगन, समीरा। पचरचित यह अधम शरीरा ॥-तुलसी | नो मण सूत अटूझ्िया, कबीर घर घर बारि। तिनि सुलझाया बापुड़े जिनि जारी भगति मुरारि ॥५॥ शब्दार्य-नीमण सूत - कर्मजाल | बारि ८ द्वार। अर्थ-ससार कर्मजाल से भरा है। ये कर्म उल्झनो से भरे है। शायद कोई घर का का हो जहाँ उलझनो का प्रवेश न हो। इन उल्झनो को वे ही सुलझा पाते है जो भगवानू भक्त है। आधी साखी सिरि कटे, जोर विधारा जाइ। मनि परतीति न ऊपजे, तौ राति दिवस मिलि गाह ॥६॥

साखी ३०५६ शब्दार्थ-सिरि कटे 5 वासना विनाश | अर्थ-वासना क्षय के लिये आधी साखी ही पूर्ण है। मन मे विश्वास नहीं है तो रात दिन मिलकर गाते रहिए, कुछ होनेवाला नहीं है! अधिर सोई बैयन, जन जू जू बाचबंत। कोई एक मेले लवणि अमी रसाइण हुंत ॥७॥ शब्दार्-जू जू - भिन्न भिन्न | बैयन 5 वचन। बाचबत 5 वाचक। लवणि - सीदर्य | नमक। अमी 5 अमृत हुत 5 होता है। अर्थ-वही अक्षर, वही वचन। कितु लोग अपनी भावनाओ के 84320 सार पढ़ते है। कोई उसमे अपने मन का सौदर्य मिलाकर और भी अमृत बना देता है। जैसे कोई भोजन मे उचित नमक डालकर उसे अमृत बना देता है। हरि मोत्यों की माल है, पोई काचे तागि। जतन करे झंटा घँणा, टूटेगी कहूँ लागि ॥८॥ अर्थ-हरि भक्तिरूपी मोती माला प्रेम के एक सामान्य धागे मे गुथी है। इसे तर्कों और शास्त्रों के गहरे झटके से बचाओ। प्रेम और- विश्वास का यह सूत टूट सकता है। इसलिये कि भक्ति तर्क का विषय नहीं है। नैषा तर्केण मतिरापनेया- कठ० अलंकार-रूपक | मन नहीं छाड़े विषे, बिये न छाड़े मन कौ। इनकी इहै सुभाव, पूरि लागी जुग जन कौ ॥ खंडित मूल बिनास कही किम बरिगतह कीजै। ज्यूँ जल मे प्रतिव्यंब, त्यूं सकल रामहि जॉणीजैं॥ सो मन सो तन सो बिषे, सो ज़िभुवन पति कहूँ कस | कहै कबीर व्यंदहु नरा, ज्यूँ जल पूरया सकल रस ॥९॥ अर्थ-मन विषय और विषय मन नहीं छोड़ते। इनका यही स्वभाव है। ये स्वभावत मनुष्य के पीछे लग जाते है। खडित साधना मूल का नाश है। जो इद्रियो से परे या विगत है उसे कैसे पाया जाय? उसका एक ही उपाय है। सबको राम जाना जाय। ससार सीता राममय है। जैसे एक ही सूर्य या चद्र सभी जल्ो मे प्रतिविग्बित है, उसी प्रकार एक ही प्रभु सभी प्राणियो मे प्रतिविम्बित है। अवत्तारवाद का खडन करते हुए सत कबीर कहते है कि जिसका मन, तन, विषय मनुष्य जैसा है उसे ईश्वर कैसे कहा जा सकता है-? जैसे जल मे सभी रस व्याप्त है उसी प्रकार रसरूप उस प्रभु की वदना करो जो सर्वत्र व्याप्त है। (३४) उपदेश कौ अंग हरि जी यहै बियारिया, साथी कही कबीर। भौसागर मै जीव है, जे कोई पकड़े तीर ॥१॥ अर्थ-प्रभु ने अत्यत विचार कर कबीर को साखी का उपदेश किया। इससे भवसागर मे डूबते जीव को किनारे पर आने मे सुविधा होगी। ऐ

३१० कबीर समग्र कली काल ततकाल है, बुर करे जिनि कोइ। अनबाबै लोहा दाहिणे बोबे सुलुणता होइ॥ २ ॥ अर्थ-कलिकाल त्तत्काल (सद्य) फल देता है। इसलिये किसी की बुराई मत करो। दाहिने हाथो मे हल (छोहा) और बाएँ मे अन्न लेकर जो बोता है वही काटता है। कबीर संसा जीव मै, कोई न कहै समझाद। विधि विध बाणी बोलता, सो कत गया बिलाड ॥३॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि जीव के सशय का कोई जबाव नहीं है। नाना प्रकार की वाणी बोलनेवाले अर्थात् शास्त्री और शब्द चमत्कारी कहाँ चले गए, पता नहीं। मतलव कि भक्ति असली चीज है। विद्या और शास्त्र व्यर्थ है। कबीर संसा दूरि करि, जोंमण मरण भरंम। पंचतत तत्तहि मिले, सुरति समाना मन ॥४॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि सशय को दूर करो। जन्म और मृत्यु दोनो भ्रम है। आत्मा जन्म-मृत्यु-विहीन है। पच महाभूतो से बना यह शरीर पुन पचमहाभूतो (क्षितति, जल, पावक, गगन समीर) मे विलीन हो जाता है। स्मृति (सुरति) मन मे विलीन होती है। ग्रिही तो च्यांता घर्णी, बैरागी तो भीष । दुहूँ कात्यों बिचि जीव हैं, दो हमे संती सीए ॥५॥ अर्थ-गृहस्थ और विरागी साधु दोनो चितित है। एक को दुनियादारी की चिता है। दूसरा भिक्षा पाने की आशा मे परेशान है। जीव दो कीचियो के बीच मे फेंसा है। क्या करे ? ऐसे मे सतो की शिक्षा ही कल्याण कर सकती है। बैरागी बिरकत भला, गिरही चित्त उदार। दुहे चूकों रीता पड़े, ताकूँ वार न पार ॥६॥ अर्थ-वैरागी को विरक्त और गृहस्थ को उदार चित्त होना चाहिए। अगर दोनो चूक गये। अपने धर्म से रिक्त हो गए तो उनका कहीं ठौर-ठिकाना नहीं मिलेगा। जैसी उपनै पेड़ सूं, तैसी निवहै ओरि। पैका पैका जोड़तों, जुड़िसा लाष कोरोडि ॥७॥ शब्दार्व-ओर > अत। पैका-पैका ८ थोड़ा-थोड़ा। पैसा-पैसा | अर्थ-पेड़ से फल जैसे उपजता है वैसा निर्वाह कठिन है। थोड़ा-थोड़ा जोड़ने पर बहुत हो जाता है। भाव यह है कि जो ज्ञानमान मिला है उसे सम्हाल कर रखो। अत मे वही काम देगा॥ थोड़ा-थोड़ा इकट्ठा करने पर भी लाखो करोड़ो जुड़ जाते है। कबीर हरि 88 सूँ, प्रीति रहे इकतार। तो मुख ते मोती झड़ै, हीरे अंत न पार॥ ८॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि प्रभु नाम से कभी न टूटनेवाला प्रेम बना रहना चाहिए। एक दिन ऐसा आयेगा जब साधक भी ज्ञान की बाते कहने छुगेगा। हीरे का आदि अत नहीं है। भावार्थ कि, उसका व्यक्तित्व हीरे सा मूल्यवान् हो जायगा। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। ऐसी बॉणी बोलिये, मन का आपा खोड़ | अपना तन सीतल करे, औरन को सुख होई॥९॥ , क अर्थ-अहकार (आपा) को छोड़ कर ऐसी वाणी बोलिये जिससे अपने को सुख मिले और केसर भी प्रसन्न हो।

साखी ३११ कोइ एक राखे सावधान, चेतनि पहरे जागि। बरतन बासन सूँ खिसे, चोर न सकई लागि॥१ ०॥ अर्थ-चैतन्य के प्रहरे मे जागकर सावधान होकर चरित्र की रखवाली करनी चाहिए। ऐसे मे कोई कुछ चुरा नहीं सकता है। बासन-बर्तन भी बचे रहेगे। अलंकार-अन्योक्ति। (३५) बेसास कौ अंग जिनि नरहरि जठरॉह, उदिके वै घंड प्रगट कियौ। सिरजे श्रवण कर चरन, जीद जीभ मुख तास दीयो॥ उरध पाव अरघ सीस, बीस पषां इम रषियो। अँन पान जहाँ जरे, तहाँ ते अनल न चषियो ॥ इहि भाँति भयानक उद्र मे, न कबहूँ छंछरे। कृसन कृपाल कबीर कहि, इम प्रतिपालन क्यों करे ॥१। शब्दार्ब-नरहरि > प्रभु। जठरॉह >-शरीर स्थित आग। उदिकैयै - रज वीर्य रूपी जल से। पड ८ पिड। शरीर। छछरे - खाली। कृसन 5 कृष्ण। चषियौ - चसना। नष्ट होना। जरे 5 पचना | अर्थ-जिस नरहरि प्रभु ने शरीरपिड को रज वीर्य जल से पैदा किया। कान, हाथ पैर जीभ, प्राण, मुँह दिये।, नीचे पैर, ऊपर सिर देकर बीस पक्ष (दस मास) मा के उदर मे रक्षा की। जिस उदर की आग से तुम्हारा नुकसान नहीं हुआ, क्योकि उसमे अन्नादि सब पच जाते है। इस भयानक उदर मे कभी तुम्हारे पेट को खाली नहीं रहने दिया। तुम कभी भूखे नहीं रहे। प्रभु ने तुम्हारा पोषण किया। भगवान् कृष्ण कृपालु है। सबका पालन करते है। योग क्षेम का वहन करते है। भूखा भूखा क्या करे, कहा सुनावै लोग। भोडा घड़े जिनि मुख दिया, सोई पूरण जोग ॥२॥ शब्दार्ब-भोंडा घड़ि - बरतन गढ़ना | अर्थ-भूख-भूख क्या करते हो? किसे सुनाते हो? जिसने यह शरीररूपी भाड बनाया है वह भूख की पूर्ति भी करेगा।। रचनहार कूँ चीन्हि लै, खैबे कूँ कहा रोइ। दिल मंदिर मैं पैसि करे, तौंणि पछेबड़ा सोइ ॥३॥ अर्थ-सृश्किर्ता को पहचानो। खाने को क्यो रोते हो? अपनी वृत्तियो को अतर्मुखी कर लो। भगवान पर विश्वास कर आराम से चादर तान कर सोओ। रमा नाम करि बोहड़ा, बोहो बीज अघाइ। अंति कालि सूका पहे, तो निरफल कदे न जाई ॥४॥ शब्दार्थ-बोहड़ा - बीज। बाहो 5 बोओ। अधघाइ 5 भरपूर। खड ८ अखड। सम्पूर्ण अर्थ-राम नाम का बीज भरपूर ससार मे बो दो। समूचे ब्रह्माड मे सूखा पड़ने पर भी यह फसल कभी बेकार नहीं होगी। अलंकार-रूपक, विशेषोक्ति |

३१२ कबीर समग्र च्यंतामणि मन मे बसे, सोई चित मै आणि। बिन च्यंता च्यंता करे, इहे प्रभु की वाणि ॥५॥ शब्दार्य-च्यतामणि - पुराणो मे एक काल्पनिक मणि जिससे इच्छा पूर्ति होती है। अर्थ-प्रभु ही चितामणि है। उस प्रभु को चित्त मे स्थान दो। बिना तुम्हारे चिता किये वह प्रभु तुम्हारी चिता करेगा। यह प्रभु का स्वभाव है। अलंकार-विभावना, यमक। कबीर का हूँ चितबै, का तेरा च्यंत्या होड़ । अणपच्यंत्या हरिजी करै, जो तोहि च्यंत न होड़ ॥६॥ अर्व-सत कबीर कहते है कि तुम क्या देखते हो? तुम्हारे द्वारा चिता करने से कुछ नहीं होगा। जो स्वयं अपनी चिता नहीं करता है उसकी चिता भगवान् करते है। तुम्हे किसी बात की चिता नहीं होनी चाहिए । करम करीमों लिखि रह्मा, अब कछू लिख्या न जाह। मासा घटे न तिल बच्चे, जो कोटिक करे उपाह॥७॥ शब्दार्य-करीमों & कृपालु ईश्वर) मासा 5 एक पुराना वजन। अर्थ-दयालु परमात्मा ने भाग्य मे जो लिख दिया है उसमे न एक मासे की वृद्धि तथा न तिल भर की घटती हो सकती है। चाहे कोई कितनी भी कोशिश क्यो न करे। अलंकार-विशेषोक्ति | जाकौ जेता निरमया, ताकौ तेता होइ। रती घटे न तिल बध्चे, जो सिर कूटे कोइ ॥८॥ अर्थ-जिसके भाग्य मे जो निर्मित है वही होगा। इसमे रत्ती भर घटेगा नहीं। तिल भर बढ़ेगा नहीं। कोई कितना ही सिर पटके। अलंकार-विशेषोक्ति | च्यंता न करि अध्यंत रहु, साईं है संप्रथ। पसु पंषरू जीव जंत, तिनको गोंडि किसा ग्रंव ॥९॥ शब्दार्व-पषरू > पक्षी । गॉडि - गॉठरी। ग्रथ 5 बॉधना। अर्थ-चिता मत करो। निश्चित रहो। सब का स्वामी ईश्वर सर्वसर्मथ है। वही सबकी व्यवस्था करता है। पशु, पक्षी आदि जीव जतुओ को देखो। उनके लिये किसने बॉधकर गॉठरी गाड़ी है? जैसे उनका काम चलता है वैसे ही नुम्हारा भी काम चढेगा। संत न बाँधे गाँठड़ी, पेट समाता लेइ। _ सॉई सूँ सनमुख रहे, जहाँ माँगे तहाँ देइ ॥१ ०॥ अर्थ-सत के आगे-पीछे ईश्वर खड़ा है। वही देनेवाला है। उसके अतिरिक्त ससार मे कौन 5 सकता है? इसलिये सत इकट्ठा नहीं करता। खाने भर को लेता है। पेट ही उसका भडार । " द्रध्य- यावत्ऺ प्रियते जठर तावतू स्वत्वहि देहिनाम् | अधिक यो5भिमन्येत स स्तनो दण्डमर्हति |-भागवत ७/१४/८ : राम राम सु दिल मिली, जम सो पड़ी बिराई। मोहि भरोसा इष्ट का, बंदा नरकि न जाई ॥१ १॥ अर्थ-मेरा मन राम से मिल गया है। अब मेरा यम से पूरा अल्गाव हो गया है। मुझे अपने इश्देव राम का भरोसा है। अब मै नरक नही जा सकता हूँ। ्

साखी ३१३ कबीर तूँ काहे डरे, सिर परि हरि का हाथ। हस्ती चढ़ि नहीं डोलिये, कूकर भूसें जु लाष ॥१२॥ अर्व-अब किसी बात का डर नहीं है क्योकि मेरे सिर पर प्रभु का हाथ है। मै प्रभु सरक्षण मे हूँ। छाख कुत्ते भूँके किन्तु हाथी पर चढ़ा व्यक्ति कभी विचलित नहीं होता है अलंकार-अन्योक्ति। भीठा खाँण मघुकरी, भाँति भाँति को नाज। दावा किसही का नहीं, बिन बिलाइति बड़ राज ॥१ ३॥ शब्दार्थ-खाँण > खॉड़ या खाना। मधूकरी - भिक्षात्र। नाज + अनाज | अर्थ-भिक्षा मे जो तरह-तरह के अनाज मिले उन्हे ही मीठा गुड़ समझ कर खाओ। अगर तुम पर किसी का दावा या अधिकार नहीं है तो बिना विलायत का राज पाये तुम अपने को राजा समझो। अलंकार-विभावना। ' मौनि महातम प्रेम रस, गरवातण गुण नेह। ए सबही अह् लागया, जबहि कट्मा छुछ देह ॥१४॥ शब्दार्-गरवातण - गुरुत। माहाल्य। अह (स अथ) > अंत। अर्थ-किसी व्यक्ति से ज्यो ही याचना की, त्योही प्रतिष्ठा, माहल्य, प्रेमरस, गुरुत्व, गुण, स्नेह आदि सभी का अत हो जाता है। मॉगण मरण समान है, बिरला बंचै कोइ | कहे कबीर रघुनाथ सूँ, मतिर मेंगाबै मोहि ॥१ ५) अर्थ-मॉगना मृत्यु के समान है। कोई बिरला ही इस मृत्यु से बच सकता है। सत कबीर कहते है कि ईश्वर से भी मॉगना न पड़े। भावार्थ यह कि भक्त को भगवान् से कुछ भी मॉगने की जरूरत नहीं पड़ती। भगवान् स्वय देते है। पॉडल पंजर मन भेंवर, अरब अनूपम बास। राप नाम सींच्या अमी, फल लागा बेसास ॥१ ६॥ शब्दार्थ-पाडलू - कुद पुष्प। पजर 5 शरीर। अरथ 5 मनोरथ। अनूपम < विचित्र | असामान्य | अँगी > अमृत । बेसास 5 विश्वास] अर्थ-शरीर कुद पुष्प है। मन भौरा है। मनोरथ असामान्य गध है। इस प्रकार मन भ्रमर चक्कर लगाता है। इसमे विश्वास के फल लगते है। इस कुद पुष्प का वृक्ष रामनाम रूपी अमृत से सींचा जाता है| अलंकार-सागरूपक | मेर मिटी मुकता भया, पाया ब्रह्म विसास | अब मेरे दूजा को नहीं, एक तुम्हारी आस ॥१७॥ अर्थ-“मै' का भाव मिट गया। अहम् का इदम् मे विसर्जन हो गया। मै से मुक्ति का विश्वास होते ही ब्रह्म की प्राप्ति हो गयी या विश्वासरूपी ब्रह्म को पा गया। अब मेरा दूसरा कोई नहीं है। हे प्रभो, अब केवल तुम्हारी आशा है। टिप्पणी-गो० तुलसीदास ने ईश्वर को “श्रद्धा विश्वास रूपीणौ” कहा है। यहाँ ब्रह्म को केवल विश्वास रूप कहा गया है। अर्थ समान है। जाकी दिल में हरि बसे, सो नर कलपै कौंइ। एक लहरि समंद की, दुख दलिद्र सब जॉइ ॥१ ८॥

३१४ कबीर समग्र शब्दार्थ-कल्पै + दुखी होना। कॉइ < क्यो। दलिद्र « दारिद्रय | अर्व-जिसके हृदय मे प्रभु का निवास है वह व्यक्ति क्यो दुखी हो? भगवान् का एक अनुग्रह भी आनद समुद्र की लहर के समान है। इससे जीवन भर की दरिद्रता समाप्त हो जाती है। पद गाये ठैलीन है, कटी न संस पास। सबे पिछीड़े थोयेरे, एक बिनों येसास॥१ ९॥ शब्दार्व- लैलीन 5 तनन्‍्मय। ससे 5 सशय। पास ८ पाश। बधन। पिछीड़े < पछोरना। धोथरे 5 थोथे। व्यर्थ। बेसास 5 विश्वास । अर्थ-रामभक्ति के पद तन्‍्मय होकर गाते है। फिर भी सशय का बंधन नहीं कटता है। विना पूर्ण विश्वास के सारी सफाई व्यर्थ है। सफाई अर्थात् वासनारहित हृदय के सशय पाश कटते है वरना सशयात्मा का नाश होता है। शावण हीं पें रोज है, रोवण ही में राग। इक नैरागी ग्रिषह्ट मैं, इक गृही में बैराग ॥२०॥ शब्दार्व-रोज 5 रोग। राग प्रभुप्रेम | ग्रिह + गृह। अर्थ-ससार की माया मे जो सुख मानता है। गाता है। वही रोगी है और माया को देखकर जो रोता है वही असली भगवत प्रेमी है। रागवाला है। एक वैराग्य मे रहकर भी घर की माया मे बँधा है। दूसरा घर मे रहकर भी विरागी है। अलंकार- विभावना, निदर्शना | गाया तिनि पाया नहीं, अणगाँयों थें दूरि। जिनि गाया बिसवास सूँ, दिन राम रह्मा भरिपूरि॥२१॥ अर्थ-जिन्होने केवल गाने के लिये या दिखावे के लिए गाया वे ईश्वर को नहीं पा सकते। जिन्होने नहीं गाया प्रभु उनसे भी दूर है। जिन्होने विश्वासपूर्वक रामनाम का सकीर्तन किया राम उसके हृदय मे पूर्ण रूप से विराजते है। (३६) पीव पिछोंणन कौ अंग संपटि माही समाहया, सो साहिब नहीं होह । सकल माँड में रमि रह्मा, साहिब कहिए सोइ ॥१॥ शब्दार्य-सपटि - सपत्ति। मॉड ८ मडप | ब्रह्माड। अर्व-सपत्ति या वैभव मे ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती है। ईहवर तो सम्पूर्ण ब्रह्मांड के कण-कण मे व्याप्त है। (3 ईश्वर रहित नहीं है। रहै मॉँड वै, सकल मोड ता मांहि। कबीर रोबे तास झूँ, दूजा कोई नाहि॥२॥ अर्थ-ईश्वर सपूर्ण ब्रह्मा से अलग भी है। सपूर्ण ब्रह्माड उसी मे समाहित भी है। 200 विश्वरूप भी है। विश्व से अलग भी है। ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं है। कर्बीर उसी प्रभु के प्रेम मे रो रहे है। टिप्पणी-गीता कहती है-मया ततमिद सर्व जगदव्यक्तमूर्तिना। मल्थानि सर्वभूतानि न चाह तेष्ववस्थित | /९/४ क्र 5 *े

साखी ३१५ भोले भूली खसम के, बहुत किया बिभचार। सतृगुर गुरू बताइया, पूरियला भरतार ॥३॥ अर्थ-मै माया के कारण अपने असली स्वामी को भूला था। मैने इस भूल के द्वारा बड़ा व्यभिचार किया। सदगुरु ने कृपा कर मेरे पूर्व जन्म के स्वामी (ईश्वर) को बता दिया। जाके मुह माथा नहीं, नहीं रूप छुरूप। पुहुप बास वे पतला ऐसा तत अनूप ॥४॥ अर्थ-ईश्वर रूपरहित है। उसके न मुँह है। न माथा | न वह रूपवाला है। न कुरूप है। वह पुष्य की गध से भी सूक्ष्म है। वह बड़ा ही विचित्र तत्त्व है। किसी प्रकार की भौतिक उपमा से परे है। तुलनीय-फूल मे है गन्ध जैसे और बाहर पवन मे भी, तू कभी मेरे हृदय मे और बाहर गनन में भी-आरसी० (३७) बिर्कताई कौ अंग मेरे मन मैं पड़ि गई, ऐसी एक दरार। फटा फटक पषाँण ज्यूँ, मिलाया न दूजी बार॥१॥ अर्थ-मेंरे मन मे ससार की वासनाओ के बारे में दरार पड़ गयी है। मेरा मन सासारिक विषयो से अलग हो गेया। अब वह नहीं जुड़ेगा। जैसे फटा स्फटिक नहीं जुड़ता है वैसे ही मेरा मन अब कभी सासारिक वासना मे नहीं जायगा। अलंकार-उपमा | मन फाठा वाहक बुरे, मिटी सगाई साक। जौ परि दूध तिवास का, ऊकटि हुवा आक॥२॥ ५ शब्दार्य-वाइक > वाक्य । सगाई 5 सबंध। बुरै 5 बुरी तरह से। अत्यत। साक 5 साख। तिवास 5 तीन दिन का। ऊकटि 5 खराब होना। हूवा 5 हुआ। आक < मदार। अर्थ-सद्‌गुरु के वाक्यों को सुनकर मेरा मन ससार से अत्यत विरक्त हो गया है। वैसे ही मेरा मनोभाव ससार के प्रति विकृत हो गया है। चंदन भाँगा गुण करे, जैसे चोली पंन। बोइ जनों भागों न मिलै, तुकताहल अरु मंन॥३॥ शब्दार्थ-भोंगा 5 भग्न। टूटना। चोली 5 कपड़ा। पन 5 पान। मुकताहल * मोती। अर्थ-चदन घिसने से गुणवान् हो जाता है। जैसे कपड़े मे लिपटा मान पलटते रहने से ठीक रहता है। कितु मोती और मन टूट जाने पर कभी नहीं जुड़ते है। पासि बिनंठा कपड़ा, कदे सुराग न होइ। कबीर त्याग्या ग्यान करि, कनक कामनी दोई ॥४॥ अर्थ-नष्ट हुआ कपड़ा कभी रगा नहीं जा सकता है। कबीर ने देखा कि स्त्री और सोने के पासवाले मन पर कभी भगवस्मेम का रग नहीं चढ़ेगा। अत उन्होने ज्ञानपूर्वक दोनो को छोड़ दिया। चित चेतनि मैं गरक ड्ै, चेत्य न देखें मंत। कत कत की सालि पाड़िये, गल बल सहर अनंत ॥५॥

 शब्दार्व-गरक - डूबकर। सालि 5 कॉटा। बुराई। गलबरू > गड़बड़। सहर - ससार। अर्थ-चेतना मे डूबकर देखो। गुरु मत्र पर विचार करो। ससार मे अनत गड़बड़ियों है। तुम किसकी-किसकी गड़बड़ी ठीक करते फिरोगे ? जाता है सो जॉण दे, तेरी दसा न जाइ। खेबटिया की नाव ज्यूँ, घणों मिलेंगे आई॥६॥ अर्ध-ससार अगर विषयो मे नष्ट हो रहा है तो नष्ट होने दो। तुम उसे नहीं बचा सकते हो। यह ससार नाव की यात्रा है। यहाँ बहुत से पार जानेवाले मिलते है। तुम केवल अपनी सा की चिता करो। तुम्हारी साधना ठीक रहेगी तो बहुत से लोग साथ देनेवाले मिल जायेंगे। अलंकार-उपमा | नीर पिलावत क्या फिरै, सायर घर घर बारि। जो त्रिषावंत होडगा , तो पिवेगा झ्णण भारि ॥७॥ ये अर्व-घर-घर घूमकर क्या उपदेश देते फिरते हो? ईश्वर और ईश्वर सबधी ज्ञान तो सर्वत्र फैला है। कितु कोई इसका उपयोग करना चाहे तब न? जो ध्यासा (ज्ञानपिपासु) होगा तो वह झख मारकर सदूगुरु द्वारा बताए तरीके से अपने ही भीतर के ज्ञानसागर का उपयोग करेगा। अलंकार-अन्योक्ति | सत गंठी कोपीन है, साध न माने संक। राम अमलि माता रहै, ते शिणें इंद्र की रंक ॥८॥ अर्थ-साधुओ का कौपीन फटा है। सात गॉठोवाला है। यह फटा-पुराना कौपीन ही उसकी सत्य साधना की गॉठ है। इससे सतो को जरा भी सकोच नहीं होता। वे रामप्रेम मे मस्त रहते है। इद्र को भी कुछ नहीं समझते है। टिप्पणी-सतो की लगोटी को कौपीन कहते है। अलंकार-व्यतिरेक | दावे दाह्ण होत है, निरदाये निरसंक। जे नर निरदावै रहे, ते गण इंद्र कौ रंक ॥९॥ अर्व-अगर किसी चीज का दावा या अहकार है तो उससे दाझण या दुख होगा। जो दावामुक्त है वह नि शक रहता है। जो व्यक्ति किसी चीज पर अधिकार नहीं रखना चाहता है (निरदावै) वह इद्र को भी दरिद्र समझता है। अलंकार-व्यक्तिरेक | कबीर सब जग हेंडिया, मंदिल कंशि चढ़ाइ! हरि दिन अपनों को नहीं, देखे ठोकि बजाह ॥१ ०॥ शब्दार्य-हॉडिया + खोजा। मदिल - मदिर मुहा०-मदिल को कधा चढ़ाना स्थिर निवास की खोज। ठोकि बजाइ 5 भलीभॉति। अर्थ-सारे ससार मे स्थिर निवास की खोज की। मदिर को हर समय कधे पर लिये घूमता रहा। पता चला कि ईश्वर ही अपना है। वही स्थायी निवास दे सकता है। यह हमने भलीभॉति समझ लिया है।

साखी ३१७ (३८) सम्रथाई को अंग तौं छुछ किया न करि सक्या, ना करणे जोग सरीर। जे कछु किया सु हरि किया, ताये झूया कबीर कबीर ॥१॥ अर्पघ-सत कबीर अपनी नग्रता व्यक्त करते है कि कर्त्ता तो केवल प्रभु है। व्यक्ति तो उस प्रभुकर्म का साधन मात्र है। व्यक्ति ने न तो कुछ किया है। न कर सकता है। न उसका शरीर ही कुछ करने लायक है। प्रभु जिसे माध्यम बनाकर करता है। वह कबीर हो जाता है। अलंकार-यमक | कबीर किया कछू न होत है, अनकीया सब होह। जे किया कछु होत है, तो करता औरे कोइ ॥२ ॥ अर्य-सत कबीर कहते है कि करने या कर्त्तापन के अहकार से कुछ नहीं होता है और जिसमे अकर्त्तापन का भाव है उसी का करना सफल है। मनुष्य के किये अगर कुछ होता तो कर्ता कोई दूसरा नहीं होता। मनुष्य स्वय अपना कर्ता हो जाता। अलंकार-विरोधाभास, भेदकातिशयोक्ति। जिसहि न कोई तिसहि तूँ, जिस तूँ तिस सब कोइ । दरिगह तेरी सौंइयों, नॉमहरूम न होह ॥३॥' शब्दार्य-नॉमहरूम ८ नाउम्मीद। अभागा। (नॉ स्वार्थ है) अर्थ-हे प्रभु, जिसका कोई नहीं है उसका तुम हो। जिसके तुम हो उसका सब कोई है। हे स्वामी तुम्हारे दरबार मे कोई भी नाउम्मीद या आभागा नहीं होता है। एक खड़े ही लहै, और खड़ा बिललाइ। साईं मेरा सुलबना, सूता देइ जयाई ॥४॥ ' शब्दार्य-विललाइ 5 बिलबिलाना। रोना, चिल्लाना। सुलुषना अच्छे लक्षणोवाला। अर्थ-कोई खड़ा-खड़ा ही प्राप्त करता है। कोई खड़ा बिल्बिलाता है। भगवान् भढे है। ये अज्ञानाधकार मे सोये को अपनी अहेतुकी कृपा से जगा देते है। अलंकार-व्यतिरेक | सात समेंद की मसि करी, लेखनि सब बनराह। घरती सब कागद करों, तऊ हरि गुण लिख्या न जाइ ॥५॥ अर्थ-सातो समुद्रो के जल की स्याही बनाऊँ। सभी जगलो को कलम बना दूँ। पूरी धरती कागज बना दी जाय | तब भी ईश्वर के गुण-विस्तार का छेखन सभव नहीं है। अलंकार--अतिशयोक्ति, विशेषोक्ति। तुलनीय- असित गिरि समस्यात् कज्ञर सिधुपात्रे। सुरतरुवर शाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।-शिवमहिम्नस्तोत्रम्।' अबरन को का बरनिये, मोपै लख्या न जाइ। अपना बाना बाहिया, कहि कहि वाके माइ॥६॥ शब्दार्थ-अबरन 5 अवर्ण। निराकार। बाना 5 ढग। बाहिया 5 आरोपित करना। बाहना | अर्थ-जो अवर्ण या रूप-रग रहित निराकार आवर्णनीय है। उसको न तो छक्ष्य किया जा सकता है। न उसका वर्णन ही हो सकता है। फिर भी छोगो ने अपने-अपने ढंग से उसका

22० ०५2४गमड---०4०५७५५७>म७- ३७००० ५ 8 ०-3८ नया कननमनाओ क्काओल... 3 8०: सं री ऑऋन्री' वामान्वी. ३१८ कवीर समग्र वर्णन करना चाहा। कितु किसी को सफलता नहीं मिली। सभी थक गए। श्रम व्यर्थ रहा। अलंकार-अवरन मे श्लेष, विशेषोक्ति | झल बाँवे झल दाहिने, झलहि मौंहि ब्यौहार। आगे पीछे झलमई, राखै सिरजनहार ॥७॥ शब्दार्थ-झल - ज्वाला । बॉवै > बाएँ | अर्व-दाये-बाये वासना की आग जल रही है। सारा सासारिक व्यवहार भी वासना, लालसा की आग के बीच हो रहा है। आगे-पीछे सर्वत्र आग है। भगवान् ही इस वासना आग से मनुष्य की रक्षा कर सकते है। साई मेरा बाणियों सड़जि करे व्यौपार। बिन डॉडी बिन पालड़ै, तोले सब संसार ॥८॥ अर्थ-भगवान् एक अच्छा व्यापारी है। वह सहज साधना का व्यापार करता है। विना किसी तराजू के सारे ससार के लोगो के कर्मी को तौलता रहता रहता है। अलंकार-विभावना | » कबीर वास्पा नाव परि, कीया राई लूंण। जिसहि चलावै पंथ तूँ, तिसहि भुलावे कोण ॥९॥ अर्व-अशुभ निवारण के लिये सरसो (राई) नमक छिड़ककर मैने अपने को प्रभु को नौका पर छोड़ दिया। पूर्ण समर्पण कर दिया। अब वही प्रभु मुझे रास्ते में चछाएगा। पथप्रदर्शक होगा। है प्रभु, तुम जिसके पथ-प्रदर्शक हो उसे कौन भुलावे मे डाल सकता है? कबीर करणी क्या करे, जे राम न करे सहाह। जिहि जिहि डाली पग भरे, सोई नि नवि जाइ॥१०॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि मनुष्य के करने से कुछ नहीं होता हैं। यदि ईश्वर की सहायता न हो, तो मनुष्य जिस जिस डाल पर पैर रखेगा वही-वही डाल झुक जायगी। भावार्थ कि बिन प्रभु की कृपा के सफलता असभव है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | जदि का माह जनमियाँ, कहूँ पाया सुख। डाली डाली मैं फिरी, पातों पाती दुख ॥११॥ अर्व-जब से माँ ने जन्म दिया है। कभी सुख नहीं पाया। डाल-डाल चलता हूँ और दुख पात-पात चलता है। दुख सदा मुझसे आगे रहता है। टिप्पणी-यह बौद्धो के 'सर्व दु खम्’’ का प्रभाव है। अलंकार-लोकोक्ति | साई सूँ सब होठ है, बंदे ये कछु नाहिं। राई दे परयत करे, परबत राई मोहि॥१ २॥ अर्व-ईश्वर कर्तुमू अकर्तुम् सर्वथा कर्तुम् समर्थ है। व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता है। ईश्वर छोटी से छोटी वस्तु (राई) को पर्वत और पर्वत को राई कर देता है। ट्प्पणी-स्वय ईश्वर अणु से भी छोटा और महानू से महत् है। अलंकार-लोकोक्ति।

साखी ३१९ (३९) कुसबद को अंग अणी सुहेली सेल की, पड़ती लेइ उसास। चोट सहारे सबद की, तास गुर मैँ दास ॥१॥ अर्थ-अणी > नोक। सुहेली 5 भरीभौति प्रवेश करनेवाढी। सेल 5 भाला। उसास 5 ऊर्ध्ध श्वास। सहारे 5 सहन करे। अर्व-भाला भलीभॉति धैंसता है। उसकी नोक की चोट पड़ते-ही जोर-जोर से उसोंस छेता है। कितु जो व्यक्ति शब्द की चोट सहता है वह मेरा गुरु है और मै उसका दास हूँ। मतलब कि शब्द की चोट भाले की नोक की चोट से भी अधिक भयकर है। अलंकार-व्यतिरेक। खूंदन तौ घरती सहै, बाढ़ सहै बनराह। + कुसबद तौ हरिजन सहै, दूजे सदा न जाइ॥२॥ अर्व-लोग पृथ्वी खोदते है। धरती उसे सहती है। वन बाढ़ बर्दाश्त करता है। चाहे कितनी भी बाढ़ आये वह बहता नहीं। बाढ़ के वेग को भी रोकता है। कितु भक्त (हरिजन) उससे ह श्रष्ठ है क्योकि वह कुशब्द को भी सहता है। कुशब्द किसी दूसरे से बर्दाश्त नहीं हो सकता है। अलंकार-तुल्ययोगिता | अर्थ-शात प्रकृति का आदमी उसे जानना चाहिए जिसमे मानापमान सहने की क्षमता है। जो किसी का पक्ष न छे। निष्पक्ष रहे। जिसका एक शब्द भी दूषण के योग्य न हो। तुलनीय-सुख-दुख सरिस प्रसस। गारी [-तुलसी कबीर सीतलता भई, पाया ज़्रह्म गियान। ञ जिि बैसंदर जग जल्या, सो मेरे उदिक समान ॥४॥ -सत कबीर कहते है कि ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति से में शीतल हो गया। वासना की जिस आग (बैंसदर) से सारा संसार जल रहा है। प्रभुकृपा से वह मेरे लिये पानी (उदक) के समान हो गयी है। (४०) सबद को अंग कबीर सब सरीर मैं दिनि गुण बाऊै तंति। बाहरि भीतरि भरि रह्या, तावे छूटि भरंति ॥ १॥ हल शब्दार्थ-गुण 5 रस्सी। डोरी। तति 5 ततत्री। तार। तारवाछा बाजा। भरत्ति > भ्रांति। अर्ध-सत कबीर कहते है कि शरीर मे सद्गुरु द्वारा बताए मार्ग से बिना किसी डोरी या तार के बाजा बज रहा है। बाहर और भीतर एक प्रकार का नाद हो रहा है। बाहर जो गुरु शब्द है। भीतर वही अनाहत नाद है। कितु यह बिना गुण के निर्गुण शब्द है। यह शब्द बाहरभीतर भर गया है जिससे ससार को सत्य समझने का भ्रम दूर हो गया है।

३२० कबीर समग्र अलंकार-विभावना | सती संत्तोषी सावधान, सबद भेद सुविचार। सतगुर के प्रसाद वें, सहज सील मत सार ॥२॥ अर्थ-सत्य पर निष्ठा रखनेवाला, सतोषी, सावधान, शब्द के भैदोपभेद पर अच्छी तरह विचार करनेवाला सदूगुरु की कृपा से सहज ही सभी विश्वासों (मत) के सारतत्त्व शील को समझ छेता है। कहने का अर्थ है कि सदगुरु की कृपा से बहुत से मतो की खोज न कर सहज ही शील की प्राप्ति हो जाती है। सतगुर ऐसा चाहिए, जैसा सिकलीगर होह। सबद मसकला फेरि करि, देह द्रपन करे सोइ ॥ ३॥ श्ब्दार्व-सिकलीगर ८ सान धरानेवाला | मसकला 5 सान धराने का औजार। अर्थ-सदगुरु को सान धरानेवोले के समान होना चाहिए जो शब्दरूपी मसकढे पर फेरकर शिष्य के तन-मन को दर्पण सा चमका दे | शिष्य आत्मबोध के लिए अन्यत्र न जाकर उसे अपने भीतर से ही प्राप्त करे। अलंकार-रूपक | सतगुर साच सूरिवाॉ, सबद जु वाह्या एक। लागत ही मे मिलि गया, पड़या कलेजे छेक | यह साखी १/७ मे आ ४ है। हरि रस जे जन बेमिया, सतूगुद सी गणि नॉहि। लागी चोट सरीर मे, करक कलेजे मोहि ॥४॥ अर्व-हरि रस (या शर) से जो जन विद्ध हुए उनके सामने सैकड़ो गुणो (शतगुण) की गणना नहीं हो सकती है। हरि रस (या शर) की चोटलगती है शरीर मे। कितु दर्द कलेजे मे होता है। मतलब कि तन-मन विद्ध हो जाता है। अलंकार--असगति | ज्यूँ ज्यूं हरिगुण साभदूँ, त्यूँ त्यूँ छागे तीर। सॉठी साठी भ्ड़ि पड़ी, झलका रह्या सरीर॥५॥ शब्दार्व-सॉठी-सॉठी 5 १ सानठी, २ सरकडा। झलका 5 9 चोट का निशान, २ फफोला। अर्थ-जैसे-जैसे विषयो से सम्हलकर अलग होता हूँ। हरिगुण मे प्रवेश करता हूँ। त्यो त्यो प्रभु प्रेम के तीर लगते है। इन तीरों की सनाठी या सरकडे तो गिरजाते है कितु शरीर पर (झलका) फफोला हो आता है। अलंकार-व्यतिरेक | ज्यूँ ज्यूँ हरिगुण सॉमली, त्यूँ त्यूँ लागे तीर। लागे दे भागा नहीं, साहणहार कबीर ॥६॥ अर्थ-ज्यो-ज्यो हरिगुण मे सम्हलता हूँ। त्यो-्यो अनियारे प्रेम बाण गते है। तीर लगने से भागा नहीं। सत कबीर उसे सहनेवाले है। सारा डहुत पुकारिया, पीड़ पुकारै और। छागी चोद सबद को, रहा कबीरा ठौर ॥७॥ शब्दार्द-सारा 5 १ चिता। २ सभी। . अर्थ-चित पर चढ़ा व्यक्ति या चिता के पास खड़े लोग दुख प्रगट करते है। भगवत्नेम की : * , |# उससे भिन्न और विशिष्ट होती है। जब किसी को सद्गुरु के शब्दों की चोट लग जाती तो

30७४ साखी ३२१ उसकी विपय चचलता समाप्त हो जाती हे | वह व्यक्ति स्थिरतत्त्व प्रभु के पास पहुँच जाता हे । अलकार-भेदकाशयोक्ति | (४१) जीवन मृतक कौ अंग जीवन मृतक हे रहे, तजे जगत की आस। तव हरि सेवा आपण करे, मति दुख पावे दास।।१॥॥। अर्थ-विपयो से अलग रहना ही जीवित मृत्यु है । जो व्यक्ति जगत को छोड प्रभु की आशा करता है वह जीवित रहकर भी मृत्यु का आनद प्राप्त करता हे । इसलिये कि सासारिक विषयों से सुख की आशा ही दुख का कारण हे। द्रष्टव्य-आशा हि परम दुख नेराशाःहि परम सुखम् | शास्त्रों मे निराशी को पिगलावत् सुखी कहा हे। कबीर मन मृतक भया, दुरवल भया सरीर। तब पेडे लागा हरि फिर, कहत कबीर कबीर ।।२।। "शब्वार्थ-पडे रास्ता। पेडे लगना (मुहा०) पीछे लगना। अर्थ-जव मन विपयो के प्रति मर जाता है। विपय विरक्ति के कारण शरीर डुर्वल हो जाता हे | तो भगवान् भक्त के पीछे चलने लगता हे | भक्त के स्थान पर स्वय भगवान् उसे पुकारने लगता है । तुलनीय- . निरपेक्ष मुनि शात निर्वेर समदर्शनम् । अनुव्रजाम्यह नित्य पूर्येयेत्यड्घ्रि रेणुभि | -भागवत ११/१४/१६ कबीर मरि मडहट रह्या, तब कोड न बूझे सार। हरि आदर आगे लिया, ज्यूँ गठ बछ की लार |।३।। शब्दार्थ-मडहट > श्मशान | सार + सुधि | खबर | लार # लाड | प्यार। अर्थ-सत कवीर कहते है कि जब मन ने विपयो को छोड दिया। सभी स्वार्थवश ही पूछते है। विपय विरक्ति के कारण मन किसी की स्वार्थपूर्ति नही कर सकता। ऐसी स्थिति मे भगवान् आगे वढकर स्वागत करते है। जैसे गाय वछडे को प्यार करती है। जव लोग पूछते थे तव प्रभु नही और जंव प्रभु पूछते है तो ससार के लोगो ने पूछना छोड दिया। भगवान् गाय हे ओर भक्त वछडा। अजकार--उपमा | घर जालों घर ऊबरे, घर राखो घर जाड़। एक अचभा देखिया, मुआ काल को खाइ | ४।। शब्दार्थ-घर < सासारिक घर | आध्यात्मिक घर | मुआ 5 मृत | खाइ > खाता है | . अर्थ-जिसने वासना भरे सासारिक घर जला दिया, नप्ट कर दिया | उसका घर उवर गया | उसे मुक्ति मिल गयी । कितु जो सासारिक घर को ठीक करने के चक्कर मे रहा उसका आध्यात्मिक (पारलाकिक) निवास्त नष्ट हो गया। एक आश्चर्य देखा जाता हे कि मृत व्यक्ति काल को खाता ह भाव यह कि जो विपयमुक्त हो गया हे काल उसका कुछ विगाड नही सकता | भक्तो पर काल का प्रभाव नही पता हे | भगवान् के समान ही भक्त कालचक्र से परे हे । तुलनीय- घर राखे घर जात हे घर राखे घर जाइ। तुलसी घर वन वीच ही राम प्रेमपुर छाइ || -दोहावली । अलकार--य्मक, विरोधाभास | $

३२२ कबीर समग्र मरतां मरतों जग मुवा, औसर मुधा न कोइ । कबीर ऐसे मरि मुवा, ज्यूँ बहुरि न मरना होड़ ॥५॥ अर्थ-ससार मे सभी छोग बार-बार मरते है। कितु ससार में रहते हुए वासना मुक्ति का अवसर पाकर भी जल्दी कोई नहीं मरता अर्थात् वासना नहीं छोड़ता। सत कबीर ने वासना से मुक्ति पा छी। अब उन्हे पुन नही मरना होगा। उनका भवचक्र पूरा हो गया। बैद मुद्ा रोगी मुवा, मुवा सकल संसार। एक कबीर ना मुवा, जिनि के राम अघार॥६॥ अर्थ-ससार मरणधर्मा है। रोगी तो मरता ही है। वैध भी मरते है। सारा ससार मरता है। एक हर नही मरता है। जिसका आधार विषय न होकर भगवान् है। मृत्यु से अमृत्त गमन ही भक्ति है। टिप्पणी-गीता मे भगवान कहते हैकौतेय प्रतिजानीहि न में भक्त प्रणश्यति। ९/३१ मन मारथा ममिता मुई, अहं गई सब छूटि) जोगी था सो रमि गया, आसणि रही विभूति ॥७॥ अर्थ-भक्त ने पहले विषयो मे दौड़नेवाले चचल मन का विरोध किया। इससे विषयो के प्रति होनेवाला भाव नष्ट हो गया। इससे अहकार या कत्तपिन का भाव भी छूट गया। आत्मप्रधान योगी तो परमात्मा मे रमण करने लगा। उसके स्थान पर केवल ज्वलनशील शरीर रह गया या जले शरीर की राख रह गयी। विभूति का अर्थ यश भी है। मरने के बाद भी योगी का यश रह गया। रूप जल गया। नाम रह गया। तुलनीय-. झल ऊठी झोली जली खपरा फूटिम फूटि। जो सो था गी रमि, रहा, आसनि रही विभूति ॥- (कवीर (साखी ४/४) टिप्पणी-सत गोरखनाथ ने ममड़ी, दमड़ी और चमड़ी इन तीनो से बचने का उपदेश किया है। जीवन दे मरियरो भलो, जो मरि जाने कोह। मरने पहली जे मरे, तौ कलि अजराबर होइ ॥८॥ अर्थ-अनित्य ससार के दुख मे बार-बार मरनेवाले जीवन से तृष्णा मुक्ति की मृत्यु अच्छी है। कितु यह मृत्यु तो कभी प्राप्त हो सकती है जब कोई ऐसी मृत्यु को जाने। सासारिक मृत्यु के पूर्व जो व्यक्ति आध्यात्रिक मृत्यु को वरण करता है वह कलिकाल में भी अमर हो जाता है। अलंकार-विरोधाभास | खरी कसौटी राम की, खोटा टिके न कोड | राम कसौटी सो टिके, जौ जीवन मृतक होई॥९॥ अर्थ-रामभक्ति की कसौटी कठिन है। जिस व्यक्ति में जरा भी विषयो का खोटपन है वह यहाँ नहीं टिक सकता है। रामभक्ति की कसौटी पर वही टिक सकता है जो जीते जी मरा हो या विषयो से मुक्त हो। आपा मेट्या हरि मिलै, हरि भेटपा सब जाइ। अकथ कहाणी प्रेम की, कष्मा न को पत्थाइ॥ १०॥ शब्दार्य--आपा + अहकार। अपनापन। अर्थ-अहंकार मिटने पर ईश्वर की प्राप्ति होती है। कितु हृदय से ईश्वर को निकाल देने से सब कुछ चला जाता है। ईश्वर प्रेम की कहानी अकथनीय है। कहने पर कोई विश्वास नहीं . - फरेगा। क्योकि यह कहानी सासारिक पद्धति की न होकर उलटी पद्धति की है। |

जाष्या अप निगुसांवों वहि जाएगा, जाके थाघी नही कोइ। दीन गरीबी बंदिगी, करता होइ सु होई ॥१ १ ॥ शब्दार्थ-निगुसोंदाँ > गुसाईरहित। जिसका कोई मालिक न हो। थाघी > सहारा। दीन « दैन्य। बदगी वंदना | अर्थ-जिसका कोई गोस्वामी न हो यानी प्रभुरहित व्यक्ति वासना के प्रवाह मे बह जायगा | क्योकि उसका कोई सहारा नहीं है। वासना तो स्वय सहारा चाहती है। वह किसका सहारा बन सकती है? दीनता, गरीबी और वदना आदि करने से शायद कुछ हो सकता है। दीन गरीबी दीन कीं, दुँदर कौ अभिमान। दुंदुर दिल विष सूँ भरी, दीन गरीबी राम ॥१२॥ शब्दार्थ-दीन > दिया। दुँदर - न्द्रवाला या झगड़ालू। दीन + अकिचन। दैन्ययुक्त। अर्थ-जो दैन्ययुक्त है उसे गरीबी दी। झगड़ालू को अभिमान दिया। झगड़ालू का दिल जहर से भरा होता है। दीनता और गरीबी मे ही राम का निवास है। विप्पणी-अकिचनता और दीनता भगवद्ञाप्ति के महत्त्वपूर्ण साधन है। गोस्वामी जी ने कहा है-तु दयालु दीन ही दू दानि ही भिखारी [-विनय पत्रिका। श्रीमद्भागवत मे भगवान् कृष्ण ने कहा हैत भ्रश्यामि सम्पद्भ्यों यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम्। १०/२७/१ ६ कबीर चेरा संत का, दासनि का परदास। कबीर ऐसे है रद्या. ज्यूँ पाऊँ तलि घास ॥१ ३॥ शब्दार्थ-चेरा + चेला। परदास 5 परमदास | पारऊँ ८ पॉव | तलि > नीचे। अर्व-कबीर सत्ो के चेले है। भगवान् के दास के दास है। सत कबीर कहते है कि भक्त को पैर के नीचें की घास के समान नम्न तथा सेवक बनकर रहना चाहिए। दासानुदास। टिप्पणी-असली भक्त दासो का दास है। भगवान् श्री कृष्ण ने कहा हैये मे भक्तजना पार्थ। न मे भक्ताश्च ते जना । मदभक्तानाच ये भक्ता मम भक्तास्ते नरा |-आदि पुराण। रोड़ा ह्वै रहो वाद का, तजि पाषंड अभिमान। ऐसा जे जन है रहे, त्ाहि मिले भगवान ॥१४॥६३२॥ शब्दार्य-रोड़ा > ठीकरा। बाट - रास्ता। अर्थ-मनुष्य को चाहिए कि वह अभिमान छोड़कर इतना नग्न हो जाय जैसे वह रास्ते का ठीकरा हो। ऐसे व्यक्ति को ही भगवान मिलते है। (४२) ' चित कपटी कौ अंग कबीर तहाँ न जाइए, जहाँ कपट का हेत । चालूँ कली कनीर की, तन रातौ मन सेत ॥१॥ शब्दार्ध-हेत प्रेम। कनीर < एक फूल। अर्थ-सत कबीर कहते है कि जहाँ प्रेम मे कपट हो वहाँ कभी मत जाइए। कपटी प्रेम के

३२४ कबीर समग्र प्रतीक उस कनेर की कली को जला दूँ जिसका बाहर (तन) प्रेम रंग में छाल और भीनर (मन) प्रेमहीन (#वेत) हो। छुलनीय-मन कपटी तन सज्जन चीन्हा ॥-तुलसी | संसारी 8४० भला, कैंवारी के भाई। दुराचारी बैश्नों बुरा, हरिजन तहाँ न जाइ ॥२॥ शब्दार्थ-कँवारी # माया | अर्थ-माया मे अनुरक्त शाक्त दुराचागी वैणाव की अपेक्षा अधिक अच्छा है। भक्तो को ऐसे वैष्णवो से अछग रहना चाहिए। निरमल हरि का नाव सों, के निरमल सुध भाई। के ले दूणी कालिमा, भावे सी मण सावण लाइ॥३॥ अर्थ-ईश्वर का नाम स्मरण मन को शुद्ध करता 5#। इसलिये नाम जप के द्वारा मन के भुद्ध करना चाहिए। ऐसा न करने से कालिमा (पाप्भाव) आर बढ़ती जायगी। चाहे सो मन साबुन क्यो न लगाओ। अलंकार-यमक | (४३) गुरुसिष हेरा कौ अंग ऐसा कोई ना मिले, हम को दे उपदेस। भौसागर में डूबता, कर गहि काठे केस ॥१। अर्य-ससार में सदगुरु को छोड़कर कोई ऐसा नहीं मिला जो हमे ठीक-ठीक उपदेश करें। जिसके उपदेश द्वारा भवसागर में डूदता व्यक्ति मुक्त हो जाय। जेसे आकंठ डूबने व्यक्ति को कोई चोटी पकड़कर पानी से बाहर खींच लेता है। तुलनीय- सतगुरु देय जगाब, मोहनींद जब उपशमे। तब कछु बनहि उपाय, कर्मचोर आवत करूँ। -एक जेन रचना अलंकार-रूपक | ऐसा कोई न मिले, हम की लेइ पिछानि। अपना करि किरपा करे, ले उतारे मैदानि॥२॥ अर्थ-ऐसा कोई नहीं मिलता है जो मेरे भीतर की सदबुद्धि को पहचानकर कृपापूर्वक अपना ले ओर भवसागर से वाहर कर ज्ञान के स्थिर और प्रशस्त मैदान मे स्थापित कर दे। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। ऐसा कोई ना मिले, राम भगति का गीत । तन मन सींपे प्रग ज्यूं, सुने बधिक का गीत ॥३॥ अर्थ-हिरण अपने प्राणो पर आए सकट को भूलकर वधिक का सगीत सुनता है। उत्ती प्रकार मनुष्य को सदगुरु की जरूरत है जो रामभक्ति का गीत सुनाए। भक्तिनाद द्रह्म (भक्ति सगीत) मे इतना तन्मय हो जाय कि उसे मृत्युभय न हो। अलंकार-उपमा | ऐसा कोई ना मिले, अपना घर देड्ट जरार। पंचूं लरिका पटिक करि, रहै राम त्यो लाइ॥४॥

साखी ३२५ अर्थ-ससार में ऐसा कोई नहीं है जो विषय भरे इस सासारिक घर को जला दे। छोड़ दे। ज्ञनेन्द्रियों के विषय अर्थात् पाँचो बच्चो को पटक कर राम से ठग जाय | अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। ऐसा कोई ना मिले, जासी रहिये लागि। ' सब जग जलता देखिये, अपणी अपर्णी आगि॥५॥ अर्थ-ससार मे सभी दुखी है। ऐसा कोई नहीं है जिससे लगकर रहा जा सके। सारे ससार के छोग अपनी-अपनी आग, अपने--अपने दुख से दुखी है। क्योकि सभी लोग विषयो मे फसे है और विषयाग्नि से जल रहे है। " तुलनीय--. चिता सॉपिनि काहि न खाया। को जग जाहि न व्यापी माया |-तुलसी | ऐसा कोई ना मिले, जासूँ कहूँ निसंक। जादूँ हिरदे की कहूँ, सो फिरि माडे कंक ॥६॥ शब्दार्थ-माडै & बनाता है। कक 5 बगुला। अर्थ-ससार मे सभी स्वार्थी है। ऐसा कोई नहीं मिलता है जिससे दिल की बात की जाय। जिससे बात कीजिए वही बगुला भगत जैसा वेश बनाए दीखता है। ऐसा कोई न मिले, सब विधि देद बताइ। सुंनि मंडल मै पुरिष एक, ताहि रहे लयो लाइ ॥७॥ शब्दार्थ-विधि ८ तरीका। ज्ञान। सुनिमडल 5 आकाश। सहयार। मै 5 मे। पुरिष 5 ब्रह्म। परमात्मा। ल्यी 5 ध्यान। लाइ 5 लगा। शून्य मडल में जो अविनाशी परमात्मा विराजमान है उससे ध्यान लग जाता। कोई ऐसा गुरु मिलता जो परमात्मा प्राप्ति की विधि बता देता | हम देखत जग जात है, जग देखत हम जाँह। हु ऐसा कोईना मिले, पकड़े छुड़ाबे बाँह ॥८॥ अर्थ-सत समझता है कि विषयो मे डूबा यह ससार नष्ट हो रहा है। ससार की दृष्टि मे विषयमुक्त फक्कड़ भक्त पागल है। नष्ट हो गया है। ऐसा कोई नहीं है जो ससार के प्राणियो का जो विषयो मे लगे है, विषयो की बॉह पकड़े है उन्हे बॉह पकड़कर छुड़ा दे। अर्थात् विषयो से मुक्ति दिला दे। तीनि सनेही बहु मिले, चोथे मिले न कोइ। सबे पियारे राम के, बैठे परवसि होड़ ॥९॥ अर्थ-तीन के बहुत से अर्थ है-तीन एषणाएँ (सुत, वित्त, लोक), तीन पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम) आदि। इन तीनो के प्रेमी बहुत से है। कितु इन तीनो मे मुक्ति चाहनेवाले नहीं मिलते है। सभी जीव राम प्यारे है। कितु सभी माया मे लिप्त है। ५ हक. के प्यारे को मुहावरा मानकर अर्थ होगा-सभी माया के वश में होकर मृत्यु के मुख मे जा रहे है। टिप्पणी-भगवान् स्ववश है। जीव परवश हैपरबस जीव स्ववस भगवता जीव अनेक एक श्रीकता ॥-तुलसी गोरखनाथ ने-दमड़ी, चमड़ी ममड़ी इन त्तीनो को त्यागने को कहा है। माया मिले महोदंती, कूड़े आखे यैन। कोई घायल बेध्या ना मिले साईं हंदा सैण ॥१०॥ शब्दार्थ-कूड़े > व्यर्थ। आंखे - अक्षर। बैन 5 वचन | बोल | हँदा + से। सैण < सकेत | अर्थ-माया मोहती है। जब कोई सतगुरु के शब्दो से घायढ, बिधा हुआ तथा सकेत प्राप्त

 करता है तो माया की बाते व्यर्थ जान पड़ती है। सारा सूरा बहु मिले, घाइल मिले न कोड ! घाइल ही घाइल मिले, तब राम भगति दिद्ध होइ॥११॥ अर्व-माया के बहादुर बहुत मिलते है। किंतु प्रेम मे घायल कोई नहीं मिलता है। घायल को ' ही घायल मिलता है| अर्थात् भक्त की जव भक्त से भेट होती है तो भक्ति दृढ़ होती है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | प्रेमी दूँढ़त मे फिरी, प्रेमी मिले न कोइ। प्रेमी की प्रेमी मिले, तब सब विष अमृत होइ ॥१ २॥ अर्थ-भगवद्येमी को खोजता फिरता हूँ, किंतु कोई भगवद्मेमी नहीं मिलता है। भगवद्मेमी उसी को मिलते है जो स्वय भगवद्येमी हो। भगवस्मेमी मिलने से ससार का वासनारूपी जहर भी अमृत हो जाता है। भावार्थ यह कि फिर विषयवासना से कुछ नुकसान नहीं होता उल्टे वह सहायक बन जाती है। प्रवृत्तियों के उलटने से वासना का फल भी उल्टा हो जाता है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | हम घर जाल्या आपणों, लिया मुराड़ा हाथि। अब घर जालौ तास का, जे चले हमारे साथि॥१ ३॥ अर्थ-साधक ने विषयासक्त अपना घर जला दिया। अब वह लुकाठी लिये घूम रहा है। जो उसके साथ चलेगा | उसका अनुयायी होगा। उसका भी वासनामूलक घर जल जायगा। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | (४४) हेत प्रीति सनेह को अंग कमोदर्नी जलहरि बसे, चंदा बसे अकासि। जो जाही का भावता, सो ताही के पास ॥१॥ अर्थ-भक्त और भगवान् की दूरी महत्त्वहीन है। असली चीज है प्रेम। प्रेम से भक्त और भगवान् की दूरी समाप्त हो जाती है। जैसे तालाब मे रहनेवाली कुमुदिनी आकाश कं चद्रमा को देखकर खिल उठती है। प्रेम असली तत्व है। प्रेम के कारण दूर की वस्तुएँ भी पास आ जाती है| यहाँ कुमुदिनी से मतरूब मूलाधार चक्र स्थित कमल से भी है। इसके पास ही कुडलिनी होती है जिसका जागरण ऊर्ध्व की ओर होता है। साधना की स्थिति को कुमुदिनी और चद्रमा का मिलन कहते है। क्योकि चद्रमा प्रभु आकाश (त्रह्मरध्र) > में स्थित है। तुलनीय(क) जल महि बसे कमोदणी, चद उबसइ अगासि | ज्यॉही ज्योही कइमनि बसइ, सउ त्यों ही कह पासि। -ढोलामारू रा दूहा। कबीर गुर बसे बनारसी, सिंध समंदों तीर ! विसार्था नहीं बीसरे, जै गुण होई सरीर ॥२॥ अर्थ-वाराणसी या शिवपुरी का अर्थ शून्य भी है। इस प्रकार अर्थ होगा कि गुरु प्रभु का वास ब्रह्मध्र में है और साधक शिष्य साधना के निम्न पीठ-सासारिक स्थिति (जो साधना का . प्रारभ भी है) मे रहता हे। यही वासनारूपी समुद्र के किनारे की धरती है। इसे आधार चक्र भी

साखी ३२७ कहते है। आधार चक्र गुरु के पास होता है (दे० डा नागेद्रनाथ उपाध्याय कृत नाथ और सत साहित्य) ऐसा साधक कभी गुरु को नहीं भूलता है। जो है जाका भावता, जदि तदि मिलसी आइ। जाकों तन मन सौपिया, सो कबदहूँ छौंड़ि न जाइ ॥ ३॥ अर्थ-जो जिसको अच्छा लगता है वह कभी न कभी अवश्य आ कर मिलेगा। जिसको तुम तन मन सौप दोगे वह तुम्हे कभी छोड़कर नहीं जायगा। स्वामी सेवक एक मत, मन ही मै मिलि जाइ। चतुराई रीझे नहीं, रीसे मन के भाई ॥४)॥ अर्व-भक्त और भगवान् एक मत होकर मन मे मिलते है। भगवान् की प्राप्ति का आधार चतुराई नहीं है। मन को भावपूर्वक समर्पित करने से भगवद्माप्ति होती है। (४५) सूरा तन को अंग काइर हुवा न छूटिये, कछु सूरातन साहि। भरम भलका दूरि करि, सुमिरण सेल सैंवाहि ॥१॥ शब्दार्व-काइर 5 कायर। सूरातन ८ शूरत्व। साहि 5 साधो। भलका 5 गॉसी। सेल भाला। सँबहि 5 सवाहन। चलाना। अर्थ-कायर होने या भागने से मुक्ति नहीं मिलेगी। मुक्ति वीरकर्म है। इसलिये वीरत्व साधो। भ्रम की जो गॉसी चित्त मे घुसी है उसे निकाछकर भगवत्त्मरणरूपी भाले का सवाहन (प्रवेश) कराओ। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | घूँणे पड़या न छुटियो, सुणि रे जीव अबूच्न। कबीर मरि मैदान मै, करि इंद्रयौँ सूँ झुझ ॥२॥ शब्दार्थ-घुण - कोने मे। मैदान 5 युद्धभूमि | अर्थ-ऐ अज्ञानी जीव! सुनो। कोने मे रहकर यमराज से नहीं बच सकते हो। विषयवासनारूपी यमराज, इद्रियाँ जिनकी सेना है उनसे युद्धभूमि मे युद्ध करो। तभी तुम्हे मुक्ति मिल सकती है। अर्थात् दृढ़तापूर्वक इद्रियो के विषयो की मार डालो। कबीर साईं सूरिवों, मन सूँ मोडे झूझ। पंच पयादा पाड़ि ले, दूरि करे सब दूज॥३॥ अर्थ-वही सच्चा बहादुर है जो मन से युद्ध करता है। पॉचो इन्द्रियो और उनके विषयो (रूप, रस, गध, स्पर्श, शब्द) को गिरा दे तथा अपने भीतर के द्वैतभाव को हटा कर ब्रह्म से अद्वैत हो। सूरा झूसे गिरद सूँ, इक दिसि सूर न होइ। कबीर यौं बिन सूरियों, भरा न कहिसी कोइ ४७ शब्दार्च-गिरद 5 चारो ओर। अर्थ-बहादुर भक्त चारो ओर जूझता है। सभी प्रकार के विषयो का नाश करता है। एकाघ विषय का नाश करने से कोई बहादुर नहीं होता है। चौतरफा युद्ध न करनेवाले योद्धा को कोई भला नहीं कहेगा॥

 कबीर आरणि पैसि करे, पीछें रहै सु सूर। _ साई सूँ साचा भया, रहसी सदा हजूर ॥५॥ अर्थ-सत कवीर कहते है कि ससाररूपी जगल मे प्रवेश कर जो पीछे रहता है वही बहादुर है | ऐसे ही व्यक्ति ईश्वर के साथ सच्चे रहते है। और ईश्वर इनकी सहायता करता है। गगन दमोमों दाजिया, पड़या निसाने घाव। खेत बुहासया सूरिवे, मुन्न मरणे का चाव ॥६॥ शब्दार्थ-दमामों > नक्कारा। धीसा। निसाने 5 एक प्रकार का बाजा। घाव > चोट। घात। चाव > इच्छा। चाह। अर्थ-आकाश यहा ब्रह्मरप्र मे धीसा (अनाहत नाद) वज रहा है। सदुगुरु के भब्दो की चोट खाकर माधक विषयो से लड़ने के लिये मैदान मे डट गया है। उसमे मरने की इच्छा या मुक्ति की इच्छा उत्पन्न हो गयी है। मरने की इच्छा का आर्थ है विषयो से मुक्ति की इच्छा। कवीर मेरे संसा को नहीं, हरि सैँ लागा हेत । कॉम क्रोध सूँ झूँझ्षणों, घोड़े मॉड्या खेत ॥७॥ शब्दार्थ-ससा 5 सशय | हेत > प्रेम | खेत > युद्धभूमि | अर्थ-भक्त कहता है कि मेरे मन मे अब किसी प्रकार का सशय नहीं है। प्रभुप्रेम के प्रति पूर्ण निषा हो गयी है। अब चौड़ी युद्धभूमि मे काम, क्रोध आदि से युद्ध होगा। सूरे सार सँवाहिया, पहस्या सहज संजोग। अब के ग्यॉन गयंद चढ़ि, खेत पड़न का जोग ॥८॥ शब्दार्थ-सार 5 लोहा। सँवाहिया + सभाला। सजोग 5 कवच | गयद 5 हाथी खेतपड़न < युद्धभूमि मे मृत्यु | अर्थ-साधक ने लोहा ले लिया है। उसने सहज साधना का कवच धारण कर लिया है। » अव वह ज्ञानरूपी हाथी पर है। इस बार युद्धभूमि मे मरने का योग बैठा है। विप्पणी-साधक युद्धभूमि मे तो मरना चाहता है। क्योकि गीता के अनुसार मरेगा तो स्वंग प्राप्त करेगा । जीने पर धरती का राज्य प्राप्त करेगा। सत कवीर अनन्‍्यत्र भी ज्ञान हाथी की चर्चा करते है। हाथी चढ़िया ज्ञान का सहज दुलीचा डार। स्वान रूप ससार है भूकन दे झख मार। अलंकार-सागरूपक | सूरा तबही के परषिये, लडे धर्णी के हेत। पुरिजा, पुरिजा है पड़े, तऊ न छाड्े खेत ॥९॥ शब्दार्थ-धर्णी - प्रभु। हेत - प्रेम। लिये। अर्थ-वहादुर की परीक्षा ईश्वर प्रेम के लिये युद्ध करने मे है। ससार के विषय या विषयी जीवन चाहे उसके शरीर को टुकड़ा-टुकड़ा कर दे तो भी वह युद्धक्षेत्र मे न भागे। अपनी साधना पर अटल रहे। | अलंकार-श्लेष | खेत न छड़े सूरिवाँ, झूझे दे दल माँहि। आसा जीवन मरण की, मन में आणै नाहि॥१०॥ अर्थ-बहादुर कभी मैदान नहीं छोड़ते है। वे सत्-असत् इन्द्रमूठक दल मे घुसकर मार करते है। वे कभी जीवन मरण की आशा नहीं करते। द्वन्द्रहित होकर लड़ते है। अब तौ झूझयां ही ब्णों, मूढ़ि चाल्यां घर दूरि। सिर साहिब की सौपता, सोच न कीजै सूरि॥११॥ 8 ।

साखी ३२९ अर्थ-अब तो विषयो से लड़ना ही होगा। मुड़कर भागने से काम नहीं चलेगा। क्योंकि वासनामूठक जिस घर को छोड़ा धा अब बहुत पीछे छूट गया है। हे बहादुर, भगवान को अपना अहकार (सिर) सौपने मे सोच-विचार मत करो। अब तो ऐसी डै पड़ी, मनका रुचित कीन्ह। मरनें कहा उराइये, हावि स्पेंधौरा लीन्ह ॥१२॥ अर्य-अब तो मन का रुचिकर विषय अर्थात् जो बहुत दिनो से मन चाह रहा था वही हो रहा है। अब सती हाथ मे सिधौरा लेकर पति के साथ सती होने के लिये तैयार है। जिस मरने ये जग हरे, सो मेरे आनंद। कब मरिंहूँ कब देखिहूँ, पूरन परमांनद ॥१ ३॥ अर्य-पृत्यु तो शरीर की होती है। आत्मा तो अमर है। इसलिये सत कहते है कि जिस मृत्यु अर्थात् वासनात्मक देह के छूटने से संसार डरता है वह मेरे लिये आनद का विषय है। मै (साधक) तो चाहता हूँ कि मॅरूँ (विषय मुक्त होकर) और पूर्ण प्रभु का साक्षात्कार करेँ। कायर बहुत पर्मोवही, बहकि न बोलें सूर। कॉम पड़यों ही जोणिहे, किसके मुख परि नूर ॥१४॥ शब्दार्थ-पमॉव्ही 5 वहकना। नूर ८ काति। चमक | अर्थ-कायर बहुत बोलता है। बहादुर कभी बहकर नही वोलते है। काम पड़ने पर ही समझ मे आता है कि उनके चेहरे पर काति रहती है या वे लज्जित होते है। तुलनीय-सूर समर करनी करहि, कहि न जनावहि आपु। विद्यमान रन पाइ रिपु, कायर कथहि प्रतापु ॥-तुलसी। अलंकार-लोकोक्ति | जाइ पूछी उस घाइलै, दिवस पीड निस जाग। बॉहणहार जणिहै, के जॉजै जिस छाग ॥१ ५॥ अर्थ-प्रभुप्रियतम के प्रेम मे घायल साधक से पूछो जो दिन रात उसके दर्द मे जागता है। प्रेम की पीड़ा को मारनेवाला समझता है या जिसे उसकी चोट लगी हो | अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। घाइल घूँपे गहि भरया, राख्या रहे न ओट। जतन किया जीबे नहीं, बर्णी मरण की चोट ॥१ ६॥ शब्दार्थ-गहिभरया < गह्लर | व्याकुल। बणी 5 बन गयी। लग गयी। अर्थ-प्रेम मे घायछ। जिसे शब्द ब्रह्म की चोट छग गयी है वह व्याकुल होकर घूमता है। वह किसी सासारिक वस्तु के सहारे नहीं रह सकता है। सासारिक यललो से तो वह कभी बच नहीं सकता। उसका जीवन तो प्रभु मिलन मे ही सुरक्षित है। ऊँचा बिरष अकासि फल, पंषेरू मूए घूर। बहुत सयॉने पचि रहे, फल निरमल परि दूरि॥१७॥ अर्थ-साधना का वृक्ष अत्यत ऊँचा है। इसका फल आकाश (सहमस्रार) मे लगता है। कितु जीवाल पक्षी साधना के अभाव मे इस फल तक न पहुँच कर दुखी होता है। जिन्होने चुद्धि-विद्या द्वारा इस तत्त्व को पाने की कोशिश की वे विफल रहे। क्योकि आकाश-फल असाधक की पहुँच के बाहर है। अलकार-रूपकातिशयोक्ति | दूरि भवा तो का भया, सिर दे नेड़ा होड। जद लग सिर सौंपे नहीं, कारिज सिधि न होइ॥१ ८॥

३३० कबीर समग्र अर्थ-जीवात्मा या साधक ईश्वर से दूर है तो क्या है? अहकार (सिर) को समाप्त कर नजदीक (नेड़ा) हो सकता है। जब तक सिरसीपे नहीं, कार्यसिद्धि नहीं हो सकती है। .' कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाँहि। ; सीस उतारे हावि करि, सो पैसे घर म्हि॥१९॥ शब्दार्थ-खाला > खाला का बहुप्रचलित अर्थ मौसी है। कितु डिगल कोश मे इसका अर्थ वेश्या /भी है। हाधिकरि सीस उतारना 5 अहम का विसर्जन। घर 5 साधना मदिर। अर्थव-भगवान् का घर तो प्रेम से भरा है। यहाँ प्रेमी ही प्रवेश पा सकते है। वे प्रेमी जो अपना अहकार छोड़ दे। अहकार छोड़ना ही सीस उतारना है। दिप्पणी-भगव्रेम और मौसी के घर के प्रेम मे मुख्य अतर अहकार का किया जा सकता है। मीसी के घर मे अहकार शायद चल जाय। कितु अहकार तो किसी प्रेम मे सभव नहीं। वेश्या का घर प्रेम का नहीं, काम और अर्थ का होता है। अत प्रेम से उसका विरोध ठीक बैठता है। कबीर निज घर प्रेम का, मारग अगम अगाप। सीस उतारि पग तलि घरै, तब निकटि प्रेम का स्वाद ॥ २०॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि अपनी साधना का घर प्रेम से भरा है। इस साधना का मार्ग अगम्य और अगाध है। जब कोई व्यक्ति अपने अहकार (सिर) को गुरुचरणो के नीचे रख देता है तभी उसे प्रेम के स्वाद की ४०४५8 ति होती है। प्रेम न खेती नींपजे, प्रेम न हाटि बिकाइ। राजा परजा जिस रुचै, लिर दे सो ले जाइ ॥२१॥ शब्दार्व-नीपजे 5 उपजना। हाटि 5 बाजार। अर्थ-प्रेमतत्त्व खेत मे नहीं उपजता। मतलब कि यह सामूहिक उत्पादन नहीं है। न तो इसे कोई उपजाता है, न बाजार मे बेचता है, न किसी के द्वारा यह खरीदा जा सकता है। यह हृदय के एकात का भाव है। जो अहकार समाप्त कर पाया जा सकता है। सिर उतारने या अहकार समाप्त करनेवाले मे भेदभाव नहीं है। वह चाहे राजा हो चाहे प्रजा। भक्ति का क्षेत्र समानता का क्षेत्र है। सीस काटि पासेंग दिया, जीव सरभरि लीन्ह। जाहि भावे सो आइ ल्यो, प्रेम हाट हँम कीन्ह ॥२२॥ शब्दार्थ-पासग + पसघा। सरभरि 5 बराबरी। अर्व-विषय वासना या माया तथा राम ये तराजू के दो पल्ले हैं। माया का पलड़ा भारी है। क्योकि ससार के अधिकतर विषय उसी मे है। छोग भी उसी के साथ है। जब साधक ने अपना सिर उतार कर (अहकार समाप्त कर) दूसरे पलड़े पर पासग रूप मे रख दिया तो दोनो पलड़े वराबर हो गये। अब इससे दूसरो का भी फायदा होगा। जिसकी इच्छा हो सत कबीर के बाजार मे आकर ठीक-ठीक तौला हुआ सौदा (भक्ति) ले छे। तुलनीय-महँग बड़ा गथ काम न आवै। सिर के मोल विकाय-भीखा || अलंकार-रूपक | सूर सीस उतारिया, छाड़ा तन की आस। आगे थे हरि मुलकिया, आबत देख्या दास॥२३॥ शब्दार्व-मुलकिया > प्रसन्न हुआ | * अर्थ-इस नश्वर शरीर की आशा छोड़कर शूर (भक्त) ने शीश उत्तार दिया। अह छोड़कर प्रेत शरण में चछा गया। फलत आगे बढ़कर प्रभु ने प्रसन्न होकर स्वागत किया। जब उन्होंने

साखी ३३१ दास (भक्त) को आते देखा। भगति राम की, नहि कायर का काम | सीस उत्तरे हाथि करि, सो लेसी हरि नाम ॥२४॥ शब्दार्थ-दुहेली + दुख। अर्थ-ईश्वर का भजन करना आसान काम नहीं है। भक्ति दुख से भरा कठोर प्रयल है। इसे कायर नहीं कर सकते है। जिसने अपना मान एकदम खत्म कर दिया है वही सच्चा भक्त हो सकता है। छुलनीय--सीस उतारे हाथ से, सहज आसिकी नाहि |-पलटू। भगति दूहेली राम की, जैसि खाड़े की धार। जे डोलै तो कि पड़े, नहीं तौ उतरे पार॥२५॥ मु अर्थ-भक्ति तलवार की धार के समान कठिन है। कष्कर है। उससे -अलग होने पर कटना पड़ता है वरना भवसागर पार हो जाता है। अलंकार-उपमा | भगति दुह्ेली राम की, जैसी अगनि की झाल। डाकि पड़े ते ऊबरे, दाधे कौतिगहार ॥२ ६॥ अर्थ-रामभक्ति अग्नि की ज्वाला के समान गर्मी पैदा करती है। जो कूद कर निकले वे बच गये | तमाशबीन जलहू गये। अलंकार--असगति। विरोधाभास। कबीर घोड़ा प्रेम का, चेतनि चढ़ि असवार। ग्यॉन षड़ग गहि काल सिरि, भली मचाई मार॥२७॥ अर्थ-चेतन साधक भगवसद्रेम के घोड़े पर सवार हुआ। उसने ज्ञान की तलवार हाथ मे ले ली और काल्देवता के सिर पर मारने लगा। मतढ्ब यह कि जिस साधक मै प्रेम और ज्ञान दोनो का समन्वय है।काल उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता है। अलंकार-सागरूपक | कबीर हीरा बाणजिया, महँगे मोल अपार। हाड़ गला मादी गली, सिर साटें ब्यौहार ॥२८॥ शब्दार्थ-हीरा - भक्ति । सात्तिक ज्ञान। साटै « सट्टा | अर्थ-सत कबीर ने महगे हीरे अर्थात् सात्तविक ज्ञाममूलक भक्ति का व्यापार किया। इसमे बड़ा परिश्रम पड़ा। साधनों के कारण हड्डियाँ गल कर मिट्टी हो गयीं। वह मिट्टी भी गल गयी। वह व्यापार सिर का स्ल करनेवाल्य है। भक्ति के लिये सिर देना होता है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। जेते तारे रैणि के, तेते बैरी मुझ्न । घड़ सूली सिर कंगुरै, त्तऊ न बिसारी तुन्न॥२९॥ 225 हे हा मे 9 है उतने ही मेरे दुश्मन है। मै तुझे कभी नहीं भूल चाहे मु चढ़ा कर मेरा शरीर कँगूरे पर क्यों नही लटका दिया जाय ? ससार मे प्रभु को छोड़ जा कोई मित्र नहीं है। ० अल जें हारथा तौ हरि सबा, जे जीत्या तो डाब। पारब्रह्म झूँ सेवता, जे सिर जाइ तो जाव ॥३०॥ कं सकल का दाँव ईश्वर से ही होना चाहिए। परब्रह्म की सेवा मे सिर भी देना पड़े

३३२ कबीर समग्र सिर सादे हरि सेविए, छाड़ि जीव की दोणि। जे सिर दीया हरि मिले, तद लगि होणि न जाणि॥३ १॥ शब्दार्थ-साटे & (स सत्रम) चढ़ावा। आहुति। दनि + स्वभाव | अर्थ-सिर चढ़ाकर भी भगवान् की भक्ति करनी चाहिए। विषयी मे जानेवाले जीवको स्वाभाव छोड़ देना चाहिए। सिर देने पर भी ईश्वर मिरू जायेँ तो किसी प्रकार की हनि नहीं है। टूटी दरत अकास ये, कोई न सके ज्वड़ घेल। साध सती अरु सूर का, अंणी ऊपिला खेल॥३२॥ शब्दार्ष-बरत < रस्सी। अणी - नोंक। ऊपिला 5 ऊपर | अर्थ-आकाश या निराधार मे लगे झूले की रस्सी टूट गयी। उसके कछ को साधु (भक्त), सती और वीर ये तीनही झेल सकते है। क्योकि इनमे भाले पर खेलने की क्षमता है। अलंकार-निदर्शना। ; सती धुकफारे सालि चढ़ी, सुनी रे मीत मतोन। लोग बटाऊ पलि गए, हम तुद्द रहे निदान ॥३३॥ अर्थ-साधक (सती) चिता पर चढ़कर पुकारता है। ऐ मसान मित्र, सुनो। रास्ते के पधिक सभी चले गए। अत मे केवल हम तुम बच रहे। अलंकार-रूपकातिभयोक्ति। सती दियारी सत किया, कारों सेज विछाइ। ले सूती पिव आपणा, घएँ दिसि अगनि लगाइ॥३४॥ अर्थ-सती हर समय प्रेमाग्नि मे जला करती है। उसने सत्यव्रत ठाना। काठ की शब्या बनाई। सबको छोड़ प्रिय परमात्मा को साथ ठेकर सो गयी। चारो दिशाओं से आग जला ली। अर्थ यह कि उसकी सासारिक वासनाएँ जल गयी। आध्यात्मिक प्रेम की व्याकुलदा का आरन आ। हु अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | सती सूरातन साहि करि, तन मन कीया पोण। दिया महौला पीव दूँ, तद मड़हद करें दकोंण ॥३ ५॥ शब्दार्व-सती + साधक । सूरातन 5 शूरत्व। साहिकरि 5 साधकर। घांण 5 घात। अर्थ-साधक के शूरत्व को समझकर गुरु ने साधकर तन-मन मे शब्दबाण का आघात . किया। फलत सारा माहौल प्रियतममय हो गया। तव मरघट भी साधक की प्रशसा करने लगा। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | सती जलन हूँ नीकली, पीद का सुमरि सनेह | सदबद सुन जीव निकल्या, भूलि गई सब देह ॥३६॥ अर्व-साधक प्रिय के विरह मे निकला। प्रिय परमात्मा का स्नेह स्परणकर जिस अनाहत शब्द को सुना उससे जीवभाव समाप्त हो गया। देहदशा भूछ गयी। अलकार-रूपकतिशयोक्ति। सती जलन छूँ नीकली, चित्त घरि एकबमेख। तन मन सीप्या पीव ऊँ, तब अंतर रही न रेख॥३७॥। अर्थ-साधक प्रिय प्रेम मे जलने को निकला। चित्त से विकारो को हटाकर केवल गिय का ध्यान था। तन-मन प्रिय को सौप दिया। तब आत्मा-परमात्मा, जीव और बह्म में जतर की रेखा भी नहीं रह गयी | बहा हि च् पड 3 अललीफनअलननलन

साखी ३३३ ही तोहि पूछों हे सी, जीवत क्यूँ न मराह। मूँव पीछे सत करे, जीवत क्यूँ न कराह॥३ ८॥ अर्प-सत कबीर पूछते है कि हे साधक, जीवित मृत्यु को क्यो नहीं ग्रहण करते ? जिस सत्य की साधना मरने पर चाहते हो उसे अभी क्यो नहीं करते हो? क्योकि शरीर के बाद कोई साधना नहीं हो सकती है। इस शरीर के भीतर ही मन से पर जाओ। अलेशर-सन्योक्ति | रूयीर प्रगट गम कहि, छोने राम न गाह।! फूस क जींड़ा दूरि करि, ज्यूँ बहुरि न लागे लाइट ॥३९॥ न शब्दार्थ-छॉने > प्रच्छन्न। फूस 5 तिनका। क 5 का। जोड़ा 5 समूह। लाइ 5 आगि। अर्थ-छिपकर राम कहने की अपेक्षा प्रत्यक्ष राम कहो। वासनारूपी तिनको के समूह को हटा दो। क्योकि तिनके नाशवान है। तुरन्त धधक उठते है। इन तिनको के हटने के बाद फिर कभी आग नहीं छंगेगी। वासना नहीं सत्ताएगी। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | कबीर हरि सबदूँ भजै, हरि रूँ भजे न कोइ । जद लग आस तरीर की, तब छग दास न होड़ ॥४०॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि भगवान् सब का ध्यान रखते है। कितु भगवान् का ध्यान कोई नहीं करता है। भगवान् को छोडकर जब तक शरीर की आशा बनी है तब तक दासनन्‍च नहीं आ सकता है। आप सवारध मेदर्नी, भगत सवारष दास। कबीर राम सवारथी, जिनि छाड़ी तन की आस ॥४१॥ शब्दार्थ-आप सवारथ - आत्मस्वार्थ। मेदनी 5 धरती। ससार। अर्थ-सारे ससार के छलोग आत्मस्वार्थी है। भक्त दासभाव का स्वार्थी है। कबीर को केवल राम का स्वार्थ है, जिसने शरीर की आशा छोड़ दी है। (४६) काल कौ अंग शूढे सुख को सुख कहे, मानत है मन मोद। खलक चदीणों काल का, कुछ मुख में कुछ गोद ॥१॥ शब्दार्य-खलक - ससार।| चबीणों & चने का जलपान| अर्प-लोग क्षणभगुर सुख को कहते है। मन मे प्रसन्न रहते है। ससार के सभी प्राणी कालदेवता के चने का जलपान है। कुछ उसके मुँह मे है। कुछ गोद मे है। ध्वनि यह कि गोद के बाठक भी काहछग्रस्त है। आजक काल्‍िक निस हमें, भारगि माल्हंता। काल सिचाणों नर घिड़ा, औप्रड़ आध्यंताँ॥२॥ , शब्दार्व-निसह 5 रात। माल्हता 5 मारेगा। मै 5 मे। मारगि > मार्ग मे। सिचाणों « बाज चिड़ा 5 चिड़िया। औझड़ 5 अवझट। शीघ्र। औच्यतों + अचानक | . अर्य-आजकल, रात या रास्ते मे कुारपी बाज मनुष्यखपी चिड़िया को शीघ्र अचानक मारेगा।

न शा ३३४ कबीर समग्र अलंकार-रूपक| ., काल सिहाणै यो खड़ा, जागि पियारो म्यंत। राम सनेही बाहिरा, तूँ क्यूँ सोवे नध्यंत ॥३ ॥ अर्थ-प्यारे भाई जागो। तुम्हारे सिरहाने काल खड़ा है। प्रेमी राम वाहर है। क्योकि तुम्हारे भीतर तो वासना भरी है। राम के निवास का स्थान कहाँ है? आश्चर्य है इस पर भी तुम निश्चित सो रहे हो। राम के बिना काल से तुम्हारी रक्षा कौन करेगा? सब जग सूता नींद भरे, संत न आवै नींद। काल खड़ा सिर ऊपरे, ज्यूँ तोरणि आया बींद ॥४॥ शब्दार्थ-तोरणि 5 तोरण | स्वागतद्वार। बींद > दूल्हा | अर्थ-वासनायुक्त ससार के सभी लोग अज्ञानरात्रि मे सो रहे है। कितु सतो को नींद नहीं आती है। क्योकि उन्हे ससार की नश्वरता का ज्ञान है। कालरूपी दूल्हा स्वागतद्वार पर खड़ा है। अब वह जीवात्मा दुल्हन को अपने साथ छे जायगा। अलंकार-उपमा | आज केहै हरि काल्हि भाजीगा, कार्डि कहै फिरि कात्हि। आज हीं काल्हि करंतडों, औसर जासी चालि ॥ ५॥ अर्थ-लोग कहते है कि हरि को कल भर्जूंगा। कह फिर कल कहते है। इसी-प्रकार आज कल करते-करते समय बीत जायगा। कबीर पल की सुधि नहीं, करे काल्हि का साज। काल अच्यंता झड़पसी, ज्यूँ तीतर को बाज ॥६॥ अर्थ-मनुष्य को एक क्षण का भी ज्ञान नही है। इस क्षण मे कया हो रहा है? कितु वह ५ के लिये जुटाता है। काल अचानक हमला कर देगा। जैसे तीतर पर बाज का हमला होता | अलंकार-उपमा। कबीर टग टग चोघतों, पल पल गई बिहाइ। जीव जेंजाल न छाड़ई, जम दिया दमामा आइ ॥७॥ शब्दार्थ-चोघतों & ऊँघता | अर्थ-सत कबीर कहते है कि अज्ञानरात्रि मे टकटक ऊँधता एक-एक क्षण बीत गया। कभी साधना नहीं की। जजाल से तो कभी मुक्ति मिलनेवाली नहीं है। कितु अब तो यम ने नगाड़ा बजा दिया है। जाना ही होगा। मैं अकेला ए दोह जणों, छेती नोहीं कौंड | जे जम आगै ऊबरी, तो जुरा पहूँती आइ॥८॥॥ अर्थ-जीव अकंला है और मृत्यु दो है। उनमे किसी प्रकार अछूतापन का भेद नहीं है। ऐसे मे जीव मृत्यु से मुक्त भी हो जाय तो वृद्धावस्था से मुक्त होना कठिन है। जरा और मरा के युग्म को ही मृत्यु कहते है। टिप्पणी-देवता अमर है। साथ ही अजर भी है। बारी बारी आवर्णी चले पियारे म्यंत। तेरी बारी रे जिया, नेडी आबे चित ॥९॥ 83 समय से सभी प्यारे मित्र जा रहे है। ऐ जीव, तुम्हारी बारी भी निकट +० रही है। रू ५

हा कण आए आह्ाडओआआ £ + आओ ४5४ ै35क-
जजलत>+>न+4०५० 24०५6...» साखी ३३५ . दीं की दायी लाकड़ी, ठींौढ़ा करे पुकार। मति बसि पड़ी लुद्दार के, जालै दूजी बार ॥१०॥ अर्थ-दावाग्नि या भावचक्र मे जल लकड़ीरूपी जीव खड़ा पुकारता है। मैं काल्चक्र -. €□हारे के हाथ न पड़ूँ। नही तो मुझे पुन जलना होगा। भवचक्र का कष्ट भोगना होगा। अलंकार--अन्येक्ति। जो ऊग्या सो आवबै, फूल्या सो कुमिलाइ। जो चिणियाँ सो ढहि पड़े, जो आया सो जाइ॥११॥ शब्दार्थ-ऑथवै - अस्त होना। चिणियों < चुना गया। अर्थ-जो उगा है, जन्मा है वह अस्त होगा। मरेगा। फूला कुम्हहाएगा। जो भवन चुना गया है वह ढहेगा। जो ससार मे आया है उसे जाना होगा। मर्त्यवछोक का यही नियम है। जो पहरया सो फाटिसी, नॉब धरणा सो जाइ। कबीर सोइ तत्त गहि, जो गुरि दिया बताइ ॥१ २॥ अर्थ-जो वस्त्र पहना है वह फटेगा। यह शरीर भी वस्त्र है। ससार भी वस्त्र है। सब नाशवान है। जिस रूप का नाम है उसका भी नाश होगा। हे साधक, गुरु ने जिस तत्त्व बताया है उसी को ग्रहण करो। निधड़क बैठा राम बिनु, चेतनि करे पुकार। यहु तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार ॥१ ३॥ अर्थ- हे जीव, रामनाम के बिना निश्चित बैठा है। चेतकर राम नाम को पुकारो। यह शरीर जल के बुलबुढे के समान है। नाश होते देर नहीं ढुगती है। अलंकार-रूपक || पोंणी केरा बुदबुदा, इसी हमारी जाति। एक दिनों छिप जॉहिगे, तारे ज्यूँ परभाति ॥१४॥ अर्व-मनुष्य जाति बुलबुला और तारो जैसी है। एक दिन सब का नाश हो जायगा। अलंकार-उपमा | कबीर यहु जग कुछ नहीं, षिन घारा घिन मीठ। काल्हि जु बैठा माड़िया, आज नसौंणों दीठ ॥१ ५॥ अर्थ-यह ससार और कुछ नहीं, थोड़ा मीठा और थोड़ा खारा है। कल जो मडिंत था उसे आज नष्ट देखते है। कबीर मंदिर आपणै, नित उठि करती आलि। मड़हट देष्यों इरपती, चौंडे दीन्हीं जालि ॥१ ६॥ श्टार्थ-मदिर 5 घर। देह। आहि 5 आलोक्ति। अर्व-व्यक्ति अपने शरीर और घर मदिर जैसा नित सजाता, चमकाता और आलोकित करता है। मरघट का नाम सुन के डरता है। कितु एक विस्तृत मैदान मे जला दिया जाता है। | अलंकार-अन्योक्ति | मंदिर मौहि झबूकती, दीवा कैसी जोति। हंस बटाऊ चलि गया, काढ़ों घर की छोति॥१७ ॥ जज + चमकती। दीवा 5 दीपक। दीप। बटाऊ +- बटोही। छांति - छूत। अर्थ-गृह मे दीपक के समान देदीप्यमान शरीर चमकता था। कितु जीवात्मारूपी बेटोही के निकलते ही सभी छोग इस शरीर को अपवित्र समझते है। घर से निकाल हेने *। हा

३३६ कबीर समग्र हस बटाऊ मे रूपक। ऊँचा मंदर धौलहर, माटी घित्री पौदि। एक राम के नाव बिन, जम पाड़ैगा रोलि ॥१ ८॥ अर्थ-ऊँचे भवन जिनमे चित्रकारी के दरवाजे सजे थे। ऊँचाई और चमक के बावजूद एक राम नाम के अभाव मे यमराज का हमला (रौलि) हो गया। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | कबीर कहा गरबियो, काल गहे कर केस। नो जाने कहाँ मारिसी, के घर के परदेश ॥१ ९॥ अर्थ--सत कबीर कहते है कि कया गर्व करते हो? सब के बालो को तो काल ने पकड़ लिया है। सभी काल की मुट्ठी मे है। पता नहीं मृत्यु घर मे होगी या परदेश मे। मृत्यु की जगह निर्धारित नहीं होती है। कबीर जंन्र न बाजई दूटि गए सब तार। जंज विदचारा क्या करे, चले बजावणहार॥२०॥ अर्थ--तत कबीर कहते है कि यह शरीर यत्र अब नहीं बजेगा। इसके सारे तार टूट गये। नसे, नाड़ियाँ सब बेकार हो गयीं। बेचारा यत्र क्या करे जब वजानेवाले ने इस शरीर से विदाई लेली। डिप्पणी-गीता के १८वे अध्याय के ६१वें श्लोक मे भरीर को यत्र कहा है जिसे हृदय मे स्थित भगवान चढाते है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। पंथी फभा पंच सिरि, बुगचा बॉध्या पूठि। मरणों मृष्ठ आगे खड़ा, जीवन का सब झूठ ॥२१॥ शब्दार्थ-प्रथी 5 जीवात्मा। ऊभा > खड़ा। बुगचा >गॉठरी। कर्मों की गाँठरी। पूठि पृष्ठ या पुष्ट। अर्ध-जीवात्मा अब चलने की स्थिति मे है। जाने को प्रस्तुत है। उसकी पीठ पर कर्मो की गँठरी बँथी है। इसीलिये फिर आना होगा। मृत्यु ही सत्य है और सारा जीवन झूठा है। * थहु जिव आया दूर थै, अजी भी जासी दूरि। विच के दासे रमि रह्मा, काल रहा सर पूरि ॥२२॥ अर्थ-यह जीवात्मा दूर से आयी है। आज भी दूर जायगी। बीच मे रमी है। कितु काल के बाणो से विद्ध है। राम छद्वा तिनि कहि लिया, जुरा पहुँती आइ। मंदिर लगे द्वार पै, तब कुछ काठणों न जाइ ॥२३॥ अर्थ-जिसने समय रहते राम कहा उसने कह लिया। जब वृद्धावस्था (जरा) आयी तो मदिर (देह) के सारे दरवाजे जरा आग से घिर गये। अब कुछ नहीं कहा जा सकता है। न तो कुछ काढ़ा जा सकता है। अलंकार>दूयत। दरियोँ बीती बठ गया, बरन पलट्या और। बिगड़ी झूत न बहुड़ै, कर छिटकक्यों कत ठौर ॥२४॥ अर्प-समय बीता। बल भी घट गया। भरीर का रग बदल गया। जो वात बिगड़ गयी वह

हे साखी ३३७ पुन ठीक नहीं हो सकती है। जो चीज हाथ से छूट गयी वह पुन हाथ मे नहीं आ सकती। वृद्धावस्था मे वस्तु पकड़ रखने की क्षमता भी समाप्त हो गयी है। बरिया बीती बल गया, अरु बुरा कमाया। हरि जिन छड़े हाथ थे, दिन नेड़ा आया॥२ ५॥ अर्प-समय बीत गया। बल घट गया। अब तक तुमने बुरे कर्म ही किये। अब ईश्वर को पकड़ो | मृत्यु का समय नजदीक आ गया है। ऐसे मे ईश्वर ही सहायक है। उन्हे मत छोड़ो | कबीर हरि सूँ हेत करि, कूड़ै चित्त न लाव। द्रध्या बार घटीक के, तापसु किती एक आब ॥२६॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि हरि से प्रेम करो। वासना के कूड़ो मे चित्त मत ढुगाओ। जो पशु खटीक के द्वार पर बधा है उसकी आयु बहुत कम होती है। इसी प्रकार ईश्वर से प्रेम न करनेवाले की आयु बहुत कम होती है। अलंकार-दृध्यत | विष के बन में घर किया, सरप रहे लपटाइ। तायै जियरे डरे गद्मा, जागत रेणि बिहाइ ॥२७॥ अर्थ-मैने विषय वन मे जहाँ षडविकारो (काम, क्रोध, छोभ, मोह मद, मत्सर) के सर्प लिपटे है, घर बनाया है। इससे हर समय डर बना रहता है। जागते ही रात बीतती है। ठुलनीय-डासत की सब बीति गयो निसि कबहूँ न नाथ नींद भर सोओ |-विनयपत्रिका। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। कबीर सब सुख राम है, और दुखों की रासि। सुर नर मुनियर असुर सब, पड़े काल की पासि॥२८॥ मा अर्व-सत कबीर कहते है कि रामभजन मे ही सारा सुख है और सभी दुख के भडार है। देवता, नर, मुनिवर, असुर सभी काल के बधन मे पड़े रहते है। * काथी काया मन अधिर, बिर थिर कॉम करंत। ज्यूँ ज्यूं नर निधड़क फिरे, त्यूँ त्यूँ काल हसंत ॥२९॥ शब्दार्व-काची - कच्चा | अर्व-यह शरीर कच्चा है। अत नाशवान है। मन अस्थिर है। चचल है। फिर भी हमारे सारे कार्य इस जीवन को स्थिर समझ कर होते है। आदमी निर्भय घूमता है। उसे निर्भय घूमते न कालदेवता हँसते है। हँसते इसलिये है कि मूर्ख मनुष्य अपने नाश पर ध्यान नहीं दे रहा | अलंकार-विरोधाभास | रोबणहारे भी मुए, मुए जलॉवणहार। हा हा करते ते मुए, कासनि करों पुकार॥३०॥ अर्व-जो दुख से रोते थे वे भी मरे। दुख देनेवाले भी मरे। वे सभी हाहाकार करते मर ५ रु जब सभी मरणधर्मा है तो यह मरणधर्मा व्यक्ति अपने दुख से मुक्ति के लिये किससे क ्ट जिनि हम जाए ते मुए, इम भी चालणहार। जे हमको आगे मिले, तिन भी बंध्या मार॥३१॥ अर्थ-जिन्होने हमे पैदा किया वे मरे। हमे भी चलना है। मरना है। हमारी भावी पीढ़ी भी मरणशील है।

 (४७) सजीवनी कौ अंग जहाँ जुरा मरण व्यापै नहीं, मुवा न सुणिये कोइ । चलि कबीर तिहि देसड़ै, जहाँ बैद विधाता होइ ॥१॥ अर्थ-जिस देश मे स्वय ईश्वर वैद्य हैं। हे साधक, तुम वहीं चलो। जहाँ बुढ़ापा, मृत्यु आदि नहीं है। जहाँ किसी ने मृत्यु का नाम भी नहीं सुना है। दिप्पणी-भक्त इस स्थान को 'अमरलोक' कहते है। आवागमन के चक्र से मुक्त अवस्था। कबीर जोगी बनि बस्या, षणि खाये कद मूल। नो जाणी किस जड़ी ये, अमर भए असचूल॥२॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि योगी वन में बसता है। कदमूल खोद कर खाता है। पता नहीं किस जड़ी से अमर हो जाता है। भक्ति ही सजीवनी बूटी है। कबीर हरि चरणो चल्या, माया मोह ये टूटि। गगन मंडल आसण किया, काल गया सिर कूटि ॥३॥ अर्थ-सत कबीर ने प्रभुचरणो मे ध्यान छूगाया। माया-मोह से उसका सबंध टूट गया। सहसार मे ध्यान लगाया। यह देखकर काल सिर पटकने लगा। क्योकि सहस्ार में स्थित योगी को काल कुछ नहीं बिगाड़ सकता है। यह मन पटकि पछाड़ि है, सब आपा मिटि जाइ। पगलु डै पिव पिव करे, पीछी, काल न खाइ ॥४॥ अर्थ-इस मन को पटक पछाड़ो। अहभाव को मिटा दो। वासना मे दौड़नेवाले मन के पैर तोड़ दो। हर समय नाम स्मरण करो। ऐसे व्यक्ति को काह कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है। कबीर मन तीया किया, बिरह लाइ घरघषोंन। घित थरणू में चुमि रह्या, तहों नहीं काल का पाण॥५॥ शब्दार्थ-घरसॉन 5 मसकला। शान चढानेवाला यत्र। पाण 5 परिणति। अर्थ-मैने विरहरूपी मसकले को छाकर मन को शान धराकर तीखा (तीक्ष्ण) किया। फलत मेरा चित्त प्रभुपद मे चुभ गया। तल्लींन हो गया है। वहाँ काल की परिणति नहीं है। अलंकार-रूपक | तरबर तास बिलांबिए, बारह मास फलंत। सीतल छाया गहर फल, पंषी केलि करंत ॥६॥ अर्थ-सनातन प्रभु वृक्ष के पास ठहरिए। यह पेड़ सदा फलता है। कभी निष्फल नहीं रहता है। इसकी छाया शीतल होती है। जहाँ ससार के विविध तापो का असर नहीं होता है। इसका फल भी गभीर होता है। यंहॉ सदा मुक्तात्मारूपी पक्षी क्रीड़ा करता रहता है। तुलनीय-द्वा सुपर्णा सखाया समान वृक्ष परिषस्व जाते। ऋग० १/१६४/४६ अलंकार-अन्योक्ति | हि दाता तरबर दया फल, उपगारी जीवंत। | पंषा चले दिसावरों, बिरघा सुफल फलंत॥७॥ शब्दार्थ-दिसावरों - विदेश | अर्थ-सद्गुरु दयारूपी फल देनेवाले वृक्ष के समान है। वे अत्यत उपकारी है। जब जीवात्मा विषयो के देश मे चली जाती है तब भी वे सुदर फल देते है अर्थात् शिष्य का

साखी ३३९ कल्याण करते है। अलेकार-अन्योक्ति। (४८) अपारिष को अंग पाइ पदारथ पेलि करि, कंकर लीया हावि। जोड़ी बिछुटी हंस की, पड्या बगों के साथि॥१॥ शब्दार्थ-पाइ - प्राप्त। पदारथ 5 पदार्थ। परमात्मा। पेलि > छोड़कर। ककर 5 माया और नाशवान् वस्तुएँ। हस > आत्मा-परमाला। बगाँ 5 बगुला। आकर्षक लगने वाला नाशवानू तत्त्व। इंद्रियाँ और उनके विषय। अर्थ-परख हीन या अज्ञानी व्यक्ति ने हृदय मे, सहज रूप से प्राप्त परमात्मा रूपी पदार्थ को छोड़कर माया की नाशवान् विषय वस्तुओ को उठा लिया है। हस्तगत किया है। फलत आत्मा और परमात्मा जो हस है। हस के समान विवेकी है। सदा ही ज्ञान सरोवर मे तैरते है। उनका साथ छूट गया। अब जज्ञानी व्यक्ति का, बुगलो का। विषयो का। विषयासक्त इद्धियो और व्यक्तियो का साथ हो गया है। टिप्पणी-दो हंस "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया" (मुडक० ३१९) की ओर सकेत है। एक अचंभा देखिया, हीरा हाटि बिकाई। परिषणहारे बाहिरा, कौड़ी बदले जाइ ॥२॥ शब्दार्थ-हीरा 5 भगवद् भक्ति। परमात्मा। हाटि 5 ससार मे। परिषणहारे > ज्ञानी | भक्त | बाहिरा > बाहर | अनुपस्थित | कौड़ी 5 नाशवान् ससारिक सुख। इद्रियो के विषय। अर्थ-एक आश्चर्य देखा। ससार मे हीरा बिक रहा है। मतलब कि भगवान् और भक्ति को बिना समर्पण के खरीदने, प्राप्त करने की कोशिश हो रही है। यह सब इसलिये हो रहा है कि ज्ञानी भक्तो का अभाव है। असल भक्त अनुपस्थित है। असल भक्त के अभाव मे लोग भक्ति के बदले मे नाशवान् सासारिक सुख खरीद रहे है। प्राप्त कर रहे है। कबीर गुदड़ी बीषरी, सौदा गया बिकाइ। खोटा बॉध्यों गाँठड़ी, इब कुछ लिया न जाह ॥३॥ शब्दार्थ-गुदड़ी + शरीर या जीवन। बीषरी 5 बिखर गई। नष्ट हो गयी। सौदा > परमात्मा को प्राप्त करने के साधन। भक्ति | खोटा 5 विषयासक्ति। गाँठड़ी + सचित कर्म। अर्थ-सत कबीर कहते है कि शरीर या जीवन नष्ट हो गया है। परमात्मा की भक्ति करने के अवसर बीत चुके है। मनुष्य जीवन भर विषयासक्त रहा। विषयो की ही गठरी बॉधता रहा। अब कुछ करने का अवसर नही रह गया है। अलेकार-रूपकातिशयोक्ति | पैडे मोती बिखत्या, अंघा निकस्या आइ। जोति बिनों जगदीस की, जगत उलंघ्या जाइ॥४॥ शब्दार्य-पैडै - रास्ते मे। कदम मे। अध > अज्ञानी। जोति 5 ज्ञान। कृपा।

३४० कबीर समग्र अर्थ-सत कबीर कहते है कि परमात्मा या गुरु की कृपा रूपी मोती रास्ते मे या मनुष्य के कदमो मे पड़ा है। कितु अज्ञानी व्यक्ति को भगवान् का ज्ञान या कृपा के विना कुछ दिखाई नही पड़ता है। जगत मे आकर परमात्मा की कृपा रूपी मोती का उल्लघन, उपेक्षा कर वह ससार को व्यर्थ बनाए जा रहा है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | कबीर यहु जग अंघला, जैसी अंधी गाइ। बछा था सो मरि गया, ऊभी चॉम चटाइ ॥५॥ ७३७॥ #ब्दार्व-अभी - खड़ी | हे अर्थ-सत कबीर कहते है कि ससार के लोग अधे है। अज्ञानी है। अधी गाय के समान है। जिसका बच्चा मर गया। कितु खड़ी होकर उसका चाम चाटती है। बच्चे का चाम चाट उसके जीवित रहने के भ्रम मे रहती है। टिप्पणी-गाय यहाँ विषयासक्त जीवन का प्रतीक है। विषयासक्त जीव भगवतू सत्ता शून्य विषयो को चाटता रहता है। विषयासक्त रहता है। विषयो से सतुध्ट होना चाहता है। (४९) पारिष को अंग जब गुण झूँ गाहक मिलै, तब गुण लाख बिकाह। जब गुण को गाहक नही, तब कौड़ी बदले जाइ ॥१॥ अर्थ-जब गुणो का पारखी मिलता है तो गुण लाखो मे बिकता है। पारखी ग्राहक के न रहने पर वही कीड़ी द्वारा बदला जाता है। अलंकार-अन्योक्ति | कबीर लहरि समंद को, मोती बिखरे आह। वगुला मंत्नन जोणई, हंस चुणे चुणि खाइ॥२॥ 5 अर्व-सत कबीर कहते है कि समुद्र की लहरो ने मोती फैला दिया। ससार मे अच्छी चीजे फैली हैं। कितु विषयी पुरुष उनका महत्त्व नही जानता। बगुलारूपी विषयी मोती को मझन या मादन फेन समझकर उन्हे छोड़ देता है। कितु मुक्तात्मा हस उसे चुन चुन कर खाता है। अलंकार-अन्योक्ति | हरि हीराजन जौहरी, ले ले मोडिय हाटि। जबर मिलैंगा पारिषु, तब हीरों की सादि ॥३॥ अर्व-प्रभु हीरा है। भक्त जौहरी है। हाट मे विक्रय के लिये बैठा है। जब पारखी मिलेगे तब हीरे का सझ् होगा। पारखी ही प्रभुभक्त होगे। अलेकार-रूपक |

साखा हक (५०) उपजणि को अंग नांव न जॉणों गाँव का, मारगि लागा जाँऊँ। काल्डि जु काटा भाजिसी, पहिली क्यों न खड़ाऊँ॥१॥ अर्थ-साधना के क्षेत्र मे अपरिचय है। केवल रास्ते पर चल रहा हूँ। जो कॉटा कल गड़ैगा उसके लिये पहले ही खड़ाऊँ क्यो नहीं पहन लेता? मतलब कि साधना समय रहते करनी चाहिए। सीक भई संसार ये, चले जु साईं पास। अविनासी मोहि ले चल्या, पुरई मेरी आस ॥२॥ अर्थ-ससार मे पूरी शिक्षा मिल गयी। अब मै प्रिय प्रभु के पास जा रहा हूँ। अविनाशी सदगुरु मुझे लिये जा रहे है। मेरी आशा.पूरी हो गयी है। इंद्रलोक अचरिज भया, ब्रह्मा पडया बिचार। कबीर चात्या राम पैं, कोतिगहार अपार ॥३॥ अर्थ-सत कबीर को राम के पास जाते देख इन्द्रलोक आश्चर्यचकित रह गया। ब्रह्मा विचार मे पड़ गये। अपार कौतुक हुआ। इसलिये कि जिस राम को मुनि महात्मा नहीं पा सके उसे कबीर कैसे पा गया। ऊँचा चढ़ि असमान रू, मेरु ऊलंघे ऊड़ि। पसू पंषेरू जीव जंत, सब रहे मेर में बूड़ि ॥४॥ अर्व-'मेरा' का भाव महत्त्वपूर्ण है। यह या ममता उड़कर-आकाश पहुँचती है। सुमेरु पर्वत को भी लॉघ जाती है। मनुष्य ही नही पशु पक्षी आदि जीवो मे भी ममता का भाव इतना प्रबल है कि सभी उसी मे डूब रहे है। सद पोणी पाताल का, काढ़ि कबीरा पीव। बासी एावस पड़ि मुए, विये बिलंबे जीव ॥५॥ शब्दार्-सद - शुद्ध। स्वच्छ। पाताल > मूलाधार चक्र। अर्थ-सत कबीर कहते है कि ऐ साधक, पाताल का स्वच्छ जल पीओ। क्योकि अन्यत्र जल स्वच्छ नही है। पाताल का अर्थ है मूलाधार जहाँ कुडलिनी है। कुडलिनी को ऊपर की ओर जागृत करना स्वच्छ ताजा जल पीना है। बासी पावस का अर्थ विषयो से भरा गदा जल। जीव व्यर्थ विषयो मे भटक रहा है। अलंकार--अन्यीक्ति | कबीर सुपिनें हरि मिल्या, सूतों लिया जगाह। आधषि न मीचो डरपता, मति सुपिनों दै जाइ ॥६॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि प्रभु से सपने मे भेट हुई। उन्होने अज्ञानांधकार के स्वप्न से जगा दिया। अब आँखे बद करने से डरता हूँ। कही सब स्वप्न न हो जाय | पुन अज्ञान मे न पड़ जाऊँ। इसलिये ज्ञान नेत्र खुले है। गोब्यंदक के गुण बहुत है, लिखे जु हिरदै मोहि। डरता पॉणी ना पिऊँ, मति वै घोंये जोहि॥७॥ अर्थ-भगवान् के बहुत से गुण है जो हृदय मे लिखे है। पानी पीने से भी डरता हूँ कि

 कहीं गोविंद गुण के लिखे अक्षर हृदय से मिट न जायें। कबीर अब तो ऐसा भया, निरमोलिक निज नाऊँ। पहली काच कबीर था, फिरता ठाँवे ठाऊँ॥८॥ शब्दार्थ-निरमोलिक ८ अमूल्य | काच 5 कच्चा। कॉच | कथीर 5 रॉगा | अर्थ-सत कबीर कहते है कि पहले मै कच्चा था। कॉच और रॉगे जैसा मूल्यहीन था। व्यर्थ इधर-उधर भटकता फिरता था। गुरु कृपा से, साधना से अब अमूल्य हो गया हूँ। अब मैने अपने नाम को सार्थक कर दिया है। भी समंद विष जल भरया, मन नहीं बाँधे धीर। सबल सनेही हरि मिले, तब उतरे पारि कबीर ॥९॥ अर्थ-यह ससार-सागर विष से भरा है। मन मे विश्वास नहीं हे कि इसे पार कर सकूँगा। जब भगवान् जैसा प्रवल प्रेमी मिलेगा तभी पार उतर जा सकता हूँ। भला सुहेला ऊतरधा, पूरा मेरा भाग। राम नाव नोका गह्मा, तब पाणी पंक न लाग ॥१ ०] अर्थ-मै बड़ा भाग्यशाली हूँ। मेरा भाग्यपूर्ण है। ससारसागर से अच्छी तरह पार हो गया। रामनामरूपी नीका को पकड़ा तो ससार का वासना कीचड़ छू भी न सका। क्योकि मैं उस कीचड़ से दूर रहा। कबीर केसी की दया, संसा घाल्या खोड़ | जे दिन गए भगति बिन, ते दिन साले मोहि ॥१ १॥ अर्थ-केशव की कृपा से मेरे सारे सशय नष्ट हो गये। मुझे प्रभु मे पूर्ण विश्वास हो गया। जितने दिन भगवत्नक्ति के बीते वे सभी दुख के दिन थे। कबीर जाधण जाइया, आगे मिल्या अंध। ले चाल्या घर आपणै, भारी खाया संच ॥१२॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि मै सासारिक लोगो से मॉगने के लिये जा रहा था। कितु आगे प्रभु मिल गये। वे पूर्ण है। वे मुझे अपने धाम (घर) ले गये। वहाँ उस पूर्ण ने मुझे सचित भारी भडार खाने को दे दिया। मेरी इच्छा पूरी हो गयी। टिप्पणी-सचय की इच्छा मे ही याचने की प्रवृत्ति है। सचय के पीछे अभाव की अनुभूति है। ईश्वर को प्राप्त मनुष्यके अभाव की अनुभूति समाप्त हो जाती है। (५१) दया निरबेरता को अंग कवीर दरिया प्रजल्या, दाझे जल थल झोल । बस नहीं गोपाल सौ, बिनसे रतन अमोल ॥१॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि ससार सागर मे विषयो की आग लगी है। जल, थल, झील आदि सभी जल रहे है।इस आग का प्रभाव केवल भगवान् और उनके भक्तो पर नहीं है। वरना अमूल्य रल आत्मा का नाश हो जाता है। कितु सारी आग के बावजूद चेतन आत्मा सुरक्षित है। अलंकार-रूपकातिशयीक्ति। ऊँनमि बिआई दादली, बर्सण लगे अंगार। उठिक कबीरा धाह दे, दाझत है संसार ॥२॥

कबीर, इस भवज्वान अलंकार-उन्यो्ति , विरोधाभास सब दुखी, 2० <
बलवान) (िषघयारिन से जल सोई नारि सुलषणी अर्थ-ससार नदी जिसका कोई भौतिक साधक ही शूल सकता है। दी के पार झूला है। यहाँ प्रभु जो अद्वित अवस्था को पहुँच चुका आधार न , सम्पन्न (सनातन) हो जाता हैं। इकार-अच्येक्ति । अलंकार न देखो कोई । धीरज होई ४३) रहे है। कोई सुखी नहीं है। जहाँ भक्ति पैर गहरा होगा सुर्खे प्राण दे दूँगा और , लित प्रति घुलण जाई 80) स्थान और वह स्थान झूले के दो अर्थ आधार हो। ऐसी जगह भर के साथ सौभाग्य३ है। फिर वह झूलना नित्य

कबीर समग्र (५३) कस्तूरियाँ मृग की अंग कस्तूरी कुंडलि बसे, मृग टूँढ़े बन मोहि। ऐसे घटि घटि राम है, दूनियाँ देखे नाँहि॥१॥ अर्थ-यहाँ अतर और बाह्य साधना के अतर का सकेत है। जैसे हिरण की नाभि मे कस्तूरी होती है। कितु वह भ्रमवश उसे वन मे खोजता है। वैसे ही भगवान् मनुष्य के भीतर हैं कितु वह उसे बाहरी दुनिया मे खोजता है। बाह्य साधनाओ मे लगा रहता है। अलंकार--उपमा | कोइ एक देखे संत जन, जाके पॉचू हाथि। जाके पॉँधूं बस नहीं, ता हरि संग न साधि ॥२॥ अर्थ-प्रभु को अपने भीतर वही देख पाता है, जिसकी पॉचो इद्रियाँ अपने वश मे हो। जिनका इद्रियो पर अधिकार नहीं है उनका प्रभु से सग साथ नहीं हो सकता। क्योकि प्रभु प्राप्ति के लिये इद्रिय रा का निरोध आवश्यक है। साई तन में बसे, भ्रम्यो न जाणे तास। कस्तूरी के पृग ज्यूँ, फिर फिर सूपे घास ॥३॥ अर्थ-वह प्रभु शरीर मे बसता है। कितु इस तथ्य को लोग भ्रमवश नहीं जानते है। जैसे कस्तूरी रखनेवाला मृग अपनी नाभि न देखकर वार बार घास सूँघता है। क्योकि सुगन्ध उसकी नाभि से निकठकर घास पर गिरती है। विप्पणी-कस्तूरी आत्मशक्ति और घास ससार की तुच्छता को सकेतित है। कबीर खोजी राम का, गया जु सिंघल दीप। राम तो घट भीतर रमि रह्मया, जो आबै परतीत ॥४॥ अर्थ-सत्त कबीर कहते है कि साधक राम की खोज मे सिघलद्वीप तक गया। कितु राम नहीं मिले। जब उसे विश्वास हुआ तो राम हृदय में ही दीख पड़े। टिप्पणी-पुरा काल को योगियो मे सिद्धि के लिये सिहलद्वीप जाने की प्रथा थी। पदमावत का रलसेन भी सिहलद्वीप जाता है। घटि बधि कही न देखिए, ब्रह्म रह्मा भरपूरि। सिनि जान्या तिनि निकट है, दूरि कहे थे दूरि ॥५॥ अर्थ-ईश्वर सर्वत्र समान रूप से विद्यमान है। ऐसा नहीं कि कहीं कम है और कहीं ज्यादा है। जाननेवाले के निकट है। अज्ञानियो के लिये दूर है। मैं जाण्यों हरि दूरि है, हरि रह्मा सकल भरपूरि। आप पिछांणै बाहिरा, नेड़ा की ये दूरि॥६॥ अर्थ-हरि तो सर्वत्र मौजूद है। मै अज्ञानवश उसे दूर समझता था। जिस व्यक्ति को आत्मतत्त्व की पहचान या ज्ञान नहीं है उसके लिये प्रभु निकट रहकर भी दूर है। क्योंकि प्रभु तो मूलत परप्रत्यय का नही आतप्रत्य का विषय है। तिणके आल्हे राम है, परदत मेरें भांइ। सतगुर मिलि परचा भया, तब हरि पाया घट माँहि ॥७॥ शब्दार्च--ओल्है >पर्दा ।भाइ - भाव। जैसा।

साखी ३४५ अर्थ-पर्वत जैसा विराट् प्रभु एक तिनके के पर्दे मे रहता है। क्योकि वह अत्यत विराट् और अत्यत सूक्ष्म है। सदगुरु की कृपा से प्रभु से परिचय हुआ। तब पता रुगा कि विराट सृष्टि को चलानेवाला प्रभु हमारे शरीर मे विद्यमान है। राम नाम तिहूँ लोक मैं, सकलहु रहा भरपूरि। यह चतुराई जछु जलि, खोजत डोलें दूरि॥८॥ अर्व-राम तो सारे विश्व (तीनो लोको) मे फैले है। कितु वे चतुराई से नहीं मिलते है। क्योकि बुद्धिमान ज्ञानी उनको अपने भीतर न खोजकर शास्त्रो की ऊँची उड़ानो मे देखता है। ठुलनीय-सर्वत श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्यतिष्ठति ।-गीता १३/१३ अर्थ-जैसे आँखो मे पुतलियाँ है तो छोटी कितु वही देखने का काम करती है। वैसे ही शरीर मे प्रभुहै तो अगुध्मात्र ही। कितु है पूर्ण पुरुष। अज्ञानी जीव इस पूर्ण पुरुष को शरीर मे न खोज कर बाहर खोजते है। आत्मज्ञान का सहारा न, लेकर बाहरी मूर्तिपूजा, तीर्थाटन आदि का सहारा छेते है। अलंकार-उपमा। (५४) निद्या को अंग लोग विचारा नींदई, जिन्ह न पाया ग्यॉन। राम नाँव राता रहे, तिनहुँ न भावे ऑन ॥१॥ अर्थ-जिन्हे ज्ञान नहीं प्राप्त है वे भक्ति तथा भक्तो की निदा करते है। कितु जो व्यक्ति रामनाम मे अनुरक्त है उन्हे रामनाम को छोड़कर कुछ भी अच्छा नहीं लगता है| दोख पराये देखि करि, चल्या हसंत हसंत। अपने च्यँति न आबई, जिनकी आदि न अंत॥ २॥ अर्थ-लोग दूसरों के दोषो को देखकर हँसते है। कितु आदि अत रहित अपने असख्य दोषो की चिता कभी नही करते है। | निदक नेड़ा राखिये, आँगणि कुटी बेंधाह | बिन साबण पॉँणी बिना, निरिमल करे सुभाइ ॥३॥ अर्थ-निदक को अपने समीप रखिए। उसके लिये अपने ही ऑगन मे एक मड़ई बनवा दीजिए। जिससे वह आपके कार्यो पर नजर रखे। उसकी निदात्मक आलोचना पानी और साबुन के बिना भी स्वभाव को साफ करती है। अलंकार--विभावना | न्यंदक दूरि न कीजिए, दीजे आदर मॉन। निरमल तन मन सब करे, बकि शकि ऑनहि आन ॥४॥ अर्थ-निदक को आदर मान से पास रखिये। जो बाते व्यर्थ समझते है उन तथाकथित बातो को कह-कह कर वह आपके तन-मन को शुद्ध करता है। नीदे साध कूँ, संकटि आवे सोड। नरक माँहि जॉमे, मरें मुकति न कबहूँ होइ ॥५॥ अर्थ-साधु निदा करनेवाले पर सकट आता है। उसे नरक मे; जन्म-मरण के चक्र मे पड़ना होता है। उसकी मुक्ति कभी नहीं होती है। हे ह

३४६८६ कबीर समग्र कबीर घास न नींदिये, जो पाऊँ तलि होड। उड़े पड़े जब आँखि मे, खरा दुहेली होड़ ॥६॥ अर्थ-सत कवीर कहते है कि घास अर्थात् छोटी से छोटी चीज की भी निदा नहीं करनी चाहिए। जैसे पैरो तले की घास आँखों मे पड़कर बहुत कष्ट देती है उसी प्रकार सामान्य आदमी भी कभी-कभी कष्ट देने छगता है। अलंकार-अन्योक्ति। आपन यौ न सराहिए, और न कहिये रंक। नो जाणो किस ब्रिष तलि, कूड़ा होइ करंक ॥७॥ अर्थ-अपनी सराहना मत कीजिए और दूसरे को बुरा मत कहिए। पता नहीं किस स्थान पर जाकर यह हड्डी कूड़ा बन जाय। अथवा तुच्छ कूड़ा मूल्यवान् हड्डी वन जाय। काल के परिवर्तन से सब सभव है। कबीर आप ठगाइये और न ठगिये कोइ। आप ठग्यों सुख ऊपजैं, और ठग्यों दुख होह ॥८॥ अर्थ-स्वय धोखा खाना अच्छा है| -दूसरो को धोखा देना ठीक नहीं। स्वय धोखा खाने से सुख मिलता है। दूसरो के धोखा देने से दुख होता है। अब के जे साईं मिले, तौ सब दुख आपी रोह। चरनूं ऊपर सीस धरि, कहूँ ण कहणों हो ॥९॥ अर्थ-इस बार अगर प्रभु मिलें तो उनसे अपने दुख रोकर कह दूँगा। चरणो पर सिर रखकर जो कुछ निवेदन करना होगा कर दूँगा। (५५) निगुणणां कौ अंग हरिया जाँणै रूँघड़ा उस पाँणी के नेह। सूका काठ न जाणई, कबहू बूठा मेह ॥१॥ शब्दार्थ-रुँषड़ा > वृक्ष | पेड़। सूका 5 सूखा। बूठा ८ वृष्ट | बरसा। मेह - मेघ। अर्थ-हरे पेड़ ही पानी के प्रेम की अनुभूति कर सकते है। सूखा काठ (काष्ठ) जो कभी पानी से गीला नहीं हुआ वह पानी की सरसता को क्या समझेगा। भाव यह है कि सहृदय भक्त ही प्रभु प्रेम के महत्त्वत्को समझ सकता है। भक्तिहीन शुष्क बुद्धि व्यक्ति भक्ति रस को क्या समझेगा ? अलंकार-अन्योक्ति। झिरमिरि झ्लिरमिरि बरधिया, पॉहण ऊपरि मेह। भाटी गलि सैजल भई, पॉहण बोही तेह ॥२॥ न ०0३38 ₹ पत्थर। सैजल (सजल) > जल युक्त। कीचड़। वोही तेह 5 वैसा का साही। अर्थ-पत्थर पर धीरे-धीरे वर्षा होती है। इससे उस पर कोई प्रभाव नही पड़ता। कितु मिझी गल कर कीचड़ बन जाती है और पत्थर वैसा का वैसा ही रहता है। सहदय भक्त-मिट्टी के समान है और साधनारहित अभक्त का हृदय प्व्यर सा कठोर है। पा पर भगवत्क्ति के रस की वर्षा का कोई प्रभाव नही पड़ता है। हु

धन न साखी ३४७ अलंकार-अन्योक्ति। विशेषोक्ति। पार ब्रह्म बूठा मोतियाँ, बाॉधी सिघराह। सगुरों सगुरों चुणि लिया, चूक पड़ी नियुरोह ॥३॥ शब्दार्य-बूठा 5 वृष्टि हुई। सिषरॉह्ठ न शिखर। सगुरों 5 गुरु युक्त। निगुरोह < गुरु रहित। अर्थ-पारब्रह्य के मोतियो की वृध्टि से शिखर बन गया। या शिखर अर्थात् ब्रह्मरप्र मे परब्रह्म द्वारा कृपा मोतियो की वर्षा हुई। गुरु कृपा प्राप्त ने चुन लिया और गुरु रहित चुनने से रह गये । मतलब कि भगत्मक्ति रूप मोती गुरु द्वारा ज्ञान वालो को ही मिलता है। दिप्पणी-मोती सात्तिकता का प्रतीक है। सत्त्व गुण मोती सा मूल्यवान है। निर्मल है। अलंकार-अन्येक्ति। कबीर हरि रस बरविया, गिर डूँगर सिषरोह। नीर मियाणों ठाहरे, नाऊँ छापरड्रोह ॥४॥ शब्दार्थ-गिर > पहाड़। डूँगर 5 टीला। सिषरॉह 5 शिखर। मिवाणों & नीचे का भाग। छापर डॉह > छप्पर पर। अर्थ-सत कबीर कहते है हरि रस पहाड़, टीलो आदि के शिखरों पर बरसा। कितु नीचे के भाग मे ठहरा और छप्पर वाली जगह पर उसका कोई प्रभाव नही हुआ। भाव यह कि पहाड़, टीढे, शिखर जैसे अहकारी व्यक्तियो पर भगवत्मक्ति रस की वर्षा का प्रभाव नही होता है। कितु नम्नता की गहरी भूमि रस से भर जाती है। अलंकार-जअन्योक्ति | कबीर मूँडठ करमियाँ, न सिष पाषर ज्योह। बॉहणहारा कया करे, बाण न लागे त्याँह ॥५॥ अब्दार्थ-मूँडठ + मूढ। मूर्ख। करमिया 5 कम। आहि 5 है। बॉहनहारा 5 बाण चलानेवाला। अर्थ-मूर्ख के कर्म नख से शिख अर्थात् पूर्णत पत्थर जैसे कठोर होते है। बाण चलानेवाले पे ज्ञानदाता गुरु क्या करें ? ऐसे व्यक्ति पर ज्ञान उपदेश बाण का कोई प्रभाव नही पड़ता | अलंकार-अन्योक्ति | कहत घुनत सब दिन गए, उरक्ि न सुरक्ष्या मन। कहि कबीर चेत्या नहीं, अजहूँ सुपहला दिन ॥६॥ अर्थ-गुरु द्वारा ज्ञान कहते-सुनते पूरा जीवन बीत गया। कितु विषयो मे उलझा मन आज भी नहीं सुलझा। सत कंबीर कहते है आज तक चेतना नही आई। प्रथम दिन के सम्नन ही जज्ञान मे पड़ा है। कहे कबीर कठोर के, सबद न लागे सार। सुधबुध के हिरदे भिदे, उपजि विवेक विचार ॥७॥ शब्दार्य-सार 5 १ लोहा | बाण। २ तत्त्व। सुधबुध 5 चेतना। भिदे > बिधता है। अर्थ-सत कबीर कहते है कि जिसका हृदय कठोर है उसके हृदय मे शब्द रूपी बाण या तत्त्व मूलक शब्दों का कोई प्रभाव नही होता है। जिसका हृदय चेतना युक्त है उसी के हृदय में विवेक और विचार की उत्पत्ति होती है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति |

 सीतलता के कारण नाग बिलंबे आह ॥ रोम रोम विष भरि रह्मा, अमृत कहा समाह ॥८॥ अर्थ-चदन की शीतलता के कारण सर्प चदन पेड़ो मे आकर लिपट गये। कितु वे सर्प तो सर्वाग मे जहर से भरे है। अब चदन का शीतल प्रवेश के लिये कहाँ स्थान है ? भाव यह है कि अपने स्वभाव को न बदलनेवाले दुष्ट व्यक्तियों पर सत्सग का कोई प्रभाव नही पड़ता है | अलंकार-अन्येक्ति। सरपहि दूध पिलाइये, दूधे विष डै जाद। ऐसा कोई नो मिले, स्यूँ सरपे विष खाइ ॥९॥ अर्थ-सर्प को दूध पिलाने पर दूध भी जहर हो जाता है। ऐसा कोई नहीं मिला जो सॉप के विष को खा जाय अथवा नष्ट कर दे। ु टिप्पणी-सर्प का अर्थ है दुध् व्यक्ति। ऐसा व्यक्ति अच्छे कार्यो को भी दुरा बना देता है। विष का अर्थ है दुष्ता। दूध का अर्थ है अच्छा उपदेश। 'कोई' मे श्रेष्ठ गुरु का राकेत है। ठतुलनीय- . पय पान भुजगानाम् केवल विप वर्धनम्। उपदेशो हि मूर्खाण प्रकोपाय न शान्तेय | अलंकार-अन्योक्ति | जालौं इहै बड़पणों, सरले पेड़ि खजूरि। पंखी छोंह न बीसवें, फल लागे ते दूरि॥१०॥ शब्दार्थ-सरढै ८ सीधा। बीसवै 5 विश्राम। अर्थ-सीधे और ऊँचे खजूर के पेड़ जैसी महानता व्यर्थ है। क्योकि जैसे खजूर के पेड़ से किसी पक्षी को न तो छाया मिलती है, न तो ऊँचाई के कारण उसका फल ही आसानी से सभी प्राप्त कर सकते है। कहना यह है कि जिस ज्ञान सपत्ति द्वारा सामान्यजन का लाभ कठिन है वह व्यर्थ है। अलंकार-अन्योक्ति | ऊँचा कुल के कारणै, बंस बध्या अधिकार। चंदन बास भेदे नहीं, जाल्या सब परिवार ॥११॥ शब्दार्थ-बस 5 बॉस | वध्या 5 वढ़ा। वास 5 गध। भेदे > प्रभावित होना। अर्थ-ऊँचे कुल के कारण वॉस अधिकता से बढ़ता जाता है। कितु चदन के पास रहने पर भी उस पर चदन का कोई प्रभाव नही पड़ता है। इसके उठ्टे आपसी रगड़ से आग उत्पन्न होती है और जल जाता है। भाव यह कि श्रेष्ठ कुल मे जन्म और बड़प्पन ही सब कुछ नही है। सरठता और सहृदयता द्वारा गुण ग्राहकता भी आवश्यक है। गुण ग्राहकता के अभाव मे आपसी द्वन्द्र और नाश का खतरा रहता है। अलंकार-५लेप-वश मे। अन्योक्ति। कबीर चंदन के निड़े, नींद भि चंदन होइ। बूठा बस बड़ाइतों, यो जिनि बूडे कोह ॥१ २॥ कलह नजदीक । नियर। निकट बुड़ाइतों > बड़े। बूड़ा ८ नष्ट हो गया। बस बास अर्थ-सत कबीर कहते है कि चदन के पास रहने वाला नीम भी चदन के समान हो जाता

साखी ३४९ है। कितु बॉस व्यर्थ हो गया। क्योंकि वह चदन से प्रभावित नही होता है। ऐसा नाश किसी का नही होना चाहिए । उपदेश है कि नीम जैसे तीते या तुच्छ को देखो। साधु सगति (चंदन) के कारण भी चदन जैसे भले हो जाते है। कितु वश मर्यादा में डूबे व्यक्ति इससे कोई शिक्षा न लेकर अप्रभावित रहते है। उठटे आपसी द्वेष मे रगड़ कर नध् हो जाते है। अलंकार-अच्योक्ति। (५६) बीनती कौ अंग कबीर साई तौ मिलहगै, पूछिहिंगे कुसलात | आदि अंति की कहूँगा, उर अंतर की बात ॥१॥ अर्व-सत्त कबीर कहते है कि स्वामी (प्रभु) से मिलने पर वे ससार यात्रा का कुशलक्षेम पूछेगे। ऐसे अवसर पर हृदय की सभी बाते आदि से अत तक कहूँगा। मतलब यह कि सभी दुख-सुख को सुनने का अधिकारी एक मात्र प्रभु है। दूसरो से कहना व्यर्थ है | कबीर भूलि बिगाड़िया, तूँ नों करे मैला चित। साहिब गरवा लोडिये, चफर बिगाड़ें नित ॥२॥ शब्दार्व-गरवा (दास। मैला चित > दुखी होना। अर्थ-सत कबीर कहते है कि हे मनुष्य, तुमने भूलवश ससार यात्रा के उद्देश्यों को नष्ट ' कर दिया। कितु इससे डरो मत। मन मे दुखी मत हो। हमारा प्रभुअत्यत गभीर पुरुष है। वह दास द्वारा होनेवाी नित्य की गलतियो पर ध्यान नहीं देता है। दास का तो स्वभाव है गढदी; करना। प्रभु का स्वभाव है माफ करना। इस तुम निष्कपट भाव से अपनी गलती स्वीकार करो। करता करे बहुत गुण, औरगगुण कोई नौंहि। जे दिल खोजी आपणी, तो सब औगुण मुश्न मोहि ॥३॥ शब्दार्-करता > ब्रह्मा। प्रभु। औगुण < अवगुण। मॉहि - मध्य। मे। भीतर । अर्य-प्रभु मे बहुत से गुण है। अवगुण एक भी नहीं है। अगर अपने-अपने दिलो मे : टटटोलो तो देखोगे कि सारे अवगुण अपने भीतर मौजूद है। । औतसर बीता अल्पतन, पीव रहा परदेश। कलंक उतारी केसवॉ, भोनो भरंम अँदेश ॥४॥ शब्दार्द-अलपतन 5 १ जीवन के समय की अल्पता २ युवावस्था के पूर्व की स्थिति बाल्यावस्था। का अभाव। भॉनी > नष्ट करूँ। अंदेस > सदेह। संशय । अर्थ-साधक रूप विरहणी कहती है कि जीवन के समय अल्प है। या यह कि बाल्यावस्था बीत रही है। ऐसे मे प्रिय का परदेश रहनाठीक नहीं। यौवन मे कलक ठंगने का भय है। ऐसे मे हे केशव (प्रियतमा का केश गहनेवाले प्रिय), मुझे किसी प्रकार के कक (तम प्रवृत्ति) से बचाओ। मै अपना भ्रम और सदेह सब दूर ऊरता हूँ। क्योकि सशय या भ्रम के रहते प्रिय नहीं रह सकता है। सज्ायात्रा विनश्वति की ओर सकेत है।

३५० कबीर समग्र अलंकार--अन्येक्ति | कबीर करत है बीनती, भोसागर के तोई। बंदे ऊपरि जोर होत है, जेंम कूँ बरिज गुसाई ॥५॥ अर्थ-सत कवीर कहते है कि हे प्रभु, मै तुमसे ससार सागर से मुझे पार करने की प्रार्थना करता हूँ। तुम्हारे इस भक्त पर यम का, माया का जोर जुल्म हो रहा है। तुम यम को जुल्म करने से रोको। भाव यह कि मुझे मुक्ति दो हज कावे डे है गया, केती बार कयीर। मीरों मुझ्न में क्या खता, मुखों न बोले पीर॥६॥ शब्दार्थ-हज (अ०) - मुसलमानों द्वारा कादे का दर्शन के लिये मक्के की यात्रा। काग < मुसलमानों का एक धर्म नगर। खता < गढ़ती। अपराध। पीर (फा०) धर्मगुरु। अर्थ-हज और काबा तीर्धाटन वाह्य साधना है। बार-दार तीर्थाटन से कोई फायदा नहीं है। सत कबीर कहते है कि है प्रभु, मेश कौन सा अपराध है कि ससारिक धर्म गुरु पीर भी मुझसे नहीं बोलते ? जब सासारिक गुरु नही बोलते तो ईश्वर से कृपा की आशा तो व्यर्थ है। अलंकार-विशेषोक्ति | ज्यूँ मन मेरा तुझ सौं, यों जे तेरा होइ। ताता लोहा यो मिले, संधि न लखई कोड ॥७॥| शब्दार्व-सधि - जोड़। ताता (< सुतप्त) > गर्म । अर्थ-सत कवीर गीता के उस सिद्धात की ओर ईशारा करते है जिसमे कहा गया है कि ये यथा मा प्रपयते तासतयैव भजाम्यहम्' (जो मेरे को जैसा भजता है मैं उसको वैसे ही भजता हूँ)। हे प्रभु, जेसे मेरा मन तुम मे लगा है वेसे ही तुम्हारा मन भी मेरे में छगना चाहिए। भक्त और भगवान् का सबंध गर्म लोहे के समान है। दोनो मिलकर इस प्रकार से एक हो जाते हैं कि जोड़ भी नहीं दिखाई पड़ता है। मतलब कि भक्त भगवान हो जाता है और भगवान भक्त में अवतरित हो जाते है। (५७) साधषीभूत कौ अंग कबीर पूछे राम कूँ, सकल भवनपति राइ। सबही करे अलगा रही,सो विधि हमहिं बताई ॥१॥ शब्दार्थ-राइ + राजा | अर्थ-भगवान् से साक्षात्कार के दाद सत कदीर प्रभु से पूछते है हे सकल सृष्टि के स्वामी राम, मुझे वह तरीका बताइए जिससे मे आपके समान ही सब करके भी सबके ममत्र से अलग रहूँ। कर्तापन के अहकार और फलासक्ति से अलग रहूँ। क्योकि आप सारी सृष्टि का सृजन, पालन और संहार करके भी इनसे अहूग रहते है। आप पर इनका कोई प्रभाव नही पड़ता है। जिहि बरियों साई मिले, तास न जाणै और। सबदूँ सुख दे सबद करि, अपर्णी अपर्णी ठौर॥२॥ अर्द-प्रभु जिस समय मिलता है उसे दूसरा नहीं जान सकता है। यह केवल प्रभु ही जानता है। अनाहत शब्द द्वारा वह सबको अपने-अपने स्थान पर रहते हुए सुख देता है।

साखी ३५१ 'अपणी-अपणी दौर' का अर्थ अपने स्वभाव या स्वरूप मे स्थित होने से है। मतर्‌ब यह कि साधना द्वारा मन को विषयों से हटा कर अपने स्वरूप या मनमुखी होने पर ही अनाहत प्रभु की प्राप्ति होती है। अनाहत प्रभु शब्दातीत .है। कबीर मन का शहुला, ऊँडा बहे असोस। देखत हीं दह में पड़े, दई किसा की दोस ॥३॥ शब्दार्व--बाहुला 5 बाहुल्य। ऊँडा ऊँचा। अश्नोस 5 अशोष्य। देह & जलाशय। दई 5 देव। अर्थ-सत कबीर कहते है कि मन बाहुल्य वाला है। बड़ी-बड़ी और ऊँची उड़ानोवाली कल्पना करता है। वह बिना रुके ऊँचे को बहता है। कितु विषयों को देखते ही विषय जल मे कूद जाता है। इसमे किसे दोष दिया जाय या दैव का क्या दोष है ? अलंकार-रूपक | (५८) बेलि कौ अंग अब तौ ऐसी $ पड़ी, नो तूँ बड़ी न बेलि। जालण ऑर्णी लाकड़ी, ऊठी ऋूपल मेल्हि ॥१॥ -बेलि 5 विषयल्ता या इच्छा। कूँपल - नये पत्ते। तूँबड़ी & तुबा या वासना समूह। कं अर्थ-अब ऐसा हो गया है कि न तो तुम हो या न वासना है, न वासना की लहराती लता है। जब वासना लता ही नहीं तो फल कैसा ? कितु इसके बावजूद जलाने के लिये लाई गयी लकड़ी मे भी कोपछ दिखाई पड़ती है। कहना यह है कि यह समझना गलत है कि हम वासना रहित हो गये है। वृद्ध या मरकर जलने के लिये लकड़ी बने व्यक्ति मे भी भीतर ही भीतर वासना बनी रहती है। समय पाकर वह कोपल फेक देती है। इसलिये वासना को कभी समाप्त मत समझो। अलंकार-भ्रातिमान | ४; आगे आगे दीं जलै, पीछे हरिया होह । बलिहारी ता विरघ की, जड़ीं काट्यों फल होइ ॥२॥ शब्दार्व-दी - दावाग्नि। ता 5 उस | हरिया < हटा। प्रसन्न। अर्थ-ससार एक जगल है जिसमे आगे-आगे साधना की आग जल रही है। इससे पीछेपीछे हरियाली होती है। कैसी हरियाली ? प्रभु प्रीति की हरियाली। इससे मन प्रसन्न होता है। यह ससार वृक्ष धन्य है जिसका जड़ काट देने पर भी फल देता है। ससार वृक्ष की जड़ वासना और माया मोह अहता ममता है। इन्हे समाप्त कर देने पर मुक्ति फल की प्राप्ति होती है। ससार वृक्ष है भी तो ‘‘ऊर्ध्वमूलमध. शाखावाला' | तुलनीय- ससार कातार अति घोर गभीर घन गहन तरु कर्म सकुल मुरारी। है वासना बल्हि खरकटकाकुल विपुल निविड़ विटपाटवी कठिन भारी |-तुल्सी | अलकार-जड़ काटे फल होइ मे विरोधाभास। च्यक्तिरेक | जे काटी तौ उहडही, सींधीं तो ऋुमिलाइ। इस गृणवंती बेलि का, कुछ गुण कहचों न जाइ ॥३॥

 अर्थ-ससार एक लता के समान है। इसे असगशस्त्र द्वारा विषयों से काट देने पर यह और पूर्ण होता हैं। विषय-वासनो से सीचने या विषयो की पूर्ति की कोशिश करने पर कुम्हलाने लगता? है। तीन गुणो (सत्, रज, तम) वाले इस ससार की विशेषता अवर्णनी है। भावार्थ यह कि विषयो से मुक्ति ही ससार यात्रा की पूर्णता है। ठुलनीय-. पल्लवत फूलत नव नित ससार बिटप नमामहे | -मानस | अलंकार-व्यतिरेक, विरोधाभास, गुणवती मे श्लेष | ऑगणि बेलि अकासि फल, अण ब्यावर का दूध। ससा सींग की धूनहड़ी, रमे बॉल का पूत ॥४॥ शब्दार्थ-अण व्यावर 5 विना ब्याई। ससा 5 खरगोश। धूनहड़ी 5 छोटा धनुष। बॉझ « बध्या। पूत > पुत्र। ऑगणि < लोक का विस्तार। 5 अर्थ-यह ससार उल्टा है। इसकी लता तो छोक लोकातर मे नीचे की ओर फैली है। कितु इसका कर्मफल ईश्वराधीन (आकाश में) है। आकाश अर्थात् शून्य ही प्रभु का निवास स्थान है। निर्गुण-निराकार प्रभु की निवासभूमि भी शून्य मे है। ईश्वर रूपात्मक न होकर केवल नाम वाढ्ा है। जैसे बिना ब्यायी का दूध, खरगोश की सीग का धनुष और बध्या पुत्र का रमण वस्तु या रूप सत्य न होकर केवल नाम है। ऐसे ही ईश्वर के नामात्मक है। टिप्पणी-सगुण मार्ग ने ईश्वर की नाम-रूप ये दो उपाधियाँ मानी है। निर्गुणमार्ग वाले रूप को नही, केवल नाम उपाधि को ही स्वीकार करते है। गीता मे ऊर्ध्वमूलमध शाखम् तथा ससार वृक्ष की बढ़ी शाखाएँ नीचे-ऊपर फैली है। इसका कोई रूप नहीं है (न रूपमस्येह तथोपलभ्यते)। इसे असगशस्त्र से काटा जा सकता है। दे० गीता १५/१,२,३ | अलंकार-असगति | कबीर कड़ई बेलड़ी, कड़वा ही फल होह। साध नॉव तब पाइए, जे बेलि दिछोहा होड़ ॥५॥ शब्दार्थ-विछोहा 5- वियोग। अलगाव | अर्थ-सत कबीर कहते है कि यह ससार छता अल्त कडुई है। इसका फल (अतिम प्राप्ति) भी कड़्आ है। जब ससार के विषयो से अलगाव हो जाता है तभी सत्य या साधु नाम की उपलब्धि होती है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | ब सींध भट्ट तब का भया, चहूँ दिसि फूटी बास। अजहूँ बीज अंकूर है, भीऊगण की आस ॥६॥ अर्थ-सिद्ध होने से क्या हुआ ? केवल चारो ओर ख्याति फैल गई है। कितु अकुरित होने वाले वासना बीज आज भी हृदय मे मौजूद है। आशा है वे कभी भी उग ञग सकते है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | (५९) अबिहड़ को अंग कबीर साथी सो किया,जाके सुख दुख नहीं कोहट | हिलि भिलि ड्ै करि खेलिस्यूँ, कदे बिछोह न होइ॥१॥

साखी ३५३ अर्थ-सत कबीर कहते है कि मैने सत या परमात्मा की अपना साथी बनाया है। जो सुख दुख के इन्दो से मुक्त है। अब उनसे ही हिलमिल कर खेदूँगा। यहाँ विच्छेद (अलगाव) का भय भी नही है। क्योकि परमात्म तत्व अमर है। कबीर सिरजनहार बिन, मेरा हितू न कोइ | गुण औगुण बिहड़ै नहीं, स्वारथ बंधी लोइ ॥२॥ शब्दार्द-लोडू < लोग । अर्थ-सत कबीर कहते है कि ईश्वर के बिना मेरा हित करनेवाला कोई नही है। अन्य लोग गुण तथा अवगुण में भेद नही करते। सभी स्वार्थ में बँधे है। आदि मधि अरु अंत लौ, अबिहड़ सदा अभंग। कबीर उस करता की, सेवग तजै न संग ॥३॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि ईश्वर आदि, मध्य और अत सद्दा अविभाज्य एव अभग है। उस कर्ता का सग सेवक (भक्त) कभी नहीं छोड़ेगा। अंकुर ते बीज बीज ते अंकुर अंकुर बीज सैँभारे। काया ते कर्म कर्म ते काया कोई बिरला जना निखारे ॥४॥ अर्थ-अकुर से बीज और बीज से अकुर दोनो मे परस्परता है। दोनो एक दूसरे के सहारे है। जैसे शरीर से कर्म और कर्म से शरीर का निर्माण होता है। इस तथ्य को कोई बिरला व्यक्ति ही जान पाता है। देह रहने पर कर्म होता है। कर्म से वासना और वासना से पुन देह की प्राप्ति का चक्र चलता है। टिप्पणी--इसी को कामायनी मे प्रसाद ने कहा हैकर्म का भोग, भोग का कर्म | यही जड़ का चेतन आनद॥ अपनी कहे मेरी सुने सुनि मिलि एके होय। हमरे देख जय जात है ऐसा मिल्रा न कोय॥५॥ अर्थ-कोई गुरु या शिष्य कहता है कि अपना कहै, दूसरे का भी सुने। फिर दोनो का सामजस्य बैठाएं। हमारे जानते ससार मे ऐसा कोई नहीं है। नहीं मिलता है| अमृत का पक सिर सो धरे उतारि। जाहि कहीं मै एक सो कहे मोहि चारि ॥६॥ अर्थ-मुक्ति की कामना अमृत की गठरी के समान है। अमृत होकर भी वह है गठरी ही। इसीलिये पहुँचा साधक मुक्ति प्राप्ति की कामना से भी मुक्त हो जाता है। यही है अमृत की गठरी को सिर से उतारना। पहुँचा साधक अब केवल एक ब्रह्म की बात करता है तो दूसरे लोग सालेक्य, साथुज्य,सारूप्य, सामीष्य इन चार प्रकार की मुक्तियो या पुरुषार्थ चतुष्टय की बात करते है | अर्व खर्व लौ द्रव्य है उदे अस्त लौं राज। भक्ति महातम न तुले ई सब कौने काज।छा। अर्थ-अरबो, खरबो की सपत्ति और सूर्य के उदय से अस्त का राज्य प्राप्त है। कितु अगर प्रभु की भक्ति का ज्ञान नहीं है तो सब व्यर्थ है। असून्य तखत आसन अडिग पिड झरोखे नूर।

पु ऐ ६ ३५४ कवीर समग्र जाके दिल मे हो बसी सेना लिये हुजूर ॥८॥ अर्थ- वेदात बौद्धों के शून्यवाद को अस्वीकार करता है। इसीलिये कबीर साहब कहते है कि ईश्वर का आसन (तखत) अशून्य है। आधारयुक्त और अडिग है। पिड अथवा भरीर मे बैठे पुरुष की चमक इद्रियो के झरोखे से देखी जा सकती है। कितु यह वही कर सकता है जिसके हृदय में अपनी पूरी सात्त्विक सेना (अहिसा, सत्य, अक्रोध आदि) लिये प्रभु बसते हैं। अहिरूँ तजी खसमहुँ तजी बिना दाँत का ढोर। मुक्ति बिना बिलतात है वृंदावन की ओर ॥ ९॥ शब्दार्थ-ढोर 5 जानवर | पशु। अहिरहुँ - कृष्ण | अर्थ-मानव पशु जब विना दाँत का अर्थात् वृद्ध हो जाता है तो उसे कृष्ण ओर पति ने भी छोड़ दिया। इसलिए कि इस अवस्था तक उसने मुक्ति की साधना नहीं की। अब व्याकुढ होता है। प्रभु को पाने के लिये वृदावन की ओर दीड़ता है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | आगि जु लागि समुद्र मे घूओं प्रगट न होय। सो जाने जो जरि मुआ जाकी लाई होय॥१ ०॥ शब्दार्थ--आगि > प्रेमाग्नि। समुद्र 5 हृदय | धूआँ - चिह्न | लाई > छंगाई। अर्थ-हदय रूपी समुद्र मे भगवद्लेम की आग लग गयी है। भीतर-भीतर वासनाएँ जठ रही है कितु जैसे बडवाग्नि बाहर नहीं दीखती है वैसे ही यह आग भी नहीं दीख रही है। इस आग को वहीं जानता है जो इसमे जलकर मर गया, मलायन चित्त। दूसरा वह जानता है जिसने यह आग लगाई है अर्थात् गुरुदेव या स्वय प्रभु। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | आगि जो लागि समुद्र महै टूटि दूटि खसे झोल। रोबे कबिरा इंफिया हीरा जरे अमोल ॥११॥ शब्दार्थ-हदय रूपी समुद्र मे आग लग गयी है। फलत वासनाओ के जाहे टूट-टूट कर गिर रहे है। सत कबीर कहते है कि वासना मे फेंसा जीव यह देखकर रो रहा है कि जिन वासनाओं को वह हीरे सा अमूल्य समझे था वे वासनाएँ जल रही है। आगि जो लागि समुद्र महँ जरे जी कॉँदो झारि। पूर्व पछिम के पंडिता मुए विचारि विचारि॥१२॥ ५ शब्दार्थ-कॉदो 5 कीचड़। झारि 5 सपूर्ण। पूर्व-पश्चिम सभी दिशाओ के विद्वान। मुए मरे | अर्थ-अत करण मे भगवद्मेम की आग हूग गयी है। वासना कर्दम पूर्णत जल रहे है। सभी दिशाओ के किताबी पडित विचार करके-करके मर गए। कितु समझ मे कुछ नहीं आया कि वासना का नाश कैसे हो गया। अलंकार-रुपकातिशयोक्ति। हु आगे सीढी सॉकरी पीछे चकनाचूर। परदा तर की सुंदरी रही धकी ते दूर॥१३॥ अर्थ-आगे ब्रह्म साधना के सोपान सेँकरे है। पीछे लौटा नहीं जा सकता। लौटने पर और भी दुर्दशा होगी। भक्त पर्दे के भीतर रहनेवाली स्त्री के समान धक्के से दूर ही रहना चाहता है। भीड़ से अलग एकात साधना मे रत है। आगे-आगे ही बरे पाछे हरियर होय। बलिहारी तेहि वृक्ष की जरि काटे फल होय ॥१४॥ हि अर्थ--रेह व्त सा जिजिस है। उतनी ज़र जितती जवान से ऐ। स्मक्िति लिप जिदत्ति

साखी ३५७ होता है। आध्यात्मिक प्रसन्नता बढ़ती है और वासना के झाड़ जल्ते है। अलंकार-विभावना। आज़ु काल दिन कइक में स्थिर नाहि शरीर। “केतिक दिन नल (र) राखिहो काथे बासन नीर॥१ ५॥ अर्थ-इस शरीर का नाश होना है। आज, कल या कुछ दिनो बाद जब भी नाश हो जाय। यह शरीर स्थिर नहीं है। जैसे कच्छे वर्तन मे पानी चिरकारू तक नहीं रखा जा सकता वैसे ही कच्चे वर्तन रूपी शरीर मे जीवात्मा को बहुत दिनो तक नहीं रखा जा सकता है। जीवात्मा भी शरीर बदलता रहता है| अलंकार-दृष्टत | आपी साखी सिर खडे जो निरुवारी जाय। काह पंडित की पोधियों राति दिवस मिलि गाय ॥१ ६॥ अर्थ-यदि चित्त सुलझा या स्वच्छ हो तो आधी साखी अर्थात् रामनाम की आधी मात्रा भी सिर के बोझ का नाश कर सकती है। आधी मात्रा वह काम कर सकती है जो पडितो द्वारा रात-दिन गायी जाने वाली पुस्तको से नहीं हो सकता है। अलंकार-व्यत्तिरिक। आपनि आपनि शीर की सभनि लीनो मान। हा हरि की बात दुरन्तरे परी न काहू जान ॥ १७॥ शब्दार्व-शीर शीर्ष। मान 5 अभिमान। अर्थ-सभी छोग अपना-अपना सिर ऊँचा कर अभिमान करते है। कितु ईश्वर की बात दूर पड़ जाती है। कोई नहीं जानता। जब उसके सामने सब का सिर नीचे है। आपा त्तजे हरि भजे नखसिख तजे विकार। सब जीवन से निर्बेरता साधुमता है सार॥१ ८॥ शब्दार्व--आपा & अहकार। अर्थ-अहकार छोड़कर, पूरे शरीर से काम, क्रोधादि विकार को छोड़कर ईश्वर को भजना चाहिए। सभी प्रकार के जीवो से वैरभाव का त्याग करना चाहिए। यह साधुमतो का मूल है। सार है। आस्ति कही तो कोइ न पतीजे विआस्ति का सिद्धा। कहहि ऋबीर सनहु हे सन्तो हीरी हीरहि विद्धा ॥१ ९॥ शब्दार्व-आस्ति (अस्ति) & है। विआस्ति 5 बिना अस्ति का। हीरी > ज्ञान। आत्मा। । अर्थ-अगर यह कहा जाय कि ईश्वर है तो उसे सिद्ध करने की कठिनाई से कोई उस पर विश्वास नहीं करेगा और अगर यह कहा जाय कि ईश्वर नहीं है, उसका अस्तित्व नहीं है तो यह असिद्ध बात होगी। झूठी होगी। सत कबीर कहते है कि परमात्मा रूपी हीरा आलज्ञान से ही जाना जा सकता है। यही है हीरे का हीरे से विद्ध होना। अलंकार-यमक | ढ्ह ई शंबल करि लेड आगे विषमी वाट । स्वर्ग बिसाहन सब चले जहँ बनिया नहि हाट ॥२०॥ शब्दार्व-इस ससार मे रहकर ही परलोक सुख की व्यवस्था कर लो। पुण्य कर्म कर लो। क्योकि स्वर्ग का रास्ता अत्यत कठिन है। वहाँ सोदैबाजी नहीं होती है। वहाँ न व्यापारी है। न हाट लगता है। इसलिये जो कुछ करना है ससार मे रहते ही कर लो।

३५६ कबीर समग्र ई जग तो जहड़े गया भया जोग नहि भोग। तील झारि कबिरा लिया तिलठी झारे लोग॥२१॥ शब्दार्थ-जहड़े 5 धोखा। व्यर्थ। तीर झारि 5 सार तत्त्व। तिछुठी 5 तिल का नीरस भाग | अर्थ-साधना के अभाव मे यह जग जीवन तो माया के धोखे मे व्यर्थ वीत गया। न योग किया। न भोग की ही पूर्ति हुई। केवल सत कबीर ने बुद्धिमानी की। लोगो को तिल का नीरस भाग लेते देखकर स्वय सारतत्त्व प्रभुभक्ति को प्राप्त कर लिया। और लोग माया में ही रह गये। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | ई मन चंचल ई मन चोर ई मन शुद्ध ठगहार। मनमन कहत सुर नर मुनि जहड़े मन के लक्ष दुआर॥२२॥ अर्थ-मन चचल है। चोर है। ठग है। ऐसे मन के अनुसार चलते हुए सुर, नर, मुनि सद धोखा खा गये। मन के लाखो दरवाजे है। वासनाएँ उनमे से प्रवेश कर जाती है। ई माया है चूहड़ी औ चुहड़े की जोय। बाय पूत अरुझावे संग न कहुक होय॥२३॥ शब्दार्थ-जोय - स्त्री। अर्थ-माया चुहिया है। चूहे की स्त्री है। यह पिता-पुत्र दोनो को उलझाकर रखती है। और किसी के साथ नहीं जाती है। माया सबद्ध सारी चीजे यहीं रह जाती है। ऊपर की दोऊ गई हिय की गई हिराय। कहहि कवीर जाके चारो गई तासो कहा बसाय॥२४॥ अर्थ-दो प्रकार की आँखे है-स्थूल बाह्य और आतरिक सूक्ष्म। कितु माया मे पड़े व्यक्ति को स्थूल बाहरी आँखों से तो कुछ दीखता नहीं। भीतर के ज्ञान नयन भी समाप्त है। जिनकी चारे आँखे चली गयी है उनका ससार मे क्या वश है? वे तो स्वय माया के वश मे है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | घी, ऊपरि की दोऊ गई हिय हु कि फूटी ओंखि। कबीर बिचारा क्या करे जो जिवहि नाहीं झाँकि॥२ ५॥ इससे मिलते दोहे का अर्थ आ चुका है। एक एक निरुवारिये जो निरुवारी जाय। दुई मुख के बोलना घना तमाचा खाय॥२ ६॥ अर्थ-यदि सभव होतो एक-एक कर सभी विषयो को छोड़ दीजिए। जैसे दो मुँह वाला ढोलक बाजा दोनो ओर से तमाचा खाता है वैसे ही माया और ब्रह्म, शरीर और आत्मा के द्वत (दुविधा) मे रहनेवाले का दोनो ओर से नुकसान होता है। एक कहीं तो है नहीं, दुई कही तो गारि। है जैसा तैसा रहो कहहि कबीर पुकारि॥२७॥ अर्थ-ईश्वर को एक बताऊँ तो उसे समझाना कठिन है। दो कहूँ तो वह विल्कुल झूठ गाली देने योग्य है। इसलिये जैसा-तैसा ही कह पाते है। उसका ठीक-ठीक वर्णन कठिन है। एक ते अनंत एक हो आया। परिचय भया जु एक ते अनंत एकहि माँह समाया ॥२ ८॥ अर्थ-एक से अनत और अनत एक हो गया। एक से परिचय होने पर पता चला कि एक मे ही अनत समाया है। टिप्पणी-यह विश्वरूप की ओर सकेत है | इसलिए भगवान् की उपमा कछुए से दी गयी

साखी 9 ३५७ है। वह फेठकर अनत और समेटकर एक होता है। एक और अनत दोनो उसी के खेल है। एक यात की बात है कोई कहे बनाय। भारी परदा बीच क ताते लखी न जाय ॥२९॥ अर्थ-परमात्मा एक ही है। इसी बात को छोग अनेक प्रकार से वना कर कहते है। सभी शास्त्रों ने भी यही कहा है। कितु माया के पर्दे के कारण तथा शास्त्रों की भिन्नता के कारण वह परमाला दिखाई नहीं पड़ता है। ए गुणवन्ती बेलरी तब गुण वर्णि न जाय।] जे काटे सो हरियरी सीचे ते कम्हलाय॥३०॥ अर्थ-ऐ विषय लता, नुम्हारे बारे, मे कुछ कहा नहीं जा सकता है। तुम्हारी जड़ काट दी जाय तो प्रज्ञा का पौधा लहलहाता है। तुम्हारी सेवा करे तो प्रज्ञा का पौधा सूखने लगता है। अर्लकार-विभावना | ए मरजीवा ते अम्रत पीवा का घसि मरसि पत्ताल। गुरु की दया साधु की संगति निकलि आव एहि द्वार॥ ३१॥ अर्प-इस मरणशील शरीर में अमृत का निवास है। यहाँ ही उसे साधना द्वार प्राप्त किया जा सकता है। व्यर्थ पाताल साधना अर्थात् किताबो आदि की साधना से क्या फायदा ? गुरु की कृपा और साधु संगति के रास्ते माया से निकलकर भगवत्तत्त्वरूपी अमृत का पान करो। एक शब्द गुरुदेव को तामे अनन्त विचार | धाके भुनिवर ज्ञानी वेद न पावे पार॥ ३२॥ अर्थ-जिस परमात्त्व को पाने मे ज्ञान पा नि समुदाय और वेद विफल रहे, नेति नेति कहा। उस तत्त्व को गुरुदेव के एक शब्द से अनंत विचार भरे है पा लिया गया। एक साथे साधिया सब साथे एक जाय। उलटी सीधे मूल को फूले फरे अधाय॥३३॥ अर्थ-एक परमात्मा की साधना करो। ससार की अन्य वस्तुओं के फेर मे मत पड़ो। एक परमात्मा से ही सब उत्पन्न होते है। उसी में विलीन होते है। वही प्रभु उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कारण है। यह प्रभुवृक्ष उलट (ऊर्ध्वमूलमध शाख) रूप मे स्थित है। इसके मूल को सींचने, सेवा करने से सारे सुख भलीभंति प्राप्त हो जाते है। औरनि के समुझावते जिभ्या परिगी रेत। +राशि बिरानी राखते खायिनि घर का खेत ॥३४॥ अर्थ-दूसरो को समझाते-समझाते जीभ सूख गयी है। रस निकलकर रेत रह गया। ये विद्वान लोग दूसरों की सम्पत्ति अपने पास रखते है। इनके खेत को माया पशु चर गया। सारी विद्या के बावजूद ये माया के शिकार हो गए। कनक कामिनी देखिके तू मत भूल कुरंग। मिलन बिछुरन दुहेलरा केचुलि तजे भुजंग॥३५॥ अर्थ-ऐ मनरूपी मृग, सोना और स्त्री को देखकर ठुम भ्रम मे मत पड़ो। मिलना और बिछुड़ना कठिन काम है। जैसे सॉप केचुल छोड़ता है वैसे ही यह शरीर बार-बार छूट जाता है। कबीर का घर शिखर पर जहाँ सलहली गैल। पाय न दिके पीपिलिका तहाँ खलको लादा बैल॥३६॥ अर्थ-साधक सत कवीर साहब ब्रह्मरध्न में निवास कर रहे है। यह रास्ता अत्यत फिसलन भरा है। यहाँ चींटी को भी चढ़ने मे कठिनाई होती है। कितु लोग है कि कर्मों का बोझ लेकर १४ पहुँचना चाहते है। ; ल मय

४० 2 जरा ताज बैल अज्ञान का प्रतीक है। छोग बैल जैसा व्यवहार करते है। जैसे बैल दूसरों का छदा ढोता है वेसे ही मनुष्य बैल माया का लदा ढोता है। ५ अलंकार-रूपकतिशयोक्ति | कबीर जात पुकरिया चढ़ि चंदन के डार। बाट लगाए ना लगे फिर का लेत हमार॥३७॥ शब्दार्थ-चदन की डार 5 शास्त्र | अर्थ-सत कबीर कहते है कि ससार सेचलते समय चदनडार (शास्त्रों) पर चढ़कर पुकारा। कितु इससे रास्ता नहीं कटा। अब हमारा क्या होगा ? कोई खोज-खबर नहीं लेता है शास्त्रो ने कोई सहायता नहीं की। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | कबीर भर्म तल भाजिया बहुविधि धरिया भेष। साई के परचे बिना अन्तर रहा न लेख॥३ ८॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि चाहे कितना भी वेश धारण करो बिना सद्गुरु की कृपा के अज्ञानजन्य भ्रम नहीं भाग सकता है। स्वामी से परिचये नहीं हुआ और भीतर (अतरात्मा) मे प्रभु की प्राप्ति का कोई लक्षण नहीं दीखा। कर बंदगी विवेक की भेष घरे सब कोय। सो बन्दगी बहि जान दे शब्द विवेक न होय॥३ ९॥ अर्थ-विवेक महत्त्वपूर्ण है। वेश धारण करने से क्या होगा। वेश सभी लोग धारण करते है। विवेक की प्रार्थना करो। उस नमस्कार को नथ्ट हो जाने दो जिससे गुरु शब्द का विवेक नहीं होता है। टिप्पणी-आचार्य शकर ने इसलिये “विवेक चूड़ामणि” की रचना की। गो० तुलसीदास ने लिखा-विनु विवेकु ससार घोर निधि पार न पावै कोई। कुरु बहियाँ बल आपनी छोडु बिरानी आसु। जे (घर) अँगना नदिया बहै सो कस मरत पियास ॥४०॥ अर्थ-प्रयल करो। दूसरो की आशा छोड़ो । दूसरो के सिखाए रास्ते से भगवत्त्व की प्राप्ति नहीं होती है। तुमहारे आँगन मे प्रभु प्रेम की नदी बहती है। कितु अज्ञान के कारण तुम्हे समझ में नहीं आता। तुम प्रेम प्यासे हो। अलंकार-दृष्यत | कलि काठी काले घुना जतन जतन घुन खाय। काया भध्ये काल बसत है मर्म न कोई पाद ॥४१॥ शब्दार्थ-कलि 5 कलियुग | काठी - काष्ठ। शरीर। अर्थ-यह शरीर कलियुग का काष्ठ है। इसमे कलि के सारे पाप भरे है। इसे काल घुन अनेक का से खा रहा है। यह काल घुन शरीर मे ही रहता है। कितु इस तथ्य को कोई नहीं जानता है। कलि खोटा जग आँधरा शब्द न माने कोय। जाहि कही हित आपना सो उठि बैरी होय॥ ४२॥ अर्थ-कलियुग बुरा है और कलियुग के छोग अज्ञानाधकार से अधे हो रहे है। कोई भी सद्गुरु का उपदेश मानने को तैयार नहीं है। जिसको भी उसके अपने हित की बात कहिए वही दुश्मन बन जाता है।

साखी ३५९ कहंता तो बहु मिला गहंता मिला न कोय | सो कहंता वहि जान दे जो न गहंता होय॥४ ३॥ अर्थ-खाली खाढी कथनी वाले बहुत मिलते है। कितु आचरण करनेवाले नहीं मिलते है। कहनेवालो को विषयसागर में वहने दो । प्रभु को गहनेवाली को सम्मान दो। काजर की ही कोठरी काजर ही का कोट। तोंदी कारी ना भई रही सो ओट हि ओट॥४४॥ शब्दार्थ-कोठरी & अतर हृदय [कोट 5 शरीर | अर्प--अतर भी काला है। अशुद्ध है। शरीर भी अशुद्ध है। कितु इनमे रहनेवाली जीवात्मा (तुद) मे विकार नहीं आया क्योकि वह प्रभु नाम की ओट मे है। काजर की ही कोठरी बुड़ता ई संसार। बलिहारी ताहि पुरुष की पैठि जु निकल निहार॥४५॥ अर्थ-यह ससार वासनाभरी काजढ की कोठरी के समान है। इसमे जो भी आया उसे दाग लग जाता है। वह पुरुष धन्य है जो वासनापक मे बिना डूबे निकल आता है। काल खड़ा सिर ऊपरे जागि विराने मीत। जाके घर है गेल मे सो कैस सोबे निर्धीत ॥४६॥ अर्थ-ऐ मित्र, तुम्हरे सिर पर काल खड़ा है। तुम इस ससार के लिए पराए हो। तुम्हे तो जाना ही होगा। जिसका घर गली मे है वह निश्चित कैसे सो सकता है। किसकी गली ? यम या मृत्यु की गली | काला सर्प शरीर मे खाई सब जग झारि। बिरला ते जन बॉँधिहें जो रामहि भजे विचारि॥४७॥ शब्दार्थ-झारि 5 समूह | ४ अर्थ-इस शरीर मे मृत्यु रूप काला नाग प्रविष्ट है। यह सारे ससार को खा रहा है। केवल राम को भजनेवाला कोई बिरला ही इससे बच सकता है। -कासी गति संसार की ज्यो गाडर के ठाट। एक परे जेहि गाड़ मे सबै गाड़ में जाय ॥४ ८।॥। शब्दार्थ-गाडर > भेड़। गाड़ 5 कुऑ। अर्थ-काशी मे मरने से मुक्ति मिलती है। (कास्या मरणान्युक्ति) यह विश्वास भेड़िया धसान जैसा है। एक कुऐँ मे गिरा तो सभी कुएँ मे गिरते है। अलंकार-उपमा। क काह बड़े कुल ऊपने जो बड़ि बुद्धिहि नाहिं। जैसे फूल उजारि के मिथ्या लाल झरि जाहिं ॥४९॥ शब्दार्य-उजारि < उजड़। अर्व-उच्च कुल मे उत्नन्न होने से क्या यदि तदनुकूल बुद्धि भी ऊँची नहीं हुई? जैसे ऊजड़ स्थान का फूल व्यर्थ खिलता है और झड़ जाता है। छुलनीय-ऊँचे कुल का जनमिया करनी ऊच न होय | काहे हरिणी दुर्बठी चरे हरियरे ताल। लक्ष्य अहेरी एक मृग केतिक ठारे भाल॥ ५०॥ अर्थ-ऐ हरिणीरूपी जीव तुम दुबले क्यो हो? हरेभरे ताल अर्थात् वासना की हरियाली के धौय से कोई व्यक्ति सुखी नहीं हो सकता है। क्योकि वासनायुक्त जीव प्रवृत्तिरूप व्याध के

३६० कबीर समग्र शिकार होते है। जीवरूपी मृग एक है। प्रवृत्तियाँ बहुत है। जीव विषय काल के भाढ़ो को कितना टाल सकता है अर्थात् उसे काल का भाला ढगना अनिवार्य है। कृष्ण समीपे पांडवा गले हिमालय जाय। लोहा के पारस मिले तो काहे काई खाय॥५१॥ अर्थ-कृष्ण के समीप ही पाडव हिमालय मे गल गये। लोहा (वासनायुक्त व्यक्ति) को पारस प्रभु मिल जाते तो काई (मृत्यु) नहीं खा पाती। कितु कृष्ण पारस नहीं थे। अवतारी होने के कारण वे स्वय नाशवान् थे। केतिक दिन एही गए अनरूचे का नेह ! ऊसर बोये नहि जमे जो घन बरसे मेह ॥५२॥। अर्थ-जीव के जाने कितने दिन बीत गये। उसका प्रेम माया से था। माया के रहते कितनी कोशिश कीजिए, ज्ञान नहीं हो सकता है। जैसे मेघ कितना भी बरसे कितु ऊसर में बोया हुआ नहीं जम सकता है। माया का क्षेत्र ज्ञानोत्पत्ति की दृष्टि से ऊसर है। ठुलनीय-ऊसर बरसहि तृण नहि जामा। केला तबहि न चेतिया जब ढिग लागा बेर। अब के थेते क्या भया जब कॉटेनि लिया घेर ॥५३॥ अर्थ-केलारूपी व्यक्ति के पास जब वुराइयाँ बेर गयी तभी क्यो नहीं समझ मे आया था। अब तो माया की वुराइयो मे फेंसः ग्रए। बहुत से पापो से घिर गए हो। अब चैतन्य होने से क्या फायदा है ? अलंकार-अन्योक्ति | कोठी तो यह काठ की ढिग ढिग दीन्ही आगि। पंडित पढ़ि गुणि झोली भये साकत उबरे भागि ॥५४॥ शब्दार्थ-कोठी 5 शरीर ढिग-ढिग 5 जगह-जगह | झोली > ज्वाला । अर्थ-यह शरीर काठ की कोठी है। इसमे जगह-जगह वासना की आग जल रही है। पढ़ने लिखनेवाले पडित तो उस आग मे जल गये। कितु शाक्त भाग निकला। खेत भला बीज भला बोइन मुठिका फेर। काहे बिरवा रूखरा हैं गुण खेतहि खेर॥५५॥ शब्दार्थ-खेत 5 शरीर। वीज - चिदात्मा। बोइन - बोया। मुठिका फेर - मुट्ठी घुमा | फिर सत्सगुद्वारा। विरवा 5 मानवमन। खेर 5 घास। पुआल। | अर्थ-यह शरीर और उसमे स्थित चिदात्मा दोनो अच्छे है। इनमे मुठी भर-भरकर सत्संग का बीज बोया गया। उससे जो मन वृक्ष तैयार हुआ वह विषय रूखा है। खेत मे त्रिगुण के घास, पुआल पड़े है। गही टेक नहि छोड़ई चोच जीभ जरि जाय। ऐसे तप्त अँगार हे ताहि चकोर चबाय ॥५६॥ अर्थ-चकोर अगार खाता है। अपनी इस आदत को वह कभी नहीं छोड़ता है। चाहे चोच, जीभ जल क्यो न जायें। इसी प्रकार भक्त अनेक कथ्े के बावजूद भगवतू प्रेम में एकनिष्ठ रहता है। एकनिष प्रेम प्रकाशन के लिये चकोर की उपमा अत्वत प्रसिद्ध है। अलंकार-अन्योक्ति | गावे कथे विचारे नाहीं अनजाने का दोहा। कहईहिं कबीर पारस परसे बिना ज्यो पाहन भीतर लोहा ॥५७॥। अर्व-बहुत लोग नासमझी से भक्ति दोहो को गाते है। कहते है। कितु विचार नहीं करते

३६१ है। लोहा तों हकुकन्कक कपल रेस व बाकी « घारस गुर वाक्य हैं! शुणिया कहे नियुर्ण गुर्णहिं | दीजे जामफल का खाय ५८ अर्थ-गुणवान् गुणो को समझता हैं। निर्गुणिया है। गार्लियाँ देता के जैसे ही हैं जैसे की दे दे। वह न तो समझेगा। हरे काया छीजनिहार | बाकी लगार 0५५) छागो। ठगार + प्रेगे। बाकी उर्सकीं है पशर न होनेवाला है समय माये से उतरे शव द्विमूखा होय घसीटि है फंस सके नि कीय॥६ ३ ॥| रथ यह कि जिसे गुरु का ध्यान नहीं हैं थी है शब्दसाधना से भी विमुख है, सकता हैं। |] बोलना करि लेई (५ अर्थ-गुरु लेहें (अज्ञानी) की में मसकले (शीन धराने का यत्रे) पी रखकर शब्द दर चित्त दर्पण के सेन स्वच्छ हो जाता जिसमे सम्पूर्ण ब्रह्मसत्ता अलंकार शुह तज के भये उदासी के जाय खोली पाके चुनि चुनि खाय (६३३ जिसमें पान रख जाता बरई ह पान की धधा श््दार्य चोली की करनेवाली एक जाति विशेष। यह काल भी अर्थ-घर छोड़ उदासी हुए के लिए वन खर्ड गये। कितु उससे क्या हंआ।. डिबिया में पान है बर्खू उससे छॉटकर खाता उसी काठ ऐसे व्यक्तियों चुन-चुनकर रूपकातिशयोर्फि | गोरख रसिया योग के मुये मोजरि देह १६४ प्रेमी थे। योग के कारण उनवीं नहीं हुई। यद्यपि देह

३६२ कबीर समग्र गयी। देह का मॉस गलकर मिट्टी मे मिल गया। कितु फिर भी देह कोरी ही रही। अशुद्ध नहीं हुई। के अलंकार-विशेणेक्ति | आम ऊँचे पहाड़ पर और मोटे की योह। ऐसा ठाकुर सेइये उयरिय जाकी छोंह ॥६५॥ अर्थ-ऐसे प्रभु की आराधना करनी चाहिए जिसका स्थान बहुत ऊँचा हो। जो अधिक शक्तिशाली (मुहा० मोटी बॉह) हो। ऐसे ही प्रभु की छाया मे जाकर मुक्ति मिल सकती है। घाट भुलाना घोट दिनु पेष भुलानी कानि। जाकी मांडी जगत महें सो न परा पष्ठिचानि ॥६ ६॥) शद्ार्ध-घाट

साखी ३६३ , अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। चलते-चलते पगु बका नगर रहा नव कोस। बीचहि में डेरा पड़ा कहो कवन का दोस ॥७२४७ अर्व-ससार मे चलते-चलते पैर थक गया। अभी नव कोस के बास गतच्य है। नव इद्रियो को पार करने के बाद ही प्रभु से भेंट होगी। कितु विषयो मे लगाव ने इतना कमजोर कर दिया है कि बीच मे ही रुकना पड़ा। इसमे किसका दोष है? अपना ही दोष है। चार चोर चोरी चले पग पनही उत्तारि । चारों दर घूनी रही पंडित करहु विचारि॥७३)॥) अर्थव-चार चोर (मन, चित्त, बुद्धि और अहकार) चारो ने अपने पैर को बधनमुक्त कर नि सकोच होकर चोरी करना चाहा! वासना में लिप्त हुए। कितु चारो अवस्थाओ (बाल, किशौर, युवा और वृद्ध) की थूनी (भा) गिर गयी। फलत चे कुछ नहीं कर सके। पडित इस पर विचार करे। अलंकार-खूपकातिशयोक्ति | चारमास घन बर्षिया अति अपूर जल नीर। पेन्हे चढत न बखतरी चुभे न एको तीर ॥७४॥ अर्व-चार मास अर्थात् बाल्य, किशोर, युवा एव वृद्धावस्था मे धन खूब कमाया। पूरा सुख भोगा। फिर भी सतोष नहीं हुआ। अतत बखतरी पहनी नहीं गयी। अर्थात् शरीर की सुरक्षा नहीं हो सकी और न तो एक भी ज्ञान तीर का प्रवेश ही हो सका। चौगोड़ा के देखते व्याघा भागो जाय। एक अचंभा हो देखा मरा काठ को खाय ॥७५॥ शब्दार्थ-चौगोड़ा न १ पशु। २ यहाँ शुद्ध अत करण। व्याधा 5 काढ। मरा ८ विषययुक्त जीव। काठ >वह लकड़ी जिससे मृतक का दाह होता है। '. अर्थ-अत करण की शुद्धता"को देखकर कालरूपी व्याधा भाग गया। फलत मृतक प्राणी हि पा मुक्त) की काठ क्या जलाएगा ? काठ (विषय) ही मृतक (विषय मुक्त) का भोज्य बन गया है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | छब दर्शन मे जो प्रमाणा तासु नाम बनवरी। । कहहि कबीर ई खलक सयाना इनमे हमहि अनारी ॥७६॥ अर्थ-षड्दर्शन मे जो कुछ भी प्रामाणिक है वह सब ईश्वर का नाम है। केवल प्रभु ही प्रमाण है। यह ससार होशियार है। केवल हर्मी बेवकूफ है। -अड़दर्शन-न्याय, साख्य, वेदात, वैशेषिक, मीमासा, योग | जंत्र बजावत हो सुना टूटि गए सब तार। जंत्र विधारा क्या करे गए बजावनहार [७७॥ अर्थ-इस शरीर रूपी यत्र को बजाते सुना था। कितु अब उसके सारे तार टूट गए। दा यत्र क्या करे? कैसे बजे? जबकि सबका सचाल्क जीवात्मा ने उस शरीर को छोड़ या है। अलंकार-रूपकतिशयोक्ति | जब लूगि ठोला तब लगि बोला तब लगि धन व्यवहार । ढोल फूट घन गया कोई न झाँके दार॥७८॥ अर्थ-जब तक यह शरीररूपी ढोल है तब तक आवाज है। तब तक धन का व्यवहार है। ट

५4 3५7 ४७७७ ३६४ कबीर समग्र ढोल फूटा। शरीर नष्ट हुआ। अब कोई दरवाजे पर झाँकने भी नहीं आता है। जब लगि तारा जगमगे तब लगि उगे न सूर। जब लगि जीव कर्म गस डोले तब लगि ज्ञान न पूर॥७९॥ अर्थ-जब तक तारे टिमटिमाते है, तव तक सूर्योदय नहीं होता है। जब तक जीव कर्मवश घूमता है, तव तक ज्ञान पूर्ण नहीं होता है। जरा मरण बालापना चारि अवस्था आह। जस मुसवहि तके विलछाइया अस जम छात लगाय ॥८०॥ अर्थ-चार अवस्थाएँ है वाल, युवा, वृद्ध, मृत्यु | मनुष्य रूप चूहे को विल्लीरूपी काल घात मे है। अलंकार-रूपकातिशयीक्ति | जहँ गाहक तहँ ही नहीं ही तह गाहक नाहि। बिनु विवेक भरमत फिरे देखि शब्द की छोहि॥८१॥ अर्थ-जहाँ प्रेम ग्राहक है वहाँ मै नहीं हूँ। जहाँ मैं प्रेम करना चाहता हूँ वहाँ हमारे प्रेम को स्वीकार करनेवाढा कोई नहीं है। विवेक के अभ्गव में घूमते है। माया में घूमते हे। भब्द का मूल नहीं छाया पकड़ते है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | जहर जिमीदे रोपिया अमि सींचे सत बार। कबीर खलक नाहीं तजे जामहें जोन विचार ॥८२॥ अर्थ-लोग धरती मे जहर बोते है। खराव कर्म करते है। उसे पुण्य कर्म से सींचते है। सी बार हल | कितु उस दुनिया को नहीं छोड़ देते जिसमे विकार वसता है। पाईजहाँ बोल तहँ अक्षर आया। जहँ अक्षर तहैं म्नाहि डिहाया॥ बोल अबोल एक है सोई। जिन एक लाखा सो ज्रिलो होई ॥८३॥ अर्थ-जहां कुछ कथन करना है वहाँ अक्षर अवश्य होगा। जहाँ अक्षर है, लिखावट और विद्या है वहॉ मन दृढ़ नहीं होता है। वह प्रभु बोल और अबोल के मध्य है। वह गुप्त और थोड़ा प्रत्यक्ष है। सगुण निर्गुण है। जो एक देखता है वह कोई बिरला हैं। तुलनीय-सर्व भूतेषु येनिक भावमव्ययमीक्षते | अविभक्त विभक्तेषु तज्ज्ञान विद्धि सात्त्तिकम॥ -गीता १८२० जहिया जन्म मुक्ते होता तहिया होत न कोय। छठी तुम्हारी ही जगा तू कहें चला विगोय ॥८४॥ अर्थ-जव यह सृष्टि जन्ममुक्त थी तब कोई नहीं धा। केवल शून्य था। पाँच महाभूत के बाद छठा यह ससार बना। ऐ जीव, इस छठी दुनिया को छोड़कर तुम कहाँ जा रहे हो? इस छठी मे ही पॉचो महाभूत है। और भी चीजे है। जाकी जिद्गा बंद नहि हृदये नाही सांच। ताके संग न लागिये घाले बटिया मांझ ॥ ८५॥|

साखी ३६५ अर्थ-जो बहुत बोठता है और उसके हृदय मे सच्चाई नहीं है, उसके साथ कभी नहीं जाना चाहिए। यह रास्ते मे ही धोखा दे देगा। जाके चलते खदे परा धरती होड़ बेहाल। सो सावन्त घर में जरे पंडित करहु विचार ॥८६॥ शबदार्थ-खदे < रवताई। स्वामीपन। सावन्त 5 सामन्त | अर्थ--जिसका मालिकिपन खूब चला। धरती जिसके स्वामीपने के भार से बेहाल हो गई, वह सामन्त घर में ही जालाया गया है। उसे कोई गगा ले जानेवाला भी नहीं मिला। पडित, वैभव की क्षणभगुरता पर विचार करो। जाके मुनिवर तप करे बेद थके गुण गाव। सोई देव सिखापनो कोई पतियाय ॥८७॥ अर्थ-जिस परमात्मा को प्राप्त करने के लिए मुनिवर तपस्या करते है, जिनके गुणों को गाकर वैद्य थक गये, मै उसी प्रभु को प्राप्त करने की शिक्षा देता हूँ। कोई विश्वास नहीं करता है। जाके सदूगुरु नहि मिला व्याकुल चहुँ दिसि धाव। आँदि न सूचे बावरे घर जर घूर बताव॥८८॥ अर्थ-जिसे सदूगुरु नही मिले, वह व्याकुल होकर चारो दिशाओ मे दौड़ रहा है। आँखो से सत्य नही दिखाई पड़ता है। जलते घर की रक्षा न कर घूर की आग बुझाता है। भावार्थ यह कि माया मे पड़ा है। जागृत रुपी जीद है शब्द सुहागा सेत। जलज दिदु जलकुक्कुटी कहहि कबीर कोइ देख॥८९॥ अर्य-प्रभु साधना मे जागृत जीव क्रे लिये गुरुदेव का शब्द सफेद सुहागा है। यह सात्तिक सुहागा जीव को ब्रह्म से जोड़ता है। ऐसा जीव ससार में कमलपत्र पर रखे जलबिदु तथा जलकुक्कुटी सा ससार सागर मे अठिप्त रहता है। जानि बूप्रि जड़ होय रहो बल तजि निर्बल होय। कहहि कबीर तेहि संत के पला न पकरे कोय॥९०॥ अर्थ-सत साधक जानबूझकर जड़ बना रहता है। बल छोड़कर निर्बल बना रहता है। टी सत महत्त्वपूर्ण है जो किसी का पल्लछा नही पकड़कर अपने पर भरोसा रखता है। जासों दिल नहि मिलिया शब्द बेधा अंग। कहहि कबीर पुकारि के हंस बके का अंग॥९१॥ अर्थ-जिसका हृदय सत-हृदय के अनुकूल नहीं है, जिसके हृदय मे सत शब्द का प्रवेश नहीं हुआ, जो सत वचनो के प्रभाव से हीन है। सत कबीर कहते है कि ऐसा व्यक्ति हस नहीं होकर बगुला है। क्योकि हंस तो तत्त्व को पहचानता है। जाहि खोजत कल्पे बीते घटहि मे सो मूल। बाढे गर्व गुमान ते ताते परिगो दूर॥९२॥ अर्थ-जिस परब्रह्म तत्त्त को खोजते युग बीत गये वह तो घट के भीतर ही प्राप्त है। कितु बढ़े अहंकार के कारण वह अब तक दूर था। जिनि जिनि शंबल नहि किया ऐसो पुर पठ (त्त) न पाय। झालि परे दिन आणदे शंघल कियो न जाय॥९ ३॥ ह अर्द-प्रत्येक व्यक्ति यात्री है। सबको दूर प्रभु के पास पहुँचना है। कितु रास्ते का सहारा (अम्वछठ) नहीं है। ऐसा कोई पुरपत्तन (गाँव) नहीं जहाँ टिका जा सके। अब जीवन लीला

३६६ कबीर समग्र न समाप्त होनेवाली है। इतनी देर हो चकी है कि अब कोई सहारा भी नहीं खोजा जा सकता है। इसलिये समय रहते ही सब कर लेना चाहिए। जिव दिनु जीव जिवे नहीं जिव को जीव अधार। जीव दया के पालिये पंडित करहु विधार ॥९४॥' अर्थ-जीव ही दूसरे जीव का सहायक है। एक दूसरे की सहायता से ही जीवन चलता है। इसलिए सभी जीवो पर दया करनी चाहिए। जिह्ना बंद देवहु बोलना निवाद। सार थी (सो) संगु कुरु गुरुमुख शब्द विचार ॥९ ५॥ अर्थ-जीभ बद करो। बोलना छोड़ो। मूल तत्त्व का साथ करो। गुरुमुख से शब्द का विचार करो॥ जीव घात नहि कीजिए यहुरि लेत बै कान। तीरथ गए न झघधिहु कोटि हीरा देहु दान॥९ ६॥ अर्थ--जीव हत्या मत कीजिए। मरा जीव बदला देता है। जीव हत्यारा तीर्थ जाए या करोड़ो हीरो का दान करे कितु उसे मुक्ति नहीं मिल सकती है। जीव जनि मारहु वापुरा सब एकहि प्राण। हत्या कबहूँ न छूटि है कोटिक सुनउ पुराण॥९७॥ अर्थ-सभी प्राणी एक ही है। सब मे एक ही प्राण है। इसीलिये कभी किसी जीव की हत्या नहीं करनी चाहिए। क्योकि जीवहत्या का पाप करोड़ो पुराण सुनने पर भी नहीं छूटता है। जीव मरण जाने नहीं अन्धा भया सब जाय। बादी दारे दाद नहि जन्म जन्म पछिताय॥९ ८॥ अर्थ-जीव की मृत्यु को समझता नहीं। अधा बने लोग जीव हत्या करते है। कितु ऐसा वादी यम के दरवाजे पर जाकर बार-बार पछताता है। जेते पत्र बनस्पति औ गंगा के रेणु। पंडित विधारा क्या कहे कबीर कहा मुख वेणु ॥९९॥ अर्थ-पेड़ो मे जितने पत्ते है, गगा मे जितने बालूकण है, उतनी ही इच्छाएँ है, उतने ही विचार है। इसमे पडित क्या करेगा? पडित को कुछ भी समझ मे नहीं आता है। कबीर ने किसी किताब से नही, लिखकर नहीं,मौखिक जो बात बता दी उसे कोई पडित नहीं बता सकता है। जेहि गए पंडित ताते ही गई बहीर। ऊँची घाटी राम की तेहि वढ़ि गया कबीर ॥१००॥ शब्दार्थ-बहीर 5 (स वधिर) अज्ञानी। अर्थ-पडित और अज्ञानी की राह एक ही है। दोनो वाह्मय साधना मे विश्वास करते है। ' कबीर साहब राम नाम की ऊँची घाटी पर चढ़कर गये। साधना की ऊच्च भूमिका पर पहुँचे | वह स्थान जहाँ विरले ही जा सकते है। जेहि मारग सनकादि गे ब्रह्मा विष्णु महेश। कहहिं कबीर सो मारग थाकिया मैं काहि कही उपदेश ॥१०१॥ अर्व-भक्ति साधना का वह मार्ग व्यर्थ (थाकिया) हो गया है जिस मार्ग से सनक, सनदन,, सनत्कुमार तथा सनातन एव ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि ने साधना की थी। कबीर साधना के दूसरे मार्ग का उपदेश देते है। रू

साखी ३६७ - जेहि बन साथर मुझ्त ते रसिया छाल करहि। अब कबीर पाँजी करी पंची आवहि जाहि॥१०२॥ अर्थ-जिस वन-सागर मे रसिक प्रेम (लाल) करते थे। विषय मे लगे थे, उसी वनसागर के रास्ते का सतुगुरु ने पॉजी (पैदल) के लिये बना दिया है। अब पथिक आतै-जाते रहते है। संत कबीर ने भक्ति के मार्ग को सरल बनाया । जेहि बन सिंध न संचरे पक्षी नहि उड़ि जाय। सो बन कबिरन्डि डीडिया शून्य समरधि लगाए ॥१ ०३॥ अर्थ-जिस वन (सहस्ारो मे सिह नहीं जाते है, मनपक्षी उड़कर नहीं जा सकते है, उस वन मे कबीर ने शून्य समाधि लगाई है। अलंकार-व्यत्तिरेक | जैसी कहे करे जो तैसी राग देघ निरुवारे। ता महैँ घटे़ बढ़े रतियो नहिं यहि विधि आपु समारे ॥१ ०४॥ अर्व-मनुष्य की कधनी करनी मे एकता होनी चाहिए। राग-द्वेष से अछुग रहे। छोटा-बड़ा कोई लोभ नहीं करे। ऐसा व्यक्ति ही आत्मतत्त्व को पा सकता है। जैसी गोली गुमज की नीच परे ठहराय। ऐसा हृहया मुर्ख का शब्द नहीं ठहराव ॥१ ०५॥ अर्व-जैसे नीचे से चली गोली गुम्बज पर नहीं ठहर सकती है वैसे ही मूर्ख हृदय मे शब्द (गुरु उपदेश) नहीं ठहर सकता है। जैसी लागी पेड़ की तैसी नियहै छोर। कोड़ी कोड़ी जोरि के कीन्हो लक्ष करोर॥१०६॥ ही अं पेड़ होगा वैसा ही उसका ओर छोर होगा। कीड़ी-कौड़ी जोड़ने से लाख करोड़ ता है। जो घर रहे सर्प का ता घर साधु न होय। सकल संपदा ले गया विषहर लागे सोय ॥१ ०७॥ अर्थ-जिस घर मे वासना का सर्प रहता है वहों साधु नहीं रह सकता है। कितु विषधर सोया रहा और सारी सपत्ति यमराज लेकर चले गये। जो जन झीने राम रस विकसित कबहूँन रूख। अनुभव भाव न दरसये ते नल (र) दुःख न सुझ॥१ ०८॥ शब्दार्थ-झीने - (सं जीर्ण, प्रा जिण्ण) दुर्बह। रूख < रुक्ष | अर्थ-जो दुर्बल या साधनाहीन व्यक्ति रामरस मे डूबा नहीं, सदा उस रस से अलग रहता है। रामानुभव के भावो का स्पर्श नहीं किया,वह व्यक्ति सुख नहीं दुख पाता है। जो जानहु जगजीवना जो जानहु तो जीव | पान पधायेहु आपना पनिया मागि न पीव ॥१ ० ९॥ अर्थ-सारे ससार के जीवो को अपना समझो। सारा जग जीवन एक जीव है। अपनापन का भाव रखने पर किसी से पानी मॉगकर पीने की जरूरत न पड़े । भावार्थ यह कि सपत्ति सबंधी झगड़े मिट जायें। जो जान्हु जिव आपना करू जीव का सार। जियरा ऐसा पहुना मिले न दूजी बार॥११०॥ शब्दार्य-सार > खोज खबर | पहुना 5 अतिथि। अरई-सभी जीवो को अपना समझकर उनकी खोज खबर लो। जीव ऐसा अतिथि है जो

३६८ कवीर समग्र किसी को दुवारे नहीं मिलता है। इसलिये सवसे सबंध बनाए रखना चाहिए। जो ते साँचा बानिया सॉँची हाट लगाव। अन्दर झारू देह के कूरा दूरि बहाव॥१११॥ अर्थ-यदि तुम सच्चे व्यापारी हो तो अपने हृदय में हाट लगाओ। सत्य का व्यापार करो। भीतर साफ करो। हृदय की सारी वासना (कूड़ा) को दूर कर दो। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | जो मिला सो गुरु मिला शिष्य मिला नहि कोय। छो लाख छानबे सहस रमैति जीव पर होय॥१ १२॥ अर्थ-कोई व्यक्ति शिष्य वनकर सीखना नहीं चाहता है। अज्ञानी होकर भी नकली ज्ञान के अहकार मे डूबा है। छह लाख छियानवे हजार ग्रथो को पढ़ने के वाद भी सारे भास्त्रो का ज्ञान राम इति (रमैति) पर ही निर्भर है। रमैति द्वारा जीव का कल्याण होगा। ज्ञान रत्व की कोठरी चुपक दिया है ताल। पारखु आगे खोलिये कुंजी वधन रसाल ॥११३॥ अर्थ-हदय रूपी कोठरी मे ज्ञानरल भरा है। उस पर मोन का ताला लगा है। इस ताढे को मीठे वचनो की कुजी लगाकर अधिकारी पुरुष (पारखू) के सामने खोलिये। अर्थ यह कि ज्ञान की बाते ज्ञानी के सामने ही करनी चाहिए। ज्यो दर्पण प्रतिबिम्द देखिए आप दुनो महेँ सोई। या तत्त्व ते वा तत्त्व याही मे पुनि होई॥११४॥ अर्थ-जीव और ब्रह्म का सबंध विम्व प्रतिविम्ब भाव वाला है। जैसे दर्पण में पड़ा प्रतिबिम्य और विम्ब दोनो एक ही है। ब्रह्म का प्रतिविम्ब प्रकृति दर्पण मे पड़ता है। यही जगत् है, जीव भी है। ज्यों मुदराद समशान ज्यो शील सबरूप समान । कहहि कबीर सावज गती तबकी देखि झुकाहि॥११५॥ अर्थ-जैसे मुदद पत्थर अपने साथ रहनेवाले सामने की वस्तुओ समान रूपशील (गुण) का बना लेता है। वैसे ही शिकार (सावज) अर्थात् जीव अपने दुश्मनो को भी झुका कर अपने जैसा बना लेता है। साधुता से साधुता विकसित करता है। झालि परे दिन आधये अन्तर परिगो साँच्च। बहुत रसिक के लागते वेश्या रहि गइ बॉद्च॥११६॥ अर्थ-जीवन का सूर्य अस्त हो गया। वृद्धावस्था रूपी संध्या आ गयी। बहुत से शास्त्रो और मतवादो के चक्कर मे रहने से कुछ नहीं मिला। आलज्ञान नही हो सका। जैसे बहुत से पुरुषो के चक्कर मे वेश्या सतान पैदा नहीं कर पाती है। अलंकार-दृध्धत | झिलिमिलि छझगरा झूलते वाकी छुटी न काहु। गोरख अठके कालयुर कौन कहावे सहु ॥११७॥ अर्थ-सभी लोग नाना प्रकार के विवादो मे फंसे है। कोई उससे मुक्त नही है। गोरखनाथ जैसे साधक भी कालपुर मे (यमराज के यहाँ) अठके है। कोई भी व्यक्ति साधु कहलाने की स्थिति मे नही है | ॥ -यह दोहा गोरखनाथ का हो सकता है|

साखी ३६५ झूला सो झूला बहुरि के चेतना | शब्द की छुरी से संशय को रेतना॥ ११ ८॥ शब्दार्थ-रेतना 5 काटना | अर्थ-वासना के झूले मे झूले-सो झूले। अब तो चेतो। सद्‌गुरु के शब्द की छूरी से अज्ञानजन्य सशय को काटो। क्योकि सशयात्मा का नाश होता है। तुल०-सशयात्मा विश्यति। ढादस देखहु मरजीवा को घह जोरि पैढा पाताल। जीव के अटक माने नहीं ले गहि निकसा लाल॥११९॥ शब्दार्थ-मरजीवा > जीवन्मुक्त। धह* धैंसना। पाताल 5 मूलाधार चक्र| ढाल > मुक्ति। परमतत्त्व| अर्थ-जीवन मुक्त साधक का साहस देखने योग्य है। उसने साधना द्वारा मूलाधार चक्र में प्रवेश किया। वहाँ से कुडलिनी जागरण का कार्य प्रारभ किया। कहीं अटके बिना शून्य शिखर तक चला गया। वहाँ से परमतत्त्व को प्राप्तकर शरीर से बाहर आया। भावार्थ यह कि जो जीर निम्नगामी था वहीं ऊर्ध्वमुख होकर मुक्त हो गया। मु विग बूड़े उछले नहीं इहै अंदेसा मोहि।, सलिल मोह की धार में का निदिआई तोहि॥१२०॥ अर्थय-मोह रूपी जल की धारा मे क्या तुम्हे नींद आ गयी ? लोभ मे गये। फलत किनारे (ढिग) मे ही डूब गये। निकछ न सके। मुझे पूरी आशका है कि यह इसलिये हुआ कि मोह मनुष्य की चेतना को समाप्त कर देता है। ! तन संशय मन सुनहा काल अहेरी नीत। एक हि डांग बसेउबा कुशल पूछहु काहू मीत ॥१२१॥ शब्दार्थ-सुनहा > कुत्ता। भूँकनेवाला | डाग 5 लाठी। बसेउवा 5 बसना | ढूगना। अर्थ-शरीर सशयग्रस्त है। मन कुत्ते जैसा लोभी, खुशामदी और दूसरों को देखकर भूकनेवाला है। कितु इस कुत्ते को कालरूपी शिकारी की एक लाठी भी छूग गयी तो इस मित्र का कुशल क्यो पूछा जाय। अकुशलदग्ध का कुशल क्यो? तहिया कृत्रिम न होता घरती होति न नीर। उतपति परले नहिं होता तब की कही कबीर ॥१२२॥ अर्थ-सृध के पूर्व की बात कबीर जानते है। उस समय की बात कहते है जब यह कृत्रिम ससार, यह धरती, यह पानी नहीं थे। उत्त्पत्ति प्रढय के चक्र भी नहीं थे। ताकी पूरी का परे गुरु न लखाई बाट। ताके बेरा बूडही फिरि औधद घाठ॥१२३॥ अर्थ-जिसे सद्‌गुरु का ज्ञान नही प्राप्त हुआ उसका कार्य कभी पूरा नहीं हो सकता है। उसकी नाव बीच मे ही डूबेगी। वह ससार सागर पार नहीं कर सकता है। तामस केरे तीन गुण भँवर लेहि तहैँ वास । -.. एकहि डोरे तीन फल भाटा ऊख कपास॥१ २४॥ अर्थ-तामसिक वृत्तियों अर्थात्‌ सासारिकता सत्त्व, रज, तम से भरी है। वहाँ चचल-चित्त लोग निवास करते है। केवठ एक मन की चचलता छोड़ दी जाय तो भारा (बैगन) का तमोगुण, ऊँख का रजो गुण और कपास का सत्त्व गुण सभी से मुक्ति मिल जायगी। इसका दूसरा अर्थ है कि धर्म, अर्थ, काम तीनो पुरुषार्थ उचित ढंग से काम करने लगते है। सवका लगाव छूट जाता है। हा

३७० कबोर समग्र ताहि न कहिए पारखू पाहन लखे जो कोय। नर नग या दिल जो लखे रतन पारखू सोय ॥१२५॥ + अर्थ-पत्थर की परख करनेवाला जौहरी नहीं है, जो मनुष्य रूपी नग या दिल को समझता है उसे असली रलपारखी कहना चाहिये। अलंकार-नरनग मे रूपक। . तीनि लोक ठीड़ी भया उड़े मन के साथ। हरि जाने बिनु भटके परे काल के हाथ ॥१२६॥ अर्थ-जीव चचल मन के साथ टिट्ठी बना तीनो लोकों मे घूमता रहा। भगवान् को जाने' बिना भटकता रहा और काल के हाथ पड़ गया। क्योकि माया मे भटकनेवाले की काह से मुक्ति नहीं है। तीनि लोक चोरी भया सर्वस सब का लीन्ह। बिना मूँड का चोरवा परा न काहू चीन्ह ॥१ २७॥ अर्थ-तीनो लोको मे चोरी हुई। सबका सर्वस्व चला गया। बिना सिरवाला मायारूपी चोर को किसी ने नहीं प्‍वाना। तीनि लोक भो पीजरा पाप पुण्य भो जाल॥ सकल जियरा सावज भया एक अहेरी काल ॥१२८॥ अर्थ-तीन छोक पींजड़ा है। पाप-पुण्य जाल है। सभी जीव शिकार है। काढ सबका शिकारी है। ० अलंकार-रूपक। तीरथ गए ते बहि मुए जूड़े पाणि नहाय। कहहि कबीर पुकारि के राक्षस होय पछताय ॥१२९॥ शब्दार्थ-जूड़े 5 ठड। अर्थ- जो तीर्थों मे गए वे ठडे पानी मे नहाकर मर गये। अल्पायु के कारण वे राक्षस योनि मे जन्म छेगे। न तीर्थ जाते, न यह दशा होती। तीरथ गए द्ध जना चित चंचल मन चोर। एको पाप न काटिया मन दस लादे और॥१३०॥ अर्थ-तीर्थ जाने से कोई फायदा नहीं है। क्योंकि वहाँ चित्त की. चचलता और मन की चोरी बनी है। -, , कटना तो दूर और भी दस मन पाप लादे आ गये। तीर्व भई विष वेलरी रही जुगन जुग छाव। कबिरनि पेड निकंदिया क्यो न हलाहल खाय॥१ ३१॥ अर्थ-तीर्थ जहर है। विष की ठता है। यह लता युग-युगो से छायी है। सत कबीर ने तीर्थ रूपी जहरीले पेड़ को उखाड़ दिया। क्यो न इस हलाहल को खाया जाय। कितु तीर्थ हलाहल से भी भयकर है। दर्पण के गुफामहैं सोनहा पैठे धाय। देखे प्रतिमा आपनी भूँकि भूंकि मरि जाय॥१३२॥ अर्थ-दर्पण रूपी गुफा मे कुत्ता दौड़कर बैठ गया। अपनी ही प्रतिमा को देखकर भूँकभूककर मर रहा है। माया दर्पण है। जीव कुत्ता है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | दुर्मति दुर्मीति दूर करे अच्छा जनम बनाद। काग गमन बुधि छोड़ दे इंस गमन चलि आब ॥१३३॥

साखी ३७१ अर्थ-विषयवासना की दुर्बुद्धि दूर करो। अपने जन्म को अच्छा बना लो। कौए की चाह छोड़कर हस की चाल चलो। दृहरा तो नूतन भया तदपि न चीन्हे कोय। जिहि यह शब्द विवेकिया छन्न घनी है सोय ॥१ ३४॥ शब्दार्य-दुहरा 5 दोहा । अर्व-लोग नये-नये दोहों के चक्कर मे है। कितु पद या प्रभुषद का विचार नहीं करते। जो शब्दों का विचार करता है वही धनी है। वही क्षत्रधारी है। वही ज्ञानी है। देश विदेश हम फिरे मन ई भरा सुकाल। जाके दूँढत में फिरें ताके परा दुकाल ॥१३५॥ अर्थ-मै देश-विदेश घृमता रहा। मन सुकाठ को खोजता है। कितु मै जिसको ढूँढ़ता हूँ उसका अकाल पड़ गया है। वह कहीं नहीं है। दोहरा कतर कहहि कबीर प्रतिदिन समो जु देखि। मुई गये न बहुरे बहुरि न ऐहै फेरि ॥१ ३६॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि जो लोग दिन प्रतिदिन दोहा कहते है, वे केवल दुहराते है। अपनी अनुभूति नहीं, परानुभूति कहते है। मरने पर फिर लौटना नहीं होगा। इसलिये इस शरीर के रहते कुछ कर ढो। द्वारे तेरे रामजी मिलहुँ कबीरा मोहि। ते तो सब मे मिलि रहा मैं न मिलूँगा तोहि॥१३७॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि भगवान् सबके दरवाजे के भीतर है। हृदय मे है। हृदय द्वार खोलो वे तुरन्त मिलेगे। हे प्रभु, तुम तो सब में मिले हो कितु मै जीव अज्ञानवश तुमसे नहीं मिल पा रहा हूँ। घरती जानति आप गुण करहूँ न होती डोल। तिल तिल बढ़ि गरहु होती ठीकडु के मोल ॥१३८॥ अर्थ-धरती का गुण है थैर्य। धरती अपने इस गुण को जानकर कभी भी प्धैर्य नहीं छोड़ती है। तिरु तिल धीरे-धीरे बढ़कर भारी (गरहु) होती है। ठीक मूल्य पर पहुँचती है। दिप्पणी-गीता मे कहा हैशैनै शैनैरुपरमेद् बुछया धृति गृहीतया। आत्मसस्थ मन कृत्रा न किश्िदषि चिन्तयेत्)॥ ६/२५। घद की डादी लाकरी ओभी करे पुकार। अब जो परेउ लोहार घर डाढ़े दूजी बार॥१३९॥ शब्दार्य-धव < धूप। डाढ़ी > जली। ओभी - खड़ी । लोहारघर < काल या यमघर। दूजी * दूसरी। अनेक | अर्थ-जिस जीव ने अपना सारा जीवन धूप मे अर्थात् व्यर्थ खड़ा बिताया। वह पुकार रहा है। अब तो काल के गाल में चला गया हूँ। दूसरी बार था बार-बार जलाया गया हूँ। जन्ममरण चक्र मे फँसा हूँ। नग पषाण जग सकल है लखबैया सब कोय। नर नग उत्तम पारखू जग महैँ बिरले होय॥१४०॥ अर्थ-ससार मे नग पत्थर या ज्ञान विज्ञान के जानकार (परीक्षक) बहुत से है। सभी को लगता है कि वे सब समझते है। कितु नर रूपी नग का पारखी विरला ही रहै। डर

 नित खरसान लोह धन पूटे। नित के गुष्टि माया मोह टूटे॥ १४१॥ शब्दार्थ-खरसान >हथियार तेज करनेवाल्ा यत्र। गुष्टि > गोष्ठी| ठोह 5 हथियार। धन,« शक्ति । ी अर्थ-नित्य खरसान पर चढ़ाने से हथियार की शक्ति प्रगट होती है। नित्य की गोष्ठी से, सतृसगति से, माया मोह के बधन टूट जाते है। नयन के आगे मन बसे पलक पलक कर दौर। तीनि लोक मन भूप है मन पूजा सब ठौर॥१४२॥ अर्थ-मन आँखों से आगे चलता है। पल-पल दौड़ता है। मन तीनो लोको का राजा है। सर्वत्र मन की ही पूजा होती है। इस मन का पूर्ण होना आवश्यक है। नव मन दुग्ध बटोरिक टिपके भया बिनास। दूध फाटि कॉजी भया घुतहु को नास ॥१४३॥ अर्थ-नव मन दूध बटोरा। पवित्र साधना की। कितु उसमे वासना का एक दूँद खट्द पदार्थ गिर गया। फलत दूध का विनाश हो गया। थोड़ा भी छोभ साधना सिद्धि को नष्ट कर देता है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। नष्ठा का ई राज है नफरत वरते तेज । सार शब्द ढकसार है दृदये माहि विवेक ॥१४४॥ अर्थ-यह ससार राज्य नष्ट होनेवाला है। माया राज्य है। यह सबको घृणा सिखलाता है। इसमे मूलतत्त्व विवेक है। यही शब्द टकसार भी है। इसे हृदय मे स्थान दो | नहिं हीरा की बोरियां नहि हंसन की पाति।._ सिघहु के लेहड़ा नहीं साधु न चले जमात ॥१४५॥ अर्थ-हीरो की बोरियाँ, हसो की पक्ति, सिहो का झुड, साधुओ की जमात नहीं होती है। ये सभी अकेले-अकेले ही महत्त्वपूर्ण होते है। विरले मिलते है। हीरा, हस, सिह या साधु इकट्ठ बहुत से नहीं मिल सकते है। नाना रंग तरंग है मन मकरंदु असूझ्न। कहहि कबीर पुकारि के अकलि कला ले बूच ॥१४६॥ अर्थ-ससार मे अनेक प्रकार के शास्त्र ज्ञान है। मन इतना बेवकूफ है कि वह शास्त्र के बचनो मे भूल जाता है। अक्छ की कला द्वारा ही शास्त्रों को समझना चाहिए। नासमझ के लिये शास्त्र भटकानेवाले रग बिरगे फूल है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। नाम न जाने ग्राम को भूली मारग जाय। काल्ह गड़ेगा कण्टक अगुमन कस न खुराय ॥१ ४७) .. अर्थ-जिस परमधाम रूपी गाँव जाना है उसका रास्ता तो भूल गये। विषयो मे भटकते 'रहै। कितु कह जब यमराज के कॉटे गड़ेगे तो क्या होगा? इसलिए अभी से ही क्यो नहीं सेंभलकर चलते हो ? ५ है पंच तंत्त ले या तन कीन्ह सो तन कहाँ ले कीन्ह। क कर्महि वश जीव कहत है कर्महि के जिव दीन्ह ॥१४८॥ अर्थ-यह शरीर फँच तत्वों से बना है। कितु इसे बनानेवाछा शरीर कहाँ से और किए _ तत्वों से बना है? कर्म से जीव धारण करते है। इसी तरह कर्म को ही जीव रूप दिवा गया

साखी ३७३ है| पंच तत्व को पूतरा मानुष धरिया नाम। एक कल के बीछुरे बिकल भया सब ठोम ॥१४९॥ अर्प-पच तत्त्व (पृथ्वी, जठ, आकाश, आग, हवा) का पुतला मनुष्य नाम से जाना जाता . है। एक कल (कला 5 अश) के अठग हो जाने से सर्वत्र दुखी होना पड़ता है। पंचतत्त के भीतरे गुप्त वस्तु अस्थान | धर बिरले मर्म कोई पाइहे गुरु के शब्द प्रमाण ॥१५०॥ अर्थ-इस पच तत्त्व वाले शरीर मे आत्मतत्त्व का स्थान है। इस बात को कोई कोई समझता है। गुरुदेव के शब्दों को प्रमाण मानकर ही कोई आत्मतत्त्व को प्राप्त कर सकता है। पंच तत्व को पूतरा जुक्ति रची मै कीव। मै तोंहि पूछी पंडिता शब्द बड़ा की जीव॥१५१॥ अर्थ-यह शरीर पच तत्त्वात्मक है। यह शरीर रूपी काव्य अत्यत युक्तियों से रचा गया है। ऐ पडितो, बताओ कि शब्द (ज्ञान) और जीव मे कीन बड़ा है ? पक्षापक्षी कारणे सब जगत भुलाना। निरपेक्ष होय के हरि भजे सोई सन्त सुजाना॥१ ५२॥ अर्थ-ससार के लोग पक्ष-विपक्ष मे फँसे है। पक्षों को छोड़ जो हरि भजता है वही सच्चा सत है। परदे पाणी दाधिया संतो करहु विधार। सरमा सरमी पचि मुवा काल घसीटनिहार॥ १५३॥ अर्थ-पर्दे या अनके प्रकार के रक्षाकवचों के भीतर बद प्राणी को भी जलना पड़। शर्माशर्मा शास्त्रों के चक्कर या लोभ, मोहादि मे मर गए। सबको काल घसीट ले गया। पर्वत ऊपर हर बसे घोरा चढ़ दसि ग्राम । बिनु फूल भंवरा रस चहै कहु बिरवा को नाम॥१ ५४॥ अर्थ-सहस्रार पर पहुँच कर चैतन्यात्मा हल जोतता है। घोड़ा पर चढ़कर गॉव बसाता है। यहाँ बिना फूछा आत्म भ्रमर रस का पान करता है। कहो उस पेड़ का क्या नाम है? अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | पल मे परले बीतिया लोगहि लागु तिवारि। ,._ आगिल सोच निवारि के पाछिल करहु गुहारि॥१५५॥ अर्थ-पलभर मे प्रढय होगा या जीवन बीत जायगा। छोगो को समझाने में देर (अतिवार/तिवार) छागती है। आगे के बारे मे सोचो और उसका निवारण करो। पीछे जो कर्म कर आये हो उसके हिये प्रार्थना .करो। तुम्हे पाप से मुक्ति मिल जाय। पॉवहि पहुमी नापते दरिया करते फाल। हाथन्हि पर्वत तोलते तेहि धरि खायो काल ॥१ ५६॥ शब्दार्थ-पहुमी < पृथ्वी। फाल > फाड़। दरिया & नदी। अर्थ-काल सभी को खाता है। उनको भी खा गया जो अपने पॉवो से धरती नापते थे, नदियों को फाड़ देते थे, हाथो से पर्वत तौलते थे। टिप्पणी-पृथु ने धरती को बराबर किया था। सगर पुत्रों ने सागर को फाड़ा था। रावण अपने हाथी से सुमेरु पर्वत को तौलता था। हि पाणि पियावत्त का फिरो घर घर सागर बारि। तृषाबंत जन होहिंगे पीवहिंगे झख मारि ॥१ ५७॥

३७४ कबीर समग्र इसका अर्थ अन्यतत्र-देखिये। पाणी भीतर घर किया सेज्या किया पताल। पासा परा करीम का तेमे पेन्ही जाल ॥१५८॥ अर्थ-जिन्होने आकाश पाताल एक कर दिया। पानी मे घर बनाया। पाताल मे सोए। कितु दयाछु ईश्वर का पासा पड़ते ही मृत्यु के जाल मे फेंस गए। -पानी अविद्या है। देहाभिमान शय्या है। पाताल कमंलोक है। पानी ते अति पातला घूम्र ते अति छीन। पबनुट्ठ ते उतावला दोस्त कबीरनि कीनि॥१५९॥ अर्थ-सत कबीर ने जिस परमात्म तत्त्व को अपना दोस्त बनाया है वह पानी से अति पतला, धुएँ से क्षीण और हवा से भी अधिक वेगवान है। पारस परसि ताम्र भो कंचन बहुरि न ताँबा हो। परिमल बास परासहि बेघे काठ कहै नहि कोय॥१६०॥ अर्थ-परमात्म रूप पारसमणि के स्पर्श से तॉवा सोना हो गया। जीव का तमोगुण समाप्त होकर सत्त्व गुण रह गया। अब सोना पुन तॉबा नहीं होगा। परिमल की गध ने पढाश को भी बेध दिया है। अब पलाश को कोई काठ न कहे। सामान्य जीव भी गुरुकृपा से भगवत्कृपा का पात्र हो गया है। पारस रूपी जीव है लोह रूप संसार। पारस ते पारस भया परस भया टकसार ॥१ ६१॥ अर्थ-साधक जीव पारसमणि है। ससार लोहा है। साधक जीव लोहे को स्पर्श कर सोना बना दिया। स्पर्श टकसाल है। गुरु के स्पर्श को पाकर सब ठीक हो जाता है। पाव पलक की गमि नहीं करे काल के साज। बीच अचानक मारिहे ज्यों तीतर पर बाज ॥१६२॥ शब्दार्व-पाव पलक > क्षण का छोटा भाग | अर्थ-छोटे से छोटे क्षणो का भी भरोसा नहीं है। काल सजा है। जैसे बाज तीतर पर अचानक झपट्टा मारता है उसी प्रकार मनुष्य मृत्यु रूपी बाज का तीतर है। पीपर एक महा गभान वाकी मर्म कोई नहि जान। डार लँबाये कोइ नहीं खाय ससम अक्षत बहु पीपरे जाय ॥१ ६३॥ अर्थ-नयह जीव पीपल पेड़ सा गर्वीला है। इसकी शक्ति कोई नहीं जानता है। डाल झुकाए १54 4 है। वह पूर्णत नष्ट हो जाता है। अहकारी व्यक्ति झुकता नहीं, उसका समूल नाश ता है। टिप्पणी-इस ससार को भी पीपल वृक्ष कहा गया है। पूर्व उगे पश्चिम विशवे भखे पवन को फूल। ताको काल गरासे मानुष काहे भूल॥ १६४॥ अर्थ-सूर्य पूर्व मे उगता है। पश्चिम मे अस्त होता है। हवा मे झूमते फूल का भक्षण करता है। उसे भी काल ग्रस लेता है। ऐ मनुष्य, काल की इस शक्ति को कभी मत भूलो। पैठा है घर भीतरे बैठा है सब चेत। जब जैसी गति चाहिए तब तैसी मति देत ॥१ ६५॥ अर्थ-सूर्य पूर्व मे उगता है। पश्चिम मे अस्त होता है। हवा मे झूमते फूल का भक्षण करता है। उसे भी काल ग्रस लेता है। ऐ मनुष्य, काल की इस शक्ति को कभी मत भूलो।

साखी ३७५ पैठा है घर भीतरे बैठा है सब चेत। . जब जैसी गति चाहिये तब तैसी मति देत॥१६६॥ अर्थ-वह ईश्वर घर (हृदय) मे प्रविष्ट है। सारी चेतना के बीच बैठा है। जब जिसकी जो गति होनेवाली होती है तब उसे वैसी बुद्धि प्रदान करता है। प्रगट कहीं तो मारिया परदा लखे न कोय। सहना छपा पुवार तर को कह बैरी होय ॥१ ६७॥ अर्थ-उस ब्रह्म तत्त्व को सगुण (्रगट) कहूँ तो लोग मारेगे। क्योकि उसे स्थूछ रूप में दिखाया नहीं जा सकता है। पर्दे मे निर्गण रूप मे उसे कोई देख नहीं सकता है। जब सबको पुआल की छाया के नीचे रहना है तो किसी से बैर लेना ठीक नहीं। क्योकि पुआल की छाया आग, पानी, हवा सभी खतरों से भरी है। प्रथम एक जो हों किया भया सो बारह बान | कसत कसौटी ना टिका पीतर भवा निदान ॥१६८॥ अर्थ-ईश्वर ने तो बारह बान का शुद्ध सोना बनाया था। कितु कसौटी पर कसने पर वह पीतल प्रमाणित हुआ। जीव ने अपने को सोना से मिट्टी बना लिया। प्राणी तो जिभ्या डिगो क्षण क्षण बोले कुबोल। मन घाले भरमत फिरे कालहिं देत हिंडोल ॥१६९॥ अर्व-जी मनुष्य जीभ पर सयम न रखकर डिगता फिरता है। हर समय कुबोल बोलता है। मन को विषयों मे गिराकर चक्कर लगाता है। वह काल को अपने शरीर पर झूलने का न्योता देता है अर्थात् उसका शरीर काल का झूला बनेगा। प्रेम पाट का चोलना पहरि कबीरा नाथ। पानप दीन्हों ताहि को जो तन मन बोले सोंच॥१७०॥ अर्थ-संत कबीर प्रेम का पाट वस्ध पहनकर नाचते हैं। प्रतिष्ठ उसी को मिली जो तन मन से सच बोलता है। फहम आगे फहम पीछे फहम बायें डेरे। फहम पर जो फहम करे सोइ फहम है मेरे॥१७१॥ शब्दार्थ-फहम ज्ञान | ओ ही ज्ञान है। आगे-पीछे दाएँ-बाएँ सर्वत्र ज्ञान है। ज्ञान को ज्ञान से प्राप्त करना ज्ञान है। बनते भागा बिहुड़े पता करहा अपने बाने। करहा बेदन कासो कहे को करहा को जाने ॥१७२॥ अर्य-जीवात्मा ससार बन मे अकेले बिछुड़ गया है। ऊँट का बच्चा जीवात्मा रूपी अपना दुख किससे कहे ? उसके दर्द को कौन समझेगा ? यहाँ इस वन मे तो सभी दुखी है। बना बनाया मानवा बिना बुद्धि के शूल। कहा लाल ले कीजिए बिना बास का फूल॥१७३॥ अर्थ-बिना बुद्धि का आदमी कॉटे के समान है। वह आत्मनिर्माण मे तो अक्षम है ही दूसरों का भी नुकसान करता है। वह गधहीन फूल के समान केवल छाल होता है। रूप नहीं गुण महत्त्वपूर्ण है| बलिहारी तेहि दूध की जामे निकला घीव। आधी साखी कबीर की चारि वेद को जीव॥१७४॥ अर्थ-वह दूध धन्य है जिससे घी निकलता है। वह प्रभु धन्य, जिससे यह सृष्टि विकसित

३ कबीर समग्र होती है। कबीर की आधी साखी चारो वेदो का मूल तत्व है। जैसे प्रणव मूल है। वैसे कबीर की आधी साखी मूल और महत्त्वपूर्ण है बलिहारी तेहि पुरुष की जो परचित पेखनहार। साई दीन्हों खाँड के खारी बूसे गंवार ॥१७५॥ अर्थ-वह सद्‌गुरु धन्य है जिसने द्रष्ट और दृश्य का परिचय कराया है। या जो द्रध्ट प्रभु से परिचित कराता है। प्रभु ने सबको आत्मतत्त्व रूपी गुड़ दिया है। कितु अज्ञानी उसे खारा [व्यर्थ का नीखा) समझता है। बडा तो बड़पने गए रोम रोम हंकार। सदगुरु के परथे बिना चारो वर्ण चमार॥ १७६॥ अर्थ-अहकारी के रोम-रोम मे बड़प्पन और अहकार भरा है। ऐसे अहकारी अपने को बड़ा समझनेवाले चौपट है। सदगुरु द्वारा प्रभु से परिचय कराए बिना चारो वर्णो के लोग चमार है। कोई श्रेष्ठ नहीं है। श्रेष्ठ वह है जो सदगुरु की शरण मे जाकर आत्मतत्त्व को जानता है। अहकारमुक्त है। बहुत दिवस ते हींडिया शून्य समाधि लगाय। करहा पड़ा गड़ में दूरि परे पछिताय ॥१७७॥ शब्दार्थ-हींडिया - खोजना | करहा ऊँट का बच्चा | जीवात्मा। गाड़ 5 गड्ढा। अर्थ-जीवात्मा बहुत दिनो से शून्य तत्त्व की प्राप्ति के लिये ध्यान लगाये है। परमतत्त्व से उसका सबंध छूट गया है। ऊँट का बच्चा रूपी जीवात्मा वासना के गड्ढे मे गिरकर अफसोस कर रहा है। विषयो मे गिरकर अपना कितना अधिक नुकसान किया है। बहुबंधन के बंधिया एक विचारा जीव । के छूटे बल आपने के छुड़ाबे पीव ॥१७८॥ अर्थ-जीव अदेला है। माया मोह के बहुत से बधनों से बधा है। कोई भी व्यक्ति अपने बल से इस बधन से नहीं ५३४ हैं। वधन से वही छूटता है जिसे प्रभु कृपाकर छुड़ाता है। बाँह मरोरे जात है सोबत लिया जगाय। कहहि कबीर पुकारि के पिण्ड रहौ के जाय॥१७९॥ अर्थ-हे प्रभु, तुमने मुझे (जीव को) अज्ञान निद्रा से जगा लिया। अब बाँह मरोड़कर छोड़ रहे हो। सत कबीर पुकार कर कहते कि शरीर रहे या जाय। शरीर की चिता नहीं है। तुम्हारी कृपा बनी रहनी चाहिए। वाजन दे बाजन्तरी कलि कुकुरी मति छेर। तुझे बिरानी क्या परी अपनी आप निबेर ॥१८०॥ अर्थ-कलि रूपी कृतिया बुद्धि को छेड़ रही है। ऐसे मे आत्मा मे होनेवाढे अनाहत को बजने दो। तुम्हें दूसरो की क्या चिता है? अपने आप को विषयो से निवृत्त करो। विनु डॉडे जग डॉडिया सोरठि परिया डॉड। बाट निहारा लोभिया गुड़ ते मीठी खाँड ॥१ ८१॥ शब्दार्थ-डॉडै 5 दड। डडा। डॉडिया 5 दडित किया। सोरठि - सुराष्ट्र| डॉड 5 डडा | गुड़ 5 ज्ञान (प्रतीक)। खाड > कामादि अज्ञान (प्रतीक) | अर्थ-चेतन तत्त्व विना डडे के सबको दडित कर रहा है। उसने डडे से सुदर स्थान बनाया है। लोभी केवढ लोभ का रास्ता देखते है। उन्हे ज्ञान गुड़ की अपेक्षा कामादि खाड अच्छा 5 है। कितु उस सुदर प्रदेश मे जाना नहीं चाहते जहाँ ईश्वर का डडा सबकी रक्षा करता

साखी ३७७ बिनु रसरी गृह खल बेंधा तासू बंधा अलेख। दीन्ह दर्पण हस्त मधे चसम बिना का देख ॥१ ८२॥ अर्थ-सारा ससार विना रसरी (गुण) के माया मे बधा है। यह माया अदृश्य है। जब गुरुदेव ने हाथ मे ज्ञान दर्पण दिया तो भौतिक आँखो के बिना भी सब दीखता है | असली चीज है आत्मज्ञान। विष के बिखहिं घर किये रहा सर्प छपठाय। तातें जियरहि डर भया जागत रैन विहाय ॥१ ८३॥) अर्थ-विषयो के विष को हृदय मे स्थान दिया। इससे माया-मोह का सर्प लिपटा है। उससे हृदय मे डर बना है। पूरी अज्ञानमूल रात जागते ही बीतती है। कभी सुख की नींद नहीं सोसके। तुल० डासत ही सब वीति गयो निसि कबहूँ न नाथ नींद भर सोयो |-विनय० बूँद जो परा समुद्र में यह जाने सब कोय। समुद्रक समाना बूँद मे बुझे बिरला कोय ॥१ ८४॥ अर्थ-बूँद (व्यष्टि) समुद्र (समष्टि) मे गिरा यह सभी जानते है, देखते है। कितु सपूर्ण समुद्र -समध् या विश सृष्टि छोटी दूँद मे हो इस बात को कोई-कोई ही समझता है। बेटा दीठहों खेत का बेटा खेतहि खाय। तीनि लोक संशय परी काहि कहों बिलगाय ॥१ ८५॥ शब्दार्ध-बेढा 5 घेरा। वाधा। बाड़ | बिलगाय > अलग | खेत 5 शरीर। अर्थ-यह शरीर विषयो के घेरे मे घिरा है। विषय शरीर को नष्ट कर रहे है। तीनो लोको में सशय है। किससे अछूगकर कहा जाय ? सभी तो इस सशय मे डूबे है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | बेरा बाॉधिनि सर्प का भव सागर अतिमाह। छोड़े तो बूड़े नहीं गहे तो डसे बाह ॥१ ८६॥ शब्दार्प-वेरा 5 बेडा। भेला | अर्थ-संसार सागर मे विषय सर्प का बेड़ा है। यह सागर अत्यत विस्तृत है। भयानक है। . छोड़ दे तो डूबने का भय है। पकड़े रहने पर डेंसने का खतरा है। दोनो और से कठिनाई है। अतिम पक्ति यह भी हो सकती है-छोड़ दो तो डूबने का भय नहीं है। विधय सागर से मुक्ति मिल जायगी। कितु पकड़े रहने पर तो अवश्य नाश होगा। बेलि कुदंगी फल निफरो फुलवा कुबुधि गेंधाय। ओर बिनष्टी तुंबिका सरो पात करुवाय॥१ ८७॥ अर्थ-इस ससार रूपी लता का फल बेढगा और व्यर्थ (निफर) है। इसमे कुबुद्धि रूपी फूल महकता है। इसके तुम्बे भी नाश करनेवाले है। सरपत (घासपात) आदि भी कडुवे है। अर्थ यह कि इस ससार की माया ढता सबको नष्ट कर रही है। इसकी कोई चीज अच्छी नहीं है। अलंकार--रूपकातिशयोक्ति। बैठा रहे सो बनिया खड़ा रहे सा ग्वाल। जागत रहे सो पाहरु &तिहि घरि आयो काल ॥१ ८८॥ अर्ध-वोली से साधु और चोर की पहिचान होती है। मनुष्य जो अपने भीतर करता है, सोचता है, वही उसके मुख के रास्ते से निकलता है। बोलना है बहु भाँति का नैनन नहि कछु सूझ। कहहिं कबीर पुकारि के घट की बानी बूझ ।१८ ९।।

३७८ कबीर समग्र अर्थ-बहुत प्रकार की बोली है। अनेक शास्त्र है। 'फलत. कुछ समझ मे नहीं आता है। सत कबीर पुकार कर कहते है कि प्रत्येक शरीर मे रहनेवाली चैतन्यत्त्मा की वाणी को समझने की कोशिश करो। बोली हमारी पूर्व की हमे लखे नहिं कोय। हमे लखे सो जना जो धुर पूर्वीआ होय॥१९०॥ /अर्थ-सत कबीर कहते है कि हमारी बोली पूर्व की है। इसलिये हमे कोई समझ नहीं पाता है। हमे तो वही समझेगा जो अत्यत पूर्वी हो। यहाँ पूर्व का अर्थ दिशा से भी है। पूर्व का अर्थ पूर्वकाल भी है। पूर्वी साधना भी है। इस बात का भी सकेत है कि पहले भी लोगो ने ऐसी बाते कही है। पूर्व ऋग्वेद भी है। भंवर जाल बग जाल है बूड़े बहुत अचेत। कहहिं कबीर ते बाचिहं जाके हृदय विवेक ॥१९१॥ शब्दार्थ-बग वक्र | अर्थ-यह ससार वक्र (टेढ़ा) भ्रमर जाल है। इसमे बहुत से लोग अचेत होकर डूब रहे हैं। सत कबीर कहते है कि इससे वही बचेगा जिसके हृदय मे विवेक है। भंवर विलम्बे बाग मे बहु फूलन की .बास | ऐसे जिव बिलमे विषय महँ अन्तहु चले निरास ॥ १९२॥ अर्थ-मन भ्रमर बहुत से फूलो की गध से भरे बाग अर्थात् विषय सुख मे रुक गया है। विषयो में ठहरे जीव को अत मे निराश होना पड़ता है। भक्ति पियारी राम की जैसी प्यारी आगि। सारा पट्टन जरि गया फिर फिर ल्यावे मागि ॥१९३॥ अर्थ-भक्ति आग है जो विषयो के नगर को जला देती है। आग राम को अत्यत प्यारी है। भक्तगण सदगुरु के यहॉ से इस आग को बार-बार माँग लाता है। विषय ग्राम को जाता है। भक्ति बिगारीक कबिरन्हि कंकर पत्वर घोय। अंदर मे विष राखि के अमृत डारिन खोय॥१९४॥ & अर्थ-विषयी एव श्रृगार कवियो ने काम, क्रोधादि के पत्थरों को धोया। हृदय से भगवद्येम के अमृत को निकालकर काम विषय को स्थान दिया। भर्म मरा तिहुँ लोक मे भर्म बसे सब ठाम। कहहि कबीर कैसे बाचिहो जब बसे भर्म के ग्राम॥१९५॥ अर्थ-मायाजन्य अज्ञान का भ्रम तो सर्वत्र फैला है। कोई भी व्यक्ति कैसे बचेगा जबकि वह भ्रम के गॉव मे ही निवास करता है। मच्छ बिकाने सब गये धीमर के दरबार | अँखियाँ तेरी रतनारी तुम क्यो पैन्हीं जाल॥१९६॥ शब्दार्य-धीमर + मछुआ। रतनारी 5 लाढ। अर्थ-सभी मछलियाँ (जीव) मछुए के दरबार मे अपने को बेचने गयीं। यहाँ मछुआ यम है। उस महुए ने पूछा-ऐ मछली, तुम्हारी ऑखें तो प्रभु वियोग के जागरण मे छाल है। फिर भी तुम विपयो के जाल मे कैसे फैंस गयी ?

. साखी ३७९ मन कहे कहाँ जाइये चित्त कहो कहाँ जाउँ। छव मास के हींडते आध कोस पर गाँठ॥१ ९७॥ अर्थ-मन कही ले जाता है। चित्त कहीं और ले जाना चाहता है। जिस आध्यात्मिक भूमि पर पहुँचना है वह मात्र आधे कोस पर है अर्थात् नजदीक है। कितु उसे छ मास अर्थात् बहुत दिनो से खोज रहे है। मन काग तन बोहित लक्ष जोजन उड़ि जाय। कबहँक भरमे आगम दरिया कबहूँ गगन समाय॥१ ९ ८॥ अर्य-मन कौआ है। शरीर जहाज है। मन कौआ वासना प्रवाह मे छाखो योजन उड़कर जाता है। कभी अगम्य वासना दरिया मे भटकता है। कभी आकाश (शून्य) मे समाधिस्थ हो जाता है। अलेंकार-रूपक | मन गयन्द माने नहीं चले सुरति के साथ। महावत बिचारा क्या करे जो अंकुश नहि हाथ॥ १९९॥ अर्थ-मन हाथी मानता नहीं सुरति अर्थात् विषय स्मृति के साथ चला जाता है। जीवात्मा महावत क्या करे? मन को वश मे रखनेवाला सयम (अकुश) उसके पास नहीं है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | द मन भर के बोये घुंघुथी परिपूरन नहि होय। कहा हमारे माने नहीं अन्तहु चला विगोय॥२००॥ शब्दार्थ-घुघुची + एक फल। विगोय > नष्ट | अर्व-घुँघुची विषय कर्म मन भर अर्थात् खूब तल्लीनता से बोये। कितु उससे पूर्णता आनेवाली नहीं है। गुरु का कहा नहीं माना। फलत सब नष्ट कर चले। अलंकार-मन मे १ढेष | मन मसलन्द गयन्द है मनसा भो संचार। मन्त्र माने नहीं उड़ि उड़ि लाने खान ॥२०१॥ अर्थ-मन हाथी है। हाथी का मसनद है। मन का ही सचरण हुआ। मन ही सबार है। मन ५ सब कुछ है। यत्र मत्र कुछ नही लग रहा है। मन पक्षी उड़कर विषयो के खाने मे गिर रहा है। अलंकार-रूपक | मन स्वारथी आपु रस विषम लहरि फहराय। मन के चलाये तन चले ताते सरबस जाय ॥ २०२॥ अर्थ-मन स्वार्थी है। स्व्य विषय की भयानक लहरो मे फहराता रहता है। मन के चलाने से ही तन चलता है। इसी से मनुष्य का सर्वस्व समाप्त हो जाता है। मनुष्य जन्म दुर्लभ है होय न दूजी बार। पक्का फल जो झरि परे बहुरि न लागै डार ॥२०३॥ अर्थ-मनुष्य जीवन अत्यत दुर्लभ है। दूसरी बार यह जीवन मिलना कठिन है। जैसे पका फल गिरने के बाद पुन डाल मे नहीं लगता है। अलंकार-दृध्यत | मानुष का गुण ही बड़ा मास न आबे काज। हाड न होते आभरण त्वचा न बाजन बाज ॥२०४॥ अर्थ-मनुष्य अपने गुणो के कारण महान् है। वरना उसका माँस किसी काम का नई होता है। उसके हाड़ के गहने नहीं बनते है और चमड़ी बाजे पर नहीं मढ़ी जाती है। 22700: ७७७८४ ७90७ लाज< आल जा कल 3 आम मे भ्ु

३८० कबीर समग्र मानुष के अयाइया मति कोइ पैठे घाय। एकहि खेत चरत है वाघ गदहरा गाय ॥२० ५॥ शब्दार्थ-अधाइया > बैठका। पचायत। समूह | अर्थ-मनुष्य की पचायत मे बिना समझे दौड़कर मत घुसो। एक ही खेत मे बाघ, गधा हा गाय चरते है। मनुष्य अविवेकी होता है। उसे उत्तम, मध्यम, नीच की पहचान नहीं होती | मानुष ते बड़ पापिया अक्षर गुरुहिं न मान। बार-बार बके कूकरी गर्भ धरे औधान ॥२०६॥ अर्थ-मनुष्य से बड़ा पापी कोई नहीं है। यह गुरु के अक्षर (आज्ञा उृषदेश) को नहीं मानकर कुतिया के गर्भ के समान बार-बार बकता रहता है। दोनो की बहुलता एव निरर्थकता स्पष्ट है| हु माया के बस परे ब्रह्मा विष्णु महेश। नारद सारद सनक सनन्दन गौरी और गनेश ॥२०७॥ अर्थ-सभी देवता, ऋषि आदि माया के वश मे है। माया जग सापिनि भई विष ले बेठी आधि। सब जग फंदे फन्दिया चले कबीर की काछि॥२०८॥ अर्थ-माया रूपी सॉपिन विष छेकर बैठी है। सारा ससार माया के फदे मे फेसा है। केवल कबीर है जो उससे वबचकर निकठ सके। .* मारग तो अति कठिन है तह कोर्श मति जाय। गया होत बहुरा नही कुशल कहै को आय॥ २०९॥ अर्थ-साधना का मार्ग अत्यत कठिन है। जो इस रास्ते पर गया वह कभी लौटकर नहीं आया। कौन कुशल कहे ? मुख की मीठी जो कहै इदये है मति आन। कहहि कबिर तेहि लोकनि ऐसो राम सयान॥२१०॥ अर्थ-जिसके हृदय मे कुछ अन्य है यानी बुराई भरी है। वह मुँह से चाहे जितना मीग कहे ऐसे छोगो को राम ही ठीक कर सकते है। मूढ कर्मिया नख शिख पाखर आहि। बाहनहारा का करे जो बाण न लागे ताहि ॥२११॥ अर्थ-मूढ़ नखसे शिख तक पत्थर से भरा है। उसका कर्म कठोर है। पत्थर जैसा है। ऐसे मे शब्द सयोजक सदगुरु के उपदेशो का प्रभाव न हो तो गुरु का क्या दोष है? मूरख को समुझावते ज्ञान गांठ का जाइ। क्रोयला होइ न ऊजरो नव मन साबुन लाइ॥२१२॥ अर्थ-मूर्ख को समझाने से अपने पास का ज्ञान खत्म हो जाता है। कितना भी सावुन लगाइए कोयला उजला नहीं होगा। मूर्ख को कितना भी समझाइये उसे ज्ञान नहीं होगा। अलंकार-दृशत | तुल०-सूरदास खल कारी कमर चढ्ढे न दूजो रग। मूरख सो का कहिए सठ सो कहा बसाय। पाहन में का मारना चोखे तीर नसाय ॥२१३॥ अर्थ-मूर्ख को क्या समझाया जाय ? शठ पर किसका अधिकार है? यह वैसे ही है जैसे पत्थर पर तीर मारने से तीर का नाश हो जाता है।

साखी ३८१ अलंकार-प्रतिवस्तूपमा | तुल०-पाहन कठिन बान नहि भेदत रीतो करत निषग। मूवा हे मरि जहुगे रिनु सर धोदे भाल। परहु करायल दक्ष तल आज मरु के काल॥२१४॥ * अर्व-मर्त्त हो। मरोगे। बिना बाण, थोथे भाले से मरोगे। भयानक लोभ वृक्ष के नीचे पड़े हो। अज या कल मरना होगा। से रेदों एहि जगत को मोको रोबे न कोय। मोको रोबे सो जना जो शब्द विवेकी होय ॥२१ ५॥ अर्थ-मै ससार के लिये रोता हूँ। मेरे लिये कोई नहीं रोता है। मेरे लिये शब्द विवेकी ही रोता है। मतलब कि परमतत्व के ज्ञाता गुरुदेव ही हा की चिता करते है। मानुष बिधारा क्या करे जाके कहे न खुले कपाद। सोनहाधौक बैठाइए फिर फिर एपन चाट॥२१६॥ अर्थ- वह मनुष्य क्या करे जिसके ज्ञान की किवाड़ नहीं खुली है। उसकी दशा उस कुत्ते की है जो चौक पूरित स्थान पर बैठाया जाय। फिर भी वह स्वभाववश ऐपन चाटे। ऐसे मनुष्य को कितना ज्ञान-मान दिया जाय। किंतु वह बुराइयो मे चला जाता है। मानुष बिधारा क्या करे जाके इृदया शून। सोनहा चौक बिठाइये फिरि फिरि चाटे चून ॥२१७॥ अर्थ-जिस मनुष्य का हृदव साधनाशून्य है वह क्या करेगा? कुत्ते को चौक बैठाइए वह बार-बार चूर्ण (आटा) चाटेगा। मानुष बिधारा क्या करे जाके शून्य शरीर। जो जिव झाखि न ऊपने तो काहे पुकार कबीर॥२१ ८॥ अर्थ-साधना शून्य मनुष्य क्या करेगा? यदि जीव को अपने मे झाँखकर देखने पर भी ज्ञान नहीं उपजता है तो वह कबीर को क्यो पुकारता है? कबीर अर्थात् सदूगुरु को पुकारने का उद्देश्य आत्रज्ञान की प्राप्ति है। यदि आलज्ञान नहीं होता है तो व्यर्थ की प्रार्थना हर नाम जप से कया फायदा ? मानुष डै के नहिं मुदा मुवा सो डॉगर ढोर। एकी जीवहिं हौर नहिं छागा भये सो हाथी घोर॥२१९॥ अर्थ-जिसने मनुष्य देह पाकर मनुष्यता का पूर्ण आदर्श नहीं प्राप्त किया। वह व्यर्थ है जानवरो-सा जन्या मरा। हाथी घोड़े के समान एक जगह इकट्ठा हुए) केवल दूसरों की सवारी के साधन बने। वैसे ही मनुष्य योनि मे पैदा होकर केवल विषयों का साधन बना। मन सायर मनसा लहरि बूड़े बहुत अचेत। कहर कबीर ते बॉचिह जाके हृदय विवेक ॥२२०॥ अर्थ-मन ही सागर है। मन मे ही वासना की लहरे उठती है। इसी मन मे बहुत अचैत्तन्य इच्छाएँ डूब-उतरा रही है। सत कबीर कहते है, इस डूबने से वह बचता है जिसके हृदय में विवेक है। इसलिए जीवन मे ज्ञान ही महत्त्वपूर्ण है। मन माया एक है भाया मनहि समाय। तीनि छोक संशय परे काहि कहों बिलयाय॥२२१॥ ग अर्थ-मन और माया एक हो गये है। मन में माया समायी है। माया के कारण तीनो को मे सशय पड गया है। किससे कहा जाय कि तुम मन को माया से अछूग कर दो?

३८२ कबीर समग्र मन माया की कोठरी तन संशय को कोट। विषहर मंत्र न माने काल सर्प का चोट॥२२२॥ अर्थ-मन माया की कोठरी है। शरीर सशय का किला है। इन पर काल सर्प की चोट पड़ रही है। ऐसे मे सदगुरु रूपी मात्रिक (विषहर) के मत्र का असर नहीं हो रहा है। बाजीगर के वानरा जियरा मन के साथ। मन सायर समुद्र है बहि कतहूँ जानि जाय॥२२३॥ अर्थ-हे जीव, काम को मूल के रूप मे मत पकड़ो। भ्रम मे मत भूलो। यह मन विषय समुद्र में कहीं बह न जाय । काम के द्वारा ससार समुद्र से किसी की रक्षा नहीं हो सकती है। मलयागिरि के वास में वृक्ष रहे सबभोव। कहिबे को चंदन भए मलयागिरि नहि होवय ॥२२४॥ अर्थ-यह ससार देखने मे मलयागिरि के समान जान पड़ता है। सारे वृक्ष इस भ्रम मे डूबे है कि वे मल्यागिरि के निवासी है। कितु यह मलयागिरि नहीं है। मलयागिरि तो प्रभु चरणारविद मे स्थान पाना है। मलयागिरि के बास महें बेधो अर्क पलास। बेणा कबहुँन बेधिया जुगजुग रहते पास ॥२२५॥ अर्थ-मल्यागिरि के बास मे आक-पलाश भी प्रभावित होते है। भावार्थ यह कि सदगुरु के पास सामान्य साधक को भी ज्ञान हो जाता है। कितु वॉस के समान जड़ च्यक्ति सदा सदगुरु के पास रहकर भी उनके वचनो को ग्रहण नहीं करता है। हो तो सब ही की कही मेरी कहे न कोय। मेरी कहे सो जना जो मुझ ही सा होय॥२२६॥ अर्थ-मै तो सबकी कहता हूँ। सभी प्रवृत्तियो के चक्कर में रहता हूँ। कितु कोई प्रवृत्ति मेरे बारे मे नहीं सोचती | मेरी भला तो वही सोचेगा जो मेरे जैसा हो। मतलब कि प्रवृत्तियो से मुक्त हो। ह ये कबीर ते उतरिहहु समल परोहन साथ। शंबल घटे पगु धका जीव विराने हाथ॥२२७॥ शब्दार्थ--समल - सम्बल | परीहन 5 सवारी। अर्थ-जीव सोचता है कि सवारी का सम्बल है। पार उतरने मे कठिनाई नहीं होगी। कितु जीवन मे जिसका भरोसा किया वह शरीर सम्बल समाप्त हो रहा है। पैरो ने भी जबाब दे दिया। अब जीव वृद्धावस्था के हाथ-मे है। आगे क्या होगा समझ मे नहीं आता है। रंगहि ते रंग उपजे सब रंग देखी एक। ऋषन रंग है जीव को ताकर करहु विवेक ॥२२८॥ अर्थ-यहाँ रग का अर्थ है चैतन्य। चैतन्य ही चैतन्य उत्न्न करता है। इसलिये सारा चैतन्य एक है। जीव मे रगभेद या वर्णभेद नहीं है। यह रंग मूलत निराकार हैं। निर्मुण है। इसलिये इसको ठीक-ठीक बत्ताया नही जा सकता है। ; टिप्पणी-रग का अर्थ माया भी है। माया भी अनिर्वचनी है। इसलिये माया के रंग को भी नहीं बताया जा सकता है। "विनय पत्रिका" मे तुलसीदास जी ने लिखा हैसून्य भीति पर चित्र रग नहि तन बिनु लिखा चितेरे। रतन का जतन करि-माटी का सिंगार। आया कबीर फिरि गया फीका है संसार॥२२९॥ अर्थ-यह शरीर मिट्टी का है। इसमे आत्ज्ञान रूपी रल को प्राप्त करने की कोशिश

ईं नि है? 2०" वय साखी ३८३ करनी चाहिए | ससार अत्यत बेस्वाद है। ज्ञानरल का आस्वादन किये बिना लौटना नही चाहिए। रतन लराइन रेत में कंकर चुनि चुनि खाय। कहहि कबीर पुकारिके बहुरि चले पछिताय॥२३०॥ अर्थ-ज्ञानख्पी रल को व्यर्थ मे मैदान मे गिरा दिया। विषय-वासना के ककड़ो को घुनचुनकर खाते रहे। सत कबीर पुकारकर कहते है फिर अफसोस होता है। रही एक की भइ अनेक की विश्वा बहु भतरी कहहि कबिर काके संग जरिंहे बहुत पुरुष की नारी॥२३१॥ शब्दार्व-विश्वा + माया । ससार। अर्थ-इस सृष्टि के जीवो को एक ब्रह्म ने बनाया था। कितु सृष्टि मे आकर जीव ने माया रूप काम, क्रोध लोभ आदि अनेक को अपना पति बना लिया। जीव अनेक पुरुष की स्त्री हो गया है। अत मे वह किसके साथ सती होगा। क्योकि उसके सारे स्वामी तो नाशवानू है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | रामनाम जिन चीन्हिया झीने पंजर तासु। रैनि न आबे नींदरी अंग न चढ़िया मासु॥२३२॥ अर्थ-जों साधक रामनाम के महत्व को जान गया है वह रामवियोग मे दुर्बल हो गया है| उसे रात मे नींद नहीं आती है। उसके शरीर पर मास नही चढ़ता है। वह मोटा नहीं हो सकता है। राउर के पिछुवारे गावें चारों सैन। जीव परा बहु लूट में नहिं कुछु लेन न देन ॥२३३॥ शब्दार्थ-राउर 5 राजकुल। सैन > सेना। काम, क्रोध, लोभ मोह। अर्थ-बड़े से बड़े राजाओ के यहाँ काम, क्रोध, छोभ, मोह की सेना काम कर रही है। राजा को उनकी बाते ही सुनाई पड़ती है। जीव चोरों द्वारा चारो ओर छूटा जा रहा है। उसे इससे कुछ भी लेना देना नहीं है। राम वियोगी विकल तन इन दुखवै मति कोय। छूबत ही मरि जाहिगे तालाबेली होय॥२३४॥ शब्दार्व-तालाबेली > व्याकुलता। मति < नहीं। अर्थ-राम के प्रति वियोग वाला विकल है। यह दुख किसी को न हो। इसे वासना न छूमे | छूते ही यह व्याकुल होकर मर जायगा। राह बिचारी क्या करे जो पन्चि न चले सुधारि। अपनी मारग छोड़ि के फिरे उजारि उजारि ॥२३५॥ अर्थ-सासारिक राहो का क्या दोष है अगर चलनेवाला ठीक ढग से नहीं चलता है? यहाँ तो सभी लोग सन्मार्ग छोड़कर भगवप्पेम के मंदिर को उजाड़ चलते है। लाई लावनहार की जाकी लाई पर जरे। बलिहारी छावनहार की छप्पन बाचे घर जरे॥२३६॥ शब्दार्व-लावनहार, < सदूगुरु। छप्पर > रक्षक चैतन्यात्मा। छाई & आग। अर्व-लावनहार व प्रभु प्रेम की आग लगा दी, जिससे सारे विषय जल रहे है। वह गुरु धन्य है जो घर का निवास 5 इच्छा) तो जलाता है कितु छप्पर (आत्मचैतन्य) को सुरक्षित रखता है। अलंकार-विरोधाभास |

३८४ कबीर समग्र लोग भरोसे कवन के बैठ रहे अरगाय। जियरहि लूठत जम फिरे मेटहिं छुटे कसाय॥२३७॥ शब्दार्थ-अरगाय - चुप होकर | मेढहि 5 एक प्रकार का जानवर। भेड़ा | अर्थ-लोग पता नहीं किसके भरोसे चुप बैठे है? भगवान् की शरण मे नहीं जाते। यम जीव को लूट रहा है। यह कसाई के हाथ मे पड़ गया है। लोभे जान गमाइया पापे खाया खून | आधी से आधी कहै ता पर मेरा खून॥२३८॥ अर्थ-लोग लोभवश जान हेते-देते है। खून कर पाप करते है। विद्वान लोग अनुभवहीन ज्ञान के कारण अधूरे है। अधूरी जानकारी वाले विद्वान अधूरी बाते ही कहता है। ऐसे व्यक्तियों से भ्रम फैलता है। ऐसे लोगो पर मुझे खून अर्थात् गुस्सा आता है। लोहा केरी नावरी पाहन गरुहा भार। सिर पर विष की पोठरी उत्तरन थाहे पार ॥२३९॥ अर्थ-मनुष्य पापो से लदा है। उसके साधन भी ठीक नहीं है। तमोगुणी लोहे की नाव है। पत्थर का भार उस पर लदा है। सिर पर विष (काम, क्रोधादि विषय) की गठरी है। आश्चर्य तो यह कि सारी विरुद्धताओ के बावजूद लोग ससार सागर पार करना चाहते है। बिरह की ओदी लाकरी सपचे औ पघुँधुवाय। दुख ते तब ही बॉधिहो जब सकलो जरि जाय॥२४०॥ इससे मिलते दोहे का अर्थ दिया है। विरह बाण जेहि छागिया ओषधि लगे न ताहि। सुशुकि सुशुकि मरि मरि जिवे उठे कराहि कराहि॥ ४ अर्थ-जिस साधक को सदगुरु के शब्दो द्वारा प्रभु विरह का बाण लग गया है। वह चैतन्य हो गया है। उसे कोई सासारिक दवा नहीं लग रही है। वह बार-बार रोता है। कराहना है। विरहिनि साजी आरती दर्शन दीजे राम । मूये दर्शन देहुगे आवत कबने काम ॥२४१॥ अर्थ-अत्यत सरल है। शब्द हमारा आदि का शब्दे पैठा जीव । फूल रहन की टोकरी धोरे खाया घीव॥ २४२॥ अर्थ-सृष्टि विकास प्रक्रिया मे आकाश मूल है। आकाश की मूल विशेषता शब्द है। यह शब्द ही आदि है। यह जीवरूप मे नरदेह मे प्रविष्ट है। यह शरीर वासना की टोकरी जैसा है। इसी मे स्थूल जीव पड़ा है। शब्द हमारा आदि रा पल-पल करहू याद । अंत फलेगी राहली ऊपर की सब वाद॥२४३॥ शब्दार्द-माहली < सेवक । वाद व्यर्थ । अर्थ-शब्द ब्रह्म ही मूल है। यह विचार कर देखो। सेवक होने पर ही अत मे फल मिलेगा और सारे प्रयल च्यर्थ है। . शब्द दिना श्रुति ऑधरी कहो कहाँ के जाय। द्वार न पाने शब्द को फिरि फिरि भटका खाबय ॥२४४॥ अर्थ-सदगुरु के शब्द से ही ज्ञान होता है। शब्द के अभाव मे शास्त्र अधा है। शब्द-ज्ञान

न ; भैगरा काज॥२४५॥ /. : अर्थ-गुरुदेव के द्वारा दिया शल्द साधना का-ज्ञान ही |. है। वैभव और राज छोड़ने को प्रेरित करता * कार्य.पूर्ण हो गये। “ किया उनके सारे शब्द शब्द बह अंतर सार शब्द मत तीजे। ८5 की बाप पे नो के यो जे ॥२२६॥ '__- अर्थ-तेदगुरु द्वारा दिया गया ज्ञान भी शब्द है। शास्त्रो भी शब्द है। दोनो शब्दों मे महान है। अपनी बुद्धि से मूह एब्द को ग्रहण करना चाहिये। जिनहोने शब्द नहीं "है किया उनके जीवन को धिक्कार है। रे हु गि का सुनि मति जहु त्तरिक्क। पत्त्त को ३ अर्थ'शब्द सत्य घैनकर भागों गत | तो' शब्द साधना के महत्त्व को समझो। शेष कह का ते मय एक किक हू दे "मगट कहीं की परदा भुरगी है मरदा॥२४८॥ अर्थ-ऐ शेख तकी,, एक झगड़े का निपयरा | ? + तो घर मे नहीं वक्ता बके सो बादि। है 0 2 दा तक्ता एक घर कथा ॥२४९॥ . ५ अर्थ-चाहे ही शास्त्र वचन .बोलो। आलचैतन्य के अभाव मे उसे सुननेवाला नहीं है। भात्मा और. पैननेवात्‌ा दोनों ऐके ही अत करण, है। किर कहे कही,जाय? - . अत 2 सेंगति के सँख.ऊपने कुसंगति से दुक होय। दर कं कबिर तूँह अत नम पी संगति गा ५०॥ 9 साधु सगति : सुख. और. असाधु सगति होता है। संत है कि वहाँ ही जाइए जहाँ अपने जैसे ताधंक रहते हो।. , ह। न. ४ 03032 संसय सब जग खड़िया संशय खदे न कोय | तय खथे सो जगा जो व विवेकी होय ॥२५३॥ ॥ अर्थ-सशय ने के सभी प्रॉणियों नष्ट करने दिया गे संशय का नाश गहीं किया। सशय को नेष्ट' करनेवाल्‌ा ही शब्द तत्त्व को है। ; पैसारी:समय विधारी कोई बिरही कोई जोग हक पु कह बेला हक किले ॥२५३२॥ “५? टकोई योगी , | ! पै.पराये व्यक्ति चेतो। तुम' ज़िसे' हक हो वे ५ तज्जन तो

३८६ कबीर समग्र अर्थ-माया की वातो मे पड़कर सज्जन दुर्जन हो गया। जो पहले सोना सा मूल्यवान् था वह कॉसा और तॉबा सा तुच्छ हो गया। अपना मूल्य खो बैठा। सदुगुरु बचन सुनहु सन्तो मति लेहू शिर भार। हो हजूर ठाड़ कहते हों ते सेंभार सभार ॥ २५४॥ । अर्थ-ऐ सतो, सद्गुरु के वचनो को सुनो। सिर पर पाप का बोझ मत उठाओ। और पाप मत करो। प्रभु खड़ा होकर सम्हलने को कह रहा है। सन कागद छूवो नहीं कलम घरो नहि हाथ। चारिंहुं युग को महात्म मुखहि जनाई बात ॥२५५)॥ अर्थ-स्याही, कागज और कलम नहीं छूने पर भी सत-साधक आत्मानुभव से चारो युगो की बाते मौखिक बताते है। वे सार्वकालिक और सावदिशिक प्रभाव की होती है। द टिप्पणी-प्रथम पक्ति मे सन के स्थान पर मसि पाठ अधिक स्पष्ट है। किंतु सन पाठ प्राप्त है। सन की व्युत्पत्ति और अर्थ ठीक-ठीक समझ में नहीं आता है। हो सकता है, सन रोशनई का अपभ्रष्ट हो। अन्यत्र के पाठो मे मसि शब्द ही है। सपने सोबा मानता खोलि न देखे नैन। जीव परा बहुलूट में ना कुछ लेन न देन॥२५६॥ अर्थ-जीव इस ससार मे सोकर सपना देखता है। किंतु इसे आँखे खोलकर नहीं देखता है। यह जीव छूट मे पड़ गया है। काम, क्रोध आदि उसे लूट रहे है। ज्ञान होने पर उसे समझ मे आयगा कि सब स्वप्न है। व्यर्थ है। उसे किसी से कुछ लेना देना नहीं है। सबको उत्पति घरती जीवन को प्रतिपाल। घरती न जाने आप गुण ऐसो गुरू विधार॥२५७॥ भ्र्थ-धरती माता है। सबको पैदा भी करती है। सवका पालन भी करती है। किंतु वह अपने गुणो के प्रति अहकाररहित उदासीन रहती है। मनुष्य को ऐसा ही उदार होना चाहिए। सब ते साधा ही भला जो दिल साधा होय। सांच बिना सुक है नहीं कोटि करे जो कोप ॥२५८॥ अर्थ-दिल को सच्चा रखना चाहिए और सबके प्रति सत्य का व्यवहार करना चाहिए। सत्य मे जो सुख है वह कहीं नहीं है। कोई चाहे कितना भी उपाय क्यो न कर छे। सब ही ते लघुता भली लघुता ते सब होय। ज्यों द्वितीय के चंद्रमा शीश नवाबै सब कोय ॥२५९॥ अर्थ-लघुता (नम्नता) सबसे अच्छी चीज है। लघुता से ही सब होता है। जैसे द्वितीया के छोटे चद्र को सभी हक है। (वह शिव के सिर पर रहता है)। की गति एक है जिहि देखी सब ठौर। कहहि कबिर ये बीच के कहै और की और॥२६०॥ अर्थ-जिन्होने साधना द्वारा सभी जगहो को देख लिया है, समझ लिया है, उनकी बाते 35 वे ठीक जानते है। किंतु जिन्होने अधकचरा ज्ञान प्राप्त किया है वे और का और कहते है। समुझाये समुझे नहीं पर हथ हाथ बिकाय। में खीचत हो आपु को चला जमपुर जाय ॥२६१॥ अर्थ-मनुष्य को कितना भी समझाइये वह विषयो के हाथ मे विका है। मै उसे साधना और मुक्ति द्वारा अमरता की ओर खींचता हूँ। किंतु वह तो नाशवान् विषयो के चक्कर मे यम नगर की ओर बढ़ रहा है।

साखी 2८७ सर्ग पताल के बीच मे हुई तुंबिका विद्ध | घट दर्शन संशय परे लक्ष चौरासी सिद्ध ॥२६२॥ अर्थ-स्वर्ग और पाताल के बीच मे यह जीव (तुम्बिका) वासनाविद्ध है। षड दर्शन (योग, न्याय, मीमासा, वेदात, साख्य, वैशेषिक) तथा चौरासी छाख सिद्ध भ्रम मे पड़े है कि इस जीव का उद्धार कैसे हो ? क्योकि इनके पास जीव के उद्धार का कोई उपाय नहीं है। साँचा शब्द कबीर का दृदया देखि दिचारि। चित दे समुझ्ने नहि मोहि कहत भए जुग चारि ॥२६३॥ अर्व-महात्मा कबीर साहब चार युगो से कह रहे है। कितु कोई ध्यान से सुनता नहीं है।' उनकी वाणी ही सत्य है। इस बात को बुद्धि नहीं हृदय से विचार कर देखो। क्योकि सत की वी हृदय से हृदय के लिए होती है। सौंप बिछी मंत्र है महुरो झारा जाय। विकद नारि पाले परे काठि करो जो खाय॥२६४॥ शब्दार्ध-महुरो 5 विष। जहर। झारा 5 मत्र द्वारा सर्प काटे आदि की जहर लहर को हटाना। अर्थ-सॉप और विच्छू के मत्र से जहर का प्रभाव भी उतारा जा सकता है। कितु जो किसी स्त्री के वश मे हो गया उसकी छहर को कोई नहीं उतार सकता है। स्त्री तो कछेजा ही निकालकर खाती है। मतढूब यह कि स्त्री सॉप, बिच्छू और जहर से भी भयानक है। साखी कहे गहे नहि चालचली नहि जाय। सलिल मोह नदिया बह पाँव कहाँ ठहराय ॥२६ ५॥ अर्य-साखी कहा कितु उसे हृदय में ग्रहण नहीं किया। साखी के उपदेशो को जीवन व्यवहार मे नहीं उतारा। उसके अनुसार आचरण नहीं किया। फलत मोह नदी के जल में बह रहे है। कहीं पॉव टिकाने का भी स्थान नहीं मिल रहा है। सायर बुद्धि मान बाए विचक्षण चौर। सारी दुनिया जहड़े गया कोइ न लागा ठौर॥२६६॥ शब्दार्थ-जहड़े + धोखा खाया। अर्व-बुद्धि का विशाल सागर बनाया। चारो ओर विलक्षण रूप मे बुद्धि को फैलाया। कितु इससे कुछ छाभ नहीं हुआ। धोखा ही हुआ। ससार समुद्र में कहीं भी टिकने का ठिकाना नहीं लगा। वासना विकल धूमते रहे। सावन केरा सेहरा बूँद परे असमान। सब दुनिया वैष्णव भया गुरु नहि लागा कान ॥२६७॥ अर्थ--आसमान से गिरनेवाली बूँदे सावन का सेहरा (मुकुट) बनीं अर्थात् गुरुदेव के वचन सावन की तरह बरस रहे है। सारी दुनिया वैष्णव हो गयी। फिर भी गुरुदेव की बातो पर ध्यान नहीं देता ढै। सभी दिखावटी वैष्णव है। सह चोर चीन्हे नहीं अन्धा पति के हीन। पारख बिना बिना सहे करि विचार हो भिन्नत२६८॥ अर्थ-साधु और चोर मे अतर को बुद्धिरहित अज्ञानाध नहीं समझते है। पारख गुरु देव के बिना, बिना साधना का कष्ट सहे। छोग भिन्न-भिन्न विचारों मे मग्न है। साहू से भे चोखा चेरन्हि ते भए शुद्ध त्तब जानिहुणे जीयरा जबहि परेगा तुज्स ॥२६९॥ अर्थ-साह से चोर और चोर से फिर शुद्ध सात्तिक वृत्तिवाले हुए। ऐ जीव, इस बात को

 तब समझोगे जब तुम स्वय इसमे पड़ोगे। साधना करोगे | साहेब साहेब सब कहे मोहि अंदेशा और। साहेब से परचा नहीं बैठहुगे केहि ठोर।॥।२७०॥ अर्थ-सभी लोग साहेब, साहेव कहते है। किंतु मुझे इन कथनो मे सच्चाई नहीं दीखती है। ये लोग साधक नहीं है। शास्त्र की सुनी बाते कहते है। किसी का साहेव (प्रभु) से परिचय नहीं है| बिना परिचय के ये बेचारे कहाँ जायँगे ? सिंह अकेला वन रवे पलक पलक करे दौर। जैसे बन है आपना तैसा बन है और॥२७१॥ शब्दार्थ-रवे 5 रमे। दौर < दौड़। अर्थ-जीवात्मा सिह विषय वन मे अकेले और पल-पल दीड़ता है। अपनी दुनिया के समान और भी दुनिया है। इसमे दौड़ना व्यर्थ है। परमात्मा की दुनिया मे दौड़ने की कोशिश करनी चाहिए। सुकृत बचन माने नहीं आपु न करे विधार। कहहि कबीर पुकारि के स्वप्न भया संसार ॥२७२॥ अर्थ-लोग पुण्यात्मा (सुकृत) पुरुषों की बातो को मानते नहीं। स्वय विचार कर नहीं पाते है। यह ससार स्वप्न जैसा सुखद लगता है। किंतु यह भ्रम है। इसमे कोई सुख नहीं है। सुगना सेमर येगि तजि घने विगूधी पाँच। ऐसा सेमर सेइया जाके हृदय न आँख ॥२७३॥ शब्दार्थ-सुगना < पक्षी। जीव। विगूची & नष्ट हुआ। पॉच > पॉच इद्रियाँ। हृदय आँख > दिव्य चक्षु। ज्ञान। अर्थ-ऐ जीव, सेमल जैसे निस्तत्व वस्तुओ को जल्दी छोड़ दो। पॉचो ज्ञानेद्रियो के विषयो (रूप, रस, गध, स्पर्श, शब्द) ने तुम्हारा बड़ा विनाश किया। विषय सुख सेमल फूल के समान भ्रामक है। इनका सेवन वही करता है जिसके हृदय मे ज्ञान नहीं होता है। सुगना सेमर सेड्या दुई ठेठि की आस। ठेठी फूंटि घनाक दे सुगना चले निरास॥२७४॥ शब्दार्थ-ठेठि > पत्ररहित फल। ढँठा फल। चनाक 5 चटाक। अर्थ-ऐ जीव, तुमने सेमल के दो सारहीन फलों की आशा मे उसका सेवन किया। भावार्थ कि सारहीन वासना विषय वाले हौकिक एवं पारलैकिक दो फलो की आशा की। किंतु सेमल फल फूटने पर, कर्म परिपाक होने पर तुम्हे निराशा हुई। ससार विषय मे कोई सुख नहीं है। सेमर का सुगना छिहुले बैठा जाय। चंचु संवारे सिर धुने वोए उसी का भाय॥२७५॥ शब्दार्थ-छिहुले > छिछला। छितराया। भाय 5 भाव । अर्थ-सेमल जैसे निस्तत्व विषयो मे मन लगानेवाला जीव खूब छितरी डाल पर जाकर बैठा। चोच सेंभाला। फल पक रहा है। खाएगा। किंतु सेमल फल की रुई उड़ गयी। जीव रूप पक्षी निराश हो गया। क्योकि विषयो से किसी की आशा पूर्ति नहीं हो सकती है। सोना सज्जन साधुजन हूटि जुरहि शत् यार। दर्जन भाँड छुलाल का एकहि घके दरार ॥२७६॥

साखी ३८९ शब्दार्थ-भॉड ८ बर्तन। कुलाल ८ कुम्हार | अर्थ-सज्जन और साधु सोने के समान है। सौ बार टूटकर भी मिल जाते है। दुर्जन कुम्हार के मिट्टी के बर्त्तन के समान है। मिट्टी का बर्तन जरा धक्का खाकर टूट जाता है। फिर कभी नहीं जुड़ता है। ' का हंस बक दिखिये एक रंग चरे हरियरे ताल। हंस क्षीर ते जानिये बक उधरेगे काल ॥२७७॥ अर्थ-हस और बगुला एक रग के है। दोनो हरियर तालाब मे चरते है। कितु नीर क्षीर विवेक से जब बगुछे का भेद खुलता है तब दोनो का भेद स्पष्ट होता है। हंसा तू तो सबल था हलकी अपनी चाल। रंग कुरंगे रंगिया किये और लगवार॥२७८॥ अर्थ-ऐ हस, तुम अपनी हल्की चाल से मजबूत थे। कितु बुरे रग मे रगने से, बुरा कार्य करने से तुम ऐय्याश हो गए। ४ हंसा ते घट भीतरे बसे सरोवर खोट। एकी जीव ठौर नहि लागा रहा सो ओटहि ओट॥ २७९॥ अर्थ-हस (आत्मा) शरीर के भीतर वासनायुक्त तालाब मे निवास करता है। इसलिये यहाँ एक भी जीव के लिए जगह नहीं है। सब ओट (आड़) मे रहते है। किसी को उचित स्थान नहीं मिल पाता है। हंसा ते सुबरण वरण कहा बरण को तोहि। तरुबर पाप पहेलहु तबहि सराहौ तोहि॥२८०॥ कं अर्थ-हे हस, तुम स्वर्ण वर्ण हो। तुम्हे और किसी सुंदर वर्ण की आवश्यकता नहीं है। पाप के पेड़ को हटाओ तो तुम्हारी सराहना होगी। हंसा मोति बिकानिया कंचन थार भरे। जो जस मर्म न जाने सो तस काह करे॥२८१॥ अर्थ-हस (आत्मा) सोने की थाली मे मोती बेचते है। पवित्र हृदय मे पवित्र विचार रखते है।कितु जो सुवर्ण, मोती और हस के महत्त्व को नहीं जानता वह क्या करेगा ? अ हंसा सरवरि तजि चले देही परिगी सून।| कहहि कबीर सुनहु हो सन्‍्तो ते दर तेई थून॥२८२॥ अर्थ-आत्मा रूप हस शरीर सरोवर को छोड़कर चले | देह सूना हो गया। सत कबीर कहते है कि आत्मा के आभाव मे शरीर-के सारे अग खभे (थून) के समान निर्जीव हो गए है। हद चले ते मानवा बेहद चले से साधु। हद बेहद दोनो तजे ताकी मती अगाघु ॥२८३॥ ।|ं अर्थ-मनुष्य सीमा मे रहता है। साधु पुरुष सीमा तोड़कर चलते है। जिनकी बुद्धि अगाध « है ऐसे प्रभु या सतगुरु सीमा और असीमा दोनो से परे है। वे नि सीम है। हरि हीरा जन जौहरी सबनि पसारी हाट। जब आए जन पारखी तब हीरा की साट ॥२८४॥ अर्थ-अन्यत्र देखिए | हाड जरत जैसे लाकरी केस जरे जैसे घास। कबिरा जरे रामरस कोठी जरे कपास॥२८५॥ अर्थ-हड्डियाँ कड़ी सी जल्ती है। केश घास सा जलता है। शरीर कोठी के कपास सा जलता है। कबीर राम प्रेम मे जलते है।

३९० कवीर समग्र हाथ कटोरा खोवा भरा मग जोवत दिन जाय। कबिरा उतरा चित्त सो छौँछ दियो नहि जाय ॥२८६॥ अर्थ-जिनके लिये खोवे का कटोरा लिये दिनभर प्रतीक्षा होती थी वे व्यक्ति जब मन से उतर जाते है तब उन्हे छाँछ (मट्ठा) भी नही दिया जाता है। टिप्पणी-'चित्त से उतरना' का अर्थ है उदासीन होना। किसी व्यक्ति के प्रति प्रेम समाप्त होना | / हिलगी भाल शरीर मैंह तीर रहा है टूट | चुम्बक बिनु निकसे नहीं कोटि पाहन गी छूट ॥२८७॥ अर्थ-शरीर मे राम प्रेम का भाला घुसाकर उसका तीर टूट गया है। लाख पत्थर मारो कितु बिना मुक्ति चुम्वक के वह शरीर से निकलनेवाला नही है। हीरा तहाँ न खोलिए जहँ हो खोटी हाट । सहज कि गाँठी बाँघिये लगिए अपनी बाट॥२८८॥ अर्थ-खराब लोगो के बीच मे हीरा की गाँठ खोलना व्यर्थ है। अगर खोला भी हो तो तुरत बॉध लो और अपने रास्ते चले जाओ। हीरा सोई सराहिये सहे जो घन का चोट। कपट कुरंगी मानवा परखत निकला खोट ॥२८९॥ अर्थ-उसी हीरा की सराहना करनी चाहिए जो हथीड़े की चोट बर्दाश्त करे। कपट से भरा, कुरगी मानव परीक्षण करते ही खराब निकलता है। हृदय भीतर आरसी मुख देखा नहि जाय। मुख भी तब ही देखिए जब दिलकी दुविधा जाय ॥ २९०॥ अर्थ-हृदय मे दर्पण है। कितु उसमे मुँह नही देखा जा सकता है। क्योकि बिना हृदय की दुविधा मिटाए स्पष्ट नही दीखेगा। ज्ञान और अज्ञानमृलक वस्तुओं की दुविधा के कारण हृदय मलिन हो गया। ही जाना कुलहंस हो ताते कीन्हा संग। जो जानत बयु यावरा छुये न देतेऊँ अंग ॥२९१॥ अर्थ-मैने तो कलहस समझकर साथ किया था। यदि जानता कि बावला बगुला है तो एक अग को भी छूने न देता। हो तो सब ही की कही मो कहें कोइ न जान । तब भी अच्छा अब भी अच्छा युग-युग होऊँ न आन॥२९२॥ अर्थ-चैतन्यात्मा का कहना है कि मैने तो सबका कहा। मुझे कोई नही जानता है। तब भी अच्छा था। अब भी अच्छा है। हर युग मे अच्छा रहेगा। मै कभी दूसरा नही होता हूँ।

साखी (६०) निगुरा नर को अंग जो निशुरा सुमिन करे, दिन मे सौ सौ बार । नगर नायका सात करे, जौ कौनकी लार॥१॥ गुठ बिन अहि निस नाम ले, नहीं संतका भाव। कहे कबीर ता दासका, पर न पूरा दाब॥२॥ गर्भ सोगेशर गुर दिना, लागे हरिकी सेवा कहे कबीर बैकुण्ठते, फेर दिया. शुकदेब॥ ३॥ गुरू बिन माला फेरते, गुरु बिन देते दाना गुस बिन दान हराम है, पूछी वेद पुरान॥४॥ कोटिक चन्दा ऊंगे, सूरज कोटि हजार । सतगुरु मिलिया बाहिरे, दीसे. घोर अँधियार ॥५॥ दाकका मे पावक बसे, घुनका घर किया जाव। यो हरि संय बिमुख निगुरु को, काल ग्रासिही खाब॥६॥ पूरे. को पूरा मिल पूरा परसी दाव। निगुरा तो छुबट चले, जब तब करे कुदाव॥७॥ सावन छूटा मेघ ज्यों, बूँई. पी असमान। सब जग तो गुरुमुख भया, गुरु नहि लागे कान॥८॥ गुर मिला तब जानिये, मिटे मोह. तनताप। हरश शोक ग्याये नहीं, तब हरि आप आप॥९॥ जो कामिनी परदा रहै, सुने न गुरु मुख बाता सोती होगी शूकरी, फि. उधोरे गात॥१०॥ (६१) गुरु शिष्य हेरा को अंग सतगुर हम सौ रीक्षिके, एक दिया उपदेस। भवसागरते. बूढझता, कर गहि. काहे. केस॥१॥ कबीर ऐसा तो सतगुरु मिलरा, जासों रहिया लाग। सब जग तो शीतल भया, मिटी आपनी आग॥२॥ गुर तुझारा कहाँ है चेला कहाँ रहाय। क्यो कर तो मिलना भया, बिछुरे आबै जाय॥३॥ गुर हमारा गगन में, चेला है चित माँहि। शब्द सुरति में लीनडे, बिछुत कबषहू नॉहि॥४॥ ऐसा कोई. नामिला, सपुन्ने सैन सुणान। ढोल बाजता ना सुने, सुरति बिहूना कान॥५॥ ऐसा कोई ना मिले, हमको ले पहिचानि। अपना करी कृपा कै, ले उतार मैदान॥६॥ ऐसा कोई ना मिले, राम भजन का मीत। तने मन सौंपे मुगज्यों, सुनै बिक का गीत॥।७॥ ३९१

 ऐसा कोई ना मिले, जासो कहूं दुख सुख रोय। जासो कहिये भेदकी, सो फिर बैरी होय॥८॥ जैसा दूँतता मे फिर, तैसा मिले न कोय। तत्ववेता तिरयुन् रहित, निरयुनसो रत होय॥९॥ माया डोले मोहती, बोले कडुआ बैन। कोई घायल ना मिले, साई हिरदा सैन॥१०॥ सर्पहि. दूध पिलाइये, सोई -बिष हो जाय। ऐसा कोई ना मिले, आपेहि.,. विष खाय॥११॥ नादी वादी बहु मिले, करत कलेजे छेद। कोइ तख्त तेरे का ना मिले, जासों पूछूँ भेद॥१२॥ तख्त तरेकी सो कहै, तख्त त्तरका होया। मंत्र महलकी को कहै, बांका. परदा सोब॥१३॥ मंझ्े महलकी गुरु कहे, देखा सब घर बार। कूँची दीन्ही हाव कर, परदा दिया उघार॥१४॥ बांका परदा खोलिके, सनमुख ले दीदार। वास सनेही सांइयां, आदि अंतका यार॥१५॥ आदि अंत सबको नही, निज बाने का दास। सब संतन मिलि यो रमे, ज्यो पुहपनमे बास॥१६॥ पुहुपपण. केरी बास ज्यो, व्यापि रहा सब उठांहि। दाहिर कबहू न पाये, पावे संतो मांहि।१७॥ प्रद कहूँ तो मारिया, परदा लखे न कोय। सहना छिपा पयालमे, कोकहि. बैरी होय॥१८॥ या पयाल को फूँकिय, तनियक लाई आग। सहना पाया हूँढ़ता, धन्य हमारा भाग॥१९॥ बोलता कहां बसै कहु, केतिक रूप सरूप। के पेंखुरी की सुति है, केतिक वस्तु अनूप॥२०॥ बोलता मध्ये मे बसे, हरा बरन. स्वरूप। सात पंखुरी सुरति है किचित वस्तु अनूप॥२१॥ वस्तु कहूँ दूँ कही, किहि. विधि आबे हाव। कहे कबीर तब पाइये, भेदी लीजे साव॥२२॥ भेदी लीनाँ साथकरि, दीनही वस्तु बताय। कोटि जनमका पंच था, पल में पहुँचा जाय॥२३॥ विछा पूछे बीज को, बीज वृक्षके मांहि। जीव जो दूँढे ब्रह्यको, ब्रह्म जीवके पांहि॥ २४॥ डाल जो हदूँढडे मूल को, मूल डालके मांहि। आप आपको सब चले, (कोई) मिले मूल सो नाहि॥२५॥ मूल कबीरा गहि चढ़े, फल खाये भरि पेद। चोरासी की गम्य नही, ज्यो जाने त्यो लेद॥२६॥ आदि हती सब आपमे, सकल हती ता मांहि। ज्यो तरवरके बीजमे, डार पात फल छांहि॥२७॥

- साखी जिन हूँया तिन पाइयां, गहरे पानी पैठि। मे बेर बूडन डरा, रहा किनारे बैठि॥ २८ ॥ हेरत हेरत हेरिया, रहा कबीर हिराय। उन्द समानी समुद्रमें सो कित हेरी जाय॥ २९॥ उनद समाना समुद्रमें यह जाने सब कोय। समुद्र समाना बुन्दमें, बूत्चे बिरला. कोय॥ ३०॥ समुद्र समाना बुन्दमें, गोखुरके अस्थान। रूप सो सेवक सेवामें रहे, सेवा. करे दिन. राति। कहै. कबरी कुसेवकहि, समुख ना टठहराति ॥४॥ फलकारन सेवाकरे, . निशि दिन जांचे राम। कहै. कबीर सेवक नही, चाहे चोगन दाम॥ ५ ॥ राम धनी जाते नही, सेव. करे दिनरात। कबीर ॒ ता सेवके, काल करे नहि. घात ॥६ ॥ सेवक स्वामी एक मत, मतमे मत मिलिजाय। चतुराई रीक्े नही, रीघ्े मनके भाव॥ ७॥ सब पास है, पाइय भाग। सेवक मन सों प्यार है, निशि दिन चरणों लागि॥८॥ शिष्य ऐसा. चाहिये ” गुरुको सर्व देय। युरू को ऐसा चाहिये, शिष्यका कहूँ न लेब॥९॥ सेतगुरु शब्द उलंधि » जो कोई शिष्य जाय। जहों जाय तहाँ काल है कहे कबीर समझाय॥ १ ०॥ करे. कर वाधो कात। डूईं दिशि देखत बहि.ः गया, पानी फूटी पाल॥११॥ सो शिष्य करे, सब सिद्ध कारज होय।

३९४ कवीर समग्र अमर अभय पद पाइये, काल न झांके कोय॥१२॥ आस कै बैकुण्ककी, वांछित है ति काल। शुक कही बालि ना करी, तिहिते गयो पताल॥१३॥ साहिब. को भाव नहीं, सो हमसो जनि होय। सतगुरु लाजें आपना, साध. न मानै कोय॥ १४॥ द्वार धनीके परि रे, धका घनीका खाय। कब्हुक धनी निवाजि है, जो दर छाड़ि न जाय॥१५॥ साहबके दरवारमे, कमी कहुकी नाहि। बन्द मौज न पावही, चूक चाकरी मांहि॥१५॥ धूम धाम सहता रहे, कबहु. न छाडे संग। पाहा बिना लागे नहीं, कपड़ा के बहुरंग॥१७॥ मेश मुझमे कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर। तेश तुझको सौपता क्या लगेगा मोर॥१८॥ तेरा तुम्तमे कुछ नहीं, जो कुछ है सो मोर। मेर मुझको सौंपता, जीव धरकेगा तोर॥१९॥ (६३) दासातनको अंग दासातन ड्दये नही, नाम धरावे दास। पानीके पीये दिना, कैसे मिट पियास॥१॥ नांव. घरावै दास सो, दासा तन मे लीना कहे कबीर लौलीन बिन, स्वान बुद्धि कहि दीन॥२॥ दासातन हृदय बसे, साधन सों आधपीन। कबीरा दाससो, दास लक्ष लौलीन॥३॥ कबीर हरि सबको भजै, हरिको भजै न कोय। जब लगि आस शरीर की, तब लग दास ने होय॥४॥ निरबन्धन बंधा रहै, बंध्या निरयन्ध सोय। करी करता नहीं, दास कहावबैं. सोय॥५॥ भुक्ति मुक्ति मांगू. नहीं, भक्ति दान दे मोहि। और कोई जांचू नही, निस दिन जांचू. तोहि॥६॥ राम धनी सिर पर खड़ा, कहा कमी तोहि दास। ऋद्धि सिद्धि सेवा करें, मुक्ति न छोड़े पासाण॥ दास दुखी तो हरि दुखी, आदि अंत तिहुँ काल। पलक. एकमे परगटे पलमे कै. निहाल॥८॥ (६४) यतीको अंग सदा कपाल दुख परहरन, बैर भाव नहिं दोय। क्षमा ज्ञान सत भाषिये, हिसा रहित जो सोय॥१॥ दुख सुख एक समान है, हरष शोक नहि व्याप। पर उपकारि निष्कामता, उपजै छोह मन ताप॥२॥

शक साखी इंद्रेय दमन निगरह करन, हइृदया कोमल होय। सदा शुधि आचारसो, रहे. विधारसों सोय॥३॥ और देव नहीं चित्त बसे, बिन प्रतीति भगवान। मिलि अहार भोजन करे, तृष्णा चले न जान॥४॥ सदा रहे संतोषमें, धरम आप दृह थारि। आश एक भगवानकी, और न॒ घित्त बियारि॥ ५॥ सावधान औ शीलता, .. सदा प्रफुल्लित. जानि। निर्विकार गम्भीर मत, धीरजवान बखानि॥ ६ ॥ घटहि विकार शरीरके, तिनको चित्त न लाय। शोक मोह प्यासहि इ्षुधा, जरा मृत्यु नशिजाय॥ ७॥ मान अपमान ने घित घै, औरन को सनमान। जो कोई आशा कै, उपदेश. तेहि ज्ञान॥ ८ ॥ कपट कुटिलता छॉडिके, सबसो मित्रहि. भाव। कुपावान सस॒ ज्ञानवंत, बैर भाव नहि. काब॥९॥ निश्चय भलि अर टृहमती, ये सब लक्षण जान। सोइ साथु है जगतमे, जो यह लक्षणवान॥ १० ॥ ऐसा. साधुन खोजिके, रहिये... चरणों लाग। मिंटे जनम की कल्पना, जाके पूरण भाग॥११॥ (६५) सतीको अंग शीलबंत शूर ज्ञान मत, अति उदार घित होय। लज्जावान अति निछलता, कोमल हिरदय सोय॥ १ ॥ दयावंत धरमके ध्वजा, धीरजवान प्रमान। संतोषी सुखदायक रु, सेवक परम सुजान॥ २॥ चतुर विवेकी घीरमत, क्षमावंत बुद्धिवान | आज्ञावान परमत लिया, . मुदित प्रफल्लित जान॥ ३॥ ज्ञानी अभिमानी नही, सब काहूँ सो. होत। सत्यवान परस्वारथी, आदर भाव सहेत॥ ४॥ घट दर्शन कों प्रेम करि, असन बसन को पोष। सेवा. करे हरिजननकी,.. हर्षित.. परम संतोष ॥ ५॥ ऐसी भांति जो सती है, सो निज मुक्ति प्रमान। मुक्ति देत संसाको, सोई सती तू. जान॥६॥ यह सब लक्षण चित धे, अपलक्षण सब त्यागि। सावधान सम ध्यान है, हरि चरणन रहे लागि॥ ७॥ (६६) उपदेशको अंग अंतर 220 याहि.. विचारिया, साखी कहो. कबीर। भवसागरमें जीव है, सुनिके लागे.. त्तीर॥१॥ काल काल तत्काल है, बुरा न करिये कोय। ३९५

३९६ कबीर समग्र अनबावे लुनता नही, बबे लुनता होय॥२॥ जो तोको काटा बुबे, ताको जो तू फूल! तोहि. फूलके फूल है, वाको है ब्रिशूला३॥ दुर्बई को न सताहये, जाकी मोटी हाय। बिना जीवकी स्वॉससे, लोह भस्म डे जाय॥४॥ या दुनियाँ में आइके, छाड़ि देह ऐडि। लेना होय सो लेइले, उठी जातु है पैठि॥५॥ खाय पकाय लुठायले, यह. मनुग़. मिजमान। लेना होय सो लेइलै यही गोय . मैदान॥६॥ लेना होय सो लेइले, कही सुनी मत मान। कही सुनी युग चली आवागमन बेंधान॥ ७॥ सतहीमे सत बॉटई, रोटीमे त्ते द्क। कहे कबीर ता दासको, कबहुँ न आधे चूक॥८॥ घरेका गुण यही, देह देह कछु | जहुरि न देही पाहइये, अबकी देह सो देह॥९॥ कबीर पुकारिके, दोय बात लखिलेव। के साहवकी बंदगी, के भूखो को कछु देय॥१०॥ कहे कबीर देह तू, जब लगि तेरी देह। देह खेह हो जायगी, तब कौन कहेगा देह॥११॥ हाइ बड़ा हरि भजन कर, द्रव्य बड़ा कहु देह। अकल बड़ी उपकार कर, जीवनका फल येह॥१२॥ गॉँठि होय सो हाथ कर, हाथ होयथ सो देह। आगे हाद न बानिया, लेना होय सो लेह॥१३॥ इहाँ विसाहनकरि चलो, आगे. विषमी . वाद) स्वर्ग बिसाहान ना मिले, ना बनिया ना हाट॥१४॥ धर्म किये घन ना घाहे, नदी न घट्टे नीर। अपनी आँखें पेखिये, यो कथि कहे कबीर॥१५॥ कबीर तहां न जाहये, जहाँ जो कुलको हेत। साधुपनी जाने नही, नाम बाप को लेत॥१६॥ कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ सिद्ध को गाम। स्वामी कहै न बैठना, फिरि फिरि पूछे नामा१छा इष्ट मिलि और मन मिले, मिले सकल रस रीति। कहे कबीर तहेँ जाइये, यह संतन की प्रीति॥१८॥ ऐसी. बानी बोलिये, मनका आपा खोय। औरन को शीतल कै, आपुहि. शीतल होय॥१९॥ जगमे बैरी कोइ नही, जो मन शीतल होय। या आपा को डारि दे, दया करे सब कोय॥२०॥ कहते को कह जान दे, गुर की सीख तु लेय। साकद एक स्वानको, फेरि जवाब न देय॥२१॥ कबीरा काहेको डरै, सिरपर सिरजनहार।

कबीर समग्र उत्तम भीख जो अजगरी, सुनि लीजो निज बैन। कहे कबीर ताके गहे, महा परम सुख चैना४०॥ भेंव भीख मध्यम कही, सुनी संत. चितलाय। कहे कबीर जाको गही, मध्यम माँहि, समाय॥४१॥ भीखहि.. गदहाकी कहूँ, निकृष्ट कहाबै सोय। कहे कबीर इस भीखमे, मुक्ति न कबहूँ होय॥४२॥ कथा कीरतन कलि विषे, भवसागर की नाव। कहे कबीर या जगतमें, नाही और उपाव॥४३॥ कथा कीरतन करनकी, जाके निसि दिन रीति। कहे कबीर वा दास सो, निश्चय कीजे प्रीति॥४४॥ कथा कीरतन छोडिके, कै जो और उपाव। कहे कबीर ता साधुके, पास कोई मति जाव॥४५॥ कया कीरतन रात दिन, जाके उद्यम एहद। कहे कबीर ता साधुके, चरण कमल की खेह॥४६॥ कथा करो करतार की, निसि दिन साँन्च सकार। काम कथा को- परिरी, कहें कबीर विचार॥४७॥ काम कषा सुनिये. नही, सुनिके उपज काम। कहे कबीर विचारिके, विसरि जाय हरि. नाम॥४८॥ कथा करो करतारकी, सुनो कथा करतार। आन कथा सुनिये नही, कहे कबीर विचार॥४९॥ अन्य कथा अन्तर परे, ब्रह्मा जीवमे. सोय। कहे कबीर यह दोष बड, सुन लीजो सब कोय॥५०॥ कथा कीरतन कलि विधे, तरबेकी उपकार। सुने सुना और को, यहि उपदेश हमार॥५१॥ कथा कीरतन सुननको, जो कोइ कौ सनेह। कहे कबीर ता दासके, मुक्तिमें. नहीं संदेह॥ ५२॥ कबीर संगी साधुका, दल आया भरपूर। इंद्रियो. को तब बांधिवा, या तन कीया पूर॥ ५३॥ बहतेकी बह जान दे, मत पकड़ाबे ठौर। समझाया समझे नहीं, देह धका दो और॥ ५४॥ बहते को न बहन दे, गह . पकरायो ठौर। कह्यो सुन्यो माने नहीं, शदू कहीं द्वे और॥। ५५॥ बन्दे तू कर. बन्दगी, जो पावे.. दीदार। औसर मानुष जन्मका, बहुरि न वारम्बार॥५६॥ बाबार तो सो कह, सुने मनवा नीच। बनजारेके बैल ज्यों, पडा. माँही मीच॥ ५७॥ बनजारेके बैल ज्यो, [ज(अ। उतरयो आय। एकनके दूना भया, एक चला मूल गेंवाय॥५८॥ मन राजा नायक भयों, ठोंडो लदा जाय। है है है है है रही, पूँजी गई बिलाय॥५९॥

४००० कबीर समग्र कहे कबीर चारो चरत, बिसरत कबहूँ नांहि॥१६॥ सुमिन की सुधि यो करो, जैसे दाम कंगाव। कहे कबीर बिसरे नहीं, पल पल लेत संभात॥१७॥ सुमिन सो. मन लाइये, जैसे नाद . करंग। कहे कबीर बिसरे नहीं, प्रानः तजै तिहे संग॥१८॥ सुमिन सो मन लाइये, जैसे कीट रु भुंग। कबीर बिसरे आपको, होय जाय ' तिहि रंग॥१९॥ सुमिरन सो मनलाइये, जैसे दीप. पतंग प्रावः तजै छिन एकमे, जरत न मोरे अंग॥२०॥ सुमिन सो मन लाइये, जैसे पानी मभीन। प्रागः तजें फल बीसरे, दास कबीर कहि. दीन॥२१॥ सुमिन मन लागे नही, विषहि. हलाहल . खाय। कह कबीर हटका न रहे, करि करि थका उपाय॥२२॥ सुमिन सो मन जब लगे, ज्ञानांकुश दे शीस। कहे कबीर डोले नही, निश्चय विश्वाबीस॥२३॥ सुमिन माँहि, लगाय दे, सुति आपनी सोय। कहे कयीर संसार गुन, तुझे न व्यापे कोय॥२४॥ सुमिन सुरति लगायके, मुखते कछू न बोल। बाहह के पट देइहके, अन्तरके पद खोल॥२५॥ जो बोले तो राम कहु, अनत कहूँ मति जाय। दास कबीर निस दिन कहे, सुमिरन सुरति लगाय॥२६॥ कबीर हरि हरि सुमिले, प्राण जाहिगे छूढ। घरके. प्यो आदमी, चलते लेईंगे तलूट॥२७॥ लूटि. सके तो लूदिले, राम नाम है लूटि। पाछठे फिरे पछितहगे, प्राण. जायेंगे. छूटि॥२८॥ लूटि. सके तो लूटिले, राम नाम है लूदि। नाम जो निर्गुन के गहो, ना तर जैहो खूदि।२९॥ कहै कबीरा तूटिल, राम नाम भंडार। काल कंठ जब गहैगा, रोके दसहू द्वार॥३०॥ कबिरा निर्मम राम जपू,. जबलगि दीवे बाति। तेल घंटे बाती बजुझे, तब सोबोगे दिन राति॥३१॥ कबिरा सूता क्या करे, उठि न भजो भगवान जम घर जब लै जायेंगे, पड़ा रहै गा म्यान॥३२॥ कबिरा सूता क्या करे, जगनकी करि चोप। ये दम हीरा लाल है, गिन गिन हरिको सौप॥३३॥ अपने पहे जागिये, ना परि रहिये सोय। ना जानी छिन एकमे, किसका पहरा होय॥३४॥

साखी नीद निसानी मीचकी, उठू. कबीरा जागि। और रसाइन छॉाँडिके, राम रसाइन लागि॥ ३५॥ सोया सो निष्फल गया, जागा सो फल लेय। साहिब. हकक न राखसी, जब माँगे तब देय॥३६॥ जैसे माया मन रे, तैसे राम रमाय। तारा मंडल छोडिके, जहें केशव तहें. जाब॥३७॥ कबीर छक्षुपा है कूकरी, करत भजनमे.. भंग। याकू दुकड डारिके, सुमिर करूँ सुसंग॥३८॥ ग्रीहीका हुकडा बुर, दै दे ऑगुल दांता भजन कै तो ऊबरें, नार कादे आंत॥३९॥ कबीर चित चंचल किया, चहुँ दिशि लागी लायव। हैरि सुमिन हाथे घड़ा, लीजे बेगि बुन्नाय॥४०॥ कबीर मेरी सुमिरनी, रसना ऊपर राम। आदि युगादी भक्ति है, सबको निज विश्राम॥४१॥ जबही नाम दृदया घरयो, भयो पापको नास। मानी थिनगी अग्निकी, परी पुरा घास॥४२॥ भाम जो रती एक है, पाप जो रती हजार। " आप रती घद संचरे, जारि कै सब छार॥४३॥ कोटि कर्म फिर. पलकमे, जो रंचक आधे नाँव। अनेक युग जो पुन्य करे, नहीं नाम बिनु ठाोव॥४४॥ कबीर हरिके नाममें, सुरति रहै करतार। ता मुखें मोती झरें, हीरा अनंत अपार॥४५॥ कबीर हरिके नाममें, बात चलावे और। तिस अपराधी जीवकूं तीन लोक कित ठैर॥४६॥ शाम नामको सुमिरतों, उधघरे . पतित . अनेक। कहे कबीर नहि. छोडिये, राम नामकी ठेक॥४७॥ राम नामको सुमिरतां, अघम त्तरे संसार। अजामेल गनिका सुप्द, सदना सिवरी नार॥४८॥ सफनहिमे बररायके, जोरे कहैगा राम। बाके पगकी पाँड़ी, मेरे तनको -. चाम॥४९॥ नाम जपत कन्या भल्नी, साकद भला न पूत। छेंीरके गल गलयथना, जामें दूध न मूत॥५०॥ राम जपत कोढ़ी भला, चुडई चुद पर जो चाम। कंचन देह किस कामकी, जा मुख नाही राम॥५१॥ राम जपत दी भला, दूटी घरकी छान। कंचन मंदिर जारिदे जहाँ, भगति ने सारंग पान॥५२)! वोट माही हरि भजे, तिनका नावै सूपता

कबीर समग्र भायाधारी मसखरा, केता गया अऊत॥ ५३॥ कबीर सब जग निर्धना, धनवंता नहि. कोय। धनवंता सोइ जानिये, राम नाम धन होय॥ ५४॥ जाकी गाँठी राम है, ताके है सब सिद्वदि। कर जोरे ठाठी सब, अष्ट सिद्धि नद निद्धि॥५५॥ कबीर प्रगटट हि. राम कहि, छाने राम न गाय। फूसक जोड़ा दूरि कर, बहुरि न लागे लाय॥५६॥ कबीर मुख सोही भला, जामुख निकसै. राम। जामुख राम न नीकसे, सो मुख है किस काम॥५७॥ गोविदके गुन गावता, कबहूँ न कीजै लाज। यहि. पद्धति आगे मुकति, एक पंथ द्वै काज॥ ५८॥ गुन गाये गुन ना कटे, रटै न नाम वियोग। अहनिसि हरि ध्यायो नही, क्यो पाणै दुर्लभ योग॥५९॥ मारग चलता जो गिर, ताको लगे न दोष। कहै कबीर बैठा रहे, ता सिर करडी कोस॥६०॥ कबीर हरिके मिलनकी, बात सूनी हम दोय। के कछु हरिको नामले, करे कर ऊँचा होय॥६१॥ तू तू करता तू भया, तुझमे रहा. समाय। तुझ माही मन मिलि रहा, अब मन अनत न जाय॥६२॥ रग रंग बोले रामजी, रोम रोम ररंकार। सहजे ही मुनि होत है, सोही सुमिरन सार॥६३॥ सहजेही पुनि लगि रही, कहै कबीर घट माँहि। हृदये हरि हरि होत है, मुखकी हाजत नॉहि॥६४॥ अजपा सुमिन घट विषय, दीन्हा सिरजन हार। ताही सो मन लगि रहा, कहे कबीर विचार॥६५॥ कविता माला काठकी, बहुत यतनका. फेर। माला फेरो स्वांसी, जामे गाँठि न मेर॥६६॥ माल जपयूं न कर जपूं, मुकासे कहूँ न राम। मन मेरा सुमिन करे, कर पाया बविसराम॥ ६७॥ माला तो करमे फिर, जीभ फिर मुख मांहि। भनुवा तो चहुँ दिशि फिरे, यह तो सुमिरन नांहि॥६८॥ राम नामको सुमिरता, हंसि कर भाव खीज। उलटठा झुलटा नीपजै, ज्यो खेतनमे बीज॥६९॥ स्वॉस सुफल सो जानिये, हरि सुमिरन मे जाय। और स्वॉस योही गये, करि करि बहुत उपाय॥७०॥। जाकी पूंजी स्वॉस है, क्षण आबि क्षण जाय। ताको ऐसा चाहिये, रहे राम लौलाय॥७१॥ नहीं

साखी कहा भरोसो देहको, विनसि जाय छिन मांहि। स्वॉस स्वॉस सुमिरन करी, और यतन कएछु नाहि॥७२॥ कहता हूँ. कहिजात हूँ. कही बजाए ढोल। स्वॉस खाली जात है, तीन लोकका मोल॥७३॥ ऐसे .,महेंगे मोलका, एक स्वॉस जो जाय। चौदा लोक नहि पटतरे, काहे धूरि मिलाय॥७छढ॥| जिवना थोराही भला, जो हरिका सुमिरव होय। लाख वरसका जीवना, लेखे धर न कोय॥७५॥ कबीर सुमिन अंगको, पाठ करी. मन लायें। विद्या हीन विद्या लहै, कहे कबीर समुझाय॥७६॥ जो कोई सुमिरन अंगको, पाठ कर मन लाय। भक्ति ज्ञान मन ऊपजै, कहै कबीर समुझाय॥ ७७॥ जो कोइ सुमिरन अंग को निसिवासर करे पाठ। कहे « कबीर संतसो, संधे औधट. घाट॥७८॥ (६८) अथ बेअकलीको अंग अकिल बिहूना आबदी, जानी. नही गँवार। जैसे कपि परबस परयो, नावयै घर घर बार॥१॥ अकिल बिहूना सिह ज्यो, गयो शासाके. संग। अपनी प्रतिमा देखिके, भयो जो तन को भंग॥२॥ अकिल बिहूना आंधरा, _ गले पर्यो फंदे आय। ऐसे सब जग बंधिया, कहा कहूँ समुझाय॥ ३॥ पंख छता परबस परयो, सूबाके बुद्धि नाहि। अकिल बिहना आदमी, यो बंधा जग माहि॥४॥ (६९) अकल को अंग अकिल अरश सो ऊतरी, विधिना दीन्ही बांटि। एक अभागी रह गया, एकन लई उ छांटि॥१॥ अलच्छ अकिल जाने नही, जीव जहहम लोय। हरदम हरि. जान्या नहीं, भिकश्त कहांते होय॥२॥ बिना वसीले चाकरी, बिना बुद्धिकी देह। बिना ज्ञाना जोगनां, फि लगाये खेह॥३॥ जल परमाने . भांच्छली, कुल परमाने बुद्धि | जाको जैसा गुरु मिले, ताको सतैसी सुद्धि॥४॥ (७०) अथ प्रमोध को अंग मनहीको परबीधिले, मनहीको उपदेश |

४०४ कवीर समग्र जो या भनको बस करे, शिष्य होय सब देश॥१॥ वात बनाई जय ठग्यो, मन परमोधा नाहि। कह कयीर मन लग गया, लख चोरासी माहि॥२॥ अजहूँ. तेरा सब मिटे, जो माने गुरु सीख। जब लगि तू घरमे रहे, मति कहूँ मांगे भीख॥३॥ (७१) अथ भक्तिको अंग भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानंद। परगट करी कबीर: सात दीप नव खंद॥१॥ भक्ति. भाव भादों नदी, सबै चली घहराय। सरिता सोई जानिये, जेठमास ठहराय॥ २ ॥ हरष बड़ाई पेखिके, भक्ती कर संसार। जब कछु देखे हीनता, अवगुण घै गंवार॥३॥ जबलग नाता जातिका, तब लगि भक्ति न होय। माता तोरे हरि भजै, भक्त कहावै. सोय॥४॥ भक्ति बीज बिनसे, नही, आय पै जो झोल। जो कंचन विष्टा पर, घटे न ताको मोल॥५॥ रामनाम हल जोतिये, सुमिन बीज जमाय। खंड ब्रह्माण्ट सूखा परे, भक्ति वृथा नहि जाय॥६॥ जलज्यो प्यारा माछरी, लोभी प्याया. दाम। माता प्याय झालका, भक्ति पियारी राम॥७॥ भक्ति तो प्रणो होत है, मन दे कीजै भाव। परमारथ परतीतमे, यह त्तन जाय तो जावय॥८॥ भाग बिना नहि पाइये, प्रेम प्रीतिकी भक्त! विना प्रेम नहि भक्ति कछु, भक्ति भयो सब जक्त ॥९॥ प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज दम्भ विचार! उदर भरनके कारने, “ जन्म गेंवॉयों सार॥१०॥ भक्ति विनावे नाम बिन, भेष बनाये होय। भक्ति भेष बहु अंतरा, जाने बिला कोय॥११॥ भक्ति भेष बहु अंतरा, जैसे धरनि अकास। भक्त सुमिरि भगवंतको, भेष जगतकी आस॥१३२॥ जहां भक्ति तहैँ भेष नहि, वर्णाश्रम हू. नाहि। नाम भक्ति जो प्रेम सो, सो दुर्लभ जग माहि॥१३॥ भक्ति स्वरूप भगवंतकी, भेष आहि. कछु और। भक्त स्वरूप भगवंत है, भेष जो मनकी दौर॥१४॥ भक्ति कठिण अति दुर्लभ, भेष सुगम निज सोय। भक्ति जो नन्यारी भेषते, यह जाने सब कोय॥१५॥

साखी भाव बिना नहि भक्ति जग, भक्ति बिना नहि भाव! ये दोऊ जो परस्प, दोय मिलि एक सुभाव॥१६॥ भक्ति सर्वड़े ऊपर अहै, भागि न पावै सोय। कहे पुकार संततनन, सतत सुमिर्त सब कोय॥१७॥ भक्ति पदारथ जब मिले, तब प्रभु होत सहाव। प्रेम भक्तिकी भक्ति जो, पूरन भाग मिलाय॥१८॥ भक्ति सोईजो भावतसो, इक मन चितको राखि। सांच शील सो खेलिये, मै ते दोऊ नाखि॥१९॥ विष्पु भक्ति है दुर्लभ, ज्यो खडेकी घार। दिना सांच पहुँचे नहीं, महा कठिन व्यवहार॥२०॥ भक्ति दुबारा मोकता, सुमिरि सुमिरि समाय। मनको तो मैदा किया, निर्भभ आबै जाय॥२१॥ भक्ति उ्हेली रामकी, नहि कायरकों काम | निस्प्रेही निरधारको, आठ पहर संग्राम॥ २२॥ कामी क्रोधी लालची, इनपै. भक्ति न होय। भक्ति कै कोह शूरमां, जाति बरण कुल खोय॥ २३॥ जाति बरन कुल खोयके, भक्ति कै. चितलाय। कहे कबीर सतगुरु. मिले, आवागमन नसाय॥ २४॥ कबीर हरिकी भक्तिका, मनमे बुत हुलास। मेवासा भाजे नहीं, होन चहै. निजदास॥२५॥ मेवासा मोही किया, दुर्जन काठ दूरि। राज पियारे रामका, नगर बसे. भरपूर॥२६॥ आरतसो हरि भक्ति कर, सब सिधि कारण होय। कूपा माग्या राछ है, सदा न फबसी कोय॥२७॥ भक्ति निसेनी मुक्तिकी, चढे संत सब ध्याय। जिन जिन मन आलस किया, जनम जनम जहँडाय॥ २८॥ निर्षक्षीको भक्ति है, निर्मोहीको ज्ञान। निर्दन्दीको मुक्ति है, निर्लोभी निर्बन॥ २९॥ विधयव त्याग वेराग्य है, समता कहिये ज्ञान। सुखदाई सब जीवसों, यही भक्ति परमान॥ ३०॥ (७२) अथ स्वारथको अंग जो कोई कौ सो स्वारथी, अरस परस गुन देत। बिन किय कै सो शूरमां, परमारथ के हेत॥१॥ स्वाथका सब कोई सगा, जय साराही जान। बिनु स्वाथ आदर करे, हरिकी प्रीति पिछान॥२॥

४०६ आठ. पहर भीना कबीर समग्र सबै सगाई अर्थकी, परमारथ की नाहि। कहे. कबीर परमारथी, कोई कोई कलिपांहि॥३॥ मेरा. संगी कोइ नही, सब स्वार्थी . लोय। मन परतीति न ऊपजे, जीव विश्वास न होय॥४॥ सुखके सगे है स्वारथी, दुखमे रहे जो दूरि। कहे कबीर परमारथी, दुख सुख सदा हजूरि॥५॥ (७३) परमारथ को अंग मरू पर मांगो नही, अपने तनके. काज। परमारथके कारने, मोहि, न आवबै. लाज॥११॥ परमारथके कारने, कबहूँ न दाजै पीठि। स्वाथ सेमल फूल है, कली अपूठी पीठ॥२॥ तरुवर् सरवर संत जन, चौथा बरपे मेह। परमारथके कारणे, चारुन धारी देह॥ ३॥ वृक्ष कबहूं नि फल भले, नदी न संचे नीर! परमारथके कारने, साधुन घस्यी शरीर॥ ४॥ साधु. बड़े परमारथी, घन ज्यो बरधे आय! तपनि बुझावै औरकी, अपनो पौरुष लाथ॥ ५॥ (७४) अध प्रेमको अंग शीश उतारे भुटं. घर, ऊपर राख. पाँव दास कबीर यो कहे, ऐसा होय तो आब॥१॥ प्रेम भक्तिको है घर, ऊँचा बुत इकंत। शीश कादि पगततर धरे, त्व जाय पहुँचे संत॥२॥ प्रेम पियाला सो पिये, शीस दक्षिणा देय। लोभी शीस न दे सके, नाम प्रेममो लेय॥३॥ प्रेम पियाला भरि पिया, राचिरह्या गुरु ज्ञान। दिया. नगारा शब्का, लाल खड़ा. मैदान॥४॥ छिनहि. चढ़े छिन ऊत्रे, सो तो प्रेम न होय। अघट प्रेम पिजर बसे, प्रेम कहावबै सोय॥५॥ आया प्रेम कहां गया, देखया सब. कोय। पलमे रोबे पल हैसे सो तो प्रेम न होय॥६॥ सागर उमड़ा प्रेमका, खेवटिया कोइ एक। सब प्रेमी मिलि बूझता, यह नहि होती टेक॥७॥ यही प्रेम निरवाहिये, रहनि किनारे बैठि। सागरतें. न्यारा रहा, गया लहरिमे.. पैठि॥८॥ प्रेम प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्हे कोय। रहे, प्रेम कहाबै. सोय॥९॥

साखी प्रेम प्रेम सब कोई कहै, प्रेषे न चीन्हे कोय। जीन प्रेम साहिब मिले, प्रेम कहावबै सोब॥१०॥ पहले प्रेम ना चाखिया, मुक्ति निरासी आय। पीछे तन मन बॉटिया, गया चकमका लाय॥११॥ पहले प्रेम न चाखिया, चाखि न लीया स्वाद। सूना घरका पहुना ज्यो आबे त्यो बाद॥१२॥ प्रेम पिया लालसो, -मन दे कीजे भाव। सतगुरु के परतापते, भल्रा बना है दाब॥१३॥ जाघट प्रेम न संचरे, सो घट जानु मसान। जैसे खाल लुहारकी, स्वॉस लेत बिन प्रान॥१४॥ प्रेम बनिज नहि करि सके, चढ़े न नामके गैल। मानष केरी खोलरी, ओढ़े फिर ज्यो बैल॥१५॥ प्रेम बिकाता में सुना, माथा साटे हाटि। पूछतः बिलम्बु न कीजिये, ततक्षण दीजे काटि॥१६॥ प्रेम बिना धीरज नही, विर बिना वैराग्य। सतगुरु बिना मिटे नहीं, मन मनसाका दाग॥१७॥ जहां प्रेम तहँ नेम नहि, तहां न बुधि व्यवहार। प्रेम मगन मन भया, कौन गिने तिथि बार॥१८॥ प्रेम भक्ति मे रुचि रहे, मोक्ष मुक्ति फल पाय। शब्दमाहि जब मिलि रहे नहि आधे नहि. जाय॥१९॥ प्रेम पांवी. पहरिके; घीरज कज्जल . देय। शील सिदूर भरायके, पुनि पियका सुख लेय॥२०॥ प्रेमी दृढठत में फिरा, प्रेमी मिला न कोय। प्रेमी सो प्रेमी मिले, राम भक्ति दृढ़ होय॥२१॥ प्रेम छिपाया ना छिपे, जा घट उपजा होय। जो पे मुख बोले नही, तो नैन देत हैं रोब॥२२॥ प्रेम बिना नहि भेष कछु, नाहक करे सुबाद। प्रेमाद जबलग नहीं, तबलग भेष सब बाद॥२३॥ प्रेम भाव इक चारिये, भेष अनेक. बनाय। भावे रहो जो गुहहिमे;। भवे वनमे जाय॥२४॥ योगी जंगम सेचरा, संन्यासी दरबेश | बिना प्रेम पहुँचे नहीं, दुर्लभ हरिका देश॥२५॥ तू प्यासा प्रे, शीश कादहि करे. गोय। जब तू ऐसी करैगा, तब कछु होय सो होय॥२६॥ पीया चाहे प्रेम रस, राखा चाहे. मान। दोय खग इक म्यानमे, देख्या सुना न कान॥२७॥ (७५) अथ विरहको अंग विरहिन देय संदेहरा, सुनो हमारे पीव । ४०७

कवीर समग्र जल बिन सछरी क्यो जिये, पानीमेका जीव॥१॥ बिरहिन देय संदेसरा, सुनहू राम सुजान। बेगि मिली तुम आवके, नहिं तर तजिहो प्रानार॥। विश तेज इनमे तपे, अंग सबे अकुलाय। पट सूना जिव पीवमे, मौत दूंढि फिरि जाय॥३॥ साई सेव जरिगई, मांस न रहिया देह। साई जब लग सेयही, या तन होह है खेह॥ड॥ ढिरहा पूत लुहारका, भुवे हमारी देह। कोइला किया न छूटि है, जबलग होयथ न खेह॥५॥ बिरहिन बिरह जलाइया, बैठि टूढे छार। मति कोह कोइला ऊबरे, जो दूजी बार॥६॥ तन मन जोबन जारिके, भसम किया सब देह। उठी कबीर. बिरहिनी, अंजहूं. दूँढे.. खेह॥७॥ विरर जलाई मे जलूँ, मोहि, विशहको दुःख। छांहई न बैहूं उरप्ती, मति जलि ऊठे रूख॥८॥ बिरहिनि. जलती. देखिके सांई आवबे. पघाय। प्रेम बूंद सूं छिकिके, जलती लेद बुझ्लाय॥९॥ लकरी जरि कोइला भई, मोतन अजहूँ. आगि। विरकी ओदी लाकरी, सिलय सिलग उठि जागि॥१०॥ निस दिन दाह बिरहिनी, अंतर गतिकी लाय। दास कबीरा क्यो बुझ्े, सतगुरु गये लगाय॥११॥ तन मन जोबन यो जला, बिर अग्नि सु लागि। मृतत जो पीर न जानही, जानेगी वा आमि॥१३२॥ बिह कमंडल भरि लिया, बैरागी दोउ नैन। मांगें दस मघूकरी, छका रहे दिन रेन॥१३॥ बि२!हई विधा वैरागकी, कही न काहू. जाय। गूंगा. सपना देखिया, समझि समध्िलि पछिताय॥१४॥ बिही प्रानी बिरकी पिंज पीर न जाय। एक गीर है प्रीतिकी, रही कलेजे छाय॥१५॥ साखी बिह राम पठाइया, कोइ साधन को परमोधि। जा घद ताला मेलि है, ताको लावो सोधि॥१६॥ बिहा आया दरद सो, कड़वा लागा. काम। काया लागी काल डै, मीठा लागा राम॥१७॥॥ हसूँ तो दुःख न बीसरू, रोऊँ तो बल घटिजाय। मनही मोंहि डिसूरनां, ज्यो घुन काठहि. खाय॥१८॥ कीड़े काठ जु खाइया, खाया किनहू.. दीठ। छोत उपाय देखिया, भीतर जमिया चीठ॥१९॥

साखी चीठर जमिया चूनका, बरी बिरहा खद्ध। बिछुरीया सो साजना, भेद न काहू तलद्ध॥२०॥ तूं. मति जाने बीसरो, प्रीति घटे मम चित्त। मर तो तुम सुमिरत मरूं, जिऊं तो सुमिरू नित्त॥२१॥ गलौं तुम्हे. नाव पर, ज्यों आंदा मे लौन। ऐसा बिरा मेलिके, नित दुश्ख पाव कोन॥२२॥ बिहा कहे कबीरकों, तू मति छॉडे मोहि। पार ब्रह्यके तेजमे, जहाले राखूं तोहि ॥२३॥ मो बिहनिका पीउझ मुआ दाग ने दीया जाय॥ मासहि,. गलिगलि भूईपरा, करंक रही लपटावय॥ २४॥ भली भई जो पिव घमुआ, नित उठि करता रार। छूटी गलकी पॉसरी, सोर्ज पांव पसार॥२५॥ कागा करके ढेंढोरिया, मूठि यक रहिया हड्ड। जिस पिजर -विहा बसे, मांस कहारे ऱा॥२६॥ मांस गया पिजरा रहा, तमकन लागा काय। साहब अजहें न आइया, कोई मंद हमारा भाग॥२७॥ कागा. कर कंकन चूंधिरे, परेरो.. जाय। में दुख दाह्ली बिहकी, तू दाधा मांस न खाय॥२८॥ रंगत। मांस सब भखि गया, नेक न कीनहीं कान। अब बिरहा कूकर भया, लागो हाडइ चबान॥२९॥ बिहा सेती मति अहै, रे मन मोर सुजान। हाई मांस रण खात है, जीवत करे मसान॥३०॥ में तुमको दूढत -फिरँ, तुम कहूँ न मिलिया राम। हिरदा मांहि, उठि मिले, कसल तुम्हो'ं काम॥३१॥ सो दिन कैसा होयगा, राम गहेगे . बांह। अपना करे वैठायसी, चरन कमल की छॉहँ॥३२॥ जीव बिलंवा जीव सो, पिय जो लिया. मिलाय। लेख समाना अलेख में, अब कछु कहा न जाय॥ ३३॥ जो जन बिही नामके, तिनकी गति भइई एह। देही सूं उद्यम कै, सुमिन कै बिदेह॥ ३४॥ जो जन बिरही नामके, सदा मगन मन मांहि। ज्यो दरपनकी सुन्दी, कोई न पकरिी बाहि॥३५॥ कोह विरहिनि पीयरी, तू बिरहिन क्यों लाल। अविनाशी की सेजपर, मौजी 'भया निहाल॥३६॥ अविनाशीकी सेज. पर, केलि करे आनन्द कहे कबीर वा सेजपर, बिलसत . परमानन्द॥ ३७॥ (७६) अधथ ज्ञान बिरह को अंग कबीर छथिनगी बिरहकी, मो तन परी उडाय। ४०९

४१० कवीर समग्र तन जरिके धरती जरी, अम्ब जरिया जाय॥१॥ आगि लगी आकाशमे, झरि. झरि परे अंगार। कबिरा जरि कंचन भया, काधच भयवा संसार॥ २॥ लाई लावन हार की, जा लाई पर जलै। बलिहारी लावन हार की, छप्पर जांधे घर जले ॥३॥ जल दाह्या चीखल जल, भिरहा लागी आगि। तिनका बपुर ऊबरा, गल पूर के लागि॥४॥ साखी विरर अग्नि तनमन जला, लगि रह्या तत जीव। के बा जाने बिहिनी, के जिन भेटा पीव॥५॥ बि|ह कुहरी तन बहे, घाव न बांधे रोह। मरनेका संशय नही, छूटि गया « भ्रम मोह॥६॥ (७७) अथ परचाको अंग अगवानी तो आइया, ज्ञान विधार विवेक | पीछे हरि भी आयेंगे, सारी सोज समेक॥१॥ काया सीप संसार मे, पानी बन्न्दू. शरीर। बिना सीपके मोतिया, प्रगदे दास कबीर॥ २॥ कबिर मोतिन की लरी, हीरन को परकाश। चांद सुजकी गम नहीं, तहैँ दरसन पावं दास॥३॥ कछु. करनी कछु करमगति, कछु पुरदीला लेख। देखो भाग कबीरका, दोसत किया अलेख॥४॥ जकलागी जोगी हुआ, मभिटि गई ऐचा तान। उलटि समाना आपमे, अब भया ब्रह्मा समान॥५॥ उनमुनि लागी शून्यमे, . निसिनन. रहे. गलतान। तन मनकी कछु सुधि नहीं, पद पाया निरबान॥६॥ उनमुनि चढी अकासकू, गई धरनिसू घूदि। हंस चला घर आपने, काल रहा तिरकूटि॥७॥ ऊंचा चढ़ि असमानको, मेरु उलंधि ऊड़ि। पशु पक्षी जीव जन्तु सब, रहा मेरुमे गूडि॥८॥ मेरी मिटटी मुक्ता भया, पाया ब्रह्म. विश्वास! मेरे दूजा को नही, एक तुम्हारी आस॥९॥ पाया था सो गहि रहा, रसना लागी स्वाद। रतन. निराला पाइया, जगत टटठोरा बाद॥१०॥ जब में था तब हरि नहीं, अब हरि है में नाहि।

साखी कबिरा नगरी एकमे, राजा दो न समाहि॥११॥ मै जाना मे और था, में तो भया अब सोय। मैँ ते दोऊज मिदि गई, रही कहनको दोब॥१२॥ शगन गरजे बरधे अमी, बादल गहर गँभीर। चहुँ. दिस दमके दामिनी, भीजे दास कबीर॥१३॥ गगन कमण्डल के बीचमे, तहवाँ झलके नूर। निगुय महल न पावई, पफपुंचैगे गुरुपुरु॥१४॥ गगन मण्डलके बीघ मे, महल परा एक अचीन्ह। कहे कबीर ते पावही, जिहि गुरु परीक्षा दीन्ह॥१५॥ गगन. मंडल के खबीधमे, बिना कपफलकी छाप! पुरुष एक तहाँ रमिरहा, नहीं मंत्र नहि जाप॥१६॥ गगन. मंडलके बीचमे, तुरी तत्व. एक गाँव लक्ष निसाना रूपका, परखि देखाया ठॉवब॥१७॥ गगन मंडलके बीच मे, जहाँ सुहंगम डोरि। शब्दहि अनहद डोल है, सुरति लगी तहां मोर॥१८॥ चाँद नहीं सूरज नही, हता न वो ओकार। तहां कबीर रामजन, को जाने संसार॥१९॥ नहीं हाट नहि. बाद है, नहि धरती नहि धीर। असंख्य युग परले गया, तबकी कहै कबीर॥ २०॥ धरती हती पय धरी, नीर हता नहि नहाँब। माता नो जन्या नहीं, क्षी कहाँते खाँब॥२१॥ पवन नहीं पानी नही, नहीं धरती आकास। एक निरंजन देवका, कबितर दास खवास॥२२॥ अन्न नहीं जहां तप करू, नीर नही तहाँ नहाव। घरती नहीं जहाँ पण घरू, गयन नहीं तहाँ जाव॥२३॥ पॉँच तत्व. गुऩ तीनिके, आगे मुक्ति मुकाम। तहाँ कबीर घर किया, जहाँ गोरख दत्त न राम॥ २४॥ सुनऱ मुनि औलिया, ये सब बैले तीर। अलह रामकी गम नहीं, तहां घर किया कबीर॥ २५॥ सुनऱ मुनिजन देवता, ब्रह्मा. विष्णु. महेश। ऊंचा महल कबीरका, पार न पावै शेश ॥२६॥ हम वासी वा देशकों, जहाँ अधिनाशी की आन। ठुख सुख कोह व्यापे नहीं, सब दिन एक समान॥२७॥ हम वासी उस देशको, जहाँ बारा मास बिलास। प्रेम झै बिलसे केवल, तेजपुंजन. परकास॥२८॥ हम वासी उस देशको, जहँबॉँ नहि. मास बसंत। नीझर झै महा अमी, भीजत है सब संत॥२९॥ हम वासी उस देशको, जहां जाति चरन कुल नाहि। शब्द मिलावा होयष रहा, देह पिलाबा नांहि॥३०॥ हम वासी उस देशके, जहां गगनि घरनि दोऊ नांहि। ४११

 भव बैठा पंख बिनु, देखा पलकों मांहि॥३१॥ हम वासी वा देशके, जहां पार ब्रह्मका खेल। दीपक जै अगम्यका, बिन बाती बिन तेल॥३२॥ हम वासी उस देशके, जहाँ पार ब्रह्मका कूप! अविनाशी विनशी नहीं, आवबै जाय सरूप॥ ३३॥ कबिर दिल दरिया मिला, बैठा दरगह. जाय। जीव ब्रह्म मेला भया, अब कछु कहां न जाय॥ ३४॥ जब दिल मिला दयालसो, फांसी परी बिलाय। मोहि भरोसा इष्का, बंदा नरक न जाय॥३५॥ जब दिल मिला दयालसो, तब कछु अनन्तर नाहि। पाला गलि पानी भया, यो हरिजन हरिमाहि॥ ३६॥ दीपक. -जोया ज्ञानका, देखा अपरम देव। घारि वेदी गम नही, जहाँ कबीरा सेव॥ ३७॥ कविता जब हम गावते, तब ब्रह्म जाना नाहि। अब ब्रह्म दिलमे देखिया, गावन कूं कछु नाहि॥३८॥ शून्य सरोवर मीन मन, नीर निरंजन देव। सदा समूह सुख बिलसिया, बिस्ला जाने भेव॥३९॥ कबिरा कंचन प्रकासिया, ब्रह्म बास जहां होय। मन भैंवरा जहाँ लुबधिया, जानैगा जन कोय॥४०॥ संशे करू न में उरू सब दुख दिया निवारि। सहज शून्य मे रमि रहा, माया देवमुरारि॥४१॥ लून गला पानी ,मिला, बहुरि न भरिं गून। हरिजन हरि सो मिलि रहा, काल रहा सिर घून॥४२॥ घ्ज़ा. फरक्के शून्यमे, बाजे अनहद तूर। तकिया है मैदान मे, पहुंचेगे कोई शूर॥४३॥ उलदि समाना आपमें, पलटी ज्योति अनंत। साहिब. सेवक एक संग, खेले सदा बसंत॥ ४४॥ शून्य मण्डलमे घर किया, बाज शब्द रसाल। रोम रोम दीपक भया, प्रगटठे दीन दयाल॥४५॥ हिल मिल खेला ब्रह्मससो, अनन्त रही न रेखा समझे का मत एक है, क्या पण्डित कया शेख॥४६॥ जब लगि पिय परिचय नहीं, कन्या झुँवारी जानि। हथ लेवों हूँ सालियो, मुसकिल परि पहिचानि॥४७॥ पूरे सो परचा भया, दुख -सुख मेला दूरि। यम सो बाकी कटि गई, सांई मिला हजूर॥४८॥ जैसे सूती रंगहा, भाग ना मान. गुनान। हथ लेबो हरिसूं जुरयो, अल अमर बरदान॥४९॥ पिय परिचय तब जानिये, पिय सो हिल मित्र होय। पियकी लाली मुख पर, प्रगटहि दीसे सोय॥५०॥ लाली मेरे लालकी, जित देखो तित लाल॥

साखी लाती देखन में गई, मैं भी भई निहाल॥५१॥ सुति उड़ानी गगन को, चरन बिलंबी जाय। सुख पाया साहब मिला, तब आनंद अंग न माय॥ ५२॥ मकरतार सो नेहरा, झलके अघर विदेह | सुरति सुहंगम मिलि रही, पल पल जुरे सनेह॥५३॥ धरतति समानी अधरमे, अधर घराके मांहि। अधर धरा जब देखिया, दीसे दूसर नांहि॥५४॥ अबियति की गति कहा कहूँ, जाके गांव न ठाँव। ऐसा अविगति अलख है, अलख लखा नहि. जाय। ज्योति सरूपी राम है, सबमें रह्यो समाय॥५५॥ अलख लखा लालच लगा, कहत न आधे बैन। निज मन धरयो स्वरूप मे, सत गुरु दीन्ही सैन॥५६॥ मिलि गया नीर कबीर सों, अंतर रही न रेख। तीनूं मिलि एके भया, नीर कबीर अलेख॥ ५७॥ नीर कबीर अलेख मिलि, सहज निरंतर जोय। सत्य शब्द और सुरति मिलि, हंस हृदयकाश होय॥५८॥ जिन पॉयन भू जहु फिरा, देखा देश विदेश। तिन पायन थिति पाना, आंगन भया विदेश॥ ५९॥ गुन इंद्री सहजे गई, सत्तगुरु करी. सहाय। घट मे ब्रह्म विराजिया, बकि बकि मै बलाय॥ ६०॥ कहना था दिया, अब कछु कहना नाहि। एक रही दूजी गई, बैठा दरिया माहि॥६१॥ साखी शब्दी कब कही, मौन रहे मन ‘‘मांहि। बिछुरा था कब ब्रह्ससो, कहिबे को कछु नांहि॥६२॥ साखी शब्दी जब कही तब कछु जाना चौंहि। विछुरा था तबही मिला, अब कह कहना काहि॥६३ ॥ या देखा वा देखिया, या देखा या थीर। यह चह दोठउ एके भया, जब सतगुरु मिले कबीर॥ ६४॥ (७८) अथ रसको अंग पिया पियाला पम्रेमका, अन्तर लिया लगाय | रोम रोम मे रमिहा, और अमल क्या खाय॥१॥ कबिरा हरि रस जिन पिया, अंतरगत लौलाय। रोम रोम मे रहिरहा, और अमल क्या खाय॥२॥ हरि रस महँगा जन पिये, देवे सीस कलाल। घट ओछा दिन बूबला, बंठैगा बहुकाल॥३॥ हरिसस महँगा.. पीविये, छांड£. जीवकी बानि। शिकके सादे हरि मिले, त्बलगि सुँहुँगा जानि॥४॥ शिर दिये जो पाहये, देत न कीजे कानि।

४१४ कबीर समग्र शिर के सांदे हरि मिले, त्तव लगि सुँहगा जानि॥५॥ मोह मता अविगत रता, आसा अकल. अजीत। नाम अमल माते रहे, जीवन मुक्त अत्तीत॥६॥ मोह मता नहि संघ, साले चित्त सनेह। बारिज बंधा कलालके, डारि रहा शिर खेह॥७॥। आठ गांठ कोपीनके, साधु. न माने शंक। नाम अमल माता रहै, गिने इंद्रको रंक॥८॥ दाबे दामन होत है, निरदावै रहे. निशेक। जो जन निरदावै रहे, कहे इंद्र नहे रंक॥९॥ धोरोहीसो छाकिया, भांडा पीया घोय) फूल पियाला जिन पिया, रहे कलालां सोय।॥१०॥ राता माता नामका, पिया प्रेम अघाय। मतवाला दीदारका, मांगे मुक्ति बलाय॥ ११ शाता माना नामका मदका माता नाहि। मदका माता जो फिर, त्ते भत्तवाला काहि॥१२॥ मतवाला घूमत फि, रोम रोम रस पूरि। छांडे आस शरीरकी, तब देखे राम हजूरि॥१३॥ प्रेम पियाला भरिषिया, जरा ने किया जतन। आबे छक तब जानिये, रंका घड़ा रतन॥१४॥ कबिरा हरिसस भर पिया, कोइ न पीवं नीर। भाग बड़ा सो पीवसी, भरि भरि पीवे कबीर॥१५॥ (७९) अथ हैरानको अंग घटमे रहे सूम्चे नही, करसो गा न. जाय। मिला रे और ना मिले, तासो कहा बसाय॥१॥ आठ. पहर चोबीस घड़ी, मोमन यही अंदेश। या नगरी प्रीतम बसे, मैं जानो परदेश॥२॥ प्रीमी को पतिया लिखूँ, जो कहूँ होय विदेश। तनमे मनमे.. नैनमे, ताको. कहा सदेश॥ ३॥ (८०) अथ भेदी नरको अंग कबिरा भेदी भगतसो, मेरा मन पतियाय | सेरी पावै शब्की, निर्मय आवबै.. जाय॥१॥ भेदी जाने सर्वगुण अनभेदी क्या जानि। के जाने गुरु पारखी, के जाके लागा बान॥२॥। भेद ज्ञान तौलो भलो, जौलौ मुक्ति न होय। परम ज्योति प्रगटे जहाँ, तहाँ विकल्प नहि. कोब॥३॥ भेद ज्ञान साथुन भया, सुमिरन निर्मल नीर।

साखी अंत घोई. आत्मा, घोया. निर्गुन चीरी४॥ (८१) अथ जरनाको अंग जो देखे सो कहै नही, कहै सो देखे नाहि। सुने जो समुझावे नहीं, रसना द्वग शखन काहि॥१॥ जो पकरै सो चले नही, चले सो पकरे नाहि। कहै कबीर या साखिकी, अरथ समुझ मनमाहि॥ २ ॥ जो पके सो चले नही, चले सो पकरे नाहि। कर पदकों तुम कहत हो, समुञ्चि लीन मनमाहि॥ ३ ॥ जानि बूष्कि जड़ होव रहे, बल तजि निर्बल होव। कहे कबीर वा दासको, गंजि सके नहि. कोय॥४॥ जानिके अनजान हुआ, तत्व न लीया छातन्ि। गुस किया नफा होथगा, चेला किया न हानि॥ ५॥| वाद विवादे विष घना, बहुत उपाधि। मौनि गहि हरि सुमिरिये, जो कोई जाने साधि॥६॥ (८२) अथ लौको अंग सुरति ठीक लीने जलीी, मन नीत डोलनहार। कमल कूप मे ब्रह्द जल, सांचो बारम्बार॥१॥ लौलागी लौ. ना पर, आप बिसरजन देह। अप्रत पीवी आतमा, हरि सों जुरे सनेह॥२॥ ले पाऊँ तो ले रही, लैन कहूँ नहि जाँच। ले बूढ़े सो ले ति, ले ले तेरो नॉब॥३॥ लो लागी तब जानिये, छूटि न कबहूँ जाय। जीवत लौ लागी रहे, भूवा मांहि, समाय॥४॥ जैसी लो प्रथमहि. लगे, तैसी नियहै. ओर। अपनी देहकी को गिने, तारे पुरुष करोर॥५॥ जैसी लो प्रवमहि. लगे, तैसी ही रहे जाय। जाके हदये लौ बसे, सो मोहि माहि समाय॥६॥ और सुरति बिसी सकल, लौ लागी रहे संग। आवबव जाव कासे कहूँ, मन राते हरि रंग॥७॥ लो लागी अंतर कसा, आप बिसरजन देह। अमृत पीबे आत्मा, हरि सो लागा नेह॥८॥ जब लगि कथनी हम कथी, दूरि रहा जगदीस। तो लागी कल ना परे, अब बोलना नाहिहदीस॥९॥ अंव माहि, अर्थ पाहया, अर्थ माहि है भूल। ४१५

 लो लागी निर्मल भया, मिटि गई संशय शूत्रा।१०॥ (८३) अथ पतिक्रताको अंग पतिद्रताके एक है, व्यविधारिनके दोय। पतिब्रता व्यभियारिणी, कहु क्यो मेला होय॥१॥ पतित्रताकों सुख घना, जाके पति है एका। मन मैली व्यभिधारिणी, ताके खसम अनेक॥२॥ पतिब्रता मैली भली, ग्लै काचकी पोत। सब सखियनमें यो दिखे, ज्यूं. सूरजीकी जोत॥३॥ पतिव्रता मेली. भत्ती, काली कुचत . कुरूप। पतिव्रता के रूप पर, बारों कोटि स्वरूप॥४॥ पतिव्रता तब जानिये, रत्ी न खरे. नैन। अंतर तो सूची रहे, बोले मीठा बैन॥५॥ पतिव्रता पतिको भजे, पति भजि धै विश्वास। आन दिशा घितवै नही, सदा पीवकी आस॥६॥ पतिब्रता पतिकों भजै, और न अन्य सुहाय। सिह बचा जो लंघना, तो भी घास न खाय॥७॥ पतिब्रता ऐसे रहै, जैसे चोली पान। जब सुख देखे पीवका, चित्त न आबे आन॥८॥ पतिद्नता व्यभिचारिणी, एक मंदिरमे बास। वह रंग राती पीवके, वह घर घर फिरे उदास॥९॥ हरि न रठा तो क्या हुआ, जो अन्तर है हेत। पतित्रता पतिको भजै, मुखहिं नाम नहिं लेत॥१०॥ सुति समानी नाममे, नाम किया परकास। पतिब्रता पतिको मिली, पलक न छांडे पास॥११॥ सांई मेरा सुलछना, में पतिग्रता नार। देहु दीदार दया करो, अपने निज भरतार॥१२॥ प्रीति रीति तुप्च सो मेरे, बहुगुनियाला कनन््त। जो हँसे बोलूँ ओर सूँ तो नीत रंगाऊँ दंत॥१३॥ मोचित पलहु न बीसरु, तुम परदेशहि जाया यह अंग और न भेलसी, जदितदि तुम मिलि आय॥१४॥ साई मेर एक तू, और न दूजा कोय। दुजा साई जो करू, जो कलि दूजा होय॥१५॥ वार बार क्या आख़िये, मेरे मनकी ्सोय। कलि तो ऊखल होयगी, साई और न होय॥१६॥ एके साधे सब सधै, सब साथै यक जाय। जौ तू सीधे मूल को, फूले फले अधाय॥१७॥ सब आये इस एक मे, डार पात फल फूल। कबिरा पीछे क्या रहा, गहि पकरा निजमूल॥१८॥

साखी एक रामको जानिके, दूजा - देह बहाय। तीरथ व्रत जप तप नही, आतम तत्व समाय॥१९ ॥ पिव् पिव करूं, निगुर्ण. मेरा पीव। शून्य सनेही राम बिन, और न देखू . जीव॥२० ॥ घर परमेश्वर पहना, सुनो सनेही दास। पेटरस भोजन भक्ति करि, कबहूँ, छाहे पास॥ २१ ॥ भूली खसमके, कु न किया विचार। सतगुरु साहिब बताइया, कबला भरतार॥ २२॥ भें बेठिके सबसे कहूँ... पुकारि। धरा धर सो धर कुटी, अधरः परे सो त्आरि॥२ ३॥ धरिया कूं. धीजूं नही, गहूं.. अघर की बाहिं। धरिया अधर पहिचानियां, तो कछु धरावहि नाहि॥ २४ ॥ कबिरा सीप है टैं पियास पियास। सकल बूँको ना गिनै, स्वाति बूंददी आस॥ २५॥ कबिरा परुद्र की खारा जल नहि ल्ेय। पानी पीवे स्वातिका, का सागर देव॥२६॥ न न नीचा पौचा नीर। के जांच सुरपतिहिको, के उंख सहै शरीर॥ २७॥ परा पपिहरा सुरसरी, लगा बधिकका जान | मुख मूदै श्रुत्ति गयनमे, योहि निकसि गये प्रान॥ २८॥ प्रण। देखता, धीरज रहे न रंच। मरती बेर जलमे परा, तऊ ने बोरे चंच॥२ ९॥ पपिहा प्रण कबहूं न तजै, तगे तो तन बेकाज। तन पूष्टे तो कछु -आ नही, प्रण छूटे तो लाज॥ ३० ॥ पातक समुतहि ? आन नीर । मम कुल येहि ? स्वाति बूँद चित्त देय॥ ३१ ॥ चातक चित्तहि मर सुत । भाये . सिल प्रो, . हरि हिरदा सो जाय। 87 वा दुःखकी, पत्र पल राम कहाय॥ ३३॥ बक हक समरत्यका, कहूँ न होय अकाज। पतिबरता नंगी रहे, . बाही लाज॥ ३४॥ मे सेवक समरत्यका, कोई पूरिबले भाग। सूती जागी सुन्दरी, साई. दिया सुहाग ॥ ३५॥ पतित्रता. कही ऐक तू, और ने दूजा कोय। सं पहर निरखत रहे, . सोही सुहागिनि होय॥ ३६ ॥ (८४) अथ व्यभिचारिणीको अंग कलियुग आयके, . कीया खुत ज मीत।

४१८ कवीर समग्र जिन दिल बाधा एक से, ते सुख सोबे निधित॥१॥ गुर मरजाद न भक्तिपनन,, नहि. पियका अधिकार। कहे कबीर व्यभियारिणी, आठ पहर भरतार॥ २॥ व्यभिषारिणि च्यभिचारिमे, आठ पहर हुशियार। कहे कबीर पतित्रत बिन, _ क्यों रीक्षे करतार॥३॥ व्यभिधारिणिके बस नहीं, अपनो. तनमन सोय। कहें कबीर पतिव्रत बिन, नारी गई बिगोब॥४॥ नारि कहावे पीवकी, रे और संग सोय। जार सदा मनमे बसे, खसम खुशी क्यो होय॥५॥ सेज बिछावे सुन्दरी, अन्तर परदा होय। तन सौंपे मन दे नहीं, सदा सुहागनि सोय॥६॥ कविरा मन दीया नहीं, तन करे डास्या जेर। अन्तर्यमी लखि गया, बात कहनका फेर॥७॥ रामं राम रटियों कै, निस दिन साधन संग! कहा घो कौन कुफेरते, नैना लागा रंग॥८॥ मन दीया कहि ओऔरही, तन साधन के संग। कहे कबीर कोरी गजी, कैसे लागे रंग॥९॥ कबिर पंच निहारता, आन परी है सांझ। जन जनको मन राखता, वेश्या रह गई बांतस॥१०॥ (८५) अथ आनदेवको अंग सौ. वरसां भक्ति करे, एक दिन पूजे आनि। सी अपराधी आत्मा, पर. चौरासी खानि॥१॥ राम नामको छांडिके, कै आन को जाप। ताके मुहड़े दीजिये, नौसादरकों बाप॥ २॥ राम नाम को छॉड़िके, कै अन्यी आस।., कहे कबीर ता दासका, होय नरकमे बास॥३॥ राम नाम को उछांडिके, राख करवा थचीीवि। सोतो होयगी सूकरी, तिन्‍्हे राम सो कींवबि॥४ड॥ राम नामको छॉडिके, राति जगावन जाय! सॉपिनि है कर ओऔत्ते, अपना जाया खाय॥५॥ आन भजे सो आऑआपधरा, राम भजै सो साथ। तत्व भजे सो वैष्णब, तिन का मता अगाघ॥६॥ राति जगावे रॉडिया, गाने विधियां गीत। मर लोदा लापसी, राम न आबि चीत॥७॥ करै सुहाली लापसी लाय आनकी जात। ज्वाया हँसे मलकता आया मेरी पघात॥८॥ कापी तर क्रोधी त्तै लोभी ते अनंत। आन उपासी कृतछी, ति न राम कहँँत्त।९॥

साखी काज कनागत कारठा, आन देव को खाय। कहे कबीर समुझे नहीं, बांधा यमपुर जाय॥१०॥ देवी देव माने सबे, अलख न माने कोय। जा अलखेका सब किया, तासो बेमुख होय॥११॥ देवी देव ठाढ़े हमको ठौर बताय। जो मुझ सो बेयूख् है, तिन को लूटो खाय॥१२॥ पन छूटे घछूछा फिर ते भूत खबीस। भूती पीडा राखका पडा पटकके सीस॥१३॥ माह मसानी सेढि सीतला, भैठ भूत हलुमंत। साहिदय से न्यारा रहे, जो इनको पूजत॥१४॥ (८६) अथ चितावनीको अंग . ऊजड़ खेड़े टेकरी, घड़ि घटि गये कुम्हार। रावण... जैसा चलिगया, लंकाको सरदार॥ १ ॥ ऊँचा दीसे घोलहरा, मांडी चीती पौलि। एके हरिके नाम दिन, जम परेंगे रोलि॥२॥ ऊँचा मंदिर मैरियां, चूना कली हुलाय। एके हरिके नाम बिन, जदि तदि परलै जाय॥३॥ ऊँचा महल चिनाइया, सुबन कली. झुलाय। ते मंदिर खाली पे, रहे मसाना जाय॥४॥ कबिरा देवल हाड़का, माटी तना बंधान। खरहर ता पाया नही, देवलका सहिदान॥ ५॥ कहा चुनावे मेड़िया, चूना माटी लाय। मीच घचुनैगी पापिनी, दौसा कलैगी आय॥६॥ कहा चुनावे मेडिया लंबी भीत उसारि। घर तो साढ़े तीन हाथ, घना तो पवने चारि॥७॥ पाकी खेती देखिके, गरवे कहा किसान। अजहूँ झोला बहुत है, घर आबे तब जान॥८॥ पांच पहर घंधे गया, तीन पहर रहा. सोय। एक पहर हरि ना जप्यो, मुक्त कहां ते होब॥९॥ धूम धाम मे दिन गया, सोचत होगई सांझ। एक घरी हरि ना भजा, जननी जनि भई बांझ॥१०॥ रति गयवांई सोय के, दय्योस गवांया . खाय। हीशा जनम अमोल है, कौड़ी बदले जाय॥११॥ कबितर सुपने रेनके, भरा जीवमें.. छेक[जैसे हतो दे जनां, जो जागूं तो एक॥१२॥ आज कालकी पांच दिन, जंगल होयगा बास। ऊपर् ऊपर हल फिर, ठोर करेंगे घात॥9३॥ मरोगे मरिजावोगे, कोई न् लेगा नामय। ४१९

१२० कवीर समग्र उजडजाय बसाओगे, छाड़ि बसंती गाम ॥ १४॥ मौत बिसारी बावरी, अचरज किया कौन। तन माटीमे मिल गया, ज्यों आठामे लैन॥१५॥ जनम मरन विचारिके, कोरे काम निवारि। जिन पंथा तोहि चालना, सोई पंथ संभारि॥१६॥ कबिरय़ खेत किसानका, मिरगन खाया झार। खेत विचार क्या कै, घनी करे नहि वार॥१७॥ बिन रखवारे बाहरी, चिड़िया खाया खेत। आधा परधा ऊबरे, चेत सके तो चेत॥१८॥ कबिरय जो दिन आज है, सो दिन नाही काल। चेत सके तो चेतियो, मीच परी है ख्याल॥१९॥ कबिरा यह चितामनी, जनि संसारी जाय। जो पहली सुख भोगिया, तिनका गुड़ले खाय॥२०॥ राम नाम जाना नही, ता मुख आन घरमा। के मूसा के कातरा, खाता गया जनम॥२१॥ राम नाम जाना नही, हुआ बुत अकाज। बूडोगे रे बापुरो, बड़े बड़ोकी लाज॥ २२ ॥ राम नाम जाना नही, मेला मना. बिसार। ते नर हाली बालदी, सदा पराये बार॥२३॥ माटी. कहै कुम्हझरा को, क्या तू ऊरुंदे मोहि। एक दिन ऐसा होयगा, मै रुंपूँगी तोहि॥२४॥ कबि!ा अन हुआ हुआ, बहु रीता है संसार। परा भुलावा गाफला, गया छुबुद्धी हार॥२५॥ कबिरा वा दिन, यादकर, पग ऊपरि तल सीस। मूतु मंडलमे आयके, बिसरि गया जगदीस॥२६॥ कविरा हरिके नाम दिन, राजा रासभ होय। माटी लदे कुंभाके, घास न नीरे कोय॥२७॥ कबिरा हरिके नाम बिन, नारी कूकि होय। गली गली भूंकति फिरे, दूक न डॉरे कोय॥२०॥ जग जहदामे राचिया, झूठे कुल की लाज। तन छीजे छुल बिनशिहे, रे न राम जिहाज॥२९॥ कबिरय पानी होजका, देखत. गया. बिलाय। ऐसे जिवरा जायगा, दिन दस ठोली लाय॥ ३०॥। यह तन काचा कुंभ है, मांहि, किया रहवास। कविता नैन निहारिया, नहीं पत्रककी आस॥३१॥। कबिराय यह तन जात है, सके तो ठौर लगाव। के सेवा कर साधुकी, के गोविन्द गुण गाय॥३२॥ कबिरा यह तन बन भया, कर्म जो भया कुहारि। आप आपको काटि है, कहै कबीर बियारि॥ ३३ ॥ दुनिया के मैं कुछ नही, मेरे दुनिया कात।

साखी साहय दर देखे खड़ा, दुनिया. दोजब जाती 3 ड॥ दुनियाँ सेती दोसती, होय भजनमे भंग। एकाएकी मर्म सू के साधन के संग॥३५॥ दुनियाँके.. धोखे... झुआ, चला. कुदुम्यकी . कानि। तब कुलका क्या लाज है, जब ले परा मसानि॥ ३८॥ कुल करनी के. कारे, ईसा गया बिगोय | तब कुल काको लाज है, चारि पांवको होय॥ ३९ ॥ कुल करनी के कारने, ढिगहि रहे गया राम। तब कुल काको लाजि है, जब घम की पघूमाधाम ॥४०॥ कहत सुनत जग जात है, विवय न सूझे काल। कहे कबीर सुन प्रानिया, बानी. ब्रदा सम्हाल॥४१॥। कबिर केवल राम की, तू. मति छोड़े. ओद। घन अहरनविच लोह ज्यो, घनी सहै. शिरचोट॥४२॥ कबिरा केवल राम कह, शुद्ध गरीबी. लाज। कर. बड़ाई बूडसी .. भारी परसी. काज॥ ४३॥। मलमल खासा पहरते, खाते नागर पान। टेढ़ा... होकर चालते,. करते इहुत , जुमान ॥४४॥ महलन मांही पौठते, परिमल अंग लगाय। ते सुपने दीसे नही, देखत गये विलाय॥ ४५॥ महलन मांही... पौढते, परिमल अंग लगाय | छत्तन पती की छारमे, गदहा लोदे.. जाय॥४६॥। जंगल ढेरी राखकी, उपरि उपरि हरियाय | ते भी होते _मानवी, करते. रंग. रलियाय॥ ४७॥ मेर संगी कोई नहीं, सबे स्वारथी लोय। मन परतीति न ऊपजै, जीव विश्वास न होय॥४८॥ धली जो जरता मिरगला, बेधा एकज. सौन। हम तो पंधी पंथ सिर, हरा चरैगा कौन ॥ ४९॥ जिसको रहना उत घर, सो क्यो तोड़े मिक्त। जैसे पर् घर पहुना, रहे. उठाये. चित्त॥५०॥ ज्यो कोरी रेजा बुने, भीरा आबै.. छोर। ऐसा लेखा मीचका, दोरि सके तो. दौर॥५१॥ कोठे ऊपर दौरना, सुख नीदी न सोय। पुण्ये पाया है देहरा, ओछी ठौर् न खोब॥५२॥ मोर तोर की जेवरी, . बल बंधा. संसार। कायस कटे. वस्तु खत, दाज्षिन बारंबार॥ ५३॥ मोर तोर की चजेवरी, गल बंधा. संसार। दास कबीरा क्यो बँधे, जाके राम आधार ॥ ५४ ॥ नाना करि तू चित्त दे, ज्यों महँगे मोल विकाय। गाहक राजा राम है, और न नीरा जाया५१॥ कबिरा नावन झांक्षरी, भरी बिराने भार।

खेवव सो परिचय नहीं, क्यो. कर उतरे पार॥५६॥ लेखा देना सोहरा, जो दिल सांचा होय। सांईके दरबारमे, पला न पके कोय॥५७॥ कविरा रसरी पांवमे, कहें सोवै सुख चैन। स्वासा नकारा कूंचका, बाजत है दिन रेन॥५८॥ तन सराय मन पाहरू,. मनसा उतरी आय। को काहू, को है नही, सब देखा ठोकि बजाय॥५९॥ राम कहेते खिज मेरे, कुष्ट होय गलि जाय। शूकर है करि अवतरै, नाक बूंउता खाय॥६०॥ पुर पहन काया पुरी, पांच चोर दश द्वार। यम राजा गढ भेलसी, सुमिरि लेहु करतार॥ ६१॥ पीपप रूना फूल बिन, फल बन सझरूनी राय। एकाएकी मानुषा, ट्प्पा दीया आय।॥ ६२॥ राज द्वारा बंधिया, मूंडी धुने गयंद। मनुष्य जन्म कब पयाहूं कब भजि हो गोविन्द ॥६३॥ आये है त्ते जायंगे, राजा रंक फकीर। एक सिंहासन चढि चले, इक बांधे जात जंजीर॥६४॥ या मन गहि जो घथिर रहे, गहरी पूंनी गाड़ि। चलती विरिया उठि चला, हस्ती घोड़ा छांडि॥६५॥ तू मति जाने बावरे, मेरा है सब कोय। पिड प्रान सी बँधि रहा, सो अपना नहि होय॥६६॥ ऐसा संगी कौन है जैसा जिवरा देह। चलती बिरियां रे नारा डारि चला करे खेह॥६७॥ घरती तो रोदी भई, कागा लिया जाय। पूछी अपे गुरुको, कहाँ बैठिके खाय॥६८॥ धीरज तो रोटी भई, कुबुधि काग. लैजाय। कहे कबीरा बैठिके, बाद वृक्ष पर खाय॥६९॥ शेष नागके सहद्चन फन, फन फन जिह्वा दोय। नरके एके जीभहै, ताही मे रह. सोब॥७०॥ (८७) अथ मनको अंग मनके मते न चालिये, मनका मता अनेक। जो मनपर असवार है, ते साधू कोह एक॥१॥ खैयचूं.- तो अबै नही, जो छा. तो जाया कबीर मनको पूछे, मान टटीवा खाय॥२॥ चिता चित्त बिसारिये, फिरि बृक्षियय आन इंद्री पसारा मेटिये, सहज _ मिले भगवान॥३॥ चंचल. मनुवा चेत रे, सोवबै कहा अजान। यम घर जब लेजायगा, पड़ा रहेगा ग्यान ॥४॥

साखी मन को भाझुं पटकि करि टूक. होजाय। टूटे पाछे फि जुर, बीच गाँठि परि जाय॥५॥ साखी मन तो यह पमिरगा भया, खेत बिराना खाय। सूला करि करि सेकसी, घनी पहुँचे आब॥६॥ मन तो मैगल भया, थामे बहुत बिकार। या मन केसे घोहये, संतो करो, विचार॥७॥ गुर धोबी शिष्य कापड़ा, साबुन सिरजनहार। सुति शिला पर धोइये, निकसे -रंगः अपार॥८॥ तन माही जो मन धै, मन घरि उज्जवल होय। साहव सो सनन््मुख रहे, तो अमरापुर जोय॥९॥ पै पानी की प्रीतिरी, पा जो कपटी लौन। खंड खंड करि रमिगया, ताहि. मिलावै कौन॥१०॥ मन सोटा मन दूबला, मन पानी मनलाय। मनको जैसीही ऊपजै, तैसी ही दे जाय॥११॥ मन दाता मन लालयी, मन राजा" मन रंक। जो यह मन हरि सो मिले, तो हरि भी मिले निशंक॥१२॥ कुक मन गगनहि. चढ़े, कबहूँ गिर पताल। कबहुँक मन उनमन लगे, कबहुँ जाबै चाल॥१३॥ मनके बहुते रंग. है, छिन छिन मध्ये होय। एके रंगे जो रहे, ऐसा बिला कोय॥१४॥ कोटि करम करे. पलकमे, या मन विषिया स्वाद। सतगुरु शब्द माने नही जनम गवोंवे बाद॥१५॥ या मन फटकि पिछौरि लो, सब आपा मिटि जाय। पिगला होय पिय पिय करे, ताको काले न खाय॥१६॥ मन पाँचोके बसि परा, मनके बसि नहि पाँय। जित देखो तित दी लगी, जिन भागों तित आँच॥१७॥ निश्चित होय के हरि भजै, मनमे राखे साँच। इन पांचन को बशि करे, ताहि न आबे आँच॥१८॥ पांचों बैरी जीवके दलै इने इक. चित्त। एक देखे एक घध्यावही, औगुन बहुत अमित्त॥१९॥ पांच सहाई जीवके, जो सतगुरु मेरा होय। कोइ ध्यान धरे ' सुमिन करें, काजन बिगरे कोय॥२०॥ इन पाँचन सो बंधि करी, फिरि फिरि धै शरीर) जो यह पांचों बसि कै, सोही लागे तीर॥२१॥ कबिर बैरी सबल है, एक जीव रिपु पांच। अपने अपने स्वाकको, बहुत नचावै. नाच॥२२॥ इन्द्री पोषत चाहसो, मनमे शंका नाहि। २३

कबीर समग्र भाव भक्तिको यो कहे, निहकरमा के मांहि॥२३॥ मन पछी जब लग उड़े, विषय वासना माहि। ज्ञान बाजकी झपद मे, तब लग आया नाहि॥२४॥ मनकी घाली हूँ. गई, मनकी घाली जांव। संग जो परी कुसंगके, हादे हाद बिकांब॥र ५) काया कजरीवन अहै, मन कुंज महंमंत। अंकुश ज्ञान रतन है, फेरे साधू. संत॥२६॥ कबिरय मनहि. गयवंद है, आंकुस दे दे राखि। विष की बेली पर हरो, अमृत के फल चाखि॥२७॥ मन कुंज महमंत था, फिरता गहर. गंभीर। दोहीी तेही चौहरी, परिगई प्रेम जंगीर॥२८॥ कबिरा मन मरकद भया, कहूँ न नेक ठहराव। राम नाम बांधे बिना, जित भावे तित जाय॥ २९॥ कविरय मन तो एक है, भाव तहां लगाय। भावे हरिकी भक्ति कर, भाव विषै कमाय॥ ३०॥ मनके होरो हार है, मनके जीते जीता कहे. कबीर हरि पाइये, मनहीकी परतीत ॥३१॥ कबिरा मन मेवासी भया, बसि करे सके न कोय। सनकादिक ऋषि सारिखे, तिनके , गया विगोब॥३२॥ समनके मारे बने गये, बन तजि बस्ती मांहि। कहे कबीर क्या कीजिये, था मन ठहरे नाहि॥३३॥ मन गया तो जानदे, दृढ़ करि राख शरीर। विनु जो चढे कमानके, कैसे लागे त्तीर॥३४॥ विना सीसका मृग है, चहु दिशि चरने - जाय। वांधि लाओ गुरु ज्ञानसूं, राखो तत्व लगाब॥३५। तीन लोक चोरी भई, सबका धन हरि लीन्ह। विना सीसका चोरवा, परा न काहू चीन्ह॥३६॥ चोरवा भल हम चीन्हिया, चोरवा हमे न चीन्ह। कहे. कबीर विचारिके, हमही दीक्षा दीन्ह ॥३७॥ चोर भरोसे. सहुके, लाया वस्तु. चोराय। पहिले बांधो सहुको, चोर आप बेंधि जाय॥३८॥ चोर भरोसे सहुके, क्स्तु पराई लेय |

साखा जब लग साह न बाँधिये, चोर वस्तु नहि देय ॥३९॥ अपने अपने चोरकी, सब कोइ डरे. मार! मेर चोर मुझको मिले, सर्वता डारू. वार ॥४०॥ जो यह मन चले तो, फिरि फिरि नाम लगाय। तन मन दोऊ हाथ करे, ताको कछू न जाय ॥४१॥ मन चलता तन भी चले, ताते मनको घेरि। तन मन दोऊ बसि "करें, होय राई सूंमेरि ॥४२॥ तन तुरंग. असबार मन, कर्म पयादा साथि। तृष्ण चली शिकारको, विष बाज लिए हाथि ॥४३॥ कबीर यह. मन लालधी, समझे नहीं गँवार। राम भजन का आलतसी, खाबे को छुशियार ॥डेड॥ कबिस यह मन मसखरा, कहूँ तो माने रोस। जा मारग साहब मिले, तहों न चाले कोस ॥४५॥ कबिरा सनका मांहिला, अबला बहै असोस। देखतही वहमें पै, देव कसीको . दोस ॥४६॥ मन निर्मल हरि नामसूं, के साधनके. भाव। कोइला दूनी कालमां, सी मन साबुन लाय ॥ठणा कहत सुनत सब दिन गये, उरक्षि न सुरझ्ा मन। कहै कबीर चेता नहीं, अजहूँ पहला दिन ॥४८॥ यह मन साधू ले मिलो, नहि तो लेगा जान। मन मुन्सिफ को पूछि ले, नीकी होय तो मान ॥४९॥ यह मन नीचा मूल है, नीचा करम सुहाय। अप्ृत छांडे, मान करे, विषहि प्रीति करि खाय ॥५०॥ मन नाही छंड़े विषय, विषय न मन को छाड़ि। इनका यही स्वभाव है, पूरी लागी आड़ि ॥५१॥ पण्डित मूल विनासिया, कह क्यो. बिगरह.. कीज। ज्यो जल में प्रतिबिम्ब है, त्यो सकल राम जानीज ॥५२॥ हो मन सोनो सो विषय, सो त्रिभुवनपति कहु कस। कहे कबीर बैदानरा ज्यो, जल पूरा सकल रस ॥५३॥ मन मुरीद संसार है, गुरु मुरीद सोइ साधा जो माने गुरु बचनकों, ताका मता अगाघ ॥ष्शा सो सो सोग। हूँ तकों, जो जो मूंदी आब। नख सिख पाखरि मनहिके, करू कहाँ जो घाव ॥५५॥ अकथ कथा था मनहिकी, कहै कबीर. समुझाय। जाको या समझा परे, ताको काल न खाय ॥५६॥ जेती लारी समुद्रकी, तेती मन की दौरि। सहजे हीरा ऊपजे, जो मन अब ठौरि ॥ एणा समुद्र लहरि जो थोरिया, मन लहरे. घनियाय। केती आय समाय है, केती जाय बिसराय ॥५८॥ कबिय लहरि समुद्रकी, केती आबै.. जाहि।

४२६ कबीर समग्र बलिहारा वा दास की, उलदि समाव. माँहि ॥५९॥ दौरता दौरत दौरिया, जहाँ लगि मनकी दौर। दौर थकी मन थघिर भया, बसा ठोर की ठोर ॥६०॥। या तनमे मन कहें बसे, निकसि जाय केहि ठौर। गुरु गम हो तो पेखिले, नहि तो गुरू कर और ॥६१॥ नैना माही मन बसे, निकसि जाय तब ठोर। गुरू गम भेद बताइया, सब संतान शिर मौर ॥६२॥ दूध काढ़ि घृत कहा गयो, कासा फूठा नाद। तन छूटे मन कहाँ गया, जाने बिस्ला साथ ॥६३॥ दूध फादि घृत दूधे मिला, नाद जो मिला अकास। तन छूटे मन तहां गया, जहां धरी मन आस ॥६४॥ कबिर यह गति अटठपटी, चटपट लखी न जाय। जो मनकी खटपद मिटे, अघट भये ठहराय ॥६५॥ अघट भया खटठपट मिट, रहे. निरंत होय। कहे कबीर तब जानिये, अंतर पद नहि दोय ॥दृ६॥ (८८) अथ अमनको अंग पहले यह मन काग था, जीवन करता घात। अब यह मन हंसा भया, मोती चुगि चुगि खात॥१॥ यह मन तो पर्वत हता, अब मै, पाया जानि। टांकी लागी शब्दकी, निकसी कंचन खानि॥२॥ भँवरा बारी परहरी, मेवा विलम्ब जाय। वावन चन्दन घर किया, भूलि गया वनराय॥३॥ मेरा. मन मकरंद था, करता बहुत. बिगार। सूधा होय मारण चला, हरि आगे हम लार॥४॥ ०] बासते पातला, सूक्ष्म जाको रंग। तासो मिलि रहा, कवईन छाडे संग॥५॥ मन सो मन मिलता नही, होता तनका भंग। अब मन भया जो कामरी, चढ़े न दूजा रंग॥६॥ (८९) अथ पबनको अंग कौन पवन घर संधे, कहाँ किया परकास। नाद बिंद जब ना हता, तब कहाँ किया निवास॥१॥ हुसल पवन घर संचरे, पंचम किया प्रकास। नाद विद जब ना हता, तत्वतहि किया निवास॥२॥ सकल पसारा पवनका, सात द्वीप नव खण्ड। कहा नाम उस पवनका, जो गरजे ब्रह्मंड॥३॥ सकल पसारा पवनका, सात द्वीप नव खण्ड। - सोहं नाम उस पवनका, जो गरजे ब्रह्मण्ड॥४॥

साखी कौन पवन धरती बसे, कौन पवन अकाश। कौन पवन मध्ये बसे, कौन पवन परकाश॥ ५॥॥ धीर पवन धरती बसे, अकह पवन. आकाश। मधुर पवन मध्ये बसे, अग्र पवन परकाश॥ ६॥ कौन पवन ले आवही, कौन पवन ले जाय। कौन पवन भरमत फिर, सो मोहि देहु बताय॥७॥ सहज पवन ले आवही, सुरति पवन ले जाय। जीव पवन भरमत फिरे, सत्तगुरु कहे समुझाव॥ ८॥ तनका मंजन नीर है, नीरहे. मंजन पौन। कहे कबीर सुन पण्डिता, पवन का मंजन कौन॥९॥ तनका. इंद्री मैल है, मन , पवना- ले धोय। ज्ञान गुरते पाइये, पवनका मंजन सोय॥१०॥ (९०) अथ सूक्ष्म मारगको अंग अब हम चले अमरापुरी, ठारे. दूरे.. टाद। आवन होव सी आइयो, सूली ऊपर बाट॥१॥ सूली ऊपर घर करे, विषका के अहार। तिनका काल कहा कै, जो आठ पहर हुशियार॥ २॥ गागर ऊपर गागरी, चोली ऊपर हार। ऊपर साथरा, जहाँ बुलावै. यार॥३॥ यार बुलावे भावो, भमोपे गया न जाय। धन मैली पिउई ऊजला, लागि न सक्कों पाय॥४॥ जिस कारण में जाय था, सो तो मिलिया आय। साई ते सनमुख भया, लागि कबीरा पाय॥५॥ जो आबै तो जाय नहि, जाय तो कहाँ समाय। अकथ कहानी प्रेमकी, बूमे ही बूझ्ी जाय॥६॥ नाव ने जाने गाँवका, बिन जाने कित जाँव। चलता चलता युग भया, पाव कोसपर गाँव॥७॥ सतगुरु दीन दयाल है, दया करी मोहि आय। कोटि जनम का पंथ था, पलमे पहुँचा जाय॥८॥ अगम पंथ. मन स्थिर रहे, बुद्धि कौ प्रवेश। तन मन धन सब छॉडिके, तब पहुँचे वा देश॥९॥ अगम हता सो सुगम किया, तस गुरु दिया बताय। कोटि कल्पका पंथ था, पलमें पहुँचा जाय॥१०॥ उतते सतगुरु आइया, ... जाकी वुद्धि है धीर। भवसागरय के जीवको ,"> 5» 'लगावै. तीर॥११॥ चलूँ. चलूँ. सब पहुँचे. बिरला. कोय। एक कनक 'अझ नये घाटी ! दोय॥१२॥ जहाँ. कालकी गम न सुनिये कोय। ४२७

 कहे कमाली विप्रसो, तहाँ होव त्तो होय॥१३॥ जहाँ. न चीटी चढि सके, राई ना ठहराय। मनुवा तहैँ लै राखिया, तेही पहुँचे जाय॥१४॥ सुर नर थाके मुनिजना, थाके विष्णु. महेश। तहां कवीरा चढ़ि गया, सतगुरुके उपदेश॥१५॥ कविरा हरि हथियार कर, करा गली निवारि। जो जो पंथा चालना, सो सो पंथ संभारि॥१६॥ बह मारगय कितको गया, मारग पहुँचे. साद। मे तो दोफऊक गहि रहा, लोभ बड़ाई बाद॥१७॥ अगमहुते अगम है, अपरम पार अपार। तहें मन धीरज क्यो धरे, पंथ खरा निरधार॥१८॥ बिन पावनकी राह है, बिन बस्ती का देक्ष। विना पिण्ठका पुरुष है, कहे कबीर संदेश॥१९॥ घाटहि,. पानी सब भें, औधघट भैन कोय। औधघट घाट कबीरका, भरे सो निर्मल होय॥ २०॥ जहाँ घतुकी गम नही, तहां मूर्ख किमि जाय। वाह विधाता नाथ है, काग कपूरहि,. खाय॥२१॥ चलतां चलतां पगय थक, निपट करारी कोस। बिना दयाल झलका परे, काको दीजे दोस॥१२२॥ बाट विधारी क्या करे, पंथि न चले सुधारि। राह आपनी छांडिके, चलै उजारि उजारि॥२३॥ कहाते तुम जो आइया, कौन तुम्हाशा ठाम। कौन तुम्ही! जाति है, कौन पुरुषको नाम॥ २४॥ अमर लोकते आइया, सुखके सागर ठाँम। जाति हमारी अजाति है, अमर पुरुषको नाम॥२५॥ कौन तुम्ही!ी जाति , है, कौन तुम्हारी. नाम। कौन तुपम्हाशा इष्ट है, कौन तुम्हा।ा गाँवब॥२६॥ जाति हमारी आतमा, प्रान हमारा नाम | अलख हमारा इष्ट है, गगन हमारा ग्राम॥२७॥ कहाते जीवहि. आहएया, कहवाँ. जाय समाव। कौन डोरि धरि संचरै, मोहि कहो समुझाय॥२८॥ सरगुनते. जीव आइया, निर्नमु जाय. समाय। - सुति डोरि धरि संचरे, सतगुरु कहे समुझाय॥२९॥ कौन सुति ले आबई, कौन सुरति ले जाय। कौन सुरति है अस्थिरि, सो गुरु देहु बताय॥३०॥ वास सुति धरि आधई, शब्द सुरति धरि जाय। परिचय सुरति है अस्थिरि, सो गुरु दई बताय॥३१॥ ना वहाँ आवागमन था, नहि. घरती अकास। कबिर जन कहवाोँ हते, तब था कोइ न पास॥३२॥। नाही आवा गमन था, नहि. धरती आकास।

साखी हतो कबीरा राम जन, साहब पास खवास॥ ३३॥ पहुँचेगे. तब कहेंगे, बही देश की सीच। अबहि. कहाँ तियाड़िये, बेढ़ी पायन बीच॥ ३४॥ (९१) अथ सूक्ष्म जनमको अंग सूक्ष. सुतिका मरम है, जीव न जानत जाल। कबीरा दूरि करि, आतम आदिही काल॥१॥ अंतः:करण.. मन मही, मनही मनोरथ माँहि। उपजत उपजत जानिये, बिनशत जाने नॉहि॥२॥ प्राण. पिको तजि चले, मूवा कहे सब कोय। जीव छताा जामे मरे, सूक्षम लखे न सोय॥३॥ मरिये. तो भरि जाये, छूटि. पै जंजार। ऐसा मरना को में, दिनमे सौ सौ बार।४॥ (९२) अथ आशाको अंग आशा एक जो रामकी, दूजी आश . निवारि। आशा. मारसी, ज्यो चौपरकी सार॥१॥ आशा आश जग फंदियो, रहै. उरध लपटठाय। राम आश पूरन करे, सकल आस मिदि जाय॥२॥ आशा एकहि. रामकी, युग पुवं आस। ज्यो पंडल कोरो रहै, जो चंदन पास॥३॥ आसा बेली कर्म बन, गरजे. मनके . साथ। तिसना फूल चमकना, फल करताके. हाथ॥४॥ आसा तृष्णाही नदी, तहाँ न मन ठहराय। इन दोनोकों लंधि करि, चोड़े बैठे जाया ५॥ चोड़े बैठे जायके, '

४३० कबीर समग्र तेली के बैल ज्यों, घरही कोस पचास॥१३॥ (९३) अथ मायाको अंग कबिरा माया पापिनी, मांगी, मिले न हाथ। मना उतारी झूंठ करि, तब लगि डोले साथ॥१॥ माया छाया एकसी, बिरला जाने कोय। भगताके पाछ फिर, सनमुख आगे होव॥२॥ कबिर माया बेसवा, दोनूं की एक जात। आवत कौ आदर करे, जात न॒ वू॒चे बात॥३॥ माया मनकी मोहिनी, सु नर रहे. लुभाव। इन माया सब खाहया, माया कोइ न खाय॥४॥ माया तो ठगनी भई, ठगती फिर सब देश। जा ठगने माया ठगी, ता ठग को आदेश॥५॥ मीठा सब कोइ खात है, विष होय लागे धाव। नीव न कोई गठकई, सबै रोग मिटदि जाँय॥६॥ जलमें. अनजो गा कक पाक न होय। कहे कबीर या हि करे सब कोय॥७॥॥ माया कालकी खानि है, विपरीत। जहाँ जाय तहाँ सुख नहीं, या रीति॥ ८॥ तीन गुननको बादली, ज्यो तरुघ की छाँह। बाहर रे सो ऊबरें, भीजै मन्दिर मांहि।९॥ मोटी माया सब तजै, झीनी तजी न जाय। पीर पेगंबब ओलिया, झीनी सदको खाय॥१०॥ शंकरहूते सबल है या संसार। अपने बल छूटे नही, छुड़ीबे सिरजन. हार॥११॥ माया. आगे , ठाढ़े रे. करजोरि। जिन सिरे जल सो, तासो बैठा तोरि॥१२॥ या मायाके कारन, हरि सो बैठा तोरि। माया करक कदीम है, केता गया चंघोरि॥१३॥ माया करके कदीम है, या भवसागर मौँहि। जंबुक रूपी जीव है, खैचतही भरि जाहि॥१४॥ माया झोली मारिया, नाभि न बैठे स्वॉस। जीव तो संसे गला, राम कहनकी आस॥१५॥ उपजै सीपमें, सीप समुन्दर जोय। रंचक संघर रहगया कछु जता न होय॥१६॥ मति वरिया. देहि। नारदसे मुनिव गले, क्या भरोसा तेहि॥१७॥ भूले ये संसार में, मायशे का संग. आय। सतगुरु राह बताइया, फेरि मिले तिहि. जाय॥१८॥ , हलकी अपनी चाल। कुरंगे रंगिया, किया. और. लगवार॥ १९॥। कुंग हुआ, अंग न खाये बॉन।

साखी केते मारे जोहियगे, . इस जाजी कमान॥२०॥ जिनको साई रंग दिया, कबहुँ न होय कुरंग। दिन दिन वानी आगरी, चढ़े सवाया रंग॥२१॥ सब रंग पानी ते भया, सब रंग पानी सोथ। जा रंग ते पानी भयो, सो रंग कैसो होय॥२२॥ सौ पापन को डा है, एक सपेया रोक। साधू. जन संग्रह ,,. होरें हरि से थोक॥२३॥ साधू ऐसा चाहिये आई देह चलाय। दोष न लागें तामु को, सिकी टरेः बलाय॥ २४॥ कबिरा माया रुखठा दो फलकी दातार। खाबत . खर्चत गये, संचत नरक दुवार॥ २५॥ खान खरच बहु अन्तरा, मनमें देखि विचार। एक खाई साधुकी, एक. मिलाई छार॥२६॥ माया दोय प्रकाकी, जो कोई जाने खाय। एक मिलावै रामको, एक नरक ले जाय॥ २७॥ कबिऱ् माया जात है, सुनो शब्द निज मोर! सखियोके घर संतजन, सूमाके घर चोर॥२८॥ खाई रात है लीनी. जाय। - कहै कबीर विचारि के, दरगह मिलिहे आय॥ २९॥ माया मेरे रामकी मोदी सब संसार। जाको चीठी ऊतरी, सोई खरचन . हार॥३०॥ कबिरा हि माया देखनहीका लाड़। जो वामें कप कौडी तो हरि तौड़े _ हाड़त३१॥ माया संचे संग्रहै, के वह दिन , जाने नाहि। सहस बरसकी सब करें, मरे, मुहूरत माहि॥३२॥ कबिरा सो घन सांधचिये, जो आगेको होय। मूड , चढटाया गाँठरी, जात न देखा कोय॥३३॥ बादि बिमुखक्ी . जाय। तल गाडी का कोइ औरे खाय॥ ३४॥ आँधी आई ज्ञानकी ढ्ही भरमकी भीति। माया ठटाटदी उड़ि गई, लगी नामसों प्रीति।३५॥ ऐसी वब्याई सो हि. वेश्य सो हा पेट। स्वसुर पॉयन प भई सतगुरुसों ॥३६॥ तिलसमान तो गाय है, छोना नौ हाय | मठकी भरि भरि दूहिये, पूंछ अठारह हाथ॥३७॥ (९४) अथ मानको अंग , मान बड़ाई कूकरी, धरम राम दर्बर। दीन लकुटिया बाहिरि, सब जग खाया फार॥१॥ मान बड़ाई कूकरी, संतन पाई जानि। पाण्डडः यज्ञ पावन भई, सुप्ध बिरजे आनि॥ २॥ मान बड़ाई जगतमें, कूक्रक की पहिंचानि। प्याः किया मुख चाठई, बैर किये ते हानि॥३॥ ४३

कबीर समग्र मान बड़ाई ऊरमी, ये जगका ब्यौहार। दीन गरीबी बंदगी, सत गुरुका उपकार॥४॥ काला मुख कर मान का, आदर लाबो आगि। मान बड़ाई छांडिके, रहो राम लौ लागि॥५॥ अहं . अगनि हृदये दहे, गुरु सो चाहे मान। तिनको यम नेवता दिया, हो हमरे जिजमान॥ ६ ॥ अहं भई जो स्त्री, माया हूआ मान। यो बशि परे खटठिकके, पकरी आनी कान॥७॥ खंभा एकहि गयन्द दो, क्यो करि बंघू वारि। मान करू तो पीव नहि, पीव तो मान निवारि॥८॥ कबिता अपने जीव ते, ये दोह वाताँ घोय। मान बड़ाई कारने, अछूता मूल न खोब॥९॥ बडा हुआ तो क्या हुआ, जोरे बड़ मभति नाहिं। जैसे फूल उजारका, मिथ्याही झरि जाहि॥१०॥ बडा हुआ तो क्या हुआ, जैसी पेड़ खजूर। पंची - छांह न बैठही, फल लागे तो दूरि॥११॥ बड़ी बढ़ाई ऊंदठकी, ले जहां लगि स्वांस। मोहकम सलीता लादिके, ऊपर चढ़े फिरास॥१२॥ प्रभतको सब कोउ भजे, प्रभुको भजै न कोय। कहे कबीर प्रभुकों भजे, प्रभुता थेरी होय॥१३॥ भक्त भगत एक है, बूधत नहीं अजान। सीस नवाब संतको, बड़ा कै अभिमान॥१४॥ हरिजनको ऊंया नव, ऊंट जन्मका होय। तीन जगह ठेढ़ा भया, ऊंचा ताके सोय॥१५॥ कबिरा ऊंची नाकको, ऐठत ड्ै संसार। जाते हरि हाथी किया, नाक दिया गज चार॥१६॥ ऊंचे छुलकी कामिनी, भजै न् शरंगपानि। कुलहि. लजावन अवतरी, सूधी सांपनी जानि॥१७॥ ऊंचे कुल कहा जनमिया देह घरी अस्थूल। पारब्रह्मको ना चढ़े, वास बिहना फूल॥१८॥ ऊंचा कुल नीचा मता, नाही हरि सो हेत। हीन गिने हरि भक्तको, खासी खता अनेक॥१९॥ ऊंचा कुलके कारणे, भूला सब संसार। तब कुलको लाज है, ये तन दे है छार॥२०॥ हस्ती चढिके जो फिरे, ऊपर चँवर छुराय। लोग कहे सुख भोगवै, दीसे दोजख जाय॥ २१ ॥| कबविरा हरि जान्या नही, आहुत कुहुम्बय परिवार। गदहा दे के अवतरे, भाड़ा भे कुंभारा२२॥ नर मूखते खर भला, जिहि मुख नाही राम। शकुन बतावे औरकों, पंथ. चलन्ता गाम॥२३॥

The text on this page is estimated to be only 37.18% accurate

जहां... तह आपदा, जहां. सर सोग) यह छिलटे, बारे. शेण 0 रेड (९०) अथ दीनताकों अंग दीन गरीदी देदगी, साधन सो |] ताके क्रि मे ज्यो.. जले औन १ द्दील जे सबनकी। दीनहि लखे. कोय ली द्व्चरी दीनता। रह द्वेबता होय 0२ जल. जीव ज़िति त्तिति, रहे सर भरपूर जो. दिल अआंबे.. दल तो सॉई तले हजूर0 ३ य्क नी जो. दल) सब न. ्द्न्रि | 7 जगदीआवी० रंत्न छक्यो द्चार 0४ दीन गरीबी औीनको, द्वृंदरकी | द्धदेर दो द्षसे द्दीन श्रीदी जान ५ दीन शरीबी दंदगी, सब से. आई क्है कगीर तेही। आह जमे. स्वभाव) ५ 0 नहीं दीन र्नहि दीनत, संत नही तु री जम. हर 7०] जीदत झसान 0४ ॥| ऊंचे गा आप 20 ट््के, नीचे दी ठहराव । मचा. हे सो भरे ये, ऊंचा जय ५८ ये १ छतरि, बहुत र्चाद्दि बोएहित अत्िमानकी। बड़े जत ऋलीन ५ | लेनेको, हरि ज्ञान है, देनेको | तरबेको आत्रृएदएलठ५ बूड़नको आअधिमाल १? 0 दरसनको छे. आओ है, सुमिरन को डहदा(न त्रबे को डे बुड्डनकी अभिमाल) १) 0 (९६) मई के. जला के. सो और कोई श्द्त्ते हरित भ्रीतम औीसर, डलाएनका स्लत्त)१ राजद्वरे रामजन, दीनि बस्ठुकी के. भी क्के गले के, कक नया साय ऐ रे) क्जिरा कलियुग कठिन. 7! न॒ |] काम मछखरा। त्तिनको आदर... हो 0४४ हरि सांची ४३

४३४ कबीर समग्र नाथये गाबे पद कहे, नाहीं हरि सो हेत। कहे कबीर क्यो नीपजे, बीज बिहूना खेत॥६॥ शिष्य खासा संसार गति, सेवक प्रत्यक्ष काल। बैरीगी छावे मही, ताको मूल न डाल॥७॥ जाके हिरदय हरि नहीं, शिषि शाखा की भूखा, सो नर ऊभा सूकसी, ज्यो वन दाधा रूख॥८॥ शिष्प शाखा बहुतहि किया, माधो किया न भित्त चाले तो हरि मिलन को, बीचहि अठका चित्त॥९॥ पंडित केरी पोधियों ज्यो तीतरका ज्ञान औरन शकुन् बत्ावही, अपना फं. न जान॥१०॥ चतुराई क्या कीजिये, जो नहि शब्द समाय। कोटिक गुन सुगना पढ़े, अंत बिलाई खाय॥११॥ पढ़ना गुनना चातुरी, ये तो बात सहेल! काम दहन मन बसिकरन, गगन चठत मुसिकेल॥१२॥ गगन दुवरे सन गया, कै अमृत . रसपान। रूप सदा झलकत रहे, गगन मंडल गलतान॥१३॥ पंडित और मसालघची, दोनू.. सूमे नाहि। औरनको. कै चांदना, आप अंधेरा माहि॥१४॥ संस्कृताहि. पण्ठित कहे, बहुत कै अभिमान। भाषा जानि तरक के, ते नर मूठ अज्ञान॥१५॥ कबिर संस्कृत संसारमे, पण्डित करे बखान। भाषा भक्त द्रढावही, नन््यारा पद निर्बान॥१६॥ कबिर संस्कृत कप जल, भाषा बहता नीर। भाषा सतयुद्र सत्य है, संतमत गहर . गंभीर॥१७॥ पूरन बानी बेदकी, सोहत परम अनूप | आधी भाषा नेत्र बिन, को लखि पावै रूप॥9८॥ बानी तो पानी कै, चार बेद. मजूर। करनी तो गारा करें, साहब का घर दूर॥१९॥ बानी तो पानी भरे, चार. वेद. मजूर। सेवा बंदगी, किया चाकरी दूर॥२०॥ वेद कहै मैं कछू न जानो, स्वॉसाका सेंग. आय। दर्शन कारन करे बंदगी, गुन अनेक मैं गाय॥२१॥ पढ़ि पढ़ि तो पत्थर भया, लिखि लिखि भया जो ईद। कबित अन्तर प्रेकी, लगी न एको छीट॥२२॥ पढि पढ़ि तो पत्थर भया, लिखि लिखि भया जो ' चौर। जिस पढ़ते साहब मिले, तो पढ़ना कछु और॥२३॥। पंडित पुस्तक बांधि के, दे. सिरहाने - सोय। वह अक्ष इनमे नहीं, हँसि दे भाव रोय॥ २४॥

साखी पढे गुने. सीखे सुने, मिटे ने संशय शूल। कहे. कबीर कासो कहूँ, एही दुश्खका मूह ॥२५॥ नहिं. कागद . नहि लेखनी, .. नहि.. जेक्र है. सोय। बाँचहि... पुस्तक छाड़िके, . पंडित कहिये.. सोय॥२६)॥। धरती अम्बर नो हतो, कीच था पंडित. पास) कौन महूरत _ थापिया, चांद. सूर. आकास॥२७॥ चंडित बोरो.. पतरा,. काजी छाडि.. कछुरान। बह तारीख बताई दे, हता ने जमी. असमान॥२८॥ ब्राह्मण गदहा जगतका, तीरथ लादा जाव। घजमान कहे में पुनि किया, वह मिहनत का खाय॥२९॥ ब्राहण. ते गदहा. मेला, आन. देवबते . छुता। मुलनाते. मुर्गा. भरा, शहर जगयै.. सुत्ता॥३०॥ कथा, सो चारों की नाव। सबु अंधा . मिलि बैठहीं, . भावै._ तहां ले. जाव॥३१॥ कविरा ब्राह्मण बूड़िया जनेऊ क्करे जोरि। छूख चौरासी .मांगि लई, . पारब्रह्म सो. तोरि॥३२॥ कलिका.. ब्राह्मण. मंसखर, ताहि. न दीजे. दान कहुँब.. सहित नर चला, साथ लिया वजमात ॥३३॥ * घड़े पढ़ाये . कछ नही, ब्राह्मण. भक्ति से जानि। ब्याहे.. श्राद्धे. कएणे, बैया.. सूंडा. तानि॥श्ढी। (९७) अथ कथनीको अंग कथनी .. कांची होगई, . करनी करी न सारी श्रोता वक्ता मरि गया, मूरख अनेत जैपार ॥१॥ कबियु कमान सूरा जला, थोथा. बांधे... तीर। जिनको चोट है बिरहकों,. तिनका._ बिकल शरीर॥२)॥) कथपनी. मीठी. खोड सी, करनी विषकी.. लोग! | कथनी कि करनी करे, विषसे जेपृत होय॥३॥ कंथनी.. बदनी छांड़िदे, करनी सूं. चितलाव। नर को मभीर प्याये विंना, कबहूं. प्यास ने जायदी। कथनी. कधि.. फूल फिरे, . मेरे... हृदय. उदार! भाव भक्ति समुझे नही, “ जँधा. मूंढ गँवार५॥ कऋथनी घोधी जगतमें करनी उत्तम सार। कहे कबीर करनी भी, उत्ते.. भवजल. पार॥६॥ कूकत कटे कन बिना, बिन करी का शान | ज्यो बंदूक गोली बिना, भड़क न मारे. आन ॥७॥ आपा राखि. प्रमोधिये, . जन सुने... अकराषि। तुष कटे कन बाही, कछू ने आधे. हावि॥दा पद जोर साखी कहे, साधन परी गई. रोस। काठ. जल पीवं. नही, कांडि.. पिवनकी होस॥९॥ साखी लछाय. बनायके, ईंत.. उते अक्ष.. काटि। ४३५

४३६ कबीर समग्र कहे कबीर कबलग जिये, जूठी पाताल चादि॥१०॥ पढ़ि _ पढ़ि औरन समुझावई खोजे. न .आपशरीर। रोटीकाी संशय परा, यो कहे दास कवीरा॥ ११॥ चतुराई चूल्हे परो, ज्ञानी ने जाता खाव। भाव भक्ति जाने विना, ज्ञानपनों. जरजाबय॥ १२॥ रहनी कारज,. मानही, कथनी मे समान। कथता बकता मरि गया, मूर्ख मूठ अजान॥ १३॥ कथनी कूं धीजूं नहीं, करनी मेरा जीव। कथनी करनी दोऊ थकी, तब महल पथारे पीब॥१४॥ कथते है करते नहीं, मुखके बड़े लवार। मुहँडा काला होवगा, साहबके दरबार ॥ १ ५॥ कथते है करते" सही, सांच शरोतर . होय। साहिबके दरबार मे आठ पहर सुख सोय॥१६॥ (९८) अथ करनीको अंग कबिरय करनी आपनी, कबँ न निष्फल जाय। सात समुद्र आड़ा पर, मिले अगाऊ आय॥१॥ जो करनी अन्तर बसे, निकसे मुखकी बाद। बोलतही पहिचानिये, चोर सह को घाद॥३॥ चोर चुराई हूँवड़ा, गाड़े पानी माँहि। बह गाहे ते ऊछले, यो करनी छानी नाँहि॥३॥ करनी कारज मानही, कथनी. के अपार। इन बातन क्यो «पाये, साहव का दीदार॥श॥। विन करनी कथनी कयथे, अज्ञानी दिन रात। कूकर ज्यो भुंकता फिर, सुनी सुनाई बात॥५॥ जैसी मुखते नीकसे, तैसी चाले नाहि। मनुष्य नहीं बे स्वान गति बाँधे यमपुर जांहि॥६॥ जैसी मुखते नीकसे, तेसी चाहे चाल। पार निया. रहे, पलमे. कौ. निहालाण।॥। करनी करनी सब कहे, करनी माँहि विवेक। वा करनी वहि जान दे, जो नहि परखे एकादीा। कथनीको त्तो भानिके, करनी देइ बहाव। दास कवीरा यो कहे, ऐसा होय तो आय॥९॥ (९९) अथ कामको अंग कामीका गुरु कामिनी, लोभीका गुरु दाम। कविय का गुरु संत हे, संतनका गुरु राम॥१॥ रंचक लावनके फिरै, आँधा होय भुवंग। कविता तनकी कौन गति, नित नारीतो रंगार॥।

साखी देक नारी इक नागिनी, अपना जाया खाय। कवहूँ.. सरपदि नीकसे, उपज नाग. बलाब॥३॥ सहकामी.. दीपक दशा, सोखे तैल निवास | कबिर हीरा संत जन, सहजे. सदा प्रकात्ा।४)॥ दीपक सुन्दता देखि करि, जरि जरि मै पतंग। बढ़ी लहरि जो विषयकी, जरत न मोरे अंग॥

४३८ कबीर समग्र जल बूठा तो ऊबरे, भर्ग बूडा बहि. जाय॥२०॥ भग भोगे भग ऊपजै, भगते बचे न कोय। कहे कबीर भगते बच्चे, भक्त कहे सोय॥२१॥ जगमे भक्त कहावई, चुटकी घूनथ न देया शिष्य जोरूका »ई# रहा, नाम शुरुका लेय॥२२॥ सेवक अपना करि लिया, आज्ञा मेटे. नाहिं। भगहि मंत्र दे गुरु भई, शिष्य है सबे कमाहि॥२३॥ फादे कानों बाधिनीं, तीन लोककी. खाय। जीवत खाय कलेजरा, मुये नरक लेजाय॥२४॥ नारी नाहीं नाहरी, करे नैनकी चोट। कोह कोइ साधू ऊबरें, पार ब्रह्मयकी ओद॥र५॥ नैनो काजल पायके, गाहा बांधे केश। हाथों मेहदी लायके, वाधिनि खाया. देश॥२६॥ गाय रोय हेंसि खेलिके, हरत सबनके प्रान। कहे कबीर या घातकों, समुझे संत सुजानारणा नारी क््डी नरककी, विरला धांमे... बाग] कोई साधु जन ऊबरा, सब जग मूवा लागि॥२८॥ सुंदरिते सूली भली वबिरला बांचे कोय। लोह लुहालहे अगिनमे, जलि बलि कोयला होय॥ २९॥ नारी नाही यम अहै, तू मति रांधच. जाय। भंजारी ज्यों बोलिके, काढि कलेजा खाय॥ ३०॥ नारी नदिया सारखी, चहे अपरवलपूर। साहयसे न्याय रहे, अंत परे मुख धूर॥३१॥ नारी नदी अधाहजल, बूड़ि मुआ. संसार। ऐसा साधू ना मिले, जासो उतरे. पार॥३२॥ गाय भैस घोड़ी गधी, नारी नाम है तास। जा मदिर में ये बसे, तहाँ न कीजे बास॥३३॥ एक कनक और कामिनी, ये लंबी तरवारि। चाले थे हरि मिलनको, विचही हलीन्हा मारि॥इेडा यूँ. चढहूँ. सवकोड कहे, पुँचे.. बिर्ला. कोय। एक कनक अरु कामिनी, डुर्लभ घाटी दोय३ ५) जो या घाटी हलंघही, सो जन उतरे पार! या घादठीती आखडे, ताको वार न पार॥३६॥ कनक अरु कामिनी, विष फल किया प्रपाव। देखतहीते विष चढ़े, चाखतही मरिजाय॥३७॥ एक कनक अरू कामिनी, तजिये भगिये दूर। हरि बिच परे अंतरा, यम देसी मुख पूराइ्दा कामीकूं तो तीस दिन, अंतर होय.. उदास। कामी नरको तो सदा, छव ऋतु बारह मास॥ ३२९॥ जहाँ काम तहाँ राम नहि, राम तहां नहीं काम।

_ साखी दोऊ कवहूँ ना रहे, काम राम एकठाम॥४०॥ कामी तो निर्भर भया, कै न काहू शंक। इंद्री के वशि परा, भुगतै नरक निशेक ॥४१॥ कदिरय कामी पुरुषको, संशय कबहूँ न जाय। साहिब. सूँ. अलछगा रहे, वाके हदये लाय॥४२॥ कामी कबहूँ न हरि भजे, मिटे न संशयशूल। और गुनह सब बखशिहे, कामी डाल न मूल॥४३॥ कामी क्रोधी लालची, इनते भक्ति न होय। भक्ति कौ कोइ सूरमां, जाति बरन कुछ खोय॥४४॥ कामी से कुत्ता भला, ऋतु शर खोले कांच। राम नाम जाना नही, बाबी जाय न बांच॥४५॥ कहता हूं. कहजात हूं, समुझे नहीं गँवार। बैरागी गिरी कहा, कामी वार न पाराशदा। कामी कर्म की कांचली, पहिरि हुआ नर नाग। शिर फोरे सूप नही, कोइ पूरबला भागारश्णा। काम कहर असवार है, सब कोइ मो ध्याय। कोइक हरिजन फबरा, जाके राम सहावय॥४८॥ काम काम सब कोइ कहै, काम न चीन्हे कोय। जेती मनकी कल्पना, काम कहाबै. सोय॥४९॥ नारि पराई आपनी, भुगते नरके जाय। आगि आगि सब एकतसी, देत हाथ जरि जाय॥ ५०।॥ जहर परायो आपना, खाय सही मरे जाय। अपनी इच्छा ना करे, कहे कबीर समुझाव॥५१॥ कूप पराया आपना, गिर बूड़ि जो जाय। ऐसा भेद विचारिके, कुमतिहे गीता खायाएर॥। छूरी पराई आपनी, मरे. दरद जो होय। बहुविधि कहूँ पुकारिकि, कर छुओ मति कोय॥५३॥ जहाँ जराई सुंदरी तू जनि जाय कबीर! ऊंडि भस्म जो लागसी, सूना होव शरीर ॥पढा बूंद खिरी नर नारिकी, जैसी आतम घात। अज्ञानी माने नही, . एही बात. उतपात॥ ५५॥ केता बहाया बहि गया, केता बहि बहि जाय। ऐसा भेद बिचारिके, तू मति गोता खाय॥५६॥ नारी तो हमभी करी, पाया नहीं विचार। जब जानी तब परिरी, नारी बड़ा बिकार॥५७॥ काम क्रोध मद लोभकी, जबरूण घटमे . खानि। कहा पूर्व कहा पंडिता, दोनो एक समानि॥ष्टा काम क्रोध सूतक सदा, सूतक लोभ. समाय। ये सूतक संग देहके, कहो कैसे करि जाव॥५९॥ काम क्रोध सूतक सदा सूतक लोभ समाय। » शील सरोवर नाइये, तव यह सतक जाय॥६०॥ 3३९

४४० कवीर समग्र छोटी मोटी कामिनी, सबही. विपषकी बेल। बैरी सारे दाव दे, यह मारे हँसि खेल॥६१॥ नागिकके तो दोय. फन, नारीके फन बीस। जाको डस्पो न फिरि जिये, मरे है विस्थो वीस॥६३॥ नारीसी नजरि न जोरिये, अंश खीस दे जाय। जाके चित नारी बसे, चारि अंश ले जाय॥६१॥ नारी नदिया सारखी, और जो प्रगठे.. काल! सब्‌ कालनते वादचि है, नारी यमका जाल॥६४॥ जगमे डोडी कामिनी, पीचे सब संसार। सोफी होयके सो पिये, त्‍ाड़ि उतारू पार॥६५॥ दीपक झोला पवनका, नरको झोला नारि। साधू. झोला शब्का, बोले. नही बिचारि॥६६॥ नारि पुरुषकी ञ्नी, पुरुष नारिका पूत। यही ज्ञान विचारिके, छांडि, चला अवधूत॥६७॥ अविनाशी विच धार तिन, कुहल कंचन अर नर। जो कोइ इनते वबचि चले, सोई उतरे पार॥६८॥ (१००) अथ शीलको अंग शील क्षमा जब ऊपजे, अल्ख दृष्टि जब होय। बिना शील पहुंचे नहीं, लाख कथये जो कोय॥१॥ शीलबंत सबसो. बड़ा, सब रतनोकी . खानि। तीन लोक की संपदा, रही शील मे आनि॥२॥ शील गहै कोइ सावधान, चैतन पहे. जागि। बासन वबासन के खिसे, चोर न सकई हछागि॥३॥ शील मिलाबै रामको, जो कोइ जाने राखि। कहै कबीर मैं कया कहूं, शुकदेव बोले साखि॥४॥ शील राखि विर्त भये, हरिके मारग जांहि। साखी गोरख नाथ जो, अमर भये कलि माहि॥ ५॥ घायल ऊपरि घावले, टोटे त्यागी सोप। भर जोबन में शीलवंत, बिला होव तो * होय॥ ६॥ ज्ञानी ध्यानी संयमी, दाता सर अनेक। जपिया तपिया चहुत है, शीलवंत कोइ. एक॥छ॥ शीलवंत निर्मम दशा, पा परि है घउहूँ खूंद। कवीर ता दास की, कै आस बैछुंठा

साखी विषय पियारी . प्रीतिसोंी, तय अंतर हरि नाहिं। जब अंतर हरिजी बसे, विषयासो रुचि नाहि॥१२॥ सुखका सागर शील है, कोइ न पावै थाह। शब्द बिना साधू नहीं, द्रव्य बिना नहि. साह॥१३॥ (१०१) अथ लोभको अंग जब मन छागे लोभसो, गया विषयमें . भोव। कहे कवीर विचारिके, केहि. प्रकार धन होय॥१॥ भेष भभूत जटठाधरी, ज्ञानी * गुनी अपार। घट दर्शनकी कहा पै, एक लोभकी लार॥र॥ आब . गया आदर गया, गया नैनका नेह। ये तीनों तबही गये, जबहीं कहा कछु वेह॥३॥ कविरा ओधी ._ खोपरी, कबहूँ... धापे नॉहि। तीन लोककी संपदा, कद आये घर माँहि॥४ड॥ कबिरा तृष्णा पापिनी, तासो प्रीति न जोरि। येड पैड पाछे. पे, लागे मोटी खोरि॥ (१०२) अथ सन्तोषको अंग गो धन गज घन बाजि धन, और रतन धन खानि। जब आधे सन््तोष घन, सब धन धूरि समानि॥१॥ साधु संतोषी सर्वदा, निर्मल जिनके बैन। तिनके दर्शन परसतें, जिय उपज सुख चैनाश)। निज , आसन संतोषमें, सहज रहनि की टदोर। हरि भजने आज्ञा भई, ताते कछू ने और॥३॥। संतोषहि सहिदान है, शब्द भेद बीचार। सतगुरुके परतापते, सहज शी मत. साराशा चाह गई चिता मिटदी, मनुवा बेपरवाह। तिनको कछू न चाहिये, सब साहब पति साह॥५॥ (१०३) अथ क्रोधको अंग दसों दिशासो क्रोधकी, उठी , अपरबल. आगि। शीतल संगति साधुकी, तहां उबरिये.. भागि॥१॥ यह जग कोठी काठकी, चुह॔ दिशि लागी आगि। भीतर रहे सो जरे मुये, साधू उबरे भागि॥र॥ क्रोध अंग्रि घर घर वही, जे सकल संसार। दीन लीन निज भक्त है, तिनके निकट उदयार॥३॥। बहुत यतन करे कीजिये, सब फल जाय नसाय। कविता संचे सूम धन, अंत चोर लै. जावादशा कोटि कर्म लाोगे रहै, एक क्रोधकी हार। किया कराया सब गया, जब आया अहँकाराणा। ४४१

४४२ कबीर समग्र जग माही धोखा घना, आहि छकुवुधि अरू काल। पौरी पहुँचा. भारिये, ऐसा. यमका . जाल॥६॥ गरि आँगारा क्रोध जल, निन्दा घूँआँ ' होव। इन तीनहूँ को दसि कै, साहब मिलाऊँ तोय॥७॥ (१०४) अथ क्षमाको अंग क्षमा क्रोध को क्षय करे, जो काहू पर होय। कहे. कबीर ता दासकूं, गंजि न सकि है कोय॥१॥ क्षमा बड़नको चाहिये, छोटनको उत्पात! कहा विष्युको घटि गयो जो भृगु मारी छातार॥ भली भली सब कोउ कहै, रही क्षमा ठहराय। कहे कबीर शीतल भया, गई जो अग्नि युझाव॥३॥ जहां दया तहें धर्म है, जहां लोभ त्तहें पाप। जहां क्रोध तहैं काल है, जहां क्षमा तहीं आप॥४॥ (१०५) अथ मोहको अंग मोह फंद फंदिया, कोइ न सके निरुवार। कोइ. साधुजनन पारखी, विर्‍ तत्व. बविघार॥१॥ प्रथम फंदे सब देवता, सुख विलसे स्वर्ग बास। मोह मगन सुख पहया, पृठ्युलोककी आस॥२॥ दूजे ऋषि मुनिवर फन्‍्दे, तासो रुचि उपजाव। स्वर्सगीक सुख मानही, (फिर) धरनि परत है आय॥३॥ मोह मगन. संसार है, कन्या रही कुमार। कह सुरित जो ना करी, ताते फिरि अवताराशा। कुरुक्षेत्र सब मेदिनी, खेत करे करसान। मोह मृग सब चरिगया, आसन रहे खलिहान॥५॥ इन कहु युगति न जानिया, ,केहि विधि बचे सुखेत। नहि. बंदगी नहि दीनता, नहि साधु संगति हेताए। जब घर मोह समाइया, सर्व भया अधियार। निर्मोही ज्ञान बिचारिके, कोइ साधू. उत्ते पाराणा। जहां छय सब संसार है, भूग सबन को मोह। सुर नर नाग पताल सब, ऋषि मुनिदर सब जोह॥८॥ अष्ट सिद्धि नो सिद्धि लो, तुम सो रहे निवार। वांधि भमृगहि विडारि हूं, कहे कबीर विषधाराश॥। सलिल मोहकी धार मे, बहिगये गहर गेंभीर॥ सुक्षणम मछली सुरति है, चढ़िहि उलदे नीरा१०ा (१०६) अथ विवेकको अंग प्रटे प्रेम विवेक दल, अभय निशान बजाय।

साखी उग्र ज्ञान उर आवतो, यह सुनि मोह दुराय॥१॥ फूटी. आँख. विवेककी, लहै। न संत. असंत। जाके, ला दश बीस है, ताका नाम महन्तार॥। साधू. मेरे सब बड़े, अपनी अपनी. ठोर। शब्द विवेककी . पारखी, वो. माथेके मौर॥३॥ कहै कबीर परुकारिके, कोइ संत विवेकी होय। जामे शब्द विवेक है, छत्र धनी है सोय॥शा॥। जीव जन्तु जलहर बसे, गये विवेक जो भूल। जलके जलचर यो कहें, हम उड़गन . समतूल॥५॥ प्रातः कालठके जालमे, आय गये तिहि माहि। जलके जलघर यो. कहें, उडगनपति आयो नाहि॥६॥ जद लगि नाहे विवेक मन, तब लग लगे न त्तीर। भवसागर नाही तर, सतगुर कहे. कबीर॥७॥ हरिजन ऐसा चाहिये, जाके ज्ञान विवेक । बाहह मिलतासो. मिले, अंतर सबसोंी. एकाध८ा राम नाम सब कोइ कहै, कहिबे माहि विवेक। एक अनेके फिरि मिले, एक समाना एक॥९॥ (१०७) अथ सहजको अंग सहज सह सब गया, मन इंद्रीक नास। निष्कामी सुमिन मिला, कटी कर्मकी फॉस॥१॥ काहेको कलपत फ्रि, डुखी होत वेकाम। सहजे सहजै होयगा, जो कछु रचिया राम॥२॥ जो कु आबे सहजमे, सोई मीठा जानि। कड़वा लागे नीमसा, जामें ऐचातानि ॥३॥ सहज मिले सो दूध सम, माँगा मिलै सो पानि। कहे कबीर वह रक्त सम जामें. ऐंचातानि॥डा। (१०८) अथ सांचको अंग सांच - बराब तप नहीं, झूंठ बरायय पाप। जाके हृदय सांच है, ताके हृदये आप॥१॥ झूँठि बात नहि बोलिये, जब लगि पार बसाय। अहो कबीरा सांच गहु, आवागमन. नसाय॥२॥ सांचे. कोइ न पतीजई, झूठे जग पतियाय। पांच ढकाकी डाबटी, सात टके. बिकजाय॥३॥ सांचे. कोइ न पतीजई, झूं जग पतियाय। गली गली गोरस फिर, मदिरा बैठि विकायाद॥। साध कहै तो मारि हैं, यह तुरकानी जोर। बात कहूं परलोक की, करिके पकरे चोर॥५॥ ४४३

४४४०८ कबीर समग्र सांचय कहूं तो मारि है, झूठे जग पतियाय। ये जग काली कूकरी, जो छेरे तो खाय॥६॥ सांच कहूँ तो मारि० है, यूं झूंईहहि धरे अपार। हम शिर ढौरै ठीकुली, सीचे औरकी क्यार॥७छ॥ सांच न कोइ पतीजई, थघूँठेके संग. जाव। झूठे. झूठे मिलि रहे, अहमक खेहा. खाय॥दा। झूंठाको झूंठा मिलै, अधिका. बढ़े सनेह। झूठे को सांचा मिले, तबही दूं. नेह॥द॥। कविरा ल्ज्जा लोककी, बोले न्ताही सांच। जानिवयूजझि कंचन तजि, क्यो तू पकरै कांच॥१०॥ जिन नर साँच पहुँचानियां, कर्ता केवल. सार। सो प्रानी काहे चहै, झूंटदे कुडकी हलार॥११॥ साधू ऐसा चाहिये, सांची कहै वजाय। की दूटे कि फिरे जुरे, कहे बिन भ्रम न जाय॥१२॥ सांचे शाप न लागई, सांचे काल न खाय। सांचे. को सांचा मिले, संचे माहि,. समाय॥१३॥ ते अन्द साँच जो, वाह कछछु न बनाव। जाननहारा जानि है, अंतर्गतिका भाव ॥१४॥ जाकी सांची सुरति है, ताका सांचा खेढ़। आठ पहर चौसठ * घरी, है साई तो मेल॥१५॥ प्रेम प्रीतिका चोलना, पहिरि कवीरा. नांच। तन मन ता पर वार, जो कोई बोले सांच॥१६॥ सांच शब्द हदये गहा, . अल्ख पुरुष भरपूर। प्रेम प्रीतिका चोलना, पहिरे दास हजूर॥१७॥ सांच बिना सुमिन नहीं, भय विन भक्ति न सोय। पारसमे परदा रहे कंचन किहि. विधि होय॥१८॥ अब तो हम कंचन भये, तब हम होते कांच। सतगुरुकी किरपा भई, दिल अपनेका सांच॥१९॥ कंचन केबल हरि भजन, दूजा काथ कथीर। झूंठा आल जंजाल तजि, पकडा सांच. कवीर॥२०)। सांचे सौदा कीजिये, अपने जिवमे जानि। सांचे. हीरा पाइये, झूठे. मूलहु. हानि॥३१॥ जो तू सांचा बानिया, सांची हाट हगाय। अन्द झा देइके, क्या. दूरि. बहाय॥३१२॥ जाके बोली बंध नही, सांच नहीं मन माहि। ताके संग न चालिये, छांडे पैड़ा. माहि॥२३॥ (१०९) अध भ्रमविध्वंसको अंग पाहन पूजे हरि मिले, तो मै पूर्ण. पहार। ताते यह चाकी भली, पीसि खाय संसार॥१॥५

घर गिरिवर कर्ता किया, सो क्यो रहे अपूणि। पाहन फोरि देवह रचा, परमेश्व सो दूजि॥र॥ मूरित धरि धंधा रचा, पाहनका.. जयदीस। मोल लिया. बोले नही, खोदया. विश्वादीस॥३॥ पावरहीका देहरा, पाथरहीका देव। पूजजहाय़ु आंधरा,. क्यों. करि माने. सेव॥४॥ पाहन पानी पूजिके, सेवा जासी चाद। कि सेवा कर साधुकी, कि हरि सुमिर्नकी याद॥५॥ पाध पानी पूजणिके, पचि पचि मुआ संसार! प्रेद अलहदा रहे गया, भेदवन्त सो पाराए॥ कविरा पूजे शाहलिग्रामको, मनकी भ्रांति न जाव। शीतलता सपने नहीं, दिन दिन अधिकी लाव॥७॥ कविरा शालिग्रामका, मोहि भरोसा नाहि। काल कहर की चोट मे, बिनति जाय छिन माहितद॥। प्राथ/ ले देवह चुना, मोदी मूरति माहि। पिण्ठ. फूटि. परवश रहे, सो है तो काहि॥९॥ कविय पहन. पूणिके होन कहे भव पार। भीज पानि बेथे नदी, बूढ़े जिन सिंः भार॥१०॥ लोहा केरा नावरी, पाहन गरुवा भार। कहे कबीर विचारि के, भव बूदा. संसार॥११॥ कबिरा दुनिया देहरे, सीस नवावे जाय। हिरदा मांहीं हरि बसें, तू. ताही लौलाय ॥१२॥ कांकक पायर जोरिके, मसजिद लई. घुनाव। ता घढि मुल्छा बांग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय॥१३॥ मुल्ला चढि किलकारिया, अलख न बहरा. होग। जिस कारण तू बंय दे, सो दिलही अन्दर जोय॥१४॥ तक मसीते देहरे हिन्दू, आप आपको ध्वाय। अलख पुरुष घट भीतर, ताका पार न घाय॥१५॥ (११०) अथ भ्रमनको अंग जप तप दीखे धोधरा, तीरपब्रत विश्वास | सूआ सेभह सेइया, यो जय चला. निरास॥१॥ जाये धोये कहें भया, मनका पैल न जाव। नीम न कडुआपन तजै, जल में सदा. रहावार॥। मछरी तुके. प्रिया, बसे. गंगके तीर। धोये झकुटाधिन भाजहीं, राम न कहे. शरीर॥श॥ निर्मम हरिके नाम सो, के. निर्मल साधू भाय। कोझछा होय न ऊजला, सो मन साबुन लाय॥४॥ मनटोमें.. फूला फि, करता हूँ. जो धर्म कोदि धर्म शिर्प चढ़े, चेत ने देखे मर्माए॥। ह थ ७

४४ कबीर समग्र और घरम सब करम है, भक्ति धरम निहकर्म। नदी हत्यारीाकोी कहे, कुआ बावरी भर्माद्दा कर्म इमोरे कादि है, कोइ हरिजन कलि भाहि। कहे हमारी वासना, सो हरिजन कहिये नाहि॥ण॥ अहिरन मरे काँखमें, करे सुदा दान। ऊँचे चढिके देखई, केतिक दूरि विमान॥८॥ मरती . बिरियाँ.. दान दे, जीवन बड़ा कठोर। कहें कबीर क्यो पाइये, खाँडा कायै चोर॥९॥ बहुत दान जो देत है, करे करे बहुते आतस। काहूके गज होयेंगे, खइहे सेर. पचास॥१०॥ मुफ्त दान जो देत हैं, मुफतहि लेत असीस। ऊंद कहके हाहिगे, लादेगे मन बीस॥११॥ सब वन तो तुलसी भई, सब परबत शाहग्राम। सबव़ नदियाँ गंगा भंई, जाना आतमराम॥१२॥ पाँच तत्त्वका पूतला, रज बीरजकी बूँद। एके घाटी नीसरा, ब्राह्मण क्षत्री.. शूद॥१३॥ कविरा या संसारको, समुझोयो कइ. बार। पूछ. जो पकड़े, भेड़की, उतरा चाहै. पार॥१४॥ (१११) अथ भेषको अंग तत्व. तिलक तिहूँ लोकमे, राम नाम. निजसार। जन कबीर मस्तक दिया, शोभा अमित अपार॥१॥ त्रिकुदहीही निज मूल है, भृकुटी मध्य निशान। ब्रद्दा दीप अस्थूल है, अगऱ तिलक. निबनि॥२॥ अगऱ तिलक सिर सोहई, वैसाखी. उनिहारि। शोभा अविचल नामकी, देखो सुरति बिचारि॥३॥ जैसे तिलक उनहाऱ है, तस शोभा अस्थीर। खंभ ललादे.. सोहई, तत्व +. तिलक गंभीराश॥। तत्व तिलकको खानि है, महिमा है निज नाम। अक्े भाव वा तिलकको, रहे अक्षय विश्राम॥५॥ मध्य गुफा जहैं सुरति है, उपरि तिलकका धाम। अमर समाधि लगावई, जहैं दासे. निर्गुन नाम॥६॥ दादश तितक वनावही, अंग अंग. अस्थान। कहे. कबीर विराजही,. उज्जवल हंस अमान तत्व. तिलक माथे. दिया, सूरति श्रवनी कानि। करनी. कंठी कंठमे, परसा पद निवरनि॥८॥ मन माला तन सुमिरनी, हरिजी तिलक दियाव। डुहाई राजा. रामकी, दूजा करि कियाय॥९॥ मन माला तन. मेखला, भवकी करे. भभूत। राम मिला सब देखतां, सो जेगी अवधूत॥१०॥

साखी क्रय कै अंगुली गिने, मन धाबे चहुँ ओर। जिहि फेरे सांई मिले, सो भया काठ कठोर॥११॥ माला फेस युग गया, पाया न मनका फेर। करका मनका छाड़िके, भनका मनिका फेर॥१२॥ माता फेरे मनमुखी बहुतत फिर. अचेत। गांगी रोहे यहि गया हरिसों किया न हेत॥१३॥ माला फे कछू नहीं, डारि मुआ गल भार। ऊपर ठोलाहीं गला, भीतर भरा भंगार॥१४)॥। कबिर माला काठकी, बहुत यतन का फेर। माला स्वॉस उस्वाँस की, तामें गाँठि न मेर॥१५॥ कबिरा माला. काठकी पहिरी मुगद डुलाय। सुमिन की सुधि है नहीं, ज्यों डियर बांधी गाय॥१६॥ शीतल जल पातालका, साठि हाथ पेर भेख। माला के परतापते, ऊपर आपा देख॥१णा॥। माला फेरे कहा भयों, गांठि न हृदय की खोय। हरि चरना घित राचिये, तो अमरा पुर जोय ॥१ ८॥ माला तिलक पहीरिके, हआ घोटम घोट। मनुवा क्यों ना पूँड़िये, जामें सारा खोट॥१९॥ मूँड मुठाये हरि मिलै, सब कोई हलेहु मुँडाव यार यार के मूँने, भेड़, वेकुण्ठ न जावय॥२०॥ दाही मूछ मुठाय के, हुआ घोट्म घोद। मनुवा क्यों ना मूँडिये, जामे सारा खोद॥२१॥ मला फे कुछ नहीं, काती मन के , हात। जब लगि हरि परसे नहीं, तब लगि थोथी बात॥२२॥ केशे कहा बिगारिया, जो मूँ सौ बार। मन को क्यों नहि मूँडिये, जामें विषै विकार॥२३॥ मन मेवासी मूँडिये, केशहि मूड काहि। जो कछु किया सो मन किया, केशां किया कएछु नांहि॥१४॥ मूंडः मुड़बत दिन गया, अजहुं न मिलिया राम। राम नाम कहो क्या करे, मनके औरे काम॥२५॥ भूला भसम लगायके, मिटी न मनको चाहि। जब लग सिका न साँचका, तब लगि योगी नॉहि॥२६॥ ऐसी ठाठाँ ठाठिये, बहुरि न यह तन होय। ज्ञान गूदी ओठिये, काढि न सकिहै. कोय॥२७॥ बाना पहरे सिहका, चलै भेड़की लार। बोली बोले श्यालकी, कुत्ता खाये फार॥२८॥ हम तौ योगी मनहिके, तनके है ते और। मन को योग लगावतां, दशा भई कछु और॥२९॥ भर्म न भागे जीवका, बहुतक धरिया. भेख। सतगुरु मिलिया बाहिरे, अंतर रहिगा लेख॥३०॥)

४४८ कवीर समग्र कबिरा वह त्तो एक है, परदा दीया भेख। भरम करम सब दूरि कर, सबही महि अलेख॥३१॥ पहले बूडी पृथ्वी, चूठे कुलकी लार। अलख बिसासर्यी भेषमे, बू काली धार॥३२॥ चतुराई हरि ना मिले, ये बातो की बात। निष्प्रेही निरधारको, गाहक दीनानाथ ॥३ ३॥ नौसत साजें सुंदी, तन मन रही सैंजोय। पियके मन माने नहीं, पदम किये क्या होय॥३५॥ (११२) अधथ कुसंगतिको अंग कबिर कुसंग न कीजिये, जाका नावें न ठांव। ते क्यों होसी बापरा, साधु नहीं जिहि गांव॥१॥ उज्ज्ल बून अकाशकी, परिगयई भूमि बिकार। मूल विनद्या मानई, दिन संगति भव छार॥२॥ मिरिये पर्वत शिखरते, परिये धरनि भंझार | मूरख मित्र न कीजिये, बड़ों काली घार॥३॥ मूरखको समुझावता, ज्ञान गाठिका जाय। कोयला होय न ऊजला, सौ मन साबुन लायाश॥। कोयलाभी होय. ऊजला, जरियरि होव जो- श्वेत। मूरख होय न ऊजला, ज्यो कालरका खेत॥५॥ भारी मरे कुसंगकी, ज्यो केला ठिग . बेर। वह हाले वह चीरई, साकटद संग. निबेर॥६॥ केला तबहि. न चेतिया, जद ढिग जागी बेरि। अबके चघेते क्या थया, कांदों लीन्हा घेरि॥७॥ कबिरा कहते क्यो. बने, अनबनतीके संग। दीपफके भावे नहीं, जरि जरिः मे पतंग॥८॥ मेरे निसानी मीचकी, कुसंगतिही है. काल। कहे कदीर सुनी प्रानियां, बानी ब्रह्म सैंमाल॥९॥ जानि बूझ्लि सांची तजै, करे झूँठ सो नेह। ताकी संगति रामजी, सपनेहूँ. मति देह॥१०॥ काधा सेती मति मिले, पाका सेती बानि। काया सेती मिलतही, होयषथ भक्ति मे हानि॥११॥ तोडि पीर छलो प्रेमकी, पाका सेती खेल। काया सरसों पेरि के, खली भया ना तेत॥१२॥ कुल दूदे काची परी, सरा न एको काम। चोरातसी जासा भया, “ दूरि परा हरि नाम॥१३॥

साखी दाग जु लाग नीलका, सौ मन साबुन धोय। कोटि जतन कर बोधिये, काया हंस न होय॥१४॥ सतगुरु का यक देश है, जो बसि जाने कोय। कागा ते हंसा करे, जाति वरण कुल खोय॥9 ५॥ जगसो आपा राखिके, ज्यो विषहरिसो अंग। करो दया जो खूब है, बुरा खलकका संग॥१६॥ (११३) अथ संगतिको अंग कबिरा संगति साधुकी, नित प्रति कीजै जाय। दुर्मती दूरि बहावसी, देसी सुमति बताय॥१॥ संगति सो सुख ऊपने, कुसंगति सो दुख जोय। कहे कबीर तहैं जाइये, साधु संग जहैँ होय॥२॥ कबितर संगति साधुकी, करूँ न निष्फल जाय। जोपे धोबे. भूनिके, फूले. फले. अधघाय॥१॥ कबिरा संगति साधुकी, है और की व्याधि। संगति बुरी कुसाधुकी, आठों पहर उपाधि॥४॥ कबिरा संगति साधुकी, जौकी भुसी जो. खाय। खीर खाँड भोजन मिले, साकद सभा न जायापा। कबिरा संगति साधुकी, कबहू न निष्फल जाय। होसी चंदन बांवनों, नीम न कहसी काय॥ ६॥ संगति - कीनजे संतकी, निजका पूरा मन। अन ताल ही देत हैं, राम सरीखा घन॥७॥ कबिरा संगति साधुकी, ज्यों गंधीका. पास। जो कछु गंधी दे नहीं, तो भी बास सुबास॥८॥ एक घी आधी परी, आधी सो भी आध। कदिरा संगति साधुकी, कहे कोटि अपराध॥९॥ साधु संगति अन्त परै, यह मति कबहूँ होय। कहे कबीर तिहुँलोकमे, सुखी न देखा कोय॥ १०॥ कलह काल औ कल्पना, संत संगति सो जाय। दुखवा सो भाजा फिर, सुखमें रहे. समाय॥११॥ कबिरी वन वन में फिरा, कारण अपने राम। राम सरीखा जन मिले, तिन सारे सब काम॥१२॥ कबिरा सो दिन निर्मल, जा दिन संत मिलाय। अंक भरे भरे भेटिये, पाप देहका जाय॥१३॥ राम राम रहठिबो करे, निसि दिन साधुन संग। कहो जो कौन बिचार ते, नहि नैना लागत रंग ॥१४॥ मन दीया कहूँ औरही, तन साधुन के. संग। ४४९

४५० कबीर समग्र हे कहे कबीर कोरी गजी, कैसे खागै रंग॥१५॥ साखी शब्द बहुत सुना, मिटा न मनका दाग। संगति में सुधा नही, ताका बड़ा अभाग॥१६॥ कबिरा संगति साधुकी, जो कर जानें कोय। चंदनते बन चंदन भया, बॉस न चंदन होय॥१७॥ कबिरा चन्दन के बिये, बेघा आक पलास। आप सरीखा करि लिया, जो होते उन पास॥१८॥| मलयागिरि. के बास में, वृक्ष रहै सब गोव। कहिबेकूँ. चंदन भये, मलयागिरि नहिं. होय॥१९॥ मलयागिरिकी बासमे, बेधा आक पलास। बांस न कबहूं बेधिया, रहे युगोयुग पास॥२०॥ मलयागिरिके पेडसों, सरप रहै लपदाय। रोम रोम विष भीनिया, अमृत कहां समाय॥२१॥ चंदन जैसा सन्त है, सरप जैस. संसार। बाके अंग लपटा रहे, भागे नहीं बिकार॥२२॥ चन्दन डर लहसुन करे, मति रे बिग बास। सुगुाय डरपे निगुरु सो, यो जगसे डरपै दास॥२३॥ कबिर घड़ीकी आधी घडी, भाव भक्तिमें. जाय। सत संगति पलही भली, यमका घका न खाय॥रड॥ जा पत्र दर्शन साधुका, ता पलकी बतिहारि। राम नाम- रसना बसे, लीजे जन्म सुपारिश्पा ते दिन गये अकारथी, संगति भई न संत। प्रेम बिना पशु जीवना, भक्ति विना भगवन्त॥२६॥ जा घर हरि की भक्ति नहिं, संत नहीं मिहमान। ता घर यम डेरा दिया, जीवत भये मसान॥२७॥ ऋद्धि सिद्धि मांगू नहीं, हरि सो मांगूँ एह। नित प्रति दर्शन साधुका, कहें कबीर मोहिं देह॥२८॥ मेशर मन हंसा रमे, हंसा गमनि रहाव। . वगुला मन माने नही, घर आंगन फिरि जाय॥२९॥ कबित तासो संग कर, जो रे भजे हैं राम। राजा राना. छत्नपति, राम बिना बेकाम॥३०॥| राम बुलाया भेजिया, दिया कर्बीरे रोय। जो सुख साघपूसंग मे, सो वबैकुंठ न होय॥३१॥, ' कंबिीा जाई कोटका, पानी पिये न. कोय। जाय पर जब गंग मे, सब गंगोदक होय॥इर॥ कबिरा मन पक्षी भया, मन माने तहें जाय। जो जैसी संगति करे, सो तैसा फल खाय॥३३॥

साखी (११४) अथ असाधुको अंग बांबी कूटे. बाबरे, सर्प न मारा जाय। मूरख बांबी ना उसे, सरप जगत को खाय ॥१॥ कबितर सौ मन दूधका, टपक किया. बिनाश। दूध फाटि कांजी भया, हुआ जो घृतका नाश॥२॥ रैनि पुरै वास घटे, बन अँधियाग होय। लागि रहा फूलां फला, पथ नहि काटा कोब॥३॥ (११५) अथ साधको अंग सब वन तो चन्दन नही, शूरके दल नाहि। सब समुद्र भोती नहीं, यों साधू जग मांहि॥१॥ सिहनके लेहँड़ा नही, हंसन की नहि.. पाँति। लालनकी ओबरी नही, साध न चले जमाति॥२॥ स्वांगी_ग सब संसार है, साथ समझि भये पार। अनलपक्ष कोइ एक है, पक्षी कोटि हजार ॥३॥ सापू जन सबमें रमें, दुःख न काहू. देहि। अपने मत गाढ़ा रहै, साधुन का मत एष्टि॥४॥ साधु ऐसा चाहिये, दुखे दुखावे नाहि। पान फूल छेरे नहीं, बसे. बगीषा मांहि ॥५॥ साध हजारी कापड़ा, तामें मल. सन समाय। साकट काली कामली, भाव. तहां बिछाय ॥६॥ हांती खेल हराम है, जो जन राते राम। माया मन्दि इस्ती, नही साधुका काम ॥७॥ साधू भौरा जग कली, निस दिन फिर उदास। डक इक तहां विलंबिया, जहाँ शीतल शब्द निवास ॥८॥ सिह साधूका एक मत, जीवतही को खाय। भावहीन मृत्तक दशा, ताके निकक न जाय॥ ९॥ कमल पत्र है साथु जन, सबसे जगतके मांहि। बालक केरी धाय ज्यों, अपना जानत नांहि॥ १०॥ पुगगन मीन " सुधाकरा, बसत भीरकी संध। -यो साधू संसार में, कबिरा परत न फंद॥ ११॥ तीन लोक उनमान में, चोथो अगम अगाय। पंचम दिशा है अलख की, जानैगा कोह .साध॥१ २॥ साथ सिद्ध. बड़ अंतर, जैसे. आम बबूल। ४५

कबीर समग्र बाकी डारी अमी फल, वाकी डारी शूल॥१३॥ रिको तेज घटे नही, जो घन जुरे घमंड। साधु वचन पलटे नही, जो उत्नदटि जाय ब्रह्माप्ड॥१४॥ साधु कहावन कठिन है, आगेकी सुधि नांहि। सूली ऊपर खेलना, गिरि तो ठोरहि काहि॥१ ५ साधु. कहावन कठिन है, ज्यों खोडे की पार। डगमगाय तो गिरि पैर, निश्चल उतरे पार॥१६॥ साधु कहावन कठिन है, ज्यो लम्बी पेड़ खजूर। चंढे तो चाखे प्रेम रस, गिरि तो चकनाधूर॥१७। जीन भाव ऊपर रहे, भीतर बसावे. सोया भीतर और न बसावई, ऊपर और न होव॥१८॥ जीन चाल संसाकी, तौन साधुकी ' नांहि। दम्भ चाल करनी करे, साधु कहो मति ताहि॥ १९॥ साधु चाल जो चालई, साधु कहाबै. सोय। बिन साधन जो सुधि नहीं, साधु कहाँ ते होय॥२०॥ साधू सोई जानिये, चले साधु की चाल। परमारथ राता रहे, बोले वचन रसाल॥ २१॥ तन मे शीतल शब्द है, बोले वचन. रसाल। कहे कबीर ता साधुकी, गंजि सके ना कालाररश॥। गांठी दाम न बाघहा, नाहि. नारिसो नेह। कहे कबीर वा दासके, चरण कमलका. खेह॥२३॥ साधु सती अरु शूरमाँ, इन पटतर कोइ नाहि। अगम पंथको पग धै, गिरि तो कहा समाहि॥२४॥ अगम पंचको मन गया, सुरति भई अनुबानि। तहां कबीरा मेंडि रहा, बेहदके.. मैदान ॥२५॥ बहता पानी निर्मला, बेंधा गाँधीला होय। साधू जन रमते भले, दाग न लागे कोय॥२६॥ बंधा पानी निर्मा, जो ठुक गहरा सोय। साधू जन बैठा भला, जो कछु साधन होय॥२रण॥। कौन साधुका खेल है, कौन सुरतिका दाव। कौन अमृतका कूप है, कौन वज्नका घाव॥२८॥ क्षमा साधुका खेल है, सुमति सुरति का दाव। कर्ता अमृत कूप है, शब्द वज्र का घाव॥२९॥ धरती अम्बर जायेंगे, बिनसेंगे कैलास। एकमेक हो जायगे, तब कहां रहेंगे दासा॥इणा। एकमएका होन दे, दिनसन द्ै कैलास। घरती अम्ब जान दै, मोमें मेरे दास॥३१॥

साखी (११६) अथ साक्षीभूतको अंग कबितर पांच जलघधिया, ऊजर ऊजर जांहि। बलिहारी वा दासकी, पकरि जो राखे बांहि॥१॥ कबिरा जिन कु जानिया, सुख नीदरी बिहाय। मेरे अबूझी . बूलझिया, पी परी. बिललाय॥२॥ पील कैँदीरी साया, कवल / कहै. इस. रोग। छोने लंघन नित करूं, राम पियारे जोग॥३॥ जा घट में साई बसे, सो क्यो छाना होय। जतन जतन करे दाबिये, तो. उजियारा सोय॥४॥ सब घट मेरा साहइयां, सूनी सेज न कोय। बलिहारही वा घाद की, जा घट परगट होय॥५॥ राता राता सब कहे, अनराता कहे न कोय। राता सोही जानिये, जा तन रक्त न होय॥६॥ राता रक्त न नीकसे, जो तन चीरे कोय। जो राता हरि नाम सो, ता तन रक्त न होवाए॥ जो भार्जो तो भय नहीं, सनमुख रहा न जाय। सूता सिह न जगाहये, जे छः तेहि.ः खाय॥

ड्प्ड कवीर समग्र जीवत यश होय जगतमें, अंत परमपद पायाणा हो साधुके संग हो, अंत कहूं नहि जांब। जो भोहि अरपे प्रीतिसों, साधुन मुख होय खांब॥८॥ साधु हमारी आतमा, हम साधुके जीव। साधुन मध्ये यो रहो, ज्यो पय मध्ये घीव॥९॥ ज्यो पय मध्ये घीव है, त्यों रमि रहा सब टठोर। वक्ता श्रोता बहु मिले, मधि काढे त्ते और॥१०॥ साधु नदी जल प्रेम रस, तहां पर छालो अंग। कहे "कबीर निर्मल भया, हरि भक्तन के संग॥११॥ कबिर सोई दिन भल्रा, जादिन 'संत . मिलाय। अंक भे भरे भेटिये, पाप शरीर जाय॥१२॥ साधु. मिले साहिब, मिले अंतर री न रेखा मनसा वाचा कर्मना, साधू आप. अलेख॥१३॥ निराकार की आरसी, साधुनहीकी देह। लखा जो चाहे अलखको, इनहीं में लखि लेह॥१४॥ साधुन केरी दयातै, उपजे बहुत अनंद। कोटि विघष्न पल में टरै, मिटे सकल दुख दंद॥११॥ सुख देना दुख मेठना, दूर करन अपराध। कहे कबीर वे कय मिले, परम सनेही साध॥१६॥ हरि. दरबारी साधु है, इनते सब कछु होय। वेगि. मिलाबे, रामको, इन्हे मिले जो कोय॥१७॥ साधू खोजा रामके, धसे जो महलन . माहि। औरन को परदा लगे, इनको परदा नाहि॥१८॥ गिरही सेवे साधुको, साधू. सुमिरे राम। यामे धोखा कु नही, सै दोऊका काम॥१९॥ साधुनदी कुतिया भली, बुरी साकटकी माय। वा बैठी हरि यश सुने, वा निन्दा करने जावारणा भली भई जो भय मिटा, दूटी कुलकी लाज। बे परवाही डै रहा, बैठा राम जहाज॥२१॥ साधु समुन्दर जानिये, मांही रत्न भराय। मंद भाग मूही भें, कर कंकर चढ़िजाय॥|३२२॥ साधू तो हीरा भया, ना फू घन. खाय। ना वह बिनसे कुंभ ज्यो, ना वह आवबे रायार३॥। साधु सीप साहिब समुद्र, निपजत मोती माहि।

, साखी वेही ठिकाने. पाइये, नाल खालमे नाहि॥२४॥ हरि. दरिया सुभरा भरा, साधुनका घट. सीप। तामे मोती नीपजे, घचढे दिसाव दीप।रप॥ चंदनकी चुटकी भी, कहा बवूल वबनराव | साधुनदी छपरी भली, बुरो असाधुको गाँव॥२६॥ जाति न पूछी साधुकी, जो पूछो तो ज्ञान। मोल करो तरबारका, पा रहन दो म्यानोरणा। कहा अकासका फेर है, कहा धरतीका तोह। कहा साधुकी जाति है, कहा पारसका मोल॥२८॥ साधु वृक्ष हरिनाम फल, शीत शब्द बिचार। जगमें साधु होते नही, जलि मरता संसार॥२९॥ तीर4थ नहाये एक फल, साधु मिले फल चार। सतगुर; मिले अनेक फल, कहे कबीर बिचार॥३०॥ साधु. सिद्ध एक मत, साधु मता परचंड। सिद्ध) ता तन आपना, साधु तरे नवखंड॥३०|॥ यही बडाई संतकी, करनी देखो आय। रजहूंते ज्ञीनी रे, लौलिन है गुनगाय॥३१॥ हरि सेती हरिजन बड़े, समुझि देखु मन मांहि। कबिरा सब जग हरि विषे, सो हरि हरिजन मांहि॥३२॥ परमेश्वर ते. संत बड़े, ताका कहा उनमान। हरि. माया आगे धै, संत रहे निवान॥३३॥ सन्त बड़े संसारमें, हरितें अधिकी सोय। विन इच्छा पूरन करे, साधू साहिब होय॥३४॥ नीलकंठ. कीडा भरे, मुख वबाके है. राम। औगुन बाके लगे नही, दर्शनहीसे. काम॥१५॥। साधूको उठि भेंटिये, मुखते कहिये राम। नातो साधु स्वर्ऋपफो, करनी सो नहि काम॥३६॥ काहको नहि.. निदिये, सबको. कहिये . संत! करनी अपनी ते त्तै, मिलि भजिये, भगवंत्त ॥३७॥ अवैष्णव कोई नही, सबै वैष्णव जानि। जेता हरिको ना भजे, तेता ताको हानि॥३८॥ आप साधु करि देखिये, असाधू देखु न कोय। जाके हिदे हरि नहीं, हानि उसी को होय॥३९॥ कबिरा दर्शन साधुका, करत ने कीजी कानि। ज्यो उदचमते लक्ष्मी मिले, आहलसमें नित हानि॥४०॥ कबिरा दर्शन साघुके, साहब आवै यादि। लेखामें सोही घरी, बाकीका दिन. बादि॥४१॥ दर्श कीजे साधुका, दिनमे कई एक बार। आसोजाका मेह ज्यो, बहुत कौ. उपकार॥४२॥ कई बार नहि करि सके, दोय वक्त करि हछेय। कबिरा साधू दरस सो, काल दगाी बहि देय॥४२॥

कबीर समग्र दोय बखत नहि करे सके, दिनमें कर इक बार। कविता साधु दरसते, उतरे भवजल. पाराश्श। एक दिना नहि करि सके, दूजे दिन करि हलेय। कबिता साधू. दरसते, पावे उत्तम देहाद्प॥। दूजे दिन नहि करि सर्क, घोथे दिन कर जाय। कविता साधू दरसते, मोक्ष मुक्ति फल पाय॥४घ॥। चघोये दिन नहि करी सके, बार बार कर जाय। यामे विलम्ब न कीजिये, कहे कबीर समुझाव॥४७॥ बार बार नहि करि सके, पक्ष पक्ष करे सोय। कहे कवीर ता दासको, जनम सुफलही होया४८॥ पक्ष पक्ष नहि कि सके, मास मास कर धाय। यामे भेद न कीजिये, कहे कबीर समुझाव॥४९॥ मास मास नहि करी सके, छठे मास अठबत्ति। यामें ढठील न कीजिये, कह कबीर अविगत्ति।॥५०॥ छठे माँस नहि. करिसके, वरस दिना करे हलेया। कहे कबीर सो संतजन, यमें चुनीती देय॥५१॥ वरसु बरस नहि. करि सके, ताको छागे. दोष। कहे कवीरा वा जीव सों, कबदहुँ न पावे मोप॥परशा। मात पिता सुत इस्त्री, आलस बंधू.. कानि। साधु दसको जब चले, ये अठकावे आनि॥५३॥ इनका अटठकाया ना रहे, साधु दरस को जाय। कविता सोई संतजन, मोक्ष मुक्ति फल पाय॥५४॥ साधु चलत रोय दीजिये, कीजे अति सनमान। कहे कबीर भेद धरु, अपने वित्त अनुमानाप५। खाली साधु न विदा करु, सुन लीजी सब कोय। सुनो कवीरा भेट घरु, जो तेरे गृह होव॥५६॥ मोहर रुपैया पईसा, छाजन भोजन देय । कहे कबीर सो जगतमे, जनम सफल करि लेय॥१७॥ बेटा बेटी इस्तिरी, साधु. चाहे सो देवा सिर साधुके अर्पी, जन्म सफल करि. लेयाषदीा। हाथी घोड़ा गाय भैस, अरब रू गाही भवन। कबीर दीजे साधुकी, कीया चाहै. गवन५९॥ कविता दरशन साधुके, खाली हाथ न जाय। यही सीख वुद्धि लीजिये, कहे कबीर समुझाव॥६०॥ सुनिये. पार त्ते पाइया, छाजन भोजन आनि। कहे कबीरा साधु को, देत न कीजी कानि॥६१॥ कविस लौग. इलायची, दातुन मादी. पान। कहे कवीरा साधुको, देत न कीजे कान॥७२॥ टूका माहे दूक दे, चीर मांहि. सो चीर। साधू देत न सकुचिये, यो कहे दास कबीर॥६३॥ कंचन. दीया करणने, द्रोपदी दीया चीर।

साखी जो दीया सो पहया, ऐसे कहे. कबीर॥६४॥ निराक्र निज रूपहै, प्रेम प्रीति सो सेवा जो चाहे आकार को, साधु प्रत्यक्षहिे. देव॥६५॥ जा सुखकों मुनिव रठे, सुमिन कै. बिलाप। सो सुख सहजे पाइया, संतो संगति आप॥६६॥ मेर मन पक्षी भया, उड़िके चढठा अकास। बैकुंहि खाली परा, साहब संता. पासाएण॥। पर्वत पर्बव मै. फिर, कारन अपने राम। राम सरीखे जन मिले, तिन सारे सब काम॥६८॥ कबिरय शीतल जल नहीं, हेम ने शीतल होय। कबीर शीतल संत जन, नाम सनेही सोय॥६९॥ भली भई हरिजन मिले, कहने आयो राम। सुति दर्शौ दिशि जाय थी, अपने अपने काम॥छ७०॥ संत्त मिला जनि बीछरो, विछरो यह मम प्रान। राम सनेही ना पिलै, प्रान देह मति आन॥७१॥ कोटि कोदि तीरथ करे, कोदि कोदि कर धाम। जब लगि सन्त न सेवई, से न एकहु काम॥७२॥ आसा वासा संतका, ब्रह्म लखे न बेद। घट दरशन खटपट कै, बिला पाव भेद॥७३॥ ऊँडा चित्त रु सम दशा, साधू गण गंभीर। जो धोखा बिये नहीं, सोही संत. सधीराछएश४॥ (११ ८) अथ देखादेखीको अंग देखा देखी भक्तिका, करूँ न हलागे. रंग। - बिपति परे यो छांइसी, जिमि कांचली भुवंग॥१॥ ज्ञाव संपूरन ना बिधा, हिदा नही खुदाया। देखा. देखी पकरिया, रंग नही ठहराय ॥२॥ देखा देखी पकरिया, गई. छिनक मे छूटि। कोइ बिला जन उठाहरी, जाकी ठाको री पूढठि॥३॥ देखा देखी सब कहै, भोर भये तें राम! आधरात कोइ जन कहे, खानाजाद गुलाम॥श॥ यह मन ताको दीजिये, जो साथा सेवक होय। शिर ऊपर आरा सहै, तौह न दूजा सोया॥५॥ करिये तो करे जानिये, जो सरीखा सेती संग। कझिर झि जिमि लोई भई, तऊ न छाहे रंगाद्ा (११९) अथ मध्यको अंग साखी आंखी ज्ञानकी, समझे देखु. मन मांहि। विन साखी संसारका, झगरा. चूके. नाहि॥१॥ हु ४५७

ड५८ कबीर समग्र जो मन समुझे ज्ञान में, ज्ानहि होव सहाय। सो फिर ताही ना रुचे, ताते कहा बसाय॥२॥ समुझेका घर और है, अन समझेका और। जा घटमें साहिब बसे, सो विला जाने ठोर॥३॥ समझेका मत और है, अन समुझेका और। समुझे पीछे जानिये, राम बसे सब हारा मोमें तोमें सरब में, जहीं देखूं तहें राम। राम बिना" क्षण एकही, से न एको काम॥५॥ अनलु पंख आधे नही, सुत अपनेको लेना वह अलीन यह लीन है, उलदि मिलेते चैन॥६॥ अनलपक्ष कै चीतवै, गिरते किया विचार। सुति बांधि चेतन भयों, जाय मिला परिवाराणा जाय मिला परिवारमे, सुखसागरके तीर। यरन पलटि हंसा किया, सतगुरु शब्द कवीर॥८॥| नरक स्वर्ग ते मैं रहा, सतगुरुके परसादि। चरण. कमलकी मौजमें, रहसी अंतर आदि॥९॥ दास कवीर काठी भी, दोऊ राह विच. राह। अंधे लोग अचरज कै, सोरे करें सराह॥१०॥ सुति निरतति दोऊ तूंबरी, आवा गमन . अबद्ध। अनसमझा. धोखे. परा, समझा सोई . सिद्ध॥११॥ प्रटदभ गुप्तवकिी संधि में, जो यह अस्थिर होय। ज्यो देवह का दीवला, अंदर बाहह सोय॥१२॥ पाया कहे ते बाबरे, खोया कीं ते कूर। पाया खोबा कछु नही, ज्यों का त्यो भरपूर॥१३॥ भंजू तो कोहे भजन को, त्ंजू तो कोहे आन। भजन तजन के मध्य मे, सो कबीर मन मान॥१४॥ लेक तो महा प्रतिग्रह, देऊके त्तो भोगंत। लेन देन के मध्यमे, सो कबीर निज संत॥१५॥ दुआ देऊँ तो दोजख जाऊँ, वह दुआ भी नाँहि। दुआ बददुआ किसको देऊँ, साहद है सब माहि॥१६॥ मेंडि रहना मैदानमे, सन्मुख सहना तीर। जमरा और जगदीशके, . मध्यमे बसे. कबीर॥१७णा। गुस नहीं चेला नही, मूरीदहु नहिं पीर। एक नहीं दूजा नही, मूरीदहु नहि. पीर दा। हिदू ध्यावै देहरा, मुसल्मानहू मसीत। दास कबीर तहां ध्यावही, जहां दोनों की परतीत॥१९॥ हिंदू. तुक के बीचमे, मेरा नाम. कबीर! जीव मुक्तावन काने, अविगति धरा शरीरारणा हिन्दू. तुक के बीचमे, शब्द कहूँ. निरबनि। वंधन काूँ. जगतको, मैं - रहता रहमान॥२१॥

साखी हिन्दू कहूँ तो में नहीं, मुसलमान भी न नाहि। पाँच तत्का. पूतठा, गैबी खेले माहि॥२२॥ गैबी आया गैबते, ह्हां लगाया ऐद। उलदि समाना गैब में, तब कहाँ रहेगा ऐब॥२३॥ शैबी तो गहलिया फिर, अजगैदी कोइ. एक। अजगैदबी हू जो लछखे, जाके हृदय विवेक॥२४॥ आगे खोजी पचि मुआ, पीछे रहा भुलाव। भधष्य माहि. बासा करे, ताको काल न खाय॥र पा सांध कोई न मानई, झूठ. कहा नहि. जाय। सोच. झूँठी. मध्यमें, रहा कबीर समाय॥२६॥ अतिका भला न बोलना, अतिकी भली न घूप। अतिका बढ़ा न बरसना, अतिकी भी न धूप॥२७॥ (१२०) अथ समझावनको अंग समझे को सेरी धनी, अन समझे को नाहि। द्वारा न पावे शब्द का, फिरे फिरे गोता खाहि॥१॥ समझा समझा एक है, अन समझे सब एक। समझा सोई जानिये, जाके. हृदय विवेक॥२॥ कोटि सायने पचि मुये, कथयै बिचारे. लोव। समझा घट तव जानिये, रहेत बिकार जो होय॥३॥ समुझा समुझा एक है, अन समुझे से मौन। बाते बहुत मिलाबई, तासों.. झीखे. कौनाश॥ समुझा सोही जानिये, समुझि समानी. भाहि। जब लग कछू न अछही, तब लग समुझा नाहि॥५॥ साखी आंखी ज्ञानकी, समुझ्नि देखु मन माहि। विन साखी संसाको, झगरा चूके नाहि॥६॥ (१२१) अथ विचारको अंग राम नाम सब कोइ कहे, कहने मभाहि बिचार। सोह राम जो सती कहै, सोई कोतिक हार॥१॥ आगि कहे दाझने नही, पांव न दीजै. मांहि। जोपे भेद न जानई, राम कहा तो काहि॥३॥ कबित सोचि बिचारिया, दूजा. कोई नाहि। आपा पर जब चीन्हिया, उलदि समाना माहि॥३॥ राम भजो मन बसि करो, येही , बडा अरथ। काहे को पढि पढ़ि मरो, कोटिक ज्ञानहि ग्रैंच॥४॥ एक शब्द मे सब कहा, सबही अर्थ विचार। भजिये निर्गुन् नामकों, तजिये. विष. विकार॥ए॥ कविता भूछा दगामे, लोग कहे यह. भूल। ४५९

 कर्महि बाद बतावही, के भूलत भूला भूलछा॥द॥ नो मन सूत अरुझियिया, कविरा घर घर बारि। तिन सुलझाया बापरे, जानी मुक्ति मुरारि।णा। बोल तो अनमोल है, जो कोई जाने बोल। हिये तराजू त्ोलिके, तब मुख बाहर खोलादा ज्यो आबे त्योही कहै, बोले नहीं बिचारि। ह्ते पराई आतमा, जीभ लेइ. तरबारि॥९॥ बोले बोल विचारिके, बैठे ठौर सेभारि। कहे कबीर वा दासकी, कदूँ न आबे हारि॥१०॥ बोली हमारी पलठ़िया, या तन याही देश। खारी सो मीठी करी, सतगुरुके उपदेश॥११॥ कबिर हम सबकी कहै, हमारी कही न जाय। पूरवकी बातां कहे, पश्चिम जाय. समाय॥१२॥ अपनी अपनी सब कहे, हमारी कहे न कोय। हम अपनी आपहि कहे, करता करे सो होय॥१३॥ आजाको. घर अमर है, वेठहके शिर भार। तीन लोक नाती ठगा, पण्ठित करी विचार॥१४॥ घारि. घोर चोरी गये, पग पाहनी उतार। घारु दर थूनी हनी, पण्डित करी बिचार॥१५॥ गुर पशु छुल पशु नारि पशु, वेद पशु संसार। मानुष. सोई जानिये, जाके हृदय विचार॥१६॥ उलठा ज्ञान विचारिके, देखो अपना देश। हरदी घून मिलायके, रहे न दूजी लेश॥१७॥। कवीरा उलठा ज्ञान का, कैसे करू विचार। अस्थिर बैठा पथ कहे, चला चली नहि पार॥१ «| सोइ अक्ष सोई भने, सोई जन. जीवंता अकिलमन्द कोइक मिले, अमिमहारसहि.. पिवंत॥ १९॥ हाथ पाँव मुख शीश धरि, वबेगर बेगर नाम। कहे कवीर विचारिके, तोर नाम कहाँ ठामार गा हाथ पाँव मुख शीश धरि, वेगर बेगर नाम। कहे कबीर विचारिके, मोर नाम सब ठाम॥२१॥ (१२२) अथ असारग्राहीको अंग कबविर कीट सुगंधि तजि, नरक गहे दिन रात। असारग्राही. मानवा, गहैँ असार जो. बात॥१॥ बूटी बादी पान करि, कहे दुःख जो जाय। कहे कबीर सुख ना गहे, यही असार सुभाव॥२॥ मच्छी मलकूं, गहत है, निर्मल वस्तु जो छॉडि। कहे कबीर असार मत, माँडि रहा मन माँडितश॥ आटा तजि भूसा गहे, चलनी, देखु. निहारि।

साखी कबीर सार जो छांड़िके, गहे असार असाराद॥ पापी पुण्य न भावई, पापहि,. बहुत सुहाय। माखी सुगंध परहैं, जहां दुर्गंधघि तहां जाब॥प॥। रस छांडि, छोही गहै, कोलू.. परगट. देख। गहे असार असार को, : हृदये नाहि।. विवेक॥६॥ दूध त्यागि रक्त गहे, लगी पयोधर जोक। कहे कबीर असार मत, , लक्ष न राख कोका७ण॥ निर्मम छह मल गहै, जनम असारी खोयब। कहे कबीर सार तजि, आपुन गये. बिगोब॥८॥ (१२३) अधथ सारग्राहीको अंग साधू. ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय। सार सार को गहि रहे, थोथा देह. बहाय॥१॥ सत संगति है सूप ज्यो, त्यागी फटकि असार। कहे कबीर हरि नाम है, परसे नाहि. बिकार॥रश॥। पहले _ फटके. छाजके, थोधा सब उड़िजाय। उत्तम भांडे पाइये, फटकंता ठहराय ॥३॥ बसुधा बन यहु भांति है, फूले फूल अगाध। मिष्ट सुवास कबिरा गहे, विषम गहे कोइ साध॥४॥ को तो ना गहे, गुनहीकौंी ले बीन। घट घट महके मधुप ज्यो, परमातम है चीन॥षा। कंबितर सब घट आतमा, सिजी सिरजन हार। राम कहे सो राम सम, रहता ब्रह्म. विचार॥द्व॥। क्षी रूप हरि नाम है, नीर रूप व्यवहार। हंस रूप कोई साधु है, तत्वका छानन हारा७॥ चुंबक काहे सार कूं, जोरें मिला है रेत। (साधू काढे जीवको, उर अंत के हेता८«॥ । पारा कंचन. काहिलै, जोरि मिलावे आन। कहे कबवीरा सार मत, परगट किया बखान॥९॥ रक्त छॉड़ि पे क्यों गहे, जोरे गऊका बच्छ। औगुन॒ छांड़ि गुनही गहे, सारगराही. रूच्छ ॥१०॥ (१२४) अथ पीवपिछानको अंग अविगति पीस पीसना, गौसा बिने. खुदाय। निरंने.। तो रोटी कै, गैवी बैठ. खाय। अक्षे प्रुष एक पेड़ है, निरंजन बाकी डार। त्रिवा शाखा भये, पात भया पंसार॥२॥ तीन देवको सब कोई ध्यावे, चौथा देवका मरमन पायै। चौथा छांडि पंचम धवे, कहे कबीर सो हमरे आबे॥३॥ ४६१

कवीर समग्र तीन गुनन की भक्ति में, भूलि पर्यो संसार। कहे कबीर निज नाम विन, कैसे उतरे पाराश) जो ओंकार निश्चय किया, यह कर्ता मति जानि। सांचा शब्द कबीर का, परदा माहि पहिचानि॥५॥ हरा होय सूखे सही, यो, भमिगुन. बिस्तार। प्रथमहिं.. ताकों सुमिरियि, जाको सकल पसार॥द्ा अलख अल्ख सब कोउकहै, अहूख ठखे नहिं कोय। अलख लखा जिन सब लखा, लखा अलख नहि होय॥ा७॥ लखने हरे लखलिया, जाको ड्ट गुरुज्ञान | शब्द सुरति के अन्न्तरे, अल्ख पुरुष निवर्नि॥८॥ हम तो लखा तिहुँ लोकमे, त्तुम क्यो कहो अलेख। सार शब्द जाना नहीं, धोखे पहिरा भेखा९॥ कथत कथत युग धाकिया, थाकी सब खलक। देखता नजर न आइहया, हरिके कहा अलक॥१०॥ बेचूने जग रॉचिया, साहव नूर निनार। आखिर केरे वक्त को, किसका कै दीदार॥११॥ तीन लोक सब राम जपत है, जान मुक्ति को धाम। रामयन्द्र चसिष्ठ गुरु किया, तिन कहि सुनायों नाम॥ १२॥ जगमे घारो राम है, तीन राम व्यवहार। चौथ राम निज सार है, ताका करो विचार॥ १३॥ एक राम दशरथ घर डोलै। एक राम घट घट में बोलै। एक रामका सकल पसारा। एक राम उिभुवन ते न्यारा ॥१४॥ कौन राम दशरथ घर डोलै। कौन राम घट घटमें योलै॥ कौन राम का सकल पसारा। कौन राम त्रिभूवन ते न्यारा॥१५॥ आकार राम दशरथ घर डोले। निराकार घट घटमें बोले ॥। दिदु रामका सकल पसारा। निरालम्व सवबहीतें न्ारा ॥१६॥ राम कृष्ण अवतार है, इनकी नाहीं . मांड। जिन साहद संसार किया, सो किनहु न जनम्याँ राड॥१७॥ जाकी थधामकी मांड है, ताकी करहू सेव! जो थापा है मांका, सो नही हमारा देव॥9 ८॥ साहिब मेश एक है, दूजा कहा न जाय। दूजा साहवव जो कहूँ, सहय खरा रिसाव॥१ ढग चार भुजाके भजनमे, भूलि परे सब संता कबिता सुमिरे तासु को, जाके भुजा अनंत॥ा२०ण) निबल् सदर जो जानिके, नाम धरा जगदीश! कहे कवीर जन्मे मै, ताहि धर नहि. सीस॥२१॥ जन्म मरनसे रहित है, मेरा साहब सोय। बलिहरी उस पीवकी, जिन सिजजा सब कोय॥रर॥। समुद्र, पादि लंका गये, सीता को भरतार। ताहि अगस्त मुनि अचै गयो, इनमे को करतार॥२३॥

साखी गिरवर घारयो कृष्णजी, द्रोणागिरि हनुमंत। शेष नाग सब सृष्ति सहारी, इनमेंको भगवंत॥२४॥ काटे. बंधन विपति में, कठिन किया संग्राम। चीन्हों रे' नर प्राणियां, गरुड बडो की रामारपा। कह कबीर चित घेतहू, शब्द करी निरुवार। रामहि. कर्ता कहत है, भूलि परयो संसार॥२६॥ राम कृष्फणो जिन किया, सौी तो करता न्यार। अंधा ज्ञान नु बूजई, कहे कबीर बिचार॥२७॥ जाहि. रोग उत्पन्न भया, औषधि देह जो ताहि। पैध ब्रह्म बाहर रहा, भीतर धसा जो नांडि॥शश्दा असर रोग. उत्पति भया, अवतार औषधि. दीन्ह | कहे कबीर या साखि को, अर्थ जो हीजी चीन्ह॥२९॥ कबिर कारण भक्ति के, भक्तिहे दीन पठाय। कहे कबीर विचारिके, ब्रह्म न आधे जाव॥३०॥ (१२५) अथ विश्वासको अंग सिरजन_ होरे सिरजिया, आठ पानी लौन। देनेहारा देतत है, मेटन हारा कौन ॥१॥ जो कलपे तो दूरि है, अन कलपे है सोय। सतगुरु भेटी कल्पना, सहज होयषथ सो होय॥र॥। साई इतना दीजिये, जितना कूटुंब. समाय। ता में पघूँखा ना रहूँ. साधु न भूखा जाय॥१॥ राम नाम कि बहु डरो, बाहौ बीज अधाय। खंड ब्रहण्ड सूखा पर, तक न निष्फल जावाश)। कर्म करीमों लिखि रहा, अब कछु लिखा न होय। मासा घटे न तिल बढ़े, जो शिर पदठके कोयाप॥। चिता न कर अधिन्त रु, देनहार समरत्य। पसू पखेरझ् जंतु जिव, तिनकी गॉँठि न गरत्थ॥६॥ कर्म करीमों लिखि रहा, नर शिर भाग अभाग। जो कबहूँ चिता कौ, तो उन आगे आग॥७॥। अंडा पाले काछबी, बिन तन राख पोक। यो कर्ता सबकी कै, पाड़े तीनहु. छोक॥८॥ पौ फाटी पगरा हुआ, जागे जीवा जून। सब काहको देत है, चोच समाना. घूनाए॥ जाके मन विश्वास है, सदा गुरु है संग। कोटि काल इक झोलही, तक न होय चितभंग॥१०॥ खोज पकरि विश्वास गहु, धनी मिलैगे . आहि। अजया गजमस्तक चढही, निरभय कोंपल खाय॥११॥ घटमें ज्योति अनूप है, किं मौत जिव साथ। कहा सार है मनुषका, कलम धनीके हाथ॥१२॥ ४६३

४६४ रडैः कवीर समग्र साई दीया सहजमें, सोई र्ज्कि हइलाल। हैयां सबे हराम है, तजि संशय जिय साल॥१३॥ आगे पीछे हरि खड़ा, आप सहरे' भार। जनको दुःखी क्यों कै, समरध. सिरजनहार॥१४॥ भक्त भरोसे रामके, निधरक ऊंची. दीठ। तिनको करम न लागई, राम ठकोरी पीठ॥१५॥ सौदा कीने राम सो, भरिये गुन. हलाय। जा कबहूँ ठांड़ा, लुटे, पूणी विलय नजाय ॥१६॥ राखनहार राम है, जाय जंगल. में बैठि। हरि कोपे नहि. ऊबरें, सात पताले. पैढठि॥१७॥ डीरी लागी भव मिटा, मन पाया विश्वाम। चित चघहूंहा राम सो, याही केवल . धाम॥१८॥ विश्वासी होय हरि भजे, लोहा कंचन होय। राम भज्"ज»2&£ अनुरागते, हरप शोक नहि. दोय॥१९॥ (१२६) अथ धीरजको अंग धीरा है धमका सहै, ज्यों अहरन शिर घाव। मेवा पर्वत होव रहे, इत उत कहूँ न जाव॥१॥ धीरे र्धीाी रे मना, घी सब कछु होय। कबविरा धीरजके धरे, हस्ती सवामन खाय। टूक एकके कारने, श्वान घर घरो जाव॥३॥ कदिर भें वैठिके, भैचक्कत मना न जोय। चूइनका भय छांड़ि दे, करता करे सो होय॥४॥ (१२७) अथ विरक्ताईको अंग कबीर वाजन दे वे जंत्री, जग जंत्री ना छेर। तुझे विरीनी कया परी, आपनि आप निबेर॥१॥ कविता हमारा कोइ नही, हम काहू के नाहि। परे पहुंची नाव ज्यो, मिलिके बिछुरी जाहि॥श) आज कालके लोग है, मिलिके बिछुरी जाहि। लाहा कारण आपने, सोगंद रामको खांहि॥३॥ कवि सब जग हेरिया, मेलेड. कंघ चढाय। हरि बिन अपना कोइ नहीं, सब देखा ठोकि बजाय॥४ड खलक मिला खाली रहा, बहुत किया बकवाद। वांझ. झुलावै पालना, तामे. कौन सवादापा। निसता पे विसरा नही, तौ निसरा ना काहि। पहली खाय उखालिया, सो फिरे खाना नाहि॥शा। जो विभूति साधुन तजी, ताहि. विभूति छूपदाय।

साखी ज्यों बवन करि डारिया, श्वान स्वाद करे खावबाणा राम बिना बेकाम है, छप्पन भोग. बिलास। कहाँ इंद्रको बैठनो, कहाँ बैझकुंठ को बास॥८॥ मन फाटे चित ऊचटे, नैना नाहि. समाय। पलकौंकी दादी दई, टेढ्ा देह जाय॥९॥ बड़ा बड़ाई ना ते, छोटा बुत इतराय। ज्यों प्यादा फरजी भया ठेढ़ा ठेहा जाय॥१ ०॥। मेन मानिक जब ऊचदे, नेक नहीं ठहराय। जो कंचनकी भूमि है, तो हरियल घेरे न पांय॥११॥ धरती फटे मध मिले, कपड़ा फोटे और। तन फाहे को औषधी, मन फाटे नहि. ठोर॥१२॥ मोती भाग्यो बेधतां, मन भाग्यो. कूबोल। बहुत सयाना पचि गया, परिगई, गांठी ग्रोल॥१३॥ बैरीगी बिकत भला, गिरा पा फल खाय। सरिता को पानी पिये, गृही द्वा ने जाय॥१४॥ गहस्य द्वार जायके, उदर समाता लेइ। लागे हरि फिर, जब चाहै तब देइ॥१५॥ (१२८) अथ सामर्थाईको अंग साहय सो सब होत है, बंदे ते कछु नाहि। राई ते पर्वत कै, पर्वत. राई. माहि॥१॥ बहन बहता स्थिर करे, थिरता कै बहैन। साहब हाथ बडाइया, जिस भावै जिस दैन॥२॥ हरिसा समरथ कोई नही, गरुआ गहर. गेंभीर। औयुन छंडे गुन गहे, पनक उतारे तीर॥३॥ धनि धनि साई तू बड़ा, तेरी अनूपम रीति। सकल भवनपति सांइयां, है के रे अतीति॥दा साई मै तुझ बाहरा, कौडीहू. नहि. पांव। जो सिर ऊपर तुम धनी, महँगे मोल बिकाँव॥५॥ बाटरिया दूधर « भई, मत कोइ काइर. होया। जिन यह भार उठाइया, निरवाहगा. सोय॥६॥ हाथी अठक्यो कीचमे, काहे को समरत्व। की बल निकले आपने, कि साई पसारे हत्व॥७॥ ना कछु किया ने करि सका, ना कछु करना योग। मै मेरी जो ठानिके, दूजी थापे लछोग॥८॥ जो कुछ किया सो तुम किया, मैं कछु कीया नाहि। कहूँ कहो जो, में किया, तुमही ये मुझ मांहि॥९॥ जिस नहि कोई तिसहि तू, जिस तू तिस सब होयवं। दरगह तेरी साँईया, मेटि सके नहि. कोय॥१०॥ - औगुनहाश गुन नही, गनका बड़ा कठोर। व? 5 478 ०, ४६५

कबीर समग्र ऐसा समरथ सांईया, ताहि. हँघावों ठलोर॥११॥ तुम तो समरथ सांइया, इटृढ़ करि पकरो बांहि। धूरिहीली पुहुँचाइहझो, जनि छोंडो. मग. मांहि॥१२॥ समरथ घोरी कंध दे, रथको दे. पहुँचाय। मारम मांहि ने छांडिये, पिय बिन बिद लजाव॥१३॥ इत कूआ उत बावडी, इतऊत थाह. अथाह। डुहूँ देशि सो फनाफन करे, समरथ पार निवाह ॥१४॥ घट समुद्र छलखि न परे, उठे जो लहरें अपार। दिल दरिया समर्थ विना, कौन उतोरे पार॥१५॥ बुरा जो देखन में चला, बुरा न मिलिया कोय। जो दिल खोजों आपना, तो मुझसा बुगा न जोय॥१६॥ कविता सबते हम बुरे, हमते ' भला सब कोय। जिन ऐसा करि वृक्षिया, मित्र हमार सोय॥१७॥ मुझमें इतनी शक्ति क्या, गाऊं गला पसार। बंकी इतनी घनी, परा रो. दरबार॥१ ८॥ जबका माई जनमिया, किते न पाया सुक्ख। डारी डारी मैं फिरो, पात पात में दुश्ख॥१९॥ कबिरा मैं तो तबहि उरी, जो मुझही मे होय। मभीच बुढापा आपदा, सब काहकोी जोब॥र०॥। सात द्वीप नवखंडमे, तीन लोक ब्रह्मंड। कहे. कबीर सबको लगे, देह घेको दंड॥२१॥ देह घेको दंड. है, सब काहको होय। ज्ञानी भुगते ज्ञान करि, अज्ञानी भुगते रोब॥२२॥ भूष दुखी अवधूत दुखि, दुखी रंक बिपरीत। कह कबीर ये सब दुखी, सुखी संत मन जीत॥२३॥ “ घारी हरिके नाम पर, कीया राई लौन। जिसे चघलाबै पंथ तू, तिसे भुलावै कौन॥२४॥ (१२९) अथ कुशब्दको अंग कुवुधि कमाना चढि रहे, कुटिल बचन का तीर। भ्रि भरि मोर कान मे, साले सकल. शरीर॥१॥ कुटिल बचन सबते बुरा जारि कौ सब छार। साधु वचन जल रूप है, बरसे अमृत धार॥२॥ करगडहण दुर्जन बचन, रै संत जन. दारि। विजुली परे समुद्रमिे, कहा सकेगी जारि॥श। शीतछता. तब जानिये, समता रहे. समाय। बिष छाड़े निर्विष रै, सब दिन दूखा जाव॥४॥ कबविरा शीतछता. भई, उपज्यो तब ब्रह्ज्ञान। जिहि बैसंदर जग जले, सो मेरे उदक- समाना|५॥ कबिय कुशबवद न बोलिये, सज्जन विरचे. चीन।

गंगा विष जिद्ठा जिह्वा सहज सद हिये सरस लागी लागी हलागी लागी लायी लागी लागी विन बाहर ऐसा कहै सायर शब्दे जिन बीजक शब्द शब्द हीरा शब्द अपने शब्द आपा शब्द अंत शब्द जो साखी जल शीतल भया, पर्वत फोरा तीन॥६॥ में अमृत बसे, जो कोइ जाने बोढि। वासिक का ऊतेरे जिद्ा तने हिलोलि॥७। शक्कर दूध जिभ, जिह्ला. प्यीरी जागि। साजन रलि मिले, जिह्वा. लावै. आगि॥८॥ तराजू आनिके, सब रस देखा. तौहि। रस़ मांही जीभरस, जो कोई जाने बोलि॥९॥ तो अनमोल है, जो कोइ जाने बोढ़ि। तराजूँ. तौलिके, तब मुख बाहर खोलि॥१०॥ (१३०) अथ सुशब्दको अंग सरजन बेधिया, सरबिन - गम कछु नाहि। चोट जो शब्दककी, करक करेजे मांहि॥१॥ छागी क्या कहे, लागी नाही एक। तबही जानिये, परे करेजे छेक ॥२॥ लागी क्या करे, लागत रही हलगार। तबही जानिये, निकसी जाय दुसार॥३॥ लागी क्या कै, लागत रही ढलगाहि। तबे.. सराहिये, उठे. कराहि._ कराहि॥४॥। शर और कमान बिन, मारा है जो कसीस। घाव न दीसई, बेधा नख सिख सीसापा। मारा शब्का, मुआ न दीसे कोय। कबीर सो ऊदबरें, घड़ पर सीस न होवाए॥ माही शऱ गया, मच्छी खाया सोया! मध्छी तसबर घठी, बूझी बिला. कोयाण। मारा मरि गया, शब्दे छांडा. राज। जिन शब्द विचारिया सरिया तिनका. काज॥८॥ वित्त बताय दे, जो धन खगुप्ता होय। बतावबे ब्रहको, चीन्हे बिला. कोय॥९॥ बराव धन नही, जो कोइ जाने बोलि। तो दामो मिहै, शब्दहि मोल न तोल॥१०॥ सो कीजिये, बहुते गुर लवबार। अपने लोभधको, ठौर ठौर बढवार॥११॥ न कै मुलाहिजा, शब्द फिर. चहुँधार। पर जब चीन्हिया, तब गुरु शिष व्यवहार॥१२॥ हमारा एक है, जब तक कीजो यादि। फलेगी मांहिली, _ ऊपरकी सब बादि॥१३॥ हमार हम शब्दके, शब्द ब्रह्मका कूप। चाहे दीदाको, तो परख शब्का रूप॥१४॥ ४६७

कबीर समग्र * शब्द हमार हम शब्दके, शब्दहि लेहु परणिखि। जो तू चाहे मुक्तिती अब मति जहू सरक्कि॥१ ५॥ शब्द दुराया ना हर, कहूँ जो ढोल बजाय। जो जन होयगा जीहरी, लेहे शीश चढ़ाय॥१६॥ शब्द विना सुरति आँधरी, ना जानूँ कित जाय। द्वारा न पावे शब्द का, फिरि फिरि झटका खाय॥१७॥ शब्द पाय सुरति राख, सो फुँचे दरवार। कहे कबीर तहाँ देखई, जहाँ बैठे पुरुष हमार॥१ ८॥। और दारू सब करी, पे स्वभाव की नाँहि। सो दारू सतगुरु करी, रहे शब्दकके माँहि॥१९॥ एक शब्द गुरुदेवका, जाका अनंत. बिचार। पण्डठित थाके मुनिजना, वेद न पावे पार॥२०॥ मे. कलिका कुतवाल हो, लेहू शब्द हमार। जो या शब्दहि मानिहे, सो उतरे भी पार॥२१॥ शब्दोदेश जो में कहूँ, जो कोई माने संत। कहे. कबीर विचारिके, ताहि. मिलाऊं कंत॥२२॥ मता हमारा मंत है, हमसा होय सो सहेय। शब्द हमारा कल्प धन, जो चाहै सो देय॥२३॥ रैन समाना भजुमे, भानु अकाशे भाहि। अकाश समाना शब्द मे, शब्द परे कछु नाहि॥२४॥ शब्द कहांते उठत है, कहांको जाय समाव। हाथ पांव बाके नही, कैसे पकरे जाय॥२५॥ नाभि कमलते उठत है, शून्यहि. जाय समाव। हाथ पांव वाके नही, सुरति ते पकरा जाय॥२६॥ शब्द कहांते आइया, कहां शब्दका भाव। कहां शब्दका शीश है, कहां शब्द का पांव॥२७॥ शब्द ब्रह्माण्ठे . आइया, मध्य शब्का.. भाव। ज्ञान शब्का शीश है, अज्ञान शब्द का पांव॥२८॥ नाद नहीं था दिदु नहीं था, कर्म नहीं था काय। अलख पुरुषके जीभ नहीं थी, शब्द कहां ते आय॥२९॥ नाद नही था, बिदु नहीं था, कर्म नहीं था काय। अलख पुरुषफे जीभ नहीं थी, शब्द शून्यते आय॥ ३०॥ कौन शब्की नावरी, कौन. शब्द. असवार। कोन शब्की डोर है, कौन उत्तरी पार 7॥ ३9१॥ सत्य शब्दकी. नावरी, अकह शब्द असवार। सुति शब्की डोर है, तुझे उतारे पार॥ ३२॥ शब्द शब्द सव कोइ कहै, शब्के हाथ चर पांव। एक शब्द औषधि करे, एक शब्द करे घोष ॥३३॥ शब्द शब्द सव कोइ कहे शब्द के हाथ नुपांव। सार शब्द औषधि करे, और शब्द करे घावइड)। शब्द शब्द ऋुत अंतरा, शब्द सारको सीर।

शब्द शेद्का खोजना, शब्द शब्दका पीर॥३५॥ शद्द शब्ध बहु अंतरा, सार शब्द चित देय। जा शब्द साहय मिल्ै, सोइ. शब्द गहि हेय॥ ३६॥ धैद्द शब्द सब कोह कहै, शब्दका करी विचार! एक शब्द शीतल करे, एक शब्द दे जार ॥३७॥ पैक शब्द सुख खानि है, ऐक शब्द दुख रासि। सुब है शब्दका, अपनी अपनी बेर। जा घटमें बसे, ताहि ने चीहडे ओर ॥३९॥ शीतल शब्द हल 3 उचारिये, अहं तेरा प्रीतम पन्नहिमें, उशमनभी उच्च ाहि ॥ ४०॥ कोई. आधे भाव हे, कोई अभाव। ताध दोऊको पोखि दे, भाव न अभाव ॥४१॥ हरिजन ,... जिह्वा कहै मार। अष्ट प्रहर चितवत रहै, शाम विचार॥» २॥ शब्द तब जानिये, माहि। शैबद्दे शब्द प्रगण भया, टूजा दीखे नाहि॥४३॥ शेबदका, धन्य संत है सोय। कहैः कबीर शब्दगहि, कहूँ ने जाय बिगोय ॥४४॥ तारहि शब्दहि और सोई शब्द दा देय। अन समझा शब्द कहै, केहू न लाह य॥४५॥ दीला टीली ढाहिके, फोरि करे मैदान। समझ सफा करता चले, सोई शब्द निवनि ॥४६॥ युरु काय भक्ति करे निष्कर्म है, सतगुरु यो समुझाय ॥४७॥ है, जो दिया दिल्ल ; देवावंत नाहि। त्यागू ताहिको, भूलि देड जनिः वाहि॥१ ॥ राम नाम फडुआ लगे, भीग गे दाम दोऊ गया, माया मिली राम॥२॥ हृदयेमे. आरती, मुख देखा जाय अुख ती तबही देखई, डुविधा बहाव ॥३॥ चीटी. चावल ले पली, . विचमे मिलि दारि। कहै. कबीर दोज ना मिले, एक ते दूजी | के तू छोर सेकझदमी, . हे तू ल्गेर।

४७9०0 जल ि्नन जफलीजजओ अभी + अ++ अत आओ भना+ रा कबीर समग्र दो-दो घोरा मति चढ़े, तेरा घर मा है. चोरापा। आगा पीछा दिल करे, सहजा मिले न आय। सो बासी पयमलोकका, बांधा यमपुर जाव॥६॥ तकत तकाबत रहे गया, सका न बेझी मार] सबे तीर खाली परा, चला कमाना डाराछ॥ बेसशा मरे स्थिर रहे, खरा महीना खाय। साहबके दरबारते, भागि न कबहूँ. जाय॥

भुमिरन का संशय रहा, माहि। राम रस, भसेगयय पीया नाहि॥३॥ कबिरा दरदीवान जो, क्यौकर पावे दाद। पहली बुरा कमायके, पीछे करे फरियाद॥४॥ (१३४) अथ कालको अंग ढलै द्ूलै 2 व्याज बहता जाय। ना हरि भा न खत केटा, काल पहुँचा आयब॥ १॥ काल्हि आज कर, सब सौज तेरे साथ ६ काल्हि तू काल्हि हाथ॥२॥ काल करे आज ? आज करे सो अब्ब। पलमे परलै होयगी करेया कब्ब ॥३॥ नही, साज काल अचानक मारि है, ज्यो तीतरको बाज ॥४॥ जो दूर ? मोप कहे न जाय। क्या जानू. क्या होयगा, पलके चौथे भाव॥५॥ अपना जम कहा जिन कहिः लिया जय पहुँची आब। दार मदर छागी जप सौ, अब कुछ कही ने जाय ॥१ ०॥ गैर कुत्ता बन शा, काल नित्त। दो कैरी बिचि झोपरा, कैश कहां से मित्त॥ १॥ कुशलहि कुशल जो इछतां, जग रहा न कोय। जरा मुई ना भय डआ, कुशल कहांते . होय ॥9२॥ घरी जो पजदर, . सुनता है. सब कोय। आयु पहे जोबन खिस्तै, कैंशल कहांते होय ॥9 ३॥ रे झुशल हक णानके, अधदा जाम जपंत। मरने लेता नहीं, तो कुशल छल जो पूछे |, गा हा या गम बिह्ना जय आ, श्र कहांते री बारी - आपनी 3 है मि हे) मित्त बारी जीवरा, नियरे आबै. ,नित ॥१६॥

पे कबीर समग्र देखिके, आवत्त कलियां करे. पुकार। फूली फूली घुनि लई, काल्ि हमारी बार॥१७॥ बढई आवत पेखिके, तरुवर रुदन कराय। मे अपंय संशय नहीं, पक्षी बसते आय॥१८॥। फागन आवत देखिके बन रोता मन माहि। ऊंची डारी पात था, पीरा है है जाहि॥१९॥ पात जो त़रुवसी कहै, बिलम्ब न मानें मोर। आई ऋ्रतु जो बसंत की, जहां जाओ तहां तोर॥२०॥ तरुवर् पातसों यो कहे, सुनो पात एक बात। यह घर याही रीति है, इक आवबत इक जात॥२१॥ पात शङ्वरंता यो ,. सुनु तरुवर बनराय। अबके ना मिले, दूरि परेगे जाय॥२२॥ कहे. पात झारसों, कहा परी अब तोहि। ज्यो वा तरुव्रही तज्यों, चली जान दे मोहि॥२३॥ पीपल पान झरंतिया, हँसी आईकी घेरि। याही बसिवा होयया, अपनी अपनी बेरि॥२४॥ चौकी दाधी लाकरी, ठादीकरै पुकार। , मति बसिपरो लुहारके, जोरै दूजीबार॥२५॥ मेराबीर लुहारिया, त्तू मति जारै मोहि। इक ऐसा होयगा, मैं जारोगी त्ोहि॥२६॥ जो पहरा फाटिया, जो खाया सो जाय। कबिरा रामानंदका, दीया ही रहिजाव॥२७॥ कबिरय पांच पखेरुआ, राखा. पोख लगाया एक जो आयो पारधी, लेगयो सदे उड़ाया२८॥ कविरा जीवन कछु नही, खिन खारा खनन मीठ। काल्िहि. अल्जा मारिया, आज मसाना दीठ॥२९॥ कविता मंदिर आपने, निति उठि करता आहि। मरहद देखी इडरपता, चौड़े _ दीया. जालि॥३०। परदा रहती पश्चिनी, करती कुलकी . काँन। छड़ी जो पहुँची कालकी, डेरा हुआ - मैदान॥३१॥ मछली. दह नही, झीवर मेरा. काठल। जेहि जेहि डावर घर करो, तहें तहेँ मेले जाल॥३२॥ पानी महँकी माछली, क्यो ते परकयो. तीर। कडी खड़की जालकी, आप पहुंचा कीर॥३३॥ है मतिही माछली, क्यो सूती घन । ते कारन. कीरके, लंवी बांदी , डोरि॥३४॥ हे मतिहीनी माछली, झीवर मीत कियाय। करि समुद्रसो रूठना, छीलर चित्त दियाय॥३५॥ हे मतिर्हीी माछली, ते छीलर माँडी आहि। डावरियां छूटे नही, सके तो समुद्र संभालि॥३६॥

फिरि फिरि /. ताकि समुंदरतीर की भीतर घरकिया, है करैया कीर ॥३७। आखडिया रेतनालिया, घेजा कर करे पताल। तोहि. बूझनों माछली, तू क्यों बंधी जाल ॥ ३८॥ तीन लोक पिजरा भेया, पाप यन्य़ु दोउ जाल | सकल जीव ? एक अहेरी काल ॥३ ९॥ पूघन ढागे कैब, .. टन के छागी हइर। पानीकी कल जानतो, . चढा सो सींचन हार॥४०॥ हरियाली | ये ताल। हा जय एकजिव," केतिक टरौ भाल ॥४१॥ कविता पयरा द्रि है, परी है राति । ना जानी क्या होयगा, ऊगंता परभाति ॥४२॥ कबिरा गाफिल क्या फिरै, आया काल नजीक। कान पकरिके ले पला, ज्वों अजाको बटीक ॥४३॥ कबिरा हरिसों . हेतत कर, कोरे पित्त, न लाय। ' बांध्यो बारि बटीकके ता पशु केतिक आय ॥४४॥ सॉझ्परी दिन अंधिया, बाधन परेते गाय। गाय बिचारी ना मै, बाघ ने भूखा जाय ॥४५॥ काल जीवको ग्रातई, क्यो समुझाय। कहै कबीर मैं क्या कहूँ, के नही पतियाय ॥४६॥ काल हमारे रहै, केस जीवनकी आस। दिन दस राम से लै, जब लगि. पिजरा स्वांस॥४७॥ पह यों ही गया, माया मोह आल राम नाम हदये नही, ल्या पमजाल ॥४८॥ हम जाने थे कि बहुत जमी बहुमाल। ज्यों का धा रहा, पकरि लैगया काल॥४९॥ पहुँदेशि पाका कोट था, मंदिर मेंझार बिरकी पाहरू,.._ गज बंधा दरबार ॥५०॥ चहुंदेशि तो योद्धा खड़े, हाथ लिए सबही यह तन देखता, काल हे गया भार॥५ १॥ आस पास खड़े, गाल मे महतते है पा, ऐसा काल ॥ ५३२॥ धरती. करते एक पयण, करते भेमुन्दऱ पाल । हाथो तोलते, तेभी, काठ ॥५ ३॥ हाथो परकक्त फाउते, सुंदर घूंट भराय। गया बेटा जाये क्या हुआ, कहा बजाबै. धाल ॥ आवन जावन है रहा, ज्यों कीरीका नाल ॥५७॥ तब कहै, ने कोय

कबीर समग्र जाया नाम जनमका, रहन कहां ते होयाप८॥ हम जाये ते भी मुआ, हम भी घलने हारा हमरे पीछे पूगरा, तिन भी बांधा आाराषर॥। बालपनो भोलो . गयो, और. जवानी. महमंत। वृद्धने.. आलस भयो, चला जरंते अंताएइगा। साथी हमरे चलि गये, हम भी चालन हार। कागद मे बाकी रही, तातें लागी बार॥६१॥ काया काठी काल घुन,, जतन जतन घन खाय। काया मांही काल है, काहू मरम ने पाय॥६२॥ संशय काल शरीरमे, विषम काल है दूरि। जाकों कोइ जाने नही, जारि करे सब घूरि॥६३॥ जारि बारि मिस्सा करे, मिसि करि करे है छार। कहे कबीर कोइला करे, फिरि देहे अवतार॥६४॥ ऐसे सांच न मानई, तो तिलही देखो जीीय। जारि बारि कोइला करे जमता देखा सोय॥६५॥ कौन सरोवर पानि विन, कौन भीच. बिनकाल। कौन सो परिमल बासबिन, कौन वृक्ष बिन डाल॥६६॥ मान सरोवर पानि विन, नीद मींच विन काल। ज्ञान सो परिमल वास विन, सुरति वृक्ष विन डाल॥६७॥ घाट जगाती धरमराय, सवका झारा लेय। सत्य नाम जापे बिना, उलदि नरकमे दये॥६८॥ जिनके हाथ निशान है, तिनन्‍्हे अटकाबे. कौन। पुरुष खजाना पाया, मिटि गया आवागौन॥६९॥ घाट जगाती धरमराय, गुरुमुख ले पहिचानि। छाप विना सतनामके, सांकद रहा. निदानाए०।। गुस जहाज हम पावनां, गुरुमुख पारि परै। गुर जहाज जाने बिना, रोबे घाद खरे॥७१॥ - खुलि खेलो संसारमे, बांधि. न सक्के कोय। घाट जगाती कया करे, शिर पर पाद न होय॥७२॥ जम न जाय पुकारिया, डंडा दिया डारि। संत मवामी हैरहा, फांसि न पर. हमारि।७श॥ जाता है जिस जान दे, तेरी दशी न जाव। खेवटिया का नाव ज्यों, घना चढेगा. आयाछ४ढ॥। चलती. चाकी देखिकै, दिया कवीरा रोय। दो पाटन विच आयके, सावत गया न कोयाएपो। आसे पास जो फिर, निपट पिसाबै सोय। कीला सी लागा रहै, ताको विघ्न न होयाछएद्दा चाकी चली गुपाल की, सब जग पीसा झारि। रूठटा शब्द कबीर का, डारा पाद उखारि।छ७ण॥। कौन कसे कौन कसाब, कौन जो लेइ छुडाव। यह संशय जिव होरही, साधु कहो समुझाय ॥७८॥

कसे. कर्म केसाबै,. सतगुद लेडट कहे कबीर बिचारिक, छुनौ संत चित छाय॥ ७९॥ माटी में माटी मिली, मिली पौन सो * पौन। मै तोहि बूझों पंडिता दोमें शूआ कौन ॥ ८०॥ कुमति हती सो. पिटि गई, मिट्यो वाद अहंकार। दोनूँका.. भरे युवा, कहे कबीर बिचार॥८ १॥ (१३५) वसजीवनको अंग... क जरा भीच ? मुआ नम सुनिये कोय। चलो कबीर वा देशरे, जहां वैद्य रमैया होय॥१॥ भवसागरते सकें ”. ज्यों. जल कमल निराछ। मनवा जहाँ ले ? पहाँ नही पमकाल॥२॥ कबित योगी बन बसा, खनि खाया कंद. मूल। नारी किस जरी सों, अमर हि सो ॥३॥ कबिरा हरिपि ह गयन मंडल असेच किया, काल रह सुबमोरि॥४॥ कबित शत किया छाइ. बिरह ६ चित परनों से चिपटिया, नही बान ॥५॥ कारी भति करी, दिन दिन बच्चे बियाधि। ' रोम कबीर भई, .याही ताधि ॥६॥ रामनाम निजु ओऔषधी, कोटिक कटे बिकार विषवारी विरकत्त रहै, काया कंचन तार ॥७॥ रामनाम लिज जैतगुरू हुई औषधि खाय अछझ पथ्य हहै, ताकी बेदन जाय॥८॥ यह औषधि / अनेक उधरी देह। कोऊ ही कुपथ्य नहि तो दि औषधि न ॥ केबिरा मे. बुलाया, जो भा सो | जिहि. जिहि ओऔषधि हरि मिले, सो औषधि देय ॥9१०॥ कबिरा बैद हि पकडि दिखाई बांहि। बेद न बेदन जानई. करके कलेजा माहि॥9 १॥ बैद जहु पर आपने, तेरा न होय। णिन या बेदन निरमई, भत्रा सोय ॥१ २॥ मनवा भया ः रसाल | बात दितावतकी कहै, तहा नही यमकाल ॥१ ३॥ ऐसी तीखी है, फोरि गई प्रह्लंड । परम निशात् ा , नव खण्ड॥9 8 प् ्म रमत अस्थिर भेया, ज्ञान फेथत भया लीन। जुरति शब्द पक्के भैया, जहही ह् ैगा मीन॥9 ५॥ म्मरे तो हम मरे, ना तर मरे बलाय। पीटा, के . '. जाय॥१ ६॥

कवीर समग्र कविरा संशय जीवमे, कोइ न कहे समुन्नाय। विधि विधि बानी बोलता, सो कित गया बिलाय॥१७॥ कबिरा संशय दूर करे, जनम मरने अर भरम। पांच तत्व ततां मिला, सून्य समाना मरम॥१८॥ यम जोरा तो है नही, सबे रामका रूप। संशय खाई जो प्रष्वी,, रहा कवीर कूक॥१९॥ सब़ जग उरपे कालसो, ब्रह्मा विष्णु. महेश। सुर नर मुनि औ लोक सब, तप्त रसातल शेश॥२०॥ चंद्र सूर्य घऱ पवनलों, खण्ड ब्रह्मण्ड. प्रवेश। यम डे काल कबीर सो, जेजे तू आदेश॥२१॥ जाको राख साया, मारि न सकिहै कोय। बाल न बंका करि सके, जो जग वैरी होयारशरशा। (१३६) अथ साक्षीभूतको अंग कबिरय पूछे. रामसो, सकल भवन पतिराइ। सबही करि न्यारा रे, सोई देहु बताइ॥१॥' पारस रूपी राम है, लोहा. रूपी जीव। जय जाय पारस भेटि है, तब जिवद्धे है सीव॥२॥ दया कौन पर कीजिये, कापर निरददइ होय। हम तो भये तमासगी, नाटक बाजी जोय॥३॥ (१३७) अथ चित कपटीको अंग कबिर तहाँ न जाइये, जहाँ जो नाना भाव। लागेही फल ठह पैर, बाजे कोह कुबाव॥१॥ कबिरा तहां न जाहये, जहाँ न घचोखा. चित्त परपूठ. अवगुन घना, मुहंडे ऊपर. मित्तार॥ कविता तहाँ.. न जाहये, जहाँ कपटको हेत। नव मन बीज जो बाहिके, खाली रहिया खेता॥र॥ हेत प्रीति सों जो पिलै, ताकों मिलिये धाय। अतर राखै जो. मिले, तासो. मिले. बलावब॥४॥। दिल पर दिल जो मिले, तो दिल दगा नहि होव। सो दिल कबहँ न वीसरे, कोटि करे जो कोय॥५॥ टीकलीका नमनाँ कहा, यह ना बहुरे बीर। पहले चरनो लागिके, पीछे सोखे नीर॥६॥ कपटीका गुर चातुरी, हरस्युन क्षण क्षण जाय। ओऔगुन केरी कॉकरी, रही कलेजे छाय॥७॥ बहुत दिन ऐसे गया, अन . रुचतीका. नेह। ऊसर बीज न जामई, अति घन बरसे मेहादा संसारी साकद भला, कन्या. क्यारी भाव।

साखी बैष्ण दुराचारी बुर, हरिजनन तहाँ न जाव॥९॥ पैष्य भया सो क्या, माला पहिरी चार। ऊपर कली लपेटिके, भीतरि भरी भंगार॥१०॥ नमनि नवा तो क्या हुआ, सूधा चित्त न ताहि। पारधिया. दूना नें, मृगही दूके जाहि॥११॥ कबिर नमन चहु अंतरा, नमनत बहुत निनान। ये तीनों बहुते नें, चीता घोर. कमान॥१३॥ केसूमेंचर न बैठई, जो अति फूहे फूल। खार कपटद दृदये बंसे, मधुकर तजे समूल॥१३॥ कहा यतावे बाहिरे, भीतरिया सो काम। छाने छिपिके तू करे, सारा जाने राम॥१४॥ घथित कपटी सब ससों मिलै, माही कुटिल कठोर। इक दुजन इक आरती, “आगे पीछे ओर॥१५॥ आगे. दरपन. ऊजला, पीछे बिषम बिकार। आगे पीछै आरसी, क्यो न परे मुखछार॥१६॥ (१३८) अथ समदृष्टीको अंग समदृष्टी सतगुर किया, भरम किया सब दूर। भया उजियारा ज्ञानका, ऊया निर्मल सूर॥१॥ समदृष्टी सतगयुझ्ु किया, भरम किया सब दूर। दूजा कोइ दीखे नहीं, राम रहा भरपूर॥२॥ समदृष्टी सतगुरु किया, दीया अविचल. ज्ञान। जहें देखी तहें एकही, दूजा नाही आन॥३॥ समदृष्टी सतगुरु किया, मेट्ट.. भरम बिकर। जहां देखों तहां एकही, साहबका. दीदार॥४थ॥। समदृष्टी सतगुद्द किया, पाया मन विश्राम जो हमको दिन घालती, सो गयो ब्रह्मके धाम॥५॥ समदृष्टी तब जानिये, शीतल समता. होय। सब जीवनकी आतमा, छलखे. एकसी . सोय॥ ६॥ (१३९) अथ हेतप्रीतिको अंग अधिक सनेही . भाएछरी, दूजा अलप सनेह। जबही जलते जबीएरै, तबही त्यागै. देह॥१॥ हरि सो तू जनि हेत कर, कर हरि जनसो हेत। माल मुल्क हरि देत है, हरिजन हरिही देत॥२॥ जैसी प्रीति कुदुम्ब सों, तैसी हरि सो होय। दास कबीरा यो कहै, काज न बिगरे कोय॥३॥ कबितर तासो प्रीति कर, जो निवाहै ओर। वने तौ विविध न रांचिये, देखत लागे खोरा४॥ ४७9७

 गुरुपता अर द्रव्ययो, प्रीति कै सब कोय। कबिएय प्रीति सोी जानिये, इनते नन्यारी होय॥५॥ प्रीति बहुत संसार में, तनाविधि की जोय। उत्त प्रीति सो जानिये, हरिजन हरि सो होय॥६॥ हेत भाँहि, परदों नही, शब्द भाँहि, नहि. राय। हेत प्रीति तब जानिये, बोले एकहि भाव ॥छ॥ हम तुम्रों सुमिन करें, तुम मोहि, चितवत नाहि। सुमिन मनकी प्रीति है, सो मन तुपही माहि॥८॥ मेर मन जो तुझहिसों, तेरा मन कहि. और। कहे कवीर कैसे बने एक जीव दे ठौर॥श॥। ज्यो मेरा मन तुझे सो, यो तेरा जो होय। अहिरन तातां लोह) ज्यों, संधि लखे ना कोय॥१०॥ दिलमाही जो दिल ' रहै, तो दिल दूरि न जाय। जो दिल दिल सो बाहरा, सो दिल कहां समाव॥११॥ सोरऊँ तो सपुनै मिले, जागी तो मन माहि। लोइन राता शुभ परी, विछुत कवहूँ नाहि॥१२॥ कहा भयो तन वबीहरै, दूरि बसे जे बास। नैनाहि अंतर परा, प्राव तुम्हे. पास॥१३॥ सी कोसी साजन बसे, जानो हृदय मँझारि। कुसनेही घऱ आंगना, जान समुद्रां . पारि॥१४॥ जो है जाका भावता, जब तव मिलिहे आय। तन मन ताकी सौपिये, जो कबहु छांडि ना जाय॥१५॥ तन दिखलावे आपना, कछू न राख गोयव। जैसी प्रीति कमोदिनी, ऐसी प्रीति जो होय॥१६॥ प्रींीम वाके दोजनां, इक मघुकर इक भान। रैन जे द्वै संपुदे, बिगसत होयष. बिहान॥१७। सही हेत है तासका, जाके, सतगुस देक। टेक निवाहै देह भरि, रहे शब्द मिलि एक॥१ ८॥। गही टेक छांडे, नही, जीभ चोच जरि जाय। मीठो कहा अंगार जो ताह घकोर चुगाय॥१९॥ चकोर भरोसे चंदके, ताता गिल अँगार। कहे कबीर छाहे. नही, ऐसी बस्तु हँगार॥२०॥ (१४०) अथ कायरको अंग कायरको. कौतुक भला, काहे कैसे... सनाह। भीर परे भगि जायगा, जीवनका है लाह॥१॥ कायर भागा पीठि दे, सूर रहा रन माँहि। पट लिखाया रामके, खा खजीना,. खाँहि॥२॥ काययका घर फूसका, भभकी चहूँ.. पछीत। शूयके कछु. डर नही, गजगीरीकी . भीताशा।

कायर सेरी ताकबै, शूरा माँडे पाँव । सीस जीव दोफऊ दिया, पीठ न आया घाव॥।४॥ भागंता सो. जूलिया, पीठ जो छागो घाव! जामीर सब ऊतरी, धनी न कहसी अथापा राग, बाग - ठोपी कसी, रनही. चढ़े. बजाय। फिरि फिरि भवन जो चित धरे, तो बाना वृद्ध लजाय॥६॥ सती जो इउरपे अगिनते, शूर शरहे. डराय। हरिजन भागे भक्ति सो, देश इनीते जाव॥७॥ (१४१) अथ शूरातनको अंग कबित सोई' शूरमां, जिन पांचों राखी घूरि। जिनके. पांचूं, मोकली, . तिनसूं, साहब दूर॥9॥ कबिरा सोई शूरमां, जाके पांचूँ हाथ। जाके पांचूं वश नही, तो हरि संग ने साथारश)। गगन. दमामा. बाजिया, पे... निशाने चोट। कायय भागे कछु नही, शूर भागे खोदाश॥। गगन दमामा बाजिया, हनहनियाके कान। शूरं घरा बधावना, कायर तजिहें.. प्राव॥४॥ सति और है, औरनकी गति और। लागा मान जो प्रेमकका, रहा कबीर ठौरापा। ऊँचा तदरुवर. गगनफल, पक्षी मुआ. बिसूर। अनेक सयाना पचि गया, फल निर्मल पर दूर॥इा दूर. भया तो क्या भया, शिर दे नियरा होय। जब लग शिर सौपे नहीं, कारण सिद्ध न कोयाण॥ चित चेतन तानी कै, लोकी करें हूगाम। शब्द गुरुका ताजना, पहुँचे संत. सुजाना८॥ हरि. घोठा ब्रह्मा कही, बसायथ पीठि पलान। चांद सुर दोउ , पायठा, चढसी संत सुजान॥९॥ छोल दमामा गडगडी, सहनाई ओऔ तूर। तीनो निकसि न बहुरे, साधु सती और शूरा१०॥। साधु सती औ शूरमाँ, ज्ञानी औ .. गजणदंत। एते निकसि न बहुरे, जो युग जाहि अनंत॥११॥ ह% सती औ शूरमों, कबहुँ न फेरे पीठ। तीनों निकसि - जो बहुरे, ताको मुँह मति दीठ॥११श॥ साधु सती औ शूरमां, दई न मो मूँह। ये तीनों भागा बुरा, साहबजीकी सूँह॥१३॥ साधु सती ओऔ 0शूरमां, इन पटतर कोइ नाहि। अगम पंथकी पंग घर, डिगे तो कहां समाहि॥१४॥ सती डिगे तो नीच घर शूर, डिपगे तो कूर। साधू डिगैतो शिखर ते, है चरनूंकी धूरि॥१५॥ ४७९

 साधु सती औ शूरमों, राखा - हे न ओर। भावा बांधि पताकसो, नेजा पालें चोर॥१६॥ साधु सती औ सिंहको, ज्यों लंघन त्यों शोभ। सिह न मै मींडका, साधु न बांधे लोभ॥१७॥ साधु सती औ थशूरमौं, इनकी बात . अगाघ। आशा छोड़े देहकी, तिनमे. अधिका साध॥१८॥ भाव भलका सुरति शर, घर धीरज करतान। मनकी मूठी जहां लगि, चोद तंहाँही जान॥१ ९॥ कहे दरबारी बातरी क्यो. पावै बह. थधाग। शीश उतारे संचरे, नाहि. और को काम॥र०ण)। शिर राखे शिर जात है, शिर कादे शिर होय। जैसे बाती दीपकी, कटि उजियारा जोय॥२१॥ शीतलता संजोगले, श्र चढा संग्राम । अबके भाजन परत है, शिर साहबके काम॥२२॥ धर सों शीश उतारिके, डारि देह ज्यो ढेल। कोई शूको सोहसी, घर जानेका खेल॥२३॥ शा के तो शिर नही, दाता के धन नाहि। पतिब्रता के तन नहीं, सुरति बसे पिय माहि॥२४॥ दाता के तो धन घना, शूरके शिर बीस। पतिबरता के तन सही, पत राख, जगदीस॥र५॥ शीश खिसे साई लखै, भलवॉका_ असवार। कदम कबीरा किलकिया, केता किया शुभार॥२६॥ लालच लोभ न मोह मंद, एकल भला अनीह। हरिजन ऐसा चाहिये, जैसा बनका सीह॥२७॥ साई सेत न पाइये, बाता मिल न कोय। कबीर सौदा राम सो, शिर बिन कदै न होय॥२८॥ भागा भली न होयगी, कहा धरोगे पाँव शिर सोपषे सीधा लरी, काहे करी. छुदाव॥२९॥ भागा- भरा न॒ होयगी, मुँह मोरा घर दूर। साई आगे शीसदै, सोच न कीर्जे शूर३०॥ शूर सन्‍्मुख. बाहता, कोई न बाँधे. धीर। पर दल मोरन रन अटल, ऐसा दास कबीर॥३१॥ शूर सनाह॒ न पहरई, मरता नही डराय। काय भाजे पीठि दे, शूर मुँडीमुंह. खाय॥३२॥ शर सनाह न पहरई, जब रन बाजा तूर। माथा काटे धर लड़े; तब जानीजे शूर॥३३॥ जोग ते जौह . भल्ला, घरी एकका काम। आठ. पहरका जूलना, बिना खांडे . संग्राम॥३४॥ खांडा. तिसको बाहिये, जो फिरि, खांडेकी . देय। कायरो क्या बाहिये, दांतो तिनका. लेयइपफ)।

साखी तीर तुपफक वरछी बहैं, विगसि जायगा चाम। शूराके पैदानमे, कायरका क्या काम ॥३६॥ शूराका मैदान मे कायरका क्या. काम) शूर से शूर मिलै, तब पूरा संग्राम॥ ३७छ॥ शूरके मैदान में, कायरका का क्या काम। कायर , भाजे पीठि दे, शूर कै संग्रामा३८॥ श्राके मैदान मे, कायर चेधा आव। ना भाजे ना लंड़ि सके, मनही मन पछिताय॥३९॥ शूचला. संग्राम को, कबहूँ न देई पीढ। आगा चघलि पीछा चले, ताको मुँह मति दीठा॥ ४ईणा। शूर लै कमन्द है घरसो शीहा उतारि। कहे कबीर मारा मुआ, कहे जो मारहि मारि॥ ४१॥ आगि आंच सहना सुगम, सुगम खब्की थधार। नेह निवान एक रस, महा कठिन व्यवहार॥४२॥ नेह निवहे ही बने, सोचे बने न आन! तन दे मनदे शीस दे, नेह न दीजे जान॥४३॥ दिन पाऊँका पंथ है, मंक्षि शहर. अस्थान। बिकट बाद औघधट घनां, पहुँचे. सन््त सुजान॥४४॥ पंच असमाना जब लिया, तब रन धसिया शूर। दिल सौपा शिर ऊबरा, मुजरा राम हजूरा।४५॥ रन धसिया ते ऊबरा, आया गरह. निवास। घरू बधावा बाजिया, औ जोवन की आस॥४६॥ जद लग धर पर सीस है, शूर कहावे कोय। माधा टूटे घर ले, कमद. कहावै. सोय॥४७॥ शूरन सेरी . ताकई, नेजा घाहै घाव। सद्‌ दल पाछा मोड़िके माही सेती चाव॥४८॥ शूर तो सांचे मते, सहै जो सनन्‌्मुख थार। फायर अनी चुभायक, पीछे झख. अपार॥४९॥ भाजि कहॉली जाइये, भव भारी घर दूर। बहुरि. कबीरा खेतरह, . दल. आया. भरपूर॥५०। इक मरिधों इक मारियो, येही पविषमा सिद्धि। ता वे कायर मरेगे, जो चाले तरकस बिद्धि॥५१॥ रन रोही अतिहीं हुआ, साजन मिला हुजूरि। शूत शूत ठाहरा, भाजिगई,. भक भूमि॥५०२॥ शरा घोराही भला, सतका रोपे पग्ग। घना" मिला किहि कामका, सावन का सा दग्ग॥५३॥ बसही साथ कलतरों, धीर न बंधे. कोय। भागा पीछे बाहुरे, ठाठ गुसाई सोय ॥५४॥ सार बहै लोहा झे, दूदे जिरू. जँजीर। जम ऊर्पार साटैकी, चंढिया दास. कवीर॥५५॥ सार बहैः लोहा झै, टूटे जिरह. जैंजीर। ४८१

कवीर समग्र अविनाशीकी फौजमे, मांडी दास कबीर ॥५६॥ लडनेको सवही चला, शत्रहु बाँधि अनेक। साहय आगे आपना, जूमगा कोइ. एक॥५७छ॥ जूमझेगे तब कहेंगे, अब क्या कहे बनाय। भीर पर मन मसकरा, लडे किधी भगिजाव॥५८॥ शूर नाम धरायके, अब क्यो डरपे बीर। मंडि रहिना मैदान मे, सनन्‍्मुख सहना त्तीर॥५९॥ तीर तुबक सो जो लड़े, सो तो शूरा नाहि। शूर सोइ सराहिये, यांदि बांदि धन खाहि॥६०॥ तीर तुबक सों जो लडे, सो तो शूर न होव। माया तजि हरिको भजे, शूर कहावे सोय॥६१॥ शूरय सोइ सराहिये, अंग न पहे . होह। जुझ सब बंद खोलिके, छांडे, तनका मोह॥६२॥ ज्ञान कामना लौ गुनां, तन तरकस मन तीर। भलका वहे हैं सारका, मारे हृदफ कबीर॥६३॥ कठिन कमान कवीरकी, पड़ी रहे मेदान। केता योदा पचि गया, खेचे संत सुजान॥धर॥। बॉकी तेगय कबवीरकी, अनी परे दे टदूक। मारे मीर महावली, ऐसी. मूठि अचूका६५॥ बांका गठ बांका मता, वांकी गढकी पौढि। कछि कबिर नीकसा, यम सिर घाली रीौलि॥ ६६॥ कविर तोरा मान गठ, लूटी पांचों. खान। ज्ञान झुहाड़ी कर्म बन, कादि किया. मैदान॥ ६७॥ कबविरा तोरा मान गढ, मारा पांच. ग़नीम। सीस नैंवाया धनीको, साधी बड़ी. महीम॥ ६८॥ राम झरोखे बैठिके, सवका मुजरा लेब। जैसी जाको चाकरी, तेसी मुनसव देवय॥ ६९॥ चोपड़ माँडी चौहटे, अरध उरध बाजार। कविरा खेले रामसो, कवंहु. न आधे हाराणएण। हारी तो हरि मान है, जो जीतूं तो दाव। पारब्रहयसो खेलतां, जो शिर जाय तो जाव॥७१॥ खेलजु मांडा, . खिलाड़िसी, ऑनद.. बढठा.. अघायब। अब पासा काहूपी, प्रेम बंघधा युग जाव॥७१॥ घटी वही जाने नही, मनमे राखे जीत। गाउडड ले गयन्दसा, देखो. उल्टी रीत॥७३॥ * कूकरा वहु जुरिमुआ, सलसे चदी सियार। रोचत आधे. गदहड़ा, . प्रमोचत्त. आय. विलार|छड॥। मा मारी धी घर करे, गऊसो वच्छा खाय। ब्रादह्यगम मरे मदपिये, तो स्वर्गपुर . जाय॥७प५॥ माता मुये एक फल, पिता मुये फल चार। भाई मूवे हानि है, कहै कबीर विचार॥७६॥ मिद्मिश जज मर ४0७00आ

साखी अथर चर चघर् पर रहे, मै न चौ जाय। बारह मास बिलोधनां,. घूमे. एके भाव ॥७७॥ (१४२) अथ सतीको अंग रह अब तो ऐसी है परी, मन अति / निर्मल कीन्ह। मरनेका भय छांडिके, हाथ सिधोर. लीन्ह॥१॥ ढोल" दमामा बाजिया, शब्द सुना सब कोय। जो सल देखि सती भगे, दो कुल हॉसी होव॥र॥ सती न पीस पीसना, जो पीस सो रॉड। साधू भीख न मांगई, जो मांगे सो भौंड॥३॥ कबिरा सतियाँ कुसयाँ, ज़रे मरकी लार। सतिया सोई जानिये, जे. संभारि संभारि॥।द॥। (१४३) अथ व्यापकको अंग जेता घद तेता मता, बहु बानी बहु भेख। सब् घट व्यापक है रहा, सोई आप अलेख॥१॥ पात्रश् सुभ भरा, जाका वार न पार। खालिक विन खाली नहीं, सुई जेता संचार॥२॥ जाति जाति के पहने, जाति जाति के जाय। साहय जाति सुनाति है, सब घट रहो समाय॥३॥ बालक रूपी साइयाँ, खेले सब घट. भाहि। जो चाहे सो करत है, भय काहू का नाहि॥४॥। भूछा भूठा क्या फिर, शिर पर बंधि गई बेल। ' तेरा साई तुझहि में, ज्यो तिल माही तेल॥५॥ ज्यों तिहत माही तेल है, चकमक माही आगि। तेरा साई तोहिमे, जायि सके तो जागि॥६॥ पावक रूपी राम है, सब घट रहो समाय। घित घकमक लागे नहीं, ताते वबुझ्लि बुझि जाव॥णा। काया कफ. घित. चकपके, झारो चारंबार। तीन बार घूंआ भया, चौये परा अँगार॥८॥ जैसी लकडी ढाककी, ऐसा यह तन. देख। वामें केसू छिपि रहा, यामें पुरुष अलेख॥९॥ (१४४) अथ जीवत मृतकको अंग कबीर काया समुद्र है, अंत न पे कोय। मृतत होयके जो रहे, मानिक छावै. सोय॥१॥ तन समुद्र मन मर्जिवा, एक थार धति लेय। की तो लाल ले नीकसे, कि लालच जिय देय॥२॥ मोती. निपने सीपमे, सीप समुन्दर माहि।

कबीर समग्र कोई मरजीवा काहसी जीवनकी गम नाहि॥३॥ हरि दरिया सुभर भरा, जामे मुकता छाल! मरजीवा ले नीकसे, पहरि क्षमाकी खाल॥श॥ा। मै परजीवा समुद्रका, पैठा सप्त पताल। लाज कामनि छुल मेटिके, गहि ले निकसा छाल॥५॥ मे मरजीवा समुद्रका, डुबकी मारी एक। मूटी छाया ज्ञानकी, तामे वस्तु. अनेक॥६॥ डुवकी मारी सपमुद्रमे, जाई निकसा आकास। गगन मंडलमें घर किया, हीरा पाया दास॥७॥ हरि हीरा क्यो. पाइहै, जिन जीवेकी आस। हरि दरिया सो काठिसी, कोइ मरजीवा दास॥८॥ शून्य शहरमे पाइया, जहां मरजीवा मन्न। कवि घुनि चुनि हैगया, भीतर राम रततन्न॥९॥ ऊंचा तरुवर् गगन फल, विरा पक्षी खाय। इस फलको तो सो भरे, जीवतही मरि जाव॥१०॥ जबव लंगि आस शरीरकी, मृतक छुआ ने जाय। काया माया मन तजे, तब चोडे रहे बजाय॥११॥ राम कहो तो मरि रहो, जीवत बन्दूँ न राम। जब लग जीवत राम है, तब लग काँचा काम॥१२॥ कवीर कसौटी रामकी, खोदा दिके न कोय। राम कसौदी सो टिके, जो जीवत मृतक होय॥१३॥ मनको मृतक देखिके, मति माने. बिसवास। साधू अजहूँ भव कै, जब लग पिजर स्वास॥१४॥ मृततकको घधीज्यो नही, मेरी मन बह. बाज। बाज - बाव विकारकी, कब फिरि जीवे आज॥9 ५॥ मृततकको दावा किसा, अहाँ रे नहि कोय। मुआ मसाना परज्वले, यह कछु अचरज होव॥१६॥ मे जानू. मन मरिगया, मरकर हुआ भूता मूआ पीछै उठि लगे, ऐसा मेरा पूता॥१७। मन मनसा ममिता मुई, अहं गई सब छूटि। गगन मंडलमे घर किया, काल रहा सिर कूटि॥१८॥ मोहि, मरनेका चाव है, मरुँ तो राम डुवारि। मति हरि यूज बातरी, कोई ठास मुआ दरवारि॥१९॥ मोहि मरनेका चाव है, मरुँ तो राम डुवारि। की तनका छुटका करूं की ले उतरो पारिशरश्णा मूआको क्या रोइये, जो अपने घर 'जाव। रोइये बन्दीवानको, जो हाटहे हाट विकाय॥२१॥ मरना भली विदेशकोा, जहां अपना नहि. कोय। जीव जन्तु भोजन कै, सहज महोत्यव. होय॥२१॥ पैडा मांही परि रहो, दुर्बव। मिर्तक होय।

साखी जेहि. पेंडे थम टूदिया, बात न बूली कोब॥२३॥ जिन पावन भू. बहुफिरा, देखा देस बिदेस। तिन पावन थित पकरिया, ऑगन भया विदेस॥२४॥ रोड भया तो क्या भया, पंथी को दुख देह। हरिजन ऐसा. चाहिये, ज्यों राहकी . खेह॥२५॥ खेह भई तो क्या भया, उडि उडि छलागै अंग। हरिजन ऐसा चाहिये, पानी का सा रंगारधो पानी भया तो क्या भया, ताता सीरा सोय। हरिजन ऐसा चाहिये, हरिभजि निर्म्त होय॥२७॥ निर्मम भया तो क्या भवा, निर्मल मांगे छौर। मल निर्मल सूं रहित है, ते साधू कोइ और॥२८॥ पापीकों... दोजख नही, धरमी दोजख जाई। यह परमारथ वूजि, जनि कोइ धरम कमाइ॥२९॥ पांच. पर्चीसूं.. मारिया, पापी कहिये सोय। या परमारथ बूजझिके, पाप करो. सबकोय॥३०॥ आपा मेटे हरि मिले हरि मेटे सब जाय। अकथ कहानी प्रेमकी, कहै न कोइ पतियाय॥३१॥ (१४५) अथ जीवनमुत्तिक्रो अंग बंधा को वंधा मिले, छूटे कौन. उपाय। कर संगति निरबंधकी, पलमें लेइ. छुड़ाय ॥१॥ दुनिया बंधन परिगई, साधू. है निरबंध। राखे खड़ग जो ज्ञान को, काठत फिर जो फंध॥२॥ मुक्ता बाँबे दाहिने, मुक्ता आगे पीठि। भुक्ता धरनि अकास में, मुक्ता सेरी . दीठिश॥। मुक्ता पैडा जब भया, प्रान मुक्ति निरबान। रूप मुक्ति तब जानिये, जब देखे दृष्टि. पिछान॥४॥ (१४६) अथ मांसाहारीको अंग मांस अहारी मानई, प्रत्यक्ष राक्षस जानि। ताकी संगति मति कै, होइ भक्ति में हानि॥१॥ मांस खांये ते ठेड़ सब, मद पीवे सो नीच। कुछकी दुरमते पर हरे, राम कहे सो ऊंच॥२॥ मांस मछलिया सात है, सुशपान से हेता ते भर नरके जाहिगे, माता पिता. समेत॥३॥ मांस मछलिया खात है, सुरा पान सो हेता ते नर नरके जाहिगे, ज्यो मूरीका खेत॥४॥ मांस भखे औ मद पिये, धन वेश्या सो खाय। जूआ' खेलि चोरी करे, अंत समूला जाय॥१॥ ४८५

४८ कवीर समग्र मांस मांस सब एक है, मुरगी हिसनी गाय।' आंखि देखि नर खात है, ते नर नरकहि जाय॥६॥ यह कूकर को भक्ष है, मनुष्य देह क्यों खाय। मुखमे आमिख मेलिके, नरक परंते जाय॥णा। ब्राह्मन राजा बरनका, और पवनी छत्तीस। रोटी ऊपर माछली, सब बरन भये खबीस॥८॥ कलियुज केश व्राह्मना, मांस मछलिया + खाय। पंय लगे सुखमानई, राम कहे जरिः जाय॥९॥ पापी पूजा बैठिके, भखे ,मांस मद. दोह। तिनकी दीक्षा मुक्ति नहि, कोटि नरक फल होई॥१०॥ सकल वबरन एकत्र दै, शक्ति पूजि मिलि खाहि। हरि दासन की भ्रांति करि, केबल जमपुर जाहि॥११॥ विष्ठाका चौका दिया, हांडी सीझे हाड। छूति बचे चासकी तिनहूं का गुरु राड॥१२॥ जीव हने हिसा कै, प्रगटट पाप सिर होय। पाप सबै जो देखिया, पुन्नय न देखा कोय॥१३॥ जीव हने हिसा करें, प्रगटट पाप सिर 'होय। निगम पुनि ऐसे पाप ते, भिस्त गया नहि कोय॥१४॥ हन्या सोही हन्नसी, भावे जानि बिजान | कर गहि. चोटी तानसी, साहबके. दीवान॥१ ५॥ तितभर मछली खायके, कोटि गऊ दे. दान। काशी करबट लै मरे, तो भी नरक निदान॥१६॥ कादि कूटि जबह कै, या पाप संगका भेस। निश्ये राम न जानही, कहे कबीर सँदेस॥१७॥ बकरी पाती खात है, ताकी काठी खाल। जो बकरी को खात है, तिनका कौन हवाल॥१८॥ आठ बाद बकरी गई, साँस मुलां गये खाय। अजहूँ. खाल खटीके,. भीस्त कहांते. जाब॥१९॥ अंडा किन बिसमिल् किया, घुन किया किन हलाल। मछली किन जबह करी, सव खाने का ख्याल॥२०॥ मुल्ला तुझे. करीमका, कब आया. फरमान। घट फोर घर घर किया, साहब का न्रीसान॥३१॥ काजीका बेटा मुआ, उ्रमैं साले पीर। वह साहब सबका पिता, भला न माने बीराश्र॥ पीर सबनको एकसी, मूरख जानें नाहि। अपना गला कटायके, भिश्त बसे क्यो नाहि॥२३॥ मुगी मुल्लोसो कहे, जबह करत है - मभोहि। साहय लेखा मांगसी, संकट परि. तोहि॥र४॥ कबिय काजी स्वाद वस, जीव हते तब दोय। घढ़ि मसीत एको कहै, क्यो दरगह सांचा होव॥२५॥

साखी काजी. पुल्लां भरमिया, घले इुनीके . साथ। दिल सो दीन निवारिया, करद लई तद हाथ॥२६॥ काला मुँह करि करदका, दिल सूं दई निवार। सब सूरति सुबहानकी, अहमक मुला ने माररणा। जोरी करि जबह कै, मुखसों कहे. हलाल। साहय छेखा मांगसी, तब होती कौन हवालारटा। जोर कीयां जुटूम है, मागे ज्याब खुदाव। खालिक दर खूनी खडा, मार मुही मुँह खाब॥२९॥ गला कादटि कलमा भें, कीया कहे. हलाल। साहब लेखा मांगसी, तब होसी कौन हवाल॥३०॥ गला गशुसाकों. काविये, मियां कहरकौ. मार। जो. पांचू. विस्मिल करीं;। तब पावै. दीदार॥३१॥ ये सब घूठी बंदगी, बेरिया पांच. निमाज। सांचहि. मारे झूठ. पढ़ि,, काजी करे. अकाज॥३२॥ दिनको रोजा रात है, रात हनत हैं गाय। यह खून वह वंदगी, कहूँ क्यो खुशी खुदाय॥३३॥ कविता तेई पीर है, जो जाने पर पीर। जो पर पीर न जाति है, सो काफिर बेपीराश्ट। कहता हूं कहि जात हूं, कहा जो मान हमार। जाका गला तुम काटि हो, सो फिर काटे तुम्हार ॥३५॥ के दाया नहीं, मिह तुरके . नाहि। कहे कबीर दोनूं गया, लख चौरासी माहि॥३६॥ मुसलमान मर करदसो, हिंदू. मारे तरवार। कबीर दोनूं मिलि, जैहे यमके. द्वाराश्णा (१४७) अथ अमल अहारीको अंग कल्युय.. काल पठाइया, भांग तमाखू... फीम। ज्ञान ध्यानकी सुधि नही, बसे इन्हीकी सीम॥१॥ गऊ जो विछा भक्षई, विग्र त्माखू.. भंग। शस्तर बांधे दरसनी, ये कल्ियुगकके. रंगार॥। भाँग तमाखू.... उतरा, आफू.. और शराब। कौन करेगा. दंदगी, येतो भये खराब॥३॥ अमल माहि औगुन कहा, कहो मोहि समुझाय। उत्त प्रश्नहिमि सुनो, मनकी . संशय जाय॥ड॥। भांग भले बल चुद्धिको, आफू अहिमुख होय। दोइ अमल औयुन कहा, ज्ञानवंत सुनि. लेयाएद॥। औगुन कहूं शराबका, ज्ञानवंत सुनिलेय। मानुषतो पशुवा करे, द्रव्य गांठिको देव॥ह्ा काम हरक्कत बल घटत, तृष्ण नाहीं हठौर। दिये होयबैठे दीनके, एक. चिह़प. भरि और॥ण)।

प74९ राभश् पानी पिथी के हते, धूंआं सुनिके . जीव! हुक्के में हिसा घनी, क्योकर पवै पीवा८॥। छाजन भोजन हक्क है, और अनाहक हेद्द। आपन दोजख जात है, और दोजख देइ॥श॥। अमल अहारी आतमा, कु न पवै पार। कहे कबीर पुकारिके, त्यागों ताहि. विचार॥१०॥ तन मद मनमद मायामद, विद्यामद उनमद्द। एता मंद जब परहरे तब सुने ज्ञान अनहद॥११॥ (१४८) अथ अपारख को अंग चंदन गया विदेसड़े, सब कोई कहे. पलास। ज्यो ज्यो चूल्हे झोकिया, त्यों त्यो अधिकी बास॥१॥ घंदन रोया रात भरे, मेरा हित्त न कोय। जिसने राख्यो पेटमे, सो फिर वैरी होय॥२॥ घंदन काटा जड खनी, बांधिलिया शिर मार। कालि जो पंछी वसि गया, तिसका यह उपकार॥३॥ पांय पदारथ पेलिया, कॉकर लीन्हां हाथ। जोडी बिछुरी हंस की, चला वुंगाके साथ॥४॥ हंसा तो महाराणा, _ आया थलियां माहि। बगुला करि करे मारिया, मरम जो जाने नाहि॥५॥ हंस बुगांके पावना, कोइक दिनका फेर। बगुला कहा गरविवा, बैठा पंख. विखेर॥६॥ बगुला हंस मनाइलै, नीरां सुकां बहोर | या बैठा तू ऊजला, तासो प्रीति न तोर॥७॥ एक अचंभो देखिया, हीरा हाट विकाय। परखन हारा बाहरी, कौड़ी बदलै. जाबाद। पायो. पर पायो नहीं, हीरा हड्डी मार। कहे कबीर योही गयो, परखे विना गँवार॥९॥ कवि चुनता कन फिर, हीरा पाया बाद! ताको मरम न जानिया, ले खलिः खाई हाट॥१०॥ हीश को कछु ना घटा, घटा जो बेचन हार। जन्म गमायो आपनी, अंधे पशू . गँवार॥११॥ हिरदे हीरा ऊपजै, नाभि कमलके बीच। जो कवहूँ हीरा लखे। तो कदे न आबे मीच॥१२॥ हीश हरिको नाम है, हिदे भीतर देख। वाह भीतर भरि रहा, ऐसा आप अलेख॥११॥ वाद बके दमजात है, सुरति निरतिै. बोल। नित प्रति हीरा शब्दा, गांहक आगे खोल॥१४॥ मान उनमान तोलिये, शब्दा मोल न तोल। मूर्ख लोग न जानही, आपा खोयो. चोल॥9 ५॥|

साखी कविरा गुददी बीखरी, सौदा गया बिकाय। खोदा याँधा गांठी, खरा लिया नहि जाव॥१६॥। राम रतन धन पाइके, +गांठ5 बांधि ना खोला नहीं पटन नहि पारखी, नहि ग्राहक्क नहि. मोल॥१७॥। राम रतन धन मुक्ति में, खान खुली घट माहि। सेतमेतही देतहो, ग्राहक कोई नाहि॥१ ८॥ जहँ गॉहक तहैँ में नहीं, में तहाँ गाहँक नाहि। परिचय बिन फूला फिर, पकरि शब्दकी बाहि॥१९॥ पष्पाोसों परिचय नही, दादा रहि गा दूर। लल्हा. लो. लागी रहे, नत्ना सदा हजूर॥२०॥ कबिर खाँदहि छॉडिके, काँकर घुनि. घुनि खाय। रत गँवाया रेतमें, फि पाछे पछिताय॥२१॥ पेड मोती बीखरा, आधा निकरा आय। ज्योत्ति बिना जगंदीशकी, जयत. उलांडा जाव॥२२॥ कबिर ये जय आंधरा, जैसी अंधी गाय। बछरा था सो मरि गया, ऊभी चाम चटाय॥२३॥ सागरमे मानिक बसे, चीन्हत नाही कोय। था मानिक को सो लखे, जाको गुरुमम होव॥श्था अनजानेका कूकना कूकर कासा शोर। ज्यो अंधियारी रेनमे, साह न चीन्हें चोर॥२५॥ में भान सब ज्ञानिया, कथत बकत दिन जाय। साह घोर चीन्हे नही, कागा हंस लूगाय॥२६॥ हंस कागकी पारिखा, सतगुर द4ई. बताव। हंसा तो मोती चुगे, काय नरक परिजाव॥२७॥ अपने अपने. पिरएपर, सवहिन लीला. मानि। हरिकी चात दुर्लभ अहै, काहू परी न जानि॥र्दा। (१४९) अथ पारखको अंग जब गुनको गाहक मिलै, तब गुन लाख विकाय। जब गुनको गाहक नही, तब कौडी बदले जाय॥१॥ “ हरि हीरा जन जौहरी, ले ले मांडही हाद। जब रे मिलैगा पारखी, त्वद हीत का सादि॥२॥ संशय नहि साधू मिले, मिलि मिलि कौ बविचार। बोला पीछे जानिये, जो जाको . व्यवहार॥३॥ कबिता देखि परखिले, परखिके. मुखां. बुलाय। जैसी अंतर होयगी, मुख. निकसैगी. आय॥४॥ जो जैसा उनमानका, तैसी तासो चोल। पोता को गाहक नहीं, हीतथ गाठि न खोल॥प॥। पहले शब्द पहचानिये, पीछे कीजै मोल। पारख परख न पठतरा, शब्दे मोल न तोल॥६॥ ४८९

 राम रसायन प्रेमरस, अम्रत शब्द अपार। गाहक बिना ने नीकसे, मानिक कनक कुठारआछणा। हरि हीरा सन में हटा, पहन. प्राण सुभट्ट | गाहक बिना न खोलिये, हीरा केरी हष्टांदा हीरा तहोाँ न खोलिये, जहां छोटी हे हाद। कस करि बॉधो गांठी उठकरि घालो बाट॥९॥' एकहि बार परखिये, ना चा बारमवार। बालू तोहू किकिरी, जो छाने सो बार॥१०॥ राम रतन घट को घली, गाहक आग्रे खोढ़॥ जब रे मिलेगा पारखी, तब लेगा महँगे भमोल॥११॥ तन सन्दूकः मन रतन है, चुपकी दे हटताठ। गाहक विन , नहि खोलिये, पूंणी शब्द रसाल॥११॥ हरि हीरा मन जोहरी, परखि निरखि हिय हलेया ले लुहार करि गहनमे, ज्ञान चोट घन देय॥१३॥ हरि मोतियनकी माल है, पोई काचे धागि। यतन करो झटका घनां, दूटेकी कहुँ छागि॥१४॥ पारख कीजे साधुकी, साधुहि.. परखे. कोन। गगन मंडलमे घर करे, अनहद राखे मोन॥१«॥ हीरा परखे जौंहरी, शब्दहि परखे साध) कविता परखे साधुकोी, ताका मता अगा८॥१६॥ जानी जन है जॉरी, करमी सकल. मज़ूर। देह भाका टोकरा, ताके सीस न घर॥१७॥ हम है जगमे जौहरी, घटकी आऑआखी . खोल। तुला सवारि विवेककी, शब्द जुहर जो. तोल॥१ ८ के रती भर सुरति है, के रत्ती भर काम। माया के रत्ती भरी है, के रत्ती भर नाम॥१९॥ सोलह रत्ती सुरति है, छत्तिस र्ती काम। माया सहस रती भरी, आध रती निजनाम ॥२०॥ हही भमारि हीरा लहहा, नो करोडको होीर। जा मार्ग हीरा लहा, सो क्यो ते कबीर॥२१॥ हीरा पाया परखि के, घनमे दीया आनि। घोद सही फूट नही, तब पाई पहचानि॥१२२॥ जो हंसा मोती चुगी, कॉकर क्यो पतिआय। कॉकर माधा ना नवे, मोती मिले तो खाब॥२३॥ मोती है विन सीपका, जगर मगर उजियार। कहे कबीर तब पावई, जब भोजन मिले हमार॥र४॥ वे मोती मति जानियो, जो पोवे पोतके साथ। येतों मोती शब्का, वेधि रहा सब गयाता॥२५॥ इंसा देश सुदेशका, परे कुदेसा आय। जाका चारा मोतिया, पूँधे. क्यो. पतियाब॥२६॥

बग ” माछरी, हंसा कि याहि ॥२७॥ उत्तेर देक्षिन पूरब पश्चिम, चा दिशा प्रमान। उत्तम देश का; अमराुर अस्थान॥२८॥ ॥ भ्रथ क्सों, का के मे कान। गानीके . हदये का प्रान॥२९॥ कीर्तनियां ्ौं विस, भन्यासी सों तीस। ग़हीके हदये बचौ, बैरागीके सीस॥३०॥ जो फेछ होय तो केंछठ, कहे त्तो । दो अंधों का नाचना, . कहे मोह ॥३१॥ (१५०) अथ निन्ादाको अंग छोग विचार ४ जिन पाया जान राम जाने नही, बढ आन हैंी आन॥9॥ एक्ह भत्ते मिह्ै, पापी भल्ले हजार। एक निन्ादकके सीसपर, हजार पापको भार॥२॥ निदकते मि भा, हट करि मांडे रारि। कूकर कोधी बुरा ? युरु दिवादै गारि॥३॥ निन्दक गहन कुरुखेत ”. जपे भारि त्िगार समेत। बधाडू विना, , हरि मन कीजिये, दीजें. आदर मान। प्रेन मन पद कहे, बके आनही आन॥७॥ चगादि॥ सैतगुरु पाइया, निन्दकके परसादि॥८॥ निन्दक मरि गया, अब क्या कहिये जाह। कोई ना मिले, . बीडा लेड उठाइ॥९॥ सोड़।

४९२ कवीर समग्र (१५१) अथ अनिन्दाको अंग काहको नहि. निन्दिये, सिर हीनता होय। फिरि फिरि ताको बदिये, साधु लक्ष है सोय॥१॥ ऐसा जन कोइ एक है, दूजा भेष अनेक। निन्दा बिन्द क्या करे, जो नहि हृदय एक॥२॥ दोष पराया देखिके, चल हसंत हसंत। अपना यादि न आवबई, जाकी आदि न अंत॥३॥ तिनका कबहु न निन्दिये, जो पांव तले है सोय। कवहूँ. उडि आंखो पर, तो पीर घनेरी होय॥श॥। आपन को न सराहिये, पर निन्दिय न कोव। अजहूं. लंवा धौहरा, ना जानी क्या होय॥ए॥ आपन पी न सराहिये, और न कहिये रंक। क्या जानो किहि. रूख तर, कुरा होइ रंकवाए॥ (१५२) अथ साकटनरको अंग साकटका मुख विव है, निकसत वचन. भुवंग। तादी औषधि मोन है, विष नहिं व्यापे अंग॥१॥ साकद कहा न कहि चले, सुना कहा न खाब। जो कोआ मठ हमि भरे, तो मठको कहा नताय॥२॥ साकद सूकर कूकरा, तीनोकी मति एक। कोटि. यतन परामोधिये, तऊ न छांडे _ ठेकाशा। देक न कीजी वाबरे, ठेक माँंहि है हाना टेक छांडि मानिक मिले, सतगुर वचन प्रमान॥४॥ में तोही कब कह्या, तू साकटके घर जाव। बहती नदी जो डूबि मरु, साकद संग न खाव॥५॥ कविर साकदकी सभा, तू मतति बैठे जाव। एक गुवडे कदि बडे, रोज गदहरा गाय॥६॥ साकद संग. न वैठिये, अपनो अँग. लगाव। तत्व. शरीर झरि परे, आप रहे लप्ठायाणा साकट संग न वैठिये, करन. कुबेर समान। ताके संग न चाहिये, पडि है नरक निदान॥८॥ साकट ब्राह्मण मत मिली, वैष्णव. मिलो. चंडाल। अंग भरे भरे भेटिये, मानो मिले दयाठ॥९॥ साकट सनका जेबरा, भीजे सो करराइ। दो अक्ष गुरु बाहरा, वयांधा यमपुर जाइ॥१ण। साकटसे सूकर भला, सूची रखे गाँव | बूडो. साकट वबापरा, बाइस भरमी. नॉव॥११॥ साकट हमरे कोड नही, सबै वेष्णबव झारि। संशयते साकट भया, कहै. कबीर विचारि॥१२॥

- सोकंट सेवरा, चौथा योगी इनको" संग ' क्- ” कौनिये, . होह हान॥9३॥ पाकट खं्ग न जाइये, है मांगा 'प्रीति पेगाती जरा "मिल्लै, - सर | हे अभिमान ॥9 ४॥ | बिगुचई, । । कंचन कटोरा छोड़िके, प्रनहक , लोन्ी हाथ॥9 ५॥ प्रता जगाइये, क्रै । :.. प्रीनों हे गाइये, साकट - सिह सॉप ॥9 ६॥ आँखों देखा घी पा, ना उब. मेला साधू भत्रा, परमे _ पाकट केत्तरी, . आप - कहाबै दास। वो तो , हैगी पैकरी, बह रखवाला पात्त ॥9 ८॥ खत्म फेहावै * वैष्णव, घरमें साकट पक फरां . में दोमता, . भक्ति कहते... होय॥9 ९॥ चाकट नारी छांडिये, गनिका कीजै भारि। दाती है हरि जननकी, झैंछ नहि. आवे गारि॥२०॥ शक अनुपम हम किया, - पाकट्सो निन्द साहे उजागरो, कीयो सौदा सार॥२१॥ ताकट के संत होत ” णो गुर मिल्लै सुजान। परम नाम निज अंत्र दै, पास खान ॥२२॥ शब्दार्थ-साकर चर विषयासक्त ” खेत्रि सुनि पखी शब्द॥9 ॥ पाया दिलमे राखिये, प्. क्यों निरदह । ५. सब जीव , है, कीडी केज | सोइ॥२॥ पैया ' कोन पर कीजिये, कापर निरदह । हम तो भये प्रमाशगी, टक बाजी णोड़ ॥३॥ भावे जाओ बारी, , भावे जाबहु । कहे कबीर - सुनो "भा३ साधो, सबतें दया ॥४॥ दरिया ,_ परज्वात्रा, वाम्े. जल ये . झोछ। बच नाही, ; गोपाल तो, दाज्े ६ "रतन « अमोह ॥५॥ ने जाई बोवरी, वरसन छगां अँगर। ऊठि कबीद , «५ पोह है, । तक संसार ॥६॥ गरध काफी " सब उखी, खुद ने देख कोय। ५ पन्चवा, को धन 28 होय ॥७॥ वाध:)2 कलापी - . से 2 जुखी कः 5 देखा जाय। ः १०४० हीय॥९॥ .-, कक कल है मु

४९४ हम हमको बैरागी अन्तर दैरागी जीव दीख कवीर समग्र रोवे संसाको, हमको रोबे न कोय। तो सो रोह है, जो शब्द सनेही होव॥१०॥ (१५४) अथ कुदयाको अंग ड्ढै तजि, पग पहिरे पैजार। दया ने ऊपनजे, घनी सहैगा . मार॥१॥ है ग्रृ.. तजि, अपना राधा. खाय। हते जोहह करे, बांधा यमपुर जाव॥२॥ जलवे. अन , मोदी आरंभ. पएह्द। जम की चोटमे, कीद पत्ंगा . देह॥३॥ ते डाकी भला, तिथि त्योहारों. हेय। सतावे रामका, निति उठि चीका. देया।४॥ मन पाने, के गोबर कं गार। जनम कहा पाइये, यह तो चाला हार॥५॥ चीठी घुल्हे घन, किस्म बहुत जो जान। कवदीर आचर यह, जीवको होय. अकाज॥६।॥। आचारी सब जग मिला, विदचारी मिला न कोव। कोटि भूँड गोडा खाद चोरो खादा अचारी वारिये, एक. वियारी . होयवाणा (१५५) अथ स्वादीको अंग मुडाया मुक्तिको, सालन कूं. पहछिताव। फूटे. योग बिन, लोगनसो.. शथलाब॥१॥ मीठी. चरफरा,. जिजढ्ञा स्व रस लेब। कुतिया मिलिगई, पहरा किसका. देव॥२॥ मीठा देखिके, रसनां मेले नीर। जब लग मन पाको नहीं, कॉँचयो निपत कपीर॥३॥ जिह्वा अंग अहार नाके रूखा देखि आधी जो कविरा स्वादके कूपमे, जहाँ हलाहल.. काम। अविद्या. ऊपजै, जाइ हृदयते .. राम करी मन भावता, . जिह्वा केश. स्वाद लगि पूरण भै, को कहिहैँ. परसाद॥५॥ गुडमें गड्डि रही, पंखरही लपटाय। पीटे तिर धुने, मीठे बोरी माँव॥६॥ (१५६) अथ अनस्वादीको अंग सूखा खाइके, ठंठा पानी पीद! विरानी. चोपड़ी,. मत ललचावे. जीव॥१॥ अर रूखी भली, सारी सोग . संताप। चाहैया चोपडी, तो बहुरि करैगा. पापाशा सांई मइकझको, रुखी रोटी देय।

साखी चुपफी माँग्त में उसे, मत रूखी छिन लेयाश॥। अन पानी का अहार है, स्वाद संग नहि. जाय। जो घाहे दीदार को, तो चुपही चै. बलाय॥४॥ जिद्वा कर्म कचेटरी, तीनों गृहमें... त्याग कबिताय पहले त्यागिकै, पीछे ले बैरायापा जिदा कर्म कछोटरी, जो तीनों बसि होय। राजा प्रजा औ यमपुरी, गंजि सके नहि. कोय॥६॥ जूवा धोरी मुखबिरी, ब्याज बिरानी नार। जो चाहै दीदा' की, इतना बस्तु निवारण (१५७) अथ सुन्दरीको अंग कबितय सुन्दि यों कहे, सुनियो कनन्‌्त सुजान। बेगि मिली तुम आइके, ना त्त तजिहीं प्रान॥१॥ कबि! जो कोह सुंदरी, जानि कै व्यभिचार। ताहि. न कबहूं आदरे, परम पुरुष भरतार॥२॥ सुंदरी तो साई भजै, ते आन की आस। >ताहि. न कबहूँ परिरे, पलक ने छांडे. पास॥ाइ॥ मन मनसा को मारि के, नाना की के पीस। तब सुख पावे सुंदरी, पदम झलक्के सीस॥४॥ नवसत साजे चुंदी, तन मन रही. संजोई। पियके मन माने नही, तो पदम किया क्या होइ॥पष॥। मे मेरी सब जावगी, तब आवबेगी और। जबही यह निश्चल रहे, तव पावैया ठोर॥६॥ चढी अखारे सुंदरी, माडा पीवसो खेल। दीपक जोया ज्ञानका, काम जे ज्यो तेलाएण॥ कबिरा सेरी सांकरी, माही चूरम चूर। कारनवन्ती सुन्दरी, रहै घका सो दूर॥८॥ (१५८) अथ उपजनको अंग नाम न जाने यांवका, पीछे लछागा जाय। काल्‌िहि जो कादा भांगसी, पहली क्यो न खुराय॥१॥ सीख भई संतार सो, चला जो सांई पास। अविनासी मोहि, है चला, पुरई मेरी आस॥२॥ इचद्रढ्‌ोक.. अचरज भयो, ब्रह्मा परा विचार। कबित घाहा राम मै, केतिकहार अपार॥३॥ सदपानी पातालका, काढि कबीरा पीव | बासी गावक परि मुआ, विष विलंबा जीव॥४॥ कविता हरिका डरपता, ऊन्‌्हा धान न खाब। , हिरदा भीतर हरि बसे, झनते. जडराब॥५॥ ४९,

४९६ कवीर समग्र गोबिद के बहुत गुन, लिखा जो हिरदा मांहि। पानी न पीरऊँ डउरपता, मत वे धोया जांहि॥६॥ अब तो मैं ऐसा भया, निरमोलिक निजनाम। पहले काधथ कथीर था, फिरता ठामहि. ठामाण।॥ भवसागर जल विष भरा, मन नहि बांधे धीर। सबल सनेही हरि मिला, उतरा पार कवीर॥८॥ भला सुहेला ऊतरा, पूरा मेरा भाग। राम नाम बांका गहा, पानी पं नहि लाग॥९॥ सपनामें सांई मिला, सोबत लिया. जयाय। आँखि न मीचौ उरपता, मत सपना हद्ै जाय॥१०॥ कविरा केशवकी दया, संशय मेला खोहि। जो दिन गया हरि भजन विन, सो दिन साले मोहि॥११॥ कविरा जाँचन जाय था, आगे मिला अजाच। आप सरीखा करि लिया, भारी पाया साँच॥११॥ कबिर बेठीकी भाटी ले गई बेठाको ले गई, भेंगार। माताकों लोई लेगई, कबीर पिर्नन हार॥१३॥ (१५९) अथ कस्तूरिया मृगको अंग कस्त्री कुंड. बसे, नावि. कमल. हरिनाम। नर॒ दूँहे पावै नही, गुर विन ठामहि ठाम॥१॥ तेरा सांई तुत्नीमे, ज्यों, पुहुपनमे बास। कस्तूरीके मिस ज्यो फिरि फिरि हूँढे. घास॥र॥ कबिरा बुत. भटक्किया, मन विषै.. विराम। दूंढझत. दूंत। जग फिरा, तिनका ओदे. राम॥३॥ राम नाम तिहँ लोकमे, सकल रहा. भरपूर। जो जाने तो निकट है, अनजाने ते दूराशा। जा कारण जग हूँढ़िया, सो तो घटही माहि। परदा दीया भरमका, ताते सूझे. नाहि॥५॥ समझा तो घरमे रहे, परदा पलक. ढगाव। तेरा साहिब तुझहि मे, अन्त काहू मत जाय॥६॥ (१६०) अथ निगुरानरको अंग संगति भई तो क्या भया, हिरदय भयो कठोर। नौ नेजा पानी चढ़े, तक न भीन कोर॥१॥ कविर हृदय कठोरके, शब्द न लोग सार। सुधि बुधिके हृदय विधे, उपजै ज्ञान बिचार॥२॥ हरिया जाने ' रूखडहा, उस- पानी का नेह। सूखा काठ न जानिहै, कितहूं. बूढ़ा. मेह॥३॥ पाएब्रह्म बूडो मोतिया, झड़ी, बांदि सिखर।

साखी सुर सुगरां घुनिलिया, घूक परी. निगुराशा कबिरा हरिरिस बरसिया, गिरिपर्वत शिखराय | नीर निबानूं.. ठाहरे, नावह. छापर डाय॥५॥ कबिरा मूठक प्रानियां, नख शिख पाखर आहि। बाहनहार कया करे, बान न लागे. ताहि॥द॥। बेकामी कों सिरजि निवाबे, सांदी खोबै भालि गमावै॥ दास कबीर ताहिको भाव, रारि समै सनमुख सरसावै॥ ७॥ पसुवा सौ पानी परयो, रह रु हिया ने खीज। ऊसर बीज न ऊगसी, भाव दूना बीज ॥

घर रा ५4 जो मैं पूत कपूत हो, तोहि पिताको लाज॥१३॥ साई केरा बहुत गुन, औगुन कोई नाहि। जो दिल खोजो आपना, तो सब ओगुन मुझ माहि॥१४॥ मुझ्त में गुन एकौ नहीं, जान राय शिर मोर। ते नाम प्रताप सो, पाऊँ आदर ठोर॥१५॥ मे खोटदा साई खरा, में गाधा में गार। में अपराधी आतमा, साई शरन. उबार॥१ ६॥ में अपराधी जनमका, नख शिख भरो बिकार। तुम दाता दुख भंजना, मेरी करो संभार॥१७॥ सुति करी मम साइयौँ, हम है भवजल माहि। आपेही मर जायेंगे, जो नहि पकरो बाहि॥१८॥ और पतित तो कप है, में हो समुद्र समान। मोहि टेक तोह नाम की, सुनियो कृपा निधान॥१९॥ औसर बीता अल्पतन, पीव रहा परदेश। कलंक उतारों रामजी, भानो भरम अंदेश॥२०॥ साई मेरा सावधान, में ही भया अचेत। मन बच करम न हरि भजा, ताते निष्फल खेत॥२१॥ अबकी जो साई मिले, सब दुख आँखो रोड़। चरणो ऊपर शिर धरो, कहूँ जो कहना होइ॥२२॥ कबिरा सांई तो मिलैगे, पूछेगे कुशलात | आदि अंतकी सब कहूँ, उर अंतरकी बात॥२३॥ अंतरजामी तू, आतमके आधार। जो तुम छॉडो हाथते, तो कौन उत्तर पार॥२४॥ भवसागरय भारी भया, गहरा. अगम अधथाह। तुम दयाल दाया करो, तब पाऊँ कएछु थाहा॥रप॥। सतगुरु. बडे दयाल हैं, संतन के आधार। भवसागर अथाह सी, खेद उतारे पार॥२६॥ (१६२) अथ वेलिको अंग कविता कड़वी. बेलड़ी, कड़वाई फल. जोय। सिद्ध नाम तब पाइये, जब बेलि विछोहा होय॥१॥ सिद्ध भई तो क्या हुआ, चुं दिस फूटी बास। अनहूँ. बीज अंकूर मै, फिर- जामनकी आसार जो मनमे तो ब्रह्म, अनत न कहूँ. समाव। हरिस सीची बेलडी, के न निर्फल जाय॥३॥ सिद्ध सहजहि खिर पही, अग्नि जो हछागी माहि। सिद्धि बोलि दोऊ जरी, अब फिरि ऊगे नाहि॥ड॥ मूल जला वेली जली, हुआ बीजका नास। सूरति समानी शब्द मे, नहि. जामन की आस॥|५॥। अब तो ऐसी है परी, नां तूंबी ना बेहि।

साखी जार आनी हाकरी, ऊठी कोपल. मेलि॥६॥ आगे आगे मो बैर, पीएँ हरिया होवा। बलिहरी ता. वृक्षकी, जड़ काटे फल सोबाणा॥। आंगन बेलि अलख है, फल करता अभिलाख। गगन मण्डलमे शोधिले, सतगुर बोले. साख॥८॥ अनब्याही आकाश है, सुषुमनि सुरति बिलोव। अहनिसि तो तारी लगी, जहां प्रेम दूध झर होय॥९॥ छाया माया रहेत है, सूक्षम है अनसूत। आवागमनसे. रहित' है, सोई बांझका. पूता१०॥ शशा. सिहँके घनुषका, पाया" शब्द विवेक। भय छूटा निर्भभ भया, सब घट देखा एक॥११॥ (१६३) अथ अबिहड़को अंग साथी तो सोई किया, दुख सुख जाहि न कोय। हिलि मिलि हैके खेलई, कबहुँ म बिछोहा होय॥१॥ आदि अंत और मध्य लो, अभय औ सदा अभंग। कविता उस करताका, कदी नं छाहे संग॥२॥ अबिहहड अखंडित पीव है, ताका निरभय दास। तीनों गुनकी पेलिके, चौथे किया. निवास॥३॥ (१६४) अथ बेहदको अंग कांसे ऊपर बीजुरी, परै अचानक आय। तातै निर्भभ ठीकरा, सतगुरु दिया बताय॥१॥ हद छोंड़ि बेहद गया, लिया ठीकरा. हाथ। भया भिखारी दीनका, दर्शन भया सनाथ॥३॥ हद छांडि. बेहद गया, अबरन . किया. मिलान। दास कबीरा मिलि रहा, सो कहिये रहमान॥३॥ बेहद बिचारी हद तजौी, हद तजि मेलो आस! - सबै अठिगन मेटिके, करी. निरन्तर. वास॥४॥ निरन्तर बासी निर्मला, शून स्थूछ सो निनार। पूरत गंगा पश्चिम बहावै, पेखे बहु उजियार ॥५॥ बेहह अगाधी पीव है, ये सब हदके जीव। जे नर राते हहसों, ते कदी न पावै पीव॥६॥ हदमे पीच न पाइये. बेहदमे भरपूर। हद बेहदकी गम छखे, तासी पीबच हजूर॥७॥ हद बेंधा बेहद रमे, पल पल देखे नूर। मनवा तहों ले राखिया, जहां बाजे अनहद तूर॥८॥ मांहि.. हदका. घना लीया. जीव तुराय। रिगसि बिगसि बेहद गया, मरे न आये जाय॥९॥ ४५९६९

५०० कवीर समग्र हद छांडि, बेहद गया, रहा ,निरन्तर होव। बेहदके मैदान मे, रहा कवीरा सोय॥१०॥ हट छाडि बेहद. गया, तासों राम हसजूर। पारब्रह्म परचा भया, अब नियेे तब दूर॥११॥ इृदमे बैठा कथन है, बेहदकी गम. नाहि। बेहदकी गम होयगी, तब कछु. कथना काहि॥११॥ कविरा हदके जीव सो, हित करे मुखे ने बोहल। जो राये बेहद सों, तिनसो अन्तर खोल ॥१३॥ हदिया सेतो हद रहो, बेहदिया बेहद। जो जैसा तहा रोगिया, तहा.. तैसी औषह॥१४॥ हदमें रहें सो मानवी, बेहद रहे सो साथु। हद बेहद दोनो तजे, तिनका मता अगाध॥१५॥ हद बेहद दोनी तजी, अवरन किया. मिलान। कहे कबीर ता दास पर, वारों सकल जहान॥१६॥ अगह गह अकह कहे, अनभेदा भेद. लहाई। अनभे बाणी अगमकी, लेगई संग -लगाइ॥१७॥ जहां शोक व्यापे नही, चल हंसा उस देस। कहे कबीर गुरयम गहों, छांडि सकल भ्रम भेस॥१ दा अंग अठोत्तरसी कहा, परम पुरुष उपदेश। कहे कबीर अब हरि मिले, मानों साख संदेश॥१९॥ जन कवीर बंदन करे, किस विधि कीजे सेव। बार पारी गम नहीं, नमो नमो निज देवाश०ण॥)

परिशिष्ट साखी (अ) कबीर सब जय यों भ्रम्या फिरे ज्यूं रामे को रोज। सतगुरु थें सोधी भई, तब पाया हरि का षोज ॥१॥ शब्दार्थ-रामे > जगल। रोज (रोझ) > जानवर। थे & से। सोधी - सुधि। अर्व-संत कबीर कहते है कि मै जगढी पशु सा ससार के विषयों मे भटक रहा था। प्ततगुरु ने सुधी दियी तब ईश्वर की खोज पूरी हुई। | कबीर सतगुर ना मिल्या, सुणी अधूरी सीष। मुँड मुँडाबै मुकति कूँ, चालि न सकई बीख॥२॥ शब्दार्थ-सुणी < सुनी। सीष > शिक्षा । कूँ - को। बीख + विष। विषय । अर्थ-अच्छे गुरु के अभाव मे अचकचरी शिक्षा सुनी। फलत मुक्ति के लिये सिर तो मुड़ा लिया। कितु ज्ञान के अभाव मे विषयो का नाश सभव नही। कबीर हीरा बणजिया हिरंदे उकठी खालि। पारब्रह्म क्रिया करी सतगुर भये सुजाण ॥३॥ शब्दार्थ-उकठी 5 १ उत्कृष्ट/ २ सूखना। अलग होना। अर्थ-सत कबीर ने हीरे का। भक्ति साधना का व्यापार किया। हृदय मे ही हीरे का उत्कृष्ट खान है। सुज्ञानी को सतगुरु के कारण पारब्रह्म की कृपा प्राप्त हुई। उकठी का सूखना अर्थ हे तो अर्थ होगा हृदय मे वासनाओ का खान सूख कर समाप्त हो गया। मो चित तिल न वीसरी, तुम्ह हरि दूरि थयोह। इहि अंगि औलू भाई जिसी, जदि तदि तुम्ह म्यलियाँह ॥४॥ शब्दार्थ-मो < मेरा। तिलाँ 5 थोड़ा भी। थैंयाह 5 स्थित। इहि 5 यह। औलू > जढना। भाइ > भाव। म्यल्यॉह 5 मिलने के लिये। जिसी > जिसके। जदि तदि > जैसे तैसे। अर्थ-हे हरि, यद्यपि तुम दूर स्थित हो। कितु मेरा मन थोड़ा सा एक क्षण के लिये भी आपको नही भूछता है। हर समय आपके ध्यान में है। मेरे ये अग जिसके भाव मे जछते रहते है। जैसे तैसे आप से मुछकात (मिलन) हो जाय। बिरह जलाई मै जली, मो विरहिन के दूष। छौंह न बैसों डरपती, मतिं जलि ऊठे रूष ॥५॥ शब्दार्थ- रूष > वृक्ष । अर्थ-हे प्रभु, मै तुम्हारे विरह मे जल रहा हूँ। मै दुखी विरहिन हूँ। कितु इस दुख मे किसी पेड़ (व्यक्ति) का सहारा नही लेती। कही हमारी आग से वह भी न जल उठे। व्यक्ति के पक्ष में यह कि वह भी हमारे दुख से दुखी हो जायगा। सहानुभूति जन्य दुख हो जायगा। मुझ जैसा वियोगी हो जायगा | बिरहा कहै कबीर कौ तू जनि छोड़े मोहि। परहइह दे तेज मे, तहाँ ले रखो तोहि ॥६॥ अर्थ-परमात्मा की प्राप्ति का विरह कबीर से कहता है। तुम कभी मुझे मत छोड़ना। मै तुम्हे पारग्रह्म के तेज से मिलाऊँगा। भाव यह हैं कि विरह का तेज और परमात्म मिलन का तेज एक है। तेज से तेज की प्राप्ति होती है। आता एक ज राम की दूजी आस निवारि। आसा फिरि फिरि मारसी, ज्यूँ चौपड़ि का सारि॥७॥ (४०३)

५०२ कवीर समग्र अर्थ-केवढ राम की आशा करो। शाम के अतिरिक्त की आशा निराश करने वाली है। कस ५ आशा छोड़ दो। आशा से वार-वार जन्म मृत्यु होती है। जैसे शतरज के पात्र जीतेमरते ह। आसा एक ज राम की जुग जुग पुरवे आस। जै पाउल क्यो रे करे, बसहि जु चंदन पास ॥८॥ शब्दार्थ-जै 5 जय | आशापूर्ण पाडल 5 पाटल। एक वृक्ष विशेष । अर्थ-केवढ राम की आशा करनी चाहिए। इससे युग-युग की आशा पूर्ण होती है। अर्थात् जन्म जमातर की सभी आशाएँ पूर्ण होती है। पाटल वृक्ष यद्यपि चदन के पास रहे। फिर भी उससे चदन जैसी सुगध नही आ सकती है। ऊजड खेड़े ठीकरी, घड़ि घड़ि गए कुँभार। रावण सरीखे घलि गए, लंका के सिकदार ॥९॥ शब्दार्थ-ऊजड

परिशिष्ट साखी (अ) ५०३ ' अर्थ-सत कबीर कहते है कि यह शरीर हाड़ का है। मिट्टी से बॉँधा गया है। अथवा मिट्टी मे मिल जाने वाले, नाशवान् तत्त्वो से निर्मित है। इसीलिये नाश के बाद शरीर मदिर के खडहर का भी सबूत या नाम नही पाया जाता है। कबीर इहे चितावणी जिन संसारी जाइ। जे पहिले सुख भोगिया, तिनका गुड ले खाइ॥१६॥ < अर्थ-सत कबीर ससार मे जाने वालो, ससार के विषयो मे आसक्तो को चिताते है। जिसने पहले सुख भोगा। सुख के चक्कर मे रहा। उसे गुड़ रूप लोभ खा जाता है। वे परमात्मा को नही प्राप्त कर पाते है। पीपल रूनी फूल बिन, फल बिन रूनी गाइ। एका एकाँ माणसों ठापा दीन्हा आइ ॥१७॥ शब्दार्थ-पीपल एक वृक्ष विशेष। यह वृक्ष ससार मे स्थायीत्व का प्रतीक है। रूनी ८ रोयी। माणसोँ ८ मनुष्य। टापा घोड़े का खुर। टापा देना मुहावरे का अर्थ है व्यर्थ आवागमन | अर्थ-जो पीपल वृक्ष के समान मजबूत थे। विशाल थे। उन्हे अफसोस है कि उन्हे ससार आने का कोई फल नही मिला। वृक्ष की विशालता के मुकाबले पीपछ मे फल नहीं लगता है। गायो में फल नहीं लगता। वह भी रोती है। गाय अर्थात् सज्जन। सभी मनुष्य एक-एक कर आये और धरती पर पैर पटकते व्यर्थ चले गए। राम नाम लाण्यां नहीं, मेल्या मनहि बिसारि। ते नर हाली बादरी, सदा पराए बारि ॥१ ८॥ अर्थ-राम नाम को नही जाना। भगवान् को मन से भूल गए। ऐसे व्यक्ति-शीघ्र (हाढी) बरसने वाले बादल से जन्म लेते है। मरते है। ये सदा पराए को पानी देते है। इनका अपना कुछ नही होता। राम नाम जाण्यां नही, त मुखि आनहि आन। के मूसा के कातरा, खाता गया जनम ॥१ ९॥ अर्थ-जिन्होने राम नाम की साधना न कर मुख मे अन्य-अन्य नाम रखे। वे चूहे के समान कुतर-कुतर कर खाकर (पेट पालने में) जन्म समाप्त कर देते है। राम नाम जाण्यो नही, हूबा बहुत अकाज। बूड़ा लौरे बापुरा, बड़ा बूटा की लाज ॥२०॥ शब्दार्थ-हूवा + हुआ। नुकसान। बूडा > डूबा। नष्ट हुआ। लौरे 5 लकुट, छाठी सा। बूटा € छोटा वृक्ष | अर्थ-राम नाम का ज्ञान न प्राप्त करने से बड़ा नुकसान हुआ। बेचारा छाठी के समान नष्ट हो गया। उससे किसी का लाभ नही हुआ। छोटे वृक्षो को फलते-फूलते देख छज्जा भी आई। अलंकार-अन्योक्ति | पानी ज्यौर तालाब का, दह दिसी गया बिलाइ। यह सब यौ ही जायगा, एके तो ठाहर लाइ॥२१॥ शब्दार्थ-ज्यौर + इकट्ठा । दह 5 दश। ठाहर > ठहराना। रोकना। यह तन काचा छुंभ है, माहि किया ढिय बास। कबीर नैण निहारियाँ, तो नहीं जीवण की आस ॥२२॥ दुनियां के मैं कुछ नही, मेरे दुनी अकथ। साहिब दरि देखों खड़ा, सब दुनिया दोजग जंत ॥२ ३॥

- शब्दार्थ-मेरे दुनी अकथ मेरी दुनिया (आध्यात्तिक दुनिया) अकथनी है। दरि > द्वार पर दोजग 5 दोजख।| नरक! जत - जाते है। कबीर सापत की सभा तू मत बैठे जाइ। एके बड़े क्यूँ बड़े, रीज्ञ गदहड़ा गाइ ॥२४॥ शब्दार्थ-वाड़ै > वाड़ा। घेरा। रीझ 5 रीछ। गदहड़ा 5 गधा । थली चर्तें प्रिय ठै, बीघ्या एक ज सीण। हम तो पंथी पंथ लिरि, हर्‌या चरैगा कोण ॥२५॥ शब्दार्थ-थल्ी >- धरती | प्रिघ < मृग। वासना। तृष्णा। वीघ्या > वेध किया। ज 5 जो। सौण 5 9 शून्य। २ श्वान। ३ मन। पथी 5 साधक। परथतिरि 5 पथ के सिरे पर। हरूया ८ हरा | का मु शून्य था से अलः सुखकर श्र बुनता। अ सबको : कर भार ञ (कठित होता है शः क्रोधादि ञ्ृ (पृत्यु) । शी परमात्म

परिशिष्ट साखी (अ) ५०५ मन को मन मिलता नहीं, तो होता तन का भैंग। अब डै रहु काली कॉँवली, ज्यों दूजा चढ़े न रंग ॥३२॥ अर्थ-मन से मन की शुद्धि नही हो रही है। मन शुद्ध होगा तो शरीर सुख की इच्छा नष्ट हो जाती। ऐ साधक, साधना द्वारा शरीर एक रग काला कम्बल जैसा बना लो। जिससे विषय वासनाओ का रग दुवारे न चढ़े। जा तन माँहे मन धरे, मन धरि निर्मल होह। साहिब सो सनमुख रहै, तो फिरि बालक होइ॥३३॥ अर्थ-तन मे रहने वाले मन को विषय कालिमा छुड़ा कर साफ कर लो। तब परमात्मा (साहिब) का साक्षात्कार होने पर बालक जैसी निर्मलता बनी रहेगी। मूवा मन हम जीवत देख्या जैसे मड़िहट भूत। मूवों पीछे उठि उठि लागै, ऐसा मेरा पूत ॥३४॥ मूवे कौधी जी नही, मन का किया विनास। साधू तब लग डर करे, जब लग पंजर सास॥३५॥ भाया काल की खाँणि है, घरि निगुणी विपरीति। जहाँ जाइ तहाँ सुख नही, यह माया की रीति॥३ ६॥ माया मन की मोहनी, सुर नर रहे लुभाइ। इहि माया जग खाइया, माया को कोई न खाइ ॥ ३७॥ ब्रॉह्मण गुरु जगत का, भर्म कर्म का पाइ। उलझ्ि पुलक्लि करे मरि गया, चारयों बेदा मौहि ॥३ ८॥ कलि का ब्राह्मण मसकरा, ताहि न दीजे दान। सी कुटंउ नरकहि चलै, साथ चल्या जजमान ॥३ ९॥ शब्दार्थ-मसकरा 5 मसखरा। स्यौ साथ या सौ। कुटउ - कूटुग्ब। ब्राह्मण बूडा बापुड़ा, जेनेऊ के जोरि। लख चौरासी माँ गेलई, पारब्रह्म सों तोड़ि ॥४०॥ कबीर साषत की सभा, तू जिनि बैसे जाइ। एक दिवड़े क्यूँ बड़े, रीज्ष गदेहड़ा गाइ ॥४१॥ शब्दार्थ-दिबाड़े 5 देने वाला। रीझ 5 रीछ। गदेहड़ा 5 गधा। गाइ 5 गाय। साषत १ शाक्त। २ विषयासक्त | साषत ते सूकर भला, सूचा राखे गाँव। बूडा साषत बाएुड़ा, वैसी सभरणी गाँव ॥४२॥ शब्दार्थ-सूचा > शुद्ध | बापुड़ा 5 वेचारा| सभरणी + आभरण युक्त | सज्जित | साषत ब्राह्मण जिनि मिलै, बैसनो मिले चांडाल। अंकमाल दे भेटिए, मानूँ मिले गोपाल ॥ ४३॥ शब्दार्थ- अंकमाल - अँकवार। भेटिए 5 मिलिये। साषत - विषयासक्त | कबीर कहै पीर कूँ, तूँ समझावै सब कोड । संसा पड़गाआपको, तो और कहै का होइ ॥४४॥ सुणत सुणावत दिन गए, उलझि न सुलझया मान। कहै कबीर चेत्यौ नही, अजहूँ पहली दिन । ४५॥ जहाँ जलाई सुंदरी, तहाँ तूँ जिनि जाइ कबीर।

रच भसमी दै करि जातिसी, सोना सवा सरीर॥४६॥ नारी नाहीं नाहरी, करे नैन की चोट । कोई एक हरिजन ऊबरे, पारब्रह्म की ओट॥४७॥ राम कहतां जे खिजें, कोढी द्वै गलि जॉहि। सूकर होइ करि औतरे, नाक बूड़ते खाँहि ॥४८॥ कामी ये कुतीी भली, खोले एक जू काछ। राम नाम जाणौ नहीं, बॉबी जेही बाच ॥४९॥ हि शब्दार्थ-काछ - जननेद्रिय के आस-पास का भाग। बॉबी>बिल। सॉप का बिछ। बाच बचना। काम काम सबको कहें, कॉम न चीन्हे कोड । जेती मन मे कामना, काम कहीजे सोइ॥५०॥| पाथर ही का देहुरा, पाथर ही का देव। पूजणहारा अंधला, लागा खोदी सेव ॥ ५१॥ शब्दार्थ-देहुरा + देहली | मदिर पाथर - पत्थर। सेब > सेवा | कबीर गुड कौ गमि नही, पांहण दिया बनाई। सिष सोधी बिन सेविया, पारि न पहुँच्या जाइ॥५२॥ शब्दार्थ-गुड + गुरु। गमि 5 समझदारी | सोधी 5 १ सदगुरु। २ शुद्धि। ज्ञान। सुधि। कबीर माला काठ की, मेलही मुगधि झुलाइ। सुमिरण की सोधी नहीं, जोंणी डीगरि घाली जाइ ॥५३॥ शब्दार्थ-मेल्ही > पहना। मुगधि 5 अज्ञानी। सोधी 5 सुधि। डीगरि + १ डीग हॉकने वाला। २ वह काठ जो नटखट चौपायो के गले मे बॉधा जाता है। घाली 5 धारण करना। अर्थ-कबीर दास कहते है। अज्ञानी के गले में पड़ी काठ की माला ऐसी ही है जैसे नटखट जानवरो के गले मे काठ लटका दिया गया हो। उन्हे परमात्मा का नाम स्मरण की सुधि नहीं है। माला फेरत जुग भया, पाय न मन का फेर। कर का मनका छॉडि दे, मन का मनका फेर॥५४॥ अर्थ-माला फेरते युग बीत गया। कितु मन की चचलता नही समाप्त हुई। इसलिये हाथ की माला छोड़ कर मन की माला फेरो। मन शुद्ध करो। अतसंधिना करो। माला पहर्या कुछ नही, बाह्मण भगत न जाण। च्याह सराधाँ कारठों ऊँधूँ वैसे ताणि ॥५५॥ शब्दार्थ-भगत - भक्ति। कारयाँ > कौआ। ऊँभू + १ उभय।_२. उत्यित होकर | अर्थ-माला पहनने से क्या ? ब्राह्मण भक्ति नही जानता है। वह व्याह और श्राद्ध दोनो मे कौए सा उचक कर बैठता है। कबीर कोहने क्या बणी, अरामिलता सो संग । दीपक के भाव नही, जलि जलि परे पतंग ॥५६॥ पंच बलधिया फिरि कड़ी, ऊझड़, उजड़ि जाइ। बलिहारी ता दास की, बबीक अण्णों बैठाइ॥५७]॥। शब्दार्थ-पच वल घिया * पॉच इद्रियाँ। ऊझड़ उजड़ि - नष्ट होना। बबीक *-विवेक । ठाइ 5 अपने स्थान पर। सार संग्रह सूप ज्यूँ, त्याग फटकि असार।

परिशिष्ट साखी (अ) ५०७छ कबीर डरि डरि नाँव ले, पसरे नहीं बिकार ॥५८॥ कबीर सब घंटि आत्मा सिरजी सिरजनहार। राम कहे सो राम में, रमिता ब्रह्म बिचारि ॥ ५९॥ कबीर भूला दंग में, लोग कहै यह भूल। के रमइयों बाट बताइसी, के भूलत भूलें भूल ॥६०॥ शब्दार्य-दंग +- चकाचीध। सासारिक आडंबर। रमइयौ -- राम। जीवन को समझै नहीं, मुबा न कहै सेंदेस। जाको तन मन सौ परचा नहीं, ताकी कौन धरम उपदेस ॥६१॥ करीम कबीर जु विह लिख्या, नरसिर भाग अभाग। जेहूँ च्यंता चितवे, तऊ स आगै आग ॥ ६२॥ हसती चढ़िया ज्ञान के सहज ठुलीचा डारि। स्वान रूप संसार है, पड़या भुसी झषि मारि॥६३॥ ; शब्दार्थ-सहज + सहज साधना। सहज योग। दुलीचा < गलीचा। डारि 5 बिछाकर स्वान ८ काम, क्रोधादि। भुसी 5 भूँकना। झषि मारि > व्यर्थ मे। अर्थ-ज्ञान की उपलब्धि हाथी पर बैठने जैसी है। साधक को चाहिए कि ज्ञान रूप हाथी पर सहज साधना का गलीचा बिछा कर ध्यानस्थ हो। काम, क्रोधादि प्रवृत्तियाँ कुत्ते सी व्यर्थ भूँकती रहे। कुछ भी असर होने वाला नही है। कबीर मरीं पै मांगी नहीं, अपणो तन के काज। परमारथ के कारण, मोहि मॉगत न आबै लाज ॥६४॥ भगत भरोसे एक के, निधरक नीची दीठि। तिनकू करम न लागसी, राम ठकोरी पीठि ॥६५॥ चत्र भुजा के ध्यान मे, ब्रिजवासी सब संत। कबीर मगन ता रूप मैं, जाके भुजा अनंत ॥६ ६॥ शब्दार्थ-चत्र भुजा # चार हाथ। ब्रिजबासी > ब्रजवासी | मोती भागों बीघतों, मन मे बस्या कबोल , बहुत सयानां पचि गया, पड़ि गइड्ट गाठि गठोल ॥६७॥ शब्दार्थ-मोती < मन। भागों 5 भग्न। कबोर 5 कठोर वचन। सयानों - शास्त्र ज्ञानी। पचि गए > नष्ट हो गए। गाठि 5 गॉठ | गढोल - गढ़वासी | मोती पीवत बीगस्या, सानो पायर आह राइ। साजन मेरी नीकल्या, जॉमि बठाऊँ जाह ॥६ ८॥ शब्दार्थ-बीगस्या - विकृत हुआ। साजन 5 परमात्त प्रेमी। बटाऊँ > साधना हीन। अर्थ-सुख की खोज करने वाले नष्ट हो गए। पत्थर जैसे कठोर व्यक्तित्व मे तेजी (सान) आ गयी है। परमात्म प्रेमी निकल गए। साधना रहित व्यक्ति यम के फदे मे पड़ गए। बाजण देह बजंतणी, कुल जंतड़ी न बेड़ि। तुझ्ते पराई कया पड़ी, तूँ आपनी निवेडि ॥६९॥ सहज तराजू आणि करि, सन रस देख्या तोलि। सब रस माँहे जीभ रस, जे कोइ जाँणे बोलि ॥ ७०॥ अर्थ-सहज समाधि के तराजू पर सोने जैसे वचनो को तौल कर देखा। सभी रसो मे जीभ का रस महत्त्वपूर्ण है। यदि कोई भी भाँति बोलना जानता हो। "जिन पाँऊँ सें कतरी, हॉड़त देस बदेस।

५०८ कवीर समग्र तिन पाऊँ तिथि पाकड़ी, आगण भया बदेस ॥७१॥ शब्दार्थ-कतरी > कोल्हू का पाट जिस पर वैठ कर आदमी बैल को हॉकता है। हॉड़त घूमना | बदेस 5 विदेश | तिथि + स्थिति। ठहरना | कबीर नवे स आपको, पर को नवै न कोड। घालि तराजू तोलिये, नवे स भारी होइ ॥७२॥ बुत बुरा सब को कहे, बुरा न दीसे कोड । जे दिल खोजीं आपणी, मुझ सा बुरा न कोइ ॥७३॥ रोड़ा भया तो क्या भया, पंथी को दुख देड़। हरिजन ऐसा चाहिए, जिसी जिमी की खेह ॥७४॥ शब्दार्थ-जिसी 5 जैसी । जिमी 5 जमीन | खेह > धूल। खेह भई तो क्या भया, उड़ि उड़ि लागे अंग। हरिजन ऐसा चाहिए, पाणी जैसा अंग ॥७५॥ पाणी भया तो कया भया, ताता सीता होइ। हरिजन ऐसा चाहिए, जैसा हरिही होइ ॥७६॥ हरि भया तो क्या भया, जैसी सब कछु होइ। हरिजन ऐसा चाहिए, हरि भजि निरमल होइ ॥७७॥ नवणि नयौ तो का भयौ, चित्त न सूधी ज्यौह। पराधिया दूणां नवै मिप्राटक ताह ॥७८॥ अर्थ-चित्त की शुद्ध या मन का सीधापन ही नग्रता है। शिकारी (पारधिया) दुगना नवता है। तब उसे माया मृग (मिप्राटक) के शिकार मे सफलता मिलती है। ऐसा कोई ना मिले, वूझै सेन सुजान। ढोल बजंता ना सुणों, सुरवि विहूँणा कांन ॥७९॥ अर्थ-ईशारे (सैन) से समझने वाले वुद्धिमान नहीं मिलते। बहुत चिल्छाने वाले (ढोल बजता) नही सुन पाते है। उनके कान मे सुनने की शक्ति (सुर अपि) नहीं होती है। जाणी ईघूँ कया नही, बूझि न कीया गौन। भूल्यी भूल्या मिल्या, पंथ बतावै कौन ॥८०॥ कवीर जानीदा बूज्िया, मारग दिया बताइ। चलता चलता तहाँ गया, जहाँ निरंजन राइ ॥८१॥ ढोल दमामा बाजिया, सबद सुणां सब कोड । जैसल दंखि सती भजे, तो दुहु कुल हासी होइ ॥८२॥ शब्दार्थ-जैसल - जश्न। उत्सव। दुहु कुल 5 छोक-परलोक | हासी - हँसी। जुरा कूती जोवन ससा, काल अहेड़ी बार। पलक विना मै पाकड़ै, गरव्यो कहा गँवार ॥८३॥ शब्दार्थ-जुरा 5 जरा। बुढापा। कूती > कुत्ती। ससा 5 खरगोश। बार ₹ मार। हमढा। पलक विना 5 पलक झपने के पहले। मालन आवत देखि करि, कलियाँ करी पुकार। फूले फूले चुणि लिये, काल्हि हमारी बार ॥८४॥ शब्दार्थ-मालन - काल। मृत्यु | कलियाँ > बालक । फूले फूले > वृद्ध। वार 5 बारि। बाही आवत देखि करि, तरवर डोलन लाग। हँम कटे की कुछ नही, पँखेरू घर भाग ॥८५॥)

। परिशिष्ट साखी (अ) हि ५०९ ॥। पेंखेरू |. श्ब्दार्थ-बाढ़ी 5 बढ़ई। तरवर 5 मानव देह।| डोलन छाग 5 भयभीत होना। पैँखेरू पक्षी। आत्मा। हस। कर फागुण आबत देखिं करि, बन रुना मन माँहि। ऊँची डाली पात है, दिन दिन पीले थाँहि ॥८६॥ शब्दार्थ-फागुण - वृद्धावस्था। बन 5 शरीर। रुना 5 रोना। ऊँची डाढी पात - बड़े लोग। पीले -+ पकना। मृत्यु के निकट पहुँचना। थॉहि - होना | पात पडता यों कहै, सुनि तरबर बनराइ। अब के बिछुड़े ना मिले, कहि दूरि पडैगे जाइ॥८७॥ शब्दार्थ-पात पडता - मृत्यु की ओर जाता व्यक्ति। बनराइ 5 ससार सुख | मेरा बीर लुहारिया, तू जिनि जाल मोहि। इक दिन ऐसा होड्गा, हूँ जालीगी तोहि ॥८ ८॥ शब्दार्थ-मेरा से मतलब यहाँ लकड़ी या कोयले से है | लुहारिया 5 यम । कबीर पंच पसेरूवा, राखे पोष लगाइ। एक जु आया पारधी, ले गयी सबै उड़ाइ ॥८९॥ शब्दार्थ-पच पखेरूवा 5 पच प्राण। पॉच ज्ञानेद्रियोँ। पाँच विषय। पारधी < शिकारी। काएँ चिणावे मालिया, चुनें माटी लाइ। भीच सुणोगी पायणी, उधोरा लैली जाइ ॥ ९०॥ शब्दार्थ-काएँ 5 क्यो। चिणावै >- निर्माण। उधोरा 5 उघड़ा। उजड़ा। ढैढी लालायित। काए चिणांवे मालिया, लॉबी भीति उसारि। घर तो सादी तीनि हाथ, घरणी तो पौणा चारि॥ ९१॥ ऊँचा महल चिणाइयां, सोवन कलसु चढाइ। ते मंदिर खाली पडया, रहे मसाणो जाइ॥ ९२॥ शब्दार्थ-सोवन - सुवर्ण | इहर अभागी मॉछली, छापरि मॉणी आलि। डाबरड़ा छूटे नहीं, सके त समेंद सभालि ॥९ ३॥ अर्थ-अभागे व्यक्ति ने मछली के समान क्षिप्र (छापरिं) पानी को ओट (आहलि) बनाया। संसार की बहती तेज वासना नदी का भरोसा किया। कितु यह डाबर, गड़ही प्रमाणित हुआ। बिना परमात्मा समुद्र को सभाले कल्याण नही है। मेंठी हुआ न छूटिए, झीवर मेरा काल। जिहि जिहिं डाबर हूँ फिरी, तिहि तिहि माँडे जाल ॥९४॥ शब्दार्थ-झीवर + धीवर। मछुआ। डाबर 5 तडैया | माँडै - फेकता है। हूँ - मै। पॉँणी माँहि ला मोछली, सका तो पाकड़ि तीरि। कड़ी कदू की काल की, आइ पहुँता कीर॥९ ५॥ शब्दार्थ-ला 5 की | तीरि 5 भगवत् शरण। कदू ८ कर्दम। कीचड़। कीर 5 १ सुग्गा। यहाँ बगुला अर्थ भी है। २ काला। । मंछ बिकंता देखिया, झीवर के दरबारि। | ऊँखडियां रत बालियाँ, तुम क्यूँ बंधे जालि ॥९६॥ | अर्थ-धीवर, मछुआ। माया. के यहॉ मन मछली को बिकता, फेंसा देख कर गुरुदेव ने । पूछा-ऐ मानव मन, तुम सासारिक अनुराग (रतबालियों) या सासारिक रुतबे मे थे। फिर जा । रे

५१० कबीर समग्र मे क्यो फंसे ? पाँणी माँ है घर किया, चेजा किया पत्तालि। पासा पड़या करम का, यूँ हम बीघे जालि ॥९७॥ अर्व-साधक कहता है-मैने भगवत्नेम जल मे घर बनाया। पाताढ कुडलिनी नाड़ी मे उसकी रचना (चेजा) की, कर्म का खेल (पासा) डाला। कर्म लीठा की। इस प्रकार हम कर्म जाल से मुक्त (बीघे) हुए। सूकण लागा केवड़ा, तूटीं अरहर माल। पॉणी की कल जाणताों, गया ज सीचणहार ॥९ ८॥ 2 शब्दार्य-केवड़ा 5 वासनात्मक जीवन। तूटी & टूट गयी। अरहर माला « विषयों की माला। कह 5 नढ। सीचणहार 5 वासनात्मक मन। कबीर हरणी दूबली, इस हरियालै तालि। लख अहेड़ी एक जीव, कित एक ठाली भालि ॥९९॥ शब्दार्थ-हरणी + जीव। हरियालै तालि - वासना का ससार। छख ८ छाख। अहेड़ी « कामनाएँ। भाढि > भाला। बाण का नोक। कित्त 5 किस प्रकार। जिसहि न रहणां इत जगि, सो क्यूँ लौडें मीत। जैसे पर घर पाहुणां, रहें उठाए चीत ॥१००॥ शब्दार्थ-लीडे + इकट्ठा करना। कबीर गाफिल क्या फिरै, सोवे कहा नचीत॥ . _ एवड माहि ते ले चल्या, भज्या पकड़ि परीस॥१०१॥ शब्दार्थ-गाफिल + असावधान। नचीत - निश्चित | साई सू मिसि मछीला के, जा सुमिरि लाहूत | कबहीं उञ्लंके कटिसी, हुँण ज्यी बगमंकाहु ॥१ ०२॥ बेटा जायाती का भया, कहा बजावे थाल | आधवण जाणा डै रहा, ज्यौ कीड़ी का नाल ॥१०३॥ शब्दार्थ-कीड़ी का नाढ > जैसे नली मे कीड़ा आता जाता है। चंदन रूस बदेस गयी, जण जण कहै पलास। ज्यी ज्यी चूल्हे झोकिए, त्यूँ त्यैँ अधिक की बास॥१ ०४॥ हंसड़ी तौ महारांण कौ, उड़ि पड़यो थलि याँह। बगुलौ करि करि मारियो, सम्न न जोंणै त्याँह ॥१०५॥ अर्थ-हस महाराज उड़ कर विषयासक्त धरती पर आ गए। विषय प्रतिनिधि उसे बगुला समझ कर मारते है। उस सत्य को नही जानते। हंस बगों के पहुँगां, कहीं दसा के फेरि। बगुला कौई गरबियाँ, बैठा पाँख पषेरि ॥१ ०६॥ बगुला हंस मनाह ले, नेड़ो थर्कों बहोड़ि। त्याँह बैटा तू उजला, त््यौ हंस्यों प्रीति न तोड़ि॥१०७॥ कवीर मनमाना तौलिए, सवबदों मोल न तोल। गौहर परषठा जाँणही, आपा खोबै बोल ॥१०८॥ शब्दार्थ-गौहर - मोती | परषठा + परख | अर्थ-सत कवीर कहते है। मनमाना तौल करो। शब्द से कोई मोल तोल नही होता। कितु मोती (आत्म तत्त्व) की पहचान तो अहकार (आपा) को खोकर प्राप्त की जाती है। अहकार

परिशिष्ट साखी (अ) ७५११ नाश मीठे बोल से ही सभव है। कबीर सपनहीं साजन मिले, नइ नई करे जुहार। बोल्यों पीछे जाँणिए, जो जाकौ ब्यौहार ॥१ ०९॥ अर्थ-परमात्मा ने स्व मे दर्शन दिया। खूब झुक-झुक कर प्रणाम (जुहार) हुआ | बोलने पर ही व्यवहार का ज्ञान होता है। बोली पूरबी, ताइ न चीन्हे कोइ। मेरी बोली सो लखे, जो पूरब का होइ ॥११०॥| शब्दार्थ-पूरबी बोली 5 १ पूर्व प्रदेश की बोली। २ परपरा प्राप्त बोी। ३ पूर्व दिशा मे ले जाने वाली बोली। ४ विषया सक्त सृधि मे आने के पूर्व की बोली। ५ ज्ञान सूर्य को प्रगट करने वाली बोली। ६ संहस्नार की आवाज। कबीर हरि का डर्पता, ऊन्हां घाव न खाँउं। हिरदय भीतर हरि बसे, ताथे खरा डराउँ॥१११॥ दाध बलीता सब दुखी, सुखी न दीसे कोइ। को पुत्रा को बंधवों, को धणहीना होइ ॥११२॥ शब्दार्थ-दाघ > दग्ध | बलीता 5 पलीता। को - कोई। हूँ रोऊँ संसार कौ, मुझे न रोवे कोइ। मुझको सोई रोइसी, जे राम सनेही होइ ॥११३॥ मूरो कौं का रोइए, जो अपणी घर जाइ। रोइए बंदीवान को, जो हाटें हाट बिकाइ॥११४॥ शब्दार्थ-मूरो > मुर्दों। बदीवान 5 विषयासक्त | हाट हाट 5 सासारिक बाजार। बाग बिछिटे मिग्र लो, तिहि जिने मारे कोइ। आप ही मरि जाइसी, डावां डोला होइ॥११ ५॥ अर्थ-बाग (परलोक) से बिछुड़े व्यक्ति को कष्ट न दो। ससार मे डोलता-डोछता वह स्वयं मर जायगा। कबीर बहुत दिवस भटकत रहा, मन में विषे विसाम। दूँढत दूँठत जग फिर्या, तिणाके ओल्ड राम ॥११६॥ शब्दार्थ-विसाम 5 विषम। ओह - रक्षा करना | हरि दरिया सूभर भरियवा, दरिया बार न पार। खालिक बिन खाली नहीं, जेवा सूई संचार ॥११७॥ अर्थ-ससार समुद्र परमात्मा से पूर्णत. भरा है। इस परमात्म समुद्र का आर-पार नही है। सभी जगहे ईश्वर पूर्ण है। कोई जगह खाली नही है। सूई के सचार का भी स्थान नही है। निदक तो नाँकी, बिना, सोह न क्यों माँहि। साधू सिरजनहार के, तिनमै सोहै नाहि ॥११ ८॥ अर्थ-निदक हर चीज की निदा करता। निदा की काट के बिना उसकी शोभा नही है। साधु पुरुष रचता है| सृजन करता है। निदको मे उसकी शोभा नही है। आपण यौ न सराहिये, पर निदिए न कोड । ' अजहूँ लॉबा घौहडा, ना जाणौ क्या होइ ॥११९॥ शब्दार्थ-द्यौहडा + दिवि गृह। भगवान् का स्थान। भगवद्प्राप्ति। बेकॉमी को सर जिनि वाहै, साठी खोबै मूल गंवावै। दास कबीर ताहि को बाहै, गलि सनाह सनमुख सरसा है॥१२०॥

अर्थ-बेकार की वस्तुओ को सिर नही चढ़ाना चाहिए। इससे श्रेश्ता और मूह तत्त्व का नाश होता है। सत कवीर कहते है कि उसका वहन कौन करेगा जो गले मे सनाह (कवच) डाल कर विषयो के सामने युद्ध करता है। पसुवा सो पानी पडो, रहि रहि यामै खीजि। ऊसर बाह्ौ न ऊगसी, भावे दूणों बीज॥१२१॥ अर्य-पशु से पाला (पानी) पड़ा है। इसीलिये रह रह कर खीझ होती है। ऊसर मे वोने पर हू पे नही होता। चाहे दूना वीज क्यो न डाला जाय। कोई गुरु जड़ शिष्य के बारे मे कह रहे है। बरियों दीती बल गया, अरु युरा कमाया। हरि जिनि छाड़े हाथ वे, दिन नेड़ा आया ॥१ २२॥ सिधि जु सहज फुकि गई, आगि लगी बन माँहि। बीज वास दून्यूँ जले, ऊगण की कछु नाँहि ॥१२३॥ अर्थ-संसार सिधु मे सहज साधना की आग फूँक दी गई है। वासना वन मे आग फैठ गयी है। इससे पुनर्जन्म के वीज (कर्म सस्कार) एवं ससार निवास दोनो जल गए। अब कुछ ऐसा नही है जिससे ससार मे पुन आना (उगना) पड़े। अब में राम सकल सिधि पाई, आनकहूँ तो राम दुह्मई ॥टिका। इहि विधि बासि एवं रस दीठा, रांम नांम सा और न मीठा। और रस दै है कफ गाता, हरि रस अधिक अधिक सुख दाता। दूजा वणजा नही कछु बाषर, राम नाम दोऊ तत आपर। कहे कबीर हरिरस भोगी, तांको मिल्या नरंजन जोगी॥१२४॥ राम न जपहु कवन भ्रम लागे। मरि जहुगे कहा कहा करहहु अभागे। राम रांम जपहु कहा करो वेसे, भेड कसाई के घर जैसे। रांम न जपहु कहा गरवाना, जम के घर आगी द्ै जाना। रांम न जपहु कहा मुसकी रे, जम के मुदगिरि गणि गणि खहुरे। कहे कबीर चतुर के राइ, चतुर बिना को नरकहि जाइ॥१२५॥ कहु पांडे कैसी रुचि कीजै, सुचि कीजै तो जनम न लीजै। जा सुचि केरा करहु बिचारा, भिष्ट भए लीन्हा औतारा। जा कारणि तुम्ह धरती काटी, तामे मूए जीव सौ माठी। जा कारणि तुम्ह लीन जनेऊ, थूक लगाइ कातै सब कोऊ। एक खाल प्रत केरी साखा, दूजी खाल मैले घृत राखा। सो घृत सब देवतनि चढ़ायी, सोई घृत सब दुनियां खायी। कहै कबीर सुचि देहु बताई, रांम नाम लीजो रे भाई ॥१२६॥

| परिशिष्ट साखी | (ब) आठ जाम चौसठि घरी तुअ निरखत रहे जीव। नीचे लोहन क्यो करी सब घट देखो पीठ॥१॥ ऊँच भवन कनक कामिनी सिखरि धजा फहराह। . ताते भली मधघूकरी संग संग गुन गाइ॥र॥। अंबर घनहरू छाइया बरषि भरे सर ताल। चातक ज्यों तरसत रहे तिनकौ कौन हवाल॥३॥ अल्लह की कर बंदगी जिह सिमरत दुख जाइ। दिल महि साई परगटे बुझे बलंती लाह॥४॥ अवरह कौ उपदेस ते मुख मै परिहे रेतु। रासि बिरीनी राखते खाया घर का खेतु॥पा। कबीर आई मुझहि पहि अनिक करे करि भेसु। हम राखे गुरु आपने उन कीनो आदेसु॥६॥ आखी केरे महछुके पल पल गई बिहाइ। मनु जंजाल न छाहई जम दिया दमामा आइई॥७॥ आसा करिये रांम की अबरे आस निरास। नरक परहि ते मानई जो हरिनाम उदास॥८॥ कबीर इहु तनु जाइगा सकहु तुं लेहु बहोरि नागे पावहु ते गये जिनके लाख करोरि॥९॥ कबीर इहि तनु जाइगा कबने मारग लाइह। के संगति करि साध की के हरि के गुन गाइ॥१०॥ एक घड़ी आधी घड़ी आधी हूँ ते आध। भगतन सेटी गासटे जो कीने सो लाभ॥११॥ एक मंरंते दुई मुये दोह मरंतेहि यार। चारि मरंतहि छहि मुये चारि प्रुरिष दुई नारि॥१२॥ ऐसा एक साधु जो जीवत मृतक होइ। निरभे होइ के गुन रवै जत पेखौी तत सोइ॥१३॥ कबीर ऐसा को नहीं इह तन देबे फूकि। अंधा लोगुन जानई रहा. कबीर कूकि॥१४॥ ऐसा जंतु इक देखिया जैसी देखी छाख। दीसे चंचलु बहु गुना मति हीना नापाक॥१५॥ कबीर ऐसा बीजु बोह बारह मास फलतं। सीतंत छाया गहिर फल पंखी केल करंत॥१६॥ ऐसा सतगुर जे मिले तुट्ग करे पसाउ। भुकति दुआर मोकढहा सहजे आबो जाउ॥१७॥ कबीर ऐसी होह परी मन को भावतु कीन। मरने ते क्या डरपना जब हाथ सिधौरा लीन॥१८॥

५१४ कबीर समग्र कंचन के झछुंडल बने ऊपर लाख जड़ाउ। दीसहि दाधे कान ज्यों जिन मन नाहीं नाउ॥१९॥ कबीर कसौटी रांम की झूठा ठिका न कोह्। रांम कसौटी सो सहै जो मरि जीवा होहइ॥२०॥ कवीर कस्तूरी भया भेंव भये सब दास। ज्यों ज्यो भगति कबीर की त्यों त्यो रांम निवास॥२१॥ कागद केरी ओबरी मसु के कर्म कपाद। पाहन बोरी पिरथमी पंडित पाड़ी बाद॥२२॥ काम परे हरि सिमियये ऐसा सिमरी नित्त। अमरपुर बासा करहु हरि गया बहोरे बित्त॥२३॥ काया कजली बन भया मन कुंज मयमंतु। अंक सुज्नान रतन्न है खेवट बिरला संतु॥२४॥ काया काधी कारवी काची केवल. घाठु। साबतु रख हित रांम तनु नाहि त बिनठी बात॥२५॥ कारन बपुरा क्या करे जो रांम न करे सहाह। जिहि जिहि डाली पण धरी सोई मुरि मुरि जाइ॥२६॥ कबीर कारन सो भयो जौ कीनो करतार। तिसु बिनु दूसर को नहीं एके सिरजनुहार॥२७॥ कालि करंता अबहि करु अब करता 'झु इताल। पाछै कछू न होहगा जौ सिर पर आबै काल॥२८॥ कीघड़ आठ गिरि पत्या किछू न आयो हाथ। पीसत पीसत घाबिया सोई नियहया साथ॥२९॥ कबीर कूकरझ भौकता कुरंग पिछे उठि पघाइ। कर्मी सति गुर पाइया जिन हो लिया छड़ाइ॥३०॥ कबीर कोठी काठ की दह दिसि लागी आगि। पंडित पंडित जल मुये मूरख उबरे भागि॥३१॥ कोठे मंडप हेतु करि काहे मरु सवारि। कारज साढ़े त्तीन हाव घनी त' पौने, चारि॥३२॥ कौडही कौडी जोरि के जोरे लाख करोरि। चलती बार न कछु भिल्या लई हर्लेंगोटी छोरि॥३३॥ खिथा जलि कोयला भई खापर फूटम फूट। जोगी अपुड़ा खेलियों आसनि रही. बिभूति॥इ्ड)। खूब खाना खीधरी जामे अंपृत लोन। हेशा रोटी कारने गला कटावै. कौनाशप॥। गंगा तीर जु घर करहि पीवहि निर्मल नीर। विन हरि भगति न मुकति होह यो कहि रमे कबीर॥३ ६॥ कबीर राति होवहि कारिया कारे ऊभे जंतु। ले नाहे उठि धावते सिजानि मारे भगवंतु॥३७॥ कथयीर गरबबु. न कीजिये घाम लपेटे हाड़। हैयर ऊपर छत्र तर ते फुन घरती गाड़॥३८॥ कबीर गरबु न॒ कीजिये ऊँचा देखि अवासु।

> परिशिष्ट साखी (ब) आजु कालि भुट्ट लेटना ऊपरि जामे घासु॥३९॥ कबीर गरबु न कीजिये रंकु न हसिये कोइ। अजहु सुनाउ समुद्र महि क्या जानें क्या होइ॥४०॥ कबीर गरबु न कीजिये देही देखि सुरंग। आजु कालि तजि जहुगे ज्यों कॉँचुरी भुअंग॥४१॥ गहगच परणथो कुदुंव के कंठे रहे गयो राम। आई परे धर्मराइई के बीचहि धूमा धाम॥४२॥ कबीर गागर जल भरी अज़ु कालि जैहे फूटदि। गुरु जुन चेतहि आपुनो अधमाझली जाहिगे लूदि॥४३॥ गुस लागा तब जानिये मिद्ठे मोह तन ताप। हरघ सोग दाहे नहीं तब हरि, आपहि आप॥४४॥ कबीर घाणी पीड़तें सति गुरु लिये छुड़ाइ। परा पूरबली भावनी परगति होई आइ॥४५॥ चकई जौ निसि बीए आई मिले परभाति। जो नर बिछुरे रांम स्थयो ना दिन मिले न राति॥४६॥ चतुराई नहि अति घनी हरि जपि हिरदे माहि। सूरी ऊपरि खेलना गिरित ठाहरि नाहि॥४७॥ चरन कमल की मौज को कहि कैसे उनमान। कहियबे को सोभा नहीं देखा हो परवान॥४८॥ कबीर चावल कारने तुषको मुहली लाइ। संग कुसंगी बैसते तब पूछे धघर्मराह॥४९॥ चुगे चिता भी चुगे चुगि चुगि चघितारे। , जैसे बच रहे कुंज मन माया ममता रे॥५०॥ चोट सहेली सेल की लागत लेइ . उसास। चोट सहारे सबद की तासु गुरू में दास॥५१॥ जग काजल की कोठरी अंध परे तिस माँहि। हो बलिहारी तिन्न की पैसि जू नीकसि जाहि॥५२॥ जग बॉध्यो जिह जेवरी तिह मत बेंधहु कबीर। जैहहि आटा लोन ज्यों सोन समान शरीर॥५३॥ जग मै चेत्यो जानि के जग में रहो समाह। जिनि हरि नाम न चेतियो बादहि जनमे आहइ॥५४॥ कबीर जहेँ जहेँ हो फिरयो कौतक ठाओ ढाँड। इक राम सनेही बाहरा ऊजरु मेरे भौंइ॥५५॥ कबीर जाको खोजते पायो सोई ठोर। सोइ फिरि के तू भया जाकी कहता और॥५६॥ जाति जुलाहा क्या करें हिरें बसे गुपाल। कबीर रमइया कठ मिलु चूकहि सब जंजाल॥५७॥ कबीर जा दिन हो मुआ पाएँ भया अनंद। मोहि मिलयो प्रभु आपना संगी भजहि गोबिद॥५८॥ जिह दर आवत जातहू हटके नाही कोई। सो दरु कैसे छोड़िये जो दरु ऐसा होइ॥५९॥ ५१५

५१६ कबीर समग्र जीय जो मारहे ज़ोर करे कहते हहि जु हलालु। दफतर दई जब काठ्हि होहया कौन हवालु॥६०॥ कबीर जेते पाप किये राखे तले दुराइ। परणगट भये निदान सब जब पूछे थधर्मराह॥६१॥ जैसो उपजी पेड़ ते जो तैसी निबहे ओड़ि। हारा किसका बायुर पघुजहि ने रतन करोड़ि॥६२॥ जो में चितवीं ना कै क्या मेरे घितवे होड़। अपना धितव्या हरि करे जोरे चित्त न होड॥६३॥ जोर किया सो जुलुम है लेडइ जवाब खुदाह़। दफतर लेखा नीकसे मार मुहे मुह खाइ॥हश॥। हम जंत्र बजावते टूटि गई सब त्तार। जंत्र विधारा क्या कै चले बजावनहार॥६५॥ जी गृह कर हित धर्म करु नाहि त करु बैरागु। बैर्गी वंधन करे ताकी बड़ी अभागु॥६६॥ जी तुहि साध पिरम्म की सीस कादि करि गोडइ। खेलत खेलत हाल करे जो किछु होड़ ते होइ॥६७॥ जी तुहि साध पिरम्म की पाके सेती खेलु। काधी सरसो पेलि के ना खलि भई न तेलु॥६८॥ कबीर झंख़ु न झंखिये तुम्ही कहा न होइ। कर्म करीम जु करि रहे मेटि न साके कोइ॥६९॥ ठटाहडें टोहे दिन गया ब्याज बढती जाइ। नॉ हरि भज्यो ना खत फट्यी काल पहुँचो आइ॥७०॥ ठाकुर पूजहि मोल ले मन हठ त्तीरथ जाहि।॥ देखा देखी स्वॉय घरि भूले भटका खाहि॥७१॥ कबीर डयमग क्या करहि कहा डुलावहि जीउ। सर्व सुख की नाइ की राम नाम रस पीउ॥७२॥ डूबहिगो रे बापुरे बहु लोगन की कानि। परोसी के जो हुआ तू अपने भी जानि॥७३॥ डूबा था पे उच्यस्यो गुन की लहरें अइबक्कि। जब देख्यो येड़ा जरजरात तब उत्तरि पऱ्यो हों फरक्कि ॥७४॥ तरवऱ रूपी रांम है फल रूपी बैरायु। छाया रूपी साधु है जिन तजिया यद्ु बिबदु॥ ७५॥ कवीर तासी प्रीति करि जाको ठाकुर राम। पंडित राजे भूपती आवहि कौने काम॥ ७६॥ हूँ तूँ करता तूँ हुआ मुन्न मे रही न हूँ। जब आपा पर का मिटि गया जित देखों तित तूँ॥ ०७॥। धूनी पाई विति भई सति गुरु बंधी धीर। कदीर हीरा बनजिया मानसरोवर तीर॥७ ८॥ कवीर घोड़े जल माछली झीवर मेल्यी जाल। इहटी पने न छूटिसहि फिरि करि समुद सम्हालि॥७९॥ कवीर देखि के किह कहीं कहे न को पतिआईइ।

परिशिष्ट साखी (ब) हरि जैसा तेसा उही रहो हरखि गुन गाइ श८्णा देखि देखि जन दूँढिया कहें न पाया ठौर। जिन हरि का नाम न चेतिया कहा भुलाने और॥८१ कबीर घरती साध की तरकस बैसहि गाहि। घरती भार व्यापाई उनका लाहू लाहि॥८२॥ कबीर नयनी काठ की कया दिखलावहि लोइ। हिरददे राम' न चेतही इह नयनी क्या होइ॥८३॥ जा घर साध न सोवियहि हरि की सेवा नाहि। ते घर मरहट सारखे भूत बसहि तिन माहि॥८४॥ ना भोहि छानि न छापरी ना मोहि घर नहीं गाउ। मति हरि पूछे कौन है मेरे जाति न नाउ॥८५॥ निर्मम बूँ45 अकास की लीनी भूमि मिलाह। अनिक सियाने पथ गये ना निरवारी जाइ॥८६॥ नुपनारी क्यो निदिये क्यो हेरि चेरी कौ मान। ओह माँगु सवारे विष्े कौ ओह सिमरे हरिनाम।॥८७॥ नैन निहारी तुझको खबन सुनहु तुबव़ नाउ। बैन उचारह तुब नाम जो चरन कमल रिद ठाउ॥८८॥ परदेसी के घाधे चहु दिसि लागी आगि। खिधा जल झुइला भई तागे ऑयच न लागि॥८९॥ परभाते तारे खिसहिं त्यो इृहु खिसे सरीर। पे दुईइ अक्खर ना खिसहि सो गहि रहो कबीरु॥९०॥ पादन ते ऊजरू भला राम भगत जिह ठाह। राम सनेही बाहरा जमपुर मेरे भाइ॥९१॥ पापी भगति न पावई हरि पूजा न सहाह। माखी चंदन परहरे जहैँ बिगंध तहें जाइ॥९२॥ _कबीर- पपॉस चंदने तिन है एक सुगंध तिहि मिलि तेड ऊतम भये लोह काठ निरगंध॥९३॥ पालि समुद सरबर भरा पी न सके कोह नीरू। भाग बड़े ते पाइयो तू भरि भरि पीउ कबीरु॥९४॥ कबीर प्रीति इकस्यो किए आगँद दझद्धा जाह। भावे लॉवे केस कर भाव घररि घुडाइ॥९५॥ कबीर फल लागे फलनि पाकन लागे आँव। जाह पहुँचे खसम कौ जौ बीचि न खाई काँब॥९६॥ बाम्हन गुरु है जगत का भगतन का गुरु नाहि। उरध्लि उरश्चि के पच मुआ चारहु बेदह माहि॥९७॥ कबीर बेड़ा जरजरा फूटे छेक हजार। हरुये हरुये तिरि गये डूबे जिनि सिर भार॥९८॥ भली भई जो भो पत्था दिस गई सब भूलि। ओरा गरि पानी भया जाइ मिल्यो ढलि कूलि॥९९॥ कबीर भली- मधूकरी नाना बिधि को नाजु। दावा काहू को नहीं बड़ो देस बड़ राजु॥१००॥ ५१७

५१८ कबीर समग्र भाग माछठी सुरापान जा जो प्रानीं खाँहि। तीरथ बरत नेम किये ते सबै रसातल जौहि॥१०१॥ भार पराई सिर धरे चलियो चाहे बाट। अपने भारहि ना डे आगे औबद घाट॥१०२॥ कबीर मन निर्मत्र भया जैसा गंगा नीर। पाछे लागो हरि फिरहि कहत कबीर कबीर॥१०३॥ कबीर मन पंखी भयों उड़ि उड़े व दिसि जाह। जो जैसी संगति मिले सो तैसी फल खाइ॥१०४॥ कबीर मन मूदया नहीं केस मुड़ाये काह। जो किछु किया सो मन किया मुंडामुंड अजाइ॥१०५॥ मया तजी तो क्या भया जो मानु तज्या नहीं जाह। मान मुनि मुनिवर गले मानु सबे को खाइ॥१०६॥ कबीर महदी करे घालिया आयु पिसाइ पिसाह। सतैसेई बात न पूछिये कबहु न लाई पाहइ॥१०७॥ भोई पमूदहु तिहे गुरु जाते भरम न जाइ। आप डूबे घहु बेद महि चेले दिये बहाह॥१०८॥ माटी के हम पूतें मानस राक्यो नाउ। चघारि दिवस के पहुने बड़ बड़ रूघहि ठाउ॥१०९॥ मानस जनम दुर्लभ है होइ न बरै बारि। जी बन फल पाके भुट्ट गिरहि बहुरि न लागै डारि॥११०॥ कबीर माया डोलनी पवन झकोलनहारु। संतहु माखन खाइया छाछि पिये संसारु॥१११॥ कवीरा माया डोलनी पवन बहैः हिवधघार। जिन बिलोया तिन पाहया अवन बिलोवनहार॥११२॥ कवीर माया चोरटी मुसि मुसि लावै हादि। एकु कबीरा ना मुस जिन कीनी बारह बादि॥११३॥ मारी भरी कुसंग की केले निकटि जु बेरि। उह झूले उह चीरिये साकत संगु न हेरि॥११४॥ मारे बहुत पुकारिया पीर पुकरै और। लागी चोट मरम्म की रहो कबीरा ठौर॥११५॥। मुकति दुआरा' संकुतर राई दसएँ भाई। मन तौ मैगल होइ रह्यो निकस्यो क्यों के जाइ॥११६॥ मुल्ला मुनारे क्या चढ़हि साई न बहरा होइ। जा कारन तूँ बाग देहि दिल ही भीतरि जोइ॥११७॥ मुहिे मरने का चाउ है मरी तो हरि के दएर। मत हरे पूछे को है परा हमारें बार॥११८॥ कबीर मेरी जाति की सब कोइ हॉसनेहारु। बलिहारी इस जातिकौ जिह जपियों सिरजनहार॥११९॥ कबीर मेरी बुद्धि को जमु न कै तिसकार। जिन यह जमुआ सिरजिया सु जपिया परबदिगार॥१२०॥ कबीर मेरी सिमी रसना ऊपरि रामु।

परिशिष्ट साखी (ब) आदि जगादि सगस भगत ताकौ सुख बिल्लाम॥१२१॥ जग का ठेगा बुरा है ओह नहि सहिया जाड। एक जु साधु मोहि मिलो तिन लीया अंधल लाइ॥१२२॥ कबीर यह पेतानी मत सह सारहि जाहई। पाठे भोग जु भोगवै तिनकी गुड़ लै खाइ॥१२३॥ रस को गाठ़ो चूसिये गुन को भरियी रोह। अवगुन घारे मानसे भली न कहिये कोहइ॥१२४॥ कबीर राम न चेतिये जरा पहुँची आईए। लागी मंदर द्वारि ते अब क्या काढ्यो जाइ॥१२५॥ कबीर राम न चेतियो फिरिया लालच माहि। पाप करंता मरि गया औध पुजी खिन माहि॥१२६॥ कबीर राम न छोड़िये तन धन जाई ते जाउ। चरन कमल चित्त वेधिया रामहि नामि समाउ॥१२७! कबीर राम नु ध्याइयों मोदी लागी खोरि। काया हड्डी की ना ओह चढ़े बहोरि॥१२८॥। राम कहन महि भेदु है तामहि एकु बविधारु। सोह राम सबै कहहि सोई कौतुकहार ॥१२९॥ कबीर राम में राम कहु कहिये माहि बिबेक। एक अनेके मिलि गया एक समाना एक॥१३०॥ रामतन मुख कोथरी पारख आगे. खोलि। कोइ आई पिलैगी गाहकी लेगौ महेंगे मोलि॥१३१॥ लाटी प्रीति सुजान स्थो बरजे लोगु अजाणु। तास्यो टूटी क्यो" बने जाके जीव परानु॥१३१२॥ डाँसु बढ़ाई बूड़िया यों मत डूबहु कोह। चंदन के निकटे बसे बसु सुगंध न होइ ॥१३३॥ कबीर दिकारह चितवते झूठे करते आस। मनोरदथ कोइ न पूरियो चाले ऊढि निरास॥१३४॥ विरहु भुअंगग मन बसे मत्ु मन माने कोह। राम वियोगी ना जिये जिये त बौरा होइ॥१३५॥ देदु कहे हों ही भला दारू बस्सि हह तो बस्तु गोपाल की जब भाव ले खस्सि॥१३६॥ बैजव की कूकरि भरी साकत बुरी माइ। ओह सुनहि हर भाम जस उह पाप बिसाहन जाह॥१३७॥ वैष्यय हुआ ते कया भया माला मेली थारि। बाहर कंचनवा रहा भीतरि भरी भेंगारि॥१३८॥ कबीर संसा दूरि करू कागह हेरू बिहाउ। बावन अक्खूर सोधि के हरि चरनो थित लाउ॥१३९॥ मँगत, सांध की अंति कै निर्बाहु। साकंत संग न कीजिये जाते होह बिनहु॥१४०॥ कबीर ऊझंशति साध की दिन दिन दूना हेतु। साकत कारी कॉपी घोए होइ ने सेतु ॥१४१॥ ५१९

५२० कबार समग्र संत की गैल न छॉड़िये मारगि लागा जाउ! पेखत ही पुन्नीत होइ भेटत जपिये नाउ॥१४२॥ -संतव की झ्ुरिया भली भठी कझुसत्ती गाउठ। आगि लगे तिह धौलहरि जिह नाही हरि को नॉउ॥१४३॥ संत मूये क्या रोइये जो अपने गुह जाय। रोबहु साकत बापुरों जु हाटे हाट बिकाय॥१४४॥ कबीर सति गुरु सुरमे बाह्या बान जु एकु। लागत ही भुट्ट गिरि परया परा कलेजे छेकु॥१४५॥ कबीर सब जग हो फिरयो मॉदलु कप चढ़ाह। कोई काहू को नहीं सब देखी ठोक वजाड॥१४६॥ कबीर सब ते हम बुरे हम तजि भलो सब कोई। जिन ऐसा करि चजुक्षिया मीतु हमारा सोह॥१४७॥ कबीर समुंद न छोड़िये जौ अति खारो होह। पोखरि पोखरि हूँझते भली न कहिये कोह॥१४८॥ कवीर सेवा कौ हुई भले एक संतु इकु रामु। राम जु दाता मुकति को संतु जपावे नामु॥१४९॥ साँचा सति गुरु मैं मिल्या सबद जु बाहझया एकु। लागत ही भुट्ट मिलि गया परया कलेजे छेकु॥१५०॥ कबीर साकत ऐसा है जैसी हसन की खानि। कोने बैठे खाइये परगट होइ. निदान॥१५१॥ साकत संगु न कीजिये दूरहे जहये भागि। वासन करा परसिये त्उ कछु लागे दायु॥१५२॥ साधा सतिगुरु क्या करे जो सिक्खा माही चूक। अँधे एक न लागई ज्यों बासु बजाइये फूँक॥१५३॥ साधू की संगति रही जी की भूसी खाउ। होनहार सो होइहे साकत संगि न जाउ॥१५४॥ साधु को मिलने जाइये साथ न लीजे कोई। पाछे पा न दीजिये आगे होह सो होइ॥१५५॥ साधु संग परापति लिखिया होइ. लिलाद। मुक्ति पदारव पाइये ठाकच अवघट घाट॥१५६॥ सारी सिजनहार की जाने नाही कोई। के जाने आपन धनी के दास दिवानी होइ॥१५७॥ सिखि खासा ऋआहुते किये केसी कियो न मीतु। चले थे हरि मिलन को बीचे अठको चीतहु॥१५८॥ सूपने. हू बरड़ाइके जिहई मुख निकसे रांम। ताके पा की पानही मेरे तन को चाम॥१५९॥ सुग नरक ते में रहया सति गुर के परसादि। घरन कमल की मोजि महि रहो अंति अर आदि॥१६०॥ कबीर सूख न एह जुग करहि जु बहुतै मीत। जो घित राखहि एक स्यो ते सुख पावहि नीत॥१६१॥ कबीर सूरज चाँद के उदय भट्ट सब देह।

परिशिष्ट साखी (ब) गोबिद के बिन मिले पलटि भई सब खेह॥१६२॥ कबीर सोई कुल भलों जा कुल हरि का दास। जिह छुल दासु न ऊपजै सो कुल ढाकु पलासु॥ १६३॥ कबीर सोइ मारिये जिहि मूये सुख होइह। भलो भलों सब कोइ कहै बुरो न माने कोइ॥१६४॥ कबीर सोइ मुख धन्नि है जा मुख कहिये राम। देही किसकी बापुरी पवित्र होइगो ग्राम॥१६५॥ हंस उड़यो तमु गाड़ियो सोलझ्ाई सैनाह। अजहूँ. जीव न छाड़ई रंकॉई नैनाह॥१६६॥ हज काबे हों जाइया आगे मिलया खुदाइ। सांई मुन्नस्यो लर परणा तुझे किन फुरमाई गाइ॥१६७॥ हरदी पीर तनु हरे चून धघिन नु रहाह। बलिहारी इषहि प्रीति कौ जिह जाति बरन कुल जाइ॥१६८॥ हरि का सिमरन छाड़िके पालो बहुत कछुटुंब। धंधा करता रहे गया भाई रहा न बंघु॥१६९॥ हरि का सिमरन छाड़िके राति जगावन जाईइ। संर्पनी होइके औतरे जाये अपने खाइ॥१७०॥ हरि का सिमरन छाड़िके अहोई राखे नारि। गदही होइ के ओऔतरे भारु सहे मन चारि॥१७१॥ हरि का सिमरन जो कै सो सुखिया संसारि। इत उत कतहु न डोलई जस राखे सिरजनहारि॥१७२॥ हाइ जरे ज्यो लाकरी केस जरे ज्यों घालु। सब जग जरता देखिके भयो कबीर उदासु॥१७३॥ है गे बाहन सघन घन छतन्नपती की नारि। तासु पटतर ना पुजै हरि जन की पनहारि॥१७४॥ दाहन सघन धन लाख घजा फहराह। या सुख ते भिक्खा भली जौ हरि सिमरन दिन जाइ॥१७५॥ जहाँ ज्ञान तहें धर्म है जहाँ झूठ तहेँ पाप। जहाँ लोभ तहेँ काल है जहाँ खिमा तहें आप॥१७६॥ कबीर तुही कबीर तू तेरों नाउ कबीर। राम रतन तब पहये जो पहिले तजहि सरीर॥१७७॥ कबदीश धूर सकेल के पुरिया याँधी देह। दिवस चारि को पेखना अंत खेह की खेह॥१७८॥ कबीरा हमरा कोइ नहीं हम किसहू के नाहि। जिन यहु रचन रचाइया तितही माहि समाहि ॥ १७९॥ कोई लरका बेखई लरकी देचे. कोह। सॉल्ला करे कबीर स्यो हरि संग बनज करे ॥ १८०॥ जहें अनभी तह भे नहीं जहेँ भी तहेँ हरि नाहि। कही कबीर दिधारिके संत सुनहु मन मौंहि॥१८१॥ जोरी किये जुल्म है कहता नाउ हलाल। दफतर लेखा मागिये तब होइगौ कौन हवाल॥१८२॥ ५२१

णपर२२ कबीर समग्र हूँचता डोले अंध गति चीनत नहीं संत। कहि नामा क्यो पाइये बिनत भगतहं भगवंत॥१८३॥ नीचे लोइन कर रहो जे साजन घट माँहि। सब रस खेलों पीय सों कियो लखावो नाहि॥१८४॥ बूटा बंस कदीर का उपज्यों पूत कमाल। हरि का सिमरन छाड़िके घर ले आया माल॥१८१॥ मारग मोत्ती बीये अंधा निकस्यो आइ। जोति बिना जगदीस की जगत उलंधे जाइ॥१८६॥ राम पदारथ पाई के कबिरा गोंठि न खोल। नहीं पाहन नहीं यारखू नहीं गाहक नहीं मोल॥१८७॥! सेख सबूरी बाहाा क्या हज काबे जाह। जाका दिल साबत नहीं ताको कहाँ खुदाह॥१८८॥ सुनु सखी पिउ महि जिउ बसे जिउ महि बसे कि थीउठ। जीव पीउ बूझो नहीं घट महि जीउ कि पीउ॥१८९॥ हरि है खाँडू रे तुमहि बिखारी हाथो चुनी न जाए। कहि कबीरा गुरु भली बुझ्चाई चीटी होइ के खाइ॥१९०॥ गगन दमामा याजिया पर्यो निसाने घाठ)। खेत जु मारयो सूरमा जब जूझन को दाउ॥१९१॥ सूर सो पहिचानिये जु लै दीन के हेत। पुरजा पुरजा कटि मरे कब्हु न छाड़े खेत॥१९२॥

| पद | (रागगोड़ी) दुलहनि गावहु मंगलचार, हम घरि आए हो राजा राम भरतार।॥देका। . तन रत करे मैं मन रत करिंहूँ, पंचतत्त बराती। रामदेव मोरें पाँहुनें आये में जोबन में माती॥ सरीर सरोवर बेदी करिड, ब्रह्मा वेद उचार। रामदेव सेंगि भाँवरी लैहूँ, धंनि धंनि भाग हमार ॥ सुर तेतीसूँ कौतिग आये, मुनिवर सहस उठ्यासी। कहै कबीर हैंम ब्यांहि चले है, पुरिष एक अबिनासी ॥१॥ शब्दार्व-दुलहनि + साधक। सत समान। भरतार 5 भर्त्ता। पति। तत्त 5 तत्त्व। पच महाभूत। पॉहुने +- अतिथि। पति (पूर्वी प्रयोग)। कौतिग - कौतुक। तमाशा। पति (पूर्वी प्रयोग)। कीतिग 5 कीतुक | तमाशा | 'संदर्भ-साधक जीव कुमारी कन्या है। भगवान् होने वाले पति है। यह पति बारातं लेकर आया है। यहॉ सवाल है, दुलहहिन कौन है? अगर साधक को दुरूहिन माना जाय तो दुल्हन तो गाती नहीं है। वह तो मौन रहती है। कितु यह साधक भी गाता है और सगी-साथी सत भी गाते है। इसीलिये दुलहन मे दोनो का बोध है। अर्थ-ऐ, साधक साधिकाओ, राजाराम (सामान्य राम नही) मेरे दरवाजे पर बारातं लेकर उपस्थित है। ये मेरे पति है। मै साधक इस राजाराम के प्रेममे तन-मनसे अनुरक्त हूँ। राम जीकी बारातमे पॉच तत्त्व, पच महाभूत (पाँच विषय-रूप, रस गध, स्पर्श, शब्द है। राम की बारात मे आने का अर्थ है राम के साथ सम्बद्ध। और राम के साथ सम्बद्ध विषय। राममय होकर बाधा रहति हो जाते हैं) भी पधारे है। मै मत्त यौवन (पूर्ण साधक) उनका स्वागत करने को तैयार हूँ। मे अपने शरीर रूपी तालाब को वेदी बनाऊँगा। ब्रह्म (ब्राह्मण) वेदोच्चार करेगे। मेरा धन्यभाग है। मै रामदेव के साथ भाँवर (सप्तपदी) फिरूँगी। इस महत्त्वपूर्ण बारात को देखने के लिये तैतीस कोटि देवता और अझ्सी हजार मुनि उपस्थित है। मुझे शाश्वत पुरुष ने ब्याहा है। पली बनाया। इस शाश्वत पुरुष से कभी किसी प्रकार के वैधव्यादि का खतरा नहीं है। इस अविनाशी से ब्याह के उपलक्ष्य मे दुलहहिन भी मगल गीत गाएँ। दिप्पणी-'सरीर सरोवर ़" मे सरोवर का रूपक ठीक नहीं मालूम पड़ता है। सरोवर को सरवर 5 समतल माना जाय तो अर्थ का स्पष्टीकरण होता है। क्योकि सरोवर मे वेदी नहीं बनती है। वेदी का स्थान तो समतल होना चाहिए। जैसे कारबार कारोबार वन जाता है। उसी प्रकार सरवर से सरोवर बना जान पड़ता है। अलंकार--रूपक | बहुत दिनन थे मे प्रीतम पाये, भाग बड़े घरि बैठे आये टिक ॥ मंगलचार मोहि मन राखो, राम रसोंदण रसना चाषो। मंदिर मोहि भयो उजियारा, ले सुती अपना पीव पियारा॥ में रनि रासी जे निधि पाई, हमहि कहाँ यह तुमहि बड़ाई। कहै कबीर मै कछु न कीन्हा सखी सुहाग राम मोहि दीन्हा ॥२॥ (५२३)

पुरे ४ कबीर समग्र अर्थ-साधक सखी कहती है कि बहुत दिनो की साधना के बाद प्रियतम परमात्मा को घर बैठे पाया। घर बैठे का अर्थ कहीं तीर्थादि बाह्य साधनाओ मे बिना गये पाया है। उनके आगमन मगलाचार की गीतादि कवाईयाँ मन मे है। जीभ राम रसायन का स्वाद हे रही है। प्रिय के आने से मन मदिर का अज्ञानाधकार दूर हो ज्ञान का प्रकाश हो गया। इस प्रकाशमे अपने प्यारेको साथ लेकर सो रही हूँ। प्रभुमे अनुरक्त होकर मैने यह निधि पाई है। इसमे मेरा कुछ प्रय्तत नहीं है। हे प्रभु, यह तुम्हारा बड़प्पन है कि तुमने मुझपर कृपा की। मुझसे कुछ हो भी नहीं सकता है। ऐ साधक सखियो, सुनो। फिर भी प्रभु ने मुझे सुहाग (सौभाग्यवती के सारे लक्षण और छाभ) दिया। टिप्पणी-इस कविता की प्रथम पक्ति मे प्रतीक्षा है। प्रभु की कृपा है। दूसरी मे "राम रसायन' श्रगार रस के विरुद्ध भक्ति रस है। इसमे तीर्थ, यज्ञ, दान, वेदाध्ययन का विरोध है। समर्पण मुख्य भाव है। अब तोहि जान न दैहूँ राम पियारे, ज्यूँ भावे त्यूं होह हमारे ॥टिक॥ बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये, भाग बड़े घरि बैठे आये॥ चरननि लागि करौ बरियायी, प्रेम प्रीति राखो उरक्ाई। इत मन मंदिर रहो नित थोधें, कहे कबीर करमु मति घोषे ॥३॥ अर्थ-हे प्रियतम, अब मै तुम्हे जाने न दूँगी। जैसे भी हो तुम मेरे बनो। बहुत दिनो का वियोग दूर हुआ। प्रिय घर बैठे ही आगया। प्रेमिका (साधक) के प्रेम हठ की जीत हुई। चरणो मे लग कर अर्थात् विनम्र सेवा करूँगी। बलपूर्वक सेवा करूँगी। प्रेम मे उलझा ढूँगी। मन मदिर को सदा शुद्ध रखना चाहिए। क्योकि अशुद्ध मन मे प्रभु का बास नहीं होता है। अलंकार-रूपक | मन के मोहन बिठुला, यह मन"लागो तोहि रे। घरन केवल मन मानियाँ, और न भाव मोहि रे॥टिक ॥ घट दल केवल निवासिया, चहु को फेरि मिलाइ रे। दहुँ के बीचि समाधियाँ, तहाँ काल न पास आह रे। अष्ट कैंबल दल भीतरा, तहाँ श्रीरंग केलि कराइ रे। सतगुर मिले तो पाइए, नहिं तो जन्म अक्यारव जाह रे। कदली कुछुम दल भीतरां, तहाँ दस आँगुल का बीच रे। तहाँ दुवादस खोजि ले जनम होत नहीं मीच रे। दँक नालि के अंतरे पछिम दिसों की बाट रे। नीझर झरे रस पीजिये, तहाँ भेबर गुफा के छाट रे॥ ब्रिवेणी मनाह न्हावाइए, सुरति मिले जी हावि रे। गगन गरजि मध जोइये तहाँ दीसे तार अनंत रे। दिजुरी चमकि घर बरसि है तहाँ भीगत हैं सब संत रे। घोडस कंबल जब चेतिया, तब मिलि गए श्री बनवारि रे। जुरामरण भ्रम भाजिया, पुनरपि जनम निवारि रे। गुर गमि ते पाईये, झंषि मरे जिनि कोई रे। तहीं कबीरा रमि रह्या सहज समाधी सोई रे॥४॥ अर्थ-ऐ मनमोहन विष्णु (बिठुला), मेरा मन ब्ुम्हारे ध्यान मे लग गया है। तुम्हारे चरण कमलो को छोड़कर और कुछ भी अच्छा नहीं ढुगता है। मै चारो योनियो (अडज, पिडज, स्वेदज, उद्धिज) के फेरे को पूराकर स्वाधिष्ठान चक्र मे स्थित हूँ। दोनो (इडा-पिगला) के बीच

पद ५२५ में मेरी समाधि है। यहॉ काल नहीं आ सकता है। भगवान आठ कमलो (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा, सहस्दल और सुरति)-मे क्रीड़ा करते है। सतगुरु की कृपा से ही प्रभु की प्राप्ति हो सकती है वरना जन्म व्यर्थ बीत जाता है। केले के फूल के समान तहाँ भरी सृष्टि चक्रो मे दस अगुर प्रमाण उस प्रभु तत्त्व का निवास है। वही द्वादश कमल (अनाहत चक्र) मे भी बैठा है। यहाँ पहुँचकर जन्म मृत्यु दोनो की समाप्ति हो जाती है। मेरु दण्ड (बकनाली) के भीतर सुषुम्ना (पश्चिम दिशा) का मार्ग है। यहॉ सहस्नार से अमृत रस प्रवाहित होता रहता है। त्रिकुटी रूपी त्रिवेणी के घाट पर मन सुरति के हाथो स्नान करता है। मन को भागवत्स्मृति या ध्यान होता है। यहाँ कोई रास्ता नही जोहना पड़ता है। यहाँ सनकादि (सनक, सनातन, सनत्कुमार, सनद) जैसे भक्त सतो का साथ होता है। (मघ का अर्थ माघ मास ले तो अर्थ होगा माघ मास की प्रतीक्षा किये बिना साधु समागम होता है। त्रिवेणी का माघ मेला तब भी प्रसिद्ध रहा होगा) उस साधना पथ पर प्रेम के बादल घिरे गरजते है। (बादल के इस अधकार मे भी तारे दीखते है। अनत तारे। साधक को अनत प्रभु से तार मिलते देखा जाता है। यहाँ प्रभु रूप की बिजली चमकती है। बादल बरसते है। सत जन भींगते है। सोलहो कछाओ से सपन्न प्रभु जब चेतन होते है तो प्रभु का दर्शन होता है। फिर तो जन्म मृत्यु का भ्रम दूर हो जाता है। पुनर्जन्म से भी निवृत्ति हो जाती है। कितनी भी कोशिश करो इस तत्त्व को गुरु कृपा के बिना नहीं पा सकते हो। यहाँ सत कबीर सहज समाधि लगाकर रमे है। दिप्पणी-जिवेणी सगम का रूपक महत्त्वपूर्ण है। माघ मेला वर्षसंहित उपस्थित है। गोकुल नाइक बीठुला, मेरी मन लागौ तोरि रे। बहुतक दिन बिछुरे भये, तेरी औसेरि आबै मोहि रे ॥टेक॥ करम कोटिकौ ग्रेह रच्यो रे, नेह गये की आस रे। आपहि आप बँघाइया, दे लोचन मरहि पियास रे॥ आपा पर संमि चीन्हिये, दीसे सरब समांन। इृहि पद नरहरि भेटिये, तूं छाड़ि कपट अभिमांन रे। नां कतहुं चलि जाइये, नां सिर लीजै भार। रसनां रसहि बियारिये, सारंग श्रीरंग घार रे॥ साथें सिधि ऐसी पाइये, किया होइम होह। जे दिठ ग्यांन न ऊपजै, तो अहटि रहे जिनि कोड रे॥ एक जुगति एके मिलै, किया जोग कि भोग। इन दून्युं फल पाइये, रांम नांम सिधि जोग रे ॥ प्रेम भगति ऐसी कीजिये, मुखि अंमृत बरिषे चंद। आपही आप बिचारिये, तब केता होइ अनंद रे॥ “ तुम्ह जिनि जानों गीत है, यहु निज ब्रह्म बिचार। केवल कहि समझाइया, आतम साधन सार रे॥ चरन कंवल चित लाइये, राम नांम गुन गाह। कहे कबीर संसा नहीं, भगति मुकति गति पाह रे॥५॥ शब्दार्य-बीठुला 5 विष्णु। औसेरि - (१ आहत। दुखी। २ चमत्कार। ससा 5 सशय। अर्थ-हे गोकुल नायक कृष्ण, मेरा मन आप मे छगा है। आत्मा-परमात्मा, जीव-ब्रह्म तो एक ही है। कितु फिर भी बहुत दिनो से वियोग हो गया है। मुझे आपकी याद आती है। मेरा

५२६ कबीर समग्र ससार तथा शरीर गृह अनेक कामनाओ से भरा है। मै आपके पास प्रेम की आशा से गया हूँ। में स्‍्व्य अपने ही कर्मों से माया के बधन से बधा हूँ। मेरी दोनो आँखे आपके दर्शन की प्यासी है। पराये को भी अपने समान देखने पर समत्व बुद्धि विकसित होती है। सब मे समता दीखती है। ऐ मेरे मन, कपट और अभिमानको छोड़कर प्रभु चरणोका दर्शन करों। इसी से कल्याण होगा। कहीं ती्थीदि मे जाने और पूजा-पाठ आदि का भार सिर पर उठाने की जरूरत नहीं है। भगव्स को अपने आस्वादन का विषय बनाओ। भगवान विष्णु को अपने मन मे धारण करो। जो होना होगा सो हो। इस प्रकार की साधना से सिद्धि मिलेगी। अगर प्रभु के प्रति ज्ञान दृढ़ नहीं है तो बेकार दुखी होने या चक्कर छगाने से कोई फायदा नहीं है। ससार मे एक युक्ति से एक ही चीज मिलती है। भोग की युक्ति से वधन और योग युक्ति से मोक्ष मिलेगा। कितु राम नाम की उपासना से भुक्ति मुक्ति दोनो की प्राप्ति होती है। प्रेम भक्ति ऐसी करनी चाहिए कि मुख चद्र से अमृत की वर्षा हो। आत्मा मे ही आत्म तत्त्व का विचार कीजिए तो आनद की प्राप्ति होती है। यह कविता नहीं। यह ब्रह्म सबधी विचार दर्शन है। आत्म साधना या स्व साधन ही मूल तत्त्व है। भगवान् के चरण कमलो मे चित्त को छगाओ। राम नाम के गुणो को गाओ। इसमे कोई सशय नहीं है। इससे भक्ति और मुक्ति दोनो की प्राप्ति होगी। अय मे पाइयो द्रह्म गियान, सहज समाधे सुझ मे रहियो, कोटि कलप विश्राम ।दिकु गुर कृपाल कृपा जब कीन्‍्हीं, हिरदे केबल बिगासा॥ भागा भ्रम दसों दिस सुन्नया, परम जोति प्रकासा॥ मृतक उठ्या घनक कर लीयै, काल अहेड़ भागा॥ उदय सूर निस किया पयानों, सोवत ये जब जागा। अविगत अकल अनूपम देख्या, कहतों कहा न जाई। सैन करे मन ही मर रहसे, गूँगे जोनि मिठाई॥ पहुप दिनों एक तरवर फलिया, बिन कर तूर बजाया। नारी दिनों नीर घट भरिया, सहज रूप सो पाया॥ देखत कॉँच भया तन कंचन, बिन बानी मन मोनों। उद्भ्या विहंगम खोज न पाया, ज्यूँ जल जलहि समॉरनों ॥ पूज्या देव बहुरि नहीं पूूजों, नहाये उदिक न नाँऊँ। भागा भ्रम ये कहीं कहता, आये बहुरि न ऑऊँ॥ आप में तब आपा निरष्या, अपन पै आपा सुक्या। आप कहत सुनत पुनि अपनों, अपन पे आपा बूहया।।॥ अपने परचे लागी तारी, अपन पै आप समाना। कहै कबीर जे आप बिधारै, मिटि गया आवन जॉना॥६॥ न अर्थ-अब मुझे (साधक को) ब्रह्म ज्ञान प्राप्त होगा। मै सहज समाधि के सुख , मे रहूँगा। करोड़ो कल्पो (युगों) के विश्राम का सुख प्राप्त करूँगा। कृपाडु गुरुदेव की कृपा से हृदय कमल विकसित हो गया। फलुत अज्ञानजन्य भ्रम का नाश हो गया। सभी दिशाओं मे प्रभुज्योति दिखाई पड़ रही है। विषयो के द्वारा जो मन भर गया था वह उठकर धनुष लेकर काल रूपी शिकारी को भगा रहा है। ज्ञान सूर्य के उदय से अज्ञान रात्रि जा रही है। मोह निद्रा मे पड़ा जीव जाग रहा है। जागने पर अविगत अखड, अनुपम दीख रहा है। इसके बारे में कहते हुए भी _ कुछ कहा नहीं जा रहा है।

पद ५२७ साधक को जिस तत्त्व का बोध हुआ है उसे ईशारे से कहता है। मन ही मन प्रसन्न होता है। जैसे गूँगो मिठाई के स्वाद को व्यक्त नहीं कर सकता है वैसे ही भगवत्तत्त्व अनुभूति का ' विषय है| उस अनुभूति मे अलीकिकता है। बिना किसी फूल के पेड़ मे आनद फछ फला है। बिन तुरही के बाजा बज रहा है। पनिहारिन के बिना भी शरीर या हृदय घट मे पानी भर रहा है। देखते ही देखते कच्चा शरीर स्वर्ण सा हो गया। मन बिना वाणी के भीतर ही भीतर आनदित हो रहा है। आत्म चैतन्य रूप पक्षी उड़ गया। अब वह खोजने पर भी नहीं मिलेगा। जैसे पानी मे मिले पानी की खोज नहीं हो सकती है। अब किसी देव की पूजा और तीर्थों आदि मे स्नात्न की आवश्यकता नहीं है। अब पुन ससार में नहीं आना है। यह कहानी कहते हुए भ्रम दूर हो गया। परमालतत्त्व का दर्शन आत्मा मे ही हुआ है। अब किसी से कुछ कहना सुनना नहीं है। सब आप मे ही दीखता है। आत्म तत्त्व से एक तार ध्यान लग गया। सत कबीर कहते है कि जो इस आत्मतत्त्व पर विचार करता है उसका आवागमन मिट गया है। अलंकार-विरोधाभास, रूपक, रूपकातिशयोक्ति। नरहरि सहजै ही जिनि जाना। गत फल फूल तत तर पलव, अंकूर बीज नसौनों ॥दिक॥ प्रकट प्रकास ग्यान गुरगमि यें, ब्रह्म अगनि प्रजारी। ससिहरि सूर दूर दूरंतर, छागी जोग जुग तारी॥ उलदे पवन चक्र घट बेधा, मेर डंड सरपूरा। गगन गरजि मन सुंनि समाना, बाजे अनहद तूरा॥ सुमति सरीर कबीर विघधारी, त्रिकुटी संगम स्वामी । पद आनंद काल थें छूटे, सुख मै सुरति समॉनी ॥७॥ अर्थ-ईश्वर को जिसने सहज भाव से जान लिया वही उस तत्त्व को समझता है। ' ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करने वाले साधक के लिए ससार वृक्ष, उससे उत्पन्न कर्म, कर्मफल आदि का नाश हो गया। पुनर्जन्म के बीज एवं अकुर भी नष्ट हो गए। साधक ने गुरुवृप्रा से ज्ञान प्राप्त किया है। सारी विषय वासनाएँ ब्रह्म अग्नि मे जल गयी है। सूर्य-चन्द्रमा (इडा-पिगला नाड़ियां) जो दूर थे अब दोनो एक तार हो गये है। मिल गये है। शरीर स्थित प्राणो (पवन) की गति उल्टी हो गयी है। शरीर स्थित षट्चक्रो (मूलाधार, मणिपूर, स्वाधिष्ठान, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा) को बेधती सुप्त कुडलिनी सहस्नार तक चली जाती है। मन शून्याकाश मे समा गया है। अनाहत वाजा बज रहा है। सत कबीर सुमति के स्वामी है। त्रिकुटी रूप सगम के स्वामी है। अर्थात् त्रिकुटी साधना (इडा, पिगला और सुषुम्ना का सधिस्थल) पर उनका पूर्ण अधिकार है। जो इस आनद पद को सुनता है वह सुख की स्मृति मे समाकर काल से मुक्त हो जाता है। मन रे मन ही उलटि समॉना। गुर प्रसादि अकलि भई तोकी नहीं तर था देगाना॥टेक॥ नेड़े थे दूरि दूर वै नियरा, जिनि जैसा करि जाना। औलौतीका चढूया बलीडै, जिनि पीया तिनि माना ॥ अमर न मरे मरे नहीं जीवे, ताहि खोजि बैरागी ॥ अनभे कथा कवन सो कहिये, है कोई चतुर विवेकी। कबे कबीर गुर दिया पलीता, सो झल बिरले देखी ॥८॥

५२८ कबीर समग्र शब्दार्थ-बेगॉना 5 दूसरा। पराया। नेड़े 5 नजदीक। नियरा 5 नजदीक। औउौती ओलती। बलीडै 5 छाजन के बीचोबीच का सबसे ऊँचा स्थान। है 5 लव। झल 5 झलक । ज्वाला | अर्थ-मन विषयो से हटकर मन मे ही स्थिर हो जाता है। विषयों के पीछे ही चचलता थी। अब मन आलमन्ये आत्ममना तुष्ट हो गया है। यह गुरु कृपा से हुआ वरना।मन तो समझनेवालो के लिए दूर है। पानी बड़ेरी से ओलती की ओर आता है। कितु योग की पक्रिया उल्टी है। यहाँ विषयो मे भटकता मन बाहर से भीतर आ जाता है। षट् चक्रो का भेदन करती उदान वायु से प्रेरित कुडलिनी जाग कर शून्य मे मिल जाती है। सत कबीर कहते है कि ऐ मेरे विरागी मन, उस तत्त्व की खोज करो जो अमर है, जो जन्म मरण रहित है। यह अनुभव से प्राप्त होता है। अनुभव का विषय है। कोई चतुर विवेकी ही इस तथ्य को समझ सकता है। , सदगुरु ने ज्ञान का पछीता दिया है। इसे कोई बिरछा ही समझ सकता है। अलंकार-दृष्यत, वक्रोक्ति, विशेषोक्ति | इृहि तत रांम जप रे प्रांनी, बूचे अकथ कहांणी। हरि कर भाव होई जा ऊपरि जाग्रत रैनि बिहांनी |टिक॥ डांइन डरे सुनहां डोरे स्यंघ रहे बन घेरे। पंच कुटंच मिलि झूझन लागे, बाजत सबद संघेरें। रोहे मृग ससा बन घरे, पारधी बांण न मेलै। सायर जलै सकल बन दाझे, मंछ अहेरा खेले । सोई पंडित सो तत ग्याता, जो इहि पदहि बिचारै॥९॥ _ शब्दार्थ-डाइन 5 माया। सुनहा 5 मन। स्यघ 5 अह। बन 5 जीवन। पचकुटब - पॉँचो ज्ञानेद्रियाँ। सघेरे 5 समूह मे। रोहे 5 रोध। अवरोध उत्पन्न करना। मृग > तृष्णा। ससा ८ वासना। वन 5 जीवन। पारधी 5 शिकारी। जीव। सायर 5 शरीर। दाझे >जलना। मछ+ मछली। मन | अहेरा शिकार। भाव > भावना। प्रेम। डोरा डालना ८ लोभ पैदा करना। अर्थ-हे प्राणी, ससार का मूलतत्त्व राम नाम है। इस बात को समझो। जिसका हृदय प्रभु प्रेम से पूर्ण होता है वही इस कहानी को समझता है। प्रभु वियोग मे उसकी रात जागते ही बीतती है। माया डायन मन को प्रभावित करती है। छाहूच पैदा करती है। अहकार सिह जीवन वन को घेरे रहता है। पॉचो ज्ञानेद्रिया अनेक प्रकार के शास्त्रो के शब्दों की ध्वनियों के बीच जूझती है | तृष्णा मृग एव वासना खरगोश ने जीवन वनको घेर रखा है। शरीर ताढाब जढ रहा है। सारे जीवन वन मे आग लगी है। मन मछली शिकार खेल रही है। विषयो मे ही आनद मना रही है। आन च् ० कह. "के या, सत कबीर कहते है कि वही पडित एव तत्त्वज्ञ है जो इस पद पर विचार करता है। वही... मेरा गुरु है जो स्वय भवसागर तैरता है और मुझे भी भवसागर मुक्त करता है। अलंकार-विरोधाभास | अवचधू ग्यांन लहरि धुनि मांडी रे। सदबद अतीत अनाहद राता, इहि विधि त्रिष्णां षांडी ॥टिक॥ बन के ससे समंद घर कीया, मंछा बसे पहाड़ी। सुई पीबे द्राम्मण मतवाला, फल लागा बिन बाड़ी॥ घाड थुणै कोली मे बैठी, मे खूंदा में गाड़ी। तांगे बाण पड़ी अनंवासी, सूत कहे युणि गादी

पद ५२५ कहै कबीर सुनहु रे संती, अगम ग्यांन पद माही । गुरु प्रसाद सुई के नांके, हस्ती आवै जांही ॥१०॥ शब्दार्थ-अवधू < अवधूत योगी। धुनि 5 ध्वनि। मॉडी 5 फैली। मडित। षाडी खडित। बन > देह। ससे 5 मन। समद - ब्रह्मनाड़ी। मछा 5 चैतन्य | पहाड़ी ८ शून्य शिखर | सुई + सो । वह । ब्राम्हण > ब्रह्मा को जानने वाला । फल > परमतत्त्व। बाड़ी 5 बगीचा। षाड - खात। गड्ढा। कोली 5 बुनकर। जीव। गाड़ी 5 गहराध्यान। हस्ती 5 जीव । सुई के नाक ८ सूक्ष्म मार्ग। सूत 5 उपासना। ध्यान। अर्थ-ऐ अवधूत, देखो न, चारो ओर सभी दिशाएँ ज्ञान की ध्वनिलहरों से मडित हो रही है। ज्ञान प्राप्ति एक ऐसी अवस्था है जिसमे चारो ओर आनद ही आनद दीखता है। मन के भीतर इद्रियातीत अनाहत ध्वनि हो रही है। तृष्णा खडित (समाप्त) हो रही है। देह जीवन का मन शशक ब्रह्मतत््व मे लीन जीवन का साधक अमृत रस का पान रहा है। बिना किसी बगीचे के चारो फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) या परमतत्त्व का फल फल गया है। जीव जुलाहा गड्ढे मैं बैठकर "मै का खूँटा गाड़े है। ताना-बाना नाश रहित है। ध्यान या उपासना सूत का कहना है कि मुझे गाढ़ा करो। खूब ध्यान लगाओ। यही जीवन वस्त्र का ठोस आधार है। सतत कबीर कहते है कि हमारा ध्यान प्रभु के अगम्य चरणो का भक्ति ज्ञान के अगम पदो मे लगा है। सदगुरु की कृपा से साधना के अत्यत सूक्ष्ममार्ग अर्थात् सुई की नोक से जीव हाथी आता जाता है। अलंकार-विभावना, विरोधाभास | एक अधघंभा देखा रे भाई, ठाढा सिघ चराबै गाई । दिक।। पहले पूत पीछे भइ माई, थेला के गुरु लागै पाई। जल की मछली तरवर व्याई, पकरि बिलाई मुरगे खाई॥ बैलहि डारि गूँनि घरि आई, छुत्ता कूँ लै गई बिलाई॥ तलिकर साषा ऊपरि करि मूल बहुत भाँति जड़ लागे फूल। कहे कबीर या पद को बुच, ताँव्डूँ तीन्यूँ त्रिमुवन सूचे ॥१ १॥ शब्दार्व-अचभा - आश्चर्य। ठाढ़ा 5 खड़ा। सिह ओकार। ज्ञान। गाई - इद्रियाँ। पहले सृष्टि पूर्व। माई 5 माया। पूत 5 चेतन जीव। चेला > निर्विकार चित्त। गुरु मन। जढ की मछली - माया मे रहने वाला मन। तरवर > ब्रह्मरध्र | व्याई 5 ज्ञान प्रकाश किया। बिलाई - दुर्मति। मुर्गा सुमति। बैल 5 अज्ञान। शरीर गूँनि 5 यैला। मन। कुत्ता 5 भोगवृत्ति। बिलाई 5 साधक मन | अर्थ-साधक सिद्ध कबीर दास जी कहते है कि मैने एक आश्चर्य देखा। सब उल्टा हो रहा है। ज्ञान सिह लोलुप इद्रिय को खड़ा होकर चरा रहा है। लोलुप इद्रियों ज्ञान सिह के अधिकार मे है। सुधि मे सर्वप्रथम चैतन्य विकसित हुआ तब माया माता का विकास हुआ। जब सारे चेतन भी माया रचित है। इसलिये माया अनिवर्चनी है। विकार युक्त मन जो पहले चित्त को गुरु जैसी शिक्षा देता था वही अब निर्विकार चित्त की वदना कर रहा है। क्योकि चित्त की वृत्तियो का पूर्ण निरोध हो गया है। माया स्थित मन साधना द्वारा ब्रह्मरध्र पर स्थित हो ज्ञान प्रकाश कर रहा है। दुर्मति को सुमति ने दबोच लिया है। अज्ञानी शरीर का मोह खतम हो गया है। भोगवृत्ति रूप कुत्ते को साधक मन बिल्ली ने पकड़ लिया है। यह ससार एक वृक्ष के समान है। इस वृक्ष की शाखाएँ नीचे, जड़ ऊपर है।

इसमे सुखदुख के अनेक प्रकार के फूल ढगे है। सत कबीर कहते है कि जो इस पदको समझता है उसे तीनो छोकोका ज्ञान होता है।

५३० कवीर समग्र हल तत्त्व ब्रह्मरप्र एव चेतनतत्त्व मस्तिष्क मे है। शेष नाड़ी शाखाएँ नीचे है। गीता मेंऊर्ध्वमूलमध शाखमश्वत्य प्राहरव्ययम | छदासि यस्य पार्णानि यस्त वेद स वेदावित् १५/१/ अलंकार-रूपकतिशयोक्ति। मूल मे श्लेष | हरि के घारे बड़े पकाये, जिनि जारे तिनि पाये। ग्यान अचेत फिरे नर लोई, ता जनमि जनमि डहकाए।दिक॥ घील मेंदलिया बैल रबाबी, कऊवा ताल बजावे। पहरि चोलना गादह नाथै भैसा निरति करावै॥ स्यंध बैठा पान कतरे, घूँस गिलोरा लावे। उँदरी बपुरी मंगल गावै, कछु एक आनंद सुनावै। कहै कबीर सुनहु रे संती, गडरी परबत खावा। चकवा बैसि अँगारे नियले, समंद आकासा घावा॥१२ || शब्दार्थ-घारे > कडुआ। खरा। बड़े 5 एक भोज्य पदार्थ। लोई 5 लोग। डहकाए 5 धोखा खाते रहे। जलते रहे। धौल - धवल। मैंदलिया 5 मर्दल। रवावी 5 रवाव वादक। ताढ़ < मँजीरा। निरति - नृत्य। घूँस - चूहे की जाति का एक जीव। गिलौरा 5 पान का बीड़ा। उँदरी 5 चुहिया। वपुरी 5 वेचारी। गडरी 5 भेड़। चोल > वस्त्र | अर्थ-ईश्वर ने विषयो से भरा यह ससार बड़ा बनाया है। जिन्होने अपने को साधना की आग मे जलाया है वे इस ससार को ठीक ढग से समझते है। कितु ज्ञानहीन लोग जन्म जन्माततर तक धोखा खाते है। विपयो मे जलते रहे। ससार मे जानवरों का राज्य है। पशु प्रवृत्ति है। पशु बाजा बजाते है। प्रसन्न होते है। समझदार इसे देख परेशान रहता है। धौला बैल मर्दल और सामान्य बैल रवावी वबजाते है। कीआ मैंजीरा बजाता है। गदहा वस्त्र पहनकर नाचता है। भैसा नृत्य करता है। राजा सिह पान खाता है। घूँस गिलौरा वाँधता है। चुहिया मगलगीत गाती है। कछुआ आनद गान सुनाता है। सत कवीर कहते है कि ऐ सतो, सुनो भेड़ ने पर्वत खा लिया। चकवा अगार निगल रहा है। समुद्र आकाश की ओर बढ़ रहा है। प्रलय आने वाला है। जानवरों का यह राज्य अधिक दिनो तक नहीं चल सकेगा। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति, विरोधाभास | सो चरखा जिनि जरे। कातौगी हजरी का सूत नणद के भट्टया की सौं ।टिक॥ जहि जाई थलि ऊपजी, आई नगर मैं आप। एक अचंभा देखिया, बिटिया जायो बाप || बाबल मेरा ब्याह करे, बर उत्यम ले चाहि। जब लगि बर पावे नहीं, तब लग तूँ ही ब्याहि ॥ सुबधी के घरि लुबधी आयी, आन बहू के भाइ। चूल्हे अगनि बताइ करि, फल सौ दीयो उठाई ॥ सब जगही मर जाइयो, एक बड़इया जिनि मरे । सब रॉडनि कौ साथ चरषा को घारे॥ कहे कबीर सो पंडित ज्ञाता जो या पदहि बिचारै।

पद ५३१ पहले परचै गुर मिले तो पीछे सतगुरु तारे॥१३॥ शब्दार्थ-चरखा > जीवन चक्र। हजरी 5 एक प्रकार का महीन सूत। लगता है अत्यत महीन सूत को हजरी का सूत कहते थे। आज भी सूतो के नम्बर है। नणद के भइया - प्रियतम प्रभु। बिटिया 5 माया। बाप 5 जीवात्मा। जायौ & उत्पन्न हुआ। बाबल - गुरु। सुबधी सम्यक् बुद्धि। लुबधी - लोभी बुद्धि। आन बहू के भाई > अविचार। कुबुद्धि। चूल्हे + हृदय । बताइ > बुझाना। बड़इया 5 ईश्वर। राडनि 5 प्रवृत्तियाँ। ठठाना > हँसना | अर्थ-चार अवस्थाओ वाला यह जीवन चक्र बना रहे। मै साधक प्रियतम प्रभु के साथ ससार मे मोक्ष प्राप्ति का महीन सूत कारतूँगा। जल थल मे उपजकर नगर मे स्वयं आए है। यहाँ एक आश्चर्य दीखता है। माया बेटी जीवात्मा पिता के साथ ब्याही गयी है। दोनो का गहरा सबंध हो गया है। ऐ पिता गुरु, मेरा भी उत्तम वर (परमात्मा) से सबध करा दो। और जब तक प्रभु प्रियतम की प्राप्ति नहीं हो जाती तुम मेरे साथ सबध कर छो। क्योकि गुरु और गोविन्द मे भेद नहीं | दुर्भाग्यवश सुबुद्धि के निवास घर 5 और अविचार का अधिकार हो गया है। हृदय की सारी वासनाएँ समाप्त हो गयी है। कर्मफलो या चतुर्वर्ग फलो को देखकर हँसी आती है। सारे ससर के लोग मर जायेंगे कितु एक परमात्मा (बढ़ई, चरखे का निर्माता) नहीं मरेगा। यही परमात्मा सारी प्रवृत्तियो और जीवो के साथ देह चरखे को धारण किये है। सत कबीर कहते है कि वही पडित है जो इस पद पर विचार करता है। पहले गुरु से परिचय हो तभी सदगुरु सब को मुक्त करते है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | अब मोहि ले चलि नणद के बीर, अपने देसा। इन पंचनि मिलि लूटी हूँ, कुसंग आहि बदेसा।॥टिक॥ गंग तीर मोरी खेती बारी, जमुन तीर खरिहानों। सातौ ढिरही मेरे नीपजै, पंचूँ मोर किसानां॥ कहे कबीर यह अकथ कथा है कहतों कही न जाई। सहज भाई जिहि ऊपजे, ते रमि रहे समाई ॥१४॥ शब्दार्थ-नणद के बीर,5 परमात्मा। पचनि > पॉच इद्रियाँ। बदेसा 5 विदेश। गग इंडा। जमुन 5 पिगढा। सातौ विरही 5 कफ, पित्त, वायु, रक्त, मज्जा, मास, वीर्य। पचू ८ पॉच कमेद्रियाँ। भाइ ८ भाव | अर्थ-हे प्रभु, अब तुम मुझे अपने देश मे ले चलो। सालोक्य मुक्ति दो। मै विदेश (पृथ्वी) मे इंद्रियो के कुसग मे पड़ गया हूँ। मै इडा गगाके किनारे साधनाकी खेती करता हूँ। पिगला यमुना के किनारे खलिहान लगाता हूँ। कफ, पित्त, वायु, रक्त मज्जा, मास वीर्य सब मेरे शरीर से उत्पन्न है। कितु मुझ (आत्मा) से अलग है। पॉच कमेद्रियाँ किसानो का मेरा साथ है। सत कबीर कहते है कि इस अकथनी बात को कहते नहीं बनता है। जो सहज भाव से राम की साधना करता है उसे ही यह समझ मे आता है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | अब हम सकल कुसल करि मानों, स्वॉति भई त्तव गोव्यंद जानो ॥टिक।॥। - तन में होती कोटि उपाधि, उलटि भई सुख सहज समाधि॥ जम ये उलदि भये है राम, दु:ख बिसस्या सुख किया विश्रॉम ॥ बैरी उलटि भये है मीता साघत उलटि सजन भये चीता॥।

५३२ कवीर समग्र आपा जानि उलटि ले आप, तो नहीं ब्यापै तीन्यूँ त्ताप॥ अब मन उलटि सनातन हूबवा, तब हम जोनों जीवत मूवा॥ कहे कबीर सुख सहज समाऊँ, आपन उरी न और डाराऊँ॥ शब्दार्थ-स्वोति 5 शाति। उपाधि & उपद्रव। तीनताप 5 देढ़, देव, भूत सर्दधी दुख। विश्राम 5 भात | समाप्त | अर्थ-जद मन विपयो से अलग होकर शात हुआ तद सामने भगवान को जाना ओर हमारा कुशल हुआ। अभी तक शरीर में विषयो ने अनेक उपद्रव कर रे थे। प्रभु दर्शन से सुख की समाधि ढंग गयी। पहले यम का भय था। अब उसे उल्टे राम की निर्भवता है। दुखमुख की वेदना समाप्त हो गयी है। विषय दुश्मन थे। प्रभु कृपा से वे मित्र बन गए &॥ शाक्त मज्जन हो गए है। यदि व्यक्ति आत्मा में ही आत्मा को विषयों मे मुक्त कर ले तो तीना प्रकार के दुख समाणहों जाते £□। अद मन शाश्वत हो गया ह। जीविन मृत्यु अर्थात् विषय मुक्ति हो गयी ६। क्योंकि विषय मे अनुरक्ति ही मृत्यु है। अब न मैं किसी को डराऊँगा। न किसी से उसगा। अलंकार- विरोधाभास | संती भाई आई ग्यान की आधी रे | भ्रम की ठाटी सवे उडोणी, माया रहे न बॉघी ॥टिक॥ टिति चित की देवूनी गिरेनी, मोह चलींडा तूदा।, प्रिस्नों छोनि परि घर ऊपरि, कुबंधि का भोडों फूटा। जोग जुगति करि संतो बॉधी, निरतू चुवे न पोणी। कूड कपट काया का निकस्या हरि की गति जब जोणी॥ आधी पीछे जो जल बूठा, प्रेम हरि जन भीनों। कहे कबीर भान के प्रगटे उदित भया तम पींनां ॥१ ६ ॥ शब्दार्ध-टाटी 5 दास आदि की टटिया। द्वै 5 दो। धनी # एभा। देदूनी 5 विधय ओर वासना राग देप। सुखछुख | वल्डि 5 बल्ली। तृटा 5 दृद्ा। छानि ऊ छप्पा। भरा ८ भांड। निरचू # धोड़ा भी चूनेवाला। दूठा ८ वृष्टि। भनि सूर्य । पीनों ८ क्षीण | अर्य-सतो भाई, प्रभु द्वान की आधी आयी है। फलत भ्रम की सारी टट्टियाँ, पर्दे उड़ गये। माया उन्हे वंधकर नहीं रख सकी। चित्त मे राग-द्वेष के दो से प्रेम बने खड़े थे वे गिर गये । जिस बल्लीपर तृष्णाका छप्पर बॉँधा है। वह भी दूट गया । बुद्रुद्धि झा भडा फुट गया है । अब थोड़ा भी चूने वाला पानी नहीं चूता है । शगर के कण्ट का कड़ा निकल गण, जब प्रभु की गति का ज्ञन हो गया। इस ज्ञान आधी के दाद आनद जल की वृष्टि हो गयी। उससे प्रभु प्रेमी छोग भीग गए। ज्ञान सूर्य के उदय से अज्नान तम क्षीण हो गया। अलंकार-सागरूपक | अब घटि प्रगट भये राम राई, साधि सरीर कनक की नाई।टिका। कनक कसोटी जैसे कसि लेई सुनारा, सोधि सरीर भयो तन सारा।॥ उपजत उपजत बहुत उपाई, मन थिर भयो ते तिथि पाई॥ जाहरि षोजत जनम गेंवाया, उनमर्नी ध्यान घट भीतरि पाया। विन परचे तन कॉँच कथीरा, परचे कंचन भया कवीरा ॥१ ७॥ अर्थ-अद हृदय घट मे राजाराम प्रगट हो गये। इस शरीर को सोने के समान साधो। निखारो। जेसे सुनार सोने को कसौटी पर कसकर उसकी अच्छाई पह्चानता है वेसे ही सारे शरीर का भोधन (शुद्ध) करो । बहुत बार जन्म हुआ। बहुत से उपाय भी किये। कितु जब मन गन पु

पद ५३३ स्थिर हुआ तभी सभी प्रकार की स्थिरता आई। प्रभु को व्यर्थ बाहर खोजता रहा। उन्मनी अवस्था प्राप्त होने पर उन्हे हृदय के भीतर ही पाया। प्रभु से परिचय के बिना यह शरीर कॉच (कच्चा) है। परिचय होने के बाद सोने जैसा मूल्यवान् बन जाता है। अलंकार-कॉच में श्लेश। हिडोलनों तहाँ चूले आतम राम । प्रेम भगति हिडोलना, सब संतन कौ विश्राम ॥टिक॥ चंद सूरे दोइ खंभवा, बंक नालि की डोरि। यूले पंच पियारियाँ, तहाँ झूले जीय मोर॥ द्वादस गम के अंतरा, तहाँ अपृद कौ ग्रास। जिनि यह अमृत चाषिया, सो ठाकुर हम दास ॥ सहज सुँनि को नेहरी गगन मंडल सिरमौर॥ दोऊ कुल हम आगरी, जो हम झूले हिडोल॥ अरध उरध की गंगा जमुना, मूल कवल कौ घाट। घट चक्र की गागरी, प्रिवे्णी संगम बाद |॥ नाद ब्यंद की नावरी, राम नाम कनिहार। कहै कबीर गुण गा ले गुर गैमि उतरी पार ॥१ ८॥ शब्दार्थ-आतमराम 5 आत्मा-राम शुद्ध चैतन्य । चद सूर - इडा, पिगला नाड़ी। बक नाहि - एक वक्र नाड़ी जो मेरुदडड के भीतर स्थित हैं। इसे सहस्नार और कपाल कुहर के बीच भी कहा गया है। कुडलिनी। पच पियारियाँ ८ प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान। गगा जमुना इडा-पिगला। द्वादसगम 5 सहमस्रार | हृदय से द्वादश अगुल की दूरी पर सहस्रार मे चिति है। यह शिव द्वादशात भी कहलाता है। गगनमडल < सहस्ार | अगरी > श्रेष्ठ | मूल कवहू 5 मूलाधार चक्र। त्रिवेणी + आज्ञा चक्र। नाद-व्यद 5 इनके अनेक अर्थ है। श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'जो नाद अनाहत भाव से सारे विश्व मे व्याप्त है उसी का प्रकाश जब व्यक्ति मे होता है, तो उसे नाद और बिदु कहते है।" श्री गोविद त्रिगुणायत के अनुसार नाद से कबीर का अभिप्राय अधिकतर अनाहत नाद से होता है। बिदु का यह साधारण अर्थ ब्रह्मचर्य पालन ही लेते है। कही-कही पर नाथपथियो के अनुसरण पर उन्होने नाद को परमात्मा और बिदु को जीवात्मा के कर्ता मे प्रयुक्त किया है-कबीर पृ०-३२३ कनिहार > कर्णधार। अर्ब-शुद्ध चेतन जीव प्रेम-भक्ति भावित देह के झूठे मे झूल रहा है। इस झूले मे सभी सतो को शाति मिलती है। चाँद और सूर्य (इडा-पिगला) इसके खभे है। वक्रनाड़ी कुडलिनी की रस्सी लगी है। इसमे पाँच प्राण प्यारे झूलते है। वहीं मेरा मन भी झूल रहा है। हृदय से बारह अगुल की दूरी पर सहस्नार मे चिति है। वहॉ अमृत झर रहा है। जिसने इस अमृत को चखा वह गुरु और मै उसका दास हूँ। गगन मडल का सिरमौर सहस्रार मेरा नैहर है। दोनो कुलों इहलोक परलोक) मे प्रधान है। जो मेरे साथ झूलेगी वह भी मुझ जैसी ही हो जायगी। इडा-पिगला नाड़ियाँ ऊँचे-नीचे है। वहीं त्रिकुटी त्रिवेणी मे तीनो नाड़ियो का सगम है। यहाँ नाद-बिदु (परमात्मा-जीवाल्मा) की नाव और राम-नाम केवट है। कबीरदास कहते है, प्रभु के गुण गाओ और गुरु को प्राप्त कर पार उतरो। अलंकार-सागरूपक |

५३४ कबीर समग्र कौ बीने प्रेम लागी री माई कौ बीने। राम रसाइण मातेरी, माई को बीनें | टिक पाई पाई हूँ पुतिहाई पाई की तुरियों बेचि खाई री, माई को बीने ऐसे पाई पर बिथुराई, त्यूं रस आनि बनायी री, माई को बीनै। नाथे तानों नाँचे बॉनां, नाचै कूंच पुराना री माई, की दीने ॥१९॥ शब्दार्थ-पुतिहाई - पुत्र जैसा। तुरियाँ 5 १ तूल जैसी। २ तुरीयावस्था। विधुराई « बिखराना। कूँच - जिससे सूत पर माड़ी चढ़ाते है अर्थ-इन सासारिक सवध रूप वस्त्र को कौन बुने ? साधक बुनने से रहा। क्योकि मन तो राम रसायन पीकर मत्त है। पाई पाई पुत्र प्रेम जैसा पाछा उस रूई को ससार सबंधो को पाई मे बेच दिया। तुरीयावस्था की स्थिति समाप्त कर दी। इस प्रकार महत्त्वपूर्ण प्रगति को दिया है। राम रस मे मत्त है। इडा-पिगला के ताने बाने तथा सुषुम्ना का कूँच नाच रहे | साधना पूरी हुई जन्ममरण चक्र छूटा। अब इस शरीरा वस्था को कौन बुनेगा? कोई नही मे बुनि करि सिरोनों हो राम, नालि करम नहीं ऊबरे |टिका। दखिन कूंट जब सुनहों भूँका तब हम सुगन बिचारा | लरके परके सब जागत है हम घरि चोर पसारा हो राम ॥ तानों लीन्हों बयानों लीन्हों, लीन्हे गोड के पऊवा। इत्त उत चितबन कठबन लीन्हों, मोड चलवना डऊवा हो राम । एक पग दोई पग त्रेपग, सेंघे हि संधि मिलाई। करि परपंच मोट बेंधि आये, किलिकिलि सबै मिटाई हो राम॥ तॉनां तनि करि बॉनों बुनि करि, छाक परी मोहि घ्योन। कहे कबीर मै मुनि सिरोना जानत है भगवॉनों हो राम ॥२० ॥ शब्दार्थ-सिरॉना 5 शात। नालि 5 बुनकर की नठी। दखिन कूट > दाहिनी ओर। सुनहों * सशय। कंठबन 5 कठवत। कणैती। किलकिढ > किचकिच। छाक पड़ना मत्त होना। डऊवा 5 कहछुल। मोट > गॉठरी। नालिकर्म बच्चा पैदा होते समय नाल काटने का कर्म। चोर > मृत्यु | अर्थ-हे राम, मै सासारिक धधो को बुनता, तारतम्य बिठाता थक गया हूँ। मेरा जुलाहे का नाल कर्म या जन्म-मृत्यु कर्म समाप्त नहीं हो रहा है। सशय मेरे दाहिने है। मै सशय मे पड़ा हूँ। इस सशय को छोड़कर आपकी शरण में नहीं आ पा रहा हूँ। सशय की अनुभूति ने मुझे विचार करने पर मजबूर किया। तभी देखा कि मेरे असद्,विचार जाग रहे है और तभी मृत्यु का प्रवेश हो गया है। ़्् मैने ताने बाने और कपड़ा बुनने के काम मे आने वाले छकड़ी के पावा को ढिया। उस कठैती की लिया जिसमे मॉड घोलते है। कलछुल से कपड़े और मॉड़ को मिलाया। भावार्थ कि ससार के कर्मो मे लिप्त हूँ। जीवन की चार अवस्थाएँ है। उनमे तीन पग चलने तीसरी अवस्था की सधि से संधि यानी, इन अवस्थाओ को एक दूसरे से जोड़ा। कितु इससे केवल प्रपच की गठरी ही भारी होती रही।' अब मैने तो अपनी ओर से सभी किचकिच (झझट) मिटा दिया। ताना-बाना बुन लिया। ससार ह कार्य पूरा कर लिया। अब प्रभु ध्यान मे मत्त हूँ। मै बुनि सिराना अर्थात् आवागमन समाप्त हो गया। इस बात को भगवान् राम भलीभॉति जानते है। तननां बुनता तज्या कबीर, राम नाम लिखि लिया शरीर ॥टेका।

पद ५३५ ठाड़ी /रोवे कबीर की माई, ए लरिका क्यूँ जीव खुदाइ। कहै कबीर सुनहुँ री माई, पूरणहारा त्रिभुवन राह ॥२१॥ अर्थ-साधक ने जीवन की माया का तानना-बुनना काम, क्रोध, लोभादि को छोड़ दिया। अब वह पूर्णत राममय हो गया। जब तक वह इद्रियो के छिद्रो को भरने मे, पूरा करने मे लगा था। तब तक राम के प्रति स्नेह टूटा था। इद्रिय विषयो के स्नेह ने राम से उसे अलग कर रखा था। साधक की इस स्थिति को देखकर माया माँ रो रही है। माया से उत्पन्न यह साधक जीव माया युक्त प्रवृत्तियो को छोड़कर कैसे जीवित रहेगा? साधक सत कबीर कहते है, ऐ माया, सुनो। सब की पूर्ति तो भगवान् करते है। तुम तो नाश करने वाली हो। अलंकार-सागरूप | जुगिया ्याइ मरे मरि जाई। घर जाजरी बलीडो टैढी, औलोती अरराह ॥टिक॥ मगरी तजी प्रीति पाषे सूँ डॉडी देहु लगाई। छींको छोडि उपरहि डी बांधा, ज्यूं जुगि जुगि रहे समाई। बैसि परहडी द्वार मुँदावों, ल्यावो पूत घर घेरो। जेठी धीय सासरे पठवो ज्यूँ बहुरि न आवै फेरी ॥ लहुरी धीई सबै कुल धोयो, तब ढिग बैठन पाई। कहे कबीर भाग बपरी कौ, किलिकिलि सबै चुकाई ॥२२॥ शब्दार्थ-न्याइ 5 नहीं। जाजरी > जर्जर। बलौड़ी 5 बल्ली। औलोती 5 अगरी। मगरी लकड़ी। पाषे - पक्ष। दीवार। डाडी 5 खभा। डौ 5 राम। रस्सी। परहडी « परभक्ति। किलकिल 5 किचकिच। झझठ। अर्थ-सब मर जायेंगे। कितु योगी नहीं मरेगा। यह सासारिक घर जर्जर हो गया है। शरीर वृद्धावस्था को प्राप्त हो गया है। जिन आधारो पर यह शरीर रूपी घर सुरक्षित था उनकी बल्लियाँ टेढ़ी, अगरी अररा कर गिर रही है। मकान के सहारे के खभो को गिरने दो प्रीतिपक्ष का डॉडी लगा दी। जिस छीके पर वासना रहती थी उसे खोल दिया है। प्रेम की रस्सी बॉध दी है। जैसे युगो-युगो से इस रस्सी मे बधी थी। यह शरीर पराये का है! तराशवान् है। विषयो के सभी प्रवेश द्वारा को बद कर दो। ज्ञान पुत्र को घेर कर घर छे अआ!। माया को ससार में भेजकर आवागमन से मुक्ति मिल गयी। भक्ति छोटी कन्या ने सभी कुछ को पवित्र कर दिया। तभी वह पास बैठी है। बेचारी का भाग्य कहिए। उसने विषयो के सारे किचकिच को समाप्त कर दिया। मन रे जागत रहिये भाई। गाफिल होह बसत मति खोबे, घोर घुसे घर जाई ।टेक।॥ घट चक्र की कनक कोठरी, बस्त भाव है सोई। ताला छूँजी कुलफ के लागे, उधड़त बार न होई॥ पंच पहरवा सोह गये है, बसते जागण लागी। करत विधार मनहीं मन उपज्यो, नो कही गया न आया।॥। कहै कबीर संसा सब छूटा, राम रतन घन पाया ॥२३॥ शब्दार्थ-गाफिल 5 असावधान। बसत > वस्तु। चोर माया के प्रतिनिधि काम, क्रोधादि। जाई 5 जाकर। षट चक्र 5 मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध। पहरवा « कामेद्रियाँ। बसतै > वस्तुएँ। ससा 5 सशय |

५३६ कबीर समग्र अर्थ-ऐ मन भाई, जागते रहो। असावधान मत होना। तुम्हारे घर मे काम, क्रोधादि माया-मृत्यु चोर घुस गए *ै' तुम्हारा शरीर छह चक्रो वाली सोने को कोठरी है। इसमे इद्रियो के ताले आदि भी लगे है। कितु मृत्यु चोर सब को खोलकर घुस जायगा। अतिभोग के कारण इद्रियाँ शिथिल हो गयी है। कितु कामनाएँ जागी है। कामनाएँ मन से पैदा होती है। मन मे विषय चितन करने से पैदा होती है। इसके लिए कहीं आने-जाने की जरूरत नहीं पड़ती है। सत कबीर कहते है कि मेरा तो सारा भ्रम दूर हो गया। मैने राम रल पा लिया है। चलन चलन सब को कहत है, नो जानो बैकुंठ कहाँ है ॥टिक। जोजन एक प्रमिति नहिं जाने बातन ही बैकुंठ बषाने | जब लग है बैकुंठ की आसा, तब लग नाहीं हरि चरन निवासा॥ कहें सुने कैसे पत्तिअइये, जब लग तहाँ आप 'नहि जहये। कहै कबीर बहु कहिये काहि, साध संगति बैंकुंठ हि आहि ॥२४॥ अर्थ-सभी लोग बैकुठ जाने की बात करते है। कितु बैकुठ कहाँ है यह कोई नहीं जूनता है। एक योजन प्रमाण कहा जाता है। कितु यह बातो का बखान है। कोई जानता नहीं। जब तक बैकुठ की आशा है तब तक प्रभु चरणो मे भक्ति नहीं हो सकती है। कहने सुनने से कौन विश्वास करेगा ? जब तक स्वय प्रत्यक्षीकरण न हो। सत कबीर कहते है। किससे कया कद जाय ? मै तो साधु सगति को ही बैकुठ मानता हूँ। अपने विचारि असवारी कीजै, सहज के पाइड़े पाव जब दीजै ॥ठिक॥ दे मुहरा लगॉम पहिराऊँ, सिकली जीन गगन दौराऊँ। चलि बैकुंठ तोहि ले तारो, थकहि त प्रेम ताजने मारूँ॥ जन कबीर ऐसा असवारा, बेद कतेब दहूँ ये न्यारा॥२५॥ शब्दार्थ-सहज - सहज साधना। पाइड़े 5 पायदान। मुहरा - घोड़ेके मुँह का साज। सिकली > दृढ। ताजनै 5 कोड़ा। गगन - सहस्रार। नियारा # अलग | अर्थ- अपने विचार रूपी अश्व पर सवारी कीजिए। सहजसाधना रूप पायदान पर पॉव रखकर घोड़े के मुँह मे साज के साथ सयम की लगाम लगाकर समाधि रूपी दृढ़ जीन कंत्कर सहस्रार (आकाश) तक दौड़ाओ। गगन दौड़ने का अर्थ है तेज दौड़ाना। बैकुठ को भी चलकर तार दो। विचार अश्व शिथिल हो तो प्रेम के कोड़ो से मार कर ठीक करो। वेद और कुरान से अलग से अलग वाछे भक्त कबीर ऐसे ही सवार है। अलंकार-सागरूपक, रूपकातिशणेक्ति | " आपने मै रागि आपनपो जानूँ, जिहि रंगि जॉनि ताही कूँ मानूँ॥टेक॥ अभिअंतरि मन रंग समानों, लोग कहै कबीर बोरानों | रंग न चीन्हे मूरखि लोई, जिह रेंगि रंग रह्या सब कोई ॥ जे रंग कबहुँ न आवै न जाई, कहै कबीर तिहि रह्या समाई ॥२६॥ अर्थ-आत्तत्त्व के रग मे रैंगने पर आत्म तत्त्व का बोध होता है। जो इस आत्म तत्त्व के रग मे रगा है मै उसी को मानता हूँ। सत कबीर का मन अतरग रग मे डूबा है। छोग समझते है कि कबीर पागल हो गया है। मूर्ख लोग आतरिक आनद (रग) को नहीं पहचानते। असली आतरिक ही है। सभी लोग किसी न किसी प्रकार इस रग मे रगे है। . कितु कबीर दास एक ऐसे आनद मे है जो आवागमन मुक्त, परमानद एव सनातन रे है। झगरा एक नवेरों राम, जे तुम्ह अपने जन सूँ कॉम ॥टेक॥ ब्रह्म बड़ा कि जिनि

रू उपाया, बेद बड़ा कि जहाँ ये आया॥ यह मन बड़ा कि जहाँ मन माने, राम बड़ा कि रामहि जाने।

पद ५३७ कहे कबीर हूँ खरा उदास, तीरथ बड़े कि हरि के दास॥ अर्थ-हे भगवान्, मेरे मन मे एक इन्द्र चल रहा है। हे प्रभु, मै तुम्हारा भक्त हूँ। यदि तुम्हे अपने भक्त का कुछ भी काम करना है तो इस दन्द्द का निपटारा करो। प्रश्न यह है कि ब्रह्म और ससार कर्त्ता मे कौन बड़ा है? वेद और कर्त्ता मे कौन बड़ा है? मन और जिसे मन चाहता है उनमे कौन बड़ा है? राम और राम ज्ञान मे कौन बड़ा है? मै इसे न समझने के कारण बिल्कुल उदास हूँ। तीर्थ बड़े है या भक्त बड़े है? टिप्पणी-सत कबीर की दृष्टि मे ससार का कर्त्ता (जो ब्रह्म का भी कर्ता है) बड़ा है। क्योकि वह सभी नाम रूप का कर्त्ता है। वेद कर्त्ता, जिसे मन चाहता है, रामज्ञान एवं भक्त बड़े है। गोस्वामी तुलसी जी ने कहा हैराम ते अधिक राम कर दासा। दासानुसदास ही बड़ा है। दासानुसदास ही बड़ा है। अलंकार-वक्रोति दास रामहि जानिहे रे, और न जाने कोई ॥टिक॥ काजल देह सबै कोई, चषि थाहन मौंहि बिनोन। जिनि लोइनि मन मोहिया, ते लोइन परबॉन।॥। बहुत भगति भौसागरा, नाना विधि नानों भाव। जिहि हिरदे श्रीहरि, भेटिया, सो भेद कहूँ कहूँ ठाउँ।॥ दरसन सैंमि का कीजिये, जो गुननहि होत समान। सींधव नीर कबीर मिल्यो है, फटक न मिल पखॉन ॥२ ८॥ अर्व-भक्त तो केवढ राम को जानता है। और किसी को नहीं जानता है। काजल तो सभी लगाते है कितु जिस आँख मे विज्ञान की चाह है, जिन आँखो ने मन को मोह लिया है वे आँखे की प्रमाण है। सीदर्य का प्रमाण है। ससार मे अनेक प्रकार की भक्त है। भक्ति के अनेक विधि विधान और भाव है। कितु जिस हृदय मे भगवान् है वह हृदय कहीं-कहीं है। स्वामी (राम) का दर्शन करो। दर्शन तब होता है जब भक्त मे भी भगवान् के समान गुण विकसित होते है। सैधव नमक पानी मे मिल जाता है। कितु वैसा ही पत्थर जल मे नही मिलता है। भाव यह है कि एकता बाहर की नहीं भीतर की होनी चाहिए। कैसे होहगा मिलावा हरि सनों, रे तू विष विकारन तजि तजि मनों ॥ठिक॥। रे तै जोग जुगुति जान्यों नहीं, तै गुर का सबद मान्यों नाहीं। गंदी देही देखि न फूलिये, संसार देखि न भूलिये॥ कहे कबीर मम बहु गुंनी, हरि भगति दिनोंह दुख फुनफुनी ॥२९॥ अर्थ-प्रभु से मिलन कैसे होगा? अरे मन, तू तो विषय विकारों से भरा है। उनको छोड़े बिना प्रभु से कैसे भेट होगी? योग की युक्ति को जानता नहीं। गुरुदेव के शब्दों को मानता नहीं। विषयो के सेवन से देह मैठी है। इस गदी देह का अहकार मत कर। नाशवान ससार को देख भूल न कर। सत कवीर ने बार-बार मन मे मनन किया। विचारा। विना प्रभु भक्ति किये आवागमन का दुख बार-बार होगा | कासूँ कहिये सुनि रामा, तेरा मरम न जाने कोई जी॥ दास बयेकी सद भले, परि भेद न छानों होई जी॥ टेक॥ एक सकल डह्मड तें पूरिया, अरू दूजा महि दान जी॥ राम रसाइन रतिक हे अद्धूत गति बिस्तार जी॥

५३८ कबीर समग्र भ्रम निसा जो गति करे, ताहि सूचै संसार जी। सिव सनकादिक नारदा, ब्रह्म लिया निज बास जी। कहै कबीर पद पंक्यजा, अब नेड़ा चरण निवास जी॥३०॥ अर्थ-किससे क्या कहा-सुना जाया? हे प्रभु, कोई व्यक्ति आपके तत्त्व को नहीं जानता है। आप रहस्य भरे है। सभी विवेकी बनते है। परतु आपका भेद समझने मे कौन समर्थ है। यह किसी से छिपा नहीं है। या आपका भेद कोई खोज (छान) नहीं पाता है। सारी सृष्टि मे तो प्रभु तुम ही हो। कोई दूसरा स्थान नहीं जो प्रभु रहित हो। जो राम प्रेमी है उनकी अद्भुत शक्ति है। वे तुम्हारी अद्भुत स्थिति को समझते है। जिसने इस भ्रम रात्रि से मुक्ति पाली है उसे ससार दिखाई पड़ता है। शिव सनाकादि, नारद, ब्रह्म ने ठीक ही तुम्हारे चरणो मे निवास किया हैं। तुम्हारा पद पकज अब सबके नजदीक हो गया है। सबने वहीं स्थान बनाया है। मै डोरे जाऊँगा, तो में बहुरि न भौजलि जाऊँगा।टेक॥ सूत बहुत कुछ थोरा, तावे, लाइ ले कंथा डेरा। कंथा डोरा लागा, तब जुरा मरण भी भागा॥ जहाँ सूत कपास ने पूनी, तहाँ बसे इक मूनी। उस मूनी सूँ चित्त लाऊंगा, तौ मै बहुरि न भौजलि आऊँगा।॥ मेरे डंड इक छाजा, तहाँ बसे इक मूनी। उस मूनी सूँ चित्त लाऊंगा, तो मै बहुरि न भौजलि आऊँगा।॥ मेरे इंड इक छाजा, तहाँ बसे इक राजा। तिस राजा सूँ घित्त लाऊँगा, तौ में बहुरि न भौजलि आऊँगा॥ जहाँ बहु हीरा धन मोती, तहाँ तत लाई ले जोती। तिस जोतिहि जोति मिलॉऊँगा,तौ मैं बहुरि न भौजलि आजऊँगा।॥ जहाँ ऊगे सुर न चंदा, तहाँ देख्या एक अनंदा। उस आनंद सूँ लौ लाऊँगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊँगा।॥ मूल बंध इक पावा, तहाँ सिध गणेश्वर रावौं। तिस मूलहि मूल मिलाऊँगा तो मै बहुरि न भौजलि आऊँगा।॥ कबीरा तालिब तेरा, तहाँ गोपत हरी गुर मोरा। तहाँ हेत हरि चित लाऊँगा, तो मैं बहुरि न भौजलि आऊँगा॥३१॥ अर्थ-मै साधक, डोरे-डोरे, साधना के सूक्ष्ममार्ग से जाऊँगा तो पुन भवार्णव मे आना न होगा। बहुत थोड़ी साधना से समाधि की कथा तैयार की है। जब साधना की डोर समाधि कथा मे लगी तो जरा मृत्यु का भय (भौ) समाप्त हुआ। सूत, कपास, पूनी अर्थात् इंद्रिय शून्य उन्मन मुनि का निवास है। उस मुनि मे ध्यान लगाने से भवार्णव मे नहीं आना होता है। जहाँ मेरुदड स्थित है वहाँ आत्मानुभव राजा रहता है। उस आत्मानुभव राजा मे ध्यान लगाने से पुन ससार मे आना नहीं होगा। जिस सहसार मे ज्ञान धन के मोती तथा तत्त्व की ज्योति जठती है। वह ध्यान लगने पर पुन ससार मे आना नहीं होता है। क्योकि आत्मप्रकाश से आत्म प्रकाश की भेट होती है। जहाँ सूर्यचद्र नहीं मिलते। उनका प्रकाश नहीं होता। फिर भी सदा प्रकाशानद रहता है। उस आनदके प्रति लौ छुगाने पर ससारमे पुनरागमन नहीं होगा। मूलाधार चक्र के राजा गणेश है। उस मूल से मूल तत्त्व को मिलाऊँगा। तो मै पुन ससार मे नहीं आऊंगा। गुप्त या गोपीनाथ हरि मेरा गुरु और मै उसका तालिब (चाहने वाला, प्रेमी) हूँ। हरि के प्रेम मे चित्त लगाऊँ तो पुन ससार मे आना नहीं होगा। ऐआ]

पद ५३९ संतों धागा टूटा गयन बिनसि गा, सबद जु कहाँ समाई। ए संसा मोहि निस दिन व्यापै, कोई न कहै समझाई ॥टेक॥ नहीं ब्रह्मं ंड प्यंड पुनि नोहि, पंचतत भी नाहीं। इला प्यंगुला सुखमन नॉही, ए गुण कहाँ समाहीं॥ नहीं ग्रिह द्वार कछू नहीं, तहियाँ, रचनहार पुनि नौंहीं। जीवनहार अतीत सदा संगि, ये गुण तहाँ समोर्ही॥ , तूटे बेंधे बंधे पनि तूटे,तब तब होई बिनासा। तब को ठाकुर अब को सेवग, को काके बिसवासा। कहै कबीर यहु गगन न बिनसे, जो धागा उनमाँनों। सीखें सुनें पढ़ें का होई, जो नहीं पदहि समाना॥३ २॥ अर्थ-सत कबीर साहब कहते है कि ऐ सतो, जीवन श्वास का सूत्र टूट गया। सॉस छूट गंयी। साधना का ध्यान टूट गया। अब शब्द (नाद तत्त्व) के लिये कोई स्थान नहीं रहा। शरीर और श्वास के रहने पर ही साधना होती है तथा शब्द रहता है। जीवन के बिना शब्द की स्थिति भी नहीं है। ब्रह्माड, पिड, पचतत्त्व (पच महाभूत), इडा, पिगला, सुषुम्ना आदि भी समाप्त हो जाते है। ऐसे मे गुणो के लिए भी स्थान नहीं रहता है। घर, द्वार सृश्किर्ता, जीवन हरने वालो, विषयातीत, सदा सग करने वालो मे गुणो की स्थिति रहती है। विनाश के बाद भी जन्म-मृत्यु समाप्त नहीं होती। मुक्ति और बधन चलता रहता है। ब्रह्म जो स्वामी था जीव रूप मे सेवक बन जाता है। किसी का विश्वास नहीं। कब कौन क्या बना जायगा? यदि ध्यान का धागा उन्मनी स्थिति से जुड़ जाय तो आकाश तत्त्व का कभी नाश नहीं होगा। आकाश तो शून्य है। जरा-मरणरहित है। इसलिये शून्य नित्य है। पढ़नेलिखने से कुछ नहीं होता है। असल है भगवत्वरणो या पद साधना मे लीन होना | ता मन कौ खोजहू रे भाई, तन छूटे मन कहाँ समाई ॥टेक॥ सनक सनंदन जैदेव नामा भगति करी मन उन्हें न जानीं। सिव विरंधि नारद मुनि ग्यानी, मन कर गति उनहूँ नही जानी ॥ घू प्रहिताद बभीषन सेषा, तन भीतर मन उनहूँ न देषा। ता मन का कोई जाने भेव, रंचक लीन भया सुषदेव ॥ गोरघ भरतरी गोपीयंदा, ता मन सौ मिलि करे अनंदा। अकल निरंजन सकल सरीरा ता पन सौ मिलि रहा कबीरा ॥३ ३॥ विशेष-मन ही मुख्य है। मन भी दो प्रकार का है-समना और उन्मना। समना सासारिक धधो मे फेंसा मन है। पवन का प्रवेश जब सुषुमना मे होता है तब मन भी उसमे प्रवेश करता है जिससे उन्मना की सिद्धि होती है। अर्थ-सत कबीर कहते है कि उस मन की खोज करनी चाहिए जो शरीर मे रहकर भी शरीर मुक्त हो। शरीर छूटने पर अर्थात् मृत्यु के बाद भी जिसका नाश न हो। उन्मना का कभी नाश नहीं होता है। सनक, सनदन, जयदेव, नामदेव आदि ने भक्ति की। कितु उस मन को वे भी नहीं जान सके। शिव, ब्रह्मा, नारद आदि ज्ञानी मुनियो को भी उस मन का पता न छगा। ध्रुव, प्रह्मद, विभीषण, शेषनाग ने भी तन के भीतर रहने वाले मन को नहीं देखा है। उस मन को जानने मे थोड़ी सफलता मुनि शुकदेव को मिली। गोरखनाथ, गोपीचन्द आदि योगी उस मन से मिलकर आनद करते है। वह आनद करते हा अखड, असीम एवं विषयो की कालिमा से मुक्ति ही संत कबीर का ध्येय है। वे उससे ल गये है।

७५४० कबीर समग्र टिप्पणी-सत कबीर ने मन के समान ही साधको के दो भेद किये है। एक सगुण और शास्त्रदद्ध साधक भक्त है। उन्हे मन की गति समझ मे नहीं आती है। दूप्रे निगुण योगी है जो मन की गति और भेद को समझते है। भाई रे बिरले दोसत कबीर के, यहु तत बार बार कासों कहिए। भानण घड़ण सँवारण संग्रथ, ज्यूँ राषे त्यूँ रहिए ॥टेक॥ आलम दुनों सबै फिरि खोजी, हरि बिन सकल अयानो। छह दरसन छदनबै पाषंड, आकुल किनहुँ न जानाँ॥ जप तप संजम पूजा अरचा, जोतिग जग बोरनां। कागद लिखि लिखि जगत भुलानों, मनहीं मद न समानों॥ कहै कबीर जोगी अरु, जंगम ए सब झूठी आसा। गुर प्रसादि रटी चानिग ज्यूँ, निहये भगति निवासा ॥३४॥ शब्दार्थ-घड़ण + गढ़ना। भानण 5 भग्न करना। आलम 5 ससार। अयानॉ > अज्ञान। छहदरसन - षट्दर्शन 5 साख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमासा (पूर्व), वेदात (उत्तर मीमासा)। छयानबै पाषड < योगी १२, जगम १६,, शेवड़ा २४, सन्यासी १०, दरवेश १४, ब्राह्मण १८। जोतिग 5 दीपक जलाना या ज्योतिष। योगी 5 नाथपथी (?)। जगम < कर्नाटक के लिगायतो का एक सप्रदाय। यह लिगोपासक होता है। चात्रिग 5 चातक। निहचै 5 निश्चय । आर्थ-बिरले ही व्यक्ति कबीर की साधना के साथी होगे। यह बात इतनी कठिन और सूक्ष्म है कि कोई समझने वाला नहीं है। जो प्रभु, नाश, निर्माण और सजाने में समर्थ है वह जैसे चाहे वैसे रहना होगा। इसछोक एवं परलोक सर्वत्र खोज लिया, भगवान के बिना सब कुछ अज्ञान भरा है। छह दर्शन और छियानवे साधना-सम्प्रदाय सब पाखड है। ये सभी ईश्वर को जानने के लिए आकुल है अवश्य। कितु ईश्वर को कोई जानता नहीं। ससार के सारे लोग जप, तप, सयम, पूजा, अर्चना, आरती करते है। उसी मे पागल है। शास्त्र लिखकर भूले है। कितु मन को मन मे समाहित नहीं करते है। सत कबीर कहते है, योगी और जगम इनसे किसी आशा की पूर्ति झूठी आशा है। सदृगुरु की कृपा से चातक के समान प्रभु की अखड भक्ति करो। अलंकार-चात्रिक ज्यूँ मे उपमा। कितेक सिव संकर गए ऊठि, राम समाधि अजहूँ नहि छूटि |टिक।॥ प्रढ़ काल कहूँ कितेक भाष, गये इंदरो अगणित लाप। ब्रह्मा खोजि परयो गहि नाल, कहै कबीर वै राम निराल॥३ ५॥ अर्थ-राम ब्रह्म है। शिव-शकर देवता है। कितनी ही बार शिव-शकर आये-गये। कितु ब्रह्म राम आज भी समाधिस्थ है। क्योकि वे सनातन है। प्रलय के बारे मे क्या कहा जाय ? केवल इतना ही कहा जा सकता है कि अनगिनत लाखो इद्र प्रढझय मे विछीन हो गये। ब्रह्मा कमल नाल मे राम को खोजते रहे। कितु निराले राम से कहाँ भेट होती ? अच्यंत च्यंत ए माधी, सो सब मॉहि समानों। ताहि छाड़ि जे ऑन भजत है, ते सब भ्रंमि भुलानों।टिक। ईस कहै मे ध्यान न जानूँ, दुरलूभ निज पद मोहीं। रंधक करूणों कारणि केसो, नाम घारण कौ तोहीं॥ कही धो सबद कहाँ वे आवे, अरु फिर कहाँ समाई। सबद अतीत का मरम न जाने, भ्रंमि भूली दुनियाई ॥ प्यंड युकति कहाँ ले कीजै, जो पद मुकति न होई।

पद ५४१ प्यैंडे मुकति कहतेहे मुनिजन, सबद अतीत था सोई॥ प्रगट गुपत गुपत पुनि प्रगट,सो कत रहै लुकाई। कबीर परमानंद मनाये, अकथ कथ्यो नहीं जाई॥३ ६॥ शब्दार्थ-ईस - ईश्वर। शिव। ये 5 से। ए 5 यह। अर्थ-अचितनीय एवं चितनीय प्रभु सब के भीतर है। इस प्रभु को छोड़कर जो दूसरे का भजन करते है वे सभी भ्रम में है। शकर जी कहते है कि निज (अपने) प्रभु के चरण मेरे लिये दुर्लभ है। मै उनका ठीक ध्यान नहीं जानता हूँ। प्रभु की शोड़ी से दया के कारण ही मै उनका नामस्मरण करता हूँ। शब्द कहाँ से आता है? कहाँ समाता है? प्रभु तो इस शब्द से भी अतीत है। उनका रहस्य कोई नहीं जानता है। सारी दुनिया भ्रम मे है। शरीर की मुक्ति व्यर्थ है। जब तक प्रभु चरण मे लीनता रूप मुक्ति न हो जाय। मुनि छोग पिड की मुक्ति ही कहते है। कितु यह तो शब्दों से नहीं जाना जा सकता है। जो गुप्त और प्रगट है वह कैसे छिपकर रहेगा। बिना ईश्वरकी कृपाके अकथनी कथनी नहीं हो सकती है। सो कछू विधारहु पंडित लोई, जाके रूप न रेष बरण नहीं कोई ॥टेक॥ उपजै प्यंड प्रान कहाँ थे आवै, मूवा जीव जाई कहाँ समावे। इंद्री कहाँ करिहि विश्रामा, सो कत गया जो कहता रामा॥ पंचतत तहाँ सब्रद न स्वाद, अलख निरंजन विद्या न बाद। कहै कबीर मन मनहि समानों, तब आगम निगम झूठ करि जाना ॥३७॥ अर्थ-पडित लोग उस तत्त्व पर विचार करो जिसके रूप, वर्ण, रेखा आदि नहीं है। जो निराकार है। यह शरीर पिड कैसे उपजता है? जड़ शरीर मे प्राण कहॉ से आता है? मृत्यु के बाद जीव कहाँ जाता है? इद्रियाँ कहाँ विश्राम करती है? राम कहने वाली वाकशक्ति कहाँ चली गयी ? अलख निरजन प्रभु वहॉ बसता है? जहाँ न पचतत्त्व है। न शब्द है, न स्वाद है, न विद्या है, न वाद है। सत कबीर कहते है कि जब मन मन मे समाहित होता है तब आगमनिगम झूठ लगने लगते है। जौं पै वीज रूप भगवाना, तौ पंडित का कथिसि गियाना ।टेक॥ नहीं तन नहीं मन अहंकारा नहीं सत रज तम तीनि प्रकारा। विष अमृत फल फले अनेक, बेद रु बोधक है तरु एक॥ कहै कबीर इहे मन माना, कहिघूँ छूट कवन उरज्ञाना॥३ ८॥ अर्थ-मूल तो भगवान् है। फिर पडित लोग और किससे ज्ञान की बात कहते है? तन, मन, अहकार, सतू, रज, तम ये सब मूल नहीं है। वेद कहते है कि सब एक वृक्ष (भगवान्) के विकास है। इसमे बुरे-अच्छे (विष अमृत) फल लगे है। मन इस वृक्ष की माया मे उलझा है। कहो, कैसे करके छूट सकेगा ? पांडे कौन कुमति तोहि लागी, हूँ राम न जपहि अभागी।॥टेक॥ वेद पुरान पढ़त अस पांडे, खर चंदन जैसे भरा। राम नाम तत समझत नहीं, अंति पड़े मुखि छारा॥ वेद पढ्याँ का यहु फल पांडे, सब घटि देखे रामा। जन्म मरन ये तो हूँ छूटे, सुफल हूँहि सद कामों ॥ जीव बधत अरू धरम कहत हो, अधरम कहाँ है भाई। आपन तौ मुनिजन है बैठे, का सनि कही कसाई॥ नारद कहै व्यास यो भाषे, सुखदेव पूछो जाई।

पर कबीर समग्र कहै कबीर कुमति तब छूटे, जे रहो राम लयौ लाई ॥३९॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि हे पडित, तुम कुमति मे पड़े हो। इसी से राम नाम जैसा सीधा मत्र न जप कर बिना वेद-पुराण पढ़ते हो। वेद-पुराण तुम पर भार बने है जैसे गधे पर चदन लदा हो। वेद तत्त्व और रामतत्त्व दोनो तुम नहीं समझते हो। फलत अत मे तुम्हारे मुँह मे धूछ पड़ेगी। वेद पढ़ने का फल हरेएक में राम का दर्शन है। तभी जन्म-मरण छूटते है। कामनाएँ फलती है। जीब हत्याको धर्म कहते हो तो अधर्म क्या है? स्वय तो मुनि हो तो कसाई कौन है? नारद, व्यास, शुकदेव से जाकर पूछो। वे बताते है कि राम मे छव लगाओ। तभी कुमति छूटेगी। टिप्पणी-नारद (भक्ति सूत्र) व्यास (पुराण) आर शुकदेव (भागवत) तीनो के आचार्य है। पंडित बाद बदंते झूठा। राम कह्यों दुनियाँ गति पावै, घाँड कहाँ मुख 6 [दिक।॥ पावक कहद्मौँ पाव जे दाझे, जल कहि त्रिषा बुझाई। भोजन कष्माँ भूष जे भाजै, तो सब कोई तिरि जाई ॥ नरक के साथि सूवा हरि बोले, हरि परताप न जाने। जो कबहूँ उड़ि जाई जंगल मे, बहुरि न सूरते आने ॥ साथी प्रीति विषे माया सूँ, होरे भगतनि सूँ हासी। कहै कबीर प्रेम नहीं उपज्यो बॉध्यो जमपुरि जासी ॥४०॥ अर्थ-पडित झूठी बात बोलते हो। मात्र राम कहने से मुक्ति नहीं मिलती है। जैसे मीठा कहने से मुँह नहीं मीठा होता है। आग कहने से पैर नहीं जलता। जल नाम लेने से प्यास नहीं बुझती है। भोजन कहने से भूख नहीं भागती है। ऐसा होता तो सभी मुक्त हो जाते। मनुष्य के साथ सुग्गा भी राम-राम रटता है। कितु वह प्रभु की महिमा नहीं जानता है। जब कभी जगल मे उड़ जाता है तो कभी ईश्वर का नाम ध्यान में हीं आता है। जिनके हृदय मे विषयो के प्रति सच्चा प्रेम है वे सतो एवं हरिभक्तो को मजाक समझते है। सत कबीर कहते है कि प्रभु प्रेम न होने के कारण मनुष्य सीधा यमपुर जायगा। जै पै करता बरण बिचारे, तो जनमत तीनि डॉड़ि किन सारे ॥टेक॥ उतपति व्यंद कहाँ ये आया, तो घरी अरु लागी माया। नहीं को ऊँचा नहीं को नीचा, जाका प्यंड ताही का सींचा | जे तूं बाभन बभनी जाया, तो ऑनबाट द्व काहै न आया। जे हूँ तुरक ठुरकनी जाया, तो भीतरि खतनों क्यूँ न कराया॥ कहै कबीर मधिम नहीं कोई, सौ मधिम जा मुखि राम न होई ॥४१॥ शब्दार्थ-तीनि डॉड़ि 5 भस्म की तीन लकीरे। रारना 5 बनाना। पूरा करना। व्यद वीर्य । को 5 कोई। प्यड < शरीर। सींचा + सिचित। जाया 5 उत्पन्न। ऑन < अन्य जा ८ जिसके। मधिम > छोटा | अर्व-ईश्वर के यहाँ वर्ण व्यवस्था नहीं है। अगर ईश्वर ने वर्ण व्यवस्था बनायी होती तो ज्ैजो के माथे पर जन्म से ही तीन रेखाओ का तिलक होता। जिस वीर्य से मनुष्य की उत्पत्ति होती है वह कहाँ से आया है? उसमे माया का प्रवेश कैसे हुआ। न कोई नीचा है। न कोई ऊँचा है। सभी शरीर ईश्वर के वीर्य से सिचत है| क्योकि सारे शरीर उसी के है अर अगर ब्राह्मण ब्राह्मणी से उत्पन्न है तो वह भी वैसे ही पैदा हुआ है जैसे दूसरी जातियों | मुसलमान जन्म से होता तो उसका खतना गर्भ मे ही हो जाता | ससार मे कोई छोटा नहीं है। छोटा वह है जिसके मुँह मे राम-रोम का उच्चारण नहीं है।

पद एड३ कथता बकता सुरता सोई, आप बिचारे सो ग्यानी होई ॥टेक।॥ जैसे अगिन पवन का मेला, चंचल चपल बुधि का खेला। नव दरवाजे दस दुवार, वूझि रे ग्यांनी ग्यान विचार ॥ देही माटी बोलै बवनों, वूझि रे ज्ञानी मूवा स कौनों मुई सुरति बाढ़ अंहकार, वह न मुवा जो बोलणहार। जिस कारनि तटि तीरबि जॉहीं, रतन पदारव घटहीं माहीं। रे पढ़ि पढ़ि पंडित बेद व्षांणे, भीतरि हुती बसत न जाँणे॥ कहै कबीर गुरु ब्रह्मा दिखाया, मरता जरता नजरि न आया ॥४२॥ अर्थ-कहने बोलने और सुनने से नहीं, आत्म विचार से ज्ञानी होता है। जैसे आग और हवा एक दूसरे को प्रभावित करते है वैसे ही यह ससार चचल बुद्धि का खेल है। इस शरीर मे सामान्यत नव छिद्र (दरवाजे) है। दशम ब्रह्मरध्न है। इसे विचारक ज्ञानी ही समझते है। मिट्टी के शरीर मे हवा (प्राण) बोलती है। अब सवाल है, इसमे मृत्यु किसकी होती है? मिट्टी वाली देह की या पवन प्राण की? सुरति (स्मृति) एव अहकार वाद की मृत्यु हो गयी कितु वह नहीं मरा जा बोल रहा था। जो मूल तत्त्व था। जिस ईश्वर के लिये तुम तीर्थों, नदी किनारे मे जाते हो वह प्रभु तो तुम्हारे हृदय मे ही विराज रहा है। विद्वान छोग पढ़-पढ़ कर वेदो का वर्णन करते है कितु भीतर के परम तत्त्व से अपरिचित है। मै नहीं मरा। मेरी बला मरी। वह जो हमारे भीतर है उसकी मृत्यु नहीं हुई। सत कबीर कहते है कि गुरु ने ब्रह्म का दर्शन करा दिया। अब न कोई मरता है। न जछता है। क्योकि मरना जलना दोनो माया के खेल थे। हम न मरे मरिहे संसारा, हम कूँ मिलल््या जियानवहारा टिक) अब न मरी मरने मन माना, ते नर मुए जिनि राम न जॉना। साकत मरे संत जन जीवै, भरि भरि राम रसाइन पीवे॥ हरि मरिंहे तो हमहूँ मरिंहे, हरि न मरे हँस काहे कूँ मरिहे। कहे कबीर मन मनहि मिलावा, अमर भये सुख सागर पावा ॥४३॥ अर्थ-हम भक्त की मृत्यु नहीं होगी। बावजूद इसके कि यह ससार नाशवानू है। ससार मे मुझे जिलाने वाले प्रभु मिल गए है। मै अब नहीं मरूँगा। मन ने विषयो से मृत्यु प्राप्त कर ली : है। विषयो के प्रति मन का लगाव समाप्त होकर राम के प्रति छग गया है। मरते वे है जो राम को नही जानते है। शाक्त विषयासक्त मरता है। सत जीते है। सत राम रसायन (जीवित रहने की औषधि) पीते है। खूब पीते है। राम रसायन के सेवन से भक्त भगवान् हो गया। भगवान् तो मरते नहीं, तो भक्त कैसे मरेगा। जो मन को मत्त मे मिला देता है वह अमर हो जाता है। वह सुख का समुद्र पा जाता है। कौन मरे कौद जनमै आई, सरग नरक कौने गति पाई ॥टेक॥ पंचतत अवियत थे उतपनों, एके किया निवासा। बिछुरे तत फिरि सहजि समॉनों, रेख रही नहीं आसा॥ जल मे कुंभ कुंभ मै जल है, बाहरि भीतरि पानी। फूटा कुंभ जल जलहि समानां, यह तत कथी गियानी॥ आदे गगनों अंते गगना मथे गगनों भाई॥ कहे कबीर करम किस लागै, झूठी सकं उपाई ॥४४॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि जन्म, मृत्यु, स्वर्ग-नरक प्राप्ति ये सब किसके होते है? वह कौन तत्त्व है? पॉचो तत्त्व (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) एक ही अविगत प्रभु मे स्थित

पड कबीर समग्र है। वे उसी से उत्पन्न होते है। वे फिर उसी मे विलीन होते है। ऐसे वीन होते है कि उनका चिह्न भी दिखाई नही पड़ता है। ब्रह्म और तत्त्व एक है। जैसे घड़े और नदी का पानी अहूग दीखता है। बावजूद इसके भरा घड़ा पानी मे ही है। किंतु घट फूटते ही दोनो पानी एक हो जाते है। जल जल मे मिढु जाता है। आदि, मध्य, अत सर्वत्र ही आकाश तत्त्व फैला है। उसी प्रकार सर्वत्र परमात्म तत्त्व विराज रहा है। शुद्ध चैनन्य को कोई कर्म बधित नहीं करता है। ये जन्म, मरण, सुख, दुख कर्म के अग है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | कौन मरे कहू पंडित जनाँ, सो समझ्नाई कही हम सनों ॥टेक॥ माटी माटी रही समाह, पवने पवन लिया संग लाइ। कहै कबीर सुंनि पंडित गुनी, रूप मूवा सब देखे दुर्नी ॥४५॥ ; अर्थ-पडित जन मुझे समझाकर कहो कि मृत्यु किसकी होती है? मिट्टी, हवा आदि पॉच तत्त्वों से बना यह शरीर पुन इन्हीं मे विलीन हो जाता है। दुनिया देखती है कि रूप मरता है। न कि रूप के पीछे रहने वाली आत्मा का नाश होता है। जें को मरे मरन है मीठा, गुरू परसादि जिनहीं मरि दीठा टेक मुवा करता मुई ज करनी, मुई नारि सुरति बहु घरनी। मूवा आपा मूवा मान, परपंच लेड मूवा अभिमॉन॥ राम रमे रमि जे जन मूवा, कहै कबीर अविनासी हुआ ॥४६॥ अर्थ-मरना अत्यत मीठा है। यदि किसी ने गुरु की कृपा से मृत्यु को देख लिया है। कर्त्तापन का अहकार मरता है। कर्म भावना मरती है। शरीर और ससार के प्रति लगाव की स्पृति मरती है अथवा सुदर घरनी का सौदर्य मरता है। अहकार, मान, प्रपच के साथ अभिमान मरता है। राम मे रमण कर जो व्यक्ति मरता है वह नाशरहित ,अविनाशी प्रभु हो जाता है। तुरु०-श्याम सम सुकुमार तुम प्रियतम मरण है, मरण मेरे |-आरसी। जस तूँ तस तोहि कोइ न जान, लोग कहे सब आनहि ऑन ।॥टेक॥ चारि बेद घहुँ मत का विचार, इहि भ्रैमि भूलि परयो संसार। सुरति सुमृति दोई की बिसवास, वाक्षि परथी सब आसा पास॥ ब्रह्मादिक सनकादिक सुर नर, मै बपुरी घूंका मै का कर। जिहि तुम्ह तारी सोई पे तिरई, कहे कबीर ताँतर बॉध्यी मरई ॥४७॥ अर्थ-हे प्रभु, तुम्हारे सही रूप को कोई नहीं जानता है। लोग दूसरा ही दूसरा कहते है। चारो वेदो के चार मत है। सारा ससार इन्हीं मे भूला है। श्रुति-स्पृति के आशा-विश्वास मे लोग फॉस लिए गये है। ब्रह्मादि, सनकादि, सुरनर सब बेचारे कहते है कि मै क्या कर सकता हूँ? है प्रभु, जिसे कृपा कर तारते हो वह तरता है। वरना बधा मरता है। लोका तुफ्ठ ज कहत ही नंद की नंदन कही घुं काकौ रे। धरनि अकास दोऊ नहीं होते, तब यहु नंद कहाँ थो रे।दिक॥ अबिनासी उपजै नहि बिनसे, संत सुजस कहै ताकी रे॥ लष चौरासी जीव जंत मै भ्रमत नंद थाकौ रे। दास कबीर कौ ठाकुर ऐसो,' भगति करे हरि ताकौ रे ॥४८॥ अर्थ-लोग कृष्णको नदका पुत्र कहते है। यह ब्रताओ कि नद किसके पुत्र है? जब धरती और आकाश की भी सृष्टि नहीं हुई थी तब यह नद कहाँ थे? जिसका नाम निरजन हैं वही जन्मता है और मरता है। अविनाशी जन्म मृत्यु विहीन है। इसीलिये कृष्ण को नद बालक कहना रा

पद हे ठीक नहीं। नद बालक कहने से कृष्ण की भगवत्ता खडित होती है। चौरासी छाख जीव योनि मे घूमते-घूमते नद थक गए है। कबीर दास के प्रभु ऐसे अजन्मा और अविनाशी है कि हरि भी उसकी भक्ति करते है। निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई, अविगति की गति लखी न हि (टिका चारि बेद जाके सुप्रत नो व्याकरनों मरम न जॉनों॥ चारि वेद जाके गरड समानों, चरन कबल केवला नहीं जॉनाँ॥ कहै कबीर जाके भेदे नाही, निज जन बैठे हरि की छाहीं॥४९॥ अर्थ-अरे भाई, निर्गुण राम की उपासना करो। जिस अविगत प्रभु की गति देखी नहीजा सकती है। चार वेद, स्पृतियाँ, पुराण, नौ व्याकरण आदि जिसके मर्म को नहीं जानते है। जिस भक्त के हृदय मे भेद नहीं है। अद्वैत भाव है वह प्रभु की छाया मे बैठता है। मैं सबनि मे औरनि मे हूँ सब। ' मेरी बिलगि बिलगि बिलगाई हो, कोई कहौ कबीर कोई कहौ राम राई हो ।।टठेका। _ ना हम बार बूढ नाही हम ना हमरे चिलकाई हो। पठए न जाऊँ अरवा नहीं आऊँ सहजि रहूँ हरिआई हो॥ बोठन हमरे एक पछेवरा, लोक बोलै इकताई हो॥ जुलहे तनि बुनि पॉनि न पावल, फार बुनी दस ठोंउ हो॥ त्रिगुण रहित फल रमि हम राखल, तब हमारी नोंउ राम राई हो। जग मै देखी जग न देखे मोहि, इहि कबीर कछु पाई हो ॥५०॥ शब्दार्थ-चिलकाई- बच्चा। इकताई - एक तार का बुना। अर्थ-सव मे मै ही हूँ।औरो मे भी हूँ। छोग मुझे अछूग-अछग ढग से कहते है। कोई कबीर, कोई राम कहता है। मै बच्चा बूढ़ा नहीं हूँ। मेरे बच्चे भी नहीं है। भेजने पर नहीं जाता। यो ही नहीं आता। सहज प्रसन्न रहता हूँ। शरीर ही मेरा एक मात्र ओढ़ना है। छोग इसे एक तार का बुना कहते है। एक ही तत्त्व से बना है। जुलाहे (प्रभु) ने जब इसे तानबुन कर भी बाजार (पण्य > पॉनि) न पाकर इसे दस स्थान से फाड़ कर बुन दिया। शरीर के दस छिढद्र है। हम त्रिगुण के फल से मुक्त है। अर्थात् त्रिगुण का हमारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं है। इसी से हम राजा राम कहलाते है। मै द्रश् सारे ससार को देखता हूँ। कितु ससार मुझे नहीं देखता है। सत कबीर ने ऐसा ही ज्ञान पाया है। लोगा जानि न भूलो भाई। खालिक खलक खलक मैं खलिक, सब घट रह्यो समाई ॥टेक॥ अला एके नूर उपनाया, ताकी कैसी निदा। ता नूर थे सब जय कीया, कौन भला कौन मंदा॥ ता अला की गति नहीं जॉनी गुरि गुड़ दीया मीठा। कहै कबीर मे पूरा पाया, सब घंटि साहिब दीठा ॥५१॥ भ्द्धार्य-खालिक - ईश्वर | खलक - सृष्टि ससार। नूर 5 ज्योति । कुदरत। प्रकृति। बदे - दास। सेवक। दीठा दृष्ट। देखा। रु अर्थ-लोगो, भूलो मत। ईश्वर और उसकी सृष्टि एक दूसरे से सम्बद्ध है। सृष्टि ईश्वर और ईश्वर सृष्टि मे है। व्यष्टि और विराट का सबध है। सभी शरीर और हृदय मे ईश्वर है। ईश्वर

५४६ कबीर समग्र के हृदय मे सब है। अल्लाह की एक ज्योति से सब पैदा हुए है। इसमे किसी की कैसी निदा ? सभी एक ही प्रकाश से उत्पन्न है। न कोई भला और न बुरा है। सृष्टि कर्त्ता की गति को कोई नहीं जानता है। गुरुदेव के शिक्षाप्रद मीठे उपदेशो द्वारा ही वह जाना जा सकता है। सत कबीर कहते है कि मैने पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त कर लिया है। सभी श्टीरो मे राम का दर्शन हो रहा है। हैं राम मोही तारि काहों है जैहो। 5 सौ बैकुंट कहाँ धूँ केसा, करि पसाब मोहि दैहौ ॥टेक॥ जे मेरे जीब दोई जॉनत हो, तो मोहि मुकति बताओ। एकमेक रमि रह्या सबनि में, तौ काहे भरमाबी॥ तारण तिरण जबै छग कहिये, तब लग तत्त न जाना॥ एक राम देख्या सबहिन मै कहै कबीर मन मानों॥५२॥ अर्थ-हे राम, मुझे मुक्त करके कहाँ ले जाओगे? जिस बैकुंठ को कृपाकर (पसाव) तुम मुझे देना चाहते हो वह प्रता नही कैसा है? मुक्ति तो मुझे तव चाहिए थी जब मेरा जीव और आप एक नही थे। तरनेन्‍्तारने की वात तभी तक होगी जब तक तत्त्ववोध न हो। सभी प्राणियों मे एक ही राम विराजमान हैं। कबीर के मन मे यह विश्वास हो गया है। सोहं हंसा एक समान, काया के गुण ऑनही आन ॥टेक॥ माटी एक सकल संसारा, बहुविधि भोंडे घड़े रुभारा। पंचा बरन दस दुहिये गाई, एक दूध देखो पतिआई॥ कहै कबीर संसा करि दूरि त्रिभुबननाव रह्या भरपूर॥५३॥ अर्थ-हस और स' अहम्‌ (सोह5म्‌) एक ही है और शरीर से भिन्न है। शरीर के अलग अलग गुण है। विधाता ने सारे ससार को एक ही प्रकार की मिट्टीसे बनाया है। सब एक हैं। क्या पॉच वर्णो की गाये अलग-अलग रग का दूध देगी? जैसे सभी गायो का दूध एक रग का होता है वैसे ही सभी मनुष्यों मे आतरिक समानता है। सत कबीर कहते है कि सशय दूर करो। सारे ससार मे प्रभु विराजमान है। प्यारे राम मनहीं मनों, कासू कहूँ कहन कौ नाहीं, दूसरा और जनों ॥टिक॥ ज्यूँ दरपन प्रतिब्यंब देखिये आप दवासूँ सोई। संसी मिट्यौ एक कौ एके, महा प्रैले जब होई ॥ जो रिश्षऊँ तौ महा कठिन है, बिन रिक्षये वे सब खोटी। कहै कबीर तरक दोड़ सारे, ताकी मति है मोटी ॥५४॥ अर्थ-ईश्वर को मन मे ही समझना है। किससे कहूँ और कौन है? सब तो राममय है। जैसे एक ही रूप शीशे मे दूसरा दीखता है उसी प्रकार एक ही प्रभु सृष्टि दर्पण मे भिन्न-भिन्न दीखता है। महाप्रलय मे यह विभिन्नता पुन एकता मे बदल जाती है। प्रभु को प्रसन्न करना अलुत कठिन है। कितु बिना प्रसन्न किये भी बुराई है। सत कबीर कहते है कि दो का तर्क ठीक नहीं है। सारी सृष्टि मे एक ही प्रभु का तर्क ठीक है। खोटी बुद्धि वाले दो (अनेक) का तर्क देते है। अलंकार-उपमा | हम तो एक एक करि जॉनो। दोह कहै तिनहीं कौ दोजग, जिन नॉहनि पहिचाना ।टिक॥ एके पवन एक ही पानी, एक जाति संसारा॥ जैसी बाढी काष्ट ही काटे, अगिनि न काटे कोई॥ सब घटि अंतरि हूँहीं व्यापक धर सरूपै सोई।

पद पए४ड७ माया मोहे अर्थ देखि करि, कहै दूँ गरबोंनों। निरभे भया कछठू नाहीं ब्यापै, कहै कबीर दिवॉनों ॥५५॥ अर्थ-हमने प्रभु को एक ही जाना। सारी सृष्टि उसी एक का विस्तार है। सबक मे वही एक है। दो (अनेक) कहने वाला नरक जायगा। वे लोग सत्य को नहीं पहचानते है। हवा, » पानी आदि सब एक ही है। सब की जाति एक है। एक ही विधाता ने एक ही मिट्टी से सारे लोगो का निर्माण किया है। जैसे बढ़ई लकड़ियाँ काटता है। आग नहीं काटता है। - है प्रभु, सभी लोगो मे तुम्हीं हो। तुमने ही स्वरूप धारण किया है। धन और माया मोह को देखकर गर्व नहीं करना चाहिए। सत कबीर दीवाने है। अभय है। दुख-सुख मुक्त है। उद्ाहरणअरे भाई दोई कहा सो मोहि बतायौ; बिचिही भरम का भेद लगावौ|टेक।॥ जोनि उपाई रची द्वे धरती दीन एक बीच भई करनीं। रु : कहै कबीर चेतहु रे भौदू, बोलनहारार तुरक न हिंदू ॥५६॥ अर्थ-भ्रम फैलानेवाले लोग द्वैत की बाते करते है। यौनियाँ, दो धरती और अलग-अलग की (दीन) ये सब बीच के काम है। मूलत राम रहीम एक है। जैसे माठा और तसबी एक | सत कबीर कहते है कि भोदू (मूर्ख), समझो। बोलनेवाला प्रभु न हिदु है। हा मुसलमान है। ऐसा भेद बिगूचन भारी, बेद कतेब दीन अरु दुनियाँ, कौन पुरिष कौन ९ नारी ।टेक॥ एक बूँद एके मल मूतर, एक चाम एक गूदा। एक जोति ये सब उतपनों, कौन बॉह्मन कौन सूदा ॥ माटी का प्यंड सहजि उत्पनों, नाद रु ब्यंद समान! बिनसि गयों वे का नाव घरिष्ी, पढ़ि गुनि हरि भ्रम जोना॥ रज गुन ब्रह्मा तम गुन संकर, सत गुन हरि है सोई। कहै कबीर एक राम जपहुँ रे, हिंदु तुरक न कोई ॥५७॥ शब्दार्थ-बिगूचन + विकुचन।| बाधा। कतेब < कुरान। उतपनों 5 उत्तन्न। सूदा ८ शूद्ध। प्यड > शरीर। नादरु व्यद & रज और वीर्य। क अर्थ-वेद और कुरान ने बाधा उत्न्न की है। ये ग्रथ मानवी एकता मे बाधक है। मनुष्य एक वीर्य, एक मढ-मूत्र, चाम, गूदा वाला है। ये सभी वस्तुएँ एक से उत्पन्न है। रजवीर्य की समानता है। मृत्यु के बाद नाम भी नहीं धरा जाता। नाम उसी का रखते है जो रूप मे जीवित है। पढ़ने-लिखने मे भ्रम होता है। ब्रह्मा रजोगुणी, रुद्र तमोगुणी और विष्णु सतो गुणी है। कबीर के राम गुणो से परे निर्गुण है। भगवान् का कोई सप्रदाय नही है। हिदू-मुसलमान का भेद भी नकली है। पे हँमारे राम रहीम करीमा केसो, अलाह राम सति सोई। बिसमिल भेटि बिसंभर एके, और न दूंजा कोई ॥टेक॥ इनके काजी मुलों पीर पैकंबर रोजा पछिठम निवाजा ॥ इनके पूरब दिसा देव दिज पूजा, ग्यारसि गंग दिवाजा॥ तुरकक ममीति देहरै हिंदू, दहूठा राम खुदाई। - जहाँ मसीति देहुरा नॉहीं, तहाँ काकी ठकुराई॥ हिंदू तुरक दोऊ रह तूटी, फूटी अर कनराई।

 अरघ उरघ दसहुँ दिस जित तित, पूरि रह्या राम राई ॥ कहै कबीरा दास फकीरा, अपनी रषहि चलि भाई। हिदु तुरक का करता एके, ता गति लखी न जाई ॥५८॥ शब्दाबं-रहाम 5 दयाढु। करीम > कृपायुक्त | सति 5 सत्य। विसमिल 5 भगवान् । ईश्वर। बिसभर 5 विश्वभर। मुलाँ & मुल्छा। पीर। काजी « न्याय करने वाला। पैकवर ८ पैगम्बर | रोजा निवाज > व्रत तथा नमाज | दिवाजा 5 आरती दीपार्चना | देहुरे > दरवाजा | दूहँठा | * दोनो स्थानो पर। काकी 5 किसकी। रह - राह। तूटी 5 च्रुटि। कनराई किनारेवाली। अर्थ-राम, रहीम, करीम, केशव, अलाह आदि सभी सत्य है। विसमिल्लाह और विश्वभर एक है। दूसरा कोई नहीं है। काजी, मुल्छा, पीर पैगम्बर रोजा, पश्चिम दिशा में नवाज आद करना तथा पूर्व मे पूजा, एकादशी व्रत, गगा मे दीपदान या स्वर्गिक पूजा सब एक है। मुसलमान मस्जिद और हिदू मदिर जाते है। दोनो स्थानों पर ईश्वर है। कितु उस निराकार स्थान का विचार करो, जहाँ न मदिर है, न मस्जिद है। वहाँ का मालिक कौन है? नीचे ऊपर दसो दिशाओ मे राम का राज्य है। सारी सृष्टि प्रभु पूर्ण है। फकीर अपने प्रभु की राह पर चलते है। हिंदू मुसलमान का सुश्कित्तां एक ही प्रभु है। उस प्रभु की गति छखी नहीं जा सकती है। काजी कौन कतेब यथाने। ः पढ़त पढ़त केते दिन बीते, गति एके नहीं जांने ॥टेक॥ सकति सेनेह पकरि करि सुंनति, बहु नबदूँ रे भाई। और घुदाई तुरक मोहि करता, तो आप कटि किन जाई।॥ ही तो तुरक किया करि सुंनति औरति सी का कहिये। अरध सरीरी नारि न छूटे, आधा हिंदू रहिये। छोड़ि कतेब राम कहि काजी, खून करत हो भारी। पकरी टेक कबीर भगति को, काजी रहे झष मारी ॥५९॥ शब्दार्थ-सकति - शक्ति। सुनति 5 ख़तना | अर्थ-ऐ काजी, किस किताब की वात करते हो? इतने दिनो से पढ़ रहे हो । कितु अभी तक उसका तत्त्व समझ मे नहीं आया है। शक्ति और प्रेम से सुन्नत और अनेक प्रकार की वदना करते हो। समझते हो कि इससे कोई व्यक्ति मुसलमान हो जाता है। यदि पशु ने मुझे मुसलमान बनाया होता तो खतना स्वय हो जाता। पुरुष का तो सुन्नत कर दोगे। कितु स्त्री तो हिंदू ही रह जायगी। क्योकि उसका खतना नहीं हो सकता है। ऐ काजी, किताव और जिबह करना छोड़ो। हत्या करना धर्म नहीं है। सत कबीर ने भक्ति की टेक पकड़ी है। काजी माथा पटक रहा है। अलंकार-विशेषोक्ति, वक्रोक्ति | मुलों कहाँ पुकारे दूरि, राम रहीम रहा भरपूरि |टिका॥। यहु तौ अलह यूँगा नोंहीं देखे खलक दूर्नी दिल माँही। हरि गुन गाइ बंग में दीन्हों, काम क्रोध दोऊ बिसमल कीन्हों। कहे कबीर यह मुलना झूठा, राम रहीम सबनि मै दीठा ॥६०॥ हा अर्थ-ऐ भाई, मुल्ला क्यो दूर पुकारते हो? राम-रहीम तुम्हारे भीतर भरे है। अल्छाह गूँगा नहीं है। उस प्रभु को सृष्टि, ससार और दिल मे देखो। मै कबीर प्रभु के गुण गाकर बंग पूरा करता हूँ। जिबह के स्थान पर काम, क्रोध दोनो की बलि चढ़ाता हूँ। यह मुल्हा झूठा है। राम रह्दीम सभी मे दिखाई पड़ते है। ह के 5 2 दम दर

पद ५४९ पढ़ि ले काजी बंग निवाजा, एक मसीति दसी दरवाजा ॥टेक/॥ मन करि मका कबिला करि देही बोलनहार जगत गुर येही | उहाँ न दोजग भिस्त मुकौमों, इहौं ही राम इहो रहिमोना॥ बिसमल तॉमस भरम के दूरी, पँचूँ भयि ज्यूं होई सबूरी॥ . . कहै कबीर मैं भया दिवॉनों मनवां मुसि मुसि सहज समानों ॥६१॥ अर्व-ऐ काजी, तुम केवल बॉग और नमाज का अध्ययन करो। एक मस्जिद (देह) के दस दरवाजे (इद्रियों) है। उसमे मन मक्का है और देह को पश्चिम दिशा बनाकर उपासना करता हूँ। गुरुदेव ही बोलते है। साधना की उच्चभूमिका पर पहुँचने पर स्वर्ग-नरक दोनों नहीं है। राम-रहीम का इन्द्र दुनिया मे ही है। बलि तामस है। यह पूजा है। इस भ्रम को दूर करो। इस पॉचो (काम, क्रोध, छोग, मोह, मद) का भ्रम दूर हो जायगा। सत कबीर रामप्रैम मे दीवाने है। मन पुस्कुरा-मुस्कुरा कर सहज समाधि में समा गया है| समधिस्थ है। * मुलौं करि ल्यो न्याव खदाई; इहि बिधि जीव का भरम न जाई ॥टेक॥ . सरजी आने देह बिनासै, माटी बिसमल कीता। जोति सरूपी हाथि न आया, कही हलाल क्या कीता॥ बेद कतेब कहौ क्यूँ झूठा झूठा जोन बिचारै । सब घटि एक एक करि जॉन, भी दूजा करि मारे ॥ कुकड़ी मारे बकरी मारे, हक हक हक करि बोलै। सबै जीव साईं के प्यारे, उबरहुगे किस बोले ॥ दिल नहीं पाक नहीं चीन्हों, उसदा घोज न जॉनों ॥ कहै कबीर भिसति छिटकाई, दोजग ही मन मानों ॥६२ | शब्दार्थ-मुलां 5 मुल्ठा। त्यौ > लौ। सरजी 5 सृजी। रची। आने - अन्य। बिसमढ + हलाल। बलि। कीता & किया। कृत | माटी 5 शरीर। हछालढू - शास्त्र या प्रभु समत। भौ « भय । कुकड़ी ८ मुर्गी। हक हक - ईश्वर, ईश्वर। भिसति > बिहिश्त। दोजग 5 नरक । अर्थ-ऐ मुल्ला, खुदा के न्याय पर चलो। इस प्रकार की चाल से जीवका भ्रम नहीं खतम होगा। तुम प्रभु द्वारा रचित पशु काया का वध करते हो। कितु इससे प्रकाश रूप प्रभु हाथ नहीं आयेगा। फिर हलाल क्यो किया ? | वेद और कुरान झूठे नहीं हैं। झूठा वह है जो इनके उपदेशो पर विचार नहीं करता है। सभी शरीर मे एक ही प्रभु है, दूसरे का भय जी मृत्यु का कारण है। लोग मुर्गी, बकरी मारते है और प्रभु समत की चर्चा करते है। सारे जीव प्रभु के प्यारे है। क्या कहकर तुम्हारा उबार होगा? दिल पवित्र नहीं है। पवित्रको पहचानते भी नहीं। उसकी खोज भी नहीं जानते हो। सत कबीर कहते है, बाह्य साधना से स्वर्ग नहीं, नरक ही मिलेगा। या करीम बलि हिकमति तेरी। खाक एक सूरति बहु तेरी ॥टेक॥ अर्ध गगन मे नीर जमाया, बहुत भाँति करि नूरनि पाया॥ अवलि आदम पीर मुलॉनों, तेरी सिफति करि गये दिवॉनो॥ हि कहै कबीर यहु हेत बिचारा, या रब या रब यार हमारा ॥६ ३॥ अर्थ-हे ईश्वर, तुमहारी चतुराई थी, तारीफ है। तुमने एक ही मिट्टी से अनेक सूरते बनाई है। तुमने आकाश के नीचे पानी जमाया और वहीं अनेक प्रकार के सूर्य-चाँद तारो की ज्येत्रि पैदा की है। सर्वप्रथम आदम, पीर, मुल्ला, तुम्हारी खूबी पर पागल बने थे। है # या अलगरी आशिक पर कक पर नकल पद कह है

५५० कबोर समग्र काहे री नलनी तूँ कुम्हिलानी; तेरे ही नालि सरोवर पानी टिक।॥ जल मै उत्तपति जल मैं बास, जल मैं नलनी तोर निवास ॥ ना तलि तपति न ऊपरि आगि, तोर हेतु कहु कासनि लागि॥ कहे कबीर जे उदिक समान,ते नहीं मूए हमारे जान ॥ ६४॥ अर्व-नलनी अर्थात् जीव।| है जीव कमल, तुम मुरझाये क्यो हो? तुम्हारी नाठ (कमल डठल) तालाब के पानी मे है। जीव की नलिका सासारिक माया मोह में है। कमल पानी मे पैदा होता है, पानी मे रहता है। पानी ही उसका निवास स्थान है। ऐसे ही जीव का ससार नदी मे जन्म, स्थिति और निवास है। अब कवि साधक जीव से पूछता है। ऐ जीव, नीचे गर्मी और ऊपर आग नहीं है। फिर किसी के प्रति प्रेम जागने के कारण तुम परेशान हो। सत कबीर कहते है, जो प्रभु प्रेम के जल मे समा गया उसकी कभी मृत्यु नहीं होगी। अलंकार-अन्येक्ति | ड्ब 5४४ प्रभु मै कुछ नॉहि, पंडित पढ़ि अभिमान नसाहीं ।दिक॥ में में मे जब लग मैं कीन्हा, तब लग मै करता तही चीन्ंहों॥ कहै कबीर सुनहु नरनाहा, ना हम जीवत न मुँबाले माहों ॥६५॥ अर्थ-हे प्रभु, अब तुम्हीं हो। मै कुछ नहीं है। संसार का डर प्रभु मे विलीन हो गया। जब तक मैं और तुम (अहम त्वमू) को नहीं पहचाना था तब तक माया का डर था। मैं और तुम का भेद समाप्त होने पर डर खत्म हो गया। द्वैत ही भय का कारण है। अद्वैत को किसका और कैसा भय ? द्वैत भय मे बार-बार गमनागमन का दुख हुआ। निगम आगम से परे यंय निगम के लिये भी अगम्य प्रभु के साथ ऐक्य ज्ञान के बाद मन की चचढुता समाप्त हो गयी। सासारिक मन विशिष्ट मन मे समा गया। जब तक ऊँच-नीच का भेद रहता है, छोग पशु के समान विषयो मे घूमते है। नाना प्रकार के भ्रम होते है। जब मै और मेरी को त्वम् मे वीन कर दिया तो राम के अतिरिक्त दूसरा कौन रह गया? अब राम को कैसा भय होगा ? राम से तो दूसरे भीत रहते है। बोलनों का कहिये रे भाई, बोलत बोलत तत नसाई ॥टेक॥। बोलत बोलत बट़े बिकारा, बिन नोल्यों क्यूँ होई बिचारा॥ संत्त पिले कछु कहिये कहिये, मिले असंत्त मष्टि करि रहिये॥ ग्यानी सूँ कहिये कहिये, मिले असंत्त मष्टि करि रहिये ॥ कहै कबीर आधा घट डोलै, भर्‍या होइ तो मुषों न बोलै ॥६७॥ अर्थ-साधक को मौन रहना चाहिए। मूल तत्त्व अकथनीय है। बोलने से तत्त्व का नाश हो जाता है। अनेक प्रकार के विकार बढ़ते है। कितु बिना बोले विचार भी नहीं हो सकता है। ऐसी स्थिति मे केवल सत के सग मे ही बोलना उचित है। असत को देख मौन रहना चाहिए | ज्ञानी से बात करना हितकर है और अज्ञानी मिले तो वह कितनी भी कोशिश करे मौन रहना चाहिए | जब तक साधना अधूरी है तभी तक बोला जाता है। पूर्ण साधना होने पर ऐसी भीतरी शाति आती है कि कुछ बोला नहीं जाता। जैसे अधजल गगरी छलकती है। पूर्ण स्थिर रहती है। अलंकार-अनुप्रास, दूधत एव लोकोक्ति | बागड़ देश लूवन का घर है, तहाँ जिनि जाइ दाझ्नन का डर है टिक सब जग देखो कोई न धीरा, परत घूरि सिरि कहत अबीरा॥

का पाक पाया यहा... 2 3933७७-००५. २०५७ 409५9०००५५७५३०००६-५३)५३-३५-५०००३५५:५-७२.........०५3 न ५५ .ब€53 ९39 क+मम..-.3>3»4७>33५3७७अ+>+ ला-3.क०>मै....>०००-..त..........>+>+->की ०83७-५० प००-3०४७० ५ फ उ++कके + ९4० ०्पानरिलीकी १६ कक ७नकबै नीता कु 7 पके अमन. 2 कन्न- ही. अजजीकफनलिआ * पद ५५१ न तहाँ तरवर न तहाँ पॉणी, न तहाँ सतगुर साधू बॉणी ॥ न तहाँ कोकिला न तहाँ सूबा, ऊँचै चढ़ि चढ़ि हंसा मूवा॥। देश मालबा गहर गंभीर डग डग रोटी पण पण नीर॥ कहें कबीर घरहीं मन मारो, गूँगे कम गुड़ गूगे जानों ॥६८॥ शब्दार्-बागड़ 5 एक प्रदेश विशेष। जहाँ सदा सूखा रहता है। कोई इसे हरियाना और कोई गुजरात मानते है। लूवन 5 लू। दाझन - जलना। अर्थ-यह ससार बागड़ देश है। विषयो के कारण यह अनेक प्रकार के दुखो (लू) से भरा है। यहाँ नही जाना चाहिए। वासना से दग्ध होने का भय है। पूरे ससार मे सभी अधीर हो रहे है। उनके सिर पर धूल गिरती है। कितु उस धूछ को अबीर कहते हैं। यहाँ कोई स्थायी छाया (पेड़) नहीं है। सुग्गे भी नहीं है। हस जीव ऊँची-ऊँची छालसाओ मे चढ़कर मर रहे है। ऐ मन, इस बाह्य ससार से अतर्जगत् मे चलो। अतर्जगत् मालवा है। माल वाला है। यहाँ सुख ही सुख है। डग डग पर रोटी और पग-पग पर पानी मिलता है। प्रभु अपने भक्त के योगक्षेम का ख्याल रखता है। यह आतरिक घर है। यह गँगे के गुड़ के स्वाद सा अकथनीय है। अवधू जोगी जग थे न्यारा; मुदा निरति सुरति करि सींगी, नाद न यडे धारा ॥टिक॥ बसे गगन मे दुर्नी न देखे, चेतनि चौकी बैठा | चढ़ि अकास आसण नहीं छाड़े पीबे महारस मीठा॥ परगट कंथों माहै जोगी दिल मैं दरपन जोबै। सहंस इकीस छ से धागा, निहचल नाके पीवै॥ ब्रह्म अगनि मै काया जारै, त्रिकुटी संगम जागै। कहै कबीर सोई जोगेश्वर, सहज सुंनि लल्यो लागै॥६९॥ शब्दाथ-मुदा - मुद्रा पचमकारो मे है। कितु सत मत की मुद्रा भिन्न है। यहाँ मुद्रा का प्रयोग योग अगो की विशेष स्थिति के अर्थ मे है। सुरति - सामान्य प्रेम साधना। निरति > प्रेम की चरमावस्था। सींगीं 5 तुरही। गगन - सहस्ार। दुर्नी + दुनिया। कथा - गुदड़ी। जीवै > जोहता है। सहँस < हससहित। श्वास प्रश्वास द्वारा सोह5म् आजपाजप। हजार। निहचल स्थिर। त्रिकुटी संगम 5 आज्ञा चक्र । सहज शून्य ८ सहसार | अर्थ-अवधूत योगी ससार से भिन्न है। वह दूसरे योगियो से भी भिन्न है। उसके सारे कार्य भीतर होते है। वह निरति की मुद्रा और सुरति की श्रृगी बनाता है। वह नादं की अखड धारा का कभी खडन नहीं करता है। मतलब कि सदा अनाहत नाद सुनाता रहता है। सहसार मे बास करता है। ससार को दृष्टि से दूर रखता है। चेतना की चौकी पर बैठता है। आकाश (शून्य) में पहुँच कर भी कभी योगासन नहीं छोड़ता है। सदा सहस्नार से निकल 'महारस का पान करता है। बाहर तो वह गुदड़ी पहने रहता है। वह दिल के दर्पण मे देखता रहेतो'है। सोह5म् का अजपाजाप २१६०० श्वास-प्रश्वास के धागो मे करता है। ये नाक से निकले श्वास-प्रश्वास है। वह काठ की

धुनी न बनाकर ब्रह्माग्नि मे काया जलाता है। त्रिकुटी (आज्ञा हा मे जागरण करता है। सत कबीर कहते है कि वह योगी है जो सहस्ार मे ध्यान लगाता | अलंकार-सागरूपक विरोधाभास, सहस - श्लेष। अवधू गगन मंडल पर कीजै, अमृत झरे सदा सुख उपजै, बंक नालि रस _ पीजै ॥टेका। मूल बाँधि सर गगन समाना, सुखमन यो तन लागी।

 काम क्रोध दोऊ भया पलीता, तह जोगणी जागी॥ मनवाँ जाई दरीबै बैठा, मगन भया रसि लागा। कहे कबीर जिय संसा नोही, सबद अनाहद बागा ॥७०॥ .. अर्थ-हे अवधूत, ब्रह्मरश्न, सहस़ार मे निवास करो। वहाँ अमृत झरता है। सदा सुख रहता है। वक्र नाली से रस निकलता है। इस रस को पीजिए। मूल अर्थात् मूलाधार चक्र से कुडलिनी सुपुम्ना को आधार बनाकर व्रह्मरप्र तक जाकर समाहित हो जाती है। यह कुडलिनी काम, क्रोध को नष्ट करने पर ही जागती है। मन सहस्नार की खिड़की पर स्थित हो गया है। वहाँ सहय़ार से चूने वाला सोम रस का पान करता है। हृदय से सभय की समाप्ति हो गयी। अनाहत शब्द बज रहा है। अलंकार-रूपकातिभयोक्ति कोई पीवै रे रस राम नाम का, जो पीबै सो जोगी रे। संती सेवा करी राम की, और न दूजा भोगी रे ॥टेक॥ यहु रस तो सब फीका भया, ब्रद्म अगनि पण्जारी रे। ईश्वर गौरी पीवन लागे, राम तर्नीं मतिवारी रं॥ चंद सूर दोह भाठी कीन्ही सुपमनि घिगवा लागी रे। अंपृत कूँ पी साँचा पुरया, मेरी त्रिष्णों भागी रे॥ यहु रस पीवे गूँगा गहिला, ताकी कोई न बूझे सार रे। कहै कबीर महा रस महँगा, कोई पीवेगा पीवणहार रे॥७१॥ शब्दार्थ-परजारी > प्रज्वलित। ईश्वर-गौरी 5 शिव-पार्वती। त्नीं 5 ओर । मे। चिगवा नाली । गहिला & गभीर। सार < महत्त्व | अर्थ-राम नाम का रस योगी ही पी सकता है। सतो, राम की सेवा करो। ससार मे राम नाम के अतिरिक्त दूसरी कोई चीज भोग करनेलायक नहीं है। ब्रह्माग्नि अर्थात् प्रभु से स्नेह के बाद ससार के सभी रस फीके हो जाते है। इस रामरस को पीकर शिव-णर्वती भी मतवाले है। चद-सूर्य नामक इडा-पिगला नाड़ियो की भट्टी मे सुषुमना की नाली से जो महारस पैदा हुआ उसे पीकर सारी तृष्णा दूर हो जाती है। इस राम रस को गभीर गूगा अर्थात् जो साधना मे गभीर है पीता है। दूसरे छोग इसके महत्त्व को नहीं समझते है। इस महँगे महारस को कोई विशिष्ट व्यक्ति ही पी सकता है। अलंकार-रूपक, काकुवक्रोक्ति। ि अबधू मेरा मन मतिवारा; उन्‌्मनि चढ़या मगनरस पीवे त्रिभुवन भया उजियारा ॥ठेक। शुड़ करि ग्यान ध्योंन कर महुवा भव भाठी करि भारा। सुघमन नारी सहजि समानी, पीयै पीवनहारा॥ काम क्रोध दोइ किया पलैता, छुटि गई संसारी॥ सुंनि मंडल मै मेंदला बाजै, तहाँ मेरा मन नाचे। गुर प्रसादि अध्त ते फल पाया, सहजि सुबमनों काछै॥ पूरा मिलया तबे सुष उपज्यो, तन की तपनि बुझानी। कहै कबीर भवबंधन छूटे, जोतिषि जोति समानी ॥७२॥ अर्थ-साधक ससार से परम वैराग्य और भागवत्ती सत्ता की पूर्ण अनुभूति की दशा का वर्णन कर रहा है। हे अवधूत, मेरा मन रामरस मे मतवाल्‌ा है। मन भागवत्ती स्थिति को पहुँच गया है। वहाँ आनद की अनुभूति कर रहा है। तीनो लोक प्रकाशित हो गया है। साधक को

पद ५५३ तीनो छोक दिखने ढगे | यह मतवालापन जिस रस (शराब) के पीने से बना उसके बनने की प्रक्रिया है। ज्ञान को गुड, ध्यानको महुआ (मधूक), ससारको भट्टी का भार (जो भट्टी मे झोका जाता है) बनाया। इडा-पिगला नाड़ियो जिनमे सुषुम्ना सह ढंग से समायी है, की भट्टी बनाई। काम, क्रोध को पलीता बनाकर आग धधकायी। फठत ससार के आकर्षक बधन समाप्त हो गये। अब शून्यमडल (सहस्रार) मे नादरूपी मर्दठ की आवाज होती है। वहाँ साधक का मन प्रसन्न होकर नाचता है। गुरुदेव की कृपा से सुषुम्ना के किनारे (काछै) अमृत फल पाया है। पूर्ण ब्रह्म की प्राप्ति हो गयी। ससार विषयो से जल रहे शरीर की ज्वाला शात हो गयी। ससार बधन छूट गया। प्रकाश प्रकाश से मिल गया। अश अशी में समाहित हो गया | टिप्पणी-अवधू का अर्थ-वह सन्यासी है जिसने सासारिक बधनो तथा विषय-वासनाओ को त्याग दिया है। योविलधघ्याश्रमान् वर्णनात्लन्येव स्थित पुमान्। अतिवर्णाश्रमी योगी अवधूतत स उच्यते।-आप्टेकोश। छाकि परथयो आतम मतिवारा, पीवत राम रस करत विचारा ॥टेक॥ बहुत मोलि महँगे गुड़ पावा है कसाब रस राम चुवावा॥ कहै कबीर फाबी मतिबारी, पीवत राम रस लगी खुमारी ॥७३॥ शब्दार्थ-छाकि परयो 5 छक गया। तृप्ति। आतम 5 आत्मा। कसाब 5 कसैलापन। पाटन ल नगर। फाबी 5 फबना। लाभ होना। खुमारी 5 नशा उतरने पर आल्स्य। अर्थ-रामरस पीकर आत्मा तृप्त हो गयी। अब उसके सारे विचार रामरस की आनदावस्था मे हो रहे है। भक्ति-ज्ञान का अमूल्यवान् गुड़ पाया है। विषयो का कसैलापन निकालकर मीठा एव स्वादिष्ठ राम रस चुलाया है। यह रस शरीर रूपी नगर मे फैल गया है। साधक मॉग मॉग कर ४ रामरस को पी रहा है। उसे मतवालेपन की प्राप्ति हो गयी है। रामरस की खुमार मे डूबा है। अलंकार-तनपाटन मे रूपक, रूपकातिशयीक्ति। बोलो भाई राम की दुहाई, इहि रसि सिव सनकादिक माते, पीवत अजहूँ न अधाई ॥टेक॥ इला प्यंगुला भाठी कीन्हीं, ब्रह्म अगनि परजारी। ससि हर सूर द्वार दस मूँदे, लागी जोग जुग तारी। मन मतिवाला पीबे राम रस, दूजा कछू न सुहाई। उल्टी गंग नीर बहि आया, अमृत घार चवाई॥ पंच पियालै पीवन लागे, सोवत नागिनी जागी॥ दास कबीर इही रसि माता, कबहूँ उछंकि न जाई ॥७४॥ अर्थ-हे भाई, रामजी का यश गाओ। उनहीं की कृपा से राम रस पीने को मिला है। शिव सनकादि भक्त देवता तथा ऋषि उस राम रस को पी रहे है। कितु पीकर कभी सतुष्ट होकर उसे छोड़ना नहीं चाहते है। इडा एव पिगला नाड़ियो की भट्टी बनाई। ब्रह्मध्यान की आग जलाई। सूर्य-चद्र (इडा-पिगला) नाड़ियो ने दसो दरवाजे (दो आँखे, दो नाक, एक मुँह, दो कान, लिग, गुदा, ब्रह्मृश्न) बद कर विषयो का प्रवेश वर्जित कर दिया है। योग मे लीनता आ गयी है। अब मन रामरस पीने मे छीन है। दूसरा कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। कुडलिनी के जागृत होने से जो उच्च रस नीचे को व्यर्थ बह रहा था वह अब खेचरी मुद्रा की यौगिक

प्रक्रिया से अमृत (प्राणावान) धारा मे बदल गया है। पाँचो ज्ञानेद्रियो का साथकर लिया है!
(अब तक ये इद्रियाँ

डर कबीर समग्र विषयों में थी) अब हर समय (राह चलते भी) राम प्रेम का नशा रहता है। प्रेम रस का प्याला पीने की कुडलिनी जो सर्पाकार पड़ी थी, अब जाग गयी है। (साधना में कुडलिनी जागरण , महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है) सतगुरु की कृपा से सहज शून्य (सहस्रार) मे जिसने इस प्रेम रस को पीया है उसे कभी इससे तृप्ति नहीं होगी। वह सदा उस मे मत्त रहेगा। अलंकार-रूपक | रामरस पाडया रे, ताये बिसरि गये रस और ।टिक॥ रे मन तेरा को नही खैधि लेइ जिनि भार। विरधि बसेरा पंषि का, ऐसा माया जाल ॥ और मरत का रोइए, जो आपा घिर न रहाइ। जो उपज्या सो विनसिहे ताये दुख करि मरे बलाइ। जहाँ उपज्या तहाँ फिरि रच्या रे, पीवत मरदन लाग॥ कहै कबीर घित चेतिया, ताथे राम सुमरि बैराग ॥७५॥ शब्दार्थ-को 5 कोई। विरपि > वृक्ष। पेड़। मरदन मर्दन। लाग 5 लिये। अर्थ-भक्त राम रस पाकर अन्य सासारिक रस को भूल गया। ऐ मन, ससार मे तुम्हारा कोई नहीं है। तुम अपने को सासारिक वोझ से अलग रखो या जो तुम्हारा सासारिक बोझ खींच सके ऐसा कोई नहीं है। यह ससार वृक्ष है| तुम इस पर बसने वाले पक्षी हो। माया जाल पक्षी को फेंसाने के लिये है। ५ दूसरो को मरते देख क्यो रोते हो? तुम्हे भी तो मरना होगा। जो पैदा हुआ है उसका नाश होना है। इसलिये रोना व्यर्थ है। जैसे ही पैदा हुए माता के स्तन को पीते हुए उसका मर्दन करते है। हि अब चेत जाओ और राम का स्मरण करो। ससार से विराग ग्रहण करो। राम चरन मनि भाए रे। अस ढरि जाहु रॉड के करहा, प्रेम प्रीति लयो लाये रे।टिक।। अँब चढ़ी अँबली रे अँबली बबूर चठी नगबेली रे। दै रथ घटी गयी राँड कौ करहा, मनह पाट की सैली रे॥ बजर परौ इहि मथुरा नगरी कान्ह पियासा जाई रे। एक दहिड़िया दही जमायौ, दुसरी परि गई साई रे। न्यूँति जिमाऊ अपनी करहा छार मुनिस की डारी रे॥ इहि बैनि खेले राही रूममनि, उहि बने कान्ह अहीरा रे। आसि पासि तुलसी को बिरवा, माँहि दारिका गाँऊ रे। तहाँ मेरो ठाकुर राम राह है, भगत कबीरा नाऊँ रे ॥७६॥ शब्दार्थ-अस - इस प्रकार। रॉड का करहा 5 मायाच्ल्न जीव। करहा > ऊँट का बच्चा। अब 5 आम। मेरुदड। अवली - एक ढता। बकनाल। बबूर < मेरूदड। नगवेली नागलता। वक नाल। द्वै रथ 5 इडा पिगला। मनहपाट 5 मन का पात्र। मन। सैली ८ विचरण। कुई 5 कूप। कुआँ। सहस्नार। पाताल 5 मूलाधार। पनियाँ 5 पनिहारी। कुडलिनी। मधुरा > शरीर। वजरपरी > नाश हो। कान्ह 5 कृष्ण। जीवात्मा। प्यासा 5 अतृप्त। दहिड़िया - दही जमाने का वर्तन। मन। दही 5 भोग। साई # मलाई। वासना का सस्कार। मुनिस 5 मुनि लोग। श्रेष्ठ मुनि। राही रुकमनि & माया। कान्ह अहीरा > प्रभु। तुलसी > पवित्र पेड़। द्वारिका - पवित्र स्थान। हृदय | __ अर्थ-मेरे मन को प्रभुचरण भा गए है। अच्छे लग रहे है। हे माया जन्य मन, भगवान से

पद ण्ष्प् प्रेम करो। जैसे आम के पेड़ पर छता चढती है। बबूलपर नागबेली चढ़ती है वैसे ही मेरुदड के सहारे वक्रनाह ऊपर जा रही है। अभी तक मन विषयो मे विचरता था। अब इडा-पिगला दो रथ पर सवार है। ककड़ भरा कुओं ऊपर है। कुंडलिनी पनिहारिन नीचे है। कुएँ से सोने के मूल्य बिकने वाला पानी निकलता है। इस शरीर मथुरानगरी का नाश हो। इस शरीर से कृष्ण जैसे प्राणी की भी तृप्ति नहीं हो सकती है। इस मन मे वासना जमी है। जिसकी साढी अगले जीव जन्म मे भी काम करती है। हम है कि माया बद्ध को आदर देकर भोजनादि कराते है और सन्यासी केशमुँह पर राख फेकते है। इस ससार वन मे मर्दठ और भेरी बजता है। परलोक मे भगवान की आईद क्रीड़ा है। चारो तरफ तुलसी के पेड़ की पवित्रता है और बीच मे प्रभु का निवास द्वारका है। यही स्वामी राम है। कबीर उन्हीं के नाम की भक्ति करता है। अलंकार-४ रूपकातिशयोक्ति। १ दृष्टात (अब चढ़ी अबली) २ असगति (एक दहिड़िया) ३ विशेषोक्ति कर कूई, पताल पानिया घिर न रहे चित धिर नर है, च्यंतामणि तुम्ह कारणि हो। मन मैले मे फिर फिर आहो, तुम सुन्हु न दुख बिसरावन हो॥टेक॥ प्रेम खटेलवा कसि कसि बॉध्यो, बिरह यान तिहि लागू हो। तिहि चढ़ि इंदक करत गर्बेसिया, अंतर जमवा लागू हो। महरू मछा मारि न जॉने, गहरे पैठा धाई हो॥ दिन इक मगरमछ लै खैहे, तब का रखिहे बंधन भाई हो। महरू नामहरइये जाने, सबब न बूसे बोरा हो। चारे लाइ सकल जग खायो, तऊ न भेट निसहुरा हो। जो महराज चाहौ-महरईये, तो नाथी ए मन बोरा हो। तारी लाइक सिष्टि बिचारी, तब गहि भेटि निसहुरा हो॥ टिकुटि भइ कॉन्ह के कारणि, भ्रमि भ्रमि तीरथ कीन्हों हो। सो पद देहु मोरि मदन मनोहर, जिहि पदि हरि मे थीन्हों हो। दास कबीर कीन्ह अस गहरा दबे कोई महरा हो । यह संसार जात मै देखी, ठाढ़ों रही कि निहुरा हो ॥७७॥ शब्दार्थ-च्यतामणि > इच्छित वस्तु देने वाठी मणि। आहौ 5 है। इृदऊ - इद्र। इद्रियाँ गर्वेसिया "रखवाली। महरू 5 मछुआरा। मछा > मछली। निसहुरा 5 बेवकूफ । टिकूटि > तकली। महरा 5 महत्त्वपूर्ण व्यक्ति। निहुरा 5 झुका। नग्र। अर्थ-ऐ चितामणि, तुम्हारे कारण चित्त मे स्थिरता नहीं है। बार-बार लोभ उत्तन्न होता है। मेरा मन बार-बार लोभ की मैल से भर जाता है। हे दुख समाप्त करने वाली तुम सुनती ही नहीं हो। इस शरीर रूपी खटोले को कस कर बॉँधा। इसे प्रभु का विरहवाण लग गया है। इस खटोले पर चढकर इद्र या इद्रियाँ रखवाली करती है। कितु भीतर यम का प्रवेश हो गया है। रखवाली व्यर्थ हो जायगी। साधक मछुआरा अनाड़ी है। गुरुज्ञानरहित है। इसलिये मन मछली को मारना नहीं जानता है। कितु दौड़कर गहराई मे मन मछली मारने को प्रविष्ट कर गया है। एक दिन काल-मगरमच्छ इसे पकड़कर नष्ट कर देगा। तब मेरे सारे जाल के बधन व्यर्थ हो

५५६ कबीर समग्र जायेंगे। यह मन-मछुआ अज्ञानी है। गुरु शब्दों को नहीं समझता है। प्रभु प्रेम मे तकुली के समान तीर्थों मे चक्कर लगाने से आवागमन नहीं छूटेगा। क्योकि तकुली का चक्र कभी समाप्त नहीं होता है। हे प्रभु, मुझे वह पद बताओं जिस पद से हरि की पहिचान हो सके। यह इतना गहरा तत्त्व है कि इसे कोई महत्त्वपूर्ण व्यक्ति ही समझ सकता है। इस ससार मे खड़ा और झुका सभी चले जाते हैं। अलंकार-रूपक, रूपकातिशयोक्ति | बीनती एक राम सुनि मोरी; अब न बचाह राखि पति मोरी ॥टेक॥ जैसे मंदला तुमहि बजावा, पैसे नाचत मै दुख पावा ॥ जे मसि लागी सबै छुड़ावी, अब मोहि जानि बहु रूपक छावो॥ कहे कबीर मेरी नाच उठावो, तुम्हारे चचन कव़ल दिखलाबी॥७८॥ अर्थ-हे राम, मेरी एक प्रार्थना सुन लो। अब मुझे प्रतिष्ठा रखने से वचित मत करो। मेरी इज्जत रखो। मै तुम्हारे वाजे की धुन पर ही नाचता हूँ। कितु यह दु ख़द है। ससार विषयो के दाग छुड़ाओ। अब बहुत रूप बदलने मत दो। विषयो के प्रति मेरा दौड़ना (नाच) समाप्त करो। चरण-कमल का दर्शन कराओ। गि अलंकार-रूपकातिशयीक्ति | मन धिर रहे न घर है मेरा; इन मन घर जारे बहुतेरा ॥टेक॥ घर तजि बन बाहरि कियौ बास, घर बन देखो दोऊ निरास ॥ जहाँ जाऊँ तहाँ सोग संताप, जुरा मरण कौ अधिक बियाप॥ कहै कबीर चरन तोहि बदा, घर मै घर दे परमानंदा ॥७९॥ अर्थ-मेरा मन घर का होकर स्थिर नही रहता है। इस मन ने अनेक घर जलाये। घर का अर्थ है शरीर। घर (गृहस्थी) को छोड़कर जगल गया, विराग लिया। कितु घर-वन दोनो को देखकर निराशा हुई। सर्वत्र दुख है। वृद्धावस्था और मृत्यु है। हे परमानद प्रभु, तुम्हारा चरण ही असली घर है। इस घर मे ही तुम मुझे स्थान दो। घर दो। कैसे नगरि करो कुटवारी, चंचल पुरिष बिचषन नारी ॥टेक॥ बैल बियाह गाइ भई बॉस, बछरा दूहे तीन्‍्यूँ साँन्च ॥ मकड़ी धारि माधी छछिहारी, मास पसारि चील्ह रख़वारी॥ मूसा खेवट नाव बिलाइया, मीडक सोबै साप पहरइया॥ निति उठि स्याल स्यंघ सूँ झूम कहे कबीर कोई बिरला बूसे ॥८०॥ शब्दार्थ-नगरि - शरीर | कुटवारी > कोतवाल का काम। पुरिष >जीव। नारी 5 माया। बैल - अविवेक। गाइ > सदबुद्धि। बछरा ‘‘इन्द्रियाँ | तीन्यूँ साँझ 5 हर समय। मकड़ी - माया जाल फैलाने वाली। माषी 5 सचरणशीलता। अस्थिरता। छछिहारी 5 छाछ की रखवाली करने वाली। मास 5 विषय। चील्ह 5 लोभ। मूसा 5 चूहा। काम। खेवट 5 मल्लाह। नाव जीवन | बिलइया > बुद्धि। मीढक 5 मेढक। ज्ञान। साप 5 सर्प अज्ञान। सवाल 5 सियार। तृप्णा। सिघ 5 जीव | अर्थ-जिस नगर मे रहने वाछ्‌ा जीव विलक्षण माया के प्रभाव से चचल है। अस्थिर है। उस नगर (देह) की रक्षा कैसे की जा सकती है? इस माया नगर (देह) के सारे कार्य विचित्र है। यहॉ बैल (अविवेक) ब्याता है और गाय। सद् बुद्धि) वध्या रहती -है। इद्रियाँ रूपी वछड़े इस अविवेक को हर समय दुहते रहते है। माया मकड़ी के घर मे अस्थिरता की मक्खी दही बिलोने और उसे रखने का कार्य करती

है। विषय (मॉस) फैले है। उनकी रखवाली लोभ चीठ द्वारा होती है। जीवन की वुद्धिनाव को काम-नाविक खे रहा है। ज्ञान-मेढक सो रहा है।

ए़द ५५७ अज्ञान-सर्प पहरे पर है। नित्य दिन तृष्णा-सियार जीव-सिह को खा रहा है। भाई रे चूँन बिलूँटा खाई; बाधनि संगि भई सबहिन के, खसम न भेद लहाई ॥टेक॥ सब घर फोरि बिटूँटा खायो, कोई न जानें भेव। खसम निपूतौ आँगणि सूतौ, रॉड न देई लेव॥ पड़ोसनि पनि भई विरॉनी, माँहि हुई घर घाले। पंच सखी मिली मंगल गाँवे, यह दुख याकों साले ॥ दै दे दीपक घरि घरि जाया, मंदिर सदा अँधारा॥ घर घेहर सब आप सावरथ, बाहरि किया पसारा॥ होत उजाड़ सबै कोई जानै,सब काहू मनि भावे ॥ कहै कबीर मिले जो सतगुर, तो यहु चूँन छुड़ावै ॥८१॥ शब्दार्थ-चूँन - चूर्ण। आटा। बिलूँटा 5 विलुठित। इधर-उधर भटकने वाला। अस्थिर। बाधिन >चित्त। राड ल दुर्बद्धि। पडोसनि 5 सदबुद्धि। पनि-८ पुन । बिरानी ८ दूसरी । परायी। ' पचसखी पॉच ज्ञानिंद्रियों। द्वै दै दीपक सूर्य चन्द्रमा। जोया 5 जलाया | अर्थ-ऐ भाई, आटे (मूलतत्त्) को भटकते चित्त रूप बाधिन खा गयी। यह बाधघिन सबको, सब घर को खा रही है। गृहपति (जीवात्मा) को भी यह भेद समझमे नहीं आता है। ज्ञानरहित जीव सोया है। दुर्बुद्धि उसे कुछ करने (लेने-देने) नहीं देती है। सदबुद्धि पड़ोसिन सी परायी हो गयी है। दुर्बुद्धि हृदय के भीतर रहकर घर नष्ट कर रही है। पॉँचो ज्ञानेद्रियोँ मगलगीत गाती है। यह बात दुर्बुद्धि को अच्छी नहीं लगती है। चद्रमा, सूर्य (इडा, पिगला) रूप दीपक जलने के बावजूद हर घर (देह, हृदय) में अधेरा (अज्ञान) है। बाहरी प्रसार बढ़ गया है। नाश हो रहा है। यह सभी लोग जानते है। सबको शायद यह अच्छा लगता है। सत कबीर कहते है कि सदगुरु ही शिष्य को इस स्थिति से बचा सकते है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | विषिया अजहू सुख आसा, हूँण न देह हरि के चरन निवासा ॥टेक॥ सुख माँगे दुका पहली आवे, ताते सुख माँग्यों नहीं भावे। जा सुख थे सिव बिरंधि डरॉनॉ, सो सुख हमहु साथ करि जाना॥ सुखि छदाड्या तब सब दुख भागा, गुर के सबद मेरा मन लागा। निस बासुरि विषेतनों उपगार विषई नरकि न जाता बार। कहै कबीर चंचल मति त्यागी, तब केवल राम नाम ल्यो लागी॥८२॥ अर्थ--आज भी विषय से आशा बनी है। विषय से लाभ की आशा के कारण हरि चरणो मे प्रेम नहीं हो पाता है। विषयो मे सुख नहीं, दुख मिलता है। इसलिए सुख मॉगना अच्छा नहीं लगती है। जिस मायामय सुख से शिव, ब्रह्मादि डरते है उस सुख को हमने सच्चा मान लिया है। विषय का सुख छोड़ा तभी दुख भागा। गुरु के शब्दो मे मन लगा। रात-दिन विषयो मे डूबे को नरक जाते देर नहीं लगती है। सत कबीर कहते है कि बुद्धि की चचलता को त्याग दो। केवल राम मे ध्यान छगाओ | तुम्ह गारडू मैं विष का माता, काहै न जिवाबी मेरे अमृतदाता |टिक।॥ संसार भवंगम डसिले काया, अरू दुखदारन व्यापै तेरी माया॥

सापनि क पिटारे जागे, अह निसी सोबै ताकूँ फिरि फिरि लागें। कहै कबीर को को नहीं राखे, राम रसोंइन जिनि जिनि चाखे ॥८३॥ अर्थ-हे अमृत मत्र दाता गुरुदेव, मै विषय-सर्प विष से ग्रस्त हूँ। आप सर्प विष उतार वाले है। मुझे कृपाकर क्यों नहीं जिला लेते है? एक तरप ससार सर्प ने डसा है। दूसरी ओ राम की माया परेशान कर रही है। इस शरीर-ससार पियरे मे काल सर्प जगा है। रात-दिन से वाल को वार-वार डँसता है। जन्म-मृत्यु के चक्र चलते है। 'सत कबीर कहते है कि जिन्होने रा रसायन चखा उनमे कौन है जिसकी रक्षा भगवान् ने नहीं की है? अलंकार-रूपक, रूपकातिशयोक्ति। माया तजूँ तजी नही जाइ; फिर फिर माया मोहि लपठाड [टिक॥ माया आदर माया मान, माया नहीं तहाँ ब्रह्म गियाँन॥ माया रस माया कर जॉन, माया कारनि तजै परान॥ माया जप तप माया जोग, माया बाँधे सबही लोग || माया जल थलि माया अकासि माया व्यापि रही चहुँ पासि॥ माया माता माया पिता, असि माया अस्तरी सुता॥ माया मारि करे व्यौहार, कहै कबीर मेरे राम अधार ॥८४॥ अर्थ-माया के विविध रूप है। इसीलिए माया के छोड़ना चाहता हूँ कितु वह छोड़ी ना जाती है। माया मनुष्य को पकड़ती है। आदर, मान माया है। जहाँ ब्रह्मज्ञान है वहाँ माया न रहती है। माया का आनद भी माया के कारण समझो। माया मृत्यु का भी कारण बनती है योग, जप तपस्या आदि सब माया है। माया के कारण समझो। माया मृत्यु का भी रखा है जल, थढ़ आकाश, सर्वत्र माया है। माया सर्व व्यापक है। माता-पिता स्त्री पुत्र सब माया माया मृत्यु का व्यवहार करती है। कवीर को केवल राम पर भरोसा है। अलंकार-विशेपोक्ति | ग्रिह जिनि जॉनी रूड़ी रे। कंचन कलस उठाई सबहिन के, काहू को परयौ न पूरी रे॥ राजा राणों राव छत्नपति, जरि भये भसम कौ कूरी रे॥ सबधे नीकी संत मैंद्डलिया, हरि भगतनि कौ भेरीं रे ॥ गोविद के गृन बैठे गैहै, खैंहे टूकी टेरी रे ॥ ऐसी जानि जापी जगजीवन, जग सूँ तिनका तोरी रे ॥ कहै कबीर राम भजबे को, एक आध कोई सूरी रे॥८५॥ शब्दार्थ-ग्रिह + गृह। जिनि + मत। नहीं। रूड़ी & सुदर। धूरी 5 धूल | डहके < जढें कूरी 5 कूड़ा | भैगी > एक प्रकार की नाव। तिनका तोड़ना 5 सबंध तोड़ना । अर्थ-घर को सुदर मत समझो] सोने का कलश रखा मदिर भी राम की मूर्ति के विन मिट्टी है। उसी प्रकार शरीर वह जो राम कहे। इस घर (शरीर) ससार मे सभी के मन जले है किसी को पूर्ण संतोष नहीं हुआ। राजा, राव, क्षत्रपति सभी जलकर राख का कूड़ा हो गए। सत मडली अच्छी है। भक्तो को ससार पार करने की नाव है। वहाँ, सतमडली मे भगवा का गुण गाऊँगा और जो भी रूख़ा सूखा टुकड़ा मिल जायगा खाकर सतुद्ट रहूँगा। ससार : सवध तोड़कर राम जपता हूँ। राम भजने मे कोई एकाध ही वीर होते है। रंजसि मीन देखी बहु पानी; काल जाल की खबरि न जानी ।टिक। गारे गरव्यो औघठ घाट, सो जल छाड़ि बिकानौ हाट) .._ बँध्यो न जाने जल उदमादि, कहै कबीर सब मोहे स्वादि ॥८६॥

पद ५५५ शब्दार्थ-रजसि 5 प्रसन्न हुआ। उदमादि 5 उन्माद। गारै 5 गहरे | अर्थ-मछली (जीव) बहुत पानी (धन) देखकर प्रसन्न हुई। कितु इस पानी की समृद्धि मे काल के जाल की खबर न थी। जब उसे गहरा गर्व हुआ तो जाल मे फेंसी और बाजार मे बिकने लगी। जल (समृद्धि) की पूर्णता के उन््माद मे कुछ नहीं समझा और बध गयी यम के फेरे मे बंध गयी। सत कबीर कहते है कि सबको स्वाद ने मोह लिया है। स्वाद मोह नाश है। अलंकार-अन्योक्ति | काहे रे मन दह दिस धावै; विषिया संगि संतोष न पावै ।टिक॥ जहाँ जहाँ कल्प तहाँ तहाँ बंधनाँ, रतन की थाल कियी तैं रधनोँ ॥ जौ पै सुख पहयत इन माही, तो राज छाड़ि कत बन कौ जाहीं॥ आनैद सहित तजा विष नारी, अब क्या झीषे पतित भिषारी ॥ कहै कबीर यहु सुख दिन चारि, तजि विषिया भजि चरन मुरारि॥ शब्दार्थ-दह < दस। रधनों 5 रसोई। भीषै 5 झखना। अर्थ-हे मन, व्यर्थ दसो दिशाओ मे क्यो दौड़ते हो? विषय सग से कभी सतोष नहीं होगा। सारी कल्पनाएँ बधन है। जीवन रल की थालहू विषय रसोई के लिये नहीं है। अगर विषयों मे सुख होता तो अनेक लोग राज्य छोड़कर भिखारी क्यो होते ? प्रसन्नतापूर्वक विषरूप स्नरी को त्याग दो। उसके लिये झखो मत। माया या ससार सुख चार दिनो (बाल, किशोर, युवा, वृद्ध) का है। विषयो को छोड़कर प्रभु चरणों मे लगो। हि जियरा जाहिगी मै जॉनों; जो देखा सो बहुरि ने पेष्या, माटी सूँ * लपटॉना॥टेक॥ बाकुल बसतर किया पहरिबा, का तप बनखंडि बासा॥ - काह मुगध रे पॉहन पूजै, का जल डारे गाता॥ कहै कबीर सुर मुनि उपदेसा, लोका पंथि लगाई ॥ सुनी सतौ सुमिरी भगत जन, हरि बिन जनम गवाई ॥८ ८॥ अर्थ-ऐ जीव, तुम ससार से जाओगे यह मै जानता हूँ। सभी दृश्य नाशवान है। जो देखा गया वह पुन नहीं देखा गया। सभी मिट्टी मे लीन हो गये। बल्कल वस्त्र पहनो या वन *मे जाकर तपस्या करो। पत्थर पूजो या शरीर पर पानी डालने से क्या ? सत मुनियो के उपदेश "है कि लोक मार्ग पर मत चलो। सतो का स्मरण करो। राम बिना जन्म व्यर्थ जा रहा है॥ हरि ठग जग कौ ठगौरी लाई; हरि के वियोग कैसे जीऊँ मेरी माई ॥टेक॥। कौन पुरिष की कारी नारी, अभिअंतरि तुम्ह लेहु बिचारी॥ कौन पूत को काको बाप, कौन मरे कौन करे संताप॥ कहै कबीर ठग सौ मन माना, गई ठगौरी ठग पहिचना ॥८९॥ अर्थ-भगवान् ही सब की माया ठगौरीं द्वारा ठगते है। भगवान् वियोग मे जीआ भी नहीं जा सकता है। साधक किस पुरुष की स्त्री है? इस बात को तुम मन ही मन विचार' करो। कौन पुत्र और कौन पिता है? कौन मरता है, कौन दुखी होता है? कहते है, ये सारे भेद मायाठग के कारण है। माया के हटते ही ईश्वर ठक पहचान लिये जाते है। क्योकि साधक का मन तो भगवान मे लगा है। | अलंकार-रूपक | साईं मेरे साजि दई एक डोली, हस्त लोक अरु मै ते बोली ॥टेक॥ इक झंझर सम सूत खटोला, त्रिस्ना बाद चढ़ें दिसि डोला॥ पाँच कहार का भरम न जाना, एके कद्यमा एक नहीं माना।. , बजा

५६० कबीर समग्र भूभर घाम उहार न छावा, नैहर जात बहुत दुख पावा॥ कहै कबीर बर बहु दुख सहिये, राम प्रीति करे संगही रहिये ॥९ ०॥ शब्दार्थ-सॉई - प्रभु। डोली 5 शरीर। हस्त लोक > हाथियो से घिरी दुनिया वाद « वात। हवा | पॉच कह्ठार 5 ज्ञानेन्द्रियाँ भूभर 5 गर्म उहार > पर्दा। अर्थ-मेरे प्रभु ने शरीर की डोली सजायी है। जिसके कारण मै हाथियो से घिरे ससार या हाथ द्वारा काम होने वाली दुनिया मे मै और तुम का भेद कर रहा हूँ। यह शरीर खटोला सूत (नसों आदि) का बना है। यह हजारो छिद्रों से झझड़ है। यह तृष्णा की हवा से चारो दिशाओ मे चक्कर खाता है। पॉच ज्ञानेद्रियाँ कुछ भी नहीं जानतीं। इन इद्रियो मे आपसी एकता नहीं है। कोई किसी की बात नहीं माना चाहती है। यह ससार विषयो की हवा से गर्म है। कोई उहार, पर्दा भी नहीं है। पर्दा तो तभी होता यदि अच्छा काम किया होता । नैहर (राम के यहाँ जहाँ से जीव आता है) जाने में बड़ा कष्ट होता है। सत कवीर कहते है, चाहे जितना कष्ट हो, राम की प्रीति अवश्य कीजिए | अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | बिनसि जाह कागद की गुड़िया, जब लग पवन तबै लग उड़िया |दिक॥ गुड़िया कौ सबद अनाहद बोले खसम लिये कर डोरी डोलै। पवन धक्यो गुड़िया ठहरानी, सीस धन धुनि रोबै प्रॉनी॥ कहे कबीर भजि सॉरगपानी, नाहीं तर डै है खैचातानी॥ अर्थ-यह कागज की गुड़िया जैसा शरीर तभी तक उड़ता है, सक्रिय रहता है जब तक हवा (प्राण) है। गुड़िया के भीतर अनाहत नाद होता है। उसकी डोरी उसके पति के हाथ मे है। वह जेसे चाहता है वैसे गुड़िया डोलती है। पवन (प्राण) के स्थगित होते ही गुड़िया ठहर जाती है। इस स्थिति को देखकर लोग सिर धुनते है। दुखी होते हे। रोते है। ऐ मन, ईश्वर का भजन करो वरना यमदूत खींचातानी करेगे। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | मन रे तन कागद का पुतला। लागै बूँद बिनसि जाई छिन मे, गरब करे क्या इतना ॥दिक॥ भाटी खोदहि भीत उसारे, अंध कहै घर मेरा। आवै तलब बॉधि ले चाले, बहुरि न करिंहे फेरा ॥ खोट कपट करि यहु धन जोस्पो, लै धरती में गाडूयी। रोक्यी घटि साँस नही निकसे, ठौर ठौर सब छाड़्यो। कहै कबीर न नाटिक थाके, मदला कौन बजावै॥ गये पषनियों उप्चरी बाजी, को काहू के आबे ॥९२॥ ओ शब्दार्थ-उसरै 5 ओसारा या उठाना। तलब > बुलावा। नाटिक नर्त्तक। पषनियोँ पखावज बजाने वाले। उरी बाजी 5 बाजा बजना समाप्त। अर्थ-यह शरीर कागज का पुतला है। जल की एक दूँद भी पड़ जाय तो यह शरीर नष्ट हो जायगा। इस शरीर पर इतना गर्व व्यर्थ है। मिन्‍्ठी को खोदकर घर उठाया। अज्ञानी अधे इसे अपना घर कहते है। कितु जब यम राजा का बुलावा आएगा उनके दूत बॉधले जायेंगे तब तुम इस घर मे पुन नहीं आ सकोगे। बेईमानी से धन इकट्ठा किया। धरती मै गाड़कर रखा। जव सॉस रुक जायगी तब सारा धन यही रह ज़ायगा। सत कबीर कहते है कि नट और न्‍र्तक थक गये। अब मर्दल कौन बजाएगा ? पखावज बजानेवाले सभी चले गए। सारे बाजे बद हो गए। अब कौन किसके पास आएगा ? '

पद ५६१ अलंकार-रूपक, रूपकतिशयोक्ति। झूठे तन कौ कहा रखइये, _मरिये तो पल भरि रहण न पहये।टेक॥ घीर षाँढ़ घृत प्यंड सैंवारा, प्रॉन गये ले बाहिर जारा॥ चोवा चंदन चरचत अंगा, सो तन जरे काठ के संगा ॥ दास कबीर यहु कीन्ह बिचारा, इक दिन डैहै हाल हमारा ॥९३॥ अर्थ-यह शरीर झूठा (नाशवान) है। इसकी इतनी रखवाली क्यों करते हो? मरने पर एक क्षण के लिए भी इस शरीर या ससार मे रहना न होगा। इस शरीर को दूध, शक्कर, घी, चोवा, चदन लगाकर खूब मजबूत और सुदर बनाया। प्राण निकलते ही यह शरीर बाहर कर दिया जाता है और काठ के साथ जलने लगता है। दास कबीर ने विचारा कि एक दिन हमारा भी यही हाल होगा। देखहु यह तन जरता है, घड़ी पहर बिलेंबे रे भाई जरता है॥टेक॥ काहे को एता किया पसारा, यह तन जरि करि डै है छारा॥ नव तन द्वादस लागी आगी, मुगध न चैतै नख सिख जागी॥ काम क्रोध घट भरे बिकारा, आपहि आप जरे संसारा॥ कहै कबीर हम मृतक समाना, राम नाम छूटे अभिमाना॥९४॥ अर्थ-देखो, यह शरीर जल रहा है। थोड़ी देर विलब लगे फिर तो इसे जलना ही है। व्यर्थ इतना प्रसार किया। यह शरीर जलकर राख हो जायगा। शरीर के नौवो द्वारो तथा बारहो अगों (हाथ, पैर गुदा, लिग, आँख, कान, नाक, मुँह, जीभ, पेट, छाती, कठ) मे आग लग गयी है| कितु मूर्ख मनुष्य पूर्णत चेतन नहीं हो रहा है। शरीर मे काम, क्रोध के विकार भरे है। सारा ससार विकार से जल रहा है। जिनका राम नाम के कारण अहकार छूट गया है वे जीकर भी विषयभोग की दृष्टि से मृत है। अलंकार-रूपकतिशयोक्ति | तन राखनहारा को नहीं; तुम्ह सोच विधारि देखो मन माही ॥टेक॥। जो कुटुंब आपनो करि पारयौ, मुंड ठोकि ले बाहरि जारयो ॥ दगाबाज लूटे अरु रोबै, जारि गाड़ि घुर षोजहि पोवे ॥ - कहत कबीर सुनहूँ रे लोई, हरि बिन राखनहार न कोई ॥९ ५॥ शब्दार्य-षोजहि षोवै -- निशान मिटाना। अर्थ-इस शरीर की रक्षा करने वाला कोई नहीं है। तुम सोच विचार कर देखो। जिस कूटुम्ब को अपना समझ कर पाला था वही सिर पर मार कर बाहर छे जाकर जला देता है। टूटते है और रोते भी है ।जलाकर या गाड़कर निशान तक मिय देना चाहते है। सत कबीर कहते है कि ये लोगो, सुनो भगवान के बिना कोई मददगार नहीं है। अब क्या सोचे आइ बनी, सिर पर साहिब राम धनी ॥टेक॥ दिन दिन पाप बहुत मै कीन्हा, नहीं गोब्यंद की संक मनीं।॥ लेटयो भोमि बहुत पछितानै, लालचि लागौ करत धर्नी॥ छूटी फौज आऑनि गढ़ घेरथौ, उड़ि गयौ गूडर छाड़ि तनीं॥ पकरतो हंस जम ले चाल्यो, मंदिर रोबे नारि घनी॥ कहै कबीर राम कित सुमिरत, चीन्हत नाहिन एक घचिनी॥ न जब जाइ आई पड़ोसी घेरयौ, छॉड़ि चल्यो तजि पुरिष पर्नी ॥९ ६॥ जे शब्दार्व-आइबनी > लाभ का अवसर आना। सक 5 डर। भोमि « भूमि। गूडर - पक्षी व।

५६२ कबीर समग्र अर्थ-अव क्या सोचते हो? तुम्हे लाभ का अवसर मिला है। तुम्हारे ऊपर राम की कृपा हैं। जीवन भर नि भक होकर पाप किया। अब जमीनपर गिरनेपर अफसोस करते हो? .पहले लोभ मे वड़ा पाप किया। यम की फीज ने शरीर गढ़ को घेर लिया है। जीवपक्षी शरीर छोड़कर उड़ गया। हस-जीवात्मा को यम लिये जा रहा है। घर मे स्त्री रो रही है। राम को चीन्हो और उनका स्मरण करो। जब पड़ोसी (यम) ने घेरा तो पुरुपत्व छोड़कर उसके साथ चले। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति। सुबटा डरपत रहु मेरे भाई, तोहि डराई देत बिलाई॥ तीनि बार रूँध्रे इक दिन मै, कबहूँ के खता खबाई ॥टेक॥ या मंजारी मुगध न माने, सब दुनियाँ डहकाई॥ राणों राव रंक कौ व्यापै, करे करि प्रीति सवाई॥ कहत कबीर सुनहूँ रे सुबटा, उबरे हरि सरनाई। लाएी माँहि ते लेत अचानक, काह न देत दिखाई ॥९७॥ अर्थ-ऐ जीव रूपी सुग्गे, मन मे डरते रहो। काल विल्ली तुम्हे डराती रहती है। दिन के तीन भागो में रोकती है| कभी न कभी तुम्हारी भूल (खता) से वह तुम्हे खा जायगी। इस काल बिल्ली ने सारे ससार को परेशान कर रखा है। धनी से धनी, राजाराव सब प्रेम करके देख चुके। सवको खा गयी। सत कबीर कहते है कि ऐ जीव रूपी सुग्गे, सुनो। प्रभु शरण में जाने पर ही उबार है। काल बिल्ली लाखो के वीच जीव को उठा लेती है। कोई देख भी नही पाता है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति का माँगूँ कुछ थिर न रहाई; देखत नैन चल्या जग जाई॥टेक॥ ; इक लघष पूत सवा लष नाती, ता रावन घरि दिया न बाती॥ लंका सी कोट समंद सी खाई, ता रावन का खबरें न पाई॥ आवत संग न जात संगाती, कहा भयौ दरि बाँघे हाथी॥ कहै कबीर अंत की बारी, हाथ झाड़ि जैसे चले जुबारी ॥९ ८॥ अर्थ-रामजी से भी कया मॉगे ? ससार तो नाशवान है। कुछ स्थिर नहीं है। आँखो के सामने सव जा रहा है। एक छाख पुत्र, सवा छाख नाती वाले रावण के घर मे कोई दिया बत्ती दिखाने वाला नहीं रह गया। जिसके पास छका का किला और समुद्र की खाई थी वह रावण चला गया। कोई खबर लेने वाला नही रहा। दरवाजे पर हाथी बॉधने से, क्या हुआ ? आना जाना अकेला होता है। यह ससार जुए का खेल है। जहाँ हार निश्चय है। जो भी जुआरी यहाँ आता है हाथ झाड़कर सब गँवा कर जाता है। राम थोरे दिन कौ का धन करना, धंधा बहुत निहाइति मरना ॥दिक॥ कोटी धज साह हस्ती बेंघ राजा, क्रिपन को घन कौनें काजा॥ धन के गरबि राम नही जाना, नागा है जंम पे गुदरॉनों ॥ कहै कबीर चेतहु रे भाई, हंस गया कुछ संगि न जाई ॥९ ९॥ अर्थ-हे राम, थोड़े दिनो के लिये धन का क्या करना है ? इन्द्र बहुत है। मरना तय है। करोड़ो ध्वजाओ के साथ हाथी बॉधने वाले राजा या कृपण का धन किस काम का है ? धन के अहकार मे राम को नही जाना। नगा होकर यम को प्रार्थना करते है। कितु वह सुनना नही। सत कवीर कहते है कि हे जीव, चेतो, केवल हस जायगा और उसके साथ कुछ भी नही जायगा |

पद ५६३ कह दूँ माया दुख करि जोरी; हाथि चूँन गज पाँच पछेवरी ॥टिक।॥ नो को बंध न भाई सौंथी, बाँघे रहे तुरंगम हाथी।॥ मैडी महल बावड़ी छाजा, छाड़ि गये सब भूपति राजा ॥ कहै कबीर राम ल्यो लाई घरी रही माया काहू खाई ॥१००॥ अर्थ-इतनी माया (धन) क्यो इकट्टी की ? केवल थोड़ा आय और पाँच गज का वस्त्र काफी था। अत मे न कोई भाई, न साथी, न बॉघे गये घोड़े हाथी ही काम आए। मडित (मैडी) महल, सज्जित तालाब आदि को धरती के सभी राजा छोड़कर चछे गये। सत कबीर कहते है कि राम में ध्यान लगाओ। माया रखी रह गयी। उसे कोई खा न सका। माया का रस षाण न पावा; तह लग जम बिलवा है धावा ।टेक॥ अनेक जतन करि गाड़ि दुराई, काहू साँची काहू खाई॥ तिल तिल करि यहु माया जोरी, चलति बेर तिणाँ ज्यूं तोरी। कहै कबीर हूँ ताँका दास, माया माँहे रहे उदास ॥१०१॥ अर्थ- अभी माया रस खा भी नही पाया था कि तब तक यम पक्षी पर बिल्ली होकर दौड़ा। ससार मे धन को गाड़ कर छिपाया, किसी ने इकट्ठा किया। किसी ने खाया। तिहुतिढ > कर माया (सपत्ति) इकट्ठी की। कितु चलते समय (मृत्यु के समय) तृण तोड़ लिया। सबध भग कर लिया। सत कबीर उसके दास है जो माया में रहकर भी माया के प्रति हृगाव रहित एव उदासीन रहता है| अलंकार-रूपक मेरी मेरी दुनिया करते, मोह मछर तन धरते, आगे पीर मुकदम होते, वे भी गये यो करते ॥टिक।॥ किसकी ममा चचा पुनि किसका, किसका पंगड़ा जोई॥ यहु संसार बजार मंडूया है, जानैगा जग कोई॥ मैं परदेसी काहि पुकारी, इहाँ नही को मेरा ॥ यह संसार हूँढ़ि सब देख्या, एक भरोसा तेरा ॥ 'खाँहि हलाल हरॉम निवारै, भिस्त भिस्त तिनहू कौ होई॥ पंच तत का मरम न जाने दोजगि पड़िहे सोई ॥ कुटंव कारणि पाप कमावे, तू जाणे घर मेरा ॥ ए सब मिले आप सवारथ, इहाँ नही को तेरा॥ सायर उतरी पंथ सँवारी, बुरा न किसी का करणा॥ कहै कबीर सुनहु रे संती, ज्वाब खसम दूँ भरणा॥१०२॥ शब्दार्थ-मछर - मत्सर। पीर 5 सिद्ध। मुकदम प्रधान। पगड़ा + लगड़ी। पगुल। जाई ल योषिता। को 5 कोई। सायर 5 सागर। ज्वाब 5 जबाव। आगै > पहले। अर्थ-लोग सपत्ति के लिये मेरी मेरी करते है। जैसे मोह, मत्सर ने ही शरीर धारण कर लिया है। पहले सिद्ध और प्रधान भी मेरी मेरी करते चले गए। मामा, चाचा, स्त्री आदिस्के सबंध व्यर्थ है। यह ससार एक बाजार है। इसे कोई कोई ही जान सकता है। जीव (मैं) परदेशी है। यहाँ उसका कोई नही है। सब को पुकार कर देख लिया। कोई काम नही आग्रा। अब एक प्रभु का भरोसा है। जो हलाल खाते है, हराम को रोकते है। उन्हे ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है। कितु पचतत्त्व के मर्म को न जानेवालो को नरक होता है। लोग परिवार के लिये पाप करते है। छोग समझते है कि यह मेरा घर है। ये सभी स्वार्थी

पद कवीर समग्र है। यहाँ तुम्हारा कोई नही है। ससार सागर को णर करो। रास्ता ठीक करो। किसी की बुराई मत करो। क्योकि पति परमेश्वर को जदाव देना होगा । अलंकार-रूपक, रूपकानिशवयोक्ति रे यामै क्या मेरा क्या तेरा, लाज न मरहि कहते घर मेरा |टिक॥ चारि पहर निस भोरा, जैसे तरवर पंखि बसेरा | जैसे बनिये हाट पसारा, सब जग का सो सिरजनहारा॥ ये ले जारे वै ले गाडे, इनि दुखिइनि दोऊ घर छाड़े। कहउ कबीर सुनहु रे लोई, हम तुम्ह बिनसि रहैगा सोई ॥१ ०३॥ अर्थ-अरे भाई, तुम्हे इस घर को मेरा कहते लज्जा नहीं आत्ती। यह न मेरा है। न तुम्हारा। यहाँ चार पहर रहना है। भोर होते ही जैसे पेड़ के पक्षी उड़ जाते है वही हालत जीव की है। सृष्टि कर्ता वनिया है। अपना वाजार फैलाया है। कभी यह बाजार उठ जायगा। हिंदू जलाता हें। मुसलमान गाड़ते है। इन दुखियो ने दोनो घर (इहलोक, परलछोक) छोड़ दिये। सत कवीर कहते है, छोगो सुनो। जीव नष्ट हो जायगा। परमात्मा रह जायगा। अलंकार-उपमा नर जाँणे अमर मेरी काया; घर घर बात दुपहरी छाया ॥टेक॥ मारग छाड़ि कुमारग जीवे, आपण मरे और दूँ रोवे। कछू एक किया कछू एक करणा, मुगध न थेते निहचे मरणों ॥ ज्यूं जल बूँद तैसा संसारा उपजत, बिनसत लागें न बारा। पंच पेंचुरिया एक सरीरा, कृष्ण कव॒ल दल भवर कबीरा ॥१०४॥ अर्थ- आदमी अपनी देह को अमर समझता है। कितु घर और घर की वात दोनो दुपहरिया की छाया के समान है। थोड़ी देर मे मिट जाते है। जो व्यक्ति मार्ग छोड़ कुमार्ग पर जाता है वह खुद तो मरता ही है। दूसरो को भी मारता है। मृत्यु निश्चित है। इसलिये जो किया और जो करना है उसे करो। ससार जल बूद सा उपजता है और क्षण भर मे नष्ट हो जाता है। पॉच तत्त्वो (पच पपुरिया) से बना एक भरीर है। भगवान कृष्ण कमढ़् दल है और कवीर भ्रमर है। अलंकार-उपमा तथा रूपक | मन रे अहरषि बाद न कीजै; अपना सुकृत भरि भरि लीजै ॥ टेक॥ कुँभार एक कमाई माटी, बहु विधि जुगति बणाई। एकनि मैं मुकताहल मोती, एकनि ब्याधि लगाई॥ एकनि दीना पाट पटंबर एकनि सेज निवारा। एकनि दीनो गरे गूदरी, एकनि सेज पयारा ॥ सांची रही सूँम॒ की संपति, मुगध कहै यहु मेरी ॥ अंत काल जब आइ पहुँचा, छिन मे कीन्ह निबेरी | कहत कबीर सुनो रे संतो, मेरी मेरी सब झूठी ॥ चड़ा चीयड़ा चूहड़ा ले गया तणी तणगती टूटी ॥१०५॥ शब्दार्थ- अहरपि 5 (

|| ! (! पद ५६५ तणी तनी 5 तनकी। चोली। अगिया। तागड़ी 5 करधनी। अर्थ-रे मन व्यर्थ विवाद मत करो। अपने पुण्य को भरने, प्राप्त करने की कोशिश करो सृष्टि कर्त्ता कुभकार ने मिट्टी को रगड़ कर युक्ितिपूर्वक अनेक चीजे बनाई। कही मोती और कही रोग ठगाया। एक को रेशमी वस्त्र और एक को निवार का बिस्तर दिया। एक को गड़नेवाली दरी दी और एक को पुआल या प्यार का बिस्तर दिया। सूम को सग्रह दिया और वह सपत्ति को अपनी कहता है। अतकाल आने पर क्षण मे फैसला होता है। सत कबीर कहते है कि मेरी-मेरी सब नाशवान् है। किसी का कुछ नही है। फटा पुराना भी यम चोर ले गया। अगिया और करधनी भी नष्ट हो गयी। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति हड़ हड़ हड़ हड़ हसती है, दीवॉनपनों क्या करती है। अड्डी तिरछी फिरती है, क्या च्यो ध्यो म्यो म्यो करती है।॥ क्या तूँ रंगी क्या तूँ चंगी, क्या सुख लौड़े कीन्हों। मीर मुकदम सेर दिवॉनी, जंगल केर षजीना॥ भूले भरमि कहा तुम्ह राते, क्या मदुमाते माया। राम रंगि सदा मतिवाले, काया होइ निकाया॥ कहत कबीर सुहाग सुंदरी, हरि भजि है निस्तारा। सारा घलक खराब किया है, मॉनस कहा बिचारा॥१०६॥ शब्दार्थ-दीवॉनपनाँ < पागलपन। रंग 5 रग वाढली। चगी > सुदरी। लौड़े - ढोढना। खोजना। मीर > धार्मिक आचार्य। सरदार। मुकदम > प्रधान। सेर > तृप्त। षजीना < निधि | निकाया - पवित्र। स्वच्छ । घठक 5 ससार | अर्थ-यह माया बहुत हड़हडाती हुई हसती है। दीवानापन (मतवालापन) व्यक्त करती है। टेढ़ी-टेढ़ी फिरती है। च्यो च्यो म्यो म्यो हल्ला भी करती है। तेरा ही रग हैक्या? सुन्दरी है क्या? सुख इकट्ठा करके क्या करेगी ? सुख खोजती फिरती है। मीर, मुकदम, तृप्त, दीवान * एवं जगल की सपत्ति ये सभी माया है। लोग झूठ मूठ मे इसके पीछे है। अरे लोगो, राम के रग में रगो। शरीर सुदर हो जायगा। राम कहना सौभग्य है। इससे ससार सागर का निस्तार होता है। माया ने तो सारे ससार को नष्ट किया है। बेचारा मनुष्य क्या है ? उसे नष्ट करना तो आसान है। अलंकार-माया का मानवीकरण हरि के नाइ गहर जिनि करऊँ; राम नाम चित मुखा जु धरऊँ |टिक॥ जैसे सती तजै स्यंगार, ऐसे जियरा करम निवार। राग दोष दोहूँ मै एक न भाषि, कदाचि ऊपजै घिता न राषि॥ भूले विसरय गहर जौ होई कहे कबीर कया करिहो मोहि॥१०७॥ शब्दार्थ- नॉइ < नाम। गहर > देर स्यगार 5 श्रगार। अर्थ-राम नाम स्मरण मे देर नहीं करनी चाहिए। जैसे सती स्त्रियाँ श्रगार छोड़ देती है वैसे ही कर्मो (ससारं कर्म) को दूर करो। राग ह्वेष मे एक बात बोलो। समान रहो। कभी चिता का भडार न उत्पन्न हो। भूल चूक से कभी स्मरण में देर भी हो तो उससे कुछ होने वाला नहीं है। क्योकि चित्त तो हर समय राममय है। अलंकार-उपमा मन रे कागद कीर पराया; कहा भयौ बव्यौपार तुम्हारी, कल तर बढ़े सवाया॥टेक।॥। बड़े बोहरे सौंठो दीन्हो कलतर काठ्यो खोटै।

कबीर समग्र चार लाख अरु असी ठीक दे जनम लिष्यो सब चोटे॥ अबकी बेर न कागद कीरयो, तौ धर्म राई सूँ तूटे। पूँजी बितड़ि बंदि ले देहे, तब कहै कौन के छूटे ॥ गुरुदेव ग्यॉनी भयो लगनियाँ, सुमरिन दीन्ही हीरा। बड़ी निसरनी नाव राम कौ, चढ़ि गयो कीर कबीरा ॥१ ० ८॥ शब्दार्थ-कागद - भाग्य लेख। कीट & कृत। किया। कलतर 5 मशीन से बना सिक्का। वौहरे > महाजन। ईश्वर। सॉठी > पूँजी। बुद्धि। चोट 5 दड | तूंटे 5 टूंटे। बितड़ि वितरित कर | लगनियाँ 5 लगानेवाले। निसरना 5 निसेनी। सीढी। धर्मराइ 5 यमराज | अर्थ-ऐ मन, तुमने अपने व्यापार (कर्म व्यापार) का कागज दूसरों को (माया के प्रतिनिधियो को) लिख दिया। तुम्हारा व्यापार क्या हुआ ? रुपयो से सवाया वढा। बड़े महाजनों (भगवान) ने तुम्हे पूँजी दी। किंतु इस पुण्य की पूजी को तुमने खोटे सिकको मे बदल दिया। फलत अब ८४ लाख योनियो मे मार खाते भटकते रहोगे। अब भी जन्म मे किसी प्रकार कागज मत करना तभी यमराज से मुक्त हो सकेगा। पुण्य पूजी समाप्त होने पर यमदूत तुम्हे वदी बना लेगे। अब तुम्हे कौन छुड़ा सकेगा ? सदगुरु ज्ञानी है। पूजी लगानेवाले लगनशील है। उन्होने तुम्हे प्रभु स्मरण का हीरा दिया है। यह हीरा कलतर से बहुत अधिक मूल्य का है। राम नाम की निसेनी बड़ी है। इस पर सुकर्म कृत कबीर चढ गये। या कवीर का आत्मपक्षी राम नाम के सहारे प्रभु पास पहुँच गया। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति ऐ धागा ज्यूँ टूटे त्यूं जोरि; तूंटे तूटनि होयगी, नो ऊँ मिले बहोरि |टिक॥ उरक्या सूत पॉन नही लागै, कूच फिरे सब लाई। छिटके पवन तार जब छूटे, तब मेरी कहा बसाई ॥ सुरकझ्षयी सूत गृठी सब भागो, पवन राखि मन धीरा। पचूँ भईया भये सनमुखा, तब यहु पान करीला॥ नॉन्ही मैदा पीसि लई है, छोणि लई दे बारा। कहै कबीर तेल जब मेल्या, बुनत न लागी बारा ॥१०९॥ शब्दार्थ-पॉन - माँड़ी। कूच -- कूची । गुठी - गाँठ। अर्थ-प्रभु से प्रीति का सवध सूत्र टूटे तो उसे पुन जोड़ छो। एक बार टूटने पर मिलना कठिन है। उल्झे सूत पर माड़ी नहीं चढ़ती है, चाहे कूँची चारो ओर क्यो न चलाई जाय। यानी विषयो मे उलझे मन पर प्रभु प्रीति का प्रभाव नही होता है। विषयो की हवा के झोके से जब जीवन या भगवत् प्रेम के तार छूट जायेगे तब जीव वेवश हो जायगा। जब प्रेम सूत्र सुझझ जाय और कर्म की गॉठ समाप्त हो जाय तब श्वास ग्राण वायु पर नियत्रण रखना चाहिए। श्वास, प्राणवायु पर नियत्रण से इद्रियाँ वश मे, हो जाती है। तब ध्यान सूत्र पर प्रेम की मॉड़ी चढ़ती है। सच्चा प्रेम पैदा होता है। वासना वाले मन को मैदे के समान पीस कर उसे विषयमुक्त कर लिया है। वासना वाला मन नष्ट हो गया है। उसी मैदे को दो बार ज्ञान-भक्ति से छान कर तेल मिलाया है। इससे कपड़ा बुनने में देर नही छंगेगी। स्नेह से ही प्रेम का जीवन खड़ा होता है। अलंकार-साग रूपक ऐसा औसर बहुरि न आबै; राम मिले यूरा जन पावै ॥दिका।। जनम अनेक गया अरु आया की बेगारि न भाड़ा पाया॥

हा ५६७ भेष अनेक एकंघूँ कैसा, नॉनों रूप धरे नट जैसा। दान एक माँगो कबलाकंत, कबीर के दुख हरन अनंत ॥११०॥ अर्थ-ऐसा अवसर, मानव देहधारण का मौका फिर नही मिलेगा। राम के मिलने से भक्त की भक्ति पूर्ण हो गयी है। अनेक जन्मो मे व्यर्थ बेगार होता रहा। व्यर्थ की बेगार का किराया तक नही पाया। एक ने ही अनेक वेश बनाये जैसे नट नाना वेश बनाता है। | हे भगवान् एक ही दान मॉगता हूँ। आप अनत दुख दूर करने वाले है। मेरा दुख, भी दूर कीजिए | अलंकार-रूपकातिशयोक्ति, उपमा हरि जननी मै बालिक तेरा; काहे न औगुण बकसहु मेरा ।टिक॥ सुत अपराध करे दिन केते, जननी के घित रहे न तेते॥ कर गहि केस करे जी घाता, तऊ न हेत उतरे माता॥ कहै कबीर एक बुधि विधारी, बालक दुखी दुखी महतारी ॥१११॥ अर्थ-हे प्रभु, तुम माँ हो और तुम्हारा बालक हूँ। फिर मेरे दोषो को क्यो नही क्षमा कर देते हो ? माता पुत्र के अपराधो का कभी खयाल नही करती है। बच्चा माता के बालों को पंकड़कर मारे तो भी माँ कभी अपना प्रेम नही समाप्त करती है। सत कबीर एक बुद्धि से विचार कर कहते है। बालक के दुख से माँ भी दुखी होती है। टिप्पणी- मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी। -तुलसी गोव्यंदे तुम्ह ये डरपो भारी; सरणाई आयो क्यूँ गहिये, यहु कौन बात तुम्हारी । टिक।॥ धूप दाझ्मतै छोड तकाई, मति तरवर सघपाऊँ। तरवर माँहे ज्वाला निकसै, तो कया लेइ बुझाऊँ॥ जे बन जले त जल कुँ धावे, मति जल सीतल होई। जलही माँहि अगनि जे निकसै, और न दूजा कोई ॥ तारण तिरण तिरण तूँ तारण,और न दूजा जानी। कहै कबीर सरनाई आयो, अपना देव नही मानो ॥१ १ २॥ अर्थ-हे प्रभु, मै तुमसे बहुत डरता हूँ। शरण मे आया हूँ। फिर भी तुम किस प्रकार (अत्यत तिरस्कार पूर्वक) मुझे स्वीकार करते हो। यह क्या बात है ? तुम्हारी आदत ही है शरणागत को कष्ट देकर शरण मे लेना। धूप से जलता व्यक्ति छाया के लिये पेड़ के नीचे जाता है। कितु पेड़ से ही आग निकले तो वह आग कैसे बुझे ? जलता वन को देख पानी को दौड़ा। शायद ठढा पानी हो। कितु पानी से आग निकले तो दूसरा और कौन है जो आग बुझा दे ? आप ही तरने, तारने वाले है। दूसरा कोई नही है। मै आपकी शरण मे हूँ। मै किसी अन्य देवता को अपना नहीं मानता हूँ। केवल गोविद प्रभु ही अपने है। अलंकार-वक्रोक्ति, उदाहरण मैं गुलाम मोहि बेचे गुसाई; तन मन धन मेरा रामजी के ताई ॥टेक।) ऑलनि कबीरा हाटि उतारा, साईं गाहक बेचनहारा। बेचे राम तो राख कौन राखै राम तो बेचे कौन। कहै कबीर मै तन मन जारया, साहिब अपनों छिन न बिसार्या ॥१ १ ३॥ अर्थ-मै राम का गुलाम हूँ। हे राम, तुम मुझे बेच दो। मेरा धन, मन, तन सब राम का

५६८ कबीर समग्र है| राम कं लिये है। राम ही मुझे ससार हाट में लाये है। वे ही बेचते है। वे' ही ग्राहक है। क्योकि राम के अतिरिक्त कोई नही है। राम बेचे तो कोई रख नही सकता। राम रखे तो कोई बेच नही सकता है। सत कवीर कहते है कि मैने राम साधना मे तन-मन जला दिया है। अपने राम को एक क्षण के लिये भी नही भूला हूँ। अलंकार-रूपक अब मोहि राम भरोसा तेरा, जाके राम सरीखा साहिब भाई, सो क्यूँ अनत पुकारन जाई। जा सिरि तीनि लोक कौ भारा, सो क्यूँ न करे जन कौ प्रतिपारा॥ कहे कबीर सेवी बनवारी, सीचो पेड़ पीवे सब डारी ॥१ १४॥ अर्थ-अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया। जिसे राम जैसा मालिक मिले है वह दूसरो से क्यो याचना करेगा ? जो तीनो लोको के पालन का भार उठाए है वह अपने भक्त का भार क्यों नहीं उठाएगा ? वनवारी (वनमाली) की सेवा करो। प्रभु पेड़ को सींचों और जीव जो उसकी डालियाँ है उन्हे भी सुख मिले। अलंकार-वक्रोक्ति, दृष्टात, परिकराकुर जियरा मेरा फिरे रे उदास, राम बिन निकसि न जाई सॉंस, अजहूँ कौन आस ।टिक॥। जहाँ जहाँ जॉर्ज राम मिलावे न कोई, कही संतो कैसे जीवन होई। जरे सरीर यहु तन कोई न बुझावै, अनल दहै निस नीद न आबे॥ चंदन घसि घसि अंग लगाऊँ, राम बिना दारुन दुख पाऊँ। सतसंगति मति मनकरि घीरा, सहज जॉनि रामहि भजे कबीरा ॥ १4५॥ अर्थ- मेरा जीव उदास घूम रहा है। राम के बिना कही सॉस न निकल जाय। आज भी क्या आशा है? जहा भी जाता हूँ कोई राम से नही मिलाता है। ऐसे में सतो, बताओ कैसे जीवन रहेगा ? राम वियोग मे भरीर जल रहा है। कोई इस भरीर को शात नही कर रहा हैं। आग के मारे नीद नही आती है। चदन घिस-घिस कर भरीर में लगाता हूँ कितु राम के बिना भयानक दुख होता है। सतो की सगति मे मन और बुद्धि को शात करो। धरर्य धरों। सहज् समझ कर राम को भजो। राम कहौ न अजहँ केते दिना; जब दे है प्रॉन तुम्ह लीनों ॥टिक।॥ भी भ्रमत अनेक जन्म गया, तुम्ह दरसन गोब्यंद छिन न भया। भ्रम्य भूलि परयो भव सागर, कछु न बसाइ बसोधरा।। कहै कबीर दुखभंजना, करी दया दुरत निकंदना ॥११६॥ अर्थ-हे राम, अब कितने दिन बाकी है जब प्राण तुम मे लीन होगे। भव (ससार) मे आवागमन करते अनेक जन्म हो गये। कितु हे गोविद, एक क्षण के लिये भी आपका दर्शन नही हुआ। मै भ्रम मे भूला भव सागर मे पड़ा हूँ। हे वसुधर, मेरा कुछ भी वश नही है। सत कबीर कहते है कि हे दुख भजन, दुख निकदन, दु ख दूर करनेवाले स्वामी, अब तो दया करो। हरि मेरा पीव माई, हरि मेरा पीव; हरि बिन रहि न सके मेरा जीव ॥टेक॥ हरि मेरा पीव में हरि को बहुरिया, राम बड़े मै छुटक लहुरिया। किया स्यंगार मिलन के ताई, काहे न मिलो राजा राम गुसांई॥ अब की बेर मिलन जो पॉऊँ, कहै कबीर भी जलि नहीं आँऊँ॥११७॥

पद ५६९ अर्थ-साधक कबीर कहते है कि भगवान् मेरे पति है। राम बड़े है और मै छोटी हूँ। हरि बिना जीना नही हो सकता है। ऐ राजा राम स्वामी, मैने तुम्हारे लिये ही भावनाओं का श्रृगार किया है। तुम मुझसे क्यो नही मिलते हो ? अबकी बार प्रभु से मिल जाऊँ तो पुन ससार में आना नही होगा। अलंकार-रूपक, रूपकातिशयोक्ति राम बान अन्ययाले तीर; जाहि लागे सो जाने पीर ॥टिक॥ तन मन खोजो चोट न पॉऊँ, ओषद मूली कहाँ घसि लॉऊँ॥ एकही रूप दीसे सब नारी, ना जानो को पियहि पियारी ॥ कहै कबीर जा मस्तिक भाग, नो जानूँ कु देह सुहाग ॥१ १ ८॥ शब्दार्थ-अन्याले 5 अनीवाले | अर्थ-राम प्रेम का बाण अत्यत नुकीला है। जिसे छगता है वही इस दर्द को जानता है। कितु इस चोट के स्थान का पता नही है। तन मन मे कही निशान नही है। बिना निशान के जड़ी की दवा घिस कर कहाँ लगाई जाय, यह समझ मे नहीं आता है। सभी नारियाँ (जीव) एक प्रकार की दीखती है। ऐसे मे प्रभु की प्यारी कौन होगी कहना कठिन है। सत कबीर कहते है कि जिसके भाग्य मे लिख होगा भगवान् प्रियतम उसे ही सुहाग देगे। अलंकार-व्यतिरेक, विशेषीक्ति आस नही पूरिया रे, राम बिन को कर्म काटणहार।॥टेक॥ जद सर जल परिपूरिता, चान्निग घितह उदास। मेरी विषय कर्म गति द्वै परा, ताये पियास पियास॥ सिध मिले सुधि नो मिलै, मिलै, मिलावै सोह | सूर सिध जब भेटिये, तब दुख न व्यापै कोइ ॥ बोछे जलि जैसे मछिका, उदर न भरई नीर। त्यूँ तुम्ह कारनि केसवा, जन ताला बेली कबीर ॥११९॥ अर्थ-राम की कृपा के बिना किसी की आशा पूरी नहीं हो सकती है। भगवान् के बिना कर्म वधन को समाप्त करने वाला दूसरा कोई नही है। सारे ससार के तालाब जल भरे है कितु चातक का चित्त उदास है। क्योकि चातक तो केवल स्वाती नक्षत्र का जल पीता है। मेरी कर्मगति भी चातक नहीं के समान ही विषम (कर्टिन) है। इसीलिये ससार जल से मेरी प्यासबुझ रही है। जो सिद्ध प्रभु से मिला सकते है उसे सिद्ध के मिलने की कोई खबर नही है। जब श्रेष्ठ सिद्ध से भेट होती है तो दुख नही व्याप्त होता है। कम पानी मे जैसे मछली को तृप्ति नही होती है उसी प्रकार हे केशव, तुम्हारे बिना तुम्हारा भक्त तड़प (ताला बेली) रहा है। अलंकार--दृष्टात राम बिन तन की ताप न जाई; जल मैं अगनि उठी अधिकाई ॥टेका॥ तुम्ह जलनिधि मै जल कर मीना, जल मै रहो जलहि बिन षीनों। तुम्ह प्यंजरा मै सुबनों तोरा, दरसन देहु भाग बड़ मोरा॥ तुम्ह सतगुर मै नौतम चेला, कहै कबीर राम रमूं अकेला ॥ १२०॥ अर्थ-भगवान् के विना शरीर से तृष्णा की गर्मी शात न होगी। ससार सागर मे भयानक आग उठी है। हे प्रभु, तुम सागर और मै उसकी मछली हूँ। कितु जल मे रहकर भी जल के अभाव मे क्षीण हूँ। तुम पिजड़ा और मै तुम्हारा सुग्गा हूँ। कितु तुम्हारे पिजड़े मे रहने पर भी

एछ० कबीर समग्र भाग्यवश ही दर्शन होता है। सत कबीर कहते है कि हे प्रभु, तुम सद्गुरु हो और मै तुम्हारा नवीनतम शिष्य हूँ। मै राम मे अकेला रमण करता हूँ। " अलंकार-विभावना, रूपक शोब्यंदा गुण गाईये रे; ताये भाई पाईये परम निधान ॥टेक॥ ऊंकारे जग ऊपजै, बिकारे जग जाइ। अनहद बेन बजाइ करि रह्यो गगन मठ छाइ ॥ झूठे जग डहकाइया रे क्या जीवण की आस! राम रसॉइण जिनि पीया, तिनकौ बहुरि न लागी रे पियास॥ अरध षिन जीवन भला, भगवत भगति सहेत। कोटि कलप जीवन ब्रिथा, नॉहिन परि सूँ हेत॥ संपति देखि न हरषिये, बिपति देखि न रोह। ज्यूँ संपति त्यूँ बिपति है, करता करे सु होइ॥। सरग लोक न बॉछिये, डरिये न नरक निवास) हूँणा था सो है रह्या, मनहु न कीजै यूठी आस ॥ क्या जप क्या तप संजमो, क्या तीरथ ब्रत स्नान। जो पै जुगति न जॉनिये, भाव भगति भगवान ॥| » सुंनि मंडल में सीधि लै, परम जोति परकास। तहूँवा रूप न रेष है, बिन फूलनि फूल्यो रे आकास॥ कहै कबीर हरि गुण गाइ ले, सत संगति रिदा मेंझारि। जो सेवग सेवा करे, ता सेंगि' रमे रे मुरारि॥१२१॥ अर्थ-ईश्वर के गुणो को गाओ। इसी से परम तत्त्व की प्राप्ति होगी। सारा ससार ओकार से उत्पन्न है। विकार होने पर ससार नष्ट हो जाता है। इसी लिये सत अनाहत शब्द की वशी बजाकर आकाश में मठ बनाए है। ध्यान लगाए है। जीवन भर आशा रहित जीवन के लिये व्यर्थ जलते रहे। जिसने रामरस को पी लिया उन्हे फिर कभी प्यास नही लगती है। भगवान् की भक्ति करते हुए आधे क्षण का जीवन भी अच्छा है। करोड़ो युगो का जीवन व्यर्थ है। यदि भगवान् की भक्ति नहीं की। 5 सपत्ति को देख कर प्रसन्न और विपत्ति मे दुखी नहीं होना चाहिए। प्रभु ही संपत्ति देनेवाला कर्त्ता है। वही जो करता है। वही होता है। स्वर्ग की इच्छा (वाछठा) मत करो। नरक से डरो मत | जो होना है वह होगा। मन में झूठी आशा नही करनी चाहिए। 'जप, तप, तीर्थ, सयम, व्रत, स्नान आदि व्यर्थ है यदि भावपूर्वक भगवान् को जानने का: मु युक्ति नही जानते है। ४ शून्य मडल मे प्रभु के प्रकाश का साक्षात्कार करो। उस श्रृन्य मे न कोई रूप है न रेखा है। बिना फूल के आकाश फूला है। हृदय मे प्रभु के गुणो को गाओ और सत सगति करो। जो सेवक सेवा करता है भगवान् उसके साथ रमण करते है। मन रें हरि भजि हरि भजि हरि भजि भाई। जा दिन तेरो कोई नाही, ता दिन राम सहाई ॥टेक॥ तंत न जानूँ मंत न जानूँ, जानूँ सुंदर काया।

पद ५७१ मीर मलीक छत्नपति राजा, ते भी खाये माया॥ बेद न जानूँ, भेद न जानूँ, जानूँ एकहि रामों। पंडित दिसि पछिवारा कीन्हाँ, मुख कीन्हों जित नामा॥ राजा अंबरीक कै कारणि, चक्र सुदरसन जारै। दास कबीर कौ ठाकुर ऐसो, भगत की सरन उबारे ॥१ २२॥ अर्थ-मन रे, हरि को भजो। बार-बार भजो। जबं तुम्हारा कोई नही था राम तुम्हारे सहायक थे। तत्र, मत्र, सुदर शरीर कुछ नही जानता हूँ। मीर, मलिक, क्षत्रपति राजा इन सब को माया खा गयी। वेद एवं रहस्य नही जानता। केवल राम को जानता हूँ। ज्ञानी पडित की ओर पीठ कर दी अर्थात् विद्या को इनकार कर दिया। प्रभु को स्वीकार किया। उस प्रभु को स्वीकार किया जो भक्तों का रक्षक है। जिसने दुर्वाशा के क्रोध से राजा अम्बरीष की रक्षा के लिये चक्र सुदर्शन चालित किया था। सत कबीर दास के स्वामी प्रभु शरणागत भक्त की रक्षा करते है। राम भणि राम भणि राम घिंतामणि, भागे बड़े पायी छाड़े जिनि॥टेक॥ असंत संगति जिनि जाइ रे भुलाइ, साध संगति मिलि हरि गुण गाइ ॥ रिदा कैँवल भे राखि लुकाइ, प्रेम गाँठि दे ज्यूँ छूटि न जाइ॥ अठ सिधि नव निधि नाँव मेंझारि, कहै कबीर भजि चरन मुरारि [१२३॥ अर्थ-बड़े भाग्य से इच्छितफल दाता (चितामणि) राम को पाया है। उन्हे ही बार-बार भजो ।*कभी छोड़ना मत। भूछ कर भी असाधु की सगति मे मत जाना। साधु सगति मे जाकर हरि गुण गाओ। भगवान् को हृदय कमल मे छिपा छो और प्रेम से बॉध दो जिसमे बधन खुल न जाय। अष्ट सिद्धियो (अणिमा, महिमा, गरिमा, रुधिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्ल, वशित्व), नव निधि (पद्म, महापद्मय, शख, मकर, कच्छप, मुकुद, कुद, नील, खर्व) के बीच मे नाम को ध्यान कर हरि चरणो को भजो। पा जन से ही सिद्धि, निधि सब की प्राप्ति होगी। म निरमल राम गुण गावै; सो भगता मेरे मनि भावे टिका जे जन लेहिं राम को नॉउँ, ताकी मैं बलिहारी जा ॥ जिहिं घटि राम कहे भरपूरि, ताकी मै चरनन की धूरि॥ जाति जुलाहा मति को धीर, हरषि हरषि गुण रमे कबीर ॥१ २४॥ अर्थ-जो भक्त शुद्ध मन से परमोज्वक राम के गुणों को गाता है वह भक्त मुझे अच्छा लगता है। जो राम नाम जपता है मै उस पर अपने को बलिदान करता हूँ। जिसके शरीर में राम नाम भरा है मै उसके चरणो की धूल हूँ। उसका भक्त हूँ। जुलाहा जाति का कबीर प्रसन्न हो होकर राम का भजन करता है। जा नरि राम भगति नही साधी; सो जनमत काहे न मूवी अपराधी ॥ टेक।॥ गरभ मुचे मुधि भई किन बॉस, सूकर रूप फिरे कलि माँ ॥ िजि छुलि पुत्र न ग्यॉन बियारी, बाकी विधवा काहे न भई महतारी। कहै कबीर नर सुंदर सरूप, राम भगति बिन कुचल करूप॥१२५॥ अर्थ-जिस मनुष्य ने राम की भक्ति नही की वह अपराधी जन्म छेते ही क्यो नही मर गया ? गर्भ गिरा गिरा कर ऐसी माता वध्या क्यो नहीं हो गयी ? भक्ति हीन व्यक्ति सूअर होकर ससार में घूमता है। जिस कुल के पुत्र ने प्रभु ज्ञान पर विचार नही किया उसकी माँ विधवा क्यो नही हो गयी_? सत कबीर कहते है कि मनुष्य सुदर होकर भी रामभक्ति के अभाव मे वस्त्र सहित गदा

५७२ कबीर समग्र और कुरूप है। राम बिनोँ प्रिग प्रिग नर नारी; कहा तै आइ कियौ संसारी ॥टेक॥ रज बिनों कैसी रजपूत, ग्यान बिना फोकट अवधूत ॥ गनिका कौ पूत कासी कहै, गुर बिन चेला ग्यान न लहै॥ कबीर कन्यों करे स्वंगार, सोभ न पावे बिन भरतार॥ कहै कबीर हूँ कहता डरूँ, सुषदेव कहै तौ मै क्या करूँ॥१२६॥ अर्थ-राम भक्ति न करनेवाले स्त्री-पुरुष को धिक्कार है। पता नही तुमने ससार मे आकर क्या किया ? राजस् शक्ति के बिना कैसा राजपूत ? ज्ञान के बिना व्यर्थ अवधूत कहलाए। ये सब वेश्या पुत्र के समान पिता का नाम नही जानते। गुरु के बिना ज्ञान नही होता है। कुमारीका श्रृगार पतिके बिना व्यर्थ है। कबीर दास इतनी कटुबात कहते है। कितु इसी बात को मुनि भुकदेव (भागवत) कहते है तो कबीर क्या करे ? अलंकार-दृष्यत जरि जाव ऐसा जीवनाँ, राजा राम सूँ प्रीति न होई। जन्म अमोलिक जात है, चेति न देखे कोई ॥टेक॥ मधुमाषी धन संग्रहे, मधुवा मधु ले जाई रे। गयी गयी घन मूँढ जनाँ, फिरि पीछे पछिताई रे॥ विषिया सुख के कारने, जाइ गनिका सूँ प्रीति लगाई रे। अंधे आगि न सूझई, पढ़ि पढ़ि लोग बुझाई रे ॥ एक जनम के कारणै, कत पूजी देव सहँसी रे। कहि न पूजी राम जी, जाकी भगत महेसौ रे॥ कहै कबीर घित चंचला, सुनहु मूढ मति मोरी। विधिया फिर फिर आवई, राजा राम न मिले बहोरी ॥१२७॥ अर्थ-वह जीवन जल जाये जिस जीवन मे भगवान से प्रेम न हो। मानव जन्म अनमोल है। यह बीत रहा है। कोई चेत कर देखना नही चाहता है। मधुमक्खी मधु का सग्रह करती ,! है। मधु निकालने वाला मधु निकाल ले जाता है। वैसे ही मूढ़ो का धन चला जाता है। वे अफसोस करते है। विषय सुख के कारण लोग वेश्या से प्रेम करते है। इन अधो को आग नही दिखाई पड़ती है। आग को मत्र पढ़कर ब्रुझाना चाहते है। एक जन्म के कारण अनेक देवता की पूजा करते है। क्यो नही राम जी की पूजा करते स्वय शिव जिनके भक्त है। ऐ चचल मन के मूढ लोगो सुनो, विषयो से बार-बार भेट होगी। कितु राम पुन नही मिलेगे। इसलिये राम की आराधना करो। अलंकार-दृष्टात, रूपकातिशयोक्ति राम न जपहु कहा भयो अंधा राम बिना जैंम मैले फंधा ॥टेका॥। सुत दारा का किया पसारा, अंत की बेर भये बटपारा॥ माया ऊपरि माया माड़ी, साथ न चले षोषरी हॉड़ी॥ जपौ राम ज्यूँ अंति उबारे, ठाठी याँह कबीर पुकारे ॥१२८॥ अर्थ-तुम ऑंधे क्यो हो ? राम क्यो नही जपते हो ? राम के बिना यम फदे मे डालेगा। स्त्री, पुत्रादि का प्रसार किया। अत मे सभी डाकू सिद्ध हुए। तुमने माया के ऊपर माया को स्थापित किया। कितु साथ मे खाली हाड़ी भी नही चल सकी। हाथ उठा कर कबीर कहते है कि अत मे उबारने वाले राम को क्यो नही जपते हो ?

पद प ५७३ अलंकार-दृष्टत और रूपकातिशयीक्ति डगमग छाड़ि दे मन बोरा। अब तो जरे बरे बनि आवे, लीन्हों हाथ सिंधौरा ।टिक।॥ होइ निसंक मगन डै नाचो, लोभ मोह भ्रम छाड़ी॥ सूरी कहा मरन थे डरपै, सती न संचे भाड़ी॥ लोक बेद कुल की मरजादा, इहै गले मै पासी। आधा चलि करि पीछा फिरिहै है है जग मै हॉसी॥ यह संसार सकल है मैला, राम कहे ते सूचा। कहै कबीर नाव नही छाँड़ी, गिरत परत चढ़ि ऊँचा॥१२९॥ अर्थ-ऐ बावला मन, चचलता छोड़ दो। अब तो हाथ सिधौरा ले लिया। अब तो जलनामरना ही होगा। नि शक हो मगन होकर नाचो, लोभ, मोह, भ्रम छोड़ो। बहादुर मृत्यु से नही डरते है। सती वर्तनों का सयय नही करती है। लोक वेद कुल की मर्यादा यह गले की फॉसी है। पीछे पड़ गयी है। भक्ति के आधे रास्ते पर चल कर पीछे नही लौटा जा सकता है। इससे ससार मे हँसी होगी। यह ससार अत्यत गदा है। राम नाम जपने वाला ही शुद्ध (शुचि) है। कबीर दास कहते है, मै राम नाम नही छोड़ूँगा। गिरते पड़ते ऊँचा चढ़ना है। अलंकार-दृष्टात, मानवीकरण का सिधि साधि करी कुछ नाही, राम रसाइन मेरी रसनों माही ॥टेक।। नही कुछ ग्यॉन ध्यान सिधि जोग, ताये उपजै नाना रोग | का बन मै बसि भये उदास, जे मन नही छाड़े आसा पास ॥ सब कृत काच हरी हित सार, क कबीर तजि जग ब्यौहार॥१३०॥ अर्थ-सिद्धियो की साधना करना व्यर्थ है। राम रसायन मेरी जीभ मे है। ज्ञान, ध्यान, सिद्धि, योग कुछ मत करो। इनसे नाना प्रकार के रोग होते है। आशा के बधन तोड़ने के पूर्व वन में उदास होकर बैठने से कोई फायदा नही है| ससार के सारे कार्य कच्चे (काच) है। नाशवान है। केवल प्रभु प्रेम ही सार तत्त्व है। सत कंबीर कहते है कि ससार का व्यवहार छोड़ो। जो ते रसना राम न कहियो; तो उपजत बिनसत भरमत रहियो ॥टेक)। जैसी देखि तरबर की छाया, प्रॉन गये कहु काकी माया ॥ जीवत कछु न कीया प्रवानों, मूवा मरम को कॉकर जाना॥ संधि काल सुख कोई न सोबै, राजा रंक दोऊ मिलि रोबै॥ हंस सरोवर केवल सरीरा, राम रसाइन पीवै कबीरा ॥१३१॥ अर्थ-ऐ मनुष्य, तुम्हीती जीभ अगर राम नाम नही कहेगी तो तुम्हारा आवागमन नही मा | रा ससार पेड़ की छाया जैसा है। प्राण चले जाने पर कोई किसी के प्रति ममता नही ता है। जीते जी कुछ उचित कार्य नही किया। मरने के बाद के मर्म को कौन जानता है ? सबके जीवन मे काल सेध (सधि) डाल रहा है। ऐसे मे कोई व्यक्ति सुख से कैसे सो सकता है ? राजा रक दोनो रो रहे है। जैसे तालाब मे हस और कमल रहते है वैसे ही शरीर मे भगवान् है। काल से बचने की एक मात्र औषध राम रसायन का सेवन है। ., छ अतलकार--उप्रमा, वक्रोक्ति, रूपक

ण्छड कबीर समग्र का नाँगे का बाँधे चाम; जो नहीं चीन्हसि आतम राम |टिका' नागे फिरे जोग जे होई, बन का मृग मुछुति गया कोई॥ मूँड मुड़ाये जो सिधि होई, स्वर्ग ही भेड़ न पहुँची कोई ॥ ब्यंद राखि जे खेले है भाई, ती पुसरै कौण परम गति पाई॥ पे गुने उपजै अहंकारा, अधघर डूबे वार न पारा॥ कहै कबीर सुनहु रे भाई, राम नाम बिन किन सिधि पाई ॥१३२॥ अर्थ-कवि नगा रहनेवाले और मृग चर्मादि बॉधने वाले व्यक्तियों और सप्रदायो पर व्यग्य करते कहता है कि यदि आत्मतत्त्व की पहचान नही हुई तो नगा रहने और चाम हरपेटने से क्या होगा ? (यहाँ दो जैन सप्रदाय है- एक नगा रहता है। दूसरा सफेद वस्त्र ल्पेटे रहता है। दोनो शरीर (चर्म) नियत्रण पर जोर देते है। यदि नगा घूमने से योग होता हो वन मे नगे घूमने वाले मंगो की मुक्ति हो जाती। सिर मुड़ाने से मुक्ति होती तो भेड़ो के बाल अक्सर कटते है उनकी मुक्ति हो जाती। वीर्य की रक्षा से ही यदि परम गति (मोक्ष) होती हो तो वधिया जानवरो (पुरुष) को भी मोक्ष मिलना चाहिए था। पढ़ने लिखने से अहकार पैदा होता है। ऐसा व्यक्ति वीच मे ही डूब जाता है। सत कबीर कहते है कि राम नाम के स्मरण के बिना मुक्ति नही होती है। हरि बिन भरमि बियूते गंदा | जापै जाऊँ आपनपौ छुडावण, ते बीघे दहु फंधा |टिक॥ जोगी कहें जोग सिधि नीकी, और न दूजी भाई॥ लुंचित मुंडित मोनि जटाघर, ऐ जु कहै सिधि पाई॥ जहाँ का उपज्या तहाँ बिलाना, हरि पद बिसरया जबहीं॥ पंडित गुनी सूर कवि दाता, ऐ जु कहे बड़ हँमही || बार पार की खबरि न जानी, फिसमो सकल बन ऐसे ॥ । यहु मन बोहि थके कउवा ज्यूँ, रह्मा ठग्यो सो वैसे ॥ तजि बावे दोहिणै विकार, हरि पद दिठ करि गहिये || कहै कवीर यूँगे गुड़ खाया, वूझे तो का कहिये ॥१ ३३॥ शब्दार्थ-बिगूते 5 नष्ट हुए। आपनर्पी 5 अपनापा। आत्माहकार। ढुचित 5 बल नोचनेवाले जैन ॥ मुडित 5 सिर मुड़ानेवाले बौद्ध। मौनि 5 मौन साधु। अर्थ-भगवान् के बिना अर्थात् प्रभु भक्ति के बिना लोग गदमी में नष्ट हो गये। ससार मे जिसके पास भी आत्माहकार से मुक्ति के लिये जाता हूँ वह स्वय फदे मे बधा दीखता है। योगी कहते है कि योग की सिद्धि ठीक है और दूसरी ठीक नही है। जैनी, बौद्ध, मौन, जगधारी आदि ने क्या सिद्धि पाई ? हरिपदको भूलनेसे जहाँ जन्मे थे वहीं विछा गये। नष्ट हो गये। पडित, गुणी, बीर, कवि दाता ये सभी अपने को बड़ा समझते है। इस पार और उस पार का कोई ज्ञान नही है। व्यर्थ ससार वन मे भटक रहे है। यह मन जहाज के थके कौए सा हैं। जैसे जहाज का कौआ थक कर पुन जहाज पर आता है वैसे ही ससार मे कही सुख न देख कर मन गुरु चरणों मे आता है। दक्षिण और वाम के विकारों को छोड़ कर प्रभु चरणों मे दृढ़ अनुराग करो। प्रभु प्रेम गूँगे के गुड़ के स्वाद सा अकथनीय है। अलंकार-दृष्टातं चलौ विचारी रहो सैंभारी, कहता हूँ ज पुकारी। राम नाम अंतर गति नाही, तो जनम जुवा ज्यूँ हारी ॥ टिक)।

पद ण9५ मूँड मुड़ाइ फूलि का बैठे, कॉननि पहरि मजूसा। बाहरि देह षेह लपठानी, भीतरि तौ घर मूसा।॥ गालिव नगरी गाँव बसाया, हॉम कॉम हंकारी। घालि रसरिया जब जेंम खैचे, तब का पति रहै तुम्हारी ॥ छाड़ि कपूर गौंठि विष बॉध्यो, मूल हुवा ना लाहा। मेरे राम की अमै पद नगरी, कहे कबीर जुलाहा॥१ ३४॥ शब्दार्थ-मजूषा 5 शीशे का कुडल। मुद्रा। खेह 5 धूल। भस्म। गालिब > जीतकर | घालि - डालकर। पति 5 प्रतिष्ठा । लाह +- लाभ। अभौ - अभय। अर्थ-विचार कर चलो। सम्हल कर रहो। यह बात मै पुकार कर कहता हूँ। हृदय मे राम नाम नही है तो यह जन्म व्यर्थ गया। जैसे जुए का खेल हार जाता है। हि साधुओ के एक सप्रदाय की ओर सकेत करते हुए सत कबीर कहते है कि सिर मुड़ा कर कानो मे मोटा कुडल पहन कर अहकार मे क्यो बैठे हो ? बाहर से देह मे भस्म लपटाए हो। कितु भीतर तो माया लूट रही है। जीत कर गॉव-नगर बसाया। अंहम् और काम का अहकार पाला। कितु जब यमराज रस्सी से बॉध कर खींचेगा, ढे जायगा। तब तुम्हारी कौन सी प्रतिष्ठा रह जायगी ? कपूर जैसी प्रभु भक्ति को छोड़ विषय विष को गॉठ मे बॉध लिया। क्भ होना तो दूर मूल पूँजी (आत्म ज्ञान) भी नष्ट हो गयी। सत कबीर कहते है कि मेरे राम की नगरी भय-रहित पद देने वाली है। यही सबको आना चाहिए। अलंकार-उपमा, वक्रोक्ति, रूपकातिशयोक्ति कौन बिचारि करत हो पूजा; आतम राम अबर नही दूजा ॥ टेक॥ बिन प्रतीत पाती तोड़े, ग्यॉन बिनों देवलि सिर फोड़े ॥ लुघरी लपसी आप संघारे, दारे ठाठा राम पुकारे॥ पर आत्म जौ तत बिचारे, कहि कवीर ताके बलिहारे॥१ ३ ५॥ शब्दार्थ-देवलि 5 मदिर। लुचरी 5 पूड़ी। लपसी 5 एक प्रकार का पतला हलवा। सघारै * (व्यग्य में) खाना। अर्थ-क्या सोच कर पूजा करते हो ? आत्मा के रूप मे राम सबके भीतर है। उसे ही पूजो। दूसरा कोई पूजनीय नही है। बिना विश्वास के पत्ती तोड़ते हो। मंदिर मे सिर फोड़ते हो। सभी प्रकार के खाद्य पदार्थ तो स्वयं खाते हो। राम तो तुम्हारे हृदय मदिर के दरवाजे पर भूखे पुकार रहे है। राम का भोजन तो मात्र प्रेम-भक्ति है। परमात्म तत्त्व पर जो विचार करता है उस पर अपने को निछावर करना है। ह कहा भयो तिलक गरे जपमाला, मरम न जानै मिलन गोपाला |टेक॥ दिन प्रति पसू करे हरिहाई, गरै काठ बाकी बॉनि न जाई। स्वॉग सेत करणी मनि काली, कहा भयौ गलि माला घाली ॥ बिन ही प्रेम कहा भयौ रोये, भीतरि मैल चाहरि का थोये॥ गल गल स्वाद भगति नही धीर, चीकन चँदवा कहै कबीर ॥१ ३६॥ अर्थ-गले मे माला, माथे परतित्रक व्यर्थ है। यदि प्रभु से मिलने का मर्म (तत्त्व) नहीं जानते हो। पशु दिन रात ऊधम (हरिहाई) मचाते है। उनके गढे मे काठ बॉध दिया जाता है। फिर उनकी आदत नही जाती है। मनुष्य के वस्त्र तो सफेद कितु कर्म काले है। अत गले मे माला पहनने से क्या हुआ ? प्रेम के अभाव मे रोने से क्या फायदा होगा ? इस रोने से भीतर की मैल (वासना) नही समाप्त होगी।

एृ७ध् कबीर समग्र भक्ति गलगल स्वाद, चिकने और चेँदोवा वस्त्र के समान आसान नही, थैर्य का कार्य है। ऐसा सत् कबीर कहते है| अलंकार-दृष्टत ते हरि आवेहि किहि कामों; जे नहीं चीन्हे आतम रामों ॥टेक॥ थोरी भगति बहुत अहंकारा, ऐसे भगता मिलें अपारा॥ भाव न चीन्हे हरि गोपाला, जानि क अरहट के गलि माला। कहै कबीर जिनि गया अभिमाना, सो भगता भगवंत समानों ॥१ ३७॥ अर्थ-वे प्रभु के किस काम के है जिन्हे आत्म तत्त्व का बोध नही है। ससार के अधिकतर छोगो मे भक्ति तो थोड़ी कितु भक्ति का अहकार बहुत अधिक है। भगवान् के प्रतिभाव नहीं रखते है। ऐसे मे माला पहनना वैसा ही है जैसे रहट के गले की कुडियाँ। सत कबीर कहते है कि जिनका अभिमान चढा गया वे भक्त भगवान् के समान है। कहा भयीी रचि स्वॉग बनायो; अंतरिजामी निकट न आयी ॥ टेक॥ विषई विषे दिढावै, गावे, राम नाम मनि कबहूँ न भाव || पापी परले जाहि अभागै, अमृत छाड़ि बिथे रसि लागे॥ कहै कबीर हरि भगति न साधी, भग मुधि लागि मूये अपराधी ॥१३८॥ अर्थ-अगर अतय्यभी प्रभु के पास नही आए तो केवल भक्ति का स्वॉग बनाने से क्या फायदा हुआ ? विषयी लोग विषय मे दृढ़ रहते है। उसे ही गाते है। मन में कभी राम नाम नही लाते। ऐसे पापी प्रठ्य मे नष्ट हो जाते है। क्योकि ये रामनाम की भक्ति को छोड़कर विषय रस मे लिपटे रहते है। सत कबीर कहते है कि जिसने भक्ति की साधना नहीं की वे भगोन्मुख (भग की ओर उच्सुख) व्यक्ति अपराधी है। वे मरेगे। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति जौ पै पिय के मनि नाही भाये; तो का परोसनि के हुलराये ॥टेक॥ का चूरा पाइल झमकाये, कहा भयौ बिछुवा ठमकाये॥ का काजल स्यंदूर के दीयें, सोलह स्यंगार कहा भयौ कीयै॥ अंजन मंजन करे ठगौरी, का पचि मरे निगौड़ी बोरी॥ जो पे पतिब्रता द्वै नारी, कैसे ही रही सो पियहिं पियारी ॥ तन मन जीवन सौपि सरीरा, ताहि सुहागिन कहै कबीरा।|१३९॥ शब्दार्थ-परोसनि 5 काम-वासना या दूसरे देवता। चूरा चूड़ी। निगोड़ी निगोत्री। वौरी 5 पागल। पचिमरना 5 मिहनत करना। हर अर्थ-यदि जीवात्मा प्रभु के मन को आकर्षित नही कर सकती है तो काम-वासना यो दूसरे देवो को प्रसन्न करने से क्या फायदा होगा ? चूड़ी, पायल, बिछुवा आदि गहने का चमका, झमका कर, काजल, सिदूर लगा कर सोलह श्रूगार करने से क्या फायदा? अजल्न मजन तो ठगने के लिये है। ये पागल निगोड़ी स्त्रियाँ क्यो मिहनत करती है? अगर स्त्री पतिव्रता हो तो वह कैसी भी रहे प्रिय को प्यारी होगी। जो स्त्री प्रिय को तन-मन जीवन सौपती है वही सुहागिन है। भक्ति पूर्ण समर्पण है। सत कबीर सुहागिन के रूपक द्वारा उसी की ओर सकेत करते है। 0 को केवल समर्पण करना चाहिए। सभी धर्मो (श्रगारों) को छोड़ केवल भगवान् की शरण जाओ। अलंकार-अन्योक्ति

पद ९७ दूभर पनियाँ भरया न जाई; अधिक त्रिषा हरि बिन न बुझाई टेक) उपरि नीर लेज तलि हारी, कैसे नीर भरे पनिहारी ॥ उधरयो कूप घाट भयौ भारी, चली निरास पंच पनिहारी ॥ गुर उपदेश भरी ले नीरा, हरषि हरथि जल पीबै कबीरा॥१४०॥ शब्दार्व-दूभर 5 कठिनाई से भरा जाने वाला। त्रिषा + तृषा। प्यास। लेज 5 रस्सी। कूप < सहसार। पच पनिहारी 5 कुडलिनी। अर्थ-ऊपर सहस्तार मे उल्टा कुओआँ है। इसका भारी घाट है। इसके पानी को भरना कठिन है। प्यास इतनी है कि बिना भगवान् की कृपा के प्यास बुझाई नहीं जा सकती है। पानी ऊपर और पानी भरने वाली कुडलिनी रस्सी नीचे मूलाधार मे स्थित है। ऐसे मे कैसे पानी भरा जा सकेगा ? घाट उघड़ गया और घाट भारी हो गया। पॉचो इद्रियाँ परेशान है। सदगुरु के उपदेश जल को भर कर कबीर उसे हर्षित होकर पी रहे है। अलंकार-विरोधाभास कहो भट्या अंबर कौंसूँ लागा; कोई जॉणेंगा जॉननहारा ॥दिक॥ अँबरि दीसे केता तारा कौन चतुर ऐसा चितरनहारा॥ जे तुम्ह देखो सो यहु नॉही, यहु पद अगम अगोचर माँहीं॥ तीनि हाथ एक अरधाई, ऐसा अंबर चीन्हो रे भाई ॥ कहे कबीर जे अंबर जाने, ताही सूँ मेरा मन माने ॥१४१॥ शब्दार्व-चितरनहारा 5 चित्रकार | अर्द-ऐ भाई, आकाश किससे लगा है ? इसे कोई जानकार ही बता सकता है। इस आकाश मे बहुत से तारे दीखते है। वासनाएँ दीखती है। किसी अत्यत चतुर चितेरे ने इसका निर्माण किया है। जिस प्रत्यक्ष आकाश को सभी देखते है उस आकाश की बात नही हो रही है। यह तो अगम अगोचर पद मे समाया आकाश है। पद पैर भी है और कविता की वाणी भी है। यह आकाश साढ़े तीन हाथ के शरीर मे समाया है। देह स्थित इस आकाश को समझना है। सत कबीर का मन उसी से मानता है। अलंकार-वक्रोक्ति तन खोजी नर करौ बड़ाई; जुगति बिना भगति किनि पाई॥टेक॥ एक कहावत मुलों काजी, राम बिना सब फोकटयाजी ॥ नव ग्रिह बॉभण भणता रासी, तिनहूँ न काटी जम कौ पासी ॥ कहै कबीर यहु तन काचा, सबद निरंजन राम नाम साथा ॥१४२॥ अर्थ-युक्ति के बिना भक्ति नही होती है। तन भी आवश्यक है। अत भक्ति करने वाले शरीर की खोज करो। मनुष्य योनि मे पैदा होना बड़ाई की कोई बात नही है। मुल्ठा और काजी एक है। कितु राम की उपासना के बिना सब व्यर्थ है। ब्राह्मण नवग्रह और बारह राशियों की पूजा करते है। वे भी यम का बेंधन न काट सके। सत कबीर कहते है कि राम नाम एव निरजन शब्द सच्चा है। यह देह तो नाशवान् है। जाइ परी हमरी का करिहे; आप करै आप दुख भरिहे ॥टेका॥ ऊभड़ जाता बाट दताबै, जी न घले तो बहुत दुख पावे। अंधे कूप क दिया बताई, तरकि पड़े पुनि परि न पत्याई॥ इंद्री स्वादि विधे रसि बहिहै, नरकि पड़े घुनि राप ते कहिहै॥ पंच सखी मिलि मती उपायो, जंम की पासी हंस दैधायो ॥ कहै कबीर प्रतीति न आबै, पाषंड कपट हहे जिय भावे॥१४३॥

५७८ कबीर समग्र अर्थ-चले जाओ। मेरा क्या करोगे ? स्वय करोगे। अपने कियेका भोगोगे। मरोगे। ऊबड़ अर्थात् ऊँचे खाले रास्ते मे जाते जो बताता है वह चल नही पाता। दुख पाता है। अधे को कुआँ बता दिया। वह तड़क कर गिर गया। या तर्क करता है। भगवान मे विश्वास नही करता है। इद्रियो के वश मे पड़े लोग नरक जायेगे। कितु राम नहीं कहते है। पॉच सखियो अर्थात् पॉचो इद्रियो का एक मत होकर ऐसा कर्म किया जिससे यम ने जीवात्मा को बॉध लिया। सत कवीर कहते है कि विश्वास नही होता है। पाखड और कपट यही मन को अच्छा लगता है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति ऐसे लोगनि सूँ का कहिये। जे नर भये भगति थे न्यारे, तिनवे सदा डराते रहिये।दिका। आपण देही चरवों पानी ताहि निंदे जिनि गंगा आनी॥ आपण बूंड़े और को बोड़े, अगनि लगाइ मंदिर मै सोबै॥ आपण अंघ और दूँ कॉनों, तिनकौ देखि कबीर डरॉनों १४४) अर्थ-ऐसे छोगो को क्या कहा जाय ? जो मनुष्य जीवन मे भक्ति से अंग है। उनसे सदा डरते रहिए। स्वय तो चुल्टूभर (चरवॉ) पानी नही देते। कितु पूरी गगा को नीचे उतारनेवाले की निदा करते है। आप तो डूबते ही है। दूसरो को भी डुबो देते है। ऐसे लोग आग लगाकर घर मे सोने जैसा काम करते है। स्वय तो अधे है। सब तरह से बुरे है। कितु दूसरा जो कम बुरा (काना) है उसकी निदा करते है। सत कबीर कहते है कि ऐसे व्यक्तियो से डरना चाहिए। अलंकार-लेकोक्ति, रूपकातिशयोक्ति तुल०-गारी देत नीच हरिचद हूँ दधीचहू को। आपने चाना चबाइ हाथ चाटियतु है।- तुलसी० हैं हरिजन सूँ जगत लरत है, फुँनिगा कैसे गरड़ भषत है।टिक।॥ अधिरज एक देखह संसारा सुनहों खेंदे कुंजर असवारा ॥) ऐसा एक अधचंभा देखा जंबक करे केहरि सूँ लेखा।॥ कहै कबीर राम भजि भाई, दास अधम गति कबहुँ न जाई ॥१४५॥ शब्दार्थ-हरिजन 5 भक्त | सुनहॉ>कुत्ता। कुजर 5 हाथी। जबक गीदड़। सियार। केहरि ८ शेर। सूँ 5 से। लेखा ८ हिसाब। दास - भक्त। अर्थ-ससार अर्थात् ससार की-वासनाएँ भक्त से लड़ती है। भक्त को भ्रष्ट करना चाहती है। कितु भक्त भगवान् की सवारी गरुड़ है और वासनाएँ भुनगा है। वासनाएँ कृत्ता है। भक्त हाथी का सवार है। कुत्ता इस सवार से लड़ने चढ़ा है। यह ससारका आश्चर्य है। एक और आश्चर्य है सियार (वासनाएँ) शेर (भक्त) से हिसाव मॉगता है। सत कबीर कहते है कि हे भाई, राम भजो। भक्त कभी अधोगति को नही प्राप्त होता है। अलंकार-वक्रोक्ति, विरोधाभास, रूपकातिशयोक्ति। है हरिजन यें चूक परी; जे कछु आहि तुम्हारो हरी ॥टिक॥ मोर तोर जब लग मे कीन्हों, तब लग त्रास बहुत दुख दीन्हों॥ सिंघ साधिक कहें हम सिधि पाई, राम नाम बिन सबै गेंवाई | जे बैदगी आस पियासी, तिनको माया कदे न नासी ॥ कहै कबीर मै दास तुम्हारा, माया खंडन करहु हमारा ॥१४६॥ ॥ अर्च-हे प्रभु, भक्त से गढती हो गयी है। कितु जो कुछ है सब तुम्हारा है। जब तक मैं तुम का भेद वना था तब तक आपने बहुत दुख दिया। सिद्ध, साधक कहते है कि हमने सिद्धि

पद ७९ पाई है। कितु राम नाम के बिना सब खो दिया। विरागी होकर भी जो आशा के प्यासे है उनकी माया का कभी नाश नहीं होगा। सत कबीर कहते है कि हे प्रभु, मै आपका का | आप मेरी माया का नाश करे। सब दुनी सयाौनी में दोरा; हँम बिगरे बिगरौ जिनि औरा॥टेका॥ में नहीं बौरा राम कियो बौरा, सतगुर जारि गयौ भ्रम मोरा॥ विद्या न पढ़ूँ दाद नही जानूँ हरि गुन कथत सुनत बोरॉनू।॥ कॉम क्रोध दोऊ भये विकारा, आपहि आप जरे संसारा॥ मीठो कहा जाहि जो भावे, दास कबीर राम शुन गावे॥१४७॥ अर्थ-सारा ससार बुद्धिमान् है। मै ही पागल हूँ। मै तो बिगड़ ही गया हूँ। और कोई न बिगड़े | अरे भाई, मै पागल नही हूँ। राम भक्ति ने मुझे पागल बना रखा है। सतगुरु ने मेरा भ्रम जला दिया है। मै विद्या नही पढ़ता हूँ। तर्क नही जानता हूँ। केवल प्रभु गुण गान मे पागल हूँ। सारा ससार काम क्रोध इन दो विकारों मे जल रहा है। मीठा वही है जिसको जो अच्छा ढगे। किसी को वासना मीठी लगती है। किसी को राम भजन ही मीठा लगता है। अलंकार-कक्रोक्ति अब मैं राम सकल सिधि पाई; आन कहूँ तौ राम दुह्ाई ॥टेक॥ इंहि चिति चाथि सबै रस दीठा, राम नाम सा और न मीठा ॥ औरे रसि द्वै है कफ गाता, हरि रस अधिक अधिक सुखदाता॥ दूजा बणिज नहीं कछु बाषर, राम नाम दोऊ तत आषर। कहै कबीर जे हरि रस भोगी, ताढ़ूँ मिल्या निरंजन जोगी ॥१४८॥ शब्दार्व--ऑन < अन्य। दुहाई 5 कसम। चिति 5 चित्त। बाषर 5 बखरी। घर तत> तत्त्त। आषर 5 अक्षर। दीठा 5 देखा। अर्व-हे राम, अब मैने सारी सिद्धियाँ प्राप्त कर छी। अन्य किसी देवता का नाम नहीं हूँगा। यह बात राम शपथ खाकरे कहता हूँ। इस चित्त से सभी रसो को चख कर देखा। कितु राम नाम के रस के समान और कोई रस मीठा नही मिला। अन्य रसो से शरीर का कफ बढ़ता है। हरि रस सुख देने वाला होता है। राम नाम को छोड़ न मेरा कोई व्यवसाय है, न घर है। राम नाम के दो तत्त्व पूर्ण अक्षर ही मेरे लिये महत्त्वपूर्ण है। सत कबीर कहते है कि जो व्यक्ति हरि रस का भोग करने वाला है उसे निरजन योगी की कृपा मिलती है। अलंकार-रामनाम सा और न मीठा - प्रतीप औरे रस ह्वै है कफ जाता - भेदकातिशयोक्ति। रे मन जाहि जहाँ तोहि भा; अब न कोई तेरे अंकुस लावे ॥टेक॥ जहाँ जहाँ जाइ तहाँ तहाँ रामा, हरि पद चीन्हि कियो विश्वामा। तन रंजित तब देखियत दोई, प्रगद्यौ ग्यॉन जहाँ तहाँ सोई॥ लीन निरंतर बपु बिसराया, कहै कबीर सुख सागर पाया ॥१४९॥ अर्द-साधना पूर्ण हुई। अब मन राममय है। इसलिये है मन, अब तुम कही इच्छानुसार जा सकते हो। अब तुम्हे रोकनेवाला कोई नही है। जहाँ जाओगे वहाँ राम को देखोगे। हरि चरणो को देख विश्राम किया। जब तक शरीर मे मोह था तब तक भेद दिखाई पड़ता था। ज्ञान होने पर अब सर्वत्र प्रभु ही दीखते है। सुख सागर राम की प्राप्ति होने पर उसके ध्यान मे सदा लीन है और शरीर की चिता भूल गयी ।

 बहुरि हम काहे कूँ आवहिंगे। बिछुरे पंचतत्त की रचना, तब हम रामहि पावहिंगे |टिक॥ पृथी का युण पॉणी सोध्या, पॉनी तेज मिलाबहिंगे। तेज पवन मिलि पवन सबद मिलि, सहज समाधि लगावहिंगे॥ जैसे बहु कंचन के भूषन, एकहि गालि तबावहिगे॥ ऐसे हम लोक वेद के बिछुरे, सुंनिहि मोहि समावहिंगे॥ जैसे जलहि तरंग तरंगनी, ऐसें हम दिखलावहिंगे। कहै कबीर स्वामी सुख सागर, हंसहि हंस मिलावहिंगे॥ १५०॥ अर्थ-हम पुन इस ससार में क्यो आयेगे ? पचतत्त्व रचनावाले शरीर से मुक्ति मिल गयी। अब हम राम को प्राप्त करेगे। पृथ्वी के गुणो को पानी, पानी के गुण अग्नि, अग्नि के हवा, हवा के शब्द और शब्द गुण सहज समाधि मे मिल गये। सोने के भिन्न-भिन्न आभूषणो को गर्मकर एक मे ही गलाया जाय तो सभी नाम रूप छोड़ जायेगे। इसी प्रकार सारी सृष्टि छोकवेद द्वारा प्राप्त नाम रूप को छोड़कर शून्य तत्त्व मे विढीन हो जायगी। आत्मा-परमात्ता का सबध जल्तरगवत् अशाशी का है। सत कबीर कहते हैं कि सुख सागर प्रभु की कृपा से आत्माहस परमात्मा परमहस मे मिल जायगा। अलकार-उदाहरण कबीरा संत नदी गयो बहि रे, ठाटी माह कराड़े टैरै, है कोई ल्यावै गहि रे ॥टिक|॥ बादल बॉनी राम घन उनयों, बरिषै अंमृत घारा। सखी नीर गंग भरि आई, पीवै प्रांन हमारा॥ जहाँ बहि लागे सनक सनंदन, रुद्र ध्यॉन घरि बैठे ॥ सूर्य प्रकास आनंद बमेक में घर कबीर द्वै पैठे ॥१ ५१॥ अर्थ-नत कवीर, मत्य या सता द्वारा वताई गयी नदी मे वह गये ह । भक्ति नदी में डूबे ह | भक्ति से अलग उसके किनारे पर खडी माया मा (जीव उसी माया से उत्पन्न है) पुकार कर कहती ह कि क्या किसी में शक्ति ह कि वह भक्त कवीर को पुन भक्ति प्रवाह से निकाल कर माधा म ल आये? वादल वर्णी राम रूपी वादल उमड आये ह | उन वादलो से अमृत की धारा वरस रही है । भक्त वहती भक्ति नदी से प्रेम जल भर ले आया हे जिसे भक्त के प्राण पी रहे है । जिस अगम अगोचर स्थान पर सनक, सनदन वहकर लगे ह ओर रुद्र ध्यान लगाकर वेठे है | जहाँ विवेक ओर आनद के सर्य का प्रकाश हो रहा हे । कवीर दास ने उसी घर म प्रवेश किया है । अलंकार-सागरूपक अवधू कामधेन गहि बॉधी रे। भाँडा भंजन करे सबहिन का, कछू न सूझे आधी रे ॥टिका। जो ब्यावै तो दूध न देई, ग्याभण रे त सरवै। कौली घाल्यों बीडूरि चाले ज्यूँ घेरी त्यूं दरबै। तिहि घेन ये इंछया पूगी पाकड़ि खूँटे बॉमी रे। खाड़ा माह आनेंद उपनो, खूँटे दोऊ बॉ्ी रे॥ साई माइ सास पनि साई, साइ बाकी नारी॥ कहै कबीर परम पद पाया, संतौ लेट बिचारी ॥१५२॥ शब्दार्व-काम धेनु - माया। भॉड़ा 5 बर्तन। साधना| कौली 5 (< सु̱क्रोड) गोद।

पद ५८१ घाल्याँ € देना। बीडरि 5 बिदकना। दरवै - द्रवित होती है। पूगी - पूरी हुई। ग्वाड़ा - गाय बॉधने का स्थान। ससार। खूँटे दोऊ 5 ज्ञान, वैराग्य या ज्ञान, भक्ति। साई ८ स्वामी । अर्थ-हे अवधू, मैने माया काम घेनु को, कस कर बॉध लिया है। यह माया गाय (गृह शरीर घर मे प्रवेश कर) बर्त्तनो को तोड़ती है। ऐसी अधी है कि इसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है। सब तोड़ती चलती है। पात्र, सुपात्र, अपात्र सबको समान भाव से नष्ट करती है। सत असत का भेद भी नही करती है। माया गाय बयाने पर, प्रसार होने पर मुक्ति या ज्ञान रूप दूध नही देती है। कितु माया को छोड़कर माया निर्मित शरीर जब ज्ञान गर्भित होता है तब आत्मतत्त्व (दूध) का बोध होता है। गोद मे लेने की कोशिश मे भागती है। घेरने पर (नियत्रित करने पर) द्रवित होती है। माया गाय को पकड़कर बॉधने पर, नियत्रण मे रखने पर मनुष्य की इच्छा पूर्ण होती है। क्योकि माया निर्मित शरीर ही धर्मसाधना का आधार है। कितु यह तब होता है जब माया गाय को ज्ञान के खूँटे से बॉँध दिया जाय। ससार मे अत्यत हर्ष उत्पन्न हुआ जब यह गाय ज्ञानवैशग्य के दो खूँटो मे बॉधी गयी। प्रभु ही इस माया गाय के सब कुछ है। माया स्वामी की मा, सास और स्त्री आदि सब कुछ है। के सत कबीर कहते है कि जो इसको समझता है वह परमपद की प्राप्ति करता है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति, विरोधाभास, यमक (राम रामकली) जगत गुर अनहद कीगरी वाजे, तहाँ दीरघ नाद ल्यौ लागे।दिक॥ श्री अस्थांन अंतर मृगछाला, गगन मंडल सीगीं बाजे। तहुँआ एक दुकॉन रच्यो है, निराकार ब्रत् साजे ॥ गगन ही भाठी सींगी करि चुंगी, कनक कलस एक पावा। तहुँवा चबे अमृत रस नीझर, रस ही मैं रस चुवावा॥ अब तो एक अनूपम बात भई, पवन पियाला साजा। तीनि भवन मे एके जोगी, कही कहाँ बसे राजा॥ बिनरे जानि परणऊँ परसोतम कहि कबीर रेंगि राता। यह दुनिया कॉई भ्रमि भुलॉनी, में राम रसाइन माता॥१५३॥ शब्दार्थ-कीगरी - किननरी वीणा। ल्यो 5 लय। त्री 5 तीन। अस्थान 5 त्रिकुटी। दीरघ नाद महत् ध्वनि। चुगी 5 रस टपकाने की नत्ती। चबे - चूता है। टपकता है। अर्व-हदय मे भगवान् का अनहद बाजा बज रहा है। उस महत् ध्वनि मे मन का लय हो गया है। अतर की त्रिकुटी का स्थान ही बैठने का आसन (मृगछाला) है। सहस्रार मे श्रगीनाद हो रहा है। त्रिकुटी मे योगी ने एक साधना की दुकान बनाई है। यह कलाल की दुकान है। वहाँ निराकार की उपासना हो रही है। आकाश मडल, कपाल कुहर को भट्टी, श्रगी को रस टपकाने वाली नी और शुद्ध मन का स्वर्ण कलश है। उससे अमर करने वाला (अमृत) रस टपक रहा है। यह रस ब्रह्मानद रस है। इसलिये यह रस से रस को प्राप्त होता है। भावार्थ यह कि इस रस का आनद वही ले सकता है जिसमे भक्ति रस पहले से उपस्थित है। अब एक और ' बात हो गयी। पच प्राणो के प्यो मे यह रस ढल रहा है। तीनो भुवनो (तन, मन, प्राण) मे एक ही महा योगी है। अब राजा (इन तीनो भुवनो का स्वामी) कहाँ

५८२ कबीर समग्र निवास करता है ? यह महा योगी ही तीनो छोको का स्वामी है। बिना जाने ही इस पुरुषोत्तम योगी के प्रति परिणत हूँ। वह योगी (मैं) प्रभु प्रेम मे रगा है। पता नही क्यो ससार के छोग भ्रम मे भूले है ? मै साधक राम रसायन मे मत्त हूँ। अलंकार-सागरूपक ऐसा ग्यान विचारि ले, लै लाइ लै घ्यानों। सुनि मंडल में घर किया, जैसे रहे सिचानों ॥टिक॥ उलटि पवन कह्मों राखिये, कोई भरम विचारे। सांधे तीर पताल दूँ, फिरि गगनहि मारै॥ कंसा नाद बजाव ले, धुंनि निमसिले कंसा। कंसा फूटा पंडिता, धुंनि कहों निवासा॥ प्यंड परे जीव कहाँ रहे, कोई मरम लखावे। जीवत जिस घरि जाइये, ऊंचे भुषि नहीं आबे॥ सतगुर मिले त पाइये, ऐसी अकद कहाँणी। कहै कबीर संसा गया, मिले सारंगपोणी ॥१ ५४॥ अर्थ-ऐ लोगो, जैसा मै कहता हूँ वैसे ज्ञान पर विचार कर ध्यान लगाओ। शून्य मडल मे ऐसे घर किया जैसे श्येन (बाज पक्षी) आकाश मे रहता है। प्राणवायु को उल्टना योग की क्रिया है। इस वायु को उल्टा कर कहाँ रखा जायगा ? इस प्रकार कोई विचार करे प्राण-अपान ' को विरुद्ध कर सुपुम्ना मे स्थिर करे। इसे पवन छूय कहते है। पहले मूलाधार (पाताल) से कुडलिनी को सीधे तीर के समान चलाये और सहस्‌र मे जाकर स्थिर करे। कासे का बाजा बजाने पर उससे निकली ध्वनि फिर उसी मे समा जाती है। उसी प्रकार कासे के बाजे के फूटने पर भी ध्वनि कहाँ जाती है ? पडितो, शरीर नष्ट होने पर जीव कहाँ जाता है ? इस रहस्य को देखो। जैसे कासे की आवाज कॉसे मे मिलती है उसी प्रकार जीव जिस परमात्म तत्त्व से उत्पन्न होता है उसी मे जाकर पुन मिल जाता है। ऐ साधक, जीते जी उस प्रभु के घर जाओ जिससे पुन औधा होकर गर्भ मे न आना पड़े। आवागमन का चक्र पूरा हो जाय | डे यह ज्ञान सतगुरु की कृपा से ही प्राप्त होगा। भगवान विष्णु मिल गये है। सशय दूर हो गया है। अलंकार-यमक, उपमा, विरोधाभास टिप्पणी-हठयोग प्रदीपिका मे वायु साधन की प्रक्रिया इस प्रकार बतायी गयी हैइडा च पिगला बद्ध्वा वाहयेत् पश्चिमे पथधि। अनेनैन विधानेन प्रयाति पवनोलयम् है कोई संत्र सहज सुंख उपजै, जाकी जप तप देउ दलाली | एक दूँद भरि देइ राम रस, ज्यूं भरि देई कलाली।टिका। काया कलाली लॉहनि करिःूँ, गुरू शब्द गुड़ कीन्हों। कॉम क्रोध मोह मद मंछर, कादि काटि कस दीन्हों॥ भवन चतुरदस भाटी पुरई, ब्रह्म अगनि परजारी। मूँदे मदन सहज धुनि उपजी, सुखमन पोतनहारी ॥ नीशझवर झरे अँपी रस निकसे, तिष्टि मदिरावल छाका॥ कहै कबीर यहु बास बिकट अनि, ग्यॉन गुरू ले बॉँका ॥१ ५५॥ -. शब्दार्थ-दलछाली 5 सामान बिकवाने और खरीदवाने वाले मध्यस्थ को दी जाने वाली

पद ५८३ रकम | छाहनि 5 वह पदार्थ जिसकी खमीर उठती है और शराब बनती है। कस > कसैलापन | मछर 5 मत्सर। भाटी 5 भट्ठी। पुरई > तैयार किया। अँमी 5 अमृत। रावह 5 जीवात्मा। छाका 5 मस्त। बाका 5 बहादुर। विकट 5 कठिन। पोतनहारी 5 वह कपड़ा जो नही पर लगाया जाता है। अर्थ-सत कबीर कहते है कि क्या कोई सत ऐसा है जो सहजानद की अनुभूति करा सके? मैं ऐसे सत साधक को अपना जप, तप दलाली के रूप मे दे दूँगा। अर्थात् वह मेरे पुण्यो और साधनाओ के फल को भी प्राप्त करे। इसके बाद सत कबीर ने पूरी कलाली का रूपक बॉधा है। जैसे कलाल शराब देता है वैसे ही यह सत राम रस का भाग एक ही बूद दे। (एक बूँद का भी वह प्रभाव होगा जो बहुत पीने से होता है)। मैने अपने शरीर को कलछाल की खमीर उठानेवाली वस्तु के रूप मे सौप दिया है। गुरुदेव का शब्द गुड़ है। काम, क्रोध, मोह, मत्सर, मद आदि को टुकड़े काट कर कत बनाने के लिये दिया है। चौदहो भुवनो की भट्टी बनायी या शरीर के विभिन्न कोशो को भट्ठी बनाया। ब्रह्म तत्व को अग्नि रूप मे जलाया। मदन को मूँदकर सहज ध्वनि अर्थात् अनाहत नाद पैदा किया। सुषम्ना को उस कपड़े के रूप मे प्रयोग किया जिससे नली ढँकी जाती है। अब उससे अमृत रस का झरना झरता है। इस रस को जीवात्मा रावल पीता है। यहाँ का निवास अत्यत कठिन है। किसी सिद्ध गुरु के ज्ञान द्वारा ही इस कलाली मे निवास और इस शराब का आस्वादन सभव है। अलंकार--सागरूपक, वक्रोक्ति, श्लेष, व्यतिरिक अकथ कहाँणी प्रेम की, कछु कही न जाई; भूंगे केरी सरकरा, बैठे मुसुकाई ॥ठिक) भोमि बिनों अरू बीज दिन तरदर एक भाई। अनंत फल प्रकासिया, गुर दीया बताई। मन धिर बैसि बिछारिया, रामहिं ल्यो लाई। झूठी अनभे बिस्तरी सब थोथी बाई। कहै कबीर सकति कछु नाही, गुरु भया सहाई॥ आऑबण जॉणी मिटि गई, मन मनहि समाई ॥१ ५६॥ शब्दार्थ-सरकरा 5 शर्करा | लौ। ध्यान। भोमि 5 भूमि। बैसि 5 बैठकर। बिछारिया > विचार किया। बाई & वायु। थोथी > खोखला। बिस्तरी - फैली। सकति 5 शक्ति | न अर्थ-प्रेम कहानी कहना कठिन है। यह गूँगे के गुड़ के समान है जिसका स्वाद लिया जा सकता है। उसे अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है। बैठा-बैठा खाता है, मुस्काता है। कितु बोल नही सकता है। बिना धरती, बिना बीज के यह ईश्वर, ससार या शरीर रूपी पेड़ खड़ा है। इसमे अनत फल लगे है। गुरु ने कृपा कर यह फल बता दिया है। मन को स्थिर कर बैठने पर राम मे ध्यान ठगाने पर ज्ञान होता है। ऐसे मे सासारिक अनुभव झूठे और थोथे लगने लगते है। ये अनुभव थोथी बातो पर टिके है। या ये थोथे छिलके वायु मे उड़ जाते है। मनुष्य में कोई शक्ति नही है। गुरु की सहायता से ही उक्त तत्त्व की अनुभूति और प्राप्ति हो सकती है। अत गुरु सहायक हुए। फलत मेरा ससार चक्र समाप्त हो गया। अब मन विषयो मे न जाकर मन मे ही समाहित हो गया है। अलंकार-दृष्टात, विभावना

प्टड कबीर समग्र संतो सो अनभे पद गहिये। कला अतीत आदि निधि निरमल ताझऊँ सदा विचारत रहिये ॥टिक॥ सो काजी जाकौ काल न ब्यापैं, सो पंडित पद बूझे। सो ब्रह्मा जो ब्रह्म विधारे, सो जोगी जग सूचे॥ उदे न अस्त सूर नहीं ससिहर, ताकी भाव भजन करि लीजै। काया ये कछु दूरि बिचारै, तास गुरू मन धीजै। जारये जरे न काद्यो सूके, उतपति प्रे न आवै ॥ निराकार अषंड मंडल मै, पाँचो तत्त समावै॥ लोघन अछित सबै अंधियारा, बिन लोचन जग सूचे। पड़दा खोलि मिले हरि ताकूँ, जो या अरवहि बूसे॥ आदि अनंत उमभे पख निरमल, द्रिष्टि न देख्या जाई। ज्वाला उठी अकास प्रजल्यो, सीतल अधिक समाई॥ एकनि गंध बासनों प्रगटे जग ये रहे अकेला॥ प्रॉन घुरिस काया ये बिछुरे, राखि लेहु गुर चेला। भागा भर्म भया मन अस्थिर, निद्रा नेह नसौनों॥ घट की जोति जगत प्रकाष्या, माया सोक बुझोनों॥ बंकनालि जे संमि करि राख, तो आवागमन न होई॥ कहै कबीर धुनि लहरि प्रगटी, सहजि मिलैगा सोई ॥१ ५७॥ शब्दार्थ-अनभे 5 अनुभव। कल > टुकड़ा। ससिहर 5 शशधर। चद्रमा। सूके > सूखना। पॉचो तत्त + आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी। अछित 5 रहते। पख - पक्ष। अस्थिर ८ स्थिर। समि समान | ब्रह्मा ८ ब्राह्मण अर्थ-सतो, उस पद को ग्रहण करो। जो अखड, आदि रहित, निर्मल निधि है। हर समय उसी पर विचार करो। वही काजी है जिस पर काल प्रभाव नही पड़ता है। जो अनुभव पद को समझता है वही पडित है। वह ब्राह्मण है जो ब्रह्म पर विचार करता है। वह योगी है जिसे सारे ससार का बाहर-भीतर दीखता है। उस स्थान या तत्त्व का भाव भाजन करो जहाँ सूर्य और चद्रमा का उदय अस्त नही होता है। जो इनके प्रभाव से मुक्त है। जो शरीर से कुछ दूर का विचार करता है। उस गुरु को मन देना चाहिए। परमतत्त्व जलाने पर जलता नही, काटने पर सूखता नही, उत्पत्ति प्रढय मे आता नही। अखडित रहता है। जिसके निराकार अखड मडल मे पॉचो तत्त्व समाहित हो जाते है। आँखे रहते (भौतिक आँखें) कुछ नही दीखता है। जिसने भीतरी आँख प्रज्ञा) प्राप्त कर ली है उसे सब दिखाई पड़ता है। जो इस अर्थ को समझता है। उससे प्रभु पर्दा हटकर मिलता है। जो आदि-अत के दोनो पदो से निर्मल है। जो ऑखो से देखा नहीं जा सकता है। साधनाकी आग जली है। ब्रह्मरघ्र जल रहा है। पूरे शरीरमे शीतठता समा गई है। प्रभु प्राप्ति की एक मात्र गध की एक वासना फूटी है। यह वासना (गध) संसार की अकेली गध है। प्राण पुरुष शरीर से अलग हो रहे है। गुरु-चेले मे क्षमता हो उस पुरुष को रख ले। जाने से रोक दे। भ्रम दूर हुआ। मन स्थिर हो गया। ससार प्रेम की नींद नष्ट हो गया। शरीर के भीतर की आत्म ज्योति से सब कुछ प्रकाशित हो गया है। माया का दुख दूर हो गया। वक नाढि को सुषुम्ना मे प्राण-अपान के समान रखा जाय तो ससार चक्र समाप्त हो जाये | सत कबीर कहते है कि हमारे भीतर अनाहत ध्वनि लहरी उठी है। अब स्वामी का दर्शन सहज हो गया है।

पद ५८५ तुलनी- १ न तत्र सूर्योभाति न चद्रतारकम् नेमा विद्युतो भान्ति कुतोडयमग्नि | -कठो० २ नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि नैन दहति पावक | न चैन केलदयन्त्यापो न शोषयति मारुत.। - गीता २। २३ अलंकार-विभावना, रूपक, विरोधाभास, असगति जा पूछो गोविंद पढ़िया पंडिता, तेरों कौन गुरू चेला। अपणें रूप को आपहि जॉणे, आप रहे अकेला ॥दिक॥ बा का पूत याप बिना जाया, झिद पाऊँ तरबरि चढ़िया ।। अस बिन पाषर ' गज बिन गुड़िया, बिन घड़े संग्राम जुड़िया ॥ बीज बिन अंकुर पेड़ बिन तरवर, दिन साथा तरवर फलिया। रूप बिन नारी पुहुप दिन परमल, दिन नीरे सरवर भरिया।। देव बिन देहुरा पत्र बिन पूजा दिन पाँषों भवर दिलेबया। सूरा होइ सु परम पद पावै, कीट पतंग होह सब जरिया ॥ दीपक बिन जोति जोति बिन दीपक, हद बिन अनाहद सबद बागा। चेतनों होई सु चेति लीज्यौ, कबीर हरि के अंगि लागा॥१५८॥ शब्दार्थ-अस + अश्व। पाषर 5 लोहे की झूल। कवच। षडै 5 तलवार। खड्ढ। जुड़िया हक जुटा है। साषा 5 शाखा। परमल 5 परिमरू। देहुरा + मदिर। बागा 5 बाजा। गुड़िया ८ दा। अर्थ-ऐ शास्त्रज्ञ पडितो, तुम लोग जाकर भगवान् से पूछो कि है प्रभु, आप का कौन चेला है और कौन रू रु है। निराकार प्रभु दोनो से रहित है। वह अपने रूप को स्वय जानता है। वह अकेला रहता है। वह वध्या का पुत्र के समान असभव कल्पना है। वह उत्पन्न है या पिता रहित है। बिना पाँव के पेड़ पर चढ़ता है| वह अपाणिपादी है। उसकी स्थिति बिना घोड़े के झूले, बिना हाथी के हौदे और बिना अस्त्र के योद्धा जैसी है। वह बीज एवं अकुर रहित पेड़ है। शाखा रहित फलदार पेड़ है। अरूप स्त्री है। फूल नही कितु उसकी गध है। जलरहित भरा तालाब है। देव रहित मंदिर, पत्र रहित पूजा, पखरहित घूमने वाला भौरा है। बहादुर परमपद पाते है। बाकी लोग कीट-पतगो के समान वासनाग्नि में जल्ते है। परतत्त्व दीपक बिना प्रकाश और प्रकाश रहित दीपक है। निस्सीम अनाहत ध्वनि ! होती रहती है। है सत कबीर कहते है कि जो प्रभु के साथ लग गया वह समझदार सारी स्थितियों को समझता है। अंलेकार-विभावना, उल्लेख पंडित होड़ सु पदहि बिचारे, मूरिष नोहिन बूसे। बिन हाथनि पॉइन बिन कॉननि, बिन लोचन जग सूझे ॥टेक॥ बिन मुख खाई चरन बिनु चालै, बिन जिभ्या गुण गावै। आएँ रहै ठौर नही छाड़े, दह दिसिही फिरि आबै॥ बिनही तालों ताल बजावै, बिन मंदल घट ताला। बिनहीं सबद अनाहद बाजै, तहाँ निरतत है योपाला |

|| । | 4 ५८६ कवीर समग्र बिना चोलने बिनों कंधुकी, बिनहीं संग संग होई। दास कबीर औसर भल देख्या, जॉनेंगा जस कोई ॥१ ५९॥ अर्थ-पंडित (अध्यात्म शास्त्र का ज्ञाता) पद पर विचार करेगा। कितु मूर्ख को कुछ नहीं सूझेगा। विना हाथ, पैर, कान, आँख, मुख, जीभ के क्रमश करता, चढता, सुनता, देखता, बोलता, चखता है। सदा एक जगह रहता है। कभी जगह नही छोड़ता है। कितु दसो दिशाओ में धूमता है। बिना ताली के ताल देता है। विना मर्दढ के षट् ताल बजाता है। विना शब्द ध्वनि के अनाहत बजता है। वहाँ कृष्ण नाचते है। बिना शरीर, कचुकी तथा बिना सग के साथ होता है। इस नृत्यवाय्य के अवसर को कोई-कोई ही जानता है। अलंकार--विभावना है कोई जगत गुर ग्यॉनी, उलटि शेद डूहे। पॉर्णी मे अगनि जरे, अँपरे की सुझे ॥टिक॥ एकनि दूरि खाये, पंच भवंगा। गाईह नाहर झूप्यी, काटि कादि अंगा॥ दकरी विघार खायौ, हरमि खायी चीता। कायि लगर फाँदिया, बटेरे बाज जीता । मूसे मंजार खायो, स्यालि झायौ स्वॉर्तों। आदि की आदेश करत, कहे कबीर ग्यॉनों ॥१६०॥ शब्दार्व-पाणी ८ प्रपच। अगनि > प्रभु प्रेम की आग। दादुर 5 भ्रम। पॉच भुवग - पाँच ज्ञानेद्रियाँ। गाय 5 अविद्या। नाहर 5 जीव। बकरी > कुवुद्धि। विघार 5 बृक। सदूबद्धि | लगर 5 एक शिकारी पक्षी | विवेक। कागि 5 अविवेक। बटेरे 5 बटेर। अज्ञान। बाज 5 ज्ञान। मूसा - विषया सक्ति। मजार > बिल्ली। बुद्धि। स्याल चित्त की चचलता। श्वान 5 चरित्र। अर्थ-क्या ससार मे कोई ऐसा गुरु है जो इस उलटे वेद (ज्ञान) को समझ सकता है ? आग पानी मे जलती है। प्रभु प्रेम की आग ससार प्रेम के पानी मे नष्ट हो रही है। वासना विमुख आँखों को अतज्ञनि हो गया है। । भ्रम मेढक ने पॉच ज्ञानेद्रिय सर्पों को खा डाला। भ्रम से ज्ञान समाप्त हो गये। अविधा ' गाय जीव नाहर को खा रही है। अगो को काट-काट कर खा रही है। मनुष्य के सभी कर्म अविद्या जन्य हो रहे है। कुबुद्धि बकरी सदवुद्धि बृक को खा रही है। अविवेक कौआ विवेक लगर फॉद गया। अज्ञान बटेर ने ज्ञान वाज को जीत लिया है। विषयसक्ति चूहे ने बुद्धि दिल्ली को खाया। चित्त की चचलता सियार ने चरित्र श्वान को नष्ट कर दिया। सब जानकर सत कबीर-आदि पुरुष को प्रणाम (आदेश) करते है। अलंकार-विरोधाभास ऐसा अदभुत मेरे गुरि कथ्या, मैं रह्मा उमेषै। मूसा हसती सौ लड़े, कोई बिरला पेषे |टिक।॥ उलदि मूसै सापणि गिली, यहु अचिरज भाई। चींटी परबत ऊषण्यों, ले राख्यो चौड़े ॥ मुर्गी मिनकी सूँ लड़े, झल पॉणी दौड़ै। सुरहीं चूंधे बछतलि, बछा दूध उतार! ऐसा नवल गुणा भया, सारदूलहि मारै।

पद ५८७ भील लूक्या बन बीझ् मे सता सर मरै॥ कहै कबीर ताहि गुर करो, जो या पदहि बिचारै॥१६१॥ शब्दार्द-उमेषै < उन्मेष। मूसा 5 साधक जीव। हसती 5 माया। पेषै - देखता ै। - सापणि 5 सर्पिणी। विषय। चींटी > शुद्ध चित्त। परबत 5 विषय। चौड़े मैदान। मुर्गी * निवृत्ति। मिनकी > बिल्ली। वासना। झल * ज्वाला। प्रभु प्रेम की आग। पाणी > प्रपंच। सुरही < गाय। अविद्या। चूषै 5 चूसै। वछतलि 5 वासना। नवरू ८ नेवढा | साधक चित्त। सारदूल - सिह। वासना। भील > मोह। बीझ 5 बीच। ससा 5 खरगोश। साधक। सर 5 ज्ञान। बाण | है अर्थ-मेरे गुरु ने जो कहा उससे मेरे छिपे ज्ञान का उन्मेष हो गया। इस उन्मेष के बाद मैने देखा कि साधक जीव मूसा वासना हाथी से लड़ रहा है। इस बात को कोई बिरला ही समझता है। साधक जीव मूषा ने विषय सर्पिणी को निगल लिया। शुद्ध चित्त चीटी ने विषय वासना के पर्वत को उखाड़ डाला। उखाड़ मैदान ससार मे रख दिया। निवृत्ति मुर्गी वासना बिल्ली से लड़ती है। प्रपच पानी मे प्रभु प्रेम की आग दौड़ रही है। वासना बछिया से भोग का दूध उतर रहा है और अविद्या गाय वासना वछिया के तल्न को चूस रही है। साधक चित्त नेवला वासना सिह को मार रहा है। मोह भील वासना वन के बीच साधक के ज्ञान बाण की चोट खा रहा है। सत कबीर उसे गुरु मानते है जो इस पद को समझता हो। अलंकार-विरोधाभास | उल्हेख। अबवधू जागत नीद न कीजै। काल न खाद कलप नही ब्यापै देही जुरा न छीजै ॥टेक॥ उलठदी गंग सपुद्रहि सोखे ससिहर सूर गरासे। नव ग्रिह् मारि रोगिया बैठे, जल में व्यंब प्रकासे। डाल गद्य यें मूल न सूचे मूल गढ्मा फल पावा। बंबई उलदि शरप को लागी, धरणि महा रस खावा। देठ गुफा मैं सब जग देख्या, दाहरि कछू न सूचे। उलदे धनकि पारथी मार्यौ यहु अधिरज कोड बूझे॥ औधा घड़ा न जल मे डूबे, सूधा सूभर भरिया। जाकी यहु जय घिण करि चाहे, ता प्रसादि निस्तरिया ॥ अंदर दरसे धरती भीजै, बूसे जाणी सब कोई धरती बरसे अंबर भीजै, बूचे बिरला कोई॥ गॉवणहारा कदे न गाव, अणबोल्या नित गावे | नटबर पेषि पेषनों पेणे, अनहद बेन बजावे॥ कहर्णी रहर्णी निज त्तद जाँणें यहु सब अकथ कहारणी | घरती उलटि अकासहि प्रग्रासै, यहु पुरिसों की बांणी॥ बाप्त पियलै अंमृत सोख्या, नदी नीर भरि राष्या। कहे कबीर ते बिरला जोगी, धरणि महारस चाष्या॥१६२॥ शब्दार्-कलप - कल्प। ब्रह्मा का एक दिन जो चौदह मन्वन्तर अर्थात् चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षो का होता है। जुरा जरा। वृद्धावस्था। गरासै > ग्रसता है। ग्रिह > ग्रह। ब्यब ८ विब। बबई 5 बॉबी। धनकि 5 धनुष। पारधी > पार्थ। शिकारी। मन। सूधा सीधा। पेषनौं > प्रेक्षण | तमाशा। निजतत > आत्म तत्त्व। बाझ > बिना। देही > जीवात्मा।

प्ट८ कवीर समग्र अर्व-हे अवधू, जागते रहो। सोओ मत। जागते रहने पर जीवात्मा को काल नही खा पाता है। कल्पो के परिवर्त्तनो का भी उस पर प्रभाव नही पड़ता है। वृद्धावस्था से भी देही क्षीण नही होता है। कुडलिनी गगा ऊपर को चढ़ती है। सहम्नार तक जाती है। इस प्रक्रिया से विषय समुद्र सूख जाते है। इडा (चद्रमा) और पिंगला (सूर्य) नाड़ियो में सुपुम्ना प्रवेश (ग्रास) होता है। नव ग्रहों (पाँच ज्ञानेद्रियाँ एव अतकरण चतुष्टय) को रोगी जीव प्रभावित कर छेता है| शुद्ध हृदय जल मे चैतन्य विब प्रकाशित होता है। मेरूदड डाछ को पकड़ने से सहस्नार मूठ नही दीखता है। सहसार मूल है। उसे ग्रहण करने से अमृत फल की प्राप्ति होती है। सहम़ार बॉबी कुडलिनी सर्प को ढक लेती है। कुडलिनी धरती महारस मूलाधार चक्र का भोजन करती है। सहस़ार गुफा मे वैठ कर सारा ससार दीखता है। कितु सहसार गुफा से बाहर रहने वाले को कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता है। जीव रा पथ उलट कर मग शिकारी को मारता है। इस आश्चर्य को कोई-कोई ही समझ सकता है। अँधा घड़ा अर्थात् विषयासक्त मन ज्ञान सागर में नही डूबता है। कितु शुद्ध मन में ज्ञान जल का पूर्ण प्रवेश होता है। जिस साधना मार्ग को लोग पहले घृणा से देखते थे बाद मे उसी से उनका उद्धार होने छगा। सहम्रार अबर में रस की वर्षा हैती है। कितु' कुडलिनी धरती से रसग्राव होता है और सहग्रार आकाश भीयता हैं। इस बात को विरले लोग ही जानते हैं। गानेवाला शरीर कभी नहीं गाता है। कितु साधक की अनवोली जीवात्मा सदा गाती हे। भीतर ही भीतर भजन करती है। श्रेष्ठ योगी नटवर वेश बनाकर नित्य जगत्त तमाशा देखता है। भीतर ही भीतर अनाहत वेणु दजाता है। उसका आनद छेता है। योगी का कथन और रहना कैसा होता है इसे वही जानता है। यह सब अकथनीय कहानी है। धरती मूलाधार स्थित कुडलिनी उठकर सहस्ार मे पहुँच जाती है। यह विद्वान योगी ब्ताते हैं। यद्यपि योगियो की हृदय नदी मे पानी भरा है। किंतु योगी बिना प्याले के सहस्नार से नि सृत अमृत का रसास्वादन करता है। सत कबीर कहते है कि वह योगी विरल है जिसने इस ज्ञानरस पृथ्वी का पान किया हो। अलंकार-विरोधाभास, विभावना, रूपकातिशयोक्ति राम गुन बेलड़ी रे, अबघू गोरबनावि जॉर्णी। जातिसरूप न छाया जाके, विरध करें बिन पोणी टिक) बेलड़िया दे अणी पहुँती गगन पहुँती सैली। सहज बेलि जल फूलण लागी, डाली कूपल मेल्ही॥ मन झुंजर जाइ बाड़ा बिलंग्या सतगुर बाही बेली। पंच सखी मिलि पदन पयंप्या, बाड़ी पाणी मेल्ही॥ काटत बेली कूपले मेल्हीं, सीचताड़ी झुमिलॉर्णी। कहै कबीर ते बिरला जोगी, सहज निरंतर जॉर्णी ॥१६३॥ के शब्दार्व-बेलड़ी + वेल लता । विरध 5 वृद्धि। अणी 5 शाखा। पहुँती - पहुँची। सैली स्वैरी। स्वच्छद। कूपछ + कोपल। मेल्ही 5 पनपी। वाडी र वाटिका। बगीचा। विलब्या 5 ठहर गया। बाही > प्रेरित किया। पयप्या > प्रकपित किग्रा | उत्तेजित किया। अर्थ- राम के गुणो की छता को अवधूत गोरखनाथ जानते है। उसके न तो रूप है, न छाया है। बिना पानी के बढ़ती है। इडा-पिंगठा नामक उसकी दो छताएँ सहस्रार-

आकाश में पहुँच गयी है। सहज साधना की भक्ति छता जल ‘‘मे फूलने लगी है। इसमे आनद की कोपते निकलने लगी है। मन-हाथी जाकर भक्ति-वाटिका मे ठहर गया है। इस भक्ति ठता को प्रेरित _ किया है। पाँचो ज्ञानेद्रियों रूपी सखियो ने मिलकर प्राण-पवन को उत्तेजित किया हैं। भक्ति

पद ५८९ वाटिका मे रस का सचार किया है। भक्ति बेलि को विषयो से काटने पर यह और अधिक कोपले फेकती है। विषयो द्वारा पोषण करने से भक्ति छता का नाश होने लगता है। । सत कबीर कहते है कि निरतर सहज साधना में रूगा बिरछा योगी ही इस तथ्य को समझ पाता है। टिप्पणी-इस छद मे गोरखनाथ के महत्त्व का वर्णन है। अत गोरख का प्रभावद्‌टभी स्वाभाविक है। जैसेतत बेली लो तत बेली लो, अवधू गोरषनाथ जॉणी। डाल न मूल पहुप नहिं छाया बिरधि करे बिन पॉणी। । काया कुजर तेरी बाड़ी अवधू, सतगुर बलि रुपाणी। काटत बेली कूपल मेल्ही सींचतड़ा कुमलाये। के -गोरखबानी अलंकार-विभावना, व्यतिरेक, रूपक, विरोधाभास, रूपकातिशयोक्ति ! राम राह अबिगत बिगति न जानै; कि किम तोहि रूप बषानै॥टेक।) प्रवमे गगन कि पुह्यमि प्रयमे प्रभू प्रथमे पवन कि पोर्णी । प्रथमे चंद कि सूर प्रथमे प्रभू, प्रथमे कोन बिनॉर्णी ॥ प्रयमे प्राण कि प्यंड प्रवमे प्रभू, प्रथमे रक्त कि रेत। प्रथमे पुरिष की नारि प्रथमे प्रभू, प्रथमे बीज की खेत ॥ प्रथमे दिएस कि रैणि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पाप कि पुन्य॥ कहै कबीर जहाँ बसहु निरंजन, तहाँ कुछ आहि कि सुन्यं ॥१६४॥ अर्थ-हे राजा राम, तुम्हारे व्यक्ताव्यक्त स्वरूप को जानना कठिन है। जानना कठिन है तो वर्णन और भी कठिन है। हे प्रभु, बताओ। पहले आकाश हुआ या पृथ्वी ? पहले हवा या पानी हुआ ? ,प्राण और शरीर में प्रथम कौन हुआ ? रक्त और वीर्य, स्त्री-पुरुष मे, खेत-बीज, दिन-रात, पाप-पुण्य मे प्रथथ कौन हुआ? सत कबीर कहते है कि हे निरजन प्रभु, यह बताओ कि तुम जहाँ बसते हो उस स्थान पर कुछ है या वह शून्य स्थान है ? अबघू सो जोगी गुर मेरा; जो या पद का करे नबेरा ॥टेक॥ तरबर एक पेड़ बिन ठाढ्ा, बिन फूलों फल लागा। साझा पत्र कछू नहीं बाके अष्ट गगन मुख बागा॥ पैर बिन निरति करों बिन बाजै, जिभ्या हीणों गावै। गायणहारे के रूप न रेषा, सतगुर होई छखावै॥ पंषी का घोज मीन का मारग, कहै कबीर बिचारी। अपरंपार पर परसोतम, था मूरति बलिहारी॥ १६५॥ अर्थ-हे अवधू, वह योगी मेरा गुरु है जो इस पद को ठीक समझ सके। एक वृक्ष पेड़ अर्थात् बिना किसी पिंड (तने) के खड़ा है। (सवाल है मर कौन है? यह वृक्ष प्रकृति, परमात्मा, आत्मा और ससार कोई हो सकता है। सभी हो सकते है) इस पैड़ मे बिना फूल के फल छगता है। (यहो फल से कर्म फल 8५ णाम का सकेत है। क्योंकि सारा विश्व प्रकृति परिणाम हैं)। इस पेड़ मे डाल, पत्ते भी नहीं है। इसका मुँह आगे दिशाओ मे फछा है। सर्वत्र व्याप्त है। पैर के विना नृत्य, हाथ के बिना बाजा, जीभ के

५९० कवीर समग्र 22032 होता है। गानेवाले की रूप-रेखा भी नही है। सतगुरु ही बता सकते है कि वह क्याहैरे ०08 निराकार परमतत्त्व को पाने की दो पद्धतियाँ है। एक व्ृहिगम मार्ग और दूसरा मत्य मार्ग | । पक्षी के मार्ग का अर्थ जीवात्मा को उड़ कर आकाश तत्त्व, जहाँ प्रभु का निवास है, जाना होता है। सहस्नार में पहुँचकर ही प्रभु प्राप्ति होती है। यह दो तरीको से होती है। गुरु कृपा से अचानक सिद्धि मिल जाती है। दूसरी यह कि चीटी की तरह धीरे-धीरे चलते रहना चाहिए और गुरु कृपा की प्रतीक्षा करनी चाहिए। दयालु गुरु की कृपा अवश्य होगी। साधक चीटी की लघुता और श्रम को देख महात्मा गुरु अवश्य प्रभावित होते है। अलंकार-विभावना अब मे जोणिबी रे केवल राह को कहाँणी। मंझा जोति राम प्रकासै, गुर गमि बॉणी ॥टिक|। तरवर एक अनंत मूरति, सुरतों लेहु पिछोंणी। साखा पेड़ फूल फल नॉही, ताको अंग्रत बॉणी॥ पुहुप बास भवरा एक राता, बारा ले उर घरिया।सोलह मंच पवन झकोंरि, आकासे फल फलिया। सहज समाधि बिरष यह सीध्या, परती जल हर सोध्या। कहै कबीर तास मै चेला, जिनि यहु तरुवर पेष्या ॥१६६॥ अर्य-अब मुझे केवलाद्दैत की कहानी का ज्ञान हुआ। केवल का अर्थ है अकेला। अद्देत। उसी केवल के मध्य राम ज्योति का प्रकाश होता है। यह बात गुरु कृपा से समझ मे आती है। उसी केवलाद्वैत ब्रह्म की अनत मूर्तियों मे यह सृष्टि फैली है। स्मृति से या भली भौंति अनुरक्त इस तत्त्व को पहचानते है। इस वृक्ष मे शाखा, तना, फूल, फल आदि कुछ भी नही है। निराकार पेड़ है। इससे अमृत की धारा वहत्ती है। यहॉ कमल फूल की' गध आती है जिसमे मन भ्रमर अनुरक्त है। उस कमल मे बारह (बारा) पखुडियाँ हैं जिन्हे जीव भौरा हृदय मे « धारणा किये है। या श्रेष्ठ को हृदय मे धारण किये है। सोलह पखुडियो वाले कमल मे सिद्धि की हवा झकझोर रही है। (प्राणशक्तियाँ भी सोलह है- पॉच ज्ञानेद्रियों, पाँच कर्मेंद्रियोँ, पाँच प्राण, एक मन)। सहसार आकाश मे ब्रह्म तत्त्व की प्राप्ति का फल फला है। सहज समाधि के द्वारा जब यह वृक्ष सींचा जाता है तो मूलाधार (धरती) की सभी वासनाएँ (जलहर) सूख जाती है। सत कबीर उसके शिष्य है जिन्होने इस पेड़ को देखा है। अलंकार-व्यतिरेक, रूपकातिशयोक्ति, विरोधाभास | राजा राम कबन रंगे; दैसे परिमल पुहुप संगे॥ टिक।॥ पंचतत ले दीन्ह वैंधाप, चौरासी लघ जीब समान | बेगर बेगर राखि ले भाव, तामे कीन्ह आपको ठोँब॥ जैसे पाबक मंजन का बसेष, घन उनमोन कीया प्रवेस ॥ कह्मो चाहूँ कछु कद्मा न जाइ, जल जीव हे जल नहीं बिगराइ॥ सकल आतर्मों बरते जे, छल बल को सब चीन्हि बसे॥ चीनियत चीनियत ता चीन्हिले से, तिहि चान्हिअत घुँका करके ॥ आपा पर सब एक समान, तब हम पावा पद निरबोण।॥ कहै कबीर मन्य भया संतोष, मिले भगदंत गया दुख दोष ॥9६७॥

पद ५९१ शब्दार्ष-भजन - पात्र। उनमॉन 5 अनुमान। चीन्हि + चिह्न। रूप। अर्थ- राजा राम का रग किस प्रकार का है, जैसे पुष्म के साथ गध है। देह (मनुष्य) पुष्प है और आत्मन् गध है। पॉच तत्त्वो से यह शरीर-सृष्टि की रचना हुई है। चौरासी छाख जीवो की योनियो मे समाए है। अलग-अलग भावों मे भी उन का ही स्थान है। जैसे आग पात्र के अनुसार प्रवेश करती है वैसे ही अनुमान कीजिए। प्रभु सभी शरीरो मे उनकी पात्रता के अनुसार प्रविष्ट है। कहना चाहता हूँ तो कुछ कहा नही जाता है। प्रभु जलजतु होकर जल मे फैले है। (कच्छप, मत्त्य अवतार मे यही कल्पना है)। जल उस परमात्मतत्त्व से अलग नही है। दोनो एक-दूसरे से अलग नही है। यहाँ कवि प्रकृति पुरुष की अद्वैद स्थिति का सकेत करता है। जो सभी आत्माओ मे वर्तमान है ओर छल बल वाले सभी रूपो मे बसे है। उनकी पहचान मे अक्सर धोखा हो जाता है। पहचानते-पहचानते वे पहचान मे आते है। आत्रतत्त्व और परतत्त्व का बोध समाप्त हो जाने पर निर्वाण पद की प्राप्ति होती है। सत कबीर कहते है कि मनमे सतोष हुआ। भगवान् मिल गये। सारा दोषदुख दूर हो गया। अंतर गति अनि अनि बॉणी। गगन गुपत मधुकर मधु पीवत, सुगति सेस सिब जोणों ।टिक।॥ त्रिगुण श्‍िबिध तलपत तिमरातन, तंती तं मिलानी । भागे भरम भोइन भए भारी, विधि बिरंधि सुषि जॉणी॥ बरन पवन अवरन विधि पावक, अनल अमर मरे पॉणी। रबि ससि सुभग रहे भरि सब घट, सबद सुनि तिथि माही ॥ संकट सकति सकल सुख खोये, उदित मथित सब हारे। कहे कबीर अगम पुर पाठण, प्रगटि पुरातन जारे॥१६८॥ अर्थ-जो हृदय मे है वह वाणी मे नही आ सकता है। अनुभूति और अभिव्यक्ति मे भिन्नता है। गुप्त आकाश मे चेतनात्मा अमृत रस का पान करती है। इस सुगति को शेष और शिव ही जानते है। त्रिगुण (सतू, रज, तम) से बना यह अधकार (अज्ञान) भरा आयतन (शरीर) दैहिक, दैविक, भौतिक दुखो मे तड़पता है। तत्री मे तत्री मिल रही है। साधक परम तत्त्व की आवाज सुन रहा है। भ्रम भाग गया। भोग भारी लगने छगा है। विधाता और ब्रह्मा इस सुख को जानते है। वर्णगुण वाली हवा, अवर्ण गुणवाली आग। यह आग पानी मे विषय ससार प्रवाह मे मर रहा है। सूर्य चद्रमा (इडा-पिंगला) सभी शरीर मे है। सभी शरीर में शून्य (आकाश) की स्थिति है। सकट मे शक्ति और सुख समाप्त हो गए जैसे सागर मथन करने मे सब हार गये हो। सत कबीर कहते है कि पुर-नगर अगमपुर, आनद नगर की कहानी अगम्य है। पुराने जल गए और नये दिखाई पड़ रहे है। भीतिक नगर नष्ट हो रहा है। आध्यात्रिक आनद बढ़ रहा है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति लाघा है कछू लाधा है, ताकि पारिष को न लहै। अबरन एक अकल अविनासी, घदि घटि आप रहै॥टिक॥ तोल न मोल माप कछु नाऐं, गिरती ग्यॉन दे होई। नो सो भारी ना सो हलका, त्तकी पारिष ऊदै न कोई॥ जाम हम सोई हम ही में, नीर मिल्ठे जल एक हूवा। यीं जोजे तो कोई न घरिहें, दिन जोजे थे. बहुत मूबा॥ हि

५९२ कबीर समग्र दास कबीर प्रेम रस पाया, पीवणहार न पाऊँ। दिधनों बचन पिछाड़त नाही, कहु क्या काठड़ि दिखाऊँ।॥॥१६९॥ शब्दार्थ-लाधा - प्राप्त किया | पारिष - परख। को 5 कोई। अर्थ-प्राप्त किया है। उस परम तत्त्व की परख किसी को नही है। अवर्ण, एक, अखड, अविनाशी हर शरीर का निवासी है। वह तत्त्व न तौढा जा सकता है। न उसका मोल, न माप, न गिनती होती है। वह न भारी, न हलका है। कोई उसकी परीक्षा नहीं कर सकता है। आत्मा और परमात्मा एक है। जैसे अलग-अलग पानी एक ही पानी है। जो आत्मा मे हो वही परमात्मा मे है। जो परमात्मा में है वही आत्मा मे है। परमात्म तत्त्व को जानने वाले कभी नही मरते। न जाननेवाले बहुत से मर गये। सत कबीर ने प्रेम रस पाया। कितु उसे पीने वाले साधको का अभाव है। इस विधि वाक्य को जब पहचानते नही तो तुम्हे क्या काढ़ कर दिखाया जाय कि विश्वास हो ? हरि हिरदे रे अनत कत चाहौ, भूले भरम दूनी कत बाही॥टेक॥ जग परबोधि होत नर खाला, करते उदर उपाया। आत्म राम न चीन्हे संतौ, क्यूँ रमि है राम राया॥ लागै प्यास नीर सो पीवे, बिन लागे नहीं पीगै। खोजै तत मिले अविनासी, बिन खीजें नहीं जीवै। कहै कबीर कठिन यह करणी जैसी घंडे धारा। उल्टी चाल मिलै परब्रह्म कौ, सो सतगुरू हमारा॥१७०॥ ह अर्च-प्रभु तो हृदय मे ही है। अन्यत्र कहाँ खोजते हो ? भ्रम मे भूछ कर दुनिया में क्यो बह रहे हो ? संसार की उपदेश देकर खाली होनेवाले लोग भोजन की व्यवस्था मे लग जाते है। आत्मतत्त्व को नही पहचानते। ऐसे छोग राजा राम मे कैसे मिलेगे ? प्यास लगने पर पानी पीते है। विना प्यास के पानी की जरूरत नही पड़ती है। खोजने पर अविनाशी तत्त्व की प्राए होती है। बिना खोजे जीवन नही डै। यह साधना तलवार की धार पर दौड़ना है, सांसारिक नहीं। संसार से उल्टी चाल द्वारा ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है। उठछटा चलनेवाढा ही हमारा गुरु ह। अलंकार-कक्रोक्ति, उपमा, दृष्टात रे मन बैठि किते जिनि जासी; हिरदे सरोदर है अविनासी ॥टेक॥ है काया मधे कोटि तीरद, काया मघे कासी। माया कधे कदलापति, काया मधे बैकुंठबासी ॥ उलदि पबन घटचक्र नियासी, तीरयराज गंगतद बासी॥ गगन मंडल रबि ससि दोइ तारा, उल्टी कूची लागि कियारा। जड़े कबीर भई उजियारा, एंच मारि एक रहौ निनारा ॥१७१॥ अर्थ-ऐ मन, अन्यत्र मत जाओ। तुम्हारे हृदय तालाब मे प्रभु का वास है। तुम्हारे शरीर मे करोड़ो तीर्थ हैं। उस मे क्राशी है। माया और शरीर मे विष्णु मिलते हैं। प्राण वायु को उल्टा कर षट् चक्रो का भेदन कर त्रिकूटी, प्रयाग राज में गगातट (पिंगला नाड़ी) पर साधक रहता है। सहस्नार मे रवि-शशि (इडा-पिंगछा) उल्टी कुजी के दो किवाड के रूप मे ढगे है। संत कबीर कहते है कि प्रकाश हुआ और पॉच ज्ञानेंद्रियो की प्रवृत्तियो को समाप्त कर (मारकर) योगी सबसे अलग हो गया। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति राम दिन जन्द भरने भयौ भारी। साधिक सिध सूर अर सुरपति भ्रमत भ्रमत गये हारी ॥दिक॥।

पद ५९३ ब्यंद भाव प्रिग तत जंत्रक, सकल सुख सुखकारी। श्रवण सुनि रवि ससि सिव, पलक पुरिष पल नारी॥ अंतर गगन होत अंतर घुँनि बिन सासनि है सोई। घोरत सबद सुमंगल सब घंटि, य्यंदत ब्यंदे कोई। पाणी पवन अवनि नभ पावक, तिषहि सेंग सदा बसेरा। कहै कबीर मन मन करि ग्रेध्या, बहुरि न कीया फेरा ॥१७२॥ अर्थ-राम की कृपा के बिना जन्म-मृत्यु दोनो कठिन हो गए। साधक, सिद्ध, सूर, इन्द्र आदि घूमते-घूमते थक गये। किसी को मुक्ति नही मिली। वीर्य (ब्यद) रक्षा के भाव तथा मृग के समान यत्रक तत्त्व को जानकर ही सब सुखकर होगे। श्रवण थ्रून्य ब्रह्म रप्र मे सूर्य नाड़ी, चद्रनाड़ी तथा सुषुम्ना (शिवनाड़ी) प्रवाहित होती है। इसमे प्रकृति-पुरुष क्षण-क्षण मे दीखते है। सहसार मे अतर्ध्वनि होती है। वह स्वामी श्वासरहित है। सभी शरीरो मे सुदर शब्द घोठता है। विदु मे विदु कोई-कोई समाहित कर पाते है। पानी, पवन, धरती, आकाश, आग इन तत्त्वो के साथ सदा रहना होता है। मन मन से विध्य है। अब पुन ससार मे नही आना है। नर देही बहुरि न पाईये; ताये हरथि हरणि गुण गाईये ॥टेक।॥ जब मन नही तजै दिकारा, तो दूँ तरिये भी पारा॥ जे मन छाड्टे कुटिलाई, तब आह मिले राम राई॥ ज्यूँ जीमण त्यूँ मरणों, पछितावा कछु न करणों। जाँणि मरे जे कोइ, तो बहुरि न मरणों होई॥ गुर बचनों मंधि समावै, तब राम नाम ल्यो लाबे॥ जद राम नाम ल्यो लागा, तद भ्रम गया भी भागा ॥ ससिहर सूर मिलावा, तब अनहद बेन बजावा॥ जद अनहृद दाजा बाजै, तब साई संगि बिराजै ॥ होत संत जनन के संगी, मन राधि रहो हरि रंगी॥ धरो घरन कवल दिसदासा, ज्यूँ होइ निरभे पदवासा॥ णहु काया खेल न होई, जन घरतर खेले कोई॥ जब परतर खेल मणादा, तब गगनमेंडल मठ छावा।॥। लित चंचल निहछल कीजै तद राम रसाइन पीजै ॥ जब राम रसाइन पीया, तब काल मिट्या जन जीया॥ ज्यूँ दास कदीरा गावे, ताये मन को भन समझावे॥ * मन ही मन समझाया, तब सतगुर मिलि सु पाया॥१७३॥ अर्द-नर शरीर पुन नही मिलेगा। इस लिये मौका है। हर्षित हो होकर प्रभु के गुणो को ग़ओ। बिना विकार छोड़े मन भव सागर पार नही कर सकता है। मन से कूटिलता दूर हो तो भगवान् स्वय मिलते है। जीवन, मरण समान है। इससे पछताने की कोई बात नही है। जान बूझ कर प्रभु भक्ति मे अगर कोई मरे तो पुन ससार में मरना नहीं होगा। सदगुरु के वचनो को समाहित करता है तो राम नाम मे ध्यान छगा। भ्रम भागा। भय दूर 8आ। भव तो अज्ञानजन्य है। जब सूर्य-चद्रमा (इडा-पिगला) मिले तो अनाहत ध्वनि हुई | अनाहत वाजा बजने पर ही स्वामी साथ मे विराजता है। सत जनो के संग मे ही मन हरि (ग में रजित होता है। प्रभु के चरण कमलो मे विश्वास करो। इससे निर्भय पद वास होगा । पह कच्चा खेल नहीं है। कोई कोई व्यक्ति ही इस कठिन खेल को खेल सकते है। इस कठिन खेल के बाद ही आकाश मडल मे निवास होता है। चित्त की चचलता दूर कीजिए तब राम रस

५९४ कबीर समग्र पीया जा सकता है। राम रसायन पीने पर काल मिट जाता है और भक्त जीवित हो जाता है। दास कबीर गाकर मन को मन मे समझाते है। विषयो को छोड़कर जब मन मन मे समाहित हो जाता है तब सतगुरु से मिलकर सुख प्राप्त होता है। अलंकार-रूपक अबधू अगनि जरे कै काठ। पूछो पंडित जोग संन्‍्यासी, सतगुर चीन्हे बाट ॥टिक)। अगनि पवन मै पवन कबन मै, सबद गगन के पवनों। निराकार प्रभु आदि निरंजन, कत रवंते भवनों॥ उतपति जोति कवन अधियारा, धन बादल का बरिषा। प्रगट्यो बीज घरनि अति अधिके, पारब्रह्म नहीं देखा।॥ मरनों मरे न मरि सके, मरनों दूरि न नेरा। दादस द्‌ादस सनमुख देखे, आप आप अकेला॥ जे बाँध्या ते छुछंद मृकुता, बॉधनहारा देंध्या। बॉँध्या मुकता मुकता बॉध्यों, तिहि पारब्रद्म हरि लॉघा॥ जे जाता ते कौण पठाता, रहता ते किनि राख्या। अँमृत समान, दिष में जार्नों, विष मैं अमृत चाख्या॥ कहे कबीर दिचार विधारी, तिल मै मेर समोनों। अनेक जनम का गुर गुर करता, सत्तगुर तब भेटॉनों ॥१७४॥ अर्थ-हे अवधूत, यह पता लगाओ कि आग जलती है या काष्ठ जल्ता है ? यह बात मै पडित, योगी, सन्यासी आदि से पूछता हूँ। इस रास्ते को सदगुरु ही जानते है। अग्नि पवन में मिलती है। पवन किसमे मिलता है ? शब्द आकाश में मिलता है या पवन मे ? आदि निरजन निराकार प्रभु किस भवन मे रमण करते है ? प्रभु रूप मे उत्पन्न होकर अधकार को दूर करते है। (जिस हृदय मे प्रभु है वहाँ अज्ञान का अधकार नही रह सकता है) | घने बादल हो तो वर्षा निश्चित है। धरती मे अत्यधिक बीज प्रगट होने पर क्या तुमने ब्रह्म को नही देखा है ? प्रभु भक्ति मे मरनेवाला मर नही सकता है। उसके लिये मृत्यु न दूर है हे नजदीक। द्वादवश कमलो के सामने वह अपना अकेला रूप देखता है। उस जैसा दूसरा कौन 7? बधन मे पड़ी आत्मा मुक्त हो जाती है और स्वय प्रभु भक्ताधीन होकर बँधता है या आकार ग्रहण कर बँधता है। जो बधन मे मुक्ति और मुक्ति मे बधन की अनुभूति करता है वह परब्रह्म को प्राप्त कर छेता है। जाने वाले को कौन भेजता है और रहनेवाले को कौन रखता है ? जिसने अमृत तत्त्व को वासना विष से युक्त देखा उसने विष को भी अमृत बनाकर चख लिया । सत कबीर विचार कर कहते है कि आत्मा तिल मे मेरुपर्वत जैसा परमात्मा समाया है। अनेक जन्मो के प्रयल से गुरुदेव की कृपा से इस तत्त्व से भेट होती है। अवधू ऐसा ग्यान बिचार; भेरे चढ़े सु अधधर डूबे, निराधार भये पार ।टिक॥ ऊबट चले सु नगरि पहुँचे, बाट चले ते लूटे। एक जेवड़ी सब लपटोंने के बॉघे के छूटे ॥ मंदिर पैसि चहूँ दिसि भीगे, बाहरि रहे ते सूका।

पद ए्९ुण् सरि मारे ते सदा सुखारे, अनमारे ते दूषा।॥ बिन नैनन के सब जग देखे, लोचन अछते अंघा। कहै कबीर कछु समझ्ि परी है, यहु जग देख्या धंधा ॥१७५॥ शद्धार्ष-भेरे > एक प्रकार की नाव। बेड़ा। अधधर & बीच धारमे। आधीधार मे। ऊबट - (< उद्वाट) अटपट रास्ता। सूका 5 सूखा। जेबड़ी 5 रस्सी। दूषा + दुखी। धधा ८ दन्द। . अर्थ-हे अवधू, इस ज्ञान पर विचार करो। यह क्या हो रहा है ? जिन्होंने ससार की वस्तुओं को आधार बनाकर ससार सागर पार करना चाहा वे बीच में ही डूब गये। कितु जिन्होने इसका आधार छोड़ दिया वे ससार सागर पार हो गये। जो ससार मार्ग के उल्टे चढे वे प्रभु नगर मे पहुँच गए। जो लोकवेद की मर्यादा से बैँधे रहे उन्हे वासना के बटमारो ने लूट लिया। जिन्होंने सपूर्ण ससार को एक ही माया की रस्सी मे देखा वे बंधन मुक्त हो गये। जो मन मदिर के भीतर रहे वे भगवत् रस से सराबोर हो गये। कितु जिन्होंने बाहर की साधना की वे सूखे रह गये। जिन्हे गुरु शब्दों के बाण लगे वे सुखी है जिन्हे यह बाण नही लगा वे दुखी है। जिन्होनें बाह्य आँखे बद कर ली है उन को सब दीखता है। कितु आँखवाले जगतूनाश नही दीख पाते है। 5 सत कबीर कहते है कि अब समझ मे आया और कुछ नही, यह ससार स्वय इन्द्ध मे पड़ा | अलंकार-विरोधाभास और विभावना जग धंघा रे जग धंधा, सब लोगनि जोणो अंधा। लोभ मोह जेवड़ी लपटानी बिनही गॉठि गह्मो फंदा टिक ऊँचे टीबे मंछ बसत है, ससा बसे जल माँहीं। परबत ऊपरि डूबि मूवा नीर मूवा घूँ कौंही॥ जले नीर तिण घड़ उबरे, बैसंदर ले सींचे। ऊपरि मूल फूल तिन भीतरि, जिनि जान्यौं तिनि नीकै॥ कहै कबीर जॉनही जॉनै, अनजानत दुख भारी। हारी बाद बटाऊ जीत्या, जानत की बलिहारी ॥१७६॥ अर्थ-यह ससार धधा है। सभी छोग अधे है जो इस तथ्य को नही समझते है। सभी लोग मोह की रस्सी मे बंधे है। बिना किसी गॉठ का फेंदा है। (प्रभु की ओर से कोई गॉठ नही है। यह माया का फंदा है) इस उल्टवॉसी मे मन मछली ऊपर सहसार टीले पर चढ़ गयी है और चित्त खरगोश प्रभु प्रीति के जल मे निवास कर रहा है। शास्त्रो के ऊँचे-ऊँचे पर्वतो पर पहुँचकर लोग डूब कर मर रहे है और पता नही जल मे कौन डूबा ? हृदय पानी की ; जल रही है और तृण खर जैसे सामान्य साधक आग (बैसदर) से सीचने का काम ढे रहे मूल ऊपर है। फूल, तृण भीतर है। इसे जो जानते है वे ठीक है| जाननेवाले इसे भली भोंति जानते है। न जाननेवाले के लिये यह अत्यत दुख का विषय है। रास्ता संसार जिसमे आवागमन होता था हार गया। भव चक्र में फंसा साधक राहगीर जीत गया। अब उसे आवागमन से मुक्ति मिल गयी है। इसे जाननेवाले धन्य है। अलकार-रूपकातिशयोक्ति एव विभावना । टिप्पणी-इसमे आग से सींचने की बात कही गयी है। यह वाक्य के लक्षण आए सामर्थ्य

५९६ कबीर समग्र का खडन है। क्योकि आग से सीचने मे योग्यता (सामर्थ्य) का अभाव है। कितु उल्टवॉसी मे आग से ही सीचने का कार्य होता है। अबू ब्रह्म मते घरि जाड; कार्लि जू तेरी बैंसरिया छीनी कहा घरावे गाइ |टिक॥ तालि घुगे बन तीतर लउवा, पवति चर सीरा मछा। बन की हिरनी कूपे वियानी, ससा फिरे अकासा। ऊँट मारि मै चारे लावा, हस्ती तरंडबा देई। बयूर की उरियाँ बनसी हैहूँ सीयरा भूंकि भूकि षाई ॥ आँव के बोरे चरहल करहल, निबिया छोलि छोलि खाई। मोरे आगनिदाष दरीबल, कहे कबीर समझ्नाई ॥१७७॥ अर्व-हे अवधूत, ब्रह्मानद मे मत्त होकर घर जाओ। अतर्मन मे प्रवेश करो। कल तुम्हारी वॉसुरी, भगवान को प्रसन्न करने के लिये वजती थी छीन ली गयी। अब विना वाह्य साधन के तुम सासारिक छोगो (गायों) को कैसे समझा पाओगे ? सहखार-पर्वत शिखर तीतर, लावा, मूलाधार चक्र में स्थित है और सहद्रार-पर्वत शिखर पर साधक मन सौरी मछली पहुँची है। कामनाएँ (वन की हिरणी) प्रायमय कोश कूप मे कल्पनाशील है। ध्यान सहसार मे _ पहुँच गया है। लोभ ऊँट जो पेड़ो पर मुँह मारा करता था उसे मार कर आचार (चारे) सपन्न कर दिया है। सतोष हाथी सागर तर (तरडवा) गया। दुख जो बवूल डाल जेसा था वह अब वशी वाद्य सा सुखद हो गया है। ससार श्रुगाल भूंक भूंक प्रसन्न हो होकर, उसका उपयोग करेगा। आम की डालियो में ससार वृक्ष मे चारफल और कर्मफल लगे है। (दुख) नीम फल (नवौरी) दुख को छीठ कर खाते है। भक्तों ने दुख को सुख बना लिया। (दुख) नीम को छील छील कर खाने का परिणाम हुआ कि भक्त के आगन में द्राक्षा और दाडिम के स्वाद का आनद आ गया। सत कवीर इस बात को समझा कर कहते है। अलंकार-विरोधाभास कहा करी कैसे तिरो, भी जल अति भारी। तुम्ह सरणागति केसवा राखि राखि मुरारी ॥टिक॥ घर तजि दन खडि जाहए, खनि खनि खड्दए कंदा। विष विकार न छूटई ऐसा मन गंदा ॥ विष विधिया को बॉसनो, तजी तजी नहीं जाई। अनेक जतन करे सुरक्षिहों, फुनि फुनि उरज्नाई ॥ जीव अछित जीवन गया, कछु कीया न नीका। यहु हीरा निरमोलिका, कौड़ी पर दीका॥ कह कयीर त्तुनि केसवा, तूँ सकल बियापी। तुम्ठ समोनि दाता नहीं हँम से नहीं पापी ॥१७८॥ अर्थ-हे प्रभु, यह ससार सागर अत्यत गहरे जल से भरा है। क्या करूँ ? इस को कैसे पार करूँ ? मै आपकी शरण मे हूँ। हे प्रभु, मेरी रक्षा करो। घर को छोड़ जगल जाकर, कंद मूल खोदकर खाने -पर भी विषय विकार नही छूटते है। मन गदा ही रहता है। वासना विष है हा छोड़ा नही जाता है। अनेक प्रयत्न से सुलझाना चाहता हूँ कितु वार-वार उल्झता जाता | यौवनावस्था बीतं गयी। कुछ उत्तम कार्य (पुण्यकर्म) न कर सका। यह हीरा जैसा मल्यवान् जन्म कौड़ी के भाव बिक गया। नष्ट हो गया।

पद 380 सत कबीर कहते है कि हे केशव, तुम सर्व व्यापी हो। सर्वत्र हो। तुम्हारे जैसा दान देनेवाछा नही है। मेरे जैसा पाप मे ठिप्त व्यक्ति नही है। कृपा कर मुझे ससार सागर से तरने के लिये भक्ति का दान दो। अलंकार-अनुप्रास, विशेषोक्ति, खपकातिशयोक्ति,. |. बाबा करहु कृपा जन मारगि, लावो ज्यूँ भव बंधन घूटे। जरा मरन दुख फेरि करेंन सुख, जीव जनम वे छूटे ।टिक॥ सतगुरु चरन लागि यों बिनऊँ, जीवनि कहाँ थे पाई॥ जा कारनि हम उपजै, बिनसे झयूँ न कही समझाई।॥ आसा पास षंड नहीं पड़े यो मन सुनि न लूटे । आपा पर आनंद न बूसे, बिन अनभे क्यूँ छूटे ॥ कहाँ न उपजै उपज्यों नहीं जाणैं, भाव अभाव बिहूनों। उदै अस्त जहाँ मति बुधि नाही, सहजि राम ल्यी लीनों॥ यूँ बिंबहि प्रतिबिंद समानों, उदिक कुंभ बिगरोनों। कबीर जॉनि भ्रम भागा, जीवहिं जीव समानों ॥१ ७९॥ शब्दार्थ-षूटे < नष्ट हो। पोड़े > पड़ना। बिगरॉनॉ . अलग होना। अर्प-है प्रभु, कृपाकर भक्त को रास्ते पर रुगाओ। जिससे जीव भव बधन से मुक्त हो। जीव के जन्म, वद्धावस्था तथा मरण के सुख-दुख छूटजायेँ। श्री गुरु के चरणो मे प्रार्थना करता हूँ कि प्रभु, बताओ कि यह जीवन हमने कहाँ से प्राप्त किया है ? जिस कारण जन्म-पृत्यु के चक्र चतते है उन्हे समझा कर कहे। आशा के पाश (बधन) को खडित न कर पाने के कारण मन शून्य का आनंद नही छे पाता है। आत्मतत्त्व का परानद नही समझता है। जब तक उस परमतत्त्व का अनुभव न हो जाय तब तक भव बधन से मुक्ति कैसे मिल सकती है ? कहने पर वह परमात्मतत्त्व उत्पन्न नही होता है। उपजने पर भी उसका ज्ञान नही होता हैं। वह परमतत्त्व भाव-अभाव रहित है। वहाँ न उदय अस्त, न मतिनबुद्धि है। वहाँ सहजभाव से राम मे छीन होना है। जैसे विम्ब और प्रतिविम्ब' समान है वैसे ही घड़े का पानी और नदी का पानी एक ही है। अतर जज्ञान जन्य है। सत कबीर कहते है कि ज्ञान से भ्रम दूर हुआ। जीव जीव मे समाहित हो गया। जीव को वासना-विषय से मुक्ति मिल गयी। आत्मतत्त्व आत्मतत्त्व मे विढीन हो गया। अलंकार-उपमा। संती धोछा का कहिए। गुंण मै निरणुण निरगुण में गुण है, बाट छांड़ि दयूँ वहिए॥टिका॥ अजरा अमर कदै सब कोई, अलख न कथणों जाई। नाति सरूप बरण नहीं जाके, घटि घटि रही समाई॥ प्यंड ब्रह्मंड कब सब कोई, वाके आदि अरु अन्त न होई। प्यंड ब्रह्मांड छाड़ि जे कषिए, कहे कबीर हरि सोई ॥१ ८०॥ गा अर्थ-सतो, धोखे की बात किससे कही जाय २? गुण और निर्गुण दोनो एक मे मिले है। युण निर्गुणयुक्त है। निर्मुण को गुण का आधार चाहिए। इस रास्ते को नही छोड़ना चाहिए। का सभी लोग अलख, अमर, अजर (जरा रहित) की बात करते है। कितु उनका कॉयँन नहीं ह' सकत है। वह अकथनीय है। जिसका कोई स्वरूप, वर्ण नही है। जो घट-घट हर शरीर मे मय है। पिड द्रह्माड की वात सभी लोग करते है। कितु ब्रह्म को छोड़ कर जिसे कहा जाय

५९८ कबीर समग्र वही हरि है। भगवान् है। पषा पषी के पेषणै, सब जगत भुलानों; निरपष होड़ हरि भजै, सो साध सयोनों ॥टिक॥ ज्यूँ घर सूँ घर बेंधिया, यूँ बंधे सब लोई॥ जाके आत्मद्रिष्टि है, साचा जन सोई ॥ एक एक जिनि जाणियाँ, तिनहीं सच पाया। प्रेम प्रीति ल्यो लीन मन, ते बहुरि न आया॥ पूरे की पूरी द्रिष्टि, पूरा करि देखे। कहै कबीर कछू समूझ्ि न परई, या कछू बात अलेखै ॥१ ८१॥ शब्दार्थ-पष्वा 5 पक्ष | पेषणै - प्रेक्षण | निरपष ८ निष्पक्ष | षर ८ क्षर। अर्व-सारा ससार किसी न किसी पक्ष को देखने मे भूछा है। पक्ष रहित होकर जो ईश्वर की उपासना करता है वही सयाना साधु है। सभी लोग जैसे-तैसे क्षर (नाशवान) से वँधे है। आत्दृष्टि वाला ही सच्चा भक्त (जन) है। जिन्होने परमतत्त्व को एक ही समझा है उन्होने ही सत्य को पाया है। जिन का मन भगवतू प्रेम मे छीन है वे पुन ससार मे नही आते हैं। पूर्ण को पूर्ण दृश्विला ही देख पाता है। सत कबीर कहते है कि यह बात कुछ अठक्षय है। कुछ समझ मे नही आता है। अजहूँ न संक्या गई तुम्हारी; नोहि निसंक मिले बनवारी [टिक॥ दहुत गरब गरवे संन्यासी, ब्रह्मचरित छूटी नहीं पासी। सुद्र मलेछ बसे मन माही, आतमराम सु चीन्डा नाहीं॥ संक्या डॉइूणि बसे सरीरा; ता करणि राम रमे कबीरा ॥१ ८२॥ अर्थ-इतनी साधना या ज्ञान की बाते सुनने पर भी तुम्हारा मन नि शक होकर प्रभु प्रीति में नही लगा है। सन््यासी होकर भी अहकार करते हो। ब्रह्म जैसा आचरण के वावजूद बंधन नही समाप्त हो रहा है। तुम्हारा मन किसी को शूद्र, किसी को म्लेछ मान कर चल रहा है। कितु आल्मतत्त्व को नही पहचानता है। शका रूपी डायन शरीर मे रहती है। इसी से कबीर शरीर मे न रम कर राम में रमण करते है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति सब भूले हो पाएंडि रहे; तेरा विरछा जन कोई राम कहै ॥टिका। हो आरोगि बूंटी घसि लाबे, गुर बिना जैसे भ्रमत फिरै। है हाजिर परतीति न आवै, सो कैसे परताप घरे। ज्यूँ सुख त्यूँ दुख द्रिठ मन राखे एकादसी एकतार करे। दादसी भ्रमे लघ चैरासी, गर्भ यास आदे सदा मरै॥। मैं सै तजे तजे अपमारण, यारि बरन उपराति चढ़े। ते नही डूबे पार तिरि लंघे, निरयुण अगुण संग करै। होह मगन राम रेंगि राधे, आवागमन मिटे घापै। तिनह उछाह सोक नहीं व्यापै, कहै कबीर करता आप ॥१ ८३॥ शब्दार्थ-धार्पे (स॒ धावन) - दौड़ना। उछाह - उत्साह | अर्थ-सभी लोग पाखड मे भूले है। बिरला व्यक्ति ही राम कहता है। आरोग्य (स्वास्थ्य) _.. तभी हो सकता है जब गुरु ज्ञान की बूटी को घिसकर लगाये। उसके बिना भटकता फिरेगा।

पद ५९५ में उपस्थित प्रभु पर विश्वास नही होता है। ऐसा व्यक्ति प्रभु के प्रताप पर कैसे विश्वास गा ? सुख-दुख को समान समझे। लगातार उपासना (एकादशी) करे। द्वादशी (दो-द्वैत) में पड़ने पर चौरासी छाख योनियो मे भटकता होगा। गर्भ मे आना और मरना होगा। मै तू तथा निम्न मार्ग का भाव त्याग दे। चारो वणो से ऊपर रहे। ऐसा व्यक्ति ससार सागर में नही डूबता हे। पार उतर जाता है। निर्गुण-अगुण का सग करना चाहिए। प्रसन्न होकर राम प्रेम मे अनुरक्‍्त रहे। . ससार मे उसकी बार-बार आने जाने की दौड़ खतम हो जायगी। ऐसे व्यक्ति को उत्साह-शोक कुछ भी नही होता है। सत कबीर कहते है कि वह स्वय कर्ता (ईश्वर हो जाता है। तेरा जन एक आध है कोई। काम क्रोध अरु लोभ बिवर्जित, हरिपद चीन्हे सोई ॥टिक॥ राजस तौमस सातिग तीन्‍्यूँ, ये सब तेरी माया। ॥ चोधे पद कौ जे जन चीन्हे, तिनहि परम पद पाया॥ असतुत्ति निधा आसा छोड़े, तजै मोन अभिमानों। लोहा कंचन समि करि देखे, ते मूरति भगवानों।॥ च्यंते तो माधी च्यंतामणि, हरिपद रमे उदासा। त्रिस्ना अरु अभिमॉन रहित है, कहै कबीर सो दासा॥१ ८४॥ अर्थ-हे प्रभु कोई एकाध व्यक्ति आपका भक्त है। काम, क्रोध, लोभ से-मुक्त हरिपद की पहचान किसी किसी को है। सत, रज, तम तीनो गुण आपकी माया है। इन तीनो से परे चतुर्थ मुक्ति पद को जो पहचानता है वह परम पद का अधिकारी है। स्तुति, निदा दोनो की आशा छोड़ देता है। मान अभिमान से मुक्त रहता है। लोहे और सोने को जो व्यक्ति समान समझता है उसे प्रभु की मूर्ति समझना चाहिए | चिता करे तो केवल माधव की चिता करे। विषयो से उदास होकर हरिपद मे रमण करे। तृष्ण और अभिमान दोनो से मुक्त रहे वही भगवान का दास है। हरि नॉमे दिन जाई रे जाकी; सोड दिन लेख, लाइ राम ताकौ॥टेका। हरि नाम मैं जन जागे, ताके गोब्यंद साथी आगे॥ दीपक एक अभंगा, तामे सुर नर पड़े पतंगा। ऊँच नीच सम सरिया, ताये जन कबीर निसत्तरिया ॥१ ८५॥ अर्थ-जो राम नाम मे दिन व्यतीत करता है उसका दिन सफल है। जो व्यक्ति राम नाम मे ही जागरण करता है भगवान उसके साथी रूप मे आगे रहते है। माया कभी नाश न होने वाला दीपक है। इस दीपक मे सुरनर फतिगे के समान गिरते है। ऊँच नीच सम सरिया अर्थात्‌ भेद रहित समान भाव से देखनेवाला ही इस ससार सागर को पार करता है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति जब ये आतम तत्त विचारा। तब निरबैर भया सबहिन थे, काम क्रोध गहि डारा ।टिक। व्यापक ब्रह्म सबनि मै एके, को पंडित को जोगी। रोणों राव कबन सूँ कहिये, कबन बैद को रोगी॥ इनमें आए आप सबहिन मैं, आप आप सूँ खेले। डे सब भोड़े, रूप घरे धरि मेले ॥

६०० कबीर समग्र सोधि बिचारि सदै जग देख्या, निरयुण कोई न बतावे। कहै कबीर गुंणी अरु पंडित, मिलि लीला जस गावे ॥१ ८६॥ .._ अर्थ-जब आलतत्त्व का विचार प्राप्त हुआ है। तब से सब से निर्वैर हुआ हूँ। काम, क्रोध आदि को पकड़कर फंक दिया है। सभी व्यक्ति ब्रह्म व्याप्त है। नकोई पडित है। न योगी है। राणा, राजा, वैद्य रोगी सब एक ही है। सव में ईश्वर है। ईश्वर मे सब है। ईश्वर अपनी इच्छा से अपने ही साधनों (वस्तुओं) से खेलता है। कुम्हारके समान उस ने नाना प्रकारके वर्तन बनाये है। अनेक प्रकार के रूप धरे है। धर रखे है। बहुत सोच-विचार कर देखा। कोई व्यक्ति निर्गुण तत्त्व को नही बताता है। गुणी और पडित सभी मिल कर भगवान् की लीला के पद गाते है। तू माया रघुनाथ की, खेलण घढ़ी अहेड़े। चतुर धिकारे चुणि छुणि मारे, कोई न छोड़घा नेड़े |ठिक॥ मुनियर पीर डिगंवर मारे, जतन करंता जोगी। जंगल महि के जंगम मारे, तूरे फिरे बलिवंती। बेद पढता बॉम्हण मारा, सेवा करता स्वामी। अरथ करंतां मिसर पछाउया, ठूरे फिरे मैमंती॥ साघित के तू हरता करता, हरि भगतन के घेरी। ऐ दास कवीर राम के सरने, ज्यूँ लागी त्यूँ तोरी॥ १८७॥ शब्दार्थ-अहेड़े + शिकार। चिकारे 5 हिरण की जाति का एक जानवर। मुनियर ८ मुनिवर | डिगबर ८ दिगम्वर | जगम 5 शैव सनन््यासी। वीर शैव। एक शैव सप्रदाय। मेमती मदमत्त | तोड़ना | अर्थ-सत कबीर माया को रघुनाथ की बताते है। यह माया शिकार पर चली है। इस शिकार मे यह चतुर मृगो को चुन-चुन कर मारती है। बुद्धिमान और हिरण के समान उछठलने वाले माया के जल्द शिकार हो जाते है। माया ने अपने निकट गये किसी को नहीं छोड़ा | छूटता वही है जो माया से दूर रहता है। मुनिवर, पीर, दिगम्बर को मारा तथा साधना लीन योगी को मारा। जगल मे नपस्या करते शैव सन्यासी। ऐ माया, तुम वलवती हो। तुम वेद पढ़ते ब्राह्मण, मूर्तियों की सेवा करते स्वामियों को मारती हो। शास्त्रों का अर्थ करने वाले मिश्र को पराजित कर तुम निश्चित घूमती हो | तुम शाक्त, विषयासक्त के यहाँ क्रियाशील हो | हरण भी कग्ती हो | कितु हरि भक्तों की दासी हो सत कवीर प्रभु राम की शरण म हे। माया उनसे जैसे ही लगती है वे तोड देते ह। अलंकार--मानवीकरण जग सूँ प्रीति न फीजिए, सेंमश्लि मन मेरा। स्वाद ऐेत् लपव्ट्टए, को निकसे सूरा॥टिक॥ एक कनक अर कामनी, जग में दोह फंदा। एनपै जी न देंधावई, ताका मै दंदा॥ देह धरे इन मोहि दास, कहु कैसे छूटे । सीब भये ते ऊबरे, जीवन ते लूटे ॥ एक एक हूँ अल रहा, तिनही सघु पाया। प्रेम मगन लेलीन मन, सो यहुरि च आया॥ कहे कबीर निएधल भया, निरणे पद पाया।॥ संता ता दिन का गया, सतगुर समझाया ॥१ ८८॥

पद जी अर्थ-ऐ मेरे मन, ससार से प्रीति नही करनी चाहिए। सभी लोग स्वाद मे लिपटे रहते है। कोई यह निकल पाता है। सोना और ख्ऱी संसार के दो फदे है। इन दो फदो से जो नही बधा है, सत कबीर उसी के शिष्य है। जीव ने देह धारण किया है। इस देह मे विषयो का निवास है। इससे कैसे मुक्ति मिले? विष्य जीवन को ढूटते है। कोई शिव के समान योगी इससे बच सकता है। एक आत्मा जब एक परमात्मा से मिलती है तभी सच्चे सुख की प्राप्ति होती है। जो प्रभु प्रेम मे मग्न है, ठवलीन है वह पुन ससार मे नहीं आता है। सत कबीर कहते है कि स्थिर हुआ। अभय पद पाया। सशय गया। सतगुरु ने समझाया। राम मोहि सतगुर मिले अनेक कलानिधि, परम तते सुखदाई। काम अगनि तन जरत रही है, हरि रसि छिरकि डुझाई ।टिक॥। दरस परस तें दुरणति नरासी, दीन रटने ल्यौ आई। पा्षेंड भ्रेंम कपाट खोलि के अनमभे कथा सुनाई॥ यहु संसार गेंभीर अधिक जल को गहि लाबै तीरा। भाव जिहाज खेवद्या साधू, उतरे दास कबीरा ॥१ ८९॥ अर्थ-हे राम, मुझे अनेक गुण युक्त परम सुखदायी सद्गुरु का दर्शन हुआ। मेरा शरीर कामाग्नि मे जल रहा था। सद्गुरु ने हरिर्स छिड़क कर बुझा दिया। दर्शन स्पर्श से दुर्बुद्धि नष्ट हो गयी और रामनाम की विनम्र रट छूग गयी है। गुरु देव ने पाखड और भ्रम का दरवाजा खोलकर अनुभव कथा सुनाई। यह ससार विषयो के गभीर अनत जल से भरा है। इससे पार कौन कर सकता है ? नाम का जहाज बना कर साधु सदगुरु जब नाविक बनते है तभी दास कबीर पार लगते है। दिन दहूँ घहूँ दे कारण, जैसे सैबल भूले। शूठी सूँ प्रीति लगाइ करि सौंधे दूँ भूले ।टिक॥ जो रस या सो परहरधा, बिडराता प्यारें। आसति कहूँ न देखिहूँ, बिन नौंब तुम्हारे॥ साथी सगाई राम की, सुनि आतघ मेरे। नरंकि पड़े नर बापुड़े, गाहक जघ तेरे ॥ एस उद्ध्या चित चालिया, सगपन कहछू नाहीं। भादी सूँ माटी मेलि करि, पीछे अनझाही॥ कहे कबीर जग अँधला, कोई जन सारा। जिनि हरि मरण न जोंणिया, तिनि किया पसारा॥१९०॥ शब्दार्थ-बिड़राता 5 फैलता। चक्कर लगाता। आसति 5 आसक्ति। अनखॉही > क्रोध करना। अधला > अधा। सारा ८ सार तत्त्व का जानकार ! अर्द-ससार का सुख सेमल फूल सा निस्सार है। चार दिनो तक चमकता है। संसार से झूठी प्रीति कर सत्य को भूले है। व्यर्थ चक्कर लगाते रहे। रस तो सारे छूट गये। हे राम, तुम्हारे नाम के अतिरिक्त कही आसक्ति का आधार नही देखता हूँ। तुम्हारे यम ग्राहक है। वे मनुष्य को नरक में डाल देते है। जीव (हस) उड़ गया। चित्त का नाश हो गया | किसी सबंध ने काम नही किया | न मिट्टी से मिह्ठी मिल गयी। पीछे क्रोध से क्या फायदा ? सत कबीर कहते है कि सारा ससार विषयाध है। सारतत्त्व को कोई-कोई ही समझता है। जिन्होने ही ससार मे अपने सब्धो को फैलाते है। 2 कक ताज की]

६०३ कबीर समग्र माधी में ऐसा अपराधी; तेरी भगति हेत नहीं साधी ।दिक।॥ कारनि कबन जाइ जग जनम्यों, जनमि कबन सचु पाया। भी जल तिरण चरण च्यंतामणि, ता चित घड़ी न लाया॥ पर निंदा पर घन पर दास, पर अपवादे सूरा। तायै आवागावन होड़ फुनि फुनि, ता पर संग न चूरा॥ काम क्रोध माया मद मंछर, ए संतति हम मोही। दया धरम स्यान गुर सेवा, ए प्रभु सुपिने नोहीं॥ तुम्ह कृपाल दयाल दामोदर, भगत बछल भौ हारी। कहै कबीर धीर मति राखहु, सासति करी हमारी ॥१९१॥ अर्व-हे प्रभु, मै ऐसा अपराधी हूँ जिसने आपकी भविति से प्रेम नहीं किया। पता नहीं मेरा जन्म किस कारण से हुआ और जन्म लेकर कौन सा सुख पाया ? आपके चरण चितामणि के समान भव सागर से पार करने वाले है। उन चरणो का ध्यान एक क्षण के लिये भी नही किया। मैं दूसरो की निदा सुनता रहा। दूसरों के और स्त्री धन के चक्कर मे रहा। दूसरों को बदनाम करने मे बहादुर रहा। इसी से आवागमन बार-बार होता है। अब भी विषयो का सग नही छूटा है। काम, क्रोध, माया, मद, मत्सर ये और इनकी सततियाँ मेरे भीतर है, या ये सब मेरे भीतर है। दया, धर्म, गुरु सेवा ये सब स्वप्न मे भी मै नही सीख सका। हे दामोदर, तुम कृपालु हो, भक्त वत्सठ हो, भयहरण करने वाढे हो। सत कबीर कहते है कि मेरी बुद्धि मे धैर्य रखो अर्थात् मेरा धैर्य कभी समाप्त न हो। मेरा शासन (शास्ति। सासति) करो। राम राह्ट कासनि करी पुकारा; ऐसे तुम्ह साहिब जाननिषह्ारा ।दिक। इंद्री सबल निबल मै मायो, बहुत दर दरियाई। लै घरि जॉहि तहाँ दुख पहये बुधि रल कछु न बसाई॥ में बपरी का अलप मूढ मति, कहा भयो जे छूटे। मुनि जन सती सिय अरु साधिक तेज न आते छूटे ॥ जोगी जती तपा संन्यासी, अह निसि खोजे काया। मे मेरी करे बहुत बिगूते, बिये बाघ जग खाया॥ ऐकत छोड़े जॉहि घर घरनी, तिन भी बहुत उपाया। कहे कबीर कछु समझि न पाई, वि्म ठुम्हारी माया ॥१९२॥ अर्थ-हे प्रभु, किसको पुकारा जाय ? तुम साहब हो। सब कुछ जानते हो। है माधव, इद्रियाँ मुझसे शक्ति प्रदर्शित करती है। ये जहाँ जाती है मुझे छे जाती है। इनके कारण बहुत' दुख पाता हूँ। इन पर बुद्धि और बल का कोई बस नही चलता है। मै बेचारा हूँ, अल्प बुद्धि का हूँ मूढ बुद्धि का भी हूँ। क्या हुआ जो मैं छूट लिया गया? मुनिजन, सती, सिद्ध और साधक भी स्वय न छूट सके। योगी, यती, तपस्वी, सन्यासी रात-, दिन शरीर सुख की खोज करते है। मै हूँ, यह मेरा है, इस प्रकार के सबधो में बहुत से समय नष्ट हुए। विषयबोध ने सारे-ससार को नष्ट कर डाला। जो स्त्री पुरुष पूर्णतः (ऐकत) छोड़ कर' चले जाते है वे भी बहुत से लाभ-लोभ पैदा करते रहते है। गज सत कबीर कहते है कि हे प्रभु, कुछ समझ मे नही आता है। आपकी माया अत्यत चित्र है। हि जअलकार-रूपक |

माधो चले बुनॉबन माहा; जग जीते जाइ जुलाहा (टिक॥। नव गज दस गज गज उननींसा, पूरिया एक तनाई। सात सूत दे गंड बहुतरि, पाद लूणी अधिकाई॥ तुलह न तोली गजह न मापी, पहजन सेर अढ़ाई। अढ़ाई मै जैं पाव घटे तो करकस करे बजहाई॥ दिन की बैठि खसम सूँ कीजे अरज लगी तहाँ ही। भागी घुरिया घर ही छाड़ी चले जुलाह रिसाई॥ _ छोषछी नली कॉमि नहीं आबै लपदटि रही उरझाई। छाड़ि पसारा राम कहि बोरे, कहै कबीर समझाई ॥१९३॥ शब्दार्ब-माहा 5 (स मुग्धा ?) माया। पुरिया 5 पुटी। साड़ी। गड 5 गडा। गॉठ बहत्तर १६ मोटी नसे, १६ सूक्ष्म नसे, ४ रज्जु, ७ सेवनी, १४ अस्थिसघात, १४ सीमात, १ त्वचा। पाट 5 ताने की मेंजाई। तुलह «5 तौल। पहजन 5 राहखर्च। करकस 5 (कर्कशा) माया। बजहाई ८ (< सवजहता) दुष्टता। बदमाशी। अरज > निवेदन। खसम प्रभु। पत्ति। भागी * भग्न। पुरिया 5 शरीर। घर 5 'ससार। अर्व-माया और जुलहे के इन्द्र को व्यक्त करता हुआ कवि कहता है कि माया हमसे जगत् वस्त्र बुनवाती है। कितु कबीर जुलाहा इस जगत्-वस्त्र को छोड़कर आगे जाता है। नव द्वार और दस इद्रियो के उन्नीस गरजे को एक शरीर पुटी (साड़ी) बनायी। बहत्तर गंड़ा अर्थात् ३६७० नाड़ियो वाले शरीर मे ताने की मेंजाई अधिक हुई। इसमे (रक्त, रस, मज्जा, मास, वसा, अस्थि, शुक्र) सात सुत | यह न तौला गया न गज से मापा गया। रास्ते के लिये ढाई सेर खर्च ले लिया। (ढाई बराबर है दस पाव के अर्थात् दस इद्रियों)। इस ढाई से पाव (एक इन्द्रिय) भी घट जाती है तो माया झगड़ा करने छूगती है। दिन भर बैठ कर प्रभु पति से प्रार्थना करो, वहाँ तुम्हारी प्रार्थना सुनी जायगी। भग्न (नष्ट) होते शरीर को छोड़ कर जीव जुराहा माया पर क्रोध करके जा रहा है। ऐसे मे छुँछी (खाली) नली (शरीर) व्यर्थ है। अब यह किसी काम की नही है। नही पर लिपटे सूत उलछझ गये है। संत कबीर समझा कर कहते है कि अरे भाई, इस जगत प्रसार के प्रति आसक्ति को रोक कर राम भजो। हे अलंकार--रूपकातिशयोक्ति बाजै जंत्र बजाने गुंनी, राम नाम बिन भूली दुननी ॥टेक॥ रजगुन सतगुन तमगुन तीन, पंच तत्त से साज्या बीन॥ तीनि लोक पूरा पेखनाँ, नाँच नचावै एके जनों। कहे कबीर संसा करि दूरि, त्रिभवननाथ रहा भरपूरि॥१९४॥ अर्थ-शरीर यत्र बजता है और गुणवाल्जीव उसे बजाता है। कितु राम नाम के बिना सभी लोग मूछ तत्त्व को भूले है। यह शरीर वीणा तीन गुणों (सतू,रज, तम), पॉच तत्त्वो (आग, पानी, हवा, पृथ्वी, आकाश) से बनी है। तीनो छोक प्रेक्षायह (नाटय-शाला) है। एक पुरुष (परमात्मा) सबको नचाता है। सत् कबीर कहते है कि सशय दूर करो। त्रिभुवननाथ सर्वत्र विराजमान है। तुलनीय-जग पेखन तुम देखन हारे। विधि हरि सभु नचावन हारे |-तुलुसी अलकार-रूपकातिशयीक्ति

६०४ कबीर समग्र जंत्री जंत्र अदूपम बाजे; ताकी सबद गन मैं गांजे ।दिक्क। सुर की नालि सुरति का तूँदा, सततगुर साज बनाया। सुर नर यज गैंश्रप ख्ल्मादिक गुर दिन दिनहूँ व घाया॥ जिश्या ताँति नासिका करहीं, माया का मैण लगाया। गर्मों बतीस मोरणों पाँचौी, चीका साज बनाया॥ जंत्री जंद्र तजे पही बाजे, तझ थाजे जब बाबे। कहे कबीर सोई जन साया जंत्री सूँ प्रीति लगाव ॥१ ९५॥ शब्दार्थ-यत्री 5 बजानेवाला। प्रभु। गध्नप 5 गधर्व। करही 5 विशेष यत्राग। मैण + मोम। गर्मा 5 ग्राम | क्रम से सात स्व्रों का समूह। सप्तक। मोरणों - मूर्च्छना। वाबै बजाता है। बत्तीस 5 प्रधान योगासन (नाथ और सिद्ध साहित्य, पृ २३५) अर्थ- प्रभु यत्री या यत्रस्थ जीव देह रूपी यत्र ग्जाता है। यत्र बजने का स्वर आकाश मडल (सहस्रार) मे गूजता है। श्वास नलिका से छी गयी सॉस स्वरों को निकालने वाली नली है। सुरति (स्रति या ध्यान) का तूबा बनाया है। इस वाजे का साज सदगुरु ने सजाया है। सुर नरगण, गधर्व, ब्रह्मादि किसी को बिना गुरु के ज्ञान नही है। जीभ इस बाजे की तोत, नाक यंत्राग, माया का मोम लगा है। बत्तीस प्रमुख योगासन सप्त स्वरो के समूह है। णैँचो तन्मात्राएँ मूर्च्छनाएँ है। जब तक यत्रस्थ परमात्मा इस शरीर को छोड़ नही देता है तब तक यह शरीर यत्र बजता है। फिर तब बजता है जब वह बजाता है। सत कबीर कहते है कि वही भक्त सच्चा है जो यत्री से प्रेम करता है। तुलनी- ईश्वर सर्वभूताना यह्देश5र्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यत्रारूढानि मायया। गीता १८/६१ अलंकार- रूपक अबधू नादे व्यंद गगन गाज सबद अनाहद झोछे | अंतरि गति नहीं देखै नेड़ा, हूँठत बन बच डोले ॥टिक॥ सालिगराम तजों सिब पूजों, सिर ब्रह्मा दा कार्टी। सायर फोड़ि नीर मुकलाऊँ, कुंबों सिला दे पादे॥ चंद सूर दोष तूंदा करिहूं, चित चेतनि की डॉडी। सुषमन तंती बाजण लागी, इहि विधि त्रिव्णों घोड़ी॥ परम तत्त आधारी मेरे सिद नगरी घर मेरा॥ कालहि घंडँ नीय बिहंडूँ, एहुरि न करिएँ फेरा ॥ जपी न जाप हती नही गूगल पुस्तक ले न पढाऊँ। कहे कबीर परम पद णाया, नहीं आऊँ नहीं जाऊँ॥१९६॥ झब्दार्थ-नादे व्यद 5 परमात्मा और जीवात्मा। अनहदनाद एव ब्रह्मचर्य पालन। (नाद से कबीर का अभिप्राय अधिकतर अनहद नाद से होता है। विन्दु का यह साधारण अर्थ द्रह्मचर्य पालन से ही लेते हैं। कही- कही पर नाथपथियो के अनुसरण पर उन्होने नाद को परमात्मा विदु को जीवाल्मा के अर्थ मे भी प्रयुक्त किया है।-गोविद त्रिगुणायत, कबीर की विचारधारा, पृ. ३२३) नेड़ा न नजदीक। सायर > सागर। मुकलाऊँ - मुक्त करूँ। दिहंडूँ + दिखंडन। गूगल न गुग्गुल। अर्थ-ऐ अवधूत, नाद-विदु, परमात्मा, जीवाम। दो गगन मे गरज रहे है। इनका गर्जन ही अनाहत शब्द बोलना है। मनुष्य परमतत्त्व की खोज मे व्यर्थ वन-वन घूमता है। अपने नजदीक

कर पद ६०५ भीतर की स्थिति नहीं देखता है। अब शाल्ग्राम को छोड़कर, ब्रह्मा का भी सिर काट कर कैवल ज्षिव की उपासना करूँगा। अर्थात् किसी प्रतीक की उपासना तथा पुस्तक ज्ञान को छोड़ कर केवल आनद तत्त्व शिव की उपासना करूँगा। स्थिर मूलाधार सागर को फोड़ जल बहा कर आनद हं। सहम्ार स्थित औधे कुएँ को उलट कर अमृत का झरना बद कर हूँ। चद्रमा (इडा) सूर्य (पिगला) को नुबा, चित्त की चेतना को लकड़ी, सुषुम्ना को तॉत बना कर बाजा बजाऊँगा। इस प्रकार तृष्णा को खडित करूँगा। परमतत्त्व को आधारी के रूप मे ढूँगा। शिव नगरी (सहस्तारो! मेरा निवास स्थान है। ॥ हि इससे काल खडित हो जायगा और नीचे मूलाधार नष्ट हो जायगा। पुन' ससार मे आना जाना नही होगा। किसी प्रकार के जप, हवन गुग्गुल, पुस्तक पाठ की जरूरत नहीं है। परमपद (परमात्मा) की प्राप्ति हो गयी है। कही आना जाना अर्थात् विषयो का भटकाव समाप्त हो गया है। जाया पेड़ छाड़ि सब डाली लागे घूँदे जंत्र अभागे। सोहइ सोह सब रेणि बिहॉणी, भोर भयो तब जागे |टिक॥ देवलि जाऊँ तो देवी देखी, तीरबि जोऊ त घाणी। ओएछी डुधि अगोघर जौँणी, नहीं परण गति जाँणी ॥ साथ पुकारें सम्झत नौहीं, आन जन्म के सूते। बाँध ज्यूं अरहट की टीडरि, आवत जात बिगूते |॥ गुर बिच हृहि जग कौन भरोसा, काके संग हे रहिए। गविका के घरि देदा जावा, पिता नाव किस कहिए। कहै कयीर यहु घित्र बिरोध्या, यूझ्ली अमृत दौणी। खोजत झोजत सतगुर पाण, रहे गई अवण जाँणी॥१ ९७॥। शब्दार्थ-पेड़ - मूलतत्त्व। डाली 5 विषय | बाह्याचार। मूँढे < मुग्ध। जत्र 5 शरीर। का । रहट। टीडरि 5 बाल्टी। भोर ८ मृत्यु का समय। बिगूते ८ नष्ट होना। चित्र ८ (* क्रप-सभी लोग परमतत्त्व पेड़, को छोड़ कर उसकी विषय शाखा के मेवन मे छंगे है। शरीर रूप इस यत्र पर मुग्ध हो रहे है। ससार रात्रि को सो-सोकर व्यतीत कर रहे है। मृत्यु के हक जागते है। कितु कुछ कर नही पाते। साधना का समय तो रात ही है। तब कुछ किया । भदिर मे जाता हूँ तो देवी-देवताओ की मूर्तियाँ और तीर्थों मे पानी देखता हैं | की बुद्धि छोटी है। दूसरी ओर प्रभु वचन और इद्रियो से परे है। ऐसी स्थिति मे रा तन जफक जा सकता है। साधु पुरुषो के कहने पर भी समझ मे नहीं आ रहा है। क्योकि जीव आपसे कर्मों के कारण कई जन्मो से अज्ञान निद्रा मे सो रहा है। रहट की बाल्टियो के समान आह ज़ाता नृष् हो रहा है। बाल्टियाँ पानी छाती है और गिरा कर चल देती है। बना गुरु के कोई भरोसा नहीं। ससार मे और किसके साथ रहिएगा ? भक्ति के अभाव में हम 3852 पिता परमात्मा को नही जानता है। के र कह यह विचित्र विरोध है। मैने सदगुरु ली खोजते खोजते सद्गुरु को पा लिया। अब आवागमन समाप्त 2०20 43400 कप कक वक्रोक्ति, दृष्टांत भूली भाठियी, हे गोग्यंद जागती जगदेव; तैं करे किसव्दी भूछी पालिन पाती तोहै, पाती पाती जीद । 23

६०६ कबीर समग्र जा मूरति को पाती तोड़े, सो मूरति नर जीव। टॉचणहारे टाधिया, दे छाती ऊपरि पाव। जे तू मूरति सकल है, तो घड़णहारे कौ खाब॥ लाई लावण लापसी, पूजा चढ़े अपार। पूजि पुजारी ले गया, दे मूरति के मुहिं छार। पाती ब्रह्म पुष्प बिष्णु, फूल फल महादेव। तीनि देवी एक मूरति, करे किसकी सेव ॥ एक न भूला दोइ न भूला भूला सब संसारा ॥ एक न भूला दास कबीरा, जाके राम अपारा॥१९८॥ शब्दार्थ- भूली 5 भोली। मालिनी-> पुजारी। टॉचण हारै 5 बनानेवाला। घड़णहारे निर्माता। सकल - पूर्ण सत्य | पुहुप 5 फूल। अर्ध-भोले पुजारी, किस प्रभु की सेवा करते हो ? कहाँ नही है प्रभु ? पत्ती, पत्ती में जीव है। हर जीव मे प्रभु है। जिस मूर्ति के लिये पत्ती तोड़ते हो उस नर मूर्ति मे प्रभु है। मूर्तिकार छाती (पत्थर) पर पॉव देकर मूर्ति बनाता है। कितु अगर मूर्ति सत्य और पूर्ण है तो निर्माता को खाजाओ। लड्डू, नमकीन, हलवा आदि पूजा में चढ़ाते है। कितु पूजा करके पुजारी ले जाता है। मूर्ति को कुछ नही मिलता है। पत्ते मे ब्रह्मा, फूल मे विष्णू, फूल फल मे महादेव है। तीनो देवता एक है। किसकी सेवा की जाय ? क्योकि, ये तो फल, पत्र पुष्प में मौजूद है। एक दो नहीं सारा ससार ही देव पूजन मे भूलकर रहा है। केवल दास कवीर ने भूल नही की है। क्योंकि स्वयं राम उसके आधार है। तुलनीय- पप्रे ब्रह्मा कली बिसनो फल मद्धे रुद्रम देवा । तीनि देव का छेद किया, तुम्हे करहु कोन की सेवा) अलंकार- वक्रोक्ति, अनुप्रास | सेइ मन समझि संमर्थ सरणोंगता, जाकी आदि अंति भदि कोई न पावै। कीटि कारिज सरे देह गुण सब जरै, नेक जो नौब पतिब्रत आवै ॥टिक॥ आकार की ओट आकार नहीं ऊबरे, सिव बिरंधि अरु विष्णु तोंई। जास का सेवक तास कौ पहलहें, इड् को छाड़ि आगे न जाहीं॥ गुण मई मूरति सेह सब भेष मिलि , निरगुण निज रूप विश्राम नाहीं। अनेक जुग बंदिगी दिविध प्रकार की, अंति गुण का गुँणही समाहीं॥ पाँच तत तीनि गुण जुगति करि सानिया, अष्ट बिन होत नहीं क्रम काया। पाए पुन बीज अँक्ूर जॉमें मरे, उपजि विनसे जेती सर्द माया॥ क्रितम करता कष्ट परम पद क्यूँ लहै, भूलि मै पड़या लोक सारा। कहे कथीर राम रमिता भजे, कोई एक जन गए उतरि पारा॥१९९॥ अर्थ-ऐ मन, शरणागत, समर्थ, रक्षक, जिसके आदि, मध्य, अत को कोई नही जानता है उसे समझने का प्रयल करो। उससे करोड़ो कार्यों की पूर्ति होती है। देहके सारे गुण (वासना) जल जाते है। थीड़ी भी प्रभु के प्रति भक्ति और नाम गान हो तो कल्याण हो जाता है। सगुण से सगुण, आकार से आकार का कल्याण सभव नही है। चाहे वह ब्रह्म, विष्णु, शिव की शरण में क्यो नही रहे। जो जिसका सेवक है वह उसे ही पायेगा। इष्ट देव को छोड़कर आगे नही जा सकता है। सगुण मूर्ति की सेवा करने से तुझे अनेक वेश मिले है। अनेक योनियो मे जाना पड़ा है।

पद ६०७ अपने निर्गुण रूप मे आज तक विश्राम नही मिला। अनेक युगो तक अनेक प्रकार से प्रार्थना की अत मे गुण गुण में ही समाहित हुआ। हे गोद तत्त्व, तीन गुण को सानकर, 'मिल कर बनाया गया है। इन आठो के बिना शरीः कर्म का निवह नही होता है। पाप और पुण्य, बीज अकुर है। किसके ? जीवन-मरण के। 'जन्म और मृत्यु दोनो माया के खेल है। े जो रचयिता को कृत्रिम समझता है वह परमपद कैसे प्राप्त कर सकता है ? सारा संसार भूल में पड़ा है। सत कबीर कहते है कि राम मे रमण करता हुआ भजने वाला कोई एकाध व्यक्ति पार उतर सका है। जे राम राइ तेरी गति जॉ्णी न जाई। जो जस करंहं तो तस पह्हे, राजा राम नियाई।टिका॥। जैसी कहे करे जो तैसीं, तो तिरत न लागे बारा। कहता कहि गया सुनता सुणि गया, करणी कठिन अपारा। सुरही तिण चरि अंमृत सरबै, लेर भवंगहि पाई। अनेक जतन करि निग्रह कीजै, बिधे दिकार न जाई ॥ संत कर असंत की संगति, त्तासूँ कहा बसाई। कहै कबीर ताके भ्रम छूटे, जे रहे राम ल्थौ लाई ॥२००॥ अर्व-हे राम, आपका स्वभाव जाना नही जाता है। आप न्यायी राजा है। अत जो जैसा करेगा वैसा पायेगा। जैसा कहते है वैसा करते तो पार उतरने (मुक्त होने) मे जरा भी देर नहीं लगती है। कहनेवाले कह गये। सुनने वाले सुन गये। किंतु करना अत्यंत कठिन है। गाय घास खा अमृत चुआती है और सॉप ने लेर (विष का घोल) पाई है। अनेक प्रकार से इद्रियो को रोकिए। कितु विषय का विकार नही जाता है। सत्त कबीर कहते है कि असत्त की दा मे कभी नही रहना चाहिए। जो राम का ध्यान करता है उसका ससार भ्रम दूर हो जाता है। कथणी ददणी सब जंजाल; भाव भगति अरु राम निराल ॥दिका)। कवे बदे सुणें सब कोई, कथे न होई दीदें होई ॥ कड़ी करणी राम न पावै, साथ दिके निज रूप दिखाबै। घट मे अग्नि घट जल अवास, चेति बुझाइ कबीरा दात ॥२०१॥ अर्थ- कहना-बोलना सब झझट है। निराले राम की भाव भवित करो। कूड़े के समान काम करने से राम नही मिलते है। सत्य ही टिक पाता है। सत्य को ही राम अपना असली रूप दिखाते है। घट (शरीर) मे आग है, घट का निवास जल मे है। सत कबीर कहते है कि इसे समझ कर चुझा लो। (राग आसावरी) ऐसी रे अवधू की बाणी, ऊप्परि छूबटा तलि भरि पौणी ॥टेक)॥ जब लग गगन जोति नहीं पलटै, अबिनाता सुँ चित नहीं चिह्ुटै। जब लग भैंदर गुफा नहीं जानें, तौ मेरा मन केसे मानें॥ जद रुग व्रिकूली संघि न पानें, ससिहर कै घरि सूर न आनें। जब लग नाभि कवल नहीं सोधै, तौ होरे हीरा कैसे बेहें॥ सोलह कहा संपूरण छाजा, अनहद के घरि चार्ज बाजा।

६०८ कबीर समग्र सुषमन के घरि भया अनंदा, उलठि कबल भेटे गोव्यंदा ॥ मन पवन जद परदा भवया, ज्यूँ नाले रॉपी रस महया॥ कहे कबीर घटि लेहु बियारी, औधट घाट सींधि ऐ क्यारी ॥२०२॥ शब्दार्ध-चिहुटे + चिपकना। भैवर गुफा > ब्रह्म रघ्र। अर्थ-अवधूत की वाणी ऐसी है। ऊपर सहय्ार मे कुरआ है ओर मूलाधार चक्र मे पानी है। जब तक सहतद्ार में ज्योति नहीं पलटती है तब तक अविनाशी प्रभु के प्रति चित्त नही चिपकता है। जब तक ब्रह्म रपध्र का ज्ञान न हो जाय तब तक मन की सनोष नहीं होता है। जब तक त्रिकुटी अर्थात् इडा, पिगला और सुपुम्ना नाड़ियो का सबोग न हो जाय और चद्रमा (इडा नाड़ी) के घर सूर (पिगला नाड़ी) का मे ने हो जाय और जद तक नाभि कमठ (मणिपूर चक्र) की खोज न कर ली जाय तब तक हीरे (आत्मा) को हीरा (आत्मा) देसे वैध सकता है ? सोलह कलाओ से पूर्ण विशुद्ध चक्र और अनाहत चक्र मे बाजे ब्जते है। सुपुम्ना के घर आनद हो रहा है। यहाँ कुडलिनी की निम्न गति उलट कर ऊर्ध्व हो गयी है। अत प्रभु का साक्षात्कार हो रहा है। मन और प्राणो की गति भी उल्टी तब प्रभु से परिचय 'हुआ। तब जैसे साथ में रसमत्ता (रसमइया) प्राप्त हुई। सत कबीर कहते ह कि हृदय में विचार कर देख लो। साधना के इस विचित्र घाट के जल से जीवन की क्यारी को मीच हो । मन का भ्रम मन ही वे भागा; सहज रूप हरि खेलण लागा।दिका। मे सै ते मै ए दे नाही, आप अकठ सकठ घट मरी । जब वे इनमन उनमन जोनों, तद रुप न रेष तहाँ ले शोनों॥ तन मन मन तन एक समॉरनों, एन अनभे भाहे सनमौनों॥ आतमलीन अपंदित रामों, कहे कबीर हरि मोडि समोरनों ॥२०३॥ अर्य-मन का भ्रम मन से दूर हो गया। सहज रूप प्रभु छेल रहे हैं। मै और तुम, तुम और मै, यह द्वैत भाव समाप्त हो गवा। सभी शरीरों मे वह अखड प्रभु विराजमान 5 जद इस पेन ने उन्मनी भाव को प्राप्त किया तब ईश्वर के रूप, रेखा और वण के भेद समाप्त हो पए। तन और मन, मन ओर तन दोनो मिलकर एक हो गये। मन में इस अनुभव की अनुभूति हुई। आत्मलीन अखडित राम की प्राप्ति आत्मा का परमात्मा मे तदाब्गरिता है। आत्मों अनंदी जोगी; पीद महरस अंगृत भोगी।टिकक। द्रष्म अगनि काया परणारी, अदपा जाप उनमानी तारी॥ ब्रिकुट प्लेट मे आतण मोड़, सहज समाधि विपै सब छोड़े ॥ ब्रिपेणी विभूति करी मन संजन, जन करीर प्रभु अठप निरंजन ॥२०४॥ अर्थ-योगी आत्मा मे ही आनद फरता है। उसे आनद के लिये और कही नहीं जाना होता हे। वह अपने भीतर ही निरतर झरते अमृन महारस का पान करता है। त्रिकुटी के किले मे आसन जमाता है। विषयो को छोड ऊर सहज समाधि लगाता है। जहो इडा, पिगला, सुनना नाडियाँ मिलती हे उस त्रिवेणी मे मम को नहलाता है। सत कबीर कहते ह कि यही अढछ निरजन प्रभु का निवास है। अलंकार-रूपक। ण पोगिया फो जुगति जु दूदे; राम रमै ताक मिष्ुयन सूझै ।टिक॥ प्रकट कंपा गुपतत अघारी, तामे पूरति जीदनि प्यारी। ह प्रभु मेरे खोजे एरि,

ज्ञॉन श्ुफा में सींगी पूरि॥ अमर बेंलि जो छिन छिच पीठ, कै कबीर सो जुगि झुगि जीवै॥ २०५॥

पद ६०५९ अर्प-इस योगी की युवित को जो समझता है वह राम मे रमण करता है तथा उसे ब्रिभुवन दिखाई पड़ता है। प्रत्यक्षत कथा (गूदड़) कितु जिसके आधार पर यह शरीर कथा स्थित है वह लकड़ी की |आधारी (परमात्मा) गुप्त है। प्रभु की प्यारी मूर्ति इसी मे है। प्रभु तो नजदीक है। कितु लोग उसे दूर खोजते है। ज्ञान गुफा में श्रंगनाद करो अर्थात् जागरण नाद करो। इससे अमर बेलि।अमृत की प्राप्ति होती है जिस अमृत को पीकर साधक युग युगो तक जीवित रहता है।. । सो जोगी जाके मन मैं मुद्रा; रात दिवस न करई निद्रा ।टिक॥ मन मै ऑसण मन मैं रहणों, मन का जप तप मन सूँ कहणों॥ मन में घपरा मन में सींगी, अनहद बेन बजावै रंगी। , पंच परजारि भसम करि भूका, कहै कबीर सौ लहसे लंका ॥२०६॥ शब्दारई-भूका + भीतिकता | लछहसे - जलाता है। अर्थ-सत कबीर अत साधना की ओर सकेत करते हुए कहते है कि असली योगी वह है जो मन मे आसन जमा कर मन मे ही रहता है। मन का जप तप कर मन से ही सब कुछ कहता है। खप्पर, श्रेगी, वेणा, वादन आदि सब मन के भीतर ही है। जो साधक पॉँचों तत्त्वो को हा कर तथा भौतिकता को भस्म कर देता है चह ससार छलका के सभी विषयों को जला देता है। ' अलंकार-रूपकातिशयोक्ति । बाबा जोगी एक अकेला; जाके तीर्थ ब्रत न मेला ।टिक॥ झोली पत्र बिभूति न बटवा, अनहद बेन बजावै॥ माँगि न खाइ न भूखा सोबे, घर जँगना फिरि आवबे॥ पाँच जना का जमाति चलावै, तास गुरू मै चेला॥ कहे कबीर उनि देसि सिधाय, बहुरि न इहि जमगि मेला ॥२०७॥ अर्थ-ऐ बाबा, योगी तो अकेला होता है। उसे किसी तीर्थ, व्रत या मेले की जरूरत नहीं है। चह आतरिक साधना में विश्वास करता है। इसीलिये झोली, पत्र, विभूति (भस्म) का । बैंढुआ आदि नहीं रख कर भी अनाहत वेणु बजाता है। न मॉँग कर खाता है, न भूखा सोता 'है। घर-आगन में घूमता आता है। पॉच जनो की जमात (परिवार) का भरण-पोषण करता है। मैं (कबीर) ऐसे ही योगी गुरु का शिष्य हूँ। मै उन्मन देश को चला गया। अब पुन इस (वासना-विषय) संसार में नहीं मिलना है। अलंकार-रूपकातिशयीक्ति । जोगिया तन कौ जंन बजाइ; ज्यूँ तेरा आवागमन मिटा ॥ टेक॥ तत करि ताँति घर्म करि डॉड़ि, सत की सारि लगाइ। मन करि निहचल आसंण निहचल, रसनों रस उपजाइ॥ चित करि बटवा तुचा मेघली, भसमै भसम चढाइ। तजि पाषंड पाँच करि निग्रह, खोजि परम पद राह॥ हिरदे सींगी श्यॉन गुणि बाँची, खोजि निरंजन सौंचा। कहै कबीर निरंजन की गति, जुगति बिनौं प्यंड काधा ॥२०८॥ अर्थ-योगी शरीरका यत्र बजाओ। इससे तुम्हारा संसार आवागमन समाप्त हो जायगा। पौच तत्त्वो की तात, धर्म की डडी (दड लकड़ी), सत्त्व की सार' (राह) छगाओ। मन को स्थिर से आसन पर बैठो तथा जीभ मे (खेचरी मुद्रा से) रस उत्तन््न करो। चित्त को बटुआ, त्वचा मेखला (परग चर्म) तथा भस्म होने वाले शरीर पर भस्म लेप करो। पाखड को छोड़ पॉचों

६१० कबीर समग्र इद्रियो का निग्रह करो। परम पद राज की खोज करो। हृदय मे ज्ञान गुणो की श्रगी वाध कर निरजन सत्य की खोज करो। निरजन को युक्ति से पाये बिना यह शरीर कच्चा है। नश्वर है। अलंकार-साग रूपक। अवधू ऐसा ज्ञान बिचारी; ज्यूँ बहुरि न है संसारी ॥टेक॥ च्येंत न सोच बिन चितवे, बिन मनसा मन होई। अजपा जपतते सुंनि अभिअंतरि, यहू तत जाने सोई॥ कहे कबीर स्वाद जब पाया, बंक नालि रस खाया। अमृत झरे ब्रह्म परकासे तब ही मिले राम राया॥२०९॥ अर्थ-हे अवधूत, ऐसा ज्ञान विचारों जिससे पुन ससार मे न आना पड़े। बिना चित्त के चितन होना चाहिए। बिना मन की मानसिकता होनी चाहिए। शून्य हृदय मे अजपाजप हो। इसे तत्त्व को वही जानता है जो योग मे रहता है। सत कबीर कहते है कि जब बकनालि (सुषुम्ना) का रस मिला तब स्वाद पाया। सुषुम्ना साधना से सहस्नार मे अमृत रस झरता है तथा ब्रह्म का प्रकाश होता है तब राजा राम मिलते है। शोब्यंदे तुम्हारे बन कंदलि, मेरो मन अहेरा खेले ॥ बपु बाड़ी अनंगु मृग, रचिही रधि मेले ।टिक।॥। थित तरउवा पवन घेदा, सहज मूल बाँघा। ध्यॉन धनक जोग करम, ग्यॉन बॉन साधा | घट चक्र केवल देधा, जारि उजारा कीन्हों। काम क्रोघ लोभ भोह, हाकि स्यावज दीन्हों॥ गगन मंडल रोकि बारा, तहों दिवस न राती। कहे कबीर छोड़ि चले, बिछुरे सब साथी॥२१०॥ शब्दार्थ-कदलि 5 कदरा या कदली | वाड़ी 5 घेरा। अनगु 5 अनग। काम। तरउवा ८ जानवर। खेदा + हॉका। शिकार पशु को आखेट स्थल की ओर भगाने के लिये हल्ला मचाना आदि। हाकि > खेदा। स्थावज 5 जानवर। बारा 5 द्वार। अर्थ-हे गोविद, आपके कदली वन मे मेरा मन शिकार खेलता है। शरीर का घेरा बनाकर, कामदेव हिरण को रच रच कर रखा है। चित्त वह जानवर है जिसका शिकार करना है। इस जानवर को फेंसाने के लिये सहज साधना के मूल मे काम मृग को बॉधा है। ध्यान का धनुष, योग कर्म और ज्ञान का वाण साधा है। षट् चक्र कमल को विध्य किया। विषयो की आग जला कर उजाला किया। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि जानवरो को हॉक कर शिकार स्थत की ओर भगाया। गगन मडल के द्वार पर रोक दिया। वहाँ न रात है न दिन है। उस शून्य मे पहुँचने पर जैसे जानवरों के साथी छूट गये वैसे ही मनुष्य के साथ भी छूट जाते हैं। मनुष्य (जीवात्मा) साधक अहेरी का शिकार हो जाता है। अलंकार-रूपक | साधन कंचू हरि न उतारे; अनभै है तो अर्थ बिचारे |टिक॥ बॉणी सुरंग सोधि करि आणै आणों नी रंग घागा। चंद सूर एकंतरि कीया, सीवत बहु दिन लागा॥ पंच पदार्थ छोड़ि समानों, हीरे मोती जड़िया।

पद ६११ कोटि बरष हूँ क्यूँ सीयां, सुर नर घर्ष पाड़्या॥ निस बसुर जे सोबै नाहीं, ता नरि काल न खाई। कहै कबीर गुर परसादें सहजै रह्या समाई ॥२११॥ शब्दार्थ- कचू + कचुक। शरीर। साधन 5 धर्म-कर्म का आधार। बाणी - वर्णिका वस्त्र | शरीर का वर्ण। नी रग धागा नव ग्रहों का धागा। चद सूर ८ इडा पिगला। पॉच पदार्थ ८ पच विकार | छोड़ि + छोर। हीरै-मोती > जन्म मृद्यु। अर्थ-धर्म साधन के इस शरीर को हरि ने उतारा है। बनाया है। अनुभव हो तो इसे समझो। शरीर रूपी इस सुदर वस्त्र को नी प्रकार के धागो अर्थात् नव ग्रहोसे निर्मित किया है। ग्रहों की चेतना ही इस शरीर के धागे है। दो नाड़ियो रूप चद्र सूर्य को एकत्र किया है+ इसे सीते बहुत दिन व्यतीत हो गए। इसके किनारे पाँच विकार तथा उसमे जन्म-पृद्यु के हीरे मोती जड़े है। इस शरीर को रख कर जो कभी सोता नहीं। सदा साधना में जागता है उसे काढ कभी नही खाता है। सत कबीर-कहते है कि गुरुदेव की कृपा से सहज साधना में समाया हूँ। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति जीवत जिनि मारे मूवा भति लयावै, .. मास बिहूँणों घरि मत आवबै हो कंता ।टिक॥ उर बिन घुर बिन चंच बिन, बपु बिहूना सोई) सो स्थावज जिनि मरे कंता, जाके रगत मांस न होई॥ पैली पार के पारधी, ताकी धनुहीं पिनच नहीं रे। . ता बेली को दूँकक्यो भ्रूग ली, ता मृग कैसी सनहीं रे॥ मारया मृग जीवता राख्या, यहु गुरु ग्योन कही रे॥ कहे कबीर स्वॉमी तुम्हारे मिलन की, बेली है पर पात नहीं रे॥२१२॥ शब्दार्द-स्याबज 5 जगली पशु। रगत 5 रक्ख। पैठी 5 परली। उस पार। पिनच पणच। वेली « झाड़ी। स्वानुभूति। ढूँकयो # घुसा। '.. अर्थ-हे कत्त, जीवित को मत मारो। मरे को मत छाओ। मॉस के बिना घर मत आओ। वह शिकार हृदय रहित है, खुर रहित है। चचु नहीं है। शरीर नही है। हे कंत, उस जानवर को भी मत मारना जिसके रक्त और मॉस न हो। उस पार का शिकारी है। उसके धनुष मे पणच (डोरी) नही है। मृग (शिकार) झाड़ी मे घुस गया। इसके शीश नही है। इसे मार कर भी जीवित रखा जाता है। गुरुदेव ने ऐसा ही ज्ञान कहा है। सत कबीर कहते है कि हे स्वामी, तुम्हारे मिलन की स्वानुभूति छुता मे पत्ते नही है। प्रभु मिलन विकास की आशा नहीं है। भु मिलन स्वत् पूर्ण है। इससे 53 किसी अलंकार-रूपकातिशयोक्ति धरी मेरे भनवों तोहि धरे लगी, ते तो कीयी मेरे खसम सूँ घागी॥टेका। प्रेम की जेवरिया तेरे गलि बाएूँ, तहाँ लै जा जहाँ मेरी भाधी। काया नगरी पैंसि किया मै बासा, हरि रस छाड़ि बिदे रसि माता॥ न कि 20540 ओखर भाव भकति हरि सूँ गठजोरा ॥२१ ३॥ कवि के का | पकड़ लिया है। तुम्हे धर कर टॉग देता हूँ। तुमने ऐुश्हारे गले मै प्रेम की रस्सी बॉधूँगा। तुम्हे माधव के पास ले जाऊँगा। मैने शरीर नगर मे

 प्रवेश कर बास लिया। हरि रस छोड़ विषय रस में मत्त हो गया। सत कबीर कहते है कि तनमन का अत (ओरा) कर प्रभु के भक्ति भाव से गॉठ जोड़ी है। अलंकार-मानवीकरण परब्रम देख्या हो तत बाड़ी फूली, फल लागा बड़हूली। सदा सदाफल दाख बिजारा कौतिकहारी भूली ॥देक॥ द्वादस कूँवा एक बनमाली, उलटे नीर चलावे ॥ सहजि सुषमनों कूल भरावै, दह दिसि बाड़ी पावे॥ ल्यौकी लेज पवन का दीकू, मन मटका जु बनाया। सत की पाटि सुरति का चाठा, सहजि नीर मुलकाया॥ ब्रिकुटी चढ़यौ पावढी ढारे, अरघ उरध की क्यारी। चंद सूर दोऊ पॉणति करिंहे, गुर मुषि बीज बिचारी॥ भरी छाबड़ी मन बैकुंठा, साई सूर हिया रंगा। कहै कबीर सुनहु रे संतो, हरि हँम एके संगा ॥ २१४॥ क शब्दार्थ-तत - तत्त्व। बडहूली > बड़े बड़े। सदाफल - हमेशा फलने वाले फल। द्वादस कुवॉ > दस इद्रिया, मन और बुद्धि। पॉणति - प्रणत। छाबडी < टोकरी अर्व-परत्रह्य को देखकर तत्त्व की वाटिका फूलने ढगी। बड़े बड़े फल लगे। सदा फलने वाले बिजौर और द्वाक्षा को देखकर कौतुकी बुद्धि भ्रमित हो गयी। कुएँ बारह है (दस इद्रियाँ, मन और बुद्धि) और माली (जीवात्मा) एक है। यह साधक जीवात्मा पानी को उल्टता पा [. मूलाधार स्थित कुडलिनी को उलट का उत्थित करता है। फलत जो रस सर्पिणी पी जाती।थी. उसे साधक पीता है। फलत सुषुम्ना का किनारा भरने लगता है। दसो दिशाओ क़ी वाटिकाओ अर्थात् सभी दिशाओ मे तत्त्व ज्ञान का आनद फैल गया। ल्यौ को रस्सी और पवन को ढ़ेकुह और मन को मटका (मिट्टी का पात्र) बनाया। सत का पाटा, सुरति का चाठ उस पर सहजावस्था का पानी गिराया। त्रिकुटी पर चढ़ा कर नीचे ऊँचे के चक्रो की क्यारियो में पावड़ा ढाल कर चद्र सूर्य दोनो नाड़ियो को प्रणत करूँगा। गुरु मुख की वाणी बीज बनेगी। भरी टोकरी को देख मन आनदित (बैकुठ) हो गया। उससे स्वामी का हृदय रंग उठा। सत कबीर कहते है कि हे सतो, हम और हरि एक ही सग है। एक ही है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति राम नाम रंग लागी, छुरंग न होई; हरि रंग सौ रंग और न कोई ॥टेक॥ पि और सबै रंग इषि रंग ये छूटे, हरि रंग छागा कदे न खूटै। कहै कबीर मेरे राम राई, और पतंग रंग उड़ि जाई॥२१५॥ अर्थ-राम नाम का रग छग गया है। यह रग कभी खराब नहीं होता है। प्रभु के रग जैसा और कोई रग नही है। और सभी रग इस प्रभु रग से छूट जाते है। हरि रग कभी समाप्त नही होता है। सत कबीर कहते है कि मेरे मन मे राम राजा का रग लग गया है और रग पतग सा उड़ जायगा। अलंकार-रूपक कबीर प्रेम कूल ढरे, हमारे राम बिना न सरै। बाँधि ले धोौरा सीधि लै क्‌यारी उ्यूँ तूँ पेड़ भरे ॥टिक।॥ काया बाड़ी महे माली, टहल करै दिन राती। कबहूँ न सोबे काज सेंवारे, पॉणतिहारी माती॥

पद ६१३ सेझे कूबा स्वाति अति सीतल, कबहूँ कुवावनही रे। भाग हमारे हरि रखबाले, कोई उजाड़ नहीं रे॥ गुर बीज जमाया किरखिनिपाया, मन को आपदा खोई। और स्याबढ् करे घारिसा, सिला करै सब कोई।॥ _ जो घरि आया तौ सब ल्याया, सबही काज सँवारॖया। कहै कबीर सुनहु रे संतो, थकित भया मै हत्या ॥२१ ६॥ शब्दार्ब-धौरा 5 एक प्रकार का पेड़। पॉणतिहारी > प्रणतिहारी। प्रणति वाढा। सेझे « शीतल कुवाब > कुवायु। गर्म। किरखि - कृषि। निपाया 5 उपजाया। स्वयावढ्व स्वामी | ; घारिसा न एकाधिकार। सिढा 5 बचा हुआ। गिरा हुआ। अर्थ-सत कबीर कहते है कि हमारा मन राम प्रेम के किनारे ढल रहा है। राम के बिना हमारा काम नही चलेगा। धौरा बॉध कर क्यारी की सिचाई कर ले जिससे पेड़ भर जाय। माली शरीर वाटिका में ही है। वह दिन-रात टहल मे लगा रहता है। वह कभी नही सोता है। कार्य मे ढगा रहता है। प्रणति वाला मत्त हो रहा है। उस मे नम्रता नही है। ठेंडा कुओँ स्वाति जैसा ही शीतल है। यह कुओँ कभी खराब नहीं होता है। हमारा भाग्य है कि इसके रक्षक प्रभु है। उजड़ने की कोई बात नही है। गुरु ने बीज जमाया (जनमाया)। कृषि उपजायी। मन का दुख ; दूर हुआ। मूल भाग तो दूसरे एकाधिकारी स्वामी के हाथ लगा। कितु गिरे अन्न की इच्छा ! सभी करते है। जो घर आया। वह तो सब लाये। सबने अपना कार्य सम्हाला। यह देख मै ! (कबीर) श्रान्त हो कर हार गया। ! अलंकार-रूपक तथा रूपकातिशयोक्ति राजा राम बिना तकती घो धो। राम बिना नर क्यूँ छूटीगे, जम कर नग धो धो थो ॥टेक॥ ; मुद्रा पहरॖया जोग न होई, घूँघट काह्या सती न कोई। | माया के सेंगि हिलि मिलि आया, फौकट साटे जनम गैंवाया। ॥॥ कहै कबीर जिनि हरिपद चीन्हों, मलिन प्यंड यै निरमल कीन्हा॥२१७॥ शब्दार्-तकती 5 ताकत | धो धो 5 धू धू। व्यर्थ। नग 5 नग्नता। नगापन। फौकट ' मुफ्त | साटे ८ व्यापार। अर्थ-राजा राम के बिना सारी ताकत धू धू है। व्यर्थ है। राम के बिना विषयो से कैसे छूट जा सकता है ? विषयी जीव के प्रति यम नगापन करता है [कबीर कनफटे साधुओ की ओर ईशारा कर कहते है कि मुद्रा पहनने से योग नहीं होता है। जैसे कोई केवल घूँघट निकालने से सती नही होती है। जीव तो माया के साथ है। माया से हिला मिला है। व्यर्थ व्यापार मे जीवन नष्ट कर रहा है। ।. सेत कबीर कहते है कि जिन्होने प्रभु पद की / नेर्मल बना लिया है। ऐ पहचान की है उन्होने मलिन शरीर को ए् है कोई राम नाम बताबे; बस्तु अगोचर मोहि लखावैं।टेक॥ ह राम नाम सब कोइ बखाने, राम नाम का मरम न जॉनें॥ ऊपर की मोहि बात न भाव, देखे गायें तो सुख पावे। कल है; + कछू कहत न आये, परचे दिनों मरम को पावै॥२१ ८ बगल अर राम नाम बताएगा? उस इद्रियातीत वस्तु का दर्शन कराएगा? कहते है कितु राम नाम के मर्म को नही जानते है। ऊपर (स्वर्ग) की बात उसे अच्छी नहीं छगती है। हम देख-सुन कर ही सुख्र पाते है। सत कबीर कहते है कि कुछ

६१४ कवीर समग्र कहते नहीं आता है। बिना परिचय के + 328 शक्ति का मर्म कोई नही पा सकता है। शोब्यंदे तूँ निरंजन तूँ निरंजन राया। तेरे रूप नहीं रेख नाही, मुद्रा नहीं माया ॥टके॥ समद नाहीं सिषर नाही, घरती नाहीं गयनों। रबि ससि दोउ एके नहीं, बहता नोही पवनों ॥ नाद नॉही ब्येंद नाँँही काल नहीं काया॥ जब ते जल ब्यंब न होते, तब तूँही राम राया ॥ जप नाही तप नाही, जोग घ्यान नही पूजा। सिव नॉहीं सकती नाँही देव नही दूजा ॥ रुग न जुग न स्थॉम अथरवन, देद नहीं ब्याकरनों। तेरी गति तूँहि जाने, कबीरा तो सरनों ॥२१९॥ अर्थ-हे गोविद, तुम्ही निरजन और निरजन राज हो। तुम्हारी कोई रूप रेखा नहीं है। माया-मुद्रा नही है। समुद्र-शिखर नही है। जव धरती और आकाश नहीं थे। रवि शशि एक भी नही था। बहती हवा भी नहीं थी। नाद-विदु, काल, काया नहीं थे। जल मे विम्ब नहीं पढ़ते थधे। तव हे राम केवढ तुम थे। जब जप, तप, योग, ध्यान, पूजा, शिव, शक्ति, दूसरे देव, ऋक, यजु, साम, अथर्व वेद, व्याकरण आदि नही थे तब भी तुम थे। तुम्हारी गति को कोई नही जानता है। सत कबीर कहते है कि हे प्रभु, मै तुम्हारी शरण मे हूँ। | राम के नांइ नीसॉन बागा, ताका मरम न जाने कोई। भूख प्रिषा गुण वाके नोही, घट घट अंतरि सोई ॥टिक॥ । बेद बियर्जित भेद बिवर्जित, बिवर्जित पाप रु पुँन्यं। | ग्यॉन दिबर्जित ध्यान बिवर्जित, बिबर्जित अस्थूल सुन्यं। भेष दिजर्जित भीख विबर्जित, बिबर्जित ड्यंभक रूपं। कहै कबीर तिहँ लोक बियर्जित, ऐसा तत्त अनूप ॥२२०॥ अर्थ-राम के नाम का निशान (डका) वज रहा है। उस राम नाम के मर्म को कोई नहीं जानता है। भूख, तृष्णा, गुण उसे नहीं है। वह सभी लोगो के शरीरो मे समाया है। वह वेद, ; भेद, पाप-पुण्य, ज्ञान, ध्यान, स्थूल, शून्य, वेश, भीख, डिभ भेद के रूप से रहित है। सत | कबीर कहते है कि वह अनुपम तत्त्व तीनो लोको से मुक्त है। राम राम राम रमि रहिए; साथित सेती भूलि न कहिये ॥ दिक॥। | का सुनहों को सुप्रति सुनाये, का साधित पै हरि गुन 300 । । का कऊवा कौ कपूर खबाँये, का बिसहर को दूध पिलाँयें॥ साधित सुनहों दोऊ भाई, वो नींदे वो भौंकत जाई। अंपृत ले ले नीद स्वैंचाई, कत कबीरा बाकी बॉनि न जाई ॥२२१॥ ! शब्दार्थ-सुनहों + श्वान। सुमृति < समृति। | अर्थ-राम नाम मे रम रहिए। शाक्त से कुछ मत कहिए | कुत्ते को स्तृति सुनान व्यर्थ है। , इसी प्रकार शाक्त के समाने हरि गुण गाना व्यर्थ है। कौए को कपूर खिलाना, सॉप को दूध ; पिलाना व्यर्थ है । विषयासक्त शाक्त ओर कुत्ते दोनो भाई हैं । एक निदा करता है। दूसरा भूँकता है । नीम को अमृत से भी सीचा जाय तो उसका कडुआपन नही जाता है। ऐसी स्थिति कुत्ते विषयासक्त और शाक्‍त की है। वे भी अपनी आदत से ताज नही आते है । अलंकार-दृष्टात

पद ६१५ अब न बरूँ इहि गाँइ गुसाई; तेरे नेवगी खरे सयोने हो राम ।टिक। नगर एक तहाँ जीवधरमहता, बसे जु पंच किसानों । नैनूँ निकट श्रवन् रसनूँ, इंद्री कह्या न माने हो रॉम ॥ गाँइ कु ठाकुर खेत कु नेपे, काइय खरच न परै॥ जोरि जेवरी खेति पसारे, सब मिलि मोकों मारे हो राम ॥ खोटी महतो बिकट बलाही, सिर कसदम का पारे। बुरी दिवॉन दादि नहि लागै, इक बॉये इक मारै हो राम ॥ धरमराई जब लेखा मॉग्या, बाकी निकसी भारी। पाँच किसानों भाजि गये हैं, जीव घर बॉघ्यो पारी हो राम ॥ कहे कबीर सुनुह रे संती, हरि भजि बॉधी भेरा। अबकी बेर बकसि बंदे कों, सब खेत करो नवेरा ॥२२२॥ शब्दार्थ-नेवगी + नेगी। कर या लगान उगाहने वाले कर्मचारी। नेपे 5 नापता है। जेवरी * रस्सी। खेत नापने की रस्सी। बलाहो ८ (सं वलाधिकृत) बलवान। कसदम < शक्तिशाली | दिवॉन + मत्री। दादि ८ न्याय। पारी - हाथी का पैर बॉधने वाला रस्सा। वकसि - क्षमा करो। महतौ प्रधान। काइथ < हिसाव रखने वाला। निबैशा 5 निपटारा। गॉइ > ग्राम। अर्थ-हे प्रभु, अब इस शरीर रूपी गॉव मे नही रहना चाहता हूँ। यह शरीर एक नगर है जहाँ जीवधर महता (प्रधान) है। उनके पॉच कर्मचारी है। ये है आँख, नाक, कान, जीभ, और लचा। ये इन्द्रियाँ प्रधान का कहना नही मानती है। गाँव का मुखिया मन खेत नापता है। यह घटती बढ़ती का खयाल रखता है। काइथ, खेत का हिसाब रखने वाला कर्म का कोई छेखाजोखा नही है। कर्म और भोग दोनो बढ रहे है। न कर्मो का अत है। न भोगो का। तीनो गुणो की रस्सी के जोड़ से अर्थात् तीनो गुण सयुक्त होकर सारे शरीर को नाप रहे है। मेरे सिर पर शक्तिशाली प्रहार करते है। प्रवृत्तियाँ रूपी मत्री किसी की सुनते नही है। एक बार बॉधते है, पुन छोड़ते है। धर्म राज ने जब जीवन कर्म का हिसाब माँगा तो पता छुगा कि इन कर्मचारियों ने मरे सारे पुण्य फल रूपी गान को समाप्त कर दिया है। मेरे नाम कुछ भी नहीं चढ़ा है। बकाया भी बहुत हो गया है। पाँचो किसान तो भाग गये। जीव के रूप में मै ही बॉधा गया हूँ। सत कबीर कहते है कि हरि भजन का बेड़ा बॉधो। भगवान, अब की बार क्षमा करे। अगली बार सरे क्षेत्रो का ढगान निपटा दिया जायगा। अलंकार-सागरूपक। ता भै दें मन छागौ राम तोही; करौ कृपा जिनि बिसरी मोही ॥टेक।॥ जननी जठर सह्या दुख भारी, सो संक्या नहीं गई हमारी ॥ दिन दिन तन छीजै जरा जनाबै, केस गहे काल बिरदंग बजावे।| कहै कबीर करुणामय आगै, तुम्हारी क्रिपा बिना यहु विपति न भागे ॥२२३॥ अर्व-हे राम, उसी भय से तुम मे मन छगा है। 'कृपा करो। मुझे भुठा मत दो। माता के पेट की आग मे भारी दुख सहा है। वह आशका अभी भी नही गयी है। कही पुन. वह दुख न सहना पड़े। शरीर दिन वदिन क्षीण हो रहा है॥ बुढापा आ रहा है। काल ने मैरा केश पकड़ लिया है। वह मृदंग बजा रहा है | सत कबीर करुणामंय प्रभु के सामने कहते है कि हे प्रभु, तुम्हारी कृपा के बिना मेरी

६१६ कबीर समग्र विपत्ति कभी नही भागेगी। अलंकार-मानवीकरण कब देखूँ मेरे राम सनेही; जा बिन दुख पावे मेरी देही ॥टिक॥ हूँ तेरा पंथ निहारूँ स्वॉमी, कब र मिलहुगे अंतरजॉर्मी | जैसे.जल बिन मीन तलपै, ऐसे हरि बिन मेरा जियरा, कलपै। निस दिन हरि बिन नीद न आबे, दरस पियासी राम क्यूँ सचु पावै। कहे कबीर अब विलंब न कीजै, अपनी जॉनि मोहि दरसन दीजै ॥२२४॥ अर्थ-हे राम, तुम्हे कव देखूँगा ? तुम्हे देखे विना मेरी आत्मा दुखी होती है। हे स्वामी, सदा तुम्हारा रास्ता देखता रहता हूँ। हे अतर्यामी प्रभु, कव मिलोगे ? जैसे पानी के विना मछली तड़पती है वैसे प्रभु टर्शन के अभाव में मेरा मन तड़पता है। हरि के बिना कभी नींद नही आती है। दर्शन की प्यासी आत्मा को सुख नहीं मिल सकता है। सत कबीर कहते है कि अब देर मत कीजिए। अपना समझ कर मुझे दर्शन दीजिए | सो मेरा राम कबै घरि आवे; ता देखे मेरा जिय सुख पावे ॥टिक॥ बिरह अगिनि तन दिया जराई, बिन दरसन क्यूँ होइ सराई॥ निस बासुर मन रहे उदासा, जैसे चातिग नीर पियासा॥ कहे कबीर अति आतुरताई, हमकीं बेगि मिलौ राम राई॥२२५॥ अर्थ-वह मेरा प्रभु राम कव घर आयेगे ? जिसे देख कर हृदय सुख प्राप्त करेगा। विरह की आग ने शरीर जला दिया है। विना दर्शन के कैसे शीतल हो सकेगा ? रात-दिन मन उदास रहता है। जैसे चातक स्वाती जल के लिये प्यासा रहता है। सत कबीर कहते है कि हे प्रभु हमे अत्यत अतुरता है। है प्रभु आकर जल्दी मिलो। में सासरे पीव गोहनि आई। साई संगि साथ नहीं पूगी, गयो जोबन सुपिनों की नोई ॥टिक।। पंच जना मिलि मंडप छायी, तीन जनों मिलि लगन लिखाई। सखी सहेली मंगल गाये, सुख दुख मादे हलद चढाई॥ नॉना रंगे भाँवरि फेरी, गोंठि जोरि बावै पति तांई। पूरि सुहाग भयो बिन दूलह, चौक के रंगि धरयो सगी भाई॥ अपने प्ुरिष मुख कबहूँ न देख्यो, सती होत समझी समझाई। कहे कबीर हूँ सर रधि मरिंहूँ, तिरी कंत ले तूर बजाई॥२२६॥ शब्दार्थ-गीहनि 5 पीछे। साथ। साध < इच्छा। पूगी - पूरी। हलूद चढाई « विवाह को 502 के क्रम मे होना वाढा हल्दी चढाने की रस्म। बावै 5 पिता। ताई > ठिये। सारा ता। अर्थ-मै प्रिय प्रभु के पीछे-पीछे ससुराल आ गयी। कितु जीव (मैं) की इच्छा पूरी नहीं + हुई। ससार की यौवनावस्था स्वप्न देखते बीत गयी। (इच्छाएँ तो अनत है। पूरा होना उठिन है। इसलिये मनुष्य का जीवन केवल इच्छा पूर्ति का स्वप्न देखते बीत जाता है)। पॉच तत्त) से मेरा यह शरीर मडप बना। तीन गुणों ने विवाह का लग्न लिखाया है। वासना उन्मुख सखीसहेलियाँ विवाह का गीत गाती है। माथे पर सुख-दुख की हल्दी चढाने का काम करती है। नाना रगो की कामनाओ की भावरे फेरी जा रही है। पिता गुरु ने राम पति से मेरी गॉठ जोड़ दी है। पूर्ण सुहाग के अवसर पर ही मेरा प्रभु से वियोग होगा। मै ससार सुखो मे फेंस कर प्रभु पति रहित हो गयी। चौक के रग ही मै भाई मन के वश में हो गयी। उसके कहने पौः

पद ६१७ चलने लगी। |; फलस्वरूप प्रभु पृति का मुख, कभी नहीं देखा। मुरुदेव ने मुझे सती होने के लिये समझाया। संत कबीर कहते है कि तूर्य बाजा बजा कर परमात्मा पति को साथ लेकर चिता रचकर म ्रूँगी। विषय मुक्त हूँगी। अलंकार-विभावना, विरोधाभास, रूपकातिशयीक्ति धीरे खाइबो अनत न जाइबो; राम राम राम रमि रहियो॥ टेक॥ ,पहली खाई आई माई, पीछे खैहूँ सगी जवाई। खाया देवर खाया जेठ, सब खाया ससुर का पेट) खाया सब पटण का लोग, कहै कबीर तब पाया जोग ॥२२७॥ शब्दार्थ-- आई - आर्या। बुढिया। ससुर का पेट। ससुराल के सभी लोगो को। पटण नगर। अर्व-साधक कहता है कि मुझे सारे सबध छोड़ने है। सबधो को नष्ट कर देना है। इसे ही सत कबीर खाना कहते है। धीरे-धीरे खाऊँगा। अन्यत्र नही जाऊँगा। राम नाम मे रहूँगा। पहले हमने बुढिया माई को खाया। पीछे माया से उत्तन््न अपने जमाई को खाऊँगी। उसके पीछे देवर (विषयों से उत्तन्न) तथा जेठ (जो पहले पैदा हुआ था) को खाऊँगी। ससुर से 2 सारे नगर को खाऊँगी। ससार के सारे सबधो को खत्म कर दूँगी तब योग को प्राप्त ंगी | योग का अर्थ है परमात्मा से मिलना और संसार से टूटना, मुक्त होना। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति मन मेरो रहटा रसनां पुरहया; हरि कौ नाउँ लें ले काति बहुरिया ॥टिक)॥ चारि खूँटी दोइ चमरख लाई, सहजि रहटवा दियो चलाई॥ सासू कहे काति बहू ऐसे, बिन काते निसतरिशो कैसे॥ कहै कबीर सूत भल काता, रहदों नहीं परम पद दाता॥२२८॥ शब्दार्य-रहटों > चर्खा। रसनों 5 जीभ। पुरइया 5 तकली। बहुरिया + जीव। चारि खूँटी अंत करण के चार तत्त्व (मन, चित्त, बुद्धि और अहकार)। चमरख < चमड़े के वे टुकड़े जिनमे से होकर तकुआ घूमता है। प्रेम-विरह। सास 5 इच्छाएँ। सूत 5 साधना करना। अर्व-मेरा मन चर्खा और जीभ तकली है। मै जीव बहू प्रभु पति का नाम छे-लेकर साधना सूत कातती हूँ। इस चर्खे मे अत करण की चार खूँटियाँ, प्रेम विरह के दो चमरख लगे है। सहज साधना का चर्खा चल रहा है। इच्छाएँ कहती है कि हे जीव, कातो। बिना साधना सूत काते मुक्ति मिलने वाली नही है। संत कबीर कहते है, अच्छा सूत काता, अच्छी साधना की। यह साधना रहटा परम पद देने वाला है। अलंकार-सागरूपक अब की घरी मेरी घर-करसी; साध संगति ले मोकौ तिरसी॥ टेक॥ पहली को घाल्यौ भरमत डाल्यो, सच कबहूँ नहीं पायौ। अब की धरनि धरी जा दिन वै सगलो भरम गमायौ॥ पहली नारि सदा कुलवंती, सासू सुसरा मानें॥ देवर जेठ सबनि की प्यारी, पिव कौ सरए न जॉनें॥

६१८ कवीर समग्र अब की धरनि धरी जा दिन थे, पीद सूँ बॉन बन्यूँ रे। कहे कबीर भाग बपुरी को, आइ रु राम सुन्यूँ रे॥२२९॥ ॥ शब्दार्थ-धरी 5 वार। दफा। करसी 5 करेगी। तिरसी तिरेगी। धाल्यौ> ग्रिरण | सच # सुख। थें 5 तुमने। सगलो 5 सकछ। सभी। बॉनवन्यूँ ८ वर्ण वनना। बात बन गयी है। बपुरी 5 वेचारी। आइ रु 5 आकर। सुन्यूँ > सुना। अर्थ-अब की बार मेरा घर करेगी या बसायेगी। साधुओ की सगति लेकर मुझे पार उतारेगी। पहली (माया) द्वारा गिराये जाने पर भरमता डोलता हूँ। कभी सुख नही पाया है। अब की स्त्री (भक्ति) को जब से पकड़ा है सभी भ्रम दूर हो गये। पहली स्त्री (माया) अत्यत कुलवती थी। सास ससुर अर्थात् सासारिक सवधो वाली थी। यह देवर, जेठ, सब की प्यारी है| दिवर जेठ की प्यारी का अर्थ है सासारिक प्रवृत्तियो मे फेंसी)। कितु यह माया स्त्री प्रिय प्रभु के मर्म को नही समझती थी। इस बार की पंली को जब से पकड़ा है, प्रिय से खूब बन रही है। सत कबीर कहते है कि यह वेचारी का भाग्य है कि प्रिय प्रभु राम शून्य (एकात) में (आकाश) मे आकर मिलते हैं। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति | े मेरी मति बोरी राम विसारपी, किषि विधि रहनि रहूँ हो दयाल ॥ सेजे रहूँ नैंन नही देखों, यहु दुख कासी कहूँ हो दयाल ।टिक॥ सामु की दुखी समर की प्यारी, जेठ के तरसि डर रे। नणद सुहेली गरब गहेली, देयर के बिरह जरी हो दयाल ॥ बाप सावको करे लराई, मादा सद मतिवाली। सगौ भट्या लै सलि चढ़िहूँ, तब है हूँ पीयहि पियारी॥ सोचधि बिचारि देखो मन माही, औसर आइ झब्यूँ रे। कहे कबीर सुनहुँ मति सुंदरि, राजा राम रयूँ रे॥२३०॥ शब्दार्थ-रहनि 5 रहने का ढग। जीवन यापन | सासु 5 अस्मिता । ससुर > अविद्या। जेठ - * अज्ञान। तरसि 5 त्रास। भय। नणद 5 ममता। सुहेली 5 सहेली। मोहादि। गहैली * गर्वीली। देवर 5 ज्ञान। भइया 5 मन। सलि 5 चिता। बाप 5 अभिनिवेश। साबको * पूर्व जैसा। सद 5 आदत | अर्थ-मेरी वुद्धि भ्रमित हो गयी है। मेने राम को भुला दिया है। हे दयाल, अब कैसे रहना होगा यह समझ में नही आता है ? राम जी के साथ शय्या पर रहती हूँ (सदा प्रभु का साथ रहता है) कितु आँखो से उन्हे कभी देख नही पाती हूँ। यह सुख दुख किससे कहूँ ? राम के अतिरिक्त और कौन है जो मेरा दर्द सुनेगा ? मै अविद्या श्वसुर को प्यारी हो जाने के कारण अस्मिता सास द्वारा दुख पाती हूँ। यही कारण है कि द्वेष जेठ का डर बना रहता है। मोहादि कामनाएँ गर्व मे फूली है। ज्ञान देवर के अभाव में जठती रहती हूँ। अभिनिवेश वाप पहले जैसा ही झगड़ा करता है। माया मतवाली है। वह हमे भी अपने जैसा बनाना चाहती है। मन रूपी सेगे भाईको लेकर चिता पर चदढ़ूँगी। तभी मै प्रिय की प्यारी हूँगी। हुं है मन, सोच-विचार कर देखो। यह अवसर आ बना है। सत कबीर कहते हें कि हे बुद्धि सुंदरी सुनो। राजा राम के साथ रमण करो | अलंकार-विरोधाभास, विशेषोक्ति अवधू ऐसा ग्यान रिचारी; तावै भई पुरिष थे नारी ।टिक)। ना हूँ परनी नो हूँ क्वारी,पूत जन्यूँ दो हारी ।

पंद ६१५ काली पूंड कौ एक न छोड़यी, अजहूँ अकन कुवारी॥ बाम्हन के बम्हनेटी कहियो, जोगी के घरि चेली। कलपाँ पढ़ि पढ़ि भई तुरकनी, अजहूँ फिरी अकेली ॥ पीहरि जाऊँ न सासुरें आऊँ, पुरषहि अंगि न लाऊँ। कहै कबीर सुनहु रे सती, अंगहि अँग न छुवाँऊँ ॥२३१॥ शब्दार्थ-परनी < परिणीता। चौहारी 5 दिविहारी। सुदर। अकन > अकन्या। कन्या। अर्थ-हे अवधूत, इस ज्ञान पर विचार करो कि परम पुरूष से माया नारी कैसे पैदा हुई ? माया स्वयं अपना परिचय देती है। न मै परिणीता, न कुमारी हूँ। कितु सुदर के पैदा करती हूँ। काले केश वाले, (युवक) को कभी नही छोड़ती हूँ। युवक माया मे फैंस जाते है। फिर भी मैं कुमारी कन्या हूँ। मै ब्राह्मण के घर में ब्राह्मणी, योगी के घर मे चेली बनकर रहती हूँ। कलूमा पढ़ पढ़ कर मुसलमानिन होती हूँ। आज भी अकेली घूमती हूँ। कभी नहर नही जाती हूँ। न कभी ससुराल मे प्रिय प्रभु को अग लगाती हूँ। मै निराकार भी हूँ। इसलिये किसी के अंग से अग को नही छुआती हूँ। अलंकार-मानवीकरण मीठी मीठी माया तजी न जाई। अग्यॉनी पुरिष को भोलि भोलिं खाई ॥ठिक)) निरगुण सगुण नारी, संसारि पियारी, लषमणि त्यागी गोरषि निवारी। कीड़ी छुंजर में रहो समाई, तीनि लोक जीत्या माया किनहुँ न खाई॥ कहे कबीर पद लेहु दिचारी, संसारि आह माया किनहूँ एक कही घारी ॥२३२॥ ट अर्थ-मीठी-मीठी माया छोड़ी नही जाती है। अज्ञानी पुरुष को भुरा-भुछा कर खाती है। भाया निर्गण और सगुण दोनो है। इसे ससार प्रिय है या ससार के छोगो को यह प्रिय है। लक्ष्मण ने इसका त्याग किया था। गोरख ने निवारण किया। कितु यह छोटे-बड़े सभी जीवी मे समाई रहती है। मायाने तीनो लोको को जीत लिया है। माया को कोई कभी नही खा पाता है। नष्ट नही कर पाता है। सत कबीर कहते है कि इस का विचार करो। ससार मे माया को किसी एक ने ही (बुरी) खारी कहा है। अलेकार-मानवीकरण मन के मैलौ बाहरि ऊजलौ किसौ रे, खोडे की घार जन को घरम इसौ रे टिका हिरदा को बिलाव नैन बगध्यानी, ऐसी भगति न होह़ रे प्रानीं॥ हर कपट की भगति करे जिन कोई, अंत को बेर बहुत दुख होई।॥ छाँड़ि कपट भजौ राम राई, कहै कबीर तिहँ छोक बड़ाई ॥२३३॥ अर्थ-हे साधक, तुम मन से गैले और बाहर से साफ छगते हो। यह तुम्हारा कैसा चरित्र है ? भक्त का धर्म तो तलवार की धार पर चलने जैसा साहस भरी कठिनाई का है। ह्द्य विलाड़ और आँखो का वकध्यानी होने पर भक्ति नहीं हो सकती है। किसी को कपट भरी भक्ति नही करनी चाहिए। ऐसे व्यक्ति को अंत मे बड़ा दुख होता है। कपट को छोड़कर राजा राम को भजो। सत कबीर कहते है कि ऐसे व्यक्ति की तीनो लोको मे बड़ाई होती है। अलंकार--उपमा

६२० कबीर समग्र चोजो बनज ग्यौपार करीजै, आइने दिसावरि रे राम जपि लाहौी लीजै ।ठिक)॥ जब लग देखों हाट पसारा, उठि मन बणियों रे, करि ले बणज सवारा। देगे ही तुम्ह लाद लदाँनो, औघंट घादय रे चलनों दूरि पयोनों॥ खरा न खोदा नो परखानों, लाही कारनि रे सब मूल हिरोनों॥ सकल दुनी मैं छोघ पियारा, घूल जे राखे रे सोई बनिजाता ॥ देस भला परिलोक बिरॉनों, जन दोइ चारि मरे घूछी साध सवानों॥ सायर तीर न दांर न पारा, कहि समझावे रे कबीर वणिजास ॥२३४॥ शब्दार्व-चीीखो 5 खरा। वढिया। वनज 5 वाणिज्य) दिसावरि 5 देशातर। दूसरे देश का। लाही 5 छाभ। सवारा 5 सभी। दुनी ८ दुनिया। वार न पारा 5 अल्यंंत चौड़ा तथा गहरा। औघट घाटा 5 खराब रास्ता। सयाना - वुद्धिमान | अर्थ-है जीव, अच्छा व्यापार करो। देशातर मे आये हो तो राम जप का छाभ कमाओ। जब तक वाजार फैला देखते हो, तभी तक व्यापार होगा। इसलिये उठकर व्यापार करो। जल्दी ही लाद लो। रास्ता खराव है। जाना तुम्हे दूर है। तुमने अभी खरे-खोटे (अच्छे -बुरे) की पहचान नहीं की। लाभ के कारण मूल भी खो जाना चाहता है। (प्रभु से रिश्ता टूटना चाहता है। प्रभु भक्ति ही मूल पूजी है)। सारे ससार के लोगो को लाभ प्यारा है। कितु असली व्यापारी कभी मूलधन को नष्ट नही होने देता है। परलोक अच्छा देश है। दो चार बुद्धिमान साधुओ से पूछो। मु इस ससार सागर का आर पार नहीं है। इसीलिये कबीर व्यापारियों को समझा कर कहते । अलंकार-छपकातिशयोक्ति जी मैं ग्योन दिचार न पाया; तौ मै दीं हीं जन्म गैंवाया ॥टेक॥ यह संसार हाट करि जॉनूँ सबको बणिज न आया। चेति सके सो चेतौ रे भाई, मूरिख मूल गेंदाया ॥ थाके मैन बैंन भी थाके, थाकी सुंदर काया। जॉमण मरण ए द्वै धाके, एक न थाकी माया। चेति चेति मेरे मर चंचल, जब लग घट मैं सासा। भगति जाव परभाव न जाहयो, हरि के चरन निवासा || जे जन जोनि जप जग जीवन, तिनका ग्यॉन न नासा। कहै कबीर वै कबहूँ न हारे, जॉनि न ढौरै पासा॥२३५॥ अर्य-यदि तत्त्व ज्ञान विचार नही कर सके तो यह जन्म व्यर्थ गेवाया। यह ससार एक हाट (वाजार) है। सभी लोग यहाँ व्यापर करने आए है। ऐ भाई, समझ सको तो समझो मूर्खों ने मूल धन (जिस धन से उसे मानव देह मिली थी) भी खो दिया। (पहले पुण्य किया था तब प्राधना के लिये मानव देह मिली थी। इस देह को पाकर कुछ नही किया)। आँखे, वचन सुदर गरीर तथा जीवन-मरण के चक्र भी धक रहे हैं। माया नहीं थकती है। ऐ चल मन, जब तक एरीर में श्वास है तव तक सम्हल जाओ। भक्ति जाए तो जाए कितु भावना सदा हरि चरणों ही करनी चाहिए। यह समझ कर जो भगवान् का भजन करता है उसके ज्ञान का कभी नाश हीं होगा। सत कवीर कहते है कि वे भी कभी, नही हारते है जो जान कर पासा नही डालते ऊलेकार ले कार-छूपक

पद ६२१ लाबीं बार आगि जलाबों घरा रे; ता कारनि मन धंधे परा रे।॥टेक॥। इक डॉइनि मेरे मन में खसे रे, तिन उठि मेरे जिय को इसे रे। था डॉइन्य ले लरिका पाँच रे, निस दिन घोहि नछायें नाच रे। कहे कबीर हूँ ताकौ दास, डाइनि के सेंगि रहे उदास ॥२३६॥ बंदे तोहि बंदिगी सौ कॉम, हरि दिद्ध जानि और हरॉम। दूरि चलणों कूँस बेगा, इछा नहीं मुकाम ।टिका॥। इहाँ नहीं कोई यार दोस्त, गौंठि गरण दे दाम! एक एके संगि चलणों, दीचि नहीं विश्वोम ॥ संसार सागर बिषय तिरणों, सुमरि लै हरि नौम। कहे कबीर तहाँ जाइ रहणों, नगर बसत निर्धोन ॥२३७॥ अर्थ-ऐ बाबा, योगाग्नि लाकर मेरे वासनायुक्त देह घर मे आग लगा दो। इसी देह घर के कारण मन धधे में पड़ा है। वासना डायन मेरे मन मे बसती है। नित्य ही उठ कर मेरे मन को डेंसती है। इस वासना डायन की पॉच सताने (काम, क्रोध, छोभ, मोह, मत्सर) है। ये बच्चे मुझे नित्य नचाया करते है। सत कबीर कहते है कि मै उसका दास हूँ जो वासना डायन से अप्रभावित रहता है। । ऐ बदे, तुम केवल बंदगी करो। ईश्वर को छोड़ कर और को हराम समझो। जल्दी कूच करो। दूर जाना है। यहाँ (इस ससार में) ठहरने का स्थान नही है। यहाँ कोई किसी का यार दोस्त है। न गॉठ मे मूल्य (गरथ) और दाम है। अकेला ही जाना है। बीच मे विश्राम नही है। यह ससार सागर विषम है। इसे पार करना कठिन है। हरि के नामो का स्मरण करो। सत कबीर कहते है कि वहाँ जाकर रहना जिस नगर में दया निधान प्रभु बसते है। - झूठा छोग कहें घर मेरा। जा घर मोहे बोलै डोलें, सोई नहीं तन देत ।टिक॥ डहुत देंध्या परिवार कुँब में, कोई नहीं किस केरा। जीवित ऑषि मूँदि किन देखो, संसार अंध अँपेरा॥ बस्ती में वें मारि चलाया, जंगलि किया बसेरा। घर कौ खरध खबरि नहीं भेजी, आप न कीया फेरा।। हस्ती घोड़ा बैल जॉहणी, संग्रह किया घणेरा। भीतरि बीढी हरम महल मै, साल मिया का डेरा॥ बाजी की बाजीगर जॉनें के बाजीगर का चेरा। चेरा कबहूँ उच्नकि न देखे चेरा अधिक घितेरा॥ नौ मन सूत उरक्षि नहीं सुरहै, जनमि जनमि उरझेरा। कहै कबीर एक राम भजहु रे, वहुरि न ह्ैगा फेरा॥२३८॥ अर्थ-लोग झूठ कहते है कि यह शरीर, घर या ससार मेरा है। जीव जिस शरीर घर मे बोलता, डोलता है वह तुम्हारा नही है। जीवन भर परिवार कुटम्ब मे बेँधे रहे। कितु कोई किसी का नही है। जीते जी आँखे बद कर देखो। संसार अध शा हक और अँधेरा है। बस्ती से भाग कर जगल मे गये। वही निवास बनाया। घर मे कोई खर्चा नही हा 3 ही भेजा। खबर नही ली। स्वय नही आए। हाथी, घोड़ा, बैठ, वाहन बहुत सग्रढ किये। कितु भीतर महछ मे रहने वाली वासना बीवी आनद करती है और जीवात्मा मियां बाहरी दुनिया में फैंस कर मर रहे है। | इस बाजी के खेल को वाजीगर (सतगुरु) ही जान सकते है या जो उनका असली शिष्य

६२२ कबीर समग्र हो। चेढा अधिक चित्रकार है। यह ससार प्रवाह से कभी बाहर उह्क कर नही देखता है। « फलत नौ मन सूत अर्थात् पॉचो इद्रियाँ, तीनो गुण और मन आपस में उलझ गए है। इस उलझन से मुक्त नही हो रहे है। यह उलझन जन्म जन्मातर की है। सत कबीर कहते है कि हे भाई, राम भजो। राम भजने से पुन आवागमन नही होगा। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति हावड़ि धावड़ि जनम गवावे; कबहुं न राम चरन चित लावै॥टिक॥ जहाँ जहाँ दाम तहाँ मन धावे, अँगुरी गिनतों रेनि बिहावे। तृया का बदन देखि सुख पावै, साध की संगति कबहूँ न आबै।॥| सरग के पंथि जात सब लोई सिर घरि पोट न पहुँच्या कोई। कहै कबीर हरि कहा उबारे, अपणैं पाव आप जो मौरै॥२३९॥ आर्य-दौड़ धूप अर्थात् जल्दी मे सारा जीवन विता दिया। कभी स्थिर होकर राम के चरणों का ध्यान नहीं किया। जहॉ-जहाँ आमदनी (दाम) है मन वही वही दोड़ता है। रात को उँगलियो पर गिनता बिताता है। रात को भी आराम से नहीं सोकर कढ़ की चिता मे जागता रहता है। कैसे दिन हो और कैसे व्यापार करे। स्त्री का मुख देख कर सुख पाते हो और साधुओ की सगति मे कभी नहीं जाते हो। सभी लोग स्वर्ग के रास्ते पर जाते है। कितु सपत्ति की गठरी (पोट) लेकर कोई नहीं गया। सत कबीर कहते है कि ईश्वर क्या मुक्त करेगे ? मुक्त वह होता है जो स्वय अपने पैरो मे मारता है अर्थात् अपने को कुपथ का राही नही बनाता है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति प्रॉणी काहे कै लोभ लागि, रतन जनम खोयी। अहुरि हीरा हाथि न आवै, राम बिना रोयी ।दिका। जल बूद थे ज्यानि प्यंड बॉध्या, अगनि कुंड रहाया। दस मास माता उदरि राख्या, बहुरि छागी माया।॥ एक पल जीवन की आसा नाही, जम निहारे सासा। वाजीगर संसार कबीरा, जॉनि ढारी पासा ॥२४०॥ अर्थ-ऐ प्राणी, तुमने क्यो लोभ के कारण मूल्यवान (रतन) जन्म को खो दिया ? यह मानव देह रूप हीरा पुन हाथ मे नहीं आयगा। राम के बिना रोना होगा। जल दूँद (वीर्य) से जीना ओर पिड (देह) का निर्माण (वॉध्या) किया। माता के गर्भ अग्नि कुंड मे दस मास रहे। पुन ममता लगी रही। तुम्हारे जीवन की एक पल आशा नही थी। यम तुम्हारा श्वास देख रहे धे। कब श्वास टूटे और ले चले। सत्‍ कबीर कहते है कि प्रभु ही इस ससार का बाजीगर है। पासे को समझ कर फैलाओ। अलंकार-साग रूपक, रूपक फिरत कत फ्ल्य जूल्यी। जब दस मास उरध मुछि होते,सो दिन काहै भूल्यो ॥टेक।॥ जौ झारै तो होई भसम तन, रहत कृम डै जाई॥ कौंदे कुंभ उधक भरि राख्यो, तिनकी कौन बड़ाई॥ ज्यूं माथी मधु संचि करि, जोरि जोरि घन कीनो॥ मूव पीछे लेहु लेहु करि, प्रेत रहन क्यूँ दीनो॥ ज्यूँ घर नारी संग देखि करि, तब लग संग सुहेली॥ मरघट घाट खेदि करि राखे, वह देखिु हंस अकेली ॥

का ऑऑशक तक अल बनजनटनकसकनमभकनहपद ६२३ राम न रमहु सदन कहा भूले, परत अँपधेरें कूबा। कहे कबीर सोई आप देंधयी, ज्यूँ नऊनी का सूचा ॥ २४१॥ शब्दार्थ-उरध - ऊर्ध्व। झारै 5 जारै। जलाये। कृष * क्रीड़ा। अर्य-क्यो अहकार मे फूछे फिरते हो ? वह दिन क्यो भूछ गये जब दस मास माता के गर्भ मे ऊर्ध्व मुख पड़े थे। यह शरीर जलाने पर भग्म वन जाता है। गाड़ कर रखने पर कीड़ा हो जाता है। इस शरीर की क्या प्रशंसा की जाय ? यह तो कच्चे घड़े के समान है जिसमे पानी कुछ ही क्षणो मे वह कर निकल जाता है। ऐसे प्राण शरीर से चल देते है। जैसे मधु मक्खी मधु सचित करती है वैसे कितना भी संचय करो। मरते ही लोग तुम्हे भूत कह बाहर छाओ छाओ करने लगते है। जैसे स्त्री घर मे ही देखी जाती है। तभी तक साथी मित्र भी रहते है। कितु मरधट पहुँचने पर पता चलता है कि हस (आत्मा) अकेला है। मदन (कामदेव) के पीछे क्यो भूले हो? राम को क्यो नही जपते ? मदन तो अधकूप सा भयानक है। हे जीव, तुम्हारी स्थिति उस सुग्गे के समान है जो लोभ मे स्वय ही बॉस की चरखी मे बध जाता है। टिप्पणी- सुग्गे को पकड़ने के लिये बॉस की चर्खी बनायी जाती है। सग्गा उस पर आकर बैठता है और नली से बँध जाता है। सूरदास जीने भी नलिनी के सुअणा का प्रयोग किया हैसूरदास नलिनी कौ सुअठा, कहि कौन पकरयो -सुर० जाए रे दिन हीं दिन नेहा; करि ले बोरी राम सनेहा ॥टेक) बालापन गयी जोबन जासी, जुरा मरण भी संकट आती। पलदे केस नैन जल छायर, मूरिख थेति बुढाण आया॥ राम कहत लज्या क्यूँ कीजै, प पल आएउ घंटे तन छीजै। लज्या कहै हूँ जम की दासी, एके हाथि मूदिगर दूजे हाथि पासी॥ कहे कबीर तिनहूँ सब हारणा, राय लाग पिन भनहु बिसारण ॥२४२॥ अर्थ-ऐ जीव, तेरा यह शरीर दिन ब दिन नष्ट हो रहा है। अभी मौका है। ऐ पगढे, राम से स्नेह कर लो| बचपन गया। यौवन भी जायगा। वृद्धावस्था और पृत्यु का सासारिक सकट आएगा। बालो का कालापन समाप्त हो गया है। आँखो से (स्नेह के स्थान पर) पानी झरने ढगा है। ऐ मूर्ख, चेत जा, बुढ़ापा आ गया है। राम नाम लेने मे छज्जा क्यो करता है ? शरीर क्षीण' हो रहा है और पल-पल आयु घट रही है। रूज्जा कहती है कि यम की दासी हूँ। मेरे एक हाथ में मुदूगर और दूसरे हाथ मे रस्सी है। सत कबीर कहते है कि वे सब कुछ हार गए जिन्होंने मन से राम नाम को भुला दिया है। अलंकार- मानवीकरण | मेरी मेरी करतों जनम गयौ; जनम गंयौ पर हरि न कह्यौ ।टेक॥ बारह दरस बालापन खोयौ, बीस बरस कछु तप न कयो। तीस बरस के राम न सुमिस्थो, फिरि पछितानों बिरध यो ॥| सूक्े सरबर पालि बँधावे, छुणें सेल हि ये करे। आयी चोर तुरंग मुत्ति ले गयी, मोरी राखत मुगय फिरै॥ | सीस चरन कर केपने लागे, नैन नीर असराल बहे जिश्या रुथन सूध नही निकसे, तब सुकरित की वात कहै॥

६२४ कबीर समग्र कहै कबीर सुनहु रे संतो घन संच्यो कछु संगि न गयौ। आई तलब गोपाल राह की, मैडी मंदिर छाड़ि चल्यी॥२४३॥ शब्दार्थ-पालि + बाँध। छुण - कटी फसल वाह । वाड़ि > घेरा। मोरी ८ घोड़े के मुख पर पहराने वाला साज। मुगध > मूढ। असराल 5 (अ० अख्रार) लगातार। सूध 5 सीधा। सुकरित- सुकृति | तलब 5 बुलावा। मैडी > मडित। मदिर 5 मकान। घर। अर्थद-सत कवीर लोगो को चेतावानी देते हुए कहते है कि सपत्ति और सवधो के बारे मे मैं मेरी का भाव प्रबल रहा। सबको अपना समझते समझात्ते जीवन बीत गया। कभी भगवान् का भजन नही किया। बारह वर्ष तक वचपन रहा। बीस वर्षो तक भी तपस्या नहीं की। तीस वर्षों तक राम नाम का स्मरण नही किया। वृद्धावस्था मे पछताने लगे। जैसे सूखे ताछाव मे बाँध बनाना, कटे खेत को घेरना व्यर्थ है वैसे ही समय वीतने पर स्मरण सभव नहीं है। काल रूण चोर जवानी रूप घोड़े को चुरा ले गया। मूढ पुरुष घोड़े की मोरी अर्थात् जवानी का भाव लिये घूमता है। अब तो सिर, पेर, हाथ कॉपने लगे है। आँखो से लगातार पानी वह रहा है। जीभ से सीधी आवाज नही निकलती है। अब सुकृति की बात कहने से क्या फायदा है ? बहुत धन इकट्ठा किया। कितु कुछ भी साथ नही गया। भगवान का बुलावा आ गया है। अब मडित (सजे) घर को छोड़ कर जाना होता है। अलंकार-दृष्टात जाहि जाती नोंव न लीया; फिरि पछितावेगी रे जीया।दिक॥ घएंधा करत चरन कर घादे, आउ घटी तन खीना। बियै बिकार बहुत रुचि मोनी, माया मोह दित दीन्हों॥ जागि जागि नर काहे सोबै, सोइ सोइ कब जागेगा। जद घर भीतरि चोर पड़ेंगे, अब अंधलि किसके लागैगा।॥। कहे कबीर सुनहु रे संतो, करि लय जे कछु करणों। छख चौरासी जोनि फिरोगे, दिना राम की सरनोँ॥२४४॥ अर्थ-जाते समय तक प्रभु का नाम स्मरण नहीं किया। ऐ जीव, फिर पछताना होगा। धधा करते हाथ पैर घट गये। आयु खतम हुई। शरीर क्षीण हो गया। तुमने सदा विषय विकारो मे रुचि छी। माया मोह के कार्यों मे चित्त दिया। ऐ मनुष्य जागो, जागो। क्यों सो रहे हो ? सो सो कर कब जागोगे ? जब घर मे काल चोर घुसेगा तब किसका अचल पकड़ोगे ? अर्थात् किसका सहारा लोगे ? सत कबीर कहते हैं कि जो करना है कर लो। राम की शरण गये बिना चौरासी छाख योनियो मे भटकना छहोगा। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति साया मोहि मोहि छित कीन्हों; तायें मेरो स्योन भ्यौन हरि लीन्हों ।टिक।। संसार ऐसा सुरिन जैसा, जीवन सुपिन समोन। सौँच करि नरि गाँठि बॉध्यो, छाड़ि परम निर्धोन ॥ नैन नेह पतंग हुलसे, पसू, न पेले आगि। काल पासि जु मुगघ बॉध्या, कंक कौमिनी लागि। करि दिचार दिकार परहरि, तिरण तारण सोइ। कहे कबीर रघुनाव भजि नर, दूजा नौही कोड ॥२४५॥) अर्थ-मैने माया से मोहित होकर प्रेम किया। उससे उसने ज्ञान-ध्यान सब हरण कर

पद घ२५ लिया। यह ससार स्वप्न जैसा है। उस स्वप्न को सच मान कर उसे गॉठ मे बॉध लिया और परम निधान को छोड़ दिया। तुम्हारी आँखे फतिगो के समान विषयो को देख कर प्रसन्न होती है। पशु के समान आग को नहीं देखती है। ऐ मूढ़, तुम तो काल के बंधन मे बँधे हो। तुम्हे कामिनी का करूक लग गया है। विकार छोड़ कर विचार करो तभी तरना होगा। संत कबीर कहते है कि रघुनाथ को भजो। दूसरा कोई नही है। अलंकार-रूपक तथा उपमा ऐसा तेरा झूठा मीठा लागा; तायै साथे सूँ मन भागा |टिका। झूठे के घरि आया, झूठे खान पकाया। झूठी सहन क झूठा बाह्मा, झूठे झूठा खाया ॥ झूठा ऊठण झूठा बैठण, झूठो सब सगाई। झूठे के घरि घूठा राता, साथे को न पत्याई॥ कहे कबीर अलह का पंगुरा, सोचे सूँ मन लावी। झूठे केरी संगति त्यागी, मन बंछित फल पाबी ॥२४६॥ अर्व-हे माया, तेरा झूठ इतना मीठा लगा कि मन उसी झूठ मे छूग गया। सत्य से भाग गया। झूठे के घर झूठा आया। झूठे का भोजन तैयार किया। झूठी सहन की बाहर भी झूठा है। झूठे ने झूठा ही खाया। उठना, बैठना और समस्त अपनापन सब झूठे है। झूठे के घर झूठा अनुरक्‍्त है। सच पर किसी का विश्वास नही है। । सत कबीर कहते है कि ओ अल्लाह के बच्चों (पगुरा), साँच (सत्य) से मन लगाओ। झूठे का साथ छोड़ दो। तभी मन बॉछित फल की प्राप्ति होगी। कौंण कौण गया राम कौण कौंण न जासी, पड़सी काया गढ़ माटी धासी॥टेका। इंद्र सरीखे गये नर कोड़ी, पाँधो पॉडी सरिषी जोड़ी । घूअबिचल नही रहसी तारा, बंद सूर की आइसी वारा॥ कहे कबीर जग देखि संसारा, पड़सी घट रहसी निरकारा॥२४७॥ अर्थ-हे राम, कौन कौन गया और कौन कौन जायेगा ? अर्थात् सभी जायेंगे। यह शरीर गिरेगा और मिट्टी हो जायगा। इंद्र के समान शक्ति सपन्न कोड़ियो (२० की गिनती) लोग चले गये। पॉचो पाडवो के समान जोड़ियाँ भी चली गयी। ध्रुव विचलित होगे। तारे भी नही रहेगे। चद्रमा और सूर्य की भी बारी आयेगी। संत कबीर कहते है कि जाग कर ससार को देखो। यह शरीर घट गिर पड़ेगा और निराकार रह जायेगा। अलंकार-उपमा तावें सेविये नारॉइणों प्रभु मेरो दीनदयाल दया करणों ॥टिक।॥ जौ तुम्ह पंडित आगम जाणौ, विद्या व्याकरणों। तंत मंत सब ओषदि जाणी, अंति तक मरणों। राज पाद स्वंघधासण आसण, बहु सुंदर रमणों। चंदन चीर कपूर विराजत, अंति तऊ मरणों। जोगी जती तपी संन्‍्यासी, बहु तीर4 भरमणों। लुंधित मुंडित पोनि जटाघर, अंति तऊ मरणाँ॥ सोधि दिचारि सबै जग देख्या, कहूँ न ऊबरणों। कहै कबीर सरणाई आयो, मेटि जामन मरणों ॥२४८॥

६२६ कवीर समग्र अर्थ-इसलिये दीन दयालु प्रभु नारायण की सेवा करनी चाहिए। जो तुम पंडित आगम, व्याकरण विद्या, तत्र, मत्र, सारी ओषधियाँ जानते हो कितु अत मे मरना ही होगा। राज पाट, 358 आसन, सुदर रमणी, चदन, वस्त्र, कपूर आदि के प्रयोगों से क्या, अत में तो मरना गा। योगी, यती, तपस्वी, सन्यासी बहुत से तीर्थों मे घूमते है। वाल नोचने वाले जैनी, सिर मुड़ाए बौद्ध, मौन, जटाधारी साधु सभी मरते है। सोच विचार कर सारा ससार देख लिया। कही उबार नही है। किसी प्रकार से मौत से वंचा नही जा सकता है। सत कवीर कहते है कि प्रभु की शरण में आया हूँ। मृत्यु से बचने का यही एक रास्ता है। हे प्रभु, मेरे जन्म-मरण को मिटा दो। पड़े न करसि बाद बिबादं; या देही बिना सबद न स्वार्द ॥टिक॥ अंड ब्रह्मंड खंड भी माटी माटी नवनिधि काया। माटी खोजत सतगुर भेट्या, तिन कछू अलख लखाया॥ जीवत माटी मूवा भी माटी, देखो ग्यान बिचारी| अंति कालि माटी में बासा लेटे पाँव पसारी ॥ मादी का चित्र पवन का थंभा, ब्यंद संजोगि उपाया। भौने घड़े सेवारे सोई यहु गोग्यंद की माया। माटी का मंदिर ग्यान की दीप पवन बाति उजियारा। तिहि उजियारे सब जग सूची कबीर ग्यॉन बिचारा ॥२४९॥ अर्थ-ऐ पाडे, विवाद मत करो। इस देह के न रहने पर न शब्द रहता है। न इद्रियो के स्वाद रह जाते है। अड, ब्रह्माड, खड तथा नव निधियो युक्त शरीर सभी मिट्टी हो जाते है। जीते जी भी मिट्टी थे। मरने पर भी मिट्टी होगी। इसे ज्ञान से विचार कर देखो। अत मे माटी मे ही पैर फैला कर लेटना होगा। यह ससार या देह चित्र मिट्टी का बना है। इसमे हवा का खभा ४ है। विन्दु के सयोग से उत्पन्न किया है। भगवान की माया शरीर को बनाती है और मियती है। यह शरीर मिट्टी का मदिर है। इसमे ज्ञान का दीपक जलता है। इस मे हवा की वत्ती लगी है। उसी प्रकाश मे सारा ससार दिखाई पड़ता है। यह ज्ञान सत कबीर ने दिया है। मेरी जिभ्या बिस्न मैन नारोइन, हिरदे जपी गोबिदा। जम दुवार जब लेख मोग्या, तब का कहिसि मुकंदा। दिक।॥ तूँ ब्राह्मण मे कासी का जुलाहा, चीन्हि न मोर गियाना। ते सब माँगे भूषति राजा, मोरे राम घियाना॥ पूरद जनम हम ब्रॉह्मन होते, बोठे करम तप हीनों। रामदेव की सेवा चूका, पकरि जुलाहा कीन्हों॥ नौमी नेम दसमी करि संजम, एकादसी जागरणों। दादसी दॉन पुन्नि की बेलों, सर्व पाप छपी करणों॥ भौ बूउत कछू उपाय करीजै, ज्यूँ तिरि लंपै तीरा। राम नाम लिखि भेरा बाधी, कहे उपदेस कबीरा ॥२५०॥ अर्थ-भक्त की जीभ मे विष्णु, ऑँखो मे नारायण, हृदय मे गोविद का जप होता है। यम के रवाजे पर जब हिसाब माँगा जायगा तब मुकुद क्या कहेगे ? तुम ब्राह्मण और काशी का जुलाहा हूँ। काशी के इस जुलाहे का ज्ञान समझो | तुम लोगो । विधाता से राज पाट माँगा। मैने राम का ध्यान माँगा। अर्थात् प्रभु भक्ति मॉगी।

पद ६२७ पूर्व जन्म मे मै ब्राह्मण था। कितु ओछा (धटिया) कर्म किया। तप हीन हुआ। राम देव की पूजा मे चूक की । फलस्वरूप मुझे पकड़ कर जुलाहा बना दिया गया। होग नवमी को नियम रखते है। दशमी को सयम, एकदाशी को जागरण, द्वादशी को दान पुण्य की बेला मे सारे पाप नष्ट करना चाहते है। भव मे डूबते हुए कुछ उपाय कीजिए जिससे सैर कर किनारे छगा जा सके। इस ससार सागर को पार करने का एक ही उपाय है राम नाम के ढेख का भेरा (नाव) बॉधो। राम नाम जपो। यही सत कबीर साहब का उपदेश है। मु कहु पांडे सुचि कवन ठाँव; जिहि घरि भोजन बैठि खाऊँ।टिक॥ - माता जूठा पिता पुनि जूठा जूठे फल चित लागे ॥ जूठा आँवन जूठा जॉनों, चेतहु क्यूँ न अभागे।॥ अन्न जूठा पॉनी पुनि जूठा, जूठे बैठि पकाया।॥। जूठी कड़छी अन्न परोस्या, ज़ूठे जूठा खाया ॥ चौका जूठा गोबर जूठा, जूठी का ढोकारा। कहै कबीर तेई जन सूचे, जे हरि भजि तजहि बिकारा ॥२५१॥ शब्दार्व-ढोकारा - टोकरा। अर्थ-ऐ पाडे, बताओ, पवित्र गौर कहाँ है जिस घर मे बैठ कर भोजन करूँ? माता पिता सब जूठे है। जूठ मे जूठ का फल लगता है। अन्न, पानी आदि सब जूठ है। जूठे मे ही पकाया जाता है। कढुछी, परोसा अन्न, सब जूठे से जूठा खाना है। चौका, गोबर, टोकरा आदि सब जूठे है। हि सत कबीर कहते है कि वे जन सच्चे है जो प्रभु को भजते है और विकारों को छोड़ देते हरि बिन झूठे सब व्यौहार; केते कोऊ करी गँवार ।टेक॥ झूठा जप तप झूठा ग्यॉन, राम नाम बिन झूठा ध्याँन। विधि चखेद पूजा आधार, सब दरिया मैं वार न पार॥ इद्री स्वार्थ मन के स्वाद, जहाँ साथ तहाँ मोडे बाद। दास कबीर रह ल्यो लाइ, भर्म कर्म सब दिये बहाइ॥२५२॥ शब्दार्थ-नखेद - निषेध | .. अर्थ-बिना भगवान् के सारे व्यवहार झूठे है। और कोई कितना भी क्यो न करे ? सब गेंवारपन है। राम के बिना जप, तप, ज्ञान, ध्यान सब झूठे है। विधि-निषेध, पूजा, आचार इन सब के द्वारा ससार सागर पार नहीं किया जा सकता है। सभी इद्रियो और मन के स्वाद मेः लीन है। सत्य के लिये विवाद बने है। सत-कबीर दास रुदा प्रभु का ध्यान करते है। भ्रम, कर्म सब को बहा दिया है। चेतनि देखे रे जग धंधा, हि राम नाम का मरम न जाने, माया के रतसि अंधा ॥ दिक।॥ जनमत हीरू कहा ले आयो, मरत कहा ले जासी। जैसे तरवर बसत पैंखेर, दिवस चारि के बासी॥ आपा थापि अबर कौ निदे, जन्मत हो जड़ काटी। हरि को भगति दिना यहु देही, घब छोटे हो फाटी॥ कॉम क्रोध मोह मद मछर, पर अपवाद न सुणिये। कहै कबीर साध की संगति, राम नाम गुण भणिये ॥२५३॥ है।

६२८ कबीर समग्र अर्थ-चेत कर देखो, यह ससार एक धधा है। राम नाम मर्म नही जानते और माया के रस में अधे हो रहे हो। क्या तुम जन्म के समय हीरा लेकर जन्मे थे या मरते समय क्या लेकर जाओगे ? जैसे पेड़ के पक्षी बसते है। कितु चार दिनो मे उड़ जाते है वैसे ही जीव (पक्षी) ससार या शरीर वृक्ष पर चार दिनो अर्थात् बाल, किशोर, युवा और वृद्ध अवस्था के लिये आता है। अपने अह की स्थापना कर दूसरे की निदा करते हो जन्म से ही प्रभु मे अपनी जड़ को काट डालते हो। प्रभु की भक्ति के बिना यह शरीर फट कर धरा पर लौटेगा। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर तथा दूसरे की निदा कभी मत सुनिए। सत कबीर कहते है कि साधु की सगति कीजिए और राम नाम गुण को भजिए। अलंकार-उपमा रे जम नॉहि नवै व्यापारी; जे भरे जगातिं तुम्हारी ॥टिक॥ बसुधा छाड़ि बनिज हम कीन्हो, लाघो हरि को नॉऊँ। राम नाम की गूनि भराऊँ, हरि के ठंडे जोऊँ॥ जिनके तुम्ह अगिवानी कहियत, सो पूँजी हम पासा। अबै तुम्हारी कछु बल नाँही कहै कबीरा दासा ॥२५४॥ शब्दार्थ-जगाति 5 चुगी। जकात | गूँनि 5 बोरा। टाडै > व्यापारिक खेप। अर्थ-ओ यम, मै नया व्यापारी नहीं हूँ जो तुम्हारी चुगी भरूँ। धरती को छोड़ कर हमने व्यापार किया। प्रभु नाम का सामान लादा। राम नाम की ही बोरी भरी। प्रभु व्यापारी खेप ले जाऊँगा। सत कबीर कहते है कि अब तुम्हारा कुछ भी बस नही है। क्योकि यहाँ सारा व्यापार प्रभु सबधी है। प्रभु तो मालिक है। उसके आदमी से तुम चुगी नही ले सकते हो। अलंकार--रूपक भीयोँ तुम्ह सो बोल्यों बणि नही आवे। हम मसकीन खुदाई बंदे, तुम्हारा जस मनि भाव ॥ टिक॥ अलह अवलि दीन का साहिब, जोर नहीं फुरमाया। मुरिसिद पीर तुम्हारे है को, कही कहाँ ये आया।॥। रोजा करे निवाज गुजारै, कलमें भिसत न होई। संतरे काबे इक दिल भीतरि, जे करि जाने कोई॥ खसम पिछाँनि तरस करि जिय मैं माल मनी करि फीकी। आपा जॉनि साई कूँ जाने, तब दै भिस्त सरीकी॥ माटी एक भेष धरि नॉनों, सब मै ब्रह्म समानों। कहै कबीर भिस्त छिटकाई, दोजग ही मन मानों ॥२५५॥ शब्दार्थ-वणि + बनना। मसकीन 5 दुखी। दीन। खुदाई बदे > प्रभु सेवक। मनि 5 मन मे। अवि 5 अव्वल। सर्व प्रथम। दीन 5 धर्म। फुरमाया 5 फरमाया। आदेश। मुरसिद पथ प्रदर्शक। गुरु। पीर > धर्म गुरु। गुजारै 5 गुजारिश करना। निवेदन करना। कलम इस्लाम के मत्र।| भिस्ति 5 स्वर्ग। काबा 5 मक्का मे एक महत्त्वपूर्ण धर्म स्थल। सतरि 5 सत्तर। खसम 5 पति। पिछोंनि & पहिचान। तरस 5 दया। मनी 5 मणि। फीकी क्व मंद। सरीकी - शामिल होने वाछा| दोजग ८ नरक | अर्घ-सत कबीर कहते है कि ऐ मियां, तुमसे बात करते भी नही बनता है। मै दुखी तो खुदा का सेवक हूँ। तुम्हारे मन मे जो अच्छा ढगे। अर्थात् तुम चाहे जो समझो। अल्लाह तो डी

पद ६२५ सर्व प्रथम धर्म प्रभु है। यह धर्म प्रभु किसी के साथ जबर्दस्ती करने की इजाजत नही देता है। तुहरि धर्म गुरु कौन है ? ये कहाँ से आए है ? मतलब कि ये भी प्रभु सेवक है। ये रोजा रखते है। नमाज अदा करते है। कलमा पढ़ते है। कितु इन क्रियाओ से स्वर्ग नही मिलेगा। यदि कोई अपने दिल मे एक नहीं सत्तर काबा भी बसा ले तो उसे प्रभु पति को पहचानना होगा। हृदय में दया भाव छाना होगा। मन मे सपत्ति को व्यर्थ समझना होगा। अपने को (आत्म तत्त्व) जान कर ईश्वर का ज्ञान पैदा करे तब वह स्वर्गमे प्रवेश पा सकता है। एक ही मिट्टी ने नाना वेश धारण किया है। मूलत सब एक है। ब्रह्म सभी प्राणियो मे समान रूप से समाया है। समानता के इस तथ्य को जान कर कबीर ने स्वर्ग सुख छोड़ कर नरक से ही मन को मना लिया। क्योकि स्वर्ग और नरक मे कोई भेद नही है। अलह ल्यी लॉये काहे न रहिये; अह निसि केवल राम नाम कहिये॥टेक॥ गुरमुखि कलमा ग्यॉन मुखि छुरी, हुई हलाहल पचूँ पुरी॥ मन मसीति मै किनहूँ न जनों, पंच पीर मालिम भगवानों॥ कहे कबीर मै हरि गुन गाऊँ, हिंदू तुरक दोऊ समझाऊँ॥२५६॥ शब्दार्थ-मालिम 5 (अ० मुअल्लिम) ज्ञान देने वाला। आर्थ-अल्छाह का ध्यान क्यो नही करते है ? रात-दिन केवल राम नाम कहिए। गुरु कृपा के लिये क्रलमा पढ़िए। ज्ञान धुरी से पॉचो इद्रियो के विषयों को हछाल करना चाहिए। मन मस्जिद को कोई नही जानता है। पॉँचो इन्द्रियो का ज्ञान प्रभु को समर्पित है। सत प्रभु के गुणो का गान करते है और बताते है कि हिदू-मुसलमान दोनो एक है। अलंकार-रूपक रे दिल खोजि दिलहर खोजि, नॉ परि परेसॉर्नी माहि। महल माल अजीज औरति, कोई दस्तगीरी क्यूँ नॉहि ॥टेक।॥ पीरों मुरीदों काजियाँ, मुलों अरू दरबेस। कहाँ थे तुम्ह किनि कीये, अकलि है सब नेस॥ कुराना कतेबों अस पढ़ि पढ़ि फिकरि या नहीं जाइ। डुक दम करारी जे करै, हाजिरों सुर खुदाह॥ दरोगा बकि बकि हूँहि खुसियाँ, बे अकलि बकहि पुमाहि। इक साथ खालिक खालक म्यानै, सो कछू सच सूरति माहि॥ अलह पाक तूँ नापाक क्यूँ, अब दूसर नाही कोइ । कबीर करम करीम का, करनी करे जॉने सोड॥ २५७॥ शब्दार्थ-दिलहर - दिलघर। अजीज > प्रिय। दस्तगीरी & सहायक | पीरों < गुरु। मुरीदोँ + शिष्य। काजियाँ -न्यायाधीश। मुढाँ > मौलवी। दरबेस 5 सिद्ध साधु। नेस 5 नष्ट। टुक कह ह | 48245 न बा सा < उपस्थित। सुर 5 सूर। दरोगों ७ असत्य | पुमाहिं नल ना। खालिक - सृष्टि कर्त्ता। खाहक - बन कई हे व्वाु कस न्कपा। सृष्टि ससार। म्यानै 5 मे। सूरति 5 रूप। करीम अर्थ-ऐ दिल, खोजो। दिल वाले को खोजो। बॉ (धन दे दया पदय जिसके पास पूरा दिल हो। परेशानी मे मत , मरीद, काजी, मुल्ला, दरवेश आदि को किसने बनाया है ? तुम्हारी बुद्धि नष्ट है। कुरान, किताब आदि पढ़ने से चिता दूर नही होगी। जो अपनी वृत्तियो है भी स्थिर कर छेता है खुदा उस पर प्रसन्न होता है। 350 लोग झूठ बोल-बोल कर खुश होते है। वेअक्ल के लोग अहकार मे ४ंकते है। इस सृष्टि

६३० कबीर समग्र में सृष्टि कर्ता ही एक सच्चा है। वह सभी रूपो मे विद्यमान है। अल्लाह पाक, तब नापाक (अपवित्र) तुम क्यो हो ? अल्लाह के अतिरिक्त अब दूसरा कोई नहीं है| * दयालु प्रभु की दया को वह जानता है जो दया कर्म मे लीन है। खालिक हरि कही दर हाल। पंजर जसि करद दुसमन मुरद करि पैमाल ।टिक॥ भिस्त हुसकाँ दोजगों दुंदर दराज दिवाल। पहनाम परदा ईत आतस, जहर जंगम जाल। हम रफत रहवरहु समाँ, मे खुर्दा सुमों दिसियार। हम जिमी असमॉन खालिक, गुद मुँसिकल कार॥ असमान म्याने लहँग दरिया, तहों गुसल करदा बूद। करि फिकर रह सालक जसम, जहाँ स तहाँ मौजूद ॥ हम चु बूँदनि बूँद खालिक, गरक हम तुम पेस। कबीर पहन खुदाई की, रह दिगर दावानेस ॥२५८॥ शब्दार्थ-दर - ठिकाना | हरि - प्रत्येक। हाल 5 अवस्था। करद 5 चाकू। मुरद 5 मुर्दा | पैमाल « वर्बाद। भिस्त 5 स्वर्ग। हुसकाँ > उसका। दुदर 5 झगड़ालू। दराज--< भारी। अधिक । पहनाम > विस्तार | अलह राम जीऊँ तेरे नाई; बंदे ऊपरि मिहर करी मेरे साईं ॥ टिक॥। क्या ले माटी भुँड सूँ, मारे क्या जल देह नहवाये। जो करे मसकीन सताबै, गून ही रहे छिपाये॥ क्या तू जू जप मंजन कीये, क्यों मसीति सिर नॉये। रोजा करे निमाज गुजारै, क्या हज काबे जाँये॥ ब्राह्मण ग्यारसि करे चौबीसी, काजी महरमजॉन। ग्यारह मास जुदे क्यू कीये, एकहि माहि समान ॥ जौ रे खुदाइ मसीति बसत है, और मुलिक किस केरा। तीरथ मूरति राम निवासा, दुहु मे किनहूँ न हेरा॥ पूरिब दिसा हरी का बासा, पछिम अलह मुकॉमा। दिल ही खोजि दिले भीतरि, इषों राम रहिमॉनो॥ जेती औरति मरदौं कहिये, सब मै रूप तुम्हारा। * कबीरा पंगुड़ा, अलह राम का, हरि गुर पीर हमारा ॥२५९॥ शब्दार्थ-नाई 5 नाम। मिहर 5 कृपा। मसकीन 5 दीन। विनम्र। निमाज गुजारै 5 नमाज पढना | पगुड़ा (

पद ६३१ यही हे । जितने स्त्री-पुरुष हे सव मे प्रभु का रूप विद्यमान है। सत कबीर प्रभु के वालक है। हरि ही हमारे धर्म गुरु हे। अलंकार-वक्रोक्ति मै बड़ मैं बड़ मे बड़ माटी; मण दसना जद का दस गाँठी |दिक॥ मैं बाबा का जोध कहाँऊँ, अपणी मारी गींद चलाऊँ। इनि अहंकार घणे घर घाले, नाचत कूदत जमपुरि चाले ॥ कहे कबीर करता ही बाजी, एक पलक मैं राज दिराजी ॥२६०॥ अर्थ-पै बड़ा हूँ। मै सब से बड़ा हूँ। यह कहना व्यर्थ है। यह वैसे ही है जैसे जाट अपने को दस मन तथा दस गॉठो वाला कहता है। मै बाबा का योद्धा हूँ। अपने ही मारे गेद को फेकता हूँ। इस अहकार ने अनेक घरो को नष्ट किया। ऐसे छोग नाचते-कूदते यमपुर चले गये। कबीर कहते है कि कर्ता (प्रभ) की बाजी है। वे एक पलक मे राजा बना देते है। काहे बीहो मेरे साथी, हूँ हाथी हरि केरा। चौरासी लख जाके मुख मे, सो च्यंत करेगा मेरा ॥टिक॥ कही कौन बिये कहो कौन गाजे, कहा यें पोंणी निसरे। ऐसी कला अनंत है जाके,सो हँम को क्यूँ बिसरे ॥ जिनिब्रह्मांड रध्ये बहु रचना,याब बरन ससि सूरा। पाइक पंच पुष्िम जाके प्रकटै, सो क्यूँ कहिये दूरा ॥ नैन नासिका जिनि हरि सिरजे, दसन यसन बिधि काया। साधू जन को क्यूँ बिसरे, ऐसा है राम राया॥ को काहू मरम न जानें, मे सरनॉगति तेरी। कहै कबीर बाप राम राया, हुरमति राखहु मेरी ॥२६१॥ शब्दार्य-बीहो + भय | बाब 5 वायु। बरन 5 वरुण। पाइक 5 पावक। आग। पुहमि « धरती। दसन - दात। बसन > वस्त्र । हुरमति 5 इज्जत। प्रतिष्ठा। षिवै - नष्ट होता है। अर्थ-ऐ मेरे साथी, क्यो डरते हो ? मै हरि का हाथी हूँ। चौरासी लाख योनियोँ जिस प्रभु के मुख मे है (यहाँ ईश्वर के विराट् रूप की ओर सकेत है) वही प्रभु मेरी चिता करेगा। कहो कौन नष्ट होता है ? कौन गरजता है ? पानी कहाँ से निकलता है ? इस प्रकार की जिसकी अनत कलाएँ है वह प्रभु हमे कैसे भूल जायगा ? जिसने ब्रह्माड मे बहुत प्रकार की रचना की है। वायु, वरुण, चद्रमा, सूर्य, पचाग्नि, पृथ्वी आदि जिसने बनाये है उसे अपने से दूर कैसे कर कहा जाय ? कि रा हमसे बहुत नजदीक पा 0862, नाक, दाँत, वस्त्र, विविध प्रकार के शरीर जिसने नार्य | वह राजा राम साधु पुरुषी ८ भूल जायगा ? वह प्रभु कौन है ? कोई नही जानता है| हे प्रभु, मै तेरी शरण मे हूँ। तह ॥ करत की दा कबीर कहते है कि हे पिता राजा राम इज्जत रख छो। अर्थात् मुझे वासना मे जाने से (राग सोरठि) हरि को नाम न लेट गँवारा; क्या सोधे बारंबारा टिका पंच चोर गढ़ मंझा गढ़ लूटे दिवस रे संझ्ा॥

६३२ कवीर समग्र जी गठपति मुहकम होई, तो लूटि न सके कोई॥ अँधियारे दीपक चहिए, तब बस्त अगोचर लहिये॥ जब बस्त अगोचर पाई, तब दीपक रहा समाई॥ जौ दरसन देख्या चहिये, तौ दरपन मंजत रहिये ॥ जब दरपन लागे काई, तब दरसन किया न जाई॥ का पढ़िये का गुनिये, का बेद पुराना सुनिये॥ पढ़े गुने मति होई में सहज पाया सोई॥ कहे कबीर में जॉनों, मै जानों मन पतियानों ॥ पतियानाँ जो न पतीजै, तो अंधे कूँ का कीजे ॥२६२॥ शब्दार्थ-गँवारा 5 मूर्ख।| पॉच चोर 5 काम, क्रोध, ठोभ, मोह, मत्सर। गढ़ 5 शरीर। मुहकम < दृढ। पतियॉनों 5 विश्वास करना । अधा 5 अज्ञानी। अर्थ-अरे मूर्ख, ईश्वर का नाम क्यो नही लेते हो ? प्रभु नाम स्मरण मे क्यो वार-वार सोचते हो ? काम, क्रोध, लोभ, मत्सर ये पॉच चोर शरीर के भीतर ही शरीर को दिन-रात छूट रहे है। इस शरीर का मालिक जीवात्मा यदि दृढ हो तो कोई नही लूट सकता है। माया के अधेरे मे ज्ञान का दीपक मिले तो अगोचर (द्रियों द्वारा न प्राप्त होने वाला) वस्तु तत्त्वो का भी ज्ञान होता है। अगोचर वस्तु की प्राप्ति होने पर जिस ज्ञान दीपक से उसकी जानकारी होती है व्यक्तित्त्व उसी मे समा जाता है। (ज्ञात, ज्ञान और ज्ञेय तीनो का लय हो जाता है)। अगोचर तत्त्व को देखना चाहते हो तो अत करण को पवित्र रखो। जैसे काई ठगे दर्पण में वस्तु नही दीखती है वैसे ही अशुद्ध चित्त मे अगोचर प्रभु का दर्शन नही होता है। है वेद-पुराण पढ़ने, सुनने, गुनने से क्या ? पढ़ने, सुनने, गुनने से बुद्धि होती है। वह बुद्धि भक्त को सहज साधना से मिल गयी है। सत कवीर कहते है कि मैने उस परम तत्त्व को ज़ान लिया। जान कर विश्वास करता हूँ। यदि विश्वासनीय पर भी विश्वास न हो तो उस अधे व्यक्ति को क्या कहा जाय ? अलंकार-रूपकातिशयोक्ति विरोधाभास, वक्रोक्ति अंधै हरि बिन को तेरा; कबन सूँ कहत मेरी मेरा ॥टेक॥ तजि कुलाक्रम अभिमॉनों, झूठे भरामि कहा भुलानों॥ झूठे तन की कहा बड़ाई जे निमष माँहि जरि जाई॥ जब लग मनहि बिकारा,तब लगि नही छूटे संसारा॥ जब घन निरमल करि जॉर्नों, तब निमल मॉहि समानों। ब्रह्म अगनि ब्रह् सोई, अब हरि बिन और न कोई ॥| जब पाप पुँनि भ्रम जारी, तब भयो प्रकास मुरारी। कहै कबीर हरि ऐसा, जहाँ जैसा तहाँ तैता॥ भूले भरमि परै जिनि कोई, राजा राम करे सौ होई ॥२६३॥ अर्ध-ओ अज्ञान मूलक अधे, ईश्वर के बिना तुम्हारा कौन है ? किससे मेरी, मेरी कहते हो ? तुम कुलभिमान में व्यर्थ ही पड़े हो। इसे छोड़ दो। इस झूठे शरीर की क्या तारीफ करते हो ? यह तो क्षण भर में जल जायगा। जब तक मन में विषय विकार है तब तक इस ससार से मुक्ति नही हो सकती है। जब मन विषय मुक्त होता है तो मन शुद्ध-बुद्ध परमात्मा मे अतर्भुक्त हो जाता है। ब्रह्म अग्नि मे केवल ब्रह्म है। उस हरि के अतिरिक्त और कोई नही है। , जव पाप-पुण्य के भ्रम नष्ट होते है तभी ईश्वर का प्रकाश होता है। सत कबीर कहते है कि चर

पुद ६३३ हरि के अलग-अलग स्थानों के अलग-अलग रूप मे कोई भ्रम मे न रहे। राजा राम जो करते है होता है| आ मन रे सरयो न एकौ काजा; ताथे भज्यो न जगपति राजा |टिक॥ बेद पुरान सुम्रत गुन पढ़ि पढ़ि गुन मरम न पावा। संध्या गायत्री अरू घट करमों, तिन यें दूरि बतावा॥ बनखंडि जाइ बहुत तप कीन्हों, कंद मूल खनि खाबा। ब्रह्म गियाना अधिक घियॉनी, जंम के पटे़ लिखावा॥| रोजा किया निवाज गुजारी, बंग दे लोग सुनावा। हिरदे कपट मिले क्यूँ साई, क्या हल काबे जावा।। पहरधौ काल सकल जग ऊपरि, माहिं, लिखे सब ग्यॉनी। कहे कबीर ते भये षालसे, राम भगति जिनि जॉनी ॥२६४॥ अर्थ-अरे मन एक काम भी पूरा नहीं हुआ। इसलिये कि जगत् पति राजा राम की उपासना नही की। वेद, पुराण, स्मृति आदि पढ़, गुण करके भी प्रभु तत्त्व-का मर्म नही पाया। सध्या, गायत्री तथा षट् कर्म आदि से भी प्रभु दूर है। जयल जाकर बहुत तपस्या की। कद, मूल खोद कर खाये। ब्रह्म ज्ञान के बहुत ध्यानी है। फिर भी यम ने पट्टा लिखा ही लिया। (यम का अधिकार हो ही गया) रोजा रखा, नमाज बिताया, बाग देकर लोगो को सुनाया। हृदय मे ही कपट भरा है। ऐसे मे काबा जाने से क्या फायदा है ? समस्त ससार पर काल का पहरा पड़ रहा है। सभी ज्ञानियो के नाम उस काल के खाते मे लिखे है। सत कबीर कहते है कि वे ही शुद्ध (षाल्से) हुए जिन्हे राम की भक्ति का ज्ञान है। दिप्पणी-षट् कर्म सबके लिये अलग-अलग है। सत कबीर का सकेत सभी ओर हो सकता है उदाहरण के लिये१ नित्य कर्म सबके लिये है- स्नान, ध्यान, पूजा, तर्पण, होम, जप। २ योगी नित्य-नेति, धौति, वस्ति, नौलि, त्रायक, कपालभा क्रियाएँ करते है। ३ ब्राह्मण के लिये- यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह। मन रे जब तें राम कह्बौ; पीछे कहिबे कौ कछू न रह्मी ॥टिक॥ का जोग जगि तप दाना, जो ते राम नाम नही जाना ॥ कॉम क्रोध दोऊ भारे, तायें गुरु प्रसादि सब जारे।| कहे कबीर भ्रम नासी, राजा राम मिले अबिनासी॥२६५॥| अर्थ--ओ मन, जब राम कह लिया तो अब कुछ भी कहना शेष नही रह गया। अगर राम नाम नही जानते हो तो योग, यज्ञ, तप, दान करने से क्या फायदा ? गुरुदेव की कृपा से काम, क्रोध दोनो भार जल गये। भ्रम नष्ट हो गये। अविनाशी प्रभु का दर्शन हुआ। 0 राइ सो गति भई हमारी, मो पै छूटत नहीं संसारी ॥देका। यूँ पंखी उड़ि जाइ अकासाँ, आस रही मन माँहीं॥ छूटी न आस दूट्यौ नहीं फंधा उडिबो लागौ काँहीं।। जो सुख करत होत दुख तेही कहत न कछु बनि आवै। कुजर ज्यूं कस्तूरी का मृग, आपै आप बेंधावे॥ कहै कबीर नही बस मेरा, सुनिये देव मुरारी। इन भैभीत डरी जम दूतनि, आये सरनि तुम्हारी ॥२६६॥ दा अर्थ-हे प्रभु, मेरी ऐसी गति हो गयी है कि मुझ से ससार नही छूट रहा है। मन आकाश मे उड़ने वाले पक्षी के समान आशा मे दौडता है। आशा के कारण बधन नही छूटता है। आशा

६३४ कबीर समग्र का फदा कठिन है। अब कैसे उड़ना होगा ? जिसे लोग सुख समझते है उसमे वह दुख है। कितु यह किसी को समझ में नही आता है। जैसे हाथी, हथधिनी और कस्तूरी मृग अपनी गध के कारण पकड़े ज़ाते हैयही हाल मनुष्य का है। मनुष्य भी काम, मद के कारण बँधता है। सत कबीर कहते हैं कि हे प्रभु, मेरा कुछ भी वश मे नहीं है। मैं यम दूतो के डर से आपकी शरण मे आया हूँ। राम राह हूँ ऐसा अनमूत अनूपम, तेरी अनभे थे निस्तरिये॥ जे छुम्ई कृपा करी जगजीवन, ती का न पूलि न गरिये । टिका। हरि पद दुरलभ अगोचर, कथिया भुर गमि विचारा | जा कार्रेनि हम ढूँढठत फिरते, आदि भरणो संसारा॥ प्रयटी जोति कृपाट खोलि दिये, दगधे जम दुख द्वारा। प्रगदे विस्वनावथ जगजीवन, में पाये करत विचारा ॥ देख्यत एक अनेक भाव है, लेखत जात अजाती। बिह दो देव तजि दूत फिरते मंडप पूछा पाती ॥ कहे कबीर कर्रूणामय किया, देरी गलियों बह बिस्तारा। राम ले नाव परम एद पाया छूटे बिघन दिकारा॥२६७॥ अर्थ-हे राजा राम, तू अननुभूत और अनुपम है। तेरे अनुभव से ही निस्तार है। हे प्रभु, तेरी कृपा हो तो कभी भूल न हो। प्रभु चरण, दुर्लभ, अगम्ब, इद्रियातीत है। गुरुदेव ने विचार कर कहा। जिस कारण को मै दढ़ूँढ़ता फिरता हूँ वह ससार में भरा है। उस प्रभु की ज्योति प्रगट हुई। हृदय कपाट खुल गये। यम द्वारा उत्तन्न सारे दुख समाप्त हो गए। जगज्जीवन विश्वनाथ प्रभु प्रगटे। मैनें उन्हे विचार करते ही प्राप्त किया। वे एक है। लोग भिन्न-भिन्न भावो से देखते है। वह जाति रहित अनेक जातियो मे दीखता है। इस देवता को छोड़ कर मदिरों की पूजा पत्ती मे देवता को दूँढ़ते है। हि सत कबीर कहते है कि हमारे प्रभु दयालु है। आवागमन को दरी (नदी) गली का बड़ा विस्तार है। राम नाम का परम पद पाया है। इससे विकारों के विध्न दूर हो जायेँगे। राम राइ को ऐसा वैरागी, हरि भजि मगन रहे विष त्यागी ॥देक।॥ ब्रह्मा एक जिनि सिष्टि उपाई, नांद कुलाल घराया। बहु विधि भाड़े उनही घड़िया, प्रभू का अंत न पाया ॥| तरबर एक नाँनां बिधि फलिया, ताके मूल न साखा। भोजलि भूलि रवा रे प्राणी, सौ फल कदे न चाजा॥ कहै कबीर गुर बचन हेत करि, और न दुनियां आयी। माटी का तंन मांटी मिलिहै, सबद गुरू का साथी ॥२६ ८॥ अर्थ-हे राम, ऐसा कौन वैरागी है जो विषयो को त्याग कर हरि भजन मे मग्न रहता है? ब्रह्म रूपी कुम्हार ने सृष्टि बनाई। उसका नामकरण किया। अनेक प्रकार के शरीर (भाड) उन्होने ही बनाए। प्रभु का कही अत नही हैं। एक पेड़ नाना फलो मे फला है। उस पेड़ केन मूल है, न शाखा है। सारा ससार भव जाल मे भूला है। उस फल को कभी नही चखा ह6। सत कबीर कहते है कि गुरु के वचनो से प्रेम करो। सार मे तुम्हारा और कोई नही है। मिट्टी का यह शरीर मिट्टी मे मिलेगा। केवल गुरु वचन ही साथ रहेगा। मददगार होगा।

पद ६३५ अलंकार-रूपकातिशयोक्ति नैक निहारी हो माया बीनती करे, दीन बचन बोले कर जोरे, फुनि फुनि पाइ परे टिक॥। कनक लेहु जेता मनि भाव, कामिन लेहु मन हरनी। पुत्र लेहु विधा अधिकारी राजा लेहु सब घरनी॥ कि अठि सिधि लेहु तुम्ह हरि के जनों नें निधि है तुम्ह आएें।॥ सुर नर सकल भवन के भूपति, तेऊ लहै न मागें॥ सै पापणी सब संघारे काको काज सेंबारपो॥ जिनि जिनि संग कियी है तेरो को बेसासि न मारधी॥ दास कबीर राम के सरने छाड़ी झूठी माया॥ गुर प्रसाद साध की संगति, तहाँ परम पद पाया॥२६९॥ अर्थ-माया भक्तो से प्रार्थना करती है कि जरा मेरी ओर भी देख। वह दीनता भरी बात बोलती है। बार-बार हाथ जोड़कर पैरों पर गिरती है। कहती है कि जितना चाहे सोना ले। मन हरण करने वाली स्त्री ले। विद्वान् पुत्र ले। समस्त धरती का राज्य ले। आठ सिद्धियाँ, नव निधियाँ छे। सुर नर सकल भुवन के राजाओ को मांगने पर भी जो नहीं मिलता है वह सब छे। उत्तर मे कबीर कहते है-तू माया पापिनी ने किसका काम बनाया है? सब की नष्ट कर दिया है। जिस जिस ने तेरा विश्वास कर सग किया उन सबको धोखा हुआ। सत कबीर राम की शरण मे है। झूठी माया को छोड़ो। गुरु कृपा साधु की सगति से परम पद पाया है। अलंकार--मानवीकरण तुम्ह घरि जाहू हमारी बहनों; बिए लागै तुम्हारे नैनए (टिका अंजन छाड़ि निरंजन राते नो किसही का देनों। बलि जाऊँ ताकी जिनि तुम्ह पठई एक माह एक बहनों || राती खाँडी देख कबीरा, देखि हमारा सिगारौ॥ सरग लोक ये हम चलि आई, करन कबीर भरतारी॥ सर्ग लोक मै क्या दुख पड़िया, तुम्ह आई कलि माँही। » जाति जुलाहा नाम कबीरा, अजहँ पत्तीजी नाही॥ तहाँ जाहु जहाँ पाट पंटबर, अगर चंदन घंसि लीनों। आए हमरै कहाँ करोगी, हम तो जाति कमीनों ॥ जिन हम साजे सॉज्य निवाजे बाधे काचे धागै। जे तुम्ठ जतन करो बहुतेरा, पॉँणी आगि न लागे॥ -... साहिब मेरा लेखा मागे लेखा क्यूँ करि दीजै। जे तुम्ठ जतन करो बहुत्तेर,ती पोहण नीर न भीजै। जाकी मै मछी सो मेरा मछा, सो मेरा रखबालू। टूक एक तुम्हारे हाथ लगाऊँ, तो राजों राम रिसालू। जाति जुलाहा नाम कबीरा, बनि बनि फिरी उदासी। आसि पासि तुम्ह फिरि फिरि बैसो, एक माउ एक मासी॥२७०॥ शब्दार्थ-अजन - त्रिगुण। निरजन 5 गुण रहित ईश्वर। राते > रत होना। खँाँडी « खडिता। (खडिता वह नायिका है जिसका पति रात को दूसरी नायिका के सबेरे उसके पास आया हो) पतीजौ > प्रतीति | पटब < पीतताबर | 30 00322

६३६ कबीर समग्र अर्व-सत कबीर माया से कहते है कि हे वहन, तुम घर चली जाओ। तुम्हारी ऑखो मे जहर भरा है। मैने त्रिगुण (अजन) को छोड़ कर परमात्मा (निरजन) से प्रेम कर लिया है। मुझे किसी से लेना-देना नही। मै उस पर बलि जाता हूँ जिसने तुम्हे भेजा है। एक नाते, देह के नाते तुम मेरी माँ हो और दूसरी जीवात्मा के नाते वहन हो (देह मायोत्पन्न एवं नाशवानू है। कितु आत्मा अविनाशी और अश है)। माग्ना ने उत्तर दिया है कवीर, मुझ खडिता को देखो (पति कवीर प्रभु मे अनुरक्त है) तथा मेरा श्रृगार देखो। मै तुम्हे पति बनाने आई हूँ। सत कबीर ने पूछा-स्वर्ग लोक में क्या दुख पड़ा कि तुम्हे कलि मे आना पड़ा है ? कबीर जाति का जुलाह्य है। आज भी उसे तुम्हारे ऊपर विश्वास नही है। हे देवि, तुम वहाँ जाओ जहाँ पीताम्वरधारी, अगर चदन लगाने वाले अर्थात् जहाँ सज्जा और आडवर है। कवीर के यहाँ आकर क्या करोगी ? मैं कमीना अर्थात् कम कर जाति का हूँ। जिस प्रभु ने हमे सजाया है। साज कर कृपा की है, उन्होने हमे कच्चे धागे मे बॉध भी रखा है। तुम कितनी भी कोशिश करो। किंतु पानी मे आग नही छग सकती है। जब साहव मुझसे ससार के कार्यों का हिसाव माँगेगा तब मैं हिसाब कैसे टे सकूँगा ? मैने तो उसका कोई कार्य किया नही है। (मै साहब का गुलाम हूँ) तुम चाहे कितना भी प्रयल करो पत्थर पानी से नही भीग सकता है। मै जिसकी मछली हूँ वही मेरा मछा है। वही रखवाला भी है। तुम्हे छू भी दूँ तो राजा राम को गुस्सा आ जायगा। जुलाहा जाति का कबीर अकेला ही वन-वन घूमता है। इतना कहने पर भी तुम वार-वार आस-पास वैठ रही हो। तुम मेरी देह पैदा करने वाली मा और दूसरे जीवो की देह पैदा करने के नाते मीसी भी हो। अलंकार--मानवीकरण ताकूँ रे कहा कीजे भाई; तजि अंमृत बिघे सूँ लयो छाई।॥टिक॥ विघ संग्रह कहा सुख पाया, रंयक सुझ को जनम गैंवाया॥ । मन वरजै चित कह्यो न करई, सकति सनेह दीपक में परई॥ कहत कबीर मोहि भगति उमाहा, कृत करणी जाति धया जुलाहा॥ २७१॥ अर्थ-अरे भाई, उसका क्या कीजिएगा जिसने अमृत को छोड़ विष से प्रेम कर लिया है ? विष के सग्रह मे कौन सा सुख मिला ? जरा सुख के लिये जन्म वर्वाद कर दिया। मन के मना करने पर भी चित्त नहीं मानता है। शक्ति पर स्नेह दीपक मे (फत्िगे सा) गिरता है। सत कवीर कहते है कि मुझे भक्ति का उत्साह हुआ है। यद्यपि पूर्व कर्मी के कारण मै जुलाह्य जाति में पैदा हुआ। ष अलकार-रूपकातिभयोक्ति रे सुख हब मोही बिप भरि लगा। इनि सुख डहके मोटे मोदे छन्नपति राजा ॥टिक)॥ उपजै बिनसे जाइ बिलाई संपत्ति काहु के संगि न जाई॥ घन जोबन गरव्यो संसारा, यहु तन जरि बरि है है छारा। चरन कमल मन रॉखि ले धीरा, राम रमत सुख कहे कबीरा ॥२७२॥ अर्व-सुख सपत्ति से मुझे दुख लगता है। इन सुखो मे मोटे-मोटे राजा जल गये। सपत्ति | उपजती है, विनाश को प्राप्त हो जाती है, बिल्कुल ही लुप्त हो गयी। यह सपत्ति किसी के भी . साथ नही जात्ती है। ससार

धन, यौवन का अहकार करता है। यह शरीर जल-बल कर क्षार बन जायगा। प्रभु के चरण कमलो मे-मन को स्थिर रखो। राम से रमने मे ही सुख है। ऐसा फक्रलीर गास व्पच्ओ 9॥

पद ६३७ इब न रहूँ माटी के घर में; इब मै जाए रहूँ मिलि हरि मै।टिका। छिनहर घर अरु प्विरहर टाटी, घन गरजत कंपे मेरी छाती॥ दसनै द्वारि लागि गई तारी, दूरि गवण आवन भयो भारी॥ चहँ दिसि बैठे चारि पहरिया जागत मुसि गये मोर नगरिया॥ कहे कबीर सुनहु रे लोई भानड़ धड़्ण सैवारण सोई ॥३२७३॥ अर्थद-अब मै इस मिट्टी वाले शरीर मे नही रहूँगा। अब जाकर प्रभु से मिटूँगा। यह घर ऐदो वाला (छिनहर) और इसमे हवा प्रवेश करे (झिरहर), ऐसी टाटी लगी है। यम दूत बादल गरज रहा है और मेरी छाती कॉप रही है। डर ढंग रहा है। दसवे द्वार ब्रह्म रंध्र मे ताली छगी है। ध्यान छगा है। दूर जाना है। आना कठिन है। चार पहरेदार (मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार) चारो ओर से घेरे है। कितु जागते समय ही भरे नगर में चोरी हो गयी। वासना ने नगर को मूस लिया। सत कबीर कहते है कि ढोगो, सुनो, गढ़ने, मियने और संवारने वाला वही प्रभु है। अलंकार-रूपकांतिशयोक्ति कबीर बिगरया राम दुहाई; तुम्ह जिनि बिगरी मेरे भाई ॥टिक॥ चंदन के ठिग बिरघ जु मैला, बिगरि सो चंदन हैला॥ पारस कौ जे लोह छिवैगा, बिगरि बिगरि सो कंचन ड्ैला॥ गंगा मै जे नीर मिलेगा, बिगरि दिगरि गंगोदिक द्वेला॥ कहे कबीर जे राम कहेला, बिगरि दिगरि सो रामहि है छा ॥२७४॥ अर्थ-राम की दुहाई है। कबीर बिगड़ चुका है। हे भाई, तुम मत विगड़ो। चदन के पास पेड़ बिगड़-बिगड़ कर चंदन हो जाते है। पारस को जो लोहा छू देगा वह बिगड़-बिगड़ कर सोना होता है। गगा मे मिलने वाढ्ा पानी गगोदक होता है। सत कबीर कहते है कि राम कहने वाला बिगड़ कर राम ही होता है। राम राइ भई बिकल मति मोरी; के यहु दुनी दिवानी तेरी ॥टिक॥ जे पूजा हरि नाही भाव सो पूजनहार चढ़ावे॥ जिहि पूजा हरि भल मानें, सो पूजनहार न जाँने॥ भाव प्रेम की पूजा, तावै भयो देव ये दूजा ॥ का कीजै रहुत पसारा, पूजी जे पूजनहारा॥ कहै कबीर में गादा, में गावा आप लखावा॥ जो इषि पद माहि समाना, सो पूजनहार सयॉना ॥२७५॥ अर्थ-हे राम राजा, मेरी बुद्धि परेशान है या यह ससार ही पागल हो गया है। जो पूजा. प्रभु को अच्छी नही ढगती है वही पूजने वाला चढ़ाता है। जो पूजा हरि अच्छी मानता है वह पूजा लोग नही जानते है। भाव प्रेम की पूजा देव दूसरा अर्थात् विशिष्ट अनुग्रह वाला हो गया ५ दा करनी 08 | बहुत फैलाने से क्या फायदा ? जो पूज्य है उसे ही पूजा जाय। यणगान किया। प्रभु गुणगान से आत्म तत्त्व का बोध हुआ। जो इस पद होते है उस पुजारी को बुद्धिमान् कहना चाहिए। हे पक मर राम राह भई बिगूथन भारी; भले इन ग्यौनियन यें संसारी ।टिक॥ इक ठप तीरण ओगाहे इक भानि महातम चाहे ॥ शक में मेरी मे बीजे; एक अहंमेव मे रीते॥

६३८ कबीर समग्र इक कथि कवि भरम जगवे, संभिता सी बस्त न पावे॥ कहे कबीर का कीजै, हरि सूझे सो अंजन दीजै॥२७६॥ अर्य-हे राजा राम, बड़ा वुरा हुआ। ज्ञानियो से भले तो सासारिक छोग हैं। एक ज्ञानी तपस्या करता है। एक तीर्थों का अवगाहन करता है। एक मान और महाल्य के चक्कर में रहता है। एक मै, मेरी मे फेंसा है। एक अपने अहकार पर रीझा है। एक कह कह कर (शास्त्र वचनो को बोलकर) भ्रम पैदा करत/है। समता जैसी वस्तु नही प्राप्त करता है। सत कबीर कहते है क्या कीजिएगा ? ऐसा अजन दीजिए जिसके प्रयोगसे ईश्वर दीखे। काया मंजसि कौन गुनों; घट भीतरि है मलनों ॥टेक॥ जौ तूँ हिरदे सुध मन ग्यॉनी, तो कहा बिरौले पॉनी। तूँबी अठसठि तीरब नहाई, कड़वापन तऊ न जाई ॥ कहे कबीर दियारी, भवसांगर तारि मुरारी ॥२७७॥ अर्थ-शरीर धोने से क्या ? शरीर के भीतर तो मैल जमी है। यदि तेरा हृदय शुद्ध और मन ज्ञानी है तो पानी क्यो बिलोते हो ? अर्थात् तीर्थों मे जाना व्यर्थ है। तुम्बी अड़सठ तीर्थ नहा ले तो क्या उसका तीतापन जायगा ? मनुष्य का राग-द्वेष तीर्थ स्थान से ही नही जाने वाला है। सत कबीर कहते है, विचार कर देखो। हे मुरारी, ससार से मुक्त करो। कैसे तूँ हरि कौ दास कहायो, करि बहु भेषर जनम गंवायी ॥दिक॥ सुध बुध होइ भज्यी नहि साई काछथयो उघंभ उदर के ताई॥ हिरदे कपद हरि सूँ नहीं साँधो, कहा भयो जे अनहद नाच्यौ॥ झूठे फोकट कुलू मँझारा, राम कहै ते दास नियारा॥ भगति नारदी मगन सरीरा, इहि दिघि भव तिरि कहै कबीरा ॥२७८॥ शब्दार्थ-अनहद - बहुत अधिक | डर्यम + दंम। नियारा ८ न्यारा। दूसरा! अर्थ-कैसे तुम प्रभु दास कहाये ? तुमने तो अनेक वेश धारण कर (कही स्थिरता नहीं रखी) जन्म नष्ट कर दिया। सुधी और बुद्धिमानू होकर ईश्वर को नहीं भजा। पेट भरने के लिये दभ का बाना बनाया। हृदय मे कपट है। ईश्वर के प्रति भी सच्चे नही हो। क्या हुआ जो बहुत नाचते रहे ? कालिकाल मे झूठे और मुफ्त वाले निरर्थक भक्त बहुत है। राम कहने वाले दास दूसरे हे। सत कवीर का शरीर नारद द्वारा बताये भक्ति मार्ग में मग्न हे। इसी प्रकार भव सागर से मक्ति होगी | राम राह इहि सेवा भल माने; जै कोई राम नाम तत जंनि।टिक)। रे नर कहा पाले काया, सो तन चीन्हि जहों थे आया॥।। कहा विभूति जटा पद बाँबे, का जल पैसि हुतासन साधे॥ राम या दोई आछिर सारा, कहै कबीर तीहूँ लोक पियारा॥२७९॥ अर्थ-राम नाम के तत्त्व को जानना राम की सेवा है। प्रभु इसी से प्रसन्न रहते हैं। ऐ मनुष्य, शरीर को क्यो धोते हो ? उस शरीर को पहचानो जहाँ से यह शरीर आया है। भस्म लगाने और जगा समूह बॉधने से क्या फायदा है ? जल मे प्रवेश कर या आग मे पचाग्नि की साधना से क्या छाभ है ? दो अक्षर राम मे सब है। यह तीनो लोको को प्रिय है। इृहि दिदि राम सूँ त्यो लाइ। चरन पायें निरति करि, जिभ्या बिना गुण गाइ ।टिक। जहाँ स्वॉति बूंद दे सीप साइर सहजि मोती होइ। उन मोतियन मे नीर पीयी, पदन अंबर घोड़॥ जहाँ धरनि दे गगन भीजै, चंद सूरज मेल।

पंद ६२३५ दोइ मिलि तहाँ जुड़न लागे, करता इंसा केलि ॥ एक बिरव भीतरि दी चाली, कनक कलस समाई। पंच सुबदा आह बैठे, उदे भई बनराह ॥ जहाँ बिछट्यो तहाँ ठाग्यो, गगन बैठी जाइ। जन कबीर दटाऊवा, जिनि भारण लियौ चाइ॥२८०॥ अर्द-इस प्रकार राम से प्रेम करो। चरण को पख जैसे नचाओ। बिना जीभ के गुण गाओ। जहाँ स्वाति बूद, सीप, सागर नही है वहाँ सहज मोती होता है। अर्थात् शून्य मे पहुँचने 'पर मुक्ति मिरती है। उन मोतियो, मुक्ति अवस्थाओं में आनद जल भरा है। इस मोती को पवन (प्राण वायु) और आकाश मे धोया है। जहाँ मूलाधार धरती की वर्षा होती है और सहस्नार भीगता है। (कुडलिनी मूलाधार से उठकर सहस्रार में पहुँचती है)। इडा, पिगला (सूर्य चद्र) नाड़ियो का मिलन होता है। ये दोनो जहाँ मिछती है वही मुक्तामा की क्रीड़ा होती है। सुषुम्नावृक्ष के भीतर (प्राण शक्ति) नदी बह रही है। यह नदी सहस्तार रूपी ख्र्ण कलश मे प्रविष्ट होती है। ज्ञानेन्द्रियाँ रूपी पाँच सुग्गे विषय विरक्त होकर उपस्थित है। इनसे अन्त करण खपी वन मे प्रकाश (उदय) फैल गया है। आनद ज्योति जागी है। इस प्रकार आत्मा-परमात्मा का जिस सहस्ार से अल्गाव हुआ था वही पुन आ मिले है। सत कवीर प्रभु पथ के पथिक है जिन्होंने उत्साह के साथ इस प्रभु को ग्रहण किया है। जिभ्याँ बिनागुण गाइ- विभावना धरनि बरषै- विरोधाभास एक बिरष।. वनराइ- रूपकातिशयोक्ति तायें मोहि दाचदो न आदे; पेरो मन मंदला न बजावै ॥टिक)। ऊभर दा ते सूभर भरिया, द्रिष्णों गागरि फूटी। हरि चितित मेरो मंदला भीनो, भरम भोयन गयी छूटी ॥ ब्रह्म अगनि में जारी जु पिता, पाखंड अरु अभिमानौँ। हे काम चोलना भया पुराना, भोषे होइ न आना॥ जे बहु रूप कीये ते किये, अब बहु रूप न होई। थाकी सोज संग के बिछुरे, राम नॉम मसि धोई॥ जे थे सचल अचल डै थाके, करते बाद बिबार्द। कहै कबीर मै पूरर पाया, भया राम परसादं ॥२८१॥ अर्थ-मेरा मन नाचना नही जानता है। वह मर्दल नही बजाता है। (मुझे ससार कर्म मे अज्ञानी ही समझो)। जो चित्त ऊपर मुख (या बाहयोन्मुख) था वह सुभर होकर भर गया। तृष्णा की गगरी फूट गयी। तृष्णा समाप्त हो गयी। हरि का चितन करते-करते मेरा मर्दल भीग गया है। भ्रम का मोयन (वह आटा जो मर्दलू पर ध्वनि तेज करने के लिये लगाया जाता है) छूट गया है। ब्रह्माग्नि ज्ञानाग्नि) मे ममता, पाखड, अभिमान सब जल गये। काम जन्य यह शरीर पुराना हो गया। मुझसे अब दूसरा नही बजाया जा रहा है। अब बहुत से रूप बनाये सो बनाएं। अब बहुत रूप नहीं बन पाएँगे। सारी सजावट पूरी हो गयी। सगी बिछुड़ गये है। रामनाम से मेरी कालिमा धुल गयी है। चंचछ चल हो गया। अर्थात् मन की चचलता समाप्त हो गयी। वह पहले तर्क वितर्क करता था। चचलता समाप्ति के बाद विवाद समाप्त है। सत कवीर कहते है कि मैने पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त कर लिया है। सब राम कृपा से पूरा हो गया है। जलकार- रूपक तथा रूपकातिशयोक्ति

 अब क्या कीजै ग्यान बिधारा; निज निरखत गत ब्यौहारा ।टिक॥ जाघधिग दाता इक पाया, घन दिया जाह न खाया॥ कोई ले भरि सके न मूका, औरनि पै जानों चूका। तिस बाद्न न जीय्या जाई, वो मिले त घाले खाई॥ वो जीवन भला कहाहीं, बिन मूर्वों जीवन नाही॥ घसि चंदन बनखंडि बारा, बिन नेननि रूप निहारा॥ तिहि पूत शाप इक जाया, बिन ठाहर नगर बसाया॥ जौ जीवत ही मरि जाने तो पंच सयल सुख माने। कहै कबीर सो पाया, प्रभु भेठत आप गंवाया ॥२८२॥ शब्दार्थ-निज 5 आत्म तत्त्व। गत ब्यौहारा 5 सासारिक व्यवहार चलागया। मोह समाप्त हो गया। जाचिग 5 याचक। मूका मुट्ठी। चूका 5 चुक जाना। समाप्त हो जाना। बाझ वर्ज्य। बिना। बारा जलाया। सयल - प्रवाह। आप > आत्म। अर्य-अब ज्ञान का विचार क्या करे ? आत्म तत्त्व का दर्शन लेने पर ससार के सारे व्यवहार समाप्त हो गये। याचक और दाता दोनो एक हो गये है। भाव यह है कि साधनात्मक ऐक्य ने भेद को समाप्त कर दिया है। प्रभु प्राप्ति रूप धन को भोगा नही जा सकता है। उस अतहीन धन ने याचकता समाप्त कर दी है। इस धन को कोई मुट्ठी मे नही रख सकता है। अब दूसरो को माँगने की जरूरत समाप्त हो गयी है| प्रभु प्राप्ति रूप धन के बिना जीया नही जा सकता है। वह मिल जाय तो वह सासारिकता अर्थात् मोहादि के बधनो को खा डालता है। भगवत् प्राप्ति का जीवन ही भला जीवन है। बिना मरे, विषय विरक्त हुए जीवन का आनद नही है। थ चदन घिसने अर्थात् प्रेम की गहरी साधना करने से ज्ञानाग्नि प्रकट होती है। यह ज्ञानाग्नि सपूर्ण वासना वन को जला देती है (ज्ञानाग्नि सर्व कर्माणि भस्मसातू कुरुते तथा गी०४।३७) | आँखो के बिना भी सपूर्ण सृष्टि का अतर्वाहय रूप दीखता है। उस साधक पुत्र ने ज्ञान पिता को उत्पन्न किया है |(ज्ञान जीव से पूर्ववर्त्ती होने के कारण पिता और जीव द्वारा प्राप्त करने के कारण उससे उत्पन्न है।) इसी साधक ने स्थान (ठाहर) के बिना अर्थात् बिना किसी भीतिक आधार के भक्त, भगवान्, भक्ति और गुरु की दुनिया बसाई है। जो साधना मे जीते जी मोह मुक्त (मरना) होता है तो इद्रियो के पॉचो प्रवाह सुखी होते है। ईश्वर को तभी प्राप्त होता हे जब अहकार दूर हो जाय। अलंकार-वक्रोक्ति विशेषोक्ति विरोधाभास, विभावना अब मै पायौ राजा राम सनेही; जा बिनु दुख पावे मेरी देही ।टिक॥ बेद पुरान कहत जाकी साखी, तीरधि ब्रति न छूटे जंम की पासी ॥ जाये जनम लहत नर आगे, पाप पुंनि दोऊ भ्रम लागै॥ कहे कबीर सोई तत जागा, मन भया मगन प्रेम सर छागा॥२८३॥ अर्व-अब मैने प्रेमी राजा राम को प्राप्त कर लिया है। जिसके बिना मेरा मन दुखी रहता था। वेद, पुराण जिसका साक्ष्य देते हुए कहते है कि तीर्थ-ब्रत से यम का बन्धन नहीं कटता है। जिस प्रभु के कारण मनुष्य आगे दिव्य जीवन पाता है। पाप-पुण्य दोनो भ्रमो से मुक्त हो जाता है। सत कबीर कहते हैं कि उसके भीतर प्रेम तत्त्व जागा है। प्रेम शर से मन विध्य हो गया है। दिरहिनी फिरे है नाम अधीरा, उपजि बिनों कछू समझि ने परई, बॉच्न न जाने पीरा ।दिका।

पद ६४१ या बड़ बिथा सोई भल जॉने राम बिरह सर मारी | कैसो जाने जिनि यहु लाई, के जिनि चोट सहारी ॥ सँग की बिछुरी मिलन न पावै सोच करै अरु काहै। जतन करे अरू जुगति बिचारै, रटे राम दूँ चाहे ॥ दीन भई बूझे सखियन कौ, कोई मोही राम मिलावै। * दास कबीर मीन ज्यूँ तलपै मिले भर्लें सचु पावै॥२८४)॥ अर्प-प्रभु विरह मे राम नाम की प्राप्ति के लिये अधीर विरहिणी घूमती है। जिसमे यह विरह उत्तनन नही हुआ है उसे कुछ समझ मे नही आ सकता है। जैसे वध्या प्रसव के दर्द को नहीं समझती है। इस भारी व्यथा को वही अच्छी तरह जानता है जिसे राम विरह का शरण हगा है। या तो वह जानता है जिसने यह चोट की है या जिसने यह चोट सही है। प्रभु के संग से अछंग हो जाने पर मिलना कठिन हो रहा है। चिता और कराह व्याप्त है। यत्न करती है और युक्तियो पर विचार करती है। राम-राम रटती है। राम को चाहती है। दुखी होकर भ्रक्तो (सखियों) से पूछती है कि क्या कोई मुझे राम से मिला सकता है ? दास कबीर कहते है कि मछली के समान तड़पना है। मिलने पर ही सुख होगा। अलंकार-रूपक जा तनि बेदन जानैगा जन सोई, सारा भरम न जाने राम कोई ॥टेक॥ चषि दिन दिवस जिसी है संज्ना, ब्यावन पीर न जाने बंचझा।॥ द सूझे करक न लागे कारी, बैद बिधाता करि मोहि सारी॥ कहै कबीर यहु दुख कासनि कहिये, अपने तन की आपै ही सहिये॥२८५॥ शब्दार्थ-करक - बिजली । कारी 5 काली घटा। अर्थ-जिसके शरीर मे विरह का दर्द हुआ है वही जन उस दर्द की समझ सकता है। जिसका सारा समय भ्रम मे ही बीता है हे राम वह उस दर्द को नही जान सकता है। आँखो के अभाव मे जिसके लिए दिन भी रात है। बॉझ ब्याने का दर्द नही जानती है। जिसे बिजली नही दिखती है और काली घटा का बोध नही होता है। प्रभु (विधाता) वैद्य ही मेरा सपूर्ण कल्याण कर सकते है। सत कबीर कहते है कि यह दुख किससे कहा जाय ? अपने तन का दुख आप ही सहना होगा। अलंकार-उपमा जन की पीर हो राजा राम भल जाने; कहूँ काहि को माने ॥टेक॥ नैन का दु:ख बैन जॉने बैन को दुख श्रवना || प्यंड का दुख प्रान जाने, प्रान का ठुख मरना ॥ आस का दुख प्यासा जाने, प्यास का दुख नीर॥ भगति का दुख राम जॉने, कहै दास कबीर॥२८६॥ कि अन्य की पीड़ा राजा राम ही भली भॉति जानते है। कहनेपर कौन मानेगा? आँखों का दर जीभ, जीभ का कान, पिड का दुख प्राण जानते है। प्राणो का दुख मरण जानता है। आशा का दुख का जानती है। प्यास का दुख पानी को ज्ञात है। दास कबीर कहते है कि भक्ति (भक्त) का दुख राम तुम्ह दिन रा कबन सी कहिये: पाक लागी चोट बहुत दुख सहिये |टिक॥ वेध्यो जीव बिरह के भालै, राती दिवस मेरे उर साडै ||

छडर कवीर समग्र को जाने मेरे तन की पीरा, सतगुर सबद बहि़ गयी सरीरा। तुम्ह से बैद न हमसे रोगी, उपजी बिधा कैसे जीवे बियोगी। निस बासरि मोहि चितवत जाई, अजहूँ न आइ मिले राम राई॥ कहत कबीर हमकी दुख भारी, बिन दरसन क्यूँ जीवि मुरारी ॥२८७॥ अर्थ-हे राम, तुम्हारे प्रेम की चोट लगी है। वहुत दुख सह रहा हूँ। यह दुख दर्द तुम्हारे सिवा किससे कहा जाय ? जीव विरह के भाले से वेधा गया है। रात-दिन मेरा हृदय टीसता है। सदगुरु ने शब्द का जो बाण वेधा उससे उत्पन्न मेरे शरीर के दर्द को कौन जानता है ? , है राम, तुम्हारे जैसा वैद्य नही, मेरे जैसा रोगी नहीं। ऐसी विरह व्यथा जागी है कि उसमे वियोगी का जीना कठिन है। मेरा रात-दिन ध्यान मे ही वीतता है| आज तक राजा राम आकर नहीं मिले। हे मुरारी, हमे भारी दुख है। बिना तुम्हे देखे मे विरहिणी कैसे जी सकेँगी ? तेरा हरि नॉमे जुलाहा; मेरे राम रमण को लाहा।दिक॥ दस से सूत्र की पुरिया पूरी, चंद सूर दोइ साखी। अनत नॉव गिनि लई मजूरी हिरदा कबल भें राखी ॥ सुरति सुम्रति दोइ खूँटा कीन्ही आरंभ कीया बमेकी। ग्यान तत की नली भराई बुनित आतमा पेषी ॥ अबिनासी घन लई मंजूरी, पूरी थापनि पाई। रन बन सोधि सोधि सब आये, निकटै दिया बताई ॥ मन सूधा को कूच कियी है, ग्यान बिवरनि पाई। जीव को गाँठि गुठी सब भागी, जहाँ की तहाँ ल्यो लाई॥ बेटि बेगारि बुराई थाकी, अनभे पद परकासा।॥ दास कबीर बुनत सच पाया, दुख संसार सब नासा ॥२८८॥ शब्दार्थ- ठाहा > लाभ। हि अर्थ-हे प्रभु, तुम्हारा ही नाम जुलाहा है। मुझे तो रामनाम का लाभ है। दस सौ सूतो की पुरिया (पुरी अर्थात् देह) बनाई। चद्रमा और सूर्य (इडा-पिगला) को साक्षी बनाया। तुम्हारे' अनत नामो (सिक्कों) को गिन कर (जप कर) मजदूरी प्राप्त की। हृदय (कमल) मे इस मजदूरी को रखा। श्रुति, स्मृति इन दो खूँटो से विवेकारभ किया। ज्ञान रूपी तात की नली भराई। आत्म को बुनते देखा। अमृत्यु रूप धन को मजदूरी के रूप मे लिया। पूर्ण स्थापना प्राप्त की। जगलो, वनो मे खोज-खोज आया | कितु परम तत्त्व को पास मे ही बता दिया। शुद्ध मन ने यात्रा कर दी है। ज्ञान फैला मिला है। यात्रा उसी ज्ञान की प्राप्ति के लिये है। जीव के कर्म फल की गॉठ-गुत्थी जब खुली तो सारे विषय भाग गये। जहाँ का तहाँ ध्यान ढग गया है। अनुभव पद के प्रकाशन से बैठी बेगारी और बुराई दोनो थक गयी है। दास कबीर कहते है ससार वस्त्र को बुनना सुख प्राप्त करना है। दुख का सारा ससार, नष्ट हो गया। अलंकार-रूपक भाई रे सकहु त तनि डुनि लेहु रे; पीछे रामहि दोस न देहु रे॥टेक॥ करगहि एके बिनॉनी, ता भीतरि पंच परानी।॥| तामें एक उदासी, तिहि तणि बुणि सबै बिनासी | जे तूँ चौसठि बरिया धावा, नही होइ पंच सूँ मिलॉवा॥

पद जे तै पॉँस छसे ताँणी, तो सुख सूँ रह परॉणी॥ पहली तणियाँ ताणों पीछ बुणियों बॉणों || तणि बुणि मुरतब कीन्हों, तब राम रा पूरा दीन्ुहों॥ राछ भरत भट्ट संज्ञा, तारुणी त्रिया नन बंधा॥ कहै कबीर बिचारी, अब छोछी नली हँमारी ॥२८९॥ शब्दार्ब-राछ 5 करघे मे एक यत्र जिससे ताने का धागा ऊपर-नीचे होता है। अर्थ-अरे भाई, हो सके तो भक्ति का शरीर (संसार) रूपी वस्त्र तन-बुन लो। बाद मे _ (आयु पूर्ण हो जाने पर) राम को दोष न देना कि राम ने तुम्हे बहुत कम अवसर दिया है। यह शरीर करधा है। विनानी आत्मा भी एक ही है। उसके भी पॉच ज्ञानेद्रियाँ है। उस करघे मे एक उदासीन बैठा है। यह उदासीन ही तान-बुन कर सबको मिट देता है। यदि तू ६४ घड़ी भी दौड़ता रहे तो भी पॉचो ज्ञानेद्रियों से मिलना मतलब उन्हे संतुष्ट करना कठिन है। यदि तू पाँचो प्राणो को छह (मूलाधार) चक्रो से उत्यित करे तो तानना पूरा होता है। तभी प्राणी सुख से रह पाते है। पहले ताना ताना फिर बाना बुना। तान-बुन कर वस्त्र तैयार (मुर्तब) किया ; तब राजा राम ने उसकी पूरी कीमत चुकाई। कितु यहाँ तो रा भरते शामु हो गयी अर्थात् ऊपर-नीचे करते ही आयु समाप्त हो गयी। मन तो सदा तरुणी स्त्रियों से बधा रहा। ,सत कबीर विचार कर कहते है कि अब हमारी नही (करघा यत्र) खाली है। मतलब कि इस शरीर से कोई भरा काम नही हो सका। भक्ति का शरीर भी नहीं बुना जा सका। अलंकार-रुपकातिशयोक्ति ' बै क्यूँ कासी तजैं मुरारी, तेरी सेवा चोर भये बनवारी, ।टिक॥ जोगी जती तपी संन्यासी, मठ देवल बसि परसे कासी॥ तीन बार जे नित प्रति न्हाबे, काया भीतरि खबरें न पावे ॥ देवल देवल फेरी देहीं, नाव निरंजन कबहूँ न लेहीं ॥ चरन बिरद कासी कौ न देहूँ, कहे कबीर भल नरकहि जैहूँ॥२९०॥ अर्थ-संत कबीर जब काशी छोड़ने की बात कहते है तो बताते है कि कौन काशी नहीं छोड़ने की शक्ति रखता है ? , हे प्रभु, वे काशी कैसे छोड़ सकते है जो तुम्हारी सेवा के चोर है। अर्थ कि तुम्हारी सेवा नहीं करना चाहते है। (सेवा चोर काम चोर जैसा है)। योगी, यतती, तपस्वी, सनन्यासी आदि सभी मठ मदिर में बस कर काशी का स्पर्श करते है। जो रोज त्रिकाल स्नान करते है वे कभी शरीर के भीतर की खबर नही लेते है। मतर्ुब कि भीतर की शुद्धता पर ध्यान नही देते है। मदिर-मदिर मे फेरी देते है कितु प्रेम पूर्वक भगवान का कभी नाम नहीं छेते है। सत कबीर कहते है कि तुम्हारे चरणो की महत्ता मै काशी को कभी नहीं दूँगा। भले ही मुझे नरक जाना पड़े। (भगवान् से वड़ा स्थान कैसे हो सकता है ?) तब काहे भूली बनजारे; अब आयी चाह संगि हमारे |टिक।। जब हैँम चनजी लौंग सुपारी, तद तुम्ह काहे बनजी खएरी। जब हम बनजी एरमल कस्तूरी, तब तू काहे बनजी कूरी॥ अंपृत छाड़ि हलाइल खाया, लाभ लाभ करि मूँल गैंवाया। कहे कदीर हँग बनज्या सोई, जाँच आवागमन थे होई ॥२९१॥ अर्थ-ऐ च्यापारी, तव क्यो भूल की ? अब क्यो हमारे साथ आना चाहते हो ? जव हमने लौग सुपारी (भक्ति) का व्यापार किया तो तुमने 'खारी वस्तु (वासना) का

६४४ कबीर समंग्र व्यापार क्यों किया ? जब हमने परिमल और कस्तूरी का व्यापार किया तब तुमने कूड़े का व्यापार क्यो किया ? अमृत (भक्ति 5 राम रस) को छोड़ कर वासना जहर का भक्षण किया। लाभ के चक्कर मे मूल धन (प्रभु स्मरण) को भी खो बैठे। सत कबीर कहते है कि हमने उसका व्यापार किया है जिससे पुन आवागमन नही होता है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति परम गुर देखो रिंदें बिचारी; कछु करो सहाई हमारी | टेक॥ लवानालि तंति एक संमि करि जंत्र एक भल साजा। सति असति कछु नाही जानूँ, जैसे बजवा तैसे बाजा॥ चोर तुम्हारा तुम्हारी आग्या, मुसियत नगर तुम्हारा। इनके गुनह हमह का पकरी, का अपराध हमारा ॥ सेई तुम्ह सेई हम एके कहियत, जब आपा पर नाही जानो ॥ ज्यूं जल मै जल पैसि न निकसे, कहै कबीर मन मानों ॥२९२॥ शब्दार्थ-रिंदे > हृदय मे। लवा 5 लौका। ड: अर्थ-परम गुरु प्रभु, हृदय मे विचार कर देखो। कुछ मेरी सहायता करो। लौकी के तुम्बे, नली और तॉत का एक समान बाजा बनाया। सत्य-असत्य कुछ नही जानता। जैसे बजाया वैसे बजा। तुम्हारा चोर तुम्हारे घर आया। तुम्हारे ही नगर मे चोरी करता है। (माया प्रभु की ही शक्ति है। यहाँ माया और उसके प्रतिनिधि काम, क्रोधादि की ओर सकेत है)। गुनाह इनका है और सजा मै भोगता हूँ। हमारा तो कोई अपराध नही है। हम दोनो (आत्मा-परमात्मा) तो एक है। कितु जब तक आल और पर को नही जानते है तव तक भेद बना रहता है। जैसे जल जल मे प्रविष्ट होने पर पुन बाहर नही आ पाता है वैसे ही हमारा-तुम्हारा एकात्म सबंध है। इसी बात को सत कबीर का मन मानता है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति मन रे आहर कहाँ गयी; ताथे मोहि दैराग भयौ ॥टेक|॥ पंच तत ले काया कीन्ही, तत्त कहा ले कीन्हों। करमी के बसि जीव कहत है, जीव करम किनि दीन्हों॥ आकास गगन पाताल गगन दसी दिसा गगन रहाई ले। ऑनेंद मूल सदा परसोतम, घट बिनसे गगन न जाई ले॥ हरि मैं तन है तन मे हरि है, है पुनि नोही सोई॥ कहै कबीर हरि नाम न छाडू सहजे होई सो होई ॥२९३॥ अर्थ-ओ मन, आकर कहाँ गये हो ? इसी से मुझे वैराग्य हो गया है। यह शरीर पॉँच तत्त्वो से बना है। कितु तत्त्व कहाँ से बने; है ? कहते है कि जीव कर्म के बस मे है। कितु जीव को कर्म किसने दिया ? आकाश, पाताल, दसो दिशाओं मे आकाश ही आकाश है। पुरुषोत्तम प्रभु आनद मूलक है। शरीर के नष्ट हो जाने पर भी आकाश का नाश नही होगा। यह शरीर प्रभु मै स्थित है। प्रभु इस शरीर मे स्थित है। वह है भी, नही भी है। सत कबीर कहते है कि चाहे जो हो राम नाम नहीं छोड़ँगा। हमारे कौन सहै तिरि भारा; सिरकी शोभा सिरजन हारा।टिका। टैढ्वा पाग बड जूरा, जरि भये मसक कौ कूरा॥

पद ६४५ अनहद कींगुरी बाजी, तब काल दृष्टि भें भागी॥ कहे कबीर राम राया, हरि के रंगे मूड मुड़ाया ॥२९४॥ अर्थ-मेरे सिर की शोभा सृजनहार प्रभु है। अब मैं सिर की शोभा के लिये दूसरा कोई भार क्यो सहूँ ? टेढ़ी पगड़ी, बड़े जूड़े आदि (सपनन्नता) जल कर श्मशानके कूड़े हो गये | जब अनाहत की वीणा बजी तब काल की दृष्टि भययुक्त हो कर भाग गयी। सत कबीर कहते है कि प्रभु ही राजा है और उनके ही रग में हमने मूड़ मुड़ाया है अर्थात् उनका ही अनन्य भक्त हो गया हूँ। 22308 कार्ने कौन सैर देहा; यहु तनि जरि बरि है है षेहा टिक) चोवा चंदन चरचत अंगा सो त्तन जरत काठ के संगा॥ * बहुत जतन कर देह मुट्याई, अगिन दहै कै जम्बुक खाई॥ जा सिरि रचि रचि बॉधत पागा, ता सिरि चंच सेंचारत कागा।॥ कहि कबीर सब झूठा भाई, केवल राम रह्यो सो छाई॥२९५॥ अर्थ-अरे भाई, इस देह की इतना क्यो सजाते हो ? यह शरीर तो जल बल कर राख हो जायगा। चोवा, चदन अगो पर लगाते हो। कितु यह शरीर लकड़ी के साथ जलेगा। बहुत प्रयल कर इस को मोटा किया। कितु यह शरीर आग मे जलेगा या इसे सियार खायेगे। जिस सिर को रच रच कर पाग से सजाते हो उस सिर को कीए चोच से सजाते है।सत कबीर कहते है कि हे भाई, यह सब झूठा है, केवल राम में ध्यान, छगाओ | पैन धंधा ब्यौहार सब, माया मिथ्यात्राद। पॉणी नीर हलूर ज्यूं हरि नॉव बिना अपवाद ॥टिक॥ इक राम नाम निज साधा, घित चेति चतुर घट काचा || , इस भरमि न भूलसि भोली, बिधना की गति है ओली॥ जीवते कूँ मारन धावे, मरते को बेगि जिलाबे॥ जाके हुँहि जम से बैरी सो क्यूँ सोबे नीद घनेरी ॥ जिहि जागत नींद उपाबै, तिहि सोबत क्यूँ न जगावै।॥ जलजंत न देखिसि प्रानी, सब दीसे झूठ निदानी ॥ तन देवल ज्यूँ धन आए, पड़ियों पछिताबै पाए ॥ जीबत ही कछू कीजै, हरि राम रसाइन पीजै॥ राम नाम निज सर है, माया लागि न खोई॥ अंति काल सिरि पोटली, ले जात न देख्या कोई ॥| कोई ले जात न देख्या, बलि बिक्रम भोग ग्रस्या॥ काहू के संगि न राखी, दीसे बीसल की साखी॥ जब हंस पवन ल्यो खेले, पसरधी हाटिक जब मेले ॥ मानिख जनम अवतारा, नो डे है गारंबारा।। कबहूँ है किसा बिहॉनॉ, तर पंखी जेम उड़ानों॥ सब आप आप ऊँ जाई, को काहू मिलै न भाई॥ मूरिख मनिखा जनम गेंयाया, बर कौडी ज्यूं डहकाया॥ जिहि तन घन जगत भुलाया, जग राख्वौ परहरि माया॥ जल अंजुरी जीवन जैसा, ताका है किसा भरोसा॥ कहे कबीर जग घंधा, काहे न चेतहु अंधघा॥२९६॥

"६४६ कबीर समग्र शब्दार्थ-हलूर 5 लहर। अपवाद > व्यर्थ। काचा 5 कच्चा। ओठी 5 और। निदामी अत मे। ग्रस्या 5 ग्रास। हाटिक 5 बाजार | मानिख > मनुष्य | अर्थ-धन, धधा और सारे व्यवहार सब माया और मिथ्या है। ये सभी पानी की लहर समान आकर चढे जाते है। प्रभु नाम के बिना ये सब व्यर्थ है। एक राम नाम ही सच है। चतुर, चित्त मे चेत कर देखो। यह शरीर कच्चे घड़े के समान है। भोले व्यक्ति भ्रम में म . भूलो। विधाता की चाल कुछ और है। वह जीवित को मारने दौड़ता और मरते को तेजी जीवित कर देता है। जिसका यम से बैर है वह गहरी नींद मे कैसे सो सकता है ? जो ज कर भी नींद पैदा करता है, उसे सोने से भी क्यो न जगाया जाय ? मछली आदि जल जतुः की गति कोई नही देखता है। वे जतु तुरन्त तड़पने लगते है। पता रूगता है कि अत में २ झूठा है। यह शरीर मदिर है जिस पर कामनाओ की ध्वजा पहरा रही है। जब यह शरीर मिरे तब ध्वजा भी नष्ट हो जायगी। तव पछताना पड़ेगा। जीते जी कुछ कीजिए। हरि नाम रसायन पीजिए | राम नाम मूल तत्त्व है। इसे माया के चक्कर में समाप्त न कीजिए। अत काछ (मृत्यु समय) किसी को सिर पर गँठरी ले जाते नही देखा। राजा बलि, विक्रमादित्य, धारा नरेश भो ये सभी काल ग्रस्त हुए। किसी ने किसी का सग नही रखा। राजा वीसल ठेव भी इसके सा है (वे भी अकेले गये)। जब आत्मा (हस) पवन (प्राणो) के साथ खेलती है तब हाट का प्रस हो जाता है। मनुष्य जन्म वार-वार नहीं मिलता है। प्रभात होते ही पक्षी (जीवात्मा) उड़ जा है। सव अकेले अकेले जायँगे। कोई किसी से नही मिलेगा। ऐ मूर्ख मनुष्य, तुमने मनुष्य ज व्यर्थ ब्वाद कर दिया। कोड़ियो के मोल जला दिया। जो माया छोड़ कर ससार के तन धन भूछ गये। उन्होने जीवन को अजुली मे रखे पानी सा समझा। इस जीवन का क्या भरोसा सत कबीर कहते है कि यह ससार धधघा है। ऐ मनुष्य, शीघ्र क्यो नही चेतन होते हो ? अलंकार-रूपक रे चित चेति च्यंति लै ताही; जा च्यंतत आपा पर नाँही ॥दिका। हरि हिरदे एक ग्यॉन उपाया, ताथे छूटि गई सब माया॥ जहाँ नाँद न व्यंद दिवस नही राती, नहीं नर नारि नहीं छुल जाती॥ कहै कबीर सरब सुख दाता, अविगत अलख अभेद विधाता ॥२९७॥ अर्थ-रे चित्त, चेतन होकर उसकी चिता करो जिसके चितन से आप और पर का भा मिट जाता है। हृदय स्थित प्रभु ने ज्ञान उत्तन्न किया जिससे सभी प्रकार की माया दूर गयी। ज्ञान के उत्पन्न होने पर वहाँ नाद विदु और रात-दिन नही है। नर-नारी, कुल अं जाति भी नही है। सत कवीर कहते है कि प्रभु सर्व सुख देने वाले है, अविगत, अलक्ष्य, रहित विधाता हैं। सरवर तटि हंसणी तिसाई, जुगति विनाँ हरि जल पिया न जाईं॥टिक॥ पीया चाहे तो ले खग सारी, उड़ि न सके दोऊ पर भारी। कुंभ लीये ठाठी पनिहारी, गुण बिन नीर भरे कैसे नारी। का कहे कबीर गुर एक दुधि बताई, सहज सुभाइ मिले राम राई ॥२९८।॥ अर्थ-जीवात्मा हसिनी आनद सरोवर के तट का आनंद नही ले पा रही है। आनद 4 प्यासी हैं। हरिजल युक्ति विना नही पीया जा सकता है। पीना चाहे तो जीवात्मा पक्षी अप को पूर्णत प्रस्तुत

करे। किंतु प्रवृत्ति निवृत्ति रूप दोनो पख्ो के कारण उड़ना कठिन होगा जीवात्मा शरीर घट लिये खड़ी है। कितु गुणो के अभाव मे यह पानी नही भर पा रही है -आनद जल के लिये जिन गुणो की (रस्सी) की जरूरत है वे नही है। साधना गुण रहित है

पद कुडलिनी ने गुणों को उत्यित नही किया है। ६४७ सत कबीर कहते है कि गुरु ने बुद्धि बताई है। उससे वह सहज स्वभाव से राम को प्राप्त करेगी | अलंकार- रूपकातिशयोक्ति भरथरी भूष भया बेरागी। बिरह बियोग बनि यनि दूँढे, काकी सुरति साहिब सो लागी टिक हसती घोड़ा गाँव गढ़ गूडर, कनडा पाइक आगी। जोगी हूबा जाँणि जग जाता, सहज उँगीणी त्यागी॥ छन्न सिघासण चबर दुलंता, राग रंग बहु आगी। सेज रमेणी रंभा होती, तासों प्रीति न लागी ॥ सूर बीर गाढ़ा पग रोप्या, इह विधि माया त्यागी। सब सुख छाड़ि भज्या इक साहिब, गुरु गोरख ल्यो लागी। मनसा बाचा हरि हरि भाजे, ग्रंप्रप सुत बड़ भागी। कहे कबीर कुदर भजि करता, अमर भणे अणरागी॥२९९॥ अर्थ- भरथरी (भर्तृहरिं) राजा विरागी हो गये। प्रभु वियोग मे बन बन घूमे है। उनका ध्यान साहब मे लग गया है। हाथी, घोड़े, गभीर गढ को छोड़ कन्डे की आग को अपना लिया है। ससार को नाशवान देखकर योगी हो गये। उज्जैनी नगरी त्याग दी। क्षत्र सिहासन पर जिन्हे चवर डुलाया जाता था। बहुत से राग-रग आगे थे। शय्या पर रभा जैसी स्त्री थी। कितु उनकी उससे प्रीति नही हुई। इस वीर ने गभीर पद रख दिया है। इस प्रकार सारी माया त्याग दी। सारे सुखो को छोड़ प्रभु को भज रहा है। गोरखनाथ मे ध्यान छग गया है। गधर्व पुत्र सा सुदर भरथरी भाग्यवान् है। मन वचन से प्रभु के गुणो का बखान करता है। सत कबीर कहते है कि बेढ़गे (कुदर) भजने वाले भी कर्त्ता हो गये और (अणरागी), जिन्होने राग नही किया वे अमर हो गये। (राग केदारी) सार सुख पाइये रे, रंगि रम्हु आत्माराम ॥टेका॥ बनह बसे का कीजिये, जे मन नहीं तजै बिकार। घर बन तत समि जिनि किया, ते विरला संसार॥ : का जठा भसम लेपन किये, कहा गुफा मे दास। मन जीत्यों जग जीतिये, जौ दिषया रहे उदास॥ सहज भाइ जे ऊपजै, ताका किसा मॉन अभिमान। आपा पर समि चीनिये, तब मिले आतमाँ राम ॥ कहै कबीर कृपा भई, गुर ग्यान कह्या समझाई। हिरदे श्री हरि भेटिये, जे मन अनते नहीं जाह्॥३००॥ अर्थ-अपने को राम मे पूर्णत रग देने पर सुख का मूल पा जाओगे। बन मे बसने से क्या यदि मन से विकार का नाश नही लिया ससार मे ऐसा व्यक्ति विरल है। जगा, भस्म लेपन से क्या ? ही हुआ ? घर और वन को समान तत्त्व वाला जिसने बना गुफा बास भी व्यर्थ है। मन को जीतने से ही जग जीता जाता है। विषयों से उदास रहना ही मन जीतना है। जिसमे सहज भाव उत्नन्न्न होता है उसके लिए कैसा मान अभिमान ? जब आक्मतत्त्व और

६४८ कबीर समग्र परतत्त्व को समान समझते है तभी आत्माराम की प्राप्ति होती है। सत कवीर कहते है कि गुरु देव की कृपा हुई। गुरु ने समझाकर ज्ञान दिया। हृदय स्थित श्री हरि का दर्शन कीजिये जिससे मन दूसरी जगह न जा सके। है हरि भजन कौ प्रवॉन। नीथ पाँवे ऊँच पदवी, बाजते नीसान ॥टेका॥ भजन को प्रताप ऐसो, तिरे जल पाषान। अधम भील अजाति गनिका, चढ़े जात बिवॉन || नब लख तारा चले मंडल, ससिहर भान। दास घू की अटल पदवी, राम को दीबॉन॥ निगम जाकी साखि बोलै, कहै संत सुजॉन। जन कबीर तेरी सरन आयी, राखि लेहु भगवान ॥३०१॥ अर्थ-हरि भजन का महत्त्व यह है कि नीच व्यक्ति भी ऊँचा पद पा जाता है। उसके नाम का डका बजने लगता है। भजन के प्रताप से जल मे पत्थर भी तिर जाते है। (यहाँ सकेत नलनील द्वारा बॉधे गए रामेश्वरम् के पुल की ओर है)। अधम जाति भीलनी शबरी और गणिका (वेश्या) विमान पर सवार हो स्वर्ग जाती है। नौछाख तारामडल और सूर्य-चद्रमा भी चलते है। भक्त ध्रुव को अविचल पद रामचद्र के दरबार मे प्राप्त है। वेद जिसके गुणो के साक्षी है। सुजान सत जिसके गुणो का वर्णन करते है। भक्त कबीर आपकी शरण मे है। हे प्रभु रक्षा करो । चलौ सखी जाइये तहाँ, जहाँ गये पाँइये परमानंद ।टिक॥ यहु मन आमन घूमनों, मेरो तन छीजत नित जाह। च्यंतामणि चित चोरियो, तायै कछू न सुहाइ॥ सुनि सखी सुपने की गति ऐसी, हरि आए हम पास | सोबत ही जगाइया, जागत भये उदास ॥ चलु सखी बिलम न कीजिये, जब लग सौंस सरीर। मिलि रहिये जमनाथ सूँयूँ कहै दास कबीर ॥३०२॥॥| अर्थ-ऐ सखी (साधक) वहाँ चलो, जहाँ परमानद की प्राप्ति होती है। मेरा यह मन, अतर्मन घूमता है। प्रभु प्रेम की प्राप्ति मे व्याकुल है। मेरा शरीर नित्य क्षीण हो रहा है। चितामणि (प्रभु) ने मेरा चित्त चुरा लिया है। इससे और कुछ (विषय) अच्छे नही लगते है। सपने की बात सुनो- हरि मेरे पास आए। मुझ सोते को जगाया। जागते ही मैं उदास हो गया। जागते ही मै उस प्रभु का दास हो गया। उदासी का कारण अपनी स्थिति भी है। सत कबीर कहते है कि ऐ सखियो, चल्मे, देर मत करो। जीते जी चलो। मृत्यु के मालिक राजाराम से मिल ले। ताकि मृत्यु का हमारे ऊपर कोई वश न चढे। तेरे तन मन लागी चोट सठौरी। बिसरे ग्यान बुधि सब नाठी; भई विकल मति बौरी ॥टिक॥ देह बदेह गलित गुन तीनूँ, चलत अचल भई ठौरी। इत उत्त जित कित द्वादस चितबत, यहु भई गुपत ठगौरी ॥ सोई पे जाने पीर हमारी, जिहि सरीर यहु ब्यौरी। ह जन कदीर ठग ठग्यौ है बापुरी, सुंनि सेमाली त्यौरी ॥३०३॥ अर्थ-ऐ जीव, तेरे मन मे सठियानेवाली चोट ढुगी है। ससार ज्ञान सब भूल गया। बुद्धि नष्ट हो गयी। बुद्धि मे विकछता और पागठपन का आवेश है। मै देह से विदेह (देह की चिता कु

पद ६४६ से मुक्त), तीनो गुणो से रहित हुआ इसकी चचढता समाप्त हो गयी है। यह एक गुप्त और बा पे घटना घट गयी और मैं इधर-उधर दसो दिशाओ और अपनी ओर तथा प्रभु की ओर (बारह दिशाएँ- देख रहा हूँ) मेरे इस दर्द को वही जानता है जिसे यह दर्द हुआ है। दास कबीर प्रभु ठग से ठगा गया है। फठत उसकी त्यौरी चढ़ गयी है। दृष्टि शून्य साधना मे केद्रित हो गयी है । अलंकार-रूपकातिशयीक्ति मेरी आँखियाँ जान सुजान भई। देवर भरम सुसर सँग तजि करि, करि पीव तहाँ गई टिक बालपने के करम हमारे काटे जानि दई। बाह पकरि करि कृपा कीन्हीं, आप समीप लई॥ पानी की बूँद थे जिनि प्यंड साज्या, तासंगि अधिक करई। दास कबीर पल प्रेम न घठह, दिन दिन प्रीति नई॥३०४॥ अर्थ-मेरी आँखे ज्ञान प्राप्त कर सुदर ज्ञानवाली हो गयी। अज्ञान (देवर) और अविद्या (ससुर) का सग छोड़ कर प्रभु पति के यहाँ चली गयी। दैव वश मे बचपन के कर्मजाल समाप्त हो गये। प्रभु ने बॉह पकड़ कर कृपा की और अपने समीप बुला लिया। पानी की एक बूँद (वीर्य) से जिन्होने इस शरीर की रचना की है उनका साथ हो गया है॥ दास कबीर कहते है कि प्रभु से मेरा प्रेम एक क्षण के लिये भी नही घटेगा बल्कि दिन-दिन प्रीति नई-नई होगी। अलंकार-रूपकातिशयीक्ति हो बलिया कब देखेगी तोहि। अह निस आतुर दरसन कारनि, ऐसा बव्यापै मोहि ॥टेक॥ नैन हमारे तुम्ह कूँ चाहे, रती न माने हरि। बिरह अगनि तन अधिक जराबै ऐसी लेहु विचारि॥ सुनहूँ हमारी दादि गुसाँई, अब जिन करहु बधीर। तुम्ह धीरज मैं आतुर स्वामी, काचै भोड़े नीर॥ बहुत दिनन के बिछुरे माधो, मन नही बोधे घीर। देह छतों तुम्ह मिलट्ड्डु कृपा करि, आरतिवंत कबीर ॥३०५॥ अर्थ-हे प्रभु, मै तुम्हारी बरैया लेती हूँ। तुम्हे कब देखूँगा ? रात दिन तुम्हारे दर्शनो के कारण आतुर हूँ। मुझ मे तुम्हारा प्रेम इस प्रकार व्याप्त हो गया है। मेरी आँखे तुम्हे चाहती है। जरा भी पराजय स्वीकार करना' नही चाहती है। तुम विचार कर देखो। तुम्हारे विरह की आग अधिक परेशान कर रही है। हे प्रभु, मेरी न्याय (दादि) की प्रार्थना पर ध्यान दो। अब अधिक है वात बा और मैं तुम धर्यवान हो और मैं,आतुर हूँ। जल कच्चे बर्तन मे नही रह सकता है। वैसे कच्चे 34228 4038 248 बहुत देर तक नही टिकेगे। जा माधव, बहुत ग के कारण मन को घैर्य नही अलग पद ही है। कबीर आर्त्त है। कृपया वे दिन कब आवेंगे माह। जा कारनि हम देह धरी है, मिलिबौ अंगि लगाइ।टिक॥ हों जॉनूँ जे हिल मिलि खेलूँ तन मन प्रॉन समाह। या कॉमनो करी परपूरन, समरव हो राम राइ॥ मॉँहि उदासी साधै चाहे, चितवत रैनि बिहाइ।

 सेज हमारी स्यंघ भई है, जब साऊँ तद खाद ॥ यह अरदार दास की सुनिये, तन की तपनि बुझाइ | कहे कबीर मिले जे साई, मिलि करि मंगल गाइ ॥ ३०६॥ अर्थ-हे माँ, वह दिन कब आएगा ? जिस प्रभु से मिलने के लिये मैने शरीर धारण किया है उससे कब मिदूँगा ? मै प्रभु से हिल-मिल कर खेलता हूँ। तन, मन, प्राण मे समाये हूँ। हे राजारामं, तुम समर्थ हो। मेरी यह कामना पूर्ण करो। है माधव, तुम मेरी ओर से उदासीन न हो। इन्तजार ही रात बवीतती है। शय्या सिंह हो गयी है। सोने पर खाने लगती है। दास की प्रार्थना (अरदास) सुनिये। शरीर का दुख दूर कीजिए। संत कवीर कहते है कि प्रभु की प्राप्ति पर मंगल गीत गाओ | बाल्हा आव हमारे गेह रे; तुम्ह विन दुछिया देढ़ रे । दिका॥। सब को कहे तुम्हारी चारी, मोकी इसे अदेह २। एकमेक दै सेज व सोवे, तब लग कैसा नेह रे। आन भाव नीद न आज, ग्रिह बन धरे न धीर रे। ज्यूं कॉमी की काम पियारा, ज्यूँ प्यासे यह नीर रे ॥ है कोई ऐसा परउपगारी, हरि से कहे सुनाए रे। ऐसे हाल कबीर भये है, बिन देखे जीव जाड् रे॥३०७॥ अर्व-हे बालक, तुम हमारे घर आओ। तुम्हारे विना यह देह अत्यत दुखी है। सभी लोग कहते है कि मैं तुम्हारी स्त्री हूं। मुझे यही अदेशा है कि तुम्हारे मन मे यह बात है या नहीं ? एक साथ होकर शब्या पर नही सोये तो केसा प्रेम ? अन्न अच्छा नहीं लगता है। नींद नहीं आती है। घर वन मे कही भी घरर्य नही रख पाया हूँ। जैसे कामी को काम, प्यासे को पानी प्रिय है वैसे ही प्रभु प्रिय है। क्या कोई परोपकारी है जो प्रभु से मेरा दर्द कह सके ? दास कबीर का हाल ऐसा हुआ है कि बिना प्रभु को देखे प्राण जा रहे है,| माधी कब करिहो दाया। काम क्रोघ अहंकार ब्यापे, नो छूटे माया ॥टिक॥ उत्तपति ब्यंद भयी जा दिन थे, कबहूँ सच नहीं पायी। पंच चोर सेंगि लाह दिए है, इन सेंगि जनम गँवायों । तन मन उस्यी भुजंग भोमिनी, लहरी वार न पारा । सो गारडू मिलयो नही कबहूँ, पसरधी विष बिकराला॥ कहै कबीर यहु कासूँ कहिये, यहु दुख कोई न जाने। देहु दीदार बिकार दूरि करि, तब मेरा मन मोने ॥३०८॥ अर्थ-हे माधव, कब दया करोगे ? काम, क्रोध, अहकार व्याप्त हो रहे है। माया नहीं छूट रही है। जब से विदु द्वारा उत्त्ति हुई, कभी सुख नही पाया है। काम. क्रोध छोभ, मोह, मद मत्सर ये पॉच चोरो के साथ जीवन बीत गया। स्त्री रूपी सर्पिणी ने तन-मन को डेंस लिया है। उसके जहर की लहर का वार पार नही है। विष उतारनेवाढा गारुडी कभी नही मिला। फलत विकराल विष फैल गया। सत कबीर कहते है कि यह दुख किससे कहे। इस दुखको नही कोई जानता है। हे प्रभु, विकारो को दूर कर दर्शन दो। तभी मेरे मन को सतोष होगा। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति में बन भूला तूँ समझाईह। थित चंचल रहै न अटक्यौ, विधे बन कूँ जाई ॥टेक।। संसार सागर माँहि भूल्यो, थक्यो करत उपाह।

तल पद ६५१ - मोहनी माया बाघनी ये, राखि ले राम राह॥ शोपाल सुनि एक बीनती, सुमति तन ठहराई। कहै कबीर यहु काम रिप है, मारे सबकूँ ढाइ॥३०९॥ अर्थ-हे प्रभु, मै विषम वन मे भूछा भटक रहा हूँ। तुम मुझे समझाकर रास्ते पर ले आओ। चचल चित्त कही अटका रहना नही चाहता है। विषय रूपी वन को जाता है। ससार सागर में भूला है। धका है। उपाय कर रहा है। मोहनेवाढी माया बाधिन है। हे राम, इस बाघिन से बचा लो। हे गोपाल मेरी एक बिनती सुनो। सुमति मन मे ठहरे। सत कबीर कहते है कि कामदेव दुश्मन है। यह सबको मार कर ढह रहा है। भगति दिन भोजलि डूबत है रे। बोहियथ छाड़ि बैसि करि डूँडे, बहुतेके दुख सहै रे |टिक।॥ बार-बार जम पै उहकायै हरि को डै न रहे रे। चोरी के बालक की नाईं, कासूँ बाप कहे रे॥ नलिनी के सुबदा की नाई, जग सूँ राधि रहे रे। बंसा अपनि दंस कुल निकसे, आपषहि आप दहै रे॥ खेवट बिनों कवन भो तारे, कैसे पार गहै रे। दास कबीर कहे समझादे, हरि की कथा जीबे रे॥ राम कौ नाव अधिक रस मीठो, दारंबार पीबै रे ॥३१०॥ , अर्य-भक्ति के बिना लोग ससार सागर मे डूब रहे है। प्रभु रूप जहाज को'छोड़ कर बैठा है और डाड (डूँडै) पर बैठ कर बहुत दुख सहता है। प्रभु भक्त नही होने का फल यह है कि तुम्हे बार-बार यम के फदे मे पड़ना पड़ता है। जन्म-मृत्यु के चक्र मे फेंसते हो। चोरी से जन्मा बालक किसे पिता कहे ? ऐसी ही स्थिति भक्ति के अभाव मे मनुष्य की हो रही है। मै नाल मे फँसे सुग्गे के समान ससार से लिपटा रहा। बॉस अपने ही कुल के बॉस से दग्ध होता है। ऐसे ही मनुष्य अपनी प्रवृत्तियो से नष्ट होता है। ' बिना प्रभु खेवट (नाविक) के कौन है जो भव सागर पार करेगा ? सत कबीर कहते है हे हरि कथा जीव का आधार है। राम का नाम रस अधिक मीठा है। लोग उसे बार-बार पीते ॥ 3 चलत कत टेढी टेढ़ी रे। नए ठुवार नरक धरि मूँदे, तू दुरगंधि को बैठी रे॥ जे जारे तो होई भसम तन रहित किरम जल खाई। सूकर स्वॉन काग की भखिन, तामे कहा भंलाई॥ फूटे नैन हिरदे नाही सूचे, मति एके नही जॉनी। माया मोह ममिता सूँ बॉध्यो बूडि मुवी बिन पॉनी॥ बारू के घरवा मे बैठो, चेतत नहीं अयॉनों। कहे कबीर एक राम भगति बिन, बूड़े बहुत सयाना ॥३११॥ शब्दार्य-बैठो > बाड़ा। भखिन > भक्षण। के मनुष्य, अहकार मे टेढा-टेढा क्यो चलते हो ? तुम्हारा यह नरक सा शरीर नव द्वारो से बद है। तुम दुर्गन्ध का बाड़ा हो। इस शरीर को जलाओ तो भस्म होता है। रहता है तो जल के कीड़े खाते है। यह शरीर शूकर, श्वान और कौओ द्वारा भक्षण किया जाता है| इसमे कोन सी भलाई है? ज्ञान की आँखे फूटी है। हृदय मे कुछ नही सूझता है। बुद्धि

६५२ कबीर समग्र कुछ नही समझती है। माया मोह, ममता से बँधे हो। चाहे तीर्थों मे कितना ही डूबा कुछ होने वाला नही है। ऐ अज्ञानी, तुम बालू के घर मे बैठे हो। चेतते क्यो नही ? सत्त कबीर कहते है कि राम की भक्ति के विना बहुत से बुद्धिमान नष्ट हो गये। अलंकार- बूडि मुवी बिनुपानी-विभावना | कहै कबीर सयाना-विरोधाभास | अरे परदेशी पीव पिछोनि। कहा भयी तोकी समझि न परई, लागी कैसी दॉलि ॥टिक॥ भोमि दिडाणी मैं कहा रातो, कहा कियो कष्टि मोहि। लाहै कारनि मूल गमावे, समझावत हूँ तोहि ॥ $; निस दिन तोहि क्यूँ नींद परत है, चितवत नही तोहि ॥ जम से बैरी सिर परि ठाढ़े पर हथि कहाँ बिकाह॥ झूठे परपंच मै कहा लागी ऊठे नॉही यालि। कहे कदीर कछू बिलम न कीजै, कोने देखी काल्हि)३१२॥ अर्थ-अरे परदेभी प्रिय को पहचानो। तुम्हे कैसी खराब आदत पड़ गयी है ? क्या हो गया यह तुम्हारी समझ मे नही आया है ? तुम दूसरे (बिडाणी) की भूमि मे अनुरक्त हो गये। यह तुमने कया किया? तुम्हे दिन-रात कैसे नीद आती है ? तुम्हे कुछ दिखाई नहीं पड़ता है कि यम जैसा दुश्मन तुम्हारे सिर पर खड़ा है। तुम्हारे हाथ मे क्या बिक रहा है ? झूठे प्रपचो मे क्यो लगे हो ? उठ कर चलते क्यो नही ? सत कबीर कहते है कि कुछ विहूब मत करो। कल क्या होगा कौन जानता है ? अलंकार-रूपकातिशयीक्ति भयो रे मन पहुँनड़ी दिन चारि। आजिक काल्हिक माँहि चलेगी, ले कि। हाथ सँदारि॥टेक) सौज पराई जिनि अपणाबै, ऐसी सुणि किन लेह। यहु संसार इसी रे प्राणी, जैसी घूँबरि मेह ॥ तन धन जीवन अँजुरी को पानी, जात न लागै बार! सैबल के फूल परि फूल्यी, गरव्यो कहाँ गेंबार। खोटि खाट खरा न लीया, कछू न जॉनी साटि। कहै कबीर कछु वनिज न कीयी, आयी वे इष्टि हाठि॥३१३॥ अर्थ-ऐ मन, तुम चार दिनो के पाहुन हो। आज-कल मे जाना है। हाथ क्यो नही सम्हाल लेते हो? दूसरे के सामानो (सरीज) को मत अपनाओ। यह बात क्यो नही सुनते हो" ससारकी सारी सपत्ति दूसरेकी है। प्रभु की है। यह ससार काले बादलो के समान नाशवानू है। तन, धन, जीवन अऑजुरी मे रखे पानी के समान कुछ क्षणो मे बह जानेवाला है। ख़ोट-खाट को छोड़ कर खरा (अच्छा) सौदा नही किया। कुछ भी व्यापार करना नही जानते हो। सत कबीर कहते हैं कि इस ससार बाजार मे आकर भी कुछ भी व्यापार नही किया। अलंकार--उपमा, रूपकातिशयोक्ति «मन रे राम नामहि जाँनि। थरहरी घूंनी परधी मंदिर सूतो,खूँटी तानि ॥दिका॥ रह सैन तेरी कोई न समझे, जीभ पकरी ऑनि। पाँच गज दोवटी मांगी, चूँन लीयो सानि॥

पद ६५३ दैसंदर पोषरी हॉडी, चल्यी लादि पलानि। भाई दँध बोलह बहु रे, काज कीनी आनि॥ कहे कदीर या मैं झूठ नहीं, छाड़ि जीव की बॉनि॥ शाम नाम निसंक भजि रे, न करि छुछ की कॉनि ॥३१४॥ अर्थ-मन रे, राम नाम के महत्त्व को समझो। थरनिवाले खभों पर रहने के कारण मदिर गिर गया। शरीर नष्ट हो गया। कितु तुम अभी चादर (खूँट) तान कर निश्चित सोये हो। तुम्हाए जीभ को यम ने पकड़ लिया है। फलत आवाज नही निकल रही है। तुम इशारे से बात कहते हो। कितु तुम्हारे इशारे को कोई समझता नहीं है। पॉचगज का दुपट्टा (दोवटी) मॉगा। कुछ आटा सान लिया। आग के पोषर (आहर) पर हाड़ी चढ़ा दी। लाध-पढान कर ससार यात्रा पूरी की। बहुत भाई बन्धुओ को इकट्ठा किया। उन्होने तुम्हारा क्रिया कर्म (काज) किया ॥।। सत कबीर कहते है मृत्यु, श्मशान और तत्सबधी कार्य ही सत्य है। तुम अपनी आदते छोड़ो। नि.शक होकर राम नाम भजो। किसी कुल की मर्यादा का ध्यान मत रखो। कुल की' मर्यादा व्यर्थ है। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति .' प्राणी लाल औसर चल्यी रे बजाइ। मुठी एक मटिया मुठि एक कठिया, संग काहू के न जाई ॥टेक।॥ देहली लग तेरी मिहरी सगी रे, फलसा लग सगी माह। मड़ुहट हूँ रुख लोग कुटुंदी, हंस अकेलो जाइ॥ कहाँ वे लोग कहाँ पुर पाटण, बहुरि न मिलदो आइ। कहै कबीर जगनाथे भजहु रे, जन्म अकारव जाइ॥३१ ५॥ , अर्थ-ऐ जीव, इस ललित अवसर का वाजा बजाकर जा रहे हो। तुम्हारी घर-गृहस्थी,रगी मुह्ठी भर (छोटी) मठिया और यह मुट्ठी भर का शरीर (कठिया) किसीके सग नही जाप्रे हैं। हे तक सभी स्त्री, फासछा तक माँ, मरघट तक कूटुम्बी छोग जाते है। बाद मे हस (आजमा) अकेला जाना होता हैं। पुन उन लोगो, उन गॉव-नगर से मिलना कहाँ सभव है ? प्त कबीर कहते है कि जीवन च्यर्थ बीत रहा है। प्रभु जगन्नाथ का भजन करो। राम गति पार न पावै कोई! च्यंद्रामणि प्रभु निकटि छाड़ि करि, भ्रमि मति बुधि खोई ।दिक। तीरथ बरत जपै तप करि करि, बहुत भाति हरि सोधै। सकति सुहाग कही क्यूँ पावै, अछता कंत विरोध ॥ नारी पुरिष दसे इक संगा, दिन दिन जाई अबोलै। तजि अभिमान मिलै नही पीब ूँ, ढूँढ़त बन बन डोलै॥ कहै कबीर हरि अकथ कथा है, बिरला कोई जाने॥ प्रेम प्रीति बेद्दी अंतर गति, कहूँ काहि को माने ॥ ३१६॥ अर्थ-राम की गति का कोई पार नही पा सकता है। चितामणि (इच्छा पूर्ण करनेवाला) प्रभु को छोड़ कर व्यर्थ मेघूमकर बुद्धि नष्ट कर रहे हो। तीर्थ, व्रत, जप, तप कर-कर अनेक प्रकार से प्रभु की ख़ोज की। कितु शक्ति का सौभाग्य कहाँ से प्राप्त करोगे? कत्त प्रिय परमात्मा के पास रहने पर तुमने उनकी उपेक्षा की। पुरुष और प्रकृति एक साथ बसते है। कितु सदा बिना वोले ही, परिचयशीन समय बीतता है। व्यर्थ वन-वन घूम रहे हो? अभिमान छोड़ कर प्रिय प्रभु को भजो।

द्ण्ड कबीर समग्र सक कबीर कहते है कि यह कथा कहने मे कोई समर्थ नही है। कोई विरा इसे समझता कह अतर (हृदय) तो प्रभु प्रेम से विद्ध है। किसी को कहता हूँ तो वह मानने को तैयार नही है। राम बिन संसार धंध कुहेरा; सिरि प्रगव्या जम का फेरा । टिक॥ देव पृजि पूजि हिंदू मूये, तुरुक मुये हज जाई॥ जटा बाँधि बाँघि जोगी मूये, इनमे किनहूँ न पाई॥ कबि कदीने कविता मूये, कापड़ी के दारी जाई। केस टूँधि लूँयि भूये बरतिया, इनमे किन्हूँ न पाई॥ घन संघते राजा मूये अर ले कंचन भारी। बेद पढ़े पढ़ि पंडित मूये, रूप-भूले मुई नारी ॥ जे नर जोग जुगति करि जाने, खोजे आप सरीरा। तिनकँ मुझति का संसा नाही कहत जुलाह कबीरा ॥३१७॥ अर्थ-राम के बिना यह ससार धुध कुहरा है। सबके सिर पर यमका फेरा पड़ा है। यम सब को घेर रहा है। देवताओं की पा करके हिंदू और हज जाकर मुसलमान मर गये। जटा बॉध कर योगी मर गये। इनमे ने प्रभु को नही पाया। कवि कविता करने मे परेशान है। कापड़ी केदार जाकर परेशान है। जैनी बार नोच रहे है। इनमे से किसी ने परमत्रह्म को नही पाया है। भारी सोने का धन इकट्ठा कर राजा मर गये | वेद पढ़-पढ़ कर पडित मर गये। स्त्रियाँ रूप के अभिमान में भूली रही। जिन्होंने योग के यल से शरीर में ही ईश्वर को ढूँढ़ा उनकी मुक्ति में सशय नही है। यह बात जुलाहा कबीर कहते है। कहूँ रे जे फहिदे की होइ। । नो को जाने नो को माने तापे अधिरज मोहि ।टिक। अपने अपने रंग के राजा, मॉनत नाही कोइ | अति अभिमान लोभ के घाले, अपनपी खोह॥ मैं मेरी करे यहु तन खोरो, समझत नहीं गँवार | भीजलि अधफर थाकि रहे है, यूड़े दहुत अपार॥ मोहि आग्या दई दयाल दया करि काह उहूँ समझाह। कहै कबीर मै कहि कहिं हार्यों, अब मोहि दोष न लाइ॥३१ ८॥ अर्थ-तब कोई बात कही जाती है जब कोई मानने के लिये तैयार हो। कोई जानता नही। इसीलिये कोई मानता नहीं। इसी से मुझे आश्चर्य होता है। सभी अपने अपने रग में रगे राजा है। कोई दूसरे की सुनना नही चाहता है। अत्यत अभिमान मे, लोभ मे पड़े आत्तमतरत्त्वं को खो दिया है। गेंवार समझता नही। मै हूँ यह मेरा है, यह कहते हुए इस शरीर को नष्ट कर दिया। ससार सागर मे अधूरी सफलता पाकर थक गये है। अपार छोग डूब गये है। दयालु परमान्मा ने मुझे कृपा कर समझाने का आदेश दिया है। मै सबको कह कर हार गया। अब मुझे कोई दोष न दे। मैने अपना काम किया है। अलंकार-रूपक एक कोस घन मिलांन न मेला। बहुतक भांति करे फुरमाइस, है असवार अक्केह्ला टिका! जोरत कटक जु घेरत सब गढ़, दरतब झेली झेला। जोरि कटक गढह तोरि पातसाह, खेलि चल्यी एक खेला॥ झूँद सुकोम जोग्हें के घर मैं, कछू एक दिवस खटनों।

पद द्दष्ण आसन राखि विभूति साखि दे, फुनि ले माठी उडांनों॥ था जोमि की जुगति जूँ जाने, सो सतशुर का चेला। कहे: कबीर उन गुर की कृपा थें, तिनि सब भरम पछेला॥३१९॥ अर्थ-वन के एक मे न मिलान हुआ, न मेला ढगा। अनेक प्रकार की फरमाइश की। कितु यह तो अकेला समय है। सेना इकट्ठी की। गढ़ो को घेरा। अनेक प्रकार के सासारिक कार्या मे रहे। ससार के मुकाम (स्थान) से चले (कूँच किया)। योग के घर मे पहुँचे। यहाँ कुछ दिन परिश्रम किया। आसन पर शरीर को रखा। विभूति (राख) का साक्षी रहा। फिर इस मिट्टी की ठेकर आत्मा पक्षी उड़ गया। ब्रह्म मे मिठ गया। इस योगी की युक्ति को जो जानता है वह सदगुरु का शिष्य है। सग कबीर कहते है कि गुरु की कृपा से सारे भ्रम पीछे छूट गये। अलंकार-रूपक (राग सारू) मन रे राम सुमिरि, राम सुमिरि, राम सुभिरि भाई। राम भाम सुमिरन बिने, सूडत है अधिकाई ॥टिक) दारा सुत ग्रेह नेह, संपति अधिकाई ॥ यामें कछु नॉहि तेरी, काल अवधि आई॥ अजमेल गज गनिका, पतित कर कीस्हों। तेऊ उतरि पारि गये, राम नाम लीन्हों॥ स्वॉन सूकर काग कीन्हों, तऊ लाज न आई। राम नाम अंमृत छाड़ि, काहे दिए जाई॥ तजि भरम करम विधि नखेद, राम नाम लेही। जन कयीर गुर प्रसादि, राम करि सनेही ॥३२०॥ अर्थ-मन रे, भाई, राम का स्मरण करो। करो। राम नाम स्मरण के बिना सब पूर्णत डूब रहे है। स्त्री, पुत्र, गृह का प्रेम और अधिक सपत्ति, इनमे तुम्हारा कुछ भी नहीं है। काल की अवधि आ गयी है। राम नाम लेने से अजामिल, हाथी, वेश्या आदि सब मुक्त हो गए। तुम्हें प्रभु ने कुत्ता, सूअर, कीआ बनाया (इनमे जन्म हुआ) तो भी तुम्हे ठज्जा नही आई। राम नाम रूप अमृत को छोड़ कर विषय विष का सेवन क्यो करते हो? भ्रम-कर्म, विधि-निषेध को छोड़कर रामनाम जपो। भक्त कडीर कहते है कि गुरु कृपा से ही मुक्ति होगी। राम से स्नेह करो | राम नाम हिरदे धरि, निरमोलिक हीरा। सोभा तिहूँ लोक, तिमर जाय विविध पीरा टेक ब्रिसनों ने लोभ लहरि, कॉम क्रोध नीरा। _ मद मछर कछ मछ, हरथि सोक तीरा॥ कॉमनी अर कनक भवर, बोये लहु ढीरा। , अर्ख-हे जीव 33025: हा हैक रण हक +-है जीव, हू राम नाम हीरे को धारण करो। इससे अज्ञान हक और तीनो प्रकार (देह, देव, भूत) की पीड़ा दूर हो जाती है। तष्णा नदी (नें) है। लेभ एहर है। काम, क्रोध जल है। मद, मत्तर कच्छप और मत्स है। हर्ष और शोक किनारे

दष्द कबीर समग्र है। स्त्री और खोना आवर्त (भँवर) है। बहुत से वीर डूब गये। सफलता तब मिलती है जब प्रभु की नौका और गुरु शुकदेव (कीरा) नाविक हो। अलंकार- रूपक चलि मेरी सखी हो, बोलगन राम राया। जब तक काल बिनासे काया ॥टेका। जब लोभ मोह की दासी, त्तीरथ ड्रत न छूटे जंम की पासी। आवैंगे जम के घालैगे बाँटी; यहु तन जरि घरि होइया माटी ॥ कहै कबीर जे जन हरि रंगिराता, पायौ राजा राम परम पद पाता॥ ३२२॥ शब्दार्थ-वोलगन - अवलग्न| अवलम्बन।| लछटकना। पासी 5 पाश। बधन। घाछैगे बॉटी > रास्ता बॉट देगे। अर्थ-ऐ साधक सखी, चलो। राजा राम मे अवलबित हो जाओ। जब तक काल शरीर को नष्ट न कर दे। छोभ-मोह का दास्य भाव छूट न जाय। तीर्थ व्रत जो यम के बधन है से मुक्ति न मिल जाय उसके पूर्व ही राम से जुड़ जाओ। | यम के दूत आकर तुम्हारा रास्ता रोक देगे। यह शरीर जलकर मिट्टी हो जायगा। सत कबीर कहते है कि जो प्रभु प्रेम मे मग्न है वह राजा राम के परम पद को प्राप्त करता है। (राग टोड़ी) तू पाक परमानंदे। पीर पैकवर पनहु तुम्हारी, मे गरीब क्या गंदे ॥टेक॥ तुम्ह दरिया सबही दिल भीतरि परमानंद पियारे। नैक नजरि हम ऊपरि नाँही, कया कमिबखत हमारे॥ हिकमति करे हलाल बियारै, आप कहाबे मोटे। चाकरी चोर निवाले हाजिर, साई सेती खोटे ॥ दौंदम दूबा करद बजाबे मै क्या करूँ भिखारी। कहै कयीर मै ढूंदा तेरा, खालिझ पनह तुम्हारी ॥ ३२३॥ शब्दार्थ-पाक - पवित्र। पीर > धर्मगुरु। पैकबर 5 पैगम्बर। गदे 5 भिक्षुक। पनह शरण। पनाह। नैक 5 थोड़ा। कमिबखत > दुर्भाग्य | हिकमति 5 युक्ति| हछाल # शरीअत के अनुसार किया जानेवाला कर्म। दाइम 5 दायम। हमेशा। दूवा 5 दुआ। करद - टैक्स। निवाले ल# भोजन कौर | अर्ध-हे प्रभु, तुम पवित्र परमानद हो। पीर, पैगम्बर सब तुम्हारी शरण मे है। मै बेचारा भिखारी क्या हूँ ? हे प्यारे परमानद, तुम सभी दरियादिल्ञो (उदारदिलों) के भीतर हो। मेरे ऊपर तुम्हारी थोड़ी भी निगाह नहीं है। हमारा कैसा अभाग्य है। जो बुद्धि से हलाल करते है वे बड़े (मोटे) कहे जाते है। प्रभु से भी बुरा करने वाले चाकर चोर है। वे भोजन के समय हाजिर हो जाते है। वे हर अवसर पर दुआ का टैक्स (कर) देते है। मुझ भिखारी के पास ती वह भी नही है। सत कबीर कहते है कि हे प्रभु मै तुम्हारा सेवक हूँ। तुम्हारी शरण मे हूँ। अंय हप जगत गौहन तै भागे, जग की देखि गति रामहि दूँरि छागे । टिक)॥ अयॉनपने ये बहु गौराने, समझि परी तब फिर पछितानें ॥

पद द्दष्छ लोग कहौ जाके जो मनि भाव, लहै भुवंगम कौन डसाबै॥ कबीर बिचारि इहै डर डरिये, कहै का हो इहों रे मरिये ॥३२४॥ अर्थ-अब मै ससार के पीछे चलने से भाग निकला हूँ। ससार की गति देख कर राम में ढल कर ठग गया हूँ। अज्ञान से बहुत पागलपन किया। समझ में आया। तब फिर पछता रहा हूँ] हि जिस व्यक्ति को जो अच्छा गे वह कहे। सर्प को प्राप्त कर उससे अपने को कौन कंटवाएगा ? सत कबीर विचार कर कहते है कि यहाँ डरते रहिए। किसी के कहनेसे क्या होता है ? क्या होगा ? इसी साधना मे मृत्यु प्राप्त कीजिए | (राग भैरूँ) ऐसा ध्यान धरी नरहरी; सबद अनाहद च्यंत करी |टिका। पहले खोजी पंचे बाइ बाइ ब्यंद ले गयन समाह॥ गगन जोति तहाँ त्रिकुटी संधि, रवि ससि पवनों मेल बंधि॥ मन पिर होइ त कबल प्रकासे, कवला माँहि निरंजन बासे॥ - सतगुरु संपद खोलि दिखाबै, निगुरा होइ तो कहाँ बतावै। सहज लछिन ले तजो उपाधि, आसण दिद निद्रा पुनि साधि॥ पुद्ुप पत्र जहाँ हीरा मणी, कहै कबीर तहाँ ञ्रिभुवन घणी ॥३२५॥ अर्थ-नरहरि का ऐसा ध्यान करो जिसमे अनाहत शब्द का चितन हो। पहले पच वायु (प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान) की खोज करो। वायु और विद (सूक्ष्मशरीर या आज्ञा चक्र मे स्थित गोल प्रकाश) को लेकर आकाश (ब्रह्मरॢघ) मे प्रवेश करो। आकाशमे ज्योति है जंहॉं त्रिकुटी की सधि है। यह सधि रवि, शशि, पवन अर्थात इडा, पिगला और सुषुम्ना के मेल है। यहाँ मन स्थिर होने पर कमल प्रकाशित होता है। इस कमल मे निरजन प्रभु का निवास हैं। सदुगुरु बद कमर खोल कर दिखाते है। उसके भीतर के आत्मतत्त्व का साक्षात्कार कराते है। जिसके गुरु नही है उसे इस तत्त्व का ज्ञान कौन कराएगा ? आसन दृढ़कर निद्रा पर अधिकार कर उपाधियो (ससार प्रपचों) को त्याग कर सहज समाधि की स्थिति पूर्ण होती है। इस कमल पुष्प के पत्रो मे हीरामणि (परमतत्त्व) वर्तमान है। वही तीनो लोको का धनी है। निगुरा होइ तो कहाँ बतायै- वक्रोक्ति सपुट मे - रूपकातिशयोक्ति इहि विधि सेविये श्री नरहरी; मन की दुविध्या सन परहरी |टिक॥ जहाँ नही तहाँ कछू जौंणि, जहाँ नही तहाँ लेडु पछाँणि॥ नॉही देखि न जहये भागि, जहाँ नहीं तहाँ रहिये लागि॥ मन मंजन करि दसबै द्वारि, गंगा जमुना संधि बिचारि॥ नादहि ब्यंद कि ज्यंदहि नाद, नादहिं य्यंद मिले गोव्यंद ॥ देवो न देवा पूजा नही जाप, भाह न बंध माह नहीं बाप॥ _गुणातीत जस निरगुन आप, भ्रम पेवड़ी जग कीयौ साप॥ तन नॉही कब जब मन नॉहि, मन परतीति ज्रद्य मन माँहि।॥ परहरि बकुला अहि गुन डार, निरणि देखि निधि दार न पार॥

७६५८ कबीर समग्र कहै कवीर गुर परम गियॉन, सुंनि मंडल मै घरों घियान॥ प्यंड परे जीव जैहै जहाँ, जीवत हो ले राखी तहाँ ॥३२६॥ अर्थ-इस प्रकार नरहरि की सेवा करनी चाहिए। मन की दुविधा दूर करनी चाहिए। जहाँ कुछ नही जान पड़ता है वहाँ कुछ है। जहाँ कुछ नही है वहाँ कुछ पहचानों। नही देख कर भाग मत जाइए। जहाँ नही जान पड़े वहाँ लगे रहिए। दसवे द्वार ब्रह्मरध्र मे मन को स्नान कराइए। यह विचार कर कि यहाँ गगा यमुना (इडा-पिंगला) की सधि है। नाद और विदु मे नाद अर्थात् सूक्ष्म शब्द तत्त्व का क्रियमान स्वरूप जो स्थूल रूप धारण कर सृष्टि का कारण हो जाता है और विदु स्थूल रूँप मे वीर्य का पर्यायवाची है| इन दोनो के मिलन से गोविद की प्राप्ति होती है। जहाँ न देवता है। न पूजा है। न जप है। जहा भाई, बधु, माँ, बाप, कुछ भी सबध नही है, गुणातीत निर्गुण स्वय प्रभु है। जहाँ भ्रम से रस्सी को सॉप स्वय व्यक्ति बनाये है। तन नहीं है ती मन भी नही है। मन मे विश्वास नही तो मन मे ब्रह्म भी नही है। बाहरी छिलको को छोड़ रस्सी और सर्प का भ्रम छोड़ कर देखो। आर पार कुछ भी नही है। सत कबीर कहते है कि गुरुदेव परम ज्ञानी है। उनके अनुसार शून्य मडल मे ध्यान करो। शरीर के नष्ट होने पर जीव जहाँ जायगा वहाँ जीते जी ले जाकर ध्यान धारण करो] अलंकार-मनकी 8 मन परहरी-विरोधाभास जहाँ नही तहाँ कछू जानि-विभावना नादहि ब्यद कि ब्यदहिनाद-सदेह | भ्रम जेवड़ी जन कीयौसाप-रूपक | परहरि बकुला-रूपकातिशयोक्ति ह अलह अलख निरंजन देव; किहि बिधि करी तुम्हारी सेव ॥टिक॥ बिश्न सोई जाको बिस्तार, सोई कृस्न जिनि कोयी संसार। गोब्यंद ते ब्रह्मंठ गहे, सोई राम जे जुगि जुगि रहै॥ अलह सोई जिनि उम्ति उपाई, दस दर खोले सोई खुदाई। लख चोरासी रब परबरे, सोई करीम जे एती करै। गोरख सोई ग्यौन गमि गहे, महादेव सोई मन कौ लहै। सिघसोई जो साथे इती, नाथ सोई जो त्रिभुवन जती ॥ सिध साधु पैकंबर हवा, जपै सु एक भेष्न है जूबा। अपरंपार का नाउ अनंत, कहे कबीर सीई भगबंत ॥३२७॥ अर्थ-हे अल्लाह, अल्ख, निरजन, देव,. किस प्रकार तुम्हारी सेवा करूँ ? विष्णु वह है जिसका विस्तार है। कृष्ण जिसने ससार बनाया है। गोविद वह है जिसने ब्रह्माड को ग्रहण किया है। राम वह है जो हर युग मे रहता है। अल्छाह वह है जिसने उम्मत अर्थात् पैगम्बर को माननेवाल़ो को उत्पन्न किया है। दस द्वार खोलने वाला खुदा है। चौरासी लाख जीवो की परवरिश करने वाला रकब है। करीम जिसने इतनी (कृपा) की है। गोरख ज्ञान मे गमन करता है। महादेव वह है जो मन को प्राप्त करता है। सिद्ध वह है जो इतनी साधना करता है। त्रिभुवन का यती ही नाथ है। सिद्ध, साधु, पैगगबर आदि जो एक रूप को जोड़कर जपते है।उस अपरपार के अनत नाम है। वह भगवान् है। अछंकार-उल्लेख

पद ८५५९ * तहाँ जो राम नाम ल्यौ लागै; तौ जरा मरण छूटे भ्रम भागे॥टेक॥ अगम निगम गढ़ रचि ले आवास, तहवों जोति करै परकास। चमके बिजुरी तार अनंत, तहाँ प्रभु बैठे कबलाकंत॥ अखंड मेंडिल मंडित मंद, त्रि स्नान करे त्रीखंड। अगम अगोचर अभिअंतरा, ताकौ पार न पावै घरणीधरा॥ अरध उरघ विधि लाई ले अकास तहुँवा जोति करे परकास॥ टारयो टरै न आबै जाइ, सहज सुंनि मैं रक्षो समाई॥ अबरन बरन स्यॉमं नहीं पीत,हो हूजाइ न गावै गीत । अनहद सबद उठे झणकार, तहाँ प्रभू बैठे समरथ सार॥ कदली पुहुप दीप परकास, रिदा पंकज मै लिया निवास। द्वादस दल अभिअत्तरि म्यंत, तहाँ प्रभु पाइसि करिले च्यंत ॥ अमलिन मलिन धाम नही छाँहौं, दिवस न राति नही है ताहाँ | तहाँ न ऊगै सूर न चंद आदि निरंजन करे अनंद॥ ब्रह्मॉडे सो प्यंडे जान, मॉनसरोवर करि असनॉन॥ सोई हंसा ताकौ जाप, ताहि न लिपै पुन्य न पाप॥ काया माँहे जॉने सोई, जो बोलै सो आपै होई। जोति माँहि जे मन बिर करे, कहै कबीर सो प्रॉणो तिरि॥३२८॥ शब्दार्थ-तहों 5 सहस्रार मे। लयौ > लूय। ध्यान। मड - मडप। त्रीखड 5 तीन छोक। धरणीधरा 5 शेष नाग। हो हू 5 हल्ला। कदली - सुषुम्ना। रिदा >हृदय। द्वादसदल 5 अनाहत चक्र। म्यत 5 बीच मे। पाइसि > प्राप्त कर। च्यत 5 चितन। अमलिन 5 स्वच्छ | चाम 5 धूप। लिप ८ लिप्त। अर्थ-उस सहस्रार मे यदि ध्यान लग जाय तो जरा मरण छूट जायगा। भ्रम दूर हो जायगा। अगम्य निगम (पथ) मे निवास के लिये गढ़ बना छे। वहाँ प्रभु ज्योति का प्रकाश होता रहता है। अनत बिजली और तारे चमकते है। कमला कात प्रभु वहाँ बैठे है। अखड मडल मे मडप बना है। तीनो मे त्रिकाल स्नान होता है। उसका अतर अगम्य और इद्रियातीत है। उसके आदि अत का पता शेष नाग को भी.नही है। अरध-उरध (नीचे-ऊपर) अर्थात् इडापिगला और बीच की सुषुम्ना मे आकाश है। वहाँ प्रभु ज्योति का प्रकाश होता है। वह ज्योति न आती है, न जाती है। न टालने पर टलती है। सहज शून्य मे स्थिर समाई रहती है। वह श्याम-पीत वर्ण अवर्ण से रहित है। वहाँ होहू गीत भी नहीं गाये जाते है। अनहद शब्द का झकार होती है। वहाँ सर्व समर्थ प्रभु बैठे है। वहाँ मानो कदली पुष्प मे दीपक जलता है। हृदय कमल मे ज्ञान का स्पुटन होता है। बारह दलो के अनाह॒ते चक्र कमल मे प्रभु का चितन करो। वहाँ स्वच्छ या मलिन किसी प्रकार की धूप छाया नही है। न दिन, न रात है। वहाँ सूर्य चद्रमा नही उगते है। आदि निरजन प्रभु का आनद होता रहता है। जो ब्रह्माड मे है वही पिड।मे समझो | सहसार मानसरोवर मे स्नान करो। सोडहमू हस का जप करो। इस जप करने वाले को 2428 88 नही करते हक में उस प्रभु को जानना चाहिए। जो बोलता है वह उस प्रभु प्रकाश मे जो मन कबीर कहते शी सता संग पा कर जता है। को स्थिर रखता है। सत कबीर कहते है कि वह अलकार- ताको पार न पावै धरणी- धरा -सबधातिशयोक्ति यगूयौटरैन आवैजाइ-विशेषोक्ति ह॒ रिदा पकज-रूपक |

हक कवीर समग्र एक अचंभा ऐसा भवा; करणी वे कारण मिटि गया।दिक॥ करणी किया करम का नाम पावक माँहि पुहुप परगस् पुहुप मोहि पावक प्रजरे, पाप पुंन दोऊ भ्रम टरे॥ प्रगटी बास वासना धोड़, कुल प्रगल्यी कुल घाल्यो छोड़ ॥ उपजी च्यंत च्यंत मिटि गई, भी भ्रम भागा ऐसे भई।॥ उलटी गंग मेर कूँ चली, धरती उलदि अकासहिं मिली ॥ दास कबीर तत ऐसा कहे, ससिहर उलटि राह कौ गहे ॥३२९॥ शब्दार्थ-करणी 5 साधना। कारण 5 भवचक्र। जन्म-पृत्यु चक्र। पावक & साधनाग्नि| कुडलिनी। पुहुप > ज्ञान) चक्रकमढ। कुल 5 कूडलिनी। परिवार। च्यत 5 ज्ञान। गग ८ कुडलिनी। मेर 5 सहस्तार | धरती ८ मूलाधार | आकासहि > ब्रह्मरधश्र। ससिहर 5 चढद्रमा। राह < विषय | जरामरण। भी 5 भव। ससार। अर्थ-एक आश्चर्य हुआ। साधना से ससार मे वार-वार जन्म लेना और मरना समाप्त हो गया। साधना से कर्म (कर्म से उत्तन्न भोग फल) समाप्त हो गया। साधना की आग मे ज्ञान पुष्प का विकास हो गया। योग की भाषा में कुडलिनी उत्यित होकर ऊपर चढ़ने छंगी तो विभिन्न चक्रो के कमल पुष्प प्रकाशित हो गये। कुडलिनी सहस्र्ार की और बढ़ने छगी। तब कमल पुष्पी से अग्नि शिखा सां प्रकाश फैलने लगा। यही पुष्प मे पावक का जलना है। यहाँ पाप-पुण्य दोनो भ्रम से दीखते है। पृथ्वी मे निवास और विषयो का सग करने की वासना समाष्ठ हो गयी है। कुडलिनी के उत्यित होने से कुल-परिवार की आसक्ति समाप्त हो गयी है। ज्ञान उत्पन्न होने से ससार की चिता मिट गयी। भव के सारे भ्रम भाग गये। कुडलिनी रूपी गगा उलट कर सहस्नार को जा रही है। मूलाधार उठट कर आकाश की ओर उन्मुख हो गया है। दास कबीर ऐसे तत्त्व का वर्णन करते है जव सहस्रार स्थित सोमरस जरा-मरण के राहु को नष्ट कर रहा है। अलंकार- पुहुप मॉहि भ्रम टरै-रूपकातिभयोक्ति। कूल कुल, च्यत च्यत-यमक। भी भ्रम-अनुप्रास | करणी थे करण मिटि गया, उल्टी गग राह कौगहै-विरोधाभास | है हजूरि क्या दूर बतावै; दुंदर बांधे सुंदर पावै ॥टिक॥ सो मुलनों जो मनसूँ लरै, अह निसि काल चक्र सूँ भिरे॥ काल चक्र का मरदे मान, तो मुलनों कू सदा सलाम ॥ काजी सो जो काया बिचारे, अहनिसि ब्रह्म अगनि प्रजारै॥ सुप्पने बिद न देई झरनों, तौ काजी दूँ जुरा न मरणों॥ सो सुलितान जु दे सुर तॉने बाहरि जाता भीतरि आने॥ गगन मंडल मैं लसकर करे, सो सुलितान छत्न सिरि धरे॥ जीगी गोरख गोरख करे, हिंदू राम नाम उच्चरे॥ मुसलमान कहै एक खुदाई, कबीरा को स्वामी घटि घटि रह्मौ समाइ॥३३०॥ शब्दार्थ-हजूरि + सामने | प्रत्यक्ष | दुदर ८ इन्द्र। मुलनों + मुसलमान। मुल्हा| प्रजारै ८ प्रज्जलित करे। विद > वीर्य | कूँ > को। जुरा जरा। वृद्धता। लठसकर - सैन्य समूह। अर्थ-प्रभु तो पास है। क्यो दूर बताते हो ? अपने इन्द्ध को समाप्त करों तब सुन्दर प्रभु

पद ६६१ की प्राप्ति होगी। सच्चा मुल्ठा या मुसलमान वह है जो मन से युद्ध करता है। रात-दिन काल चक्र से भिड़ता है। काल चक्र का मान मर्दन करता है। उस मुल्ठा को मै नमस्कार करता हूँ। काजी वह है जो शरीर मे ही प्रभु का विचार करता है। रात-दिन ब्रह्माग्नि मे जलता है। स्वप्न - में वीर्य स्खलन नही होने देता है। उस काजी को बुढ़ापा और मृत्यु नहीं आती है। वह सुलतान है जो ‘‘दोनों श्वासो को तानता है। बाहर जाते श्वासों को भीतर रखता है। अर्थात् प्राणायाम , साधक है। आकाश मडल मे सेना सजाता है। उसी सुल्तान के सिर पर छत्र सजता है। योगी गोरख गीरख रटते है। हिंदू राम राम कहते है। मुसठमान एक खुदा की आराधना करते है। कवीर के स्वामी घट-घट मे समाये है। हज आऊँगा न जाऊँगा, न मरूँगा न् जीऊँगा। गुरु के सबद मै रमि रमि रहूँगा।टेक॥ आप कठोरा आपै थारी, आपै पुरिखा आप नारी॥ आप सदाफल आपे नींबू, आपै मुसलमॉन आए हिदू॥ आप मछ कछ आप जाल, आपै ज्लीवर आपै काल॥ कहै कबीर हम नाही रे नाही, ना हम जीवत न मुबले भाँही ॥३३१॥ अर्थ-मै न आऊँगा, न जाऊँगा। न मरूँगा न जीऊँगा। गुरुदेव के शब्दों मे रमण करूँगा। भाव यह कि जो गुरुदेव शब्द का उपासक है उसका आवागमन, जन्म मृत्यु नही होती है। साधक स्वत पूर्ण है। वह कटोरा, थारी, पुरुष, स्त्री, सदाफल, नीबू, मुसलमान, हिंदू, मछली, कछुआ, जाल, मल्लाह (धीवर), काल सब है। सत कबीर कहते है, हम नही है। मै निर्गुण निराकार हूँ। मै न जीवित हूँ। न मरो मे हूँ। हम सब माँहि सकल हम माही; हम थे और दूसरा नाही ॥टेक॥ तीन लोक मै हमारा पसारा, आवागमन सब खेल हमारा॥ खट दरसन कहियत हम भेखा, हमही अतीत रूप नही रेखा॥ हमही आप कबीर कहावा, हमही अपनों आप लखावा॥३३२॥ अर्थ-ब्रह्मकी स्थितिका वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि हम (ब्रह्म) सबमे है। सभी . हम में है। हम से अलग दूसरा नही है। तीनो छोको मे हमारा प्रसार है। आवागमन सब हमारा (5 ् खेल है। छह दर्शन, सारे वेश, रूप से अतीत, रेखा हीन सब हमी है। हम ब्रह्म ही कबीर 'कहलाते है। हम अपने को देखते है। अर्थात् साधक, साध्य, आराधक आराध्य सब हमी है| सो धन मेरे हरि का नॉउ गॉठि न बाँधो बेचि न खांउ ।टिक।॥ नॉउ मेरे खेती नाउ मेरे बारी, भगति करों मैं सरनि तुम्हारी ॥ नौंउ मेरे सेवा नॉउ मेरे पूजा, तुम्ह बिन और न जॉनौ दूजा॥ नाऊँ मेरे यंधव नाव मेरे भाई, अंत कि बिरियों नाव सहाई॥ नॉउ मेरे निरधन ज्यूँ निधि पाई, कहै कबीर जैसे रंक मिठाई ॥३३३॥ अर्थ-भगवान का नाम मेरा धन है| इसको न गॉठ मे बॉधा जा सकता है। न बेच कर खाया जा सकता है। नाम मेरी खेती बारी है। भक्ति करता हूँ। प्रभु की शरण मे हूँ। नाम मेरी सेवा पूजा है। ईश्वर के अतिरिक्त और दूसरे को नही जानता हूँ। नाम मेरे बॉधव, भाई है। अत के समय नाम सहायक होता है। मुझ निर्धन के लिये नाम निधि प्राप्त हो गयी है। जैसे रक (दरिद्र) को मिठाई मिल गयी है। अब हरि अपनो करि लीनी, प्रेम

भगति मेरीं मन भीनी |देक। जरै सरीर अंग नही मोरौ, प्रान जाइ़ तौ नेह न तोरौ ।।
च्यंतामणि क्यूँ पाइए ठोली, मन दे राम लियौ निरमोली ॥

 ब्रह्मा खोजत जनम गयवायो, सोई राम घट भीतरि पायो॥ कहै कबीर छूटी सब आसा, मिल्यो राम उपज्यो विसवासा ॥३३४॥ शब्दार्थ-ठोली > बैठे हुए। वैठे-विठाये। निरमोलिक < अमूल्य | अर्थ-प्रेमा भक्ति से मेरा मन भर गया है। अब प्रभु ने मुझे अपना बना लिया है। प्रभु के प्रेम मे मेरा शरीर जले तो भी अग नही मोड़ँगा। प्राण जाय फिर भी स्नेह नही तोड़गा। प्रभु चिन्तामणि को बैठे-बिठाए नहीं प्राप्त किया जा सकता। (उसके लिए परिश्रम आवश्यक है)। मन देकर अमूल्य राम को पाया है। इस राम को खोजते ब्रह्म का जन्म वीत गया। उसी राम को देह के भीतर ही प्राप्त किया। सत कबीर कहते है कि ससार की सभी वस्तुओ से आशा छूट गयी है। विश्वास उत्पन्न होने पर राम मिल गये है। लोग कहै गोवरधनधारी; ताकी भोरहिं अर्धभी भारी ॥टेक॥|। अष्ट कुली परबत जाके पग को रैना, साता सायर अंजन नेनों॥ ए उपमों हरि किती एक ओपे, अनेक मेर नख उपरि रोप॥ घधरनि अकास अघर जिनि राखी, ताकी मुगधा कहे न साखी॥ सिद बिरंधि नारद जस गाये, कहै कवीर थाको पार न पायें ॥३ ३ ५॥ शब्दार्थ--अष्ट कुली परबत > मेरू, मदर, कैछास, मलय, गन्धमादन, महेंद्र, श्रीपर्वत, हेम कूट (दे० हिंदू धर्मकोश, राजवली पाडेय)। रैना 5 धूल। ओप < उपयुक्त। मेर & मैरू पर्वत । रोपे > आरोपित | टिकाए। मुगधा - मूढ |मूर्ख। साखी - प्रमाण। अर्थ-लोग ईश्वर को गोवर्धन धारण करने वाला कहते हैं। यह सुनकर मुझे भारी आश्चर्य होता है। आठो कुल के पर्वत जिसके पैरो की धूल दीखते है। सातो समुद्र (ईक्षूद, क्षीरोद, घृतोद, दध्युद, लवणोद, सुरोद, स्वादुद) जिसकी आँखो के अजन है। ये उपमाएँ हरि के लिये बिल्कूल उपयुक्त नही है। जो हरि एक नख पर मेरु पर्वत को रखे है। टिकाए हैं। धरती और नभ जिसके (ओष्ट) है (या धरती और आकाश को जिसने निराधार टिका रखा है)। मूठ लोग उसका कीन सा प्रमाण देगे ? शिव, ब्रह्मा, नारद जिसका यश गाते है। सत कबीर कहते है कि उसका आदि अत नही है। राम निरंजन न्यारा रे; अंजन सकल पसारा रे॥दिक॥ अँजन उत्पति वो उकार, अंजन माँड्या सब बिस्तार॥ अँजन ब्रह्मा शकर इंद, अंजन गोपी संगि गोब्यंद ॥ अंजन बॉणी, अंजन बेद, अंजन कीया नॉनों भेद ॥ अंजन विद्या पाठ पुरॉन, अंजन फोकट कथहि गियाोन॥ अंजन पाती अंजन देव, अंजन को करे अंजन सेव॥ अंजन नाथे अंजन गावै, अंजन भेष अनंत दिखाबे। अंजन कही कहाँ लग केता, दान पुंनि तप तीरव जेता॥ कहै कबीर कोई बिरला जागै, अंजन छाड़ि निरंजन लागे ॥३३६॥ अर्थ-अजन का अर्थ है माया। ससार। उत्पत्ति, प्रढय आदि स्थूल सगुण सागर। निरजन परब्रह्म परमात्मा है। निरजन सबसे अलग है। यह सारा प्रसार अजन का है। अजन से ओकार और सारा विस्तार बना है। ब्रह्मा, शकर, इद्र, विद्या, पाठ, पुराण आदि सब अजन है। मुफ्त कथा भी अजन है। पूजा की पत्ती, देवता आदि की सेवा अजन द्वारा अजन की सेवा है। अजन ही नाचता, गाता, अनत वेश दिखाता

है। सभी दान, पुण्य, तप, तीर्थ मे अजन है। सत कबीर कहते है कि कोई बिरला समझता है और अजन को छोड़ निरजन की उपासना करता है।

पद ६६३ अंजन अलप निरंजन सार, यहै चीन्हि नर करहुँ विचार ॥टिक॥ अंजन उतपति बरतनि लोई, बिना निरंजन मुक्तिन होई॥ अंजन आदे अंजन जाइ, निरंजन सब घट रह्यो समाइ॥ जोग ध्याँन तप सबे विकार, कहै कबीर मेरे राम अधार ॥३३७॥ अर्थ-अजन अल्प (अपूर्ण) और निरजन मूल तत्त्व है। ऐ मनुष्य, यही सोचकर विचार करो। उत्पत्ति और बरतने वाले लोग अजन है। बिना निरंजन की साधना किये इनकी मुक्ति सभव नहीं है। अजन आत्ता है और अजन जाता है। किन्तु निरजन सभी देहो में समाया रहता है। योग, ध्यान, तप सब विकार है। सत कबीर कहते है कि मेरा तो एक राम आधार है। एक निरंजन अलह मेरा, हिंदू तुरक दुहू नही मेरा ॥टिक॥ राखूँ ब्रत न महरम जॉनॉ, तिसही सुमिरूँ जो रहे निदानों। पूजा करूँ न निमाज गुजारँ, एक निराकार हिरदे नमसकाएूँ॥ नो हज जा न तीरव पूजा, एक पिछाण्या तौ का दूजा ॥ कहै कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन सूँ मन लागा॥३३८॥ अर्ध-मेरा अल्छाह निरजन (निर्गुण) है। हिंदू और मुसलमान दोनो उसके पास नही पहुँच सके है। मै न तो व्रत रखता हूँ, न रमजान (रोजा)। उस का ही स्मरण करता हूँ जो अत तक रहता है। पूजा नही करता, नमाज नही पढ़ता। निराकार ब्रह्म को हृदय मे नमस्कार करता हूँ। एज नही जाता। तीर्थ, पूजा नही करता। एक को पहचान लिया तो अब दूसरे की क्या जरूरत है? संत कबीर कहते है कि सारे भ्रम दूर हो गये। एक निर्गुण निराकार ब्रह्म से मन ढुग गया | तहाँ मुन्न गरीब की को गुदराबे, मजलिस दूरि महल को पाबै।टिक॥ सत्तरि सहस सलार हैं जाके, असी लाख पैकंबर ताके ॥ सेख जु कहिय सहस अव्यासी, छपन कोड़ि खेंलिबे खासी ॥ कोड़ि तेतीसूँ अरू खिलखानों, चोरासी छख फिरे दिवॉनो ॥ बाया आदम पै नजरि दिलाई नदी भिस्त घनेरी पाई॥ तुम्ह साहिब हम कहा भिखारी, देत जवाब होत बजगारी॥ जन कदवीर तेरी पनह समॉनों भिस्त नजीक राखि रहिमानों ॥३३९॥ शब्दार्थ-गुदरावै 5 पुकारना। मजलिस 5 सभा। सहस 5 हजार। सलार 5 सेनापति। पैकबर - दूत| खलिबे >' गिरोह। खिलखॉनॉ < एकात निवासी। मिस्त > स्वर्ग । बुजगारी + बदकारी | बुराई। पनह + शरण। ह * अर्व-वहों (उस शक्तिशाली प्रभु के पास) मेरे जैसे गरीब को कौन बुलायेगा ? कौन पहुँचने देगा ? उसकी सभा दूर है। फिर उसके महल को पाना तो और भी कठिन है। जिस प्रभु के सत्तर हजार सेनापति है। अस्सी लाख दूत है। अज्ासी हजार शेख है। छप्पन करोड़ खास गिरोह, तैतीस करोड़ एकात निवासी एवं चौरासी छाख दीवाने फिरते है। बाबा आदम पर जिसने कृपा की। नबी ने अनेक स्वर्ग पाये। प्रभु, तुम साहब और मै भिखारी हूँ। जबाव देते भी बुराई होती है। भक्त कबीर तुम्हारी शरण मे है। हे दया परवर, मुझे स्वर्ग के पास रखो। जो जाचों तो केवल राम, आन देव सूँ नौंही कॉम ॥टेक॥ जाके सूरिज कोटि करे परकास, कोटि महादेव गिरि कबिलास। ब्रह्मा कोटि बेद ऊचरे दुर्गा कोटि जाके मरदन करे ॥ - कोटि चंद्रमा गहे चराक, सुर तेतीसूँ जीमें णाक ॥

 नीग्रह कोटि ठाठढ़े दरबार, धरमराइ पौली प्रतिहार ॥ कोटि कुबेर जाके भरे भंडार, लछमी कोटि करे सियार॥ , कोटि पाप पुंनि ब्यौहरे, इंद्र कोटि जाकी सेवा करे ॥ जगि कोटि जाके दरबार गंप्रप कोटि करे जयकार। विद्या कोटि सबै गुंण कहै, पारब्रह्म को पार न लहे॥ वासिंग कोटि सेज बिसतरे पवन कोटि चोबारे फिरे।. कोटि समुद्र जाके पणिहारा, रोमाबली अठारह भारा। असंखि कोटि जाके जमावली, रॉवण सेन्यों जाये चली॥ सहसबेह के हरे परोण, जरजोधन घल्यो खै मान ॥ बावन कोटि जाके कुटवाल, नगरी नगरी खेन्रपाल ॥ लट छूटी खेले बिकराल, अनंत कला नटबर गोपाल ॥ कंद्रप कोटि जाके लॉवन करे, घट घट भीतरि मनसा हरे ॥ दास कबीर भजि सारंगपान, देहु अमै पद माँगी दान ॥३४०॥ शब्दार्थ-कविलास 5 कैढास। मरदन मर्दन। दमन। जीमै 5 भोजन। पाक 5 रसोई। नीग्रह 5 नवग्रह। पौली « उ्द्यौढी। प्रतिहार 5 द्वारपाछ] जगि 5 यज्ञ। ग्रप्नप 5 गधर्व। बासिग 5 वासुकिनाग। चौबारे > खुला कमरा। जमावली 5 यमावली। यम समूह | जरजोधन < दुर्योधन। कुटवाल 5 कोतवाल। कद्रप 5 कदर्प। लॉवन < लावण्य। मनसा 5 मानस। मनस सारगपान - विष्णु अभे 5 अभय। भार 5 एक वजन। खै - क्षय। क्षेत्रफल 5 रखवाला। अर्थ-मॉगना होगा तो केवल राम से मा्गूँगा। अन्य देवो से मेरा कोई पतलब नही है। क्योकि राम सभी देवों से अधिक शक्तिशाली है। कवि और देवों के मुकाबले मे राम की भक्ति की चर्चा करते हुए कहता है कि राम वह है जिसमे करोड़ो सूर्य का प्रकाश है। कैछास निवासी करोड़ो शिव है। जिसकी सेवा मे करोड़ो ब्रह्मा वेद का उच्चारण करते है। करोड़ो दुगाएँ जिसकी प्रसन्नता के लिये अरिमर्दन करती है। करोड़ो चद्रमा दीपक से खड़े रहते है। जिसके यहाँ तैतीस कोटि देवता बनी रसोई का भोजन करते है। करोड़ो नवग्रह दरबार मे खड़े रहते है। धर्मराज दरवाजे पर पहरा देते है। करोड़ो कुबेर भडार भरते है। करोड़ो रक्ष्मी जिसका श्रूगार करती है। करोड़ो इन्द्र जिसके यहाँ पाप-पुण्य द्वारा सेवा करते है। जिसके दरबार मे करोड़ो विद्याएँ (सरस्वती) सभी गुण कहती है। परब्रह्म जिसका अत नही प्राप्त कर पाते है। करोड़ो वासुकिनाग शय्या लगाते है। जिसके खुले कमरे मे करोड़ो पवन देवता घूमते है। करोड़ो समुद्र जिसका पानी भरते है। अठारह भार जिसकी रोमावली अर्थात् वृक्षावली है। जिसकी यम पक्तियाँ करोड़ो हैं। जिनसे रावण की सेना छठी गई। जिसने सहस्राबाहु के प्राण हर लिये थे। जिसने दुर्योधन के मान का क्षय कर दिया। जिसके बावन करोड़ ' कोतवाल है। जिसके नगर-नगर मे रखवाले है। विकराल मुक्त बाल खेलते है। जो अनत कला युक्त नटवर गोपाल जैसा है। करोड़ो कामदेव जिसे सुदर बनाते है। घट घट (शरीर) मे रहकर मानस अर्थात् कामनाओ का नाश करते है। सत कबीर दास कहते है कि भगवानू विष्णु को भजो। है प्रभु, अभय पढ दो। यह दान मॉँगता हूँ। अतंकार- विद्या कोटि सबें. न लहै सबधातिशयोक्ति मन न डिगे ताथै तन न डराई, केवल राम रहे ल्यो लाई ।टिक॥ अति अधाह जल गहर गंभीर, बाँथि जंजीर जलि बोरे है कबीर॥

पद हम जल की तरंग उठि कटि है जंजीर, हरि सुमिरन तट बैठे है कबीर॥ कहै कबीर मेरे संग न साथ, जल थल मै राखै जगनाथ ॥३४१॥ अर्थ-मन नही डिगता है। इससे तन को कोई डर नही है।.केवल राम मे ध्यान लगा है। अत्यत अथाह गभीर गहरे पानी मे जजीर मे बॉध कर कबीर को डुबो दिया। जल की तरग उठी। जजीर कट गयी। हरि का स्मरण करते हुए सत कबीर किनारे बैठे है। कबीर कहते है कि मेरा किसी का सगं साथ नही है। वही प्रभु जल थल दोनो मे रक्षा करता है। भले भीदी भले नीदो भले नीदी लोग, तनौ मन राम पियारे जोग ॥टिक॥ मैं बौरी मेरे राम भरतार, ता कारनि रधि करी स्येंगार॥ जैसे धुबिया रज मल धोबे, हर तप रत सब निदक खोबै॥ न्यंदक मेरे माई जाप, जन्म जन्म के काटे पाप ॥ भ्यंदक मेरे प्रान अधार, बिन बेगारि चलावै भार। कहे कबीर न्येंदक बलिहारी, आप रहे जन पार उतारी॥३४२॥ अर्थ-लोग चाहे मेरी जितनी निदा करे कितु मेरा तन-मन प्यारे राम में युक्त है। मुझ बावली के भर्त्ता राम है। इस से रच कर श्रृगार करती हूँ। जैसे धोबी सब रजमल को धोता है उसी प्रकार सब निदक मेरे सारे गिरते-पड़ते मलो को धो देते है। निदक मेरे माता पिता की तरह है। मेरी निदा करके मेरे जन्म-जन्म के पाप काट डालते है। निदक मेरे प्राणाधार है। घेगार मे बिना कुछ पाये भार ढोते है। निदक धन्य है जो स्वय रह जाते है और भक्त को पार उतार देते है। अंलकार-रूपक तथा उपमा। जो मे बोरा तो राम तोरा, लोग मरम का जाने मोरा ॥टिक॥ माला तिलक पहरि मन मानों, लोगनि राम खिलोना जॉनों। थोरी भगति बहुत अहँकारा, ऐसे भगता मिले अपारा॥ लोग कहे कबीर बौराना, कबीरा कौ भरम राम भल जाना ॥३४३॥ अर्थ-हे राम, यदि मै बाबला हूँ तो तुम्हारा हूँ। लोग मेरे इस मर्म को नहीं समझते है। लोगो ने माठा, तिलक का प्रयोग मन मे ऐसे समझा है जैसे राम कोई खिलौना हो। थोड़ी भक्ति बहुत अहकार वाले ऐसे असख्य भक्त मिलते है। लोग कहते है कि कबीर पागल हो गया है। कबीर के रहस्य को राम भली भॉति जानते है। हरिजन हंस दसा लिये डोलै, निर्मल नाव, चबै जस बोले ॥टिक॥ मानसरोवर तट के बासी, राम चरन चित ऑन उदासी | मुकताहल बिन चध न लॉबे, मॉनि गहै के हरि गुन गाव ॥ कउवा कुबधि निकट नहीं आदे, सो हंसा निज दरसन पावै॥ कहें कबीर सोई जन तेरा, छीर नीर का करे नबेरा ॥३४४॥ . शच्दार्थ-हरिजन 5 भक्त। हसदसा - मुक्तदशा। चबै > उचवै। उच्चारण करता है। ऑन > अन्य। उदासी > उदासीन। चच - चचु। नबेरा # अलगाव। अर्थ-भक्त मुक्तात्मा बना घूमता है। निर्मलराम नाम का उच्चारण करता है। वह ब्रह्मरुप्र मानसरोवर के किनारे का बासी है। राम के चरणो मे चित्त लगाये रहता और अन्य से उदास रहता है। मोती के बिना चोच नहीं लगता। मौन गहता है या भगवान् का गुण गाता है। 'कुबुद्धि कीआ कभी निकट नही आता है। वही हस अपना (स्व) दर्शन करता है। सत कबीर कहते हैं कि वही आपका व्यक्ति है जो नीर क्षीर के अतर को जानता है। अलकार-साग रूपक, कौउवा कुबुद्धि-रूपक, मानसरोवर-छष

६६६ कबीर समग्र सत्ति राम सतगुर की सेवा, पूजहु राम निरंजन देवा ॥ दटिक।| जठ कै मजनयजो गति होई, मीनों नित ही नहावे। जैसा मीनों तैसा नरा, फिरि फिरि जोनी आवे॥ पन मे माला तीर्थ लाये, तिनि बैकुंठ न जानो । पाखंड करि करे जगत भुलानों, नॉहिन राम अयाना॥ हिरदे कठोर मरे बनारसि, नरक न बंच्या जाई। हरि को दास मरे जे मगहरि, सेन्यों सकल तिराई॥ पाठ पुरोन देद नही सुमृत, तहाँ बसे निरकारा। कहें कबीर एक ही ध्यावो, बावलिया संसारा ॥३४५॥ शब्दार्ध-सति > सत्य | मजन्य 5 मज्जन। स्नान। जोनी 5 योनि। अयॉनों > अज्ञानी। अर्थ-राम और सदगुरु की सेवा ही सत्य है। निरजन देव राम की पूजा करो। जल मे स्नान करने से जो गति होती है वह तो नित्य स्नान करनेवाली मछली को सहज प्राप्त होती होगी। जैसे मछली वैसे ही मनुष्य | पुन पुन णोनियो में जन्म लेता है। मन गदा है और तीर्थी में स्नान करता है। ऐसे व्यक्ति बैकुठ को नही जान सकते है। छोग राम के सामने पाखड करते है। उन्हे भुलावे मे रखना चाहते है। वे नही जानते कि राम ज्ञानी नही हैं। कठोर (अपवित्र) हृदय का आदमी अगर वाराणसी मे भी मरेगा तो नरक जाने से नहीं छूट सकता है। भक्त मगहर मे मरकर अपने सभी साथियो को भी मुक्त करेगा। उस निराकार के के पास तक ये पाठ, पुराण, वेद, स्पृति आदि न पहुँच पाते है। वह प्रभु इनसे बहुत दूर | सत कबीर कहते है कि अनेक देवताओ का ध्यान करने से क्या फायदा ? एक प्रभु का ध्यान करो। कितु ससार के छोग तो अनेक देवी देवताओ की उपासना में पागल हो रहे है। क्या है तेरे नहाई घोई; आलय राम न चीचो सोई ।दिका। क्या घट उपरि मंजन कीये, भीतरि मैल अपारा॥ राम नाम बिन नरक न छूटे, जे थोवे सी बारा॥! का नट भेणछ भगवों बस्तर, भसम लगाने लोई॥ ज्यूँ दादुर सुरसरी जल भीतरि हरि बिन मुकति ये होई ॥ परिहरि कॉम राम कहि दोरे सुनि सिख बंधू मोरी। हरि को नॉव अभयपददाता, कहै कबीरा कोरी ॥३४ ६॥) अर्थ-खाली नहाने-धोने से क्या होता है ? हे जीव, तुमने अब तक आत्‌ाराम (आत्मतत्त्व) को नही पहचाना है। शरीर को बाहर से धोने से क्या ? भीतर मे तो अपार गदगी पड़ी है। रामनाम स्मरण के अभाव मे नरक से मुक्ति नहीं मिलेगी। नरक होगा ही। चाहे इस शरीर को सौ बार भी क्यो न धो लो। भगवा (गेरुआ) वस्त्र पहन कर नट का वेश धारण कर लिया। लोग भस्म लगाते है। ऐसे व्यक्ति उस मेढक के समान है जो पानी मे रहकर भी मुक्ति नही पाता है। अरे बावले, काम को छोड़ कर ईश्वर की आराधना करो। हे भाई, मेरी इस शिक्षा पर ध्यान दो। कोरी कबीर कहते है कि भगवान् का नाम अभयपद देनेवाला है| पॉणीं दे प्रकट भई चतुराई, गुर प्रसादि परम निधि पाई॥ टेक॥ इक पौंणी वॉणी कूँ घोबे एक पौंणी पाँणी दूँ मोहे ॥

पद ६६७ पाँणी ऊँचा पाणीं नीचों, ता पॉर्णी का लीजै सीचा॥ इक पाँणी थे प्यंड उपाया, दास कबीर राम गुण गाया ॥३४७॥ अर्थ-पानी से प्रभु प्रो्ति का ज्ञान प्रगट हुआ है। गुरुदेव की कृपा से परम निधि का ज्ञान प्राप्त हुआ है। पानी कई प्रकार का है। एक पानी वाणी साफ करता है। एक पानी पानी (प्राणी) को मोह में डालता है। एक पानी ऊँचा है। वह है सहस्नार का अमृत जल। दूसरा पानी नीचे मूलाधार मे स्थित है। उसी पानी (ऊपर के पानी) से आत्मा को सिचित करो। एक पानी से शरीर उत्पन्न हुआ है। न का यह ब देख कर सत कबीर राम के गुणो का गायन करते है और पानी के भेदक तत्त्व को समझाते है हे अलंकार-पानी पानी मे यमक 3222 भजि गेब्यंद भूलि जिनि जाहु, मनिषा जनम कौ एही लहु ॥दिक॥ गुर सेवा करि भगति कमाई, जो सै मनिषा देही पाई॥ या देही कू लौचे देवा, सो देही करि हरि कि सेवा॥ जब लग जरा राग चही आया, तब लग काल ग्रसे नहिं काया॥ जद लग हींण पड़े नही बाणी, तब लग भजि मन सारेंगपाँणी ॥ अब नही भजसि भजसि कब भाई, आबैगा अंत भज्यी नहीं जाई॥ जे कछू करी सोई तत सार, फिरि पछिताबोगे बार न पार॥ सेवग सो जो लागे सेवा, तिनही पाया निरंजन देवा ॥ शुर मिलि जिनि के खुले कपाट, बहुरि न आबै जोनी बाट॥ बहु तेरा औसर यहु तरियार घट हो भीतरि सोचि बिचारि॥ कहै कबीर जीति भावें हारि बहु बिधि कही पुकारि पुकारि॥३४८॥ शब्दार्थ-लौचै - ललचाते है। हींणं - क्षीण। अर्थ-मनुष्य जन्म का छाभ प्रभु के स्मरण मे है। यह भूछ मत जाओ। तुमने मनुष्य देह प्राप्त किया है तो गुरुदेव की सेवा कर भक्ति अर्जित करो। देवता भी नरदेह प्राप्ति के लिये ललचाते है। इसलिये इस देह से प्रभु की सेवा करो। जब तक बुढापा रोग नही आया है और काल ने शरीर को पकड़ नही लिया है।,जब तक वाणी क्षीण नही हुई है तब तक हे मन, भगवान का भजन करो। अब नही भजोगे तब कब भजोगे ? हे भाई, अतकाल मे भजना नहीं हो सकेगा। जो कुछ करो वह तत्त्व और सार से युक्त हो। ऐसा न करने पर आर-पार का कुछ पता नही चछेगा और पछताना पड़ेगा। जो सेवक सेवा करता है वही निरजनदेव को प्राप्त करता है। गुरुदेव को मिलने से जिनके हृदय के पट खुल गये है, वे पुन ससार मे जन्म नही लेते है। यह अवसर है, तरने का समय है। शरीर के भीतर ही सोच-विचार करो। सत कबीर कहते है कि अच्छा लगे तों इस ससार की वासनाओ को जीतो या हार जाओ। मैने अनेक प्रकार से पुकार कर कह दिया है। तुलनीय- बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रथनि गावा। साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सैंवारा। . -तुलसी ऐसा ग्यान बिचारि रे मनों हरि किन सुमिरे दुख भंजना ॥टेक॥ जब लग मै में मेरी करे, तब लग काज एक नही सरे॥ जब बहु मे मेरी मिटि जाइ, तब हरि काज सँवारे आइ॥ जब स्यंघ रहे बन माहि, तब लग यहु बन फूले माँहि॥

 उलटि स्याल संघ रूँ खाइ, तब यहु फूले सब बनराह ॥ जीत्या डूबै हास्था तिरे, गुर प्रसाद जीवत ही मरे ॥ दास कबीर कहे समझाडइ, केवल राम रहै लयो आह ॥३४९॥ शब्दार्थ-सरै > पूर्ण होना | अर्थ-ऐ मन, इस प्रकार से ज्ञान का विचार कर प्रभु का स्मरण क्यो नही करते हो ? प्रभु दुखी के नाशकर्त्ता है। जब तक मै, मेरी का अहभाव है तब तक भी कार्य पूर्ण नही होगा। जब यह मै मेरी मिट जाती है तब स्वय प्रभु आकर कार्य सम्हाल देते है। जब तक तुम्हिरे मन वन मे अहकार का सिंह है तब तक इस मर वन मे प्रफुल्लता नही आती है। जब प्रभु भक्ति का सियार उलट कर अहकार के सिह को खा जाता है तब वन में असली प्रसन्नता के फूल फूलते है। ससार मे जो अण्ने को जीतने वाछा समझता है वह डूब गया है और हारने वाले को जीता (मुक्त) समझो। गुरु की कृपा से भक्त जीते जी मरता है। वासना मुक्त होता है। दास कबीर समझा कर कहते है कि केवल राम में ध्यान लगाए रहो। अंलकार-रूपकातिशयोक्ति जागि रे जीव जागि रे। घोरन की डर बात कट्ठत है, उठि उठि पहरे लागि रे ॥टेक॥ ररा करिं दोप म्मों करि बखतर ग्यान रतन करि ताय रे॥ ऐसे जो अजराहुल मारै मस्तकि आये भाग रे॥ ऐसी जागी जे को जागे, तो परि देइ सुहाग रे॥ कहै कबीर जग्या ही चहिये, क्या गृह क्या वैराग रे॥३५०॥ शब्दार्थ-चोर - काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि। पहरे - ज्ञान पूर्ण सावधाता। बखतर कवच ।| ताग 5 धागा। अजराइढ > अजीर्ण। अजर। अर्थ-सत कबीर कहते है कि हे जीव, जागो अर्थात् अज्ञान की नीद को छोड़ कर भगवद्यप्ति का ज्ञान प्राप्त करो। इस ससार में काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि चोर है। ये चोर मनुष्य की सत् प्रवृत्तियो की चोरी करते है। उनका नाश करते है। इसलिये प्रत्येक क्षण सावधान होकर पहरे पर रहो। राम के रा का टोप और म का कवच बनाकर ज्ञान रूपी रल को धागे मे गूँधकर उसकी रक्षा करो। जिसका भाग्य होता है वही इस प्रकार अजीर्णता को प्राप्त करता है। जो व्यक्ति इस प्रकार जागता है उसे प्रभु भाग्यशाली बनाते है। हि ज्ञान में जागरण महत्त्वपूर्ण है। इस जागरण की प्राप्ति होने पर साधक घर में रहता है या . विरागी होकर जगल जाता है। इससे कुछ फर्क नही पड़ता है। अंलकार-ज्ञान रतन में रूपक जागहु रे नर सोबहु कहा, जम बठपरे रूँधे पहा।टिका। जागि चेति कछू करी उपाई, मोदा बैरी है जेंमराई॥ सेत काग आये बन माँहि, अजहूँ रे नर चेते नॉहि। कहे कबीर तबै नर जागै, जंम का इंड मूँड में लागे॥३५१॥ शब्दार्थ-बटपारै < रहजन। रास्ते मे छूटनेवाछा। पहा 5 पथ। रास्ता। थेति 5 स्थिति। मोटा « भारी। मजबूत | सेत 5 १वेत। सेत काग > सफेद बाल। डड - दड | मूँड 5 सिर। अर्थ-ऐ मनुष्य, अज्ञान निद्रा मे क्यो सोए हों ? ज्ञान प्राप्त करो। ज्ञान मे जागो। यम रूपी रहजन ने तुम्हारा रास्ता रोक रखा है। जाग कर कोई उपाय करो। तुम्हारा दुश्मन यमराज मजबूत है। तुम्हारे सारे काले वाल सफेद हो गये। वृद्धावस्था आ गयी। अब मृत्यु करीब है।

पद ६६५ अंब भी ज्ञान नही हो रहा है। हे जान पड़ता है, तुम तभी जागोगे जब यम का डडा तुम्हारे माथे पर लगेगा | सकेत यह है के समय का जागरण व्यर्थ होगा। 5 जाग्या रे नर नीद नसाई, घित घेत्यो च्यंत्तामणि पाई।।टिक। सोबत सोबत बहुत दिन बीते, जन जाग्या तसकर गये रीते॥ जन जागे का ऐसहि नाण, बिब से लागे बेद पुरॉण। कहै कबीर अब सोवी नाहि, राघ रतन पाया घट माँहि ॥३५२॥ शब्दार्थ-च्यतामणि 5 एक मणि जो कामनाओ की पूर्ति का साधन है। रीते 5 खाली। नॉण 5 ज्ञान। अर्थ-ऐ मनुष्य, नीद छोड़ जागो। तुम्हे गुरु कृपा से ज्ञान प्राप्त हो गया है। चित्त मे प्रभु की चेतना पैदा हो गयी है। सोते-सोते बहुत दिन बीत गये। कितु जागने के बाद विषय रूपी तस्कर व्यर्थ हो गये। उन तस्करो को कुछ हाथ नही लगा। वे खाली हाथ लौट गए। ज्ञान प्राप्त होने पर वेद पुराण आदि विष से लगते है अर्थात् व्यर्थ हो जाते है। सत कबीर कहते है कि अब सोना नही चाहिए। राम रूपी रल इस शरीर मे प्राप्त हो गया है। संत्तनि एक अहेरा लाधा, मिर्गनि खेत सबति का खाघा ॥टेक॥ या जंगल मै पाँची भृगा, एई खेत सबनि का चरिगा। पाराधीपनों जे साधे कोई अध खाघा सा राख सोई॥ कहे कबीर जो पंची मारे, आप तिरे और दूँ तरे ॥ ३५३॥ शब्दार्थ-अहेरा 5 शिकार। लाधा & ढब्ध। प्राप्त कियां। सबति 5 सपूर्ण। खाधा ८ खाया। पॉँचो मृगा >- काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर। अर्व-सतो ने एक शिकार प्राप्त किया है। शिकारी सत एक शिकार कर रहे है। यह शिकार काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर रूपी उन मृगो का है जो मनुष्य के आत्िक ज्ञान को नष्ट कर रहे थे। मनुष्य इनके अधीन हो गया था। जो इनके अधीन रहता है इन्हे थे उग आधा खा जाते है| कितु जो भक्त इन याचो मृगो को मार डालते है वे स्वय तो मुक्त होते ही है दूसरो को भी मुक्त करते है। हरि को बिलोवनो बिलोइ मेरी माई; ऐसे बिलोइ जैसे तत न जाइ ॥दिका। तन करि मठकी मननि बिलोइ, ता मटकी मैं पवन समोह।॥ इला प्यंगुला सुषमन नारी, बेगि बिलोइ ठाही छलिहारी॥ कहे कबीर गुजरी बैरॉनी, मटकी फूटी जोति समानी ॥३५४॥ अर्थ-सत कबीर कहते है कि ऐ मेरी जीवात्मा माता, भगवान का दूध मथो। भगवन्नाम का स्मरण करो |,ससार मे इस प्रकार जीओ जिससे तत्त्व का नाश न हो। शरीर को मटकी बना कर मन को मथो। इस शरीर मटकी मे. प्राण वायु को समेटो। इडा, पिगला और सुषुम्ना नारियों इन्हे मथे। जल्दी मथो। परमतत्त्व का मक्खन प्राप्त करने के लिये जीवात्मा तैयार है। संत कबीर कहते है कि जीद,मा गूजरी (गूजर की स्त्री) इस मथन मे इतनी छीन हो गयी कि शरीर को भूछ गयी। शरीर घट (मटकी) टूट गया और उसकी ज्योति एक व्यापक ज्योत्ति में मिल गयी। व्यष्टि का समष्टि मे पर्यावसान हो गया। अलकार-साग रूपक

 आसण पवन किये विट रहु रे; मन का मैल छाड़ि दे बौरे ॥ ठिक॥ क्या सीगी मुद्रा चमकाये, कया विभूति सब अंगि लगाये। सो हिंदू सो मुसलमान, जिसका दुरस रहे ईमॉन।॥ सो ब्रह्मा जो कवे ब्रह्म गियान, काजी सो जाने रहिमोन। कहै कबीर कछू ऑन न कीजै, राम नाम जपि लाहा दीजै॥३५५॥ अर्थ- सत कवीर योगियो की ओर सकेत करते हुए कहते है कि आसन (योग साधना मे बैठने की मुद्राओं) और पवन (पच प्राण) को दृढ़ रखो। मन से विकारों को दूर करो। श्रगी और मुद्रा चमकाने से कया होता है ? अर्थात् श्रगी नाद करने और कानो मे कुडल पहनने से क्या होता है ? इस प्रकार शरीर मे भस्म ढगाना भी व्यर्थ है। असली है मन को निर्विकार करना। वही असली हिंदू और मुसलमान है जिसका ईमान ठीक है। ब्राह्मण वह है जो ज्ञान की बात करता है। काजी वह है जो रहमदिल है। सत कबीर कहते है कि और कुछ करने की जरूरत नहीं है। केवल राम नाम जप कर लाभ लीजिए। अलंकार-वक्रोक्ति ताये कहिये लोकोघार; वेद कतेब कवे ब्योहार |टेक॥ जारि बारि करि अआबै देहा, मूवों पीछे प्रीति सनेहा ॥ जीवत पित्रहि भररहि डंगा, मूवों पिप्र ले घाले गंगा। जीवत पिन्न कूँ अन न खाबे, मूँवों पा प्यंड भरावे॥ जीवत पिन्न कूँ बोले अपराध, मूँबों पीछे देहि सराध ॥ कहि कबीर मोहि अधिरज आवै, कउवा खाह पित्र क्यूँ पावे।३५६॥ अर्थ-असली है लोकाचार। वेद और कुरान भी इस लाकाचार के व्यवहार का कथन करते है। इस शरीर को जलाने के बाद या मृत्यु के बाद प्रीति और स्नेह व्यर्थ है। जीवित पितरो को तो डडा मारते है और मरने पर गगा ले जाते है। जीवित पितर को अन्न नही खिलाते है और मरने पर पिंड देते है। जीवित पितर को अपराधी बोलते है और मरने पर श्राद्ध करते है। सत कबीर कहते है कि आश्चर्य यह है कि कीओ का खाया अन्न पितर कैसे प्राप्त करेगे ? बाप राम सुनि बीनती मोरी, तुम्ह सूँ प्रगट लोगन सूँ चोरी ॥ टेक। पहले काम मुगध मति कीया, ता भें कंपे मेरा जीया॥ राम रा्ट मेरा कष्मा सुनीजे, पहले बकसि अब लेखा लीजै॥ कहै कबीर बाप राम राया, अबहूँ सरनि तुम्हारी आया॥ ३५७॥ अर्थ-हे परम पिता राम, मेरी प्रार्थना सुनो। मेरा स्वभाव विचित्र है। मै अपने कर्मी को लोगो से छिपाता हूँ। कितु तुम्हारे सामने तो सब प्रगट है। स्पष्ट है। पहले काम ने मुझे मुग्ध कर रखा धा। उस भय से मेरा मन कॉपता है। हे राजा राम, अब लेखा करनमुझे क्षमा करे। है राम, तुम पिता हो। कभी तुम्हारी शरण मे आने पर कल्याण हो सकता है। इसलिये मै तुन्हारी शरण मे आया हूँ। टिप्पणी-यहाँ राम इष्ट देवता है। इष्ट देवता भक्त का सदा हित करते है। इन्हे भाव कुभाव, अनख, आलस मे कैसे भी भजा जा सकता है। अजहूँ दीद फैसे दरसन तोरा, बिन दरसन मन माने क्यूँ मोरा ।टिक।॥ हमहि कुसेबग कया तुम्हहि अजौनों, दुई में दोस कही जिन रामा॥ तुम्ठ कहियत जिभवन पति राजा, मन बंछित सब धुरवन काजा || | कहै कबीर हरि दरस दिखाबी, हमहि डुलायी के तुम्ह चलि आवो॥३५८॥

पद ६७५ अर्थ-हे प्रभु, आज भी हमारे तुम्हारे बीच मे भेद बना है। इसलिये मुझे तुम्हारा दर्शन कैसे होगा ? बिना दर्शन के मेरा मन सतुष्ठ नही हो रहा है। या तो मै ही कुसेवक हूँ या तुम्हे मेरी सेवा स्थिति का ज्ञान नही है। दोनों मे किसका दोष है ? है राम, तुम्ही बताओ। किस तुम्हे त्रिभुवन का राजा कहा जाता है। तुम मनोवांछित फल देनेवाले हो। सत कबीर कहते है कि है हरि, मुझे दर्शन दो। हमे अपने पास बुला छो या तुम्ही चले आओ। क्यूँ लीजै गड़ बंका आई, दोवर कोट अरु तेवड़ खाई॥टेक॥ कॉम किवाड़ दुख सुख दरवानी, पाप पुंनि दरबाजा। क्रोध प्रधान लोभ बड़ दुंदर, मन मैंदासी राजा। स्वाद सनाह ठाप ममिता का, कुबधि कमोंण चढ़ाई जिसना तीर रहे तन भीतरि, सुबधि हादि नहीं आई॥ प्रेम पलीता सुरति -नालि करि, गोला ग्यॉन चलाया। ब्रह्म अग्नि ले दियाँ पलीता, एके चोट दहाया ॥ सत संतोष ले लरने लागे, तोरे दस दरवाजा ॥ साध संगति अरु गुर की कृपा वै, पकरयौ गढ़ की राजा॥ भगदंत भीर सकति सुमरिण की, काटि काल की पासी। दास कबीर चढ़े गढ़ ऊपरि, राज दियो अबिनासी ॥३५९॥ शब्दार्थ-बका > वक्र। दोवर * दुहरा। तेवड़ 5 तिहरा। दरवानी 5 पहरेदारी। दुदर इन्द्रवाला। मैबासी 5 गढ़पति | सनाह 5 कवच । सनन्नाह। पासी 5 फॉस | बधन | अर्थध-इस शरीर रूपी वक्र किले को कैसे जीता जा सकता है ? यह दो ऊँची-ऊँची दीवारो से घिरा है। एक दीवार राग और दूसरी विराग की है।' इसमे काम, क्रोध, लोभ की तीन खाइयाँ है। काम का किबाड़ लगा है। सुख और दुख दोनो पहरेदार है। पाप और पुण्य दो दरवाजे है। काम और लोभ दो प्रधान द्वन्द है। मन इस गढ़ का राजा है। गढ़पति है। इस शाला मन रे स्वाद का कवच, ममता का शिरस्त्राण (टोप) पहना रखा है। कुबुद्धि का धनुष चढ़ा रखा है। तृष्णा का तीर शरीर के भीतर है। फलत सुबुद्धि हाथ नहीं आ रही है। सुरति की नली मे प्रेम का पछीता भरकर ज्ञान का गोला दागा। ब्रह्मज्ञान रूपी आग को पलीते मे देकर एक ही चोट मे पूरे अज्ञान या विषय-वासना के महल को गिरा दिया। साधुओ की सगति और गुरुदेव की कृपा से किले के राजा मन पर अधिकार कर लिया। फिर तो भगवान् के स्मरण की भीड़ छग गयी। काल का बधन कट गया। भक्त कबीर गढ़ पर चढ़ गये अर्थात् विषयो से ऊपर उठ गये और अविनाशी राज्य की प्राप्ति हुई। अलकए-सांग रूपक रैनि गई मति दिन भी जाइ; भवर उड़े बग बैठे आइ ॥ टेक॥ काँचे करवे रहे न पानी, हंस उड़या काया कुमिलॉनी! वरहर थरहर कंपे जीव, नो जानू का करिहे पीव॥ कऊवा उड़ाबत मेरी बहियाँ पिरॉनी, कहै कबीर मेरी कथा सिरोनी॥३६०॥ अर्थ-रात का अर्थ है जीवन का पूर्वपक्ष। बिना किसी साधना के बीत गया। सारी रात विषय सेवन मे ही लगे रहे। अब जीवन के उत्तर पक्ष अर्थात् वृद्धावस्था भी कही बिना साधना के न वीत जाय। भ्रमर रूप काले केश बगुलो से सफेद हो गये। मतलब कि वृद्धावस्था आ

६७२ हे कबीर समग्र गयी। कच्चे बर्तन (करवैं) मे पानी नहीं रह सकता है। वैसे ही कच्चे या साधना रहित मन मे ज्ञान जल नही टिक सकता है। जीवात्मा पक्षी के उड़ जाने से शरीर निष्प्रभ हो गया। अब हृदय कॉप रहा है। प्रभु प्रिय न जाने क्या करेगा ? क्योकि उससे मिलने की कोई साधना नही की | सारा जीवन कीआ उड़ाने अर्थात् आशा में बीता। वॉहो मे दर्द होने लगा है। अब मेरे जीवन की कथा वद हो रही है। मेरा जीवन समाप्त है। तुलनीयअनचिन्ह पिउ कॉप मन माँहा | का मैं कहव गहब जब बॉहा। वारि वयस गौ प्रीति न जानी। तरुनी भइ मैमत भुलानी |-पद्मावत | अलंकार-रूपकातिशयोक्ति काहे दूँ भीति बनाऊँ दाटी; का जानू कहाँ परिहे भाटी ॥टिक॥ काहे छू मंदिर महल चिणॉरऊँ, मुँबां पीछे घी एक रहण न पाऊँ॥ कहे कूँ छाऊँ ऊँच ऊँचेरा, साढ़े तीनि हाथ घर मेरा ॥ कहै कबीर नर गरव न कीजै, जेता तन तेती भुँड लीजै॥३६१॥ शब्दार्थ- परिहे + (स० परिधा) घेरा। घर। अर्गठा। माटी 5 शरीर। चिर्णाऊँ 5 दीवार उठाना | मुँवाँ - मृत्यु | अर्य-सत कबीर सरारी के ठाट-बाट का विरोध करते हुए कहते है कि मैं परिधा और ठाटी क्यो बनाऊँ ? पता नहीं यह शरीर कहाँ गिरकर नष्ट हो जायगा ? ऊँचे-ऊँचे भवनो के निर्माण से भी क्या फायदा है ? मृत्यु के बाद मनुष्य एक क्षण के लिये भी भवनो मे नहीं रह सकता है। ऊँचे-ऊँचे महल्लो को छाना व्यर्थ है। मनुष्य का घर तो उसका तीन हाथ का भरीर है। ः सत कवीर कहते है कि ऐ मनुष्य, अहकार मत करो। अधिक जमीन का जाग्रह मत ' करो। अपने शरीर की माप की जगह ही लो। (राग विलावल) वार बार हरि का गुण गावै, गुर गमि '"द सहर का पाबे ॥ टेक।| आदित करे भगति आरंभ, काया मंदिर मनसा थंम ॥ अखंड अषहनिस्ति सुरष्या जाइ, अनहद बेन सहज मै पाइ॥| सोमवार ससि अमृत झरै, चाखत चेगि तपे निसतरे॥ बॉणी रोक्यों रहे दुबार, मन मतिवाला पीवनहार॥ मंगलवार ल्यो मोहीत, पंच लोक की छाडी रोत ॥ घर छॉँडे जिनि बाहरि जाइ, नहीं तर खरे रिसाबै राइ॥ हुधवार करे तुधि प्रकास, हिरदा कवल मै हरि का बास॥ गुर गमि दोऊ एक समि करे, ऊरघ पंकज ये सूधा घरे। ह्िसपति बिधिया देह बहाड, तीनि देव एके सेंगि छाइ॥ तीनि नदी तहाँ श्िकुटी मोहि, छुसमल धौदे अहनिसि नहॉहि॥ & _ 8 ० 3.55... ० शमरक अमकोंट >००७०००>-००++०+“_5++*7-' आइए >ज अकुतआ]

पद ६७३ सुक्र सुधा ले इष्टि ब्रत चढ़े, अह निसि आप आप सूँ लड़े॥ सुरषी पंच राखिये सबै, तो दूजी द्रिष्टि न पैसे कबे॥ धावर बिर करि घट मै सोह, जोति दीबटी मेल्हे जोड़ ॥ बाहरि भीतरि भया प्रकाश, तहाँ भया सकल करम का नास॥ जब लग घट मै दूजो ऑण, तब लग महलि न पावै जॉण॥ रमिता राम सू लागे रंग, कहै कबीर ते निर्मल अंग ॥ ३६२॥ शब्दार्ध-गमि 5 (स० गम्य) प्राप्त कर। सुरष्या - सुरक्षिता। निसतरै 5 निस्तार। पैसे प्रवेश करे। थावर 5 स्थावर। जोइ 5 ज्योति। सहर 5८ १ ससार। २ स० सहचर < प्रा० सहयर > हि सहर 5 आत्माराम। आदित - रविवार। कुसमल कल्मष। मैल। अर्थ-बार-बार भगवान का स्मरण करना चाहिए। गुरु को प्राप्त कर ससार या आत्माराम के भेद को प्राप्त करना चाहिए। रविवार को भक्ति का आरभ करे तो काया को मदिर और मनसृतत्त्व को खभा बनाए। यह भक्ति अखड और रात दिन सुरक्षित रहे। अनाहत नाद का वेणु बजाए। इस तेणु मे सहज की वायु हो। सोमवार को चद्रमा (चद्रानाड़ी) से अमृत झड़ेगा। उसे चखते ही त्रिताप या भव ताप से मुक्ति मिल जायगी। वाणी-को दरवाजे पर रोके रहे या मौन साधना करे। मलवाढ़ा मन उस वायु का सेवन करता है। मगलवार को ध्यान मे लीन रहे। पचलोक अर्थात् पॉचो इद्रियो की प्रवृत्तियो को छोड़ दे। घर छोड़ कर कही बाहर नही जाये वरना प्रभु क्रुद्ध हो जायगा। बुधवार को बुद्धि का प्रकाश करे। हृदय कमल मे प्रभु का निवास स्थान बनाए। गुरु की अर प्राप्त कर इडा-पिगड़ा नाड़ियो को बराबर करे। ऊर्ध्वपकज यानी सहस्रार मे ध्यान को ते करे। बृहस्पतिवार को विषयो का नाश करे। तीनो गुणो (तीनो देवो - ब्रह्मा, विष्णु, महेश) को एक साथ कर ले। इडा पिगला, सुषुम्ना इन तीन नाड़ियो की नदी त्रिकुटी मे है। यहाँ कर्ममैल को धोए और रात दिन स्नान करे। शुक्रवार को सुधा लेकर व्रत करे। रात दिन अपने अहकार से युद्ध करता रहे। पॉचो इद्रियो को सुरक्षित किसी दूसरी दृष्टि को कभी प्रवेश न करने दे। शनिवार को स्थिर कर शरीर (घट) मे ही सो जाय। ज्योति का दिया जलाये। इससे बाहर भीतर प्रकाश हो। इस प्रकाश से कर्मो का नाश ही जाता है। जब इस शरीर दूसरा है अर्थात् विषयो की उपस्थिति है तब तक प्रभु के महल का ज्ञान नही हो सकता है। संत कबीर कहते है कि जिनके सारे अग पवित्र हो गये है वे रमण करने वाले राम के अनुराग के अधिकारी है। ह राम भजै सो जॉनिये, जाके आतुर नॉहीं। संत संतोष लीयें रहें, धीरज मन माही ॥टेक॥। जन कौ कॉम क्रोध व्यापे नहीं, त्रिष्णों न जराबै। प्रफुलित आनंद मैं, गोब्यंद गुंण गाव ॥। जन कौ पर निया भाव नही, अरु असति न भाषै। काल कलपनों मेटि करि, चरनूँ चित राखे॥ जन सम द्रिष्टि सीतल सदा, दुबिधा नही आनें॥ कहें कबीर ता दास सूँ मेरा मन माने ॥३६३॥ अर्थ-उस व्यक्ति को राम का उपासक (भजन करने वाला) समझिए जिसमे किसी चीज की प्राप्ति की आतुरता नही है। सतो के साथ सतुद्ट रहे। मन मे धैर्य रखे। काम, क्रोध आदि

६७४ कवीर समग्र से अगप्रभावित रहे। तृष्णा उसे परेशान न करे। सदा प्रफुल्ल चित्त रह कर भगवान का भजन करता हो। काल की कल्पना को समाप्त कर प्रभु चरणो मे ध्यान रुगाए रहे। सभी लोगो के प्रति सम शीतल दृष्टि रखे अर्थात् किसी पर क्रोध न करे। मन मे किसी प्रकार की दुविधा न लाये । मत कवीर कहते है कि ऐसे भक्त के प्रति मेरा मन प्रसन्न होता है। माधी सो मिले जासौ मिलि रहिये, ता कारनि बक बहु दुख सहिये।दिक।। छन्नधार देखत दहि जाइ, अधिक गरब ये खाक मिलाइ ‖ अगम अगोचर लखी न जाइ, जहाँ का सहज फिरि तहाँ समाह ॥ कहे कबीर झूठे अभिमान, सो हम सो तुम्ह एक समान ॥ ३६४॥ अर्व-हे भगवान्, वह मिले जिसका मिलन स्थायी हो। उसकी प्राप्ति व्यर्थ है जो दुख का कारण बनता है। क्षत्रधारण करने वाले राजा देखते-देखते समाप्त हो जाते है। उनका ज्यादा अहकार खाक में मिल जाता है। अगम-अगोचर प्रभु देखे नही जा सकते है। सहज तत्त्व जहाँ से पैदा होता है वही समाता है। सभी समान है। अल्गाव या छोटे-बड़े का अभिमान व्यर्थ है। अहो गोब्यंद तुम्हारा जोर, काजी बकिवा हस्ती तोर ॥टिक)॥ ! बॉाँघि भुजा भले करि डार्यो, हस्ती कोपि मूँड मे मारयों ॥ भाग्यो हस्ती चीसों मारी, वा मूरति की मैं वलिहारी ॥ महावत तोद्ूँ मारी सॉटी, इसहि मराऊँ घाली काटी ॥ हस्ती न तोरे धरे घियॉन, वाके हिरदे बसे भगवॉन॥ कहा अपराध संत हो कीन्हाँ, बॉधि पोट कुंजर कूँ दीन्हों॥ कुंजर पोट बहु बंदन करे, अजहूँ न सूसे काजी अंधरे॥ तीनि बेर पतियारा लीन्हों, मन कठोर अजहूँ न पतीनों ॥ कहै कबीर हमारे गोब्यंद, चौथे पद ले जन का ज्यंद॥३६५॥ शब्दार्थ- चीसों - चीख | पोट > गेठरी | कुजर 5 हाथी। पतियारा 5 परीक्षण। पतीनों विश्वास | चौथेपद - तुरीयावस्था। ज्यद & जीव | साँटी 5 डडा। अर्व-हे प्रभु, तुम्हारी ही शक्ति है। काजी ने तो भक्त को तोड़ देने का बकवास किया, आदेश दिया। मेरी भुजाएँ बॉध कर क्रुद्ध हाथी के सामने डाढा गया। उसके क्रोध के लिये उसके माथेमे मारा। कितु वह हाथी चीख कर भाग गया। यह प्रभुमूर्तिकी विशेषता है। काजी ने कहा-हे महावत, तुझे डडे से मारूगा। इस हाथी को मार कर काट डालता हूँ। यह हाथी कवीर को मारता (तोड़) नही है। ध्यान कर रहा है। हाथी के हृदय मे भी भगवान का निवास है। प्रत्येक जीव मे जीव का निवास है। हाथी के भीतर के प्रभु ने कबीर स्वामी को पहचान लिया। लोगो ने कहा-सत ने कौन सा अपराध किया है कि इसे गेंठरी बना कर हाथी के सामने दिया हे। हाथी तो उस सत गेंठरी की वदना कर रहा है। इस पर भी इस अधे काजी को नहीं दिखाई दे रहा है। नीन वार परीक्षा ली। कितु कठोर मन को आज भी विश्वास नही हुआ है। सत कबीर कहते है कि हे प्रभु, इस जीवन को चौथा पद तुरीयावस्था या मुक्ति पद दो। कुसल खेम अरु सही सलॉमति, ए दोइ काकी दीन्हों रे। आबत जात दुद्देंबा टूटे, सर्व तत हरि लीन्हों रे ॥टिका। माया मोह मद मै पीया, मुगघ कहै यहु मेरी रे।

पद ६७५ दिवस चारि भले मन रंजै, यहु नाही किस केरी रे॥ सुर नर मुनि जन पीर अवलिया, मीरों पैदा कीन्हाँ रे॥ कोटिक भये कहाँ लूँ बरनूँ, सबनि पर्यानों दीन्हों रे। . धरती पवन अकास जाइगा, चंद जाइगा सूरा रे। हम नौंही तुम्ह नाही रे भाई, रहे राम भरपूरा रे॥ कुसलहि कुसल करत जग खीना, पड़े काल भी पासी। कहै कबीर सबै जग बिनस्या, रहे राम अबिनासी ॥३६६॥ हे शब्दार्थ-खेम - क्षेम। कल्याण। मुगध < मूढ। मीरॉ 5 अमीर। मुखिया। पयानों « प्रयाण। खीना 5 क्षीण। नष्ट । भी 5 भव। पासी 5 पाश। अर्थ- प्रभु ने कुशल क्षेम और सही सलामत से रहने का सौभाग्य किसे दिया है ? सभी लोग ससार मे आते जाते लुटते रहते है। सारे तत्त्व प्रभु के अधीन है। वे उनके हर्त्ता भी है। मायामोह मे पड़ा और मद पीया व्यक्ति मूढ है जो माया के विषयोको अपना समझता है। की चार दिनो तक (उम्र की चार अवस्थाओ तक) मनुष्य चाहे जितना आनन्द कर ढे। किंतु यह ससार या शरीर किसी का नही है। सुर, नर, मुनि, पीर, औलिया, मीरा आदि सब पैदा हुए है। करोड़ो हुए। कहाँ तक कहा जाय ? सब ने ससार से प्रयाण किया। चले गये। मनुष्यादि तो गये। यह धरती, आकाश, हवा, चद्रमा, सूर्य सभी चले जायँगे। हे भाई, न हम रहेगे। न तुम रहोगे। केवल सर्वत्र राम रहेगे। अपना अपना कल्याण सोचने मे सारा ससार न हो रहा है। सभी काल देवता के फदे मे फसे है। सबको काल खा जायगा। सारा ससार नष्ट हो जायगा। अविनाशी केवल राम है। मन बनजारा जागि न सोई, लाहे कारनि मूल न खोई ॥टेक॥ लाहा देखि कहा गरबॉना, गरब न कीजै मूरखि अयॉनो। जिन घन संध्या सो पछितानाँ, साथी चलि गये हम भी जानो ॥ निसि अँधियारी जागहु बंदे, छिटकन लागे सबही संधे॥ किसका दंधू किसकी जोई, चल्या अकेला संगि न कोई ॥. ढरि गए मंदिर टूटे बसा, सूके सरबर उड़ि गये हंसा॥ पंच पदारथ भरिहे खेहा, जरि बरि जायगी कंचन देहा॥ कहत कबीर सुनहु रे लोई, राम नाम बिन और न कोई ॥३६७॥ शब्दार्थ-लाहे 5 लाभ । अयॉनॉ > अज्ञानी। मूर्ख। सधे - सधि। साथी। जोई - स्त्री। वसा 5 वश। सूके 5 सूखे। खेहा ८ धूल। , आर्थ-ऐ मन वनजारे (वाणिज्यकारा), सोना' छोड़ कर जागो। लाभ के चक्कर मे. * भगवतृतत्त्व मूछधन का नाश मत करो। ऐ अज्ञानी जीव, छाभ देखकर गर्व मत करो। जिन्होने ईस का सचय किया वे भी चले गये। उन्हे पछताना पड़ा। साथी चले गये। हमे भी जाना गा| भज्ञान की अँधेरी रात बीत रही है। हे भाई जागो। सभी सधियो (साथ के छोग) अलग हो रहे है। भाई, स्त्री किसी के नहीं है। कोई साथी नही है। सबको अकेला जाना है। भवन गिर गये। वश टूट गये। सरोवर (तालाब) अर्थात् जीवन रूप जल सूख गया। आत्मा-हस चला थे क्रोध, लोभ, मोह, अहकार इन पॉचो पदार्थों की धूल उड़ रही है। सोने सा शरीर | हे पा कबीर कहते है कि ऐ लोगो, सुनो। एक राम नाम शाश्वत है और सब नाश होने

 अलंकार--'वश' मे श्लेष मन पतंग चेते नहीं अंज़ुरी समॉन। बिधिया लागि बिगूचिये, दाक्षिये निदोन ॥टिका। काहे मैन अनिदिये, सूस्तत नहीं आगि। जनम अमोलिक खोइये, सॉपनि संगि लागि॥ कहे कबीर चित चंचला, गुर ग्यॉन कहो समझाइ। भगति हीन न जरई जरै, भाव तहाँ जाइ ॥३६ ८॥ अर्थ-हे मन पतग, अभी तक चेते नही। जीवन अजलि मे रखे जल के समान क्षण मे ही नष्ट हो जानेवाला है। विषयो के चक्कर मे स्वय को व्यर्थ नष्ट करते रहे। अत मे जलना होगा। ऑँखो मे क्यो नीद या आनद भरे हो ? तुम्हे आग नहीं दीखती है? अनमोल जन्म को क्यो खो रहे हो ? माया सर्पिनी के साथ जुड़े हो | सत कबीर कहते है कि चित्त चचल है। गुरुदेव के ज्ञान मे समाहित होकर कल्याण होगा। भक्ति के बिना ससार दुख दूर नही होगा। चाहे जहाँ भी जाओ। अलंकार- मन पंतग मे रूपक स्वादि पतंग जरै जरि जाइ, अनहद सौ मेरो, चित न रहाइ ॥टेक।॥। माया के मदि चेति न देख्या, दुविध्या मोहि एक नहीं पेख्या। भेष अनेक किया बहु कीन्हों अकल पुरिष एक नहीं चीन्हौँ॥ केते एक मूये मरेहिगे केते, केतेक मुगध अजह नही चेते। तंत मंत सब ओषद माया, केवल राम कबीर दिढाया॥३६९॥ अर्थ-स्वाद के कारण मन फतिगा जलता रहता है। कितु हद से परे अनहद तत्त्व से मन नही लगाता है। माया मद के चक्कर में चेतन होकर नही देखा। विषयो के द्वैत मे एक #ी सत्य नही देखा गया। कितने मरे। कितने ही मरेगे। कितु कितने ही मूर्ख को आज भी ज्ञान नही हुआ। तत्र, मत्र, औषध आदि सब माया है। केवल राम से ही दृढ प्रेम करना चाहिए | एक सुहागनि जगत पियारी, सकल जीव जत की नारी ॥टेक।। खसम मंरे वा नारि न रोबे, उस रखवाला और होवे। रखवाले का होइ बिनास, उतहि नरक इत भोग बिलास॥ सुहागनि गलि सोहे हार, संतनि बिख बिलसे संसार॥ पीछे लागी फिरे पचि हारी, संत की ठठकी फिरे बिचारी।॥ संत्त भजै वा पाछी पहै, गुर के सबदूँ मारथौ डरै। साषत के यह प्यंड पराइनि, हैँमारी द्रिष्टि परे जैसे डॉइनि ॥ अब हम इसका पाया भेद, होइ कृपाल मिले गुरुदेव। कहै कबीर इब बाहरि परी, संसारी के अचलि टिरी॥३७०॥ शब्दार्व-सुहागनि - माया। प्यडपराइनि 5 पीछे पड़ना। पचिहारी ८ परिश्रम करने वाली। भजै - भागता है। भेद ८ रहस्य । अर्व-माया सौभाग्यवती स्त्री है जो सपूर्ण ससार को प्रिय है। सभी जीव-जतु की स्त्री है। जीव उसका पति है। इस जीव की मृत्यु पर माया स्त्री बिल्कुल नही रोती है। क्योकि माया का रखवाल्य कोई और हो जाता है। जो माया के साथ विलछ्लास करता है उसे मरने के बाद नरक की प्राप्ति होती है। माया सुदरी के गले मे विषयो की माला है। ससार के छोग इस माला से विलास करते है। कितु यह सतो के लिये विष एसी है। अत्यत परिश्रमी माया सबके पीछे लगी रहती है। कितु

पद ६७७ को देख कर ठिठक जाती है। सत उससे भागते है। कितु वह पीछे पड़ जाती है। माया गज शब्दों की मार से डरती है। वह शाक्तो के पीछे पड़ जाती है। हमारी (सत कबीर) डायन है। के न की कृपा से माया का रहस्य समझ मे आ गया है। अब यह बाहर हो गयी है। केवल ससारी छोगो के यहाँ अचल होकर पड़ी है। अलंकार-"हार" मे रूपकातिशयोक्ति एक सुहागनि जगतपियारी मे विरोधाभास 32 परोसनि माँगे कंत हमारा, पीव क्यूँ बौरी मिलहि उधारा।दिका। मासा माँगे रती न देऊँ, घटे मेरा प्रेम तौ कासनि लेऊँ। राखि परोसनि लरिका मोरा, जे कछु पाऊँ सु आधा तोरा॥ बन बन दूँढो नेन भरि जोऊँ, पीव न मिले तौ बिलखि करि रोऊँ। कहै कयीर यहु सहज हमारा, बिरली सुहागनि कंत पियारा॥३७१॥ अर्द--विषयो मे फेंसी परोसिन बिना विषय छोड़े मुझसे मेरा प्रिय मॉगती है। भगवत्तत्ता मे शामिल होना चाहती है। प्रिय कोई पदार्थ नही कि उधार दिया जा सके। यह अनुभूति है। अनुभूति निजी होती है। इसे उधार कैसे दिया जा सकता है? मासा (एक तोल) मॉगती है। कितु रत्ती (एक तौल) भर भी न दे सकूँगा। मेरा प्रेम अगर थोड़ा भी घट गया तो किससे लगा 9 ऐ पड़ोसिन, मेरे लड़के को रखो। अर्थात् साधना भक्ति से उत्न्न कोई फल हो तो उसे मै तुम्हे देने को तैयार हूँ। साधना की प्राप्तियो मे सबका हिस्सा है। सहभागिता है। दो साधना आधा आधा लेगे। न मै प्रिय की खोज मे वन-वन घूमता हूँ। न मिलने पर रोता हूँ। मेरे लिये यह सहज है। विरला साधक प्रभु को प्रिय होता है। अलंकार-बक्रोक्ति । गृढोक्ति राम चरन जाके रिदि बसत है, ता जंन को मन क्यूँ डोलै॥ मानी आठ सिध्य नव निधि ताके हरषि हरषि जस बोलै ॥टेक॥ जहाँ जहाँ जाई तहाँ सच पाबे, माया ताहि न झोले। बारंबार बरजि विधषिया ते, ले नर जौ मन तोलै॥ ऐसी जे उपजैं या जीय के, कुटिल गाँठि सब खोलै। कहै कबीर जब मन परथो भयौ, रहे राम के बोलै ॥३७२॥ अर्थ-जिसके हृदय मे प्रभु चरणो का निवास है वह व्यक्ति कभी चचल चित्त नही होगा। आठो सिद्धियाँ और नवी निधियाँ प्रसन्न होकर उसके यश का बखान करती है। जहॉ-जहाँ जाता है वही-वही सत्य की प्राप्ति होती है। उसे माया नही डिगाती है। वह बार-बार मन को विषयो से अलग रखता है। अपने मन को तौल कर अर्थात् वश मे रखता है। जिसके मन मे प्रभु की विशिष्ट भक्ति उत्तन्न हो जाती है वह विषयो की कुटिल गॉठे खोल देता है। सत कबीर कहते है, जब मन मे परिचय हो गया तो राम की उपस्थिति मे कुछ बोलते नही बनता है। जंगल मै का सोवनों औघट है 'बाटा। स्पंघ बाघ गज प्रजलै, अर लंबी बादा ॥दिक।॥ निस बासुरि पेड़ा पड़े, जमदांनी लूटे । - सूर धीर साथै मते, सोई जन छूटे ॥

 चालि चालि मन माहरा, पुर पटण गहिये। मिलिये त्रिभुवन नाथ सूँ निरभे होइ रहिये॥ अमर नही संसार मे, बिनसे नरदेही | कहै कबीर बेसास सूँ, भजि राम सनेही ॥३७३॥ अर्थ- साधक की जिदगी जगढ़ मे सोने और औघट घाट में पहुँचने जैसा हे। यह ऐसा जगल है जिसमे ज्ञान की दावाग्नि मे विषय के सिह, वाघ जलते है। इसका रास्ता हम्बा है। रात दिन रास्ते मे यम ठूटता है। जो सच्चे धीर और वीर है वे छूट पाते हैं। ऐ मेरे मन, चलो। चलकर दूसरे देश को ग्रहण करो। वहाँ त्रिभुवननाथ प्रभु से मिलकर निर्भय होकर रहो। वहाँ विषयो का भय नही है। ससार में सभी नर देह नश्वर है। यहों कोई अमर नही है। सत कवीर विश्वासपूर्वक कहते हे कि स्नेही राम का भजन करो । (राग ललित) राम ऐसी ही जोनि जपी नरहरी, माधव मदसूदन बनयारी ॥टिक॥ अनुदिन ग्यान कप घरियार, घूतों घोलह रहे संसार। जैसे नदी नाव करि संग, ऐसे ही मात पिता सुत अंग॥ सदहि नल दुल मलफलकीर, जल बुदबुदा ऐसो आहि सरीर। जिभ्या राम नाम अभ्यास, कहों कबीर तजि गरभ बास ॥३७४॥ अर्थ-नरहरि, माधव, मधुसूदन, वनवारी को राम समझ कर जपता हूँ। घड़ियाल घय नित्य ज्ञान के रूप मे वजता है। तव ससार धुएँ का भवन जान पड़ता है। जैसे नदी की नाव के मुसाफिरों का क्षणिक साथ होता है वैसे ही ससार मे माता-पिता, पुत्रादि सब्ध का साथ है। ससार के सभी फल सुग्गे के द्वारा खाये जाते है वैसे ही यह शरीर यम खाता है। यह शरीर जल के बुलबुले सा नाशवान् है। जीभ में राम नाम का अभ्यास करो। सत कबीर कहते है कि जीभ से राम नाम का उच्चारण करो तभी गर्भवास (आवागमन) से मुक्ति मिल सकेगी। रसनों राम गुन रसि रस पीजै; गुन अतीत निरमौलिक लीजै।॥टिक। निरगुन ब्रह्म कथो रे भाई, जा सुमिरन सुधि बुधि मति पाई। दियय तजि राम न जपसि अभागे, का बूड़े लालय के ठागे॥ ते सब तिरे राम रस स्वादी, कहे कबीर यूड़े दकवादी ॥३७५॥ अर्य-ऐ जीभ, केवल राम नाम का रस पीओ। राम राम जपो। अमूल्य गुणातीत का सैवन करो। निर्गुण ब्रह्म की वात करो। इसके स्मरण से उच्चस्तरी ज्ञान की प्राप्ति होगी। विषय विष को छोड़ कर राम नाम जपो। विषयो के लालच मे क्यो डूब रहे हो ? जिन्होंने राम नाम का स्वाद लिया वे सव मुक्त हो गये और ब्कवास करनेवाले सभी डूब गये। नियरक सुत ल्यो कोरा राम मोहि मारि, कलि विष बोरा॥टेका। उन देस जाइवा रे वाडू, देखियो रे लोग किन किन खैबू लो। उड़े कागा रे उन देस जाइबा, जासूँ मेरा मन चित लागा लो | हाट दूँढि ले, पटनपुर ढूँढि ले, नहीं गाँव के गोरा लो॥ जल बिन हंस निसह बिन रवू कबीर कौ स्वामी पाइ परिके मनैबू लौ॥३७६॥

पद ६७5 शब्दार्व-निबरक 5 (स० निर्वाक) गूँगा। कोरा 5 (स० क्रोड) गोद। मरा ₹ मेरा! पटनपुर पत्तनपुर। गॉाँव। नगर | गोरा 5 कब्र | निसह 5 निशा | रात्रि। रबू ८ रवि। अर्थ-हे प्रभु, मुझ गूँगे अज्ञानी पुत्र को गोद मे उठा हो। कलि ने मुझे मार कर विषय विष मे डुबो दिया है। हे महाशयो, मुझे उस देश, प्रेम के देश मे जाना है और देखना है कि लोग वहाँ क्या क्या खाते है ? ऐ आत्मा काग, उड़कर उस देश मे चलो जहाँ मेरा मन ढगा | ह गाँव तो कब्र है। इसे छोड़ो। हाट और नगर मे प्रभु को ढूँढ़ो। जैसे पानी के बिना हस, रवि के बिना रात्रि बेकार है वैसे ही भगवान् बिना भक्त निरर्थक है। मै (कबीर) स्वामी को पॉव पड़कर मनाऊँगा। हि (राग बसंत) सो जोगी जाके सहज भाइ; अकल प्रीति की भीख खाह ॥टेक। सबद अनाहद सीगी नाद काम क्रोध विषया न बाद। मन मुद्रा जाके गुर को ग्यॉन, त्रिकुट कोट मैं धरत ध्यान ॥ मनाही करन कौ करे सनॉन, गुर को सबद ले ले घरे घियान। काया कासी खोजे बास, तहाँ जोति सरूप भयी परकास॥ * ग्यॉन भेषली सहज भाई बंक नालि कौ रस खाइ। । जोग मूल की देह बंद कहि कबीर थीर होइ कंद॥३७७॥ शब्दार्थ-भाइ 5 भाव। अकल 5 अखड। बाद - विवाद। मेषली 5 मेखला। धीर ८ स्थिर | अर्थ-वह योगी है जो भगवान् की भक्ति में सहज भाव से रहता है। अखड प्रेम की भीख मॉग कर खाता है। अर्थात् अखड प्रेम मे रहता है। अनाहंत नाद, श्रृगीनाद सुनता है। काम, क्रोध तथा विषयो मे विवाद नही करता है। गुरु का ज्ञान ही जिसके मन की मुद्रा है। त्रिकुटी मे ध्यान लगाता है। मन मे ही स्नान करता है। गुरुदेव के शब्द का ध्यान करता है। काशी को शरीर मे ही खोजता है। वही प्रभु ज्योति का प्रकाश करता है। ज्ञान की मेखला धारण करता है। बक नाल से स्रवित अमृतरस का पान करता है। मूलाधार को बॉध देता है। सत कबीर कहते है कि उस का वीर्य (यहाँ कद का अर्थ वीर्य जान पड़ता है) स्थिर रहता है। ,अलंकार-रूपक । मेरी हार हिरोनी में लजाऊँ; सास दुरासनि पीव डराऊँ॥टेक॥ हार गुझौ मेरी राम ताग, विधि विधि मान्यक एंक लाग। रतन प्रवालै परम जोति, ता अंतरि लागे मोति॥ पंच सखी मिलिहैं सुजान, चलहु त जहये त्रिवेणी न्हान। नहाइ धोइ के तिलक दीन्ह, ना जानूँ हार किनहूँ लीन्ह ॥ हार हिराँनी जन बिमल कीन्ह, मेरो आहि परोसनि हार लीन्ह। तीनि लोक की जॉने पीर, सब देव सिरोमनि कहै कबीर ॥३७८। शब्दार्थ-हार 5 ज्ञान। सास > चेतनात्मा। दुरासनि 5 कठोर। प्रवाड़ै - मूँगा। पच सखी * झनेद्रियाँ। त्रिवेणी > त्रिगुण। तिलक 5 इद्रिय सुख। प्रीसनि 5 विषय। मान्यक « माणिक। बिमल > दुखी |

६८० कबीर समग्र अर्व-गले मे लिपटे ज्ञान रूपी जिस हार से मानव जीवन चमकता है वह मुझ से खो गया। चेतनात्मा सास मुझे क्या कहेगी ? मै प्रिय से भी डरता हूँ। ज्ञान को प्रिय प्रभु कभी स्वीकार नही करेगा। मेरी ज्ञान माला राम नाम के धागे मे गँथी है। वीच वीच मे साधना का माणिक्य, परम ज्योति का रल और मूँगे लगे हैं। उनके वीच मे परम प्रकाश के मोती है। पाँच ज्ञानेद्रिय सखियो के साथ विषय के त्रिगुण मे स्नान करने चली। वहाँ नहा धोकर विषय तिलक को माथे पर चढ़ाया। फल स्वरूप ज्ञान हार खो गया। विषय ने ज्ञान हर लिया (विपय मोर हरि लीन्ही ज्ञाना-तुलसी)। हार के खो जाने से भक्त दुखी (विमल) हो गया। मेरी विषम पड़ोसिन ने मेरा हार चुरा लिया है। सत कबीर कहते है कि हे प्रभु आप तीनो लोको की पीड़ा जानते है। आप सभी देवो मे श्रेष्ठ है। कृपा कर मेरा कष्ट दूर करे। अलंकार-रूपकातिशयीक्ति तुलनीय- सखी एक तै खेल न जाना। भइ अचेति मनि हार गवॉना। केवल डार गहि भै वेकरारा। कासी पुकारी आपन हारा। कत खेले आइएउँ एहि सॉथा। हार गँवाइ चलिउलेइ होथा। घर पैठत पूँछब यह हारू। कौन उत्तर पाउबि पैसारू -पद्मावत | नाही छाड़ी बाबा राम नाम; मोहिं और पढन सूँ कौन काम ॥टेक॥ प्रह्लद पधारे पढ़न साल, संग सखा लीये बहुत बाल। मोहि कहा पढ़ाब आल जाल, मेरी पाटी मै लिखि दे श्री गोपाल | तब सेनों मुरकों कहो जाइ, प्रहिलाद बैधायौ बेगि आइ। तू राम कहत की छाड़ि बॉनि, बेगि छुड़ाऊँ मेरी कप्मौ मौनि॥ मोहि कहा डरावै बार बार, जिनि जल बल गिर कौ कियौ प्रहार। बॉधि मारि भादे देह जारि, जे हूँ राम छाड़ो तो गुरहि गार॥ तब काढ़ि खड़ग कोप्पी रिसाइ तोहि राखनहारी मोहि बताइ। खभा तै प्रगट्यौ गिलारि, हरनाकस मास्थो नखेंजविदारि ।। महापुरुष देवाधिदेव, नरस्यँध प्रकट किया भगति भेव । कहे कबीर कोई लहे न पार, प्रहिलाद ऊवारयो अनेक बार ।३७९।। शब्दार्थ-साल < पाठशाला | आल जाल > व्यर्थ। पाटी 5 पट्टी। पटरी। सेनों मुरकाँ ८ प्रह्दाद के पिता के दो सिपाहियो के नाम। वॉनि 5- आदत। गिलारि 5 १ नृसिह। २ गरज कर | अर्व- प्रह्लद कहता है कि हे पिता, मै राम नाम नही छोडूँगा। मुझे और कुछ पढ़ने से कोई मतलब नही है। प्रह्मद जब पाठशाला पढ़ने गये तो उनके साथ बहुत से बालमित्र भी ये। प्रह्मद ने कहा, मुझे व्यर्थ चीजे न पढ़ा कर मेरी पटिया पर केवल श्री गोपाल लिख दो। दोनो सिपाहियो ने राजा हिरण्य कशिपु को सूचना दी। प्रह्लद बाँधकर लाया गया। पिता ने कहा- प्रक्नाद, तुम राम कहना छोड़ दो। मेरी बाते मानो। तुम को तुरन्त छोड़ दूँगा। प्रह्मद ने कहा- मुझे बार-बार क्यो डराते हो ? जिस प्रभु ने जल थल पहाड़ पर प्रहार किया है वे ही मेरे रक्षक है। चाहे मारो, जलाओ। कितु यह सब देह के साथ होगा। आत्मा तो मुक्त है। मै राम नाम छोड़ तो मेरे गुरु को गाली पड़ेगी। इस पर पिता ने क्रोध मे तलवार निकाल कर कहा, अब तुम्हे बचाने वाला कौन है? नृसिह भगवान् गरज कर खजभे से प्रगटे (जिस खभे से प्रह्लद बाँधा गया था)। उन्होने

पद ६८१ हिरण्य कशिपु को नखो से विदीर्ण कर दिया । देवाधिदेव नृसिह प्रभु ने भक्ति तत्त्व का प्रकाश किया। कोई उनकी शक्ति का पता नहीं पा सकता है। उन्होने प्रक्मद को गा किया है। ह्र-लहे न पार सबधाति१ 924. कौ नाएँ तत त्रिलोक सार; लौलीन भये जे उतरे पार ॥टेक।। इक जंगम इक जटाधार, इक अंगि बिभूति करे अपार॥ इक मुनियर इक मनहूँ लीन, ऐसे होत होत जग जात खीन ॥ इक आराधे सकति सीब, इक पड़दा दे दे बे जीव। इक कुलदेव्याँ कौ जपहि जाप, त्रिभवनपति भूले त्रिविध ताप॥ अंनहि छाँडि इक पीयहि दूध, हरि न मिले बिन हिरपें सूध। कहे कबीर ऐसे बिधचारि, राम बिना को उत्तरे पार॥३८०॥ शब्दार्थ-जगम - एक शैव सप्रदाय जिसका प्रचार मुख्यत भारत के दक्षिणी भाग मे है। ये शिवोपासक लिग धारण करते है। अर्थ-ईश्वर का नाम तत्त्व तीनो छोको का मूल है। सार तत्त्व है। जो इसमे छुवलीन हुए वे ससार सागर को पार कर जाते है। कितु ससार मे अनेक प्रयल करते है। दाक्षिणात्य (कर्णाटक प्रदेश) के जगम शिव साधना करते है। कोई जटाधारी है। कोई भस्म लगाता है। कोई मुनि मौन है। मन मे लीन है। ऐसे ही छोग ससार मे नष्ट हो रहे है। एक शक्ति शिव की उपासना करता है। एक पर्दा देकर जीव को बॉधता है। एक कुलदेव जप करता है। कितु त्रिभुवन पति को भूलने के कारण तीनो ताप (दैहिक, दैविक, भौतिक) सहते है। एक अन्न को छोड़ केवल दूध पीकर रहता है। कितु हृदय शुद्धि के अभाव मे प्रभु प्राप्ति नही हो सकती है। संत कबीर कहते है कि ऐसा विचार करो। राम के बिना कौन पार उतर सकता है ? हरि दोलि सूवा यार बार; तेरी ढिग मीनों कछू करि पुकार ॥टेक॥ अंजन मंजन तजि बिकार सतगुर समझादौ तत सार ॥ साध संगति मिली करि बसंत, भौ बद न छूटे जुग जुगंत। कहै कबीर मन भया अनंद, अनंत कला भेटे गोब्यंद ॥३८१॥ अर्थ-ऐ जीव रूपी सुग्गे, राम नाम का उच्चारण करो। तुम्हारे पास काल बिल्ली पुकार कर रही है। विकारों के अजन मजन छोड़ो। इस सार तत्त्व को सदगुरु ने समझाया है। साधुओकी सगतिमे वसतका आनद मनाओ। भव बधन युग युगो तक नही छूटनेवाला है। अनत कलाओ से युक्त भगवान् के मिलने से मन प्रसन्न हो गया। दिप्पणी- राम की १४ कलाएँ और कृष्ण की १६ कलाएँ मानी जाती है। कितु कबीर के प्रभु अनुत कलाओवाले है। बनमाली जाने बन की आदि; राम चाम बिना जनम बादि ॥टेक॥ फूल जू फूले रुति बसंत, जामें मोहि रहे सब जीव जंत॥ फूलनि में जैसें रहे बस यूँ घटि घटि गोबिंद है निवास। कहे कबीर मनि मया अनंद, जगजीवन मिलियौ परमानंद॥३८२॥ अर्थ-वन का माली ही वन के मूल को जानता है। रामनाम के अभाव मे यह जन्म व्यर्थ है। वसत ज़तु मे जो फूछ फूले उनमे सभी जीय जतु मोहित हो गये। जैसे फूलो मे गध वैसे ही घट घट मे भगवान् का निवास होता है। हर - "32203

६८२ कबीर समग्र सत कबीर कहते है कि मन प्रसन्न हो गया। परम आनद जगज्जीवन भगवान की प्राप्ति हो गयी। मेरे जैसे दबनिज सीं कबन काज; मूल घदे सिरि बच्चे ब्याज |टिक।॥ नाइक एक यनिजारे पाँच बेल पदीस की संग साथ। नव बहियाँ दस गौनि आहि, कसनि बहतरि लागै ताहि॥ सात सूत मिलि वनिज कीन्ह, कर्म पयादी संग लीन्ह। तीन जगति करत रारि, चल्पो है बनिज वा गनज झारि॥ वनिज खुठानी पूँजी टूटि, षाहू दह दिसि गयौ प्ूटि। कहै कबीर यहु जन्म बाद, सहजि सोनू रही लादि॥३८३॥ शब्दार्थ-नाइक - जीवात्मा। बनिजारे णँच 5 पच महाभूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी)। बैठ पचीसआकाश - काम, क्रोध, लोभ, मोह, तम। ' वायु - चलन, ,वलन, धावन, प्रसारण, सकोचन। अग्नि- क्षुधा, तृषा, आल्स्य, निद्रा, मैथुन | जल- लार, रक्त, पसीना, मूत्र, वीर्य पृथ्वी- अस्थि, मॉस, त्वचा, नाड़ी, रोम। नव बहियाँ # पच प्राण तथा चार अत करण। दस गौनि 5 दस इड्रियाँ (आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा, हाथ, पॉव, गुदा, लिग, मुख) कसनि वहत्तरि 5 बहत्तर बधन (१६ कडयएँ, १६ जाल, ४ रज्जु, ७ सेवनी, १४ अस्थि सघात, १४ सीमात, १ त्वचा) सात सूत 5 सात धातुएँ (रक्त, रस, मज्जा, मास, वसा, अस्थि, शुक्रे । नीन जगति (अ० जकात) कर्मचारी। यहाँ सत्त्व रज, तम से मतलद है। * खुटानी ८ समाप्त हो गया। षाडू - एक झोला | दह दिसि 5 दस दिशा ऐँ। बाद > व्यर्थ। लछादि 5 बोझा | अर्थ-मुझे इस प्रकार के व्यापार से क्या काम है ? जिस व्यापार मे मूल घटता है और व्याज बढ़ जाता है। व्यापारी (नायक) एक और व्यापार करने वाले पाँच (महाभूत) है। इनका पचीस (तत्त्व) का साथ है। नव वहियाँ और दस बोरे छुदे है। ये ७२ बधनो से बँधे है। इनके सात पुत्र भी व्यापार करते है। कर्म रूपी सिपाही साथ है। तीन गुणों के रूप मे कर्मचारी है| ये कर्मचारी ससार मे झगड़ा करते है। फलत जीव व्यापारी अपना व्यापार पूरा नही कर पाता है॥ व्यापार छोड़कर चल देता है। व्यापार समाप्त हुआ। पूँजी खत्म हो गयी। झोला दसो दिशाओ मे टूट गया। सत कबीर कहते है कि यह जन्म व्यर्थ गया। सहज साधना के व्यापार मे जब समाहित हुआ तो सासारिक भार दूर रह गया। ' अलंकार-रूपकानिशयोक्ति है माधी दारुन दुख सहयो न जा, मेरी बपल बुधि ताते कहा बसाद ॥टेका॥। तन मन भीतरि बसे मदन चोर, जिनि ज्ञॉन रतन हरि लीन्ह मोर। में अनाथ प्रभु कहूँ काहि, अनेक बिगूथे में को आहि॥ सनक सनंदन सिव सुकादि आपण कवलापति भये ड्रह्ूमदि। जोगी जंगम जती जदाधार, अपने औसर सब गये है हार॥

पद ६८३ कहै कबीर रहु संग साथ, अभिअंतरि हरि सूँ कही बात। मन ग्यौन जॉनि के करि विचार, राम रमत भी तिरिबो पार॥३८४॥ शब्दार्थ-बसाइ & वश। बिगूचै 5 बर्वाद।| आहि हूँ। काहि 5 किससे। औसर अवसर। भी 5 भव। ससार। दारन 5 दारुण। भयानक । अर्थ-हे माधव प्रभु, भयानक दुख सहा नही जाता है। मेरी बुद्धि तो चचल है। इससे कुछ भी बस मे नहीं आ रहा है। मेरे तन-मन में कामदेव चोर बसा है। इसने मेरा ज्ञान रल चुरा लिया है। हे प्रभु, मै अनाथ किससे अपना दुख कहूँ ? अनेक जन बर्बाद हो गये। मै कौन हूँ? सनक, सनदन, शिव, शुकदेव आदि“तथा विष्णु और ब्रह्मादि योगी, जगम, यती, जटाधर, ये सभी अपने अवसरो को हार गये। अर्थात् अवसर चूक गये। सत कबीर कहते है कि सतो के साथ रहो। हृदय (अभ्यन्तर) मे निवास करने वाले प्रभु से अपनी पीड़ा कहो। वे प्रभु कल्याण साधक है। हे मन, समझ कर विचार करो। राम नाम मे रमण करने से ससार सागर को पार किया जा सकता है। अलंकार-रूपक तू करी डर क्यूँ न करे गुहारि, तूँ बिन पंचाननि श्री मुरारी टिका तन भीतरि बसे मदन चोर, तिनि सरबस लीनो छोरि मोर। माँगे देह न बिने मान, ताकि मारे रिदा मे कॉम झॉन॥ मे किहि गुहराऊँ आप लागि, तू करी डर बड़े बड़े गये है भागि। ब्रह्मा विष्णु अरु सुर मयंक, किहि किहि नहीं लावा कलंक॥ जप तप संजम सुंनि ध्यान, बंनि परे सब सहित ग्यॉन। कहि कबीर उबरे दे तीनि, जा परि गोविंद कृपा कीन्ह ॥३ ८५॥ अर्थ-तुम डर क्यों करती हो ? पुकार क्यो नहीं करती हो ? तुम बिना भगवान् के हो। तन के भीतर मदन चोर बसता है। उसने मेरा सब छीन लिया है। मॉगने पर लौटाता नही, हृदय में ताक कर बाण मारता है। मै अपने लिये किसे पुकारूँ ? बड़े-बड़े तो भाग गये। ब्रह्मा, विष्णु और चद्रदेवता या शकर (मयकसुर चद्रमावाला देवता अर्थात् शिव) किसे मदन का कलक नही लगा। जप, तप, मुनिध्यान सब बदी है। ज्ञान सहित बदी है। सत कबीर कहते है कि दो-तीन ही उबर पाये जिन पर गोबिद की कृपा हुई। ऐसे देखि चरित मन मोहौ मोर; ताये निस बासुरि गुन रमी तोर ॥दिक।। इक पढ़ँहिं पाठ इक भ्रमे उदास इक चगन निरंतर रहे निवास | इक जोग जुगृति तन हूँहि खीन, ऐसे राम नाम संगि रहै न लीन ॥ इक हूँहि दीन एक देहि दान, इक करे कलापी सुरा पॉन ॥ इक तंत मंत ओषध बॉन, इक सकल सिंध राखे अपॉन॥ इक तीर्थ ब्रत करि काया जीति, ऐसे राम नाम सूँ करे न प्रीति॥ इक धोम घोटि तन हूँहि स्याम, यूँ मुकति नहीं बिन राम नाम ॥ सत गुर तत कह्यौ बिचार, मूल गह्यो अनभै बिसतार॥ जुरा मरण ये भये धीर, राम कृपा भई कहि कबीर ॥३८६॥ शब्दार्थ-ताधै 5 इस से। हूँहि 5 होते है। खीन - दुर्बल। कलापी - मयूर। पक्षधारण करने वाला। धोम 5 धुओआँ। घोटि > साधकर। स्याम & काला। अनगै - अनुभव। अर्थ-ऐसे चरितो को देखकर मेरा मन मोहित हो गया। इस से हे राम, रात दिन तुम्हारे गुणों मे रमता जी हूँ। मुक्ति के लिये कोई पाठ करता है। उदासीन घूमता है। नगा रहता है।

द्टड कबीर समग्र योग युक्ति से दुर्बल होता है। इस प्रकार वे रामनाम में लीन नहीं हो सकते हैं। एक दीन बनता है। एक दान देता है। एक मोर की ध्वनि रूप सुरा पीता है। एक तत्र, मत्र, औषध करता है। वाना धारण करता है। एक अपान साधना को सारी सिद्धि मानता है। एक तीर्थ का सेवन व्रत कर शरीर को जीतता है। ऐसे छोग राम नाम से प्रेम नही करते है। एक धुआँ घोटता है। शरीर को काल बनाता है। कितु राम के विना मुक्ति नही है। सतगुरु ने विचार कर तत्त्व की बात कही। मूल तत्त्व राम को गहो। अनुभव का विस्तार करो। ऐसे व्यक्ति जरा मरण से मुक्त हो जाते है। ऐसे व्यक्ति पर राम की कृपा होती है। सब मदिमाते कोई न जाग; तावे संग ही चोर घर घुसंन छाग ।टिक॥ पंडित माते पढ़ि एरॉन, जोगी माते धरि घियोन। संन्यासी माते अहंमेव, जपा जु माते तप के भेव॥ जागे सुक ऊधव अकूर, हणवंत जागे ले लंगूर। संकर जागै चरन सेव, कलि जागे नॉमा जैदेव॥ ए अधभिमान सब मन के कौंम, ए अभिमोन नही रही ठाम। आतर्मों राम कौ मन विश्राम, कहि कबीर भजि राम नाम॥३८७॥ अर्य-सभी विषयो मे मत्त है। कोई जाग नही रहा है। इस से सग के ही चोर घर को लूट '* रहे है| पडित पुराण पढ़ने मे मस्त है। योगी योग मे, सनन्यासी अहम् मे, जप करनेवाले त्न्या के भेदो मे मस्त है। शुकदेव, उद्धव, अक्रूर जागे है, हनुमान लछगूर ले जागे हैं। शकर प्रभु ' चरणी की सेवा कर रहे है। कलिकाल मे नामदेव और जयदेव जागते है। सारे अभिमान मन के भ्रम है। अभिमानवाले को कही स्थान नही मिलता है। संत कबीर कहते है कि राम नाम 'परजो तभी आत्मराम को शांति मिलेगी। चलि चलि रे भेवरा कवल पास; भवरी बोले अति उदास ।ढिक॥ ते अनेक पुष्प कौ लियो भोग सुख न भण तत बढ़यों है रोग॥ हो जु कहत तोसूँ बार यार, मे सब बन सोध्यों डार डार॥ दिनों चारि के सुरंग फूल, तिनहिं देखि कहा रही है भूल॥ था बनासपती में छागैगी आगि, अब तूँ जैही कहाँ भागि॥ पुह्ठप पुराने भये सूक तब भबरंहि लागी अधिक भूख।॥ उद्धधो न जाइ बल गयो है छूटि, तब भवरी रूँदा सीस कूटि॥ दह दिसि जोबे मधुप राइ, तब भवरी ले चली सिर चढ़ाई॥ कहै कबीर मन को सुभाव राम भगति बिन जग को डाब॥३८८॥ शब्दार्थ-भेंवरा 5 मन। भवरी > बुद्धि। पहुप पुष्प। विषय। वनासण्ठी 5 ससारवन। * कमल > आत्म ज्ञान | सूक 5 सूख । अथे-ऐ मन, आत्म ज्ञान प्राप्त करो। यह बात मनुष्य की विवेक बुद्धि कहती है। ऐ मन, तुम अभी तक विषयो मे भूले थे। कितु विषय सेवन से तुम्हे सुख नही प्राप्त हुआ उल्टे विषयों « ने तुम्हे दुख ही दिया है। रोग, भवरोग बढ़ा है। मैने सारे ससार को देख लिया है। इसी लिये तुमसे बार-बार कहता हूँ- ये सारे रग, आनद और सुख चार दिनो के है। इसके बाद ये सभी नष्ट हो जायेगे। इन्हे देख कर भ्रम मे मत पड़ो। इस वन मे आग लग जायगी। तब तुम भाग कर कहाँ जाओगे ? पुराने फूल सूखने लगे अर्थात् भोग्यवस्तुएँ समाप्त हो चली है। कितु मन की भूख और बढ़ गयी है।

वृद्धावस्था के कारण भोगने की शक्ति क्षीण हो गयी है। युवावस्था की उड़ाने समाप्त हो गयी हैं। अब बुद्धि रोती है। अफसोस करती है। मन भ्रमर दसो दिशाओं में अर्थात् सभी

पद ६८५ ओर | तब बुद्धि ने सहायता की। पे 90 जा कहते है कि यह मन का स्वभाव है। राम भक्ति के बिना यह ससार दाँव पर लगा है। इसे यम जीत हे जायगा | आपकी 3 203 अनेक्क पुहुप- ये इस 30023 आवध राम सबै करम करिए; सहज समाधि न जम यें डरिहूँ॥टिक॥ झऊँभरा है; करे बासन धरिँ धोवी है मल धोऊँ। चमरा है करे बासन रेंगों, अधौरी जाति पति कुल खोज ॥ तेली है तन कोल्हूँ करिही, पाप पुंनि दोऊ पेरूँ। पंच बैल जब सूध चलाऊँ, राम जेबरिया जोरूँ॥ क्षत्री है करि खड़ग सँभालूँ, जोग जुगति दोउ सामूँ। नउवा द॥. करि मन कूँ मूँरूँ बाठी दै कर्म बाढ़ँ॥ अबपू है करि यह तन धूती, बधिक है मन माएं। बानजारा है तन कूँ बनिजूं, जूबारी दे जम हाऊं॥ तन करि नवका मन करे खेवट, रसना करउँबड़ाऊँ। कहि कबीर भवसागर तरिंहँ आप तिरू बप तारूँ॥३८९॥ शब्दार्- आवध 5 १ आयुध। २ अवधवाला। वासन - बर्त्तन। घरिहूँ 5 गदूँगा। अधौरी 5 (स० अध्व) नीचता। पचबैल - पॉच इद्रियाँ। जेबरिया ८ रस्सी। जोखूँ 5 जोड़ना। बाढ़ी 5 बढई | धूती 5 धोना। नवका 5 नौका। करवा 5 करवार। पतवार। बप शरीर। अर्थ-हे अवध के राम या है राम, मै सारे कर्मों को आयुध बनाऊँगा। सहज समाधि लगाऊँगा और यम से निडर रहूँगा। कुम्हार होकर बर्त्तन रँूँगा। धोबी होकर मन की मैल धोऊँगा। चमार होकर बासन रगूँगा। नीचता की जाति-पॉति मिटा दूँगा। तेली होकर कोल्हू पेरँगा। इसमे पाप-पुण्य दोनो को पेर दूँगा। पाँचो इद्रियो को सीधा चलाऊँगा और राज नाम की रस्सी से जोड़ दूँगा। क्षत्रिय होकर तलवार सम्हालूँगा और योग, युक्ति दोनो को साधूँगा। नौआ होकर मन का मुडन करूँगा। बढई होकर कर्म को कादूँगा। अवधूत योगी होकर तन को धोऊँगा। बधिक होकर मन को मारूँगा। व्यापारी होकर तन का व्यापार करूँगा। जुआरी होकर यम को हारूँगा। तन नौका, और मन को खेने वाला बना कर रसना को पतवार बनाकर उसे डाल दूँगा। संत कबीर कहते है कि भवसागर पार करूँगा। स्वय तो पार करूँगा ही। शरीर को भी तार दूँगा। अलंकार-रूपक | (राग माली गौड़ी) पंडित मन रंजिता, भगति हेत ल्यी लाइ रे।। प्रेम प्रीति गोणल भजि नर, और कारण जाई रे॥टेक॥ दाम ऐै पणि कॉम नाही, ग्योन छै पणि धंध रे। श्रवण है यणि सुरत नॉहीं, वैन है पणि अंघ रे॥ जाके नामि नाभि सूँ उदित इक्ला, चरन गंग तरंग रे। कहै कबीर हरि भगति बॉछू जगत गुर गोब्यंद रे ॥३९०॥ जर्द-ऐ मन मे रजन करनेवाले पडित, अर्थात् मन मोदक का आनद हेनेवाले, भगवान्

६८६ कबीर समग्र की भक्ति करो। प्रेम से भगवान् को भजो | अन्य सारे उपाय व्यर्थ है। तुम्हारे पास दाम है। कितु उस दाम का उचित उपयोग नही जानते हो। ज्ञान है कितु उसका धधा नहीं जानते हो। कान है। कितु स्मृति नही है। आँखे रहते अधा हो। जिसके नाभि कमल से ब्रह्मा एव चरण से गगा निकली है उस हरि की भक्ति की आकाक्षा करो। गोविद जगत् के गुरु है। अलंकार-विरोधाभास विष्णु घ्यॉन सनान करि रे, बाहरि अंग न घोई रें। साच बिन सीझति नही, कॉई घ्यॉन दृष्टे जोड रे॥ जंजाल माँहे जीव राजे, सुधि नही सरीर रे। अभिअंतरि भेद नही, कोई बाहरि नहावै नीर रे॥ निहकर्म नदी ग्यॉन जल, सुंनि मंडल माहि रे। ओपघूत जोगी आतमा, काई पेड़े संजमि नहाहि रे ॥ इला प्यंगुला सुपमनों, पछिम गंगा दालि रे . कहै कबीर ऋुसमल झड़ै, कोई नॉहि लौ अंग पषालि रे॥ ३९१॥ अर्थ-ऐ मनुष्य, भगवान विष्णु के ध्यान मे स्नान करो। बाहर से अगोको धोने की आवश्यकता नही है। सत्य के बिना सिद्धि नहीं हो सकती है। ध्यान-दृष्टि की महीनता धोओ। जीव तो जजाल मे पड़ा है। उसे शरीर का भी ध्यान नही है। बाहर से नहाते हो कितु भीतर का भेद नही पाते हो। शून्य मडल मे निष्काम कर्म नदी मे ज्ञान का जल वह रहा है। अवधूत योगी की आत्मा वहॉ सयम जल मे स्नान करती है। इडा, पिंगला एव सुपुम्ना के पृष्ठ भाग (पश्चिम) मे गगा नदी का जल है। सत कबीर कहते है कि कल्मप दूर होगा, मैठ धोकर अगो का प्रक्षाउन करो। अलंकार-रूपक भजि नारदादि सुकादि बंदित, चरन पंकज भोमिनी। भजि भजिसि भूषन पिया मनोहर देव देव सिरोवनी ।टिक॥ बुधि नाभि चंदन चरिचिता, तन रिदा मंदिर भीतरा। राम राजसि नैन बानी, सुजान सुंदर सुंदरा॥ बहु पाए परबत छेदनों, भी ताप दुरिति निवारणों। कहै कबीर गोब्यंद भजि, परमानंद बंदित कारणों ॥३९२॥ अर्थ-ऐ साधिके, नारदादि, शुकदेव मुन्यादि वदित प्रभु चरण कमलो को भजो। देवदेव शिरोमणि सभी भूषणो मे प्रिय भूषण को भजो। शरीर मदिर के भीतर हृदय मे बुद्धि की नाभि मे चदन छलगाओ। सुदर से सुदर सुजान राम तुम्हारी आँखो और वाणी मे शोभा पाते है। तुम्हे बहुत से पाप के पर्वतों को छेदना है। कठिन भव दुख से मुक्त होना है। सत कबीर कहते है कि गोविद को भजो। परमानद प्रभु कारण है। इसलिये वे वदित है। (राग कल्याण) ऐसे मन लाइ ले राम रसनों; कपद भगति कीजो कौन गुणों ॥टिक॥ ज्यूँ भ्ग चादे बेध्यी जाए, प्यंड परे वाकी ध्यान न जाई। ज्यूं जल मीन हेत करि जॉनि, प्रॉन तजै बिसरे नही बॉलि॥ प्रिगी कीट रहे ल्यो लाइ, है लौठीन प्रिय है जाह।

पा पद ६८७ राम नाम निज अपृत्त सार सुमिरि सुमिरि जन उत्तरे पार॥ कहै कबीर दासनि को दास, अद नहीं छड़ी हरि के चरन निवास ॥३९३॥ अर्द-ऐ मन, इस प्रकार राम नाम को जीभ पर लाओ। कपट की भक्ति करने से क्या * फायदा है ? जैसे मृग सगीत सुनते मारा जाता है। शरीर गिर जाने पर भी उसे ध्यान नहीं आता है। जैसे मछली का प्रेम जल से होता है। मरते दम तक प्रेम की आदत नही छोड़ती है। : क्षमर कीड़े को ध्यान लगाकर भ्रमर बना देता है। राम ताम अमरता का सार है। जन स्मरण कर ससार सागर को पार करते है। सत कबीर अपने को भक्तो का भक्त कहते है। अब कभी हरि चरणों का निवास नही , छोड़ेगे। अलंक्कर-उदाहरण (राग सारंग) यहु ठग ठगत सकल जग डोलै; गवन करे तब मुषह न बोलै ।टिक॥ तूँ मेरो पुरिषा हों तेरी नारी, तुम्ह चलते पायर थे भारी। बालपनों के मीत हमारे, हमहि छाडि कत चले हो निनारे॥ हम सूँ प्रीति न करि री बोरी, तुमसे केते लागे ठौरी। हम काहू संगि गए न आये, तुम्ह से गढ हम बहुत बसाये ॥ माटी की देही पतन सरीर, ता ठग सूँ जन डरे कबीरा ॥३९४॥ अर्ध-माया ठग है। सारे ससार को ठगती फिरती है। मनुष्य के जाते समय आवाज भी नही निकलती है। ऐ प्रभु, तुम मेरे पुरुष हो। मे तुम्हारी स्त्री हूँ। तुम्हारे कारण पत्थर से अधिक वजनी हूँ। (दूसरा अर्थ है- चलते समय तुम पत्थर से भी कठोर हो गये हो)। तुम हमारे बचपन के मित्र हो। मुझे अकेला छोड़कर कहाँ जा रहे हो ? प्रिय का उत्तर-ऐ बावली, मुझसे प्रीति मत करो। तुम्हारे जैसे प्रीति करने वाले कितने ढेर लग गये। हम किसी के साथ न गए है, न आए है। तुम्हारे जैसे गढ़ हमने बहुत से बसाए है। यह शरीर मिट्टी, हवा आदि का है। सतत कबीर कहते है कि उस ठग से सभी लोग इरते है। घंनि सो घरी महूरत्य दिनों; जब ग्रिह आये हरि के जनों ॥ टेक॥ दरसन देखत यहु फल भया, नैनों पटल दूरि है गया। सब्द सुनत संद्ा सब छूटा, श्रवन कपाट बजर था तूदा॥ परसत घाट फेरि करि घड़पा, काया कर्म सकल झड़ि पड़या। कहै कबीर संत भल भाषा, सकल सिरोमनि घट मैं पाया॥३ ९ ५॥ अर्थ-वह समय धन्य है जब घर मे भक्त आये हो। उनका दर्शन करते यह फल हुआ कि आँखो के पटल दूर हो गये। शब्द सुनते हुए सारे सशय छूट गए। वज्र का श्रवण किवाड़ दूट गया। शरीर (घट) को छूकर जैसे पुन गढा गया हो। शरीरके सारे कर्म झड़ गये। संत कबीर कहते है कि अच्छा हुआ, शरीर मे सारे गुणों की प्राप्ति हो गयी। (राग मलार) जतन बिन मृगनि खेत उजारे। दारे दरत नहीं नित्त बातुरि, दिउरत नहीं बिडारे ॥टेको।

६८८ कवीर समग्र अपने अपने रस के लोभी, करतब न्यरे न्यारे। अति अभिमान बदत नही काहू, बहुत लोग पचि हारे ॥ बुधि मेरी किरषी गुर मेरी बिद्युका, आखिर दोड्ट रखवारे। कहे कबीर अब खान न दैहूँ, बरियां भली संभारे ॥३९६॥ अर्थ-प्रयल के अभाव मे इद्रिय मृगो ने सारे जीवन खेत को नष्ट कर दिया। ये हथने से हटते नहीं। भगाने से भागते नहीं। ये अपने रस्त के लोभी है। इनके कर्तव्य अलग-अलग है। ये अति अभिमानी है। किसी को कुछ नही समझते है। बहुत से ढोग धक गये है। मेरी बुद्धि कृषि और मेरे गुरुदेव विश्युका (खेत पशु-पक्षियो को डराने के लिये खड़ा किया गया पुतला) तथा रामनाम के अक्षर रखवाले है। सत कवीर कहते है कि मैं अपने जीवन खेत की अब खाने न दूँगा। मै ठीक समय पर सम्हल गया हूँ। अलंकार-रूपकातिशयोक्ति हरि गुन सुमरि रे नर प्राणी । जतन करत पतन द्ै जैहै; भाव जाँणम जॉणी ॥टिक।॥ छीलर नीर रहे घूँ कैसे, को सुपिम सच पावे। सूकित पॉन परत तरबर थे, उलटि न तरबरि आबे॥ जल घल जीव डहके इन माया, कोई जन उबर न पाते। राम अघार कहत हैं जुगि जुगि, दास कबीरा गावे ॥३९७॥ अर्थ-ऐ मनुष्य, प्रभु के गुणो का स्मरण करो। यल करते हुए भी शरीर तो नष्ट होगा ही। इस बात को अच्छी तरह समझो। छिछला (छीलर) तालाव कैसे रह सकता है ? सपना कैसे सच हो सकता है ? सूखे पत्ते पेड़ से गिर जाते है। फिर वे उस पेड़ मे नही लगते हैं। जल स्थल जीव माया के इन पदार्थो मे जल (डहके) रहे है। इससे कोई व्यक्ति मुक्त नही होता है। सत कबीर कहते है कि युग युग तक राम जिसके आधार है वही व्यक्ति माया से मुक्त हो सकता है। अलंकार-निर्दशना (राग धनाश्री) जपि जपि रे जीयरा गोब्यंदो, हित चित परमौनंदौ रे। विरही जन कौ बालही, सब सुख आनंदकंदौ रे ।टिक॥ घन घन झीखत घन गयी, सो घन मिलयौ न आये रे। ज्यूँ बन फूली मालती, जन्म अबिरया जाये रे॥ प्राणी प्रीति न कीजिये, इृहि झूठे संसारी रे! घूँवों केश घीटहर, जात न लागे बारी रे। भाटी केश पूतला, काहै गरब कराये रे। दिवस चारि को पेखनी, फिरि माटी मिलि जाये रे। दकॉमी राम न भावई, भावें विदै दिकारी रे। लोह नाव पाहन भरी, बूडत नहीं बारी रे॥ नौ मन मूदा न मारि सकया, नौं हरि भजि उतरधा पारो रे। कबीर कंचन गहि रहा, काँच गहे संसारों २॥३९ ८॥ अर्थ-ऐ जीव, गोविद को भजो। तुम्हारे चित्त का हित परमानद वही है। विरही जन का

पद ६८९ यह वल्ठभ है। सारे सुखो का आनद स्वरूप है। धन के लिये झखते हुए तत्त्व ज्ञान रूप धन नष्ट हो गया। वह धन कभी न आया। न मिला। जैसे वन में खिली मालती के यहाँ कोई नहीं आया। उसका जन्म व्यर्थ हो गवा। वैसे ही तुम्हारा यह मायामय जन्म व्यर्थ हो गया। है प्राणी, यह समार मिथ्या है। इससे प्रेम मत करो। यह धुएँ के भवन के समान नाशवानू है। है मिट्टीके पुतले, क्यो गर्व करते हो ? चार दिन का प्रेक्षण है। फिर मिट्टीमे मिल जाना है। कामी को राम अच्छा नही लगते। विषय के विकार अच्छे लगते है। ससार सागर मे सभी पत्थर भरी लोहे की नाव पर बैठे है। इसे डूबने मे जरा भी देर नही छंगेगी। मन नहीं मरा। न तो मर सकता है। न तो भगवान को भज कर पार उतरा। सत कवीर ने राम नाम का स्वर्ण पकड़ा है। ससारी छोग माया का कॉच पकड़े है। अलंकार-उपमा तथा रूपकातिशयोक्ति न कछु रे न कछु राम बिनॉ। सरीर धरे की रहे परमगति, साध संगति रहनों ॥टिक॥ मंदिर रचत मास दस लागे, बिनसत एक छिनाँ। बूठे सुख के कारनि प्रॉनी, परपंच करता घना॥ तात मात सुत लोग कुटुंब मै फूल्यो फिरत मना। कहै कबीर राम भजि बोरे, छौंड़ि सकल भ्रमनों॥३९९॥ अर्थ-राम के विना कुछ भी नही है। शरीर धारण करने का यही परम उद्देश्य कि साधुओं की सगति मे रहना चाहिए। शरीर मदिर के निर्माण मे दस मास ठगते है। कितु यह एक क्षण मे नष्ट हो जाता है। मनुष्य झूठे सुखो के लिये अनेक प्रकार के प्रपंच करता है। पिता, माता, पुत्र आदि परिवार मे फूला फिरता है। हि सत कबीर कहते है कि ऐ लोगो, सारे भ्रमो मे घूमना छोड़ कर राम को भजो | अलंकार-रूपकातिशयीक्ति कहा नर गरदसि थोरी बात। मन दस नाज ठका दस गठिया, ठेल़ी टेढ़ो जात ॥टेक॥ कहा लै आयी यहु धन कोऊ कहा काऊ है जात। दिवस थारि की है पतिसाही, ज्यूँ बनि हरियल पात॥ राजा भयो गाँव सौ पाये, ढका लाख दस ब्रात। राबन होत लंका को छन्नपति पल मै गई बिहात॥ माता पिता लोक सुत बनिता, अंत न चले सँगात।) कहै कबीर राम भजि बोरे, जनम अकारव जात ॥४००॥ अर्थ-हे मनुष्य, थोड़ी बात के लिये क्यों गर्व करते हो ? दस मन अनाज और गॉठ मे दस रुपये होते ही टेढ़े टेढ़े चलते हो। क्या कोई इस धन को लेकर आया है या लेकर जायगा ? चार दिनो की वादशाहत है। जैसे वन के हरे पत्ते गिर जाते है वैसे ही मानव जीवन नष्ट हो जाता है। राजा हुआ। सौ गॉव पाये। लाख रुपये की बारात प्राप्त हुई। छका का क्षत्रपति राजा रावण भी क्षण भर में नष्ट हो गया। माता, पिता, स्त्री, पुत्र आदि भी अत में व रे है। सत कवीर कहते है कि ऐ बावले, राम का भजन करो। यह जन्म व्यर्थ नष्ट अलंकार-उपमा नर पछितहुगे अंधा३./ चेति देखि नर जमपुरि जैहै, क्यूँ बिसरी गोग्यंदा |टिक॥

६९० कवीर समग्र गरभ कुंडिनल जब ठूँ बसता, उरध ध्यान ल्वी लाया। उरध ध्यान मृत मंडलि आया नरहरि नाव भुलाया॥ बाल बिनोद छहूँ रस भीनों छिन छिन बिन मोह बियापै। विष अंमृत्त पहिचोनन लागी, पाँच भाँति रस चाजे ॥ तरन तेज पर तिय मुख जीव, सर अपसर नही जाने। अति उदमादि महामद मातौ, पाप पुनि न पिछाने॥ प्यंडर केस कुसुम भये घोला, सेत पलदि गई बॉनी। गया क्रोध मन भया जु पावस, कॉम पियास मंदौनी॥ तूटी गाँठि दया धरम उपज्या, काया कबल कुमिलॉना। मरती बेर बिसूरन लागी, फिरि पीछे पछितोना ॥ कहै कबीर सुनहुँ रे संतो, घन माया कछू संगि न गया। आई तलब गोपाल राह की, घरती सैन भया ॥४०१॥ अर्थ-अरे अधे मनुष्य, पछताओगे। अभी चेत जाओ। तुम्हे यमपुर जाना है। गोविद को क्यो भूल गये ? गर्भ कुड मे जब तुम बसे थे तब ऊर्ध्व ध्यान मे लवलीन थे। ऊर्ध्व ध्यान से जब मर्त्य छोक मे आये तो भगवान् को भूल गये। वाल्यकाल मे छह रस (मधुर, लवण, तिक्त, अम्ल, कटु, कषाय) विनोद मे डूबे रहे। क्षण-क्षण मोहग्रस्त होते हो। विष अमृत का भेद उम्र बढ़ने पर समझ में आने लगा। अब पॉँच प्रकार (भक्ष्य, भोज्य, लेहय, चोष्य, पेय) से रस चखने लगे। तरुणावस्था मे समय-असमय स्त्री मुँह की प्रतीक्षा करते है। अत्यत्त उन्माद और घोर मद मे गर्क पाप पुण्य का ध्यान नहीं रहता है। बाद में केश (वाल) पीछे ओर फूल से सफेद हो गये। वोली भी बदल गयी। क्रोध चला गया। मन बरसात सा हो गया। काम पिपासा मद पड़ गयी। विषय ग्रथि टूट गयी। दया, धर्म का विकास हुआ। शरीर कमल कुम्हला गया। मरते समय विचार करने छगे। अब अपने किये का अफसोस कर रहे है। सत कबीर कहते है कि है सतो, सुनो। धन, माया कुछ भी साथ नहीं गया। जब राजा गोपाल का बुढ़ावा आया तो धरती शब्या बन गयी। अलंकार-रूपक लोका मति के भोरा रे। जो कासी तन त्जै कबीर तौ रामहि कहा निहोरा रे।टिक)। तब हमे वैसे अब हम ऐसे, इहे जनम का लाहा। ज्यूं जल मै जल पैसि न निकसै, यूँ हुरि मिले जुलाहा॥ राम भगति परि जाको हित घित, ताकी अधिरज काहा। गुर प्रसाद साध की संगति, जग जीते जाइ जुलाहा। कहै कबीर सुनहु रे संतों भ्रमि परे जिनि कोई। जस कासी तस मगहर ऊसर हिरदे राम सति होई ॥४०२॥ अर्थ-लोग वुद्धि के भोले है। अगर कबीर काशी मे तन छोड़े तो इसमे राम की कौन सी कृपा होगी ? काशी मरकर तो सभी मुक्त होते है। कबीर को तो राम की कृपा चाहिए। हम जैसे थे वैसे ही है। यही जन्म लेने का छाभ है। जैसे जल मे प्रविष्ट जल पुन जल से नहीं निकलता है वैसे ही आत्मा परमात्मा मे प्रविष्ट होकर नही निकलती है। यह कबीर जुलाहा पानी सा ढुलक कर राम से मिलेगा। जो राम भक्ति मे चित लगाये है उनके लिये यह कोई आश्चर्य रा बात नही है। गुरुदेव की कृपा और साधुओं की सगति से जुलाहा ससार जीतकर जा रह्त

The text on this page is estimated to be only 26.82% accurate

डे क धह हा ही क४+ध कक उडी जे तेरे कब अधकके शुल्क ६६ ८ हल] हैं >बफया बा... के चमक. और आर #रल दी असक सी डे 20 00 24 3 33 2 20 कम किक हैंआओ टड नर जी है नि कट हैंड असकड.. के ओफजक करणक कक -कुजट बन के के मे लऑॉलयमरमरि हीजडडभानपशाऊ ऐड * 0 ड़ $ह४१ ४१+ श हू शपुई रख $ ब 4५ डे $□ ऐसी आदएती विधूरत सा; लेज पुंछ सहों प्रीस उत्तर ।टिक)। पाती पंद बाप झरि पूजा टेब निरंजन सौर ने दूखा। परे सीस समापन शीनों प्रकट जोति तहीं जातम सीनों॥ दीएक स्यान रागद भोति घंटा पर पूरिसत तो देव अनंता। परम प्रात सकते एजियारा, कं कबीर में दात तुफारा ॥४०३॥ 0५६ किन 5५+७% हैक मूरे इलबक (लक अबूढ ४७ क.. 2फा रपट क.. मबक पक. ककममथक.. केक -मक..शथर 3 हर पु 7 हुचू« इक कफ हाट कर पर बीना शाए प् है लेज एन प्राण जे. कुक, कल करण के. के के. के मना के 8 ओके कक कर कक... और प्र क्व्फ लज्शाज 5३ 47 हा कक. कक -- तक. जननी टाढ कण ४ हक व क. पक 3 0608! हो इमाम भे |अुएओआा का ए८ए द्रा+। #%+५ ५ ७ ध्का हैं फरैंड लन४-फआऊनक 33३8 लगा आम पक पा #५+« ९. > हु बे +े है ञ् अकज> + 3. अ्सना हक ७५१३०: ३९ | जफनक कम. अदा शरचथ के. कद कई बह कब, | के गने, गन, १॥ दा रमन काने एप पाए आाट # रा ॥. के रत फेज. + $७ अलीज व ल्वयी कक हें. 30 रो मन जन किक के कर लक ! श ४ ब्रज. 20 अन्ना उमममम्कमणक 9 हजार राई पल है हु आई : -78 (मे शआायडजा सेलाएा कै शा #एह £ ग् है| ० है 3 हज | कै ॥ह # एक अच , आड़ पड अधकओ इफता, पक डाई अरब अप 2 कक चक अफाममकुरनप कक अहम फफनाबक व्कः 4 ५ ध् रब हु क- जा ही ु] हे ई तय ४२5 था हे हे हागाए मर हजफपश ॥ार शरा। सन पुकार प्रणान ह॥ हैं ०० फ फेमकओ >३च5 5 अअड ह४ है $ कह दर # ४, € "॥ ४ ई ; अपेश्ा-्पव; .

परिशिष्ट (पद) अंतरि मैल जे तीरथ नहावै तिसु बैकुंठ न जाना। लोक पतीणे कछू न होवै नाही राम अयाना॥ पूजएहू राम एकु ही देवा साथा नावण गुरु की सेबा। जल के मज्जन जे गति होबै नित नित मेडुक न्हावहि॥ जैसे मेहुक तैसे ओह नर फिरि फिरि जोनी आवहि। मनहु कठोर मरे बानास नरक न बांच्या जाई॥ हरि का संत मै हॉडवैत सगली सैन तराई। दिन सुरि बेद नहीं सासतर तहाँ बसे निरंकारा॥ कहि. कबीरा नर तिसहि. घियावहु बावरिया संसारा॥१॥ अंधकार सुख कबहि न सोइहै। राजा रंक दोऊ मिलि रोहहै॥ जो पे रसना राम न कहिबो। उपजत बिनसत रोबत रहिवो॥ जस देखिय तरबर की छाया। प्रॉन गये कहू काकी माया॥ जस जंती महि जीव समाना। मुये मर्म को काकर जाना॥ हंसा सरबर काल सरीर। राम रसाइन पीठ रे कबीर॥२॥ अग्नि न दहै पवन नहीं गमने तेस्कर नेरि न आवे। राम नाम धन करि संधोनी सो धन कतही न जाबे॥ हमरा धन माधव गोविंद धरनीधर हहेँ सार घन कहिये। जो सुख प्रभु गोविद की सेवा सो सुख राज न लहिये। इसु धन कारण सिव सनकादिक खोजत भये « उदासी। मन मभकुंद जिह्वा नाराण पर न जम की फाँसी॥ निज घन ज्ञान भगति गुरु दीनी तासु सुमति मन हलागी। जलत अंग थंमि मन धावत भरम बंधन भो भागी॥ कहे कबीर मदन के माते हिरे देखु बिचारी। तुम घर लाख कोटि अस्व हस्ती हम घर एक मुरारी॥१॥ अचरज एक सुनहु रे पंडिया अब किछु कहन न जाई। सुर नर गन गंप्रवः जिन मोहे त्रिभुवनन मेखलि लाई॥ राजा राम अनहद किगुरी बाजै। जाकी दृष्टि नाद लव छागै॥ भाठी गगन सिडिया अरु चुंडिया कनक कलस इक पाया॥ तिस महि धार चुए अति निर्मल रस महि रस न चुआया। एक जु बात अनूप बनी है पवन पियाला साजिया॥ त्तीन भवन महि एको जोगी कहहु कबन है राजा।

परिशिष्ट (पद) ऐसे ज्ञान. प्रगट्या पुरुषोत्तम कु कबीर रेंगराता ॥ और हुनी सब भरमि भुलाना। मन राम रसाइन माताता॥ अनभी कि नैन देखिया बैरागी अड्डे ब्ि‍नु भय अनभी होह वर्णों हेँगे। सहुद दूरि देखे ताभी पावै बैरागी अड़े। हुक्से बूंझे न निर्भड होइ न वर्णां हंगे। हरि पाखड न कीजई बैरागी अड़े। पाखंडे रता सब लोक बणां हंगे। तृष्ण पास न छोड़ई बैरागी अड़े। ममता जाला पिड बण्णों हंबे॥ थिता जाल तन जालिया बैरागी अड़े। जे मन निरतक होहइ बणा हंबे। सत गुरु बिन बैराग त होवई बैरागी अड़े। जे लोचे सब कोई बणा हवे। कर्म होबे सतगुरु मिले बैरागी अड़े। सहज पावै सोहइ दणा हंगे॥ कहूँ कबीर इक बेनती बैरागी अडे। मोकी भव जल पारि उतारि बड़ा हंबे॥५॥ अब मौकौ भये राजा राम सहाई। जनम मरन कदि परम गति पाई॥ साधू संगति दियो रलाइ। पंच दूत ते लीयो छड़ाइ॥ अमृत नाम जपीौ जप रसना। अमोल दास करि लीनो अपना॥ सति गुरु कीनो पर उपकांस। काढ़ि लीन सागर संसारु॥ चरन कमल स्यो लागी प्रीति। गोबिद बसे निता नित चीति॥ भाया तपति बुश्या अंग्यारस। मन संतोष नाम आपधारु॥ जल थल पूरे रहे प्रभु स्वामी। जत पेखो तत अंतर्यामी॥ अपनी भगति आपही दृढ़ाई पूरद लिखतु गिल्या मेरे भाई॥ जिसु कृपा करे तिसु पूरन साज। कबीर को स्वामी गरीब निवाज।६। अब मोहि जरत राम जल पाइया। राम उदक तन जलत बुझाइया॥ मन मारन कारन बन जाहइयै। सो जल बिन भगवत न पाहये॥ जेहि पावक सुर नर है जारे। राम उदक जन जरत उबारे॥ भवसागर सुखसागर माही। पीव रहे जल निखुटत नाही॥ कहि कबीर भजु सारिगपानी। राम उदक मेरी तिषा बुझानी॥७॥ अमल सिरानो लेखा देना। आये कठिन दूत जम लेना॥ क्या ते खदिया कहा गवाया। चलहू सिताब दिवान बुलाया॥ पलु दरहाल दिवान बुलाया। हरि फुमनि दरगह का आया॥ करो अरदास गाव किछु बाकी। लेउ निबेर आज की राती॥

६५९३

६५६५४ कबीर समग्र किछु भी खर्घ तुम्हाश सारी। सुबह निवाज सराह गुजारो॥ साध संग जाकौ हरे रंग लागा। धन धन सो जन पुरुष सभागा। ईत ऊत जन सदा सुहेले। जन्म पदारथ जीति अमोले॥ जागत सोया जन्म गँवाया। माल धन जोस्या भया पराया॥ कहु कबीर तेई नर भूले। खसम बिसारि माटी सग रूले।८। अल्ल्ह एकु मसीति बसतु है अबर मुल्कु किसु केरा। हिंदू. मूरति नॉम निवासी बुहमति तत्तु न हेरा॥ अल्लह राम जीउ तेरी नाई। तू करीमह राम तिसाई॥ दक्खन देस हारी का बासा पष्छिम अलह मुकामा॥ दिल भहि खोजि दिले दिल खोजहु एही ठौीर मुकामा। ब्रह्म न ज्ञान करहे चोबीसा काजी महरम जाना॥ ग्यारह मास पास के राखे एके माहि. निधाना॥ कहा उड़ीसे मज्जन किया क्या मसीत सिर नाये॥ दिल महि. कपटद निवाज गुजारै क्या हज काबे जाये। एते औरत मरदा साजे ये सब रूप तुमारे॥ कबीर पूँएा रांम अलह का सबय गुरु पीर हमारे॥ कहत कबीर सुनहु नर नरवे परहु एक की सरना॥ केवल नाम जपहु रे प्रानी तबही निहये त्तरना॥९॥ जन्म आई कहा तुम कीना। रांम को नांम न कबहूँ लीना॥ राम न जपहु कवन मति लागे। मरे जैबे को क्या कर अभागे॥ दुख सुख करिके छुटंब जिवाया। मरती बार इकसर दुख पाया। कंठ गहन तब कर न पुकारा। कहि कबीर आगे ते न समारा॥१०॥ अवर भुये क्या सोग करिजे। तो कीजै जो आपन जीजै॥ में न मरी मरिबो संसारा। अब मोहि मिल्यो है जियावनहारा॥ या देही परमल महकंदा। ता सुख बिसरे परमानंदा॥ कुअटआ एकु पंच पनिहारी। टूटी लेजु भै मतिहारी॥ कहु कबीर इकु बुद्धि बिचारी। ना ऊ कुअठा ना पनिहारी॥११॥ अब्बल अल्लह नूर उपाया छुदरत के सब बंदे॥ एक नूर ते सब जग उपज्या कौन भले को मंदे॥ लोगा भरमि न भुलहु भाई। खालिकु खल़क खलक महिं खालिकु पूरा रघ्यो सद ठाई॥ माठी एक अनेक भाँति करि साजी साजनहारे॥ ना कुछ पोच मादी के भोंणे ना कछु पोच ऊँभारे॥ सब महि सच्चा एकी सोई तिसका किया सब किछु होई॥ हुकप पछाने सु एकी जाने बंदा कहिये सोई॥ अल्लह अलख न जाई लखिया गुरु गुड दीना भीठा॥

परिशिष्ट (पद) कहि. कबीर मेरी संका नासी सर्व निरंजन डीठा॥१२॥ , अस्थावर जंगम कीट पतंगा। अनेक जनम कीये बहुरंगा॥ ऐसे घर हम बहुत बसाये। जब हम राम गर्भ होइ आये॥ जोगी जपी तपी ब्रह्मचारी। कबहु राजा छतन्नपति कबहु भेखारी॥ साकत मरहि संत जन जीवहि। राम रसायन रसना पीवषहि॥ कहु कबीर प्रभु किरपा-कीजै। हारि परै अब पूरा दीजै॥१३॥ अहि निसि नाम एक जौ जागै। केतक सिद्ध भये सब लागै॥ साधक सिद्ध सकल मुनि हारे। एके नाम कलपतरु तारे॥ जो हरि हरे सु होहि न आना। कहि कबीर राम नाम पछाना॥१४) आकास गगन पाताल गगन है चहु दिसि गगन रहाइले॥ आनंद मल सदा पुरुषोत्तम घट बिनसे गगन न जाइलै॥ मोहि, बैराग भयो ह्रह जीउ आह कहाँ गयो॥ पंच तत्व पमिलि काया कीनो तत्व कहा ते कीन रे॥ कर्मबद्ध तुम जीउ कहत हो कर्मीह किन जीउठ दीन रे॥ हरि महि तनु है तनु महि हरि है सर्व निरंतर सोह रे॥ कहि कबीर राम नाम न छोड़ो सहजे होइ सु होइ रे॥१५॥ अगम दुर्गम गढ़ रचियो बास। जामहि जोति करे परगास॥ बिजली चमके होइ अनंद। जिह पौड़े प्रभु बाल गुबिद॥ इह जीउ राम नाम लव लागै। जरा मरन छूटे भ्रम भागै॥ अवरन बरन स्थो मन ही प्रीति। ही महि गावन गावहि गीति। अनहद सबद होत ज्लनकार। जिह पौड़े प्रभु श्रीगोपाल॥ खंडल मंडल मंडल मंडा। बत्रिय अस्थान तीनि तिय खंडा॥ अगम अगोचर रहा अभ्यंत। पार न पावै कौ धरनीधर मंत्त॥ कदली पुहुप धूप परगासा। रज पंकज महि लियो निवास॥ दादस दल अभ्यंततर मंतत। जहैं. पोड़े ओऔकवलाकंत॥ अरध उरध मुख लागो कास। सुन्न मंडल महि करि परगासु॥ ऊहाँ सूरज नाही चंद। आहि निरंजन करे अनंद॥ सो ब्रहं्ड:ि पिड सो जानु। मानसरोबर करि स्वनानु॥ सोहं सो जाकहुँ है आप। जाको लिपत न होइ प्रुन्न अरु पाप॥ अबरन बरन धाम नहि छाम। अबरन पाइये गुरु की साम॥ दारी न ठैरै आबे न जाहे। सुन्न्न सहज महि रह्या समाह॥ मन मद्रे जाने जे कोइ। जो बोले सो आपे होइ॥ जोति मंत्रि मनि अस्थिर करै। कहि कबीर सो प्रानी त्रै॥१६॥ आपे पावक आपे पवना। जार खसम त राजे कबना॥ राम जपतु तनु जरि किन जाइ। राम नाम चित रहा समाह॥

 काको जरें काहि होइई हानि। नटवर खेले सारिगपानि॥ कह कबीर अक्खर दुद्ू भाखि। होहगा खसम त लेदगा राखि॥१७॥ आस पास घन तुलसी का बिरवा मॉँक्ष बनारस गाऊँ रे॥ वाका सरूप देखि मोही ग्वारिन मोकी छाड़िन न आउ न जहु रे॥ तोहि चरन मन लागी। सारिगधर सो मिले सो जो बड़ भागी॥ वृंदाववा समन हरन मनोहर कृष्ण चरावत गाऊ रे॥ जाका ठाकुर तुही सारिगधर मोहि कबीरा नाऊँ रे॥१८॥ इंदलोक सिबवलोके जैबो। ओछे त्प कर बाहिर॒ ऐबो॥ क्या माँगी किछु थिरू नाहीं। राम नाम राखु मन माही॥ सोभा राज विभव वड़ि पाई। अंत न कछहु संग सहाई॥ पुत्र॒कलन्न लक्ष्मी माया। इनते कहु कीने सुख पाया॥ कहत कबीर अबर नहि कामा। हमरे मन धन राम को नामा॥१९॥ ईक तु पतरि भरि उरकट कुरकट इक तु पतरि भरि पानी॥ आस पास पंच जोगिया बेठे बीच नकट देरानी॥ नकटी कोठ नगनबाड़ाई.. किनहि. बिबेकी काटी हूँ॥ सकल माहि, नकटी का बासा सकल मारिओ हैरी॥ सकलिया की हो बहिन भानजी जिनहि बरी तिसु चेरी॥ हमरो भर्त्ता बड़ों विबेकी आपे संत कहावे। ओह हमारे माये काइमु और हमरे निकट न आवै॥ नाकहु काटी कानहु काटी काटि कूटि के डारी॥ कहु कबीर संतन की बैरनि त्तीनि लोक की प्यारी॥रणा। इन माया जगदीस गुसाई तुमरे चरन बिसारे॥ कियचत प्रीति न उपज जन को कहा करे बेचारे॥ धृग तन घृग धन घृग इह माया पघ्रग मति जुयि फन्ना॥ इस माया कौ दृढ़ करे राखह बाधे आप बचन्ना॥ क्या खेती क्या लेखा देवा परपंच झूठ गुमाना॥ कहि कबीर ते अंत बिगूते आया काल निदाना॥२१॥ इसु तन मन मध्ये मदन चोर। जिन ज्ञानरतन हरि लीन मोर॥ मैं अनाव प्रभु कही काहि। की कौन बिगूतो मैं को आहि॥ माधव दारुन दुख सहेयौ न जाइ। मेरी चपल बुद्धि स्यो कहा बसाई॥ सनक सनंदन सिर सुकादि। नाभि कमल जाने ब्रह्मादि॥ कविजन जोगी जठाधघारि! सब आपन औसर चले सारि॥ तू अथाह मोहि थाह नाहि। प्रभु दीनानाव दुख कहीं काहि॥ मेरो जनम मरन दुख आधि धीर। सुखसागर गुन रव कबीर॥२२॥

प्रिशिष्ट (पद) इहु धन मेरो हरि का नाएँ। गाठि न बॉधो वेधि न खाऊँ॥ नॉउ मेरी खेती ना मेरी बारी। भगति करो जन सुरत तुम्हारी॥ नाएँ मेरे माया नाँउ मेरे पूँजी। तुमहि छोड़ि जानो नहि दूजी॥ नाएँ मेरे यंधिय नाउ मेरे भाई। नॉउ मेरे संगी अंति होई सहाई॥ माया महि जिसु रखे उदास। कहि कबीर हो ताकौ दास॥२३॥ उदक सुमंद सलल की साख्या नदी तरंग समावहिगे॥ सुन्नहि सुन्‍्न मिल्या समदर्सी पवन रूप होइ जावहिंगे॥ बहुरि हम काहि आवहिगे। । आवन जाना हुक्म तिसे का हुक्‍्मे बुज्धि समावहिगे॥ जब यूके पंथ धातु" की रचना ऐते भर्म चुकावहिगे॥ दर्सस छोड़ भए समदर्सी एको नाम धियाबहिगे॥ जित हम लाए तितही लागे तैसे करम कमावहिगे॥ हरि जी कृपा करे जौ अपनी तौ गुरु के सबद कमावहिगे॥ जीवत मरहु मरहु फुनि जीवहु पुनरपि जन्म ने होई॥ कह कबीर जो नाम समाने सुनन्‍्न रह्यों लव सोई॥२४॥ उपजै निपजे निपजिस भाई। नयनहु देखत इह जग जाई॥ लाज न मरहु कही घर मेरा। अंत की बार नहीं कछु तेरा॥ अनेक जतन कर काया पाली। मरती बार अगनी संग जाली॥ थोवा घंदन मर्दन अंगा। सो तनु जले काठ के संगा॥ कहु कबीर सुनहु रे गुनिया। बिनसैगो रूप देखे सब दुनिया॥२५॥ उलठत पवन चक्र षट भेदे सुरति सुन्त अनुरागी॥ आवै न जाइ मरे न जीवै तासु खोज बैरागी॥ मेरो मन मनही उलटि समाना। गुरु परसादि अकल भई अबरे नातरु था बेगाना॥ नियरे दूरि दूरि फनि निबे जिन जैसा करि भान्या॥ अलउती का जैसे भया बरेडा जिन पिया तिन जान्या॥ तेरी निर्णण कथा काहि स्यो कहिये ऐसा कोई बिबेकी॥ कहु कबीर निज दिया पलीता तिनते सीझल देखी॥२६॥ उलटि जात कुल दोऊ बिसारी। सुन्न सहजि महि बुनत हमारी॥ हमरा झगरा रहा न कोऊ। पंडित मुल्ला छाड़े दोऊ॥ बुनि बुनि आप आप पहिरावी। जह नहीं आप तहाँ है गाबों॥ पंडित मुल्ला जो लिखि दिया। छाड़ि चले हम कछू न लिया॥ रिदे खलासु निरिखि ले मीरा। आपु खोजि खोजि मिले कबीरा॥२७॥ ६५७

 उस्तुति निदा दोऊ बविबरजित तजहू मानु अभिमान॥ लोहा कंचन सम करे जानहि ते मूरति भगवान॥ तेरा जन एक आध कोई। काम क्रोध लोभ मोह बिबरजित हरिपद चीन्हे! सोई॥ रजगुण तमगुण सतगुण कहिये इह तेरी सब माया॥। थोथे पद को जो नर चीन्हे तिनहि परम पद पाया॥ तीरवथ वरत नेम सुधि संजम सदा रहें निहकामा॥। त्रिस्सा अर माया भ्रम चूका चितवतत आतमरामा॥। जिस मंदिर दीप परिगास्या तह नासा॥ निरभी पूरि रहे भ्रम भागा कहि कबीर जनदासावर ८।। ऋदि सिद्ध जाको फुरी तब काहू स्स्थों क्या काज॥ तेरे कहिने कौ गति क्या कहीं में बोलत ही बड़ लाज॥ राम जिहई पाया राम ते भवहि न बरे बार॥ झूठा जग डहके घना दिन दुई वर्तन की आसा राम उदक जिह जान पिया तिह चबहुरि न भई पियास॥ गुठत प्रसादि जिहि बुक्षिय आसा ते भया निरास॥ सब सधुन दि आइया जौ आतम भया उदास॥ राम नाम रस चाखिया हरि नाथा हरि त्ारि॥ कहु कबीर कंचन भया भ्रम गया समुद्रे पारि॥२९॥ एक कोट पंचसिक दारा पंधे माँगहि. हाला। जिमि नाही में किसी की बोई ऐसा देन दुखाठा॥ हरि के लोगा मोकी नीति डसे पटवारी। ऊपरा भुजा करि मैं गुरु पहि पुकारा तिनहीं लिया उबारी॥ नव डाडी दस मुंसप धावहि रइयति बसम न देही। डोरी पूरी >मापहि नाहीं बहु बदिछाला लेही॥ बहुतरिे घर इक पुरुष समाया उन दीया नाम लिखाई। धर्मतय का दफ्तर सोध्या बाकी रिज मन काई।। संता की मति कोई निदहु संत राम है एको। कहु कबीर मैं सो गुरु पाया जाका नाउ बिबेको॥३०॥ एक जोति एक मिली किवा होइ न होइ। जितु घटना मन उपजै फूंटि मै जन सौह॥ सावल . सुंदर रामय्या मेरा मन लागा तोहि। साधु मिले सिधि पह्ये कियेह योग की भोग डुहु. मिलि कारण ऊपजै राम नाम संयोग। लोग जाने इडहृहु गीता है इहु तो ब्रह्म बिधार॥ ज्यो कासी उपदेस होइ मानस मरती बार!

परिशिष्ट (पद) कोई गावे कोई सुनै हरि नामा चितु लाइ॥ कहु कबीर संसा नहीं अंत परम गति पाह॥३१॥ एक स्वान के घर गावण जननी जानत सुत बढ़ा होता है। इतना कुन जाने जि दिन दिन अवध घटत है॥ मोर मोर करे अधिक लए धरे पेखत ही जमराउ हसे। ऐसा ते जगु भरम भुलाया कैसे मुझे जब मोह्या है माया॥ हे पज्यीर छोड़ि बिषया रस इतु संगति निहची मरना। . अयह प्राणी अनत जीवण बाणी इन बिधि भवसागर तरना॥। जाँति सुभावे ता लागे भाउ। भर्म भुलावा बिचहु जाइ। उपजै सहज ज्ञान मति जागै। गुरु प्रसाद अंतर लव हछागै॥ इतु संगति नहीं मरणा। हुकुम पछाणि ता खसमे मिलणा॥३२॥ ऐसो अचरज देख्यो कबीर। दथि के भोले विरीौले नीर॥ हरी अंगूरी गदहा चरै। नित उठि हासे हीगे मोरै॥ माता भैसा अम्मुहा जाह। कुदि छुदि चरै रसातल पाइ।॥ कहु कबीर परगट भई खेड़। ले ले को चूधे नित भेड़॥ राम रमत मति परणाटे आई। कहु कबीर गुरु सोझी पाई॥३३॥ ऐसी इहु संसार पेखना रान न कोऊ पैहे रे। सूधे सूधे रेगि चलहु तुम नतर कुधका दविबैंहे रे॥ बारे बूढे तरुने भैया सबहु जम , ले जैहै रो। मानस बपुरा मूसा कीनी मीच बिलैया खैहे रे॥ घनवबंता अरु नि्रे्भे मनई ताकी कछू न कानी रे। राजा परजा सम कारे मौरै ऐसो काल बड़ानी रे। हरि के सेवक जो हरि भाये तिनकौ कथा नियारी रे। आवहि न जाहि न कबहूँ मरते पारब्रह्म संगारी रे॥ पुत्रकलत्र लच्छामी माया इहै त्जहु जिय जानी रे। कहत कबीर सुनहु रे संतहु मिलिहे सारंगपानी रे॥३४॥ ओई जू दीसहि अंबरि तारे। किन ओइ चीते चीतन हारे। कहु रे पंडित अंबर कास्यो छागा। वूझे बूझनहार सभागा॥ सूरज चंद्र करहिे उजियारा। सब महि पसरथा ब्रह्म पसारया। कहु कबीर जानैगा सोई। हिरदे राम मुखि राम होई॥३५॥ कंचन स्यो पाइये नहीं तोलि। मन दे राम लिया है भौलि। अब मोहि राम अपना करि जान्या। सहज सुभाइ मेरा मन मान्या॥ ब्रहे कयि कयि अंत न पाया। राम भगति बैठे घर आया। कहु कबीर चंचल भति त्यागी। केवल राम भक्ति निज भागी॥३६॥ ६९५९

कबीर समग्र कत नहीं ठौर मूल कत लावी। खोजत तनु महि ठोर न पादी। लागी होह सो जाने पीर। राम भगत अनियाले तीर॥ एक भाई देखो सब नारी। क्या जाना यह कौन पियारी। कहु कबीर जाके मस्तक भाग। सब परिहरि ताको मिले सुहाग ॥३७॥ करवतु भला न करवट तेरी। लागु गले सुन विनती मेरी॥ हो बारी मुख फेरि पियारे। करवट दे मोकौ काहे कौ मारे॥ जी तन चीरहि अंग न मोरो। पिड परे तो प्रीति न तोरी॥ हम तुम थीच भयो नहीं कोई। तुमहि सुकंत नारि हम सोई॥ कहत कबीर सुनहु रे होई। अब तुमरी परतीति न होई॥३८॥ कहा स्वान कौ सिमृति सुनाये। कहा साकत पहि हरि गुन गाये॥ राम राम रमे रमि रहिये। साकत सयथों भूलि नहि कहिये॥ कौआ कहा कपूर धराये। कह विसियर को दूध पिआवे॥ संत संगति मिलि बिबेक बुध होई। पारत परस लोहा कंचन सोई॥ सकत स्वान सब कर कहाण। जो घुरि लिख्या सु करम कमाया॥ अमिरत है ले नीम सिधाई। कहत कबीर बाको सहज न जोई॥३९॥ काम क्रोध तृष्णा के लीने रति नहीं एके जाना। फूटी आंखे कछू न सूझे बूड़े मूये बिनु पानी॥ चलत कत टेढ्े ठेठ्े ठेढ़े। । अस्थि चर्म विष्ठधा के मूँदे दुरगंधहि के बेढ़े॥ राम न जपहु कीन श्रम भूले तुमते काल भ दूरे। अनेक जतन करि हृह तन राखह. रहे अवस्था पूरे॥ आपन कीया कछू न होवै क्या को कै ए्रानी। जाति सुभावै सति गुरु भेटे एको नाम बखानी॥ बलुआ के घरुआ में बसते पफुलबत देह आयने। कु) कबीर जिह राम न चेत्यो बूड़े बहुत सयाने॥४०॥ काया /कलालनि लादनि मेलौ गुरु का सबद गुड़ कीनु रे। प्ि्स्ना काम क्रोध मद मत्सर काटि कादि कसु दीन रे॥ कोई हरे संत सहज सुख अंतरि जाकी जप तप देउ दलाली रे। एक डूँद भरि तन मन देवों जो मंद देह कलाली रे॥ भुवन चतुरदस भाटी कीनी ब्रह्म अगिन त्तन जारी रे। मुद्रा मदक सहज धुनि लागी सुखमन पोचनहारी रे॥। तीरथ बरत नेम सुधि संजम रबि ससि गहने देउ रे। सुति पियास सुधारस अमृत “एहु महारसु पेउ रे॥ निरझतर घार चुओऔ अति निर्मल इृह रस मनुआ राती रे! कहि. कबीर सगले मद छूछे इहे! महारस साथों रे॥४१॥

परिशिष्ट (पद) कालबूत की हस्तनी मन बौरा रे चलत रघ्यो जगदीस। काम सुजाइ गज बलि परे मन बोरा रे अंकसु सहियो सीस॥ दिधय याघु हरि रायु समझु मन बौरा रे। निर्भभ होइ न हरि भजे मन थोरा रे गहयों न राम जहाज॥ मर्क्अट घु्दी अनाज की बन झोरा रे लीनी हाथ पसारि। छूटन को संसा परया मन छोरा रे नाध्यों घर घर वारि॥ ज्यों नलनी सुअटा गहयो ,मन छोश रे माया इहु व्योहारू। जैसा रंग कसुँग का मन बोरा रे त्यो पसरये पासारू॥ नावन को तीरथ घने मन बोरा रे पूजन को बहु देव। कह कबीर छूटत नहीं मन बोरा रे छूट न हरि की सेव॥४२॥ काहू दीने पाट पटंबर काहू पलघध निवारा। काहू' गरी गोदरी नाही काहू खान परारा॥ अहि रख दद८ु न कीजै रे मन। सुकृत करे करि लीजै रे मन। कुमर एक जु माटी गूंधी जु बिधि बानी लाई॥ काहूं महि. मोती मुकताहल काहू व्याधि लगाई। सूमहि धन राखन को दीया मुगध कहे धन मेरा॥ जम का दंड मूंड महि लागै खिन महि करें निबेरा। हरि जन ऊतम भगत सदाव आज्ञा मन सुख पाई॥ जो तिसु भावे सति करे माने भाणा मंत्र बसाई। ' कहै कबीर सुनहु रे संतहु मेरी मेरी झूठी॥ घिरगट फारि चठारा है गयो तरी तागरी छूटी॥४३॥ किनही बनज्या काँसा ताबा किनही लौग सुपारी। संतहु बनज्या नाम गोबिद का ऐसी खेप हनारी॥ हरि के नाम के व्यापारी। हीरा हाथ चढ्या निर्मेलकक:. छूटि. गई संसारी॥ सोचे लाए तो सच हलागे सोचे के ब्योपारी॥ साँची बस्तजु के भार चलाए पहुँचे जाह भंडारी॥ आपहि. रतन जवाहर मानिक आप है पासारी। आप है दस दिलि आप चलाबै निह्चल है व्ययापारी॥ मन करि बैल सुरति करे पडा ज्ञान गोनि भरी डारी। कहत कबीर सुनहु रे संतहु निवाही खेप हमारी॥४४॥ कियो सिगार मिलन के ताईं। हरि न मिले जगजीबन गुसाई। हरि मेरी पिउ मै राम की बहुरिया । राम बडे मै तनक लहुरिया ।। धनि पिय एके संग बसेश। सेश एक पे मिलन दुहेरा धन्न सुहायनि जो पिय भाषे। कहि कबीर फिर जनमि न आबे॥४५॥ ७०१

१०२ कवीर समग्र कूटन सोह जु मन को कूटे। मन कूटे तो जम ते एूढे॥ कुटि कछुटि मन कसवहीं लाबे। सो कूटनि मुकति बहु पावे॥ कूटन किसे कहहु संसार सकल बोलन के माहि विचार॥ नाचन सोह जू मन स्थो नाथे। झूठ न पतिये परथे साथे॥ इसु मन आगे पूरे ताल। इसु नाचन के मन रखवाल॥ वबाजरी सो बजारहे सोधे। पाँच पलीतह को परबवोचै॥ नव नायक की भगति पछाने। सो बाजारी हम गुरु माने॥ तस्कर सोइ जिता तित करै। इंद्री के जतनि नाम ऊच्रे॥ कहु कबीर हम ऐसे लक्ख़न। पघनन गुरुदे अतिरूप बिधचक्खन॥४६॥ कोऊ हरि समान नही राजा । ए भूपति सब दिवस यारि के झठे करत दिवाजा॥ तेरी जन सोइ कत डोलै तीनि भबन पर छाजा। हाथ पसारि सके को जन कौ बोलि सके न अंदाजा॥ येति अधेति मूठ मन मेरे बाजे अनहद बाजा। कहि. कबीर संसा श्रम चूको प्लुव प्रक्राद निवाजा॥४७॥ कोटि सूर जाके परयास। कोटि महादेव अरू कबिलास॥ दुर्गा कोटि जाके मर्दन करैं। ब्रह्म कोटि बेद उच्चारै॥ जो जॉनी तो केबल राम। आन देव स्यथो नाहीं काम॥ कोटि चंद्र मे करहे चराक। सुर तेतीसी जेवहि पाक॥ नवग्रह कोटि ठाढ़े दरवार। धर्म कोटि जाके प्रतिहार॥ पवन कोटि चौबारे फिरहि। बासक कोटि सेज बिस्तरहि॥ समुँद कोटि जाके पनिहार। रोमावलि कोटि अठारहि भार॥ कोटि कुबेर भरहे भंडार कोटिक लखमी कर सिगार॥ कोटिक पाप पुन्य यहु हिरहि। इंद्र कोटि जाके सेवा करहि॥ छप्पन कोटि जाके प्रतिहाश। नगरी नगरी खियत अपार॥ लट्‌ छूटी बरते दिकराल। कोटि कला खेले गोपाल॥ कोटि जय जाके दरबार। गंधर्द कोटहि करहि जयकार॥ विद्या कोटि सबै गुन कहै। ताऊ पारब्रह्म का अंत न ठहै॥ दावन कोदि जाके रोमाचली। रावन सेना जह ते छली॥ सहसू कोटि बहु कहत पुरान। दुर्योधन का मधिया भान॥ओ। कंद्रप कोटि जाके लवे न घरहि। अंतर अंतरि मनसा हरहि॥ कहि कबीर सुनि सारंगपान। देहि अभयपद मानो दान॥ कोरी को काहू धरम न जाना। सब जग आन तनायो ताना। जद तुम सुनि ले ग्रेद पुराना। तब हम इतनुक पसरधों ताना॥ घरनि अकास की करगह बनाई) घंद सुरज हुई साथ चलाई॥४८॥ पाई जोरि बात इक कीनी तह ताती मन माना॥ जोलाहे घर अपना चीनी घट ही. राम पछाना॥।

परिशिष्ट (पद) कहत कबीर कारागह तोरी। सूतै सूत मिलाये कोरी॥४९॥ कौन काज सिजे जग भीतरि जनमि कौन फल पाया। भव निधि दरन तारन चितामनि इक निमिष न इहु मन लाया॥ गोदिद हम ऐसे अपराधी । जिन प्रभु जीउ पिड था द्ीया। तिसकी भाव भगति नहि साधी॥ परधन परतन परतिय निंदा पर अपवाद न छूटै॥ आवागमन होत है फुनि फुनि इहु पर संग न छूढे॥ इहि घर कथा होत संतन इक निमष न कीनो में फ़ेरा॥ लंपट चोर धूत मतबवारे तिन सैंगि सदा बसेरा॥ दया धर्म ओ गुरु की सेवा ए सुपनंतरि नाहीं। दीन दयाल कृपाल दमोदर भगति बछल भैहारी॥ कहत कबीर भीर जनि राखहु हरि सेवा करी तुमारी॥५०॥ कौन तो पूत पिता को काकौ। कौन मेरे को देह संतापो॥ हरि ठग जग कौ ठगौरी लाई। हरि के वियोग कैसे जियो मेरी माई॥ कौन को पुरुष कौन की नारी। या तत लेहु सरीर दिचारी॥ कहि कबीर ठग स्यो मन मान्या। गई ठगौरी ठग पहिचान्या॥५१॥ क्या जप, क्या तप क्या ब्रत पूजा। जाके रिंदे भाव है दूजा॥ रे जन मन माधव स्यो लाइयै। चतुराई न चतुभुंज पाहये।॥ परिहरि लोभ अरु लोकाधार। परिहरि काम क्रोध अहंकारा॥ कर्म करत बद्धे अहमेव। मिल पाथर की करही सेव॥ कहु कबीर भगत कर पाया। भोरे भाद मिले रघुराया॥५२॥ क्या पढ़िये क्या गुनिये। क्या वेद पुराना सुनिये॥ पढ़े सुनी क्या होई। जो सहज न पिलियो सोई॥ हरि का "नाम न जपसि गवारा। क्या सोचहि बारंबार) अँधियारं दीपक चहिये। इक बस्तु अगोचर लहियै॥ बस्तु अगोच पाई। घट दीपक रहया समाई॥ कहि. कबीर अब जान्या। जब जान्या तोमन मान्या॥ मन माने लोग न पतीजै। न पतीजै तो क्या कीजै॥५३॥ खसम मरे तो नारी न रोबे। उस रखवारा औरो होवै॥ रखवारे का होह बिनास। आगे नरक ईहा भोग बिलास॥ ' एक सुहागिन जगत पियारी। सगले जीव जंत की नारी॥ सोहागिन गल सोहे हार। संत को बिष विगसे संसार करि सिगार बहै पखियारी। संत की ठिठकी फिरे दिधारी॥ सेत्र भागि ओह पाठे परै। गुरु परसादी मारु डरे॥

१०४ कबीर समग्र साकत को ओह पिड पराइणि। हमको दृष्टि परै च्खि डाइणि॥ हम तिसका बहु जान्या भेव। जबहु कृपाल मिले गुरु देव॥ कहु कबीर अब बाहर परी। संसौरै के अंचल. लरी॥५४॥ गंग गुसाइन गहिर गँभीर। जंजीर बाँधि करि खरे कबीर॥ मन न ठिगै तन काहे को उराइ।! चरन कमल घित रहो समाइ॥ गंगा की लहरि मेरी ठुटी जंजीर। मृगछाला पर बैठे कबीर॥ कहि कबीर कोऊ संग न साथ। जल यथल राखन है रघुनाथ॥५५॥ गंग के संग सलिता बिगरी। सो सलिता गंगा होह निबरी॥ विगरथो कंबीरा राम दुहाई। साधु भयो अन कतहि न जाई॥ चंदन के संगि तरवर बिगरयौ। सो तरवर चंदन डै नियरो॥ पारस के संग ताँबा बिगरया। सो ताँवा कंचन डै निबरयो॥ संत्न संग कबीरा बिगरयो। सो कबीर राम डै निवरयो॥५६॥ गगन नगरि इक बूँद न चर्षे नाद कहा जु समाना। पारब्रह्यय परमेसर माधव परम हंस ले सिधाना॥ बाबा बोलते ते कहा गये देही के संगि रहते। सुति माहि जो निरते करते कथा बार्ता कहते॥ वबजादनहारो कहाँ गयो जिन हहु मंदर कीना। साखी सबद सुरति नहीं उपज बिंद तेज सब लीना॥ स्वननि बिकल भये संगि तेरे इंद्री का बल थाका। चरन रहे कर ठढरक परे है मुखहु न निकसे बाता॥ थाके पंचचूत सब तस्क आप आपणे पभ्रमते। थाका मन कुंज उर थाका तेज सूत घरि रमते॥ मिरतक भये दसे बंद छूढे। मित्र भाई सब छोरे। कहत कबीरा जो हरि ध्यावे जीवन बंधन तोरे॥५७॥ गगन रसाल चुए मेरी भाठी। संधि महारस तन भया काठी। वाकी कहिये सहज मतवारा। पीवत राम रस ज्ञात बियारा॥ सहज कलाननि जी मिलि आई। आनंदि माते अनदिन जाई। चीन्हत चीत निरंजन ठाया। कहु कबीर तो अनुभव पाया॥५८॥ गज नव गज दस इक्कीस पुरी आये कत नाई। साठ सूत नव खंड बहत्त पु लगो अपधिकाई॥ गई छुनावन भमाहों घर छोड्या जाइ जुलाहो। गजी न भिनिये तोलि न तुलिये पाँच न सेर अढ़ाई॥ जो करि पाचन बजेगि न पावै झगरू कै घर आई। दिन की बैठ झूसम की बरकस इह बेला कते आई॥ छूटे कुंडे भीगे पूरिया घलयो जुलाहों.. रिताई।

परिशिष्ट (पद) छोही नली तंतु नहीं निकसे नतरू टही उरझाही॥ छोड़ि परसाई हारु बपुरी कहु कबीर समुझाही ॥५९॥ गज साढ़े ते ते धौतिया तिहे पाइनि तग्गा। गली. जिना जपमालिया लौटे. हत्विनि बग्गा॥ ओइ हरिके संतन आखि यदि बनासि के ठ्ग्गा। ऐसे संत न मोकौ भावहि डाला स्यो पेड़ा गठकाबहि॥ बासन माजि चरावहि: ऊपर काठी घोइ. जलावहि। बसुधा खोदि करहि दुइ घूल्हे सारे माणस खावहि॥ ओई पापी सदा फिरहि अपराधी मुखहु अपरस कहावहि। सदा सदा फिरहे अभिमानी सकल कुदुंब डुबावहि॥ जित को लाया तितही लागा तैसे करम कमावै। कहु कबीर जिसु सति गुरु भेटे पुनरपि जनमि न आबै॥६०॥ गर्भ वास महि कुल नहि जाती। ब्रह्म बिद ते सब उतपाती॥ कहु रे पंडित बामन कब के होये। बामन कहि कहि जनम मति खोये॥ जौ त ब्राह्मण ब्राह्मणी जाया। तौ आन बाट काहे नहीं आया॥ तुम कत ब्राह्ण हम कत शूद। हम कत लोहु तुम कत दूध॥ कहु कबीर जो ब्रह्मा बिचारै। सो ब्राह्मण कहियत है हमारे ॥६१॥ गुड करि ज्ञान ध्यान करि महुँतवा भव भाठी मन धारा। सुबमन नारी सहज समानी पीबं पीवन हारा। अवधु मेरा मन मतवारा। उन्सद चढ़ा रस चाख्या : त्रिभुवन भया उजियारा॥ दुइई पुर जोरि रसाई भाठी पीउ महारस भारी। काम क्रोध दुई किये जले ता छूटि गई संसारी॥ प्रगट प्रगास ज्ञान गुरु गम्मित सति गुरु ते सुधि पाई। दास कबीर त्तासु ' मदमाता उचकि न कबहूँ जाई॥६२॥ गुरु चरण लागि हम बिनवत पूछत कह जीव पाया। कौन काज जग उपजै कहहु माँह. समझाया॥ देव करु दया मोहि मारग लावहु जित भवबंधन टदूंटे। जनम मरण दुख फेड कर्म सुख जीय जनम ते छूट़े॥ माया फास बंधन ही फौरै अरु मन सुन्ि न कूके। आया पद निर्8वण न चीन्हझा इन बिधि अभिउ न चूके॥ कही न उपजै उपजी जाणे भाव प्रभाव बिहूणा। उदय अस्त की मन बुधि नासी तो सदा सहजि लवलीणा॥ ज्यो प्रतिबिय बिब कौ मिलिहै उदक कुंभ बिगराना। कहु कबीर ऐसा गुण भ्रम भागा तो मन सुन्तन समाना॥६३॥ छ0०५

छ०दघ् कबीर समग्र गुरु सेवा ते भगति कमाई। तब इृह मानस देही थयाई॥ इस देही कौ सिमरहि देव। सो देही भज्जु हरि की सेव॥ भजहु गु्बिद भूल मत जहु। मानस जनम का रही छहु॥ जब लग जरा रोग नहीं आया। जब लग काल ग्रसी नहि काया॥ जब लग बिकल भई नहीं बानी। भजि लेहि रे मन सारंगपानी॥ अब न भजसि कब भाई। आवबे अंत न भजिया जाई॥ जो किछु करहि सोई अबि सारू। फिर पछताहु न पावहु पाह॥ सो सेवक जो लाया सेव। तिनहीं पाये निरंजन देद॥ गुरु मिलि ताके खुले कपाट। बहूरि न आवे योनी जाढ॥ इही तेरा अवसर इह तेरी बार। घट भीतर तू देखु बियारि॥ कहत कबीर जीति के हारि। व्हुबिधि क्यो पुकारि पुकारि॥६४॥ गृह तजि बन खंड जाहये चुनि खाहये ऊंदा। अजहु बिका न छोड़ई पापी मन मंदा॥ क्यो. छूटो. कैसे तरी भवनिधि जल. भारी। राखु राखु मे बीहुलां जद सरनि तुमारी॥ विषम विषय डासना तजिय न जाई। अनिक यत्न करि राखिये फिरि लपठाई॥ जरा जावन जोबन गया कछु कीया न नीका। इह जीया निर्मेल. को कोड़ी लगि मभीका॥ कहु कबीर मेरे माधवा तू सर्वव्यापी। तुम सम सरे नाही दयाल मो सम सरि पापी॥६५॥ गृह शोभा जाके रे नाहि। आवत पहिया खूघे जाहि॥ बाके अंतरि नहीं संतोष। बिन सोहागिन लागै दोष॥ घन सोहागिन महा पबीत। तपे तपीसर डाहे चीत॥ सोहागनि किरपन की पूती। सेवक तजि जग त्तस्थों सूती॥ साधू के ठाही दरबारि। सरनि तेरी मोकी निस्तारि॥ सोहागनि है अति सुंदरी। पगनेवर छनक छन हरी॥ जौ लग प्रान तऊ लग संगे। नाहिन चलो ब्ेगि उठि नंगे॥ सोहागनि भवन मे लीया। दस अष्ट पुराण तीरव रसकीया॥ ब्रह्म विष्णु महेसर बेघे। बड़ भूपति राजे है छेघे॥ सोहागनि उर वारि न पारि। पाँद नारद के संग बिधदारि॥ पाँच नारद के मिटवे फूटे। कहु कबीर शुरु किरपा छूटे॥६६॥ चंद सूरज दुई जोति सरूप। जोता अंतरि ब्राह्ष अनूप॥ करू रे ज्ञानी ब्रह्म विधार। जोति अंतरि जरि आप सार॥ हीरा देखि हीरे करो आदेस। कहे कबीर निरंजन अलेखु॥६७॥

परिशिष्ट (पद). चरन कमल जाके रिदि बसे सो जम क्यों डोले देव। मानो सब सुख नवनिधि ताके सहजि जस बोले देव॥ तब इह मति जौ सब महि पेखै कुटिल गाँठ जब खोले देव। बारंबार माया ते अठके लै नरु जा मन तोलै देव॥ जहँ उह जाई तही सुख पावै माया तासु- न झोले देव। कहि कबीर मेरा मन मान्या राम प्रीति .को ओले देब॥६८॥ चार पाव दुईइ सिंग गुंग मुख तब कैसे गुन गैहै॥ ऊठत बैठत ठेगा परिहई तब कत मूड लुके है। हरि बिन दैल बिराने है है। फाटे नाक न दूं का धन कोदी कौ भुस खैहै॥ सारो दिन, डोलत बन महिया अजहु न पेट अधैहे॥ जन भगतन को कही न माना कीयो अपनो पेहै॥ दुख सुख करत महां भ्रम बूड़ो अनिक योनि भरमैहै। रतन जनम खोयो प्रभु बिसस्यो इह अवसर कत पैहै॥ >भ्रमत फिरत तेलक के कपि ज्यों गति बिनु रेन बिहैहै। कहत कबीर रांम नांम बिन मूंई घुने पछितैहे॥६९॥ चारि दिन अपनी नोबति चले बजाइ। > इतन छू खटिया गठिया मठिया संगि न कछु है जाईइ॥ देही बेठी मेही रोबे हरा लौ संग. माह। मरहटद़ लगि सब लोग कुटुंब, मिलि हंस इकेला जाई॥ देसु तबै दितवे पुर पाटन बहुरि न देखे आई। कहत कबीर राम को न सिमरहु जन्म अकारथ जाई॥७०॥ चोवा चंदन मर्दन अंगा। सो तन जले काठ के संगा॥ इसु तन धन की कौन जबड़ाई। घरनि परै उरबारि न जाई॥ रात जि सोवहि दिन करहि काम। इक खिन लेहि न हरि को नाम॥ हाथि त डोर मुख खायो तंबोर। मरती बार कसि “बॉध्यो चोर॥ गुरू मति रहे रसि हरि गुन गावै। रामे राम रमत सुख पावै॥ किरपा करे के नाम दृढ़ाई। हरि हरि बास सुगंगा बसाई॥ कहत कबीर चेत रे अंधा। सत्य राम झूठ सब धंधा॥७१॥ जग जीवन ऐसा सूपने जैसा जीवन सुपन समानं। सातु करि हम गांठ दीनी छोड़ि परम निधानं॥ वाया माया मोहि हितु कीन। जिन ज्ञान रतन हरि लीन। नयन देखि पतंग उरझे पसु न देखे आगि॥ काल पास ऩ भुगध चेतै कनिक कामिनि लागि॥ करि विधारि बिकार परिहरि तरन तारन सोह॥ 90०७9

१०८ - कबीर समग्र कहि. कबीर ज़ब जीवन ऐसा दुतिया नहीं कोइ॥७२॥ जन्म मरने का भ्रम गया गोबिद लिव हलागी। जीवत सुन्नि समानिया नुरू साखी. जागी॥ कासी ते घधुनी उपज धुनि कासी जाई ॥ कासी फूटी. पंडिता धुनि कहाँ. समाई ॥ त्रिकुटी संधि मै पेखिया घटटू घट. जागी। ऐसी चुद्धि समाचरी घट माहि तियागी॥ आप आप जे जागिया तेज तेज समाना। कहु कबीर अब जानिया गोबिद मन माना ॥७३॥ जब जरिये तब होइ भसम तन रहै किरम दल खाई। काची गागरि नीर परतु है या तन की हहै बड़ाई॥ काहे भया फिरतो पफूला फूला। जब दस मास उरध मुका रहता सो दिन कैसे भूला॥ ज्यो मधु मक्‌खी त्यो सठोरि रसु जोरि जोरि धन कीया। मरती बार लेहु लेहु करिये भूत रहन क्यो दीया देहुतु लौ बरी नारि संग भई आगे सजन सुहेला। मरघट लो सव लगे कूटुंब, भयो आगे हंस अकेला॥ कहत कदीर सुनहु रे प्रानी परे काल ग्रस॒ कूआ। झूठी माया आप बैंधाया ज्यों नलनी भ्रमि सुआ॥आए७४॥ जब लग तेल दीवे मुख बाती तब सुझपे सब कोई। तेल जल बाती ठहरानी सूना मंदर. होई॥ रे बोरे तुहि घी न राखे तूँ राम नाम जपि सोई। काकी माता पिता कहु काको कौन पुरुष की जोई॥ घट फूट कोऊ बात न पूछे काढठहु होई। देहुतु बेठ माता रोबे खटिया ले गये भाई॥ लट॒ छिटकाये. तिरिया रोबे हंस इकेला. जाई। कहत कबीर सुनहु रे संत्हु भौसागग के ताई॥ इस बंदे सिर जुलम होता है जम नहीं घंटे गुसाई॥७५॥ जब लग मेरी कौ। तब लग काज एक नहि सरै॥ जब मेरी मेरी मिटि जाई। तब प्रभु काज सवारहि आई। ऐसा ज्ञान वियारु मना। हरि किन सिमरहु दुख भंजना॥ जब लगि सिघ रहे बन माहि। तब लग बन फूलई नाहि॥ जब ही स्यार सिघ कौ खाई। फूल रही सगली बनराई॥ जीती बूड़े हारो तरे। गुरु परसादि पार उत्तरे॥ दास कबीर कहे समझाइ। केवल राम रहहु लिव लाइ॥७६॥

ह परिशिष्ट (पद) जब हम एकौ एक करि जानिया। तब लोग काहै दुख मानिया॥ हम अपतह अपनी पति खोई। हमरे खोज परहु मति कोई॥ हम मंदे मंदे मन माहि। सॉँझपाति काहू स्यथो नाही॥ पति मा अपति ताकी नहीं लाज। तब जानहुगे जब उधरैगो काज॥ कहु कबीर पति हरि पखानु। सरव त्यागी भजु केवल रामु॥७७॥। जल महि मीन माया के दबेधे। दीपक पतंग माया के छेदे॥ काम माया कुंजर को व्यापै। भुवंगम भृर्ग माया माहि खापै॥ माया ऐसी मोहनी भाई। जेते जीय तेते डहकाई॥ पंखी भृग माया महि राते। साकर माँखी अधिक संतापे॥ तुरे उष्ट माया महि मेला। सिध चौरासी माया महि खेला॥ छिय जती माया के बंदा। नवै नाथु सूरज अरु चंदा॥ तपे रखीसर माया महि सूता। माया महि काल अरु पंच दूता॥ स्वान स्थाल माया महि राता। बंतर चीते अरु सिघाता॥ माजार गाउडझ अरु लूबरा। बिरखख सूख माया महि परा॥ माया अंतर भीने देव। सागर इंद्रा अरु धरतेव॥ कहि कबीर जिसु उदर तिसु माया। तब छूटे जब साधु पाया॥७८॥ जल है सूतक थल है सूतक सूतक ओपति होई। जनमे सूतक मुए फुनि सूतक सूतक परज बिगोई॥ कहुरे पंडित कौन पबीता ऐसा ज्ञान जपहु मेरे मीता। नैन्हु सूतक बैनहु सूतक ख्र्वनी होई॥ ऊठत बैठत सूतक लागे सूतक पै रसोई। फॉसन की बदिधि सब कोऊ जाने छूटन की इकु कोई॥ कहि. कबीर राम रिदे विचारे सूतक तिने न होई॥७९॥ जहें किछु अहा तहाँ किछु नाही पंच तत्व तह नाही। इड़ा पिगला सुषमन बंदे ये अवगुन कत जाही॥ तागा तूदा गगन बिनसि गया तेरा बोलत कहा समाई। एह संसा मौको अनदिन व्यापै मोकों कौन कहै समझाई॥ जब ब्रह्मॉड पिड तह नाही रचनहार् तह नाही। जोड़नहारी सदा अतीता इह « कहिये किसु माही॥ जोड़ी जुड़े न तोड़ी दूहे जब लग होइ बिनासी। काको ठाकुर काको सेवक को काहू के जासी॥ कहु कबीर लिव लागि रही है जहाँ बसे दिन राती। वाका मर्म वोही पर जाने ओहु तो सदा अबिनासी॥८०॥ जाके निगम दूध के ठाठा। समुद बिलोवबन की माठा॥ ताकी _ होह विलोवनहारी। क्यो मेटेगी छाछि तुम्हारी ॥ घेरी तू राम न करसि भतारा। जग जीवन प्रान अधारा॥ १०९

७१० कबीर झमग्र तेरे गलहि तौक पग बेरी। तू घर घर रमिए फेरी॥ तू अजहु न चेतसि चेरी। तू जेम बपुरी है हेरी॥ प्रभ[मु कन्‌ करावन हारी। क्या चेरी हाथ बिचारी॥ सोई सोई जागी। जितु लाई तितु हछागी॥ चेरी ते सुमति कहाँ ते पाई। जाके भ्रम की लीक मिठाई॥ सुसु कबीरे जान्या। मेरो गुरु प्रसाद मन मान्या॥८१॥ जाके हरि सा ठाकुर भाई। मभुकति अनत पुकारन जाई॥ अब कहु राम भरोसा तोरा। तब काई को कौन निहोरा॥ तीनि लोक जाके हहि भारा। सो काहे न करे प्रतिपार॥ कहु कबीर इक बुद्धि बिचारी। क्या दस जो विष दे महतारी॥८२॥ जिन गठह कोठि किए कंघन के छोड़ गया सो राखन। काहे कीजत है मन भावन। जब जम आई केस ते पकरे तहें हरि को नाम छुड़ाबन। काल अकाल खसम का कीना हहु परयंच बधावन॥ कहि कबीर *'ते अंते मुक्ते जिन हिरदे राम रसायन॥८३॥ जिह मुख बेद गायत्री निकसे सो क्यो ब्राइन विसरू करै। जाके पाये जगत सब छागे सो क्यो ब्राह्मन पंडित हरि न कहै॥ काहे मेरे ब्राह्मम हरि न कहहि रामु न बोलहि पड़े दोजक भरहि। आपन ऊँच नीच घरि भोजन हठे करम करि उदर भरहि॥ चोदस अमावस रधि रधि माँगहि कर दीपक हे कूए परहि। हूँ ब्रात्षन में कासी का जुलाहा मोहि तोहि वराबरि कैसे के बनाहि।॥ हमरे राम नाम कहि उबरें येद भरोसे पोडे डूब मरहि॥८४॥ जिह छुल पूत न ज्ञान दिधारी। विधवा कस न भई महतारी॥ जिह नर राम भगति नहीं साधी। जनमत कस न मुयो अपराधी॥ मुचमुथ गर्भ रुये कीन वचिया। बुड़भुज रूप जीवे जग मध्तिया॥ कहु कबीर जैसे सुंदर स्वरूप) नाम बिना जैसे कुबज कुरूप॥८५॥ जिह मरने कब जगत तरास्था। सो मरना शुरू सबद प्रगास्या।॥ अब कैसे मरो मरन मन मान्या। मर मर जाते जिन राम थे जान्वा॥ मरनी मरन कहे सब कोई। सहजै मरे अमर होह सोई॥ कहु कबीर मन भया अनंदा। गया भरम रहा परमानंदा॥८६॥ जिह सिमरनि होड़ मुक्ति ढदुवारि। जाहि बैकुंठ नहीं संसारि॥ निर्भ के घर बजावहि तूर। अनहद बजहि सदा भरपूर॥ ऐसा सिमरन कर मन मांहि। बिनु सिमरन मुक्ति कत नाहि॥

परिशिष्ट (पद) लिह सिमरन नहीं ननकार। मुक्ति कै उतरे बहुभारु॥ नमस्कार करे हिरदय माँहि। फिर फिर तेरा आवदन नाहि॥ जिह सिमरन करहि तू केल। दीपक बाँधि धरययों तिन तेल॥ सो दीपक अमर कु संसारि। काम क्रोध बिष काढ़ि ले मार॥ णिह सिमरन तेरी गति होइ। सो सिमरन रखु कंठ पिरोह॥ सो सिमरन करे नहीं राख़ु उतारि। गुरु परसादी उत्तरहि पार॥ जिह सिमरन नाही तुहि कान। मंदर सोवहि पंटवरि तानि॥ सेज सुखाली बिगसे जीठझ। सो सिमरन तू अनहद पीठ॥ जिस सिमरन तेरी जाह बलाई। जिह सिमरन तुझ पोह न माई॥ सिमरि सिमरि हरि हरि मन गाइये। इंह सिमरन सति गुरु ते पाहये॥ सदा सदा सिमरि दिन राति। ऊठत बैठत सासि गिरासि॥ जायगु सोई सिमरन रस भोग। हरि सिमरन याहयै संजोग॥ जिटि सिमरन नाहीं तुझ भाउ। सो सिमरन राम नाम अधारू॥ कहि कबीर जाका नहीं अंत। तिसके आगे तंतु न मंतु॥८७॥ जिह मुखि पाँधो अमृत खाये। तिहि मुख देखत लूकट लाये॥ इक दुख राम राइ काटहु भेरा। अग्नि कहे अरु गरभ बसेरा॥ काया बिगति बहु विधि माती। को जरे को शड़ले माटी॥ कहु कबीर हरि चरण दिखावहु। पाछे ते जम को पठावहु॥८८॥ जिह सिर रधि बॉधत पाग। सो सिर चुंध सबारहिे काग॥ इसु तन घन को क्या गर्दीया। ग़ब नाम काहे न इढीया॥ कहत कबीर सुनहु मन मेरे। इही हवाल होहिगे त्तरे॥८९॥ जीवत पितर न माने कोऊ मुएऐएँ सराद्ध कराहीं। पीतर भी बपुरे कहु क्यो पावहि कौआ कूकर खाही॥ भोकी कुसल बतावहु कोई। कुसल कुसल करते जग बिनसे कुसल भी कैसे होई॥ मादी के करे देवी देवा तिमु आगे जीउ देही॥ ऐसे पितर तुम्रे कहियहि आपन कध्या न लेही॥ सरजीव काटहि निरजीब पूजहि अंत काल कौ. भारी। राम नाम की गति नहीं जानी भय डूबे संसारी॥ देवी देवा पूजि डोलहि पारत्रह्या नहीं जाना। कहत कबीर अछुल नही चेत्या विषया म्यो लपठाना॥९०॥ जीवत मरे मरे फुनि जीवे ऐसे सुन््नि समाया। अंजन माहि निरंजन रहिये कबीर जल मेरे राम ऐसा खीर बिलोइये। पद अरब 2 आग गुरु मति भनुवा अस्थिर राखहु इन विधि अप्रत पिओइये।| ७११

७१ कवीर समग्र गुर के बाणी बजर कलछेदी प्रगट्या पद परगासा। सक्ति अधेर जेवबड़ी श्रम चूका निद्धल सिव घर बासा॥ तिन विन याणे धनुष चढ़ाइये इहु जग देध्या भाई। दह दिसि बूड़ी पवन झुलावै डोरि रही लिव लाई॥ उनमन कबीर अनुभी इक्कु देख्या राम नाम लिव छागी॥९१॥ जो जन भाव भगति कएछु जाने ताको अचरज कहो। बिनु जल जल महि पैसि न निकसे तो हरि मिल्या जुलाहो॥ हरि के लोग मैं तो मति का भोरा। जी तन कासी त्जहि कबीरा रामहि कहा निहोरा॥ कहतु कवीर सुनहु रे लोई भरम न भूलहु कोई। क्या कासी क्या ऊसर मगहर राम रिदय जौ होई॥९२॥ जेते जतन करत ते डूबे भव सागर नहीं तास्थयो रे। कर्म धर्म करते बहु सजम अहं बुद्धि मन जास्थी रे॥ साँस ग्रास को दाता ठाकुर सो क्यो मनहूँ बिसास्थी रे। हीरा लाल अमोल जनम है कोडी बदले हारथी रे॥ तृष्णा तृषा भूख भ्रमि लागी हिरदे नाहि बियारों रे। उनमत मान हिस्यो मन माही गुरू का सबद न धारयी रे॥ स्वाद लुभत इंद्री राम प्रेर्यों मद रन लेत बिकारथौ रे। कर्म भाग संतन संगाने का लोह उद्धार्यी रे। धावत कवीर गुरु मिलत महा रस प्रेम भगति निस्तारधी रे॥९३॥ जेह यार न जीया जाई। जो मिले तो घाल अधाई॥ सद जीवन भलोी कहाही। मुए बिन जीवन नाही॥ अब क्या कथिये ज्ञान बिचारा। निज निर्खत गत ब्यीहारा॥ घसि कुंकम चंदन गरया। विन नयनहु जगत बिहार्या॥ पूत पिता इक जाया। बिन ठाहर नगर बनाया॥ जाचक जन दाता पाया। सो दिवा न जाई खाया॥ छोड्या जाई न भूका। औरन पहि जाना चूका॥ जो जीवन मरना जानै। सो पंच सेल सुत् माने॥ कर्बीरी सो घन पाया। हरि भेटत आप. मिठाया॥९४॥ जैसे मंदर महि बाल हरना ठाहरै। नाम बिना कैसे पार उत्तरें॥ कुंभ बिना जल ना टिकाबै। साधू बिन ऐसे अवगत जावे॥ जारी तिसे जु राम न येतै। तन मन रमत रहे महि खेते। जैसे हलहर बिना जिमी न हि बोइये। सूत बिना केसे मणी परोइये॥ घुंटी बिना क्या गैंठि घढ़ाइये। साधू बिन तैसे अवगत जाइये॥ जैसे माता पिता बिन बाल न होई। बिब बिना कैसे कपर घोई॥ घोर बिना कैसे अवसार। साध बिन नाही दरबार॥।

परिशिष्ट (पद) जैसे बाजे बिन नहीं लीजै फेरी। खसम दुह्मनि तजिही हेरी॥ कहे कबीर एके करि जाना। गुरुमुखि होइ बहुरि नहीं मरना॥९५॥ जोइ खसम है जाया। पूत बाप खेलाया। बिन रसना खीर पिलाया॥ देखहू लोगा कलि को भाऊ। सुति मुकलाई अपनी माऊ॥ पग्गा बिन हुरिया मारता। झुदने दिन खिन खिन हासता॥ लिद्रा बिन नरू पे सोबे। बिन बासन खीर बिलोवै॥ बिनु अस्थन गऊल बेरी। पैड़े बिनु जाट घनेरी ॥ बिन सत्त गुरु बाट न पाई। कहु कवीर समझाई॥९६॥ जो जन लेहि खसम का नाउ। तिनके सद बलिहारै जाउ॥ सो निर्म््त हरि गुन गावे। सो भाई मेरे मन भावे॥ जिहि घर राम रहा भरपूरि। तिनकी पग पंकज हम पघूरि॥ जाति जुलाहा मति का धीरू। सहजि सहजि गुन रमे कबीरु॥९७॥ जो जन परमिति परमनु जाना। बातन ही बैकुंठ समाना॥ ना जानी बैकुंठ कहाही। जान न सब कह तिट्द हाही॥ कहन कहावन नहि पतियेहै। तो मन माने जातेहु में जहहै॥ जब लग मन बैकुंठ की आस) तब लगि होहि नहीं चरन निवास) कहु कबीर इह कहिये कहि। साधु संगति बैकुंठे आहि॥९८॥ जो पाथर को कहिते देव। त्ताकी विरथा होवे सेव॥ जो पाथर की पाई पाई। तिस की घाल अजाई जाई॥ ठाकुर हमरा सद बोलंता। सब जिया कौ प्रभु दान देता॥ अंतर देव न जाने अंघु। भ्रम का मोहया पावे फंधु॥ न पाथर बोले ना किछु देह। फोकट कर्म निहफल है सेट ॥ जे मिरतक के चंदन चढ़ावै। उससे कहहु कौन फल पावै॥ जो मिरतक को विष्टा माँहि सुलाई। तो मिर्तक का क्या घटि जाई॥ कहत कबीर हो करूँ घुकार। समझ देखु साकत गावार॥ दूजे भाई बहुत घर घाले। राम भगत है सदा सुखाले॥९९॥ जो मैं रुप किये बहुतें अब फुनि रूप न होई। तागा तंत साज सब थाका राम नाम बसि होई॥ अब मोहि नाचनो न आबै। मेरा मन मंदरिया न बजौ।॥ काम क्रोध काया ले जारी तृष्णा गागरि फूटी। काम चोलना भया है पुराना गया भरम सब छूटी॥ सर्व भूत एक करे जान्या चूके बाद बिबादा। कहि. कबीर मै पूरा याया भये राम परसादा॥१००। ७१३

, ७१४ कबीर समग्र जी तुम भमौकौ दूरि करत हो तो तुम मुक्ति बताबहुगे। एक अनेक होह रहयो सकल मभहि अब कैसे भमबहुंगे॥ राम मोकौ तारि कहों ले जैहे। सोधो मुक्ति कहा देठ कसी करि प्रराद मोहि पाह। तारन तरन ऋझदे समि कहिणे जब लगि तत्व न जान्या॥ अब तो दिपत भए घट ही महि कहि कबीर मन मान्या॥१०१॥ ज्यों कपि को कर पुष्टि चरन की चसुखि थे त्पागि गगो। जो जो कर्म किये छालद स्पों ते फिर गरहे परणों॥ भगति ण्नि बिरये जनम गयो। साध संगति भगवान चंदन जिग कही ने सच्द रध्यो॥ ज्यों उद्यान झुदुम परफुल्लित किनहि न घाउ छूयो। तैसे भ्रमत अनेक जोदि महे फिरि फिरि कात एय्दे॥ था घन जोबद अठ सुत दारा पेखन को जु दवो। तिनदी भाहि, अब्कि जो उरतधें हंड्ी प्रेरि लयो॥ औष अनल लग दिन को मंदर छुह्ठ दिसि छाए हयो। कहि ऊबीर भद सायर तरन को मैं सुति गुर ओद छबों॥१०२॥ ज्यों जल छोड़ि शहर भयो मीना। पूरद जनम हैं तप का हीना॥ अब कहु राम कबन गति मोरी। तजीले बनारस शत धू८ बोहै॥ सकल जनम सिदवपुरी गेंबाया। मरती बार भगहर उड़ि आया॥ बहुत बरस तप कीया कासी। मरने भया मगहर को बाती॥ कासी मगहर सम बीयारी। ओछी भगति कैसे उतरमि पारी॥ कह गुरु गजि सिदर सबको जागे। मुवा कबीर रमत श्रीरामे॥१०३॥ ज्योति की जाति की ज्योती। तितु लागे कँचुआ फुल मभोती॥ कौन सुघर जो निर्मों कहिये। भव भजि जाहइ अभय है रहिये॥ तट तीरथ नहिं मन पतियाह। चार अपार रहे उरदाइ॥ पाप प्रुण्य दुइ एक समान। निज घर पारस तज्हु गुन आन॥१०४॥) देढी पाग टेढ़ें चले तागे बीरे खान। भाउ भगति स्थो काज न कएछुए मेरों काम दीबान।॥ राम बिसारधी है अभिमानी। कनक कामिनी महा सुंदी पेलि पेखि सघु मानी॥ लालथ घूठ बिकार महा मद इह विधि औध बिहादी। कहि कबीर अंत की बेर आई लागौ काल निदानी॥१०५॥ डंडा मुद्रा लिधा आपारी। भ्रम के भाई सबे भेषधारी॥

साखी आतन पवन दूरि करि बबरे। छोड़ि कपट नित हरि भज बबरें॥ जिह तू याचहि सो त्रिभुवन भोगी। कहि कबीर कैसो जग जोगी ॥१०६॥ तन रैनी मन पुनरपि करिहो पाधौ तत्व बराती। राम राह स्‍्यों भौवरि लैंहे आतम तिह रेंगराती॥ शाउ गाउ री दुलहिनी मंगलचारा | भेरे गूह आये राजा राम भतारा॥ नाभि कप्ल महि. देदि रथि ले ब्रह्म उच्चास। राम राइ स्‍्यथों दूखो पायो अस छड़ू भाग हनारा॥ सुर नर मुनि जन कौतक आये कोटि तैतीसो जाना। कहि कबीर मोहि व्याहि उले हैं पुरुष एक भगबाना॥१०७॥ तरवर एक अनंत डार साखा पूहय पप्र रस भरिया। हृह अमृत की वजाही है रे तिन हरि पूरे करिया॥ जानी जायनी रे शजा राम की कहानी! अंतर ज्योति राम परगासा गुरु मुख बिरे जानी॥ भवर एक पुष्प रस़ बीघा वारह ले उर थरिया। सोरह मध्ये पवन झ्कोर्मो आकासे फर फरिया॥ सहज सुन्न्न इक बिरदा उपज्या धरती जलहर सोख्या। ख,. कहि कबीर हो। त्ताका सेबक जिनका इहु बिरवा देख्या॥१०८॥ टूटे तागे निछुदी पानि। द्वा ऊपर प्लिलिकाबहि कान॥ कूच बिचरे फुए फाल। या मुंडिया सिर चढ़ियो काल॥ इहु मुंडिया सगलों द्रव खोई। आदत जात ने कसर होई॥ तुरी नारि को छोड़ि बाता। राम नाम वाका मन राता॥ लरिकी लरिकन खैचयो नाहि। मुंडिया अनदिन धाये जाहि।॥ इक दुई मंदर इक दुई बाद। हमकौ साथरू उनको खाट॥ मुँड पलोलसि कमर बधि पोथी। हमकौ चाबन उनका रोटी॥ 5३ न हुए एक। ए मभुंडिया बूडत की टेक॥ सुनि अंधली लोई बेपीर। इन मुंडियन भजि सरन कबीर॥१०९॥ तू मेरी मेर परदत सुवामी ओद गही में तेरी। ना तुम डोलहु ना हम गिरते रखि तीनी हरि मेरी॥ अब तब जद कब तूहरी तूही। हम तुम परसाद सुख सदाही॥ तोरे भरोसे मगहर बसियों। मेरे तन की तपति बुझाई॥ पहिले दर्सन भगहर पायो। फुनि कासी बसे आई॥ जैसा मगहर तैसी कासी। हम एके करे जानी॥

७१६ कबीर समग्र हम निर्धध जो इह धन पाया मरते फूटि गुमानी॥ करे गुमान चुमहि ति्तु सूला कोऊ काढ़न की नाही॥ अजै सुधोध को बिलल बिलाते नरके " छोर पयाही॥ कौन नरक क्या स्वर्ग विधारा संतन दोऊ रो॥ हम काहू की काणि न कहते अपने गुरु परसादे॥ अब तो जाह चढ़े सिहासन मिलिहे. सारंगपानी॥ _ राम कदीरा एक भये हैं कोई न सके पछानी॥११०॥ वरथर कंपे बाला जीझथ। ना जानो क्या करसी पीठ॥ रैनि गई भति दिन भी जाह। भयर गये दक सेठे आए॥ काधे करदे रहे न पानी। हंस चता काया खुम्हिलानी॥ क्यारी कन्या जैसे दारत सिंगारा। क्यों लिया माने वाह्य भतारा॥ काग उड़ावत भुजा। पिरयनी। कहि कबीर इंह कथा सिरानी॥११३१॥ वाके नयन सवण सुनि थाके छाकी सुंदर काण। जरा हाक दी सद मति थाकी एक न धाकसि माण॥ दावरे ते ज्ञान विधा? न एाया बिरधा जनम गेंवाया। तय लगि प्रानी तिसे सरेणहु जब लग महि सॉँसा॥ जे घट जाइत भाव न जासी हरि के सरन निवासा। जिसकी सबद बसाबे अंतर चूकहि तिसहि. पियासा॥ हुसर््मे यूसे चोपड़ी खेले मन जिन ठाले पासा। जो जन जानि भजहि अवगति कौ तिनका कछु तर नासा॥ कहु कदीर ते जन कहूँ न हारहे ढठालि जु जानहि पासा॥११२॥ तुझश्न विन सुरति करे को मेरी दर्सन दीजे छझोतलि किदार॥ तुम धन घनी उदार तियागी तियागी स्रवनन सुनियत सुजसः तुमार॥ माँगी काहि रंक सब देखो तुम ही ते भेरो निसतार॥ जयदेव नामा दिप्प सुदामा तिनकी कृपा भई है अपार। कहि कबीर तुम समरथ दाते चारि पदारव देत न झार॥११३॥ दिन ते पहर पहर ते घरियोँ आयु घंटे तनु छीजै। काल अहेरी फिरहि बधिक ज्यों कहहु कौन विधि कछीजे। सो दिन आवन - लागा। माता पिता भाई सुत बनिता कहहु कोऊ है काका॥ जय लगु जोति काया महि बरतै आपा पसू न बसे लालथ करे जीवन पद कारन लोचन कछू थे सूसे॥

साखी कहत कबीर सुन्हु रे प्रानी छोड़ूहू मन के भरमा। केवल भाम जपहु रे प्राना एक की सरना॥११४॥ टीन विसारसथो. रे दीवाने दीन विसारयो। से भरणे पसुआ ज्यों सोयों नजुब ऊगह है हारभो॥ साए संगति कवई नहि. कीनी रधियो धंधे झूठ। स्थान सूकर दायस सम जीबे भवकत चाल्यो ऊठि॥ आपन की दीरथ करि जाने औरन को लघु मान। मनसा याघा करमना में देखे दोजक जान॥ कामी क्रोधी चातुरी बाजीगर बेकाम॥ निदा करते जनम सिरानी कबहु न सिमरथो राम॥ कहि. कबीर चेतै नहि. मूरख मुगध. गवार। राम नाम जानियो नही, कैसे उतरसि पार॥११५॥ दुई दुई लोचन पेखा। हो हरि बिन और न देखा॥ सैन रहे रंग लाई। अब वेगल कहन न जाई॥ हमारा भर्म गया भय भागा। जब राम नाम चितु लागा॥ वाजीग३3 उंक बजाई। सब खलक तमासे आई।॥ कथनी. गहि भर्म न जाई। सब कथि कवि रही लुकाई॥ जाकी गुरु मुखि आप बुझ्चाई। ताके हिरदे रहा समाई॥ गुरु किचित किरषा कीनी। सब तन मन देह हरि लीनी॥ कहि. कबीर रेंगि राता। मिलो जग जीवनदाता॥११६॥ दुनिया हुसियार बेदार जागत मुत्तितत हो रे भाई। निगम हुसिया पहरुआ देखद जम ले जाई॥ नीबयू भयो ऑसु आऑंबु भयो नीदा केला पाका झारि। नालिए फल सेबरिया पाका मूरख “मुगध गवार॥ हरि भयो खाँजु रे तुमहि दिखरियो हसतो चुन्यो न जाई। कहि कबीर कुल जाति पॉंति तजि चींटी होइ चुनि खाई॥११७॥ देखो भाई ज्ञान की आई आँधी। सबे उड़ानी भ्रम की ठाटी रे न माया बॉयी॥ डुधति की दुई थूनि गिरादी मोह बलेडा दूहा। तिष्ण छानि परी घर ऊपर दुर्मते भाड़ फूया॥। आधी पाहे जो जल दर्षे तिहे मेश तेर जन भीना। कहे दादीर शय भया प्रयासा उदय भालु जब चीना॥११८॥

७१८ कबीर समग्र देह मुहर लगाम पहिरावी। सगल्ल तजीनु गयन, दौरादौ। अपने दिचारै असवारी कीजै। सहज के पावड़े पग भरि लीजै॥ चत्रु रे बैकुंठ ले तारी। हित घित प्रेष के चाबुक मारो॥ कहत कबीर भत्रे असवारा। बेग कत्तेद ते रहहि निरारा॥११९॥ देही गावा जीउ धर्म हत उबसहि पंच किरसाना। नैनू नकदूं सबनू रसपति इंद्री कह्चा न माना॥ बादा अब न् ब्सहु ड्ह गाउ। घरी घरी का लेखा माँग काहइबु चेतूं. नाउ॥ पर्ममाय जद लेखा माँग बाकी निकसी भारी। पंच कूसनवा भागि गए ले दाध्यी जीउआ दरबारी॥ कहहि कबीर सुनहु रे संतह खेतहि करी निबेश। अब की यार बखसि बंदे को बहुरि न भव जल फेरा॥१२०। धनन गुपाल घन्न गुरुदेव। धन्न अनादि भूखे कब लुटह केव॥ घन ओहि संत जिन ऐसी जानी। तिनकौ मिलिबो सारंगपानी॥ आदि पुरुष ते होइ अनादि। जपियै नाम अन्न के सादि॥ जपिये नाम जपिये अन्न। अंधे के संग नीका बन्न। अन्ने बाहर जो नर होवहि। त्तीनि भदन सहि अपनो खोदहि॥ छोड़हि अन्न कै पालंडा। था सोहागनि ना बोहि रंडआा॥ जग महि दकते दूधाघारी। गुप्ती झावहिं बटिका सारी॥ अन्ने बिना न होह सुकाल। तजिये अन्न न मिलै गुपाल। कहु कबीर हम ऐसे जान्‍्या। घनन्‍्य अनादि ठाकुर मन मान्या॥१२१॥ नगन फिरत जो पाइये जोग। बनका मिरग भुकति सब होग॥ क्या नोंगे क्या दोये याम। जब नहि चीन्नसि आतम राम॥ मूड मुड़ए जो सिशि पाई। मुक्ती धेड़ न गय्या काई॥ दिदु राख जो तर« धाई। खुसरै क्यों न परम गति पाई।॥ कहु कबीर सुनहू चर भाई। राम नाम बिन किन गति पाई॥१२२॥ नर मै नर काम ने आबे। पशु भरे दस काज सेंवारे॥ अपने कर्म की गति मैं जानी। मैं क्या जानी बाबा र२॥ हाड़ू झज़े जैसे लकड़ी का सुला। केस जले जैसे घास का पूला।

परिशिष्ट (पद) कहत कंवीर तवहीं सर जागै। जम का डंड भहि लागै॥१२३॥ नंगे आवन नोंगे जाना। कोई न रहिहे राजा राना॥ राम राजा नव निधि मेरे। संपे हेतु ऋलतु धन तेरे॥ आदत संग न जात सेँगाती। कहा भयों दर बॉँघे हाथी॥ लंका गह सोने का भज्य। पूरुख राबन क्या ले गया॥ कह कवीर छुछ गुन वीधारि। चे जुआरी ढुई हथ झारि॥१२४॥ नाइक एक बनजोरें पाँच। बरध परधीर्भ्रक संग काथ॥ भव बहियाँ दस गोनी आहि। कसन वहत्तरि लागी ताहि॥ मोहि ऐसे बनज स्यो ही काजु। जिह घट़े मूल नित बढ़ व्याजु॥ सत्तु सूत मिलि बनजु कीन। कर्म भावलिनी संग लीन॥ तीनि जगाती करत रारि। चलो बनजारा हाथ झारि॥ पूँजी हिरानी बनजू दूटि। दह दिसि टॉडो भयो फूढडि॥ कहि कबीर मन सरसी काज। सहज समानो त भर्म भाजि॥१२५॥ ना हहु मानुव ना इहु देवा ना इंहु जती कहाबै सेव॥ ना हहु जोगी ना अवधूता। ना इसु माह न काहू पूता॥ या मंद मह कौन बसाई। ता का अंत न कोऊ पाई॥ ना हइहु गिरी ना ओदासी। ना इहु राज न भीख मेंगासी॥ ना हहु पिड भ रकतू राती। ना हतु ब्रह्मन' ना इहु खाती।॥ ना हहु तया कहावै -सेख। ना इहु जीवे न मरता देख।॥ इसु मरते को जे कोऊ रोबै। जो रोबे सोई पति खोवे॥ गुरु प्रसादि मैं डगरो पाया। जीवन मरन दोऊ मिटवाया॥। बहु कबीर इ्हु राम की अंसु। उस कागद पर मिंटे न मंसु॥ १२६॥ ना में जोग ध्यान चित लाया। बिन बैराग न छूटसि भाया॥ केसे जीवन होह हमारा। जब न होहइ राम नाम अधारा॥ कहु कबीर खोजी असमान। राम सयान न देखो आन॥ १२७॥ निदी निदौ सोकौ लोग निदौ। निदौ निदी मोकौ लोग निदौ॥ निदा जन कौ खरी पियारी। निदा बाप निंदा महतारी॥ निदा होय त बैकुंठ जाहयै। नाम पदारथ * मनहि बसाहये॥ रिदे सुद्ध जो निंदा होइ। हमरे कपरे निदक घोह॥ निदा कै सु हमरा मीत। निदक माहि हमारा चीत॥ निदक सो जो निंदा होरे। हमरा जीवन निदम हलोरे॥ निदा हमरी प्रेम पियाश निंदा हमरो कौ उधार॥ जन कबीर कौ निदा सार। निदक डूढझः हम उतरे पार॥ १२८॥ नित उठि कोरी गयागरिया है ल्लीपत जनम गयो। फ़ना बाना कछु न सूते हरि हरि रस लपदयो॥ हमरे छ्ुल कौने राम कह्ी। ७१९

 जब की माला लई निपूते तय ते सुख न भयो॥ सुनहू जिठानी सुनहु दिरानी अचरजण एक भयो॥ सात सूत इन मुंडियो खोये इहु मुँडिया क्यो न मुयो। सर्व सखा का एक हरि स्वामी सो गुरु नाम दयो। संत बअह्ाद की पैज जिन राखी हरनाखसु नख बिरक्थयो। घर के देव पितर की छोड़ो गुरू को सबद लयो। कहत कबीर सकल पाप खंडन संतह ले उधरयो॥१२९॥ निर्धध आदर कोई न देई। लाख जतन करे ओहु चित न परेई॥ जौ निर्धा सरधन के जाई। आगे बैठा पीठ फिराई॥ जी सरधन निर्धन के जाई। दीया आदर लिया बुलाई॥ निर्धध सरधन दोनो भाई। प्रभु की कला न मभेटी जाई॥ कहि कबीर निर्धन है सोई। जाके हिरदे नाम न होई॥१३०॥ पंडित जन माते पढ़ि घुराना जोगि माते जोय ध्यान॥ संन्यासी माते अहमेव। तपसी माते तप के भेव॥ सब मदमाते कोऊ न जाग। संग ही घोर घर मुसन लाग।॥ जागे सुकदेव अरु अछुर। हणवंत जागे घरि लंगूर॥ संकर जागे चरन सेव। कलि जागे नामा जैदेव॥ जागत सोवत बहु प्रकार। गुरु मुखि जागे सोह सार सार॥ इह देही के अधिक काम। कहि कबीर भजि राम नाम॥१३१॥ पंडिया कौन छुमति तुम लागे। वूडहु्ु गे परवार सकल स्थो राम न जपहु अभागे॥ बेद पुरान पढ़े का किया गुन खर चंदन जस भारा। राम नाम की गति नहीं जानी कैसे उतरसि पारा॥ जीय वधहु सुधर्म करि थापहु अधर्म कहो कत भाई। आपस कौ मुनि घर करि थापहु काकहु कही कसाई॥ मन के अंधे आपि न बूझहु का कहि बुझावहु भाई। माया कारन विद्या बेचहु जनम अविर्धा जाई॥ नारद बचन विपास कछत है सुक कौ पूछहु जाई। कहि कबीर रामहि रमि छूटहु नाहि त बूड़े भाई॥१३२॥ पथ निहरा कामनी लोचनि भरी लेइ. उसासा। उर न भीजे पंना खिसे हरि दर्सन की आसा॥ उड़्हु न काया कारे। बेग मिलीजे अपने राम प्योरे। कहि. कबीर जीवन पद कारन हरि की भक्ति करीजै॥ एक अधार नाम नारायण रसना राम रवीजै॥१३३॥

परिशिष्ट (पद) पंद्रह तिथि सात बार कहि कबीर उर वार न पार॥ साधक सिद्ध लखे जो भेठख। आपे करता आपे देउ॥ अम्माााया महि.,. आस निवारी। अन्तरयामी राम समाढै॥ जीवत पावहु मोख दुबवारा। अनभी सबद तत्व निज सारा॥ चरन कमल गोबिद रंग लागा। | संत प्रसाद भये मन निर्मल। हरि कीर्तन महि अनदिन जागा॥ परवा प्रीतम करहु बीचार। घट महि खेले अघट अपार॥ काल कल्पना कदे जाने अंग। माया ब्रह्म रमे सब संग॥ ना ओह बहे न घटता जाह। अकुल निरंजन एके भाई॥ तृतीया तीने सम करि त्याबै। आनंद मूल परम पद पावे॥ साध संगति उपजे विस्वास। बाहर भीतर सदा प्रगास॥ चो्थहि चंचल मन को गहहु। काम क्रोध संग कबहु न बहहु।॥ जल थल भाहे आपही आप। आप जपहु अपना जाप॥ पाँचे पंच तत्त बिस्तार। कनक कामिनि जुग ब्योहार॥ प्रेम सुधा रस पीबे कोई। जग मरण दुख फेरि न होई॥ छटि षट चक्र यहूँ दिसि धाहे। बिनु परचे नहीं घिरा रहाह॥ दुबिधा मेटि खिमा गहि रहहु। कर्म धर्म की सूल न सहहु॥ साते सत्ति करि बाधा जाणि। आतम राम लेहु परवाणि॥ छूटे संसा मिटि जाहि दुक्ख। सुन्य सरोवरि पावहु सुक्ख॥ अष्टमी अष्ठ धातु की काया। तामहि अछुल महा निधि राया॥ गुरू गम ज्ञान बतावै। भेद। उलटा रहे अभंग अछेद॥ नोमी नवै द्वा कौ साधि। बहती मनसा राख बाँधि॥ लोभ मोह सब बीसरी जहु। जुग जुग जीवहु अमर फल खहु॥ दसमी दह दिसि होहइ अनंदा। छुटे भर्म मिले गोबिदा॥ ज्योति स्वरूप तत्त अनूप। अमल न मल न छाह नहि धूप॥ एकादसी एक दिसि धावै। तो जोनी संकट वहुरिन आवे॥ सीतल निर्मम भया सरीरा। दूरि बतावत ‘‘पाया चीरा॥ यारसि वारही गबै सर। अहि निसि बाज अनहद तूर॥ देख्या तिहँ लोक का पीउझ। अचरज भया जीव ते सीठ॥ तेरसि ते अगन बखाणि। अर्द्ध उर्द्ध बिच सम पहिचाणि॥ नीयथ ऊँचथ नहीं मान प्रमान। व्यापक्त राम सकल सामान॥। चोदसि ल चोदह लोक मुझारि। रोप रोप भहि बसहि मुरारि॥ सत संतोष का धरु घियान। कथनी कथिये ब्रह्म गियान॥ पून्यों पूरा चंद्र अकास। पसरहि कला सहज परगास॥ आदि अंत मध्य होइ रहया बीर। सुखसागर महि रमहि कबीर ॥१३४॥ पहिला पूत पिछौरी माई। गुरु लोगो चेले की पाई॥ एक अधंभी सुन्हु तुम भाई। देखत सिह चराबत गाई॥ जल की मछुली तरबर व्याई। गुरु लागी चेले की पाई॥ तलेरे बैसा ऊपर सूला। तिसके पेड़ छगे फल फूला॥

छर२२ कबीर समग्र घोरे चरि भेस चरावन जाई। बाहर बैल गोनि घर आई॥ कहत कबीर जो इस पद बूझे। राम रमत तिसु सब रिछू सूझे॥१३५॥ पहिली कुरूप. कुजाति कुलक्खनी सहुर पेहये बरी। अब की सरूप सुजाति सुलक्खनी सहजे उदरधरी॥ भली सरी मुई मेरी पहली बरी। कहु कबीर जब लहुरी आई बड़ी का सुहाग टरथो। लहुरी संग भई अब मेरे जेठी और घरयो॥१३६॥ पाती तोरे मालिनी पाती पाती जीउ। जिस पाहन को पाती त्तोों सो पाहनु निरजीउ॥ भूली मालिनी है एड। सति गुरू जागता है देठ। ब्रह्म पाती विस्तु. डारी फूल संकर देवा तीन देव प्रतख्य तोरहि. करहि. किसकी सेव। पाषाना गढ़ि के मूरति कीनी ठेके छाती पाउ। जे एए मूति साथी है तो गहणहारे . खाउ॥ भातु पहिति और लापसी करकराका सारूु॥ भोगनु हारे भोगिया इसु मूरतिमुख छार॥ मालिन भूली जग भुठाना हम भुलाने नाहि। कहु कबीर हम राम राखे कृपा करि हरि राहइ॥१३७॥। पानी मैठा माटी गोरी। इस माटी की पुतरी जोरी॥ में नीं कछु आहि न मोरा। तन धन सब रस गोबिद तोरा॥ इस माटी महि पवन समाया। झूठा परपंच जोरि चलाया॥ किनहूँ लाख पाँच की जोरी। अंत की बाट गगरिया फोरी॥ कहि कबीर इक नीवौ सारी। खिन महि बिनसि जाइ अहंकारी ॥१३८॥ पाप पुन्य दोइ बैल बिसाहे पवन पूँजी परगास्यो। तृष्ण गूणि भरी घट भीतर इन विधि टॉड बिसाहो॥ ऐसा नायक राम हमारा सकल संसार कियो बंजारा। काम क्रोध हुई भये जगाती मन तरंग बटवारा॥ पंच क्रोध दुई भये जगाती मन तरंग बटवारा पंच तत्तु मिलि दान निबेरहि ठाडा उतरधो पारा। कहत कबीर सुनहु रे संतह अब ऐसी बनि आई।॥ घाटी चढ्त बैल इक थाका चलो गोनि छिटकाई॥१३९॥ पिड मुए जिउ किहि घर जाता। सबद अतीत अनाहद राता॥ जिन राम जान्या तिन्हीं यछान्या। ज्यों गेंगे साकर मन मान्या॥ ऐसा ज्ञान कये बनबारी। मन पवन हू सुघमन चाड़ी॥ सो गुरु करहु जि बहुरि न करना। सो पद रबहु जि बहुरि न रबना॥

परिशिष्ट (पद) सो ध्यान घरहु जि न धरना। ऐसे मरहु जि बहुरि न मरना।। उलटी गंगा जमुन हक । बिनु जल संगम मन महि नावौ॥ लोधा सम सरिहहु ब्योहारा। तत्तु बिचारि क्या अबर बिचारा॥ अप तैज वायु पथवी अकासा। ऐसी रहान रहो हरि पासा॥ कहे कबीर निरंजन ध्यावी। तित घर जहु जि बहुरि न आवो॥१४०॥ पेवक दे दिन चारि है सहुरे. जाणा। अंधा लोक न् जाणई मुरखु एयाणा॥ कहु डडिया बाँधे घन खड़ी। याहूँ घर आये मूकलाऊ आये॥ ओह जि दिसे खूड़ी कौ न लाजु बहारी। लाज घही स्सथो दहूटी पड़ी उटि चलि पनिहारी॥ साहिब. होइ दयाला कृपा करे अपना कारण सबारे। त्ता सोहागणि जानिए गुर सबद विचारे ॥ कितः की बाँधी सब फिर देखहु बिचारी॥ एसनो क्या आखिये क्या करै बिचारी॥ भई निरासी उठि चली थित बधी न धीरा॥ प्रहहाद पठाये पठन साल। संगि सखा बहु लिए बाल॥ मोकी कहा पढ़ावसि आल जाल। मेरी पटिया लिखि देहु श्रीगोपाल। नहीं छोड़ी रे बाबा राम नाम। मेरी और स्यो नहीं काम॥ संडे मरके कहा जाहे। प्रहलाद बुलाये बेगि धाइ॥ तू राम कहन की छोड़ बानि। तुन्न तुस्त छड़ाऊँ मेरी कह्यो मान मोकौ कहा सनावहुँ बार बार। प्रभु भज थल गिरि किये पहार॥ इक राम न छोड़ी गुरुहि गारि। मोकौ घालि जारि भा कौ मारि डारि॥ काटि खड़ग कोप्यो रिसाई। तुझ राखनहारों मोहि बताइ।॥ प्रभु थभ ते निकसे के बिस्तार। हरनाखस छेद्यो नख बिदार॥ ओइ परम पुरुषि देवाधिदेव। भगत हेत नरसिध भेव॥ कहि कबीर को लखे न पार। प्रहलाद उबारे अनिक बार॥१४२॥ फील रबायी बलुद प्रावज कौआ ताल. बजावबे। पहरि चोला गदहा नाथे भैसा भगति कराबे॥ राजा राम क करिया बरपे काये किने दूझन हारे खाये। बैठि सिंह घर पान लगावहि घीस गलयोरे लाबै॥ घर घर मुसरी मंगल गावहि कछुआ संख बजावै। बंस को पूतन बिआहन चलिया सुइने मंडप छाये॥ रूप कन्निया सुंद वेधी ससे सिह गुन गाये। कहत कबीर सुनहु रे पंडित कीटी परबत खाया॥ कछुआ कहै अंगार गिलो री लूकी सबद सुनाया॥ १४३॥ फुमान तेरा सिि ऊपर फिरि न करत विचार। ७२३

छर४ कबीर समग्र तुही दरिया तुही करिया तुम ते निस्तार॥ बंदे बंदगी इकतीयारा साहिब रोष धरी कि पियार। नाम तेरा आधार मेरा जिउ फूल जहहै नारि॥ कहि कबीर गुलाम घर का जी आई भाव मारि॥१४४॥ वंधचि बंधनु पाइया। मुकतै गूरि अनले बुझ्ाइया॥ जब नख सिख हहु मनु चीना। तब अंतर मजनू कीना॥ पवन पति उनमनि रहनु खरा। नहीं मिसु न जनमु जरा॥ उल्टी ले सकति संहारं। फैसीले गगन. मक्नारं॥ बेधिय ले चक्र भूअंगा। भेटिया ले राइन संगा॥ चूकिय ले मोह भई आसा। ससि कीनो सूर गिरासा॥ जब कुंभ कुभरि पुरि जीना। तब बाजे अनहद बीना॥ बकते वकि सबद सुनाया। सुनते सुनि माल बसाया॥ करि करता उतरसि पारं। कहे कबीर सारं॥१४५॥ बठुआ एक वबहत्तरे आधारी एको जिसहि दुबारा। नये खंड की प्रथमी माँगे सो जोगी जग सारा॥ ऐसा जोगी नव निधि पावे तल का ब्रह्म ले गगन चरावै। खिथा ज्ञान ध्यान करि सूई सबद ताग मधि घालै॥ पंध तत्व की करि मिरगाणी गुरु के मारग चाहै। दया फछहुरी काया करे धूई द्ष्टि की अगनि जलावै॥ तिसका भाव लए रिद अंतर यचहु जुग ताड़ी लाबे। सभ जोगत्तण राम नाम है जिसका पिड पराना॥ कहु कबीर जे किरएा धार देह सचा नीसाना॥१४६॥ बनहि वसे क्यो पाइये जो लौ मनहु न तेजै दिकार। जिह घर बन समसरि किया ते पूरे संसार॥ सार सुख पाहये रामा रंगि रबहु आतमे रामा। जटा भस्म ले लेपन किया कहा गुफा महि बास॥ मन जीते जग जीतिया ते विषिया ते होहइ उदास। अंजन देह सब कोई दुशझ चाहन माहि विडांनु॥ गयान अंजन जिहई पाइया ते लोइन . परवानु। कहि. कबीर अब जानिया गुरु ग्यान दिया समुझ्नाह॥ अंतर गति हरि भेटिया अब मेरा मन कतहु न जाइ॥ १४७॥ डहु प्रपंध करि परधन स्थाबै। सुत दारा पहि आनि लुठावै॥ मन मेरे भूले कपट न कीजै। अँत नियेरा तेरे जीय पहि लीजै॥ छिन छिन तन छीजै जरा जनावै। तब तेरी ओक कोई पानियों न पावै॥ कहत कबीर कोई नही तेरा। हिरदे राम किन जपहि सबेरा॥१४८॥ यात सूखी तेल निखूटहा। मंदल न बाजै नद पे सूता॥

परिशिष्ट (पद) ७२५ बूझि गई अगनि न निकस्यों घूआ। रवि रहा एक अबर नहीं दुआ॥ तूटी तंतु न बजै रबाब। भूलि बिगार्यों अपना काज॥ कथनी बदनी कहन कहावन। समझ परी तो बिसरभो गावन॥ कहत कबीर पंच जो चूरे। तिनते नाहि परम पद दूरे॥१४९॥ बाप दिलासा भेरो कीना। सेज सुखाली मुखि अमृत दीना॥ तिसु बाप को मनह बिसारी। अऐ गया न बाजी हारी॥ भुई भेरा भाई हो खरा सुखाला। पहिरो नहीं दगली लगे न पाला॥ बलि तिसु याये जिन हो जाया। पंचा ते मेरा संग चुकाया॥ पंच मारि पावा तलि दीने। हरि सिमरन मेरा मन तन भीने॥ पिता हमारो छहु गोसाई। तिसु पिता पहि हो क्यो करि जाई॥ सत्ति गुरु मिले ता मारग दिखाया। जगत पिता मेरे मन भाया॥ हो पूत तेरा तू बाप मेरा। एके ठाहरे हुह्ा बसेरा॥ कह कबीर जनि एको बूझिया। गुरु प्रसाद में कछु सूझिया॥१५०॥ बारह दारस बालपन बीते बीस बरस कएछु तपु न कियो। तीस बरस कछु देव न पूजा फिर पछुताना बिर्घ भयो॥ मेरी मेरी करते जनम गयो। साइर साखी भुजंब लयो। सूके सरबर् पालि बेंधावै लूणे खेत हथवारि करै॥ आयो चोर तुरंत ही ले गयो भेरों राखत मुगध फिरे। चरन सीस कर कंपन लागे नेनी नी असार बहै।॥ जिहिवा बचन सुद्ध नहीं निकसे तब रे धरम की आस करैं॥ हरि जी कृपा करे लिब लाबे लाहा हरि हरि नाम लियो॥ गुरु परसादी हरि धन पायो अंते चल दिया नालि चल्यो॥ कहत कबीर सुनहु रे संततः अन धन कुछ ऐलै न गयो॥ आई तलब गोपाल राइ की माया मंदर छोड़ चल्यो॥१५१॥ वावन अक्ष लोक बन्रय सब कछु इनही माहि। जे अक्खर खिरि जाहिगे ओह अक्खर इन मभहि नाहि॥ जहाँ बोल तह अक्खर आवबा। जहैँ अबोल तहैँ मन न रहावा॥ बोल अबोल मध्य है सोई। जस ओहु है तस लखे न कोई॥ अलह लही तौ क्या कही कहीं तो को उपकार। बटक बीजि महि. रबि रहो जाको त्तीनि लोक बिस्तार)| अलह हलहंता भेद है कु करत. पाया भेद। उलदि भेद मन वेधियों पावो अभंग. अछेद॥ पुक तरी कत जानिये हिंदू. बेद पृरान। मन समझाबन कराने कछु यक पढ़िये .ज्ञान॥ ओशअंकार आदि मैं जाना। लिखि और पेहे ताहि न माना॥ ओअंकार लखे जो कोई। सोई लखि मेटणा न होई॥ कक्का किरणि कमल भटि पावा। ससि बिगास संपट नहि आवा॥ िशशधाका--तननत-> ....

हल मजे दिन ७२६ ३३ बयु॥#उ००ज २ कबीर समग्र अरु जे तहा कुसुम रस पावा। अकह कहा कहि का समझ्ावा॥ खख्या इहै खोड़ि मन आवा। खोड़े छाड़ि न दह दिसि धावा॥ खसमहि जाणि खिसा करि रहे। तो होइ निरवओऔ अखै पद हलहै॥ गग्गा गुर के बचन पछाना। दूजी बात न घरई काना॥ रहे बिहंगस कतहि न जाई। अगह गहें गहि गगन रहाई॥ घष्या घट घट निमसे सोई। घट फूटे घट कबहि न होई॥ ता घट माहि घाद जी पावा। सो घट छाँड़ि अवधट कत धावा॥ ङ्गा निग्रह सनेह करि निरवारो संदेह | नाही देखि न भाजिये परम सियानप एह॥ चच्या रचित घिनत्र है भारी। तजि चित्र चेतहु चितकारी॥ चित्र विचित्र इहे अवजोरा। तजि घिनत्रे घितु राखि चितेरा॥ छछूछा हहै छतन्नपति पासा। छकि किन रहहु छाड़ि किन आसा॥ रे मन में त्तो छिन छिन समझावा। ,ताहि छाड़ि कत आप बधावा॥ जज्जा जौ तन जीवत जराबे। जोबन जारि जुगति सो पाबे॥ अस जरि परजरे जरि जब रहै। तब जाई ज्योति उजारी लहै॥ झग्मझ्मा उरझ्नि सुर्षि नहि जाना। रघ्यो झम्कि नाही परवाना॥ कत झकि झकि औरन समझावा। झगर किये झगरी ही पावा॥ जंआा निकट जु घट रहयो दूरि कहा तजि आईइ। जा कारण जग दूँढियो नेरीौ पायो ताहि॥ टट्टा बिकट घाट घट माही। खोलि कपाद महल किन जाही॥ देखि अटल टलि कतहि न जावा। रहे लपटे घट परचो पावा॥ ठट्ठा इहै दूरि ठग नीरा। नीठि नीठि मन कीया थधीरा॥ जिन ठग ठग्या सकल जग खाबा। सो ठग ठग्या ठौर मन आवबा॥ डउड्टठा डर उपजै डर जाईं। ता डर महि डर रघ्या समाई॥ जी डर डरे तो फिरि डर लागै। निडर हुआ डर उर होइ भागै॥ ढदढा ढिग दूँहहि कत आना। दूँढत ही ढहि गये पराना॥ घढ़ि सुमेर दूँढि जब आवबा। जिह गठ गड्यो सुगठढ़ महि पाबा॥ णाणा रणि रूती नर नेही करै। नानि बैना फुनि संचरे॥ धन्य जनम ताही को गणे। मारे एकहि तजि जाइ भणै।॥ तत्ता अतर तरयो नह जाई। तन ‘‘>-.वण मे रहो समाई॥ जी त्रिभुवण तन माहि समावा। तो ततहि तत मिल्या सचु पावा॥ थथ्या अथाह नहीं पावा। ओह अथाह इहु थिर न रहावा॥ थोड़े घल थानक आरंभे। बिनुही थाहर मंदिर थंभे। दहा देखि जु बिनसन हारा। जस अदेखि तस राखि बियारा॥ दसवै द्वा कुंजी जब दीजै। तौ दयाल कौ दर्सन कीजै॥ धद्धा _ अर्द्धवे उर्द्ध निबेरा। अर्द्धदे उर्द्धमंक्षि बसेरा॥ अर्द्धहे छाडि अर्द्ध जो आवा। तौ अर्द्धहि उर्द्ध मिल्या सुख पावा॥ नन्ना निसि दिन निखत नयन . रहे. रतवाई॥ निरखत निरखत जब जी पावा। तब ले निरखति निरख मिलावा॥ पष्पा अपर पार नहीं पावा। परम ज्योति स्थो परचो लावा॥

परिशिष्ट (पद) पाँचो इंद्री निग्रह करई। पाप पुण्य दोऊ निरबरई | फक्फा बिनु फूले फल होई। ता फल फंक लखे जौ कोई॥ दूणि न परई फंक विचारै। ता फल फंक सबै तन फारे॥ बवया विदहि बिंदे मिलावा। बिदहि बिद ने बिछुरन पावा॥ बंदी होइ बंदगी गहे। बंधक होइ बंध सुधि हलहै॥ भभ्भा भेदहि, मिलावा। अब भो भानि भरोसो आवा॥ जो बाहर सो भीतर जान्या। भया भेद भूषति पहिचान्या॥ मम्मा मूल रहया मन मानै। मर्मी हो सो मन कौ जाने॥ मत कोई मन मिलता बिलमालै। मगन भया तेसो सचु यावे॥ मम्मा मन स्यो काजु है मन साथे सिधि होई। मनही मन स्थो कहै कबीरा मनसा मिल्या न कोइ॥ इहु मन सकती इहु मन सीठ। इहु मन पंच तत्व को जीउ॥ इहु मन ले जो उनमनि रहै। तो तीनि लोक की बातें कहै॥ यय्या जौ जानहि तो दुर्मती हनि करि बसि काया गाउ। रणि. रूती भाज नही सुर उधारी नाउ॥ रारा रस रिनस्स करि जान्या। होड़ निरस्स सुरस पहिचान्या॥ इह रस छाड़े उह रस आबा। उह रस पीया इह रस नहीं भावा॥ लल्ला ऐसे लिबव मन लावै। अनत त जाइ परम सचु यावे॥ अरु जो तहा प्रेम लिव लाबै। तो अलह लहै लहि चरन समावै॥ ववा बार यार विष्णु समारि। विष्णु समारि न आवबै हारि॥ बलि बलि जे विष्णु तना जस गावै। विष्णु मिले सबही सचु पावे॥ बावा वाही जानिये वा जाने दट्हु होइ) इहु अरू ओह जब मिले तब मिलत न जाने कोइ॥ शश्शा सो नीका करे सोधहु। घट परचा की बात निरोधहु॥ घट परचे जो उपजै भाउ। पूरि रहया तह भरिभुवन राउ॥ षष्या खोजि पर जो कोई। जो खोजे सो बहुरि न होई॥ खोजि बूझि जो करे बिधारा। तो भवजल तरत न लावै बारा॥ सस्सा सो सह सेज सवारै। सोई सही संदेह निवारै॥ अल्प सुख छाडि परम सुख पावा। तब इह त्रिय ओहु कंत कहावा॥ हाहा होत होइ नहीं जाना। जबही होह तबहि मन माना॥ है 0 सही लखो जो कोई। तब ओही उह एहु न होई॥ लिऊं लि करत फिरि सब लोग। ता कारण ब्यापै बहु सोग॥ खक्खा खिरत खपत गये केते। खिरत खपत अजहुँ नहि चेते॥ अब जग जानि जो मना रहै। जह का बिछुरा तह थिरु लहै॥ बावन अक्खर जोरे आनि। सक्या न अक्खरु एक पछानि॥ सत का सबद कबीरा कहै। पंडित होइ सो अनभे रहे॥ पंडित लोगह कौ व्यवहार। ज्ञानबंत कौ तत्व विचार॥ जाके जीय जैसी बुधि होई। कहि कबीर जानैगा सोई॥१५२॥ बिदु ते जिन पिड किया अगनि कुंड रहाइया। ७२७

ज्र्८ कबीर समग्र दस मास माता उदरि राख्या बहुरि लछागी भाइया॥ प्राना काहे को लोभि लागे रतन जनम खोया। पूरी जनम करम भूमि बीजु नाही बोया॥ बारिक ते बिरध भया होना सो होया। जा जम आई झोद पके तबहि काहे . रोया॥ जीवन की आसा करे जम निहारै. सासा। बाजीगी संसार कबीरा चेति ढालि पासा॥१५३॥ बुत पूजि पूणि हिंदू मुये तुक मुये सिर नाई। ओइ ले जारे ओइ ले गाड़े तेरी गति दुहूँ न पाई॥ मन रहे संसार अंध गहेरा। चहुँ दिसि पसस्यो है जम जेवरा॥ कबित पढ़े पढ़े कक्ता मूये। पकड़ के दौरे जाई॥ जटा धारि धारि जोगी मूये मेरी गति इनहि न पाई॥ द्रव्य संधि संधि राजे मभूये गड़िले कंचन भारी॥ बेद पढ़े पढि पंडित रूप देखि देखी नारी॥ राम नाम बिन सबै बियूते देखहु निरखि सरीरा॥ हरि के नाम बिन किन गति कहि उपदेस कबीरा॥१५४॥ भुजा बॉधि मिला करे डारयीी। हस्ती कोपि मूँड महि मारयो॥ हस्ती भागि के चीसा मारै। या मुरति के हो बलिहारै॥ आहि मेरे ठाकुर तुम जोर। काजी बकिबो हस्ती तोर॥ हस्त न तोरे धरे ध्यान वाके रिदि बसे भगवान ॥ क्या अपराध संत है कीना। बाँधि पाद कुंजर को दीना॥ कुंज पोटले ले नमस्कौरे। बूझी नहीं काजी अलियारै॥ तीन बार पतिया भरि लीना। मन कठोर अजहूँ न पतीना॥ कहि कबीर हमारा गोबिद। चौथे पद महि जन की जिद॥१५५॥ भूखे भगति न कीर्जे। यह माला अपनी हीजै॥ ही माँगो संतन रेना। मैं नाही किसी का देना॥ माधव कैसी बने तुम संगे। आपि न देउ तले बहु मंगे॥ दुइई सेर माँर्गो चूना। पाव घीउड संग दूना॥ अधसेर माँगों दाले! मोकों दोनो बखत जिवाले॥ खाट माँगी चौपाई। सिहाना और. तुलाई॥ ऊपर कौ माँगी खीधा। तेरी भगति करे जनु बीघा॥ में नाही कीता लब्बो। इक नाउ तेरा मैं फब्बो॥ कहि कबीर मन मान्या। मन मान्या तो हरि जान्या॥१५६। मन करि मक्का किबला करि देही। बोलनहार परस गुरु एही॥ कहु रे मुल्ला बॉँग निवाज। एक मसीति दसे दरवाज॥ मिसमिलि तामसू भर्म कर दूरी! भाखि ले पंथे होह सबूरी॥ हिंदू तचुरक का साहिब एक। कह करे मुल्ला कह करे सेख॥

परिशिष्ट (पद) कहि कबीर हो भया दिवाना। मुसि मुसि मनुआ सहजि समाना॥ १५७॥ मन का स्वभाव मनहि वियापी। मनहि मान कवन सिधि थापी॥ कबन सुमनि जो मन को मौरै। मन को मारि कबहूँ किस तारै॥ मन अंतर बोले सब कोई। मन मारे बिन भगत न होई॥ कह कबीर जो जाने भेउ। मन मधुसूदन त्रिभुवण देउठ॥१५८॥ मन रे छाड़हु भर्म प्रगण होई नाचहु या माया के डाड़े। सूर कि सनमुख रन ते डरे सती कि साँचे भो़॥ डगमग डॉडि रे मन बोराय। अब जो जै मै सिधि पाइये लीनो हाथ सिधोरा॥ काम क्रोध माया के लीने या विधि जगत बियूचा। कहि कबीर राजा राम न छोड़ो सगल ऊँच ते ऊँचा॥१५९॥ माता जूही पिता भी जूठा जूठही फल लागे। आवहि. जूठे जाहि भी जूठे जूठे मरहि अभागे॥ कहु पंडित सूधा कवन ठाउ। जहाँ बैसि हो भोजन खाउ। जिहया जूढही बोलन जूठा करन नेत्र सब जूठे॥ इंद्री की जूही उत्तसि नाहि ब्रह्म अगनि के जूठे। अगनि भी जूठी पानी जूठा जूठी बैसि पकाइया॥ जूठी करछी परोसन लागा जूठे ही बैठि खाइया। गोबर जूठा चीौका दीनी. करा॥ कहि कबीर तेई नर सूचे साथी परी बिचारा॥१६०॥ मरन जीवन की संका नासी। आपन रंगि सहज परगासी॥ प्रकटी ज्योति मिट्या अँधियारा। राम रतन पाया करत बिारा॥ जहैँ अंनद दुख दूर पयाना। मन मानकु लिय तत्तु लुकाना॥ जी किछु होआ सू तेरा भाणा। जो इन बूसी सु सहजि समाणा॥ कहत कबीर किलबिष गये खीणा। मन भाया जग जीवन लीणा ॥१६१॥ भाई मोहि अवरु न जान्यो आनो। सिव सनकादि जासु गुन गावहि तासु बसहि मेरे प्रानाँ॥ हिरदे प्रगास ज्ञान गुरु गम्मित गगन मंडल महि ध्यानाँ॥ विषय रोग भव बंधन भागे मन निज घर सुख जानाँ॥ एक सुमति रति जानि मानि प्रभु दूसर मनहि न आना। चंदन बास भये मन बास न त्यागी घट्यो अभिमानाँ॥ जो जन गाहई ध्याई जस ठाकुर तासु प्रभु है थानों। तिह बड़ भाग बस्यो मन जाके कर्म प्रधान मधथानाँ॥ काटि सकति सिव सहज प्रगास्या एके एक समाना। कहि कबीर गुरु भेटि महासुख भ्रमत रहे मन मानां॥१६२॥ माथे तिलक हथि माला जॉना। लोगन राम खिलौना जानाँ॥ ७२९

७३० 5५ कबीर समग्र जी हो तो राम तोरा। लोग मर्म कह जाने भोरा॥ तोरी न पाती पूजी न देवा। राम भगति बिन निहफल सेवा॥ सतिगुरु पूजी सदा मनावों। ऐसी सेव दरगह सुख पावो॥ लोग कहै कबीर बोराना। कबग्रीर का मर्म राम पहिचाना॥१६३॥ माधव जल की प्यास न जाह। जल महि अगनि उठी अधिकाई॥ तू जलनिधि हो जल का “मीन। जल महि रहो जले बिन खीन॥ तू पिजर हो सुअटठा तोर। जम मंजरा कहा करे मीर॥ तू तरवर हो पंखी आहि। मंदभागी तेरो दर्शन नाहि॥१६४॥ मुंद्रा मौनि दया करे झोली पत्र का करहु बिचारू रे। खिधा इहु तन सीऔ अपना नाम करो आधारू रे॥ ऐसा जोग कमावै जोगो जप तप संजम गुरु मुख भोगी। बुद्धि विभूति चठाओ अपनी सिगी सुरति मिलाई॥ करि वैराग फिरो तन नगरी मन की किगुरी बजाई। पंच तत्व है हिदे राखह रे निराल मताड़ी॥ कहत कबीर सुनहु रे संतहु धर्म दया करि बाही॥१६५॥ मुसि मुसि रोव कबीर की माई। ए बारिक केसे जीवहि रघुराई॥ तनना बुनना सब तज्या है कबीर। हरि का नाम लिखि लियो सरीर॥ जब लग तागा बाहउ बेही। तब लग बिसरे राम सनेही॥ ओछी मति मेरी जाति जुलाहा। हरि का नाम लघ्यों मै लाहा॥ कहत कबीर सुनहु मेरी माई। हमरा इनका दाता एक रघुराई॥१६६॥ मेरी बहुरिया को धनिया नाउ। ले राख्यो रामजनिया नाउ॥ इन मुंडियन मेरा घर धुघरावा। बिटवहि राम रमौआ लावा॥ कहत कबीर सुनहु मेरी माई। इन मुंडियन मेरी जाति गवाई॥१६७॥ मैला ब्रह्म मैला इंदु। रबि मैला है मैला चंदु॥ मैला मलता इहु संसार। इक हरि निर्मल जाका अंत न पार॥ मेला ब्रह्मंठ्य इकके ईस। मेले निसि बासुर दिन तीस॥ मैला मोती मैला हीर। मैठा पवन पावक अरू नीझे॥ पमैठले सिब संकरा महेस। मैले सिंध साधक अरु भेष॥ मेले जोगी जंगम जटा समेति। मैली काया हंस समेति॥ कहि कबीर ते जन परवान। निर्मल ते जो रामहि जान॥१६८॥ मौलो धरती मौला आकास। घटि घटि मौलिया आतम प्रगास॥ राज राम मौलिया अनत भाहदं। जब देखो तह रहा समाइ॥ दुतिया मौहे चारि बेद। सिम्रति मौली सिउः कतेब॥ ना

परिशिष्ट (पद) संकर मौल्यो जोग ध्यान। कबीर को स्वामी सब समान॥१६९॥ जम ते उलटि भये है राम। दुख बिनसे सुख कियो विज्धाम | बैरी उलदि भये है मीता। साकत उलटि सुजन भये चीता॥ अब मोहि सर्ब कुसल करि मान्या। सांति भई जब गोबिंद जान्या॥ तन मोहि होती कोटि उपाधि। उलटि भई सुख सहजि समाधि॥ आप पछाने आप आप। रोग नु ब्यपै तीनो ताप॥ अब मन उलदि सनातन हुआ। तब जान्या जब जीयत मूआ॥ कहु कबीर सुख सहज समाओ। अपि न डरो न अवर डराओ॥१७०॥ जोगी कहहि जोग भल मीठी अबवर न दूजा भाई। रुंडेत मुँडिति एके सबदी एकहहि. सिधि पाई॥ हरि बिन भरमि भुलाने अंधा। जा पहि जाउ आप छुटकावनि ते बाँधे बहु फंदा॥ जह ते उपजी तहीं समानी इंहि दिधि बिसरी तबहीं। पंडित गुणी सूर हम दाते एहि कहहि बड़ हमही॥ जिसहि. बुझाएं सोई बूली विनु यू क्यो रहिये। तिस गुरु मिले अँधेरा चूके इन विधि प्राण छु लहिये॥ तजिवा बेदा हने बिकारा हरि पद दृढ़ करि रहिये। कह कबीर भुँगे गुण खाया पूछे ते क्या कहिये॥१७१॥ जोगी, जती तपी संनन्‍्यासी बहु त्तीर4थ .भ्रमना। लुंजित पमुंजित मौनि जदा धरि अंत त्तऊ मरना॥ ताते सेविअ ले रामना । रसना राम नाम हितु जाके कहा करे जमना॥ आगम निगम जोतिक जानहि. बहु वह व्याकरना। तंत्र मंत्र सब औषध जानहि अंत तऊ मरना॥ राजा भोग अरु छन्त सिहासन बहु सुंदरि रमना। पान कपूर सुबासा के चंदन अंत तऊ मरना॥ बेद पुरान सिमृति सब खोजे कहूँ न ऊबरना। कहु कबीर यो रामहि जपी मैटि जनम मरना॥१७२॥ जोनि छाड़ि जौ जय महि आयो। लागत पवन खसम बिसरायो॥ जियरा हरि के गुन गाउ। गर्भ जोनि महि ऊर्ध्य तपु करता। तो जठर अग्नि महि रहता॥ लख चोरासीह जोनि भ्रमि आयो। अब के छुटके न ठौर न ठायो॥ कहु कबीर भजु सारिगषानी। आवत दीसे जात न जानी॥१७३॥ रु रु री बहुरिया घूँघट जिनि काडै। अंत की बात लहँगी ना आदै॥ ७३१

७३२ कबीर समग्र घूंघठ काठढ़ि गई तेरी आगै। उनकी मैल तोहि जिनि लागै॥ घूंघद काठ की इहे बड़ाई। दिन दस पाँच बहू भले आई॥ घूँघठ तेरों तौपरि सोंचे। हरि गुन गाइ कूंदहि अरू नाचे॥ कहत कबीर बहू तब जीते। हरि गुन गावत जनम व्यतीते॥१७४॥ राखि लेहु हमते बिगरी | सील घरम जप भगति न कीनी हो अभिमान टेट पगरी॥ अमर जान संची इह काया इुह मिथ्या काची गगरी। जिनहि निवाजि साजि हम कीये तिनहीं बिसारि औ हलगरी॥ संधि कोहि साथ नहि कहियो सरनि परे तुमरी पगरी। कह कबीर इहि बिनती सुनियहु मत घालहु जम की खबरी॥१७५॥ राजन कौन तुमारे आवे। ऐसे भाव दिदुर को देख्यो ओहू गरीब मभोहि भावे॥ हस्ती देखि भर्म ते भूला श्री भगवान न जान्या। तुमरी दूध बिदूर को पानी अप्ृत करि मैं मान्या॥ खीर समान सागु मैं पाया गुन गावत रेनि बिहानी। कवीर को ठाकुर अनद बिनोदी जाति न काहूँ की मानी॥१७६॥ राजा राम तू ऐसा निर्भा तरन तारन राम राया। जब हम होते तब तुम नाही अब तुम हहु हम नाही॥ अब हम तुम एक भये हष्टि एके देखति मन पतियाही। जब बरुधि होती तय बल कैसा अब उुद्धि बल न खटाई॥ कही कबीर जुधि हरि लई मेरी बुद्धि बदली सिधि पाई॥१७७॥ राजा स्नरिमामति नहीं जानी तोरी। तेरे संतन की हो चेरी। हसती जाइ सु रोबत आवे रोब जाह सु हमे॥ बसतो होइ सो ऊजरू ऊजरू होइ सु खस्से। घरती ते आकाश चढ़ावे चढ़े अकास. गिराबै॥ भेखरी ते राज करावै राजा ते भेखारी। खल मूरख ते पंडित करियो पंडित ते मुगपषारी।॥ नारी ते जे पुरुष करावै पुरखन ते जो नारी। कहु कबीर साधू का प्रीतम सुमूरति बलिहारी॥१७८॥ राम जपौ जिय ऐसे ऐसे। घ्लुव प्रहताद जप्यो हरि जैसे॥ दीनदयाल भरोसे तेरे। सब परवार चढ़ाया बेड़े॥ जाति सुभावें तहु कम मनावै। इस बेड़े कौ पार लेँघावे॥ गुरु प्रसादि ऐसी बुद्धि समानी। चूँकि गई फिरि आवन जानी॥ कहु कबीर भजु सारिगषानी। उरवार पार सब एको दानी॥१७९॥ राम सिमरि राम सिमरि राम सिमिरे भाई।

परिशिष्ट (पद) राम नाम सिमिरन बिनु बूड़ते अधिकाई॥ बनिता सुत देह ग्रे संपति सुखदाई। इनमे कछु. नाहे. तेरो “ काल अवधि आई।॥ अजामल ण्ज गनिका पतित कर्म कीने। त्तेक उत्ति. पार परे राम नाम लीने॥ सूकक. कूकर जोनि श्रमतेक लाज न आई। राम , नाम छाड़ि अमृत काहे विष खाई॥ तजि भर्म कर्म विधि निषेध राम नाम लेही। गुरु. प्रसादि जन कबीर राम करि सनेही॥१८०॥ री कलवारि गवारि मूढ़ मति उलठो पवन फिरावी। भन मतवार मेर सर भाठी अमृत धार चुवाबो॥ बोलहु भैया राम की दुहाई। पीवहु. सतत सदा मति दुर्लभ सहजे प्यास बुझाई॥ भय विध भाउ भाई कोउ बूझहि हरि रस पावै भाई। जेते घट अमृत सवही महि. भाव तिसहि. पियाई॥ नगरी एके नव दरवाजे नव दरवाजे घारत बर्जि रहाई। निकुटी छूटे दस बादर खूले ताम न खीवा भाई॥ अभय पद पूरि ताप तह नासे कहि कबीर बीयारी। उबट चलंते इहु मद पाया जैसे खोद खुमारी॥१८१॥ रे जिय निलज्ज लाज तोहि नाही। हरि तजि कत काहू के जाही॥ जाको ठाछुर ऊँचा होई॥ सो जन पर घर जात न सोही॥ सो साहिय रहिया भरपूरि। सदा संगि नाहीं हरि दूरि॥ कवलय चरन सरन है जाके। कहु जन का नाही घर ताके॥ सब कोऊ कहै जामु की बाता। सो सम्प्रथ निज पति है दाता॥ कहे कबीर पूरन जग सोई। जाके हिरदे अवरू न होई॥१८२॥ रे भन तेरों कोई नहीं छदिधि लेह जिन भार। विख. बसेरा पखि को तैसो हम संसार॥ राम रस पीया रे जिह रस दिसरे गये रस और। और मुये क्या रोहये जो आपा थिर न रहाद॥ जो उपजै सो बिनसिहे दुख करि रोबे. बलाह। जह की उपजी तह रची पीवत मरद न लाग॥ कह कबीर चित चेतिया राम सिमिर बैराग॥१८३॥ रोजा धरे मनावै अल्छहु स्वातति जीय सँधारे। आपा देखि अबर नही देखे कहे को झख मारे॥ काजी साहिब एक तोही महि तेरा सोच विधार न देखे। खबरि न करहि दीन के यौरे ताते जनम अलेखै॥ ७३३

७३४ कबीर समग्र साँच कतेय बखाने अल्लहु नारि युरुष नहिी कोई। पढ़े गुने नाही कछू बोरे जी दिल महि खबरें न होई॥ अल्लहु गैव सगल घट भीतर हिरदे लेहु . बिचारी। हिंदू तुरक हुई महि एके कहै कबीर युकारी॥१८४॥ लंका सा कोट समुंद सी खाई। तिह रावन घर खबरिं न पाई॥ क्या माँग किछु थिरू न रहाई। देखत नयन चल्यो जग जाई।॥ इक लख पूत सवा लख नाती। तिह रावन घर दिया न बाती॥ चंद सूर जाके" तपत रसोई। बैसंतर जाके कपरे थधोई॥ गुरु मति रामे नाम जबसाई। अस्थिर रहे न कतहू जाई॥ कहत कबीर सुनहु रे लोई। राम नाम बिन मुकुति न होई॥१८५॥ लख चोरासी जीअ जोनि महि भ्रमत नंदु बहु थाको रे। भगति हेतु अवतार लियो है भाग बड़ो बपुरा को रे॥ तुम जो कहत हो नंद को नंदन नंद सु नंदन काको रे। घरिनि अकास दसो दिसि माही तब इहु नंद कहायो रे॥ संकट नहीं पैरै जोनि नहि आबै नाम निरंजन जाकौ रे। कवीर को स्वामी ऐसो ठाकुर जाके माई न बापो र२॥१८६॥ विद्या न पढ़ो बाद नहीं जानो। हरि गुन कथत सुनत बोरानो॥ मेरे बावा में बोरा, सब खलक सयानो में बोरा॥ में बिगर यो बिगरे मति औरा। आपन योरा राम कियो बोरा॥ सतिगुरु जारि गयो भ्रम मोरा। मे बिगरे अपनी मति खोई। मेरे भर्मि भूलो मति कोइ॥ सो बोर आपु न पछाने। आप पछाने न एके जाने॥ अबहि न माता सु कबॣहँ न भाता। कहि कबीर रामे रंगि राता॥१८७॥ बिनु सत सती होई कैसे नारि। पंडित देख रिदि दिचारि॥ प्रीति बिना केसे बँधे सनेहु। जब लग रस तब लग नही नेहू।॥ साह निसत्तू कैरै जिय अपने। सो रमये को मिले न स्वपने। तन मन घन गृह सौषि सरीर। सोई सोहागनि कहै कबीरू ॥१८८॥ बिमल वच्ध केते है पहिरे क्या बन मध्ये बासा। कहा भया नर देवा धोखे क्या जल बोरपो कज्ञाता॥ जीय रे जाहिगा मैं जाना अविगत समझ इयाना। जत जत देखो बहुरि न पेखो संग माया लपठाना॥ ज्ञानी घ्यानी बहु उपदेसी इहु जन सगलो थंधा। कहि कबीर इक राम नाम विनु या जग माया अंधा॥१८९॥ विबया व्याप्या सकल संसार विषया ले डूबा परवाररू॥

परिशिष्ट (पद) रे नर नाव चौड़ि कत बोडी। हरि स्थो तोड़ि दिषया संगि जोड़ी॥ सुर नर दाधे छागी आगि। निकट नीर पसु पीवसि न झागि॥ चेतत चेतत निकस्यो नीर। सो जल निर्मल कथचत कबीर॥१९०॥ बेद कतेब इफतरा भाई दिल का फिकर न जाई। दुक दम करारी जौ करु हाजिर हलजूर खुदाई।॥। बंदे खोजु दिल हर रोज ना फिरि परेसानी भाहि। इंह जु दुनिया सहारू भेला दस्तगीरी नाहि॥ दरोग पढ़ि पढ़ि खुसी होह बखबर बाद बकाहि॥ हक सच्चु खालक खलक म्याने स्थाममूरति नाहि॥ असमान म्याने लहंग दरिया गुसल करद ते बूद। करि. फिकरू दाइम लाइ चसमे जैँह तहाँ मौजूद) अल्लाह पाक पाक है सक करो जे दूसरे होइ। कबीर कर्म करीम का उहु करे जाने सोइ॥१९१॥ बेद कतेब कहहु मत झूठे झूठा जो न विधारै। जौ सब में एकु खुदा कहत हो तौ क्यो मुरगी मारै॥ मुल्ला कहहु नियाउ खुदाई तेरे मन का भरम न जाई। पकरि जीउ आन्या देह बिनासी मादी को बिसमिल किया॥ जोति सरूप अनाहत लागी कहु हलाल क्यो कीया। क्या उज्जु पाक किया मुह धोया क्या मसीति सिर लाया! जी दिल मैहि कपट निवाज गुजारु क्या हज काबे जाया॥ तू नापाक पाक नहीं सूश्या तिसका - मरम न जान्या। कहि कबीर भिस्त ते चुका दोजक स्यो मन मान्या॥१९२॥ बेद की पुत्री सिमृति भाई। सॉकल जबरी लहैहै आई॥ आपन नगर आप ते बॉघ्या। मोह के फाधि काल सरू साध्या॥ कटी न कटैँ तूटि नह जाई। सो सापनि होइ जग को खाई॥ हस देखत जिन्ह सब जग लूटया। कहु कबीर मैं राम कहि छूट्या॥१९३॥ देद पुरा] सबे मत सुनि के करी करम की आसा। काल ग्रस्त सब लोग सियाने उठि पंडित पे चले निरासा॥ मन रे सरयो न एके काजा। भज्यो न रघुपति राजा। बन खंड जाइ रोग जोग तप कीनो कंद मूल चुनि खाया॥ नादी बेदी सबदी मौनी जम के परै लिखाया। भगति नारी रवि न आई काछि कूछि तन दीना॥ * राग रगनी डिभ होह बैठा उन हरि पहि क्या हलीना। परयो काल सबै जग ऊपरि मभाहि लिखे श्रम ज्ञानी॥ कहु कबीर जन भये खलासे प्रेम भगति जिह जानी॥१९४॥ घट नेम कर कोठड़ी बॉयी बस्तु अनूप बीच पाई। ७9३५

७३६ कबीर समग्र कुंजी कुछलफ प्रान करि राखे करते बार न लाई॥ अब मन जागत रु रे भाई।. « गाफिल होय के जनम गवायो चोर मुस घर जाई॥ पंच पहरुआ दर महि. रहते तिनका नहीं पतियारा। चेति सुथेत चित- होइ रहु तो ले परगासु उजारा॥ नव घर देखि जु कामिनि भूली यस्तु अनूप न पाई। कहत कबीर नवै घर पूसे दसवे तत्व. समाई॥ १९५॥ संत मिले कछु सुनिये कहिये। मिले असंत मष्ठ करि रहिये॥ दाया बोलना क्या कहिये। जैसे राम रमि रहिये॥ संतन स्‌थों बोले उपकारी। मूरख स्थो बोले झक मारी॥ बोलत बोलत चढ़हि बिकारा। बिनु बोले क्या करहि विघारा॥ कहु कबीर छूछा घट बोडे। भरिया होह सु कब्हु न डोलै॥१९६॥ संतहु मन पवने सुख वनिया। किएछु जोग परापति गनिया॥ गुरु दिखलाई मोरी। जितु मिर्य पड़त है चोरी॥ मूँदि. लिये. दरबाजे। बाजिल अनहद बाजे॥ कुभ कमल जल भरिया। जलौ मेटल्या ऊमा करिया॥ कहु कबीर जन जान्या। जौ जान्या तो मन मान्या॥१९७॥ संता मानौ दूता डानी हूह छुटवारी मेरी। दिवस रेन त्ते पाउ पल़ोसो केस चवर करि फेरी॥ हम कूकर तेरे दरबारि। भोकाई आगे बदन पसारि। पूरव जनम हम तुम्हों सेवक अब तौ प्रिव्या न जाह॥ ते दवरो धुनि सहज की मये मेरे. दंगाई॥ दागे होहि सुरन महि यूझहि बिनु दागे भगि जाई॥ साधू होई चुभ गति पछानै हरि लये खजाने पाई॥ कोठरे महि कोठरा परम कोठरी दिचारि॥ गुरु दीनी बस्तु कबीर को हछलैवहु घस्तु सम्हरि॥ कदीर दोई संसार कौ लीनी जिसु मस्तक भाग॥ अमृत रस जिनु पाइया घिरा का सोहाग॥१९८॥ संध्या प्रात स्नान कराही। ज्यों भये दद्र पानी माही॥ जो पे राम नाम रति नाहीं। ते सब पघर्मराय के जाही॥ काया रति बहु रूप रचाही। तिनके दया सुपनै भी नाही॥ चार चरण कहहि बहु आगर। साधु सुख पावहि कलि सागर॥ कहु कबीर वहु काय करीजै। सबरस छोड़ि महा रस पीजै॥१९९॥ सत्तरे से इसलारू है जाके। सवा लाख है कावर ताके॥

परिशिष्ट (पद) यही कोटि अठासी। छप्पन कोटि जाके खेल खासी॥ बे बा को गुजराबै। मजलसि दूरि महल को पावे॥ तेतसि करोड़ि है खेल खाना। चोराती लख फिरे !3/308 बाया आदम कौ कछु न दरि दिखाई। उनभी भिस्त घनेरी पाई। दिल खल हलु जाके जर दरुबानी। छोड़े कतेब करे सैतानी॥ दुनिया दोस रोस है लोई। अपना कीया पावे सोई। तुप दाते हम सदा भिखारी। देठ जवाब होइ बजगारी।। दास कबीर तेरी पनह समाना। भिस्त नजीकराखु रहमाना।२००॥ सनक सनंद अंत नहीं पाया। बेद पढ़े पढ़ि ब्रहाँ जनम गवाया।॥॥ हरे का विलोबना विलोकहु मेरे भाई। सहज विलोदहु जैस तत्व न जाई॥ तनु करि मटकी मन माहि बिलोई। इसु मटकी महि सबद संजोई।हरि का बिलोना मन का बीयारा। गुरु प्रसाद पावै अमृत धारा॥ कहु कबीर नजर करे जे मीरा। राम नाप लमि उत्तरे त्तीरा॥२०१॥ सनक समंद महेस समाना। सेष नाग तेरी मर्म ने जाना॥थ। संत संगति राम रिंदे बसाई। हनुमान सरि गरुड़ समाना। सुरपति नरपति नहि गुन जाना॥ चारि देद अरु सिम्रति पुराना। कमलापति कमला नहि जाना॥ कह कबीर सो धरमे नाही। पण लहूमि राम रहे सरनाही॥२०२॥ सब कोई चलन कहत है ऊँहा। ना जानी बैकुंठ है कहाँ॥ आप आपका मरम न जानों। बातन ही बैकुंठ बखानाँ॥ जब लग मन बैकुंठ की आस। तब लग नाही चरन निवास॥ खाई कोट न परल पगारा। ना जानी बैकुंठ दढुआरा॥ कहि कबीर अब कहिये काहि। साधु संगति बैकुंठे आहि॥२०३॥ सर्पनी ते ऊपर नहीं बलिया। जिन ब्रह्मा विष्णु महादेव छलिया॥ मारु मारु सर्पनी निर्मल जल पैठी। जिन त्रिभुवन डसिले गुरु प्रसादि डीठी॥ सर्पनी सर्पनी क्या कहहु भाई। जिन साधु पछान्या तिन सर्पनी खाई। सर्पनी ते आन छूछ नहीं अवरा। सर्पनी जीति कहा करे जमरा॥ इहि सर्पनी ताकी कीती होई। बल अबल क्या इसते होई॥ एक बसती ता बसत सरीरा। गुरु प्रसादि सहजि तरे कदीरा॥२०४॥ सरीर सरोवर आंछै कमल अनूष। परम ज्योति पुत्पोत्तमो जाके रेख न रूप रे मन हरि भुज पभ्रम तजहु जग जीवन राम। अवत कछू न दीसई नह दीसे जात॥ जहाँ उपज विनसै तहि जैसे पुवनि पात। ९३७

परिशिष्ट (पद) मिथ्या कि माया तजा सुख सहज बीचारि॥ कहि. कबीर सेवा करु. मन मंष्वि मुरारि॥२०५॥ सासु की दुखी ससुर की प्यारी जेठ के नाम उसी रे। सखी सहेली ननद गहेली देवर के बिरहि जरी रे॥ मेरी मति बोरी मैं राम बिसास्थया किन विधि रहनि रही रे। सेजे रमत नयन नहीं पेखो इहु दुख कासी कहीं रे॥ बाप सवका करे लराई मया सद . मतवारी। बड़े भाई के जब संज होती तब ही नाह पियारी॥ कहत कबीर पंच को झगरा झगरत जनम गवाया। झूटी माया सब जग बॉध्या में राम रमत सुख पाया॥२०६॥ सिव की पुरी बैस बुधि सारु। यह तुम मिलि के करहु विधारू॥ ईत ऊत की सोल्ौ परे। कौन कर्म मेरा करि करि मरे॥ निज पद ऊपर लागो ध्यान। राजा राम नाम मेरा ब्रह्म ज्ञान॥ मूल दुआरे वंध्या बंधु॥ रवि ऊपर गहि राख्या चंदु॥ पंचम दवा की सिह ओड। तिह सिल ऊपर खिड़की और॥ खिड़की ऊपर दसवा द्वार। कहि कबीर त्ाका अंतु न पार॥२०७॥ सुख माँगत दुख आगे आबै। सो सुख हमहुँ न माँग्या भावै॥ विषगा अजहु सुरति सुख आसा। कैसे होइ है राजाराम निवासा॥ इसु सुख ते सिव ब्रह्म उराना। सो सुख हम सोच करि जाना॥ सनकादिक नारद मुनि सेखा। तिन भी तन महि मन नहीं पेखा॥ इस मन कौ कोई खोजहु भाई। तन छूटे मन कहा समाई॥ गुरु परसादी जयदेव नामा। भगति के प्रेम इनही है जाना॥ इस मन कौ नहीं आवन जाना। जिसका भर्म गया तिन साधु पछाना॥ इस मन कौ रूप न रेख्या काई। हुकुमे होया हुकुम बूझ्ि समाई॥ इस मन का कोई जाने भेउ। इहि मन लीण भये सुखदेउ॥ जीउ एक और सगल सरीरा। इस भन कौ रबि रहे कबीरा॥ २०८॥ सुत अपराध करत है जेते। जननी चीति न राखसि तेते॥ रामय्या हो बारिक तेरा। काहे न खंडसि अवगुन मेरा॥ जे अति कोप करे करि घाया। ताभी चीत न राखसि माया॥ घित्त भवन मन परयो हमारा। नाम बिना कैसे उतरसि पारा॥ देहि बिमल मति सदा सरीरा। सहजि सहजि गुन रबै कबीरा॥२०९॥ सुन्न॒ संध्या तेरी देव देवा करि अधपति आदि समाई। सिद्ध समाधि अंत नहीं पाया लागि रहे सरमाई॥ लेहू आरती हो पुरुष निरंजन सति गुरु पूजहु जाई। ठाठा ब्रह्मा निगम बियर अलख न लखिया जाई॥

परिशिष्ट (पद) ७३९ ततु तेल नाम कीया बाती दीपक देह उज्यारा। जोति. लाई जगदीस जगाया बूसे. बूझनहारा॥ पंचे सबद अनाहत बाजे संगे सारिगपानी। कबीरदास त्तेती आरती कीनी निरंकार निरबानी॥२१०॥ सुरति सिम्ृति दुई कन्नी मंदा परमिति बाहर खिया। सुन्ऩ गुफा महें आसण बैसण कल्प बिवर्जित पंथा॥ मेरे राजन में बैरागी जोगी मरत न साग बिजोरी। खंड ब्रह्मांई महि सिडी मेरा बढ्वा सब जग भसमाधारी॥ ताही लागी जिपल पलटिये छूटे होइ. पसारी॥ मन पवनन , दुई तूंबा करिंहे जुग जुग सारद साजी॥ घविरू भ नंती टूट्सि नाही अनहद किगुरी बाजी॥ सुनि मन गन भये है पूरे माया डोलन लछागी। कहु कबीर ताकौ पुनरपि जनम नहीं खेलि गयो बैरागी॥२११॥ सुह की जैसी तेरी चाल। तेरा पूछछठ ऊपर झमक बलि॥ इस घर मह है सुंतू दृढि खाहि। और किसही के तू मति ही जाहि॥ चाकी चाटे चून खाहि। चाकी का चीयरा कहा है जाहि॥ छीके पर तेरी बहुत डीठ। मत लकरी सोटा परे तेरी पीठ॥ कहि कबीर भोग भले कीन। मति कोऊ मारे ईट ठेम॥२१२॥ सो मुल्ला जो मन स्यो लरे। गुरु उपदेस काल स्यो जुरै॥ जे का ह मान। तिस मुल्ला को सदा सलाम॥ कत बतावहु। दुंदर वाधहु मुंदर पाबहु॥ काजी सो जो काया बियारीे। काया की अग्नि ब्रह्म पे जारे॥ सुने दि न देई जरना। तिस काजी कौ जरा न मरना।! सुरतान जो दुई सुर ताने। बाहर जाता भीतर आने॥ गगन मंडल महि लस्कर करै। सो सुरतान छन्न सिर धरै॥ गोरख गोरख करै। हिंदू राम नाम उच्चरे॥ मुसलमान का एक खुदाई। कबीर का स्वामी रहा समाई॥२१३॥ स्वर्ग बास ऩ वाछियि वारियि न नरक निवासु। होना है सो होहहै भनहि न कीजे आछु॥ रमय्या गुन गाइये जाते पाइयै परम निधानु। कया जप क्या तप संयमो क्या ब्रत क्या इस्नान॥ जब लग जुक्ति न जानिये भाव भक्ति भगवान। संपे हज न हर्षियि विपति देखि न रोह॥ ज्यो संपे त्यो बिपत है विधि ने र्या सो होह। कहि. कबीर अब जानिया संतन रवि भक्नारि॥ सेवक सो सेवा भले जिह घट बसे. मुरारि॥२१४॥ लियइकमा--ण->>3>>-न--००-० | अजकिननिकना++ का

अलती्[७० विभकक :पर०मरकभ८++ पल * कुक ७४० कबीर समग्र हज्ज हमारी गोमती तीर। जहाँ बसहि पीतंबर पीर॥ बहु वहु क्या खुद गावता है। हरि का नाम मेरे मन भावता है॥ नारद सारद करहि खवासी। पास बैटि विधि कवला दासी॥ कंठे माला जिहवा राम सहस नाम लै है करो सलाम॥ कहत कबीर राम गुन गावौ। हिंदू तूरक दोऊ समझावौ॥२१५॥ हम घर सूत तनहि नित ताना कंठ जनेऊ तुमारे। तुम ते बेद पढ्ह गायत्री गोबिद रिदि हमारे। मेरी जिह्वा विष्णु नयन नारायण हिरदे बसहि गोबिदा। जम दुआर जय पूँछसि बबरे तब क्या कहति मुकुंदा॥ हम गोरू तुम ग्वार गुसाइई जनम जनम रखबारे॥ कबहू न पार उतार चराइहु कैसे खसम हमारे॥ तू वाहन में कासी का जुलाहा बूझहु मोर गियाना। तुम तो पाचे भूषति राजे हरि सो मोर धियाना॥२१६॥ हम मसकीन खूदाई बंदे तुम राचसु मन भावे। अल्लाह अवलि दीन को साहिब जोर नहीं एुरमावे॥ काजी बोल्या बनि नहीं आवै। रोजा घैरै निवाजु गुजरा कलमा भिस्त न होई॥ सत्ति काबा घटही भीतर जे करे जाने कोई॥ निवाजु सोई जो नन्याह बिच कलमा अकलहि जाने। पॉयहु मुसि मुसला बिछाये तब तो दीन पछाने॥ खसम पछानि तरस करि जीय मरि मणी करि फीकी। आप जनाइ और को जाने तब होह भिस्त सरीकी॥ माटी एक भेष घरि नाना तामहि ब्रह्म पछाना। कहै कबीर भिस्त छोड़ि करि दोजक स्यो मनमाना॥२१७॥ हरि बिन कौन सहाई मन का। माता पिता भाई सुख बनिता हितु लागो सब फन का॥ आगे कौ किछु तुलहा बॉघहु क्या भरोसा धन का। कहा विसासा इस भोंडे का इत नकु लगे ठन का॥ सगल घर्म पुत्र फल पावहु घूरि बॉछह सब जन का। कहे कबीर सुनहु रे संतहु इहु मन उडन पखेरू बन का॥२१८॥ हरि जन सुनहि न हरि गुन गावहि। बातन ही असमान गिरावहि॥ ऐसे लोगन स्यो क्या कहिये। जो प्रभु कीये भगति ते बाहज। तिनके सदा डराने रहिये। आपन देहि चुरू भरि पानी। तिहि निदहि जिह गंगा आनी॥ बैठत उठत कुदिलता चालहि। आप गये औरनहू घालहि॥

परिशिष्ट (पद) छाड़ि कुर्चा आन न जानहि। ब्रह्मह का कहया न मानहि।॥ आप गये औरनहू खोबहि। आगि लगाइ मंदिर मे सोबहि॥ औरन हँसत आपहहि काने। तिनकौ देखि कबीर लजाने॥२१९॥ हिंदू. तुक कहाँ. ते -आये किन एक राह चलाई। दिल महि. सोच विचार कवादे भिस्त दोजक कित पाई॥ काजी ते कौन कततेब बखानी। पढ़त गुनत ऐसे सब मारे किनहू खबर न जानी॥ सकति सनेह करि सुन्तति करिये में न बदौगा भाई। जी रे खुदाई मोहि तुक करैगा आपनही कटि जाई॥ सुन्‌्तति किये तुक जे होइगा औरत का क्या करिये॥ अर्द्ध सरीरी नारि न छोडे तातै हिंदू ही रहिये॥ छाड़ि कतेव राम भजु बोरे जुलम करत है भारी। कबीर पकरी टेक राम की तुरक रहे पँचि हारी॥२२०॥ हीरे हीरा येधि पवन मन सहजे रहा समाई। सकल जोति इन हीरे ब्ेधी सतिगुरु बचनी मै पाई॥ हरि को कथा अनाहद बानी हंस है हीरा लेइ पछानी। कह कबीर हीरा अस देख्यो जग महि रहा समाई॥ गुपता हीरा प्रकट भयो जब गुरु गम दिया दिखाई॥२२१॥ हृदय कपट मुख ज्ञानी। झूठे कहा बिलोबंसि पानी॥ काया मॉजसि कौन गुना। जो घट भीतर है मलनां॥ लौकी अठ सठि तीरथ नहाई। कौरापन तऊ न जाई॥ कहि. कबीर बीचारी। भव सागर तारि मुरारी॥ २२२॥ ७४१

[परिशिष्ट पदों के शब्दार्थ | पृ, ५६३ (१) मैठ - विषय। लोक पतीणे + छोक विश्वास। अयाना < अज्ञानी। नावण 5 नमन। जोनी 5 जीवो की चार योनियाँ। हॉडवैत 5 १ नाड़ियों मे। २ एक स्थान। शायद राजस्थान मे स्थित | (२) जंती - यत्र। सरवर 5 सरोवर। (३) नेरि 5 नजदीक। तैस्कर & उसके। सचोनी & सचय।| भो 5 भव | (४) मेखलि 5 कटिबध। किगुरी 5 वीणा। सिडिया 5 सिरे पर। गगन सहस्तार। भवन # भुवन। जोगी 5 साधक। परमात्मा। राजा - 9 साधक। २ परमात्मा। पु. ५६४ (५) रॉगराता 5 तल्लीन। दुनी - ससार। रसाइन 5 रस। माता 5 मत्त। अन भी ८ अनुभव। बर्णों ८ बनना। वड़ा। हँवै >- अहमू है। पिड 5 शरीर। विर्तक नर्तक। लोचै 5 ढुलचै। बेनती ८ विनती | (६) कटि 5 कट कर। रलाइ 5 सम्मिलित किया। पचदूत 5 पॉच विषय। चीति 5 चित्त। अग्यारु न अगार। दुख। गिल्या 5 गल गया। पूरब लिखा 5 सचित् कर्म। राम जल 5 राम कृपा रूपी जल। तन जलुत 5 विषयाग्नि से शरीर का जठना। (७) बिनु भगवत 5 बिना ईश्वर की कृपा से। जेहि पावक > विषयाग्नि। निखुटत नाही - समाप्त नही होता। (८) अमल > छोकाचार। सिरानो ८ समाप्त हुआ। लेखा देना 5 हिसाब देना। सिताब ८ तुरत। झटपट। दिवान # मत्री| दरहाल 5 दरवार। फुर्सान 5 आदेश। अरदास ८ भेट। चढाबा। खटिया गवाना 5षट राग | रुले 5 रढ गए। मिल गए। पृ, ५६५ सारी 5 पूरा होना। निवाज 5 नमाज! सराइ 5 सराय। धन धन - धन्य, धन्य । सुहेला 5 सुखी। पदारध - वस्तु| अमोले ८ अमूल्य | बहुमूल्य | खसम + परमाता | रुढे - मिले | (९) तिसाई - तृष्णा होना। प्यास होना। चौबीसा 5 चौबीस घड़ी। हर समय। महरम भेद जाना। निधाना & आधार। उड़ीसे 5 जगन्नाथपुरी। मज्जन - स्नान। तुम्हारे - परमात्मा के। पूँगरा > बालक। नरबवै 5 नरपति) निहचै ८ निश्चय। अवतरि ८ जन्म लेकर। समारा 5 सम्हाला | (११) अबर - दूसरों के। परमल < परिमल| महकदा > महने वाढा और गदा। यह शब्द लगता है महक और गदा से बना है। कुअय 5 कुआ। सहसार। पच पनिहारी पॉच चक्र। टूटी लेजु कुडलिनी। पृ. ५६५ (१२) नूर 5 प्रकाश। पोच 5 बुराई। छोटापन। भाँणे 5 १ भॉड़ना। गढना। २ वर्तन। कुभारे 5 ब्रह्म | वदा 5 व्यक्ति। गुड़ दीना मीठा ८ उत्तम ज्ञान दिया। निरजन निर्गुण ब्रह्म । डीठा - दीखा। सर्व 5 सर्वत्र। (७४२)

परिशिष्ट पदो के शब्दार्थ ७४३ « ५६६ बा (१३) हारि परै 5 विषय मे दौड़ते-दौड़ते हार गए। पूरा + पूर्णता। (१४) कलपतरु इच्छित वस्तु देने वाला । गगन + शून्य | घट शरीर | (१६) हो महि - अपने मे। त्रिय अस्थान 5 तीन छोक। तीन तिय खडा +- माया के तीन खड-लेकेषण, वित्तेषण, सुत्ेषण। धरनी धर शेषनाग। मत मत्र।| कदली पहुप < सुषुन्ना। धूप + ज्ञान। कास - शून्य। खाली। सुन्नमडल ८ सहत्वार। साम ८ कृपा। अबरन निर्गुण। (१७) अक्खर दुई - राम। हरि। न (१८) तुलसी का बिरवा 5 जीव। बनारस 5 शरीर। ग्वारिन 5 माया। चरावत गाऊ इद्रियो का सचालन करना। की . ५६७ ५ (१९) कलत्र ८ स्त्री। ओछे 5 छोटे। इद्रढ़ोक, सिवलोक - स्वर्ग। अवर & अपर ।| दूसरा। (२०) पतरि>पत्तल। पात्र | शरीर। उरकट कुरकट 5 विषय। पानी माया प्रवाह। पांच जोगिया 5 पच प्राण। नकट देरानी 5 तृष्णा। माया। कोठ5 कोठा। नगनबा ८ ऊँचाई। डाड़ं > फॉद जाऊँ। हेरी 5 देख या खोजकर। सकलिया 5 सबकी। साधारण जीवो की। बरी 5 भक्ति का वरण किया। भर्त्ता भगवान। काइमु कायम। नाकहु काटी कानहु काटी 5 नाक, कान आदि के विषयो की प्रवृत्ति को नष्ट कर दिया। (२१) फन्ना 5 विद्या। धृग 5 धिक् ८ विगूते 5 नष्ट हुए। छेखा 5 हिसाब। (२२) बसाइ & बस। नाभिकमर ब्रह्मा का जन्म स्थान। सारि ८ समाप्त कर। आधि 5 अस्ति है। पृ. ५६८ (२३) सुरत 5 स्मृति। बघिय > बधु। (२४) सरल > सलहि। पानी। साख्या ८ शाखा। समदर्सी 5 समदर्शी। काहि 5 क्यो। तिसे + उसका। परमात्मा का। बुज्झि 5 समझ कर। पच-धातु ८ पचमहाभूत | दर्सन - दर्शन। शास्र। जीवत मरहु 5 विषय वासनामुक्त। एक नाम 5 प्रभु नाम। घियावहिगे > ध्यान मे लाएँगे। सुन्न - निर्गुण ब्रह्म। (२५) जाई & नाश। अगनी 5 अग्नि। गुनिया ८ सगुण व्यक्ति। (२६) उलटत पवन - श्वास की गति को रोक कर ऊपर करना। निबरै> निकट। अलउती का बरेडा 5 छप्पर का किनारा और उसमे लगी लकड़ी। यहॉ ओलती से गिरने वाला पानी अर्थ जान पड़ता है। पढीता 5 आग भड़काने वाली वस्तु। सीझल < सिद्ध। कुछ दोऊ 5 लोक परलोक। महि > मे। बुनत > कर्म। आप 5आत्तत्त्व। रिदै « हृदय। खलासु & खाली। मीरा 5 स्वामी। पृ. ५६९ (२८) विवरजित - वर्जित। रोकना। सोई + वह। चौथे पद > ब्रह्म तत्त्व। नेम < नियम | निहकामा 5 निराकाम| मदिर 5 घर। शरीर। परिगास्या > प्रकाश। चमक-दमक। तह > उसका। निरभी - निर्भर। गुरु पर निर्भरता। (२९) फुरी ८ स्फूरित हुईं। जिह 5 जिसने| भवहि + ससार मे। पियास > तृष्णा| कामेच्छा। निरास 5 विषयो की आशा से मुक्त मुक्त। सचुन 5 नकली सत्य। दरि - दरवाज। तारि 5 तारता है। कचन भया < विषय की तमाई चली गयी। समुद्र

(३१) (३२) (३३) (३४) (३५) (३६) (३७) (३८) (३९) (४०) (४१) (४२) (४३)
कबीर समग्र पारि 5 ससार सागर के बाहर | पच सिक - पॉच शिखर। पॉच इद्रियाँ। कोट 5 शरीर। दारा पचे 5 विपय। बोई विषयास्वाद। फलासक्त कर्म। पटवारी > चित्रगुप्त। ऊपरा भुजा 5 हाथ उठा कर नव डाडी 5 नव इद्रियाँ। दस मुसफ- 'द्वीवानी का न्यायाधीश। पॉच लोभ, मो काम, क्रोध, द्वेघ एव पॉच विपय। रइयति "जीव ।डोरी « ध्यान। विद्यला विस्तार। विस्टर। इक पुरुष > ब्रह्म। दीया नाम ढिखाई > ब्रह्म ने नाम लिए दिया। धर्मराय « यमराज। सोध्या > खोजा। रिज 5 ऋजु | किवा # किवा। दुहु मिलि - साधक और साधु। ससा 5 सशय। एक स्वासन के घर गावन > एक स्वान के घर पुत्रोत्पत्ति का गान हो रहा है। कु - कौन। अवध - उम्र। हसे - हँसता है। हुकुम पछाणि 5 आदेश जान कर। दधि के भोछे विशेढ्े नीर # दधि समझ कर पानी विलोता है। हरी अगरी > पुण्य सद् वृत्तियाँ। गदहा & अज्ञान। हीगे 9 हीसना। २ अहकार जताना। आमुहा मुखहीन। खेड़ 5 छोटा गाँव | चूधे & नाश करता है। भैड़ 5 जीव पेखना > प्रेक्षा। दृश्य। या देखो। रेगि 5 लगड़ाते। नतर 5 नहीं तो। मानस वु मूसा >बेचारा। मन चूहा है। मीच मृत्यु। मनई> मनुष्य। कानी 5 मर्यादा प्रतिक्ष। नियारी < अछंग] सगारी 5 सग वाली। ओइ < वह। चीतन हारे 5 चितन वाले। ब्रह्म पसारूया 5 सव मे ब्रह्म है। सब ब्रा का प्रसार है। तोलि ८ तौैलि। मौलि 5 मोल। ब्रही > ब्राह्मण | कत नही ठौर > स्थान रहित। मूल कत लावी & आरभ आदि रहित। अनियाढे * न्यारे। विचित्र | एक माइ > एक पुरुष। परमात्मा। सव नारी # जीव | करवतु 5 कर पत्र।| आरी। करवट 5 करवट लेने से होने वाया वियोग। मुः फेरना। बारी 5 छोटी | अज्ञानी। पिड 5 शरीर। स्वान 5 कृत्ता। स्वभाव न बदलने वाला। वकवासी। सिमृति 5 स्मपृति। साकत शाक्त। पहि 5 के पास | विसियर 5 सॉप। बेढे - घेरा। कस > शराब को अधिक प्रभावी बनाने हेतु दिया गया पदार्थ। एक दूँद 5 राम रः का एक दूँद। भाटी > भडट्ठी। मुद्रा न शराब पीते समय का खाद्ये। सुखमन '* सुषुन्ना। पौचनहारी 5 पोतनहारी। भसके की नली को ठडा करने के लिये लपेटा जा वाला वस्र। गहने 5 ग्रहण। पेउ 5 पिओ। दाती 5 अनुरक्त। सागठे 5 सकढ महारस - भक्ति | 5 कालबूत की हस्तनी 5 नकली हथिनी। सुजाइ & जाकर। बाच छोड़। राचु नर: हो | मर्क्कट मुट्ठी अनाज अनाज के लिये घड़े मे डालने वाठा बदर। छूटत नहीं वासना नही छूटती है। पलघ 5 पलग। गरी 5 गली। गोदरी < गुदड़ी। परारा 5 पार रहित। अहिरख सर्पमुख होकर। सुकृत > पुण्य । कुभारे € कुम्हार। वानी 5 वचन। वर्ण। माहि : मधि| मे। मुकुताहल मोती। मुगध मूर्ख। खिन * क्षण। निवेरा # फैसला हरिजन भक्त। सति 5 सत्य। भाणा 5 भाडा। शरीर। हृदव। चिरगट > टुकड़ा शरीर। चटारा 5 १ कपड़े का व्यापारी। २ चटसार का स्वामी अर्थात् गुरु। तरी : तली। नीचे का। पृथ्वी का। तागरी 5 (ताग + री) बधन।

परिशिष्ट पदो के शब्दार्थ ७४५ ४) कॉसा - राजसी वस्तुएँ। ताबा 5 ताम्र। तमाई | लौग सुपारी 5 रज, तम से सबद्ध & चीजे। खेप 9 व्यापारी का ढदा सामान। २ जन्म। निर्मोलक < अमूल्य| हाथ चढ़या 5 हाथ आया। पासारी 5 पसारी। फैलाने वाला। निहचल - स्थिर। पैडा ८ रास्ता या कदम | (४५) लहुरिया 5 छोटी। पि - पिड। दुहेरा 5 दुर्लभ। सुहागिन जीव | (४६) कसवही > रस। जतनि < यल। लक्खन - लक्षण। (४७) दिवाजा (दीप + अर्चा) 5 पूजा अर्चन। अनहद वाजा 5 अनाहतनाद। निवाजा ८ कृपा | (४८) कबिलास > कैछास। मर्दन 5 मालिश करना। चराक ८ चिराग। रोशनी। पाक भोजन। चौबारे १ बैठका। २ चारो ओर। प्रतिहार पहरेदार। बासक ८ वासुकि नाग। बिस्तरहि 5 फैलाते है। पनिहार पानी भरने वाला। अठारह भार ८ पेड़ो के प्रकार। खियत क्षेत्र पाठ। ताऊ 5 पिता का बड़ा भाई। काम। (४९) चीनी 5 चीन्हा। सूतै सूत मिलाये 5 कपंड़े के समान शरीर को कर्म सूत्रो से रचा है। कोरी 5 जुलाहा। भगवान। ताती - तन्तुवाय। जुलाहा। है (५०) भव निधि तरन तारन चितामणि 5 यह ससार मुक्ति का स्थान है। पिड ८ शरीर। अपवाद 5 निदा। फुनि 5 फिर। संग विषयो का साथ। हि 5 इस। धूत धूर्त | मतवारे 5 विषय मत्त। सुपनतरि +- सपने मे भी। भैहारी + भय या भव से मुक्त करने वाले। भीर ८ भीड़ । १) ठगौरी > ठगो की जड़ीया गठरी। (५२) रिदे + हृदय। अहमेव 5 अहम् एवं। पाथर की सेव « मूर्त्ति पूजा। भौढे भाव सामान्य भाव से।) सोई 5 परमात्मा। पतीजै 5 विश्वास करना | (५४) बिगसे ८ विकसित। परियारी 5 पक्ष करने वाली। माया। ठिठकी 5 ठिठकना। डरी। पिड पराइणि 5 पीछे पड़ना। त्रखि 5८ डरना। डाइणि 5 माया। भेव < भेद। बाहर परी 5 बाहर हो गयी। अंचल + क्षेत्र । छरी 5 लड़ती। (५५) गुसाइन स्वामी। खरे 5 खड़ा। शुद्ध।) सलिता 5 सरिता। पानी। अन 5 अन्यत्र। ५७) गगन नगरि ८ सहसार मे। नाद 5 अनाहत नाद। देही 5 आत्मा। बाबा 5 जीव। सुरति माहि # ध्यान। स्मृति। निरते ८ निरतर प्रेम। नृत्य। बजावन हारो 5 शरीर बाजे को बजाने वाली चैतन्यात्मा। मदर 5 मदिर। शरीर। पच दूत < पॉच इद्रियाँ। हर * हाथी सा मत्त। मन। तेज 5 प्रभु की तेजस्विता। दसै बद 5 दस इंद्रियाँ। (५८) गगन > सहस्तार। रसारू < रस स्थान। काठी 5 लकड़ी। विषय रस रहित। सहज कलालिनि 5 सहज साधना रूपी कलालिनि। अनदिन >सदा। निरजन - परमात्मा | (५९) नव गज - दो कान, दो आँखे, दो नासिका छिद्र, मुख, गुरा, लिग। दस गज > नौ + ब्रह्म रंप्र। इक्कीस पुरी > चौदह भुवन, सात द्वीप॥ कत > कितने। नाई > नाम। नव खड - भारत, इलावृत, कि पुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य, कुश। बहत्तर पाटी 5 शरीर की बहत्तर ग्रथियाँ। माहो 5 अहम्। गई बुनावन माहो 5 अहमू ससार। वस्त्र बुनता है। जुलाहो « चैतन्यात्मा। छोड्या जाइ - शरीर या ससार छोड़ रहा है। गजी न मिनियै 5 गज से नापा नही जा सकता है। तोलि न अं फजकनननती

तुलिये + तोछा नही जा सकता है। पॉच न सेर अढ़ाई # आधा अधूरा नहीं, पूर्ण। पाचन 5 साधना। बरकस - जवर्दश्ती। कत & कहाँ। कुडे 5 शरीर। पुरिया « शरीर। रिसाईं 5 कुद्ध होकर। नी & ढरकी के भीतर की नली। शरीर। तंतु « तत्त्व। टही 5 टहनी। इच्छाएँ। धौतिया ८ धौती। तग्गा 5 जनेऊ। वग्गा 5 चल्गा। आखि - कहता है। डाला ढेला। वासन - वर्त्तन। काठी 5 लकड़ी। माणस - मनुष्य | अपरस - रस हीन।| बिदु - वीर्य। उतपाती > उत्त्ति। शूद ८ शूद्र | अवधु 5 अग्पत। दुइ पुर 5 लोक-परछोक। रसाई 5 रस पैदा की। चुआई। प्रगास प्रकाश। मॉह 5 मुझे। फेड़ 5 फिर। ढूके + छिपे। अभिउ 5 अभय। आपा पद 5 आत्म पद। उदय अस्त & जन्म-मरण। नासी 5 नष्ट हुईं। विगराना 5 अलग होना । सिमरहि > स्मरण करते है। मानस - मनुष्य | योनी वाट & जन्म | बीठुछा 5 विट्ठल भगवान। अनिक 5 अनेक। नीका 5 ठीक। निर्मोल & अमूल्य। मीका 5 मात्रा । परिमाण | सम > वरावर। सरि 5 ऊँचा। श्रेष्ठ | खूधे > खोदना। पबीत - पवित्र। त्रै - तीन भवन। तीन छोक। विधवारि ८ विधवा। पॉच नारद & पाच विषय । मिटवे * मित्रता। फूटे - छूटे। आदेस 5 नमस्कार। अलेखु 5 अरक्ष्य | रिदे > हृदय। ओलै < ओट। ठैगा + ठोकर। बैठ 5 साधनाहीन जीव। विराने 5 पराया। कोदो 5 एक रद्दी अनन। भुस 5 भूसा। वन 5 विषय | महिया > मध्य। अनिक 5 अनेक। योनि जन्म | रतन जनम अमूल्य जन्म। तेलक के कपि - गांगेय पैठफ नामक राजा ने राजा मुज को गिरफ्तार कर बदर के समान द्वार-द्वार घुमाया। इसी की ओर सकेत जान पड़ता है। बिहे है 5 समाप्त होगा। गठिया > गॉठ का धान। मठिया < मठ। मेहरी 5 पत्नी। मरहट ८ मरघट। वैसु ८ वयस। उम्र | पाटन 5 पत्तन। नगर। उरबारि 5 उबरना। खिन 5 क्षण। तबोर 5 ताम्बूछ। पान। चोर 5 विषय या इद्रियाँ । कनिक > कनक। लिव 5 लौ। नुरू 5 नूर। चमक। तेज। कासी 5 १ कासा। एक धातु विशेष। २. शरीर। घटदहू घट 5 शरीर मे शरीर। स्थूल शरीर मे सूक्ष्म शरीर। सूत्रात्मा। किरम * कृमि। मुका 5 मुख। सठोरि 5 सट्टेवाज (?)। वरी > श्रेष्ठ। बड़ी। सुहेला + सुहद। नलनी भ्रम सूआ > नलनी पर बैठते ही सुग्गा उल्ट जाना है। दीवे > देह। तेल + शक्ति। वाती > चेतना प्रकाश। जोई - स्त्री। पी | सिघ < सिह। मन। माया। वन > विषयवन। स्यार 5 साधना। जीतौ > प्राप्त करने वाला। हारो > अप्राप्त। लिव 5 लौ। ध्यान। अपतह > प्रतिष्ठा रहित। पति - प्रतिष्ठा | परवानु & पहचान | डहकाई - जलाई। कामाग्नि पैदा की |“साकर माखी - मधुमक्खी। तुरे ८ तुरग। घोड़ा। उष्ट ऊँट। सिध 5 सिद्ध। छिय 5 छ। यती + सनकादि। बंदा ८ व्यक्ति। नवै नाथु नौ नाथ। पच दूता - इद्रियाँ। धरतेव + धरती वाढे। » सूतक 5 अशुद्धि। ओपति > उत्पत्ति। परज 5 प्रजा। पबीता 5 पवित्र। बैनहु 5

किकीकीकल | ."फ़ऊ़ .-.़_२5. >>. परिशिष्ट पदो के शब्दार्थ ७४७ वचन। अहा >-ये। तागा & जीवधागा। गगन - शून्य | ससार 5 सशय। निगम > वेद| ठाठा 5 प्रवाह। माया 5 १ मिट्टी का बर्त्तन। २ मक्खन निकाल दही। चेरी न साधिका। सेविका। तौक पट्टा | बेरी 5 बेड़ी। दोजक - नरक | चौदस < चतुर्दशी। कूपपरहि नीच कर्मो मे पड़ना। बनाहि ₹ बने। हमरे - हम | उबरे - मुक्त हुए। डूब मरहि 5 विषयो मे डूब कर नथ् होना। कस - क्यो। महतारी 5 माता। मुयो 5 मरा। मुचमुच पुन.-पुन । कीन 5 कैसे। भुज 5 ढंबा हाथ। कुबज - कुब्जा। ताजा -त्रस्त| डरना। सहजै मरै 5 सहज साधना मे विषय मुक्त होना। सिमरनि ८ स्मरण। निर्भव & अजन्मा। तूर ८ तूर्य। ननकारू & नकार। आवदन आना। पटबरि 5 पीताम्बर। पोह बधन। सासि 5 श्वास। गिरासि 5 ग्रास। पॉचो अमृत पॉच इद्रियो द्वारा पाँच विषयों का सेवन। हूकट 5 लुकाठ। आग। चचु ८ चोच। सबारहि > सम्हालना। हवाल > हाल दशा। सरजीव 5 सजीव | अकुल >- आकुढ |) अजन 5 भौतिक ससार। खीर 5 दूध। बजर 5 बज़। कल छेदी 5 काल को नष्ट करने वाली। अधेर 5 घटना। जेबड़ी 5 रस्सी बधन। निट्चढ़ू 5 निश्चछ। अटढ। दह +- दश | लिव > लौ। उनमन > विषय मुक्त ध्यानस्थ मन। अनुभौ - अनुभव | ब्रह्मी भाव। लोई < लोग। काछ छोह > काष्ठ एव लोहे की मूर्तियाँ जड़। बाझु 5 बिना। घाल अघाई > पूरा होना। सद 5 सत्य। बिहारया 5 व्यर्थ बना दिया। ठाहर 5 सगुण आधार। पूत < जीव। पिता > ब्रह्मा। जाया ८ पैदा किया। जाचक > साधक। दाता > भगवान। मूका 5 मुक्त। पंच सैछ 5 अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। हरना 5 मन। अवगत - अविज्ञात। खेतै > क्षेत्र। हलहर 5 हलहुघर। किसान। परोइयै - णिरोना। जाइयै - जानना या जाना। कपर < कपाल था कपड़ा। अपसार < अपसरण। निकलना। घोर 5 घोल। दुह्मगनि ८ कष्ट | जोइ > स््री। माया) जाया > पैदा किया। पूत & जीवन। बाप > ब्रह्म । खीर ज्ञानामृत। भाऊ 5 भाव। मुकलढाई - विवाह किया। माऊ 5 माता। पग्गा 5 पैदा। हुरिया - सिह। विषय। खिन खिन 5 क्षण क्षण। हासता ८ हँसता। बासन ८ वर्ततन। खीर - ज्ञानामृत। अस्थन ८ स्थान। गऊल + इद्रियाँ। बेरी - बाड़ा। सद > सल | परमनु > परम तत्त्व| कहाही 5 कहाँ है। हाही 5 है। आहि - है| घाल + घात। अजाई > व्यर्थ। अघु 5 अज्ञानी। फघु - बधन। निहफल > व्यर्थ। फोकट - मुफ्त। सेइ 5 सेवा। साकत > शाक्त | गावार 5 गँवार। भाइ > भाव। घर घाले - जीवन को नष्ट किया। दूजै माइ ८ परमात्म भिन्न भाव से। तागा 5 नसे। नाचना 5 जीवन धारण | मदरिया मदिर | पूरा > पूर्ण ब्रह्म। सोधी - वह। कपि के कर मुद्टि > बदर की मुट्ठी जो छोभ के कारण सकरे बर्त्तन मे फेंसी है। गरहि परयो > गंढे पड़ा। फेंस गए। प्राउ 5 प्राण।' सुगध। हयो 5 मारा। औध

छ४८ (१०३) (१०४) (१०५) (१०६) कबीर समग्र ढेर। तिन 5 तृण। चुह 5 चारो। गजि 5 गरज कर। जन + १ परमात्मा। २ जीवन। शरीर। बनारस ८ शरीर| ससार। मगहर > मग, आवागमन हरने वाला स्थान। साधक शरीर या मार्ग | केंचुआ - कच्चा। नाशवान् | चार अचार 5 १ चार पुरुषार्थ। २ आचार विचार। दीवान ८ दीवनगी। औध-अवधि। जीवन । खिघा 5 कथा। गुदरी। आधारी 5 योगियो का एक आधार। यह छकड़ी 'का बना होता है। भाई 5 भाव। (१०७) रैनी 5 रण। युद्ध। पाचौ तत्व 5 पच महाभूत। तिह 5 उस मे। रेंगराती « (५०८) (१०९) (१ 9 ०) (१११) (११२) (११३) (११४) (११६) (११७) (१२०) (१२१) (१२२) (१२३) (१ २४) अनुरक्त। जाना 5 १ ज्ञानी। २ जाना होगा। नाशवानू। ३ यान। तरवर 5 १ सृष्टि। २. कुडलिनी। बाड़ी > वाटिका। भवर 5 साधक। पुहुप रस ८ परमात्म या आत्म तत्त्व। वारह 5 १ दश इद्रियाँ, मन और बुद्धि। २ द्वादश कमल। सोरह 5 सोलह। दस इटद्रियाँ, पाँच प्राण, एक मन। पवन झकोरयो 5 पवन साधना। प्राणायाम। अकाशे 5 सहस्ार। शून्य 5 आकाश। सहयार। विरवा « ज्ञन। कुडलिनी जागरण। धरती > मूलाधार चक्र। जरूधर 5 आकाश। ताग 5 शरीर ततु। ससार मोह। निखुटी पानि & विषय प्रवाह समाप्त। द्वार 5 मन। झिलिकावहि 5 झलकाता है। कान 5 कृष्ण। कूच > प्रस्थान। फूए - स्फुरित हुए। फाल - फासला। डग। मुडिया १ मुडित। जीव २ माया। सगलो सपूर्ण | द्रव - सपत्ति। तुरी # तू री। चारि 5 माया। अनुदिन 5 अनुदिन। सदा। साथरु « साथरी। एक प्रकार का विछावन। पलोसि 5 धोना। चाबन 5 चबेना। भजि « भागकर।| छोड़कर | परसाद प्रसाद। कृपा। रादे 5 रद्द किया। काणि 5 परवाह। मगहर - साधना हीन शरीर। कासी 5 साधकदेह। बाला 5 साधक। भवर 5 १ भ्रमण। २ काले केश। ३ युवावस्था। करबै करवा। मन। रलिया 5 मिलना। बाझ - बॉझ। इह कथा सिरानी 5 इस छोक की जन्म-कर्म कधा समाप्त। काय उड़ावत > प्रिय की आशा मे। जरा > वृद्धता। हाक 5 आवाज। तिसे 5 १ उसे। २ प्यास। सरेवहु 5 १ श्रवण करो। २ स्रवित होता। पासा & शतरज। ढालि जु जानहि पासा 5 जो शतरज खेलना या साधना जानते है। बिप्प>विप्र। जयदेव 5 एक भक्त। नामा 5 महाराष्ट्र के एक भक्त | चारि पदारथ > चार पुरुषार्थ | आपा > आत्मा। बेगल > वेकार | बाजीगर 5 १. परमात्मा। २ माया। बेदार 5 जाग्रत। सावधान। चेतू + चेतना। खेतहि < शरीर रहते। निबेरा 5 निपटारा। सादि > १ स्वाद। २ साथ। रडा 5 ज्ञानी। दूधधारी < दूध पर जीने वाढे। गुप्ती चुपचाप। बटिका - रोटी। आतम राम > आत्मा तत्त्व। गग्या न गया। काई 5 कभी। बिदु वीर्य । खुसरो बधिया | तूला ८ रुई। पूछा 5 गददर। सपै > सपत्ति। दर ८ दरवाजा। द्वार।

नाइक > जीवाता। बनजरै पाँच + इद्रियाँ। बरध पच्चीस ८ कक तत्‍्व। काच 5 कच्चा। नव बहिया 5 नौ इद्रियाँ। दस गोनी 5 नव , एक मन। कसन बहत्तरि 5 ७२ नाड़ियाँ। ब्याज 5 पुण्य। सत्तु 5 सत्त्व। बनजु * व्यापार! भावहिनी 5 भाव करने वाढी। तीनि 5 गुण। टॉडो - व्यापारी का खेप। शरीर | सरसी - पूरा होगा। ओदासी > उदासी| खाती+१ खतना किया हुआ। मुसलमान। २ क्षत्रिय। पति ८ परमाला। असु 5 अश। कागर 5 शरीर। आत्मा। मसु 5 मास। | ढीपत - सकाम कर्म करते। ताना बाना 5 शरीर कर्म। जिठानी 5 माया। दिरानी देवरानी 5 वासना। सात सूत 5 योग के सात साधन-शोधन, दृढ़ता, स्थैर्य, थैर्य, लाघव, प्रत्यक्ष, निर्लिप्त। पैज > प्रतिज्ञा। सरधन - अ्रद्धा। ईश्वर। खर - गदहा। अविर्था 5 व्यर्थ। बिपास 5 व्यास। सुक शुकदेव। रमि 5 रमणकर। (१३३) खीजै € रमण करना। कागा कारे 5 कुप्रवृत्तियाँ। (१३५) पिछौरी 5 बाद की। छोगो 5 लगता है। पाई >पैर। जाल 5 ससार| मछली > मन | (१३६) (१३७) (१३८) (१३९) (१४०) (१४२) (१४३) आत्मा। तरवर > ब्रह्मरक्ष। सिह 5 साधक मन। गाई & माया। तले - मूलाधार चक्र। ऊपर 5 आकाश। सहय्ार। सूला & शून्य। छगै फल फूला - मुक्ति या प्रभु प्रीति का फूछ छगना। चरि चढ़। घोड़े चढ़- इद्रिणे पर विजय कर। भैसे विषय | बैल < मन। बिछू - विश्व। साहुर 5 साधु। खरी 5 चिता। बरी > बड़ी। लहुरी + भविति। जेठी < माया। पाहन - मूर्ति। पाउ 5 पॉव। पहिनि 5 पकी दाल। छापसी 5 हलुआ। करकराका - गरमा कर। सारु ८ घृत। हारे 5 वाले। पानी मैली - विषय जल। माटी गोरी 5 शरीर या पचमहाभूत। मै > आत्मा। आहि है। गगरिया 5 शरीर। नीवी 5 आत्मा। नीव। बिसाहे 5 बेचना। गूणि 5 बोरा। रस्सी। टॉड व्यापार। बजारा 5 व्यापारी। जगाती 5 कर वसूलने वाला। ठाडा > टॉड। व्यापारी का माल। बैल < शरीर। गेंगे - गूँगा। साकर'- शक्‍्कर। खना 5 मरण। गगा जमुना 5 इगड़ा पिगला। लोचा + लाढच। अप 5 जढ। तैज 5 आग। पथवी - भूमि। साहुरडे - ससुराह। एयाणा 5 अज्ञानी। इंडिया 5 छकीरनुमा छीट की साड़ी। बॉघे < पहने। धन > घन्या। मूकलाऊ विवाहार्थ। खूरड़ी 5 खुरवाली। उटि 5 १. उटग। २ उठि। पनिहारी & कुडलिनी। किरत > कीर्ति। आखिये > आख्यान। बघी 5 बधी। सडैमरक - मोटे को। फील > हाथी। मन। खाबी - रबाब सरोद और सारगी के बीच का बाजा है। इसमे चार तार होते है। इसे बजाने वाढा। बलुद + बैल। लोभ बुद्धि। पखावज - मृदग | कौआ * चचल वृत्तियों। चोला वस्र। शरीर। गदहा - अज्ञानी जीव। भैसा विषय ग्रस्त मन। करिया 5 १. पतवार। २ कर्म। बरपे 5 आरंभ हुआ। काये « शरीर। दूझनन 5 जलाने वाढे। विषयाग्नि। सिह 5 अहकार। घीस 5 बड़ा चूहा। मुसरी 5 चुहिया। कन्निया 5 कन्या। नववधू। माया। सती > खरगोश। मन | कीटी > कीड़ा। साधक मन। परबत - पहाड़ सी माया या वासना।

७५० कबीर समग्र (१४४) फुरमान 5 फरमान। आज्ञा। करिया 5 नाविक। (१४५) गुरु गुरु। मजनू - एक प्रसिद्ध प्रेमी। मिसु ७ वहाना। उल्टी - प्रवृत्तियो को उल्टने की साधना। सकति सासारिकता। मझार 5 मध्य। चक्र > छः चक्र। भुअगा > कुडलिनी का जागरणहीन रूप। राइन - राजनि। प्रभु। गिरासा। ससि सूर # इडा पिगला नाड़ियाँ। कुभ 5 शरीर। कुभरि 5 भरा। माह 5 तत्त्व। करि ८ साधना कर्म। सार 5 मूल बात | बटुआ 5 शरीर। वहत्तरि आधारी > वहत्तर नाडियॉ। जिसहि 5 १. वस्तु। २ जैसा। दुवारा 5 दूसरा। तहू 5 मूलाधार। ब्रह्म 5 कुडलिनी। गगन ८ सहसम़ार। चरावै 5 चढावै। खिथा 5 व्यर्थ। मिरगाणी 5 १. मृगो के रहने का स्थान। जहाँ मन मृग का निवास है। २. मिरजई। फाहुरी 5 फाहा। दृष्टि विचार। रिद ८ हृदय। ताड़ी 5 तार। लगाव | जोगत्तण 5 योगो मे उत्तम। पराना > प्राण। (१४७) पूरे - पूर्ण। खहु 5 रमहु। टुकु 5 थोड़ा। विडानु & घूमना। परवानु - प्रामाणिक। अतरगति - हृदय मे। (१४८) स्यावै 5 बढाता है। ओक - घर । (१४९) बात 5 वत्ती। निखूटा 5 समाप्त हुआ। नट & जीव। गावन भाषा। विषयगान। पच जो चूरे ८ पाँच चोर। पाँच इद्रियाँ। (१५०) बाप 5 गुरु। परमात्मा। माई 5 माया। सुखाला 5 सुखी। दगलढी < भारी लवादा। शरीर। पाला 5 ससार विषय। पचा ८ पॉच विषय। पावा 5 पैर। ढहरि ८ ठहरने का स्थान। आत्मा परमात्मा का स्थान एक है। दुह्ा + कठिन | (१५१) साझर - हिस्सेदार। साखी 5 साक्षी। भुजव 5 बॉहो मे। सूके 5 सूखे। पालि « रा लूणे + कटे। असार 5 लगातार। ढाहा & ढछाभ।| नालि 5 १. साथ। २ न अढि। (१५२)- वावन अक्षर 5 नागरी लिपि मे वावन अक्षर होते हैं। इन्हीं अक्षरों से तीनो छोको की कथा लिखी जाती है। खिरि 5 खुरचना। लिखना। बोढ सगुण। अबोल * निर्गण। सोई - प्रभु। अल्ह - अप्राप्त। रवि 5 रमि। मेट्या + नाश। सपट + सपुट। दह 5 दश। अकह अकथनी। खोड़ि > खोट। खिसा * अहंग। निमसे 5 निवास | सुमेर 5 एक पर्वत। स्मरण। रणि 5 रण में। रुतो 5 ऋतु। नानि ८ ज्ञान। बैना 5 वचन। थाहर - स्थावर। दसवैद्वार 5 दस इद्रियाँ। रतवाई 5 अनुरक्त। फक ल फाँक। अल्ह & अलभ्य। चरन समावै 5 भगवत्शरण मे जाना। समारि 5 स्मरण । भाउ 5 भाव। तह 5 तहाँ। पछानि - पहिचान। (१५३) पिड 5 शरीर। झोट > केश | सासा ८ श्वास | (१५४) कु मूर्ति। कबता > कवि। दारै ८ दले जाते है। बिगूते - नष्ट हुए। जेबरा ८ जबर्दश्त | (१५५) चीसा 5 चिग्घाड़। पाट 5 वस््र। पोटलै 5 गठरी। अलियारै ८ झूठ। पतिया ८ विश्वास। चौथे पद > मुक्ति | पतीना > विश्वास करना। जिंद 5 जीवन। (१५६) चूना 5 आटठा। खींधा 5 गूदड़ी। किबला 5 मक्का। (१५७) मिसमिल (बिस्मिल्लाह) - ईश्वर का नाम कार्यारभ के समय। कह र क्या। (१५९) डॉडि - टेक। सिधोरा ८ सिदूर रखने की डिबिया। बिगूचा 5 नष्ट हुआ। सगढ ८ "कान, (१४६ 'पिराानभी, सकले। (१६०) सूचा 5 सत्य। बैसि + बैठकर। करछी - परोसने वाला वर्त्तन।

(१६१) आपन रगि आत्मरग। भाण 5 कहा। किलविष पाप। (१६२) निहफल - निष्फ। दरगह - दरबार | े (१६४) जहू - विषय जढ। खीन ₹ क्षीण। सुअटा सुग्गा। मंजरा ८ बिल्लिी। (१६५) सिंगी 5 एक बाजा। किंगुरी 5 बाजा। मताड़ी 5 विचार। (१६६) बेही - छेद। (१६७) धुधरवा धीरे-धीरे धुओं किया | (१७०) उपाधि -उपद्रव |अपि 5 स्वय। अवर 5 अपर। (१७२) लुजित मुजित 5 जैनी एव मूज पहनने वाढे। जमना 5 यम | (१७९) परवार 5 परिवार। (१८२) कवरूय ८ नील कमर। (१८३) बिरख > वृक्ष। पखि 5 पक्षी। (१८५) बैसतर 5 अग्नि। (१९१) इफतरा 5 अधिक। टुक दम 5 थोड़ा थैर्य। दस्तगीरी + सहायता देने वाढा। दरोग - झूठ। बखबर - बेखबर। बार 5 व्यर्थ। हक 5 उचित। खालक सृष्िकिर्त्ता | खलक - सृष्टि। ससार। छहग 5 चमकदार। दरिया 5 नदी। गुसढ 5 स्नान। करद ल सहायक। बूद 5 अस्तित्व | दाइम < नित्य। चसमे 5 दृष्टि। छोटी नदी। (१९२) कतेब 5 कुरान। बिसमिल ८ खुदानाम। उज्जु & नमाज पूर्व हाथ पैर धोना। मैहि # मे | भिस्त * स्वर्ग। दोजक + नरक। (१९३) सिमृति 5 स्पृति। फाधि 5 फदे मे। (१९४) सियाने 5 बुद्धिमान। राग रगनी 5 मोह। डिभ 5 जन्म के साथ। खलासे - शुद्ध । (१९५) षट नेम 5 स्नान, सधघ्या, पूजा, तर्पण, जप, होम। कोठड़ी 5 शरीर । का नव ताला। पच पहुरुआ - इद्रियाँ। पतियारा - विश्वास) नवघर - नया घर। नौ इद्रियो वाला घर। दसबे > ब्रह्म । (१९६) मष्ट 5 चुप। झकमारी 5 व्यर्थ की समय बर्बादी। छूछा 5 परमात्म अनुभूतिरहित। भरिया परमात्मा की अनुभूति से पूर्ण। (१९७) मिरग 5 मृग। मन। दरवाजे 5 इद्रियाँ। (२००) इसलारु 5 स्वार्थ त्यागी। कावर 5 कॉवर या बहँगी ढोने वाठा। खासी 5 अपना। बजगारी - बदकारी। अनुचित। पनह - फनाह। (२०३) पगारा 5 पद चिह्न। (२०४) सर्पनी 5 माया। वासना। (२०६) सासु 5 कुबुद्धि। ससुर 5 सांसारिक देवता। जेठ > काम। सखी सहेली > वासनाएँ | ननद - माया। गहीली > गर्वीली। देवर 5 राग। सेजै > हृदय। बाप परमात्मा। सबका (< साबिक) > पहले का। सद 5 आदत । बड़े माई < काम। सज सयम | नाह - नाथ। प्रभुपति। पंच - इद्रियाँ पॉच। बैस - बैठ| सारु > सार। मूल बुद्धि। मूल दुआरे मूलाधार। रवि > पिगला। चंद्ु > इड़ा। पंचम द्वारे + विशुद्ध चक्र। सिठ ओड दीर्घ जीवन । यह चक्र मनुष्य की दीर्घ जीवी बनाता है। खिड़की और - आज्ञा चक्र। यह चक्र विशुद्ध चक्र से ऊपर है। दसवा द्वार > ब्रह्मरंघ्र। (२०९) जननी 5 परमात्मा | बारिक - बालक। (२१०) पचे - पद प्राणो मे। (२०७)

छण्२ कबीर समग्र (२११) खिया - गुदड़ी। शरीर। सुन्त गुफा 5 सहस्तार। आसन वैसण 5 ध्यान। कप्प « (२१ (२१ (२१ (२१ (२१ (२१ २) ३) ४) ५) ६) ७)) कल्प। विवर्जित - परिवर्तन रहित। राजन 5 परमात्मा। साग 5 शाक। बिजोरी « वीज। सिडी 5 श्रगी। एक बाजा। भसमाधारी ८ भस्म का आधार। ताड़ी 5 ध्यान। त्रिपल 5 ज्ञान नेत्र | त्रिकुटी। पसारी 5 ससार का विस्तार। सारद 5 सरोद बाजा। थिरु & स्थिर। नती 5 तत्री। नसे। मनगन 5 मग्न। सुनि मनगन 5 शून्य मे ध्यानस्थ। सुरह 5 १ सरभी। गाय। २ इद्रिय। पूछट 5 मूलाधार | पूछने पर। सुतू > सो तू। चाकी 5 अनाज की ढेरी। साधना कर्म। चून न आय। चाकी - इकट्ठी। विषयो की ढेरी। छीके - ऊर्ध्व मन स्थिति। लकरी सोया 5 साधारण कर्म। पीठ > स्थान। ईट ठेम > इस स्थान पर जुरे 5 युद्ध करे। दुदर 5 इन्द्र । दुविधा | मुदर 5 १ कुडढ। २ प्रभु कृपा। विदु वीर्य | जरना 5 नष्ट होना। दुइ सुर 5 १ इड़ा पिगला। २. इहलोक परढोक। बाहर जाता 5 प्रवृत्तियाँ। वाछियै 5 बचेगा। वारिये 5 वारण या वर्जित होगा। सपरै 5 सपत्ति। गोमती 5 १ एक नदी। २ इद्रियो को वश मे करना। पीतवर > श्री कृष्ण। खवासी 5 सेवकाई। कवला - हक्ष्मी | गोरु 5 जानवर। गुसाइ > स्वामी। पाचे 5 पचते हो। पीछे हो। मसकीन - दीन। अवि > श्रेष्ठ | गुजारै - प्रार्थना करना। भिस्त > विहिश्त स्वर्ग, अकलहि > पूर्ण। पॉचहु पॉच विषयो। मुसछा ८ सपूर्ण। मणी < मन। (२१८) विसासा 5 विश्वास। भांडे - शरीर। नकु थोड़ा भी। ठनका 5 १ चोट। २ टूटा। सगल 5 सकछ। (२१९) वाहज 5 वाहक। चुरु ८ चुल्लू। (२२०) कवादे 5 नियम | बदौगा > वद्ध हूँगा। (२२१) हीरे 5 आत्मा। परमतत्त्व। (२२२) अठ सठि 5 अड़सठ। कौरापन 5 कुमारावस्था। साधनाहीनता |

महाकवि रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रशंसित रचनाएँ मोंको कहाँ ढूँढे बन्दे, मैं तो तेरे पासमें। ना मै देवल ना मै मसजिद, ना काबे कैलासमे) ना तो काउन क्रिया-कर्ममे, नहीं जोग-वैरागमें । ना मैं छगरी ना मैं भेंडी ना मैं छूरी गैंड्रासमें। नही खालमें नहीं पूँछमे ना हड्डी ना मॉसमें ॥ मैं तो रहो सहरके बाहर मेरी पुरी मवासमें। खोजी होय तो तुरतै मिलिहीं, पल-भरकी तालासमें। कहे कबीर सुनो भाई साधो, सद सौंसन की सौंस में। टिप्पणी-भगवान् मदिर, मस्जिद बाहरी क्रिया-कर्म या योग वैराग्य से नही मिलते। वे मनुष्य के भीतर वर्तमान है। वही उन्हे पाया जा सकता है।..' सन्तन जात न पूछो निरगुनियों। साध बाभन साध उत्तरी, साथै जाती बनियाँ। साधनमाँ छत्तीस कौम है, टेटी तोर पुछनियाँ। साथै नाऊ साथे धोबी, साध जाति है बरियाँ। साधनमाँ रेदास सन्त हैं, सुपथ ऋषि सो भेंगियोँ। ' हिन्दु-तुर्क दुइ दीन बने है, कछू नहीं पहचनियाँ। टिप्पणी-पुछनियों > पूछना, प्रश्न करना। सुपच ऋषि > श्वपच सुर्दशन। यज्ञसागर, उग्रगीता, कबीर मन्सूर आदि कबीरपथी ग्रथो मे कहा है कि कलियुग के आरंभ मे जब कबीरसाहब इस पृथ्वी पर प्रकट हुए थे तो काशी के भगी सुदर्शन नामक महात्मा ने उनसे दीक्षा ली थी। युधिष्ठिर ने महाभारत की लड़ाई के बाद भ्रातृहत्या के पाप से उद्धार पाने के लिए एक यज्ञ किया। श्रीकृष्ण ने इस यज्ञ मे एक घटा बॉध दिया। जब घटा सात बार बजे तभी पाप छूटेगा, ऐसा सकेत किया। हजारो ब्राह्मण और साधु भोजन कर चुके पर घटा नहीं बजा, तब श्रीकृष्ण के, कहने पर भीम काशी के दुदर्शन भगी को लाने गये। भीम के अह के कारण सुदर्शन ने जाना स्वीकार नही किया। तब स्वय युधिष्ठिर ने जाकर उन्हे ले आए और भोजन कराया। उनके भोजन करने पर ही घटा बजा। प्रयाग क्षेत्र मे श्रीकृष्ण के कहने से सब लोग गए। वहाँ जल मे सबने अपनी छाया देखी। केवल सुदर्शन की छाया मनुष्य की थी, बाकी सबकी कुत्ते आदि निकृष्ट जीवो की। भैंगिया ८ भगी। दीन - धर्म। पहिचानियोँ - भेद, पहचान, विशेषता। साधुकी जाति पूँछना बेकार है। बरियों > बारी | लाखन जाति जगत माँ फैली कालको फंद पसारियाँ। साधो भाई, जीवत ही करो आसा। ह जीवत समझे जीवत बूझे, जीवत मुकुतिनिवासा। जीवत करमकी फाँस न काटी, मुये मुक्तिकी आसा। _ 0७53

छप्ड कवीर समग्र अबहूँ मिला तो तबहुँ मिलेगा, नहि तो जमपुर बासा। सत्त गहे सतगुरुको चीन्हें, सत्त-नाम विसवासा। कहे कबीर साधन हितकारी, हम साधन के दासा। सब सन््तनमां सन्त बड़े है सबद रूप जिन देहियों। कहें कबीर सुनो भाई साधो सत्तरूप बहि जनियाँ। करम की फॉस > काल का फदा पसारा हुआ है। सत्तनमाँ 5 सत्वों मे। सब्दरूप जिन देहियाँ - जिनकी देह शब्दरूप है। सत्तरूप वही जनियॉ 5 उन्हे सत्य पुरुष का रूप ही समझो। बागों ना जा रे ना जा, तेरी काया में गुलजार । सहस-कँवलपरबैठके तू देखे रूप अपार॥ टिप्पणी-बगीचे का सौदर्य देखने के लिए किसी बाहरी उपवन मे जाने की जरूरत नहीं है, शरीर मे ही फूल खिले हैं। शरीर के भीतर जो सहस्र दलका कमल है (सहस्रार चक्र) उसी पर बैठकर अर्थात् समाधि के द्वारा प्रभु के अपार रूप को देख | बागों ना जा रे ना जा, तेरी कायामे गुलजार। करनी-क्यारी बोड कर तू रहनी करु रखवार॥ दुर्मति काग उड़ाइ के देखे अजब बहार। मन माली परबोधिए करि संजमकी बार। दया पौद सूखे नहीं छिमा सींच जल ढार॥ गुल और चमनके बीचमें फूला अजब गुलाब । मुक्ति कली सतमालकी पहिरु गूँघि गलहार॥ अष्ट कमलसे ऊपजे लीला अगम अपार। कहै कबीर घित चेतके आवागमन निवार॥ | इस पद मे वाग का सागरूपक है। इस बगीचे मे करनी क्यारी है, रहनी रखवाला है। दुर्मति कौआ वगीचे को दूषित करने वाला है। मन माली, सयम बेड़ा, दया पौधा, क्षमा सींचने का जल है। चमन स्पष्ट ही शरीर है, गुल सहस्र्ार है और इन दोनो के बीच खिला हुआ अद्भुत गुलाब समाधि है। मुक्ति कली के सत्य नाम की माला गूँथी जा सकती है। अवधू, माया तजी न जाई। गिरह तजके बस्तर बॉधा, बस्तर तजके फेरी॥ काम-तजेते क्रोध न जाई, क्रोध तजेते लोभा। लोभ तजे अहंकार न जाई, मान-बड़ाई सोभा॥ मन बैरागी माया त्यागी, शब्दमे सुरत समाई।

महाकवि रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रशसित रचनाएँ छप्प् कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह गम बिरले पाई॥ टिप्पणी-हे अवधू, माया छोड़ना कठिन है। गृह छोड़ा तो भेष धारण किया और अब भ्रेष छोड़ा तो फेरी कर भीख मॉगने लगे। गम - ज्ञान । चंदा झलके यहि घटमाही। अंधी आँखिन सूझे नाहीं ॥ यहि घट चंदा यदि घट सूर। यहि घट गाजै अनहद तूर॥ यहि घट बाजै तबल-निसान । बहिरा सबद सुने नहि कान ॥ जब लग मेरी मेरी करै। तब लग काज एकौ नहि सरे॥ जब मेरी ममता मर जाय। तब प्रभु काज सेवारे आय ॥ जद लगि सिघ रहे बनमांहि। तब लगि वह बन फूल नाहि॥ उलट स्थार सिहको खाय। तब वह बन फूल हरियाय॥ ज्ञानके कारण करम कमाय। होय ज्ञान तब करम नसाय | फल कारन फूल बनराय। फल लागे पर फूल सुखाय॥ भृगा पास कस्तूरी बास। आप न खोजै खोजे छ(स॥ टिप्पणी-इसी शरीर मे वे सभी ज्योतियों और सभी मगलवाद्य वर्तमान है जो बाह्य जगत में दीखते है। इसी मे वह विश्वव्यापी अनाहत ध्वनि भी .हो रही है। परन्तु जिसके भीतर की आँखे नहीं है वह इस ज्योति को नही देख पाता। जब तक ममता बनी रहती है तब तक कोई काम नही निकलता। ममता के नष्ट होने पर भगवान् सहायता करते है | फिर तो बिगड़ा काम बन जाता है। ज्ञान होने पर कर्म बधन नष्ट हो जाता है, जिस प्रकार फल के बाद फूल सूख ज़ाता है। किन्तु जिस प्रकार फल के लिये ही वृक्ष फूलता है उसी प्रकार ज्ञान के लिये ही साधक कर्म किये जाते है। जिस प्रकार कस्तूरी मृग कस्तूरी अपने मे खोजता, घास मे खोजता है। उसी प्रकार मनुष्य के भीतर ही परम सत्य वर्तमान है पर अज्ञान के कारण वह विषयों के पीछे पीछे भागता फिरता है। अपने भीतर के सत्य को नही खोजता है। चंद्र, सूर्य, अनाहतनाद आदि शब्द पारिभाषिक भी है। सन्त कहते हैं कि जो कुछ ब्रह्माण्ड मे है वही पिण्ड मे है। घट का अर्थ शरीर है। ; साधो, ब्रह्म अलख लखाया। जब आप आप दरसाया ॥ बीज-मद्द ज्यों वृष्छा दरसे, बुच्छा मद्े छाया ॥ ज्यो नभ-मद्धे सुन्न देखिये, सुन्त अनन्त आकारा। निःअच्छरते अच्छर तैसे अच्छर छर बिस्तारा॥ ज्यो रवि-मद्धे किरन देखिये, किरन-मद्ध परगासा॥ परमातम मे जीव ब्रह्म इमि, जीव-मद्ध तिमि स्वॉसा॥ स्वॉसा-मद्दे शब्द देखिये, अर्थ शब्दके माहीं। ब्रह्मयते जीव जीवते मन यों, न्यारा पिला सदा ही॥ . आपहि बृष्छ बीज अंकूरा, आप फूल-फल छाया। पा करनकममकत-ा त..........0...0..

छ्५्द्द कबीर समग्र आपहि सूर किरन परकासा, आप ब्रह्म जिउ माया॥ अनन्ताकार सुन्न नम आपै, मन जीव ब्रह्म समाया॥ आतम में परमातम दरसे, परमातम में झोँई। झँई में परछाई दरसे, लखे कबीरा साई ॥ टिप्पणी-ब्रह्म ही इस जगत का एक मात्र कारण है और आत्मा से अभिन्न है। वीज से ही वृक्ष है। वृक्ष को छोड़कर छाया नही रह सकती उसी प्रकार ब्रह्म का रूप यह जगत है। माया अलग सत्ता नही रखती। अलख अर्थात् इद्रियातीत, जिसे ऑख आदि इद्रियो से देखा न जा सके। सुन्न - शून्य, आकाश समस्त आकाश महाकाश मे ही वर्तमान है उसी प्रकार जो कुछ भी अनन्त वस्तुएँ दीख रही है वे ब्रह्म का अग है। अच्छर > अक्षर। कूटस्थ जीवात्मा | वेदान्त के अनुसार अविद्या मे चेतन का आभास पड़ता है उस अविद्याच्छन्न चेतन को कूटस्थ कहते है। कूटस्थ और जीव मे भेद यह है कि कूटस्थ अविद्या से अवक्न्न सिर्फ चेतनमात्र को कहते है। जब यह चेतन के आभास और वुद्धि से युक्त होता है तो इसे जीव कहते हैं। सुख दुख की अनुभूति जीव को ही होती है। गीता मे भगवान ने कहा है कि मै क्षर और अक्षर से अतीत हूँ। यहाँ नि अक्षर से इसी क्षर और- अक्षर से अतीत का तात्पर्य है। सूर्य मे जिस प्रकार किरण है और किरण मे प्रकाश है। किरण और प्रकाश अभिन्न है उसी प्रकार परमात्मा मे जीव और जीव तथा ब्रह्म अभिन्न है। जीव मे प्राण है, प्राण मे शब्द है और शब्द मे अर्थ (पदार्थ) है| इस घट-अंतर बाग-बगीचे, इसी मे तिरजनहारा । इस घट-अंतर सात समुन्दर, इसीमें नो लख तारा ॥ इस घट अंतर पारस मोती, इसीमें परखनहारा। इस घट अन्तर अनहद गरजै, इसीमें उठत फुहारा। कहत कबीर सुनो भाई साधो, इसीमें साई हमारा ।। टिप्पणी-यह व्यक्ति के भीतर क विराट का वर्णन है | ऐसा लो नहीं तैसा लो, मैं केहि विधि कथी गेंभीरा लो। भीतर कहूँ तो जगमय लाजै, बाहर कहूँ तो झूठा लो॥ बाहर-भीतर सकल निरन्तर, चित-अधित दोउ पीठा लो । दिष्टि न मुष्टि न परगट अगोचर, बातन कहा न जाई लो॥ तोहिं मोरि लगन लगाये रे फकिरिया। सोबत ही मैं अपने मन्दिरमें, सब्दन मारि जगाये रे फकिरवा | बूड़त ही भवके सागरमें बहियों पकरि समुझाये रे फकिरबा। एके बचन बचन नहीं दूजा जे तुम मोसे बंद छुड़ाये रे फकिरवा।

महाकवि रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रशसित रचनाएँ ७५७ कहै कबीर सुनो भाई साधो, प्रानन प्रान लगाये रे फकिरवा। टिप्पणी-ऐ फकीर तूने ही मेरी लगन लगा दी। सोवत ही ₹ अज्ञान मे थी। सब्दन मारि । > शब्द सगीत की चोट से। 'सब्द' का अर्थ कबीर साहब वाणी है। जो पारखी गुरु होता है | उसे 'बदी छोड़' कहते है। कबीरदास 'बदी छोड़" रूप मे है। फकीर का अर्थ गुरु से है। । निस-दिन खेलत रही सखियन सँग, | मोहि बड़ा डर लागे। ४ भोरे साहबकी ऊँची अटठरिया, । ; चढ़तमे जियरा कॉँपे॥ ! जो सुख चहे तो लज्जा त्यागे, पियासे हिलमिल लागे।॥ घूँघट खोल अंग भर भेंदे, नैन आरती साजे॥ कहै कबीर सुनो सख्त मोरी, प्रेम होय सो जाने। ट्र जिन प्रीतमकी आस नही है, ' - ४ कीट नाहक काजर पारे॥ टिप्पणी-कबीर कहते है कि ऐ सखी, जिसमे प्रेम होता है वही प्रियको जानता है और उसे ही प्रिय प्यार करता है। बाहरी साज सिगार से क्या होता है। तू व्यर्थ काजल पार अर्थात् 7 श्ृगार का आयोजन कर रही है। बाहरी पूजा पाठ से भगवान् नहीं मिलते। . * «का हसा करो पुरातन बातू॥ कक कप तीर कोन देस से आया हसा, उतरना काने, घाट, कहाँ हंसा बिसराम किया है, कहाँ लगाये आस॥-]:# अबही हंसा चेत सबेह, घलो हमारे साथ। ० "हैसा 5 विशुद्ध चैतन्य। हियोँ. 5.यहाँ॥:मर्त्लोकु ।, मदन बन 5 विषय वन। सो5ह > ब्रह्म के साथ जीवकी अभिन्नता। मीडण ३5 फा, ॥्रंफिंए,उन फम पट ।5 परमेत्गाढ़िया देवा:क़ौन-करै तेरी सेवानेएः उलएर्शह फलपडाह बउ--गिगिर्ही गढ़े देवको सब क्ोइ-पूजै, (नित ही लावै सेदा [5::5-# : ऊँ पूरन ब्रह्म अंखडित स्वामी, ताको न जाने भेवा। क

 दस औतार निरंजन कहिए, सो अपना ना होई। यह तो अपनी करनी भोगै, कर्त्ता औरहि कोई। जोगी जती तपी संनन्‍्यासी, आप आपकें लड़ियौं। कहें कबीर सुनो भाई साधो, राग लखै सो तरियाँ। टिप्पणी-अनगढ़िया देवा 5 निर्गुण, निराकार ब्रह्म। गढ़े देव - मूर्ति, अवतार, मूर्ति हाथसे और अवतार मनसे गढ़े गए है। निरजन - निर्मुण ब्रह्म, ईश्वर। दरियावकी लहर दरिवाव है जी दरिया और लहरमे भिन्न कोयम्। उठे तो नीर है बैठे तो नीर है कहो जी दूसरा किस तरह होयम्॥ उसीका फेरके नाम लहर धरा लहरके कहे क्या नीर खोयम्। जक्त ही फेर सब जक्त परब्रह्मभे ज्ञान कर देख माल गोयम् ॥ टिप्पणी-समुद्र और उसकी तरगमे केवल नाम और रूपका भेद है। इसी प्रकार जगत् ब्रह्म है और ब्रह्म ही जगत् है। जक्त 5 जगतू। माल गोयम् < परब्रह्मभे एक जगतूके वाद दूसरा जगत् इस प्रकार चल रहा है। जैसे जयमालाके मनके चलते है | जहाँ खेलत बसन्त रितुराज जहाँ अनहद बाजा यजै बाज। चहुँदिसि जोतिकी बहै घार। बिरला जन कोइक उतरे पार। कोटि कृष्ण जहेँ जोड़े हाथ कोटि विष्णु जहेँ नावें माय। कोटिन ब्रह्मा पढ़े पुरान कोटि महेश धरे जहँ ध्यान ॥ कोटि सरस्वती जहें घरे राग कोटि इन्द्र जहँ गगन लाग। सुर-गंधर्व-मुनिगनैनजायें जहेँ साहब प्रगदे आप आय। चोबा चंदन और अबीर पुहर-बास-रसरद्योगेभीर॥ टिप्पणी-यह अलौकिक लोकका वर्णन है। जो कुछ ब्रह्माण्डमे है वह पिडमे है। जहेँ चेत-अधेत खंभ दोउ मन रच्या है हिडोर। ्>

महाकवि रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रशसित रचनाएँ छ५९ तहँ झूलें जीव जहान, जहैँ कतहुँ नहि बिर ठौर॥ और चंद-सूर दोऊ झूलै नाहीं पावै अन्त | चौरासी लष्छह्ु जिव झूले घूले रवि-ससि घाय। कोटिन कल्प जुग बीतिया आने न कब्हुँ हाय। चतुरां झूले चतुराइयों और झूले राजा सेव। और चंद सूर दोऊ ूले नाहीं पावें भेव। ._ घरनी अकासहु दोऊ झूले झूले पवन्हु नीर। घरि देह हरि आपहु झूलें जो लखहीं दास कबीर। टिप्पणी-माया-मयसृधि का वर्णन है। जहाँ मन चेतन और अचेतन के दो खभोपर हिडोरा ' लगा कर झूल रहा है। ग्रह चंद्र तपन जोत बरत है सुरत राग निरत तार बाजै। नौयतिया घुरत है रेन दिन सुन्नमें कहै कबीर पिउ गगन गाजै॥ क्षण और पलुककी आरती कौनसी रैन-दिन आरती विस्व गावे। घुरत निस्सान तह गैबकी झालरा गैबकी घंटका नाद आबै। कहै कबीर तह रैन-दिन आरती जगतके तखतपर जगत सांई। कर्म औ" भर्म संसार सब करत है पीवकी परख कोई प्रेमी जाने सुरत औ निरत धार मनमें पकड़ कर गंग और जमनके घाट आने। पाँचको नाथ करि साथ सोह लिया अधर दरियावका सुक्ख मानें॥ कहें कबीर सोई संत निर्भय घरा जन्म और मर्नका मर्म भाने। नीर निर्मल तहाँ रेन-दिन झरत है._ जनम औ'? मरन तब अन्त पाई॥ टिप्पणी-पीवकी परख > प्रिय ब्रह्म की पहचान। गगा - इड़ा। यमुना 5 पिगला। वहाँ निर्मल नीर झरता है अर्थात् विशुद्ध ज्ञानधारा बह रही है। पॉचको नाथने से ज्ञानेद्रियोको वशमे

७६० कबीर समग्र करनेका भाव है। अधर दरियाव - शून्यमे स्थित आनदका सागर। भानै 5 तोड़ (भग कर) सकता है। देख वोजूदमे अजब विसराम है होय मौजूद तो सही पावे। सुरतकी डोर सुख-सिधका झूलना घोरकी सोर तहें नाद गावे नीर बिन कँवल देख-अति फूलिया कहै कबीर मन भेंवर छावे। चक्रके बीचमे केवल अति फूलिया तासुका सुक्ख कोई सन्त जाने। शब्दकी घोर चहुँ ओर तहेँ होते है असीम समुंदरकी सुक्ख माने। कहै कबीर यो डूब सुख-सिधमे जन्म और मरनका भर्म भाने॥ पॉँचकी प्यास तहँ देख पूरी भई तीनकी ताप तहेँ लगे नाही। कहै कबीर यह अगमका खेल है गैबका चाँदना देख माहीं। जनम-मरन जहाँ तारी परत है होत आनंद तहेँ गगन गाजै। उठत झनकार तहेँ नाद अनहद घुरे तिरलोक-महतलके प्रेम बाज ॥ धंद्र-तपन कोटि दीप बरत है तूर बाजै तहाँ सन्त झूलै। प्यार झनकार तह नूर बरसत रहै.._ रस पीवे तहें भक्त झूले। जनम-मरन बीच देख अन्तर नही. , दच्छ और बाम यूं एक आही। कहें कवीर या सैन गूंगातेई वेद कक्तेवकी गम्म नाही | अधर आसन किया अगम प्याला पिया

महाकवि रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रशसित रचनाएँ ७६१ जोगकी मूल जग जुगुति पाई। पंथ बिन जाय चल सहर बेगम पुरे दया जगदेवकी सहज आई। ध्यान धर देखिया नैन-बिन पेखिया अगम अगाघ सब कहत गाई। सहर बेगमपुरा गम्मको ना लहै होय बेगम्म जो गम्म पावै। शुनाकी गम्म ना अजब बिसराम है सैन जो लखै सोइ सैन गावे। टिप्पणी-शून्य के आसनपर (अर्थात् समाधिकी अवस्थामे आत्मा शून्य या सहस्रारमे बैठकर साधकने रहस्यातीत) भगवन रसका प्याला पिया और वह योगकी इस मूल युक्तिको पा ! गया है। वह बे-गमपुर शहर अर्थात् जिस शहरमे कोई गम नही है, केवत आनद ही आनद है। जगदीश्वर की दया सहज ही मिली है। वहाँ वह बिना आँखोकी सहायताके ही उस वस्तुको देखता है जिसे अगम और अगाध कहा गया है। इस बे-गमपुर शहर तक पहुँच पाना कठिन है। वही पहुँच पाता है जो निर्दन्द है। .. मुक्ख बानी तिको स्वाद कैसे कहै स्वाद पावै सोह सुक्ख माने । कहै कबीर या सैन गूंगातई होय गूंगा जोई सैन जाने। छक्याँ अवधूत मस्तान माता रहै श्ज्ञान-वैराग्य सुधि लिया पूरा । स्वॉस-उस्वॉसकाप्रेम-प्यालापिया गगन गरजै तहाँ बजै तूरा॥ बिनकर तौतिया नाद गाता रहे जतन जरना लिया सदा खेलै। कहै कबीर प्रान प्रान-सिंधमें मिलावे... परम सुखधांम तहें प्रान मेले । टिप्पणी-बिन._ रहै 5 बिना हाथकक और बिना तॉत (तत्र > वीणा) के ही वहाँ नाद गाया करता है (राग बजाया करता है) । आठहू पहर मतवाल लागी रहै ' आठटहू पहरकी छाक पीवै। आठहू पहर मस्तान माता रहै द्रह्मके देहमे भक्त जीवै। " साँच ही कहत और साँच ही गहत है

कबीर समग्र काँयदूँ त्यागकर सोच लागा। कहें कबीर यूँ भक्त निर्भर हुआ जन्म और मरनका भर्म भागा। गगन गरजै तहाँ सदा पावस झरे होत झनकार नित बजत तूरा। गगनके भवनमे गैवका चौंदना उदय और अन्तका नाव नाहीं। दिवस और रैन तहैं नेक नहिं पाइये प्रेम, परकासके सिंधमाही ॥ सदा आनंद दुख-दंद व्यापै नहीं पूरनानंद भरपूर देखा। भर्म और भ्रांति तहँ नेक नहिं पाइये कहें कबीर रस एक पेखा। खेल ब्रह्माण्डका पिंडमे देखिया जगतकी भरमना दूर भागी। बाहरा-भीतराएक आकासवत घरियामे अधर भरपूर लागी। देख दीदार मस्तान मे होय रहा सकल भरपूर है नूर तेरा। ज्ञानका थाल और प्रेम दीपक अहै अघर आसन किया अगम डेरा। कहें कबीर तहें मर्म भाते नहीं जन्म और मरनका मिटा फेरा॥ मद्ध अकास आप जहं बैठे, जोत शब्द उजियारा हो। सेत सरूप राग जहें फूल, साईं करत बिहारा हो। कोटिन चन्द-सूर छिप जैहैं, एक रोम उजियारा हो। वही पार एक नगर दसतु है, बरसत अंमृत-घारा हो। कहें कबीर सुनो प्रमदासा, लखो पुरुष दरबारा हो। टिप्पणी-आप - भगवान् । गैब - अपरोक्ष। सिध +- संधि। परमातम गुरु निकट बिराजें, जाग जाग मन मेरे। धायके पीतम चरनन लागै

टिप्पणी-गुन काल। महाकवि रीन्धनाथ द्वारा प्रशंसित रचनाएँ ७६३ सांईं खड़ा सिर तेरे। जुगनु जुगन तोंहि सोवत बीता अजहुँ न जाग सबेरे। मन, तू पार उतर कहें जैही। आगें पंथी पंथ न कोई, कृच-मुकाम न पैहों। नहि तहैं नीर, नाव नहि खेवट, ना गुन खैंचनहारा। धरनी-गगन-कल्प कछु नाही, ना कछु वार न पारा। नहि तन, नहि मन, नहीं अपनपौ सुन्नमें सुद्ध न पेहो। बलीवान होय पैठो घटमें, वाहीं ठोरें होइही । बार हि बार बिचार देख मन, अंत कहूँ मत जैहो। कहै कबीर सब छाड़ि कल्पना, ज्योंके त्यों ठहरे हो॥ < नाव खीचनेकी रस्सी। सुन्नमे सुद्ध # शून्यमे सुधि या खोज। कल्प घर घर दीपक बरे, लखे नहि अन्ध है। लखत लखत लखि पर, कटे जम के फन्द है।। कहन-सुनन कछु नाहि कछु करन है। जीते जी मरि रहै, बहुरि नहि मरन है॥ जोगी पड़े वियोग, कहें घर दूर है। पासहि बसत हजूर, तू चढ़त खजूर है॥ बाम्हन दिच्छा देता घर घर घालि है। मूर सजीवन भास, तू पाहन पालि है॥ ऐसन साहब कबीर, सलोना आप है। नहीं जोग नहीं जाप, पुन्न नहिं पाप है॥ साथधो, सो सतुगुरु मोहि भावै। सत्त प्रेमका भर-भर प्याला, आप पिवे मोंहि प्यावे। परदा दूर करें आखिनका, ब्रह्म-दरस दिखलावै। जिस दरसमे सब लोक दरसे, अनहद सब्द सुनावै। एकहि सब सुख-दुख दिखलाव, सद्ध में सुरत समावै। ं कहें कबीर ताको भय नाहीं, निर्भय पद परसावै। तिंबिर सौँच का गहिरा आबै, छावे प्रेम मन-तन में। पश्छिम दिसकी खिड़की खोलो, डूबहु प्रेम-गगनमें। चेत-कैवल-दल रस पीयो रे, लहर लेहु या तनमें।

गजब मिकेआए इंकार कररीकालमपरांअए५+- आम 5

(...0...+जतण-.००००7 ० ता ७६४ कबीर समग्र संख-घंट-सहनाईबाजै,सोभा-सिंध्यमहलमे । कहै कबीर सुनो भाई साधो, अमर साहय लख घटमें। टिप्पणी-तिविर 5 अधकार। सायकाल का अधकार पश्चिम दिगनत की ओर से गहरा होता आ रहा है। पश्चिम की खिड़की (अज्ञान द्वारे खोल दो। प्रेम के आकाश मे अपने को डुबा दो। सायकाल प्रिय समागम की तैयारी का समय है। भक्तरूपी ग्रेयतसी का तन और मन रोमाच और औत्मुक्य से भर गया है-छावै प्रेम मन तन मे। चित्तरपी कमलदलका रस पान करो-मनही मे उस परम सुख का साक्षात्कार करो, शरीर मे प्रेम की लहरे तरगित हो। शोभा का समुद्र जो यह महल है-अन्त करण-वहाँ मिलन का सूचक शंख घट और सहनाई आदि का बज रहे है। साधु, तू अमर साहब को, अक्षय सुहाग देनेवाले स्वामी को अपने भीतर ही ख़। सायकाल का अँधेरा बुढ़ापन्ने का भी प्रतीक है। पश्चिम की खिड़की खोलना सुषुम्ना जागरण है। हे जिससे रहनि अपार जगतमें, सो प्रीतम मुझे पियारा हो। जैसे पुरइनि रहि जल-भीतर, जलहिमे करत पसारा हो | बाके पानी पत्र न लागे, ढरकि चले जस पारा हो। जैसे सती घढ़े अगिनपर, प्रेम-बचन ना टारा हो। आप जरे औरनिको जार, रखे प्रेम-मरजादा हो। भवसागर इक नदी अगम है, अड़द अगाह धारा हो। कहै कबीर सुनो भाई साधो, बिरले उतरे पारा हो। हरिने अपना आप छिपाया। हरिने नफीज कर दिखराया॥ हरिने मुझे कठिन विध घेरी। हरिने दुविधा काटी मेरी ॥ इरिनेसुख-दुखबतलाये। हरिने सब दुंद मिटाये ॥ ऐसे हरिपि तन-मन वारूँ, प्राणहि तजूँ हरि नही बिसाऊँ॥ टिप्पणी-नफीज > सुदर। आप 5 आल | दुद # द्व | ओकार सबै कोई सिरजै, रागस्वरूपी अंग। निराकार निर्गुन अविनासी, कर वाही को संग ॥ नाम निरंजन नेनन-मद्धे, नाना रूप धरंत। निरंकार निर्गुन अबिनासी, अपार अथाह अँग॥ महासुक्ख मगन होई नाथे, उपजै अंग तरंग। नी | मन और तन घिर न रहतु है, महा सुक्ख के संग।

महाकवि रवीन्धनाथ द्वारा प्रशसित रचनाएँ ७६५ सद चेतन सब अनन्द सब हैं दुःख गहन्त | कहाँ आदि कहैं अन्त आप सुक्ख दिच घरत॥। हिल जे टिप्पणी-ओकार जो सबकी सृश्टि करता है वह भगवान् का -शब्दरूपी अंग है। नाम ' नाना धरत 5 यधपि उसका नाम निरजन है तथापि वह नानारूप धारण करता है। गनन्त 5 पकड़ता है। सदगुरु सोइ दया करि दीन्हा। ताते अन-चिन्हार में ची७(॥ बिन पग चलना बिन पर उड़ना, बिना चूँचका चुगना। दिना नैनका देखन-पेखन, बिन सरवनका सुनना। चंद न सूर दिवस नहिं रजनी, तहाँ सुरत लो लाई। बिना अन्न अंगृत-रस-भोजन, बिन जल तृषा बुझाई । जहाँ हरस तह पूरन सुख है, यह सुख कासी कहना! कहें कबीर बल बल सतगुरु की, घन्न सिष्य का लहना॥ निरयुन आगे सरगुन नाथे, , बजै सोहँग तूरा। चेलाके पाँव गुरूजी लाएें, यही अधम्भा पूरा॥ टिप्पणी-सो5हं > वह मै ही हूँ ऐसी अभेद प्रतीति। जीव का सात्विक अह ही उसे ब्रह्म के साथ एकता अनुभव कराता है। यह एकता ऐसी है मानो गुरु (परब्रह्म) चेला (जीव) के पैरो पड़ते है। सो5ह मे सः (वह > ब्रह्म) दूरका होने से अप्रधान होता है और अह (मै > जीव) निकट है।._ कबीर कबसे भये बैरगी।.._ तुफ्री सुरति कहौंको लागी ॥ बहचित्राका मेला नहीं, नहीं गुरु नहि चेला। सकल पसारा जिन दिन नाहीं, जिहि दिन पुरुष अकेला॥ गोरख, हम तबके अहै बैरागी। हमरी सुरित ब्रह्मसो लागी। अद्मा नहि जब टोपी दीन्ही, बिस्नु नहीं जब टीका। सिव-शक्ति के जनमौ नाहीं, तबै जोग हम सीखा॥ कासी मे हम प्रगट भये है, रामानंद चेताये।

 प्यास अहद की साथ हम लाये, मिलन-करनेको आये॥ सहजै सहजै मेला होड्गा, जागी भक्ति उतंगा। कहै कबीर सुनो हो गोरख चलो गीतके संगा॥ टिप्पणी-बइचित्रा - एकका अनेक होना ही विचित्रता है। ब्रह्मा 'टीका & जब ब्रह्मा जब सृष्टि-रचना और विष्णु पालन का नही एवं शिव शक्ति का जन्म भी नही था। टोपी देना « राज्य पाना। टीका लेना 5 सिहासन पर अभिषिक्त होना। प्यास अहदकी < असीमको पाने की तृष्णा या इच्छा। उतगा > उच्च तत्त्व | या तरिवर मे एक पखेरू, भोग सरस वह डोलै रे। बाकी संघ लखे नहि कोई, कौन भावसों योलै रे। दुर्म्म-डार तहें अति घन छाया, पंछी यसेरा लेई रे। आये सॉम्न उड़ि जाय बसेरा, मरम न काहू देई रे। सो पंक्षी मोंहि कोइ न बतावै, जो बोले घटमोंही रे। अयरन-बरन रूप नहि रेखा, बैठ प्रेमके छोही रे। अगम अपार निरन्तर बासा, आवत-जात न दीसा रे। कहै कबीर सुनो भाई साथो, यह कुछ अगम कहानी रे। था पंक्षी के कौन ठौर है, बूझो पंडित ज्ञानी रे। टिप्पणी-पखेरू और पछी (पक्षी) शब्द जीवात्मा के वाचक हैं। भोगः 'रे 5 सभोग रस से मस्त होकर झूम रहा है। सध 5 सधान, खोज, परिचय। म्रम न काहू देई 5 किसीको अपना मर्म नही जानने देता है। निसि-दिन सालै घाव, नींद आवै नहीं। पिया-मिलनकी आस, नैहर भावे नहीं ॥ खुल गये गगन-किवाड़, मन्दिर उजियार भयो। भयो है पुरुष सो भेट तन-मन बार दयो ॥ टिप्पणी-गगन किवाड़ - शून्य का दरवाजा। ब्रह्मरश्न । नाघु रे मेरे मन मत्त होइ। प्रेम को राग बजाय रैन-दिन शब्द सुनै सब कोइ | राहु-केतु नवग्रह नाचे जन्म जन्म आनंद होई। गिरी-समुन्दर धरती नाथै, लोक नाचै हँस-रोइ | छाप-तिलक लगाई बाँस चढ़, हो रहा जगसे न्यारा। सहतस कला कर मन मेरौ नाचै, रीझ्े सिरजनहारा ॥ टिप्पणी-आनद से समस्त चराचर नाच रहा है, ग्रह तारे, पहाड़-समुद्र सब उल्लास मे नाच रहे है। हँसते-रोते, सुख दुख की अनुभूति करते सारा ससार ही नाच रहा है। छापा तिलक लगानेवाले अपने को विशेष समझते है। मेरा मन सहस्रार पहुँचकर नाच रहा है और 2०2६०. 33०

इस-नाच से सिरजनहार प्रसन्न हो रहा है, क्योकि उसने लीला के लिये सृष्टि का निर्माण किया है। भन मस्त हुआ तब क्यों बोले ? हीरा पायो गाँठ गठियायो, बार-बार वाको क्यों खोले। हलकी थी तब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले। सुरत-कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले। हँसा पाये मानसरोवर, ताल तलैया क्यों डोले ? तेरा साहब है घरमाहीं, बाहर नैना क्यों खोले ? . कहैं कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गये तिल ओले।! टिप्पणी-सुरत-कलारी' भई मतवारी तोले > सुरतिरूपी कलारी (मद्य बेचनेवाली) ने मत्त होकर बिना तोले (तौलना, तुलना) ही बहुत पी लिया। तिल ओले > तिल की ओट मे। व्यक्ति मे। ै न मोहि तोंहि लागी कैसे छूटे। जैसे कमलपतन्न जल बासा, ऐसे तुम साहिद हम दासा॥ जैसे चकोर तकत निस चंदा, ऐसे तुम साहिब हम बंदा॥ मोहि-तोहि आदि अन्त दन आई, अब कैसे लगन दुराई॥ कहैं कबीर हमरा मन लागा, . जैसे सरिता सिध समाई॥ झलम, आवो हमे गेह रे। तुम बिन दुखिया देह रे। सब कोई कै तुम्हारी नारी, मोकों लागत लाज रे। दिल से नहीं दिल्ल लगाया, तब लग कैसा सनेह रे। अन्न न भाव नींद न आवै, गृह-बन घर न घीर रें। कामिन को है बालम प्यारा, ज्यों प्यासे को नीर रे। है कोई ऐसा पर-उपगारी, पिवसों कहै सुनाय रे। अब तो बेहाल कबीर भयो है, बिन देखे जिव जाय रे॥ जाय पियारी अब का सोबै। रैन गई दिन काहे को खोबै॥ जिन जागा तिन मानिक पाया।

 तें बीरी सब सोय गेंवाया ॥ पिय तेरे चतुर तू मूरख नारी। कबहुँ न पियकी सेज सेंवारी ॥ तें बोरी बोरापन कीन्ही | भर-जोबन पिय अपन न चीन्ही ॥ जाग देख पिय सेज न तेरे। तोहि छॉड़ि उठि गये सबेरे। कहें कबीर सोई धुन जागै। शब्द-बानउर-अन्तरलाग | सूर-परकास, तहें रेन कहेँ पाइये रैन-परकास नही सूर भासे। ज्ञान-परकास अज्ञान कहँ पाइये होय अज्ञान तहें ज्ञान नासे। काम बलवान तहेँ प्रेम कहेँ पाइये प्रेम जहों होय तहें काम नाही। कहै कबीर यह सत्त विधार है समझ्न वियार कर देख माही। पर टिप्पणी-जहोँ ज्ञान का प्रकाश होता है वहाँ अज्ञान नही रहता और जहाँ अज्ञान रहता है वहाँ ज्ञान नही होता। इसी प्रकार जहा काम बलवान है वहाँ प्रेम नहीं और जहाँ प्रेम बलवान होता है वहाँ काम नही रहता। ज्ञान और अज्ञान का तथा प्रेम और काम का सवध प्रकाश और अधकार के सबंध के समान है। पकड़ समसेर संग्राम में पैसिये देह-परजन्त कर जुद्ध भाई। काट सिर बैरियों दाब जेंहका तहाँ आय दरबार मे सीस नवाई ॥ टिप्पणी-समशेर < तलवार। सूर संग्रामको देख भागै नहीं, देख भागै सोई सूर नहीं। काम और क्रोध मद-लोभ से जूझना, मचा घमसान तन-खेत माही । सील और साँच सन्ोष साही भये, नाम समसेर तहाँ खूब बाजे। कहै कबीर कोइ जूद्षिहै सूरमा

कायरों भीड़ तहें तुर्त भाजे ॥ ! '. टिप्णी-शूर युद्ध से भागता नहीं। तनरूपी खेत (युद्धस्थल) मे काम, क्रोध आदि : शत्रुओं से धमासान मची हुई है। साही - साथी। तुर्त 5 तुरत। साधको खेल तो बिकट बेंडा मती सती और सूरकी चाल आगे। सूर घमसान है पलक दो चारका सती घमसान पल एक लागै। साध संग्राम है रैन-दिन जूझना देह परजन्तका काम भाई॥ टिप्पणी-बिकट बेड़। > अत्यन्त कठिन| सती और सूर > भक्त | परजन्त > पर्यत | भ्रम का ताला लगा महल रे, प्रेम की कुंजी लगाव। कपट-किवड़िया खोलके रे, यहि बिधि पियको जगाव॥ कहैं कबीर सुनो भाई साधो, फिर न लगै अस दाव॥ साधो, यह तन ठाठ तैंबूरेका। ऐचत तार मरोरत खूँटी, निकसत राग हजूरे का॥ टूटे तार बिखर गई खूँटी, हो गया धूरम-धूरेका ॥ कहै कबीर सुनो भाई साधो, अगम पंथ कोई सूरेका॥ टिप्पणी-यह शरीर तबूरे जैसा है। ऐचत तार का > तबूरे की खूटियों मरोड़ने से और तार खीचने से सुदर ध्वनि निकलती है। इद्रिय-दमन और मन का सयम करने से भगवत्मक्ति का राग भ्रकट होता है। राग मे श्लेष हे (9) सगीत (२) प्रेमाभक्ति| टूटे" का - जब इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिका समूह कार्य न् हो जाता है, स्थूल शरीर से सूक्ष शरीर अलग, नष्ट हो जाता है, तब जीव का कुछ करना कठिन है। साधना, भक्ति। यह अगम पंथ किसी बीरका अर्थात् साधक का काम है। अवधू, भूलेको घर लावे। सो जन हमऊे भावे॥ घरमे जोग भोग घरही मे, घर तज बन नहीं जावे। । एसमें जुक्त मुक्त घर ही में, जो गुरु अलख लखावै। हे सहज सुन्न मे रहे समाना, सहज समाधि लगावे। उन्मनि रहै ब्रह्मको चीन्हे, परम तत्व को ध्यावै। उर्त-निरतसों मेला करके, अनहद नाद बजावे। घरमें बसत वस्तु भी घर है, घर ही बस्तु मिलाबै। कह कबीर सुनो हो साधू, ज्योका त्यों ठहरावै॥ हक

छ७० कबीर समग्र टिप्पणी-भूलो को घर लावै 5 भ्रमित को साधना मे लगाता है। सहज लगावै सहज साधना से ही शून्य मे समा जाय। उन्मुनि ८ उन्मनी अवस्था। सुरत-निरत > ध्यान और निरतर ध्यान। सन्ुतों, सहज समाधि भलरी। साई ते मिलन भयो जा दिनते, सुरत न अन्त चली ॥ आँख न मूँदूँ कान न रूँघूं, काया कष्ट न धाएँ। खुले नैन मै हँस हँस देखूँ, सुन्दर रूप निहाझूँ॥ कहूँ सो नाम सुनूँ सो सुमिरन, जो कछु करूँ सो पूजा। गिरह-उद्यान एकसम देखूँ, भाव मिटाऊँ दूजा॥ जहेँ जहें जाऊँ सोई परिकरमा, जो कछु करूँ सो सेवा। जब सोऊँ तब करूँ दण्डवत, पूजूँ और न देवा॥ शब्द निरन्तर मनुआ राता, मलिन बचनका त्यागी। ऊठत-बैठत कबहूँ न बिसरे, ऐसी तारी लागी। कहे कबीर यह उन्मुनि रहनी, सो परगठ कर गाई। सुख-दुखके इक परे परम सुख, तेहिमें रहा समाई।॥ तीरथमे तो सब पानी है, होवे नही कछु अन्हाय देखा। प्रतिमा सकल तो जड़ है भाई, बोले नहीं बोलाय देखा। पुरान-कोरान सब बात है, या घटका परदा खोल देखा। अनुभव की बात कबीर कहे यह, सब है झूठी पोल देखा॥ पानी बिच मीन पियासी। भोंहि सुन सुन आवै हॉसी॥ घरमे वस्तु नजर नहि आवत यन बन फिरत उदासी। आतमज्नान बिना जग झूँठा क्या मधुरा क्या कासी॥ टिप्पणी-अर्थ है कि भगवान् तो घटघटवासी है। फिर भी अज्ञानी लोग उन्हे बाहर खोजते है। आत्मज्ञान से ही वह मिलते है, तीर्थव्रत से नही। गगन-मठ गैव निसान गड़े। चंद्रहार चँदवा जहँ ठाँगे, मुक्ता-मानिक मढ़े।

महाकवि रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रशसित रचनाएँ ७७१ महिमा तासु देख मन विरकर, रवि-ससि-जोत जरे। कहें कबीर पिये जोई जन, माता फिरत मरे॥ टिप्पणी-गैब < अद्भुत। अप्रत्यक्ष। साधो, को है, कहँसे आयो ? तेहिके मन थों कहाँ बसत है, को घों नाच नचायो॥ भावक सर्व अंग काठहिमें, को धौं उहक जगायो। हो गया खाक तेज पुनि बाको, कहु थों कहाँ समायो॥ अहै अपार पार कछु नाही, सतगुरु जिन्हे लखायो॥ कहें कबीर जेहि सूझ-बूझ जस, तेई तस आज सुनायो ॥ टिप्पणी-पावक' जगायो काठ मे अग्नि है। वह प्रकट होती है। प्रकट होने के बाद काठको भस्म करके पुन लीन हो जाती है। इसी प्रकार भगवान् भी सर्वव्यापक है। कितु साधना से प्राप्त होते है। साधो, सहजै काया सोधो | जैसे बट का बीज ताहिमे पत्र-फूल फल छाया। काया-पद्धे बीज बिराजे, बीजा-मद्धे काया। अग्नि-पवन-पानी-पिरथी-नक्त;बिनमिलैनाहीं) काजी पंडित करो निरनय को न आपा माहीं। जल-भर कुंभ जले बिच धरिया, बाहर-भीतर सोई। उनको नाम कहनको नाही, दूजा धोखा होई। कहै कबीर सुनो भाई साथो, सत्य-शब्द निज सारा। आपा मद्धे आपे बोले, आप सिरजनहारा॥ टिप्पणी-शरीर काया की शुद्धि कृच्छाचार से नही होती। जिस प्रकार वट बीज मे ही वृक्ष की सत्ता रहती है। उसी प्रकार आपा (आत्मा) मे ही सब कुछ है। वस्तुत जीवात्मा परमात्मा अभिन्न है। जल से भरा हुआ घड़ा जैसे समुद्र मे डूबा रहता है वैसे भगवान की असीम सत्ता के 5 ही भगवदश जीव है। उनको होई < उनका नाम कहना उचित नहीं। क्योंकि नाम कहने से भ्रम हो सकता है। वे मुझसे अभिन्न है। तरबर एक मूल बिन ठाढ़ा, विन फूले फल लागे। साखा-पत्र कछू नहि ताके, सकल कमल-दल गाजै । चढू तरबर दो पंक्षी बोले, एक गुरू एक चेला। चेला रहा सो रस चुन खाया, गुरू निरन्तर खेला॥ पंछी के खोज अगम परणट, कहे कवीर बड़ी भारी)

छ७२ कबीर समग्र सब ही मूरत बीच अमूरत, मूरत की बलिहारी॥ टिप्पणी-तरवर 5 ससार | मूल बिना खड़ा है निराकार ब्रह्म या अनादि माया पर आधृत है। गुरु 5 भगवान्। चेला 5 जीव।| रस चुन खाया 5 भोग भोगता रहा। गुरु. खेला « भगवान् है लीला करते रहे। मूरतः बलिहारी 5 समस्त रूपो मे वह अमूर्त निर्गुण, निराकार ब्रह्म वर्तमान है | टिप्पणी-चलत चलत मनसा अचल कीन््ही, मन हुआ रंगी। तत्वमें निःतत्व दरसा, संगमें संगी ॥ बंधते निर्बन्ध कीन्हा, तोड़ सब तंगी। कहे कबीर अगम गम कीया, प्रेम रंग रंगी॥ ल्* चचल। रगा 5 भक्ति में तल्लीन। तत्व 5 पच महाभूत। तंगी « सीमा। गम > साक्षात्कार | टिप्पणी-अयाना जो दीसे सो तो नाही, है सो कहा न जाई। बिन देखे परतीत न आवबै, कहे न को पतियाना। समझा होय तो शब्दे चीन्हे, अचरज होय अयाना। कोई ध्यावे निराकार को, कोई घ्यावे आकारा। या विधी इन दोनोंते न्यारा, जाने जाननहारा। वह राग तो लखा न जाई, मात्रा लगै न काना। कहै कबीर सो पढ़े न परलय, सुरत-निरत जिन जाना॥ । > अज्ञानी। आकाश - मूर्ति। मात्रा 5 शब्द | मुरली बजत अखंड सदाये, तहाँ प्रेम झ्नकारा है। प्रेम-हह्-तजी जब भाई, सत्त लोककी हड्द पुनि आई। उठत सुगंध महा अधिकाई, जाको वार न पारा है। कोटि भान राग को रूपा, बीन सत-धुन बजै अनूपा॥ टिप्पणी-सत्त > ब्रह्म। भान 5 सूर्य | सखियो, हमहूँ मई बलमासी। आयो जोबन विरह सतायो, अब में ज्ञान गली अठिलाती।[ज्ञान-गलीमे खबर मिल गये, हमे मिली पियाकी पाती। वा पाती मे अगम सँदेसा, अब हम मरने को न डराती। कहत कयीरा सुनो भाई प्यारे, बर पाये अबिनासी। टिप्पणी-बलमासी - परमात्मा को पाने की उत्कट अभिलाषावाली। इस अभिलाषा से प्रिय जैसी हो गयी। साईं बिन दरद करेजे होय। दिन नहि चैन रात नहि निंदिया, कासे कहूँ दुख रोय।

महाकवि रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रशसित रचनाएँ ७७३ आधी रतियाँ पिछले पहरवा, साईं बिना तरस तरस रही सोय। कहत कबीर सुनो भाई प्यारे, साई मिले सुख होय॥ कौन मुरली-शब्द सुन आनन्द भयौ जोत यरे बिन बाती। दिना मूलके कमल प्रगट भयो। फुलवा फुलत भाँति भाँती। जैसे चकोर चंद्रमा चितवै जैसे चातृक स्वॉती | तैसे सन्त सुरतके होके हो गये जनम सँघाती ॥ वदिप्पणी-जोत < ज्योति। बरे जलती है। कमल ८ १ हत्कमल। २३ ज्ञान। सुनता नही धुनकी खबर, अनहदका बाजा बाजता। रस मंद मंदिर बाजता, बाहर सुने तो क्या हुआ। इक प्रेम-रस चाखा नही, अमली हुआ तो क्या हुआ॥ काजी किताबे खोजता, करता नसीहत औरको | भहरम नही उस हालसे, काजी हुआ तो कया हुआ॥ जोगी दिगंबर सेवड़ा, कपड़ा रंगे रंग लालसे। वाकिफ नही उस रंगसे, कपड़ा रँँगसे क्या हुआ॥ मन्दिर-झरोखा-रावटी, गुल चमनमें रहते सदा । कहते कबीरा हैं, सही हर-दममे साहिब रम रहा। टिप्पणी--अमली 5 नशा सेवक। नसीहत - ज्ञान महरम > परिचित। सेवड़ा - श्वेतपट, श्वेताम्बर जैन साधु | हरदम - प्रत्येक व्यक्ति। भक्ति का मारग जीना रे। नहि अचाह नहि चाहना, चरनन लौ लीना रे। साधन के रस-घारमे, रहे निस-दिन भीना रे। रागमे चुत ऐसे बसे, जैसे जल मीना रे। साई सेवनमे देत सिर, छुछ बिलम न कीना रे। कहै कबीर मत भक्ति का, परगट कर दीना रे। भाई, कोई सतगुरु सन्त कहावै। नैनन अलख लखावै॥

७७४ कबीर समग्र ग्राण पूज्य किरिया ते न्यारा, सहज समाध लिखावे। द्वार न रुँधे पदन न रोके, नहि भवखण्ड तजाबे। यह मन जाय जहाँ लग जब ही परमातम दरसावै | करम करे निःकरम रहे जो, ऐसी जुगत लखावे। सदा, विलास नास नहि तनमे, भोगमे जोग जगावे, धरती-पानी अकाश-पवन में अधर मड़ैया छावे। सुन्न सिखर के सार सिलापर, आसन अचल जमावै। भीतर रहा सो बाहर देखे, दूजा दृष्टि न आवै। टिप्पणी-तजावै 5 छुड़ाना | साधो,शब्द-साधनाकीज | जे ही शब्दते प्रगट भये सद, सोई शब्द गहि लीजै॥ शब्द गुरु शब्द सुन सिख भये, शब्द सो विरता बूसे। सोई शिष्य सोई गुरु महातम, जेहि अन्तर-गति सूझे॥ शब्दे वेद-पुरान कहत है, शब्दे सब ठहराव । शब्दे सुर-मुनि-सन्त कहत है, शब्द-भेद नहि पावे। शब्दे सुन सुन भेष घरत है, शब्दे कहे अनुरागी। घटु-दर्शन सब शब्द कहत है, शब्द कहे बैरागी ॥ शब्दे काया जग उतपानी, शब्दे केरि पसारा। कहै कबीर जहँ शब्द होत है, भवन भेद है न्यारा ॥ टिप्पणी-शब्द 5 १ शून्य। २ आकाश तत्त्व। ३ नाद तत्त्व। ४ अनाहत ध्वनि। ५ गुरुवचन। ६ शाख्रवचन। पीले प्यारा हो मतवाला प्याला नाम अमीरसका रे। कहे कबीर सुनो-साधो नख सिख पूर रहा विषका रे। टिप्पणी-मनुष्य का सारा शरीर विषय विपसे भरा है। इस विषय विषसे रक्षा का साधन नाम अमृत का पान करना ही है। खसम न चीन्हे बावरी, का करत बड़ाई। बातन लगन न होयेंगे, छोड़ी चतुराई। साखी शब्द संदेश पढ़ि, मत भूलो भाई। सार-प्रेम कछु और है, खोजा सो पाई॥ टिप्पणी-खसम - पति, परमात्मा |

महाकवि रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रशसित रचनाएँ ७७५ सुखसिध की सैरका स्वाद तब पाइ है, चाहका चौतरा भूल जावै। बीजके मांहि ज्यों बीज विस्तार यों चाहके माहि सद रोग आवै॥ टिप्पणी-चाहके माहि 5 इच्छाके भीतर। सिंध 5 सागर। चौतरा # विस्तार। चाह विषय की इच्छा । सुखसागर मे आयके मत जा रे प्यासा। अजहुँ समझ नर बाबरे, जम करत निरासा॥ निर्मल नीर भरे तेरे आगे, पी ले स्वॉसो स्वॉसा। मृगतृष्णा-जल छोड़ बावरे, करो सुधारस-आसा॥ ध्रू-प्रहलाद-शुकदेव पिया, और पिया रैदासा। प्रेमहिं संत सदा मतवाला, एक प्रेमकी आसा। कहें कबीर सुनो भाई साधो, मिट गई भय की दासा। टिप्पणी-सुखसागर 5 भगवान् की शरण। सुधारस 5 भगवान् की भक्ति। मृगतृष्णा « अनित्य विषय-सुख। निराशा ८ विषय के प्रति असतोष। बासा ८ निवास | सतीको कौन सिखावता है, संग स्वामीके तन जारना जी। प्रेमको कौन सिखावता है, त्यायमॉहि भोगका पावना जी। अरे मन धीरज काहे न धरे । पसु-पछी जीव कीट-पतंगा सबकी सुद्ध करे । गर्भ-बासमें खबर लेतु है बाहर क्यों बिसरे। मन तू हसन से साहेब के भटकत काहे फिरे। प्रीतम छोड़े और को धरे, कारज इक.न सरे॥ टिप्पणी-सुद्ध + सुधि। हसन से साहेब के < सुदर प्रभु के रहते हुए। साईसे लगन कठिन है भाई। जैसे पपीहा प्यासा बूँदका, पिया पिया रट लाई। प्यासे प्राण तड़फै दिन-राती, और नीर ना भाई। जैसे मिरगा शब्द-सनेही, शब्द सुननको जाई। शब्द सुने और प्रानदान दे, तनिको नाहि डराई। जैसे सती चढ़ी सत-ऊपर, पियाकी राह मन भाई।

७७ कबीर समग्र पावक देख डरे वह नाही, हँसत बैठे सदा माई। छोड़ो तन अपनेकी आसा, निर्भय ड्ै गुन गाई। कहत कबीर सुनो भाई साधो, नाहिं तो जनम नसाई॥ टिप्पणी-साई, प्रिय, वालम आदि शब्दों से मतलब परमात्मासे है। सत > यहाँ अर्थ चिता से है। माई 5 मे | जब मे भूला रे भाई, मेरे सतगुरु जुगत लखाई। किरिया-करम-अचार मे छोड़ा, छोड़ा तीर्व का नहाना। संगरी दुनिया भई सयानी, मैं ही इक बौराना। ना मै जानूँ सेवा-बंदगी, ना मैं घंट दजाई। ना मै मूरत घरी सिंघासन, ना मैं घुहुप चढ़ाई। ना हरि रीझे जपतप कीन्हे, ना काया के जारे। ना हरि रीझे घोती छोड़े, ना पाँचोके मारे। दया राखि घरम की पाले, जगसो रहे उदासी। अपना-सा जिव सबको जाने, ताहि मिलै अविनासी। सहै कुशब्द बादको त्यागै, छाड़े गर्ब-गुमाना। सत्त नाम ताहीको मिलिहै कहे कबीर सुजाना॥ मन ना रेंगाये रैंगाये जोगी कपड़ा। आसन मभारि मंदिर मे बैठे ब्रह्म-छाड़ि पूजन लागे पथरा ॥ कनवा फड़य जोगी जटवा यढ़ोले दाढ़ी बढ़ाय जोगी होइ गैले बकरा। जंगल जाय जोगी घुनिया रमौले। काम जदाय जोगी होय गैले हिजरा ॥ मधवा मुँड़ाय जोगी कपड़ा रंगौले, गीता बाँचके होय गैले लबरा। कहहिं कबीर सुनो भाई साधो, _ जम दरवजवा बॉयल जैबे पकड़ा। टिप्पणी-कनवा फड़ाय 5 कनफटे योगी कान चीर का कुण्डल धारण करते है। धुनिया रमौले > धूनी रमाई। लवरा ८ झूठा। ना जाने साहब कैसा है ! मुल्ला होकर बाँग जो देव,

महाकवि रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रशसित रचनाएँ छछ७७छ क्या तेरा साहब बहरा है। कीड़ी के पग नेउर बाजे, सो भी साहब सुनता है। माला फेरी तिलक लगाया, लंया जठा बढ़ाता है। अन्तर तेरे कुफर-कठारी, यो नहि साहब मिलता है। दिप्पणी-साहब ८ परमाला। बॉग - असान। नेउर र नूपुर। कुफर ₹ कुकर | कयरी ८ कुल्हाड़ी हमसों रहा न जाय मुरत्रिया कै घुन सुनके। बिना बसन्‌्त फूल इक फूलै भेवर सदा बोलाय। गगन गरजै विजुली चमके, उठती हिये हिलोर। विगसत केवल मेथ बरसाने चितवत प्रभुकी ओर। तारी लागी तहाँ मन पहुँचा, गैब घुजा फहराय। कहें कबीर आज प्रान हमारा, जीवत ही मर जाय। टिप्पणी-मुरलिया के धुन > अनाहत नाद। इसे साधक भगवान्‌ की पुकार कहते है। बिना वसत का फूलनेवाला फूल सहस्रार चक्र है। भँवर मन है। मेघ बरसाने 5 समाधि की पूर्णा की हालत मे “धर्म मेघ” की वृध्टि होती है। उस समय योगी समस्त क्लेशो और कर्मों से निवृत्त हो जाता है। तारी लगना < भगवान्‌ के प्रति एकाग्रता। जो खोदाय मसजीद बसतु है और मुलुक केहि केरा। तीरथ-पमूरत राम-निवासी बाहर करे को हेरा। ' पूरब दिसा हरीको बासा पच्छिम अलह मुकामा। दिलमें खोज दिलहिमें खोजो इहें करीमा-रामा। जेते औरत-मरद उपानी सो सब रूप तुम्हारा। कबीर पोगडा अलह-रामका सो गुरु पीर हमारा। टिप्पणी-पोगडा (पौगड) 5 बालक या साधक। उपानी 5 उत्तन्न। पीर 5 मुसलमान साधक। सील-सन्तोष सदा समद्‌ृष्टि, रहनि गहनि में पूरा। ताके दरस-परस भय भाजै, होइ कलेस सब दूरा॥..“# निसि-बासर चरचा चित-चंदन, आन कथा न सोहाबै। करनी धरनी संगीत गाबै, प्रेम रंग उड़ावै॥ राग-सरूप अखंडित अविचल, निर्भर बेपरवाई। कहै कबीर ताहि पग परसो, घट घट सब सुखदाई॥

छ9८ कबीर समग्र साध-संगत पीतम उहाँ चल जाइये। भाव-भक्तिउपदेशतहॉँतेपाइये ॥ संगत ही जरि जाव थे चरया नामकी। दूलह दिना बरात कहो किस कामकी॥ दुविधा को कर दूर पीतम को ध्याइये। आन देवकी सेव न घित्त लगाहये॥ आन देवकी सेव भली नहि जीवको। कहै कबीर विचार न पावै पीवको। तोर हीरा हिराइल या किचग्रेमें। कोई दूँढे पूरद़ कोई कोई दूँढ़े पश्चिम कोई दूँढ़े पानी-पथरे में । दास कबीर ये हीराको परखें बाँध लिहले जीयराके अँपरेमे। टिप्पणी-हिराइल बा 5 खो गया है। बाँध लिहलै & बाँध लिया। जीयरा 5८ हृदय। किचड़े + कीचड़। विषय। हीरा > ज्ञान। आयी दिन गौनेकी हो, मन होत हुलास। डोलिया उठावे बीजा बनवा हो, जहें कोई न हमार ॥ पह्यों तोरी लागी कहरवा हो, डोली घर छिन बार। मिल लेवे संख्या सहेलर हो, मिलीं कुल परिवार ॥ दास कबीर गावै निरणुन हो, साधो करि ले विचार। नरम-गरम सौदा करि ले हो, आगे हाट ना बाजार ॥ टिप्पणी-बीजा 5 बीच। छिन बार 5 एक क्षण के लिये। अरे दिल, प्रेमनगर का अन्त न पाया, ज्यो आपा त्यो जावेगा। सुन मेरे साजन सुन मेरे मीता, या जीवन मे क्या क्या बीता॥ सिर-पाहनको बोला लीता, आगे कौन छुड़ावैगा। परली पार मेरा मीता खड़िया, उस मिलने का ध्यान न घरिया। टूटी नाव उपर जो बैठा, गाफिल गोता खाबैगा ॥ दास कबीर कहै समुझाई, अन्तकाल तेरा कौन सहाई। चला अकेला संग न कोई, कीया अपना पाबैगा॥ अर्थ-परलीपार > विषयो के पार। टूटी नाव का आर्थ गलत साधन या विषय से है।

महाकवि रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रशसित रचनाएँ, छछए बेद कहे सरगुन के आगे निरगुन का बिसराम। सरगुन-निरणुन तजहु सोहागिन, देख सबहि निज धाम | सुख-दुख वहाँ कछु नहि व्यापै, दरसन आठों जाम। नै ओढ़न नूरै डासन, भूरे का सिरहान। कहैं कबीर सुनो भाई साथो, सतुगुरु नूर तमाम। | दिप्पणी-सगुण वेद निर्गुण ब्रह्म को बताकर कहता है। वही विश्वाम मानत्ता है।कितु यह ठीक नही है। ब्रह्म निर्गुण संगुण से परे है। सब को अपने भीतर देखो। ब्रह्म का प्रकाश ही महत्त्व की है। तू सूरत नैन निहार वह अंडमें सारा है। तू हिरदे सोच विचार यह देस हमारा है। सतगुरु दरस होंय जब भाई, वह दें तुमको प्रेम चिताई, सुरत-निरत के भेद बताई, तब देखे अण्ड के पारा है॥१॥ सकल जगत में सतकी नगरी, चित्त भुलावै बांकी डगरी, सो पहुँचे चाले बिन पग री, ऐसा खेल अपारा है॥२॥ टिप्पणी-अंड - ब्रह्माण्ड। बाकी > टेढा रास्ता। लीला सुक्ख अनन्त वहाँकी जहाँ रास-विलास अपारा है, गहन-तजन छूटे यह पाई फिर नहि पाना सताना है ॥३॥ टिप्पणी-गहन-तजन > ग्रहण और त्याग । पद निरयान है अनन्त अपार सुरति मूरति लोक पसारा, सत्तपुरुष नूतन तन धारा साहिब सकल रूप सारा है॥४॥ बाग-बगीचे खिली फुलवारी अंमृत-लहरे हो रही जारी इंसा केल करत तह भारी जहेँ अनहद घूरे अपारा है॥५॥ तामध अधर सिहासन गाजे

छ८० कबीर समग्र पुरुष महा तहँ अधिक बिराजे कोटिन सूर रोम इक लाजै ऐसा पुरुष दीदारा है ॥६॥ पंथ बिना सतराग उचौरें जो बेधत हिये मेंझारा है। जन्म जन्मका अंपृत्त धारा जहें अधर-अपृत फुहारा है ॥७॥ सतसे सत्त सुच्र कहलाई, सत्त भंडार याहीके माही, निःतत रचना ताहि रचाई जो सदहिनते न्यारा है ॥८॥ अहद लोक वहाँ है थाई, पुरुष अनामी अकह कहाई। जो पहुँचे जानेगे वाही कहन सुननते न्यारा है ॥९॥ रूप-सरूप कछु वहें नाहीं, ठौर-ठाँव कछु दीसे नाहीं । अजर-तूल कछु दृष्टि न आई। कैसे कहुँ सुमारा है ॥१०॥ जापर किरपा करिहें साईं अनहद मारग गाव ताही। उद्धव परलय पावत नाहीं जब पावे दीदारा हो ॥११॥ कहै कबीर मुख कहा न जाई ना कागदपर अंक चढ़ाई। मानों गूँगे-सम गुड़ खाई कैसे बयन उचारा हो ॥१ ३॥ टिप्पणी-हसका प्राप्य सत्यलोक का वर्णन है। नाकागदा लिखा नहीं जा सकता। न कहा जा सकता है। चला हंसा वा देस जहेँ पिया बसे चितचोर। सुरत सोहागिन है पनिह्ारिन, भरै ठाढ़ बिन डोर ॥ वहि देसवों बादर ना उमड़ै, रिमप्लिम बरसे मेह। चौबारे मे बैठ रहो ना, जा भीजहु निर्देह ॥ बहि देसवा नित्त पूर्निमा, कब्हुँ न होय अधेर।

5 कक 20: "लक ३७ ५ + हक, कलल्पबे+ओ अं लक: दिकत महाकवि रवीन्धनाथ द्वारा प्रशसित रचनाएँ ७८१ एक सुरजके कबुन बताबै, कोटिन सुरज उँजेर ॥ टिप्पणी-सूरत डोर < सुरति सुहागिन जहा बिना डोरी के ही पानी भरती है। डोरी ८ ध्यान। मेह > आनदवर्षा। चौबारे निर्देह 5 वहाँ ओसारे की जरूरत नहीं है, वहाँ बिना देह के आनद लेना है। कहैँ कयीर सुनो हो साधो, अंमृतत-बंचन हमार। जो भल चाहो आपनो, परखो करो दिधार॥ जे करतातें ऊपजे, तासों परि गयो बीच। अपनी बुद्धि विवेक बिन, सहज दिसाही मीच ॥ यहिमेते सब मत चलै, यही चल्यौ उपदेस | निश्यय गहि निर्भय रहो, सुन परम तत्त संदेस ॥ केहि गावो केहि धावहू, छोड़ो सकल धमार। यह हिरदे सबको बसे, क्यों सेवो सुन्न-उजाडू ॥ दूरहि करता थापिके, करी दूरकी आस। जो करता दूरे हुते, तो को जग सिरजै आन॥ जो जानो यहें है नहीं, तो तुम धावो दूर। दूरसे दूर भ्रमि भ्रमि, निष्फल मरो बिसूर॥ दुरलभ दरसन दूरके, नियर सदा सुख-दास। कहें कबीर मोंहि व्यापिया, मत दुख पावै दास ॥) आप अपनपौ चीन्हहू, नख-सिख सहित कबीर। आनंद-मंगल गावहू, होहि अपनपौ थीर ॥ टिप्पणी-परखी > परीक्षण करो। जे मीच 5 जिस ईश्वरसे उद्मन्न हुए हो अज्ञान के कारण तुम अपने को उससे भिन्न समझते हो। अपनी विवेकशून्य बुद्धि के कारण तुमने मृत्यु पर विश्वास किया या मृत्यु ने तुम्हे धोखा दिया। यहिमेते . सदेस > इसी बुद्धि से सब मत निकले है। तुम सत्य को ग्रहण करके निर्भय रहो। धमार 5 गान विशेष, हुड़दंग। दूरहि करता आस कर्ता को दूर रख कर उससे पर लोक की आशा करते हो। विसूर « पछताकर, दु ख करके। ना में धर्मी नाहीं अधर्मी, ना में जती न कामी हो। ना मै कहता ना मैं सुनता, ना मैं सेवक-स्थामी हो। ना मैं बंधा ना मैं मुक्ता ना सें बिरत न रंगी हो। ना काहू से न्‍्यारा हुआ, ना काहू के संगी हो। ना हम नरऊ-लोक को जाते, ना हम सुर्ग सियारे हो। सब ही कर्म हमारा कीया, हम कर्षनतें प्यारे हो। या मतको कोई बिरलै बजे, सोइ अटर हो डैडे हो ।

७८२ कबीर समग्र मत कबीर काहू को थापे, मत काहू को मेटे हो ॥ टिप्पणी-- अटर + अटल।| जत - सन्यासी | सुर्ग स्वर्ग। थापै ८ स्थापित करे। सत्त नाम है सबते न्यारा। निर्गुनसर्गुनशव्द-पसारा ॥ निर्गुन बीज सर्गुन फल-फूला। साखा ज्ञान नाम है मूला॥ मूल गहेतें सब सुख पादे। डाल-पात मे मूल गँवाये ॥ साईं मिलानी सुख दिलानी। निर्गुन-सर्गुनभेटमिटानी ॥ प्रथम एक जो आपे आप। निराकार निर्गुन निर्जाप॥ नहिंतव आदि-अन्त-मघ-तारा । नहितव अंध-घुंध उजियारा ॥ नहितव भूमि-पवन-आकासा । नहि तवपाबक-नीर-नीवासा ॥ नहिंतवसरसुति-जमुना-गंमहितवसागर-समुद-तरंगा ॥ नहि तव पाप-पुन्न नहि वेद-पुराना । नहि तव भये कतेब-कुराना ॥ कहें कबीर विचारिके, तब कछु किरपा नार्हि। परम पुरुष तहें आपही, अगम-अगोयर मार्हि॥ करता कछु खाबे नहि पीवै। करता कबहूँ मरे न जीवै॥ करता के कछु रूप न रेखा। करता के कछु बरन न भेखा॥ जाके जोत-गोत कछु नाही। महिमा वरनि न जाय मो-पा्ही । रूप-अरुप नही तेरा नाव । वर्न-अयर्न नही तेहि ठाँव। कहे कयीर विद्यारिके, जाके बर्न न गाँव। निराकार और निर्गुना, है पूरन सब ठोव॥ करता आनंद खेल लाई, ओकारते सृष्टि उपाई॥ आनन्द घरती आनन्द आकासा। आनन्द चद-सूर परकासा । आनंद आदि अंत-मघ-तारा। आनंद अंधकृप उजियारा ॥ आनदसागर- समुद्र-तरंगा आनंदसरसुतिजमुना-गगा ।। करता एक और सद खेल। मरन-जनम बिरह मेल ॥ खेल जत-वल-सकल जहाना। खेल जानी ऊनी असमाना ॥ खेल का यह सकल पसारा। खेल माहि रहे संसारा॥ कहें कबीर सब खेलनमाही। खेलनहार को चीन्हे नाहीं॥

महाकवि रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रशसित रचनाएं ७८३ टिप्पणी-करता.> कर्त्ता ने आनद से ही सब कुछ उत्नन्न है। सब कुछ आनद ही है। खेल - लीला। झी झी जंतर बाजै। कर चरन बिहूना भाये। कर बिनु याजै सुने श्रवन बिनु श्रवन श्रोता लोई। पाठ न सुबास सभा दिनु अवसर बुझौमुनि-जनसोई ॥ ; - दिप्पणी-कर चरन विहूना 5 बिना हाथ पैर के। पाट न सुवास 5 न कोई पाट हैन सुवास है। पाट 5 पट्टवस्र, बहुमूल्य रेशमी वख्र। सुवास 5 सुगधि| सभा विनु अवसर 5 न कोई सभा है। न नाच देखनेवाला है। न कोई अवसर है। मोर फकिरवा माँगि जाय, में तो देखहू न पौल्यो। मंगन से क्या मांगिये, बिन माँगे जो देय। कहे कबीर मे हो वाही को, होनी होय सो होय॥ दिप्पणी-मेरा फकीर मुझसे कुछ मॉग जाता है। मै उसे देख भी नहीं पाया। मै स्वय भिखारी हूँ, मगन से क्या मॉगना! फिर उस मगन से मॉगने का तो कोई प्रश्न ही नही उठता जो बिना मॉँगे ही अपना सर्वस्व दे दे। कबीर कहते है कि मै तो उसीका हूँ, अब जो होना हो सो हो। नेहर से जियरा फाट रे। नैहर नगरी जिसके बिगड़ी, उसका क्या घर-बाट रे। तनिक जियरवा मोर न लागै, तनमन बहुत उचाद रे। या नगरी में लख दरवाजा, बीच समुंदर घाद रे। कैसे के पार उतरिंहे सजनी, अगम पंथका पाट रे। अजब तरहका बना तंयूरा, तार लगे मन मात रे। खूँटी टूटी तार बिलगाना, कोउ न पूछत बात रे। हैंस हंस पूछे मातुपितासों, भोरें सासुर जाब रे। जो चाहे सो वो ही करिंहें, पत वाही के हाथ रे। नहाय-धोय दुल्हिन होय बैठी, जोहे पिय की शाद रे। ._ तनिक एुंघटवा दिखाव सदीरी, आज सोहाग की रात रे। कहे कबीर सुनो भाई साधो, पिया-मिलन की आस रे। भोर छोत दंदे याद करोये, सींद न आयै खाद रे।

७८४ कवीर समग्र टिप्पणी-तबूरा 5 शरीर। खूँदी तार इद्रिय और अन्त करण। नैहर & दुनिया। सासुर « परलोक। न्हाय धोय > विषय रहित हो। सोहाग > सौभाग्य | जीव महल मे सिद पहुनदाँ, कहाँ करत उनमाद रे। पहुँचा देवा करिले सेवा, रेन चली आवत रे। जुगन जुगन करे पततीछन, साहय का दिल लाग रे। सुझ्नत नाहि परम-सुख-सागर, विना प्रेम बैराग रे। सरवन सुर बुझि साहेबसे, पूरन प्रगट भाग रे। कहै कबीर सुनो भाग हमारा, पाया अचल सोहाग रे। टिप्पणी-पहुनवाँ + अतिथि। परमात्मा। सरवन सुर 5 श्रेवण सुखद शब्द | गगनघटा घहरानी साधो, गगनघटा घहरानी। पूरब दिससे उठी है बदरिया, रिमप्लिम बरसत पानी। आपन आपन मेंड़ सम्हारो, बहयो जात है पानी । सुरत-निरत का बेल नहायन, करे खेत निर्वानी। घान काट मार घर आवै, सोई कुसल किसानी। दोनों थार बराबर परसे, जेवें मुनि और ज्ञानी॥ टिप्पणी-गगन घटा 5 साधना की पूर्णता। पूरव दिस > सहस्ार। मेड़ सँभाल 5 सयम नियम। धान काटना > परम पुरुषार्थ को पाना। दोनो थार & सुरति निरति की थालियों। सगुण-निर्गुण। ज्ञान-भक्ति। बेला 5 बेला। समय अथवा किनारा। आज दिनके मैं जाउँ बलिहारी | पीतम साहेद आये मेरे पहुना, घर-आँगन लगे सुहौना ॥ सब प्यास लगे मंगल गायन, भये गगन लखि छबि मनभावन॥ चरन पाएँ निहारूँ, तन-मन-धन सद साई बाऊँ॥। जा दिन पाये पिया धन सोई, होत अनंद परम सुख होई॥ सुरत लगी सत नामकी आसा, कहें कबीर दासन के दासा॥ कोई सुनता है ज्ञानी राग गगन मे, अवाज होती पीनी। सद घट पूरन पूर रहा है, सब सुरन के खानी। जो तन पाया खंड देखाया, तृस्ना नहीं बुझानी। अंमृत छोड़ खंडरस चाखा, तृस्ना ताप तपानी॥ ओ अंग से अंग बाजा बाजे, सुरत-निरत समानी। कहें कबीर सुनो भाई साधो, यहीं आद की बानी ॥

महाकवि रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रशसित रचनाएँ ७८५ टिप्पणी-पीनी + गभीर। जो तनाः तपानी 5 जिसने शरीर पारकर को खड सल ही दिखाया उसकी तृष्णा कभी शान्त नहीं हुई। उसने सपूर्ण सत्य के अमृत को छोड़कर खण्ड सका ही आस्वादन किया। ओ अग सो अग > वे ही यह है और यही है और यही वे है? | दें कासों कहों आपन पियकी बात री । कहै कबीर बिछुड़ नहि मिलिही ज्यों तरवर छोड़ बनधाम री ॥ संसकिरत भाषा पढ़ि लीन्हा, ज्ञानी लोक कहो रही। आसा-तृस्ना मे बहि गयो सजनी, कामके ताप सहो रही ॥ मान मनी की महुकी सिरपर, नाहक बोलइन्न मरो रही। मदुकी पटक मिलो पीतम से, साहेब कबीर कहो री ॥ टिप्पणी-मान मनी > मान रूपी मणि। चरखा चले सुरत बिरहिन का। काया नगरी बनी अति सुंदर, महल बना चेतन का। सुरत भाँवरी होत गगन में, पीढ़ा ज्ञान-रतन का। मिहीन सूत बिरहिन कातें, माँझा प्रेम-भगति का। कहें कबीर सुनो भाई साधो, माला गुंथो दिन रैनका। पिया मोर ऐंहैं पगा रणिहे, आस भेंट देहों नैनका। - टिप्पणी-भगवस्मेम विरहिनी का चरखा चल रहा है। सुरत भॉवरी > प्रेम की भावर जो व्याह के समय वर कन्या देते है। मॉझा - हल्दी। माला गूथी' > दिन और रात की माला | (र्माल) गूँदूँ। (उन्ही महीन सूतो से) पगा रखिहै - चरण रखेगे, पधारेगे। कोटिनभानु-चंद्र-तारा-गन छन्रकीछांहरहाई । मनमें मन नैननमें नैना, मन नैना इक हो जाई। सुरत सोहागिन मिलन पियाको, तनके तपन बुझाई। कहे कबीर मिल प्रेम-पूरा, पिया में सुरत मिलाई॥ अबधू बेगम देस हमारा। राजा-रंक-फकीर-बादसासबसेकहींपुब्हारए । जो तुम चाहो परम-पद को, दसिहो देस हमारा॥ जो तुम आये पीने होके, तजो मनकी भारा। ऐसी रहन रहो रे प्यारे, सहजै उत्तर जीवो पारा॥ धरन-अकास-गगन कछु नाहीं, नही चन्द्र नहि तारा।

७८६ कबीर समग्र सत्त-धर्म की है महताबें, साहेब के दरयारा। कहें कबीर सुनो हो प्यारे, सत्त-धर्म है सारा॥ टिप्पणी-बेगम देस ८ दुख रहित देश। साधको का देश। वे परवाह जीवन। मनकी भारा - मनकी कल्पना का विषय बोझ। जो तुमा तुम यदि सूक्ष्म रूममे आए हो तो मानसिक भारको छोड़ दो। महताबे > प्रकाश । टिप्पणी-प्राना सॉईके संग सासुर आई। संग ना रही स्वाद ना जान्यो, गयो जोबन सुपनेकी नाई। सखी-सहेली मंगल गावे, सुखदुख माथे हरदी चढ़ाई। भयौ विवाह चली बिन दूलह, बाट जात समधी समझाई। कहै कबीर हम गौने जैबे, तरत कन्त लै तूर बजाई। समुझ देख मन मीत पियरवा, आसिक हो कर सोना क्या रे। पाया हो तो दे ले प्यारे, पाय पाय फिर खोना क्या रे। जब अँखियन में नींद घनेरी, तकिया और बिछीना क्या रे। कहें कबीर प्रेमका मारग, सिर देना तो रोना क्या रे। साहेब हममें साहेब तुममें, जैसे प्राना बीजमें। मत कर बन्दा गुमान दिल में, खोज देख ले तनमें। कोटि सूर जहँ करते झिलमिल, नील लिए सोहै गगनमें। सद ताप मिट जाय देहीके, निर्मल होय बैठी जगमें। अनहद घंटा बजै मुदंगा, तन सुख लेहि पियारमें। बिन पानी लागी जहँ बरषा, मोती देख नदीनमें। एक प्रेम ब्रह्माण्ड छाय रह्यो है, समझे बिरले पूरा। अँध भेदी कहा समझैगे, ज्ञानके घरतें दूरा। बड़े भाग अलमस्त रंगमे; कबिरा बोले घटमें। हंस-उबारनदुःख-नियारन्मावा-गमननमिटैछनमें । पत्तियाँ | रितु फागुन नियरानी, कोई पियासे मिलावे। . पियाको रूप कहाँ लग बरनूं, रूपहिं मोहि समानी। जो रंगरंगे सकल छबि छाके, तन-मद सभी भूलानी |

महाकवि रवीद्धनाथ द्वारा प्रशसित रचनाएँ ७८७ यों मत जाने यहि रे फाग है, यह कुछ अकह-कहानी। कहै कबीर सुनो भई साधो, यह गत दिरले जानी ॥ नारद, प्यार सो अन्तर नाहीं। प्यार जागे तौही जाएँ प्यार सोचे तब सोऊँ। जो कोई मेरे प्यार दुखावै जड़ा-मूलसों खोऊँ।॥ जहाँ मेरा प्यार जस गावै तहाँ करो मैं बासा। प्यार चले आगे उठ धाऊँ मोहि प्यारकी आसा॥ बेहद तीरथ प्यारके चरननि कोट भक्त समाय। कहैं कदीर प्रेमकी महिमा प्यार देत चुझाय। टिप्पणी-जो कोइ जो कोई मेरे प्यार को कथ्ट देता है उसका जड़ मूल से विनाश कर देता हूँ। बेहद. चरननि 5 प्यार के चरणो मे अनेक तीर्थ बसते है। कोट. समाय 5 प्यार के चरणो मे करोड़ो भक्त समाहित है। कोई प्रेमकी पेंग झुलावै। भुजके खंभ और प्रेमके रससे, तन-मन आजु झुलाव रे। नैनन बादरकी झर लाओ; श्याम घटा उर छाव रे। आवत आवत श्रुतकी राहपर, फिकर पियाको सुनाव रे। कहत कबीर सुनो भाई साधो, पियाको ध्यान चित लाव रे। टिप्पणी-भुजके खभ॒ रे 5 भुजाओ के खंभो पर प्रेम से तन और मन को झुलाओ। आवत' रे 5 कान के पास आकर प्रिय को अपनी प्रेम। व्याकुलता सुनाओ।

[विप्रमतीसी आदि | साखी, सबदी और रमैनी के अतिरिक्त सत कबीर की कुछ अन्य रचनाएँ भी प्राप्त है। इनमे विप्रमतीसी, कहरा, बसत, चॉँचर, बेलि, विरहुली, हिडोला मुख्य है। ज्ञान चौतीसा तथा कुछ अन्य रचनाएँ परिशिष्ट मे है। विप्रमतीसी की तीस पक्तियो मे ब्राह्मणों के बारे मे मत व्यक्त हैं। इसमे एक साखी भी है।यह शब्द विप्रमत से बना है। सुनहु सभन्हि मिलि विप्रमतीसी, हरि बिनु बूड़ी नाव भरी सी। द्राह्मन होय के ब्रह्म न जाने, घर महँ जग्य प्रतिग्रह आने। जे सिरजा तेहि नहि पहिचानै, करम धरम लै बैठि बखाने। ग्रहन अमावस सायर दूजा, सांती पाठ परोजन पूजा । शब्दार्थ-नाव 5 ससार। शरीर। प्रतिग्रह + दान। जग्य > कर्मकाड द्वारा ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्ति का विधान। आने 5 ढाना। जे 5 जिसने। सिरजा 5 सृजित किया। तेहि ८ उसे। करम धरम 5 वर्णो और आश्रमो के कर्म धर्म। बखाने 5 उपदेश देना। निर्णय देना। सायर (< स़ु सकाल्य) - हवन की सामग्री। दूजा 5१ द्वितीया। २ दुवारे। साती पाठ ८ ओम शाति' शाति शाति तथा वैदिक मंत्र। परोजन (प्रेत के लिये किये जाने वाला आटे का पिड दान। अंतर पेट। असौच - अशुद्ध। प्रेत कर्म। किसी के मरने पर परिवार वालो को छगने वाली अशुद्धि। उचिश - बचाहुआ। जूठा। भरिश्ट 5 भ्रष्ट। दारा 5 स्री। नहाय खोरि उत्तिम द्वै आये, विस्नु भग्त देखे दुख पाये। स्वारथ लागि रहे बेकाजा, नाम लेत पावक जौ डाजा। राम कृस्न की छोडिन्हि आसा, पढि गुनि भए क्रितिम के दासा। करम पढ़ें करमहि कौ धावें, जो पूँछे तेहि करम दिठावै। शब्दार्थ-खोरि 5 तिलक चदन लगाना। बेकाजा > व्यर्थ । पावक 5 आग। जौं - जैसे। डाजा 5 दग्ध। क्रितिम 5 १ मूर्ति। २. तीन गुण। करम 5 कर्मकाड। वैदिक छौकिक यज्ञ एवं पूजा पाठ विधि। दिढावै ८ दृढ़ करना। निहकरमी के निदा कीजै, करम करे ताही चित दीजै। ऐसी भक्ति भगवंत की लावै, हिरनाकुस को पंथ चलावै। देखहु कुमति केर परगासा, भए अमभिअंतर किरतिम दाता। जाके पूजे पाप न ऊड़े, नाम सुमिरिनी भव मेंह बूड़े। शब्दार्थ-निहकरमी + कर्म हीन | |कर्मकांड मे विश्वास न करने वाला। सुम्रति 5 स्वृति। धर्मशास्र। अभिजतर 5 हृदय । जाके 5 जिस मूर्ति के। सुमरिनी 5 स्मरण। भव 5 ससार -

(७८८)

धर विप्रमतीसी आदि ७८५ 0380 पाप पुन्नि के हाथहि पासा, मारि जगत का कीन्ह बिनासा। ई बहनी कुल बहनि, कहावें, ई गृह जारें वा गृह 380 बैठे ते घर सहु कहाबै, भितर भेद मन मुसहि लखावें। ऐसी बिधि सुर विप्र भनीजै, नाम लेत पीठासन दीजै। बड़ि गए नहि आएु संभारा, ऊँच नीच कहु काहि जोहारा। ऊँच नीच है मध्य की यानी, एक पवन एक है पानी। एके मटिया एक कुम्हारा, एक सभन का सिरजनहारा। एक चाक सब घित्र बनाई, नाद-विद के मध्य समाई। शब्दार्थ- पासा > १ चौसर खेल की गोटियॅा। २ बंधन। मारि 5 चौसर या चौपड़ के खेल मे होने वाी हार-जीत। इस ससार के पापपुण्य चौपड़ के खेल जैसे है। बहनी 5 बह्लि। आग। कुढबहनि 5 कुलाग्नि। वश को धारण करने वाली। ई गृह 5 इह छोक। वा गृह ८ परलोक। मुसहि 5 चोरी करना। भनीजै ₹ कहिए। पीठासन 5 ऊँचा पीढ़ा। सुरविप्र *- ब्राह्मण देवता। भूसुर। आपु & स्वय को। जोहारा 5 प्रणाम करना। मटिया 5 पच महाभूत। कुम्हारा ब्रह्म । चाक 5१ चक्र २ काला परिवर्तन। चित्र 5 सृष्टि। शरीर। नादविद - ब्रह्माड मे होने वाला अव्यक्त स्पदन। सुषुम्ना के भीतर की अव्यक्त ध्वनि को नाद कहते है। सृष्टि की ओर उन्मुख घनीभूत नाद को बिदु कहते है। नाद 5 रज। बिदु 5 वीर्य। व्यापिक एक सकल की जोती, नाउ धरे का कहिये भोती। राछस करनी देऊ कहावै, बाद करे गोपाल न भाव । हंस देह तजि न्यारा होई, ताकर जाति कहें थी कोई। स्थाह सफेद की राता पियरा, अबरन बरन की ताता सियरा। शब्दार्थ-जोती & प्रकाश। आत्मा। नाउ 5 नाम। भोती 5 भौतिक। शरीर सबधी। मानवेतर योनि। राछस 5 शाक्त। देउ 5 देवता। बाद & बहस । सिद्धात। हस 5 आत्मा। थी - भला। राता 5 छाल। ताता 5 गर्म| सियरा ८ ठडा। हिंदू तुरक की बूढों बारा, नारि पुरख का करहु विचारा। कहिये काहि कहा नहि माना, दास कबीर सोई पै जाना। शंब्दार्थ-वारा > बालक | बहा है बहि जात है, कर गहि ऐंचहु ओर। जो कहा नहि माने, दे धक्का दुइ और। | कहरा | कहरा एक प्रकार का छोक गीत है। छुगता है इसे मुख्यतः कहार लोग गाते थे। इसे . कहरवा भी कहते है। इन गीतो मे अश्लीलता होती है। इसके ताल मे आठ मात्राएँ होती है। धागे न ति, न क, धि न। इसे दादरा मे भी गाते है' ह सहज ध्यान रहु सहज ध्यान रहु, गुरु के बचन समाई हो। मेली सिस्टि चराचित राखहु, रहहु दिस्टि लौ लाई हो। जस दुःख देखि रहहु यहि अवसर, अस सुख होइहै पाये हो। जो खुटुकार बेगि नहि लागै, हिरदय निवारह कोहू हो। शब्दार्थ-सहज ध्यान 5 सहज शब्द का प्रयोग हठ के विरुद्ध है| हठयोग नहीं। सहज श्ोग या सहजध्यान। समाई - तन्मय। निमग्न। मेली > गैली। विकार युक्त। सिस्टि ८ सृष्टि।

। ७९० कबीर समग्र चरा 5 चचढ। चरा चित 5 चचढ चित्त| लौ > प्रेम। खुटकार 5 खटका। चिता। कोहू « क्रोध। राखहु 5 सम्हालो | अर्थ-सत कवीर कहते है कि हे भाई, हठयोग या किसी कठोर साधना मे न जाकर सहज, सरल ध्यान करो। सदगुरु के वचनो मे अच्छी तरह निमग्न हो जाओ। यह सपूर्ण सृष्टि . मैली (गुण-दोष युक्त) है या मायामत (आणव) वाली है। अपने चचल चित्त को विषय प्रवाह में जाने से रोक रखो। चित्त को सम्हालो। दृष्टि को हर वक्त परमात्मा मे ढूगाए रहो। जो साधना का दुख देखता है भविष्य मे सुख पाता है। दुख पाने वाला ही सुख पाता है। हृदय से क्रोध हटा दो। क्रोध ही चिता का, दुख का कारण है। मुकुति की डोरि गाढ़ि जनि खैंचहु, तब याज्ञी बड़ रोहू हो । मनुवहि कहहु रहहू मन मारे, खिद्लुवा खीक्षि न बोले हो। मानू मीत मितेया न छोड़े, कबहुँ गाँठि न खोले हो। भोगो भोग भुगुति जनि भूलहु, जोग जुगुति तन साधहु हो। . अर्थ-मुक्ति की साधना रूप रस्सी को कठोरता पूर्वक (गाढ़ि) मत खीचो। कठोर साधना करने की जरूरत नहीं। सहजसाधना करो। सहज साधना द्वारा ही आत्म तत्त्व रूपी बड़ी रोहू मछली बहती है। फेंसती है। मन को मारो। अमन करो। मन ही मन राम को भजो। बाहर प्रदर्शन नही। खिझाने वालो से खीझ कर मत बोलो। मित्रता मत छोड़ो। कभी भी अपनी गॉठ (रहस्य) मत खोलो। विषय की ओर मत जाओ। भोग भोगते हुए भी भक्ति (भुगुति) को मत भूलो। योग युक्ति से शरीर पर अधिकार रखो। जो यहि भाँति करहु मतवाली ता मन के चित बाँधहु हो। नाहि ती ठाकुर है अति दारुन, करिंहे चाल कुचाली हो। बॉधि मारि डॉड़ि सम लै है, छुट्हे भल टूटिहि हो। जबही साँवत आनि पहुँचे, पीठि सांटि भल टूट्डि हो। शब्दार्थ-मतवाली 5 9१. मतवालापन। साधना मे मस्त। भगवहस मे डूबा। २ विचारधारा। मत 5 १ मस्ती। २ अहकार।| ठाकुर 5 $ यम। २. ईश्वर। डॉड़ि ८ दड। सावंत (< सामत) - 28 साटि 5 डडा। पीठि 5 पीठ पर। ढे लोग कुटुम सभ देखे, कहे कहु के न छूटिहे हो। एक तो निहुरि पाँव परि विनवै, विनति किए नहि माने हो। अनधिन्ह रहेउ न कियेहु चिन्हारी, सो केसे पहिचाने हो। लीन्ह बोलाय बात नहि पूछै, केवट गरभ ते न बोले हो। शब्दार्थ- कहे काहु + किसी के कहने पर। निहुरि 5 झुक कर। चिन्हारी 5 पहचाना । परिचय | सो 5१ वह। २ प्रभु। ३ यमदूत। केवट - यमदूत। जेकरे गाँठि समर कछु नाही, सो निरधन होय डोलै हो। जिन्ह सम जुक्ति आगमन के राखिन, धरनि माछ भरि डेडरि हो। जेकरे हाथ पाँव कछु नाही, धरे लागु तेहि सोहरि हो। पेलना अछत पेलि चलु बौरे, तीर तीर का टोव्ट्ु हो । शब्दार्थ-9 समर सम्वहू। पाथेय | २ पुण्य। भक्ति। निरधन 5 भक्ति हीन। अगमन * आगम। भविष्य। जुक्ति प्रभु प्राप्ति की साधनाएँ। धरनि < पकड़ा। माछ > मन। भरि डेहरि 5 देहली। सोहरि 5 वह रस्सी जिसके द्वारा नाव के पाल की रस्सी खीची जाती है। पेलना 5 १ नाव खेने वाला बॉस। २ शरीर। अछतत > रहने। पेलि + हटाकर। तीर तीर जदी का किनारा। टोवहु & टटोलना। वौरे & साधक। । !

बा ओ-कैओ +>2]95 3. >> विप्रमतीसी ' आदि ७९१ अर्प-जिसकी गाँठ मे पाथेय नही है। अर्थात् जिसने प्रभु के यहाँ पहुँचने की यात्रा मे कोई साधना (समर) नही की है। वह धनहीन, साधना रहित व्यक्ति विषयो मे डोलता, घूमता रहता है। स्वामी रहित छुट्टे जानवर सा उसका जीवन, ससार यात्रानिरर्थक है। जिसने साधना की। साधना द्वारा भविष्य को ठीक रखा। मन मछली को विषयो के प्रवेश द्वार पर ही पकड़ * हिया। वह व्यक्ति ही ठीक है। जिसके हाथ पॉव नही है। अर्थात् निर्गुण निराकार ब्रह्म, उसकी उपासना। वही ससार सागर से पार करने की नाव के पाछ की रस्सी खीचता है। ऐ साधक, शरीर रूपी बॉस के रहते ससार के विषयो को हटाते चलो। किनारे खड़ा होकर देखने से कोई फायदा नहीं है। तीर तीर टोवहु का अर्थ है साधना मे तल्लीनता का अभाव। अल्प साधना से प्रभु प्राप्ति की कोशिश ।प्रभु प्राप्ति की कोशिश[किसी साधना की मध्य गहराई मे न प्रवेशकरना। उथले रहहु परहु जनि गहिरे, मति हाथहु की खोबहु हो। ऊपर के घाम तरे के भूंभरि, छाँह कतहुं नहि पायहु हो। ऐसनि जानि पसीजहु सीझहु, कस न छत्तरिया छायहु हो। जो कछु खेल किए सो कीयेहु, बहुरि खेल कस होई हो। शब्दार्थ-उथले 5 अल्प ज्ञान। रहहु 5 रहते हो। मति हाथहु ८ सामान्य प्राप्त ज्ञान। स्वाभाविक बुद्धि। घाम 5 धूप। भूभरि > गर्म धूल। सीझहु 5 पक रहे हो। कष्ट सहते हो। कस - क्यो छतरिया ८ गुरु या भगवत्कृपा का छत्र| छोँह - सुख | ,आनद | अर्व-हे साधक, अल्प ज्ञान साधना मे पड़े हो। गभीर ज्ञान नहीं प्राप्त करते। अल्प, अपूर्ण ज्ञान साधना से स्वाभाविक धर्म बुद्धि भी नष्ट हो रही है। स्वर्ग (ऊपर) मे विषयो की गर्मी है। धरती (तरे) पर वासनाओ की आग जल रही है। कही भी आनद नही है। इस प्रकार पसीने से छथपथ हो। दुखी हो। इनसे गुरु कृपा का छत्र बचा सकता है। उसे ही तानो। गुरु कृपा प्राप्त करने की कोशिश करो। अब तक सासारिक विषयो से जो कुछ भी खेल किया सो किया। विषयो को भोगा सो भोगा। इस शरीर के छूट जाने पर ससार खेल सभव नही। यह मानव देह मिलना कठिन है। सास ननद दोउ देतु उलाहन रहहु लाज़ मुख योई हो। गुर भी ठील गोनि भे लूचपचि, कहा न मानहु मोरा हो। ताजी तुरुकी कबहूँ न साजेहूं, चढ़ेहु काठ के घोरा हो। ताल झाँत्ष भल बाजत आवै, कहरा सम कोई नाचे हो। ' शब्दार्थ-गोई + छिपाए। ताजी > अरबी घोड़ा। तुरकी * तुर्किस्तान का घोड़ा। ताह ८ ० की ध्वनि। झाझ 5 कॉस का गोल बाजा। यह दो होता है। दोनो हाथो से बजाया जाता है। अर्थ-विद्वानो ने सास ननद का अर्थ माया एव कुमति किया है। एसे मे सास ननद किस बात का उलाहना देती है ?उनके उलाहने से लज्जा क्यो आती है? यहाँ सास का अर्थ परमात्मा की भक्ति और ननद का अर्थ माया लेना ठीक लगता है। भक्ति का उलाहना है कि पूरी भक्ति नही की। माया का उलाहना है कि भक्ति के चक्कर मे माया का सुख भी नही ठीक से नही भोगा। दोनो को शिकायते है। दोनों ओर से उलाहना है। परमात्मा साधक का पति और भक्ति परमात्मा की माँ है। क्योकि परमात्मा भक्ति से प्राप्त

होता है। माया जीव का ननद है। क्योकि अजन्मा माया प्रभु पति जैसी ही अनादि है। दोनो का उलाहना सुन जीव का मुख छण्जा से लटक जाता है। वह अपना मुख छिपा छेता है। माया मिली न राम। 'उलाहना'' के स्थान पर 'उलाटन! पाठ ढेने से भी अर्थ इसी प्रकार होगा | गुर, जिस शरीर को बड़ा भारी, महत्वपूर्ण समझे थे। वह शरीर ढीढा हो गया। गोनि

७९२ कवीर समग्र शरीर के सारे बधन, नसे, इद्रियाँदि लचर (लचपच) हो गर्यी। फिर भी मेरी वात नही मानते | भक्ति नही करते। सदगुरु की शरण में नही जाते। तुमने सदा काठ के घोड़े, कृत्रिम, भ्रम मूलक और नश्वर वस्तुओ का प्रयोग किया। कभी भी ताजी तुरकी-घोड़ो के समान ज्ञान और वैराग्य की सवारी, साधना नही की। ताल झज्न, मृत्यु संगीत वज रहा है। सभी कहार, यम दूत प्रसन्नता से नाच रहे है। इस पक्ति मे शव को श्मशान ले जाते समय के नृत्य, वाद्य, सगीत का सकेत है। सभी कहरा नाच नाचते है। जेहि रंग दुलह वियाहन आए, तेंहि रंग दुलहिनि राधे हो। नौका अछत खेवे नहि जानहु, कैसे लगवहु त्तीरा हो। कहषि कबीर राम रस माते, जोलहा, दास कवीरा हो। अर्थ-दूल्हा, परमात्मा एव दुल्हन (जीवात्मा) दोनों ही एक रग के हैं। दोनो एक दूसरे के प्रेम मे अनुरक्त भी है। वर-कन्या दोनो एक ही विश्व चैतन्य है। फिर भी जीवात्मा, दुल्हन में ससार सागर पार करने की क्षमता नही है। साधना रुपी, गुरु रूपी नौका के रहने पर भी कभी उस पर ध्यान नहीं दिया। भक्ति साधना करना नहीं सीखा। पता नहीं यह जीवात्मा कैसे किनारे ढगेगी ? भगवान् के पास पहुँचेगी। जुलाहा कवीर रामरस मे मत्त है| है । कहरा २ । मत सुनु मानिक मत सुनु मानिक, द्विदया यंघ निगारहु हो। अट पट कुंभरा करे कुंभरेया, चमरा गांव न बचे हो। नित उठि कोरिया पेट भरतु हैं, छिपिया आंगन नाथे हो। नित उठि नोवा नाव चठतु है, वेरहिं बेरा योरे हो। राउर की कछु खबरि न जानहु, कैसे क झगरा निबेरु हो। शब्दार्थ-मानिक 5 माणिक्य के समान निर्मल मन। मत 5 १ सिद्धात। विचार। २ नहीं। वध 5 वधन। विषय ग्रंथि (जड़ चेतनहि ग्रधि परि गई-तुलसी)। कुभरा ८ मन। कुभरैया 5 विषय सृष्टि। चमरा गाव & शरीर। बॉचे + दचना। कोरिया 5 जीव रूपी जुलाहा। पेट भरतु 5 9 वस्त्र का पेय भरना। २ ससार का पेट भरना। विविध कर्म करना। छिपिया - रगरेज। ऑगन ८ ससार। नौवा 5 १. नाविक। २ जीव। नाव 5 १. ज्ञान। २. शरीर। ३ सासारिक कर्म। बेरहि ७ १ वेड़ा। २ 'शरीर या शरीर कर्म। बोरे 5 डुवाना। राउर (१ अत करण। २ हृदय स्थित ईश्वर। आत्म तत्त्व। निवरेहु # निवारण। अर्थ-ऐ निर्मल मन, मेरी (सदगुरु) बात, उपदेश सुनो। यह सुन कर हृदय मे पड़ी विषयग्रथि का निवारण करो। मत का अर्थ नही हे ती अर्थ होगा मत सुनो। सासारिक गुरुओ की विषय वाणी को मत सुनो। तुम स्वय साधना द्वारा हृदय स्थित ग्रधि का निवारण करो। चंचल मन कुम्हार अटपटा, विषय बंढ़ाने वाला कार्य करता है। कितु विषय कर्म से यह चर्म शरीर की रक्षा नही होगी। शरीर नष्ट होगा। कोरिया, कोली, जुलाह्म नित्य उठकर, बारवार जन्म लेकर केवल पेट पालने मे उम्र विता देता है। जैसे जुलाहा धागा फैला कर मा पेटे को भरता है। बुनता है। शरीर वख्र को देख जीव रूपी रगरेज प्रसन्नता से नाचता है। आऑगन में नाचना का अर्थ है ससार के विविध कर्मों मे दौड़ने मे सुख मानना। शरीर रूपी नाव को भवसागर पार करने का साधन समझ जीव बार-बार जन्म ग्रहण करता है। किंतु यह हा बेड़ा शरीर कर्मो से ही डूब जाता है। ससार सागर मे

समाप्त हो जाता है। बार-बार डूबता | ऐ मन, परमात्मा के राउर अर्थात् जिस अत पुर, हृदय मे परमात्मा का निवास है। उसका

विप्रमतीसी आदि ७९३ ज्ञान नही है। दूसरा अर्थ है-ऐ मन, तुम्हे अपने ही अंत.करण का ज्ञान नहीं है। का ० के इन्द्र चल रहे है। इस 5 के कारण इन्द्वो का, विषयो के झगड़े का निवारण कैसे संभव है ? अर्थात् संभव नहीं है | अर शक गाँव'मे पाँच तरुनि बसे, त्तामेंह जेठ जेठानी हो । आपन आपन झगरा पसारिनि, पिया सो प्रीति नसानी हो । भैसिन्ह माह रहत नित बकुला, तकुला ताकि न लीन्हा हो। गाइन्ह माह बसेउ नहिं कबहूँ, केसे के पद पहिचनवहु हो। शब्दार्थ-तरुनि 5 इंद्रियाँ। जेठ 5 मन । जेठानी 5 वासना। पिया & प्रभु। भैसिन्ह + दुर्बुद्धि। बकुला 5 छली मनुष्य। मन। तकुछा 5 १ सूत कातने वाला यंत्र। २ (स. ततू कुछ) उस कुल। परमात्मा। गाइन्ह 5 संत। गायन। भगवत्मजन। अर्थ-एक शरीर मे पॉच ज्ञानेद्रियाँ है। उनमे ही मन रूपी जेठ और मन की प्रिया जेठानी वासना भी रहती है। इस प्रपच, ससार के सारे झगड़े इन्ही सब के प्रसार है मर इंद्रिय, मन और वासना के ही झगड़े है। फलत. परमात्म प्रेम नष्ट हो गया। दुर्बुद्धि रूप भैसों के बीच मे छल भरा मन रहता है। इनमे से कोई भी ज्ञान का महीन सूत कातने की ओर ध्यान नही देता। ताकता भी नहीं। अथवा परमात्मा की ओर ध्यान नही देता है। सत गान या संत सगति में कभी न रहने से निर्वाण पद की पहचान सभव नही है। पंथी पंथ पूछि नहि लीन्हो, मूठहि मूढ़ गवारा हो। घाद छाँडि कस औघट रेंगहु, केसे के लगवहु तीरा हो। जतइत के धन हेरिन्हि ललचिन, कोदइत के मन दौरा हो। दुइ चकरी जनि दरर पसारहु, तब पैही ठिक ठौरा हो। प्रेम दान एक सततगुरु दीन्हा, गाठो तीर कमाना हो। दास कबीर कीन्ह यह कहरा, महरा माहि समाना हो। शब्दार्थ-रेगहु - रेगना। तीरा 5 किनारा। ससार पार। जतइत > १. जॉँता। २ (सं यत्र अत्र) जहाँ यहाँ। पारलैकिक। कोदइत 5 १ कोदो। २, व्यर्थ का ज्ञानी। दरर 5 दलना। कमाना 5 धनुष। तीर कमाना 5 शब्द बाण। महरा 5 १ प्रधान। २. कहार जाति। ३. आत्म तत्त्व! है अर्थ-ऐ साधक, तुमने सतगुरु से रास्ता नही पूछा। गँवारों के समान मूढता मे' थे ही। भक्ति की राह भी मूढ़ता वाली पकड़ी। उचित रास्ते को, पार जाने वाढे घाट को छोड़ कर, औघट बिना रास्ते के, अनुचित मार्ग पर जा रहे हो। ऐसी स्थिति मे भव सागर का किनारा पाना कठिन है। जेते के धन या यहाँ के धन को छालच से देखते हो। कोदो अर्थात् व्यर्थ के ज्ञान पर मन दौड़ता है। इन दोनो चक्र (इहलोक, परडोक) के सुखो को छोड़ दो। तभी ठौर ठिकाना लगेगा। परम पद को प्राप्त कर सकोगे | सतगुरु देव ने प्रेम का बाण दिया है। सतगुरु द्वारा प्रदत्त गभीर ज्ञान रूपी तीर कमान से विषयो को नष्ट कर दो। सत कबीरदास ने आत्म तत्त्व मे लीन होकर यह कहरा कहा है। राम नाम को सेवहु बीरा, दूरि नाहि दुरि आसा हो। और देव का पूजहु दौरे, ईसभ झूठी आसा हो। ऊपर ऊजर कहा भौ बोरे, भीतर अजहूँ कारो हो। तन के बिरघ कहा भी दौरे, मनुआ अजहूँ बारो हो।

 मुख के दात गए कहा बौरे, भीतर दोत लोहे का हो। फिरि फिरि चना चदाउ विधे कै, काम क्रोध मद लोभ के हो। तन की सकल सकित घटि गयऊ, मनहि दिलासा दूनी हो। कहष्टि कदीर सुनहु हो संतो, सकल सयानप ऊनी हो। शब्दार्थ-बीरा 5 भाई। दूरि नाहि > प्रभु दूर नहीं है। दुरि आसा - आशा पूर्ति दूर है। कारो - दुर्भावना। वासना। बारो जज्ञानी। छोहे का ८ दृढ़। सयानप - सासारिक वुद्धि। ऊनी व्यर्थ। । कहरा ४ | ओठन मेरा राम नाम, में रामहि का बनिजारा हो। राम नाम की करहु बनिजिया, हरि मोरा हटवाई हो। सहसनाम का करी एसारा, दिन दिन होत सवाई हो। जाके देव वेद पछराखा, दाके होत अठाई हो। कानि तराजू सेर तिन पौवा, डहके ढोल बजाई हो। सेर पसेरी पूरा केले, पासेंग कतहूँ न जाई हो। कहहि कबीर सुनहु हो संतो, जोर चला जहेँड़ाई हो। शब्दार्द-हटवाई - बाजार क्रय विक्रय। बनिजिया 5 व्यापार। पसारा ८ फैलाव। सहसनाम > राम सहसनाम। कानि 5 पसगा। अढ़ाई > अढ़ाई मे अ + ढ़ाई अर्थ करना ठीक जान पड़ता है। क्योंकि राम नाम के व्यापार मे सवाई और देववेद द्वारा पक्ष रखे जाए को अढ़ाई अर्थ समझ मे नही आता। अढ़ाई के स्थान पर हटवाई पाठ भी है। हटवाई का अर्थ हुआ बाजार। मतलब कि देव वेदादि बाजारू है। कानि का अर्थ पासग किया गया है। कानि का पासंग अर्थ शायद कण के आधार पर बनाया गया है। कितु कानि का प्रचलित अर्थ है मर्यादा, लोकाचार। ढोकाचार मे रहने पर सेर का तीन पाव हो जाता है। डहके < जढना। दग्ध। ड़हरके ढोल बजाई > प्रत्यक्ष नुकसान । जहेँड़ाई 5 घाटा होना। अर्थ-मै, जीव का राम नाम ओढना है। राम नाम ओढ कर ही मै प्रकृति परिवर्तन से रक्षित रहता हूँ। मै राम नाम का व्यापारी हूँ। राम नाम का व्यापार करता हूँ। हरि, विषयो का * हरण करने वाले राम ही मेरे व्यापार के बाजार है। व्यापार की सामग्री है राम सहम्ननाम | राम नाम को ही फैलाता हूँ। यह दिन दिन बढ़ रहा है। सवा हो रहा है। जिन्होंने राम को नही। देव, वेद का भरोसा किया है उन्हे अढ़ाई नही होता है या व्यर्थ का रोजगार करते है। लोक मर्यादा के पीछे चलने वालो को तो सेर मे तीन पाव और कम प्राप्त होता है। ऐसे भक्त या लोग ढके की चोट विषय दग्ध हो जाते है। ऐ जीव, सेर भर की भक्ति शक्ति को पसेरी, पच सेरी कर ले। भक्ति से शक्ति पाँच गुणा हो जाती है। इसमे किसी पासग की जरूरत नहीं पड़ती है। पासग का अर्थ है भक्ति मे अन्य किसी की छोटी सी सहायता की भी आवश्यकता नही होती है। पासग तो ठीक रहेगा ही। पासग, इधर-उधर की सहायता। राम नाम से दोनो पलड़े (लोक-परलोक) ठीक रहते है। सत कबीर कहते है-हे सतो सुनो। राम नाम के व्यापार मे घाठा और (ठगी नहीं है) इसके विरुद्ध जो जाने का जोर करेगा उसे धोखा होगा। घाटा होगा। .. हक | कहरा ५ । राम नाम भजु राम नाम भजु, चेति देखु मन माही हो।

विप्रमतीसी आदि .. ७९५ लच्छ करोरि जोरि धन गाड़िनि, चलत डोलावत बांहीं हो। दादा बाबा औ परपाजा, जिन्ह के ई भुँई भोड़े हो। आँधर भये हिय्हु की फूटी, तिन्ह काहे सभ छोड़े हो। ई संसार असार को घंपा, अंतकाल कोड नाहीं हो। उपजत बिनसत बार न लागै, ज्यौं बादर की छाहीं हो। नाता गोता कुल कुदुम सभ, का कौन बड़ाई हो। कहँहि कबीर एक राम भजे बिनु, बूड़ी सम चतुराई हो। शब्दार्थ-डोलावत बाही (मुहा) 5 बिना कुछ लिये। खाढी हाथ। परपाजा & दादा का पिता। भोड़े # नष्ट किया। बार देर। बादर की छाही 5 नाशवानू। नश्वर। कहरा ६ राम नाम बिनु राम नाम बिनु, मिथ्या जनम गवाई हो। सेमर सेइ सुबा ज्यों जहँडे, ऊन परे पछिताई हो। जैसे मदपी गांठि अरथ दे, घरहु के अकलि गवाई हो। स्वादे उदर भरे थों कैसे, ओसे प्यास न जाई हो। दर्ब हीन कैसन पुरुषारथ, मनहीं माँह तबाई हो। गाँठी रतन मरम नहि जाने, पारख दीन्हा छोरी हो। कहहि कबीर यहि औसर बीते, रतन न मिले बहोरी हो) अर्य-राम नाम के बिना मानव जन्म व्यर्थ बीत गया। जीवन मे सुख की आशा सेंवहु फूठ सा सुदर लगा। कितु अत में धोखा हुआ। सेमरू से ऊन (रुई) निकछा। ऊन अर्थात् विषय की व्यर्थता। जैसे सुग्गे को सेमल फूल से निराशा होती है। वैसे ही जीव को निराशा मिली। पछतावा मिला | जिस प्रकार शराबी (मद्यपी) अपने पास का धन समाप्त कर देता है। बुद्धि से इकट्ठा घर का धन खर्च कर देता है। वैसे ही जीव मानव जन्म रूपी धन को नष्ट करता है। 'दर्ब (द्रव्य), धन के बिना पुरुषार्थ सभव नही। स्वाद अर्थात् विषयो के सेवन से पेट नहीं भरता। शात्ति नही मिलती है। विषय सुख ओस के समान क्षणभगुर है। इनसे तृष्णा (प्यास) की समाप्ति नही होती है। इससे (विना पुरुषार्थ के) मन मे केवल दुख (तवॉई) होता है। पास में (हृदय में) राम नाम रूपी रल है। कितु विषयासक्त जीव इस सत्य से परिचित नही है। पारस (पारख) रूप प्रभु को छोड़ देता है। सत कबीर कहते है। हे जीव, साधना, प्रभु भक्ति का अवसर (जीवन) बीत रहा है। पुन यह जीवन या मानव देह रूपी रल नही मिलठेगा। समय रहते भक्ति कर लो। रहहु सेभारे राम-विचारे, कहता हीं जु पुकारे हो। मूड मुड़ाय फूल के बैटे, मुद्र। पहिरि मंजूसा हो। तेहि ऊपर कछु गरब लपेटे, भितर भितर घर मूसा हो। गाव बसत है गरब भारती, बाम काम हंकारा हो। मोहन जहाँ तहाँ लै जहहैं, नह पति रहे तोहारा हो। मां मंझरिया बसे जो जाने, जन होइहे सो थीरा हो। निरभे है रह गुरु की नगरिया, सुख सोबै दास कबीरा हो। शदार्थ-मुद्रा - १ एक प्रकार का कुडढ। जिसे नाथ पथी योगी पहनते है| २. यौगिक

७९६ कबीर समग्र चेष्टाएँ। मजूसा 5 १. पियरी। २ शरीर या कान! भूसा 5 चोरी। गॉव < शरीर। भारती १. दशनामी साधुओ की एक जाति। २. ज्ञान। सरस्वती। हकारा 5 अहकार। वाम 5 वाम मार्ग। मोहन + मोह। पति 5 १ प्रतिष्ठा | २ प्रभु। माझ * हृदय के भीतर। अत करण। मझरिया 5 मध्य मे रहने व्राठा। भगवानू। जन > भक्त] थीरा > स्थिर। अर्व-सत कवीर पुक्कार कर कहते है। राम नाम का विचार करो और अपने को विषयो से समेट कर रखो। केवल मूड (सिर) मुड़ा कर अहकार से बैठना व्यर्थ है। यह शरीर या कान एक पिंटारी है। इसमे मुद्रा (कुडठ) धारण करना या शरीर को केवल यौगिक चेथ्यओ मे रखने से कोई लाभ नही है। असली है ईश्वराराधन। कान मे कुडल धारण किया या यौगिक चेथ मे बैठे। फिर कुछ राख (छार) ढपेट लिया। यह भी बाह्य साधर्न है। अत करण को तो वासना नष्ट कर रही है। कृवृत्तियों सदवृत्तियो को चुरा रही है। हे सन्यासी, तुम व्यर्थ ही ज्ञान गर्व के गोव मे रहते हो। केवल गर्व नही करते। गर्व के गॉव में रहते हो। समगीसाथी भी गर्व वाढे है। गर्व के गाँव मे तो केवल वामाचार, कामाचार और अहकार है। मोह तुम्हे जहॉ-तहोँ अनिश्चित जगहो मे छे जायगा। अनिश्चित मे शाति नहीं है। इससे तुम्हारी प्रतिष्ठा नही होगी। तुम्हे पतिप्रभु की प्राप्ति नही होगी। प्रभु प्राप्ति ही निश्चय का स्थान है। अत.करण वासी प्रभु को जानने वाढा ही स्थिर होता है। विषयो से अभय होकर सतगुरु की शरण (नगर) में ही सुख की नींद प्राप्त होती है। । कहरा ८ । छेम कुसल औ सही सलामत, कहहु कबन को दीन्हा हो। आवत जात दोऊ बिधि लूटे, सर्व तंग हरि लीन्छा हो। भुर नर मुनि जति पीर ओलिया, भीर पैदा कीन्हा हो। कहें लो गनो अनंत कोटि ली, सकल पयाना कीन्हा हो। पानी पीन अकास जाहिगे, चंद जाहिगे सूरा हो। ए भी जाहिये वो भी जाहिगे, परत न काहू के पूरा हो। कुसलै कहत कहत जग बिनसे, छुसल काल की फांसी हो। कहहि कबीर सारी दुनिया बिनसे, रहें राम अविनासी हो। अर्थ-संत कवीर कहते है। भला ससार मे ऐसा कौन है जिसको सभी प्रकार का सुख है? ईश्वर ने सारे सुख किसी की नही दिए है। जीव जन्म और मृत्यु दोनो प्रकार हूठा जा रहा है।' देह धारण का उद्देश्य व्यर्थ हो रहा है। क्योकि वह साधना हीन है। सब कुछ को छोटी दृष्टि, विषय दृष्टि (तग) हरण कर रही है। कुछ विद्वानू तग को तग्य > ज्ञान से व्युत्नन्न मानकर तग का अर्थ ज्ञान करते हैं। अर्थ हुआ सारा ज्ञान हरण कर लिया। तग (सीमा) का अर्थ शरीर भी होगा। तदनुसार सारे शरीर नष्ट हो रहे है। देवता, मनुष्य, मुनि, यती (जति), पीर, औलिया (सिद्ध) इन सबको प्रभु (मीरा) ने पैदा किया है। कहाँ तक कहा जाय। अनत करोड़ पैदा किया। सब चले भी गये। प्रयाण (पयान) ; कर गए। प्रयाण मृत्यु के लिये विशिष्ट शब्द है। पानी, पवन, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, यह वह» सारे दृश्य कोई पूर्ण नही है। सभी नश्वर है। सव एक दूसरे का कुशल पूछते नष्ट हो रहे है। ' कुशलता काल देवता का बधन (फाँसी) है। कुशल

चाहने वाढ़ो को काठ सबसे पहले मारता , है। सारी दुनिया नष्ट हो जायगी। कैवछ अविनाशी राम, अपने सम (भक्त) रह जायेंगे। | [कहरा ९ |

विप्रमतीसी आदि ह ७९७ ऐसनि देह निरालप बौरे, मुए छुवे नहिं कोई हो। डांड कै डोरिया तोरि लाइन, जो कोटिन धन होई हो। उर्घध निसासा उपजि तरासा, हकराइन्हि परिवारा हो। जो कोई आंदे येगि चलाये, पल एक रहन न पाई हो। चंदन धूर चतुर सम लेपहि, गरे गजमुकता हारा हो। चहुं दिसि गीध मुए तन लूटे, जंबुद उदर विदारा हो। कहहि कबीर सुनहु हो संतो, ग्यान हीन मति हीना हो। एक एद दिन यह गति सबकी, काह राव का दीना हो। शब्दार्व-निराछप (गरीब। कहरबा १० ही सपहिन में, हों ना हो मोहि, विलय विलग बिलगाई हो। ओढन मेरा एक पिछोरा, लोग बोडे एकताई हो। एक निरंतर अंतर नाही, जीं ससि घट जल झाँई हो। एक समान कोई समुझत चाहीं, जाते जरा भर्म जाई हो। , रैनि दिवस में तहवां नाही, नारि पुठद समताई हो। ना मैं दारक बूढो नाही, ना मोरे चिलकाई हो। तिरबिधि रहीं सभनि मां दरतों, नाम मोर रमुराई हो। पठए न जाएं आने नहि आवों, सहज रहीं दुनियाई हो। जोलहाय तान दान नहि जाने, फॉटि-दिने दस ठाई हो। शुरु परताप जिन्हे जस भाषो, जन दिरले सुधि पाई हो। अनंत कोटि मन हीरा बेधो, फिल्की मोल व पाई हो। सुर नर मुनि जाके खोज परे है, कछु कछु कबिरन्हि पाई हो। शब्दार्य-पिछीरा < प्रकृति। माया। ओढन < चादर। आच्छादन। एकताई > पिछौरा और मैरी एकता। एक प्रकार। समताई 5 समान। चिलकाई 5 बाढुक। तिरबिधि & १ तीन गुणों या बाल, युवा, वृद्ध।२ लोकेषण, वित्तोषणा, कामेषणा | मा & मे। दस ठाई -> शरीर की दस इंद्रियों। फिटकी >> १ फिटकरी। २ तत्त्वहीन। श्थार्द-ननदी कहरा ३१ । ननदी गे ते विषम सोहागिन, तें निदले संसारा गे। आवत देखि एक संग सूती, तें औ खसम हमारा गे। भोरे बाप के दुइ मेहररुआ, मैं अर मोर जेठानी गे। जब हम अइलीं 'रसिक के जग में, तबहि दात जग जानी गे। माइ मोर मुबुल' पिता के संगे, सरारधि मुअल संघाती गे। अपने 5258 और है मुबली, छोष कुहुम संग साथी गे। जौ लीं सॉस रहे घट भतेतर, तीछीं छुसलपरी है गे। कहैंहि कबीर जद सांस निसरि गी, मरिल अनल गरी है गे। + माया। विषम 5 विकट। विषम सोहागिनि 5 सदा सौभाग्यवती रहने

७९८ कबीर समग्र वाली। निदले 5 १. निद्रित किया। २ निदित किया। खसम परमात्मा। मोरे बाप परमात्मा। दुइ मेहररुआ + माया और जीव। मैं 5 जीव। जेठानी 5 माया। रसिक ८ परमात्मा। माई 5 ममता माया; भरता 5 काम। सघाती 5 क्रोध, छोभादि। इद्रियाँ और उनके विषय। और लै - अन्य के साथ। आशा, तृष्णादि। कूटुब 5 माया परिवार। मदिल > शरीर। ।| बसंत १ | १ । जहाँ बारह मास वसंत होप, परमारथ यूझे बिरला कोय। बरसे अगिन अखंडधार, बन हरियर भी अठारह भार। पनिया अंदर धरे न कोय, पौन गहे कस मलिन धोय। बिन तरवर फूले आकास, सिव विरंचि तह लेहिं दास। सनकादिक भूले भवर. बोय, लेख चौरासी जोनिन जोय। जो तोडि सतगुरु सत्त लखाव, ताते न छूटे चरन भाव। अमर लोक फल लावै चाव, कहँहि कयीर बूझे सो पाव। अर्व-साधक जिस छोक मे रहता है वहाँ सदा (बारह मास) आनद (बसत) रहता है। कितु इस परमार्थ आनद को कोई विरढा ही समझ पाता है। यहाँ अग्नि (ज्ञान) की अखड धारा बरसती है। इस ज्ञानाग्नि के बरसने से सपूर्ण वनस्पतियाँ (अठारह भार वनस्पति का अर्थ है १२ करोड़, ३० लाख, एक हजार, छ सौ साट वृक्ष-मा पी) हरी-भरी रहती हैं। आचार्य गंगा शरण दास जी ने बीजक की मनोरमा टीका मे चार भार फल वाली, भार-भार ल्ताएँ, छ भार फूलो वाली एवं चार भार कॉटो वाढी ये अठारह भार बताएँ है। यहाँ हरियर वन का अर्थ संपूर्ण अत-करण एवं शरीर के अगादि का प्रसन्न और स्वच्छ होना है। कोई उसके भीतर पानी नही रखता। केवढ़ू पवन धारण, प्राणायाम से मलिनता (काम, क्रोधादि) धुठती रहती है। बिना तरुवर के निर्गुण-निराकार ब्रह्म से आकाश (सहस्रार) मे प्रसन्नता रहती है। आनद रहता है। वहाँ शिव, ब्रह्मा आदि देव निवास करते है। सनकादि भक्त उस फूल (आनद) की गंध (बोय, बू) को प्राप्त करते रहने मे ही मस्त रहते हैं। चौरासी छाख योनियो मे भटकते जीव उसे प्राप्त करने की प्रतीक्षा (जोय, जोह) मे रहते है। सतगुरु ने जो सत्य (परमतत्त्व).का ज्ञान कराया है। इससे प्रभु चरण सेवा का भाव नही छूटेगा। उस अमर छोक के फल को प्राप्त करने की इच्छा करो। सत कबीर कहते है.जो ज्ञान को समझता है। उसे वह आनद प्राप्त होता है। बसंत २ रसना पढ़ि लेहु श्री बसंत, पुनि जाय परिही जम के फंद। मेतदंड पर उंक दीन्ह, अष्ट कवेंल परजारि दीन्ह। ब्रह्म अगिनि कियो प्रगास, अर्थ उर्ध तहँ बहे बतास। नो नारी परिमल सो गाँव, सखी पाँच तहँ देखन धाव। अनहद बाजा रहल पूरि, पुरुष बहत्त्यरि खेले धूरि। माया देखि कस रहहु भूलि, जस बनसपती रहलि फूलि। कहहि कबीर ई हरि के दास, फगुआ माँगे बैकुँठ बास | शब्दार्य-रसना ८ जीभ। श्रीवसत 5 आनद पद। मेरुदंड कमर की हड्डी । रीढ़। डक - डका। अस्ट कैंवढ 5 सुरति कमढ़ू। परजारि < प्रज्वलित। ब्रह्म अगिनि >.तत्त्व ज्ञान। अर्ध + चीचे। अपान वायु। उर्ध - प्राण वायु। बतास * हवा। नौ नारी ८ नौ नाड़ियाँ, (इड़ा, पिगला, सुधुम्ना, गाधारी, हस्ति जिहवा, पूषा, पयस्विनी, ठकुहा, अठाम्बुषा)। परिमक

विप्रमतीसी आदि ७९९ सुगंध। पॉच सखी - पाँच ज्ञानेंद्रियाँ। पुरुष बहत्तरि 5 शरीर की बहत्तर ग्रथियों (१६ कडराएँ, दा ७ सेवनी, १४ अस्थि सघात, हे १४ सीमत 9 त्वचा)। धूरि 5 १. धूल। ३. फाग। ३. नाश। फगुआ 5 फागुन के उपलक्ष में दिया जाने वाला,पैसा या वस्तु। अर्प-ऐ जीभ, स्वाद छोड़ो। प्रभु के आनद पद उच्चारण करो। ऐसा न करने से:यम के फंदे मे पड़ जाओगे। रीढ़ स्थित सुषुम्ना मे कुडलिनी जाग्रत हो गयी है। इस जागरण का इंका बज रहा है। विषयों पर विजय हो रही है। सुरति कमल मे ज्ञानाग्नि प्रज्वलित है। तत्त्व ज्ञान के प्रकाश से अज्ञानाधकार मिट गया। अपान और प्राण दोनो मे आनंद की हवा बह रही है। शरीर के सभी प्राण आनद निरत है। सभी (नौ) नाड़ियो से उत्तम गध निकल रही है। पौंचो ज्ञानेंद्रियाँ देखने के लिये दौड़ रही है। हृदय मे अनाहत नाद हो रहा है। बहत्तर नाड़ी पुरुष फाग की धूर उड़ा रहे है। नाश मे आनद मना रहे है। मायिक वन फूला है। इस माया को देखकर भ्रम मे नही पड़ना चाहिए। सत कबीर कहते है कि प्रभु सेवक अविनाशी बैकुठ का निवास चाहता हैं। जहाँ सनातन आनंद बना रहे। मैं आयों मेहतर मिलन तोहि, रितु बसंत पहिरायहु मोहि। लम्बी पुरिया पाई छीन, सूत पुराना झूँठा तीन। सर लागे तोहि तीन से साठि, कसनि बहत्तरि लागु गॉडि। खुर खुर खुर खुर घड़े नारि, बैठि जोलाहिन पलधि मारि। ऊपर नचनियाँ करे कोड़, करिगह में दुइ चले गोड़। पाँच पचीसो दसहूँ दार, सखी पाँच तह रची धमार। रंग बिरंगी पहिरे चीर हरि के घरन धरि गावें कबीर। शब्दार्व-मै + जीव। साधक। मेहतर > महत्तर। सद्‌गुरु। रितु बस॒त 5 परमपद का आनद। आनंद तत्त्व। पुरिया - १ वह नरी जिस पर बुनने के पहले बाना फैलाया जाता है। २ शरीर। पाई 5 १ जुलाहो द्वारा प्रयुक्त पतली-पतली छड़ियाँ जिन पर सूत को फैला कर तानते है। २ फन्नी बीनने के लिये ३६० वय का छगा ताना। खूँट तीन 5 १. इड़ा, पिगला, सुषुम्ना। २. सत्त्व, रज, तम। तीनि सै साठि 5 १ शरीर की हाड्डियों।२ वर्ष भर के दिन। बहत्तर कसनि - शरीर ग्रथि। नारि 5 नरी। जोछाहिन जीवात्मा। नचनियाँ > मान। कोड « क्रीड़ा। ऊपर * सहस्नार। करिगह 5 शरीर। गोड़ * श्वास # प्रश्वास खभा। पाच 5 पच तत्त्व। पच्चीस - पच्चीस तत्त्व। इनमे पुरुष भी शामिल है। दसहूँ द्वार 5 दश इद्रियाँ। धमार -- 9. उछल कूद | २. एक प्रकार का नाच युक्त सगीत। चीर 5 शरीर। खुर खुर < धीरे-धीरे कितु घ्वनिवाली। अर्थ-जीव कहता है। हे गुरुदेव, मै आपसे ही मिलने संसार मे आया हूँ। यहाँ भौतिक गुरु एवं परमात्मा दोनो की ओर सकेत हैं। जीव, आत्मा परमात्मा से मिलने, आनंद क्रीड़ा करने संसार मे आता है। इसलिये मुझे आनंद वख्र, साधना भक्ति वस्र पहनाओ। मै साधक बनूँ। मेरा शरीर अत्यत दुर्बल है। इसे आपका कृपा प्रसाद (शक्तिपात्) चाहिए। ,सत्त्व, रज, तम या ईड़ा, पिगला, सुषुम्ना इन त्तीन खंभो पर आधारित बार-बार आवागमन के कारण यह शरीर पुराना हो गया है। इस शरीर में तीन सौ साठ हड्ड्डियाँ है या यह शरीर वर्ष के तीन सौ साठ दिनो से युक्त है। इसमे ७२ गाँठे है। इस शरीर की नाड़ियों धीरे-धीरे

चलती हैं जिनमे ध्वनि होती है। यहाँ आत्मा रूपी जुछाहिन स्थिर बैठी है। सहस्नार मे चंचक मन क्रीड़ा कर रहा है। मन की बाह्य चचठता दूर हो गयी है। अब वह प्रभु संग क्रीड़ारत है। शरीर करिगह मे दो

८०० कबीर समग्र श्वासो, श्वास, उसाँस या प्राण अपान की क्रिया हो रही है। पॉच इद्रियों, पच्चीस तत्त्व, दश इद्रियाँ, पाँच विषय रूप सखियो के नृत्य सगीत या उछलकूद हो रहे है। धमार आनद क्रीड़ा का सकेत है। जीव ने रग विरगे (काला, गोरा, लाल, पीछा) शरीर धारण किया है। ये रग विश्व की मानव जातियो के है। सत कबीर प्रभु चरणो को पकड़ कर यह गीत गा रहे है। ४" जुढ़िया हँसि बोलै मै नतहि बारि, मोहि अस तरुनि कही कौन नारि। दाँत गैल मोर पान खात, केस गैल मोर गंग नहात। नैन गैल मोर कजरा देत, बैस गैल पर पुरुष लेत। जान पुरुषवा मोर अहार, अनजाने पर करों सिगार। कहंहि कवीर बुढिया आनंद गाय, पूत भतारहि बैठी खाय। अर्थ-सत कबीर माया का वर्णन करते कहते है। सपूर्ण सृष्टि, उसका कार्य व्यापार मायामय है। माया वृद्धा है। अनादि है। वृद्ध भी माया मे फंसे है। माया सदा (नित) चाठिका है। माया जैसी कोई स्त्री युवती नही। मतलरूव कि बाल, वृद्ध, युवा सव मायाधीन है। पान खाना माया को निमत्रित करना है। पान खाते-खाते दाँत चले जाते है। गगा नहाने। तीर्थों मे जाते। शरीर साफ करते केश चले जाते है। ऑख को सुदर बनाने कं लिये काजढ देते-देते आँखे (रोशनी) चली जाती है। पर पुरुष अर्थात् पुनर्जन्म के कारण पर पुरुष। जीव का पुरुष तो कैवछ परमात्मा है। शेष पुरुष पर पुरुष है। दूसरों के है। पर पुरुष का सबंध कर उसका नाश कर बैस, उम्र समाप्त हो जाती है। ज्ञानी (जान) पुरुष माया के भोजन है। माया मानियो (भक्ति रहित ज्ञानी) को समाप्त कर देती है। अज्ञानी (भक्तिहीन) से अपने को सजाती है। यह अनादि माया इद्रिय सपन्न पुत्र और माया उपाधि युक्त चैतन्य का भी नाश कर देती है। ठुम बूझ्हु पंडित कवनि नारि, काहु न वियाहल है छुँवारि। सब देवन्द मिलि हरिहि दीन्ह, घारिउ छुग हरि संग छीच। प्रथमै एदुमनि रूप आहि, है सांपिनि जग खेदि खाहि। ई भर जुबती वे वार नाह, अति रे तेज त्रिय रेनि ताहि। * कहहि कबीर यह जगत पियारि, अपन बलकवै रहलि मारि। अर्ध-ऐ पडित, समझने का प्रयल करो। माया कौन है ? कुमारी है। अव्याही है। समुद्र मंथन के बाद सभी देवों ने मिल कर समुद्रोत्यन्न माया लक्ष्मी को हरि (विष्णु) को दे दिया। विष्णु उसे सदा (चारिठ युग) मे साथ रखते है। प्रभु भी माया युक्त है। उसका रूप पद्निनी री जैसा है (पद्मिनी स्री सर्वसुदरी होती है। उसकी देह से कमल गध आती है)। वह माया सॉपिनि जैसी है। जैसे सॉपिनी अपने अड़ों को खा जाती है। वैसे ही माया अपने द्वारा उत्नन्न मायामयी सृष्टि का नाश कर देती है। खेद खाना, दौड़ा कर खाती है। किसी को भी भागने नही देती। यह तो युवती है कितु इसका पति (नाह नाथ) बालक (वार) है। (वार का अर्थ बालक जैसी सरछता वाला)। भर युवती का अर्थ है. शरंगार से पूर्ण। माया स्री अत्यत तेज है। रात्रि (अज्ञान) मे और तेज रहती है या तीन रातों (बाल, किशोर एवं युवा) मे वह अत्यत तीत्र रहती है। या लोकेषणा, वित्तेषणा एव सुतेपणा की रातों मे उसका तेज देखने छायक होता

है। सारा ससार उसे प्यार करता है। वह माया सृष्ट, माया से ही उत्पन्न जीगे का नाश कर रही है।

विप्रमतीसी आदि ८०१ इबरक प्रा | बसंत ६ । माई मोर मनुसा। अति सुजान, धंधा कुटि कुटि करै बिहान। बड़े भौर उठि आँगनु बढ़, बड़े खाँच ले गोबर कछु। यासी भात मनुसे लीहल खाय, बड़ा पैल सै पानी के जाय। अपने सैंयोँ के बाँधो पाठ, है बेचोंगी हांदे हाद। कहँहि कबीर ये हरि के काज, जोइया के ढिय रहि कवनि लाज। अर्थ-माई एक सवोधन प्रकार है। पुरुष प्राय भाई और ख्री माई सवोधन करती है। माया कहती है। मेरा आदमी (पुरुष ८ मनुसा) या पति (भक्त नहीं) अल्यत ज्ञानी है। हर समय किसी न किसी इन्द्र (धधा) मे रहता है। कुटि कुटि कृत कृत जगत का सारा धधा करता है। कितु भक्ति नही करता। करै विहान से मतलब कि रात को भी धधे मे रहता है। जिस रात में योगी जागते है। उस रात मे भी वह काम पूर्ति के चक्कर मे रहता है। सबेरे राम नाम नही जपता। हृदय रूपी ऑगन को बुहार कर विषयो को और बढ़ाता है। बड़े भारी खाँच (बॉस आदि की टोकरी) से गोवर (प्रवृत्तियों) को निकालना है। प्रवृत्तियो के अनुसार काम करता है। मेरे आदमी ने बासी भात, भक्ति का घिसा-पिटा ढंग, वासना युक्त भक्ति का भोग कर लिया। अपने शरीर घड़े मे विषयो का पानी भर छे जाता है। मै, माया। अपने पति (मनुष्य) की पगड़ी (या सिहासन) बाघूँगी और लोभ, मोहादि के बाजार मे ले जाकर बेचूँगी। मतरूब कि सपन्न व्यक्ति माया का सौदा है। सत कबीर कहते है। मेरा कर्म प्रभु की सेवा है। जगत या माया सेवा नहीं। इसलिये मै 'किस सकोच (लज्जा) वश माया स्त्री के पास रहूँ। माने कि माया मेरी श्री नही है। मै तो स्वय प्रभु पली हूँ। एक खत्री दूसरी स्री के पास कैसे रह सकती है ? दूसरे जीव माया के पास इसलिये है क्योकि वे अपने को माया का पति समझते है। मायापति की प्रिया नही। । बसत ७ । घरहि में बाबू बढ़लि रारि, उठि उठि छागे चपल नारि। एक बड़ी जाके पाँच हाथ, पाँचहूँ के पीस साथ। पचीस बतावें और और, और बताबै कक ठोर। अंतर मधे अंत लेइ, झकझोरी|झोला जीवहि देह। आपन आपन चाहै भोग, कहु कैसे छुसल परी है जोग। विवेक विचार च करै कोय, सब खलक तमासा देखें छोय। मुख फारि हँसें सब राव रंक, ताते धरे न पावै एकौ अंग। दियरे न खोजे यतावै दूरि, चहुँ दिति दागुलि रहलि पूरि। लच्छ अहेरी एक जीव, ताते पुकारे पीव पीव। अबकी यार जो होय घुकाव, कहहि कबीर ताको पूर दौंद। शब्दार्थ-रारि 5 झगड़ा। बड़ी 5 माया। पॉच हाथ + आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी। पच्चीस 5 १ आकाश के साथ काम, क्रोध, छोभ, मोह, भय। २. वायु के साथ-चढन, वलन, धावन, प्रसारण, सकोचन। ३ अग्नि के साथ-श्लुधा, तृषा, आल्स्य, निद्रा, मैथुन। ४ जल के साथ-लार, रक्त, पसीना, मूत्र, वीर्य। ५ पृथ्वी के साथ-हाड़, मास, त्वचा, नाड़ी, रोम। झोला - झुझाना। धवका देना। जोग 5 सयोग। उचित। छोय 5 लोग। अंग 5 भाग। हिस्सा। बांगुलि - बधन। (बागुर विसम तुराइ।-मानस) | दाँव 5 बाजी।

८०२ कबीर समग्र अर्थ-घर मे, मन मे द्वन्द् वढ़ गया है। माया के अनुचर स्वय आपस मे युद्ध कर रहे है। सभी के पीछे चचल माया ठग जाती है। झगड़े का मूल कारण ख्रियों हैं। बड़ी श्री एक है। माया। इसके पॉच हाथ है। चतुर्भुज से एक हाथ आगे। इन पॉच हाथो के साथ पच्चीस तत्त्व है। इन पच्चीसो से दूसरो-दूसरो का भी ज्ञान होता है। वे भी दूसरो को बताते है। मतलब कि माया के अनत विस्तार है। माया के इस अनत विस्तार मे इन्द्र होता है। सभी जीव को झकझोरते है। धक्का देते है। सभी इद्रियाँ या दूसरे अपना-अपना भोग चाहते है। भला ऐसे मे कुशल, कैसे संभव है ? किसी इद्रिय. या माया प्रतिनिधि मे विवेक विचार नहीं है। सारे ससार " के लोग केवल तमाशा देखते है। सभी अमीर-गरीब केवल हँसने मे लगे है। इसी से कुछ भी पकड़ मे नही आता है। हँसते हुए कुछ भी पकड़ मे नही आएगा। कबीर हँसना दूरि कर रोवण सो कर मित्त। हँस-हँस कत न पाइए। अपने पास नही खोजते। चारो ओर तो बधन है। माया का वधन। शिकारी लाखो है। जीव अकेला है। यहाँ माया प्रतिनिधि शिकारी है। जीव शिकार है। अकेले घिरा जीव प्रिय प्रभु को पुकार रहा है। सत कबीर कहते है, हे प्रभु! अब की बार, इस जन्म मे सारे सचित कर्म चुक जायें। समाप्त हो जायें! भक्त का सब कुछ दाँव पर है। | बसत ८ । ध कर पल्लौ के बल खेलै नारि, पंडित होय सो लेय बिधारि। कपड़ा न पहिरे रहे उधारि, निरजिव सो धनि अति पियारि। उलदी पलटी बाजै तार, काहू मारे काहू उबार। कहहि कबीर दासन के दास काहू सुख दे काहू निरास। अर्थ-माया के हाथ पल्लव (हरे पत्तों) के समान कोमढ है। अर्थ कि कोमलता भाया है। अत्यत कोमल स्पर्श से माया ससार का खेल रचाती है। इस बात को विद्वानू ही समझ सकते है। माया स्वयं आच्छादन है। इसलिये इसे किसी आच्छादन की जरूरत नहीं। नगी होकर अज्ञानियो (निरजिव) को प्यार करती है। ज्ञानी माया की नग्नता से प्रभावित नही होते। यह माया ससार, देह वाद्य को उल्ट-पुलट कर बजाती है। शरीर की नस नस मे समायी है। अज्ञानियो को मारती है। कितु इसी माया आश्रय देह को आधार बनाकर ज्ञानी मुक्त होते है। भव चक्र से उबर जाते है। सत कबीर प्रभु भक्तो के दास (दासनि के दास) है। इसी से माया उन्हे मुक्त करती है। सुख देती है और अज्ञानियो की ससार यात्रा को निराशामय करती है। | बसंत ९ | ऐसो दुर्लभ जात शरीर, राम नाम भजु लागु तीर। गए बेनु गए कंस, दुरजोधन गए बूड़ो बंस। पूधु गए प्रधिमी के राव, तिर विक्रम गए रहे न काब। छवब चकवै मंडलिक झारि, अजहुं हो नर देख विचारि। हनुमत कस्यप जनक बालि, ई सम छेकल जम के द्वार। गोपीचंद भल कीन्ह जोय, रावन मरि गौ करते भोग। ऐसो जात सभन्हिंको जाम, कहिईं कबीर भजु राम नाम | । बसंत १० । सबै मदमाते कोइ न जाग, सँगहि चोर घर मूसन लाग।

विप्रमतीसी आदि ८०३ जोगी माते धरि जोग ध्यान, पंडित माते पढ़ि पुरान। तपसी माते तप के भेव, संन्‍्यासी माते करि हमेव। मोलना माते पढ़ि मुसाफ, काजी माते दै निसाफ। संसारी माते माया के धार, राजा माते करि हंकार। माते सुकदेव ऊधो अंकूर, हनुमत माने लै लंगूर। सिव माते हरि घरन सेव, कलि माते नामा जयदेव। सत्त सत्त कहै सुप्रित बेद, रावन मारो घर के भेद। चंचल मन के अधम काम, कहहि कबीर भजु राम नाम। शब्दार्-माते > अज्ञान में डूबे। घर 5 हृदय। अत करण। चोर 5 विषय। मूसन सदवृत्तियों को नष्ट करना। भेव € भेद। हमेव 5 अहम् एवं। मुसाफ (अ मुसहफ) कुरान शरीफ। निसाफ 5 इन्साफ। काजी न्यायाधीश। ससारी 5 विषयासक्त। धार 5 धारा। हकार - अहकार। अधो - कृष्ण सखा उद्धव। अकूर 5 अक्रूर। ढगूर 5 पूँछ। नामा 5 मराठी सतत नाम देव । सुम्रिति 5 स्मृति | घर के भेद 5 घर का भेदिया। विभीषण | काम ₹ कार्य । सिव कासी कैसे भई तोहारि, अजहूँ हो सिव देखु बिचारि। चोवा चंदन अगर पान, घर घर सुप्रिति होय पुरान। बहु बिधि भवनन्हि लागु भोग, नगर कोलाहल करत लोग। बहु बिधि परजा लोग तोर, तेंहि कारन चित्त 'दीठ मोर। हमरे बलकवा के इहे ग्यान, तोहरा के समुझावे आन। जे जाहि मनसे रहल आय, जीव को मरन कहूँ कहाँ समाय। ताकर जो कछु होय अकाज, ताहि दोस नहि साहेब लाज। हर हरषित सो कहल भेव, जहाँ हम तहाँ दूसर न केव। दिना घारि मन धरहु धीर, जस देखें तस कहहि कवीर। शब्दार्थ-परजा छोग तोर + शिव आपकी प्रजा। दीठ 5 दीखता है। हमरे बलकवा > मुझ बाल बुद्धि। कहु # कहाँ। अकाज 5 अग़ति। कुगति। ताहि दोस नहि 5 उसका दोष नहीं। साहेबलाज > प्रजा की अगति साहब अर्थात् स्वामी शिव के लिये छज्जा की बात है। केव +कोई | तहाँ दूसर न 5 एक शिव। अनन्य शिव | बसंत १२ हमरा कहल के नहि पतियार, आपु बूंड़े नर सलिल धार। अंधा कहै अंधा पतियाय, जस बिसुवा के लगन धराय। सो तो कहिए ऐसी अबूझ, खसम ठाठ़ ढिग नाही सूझ। आपन आपन, चाहे मान, झूठ प्रपेंच साँच करि जान। झूठा कबहूँ न करिंहे काज, ही बरजों तोहि सुनु नीलाज। छोडहु पारंड मानहु दात, नाहि तो परिहो जम के हाथ। कहंहि कबीर नर कियहु न खोज, भटकि मुबल जस बन के रोश्‌। शब्दार्य-पतियार + विश्वास करने वा । सलिल धार > भव सागर। विषय प्रवाह। अधा - जज्ञानी। बिसुवा 5 वेश्या। छगन धराय < विवाह की तिथि निश्चित करना। खसम प्रभु। ढिग 5 पास। मान 5 अभिमान। प्रति्। बरजी > रोकता हैं। नीछाज > निर्लज्ज | कब ५. ५... ....

८०४ कबीर समग्र रोझ पशु। नील गाय | टिप्पणी-जैसे वेश्या के विवाह का कोई लग्न नहीं। क्योकि वेश्या का विवाह नही होता। इसी प्रकार अज्ञानी के कहने से अज्ञान नहीं जा सकता है। | चाचर । होली की धुन मे गाया जाने वाला चौदह या सोछुह मात्राओ वाढा गान। इसे छी और पुरुष दो दलो मे बैंट कर प्रतियोगिता के रूप मे गाते है। खेलति माया मोहिनी जिन्ह जोर कियो संसार । कदि केहरि गजगामिनी, संसे कियो सिगार। रघ्यो रंग ते चूनरी कोइ, सुंदरि पहिरे आय। सोभा अदबुद रूप की, महिमा बरनि न जाय। चंद्रथदनि मृग छोचनि माया, बुंदका दियो उधार। जती सती सभ मोहिया, गज गति वाकी चाल | नारद को मुख माड़ि के, लीन्हों बदन छुड़ाय। गरभ गहेली गरभ ते, उलटि चली मुसकाय। शब्दार्थ-जेर - पराजित। केहरि 5 सिह। ससी कियो सिगार 5 सशय ही उसका श्र्गार है। प्रभु की सत्ता मे श्रद्धा नही। सशय (संशयात्मा विनश्यति)। रंग 5 १ तीन गुण। २ सृष्टि के विभिन्न रग। चूनरी १ ससार। २ शरीर। सुदरि 5 जीव। बुदका>१ बिदी। २ सृष्टि चिहन। उधार स्पष्ट कर दिया। प्रगट किया। नारद के मुख माड़ि के 5 नारद की स्वाभाविक शोभा नष्ट कर बंदर का मुख बना दिया। बदन छुड़ाय 5 मुख छीन लिया। सिव सन ब्रह्मा दौरि के, दोऊ पकरे जाय। फयुआ लियो छिनाय कै, वहुरि दियो छिटकाय। शब्दार्घ-सन 5 सनक सनदन आदि। दोऊ < दोनो पैर। अर्थ-शिव के समान ब्रह्मा ने भी माया को दौड़ कर पकड़ लिया। सन का अर्थ सनकादि करने मे दोऊ बाधक है। सनकादि अर्थ करने पर दोऊ का अर्थ दोनो पैर या हाथ करना होगा। फागुन मे उन्हे छीन लिया। साधना से, वैराग्य से विमुख कर दिया। पुन छिटका दिया का अर्थ है उनकी साधना खत्म कर उन्हे वेकार कर दिया। क्योकि माया सदा किसी को सुख नहीं देती है। अनहद धुनि बाजा बजै, ज्वन सुनत भी चाव। खेलनिहारा खेलिहै, जैसी वाकी दाँव। ग्यान ढाल आगे दियो, ठारै टरे न पाँव। खेलनिहारा खेलिहै, यहुरि न ऐसो दांव। सुर भर मुनि ओ देवता, गोरख दत्ता ब्यास। सनक सर्नंदन हारिया, और की| केतिक बात। अर्थ-माया से वही खेल सकता है जिसके हृदय मे अनाहत ध्वनि का बाजा बज रहा है। जेसमे इस ध्वनि को सुनने की इच्छा है। माया दाँव से, खेलने वाला, श्रेष्ठ साधक ही खेल कता है। सबके बस का रोग नही है। इसके लिये ज्ञान के छाल को आगे रखना होगा। तब गया के प्रयल करने पर भी पैर नही डिगेगे। कितु कोई साधक (खेलनिलारा) पुन यह दौँव ही खेलेगा। क्योकि माया से खेलना खतरनाक है। इस खेल मे सुर, नर, मुनि, देवता, पेसखनाथ, दत्तात्रेय, महर्षि व्यास, सनक सनद भी हार चुके है। दूसरो की तो बात ही क्या

विप्रमतीसी आदि ८०५ ? मे छिलकत थोथे प्रेम सों, धरि पिचकारी गात। करि लीन्हों बसि आपने, फिरि फिरि चितदत जात। श्यान गाड़ लौ रोपिया, त्रियुन लियो है हाथ। सिव सन ब्रह्म लेच कहो है, और की केतिक बात। | अर्व-माया का प्रेम नकली, .थोथा होता है। थोथे प्रेम की पिचकारी से माया रंग छोड़ती है। इसी से उसने सब को बस मे कर लिया है। फिर फिर कर अपना प्रभाव देखती है। ज्ञान * को गड्ढे मे डाल दिया है। रोपिया, आरोपित कर दिया है। बधन के लिये एक गुण ही काफी था। उसके हाथ मे तो तीन गुण है। इन गुणों से तो उसने शिव, सनकादि, ब्रह्मा को भी ले लिया है। औरो की तो बात ही क्या है ? एक ओर सुर नर मनि ठाढ़े, एक अकेली अए्। द्विष्टि परे उन कहु न छाँड़े, के लीन्हों एक धाप। जेत ये तेते लिये, घूँघट मॉहि समोय । काजर वाकी रेख है, अदग गया नहि कोय। इन्द्र कृस्न दारे खड़े, लोषन ललचि लचाय। है कहहि कबीर ते ऊबरे, जाहि न मोह समाय। अर्य-एक तरफ देवता, नर और मुनि खड़े है। चॉचर के दूसरे दछ मे माया अकेली है। देख लेने पर वह किसी को नही छोड़ती। एक ही दौड़ (धाप) में वह सब को पकड़ लेती है। सबको उसने अपने घूँघट मे समा लिया है। काजल ही उसकी पहचान (रेखा) है। उसकी काजल रेखा से कोई वेदाग नही छूटा। माया से वेदाग छूटना कठिन है। छालच मे आँखे नचाते इन्द्र और कृष्ण भी उसके दरवाजे पर खड़े है। माया से मोहरहित व्यक्ति ही मुक्त हो सकता है। मोह ही माया है। | चाचर २ । जारो जग को नेहरा मन बोरा हो। जामे सोग संताप समुझ मन बोरा हो। तन धन सों का गर्वसी मन बोरा हो। भसम किरिम जाके साज मन बौरा हो। बिना नवे का देवघरा मन बौरा हो। बिनु कहगिल की ईद समुझ मन बौरा हो। कालबूत की हस्तिनी मन योरा हो। धित्र रधो जगदीस समुझ्त मन बौरा हो। काम अंध गज बसि परे मन बौरा हो। अंकुस सहिया सीस समुझ मन बौरा हो। मरकट भूठी स्वाद की मन बोरा हो। लीन्ही भुजा पसारि समुझ्न मन बोरा हो। छूटन की संशय परी मन बोरा हो। घर घर नाधेउ द्वार समुझ मन बोरा हो। ऊँच नीय जानेउ नही मन बोरा'हो। घर घर खायउ डांग समुझ भन बोरा हो।

८०६ कबीर समग्र जों सुवना ललनी गह्मौ मन दौरा हो। ऐसो भरम विचार समुझ मन यौरा हो। पढ़े गुने का कीजिए मन वौरा हो। अंत बिलैया खाय समुझ मन बौरा हो। सूने घर का पहुना मन बोरा हो। ज्यों आवै त्यी जाय समुझ मन बौरा हो। नहाने को तीरथ घना मन बौरा हो। पूजन को बहु देव समुझ मन बीरा हो। विनु पानी नर बूड़िहो मन दौरा हो। टेकहु नाम जहाज समुझ मन दौरा हो। कहँहि कवीर जग भरमिया मन बौरा हो। छोड़ेहु हरि की सेव समुझ मन वौरा हो। शब्दार्थ-नेहरा 5 स्नेह | जामे 5 जिसमे। सोग 5 शोक । किरिम 5 कृमि। क्रीड़ा। नेव « नीव। शून्य। देवघरा 5 १ सृष्टि। २ देह। कहग्रिठ 5 ईट जोड़ने के लिये गारा। ईट « शरीर। सृष्टि। काल्वूत 5 नकली या वह कच्चा भराव जिस पर महराव बनाई जाती है। नाशवान। हस्तिनी 5 हाथी सा भारी या बड़ा। चित्र 5 ससार। अकुस तृष्णा का दुख। मरकट 5 बदर। मरकट मूठी स्वाद >वानर लोभ से घड़े मे हाथ डाढता है। डालते समय हाथ खाली रहता है। बाद मे वह वस्तु को पकड़ कर मुट्ठी बाँधता है। फलत घड़े के अत्यत सैंकरे मुँह मे उसका हाथ फेंस जाता है। लोभ मे न वस्तु को छोड़ पाता है। न हाथ निकढ पाता है। केवल दुखी होता है। इसी दुविधा दुख मे काल मदारी द्वारा पकड़ लिया जाता है। डाग (

विग्रमतीसी आदि ८०७ भवन मथेउ भरिपूरि हो रमेया राम। फिर हंसा पु भयो हो रमैया राम । बेधिन पद निरवान हो रमैया राम। तुम हँसा मन मानिक हो रमैया राम। हटलो न मानेहु मोर हो रमैया राम। जस रे कियहु तस पायहु हो रमैया राम। हमरे दोस जनि देहु हो रमैया राम। अगम कांदि गम कियहु हो रमैया राम। सहज कियहु बैपार हो रमैया राम। राम नाम धन बनिज कियहु हो रमैया राम। लादेहु बस्तु अमोल हो रमैया राम। पाँच लदनुवा लादि चले हो रमैया राम। खाँखरि डारिनि फोरि हो रमैया राम। सिर धुनि हंसा उड़ि घले हो रमैया राम। सरवर मीत जोहारि हो रमैया राम । आगि जो छलागी सरवर में हो रमेया राम। सबर जरि भो धूरि हो रमैया राम। कहहि कबीर सुनु संतो हो रमैया राम। परद्ि लेहु खरा खोट हो रमैया राम। शब्दार्थ--बेलि > सृष्टि छता। माया विस्तार। हसा + जीव | सरवर 5 शरीर। जागत < माया में रहना। चोर 5 काछ। घर > गृह सपत्ति। सदृवृत्तियाँ। जीवन। जागढ « सद्वृत्तियो का जागरण। सोवत « माया बद्ध होना। भाग विषय वासना का नाश। विगोय नष्ट होना। नियरे + शरीर मे। मानव देह मे। जिस देह द्वारा प्रभु प्राप्ति निकट है। काल्हि « मृत्यु के बाद। दूरि 5 प्रभु प्राप्ति की सभावना कठिन है। बिराने देस > अपरिचित देश। धूरि 5 निराशा। त्रास मधन 5 काह़भय की मथानी। दधि मथन > जीवन सागर को मथ रहा है। भवन + १. संसार। २ देह। ३ हृदय। मन | हसा > आत्मा । पाहु # अतिधि। बेधिन < १ वेध्य। शोध किया है। २ छोड़ दिया है। बेधिन पद निरवान का अर्थ निर्वाण पद का ज्ञान प्रौत्त करना उचित लगता है। सामान्य अर्थ है निर्वाण पद को छोड़ दिया है। मन मानकि « मन द्वारा आकाक्षित माणिक्य। तुम हसा मन मानिक > हे मुक्तात्मा, तुम मन द्वारा बाछित माणिक्य जैसी सुदर वस्तु। मन तुम्हे ही प्राप्त करना चाहता है। यह मन माणिक्य निर्वाण पद के शोध से ही प्राप्त होता है। हट लो > वर्जित करना। रोकना। हमरे सदगुरु या साधक। जाम अगम्य परमात्ता। काटि 5 छोड़ कर। गम्य > १ सांसारिक वस्तु। मायोतन्न | ॥ लग परमात्मा। सहज सहज की साधना। बैपार > व्यापार। साधना। पाँच रूदनुवा « पच विषय या पच महाभूत। नौ बहिया « मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार एव पॉच प्राणो को वहन किया। गोनि 5 १. बैली। २ शरीर। दस गोनि 5 9 दस इंद्रियाँ। जिनसे विषयो का सेवन होता है। इद्रियों विषयों का बैल्ा है। २ दस दिशाएँ। खॉगि परे > नष्ट हो गये। खॉगि ख़ज से व्युत्न्न जान पड़ता है। खज का अर्थ है लगड़ा। जिन रूवनियों पर विषय सुख लादता था वे जाधार नष्ट हो गये। असमर्थ हो गए। अब उन पर विषयो का छादना नही होगा। खाँखरि + खोपड़ी | मृत्यु के वाद सब की कपाल क्रिया होती है। इसमे क्रपाल को बॉस से तोड़ दिया जाता ४ शायद इसलिये कि वची-खुची वासनाएँ निकल जायेँ। आग में जल जायें। सिर धूनि >

८०८ कवीर समग्र अफसोस कर। परमात्मा की प्राप्ति न कर विषयो में आसक्त रहने का अफसोस। सरवर मीत इस शरीर या ससार के मित्र, कुटुम्वी। जोहारि 5 अतिम प्रणाम। सरवर 5 शरीर और ससार जहाँ विषय जल रहते है। जहाँ विषय रहित जल भी रह सकते है। _बैलि३ | भल सुप्रिति जहड़ायहु हो रमैया राम। घोखे कियहु दिसवास हो रमैया राम। सो तो है बन सीकसी हो रमैया राम । सो रे कियहु विसवास हो रमैया राम | ई तो है बेद भागवत हो रमैया राम | गुरु दीहल मोहि थापि हो रमेया राम। गोयर कोटि उचाए हो रमेया राम। परिहरि जेवहु खेत हो रमेया राम। तहाँ खोज कस होई हो रमैया राम। सो सुनि मन धीरज भयल हो रमैया राम । मन वि रहल लजाय हो रमैया राम । कालबूत सब आहि हो रमैया राम। कहहि कबीर सुनो संतो हो रमेया राम। मत बुधि मति फैलावहु हो रमैया राम।. अर्थ-इनके अर्थ दो प्रकार से लगते है। 9 स्पृतियों ने छोगो को धोखा दिया। छोगी ने उन धोखो का विश्वास किया। कितु वे तो वन के समान हैं «(शब्द जाल महारण्य-विवेक चूड़ामणि)। सीकस का अर्थ है ऊसर। शात्र ऊसर वन है। इनसे कुछ नहीं मिल सकता है। वेद, भागवत आदि अपूर्ण, भ्रामक है। २ दूसरा अर्थ माया ने शास्रों को भी धोखा दिया। शास्त्रों ने भी माया के धोखे को विश्वास किया। फलठत भात्र स्वय माया वन गए। वे मुक्ति साधन नहीं रह सके। सदूगुरु का दिया ज्ञान ही सही ज्ञान है। गुरु ज्ञान द्वारा ही स्थापित, स्थिर हुआ। विषय मुक्त हुआ। यह शरीर गोबर, मलो का ऊँचा किला (कोट) है। इस शरीर क्षेत्र (खेत) को छोड़कर जाना होगा। गोवर सा जलना होगा। वहाँ (यम द्वार में) वुद्धिवल की पहुँच नहीं है। वहाँ साधना सभव नही। विना साधना के प्रभु की खोज कैसे होगी ? यह सुनकर मन मे धैर्य हुआ। ढज्जा भी आयी कि मैने साधना नही की है। अब पीछे (ससार में) मुड़ कर मत देखो। यह शरीर, यह ससौर कालबूत के समान केवल सहारे के लिये है। इसके सहारे से साधना होती है। प्रभु प्राप्त होती है। कितु ये स्वय साध्य नही है। ये तो स्वय कच्चे हैं। सत कबीर कहते है। अब मन और बुद्धि को दौड़ाना व्यर्थ है। [बिरखुली | आदि अंत नहि होत विरुली, नहिं जर पल्लौ पेड़ विरुली। निसु दासर नहि होत दिरुली, पौन पानी नहि मूल बिरहुली। ब्रद्मादिक सनकादि विरुली, कवि गेल जोग अपार बिरुली। भास असाढे सीतल बिरुली, बोइन सातो बीज बिखुली। नित कौड़े नित सीचे बिरहुली, नित नव पल्लौ पेड़ बिखुली। ्:

विप्रमतीसी आदि ८०९ छिछिल बिखुली छिछिल बिहहुली, छिछिल रहलि तिहुँ लोक बिरुली। फूछ एक भल फूलल बिखझुली, फूलि रहल संसार बिरहुली। सो फूल होरें संतर जना बिरुली, बंदि के राउर जाहिं बिरहुली। सो फूल बंदहि भक्त बिरुली, डसि गैल बैतल सांप बिरहुली। विषहर मंत्र न मान विरुली, गारुड़ि बोले अपार बिरुली। बिय की कियारी योयहु बिरहुली, लोढ़त को पछिताहु बिरडुली। जनम जनम जम अंतर विरुली, फल एक कनयर डार बिरुली। कहहिं कदीर सचु पाव बिझुली, जो फल चाख्हु मोर बिरखुली। अर्थ-बिरहुटी 5 सासारिक जीव हे जीव, ब्रह्म, माया किसी का भी आदि अंत नही है। नजड़, न पैड़, पल्लव | सव अवयव रहित है। हवा, पानी आदि मूल नही है। ब्रह्मादि देवता और सनकादि सतो ने अपार योग कहा है। इस योग से योगी हो माया और ब्रह्म के मनादि, अखड एव त्रिकाला बाधित स्थिति का ज्ञान होता है ।आषाढ वर्षरिभ और विषय गर्मी से शीतछुता का महीना है। मतलब कि ब्रह्म या माया भात मन से सृष्टि के सात बीज रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द, बुद्धि, अहकार बोते है। ब्रह्म माया को माध्यम वना कर सब करता है। स्वय अक्रिय रहता है। रोज कोड़ता, सीचता है। तब जगत वृक्ष मे पललव आते है। तीनों लोक छिछला, छितराया है। इसमे माया का, जीवन का, सत का एक फूल लगता हैं। यह संसार ही फूल है। इस फूल को सत जन लोढ़ते है। प्राप्त करते है। यह फूछ भगवान को समर्पित करते है। इसी फूल से भक्त भी बदगी करते है। सब को भयानक तृष्णा या माया साँप ने डैंस लिया है। इस मत्र को मात्रिक नही दूर कर सकता है। मात्रिक इसे अपार कहता है। ऐ जीव, तुमने माया विष की खेती की है। अब उसका फल प्राप्त करने मे पछताते हो। हर जन्म मे यम भेद पैदा कर रहा है। मृत्यु योनियाँ बदल रही है। नुकीले और कनेर की डाल के समान संसार फल कट्ठु है। सत कवीर कहते है। सुख तभी होगा जब मेरे फल परमात्म फल को चखोगे। दिप्पणी-विरहुली मे मात्र १३ पक्तियाँ है। इसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। अनेक प्रतियो मे यह नही है। बिरहुली को माया या विरही जीव कहते है। इसका अर्थ विरह भी है। सॉपिनी भी। इसे साँप विष उतारने के मंत्र से भी सम्बद्ध मानते है। यह बगाल की सती साध्वी विहुला से भी सम्बद्ध है। बगाल के सती बिहुलाने अपने पति को सर्प की पली को मना कर जीवित कर लिया था। बगाल मे बिहुढा देवी की पूजा होती है। | हिंडोला] भरम हिंडोला झूले सम जग आय। पाए पे खंभा दोऊ, 'मेरु माया मांहि। लोभ भौंरा, विरवै मर्वा, काम कीला ठानि। शुभ अशुभ बनाए डांडी, गहे दूनो पानि। करम पटरिया बैठि के, को-को न झूले आनि। झूलत गन गंधर्ब मुनिवर, झूलत सुरपति इंद्र। भूलत नारद सारदा, घूलत बेयास फरनिद्र। घूलत विंरधि महेश सुख मानि, झूलत सूरज चंद। आप निरयुन सरगुन होय झूलिया गोविद। शब्दारई-मेरु - हिडोले के चक्र का डडा। भीरा > हिडोले के चक्र को घुमाने वाला यंत्र | मरुवा 5 जिसमे हिडोला ढटकाया जाता है। कीला < कील खूँटी। ठानि 5 स्थापित किया।

८१0 कबीर समग्र डांडी > चार सीधी लकड़ियों या डोरी जिनमे बैठने के लिये लकड़ी ढटकती रहती है। पटरिया > बैठने का आसन। शब्धार्थ-छ छ छो चारि चौदह सात इकइस त्तीनि लोक बनाय। खानी बानी खोजि देखहु फिर न कोउ रहाय। खंड ग्रह्मांड घट दरसना छूटत कततहूँ नाहि। साधु संत्त विचारि देखहु जीव तरि कह जाहि। रैनि दिवस न चंद सूरज तहाँ तत्त पल्ली नाहिं। काल अकाल प्रहै नाही तहाँ संत बिरले जाहि। तहाँ के बिछुरै बहु कलप बीते भूमि परे भुलाव। साधु संगति खोजि देख्हु बहुरि उलदि समाण। यह चूलिदे की भय नही जो होंहि संदर सुजान। कहँहि कबीर सत सुक्रित मिले तो यहुरि न झूले आय। सात द्वीप एव चौदह भुवन। तीन लोक। खानी - चार प्रकार की जीवोतत्ति। बानी 5 चार प्रकार की वाणी। कल्प 5 ब्रह्म का एक दिन। इसमे १४ मनन्तर होते हैं। ४३२००-००००० वर्ष होते है। बहु विधि घित्र बनाय के हरि रघ्यो क्रीउा रास। जाहि भ इच्छा घूलिये की ऐसी बुद्धि केहि पास। झूलत बूलत बहु कल्प बीते मन नहि छोड़े आस। रच्यो हिंडोला अहो निसि चारि जुग चौमास। कब्हूँ ऊँचे कबहुँ नीचे सरग भूमि ले जाय। अति भरमत भरम हिडोलना नेदु नही ठहराय। डरपत हों यह झूलिये को राखु जादव राय। कहहिं कबीर गोपाल विनती सरन हरि तुब आय। शब्दार्थ-चित्र 5 ससार। जादव राय - कृष्ण। रच्यो क्रीड़ा रास 5 यह सृष्टि भगवान की रास, रस, रसिक क्रीड़ा, लीला है। हु लोभ भोह के खंभा दोऊ मन से रच्यो डिडोर। झूलहि जीव जहान जहैँ कतहूँ नहीं घिति ठौर। चतुरा घूलहि चतुराइया झूलहि राजा सेस | चाँद सूरज दोऊ झूलहि उनहु न अग्या भेव। लख चीरासी जीव झूलहि रविसुत धरिया ध्यान। कोटि कल्प जुग बीतल, अजहुँ न माने हान। भरति अकास दोऊ झूलहि झूलडि पवना नीर। देह धरे हरि झूलति ठाढे देख हंस कबीर।

ड़ ली सृष्टि क्रम (१) जीव रूप यक अन्तर-बासा, अन्तर ज्योति कीन्ह परगासा। इच्छा रूप नारि अबतरी, तासु नाम गायत्री घरी। तेहि नारि के पुत्र तिन भयऊ, ब्रह्मा विष्णु महेश नाम धरेऊ। तब ब्रह्म पूछल महतारी, को तोर पुरुष काकरि तुम नारी। तुम हम हम तुम और न कोई, तुम मोर पुरुष हमे तोरि जोई। साखी-बाप पूत की एके नारी, ओ एके माय बिआय। ऐसा पूत सपूत न देख्यो, जो बापै चीन्हे धाय || अर्थ-एक ब्रह्म या मूल शक्ति सभी जीवो के अत्र (हृदय) मे निवास करता है। वह ज्योति स्वरूप है तथा सभी उसी की ज्योति से प्रकाशित है। वह एक अपनी इच्छा से स्वेच्छया') नारी के रूप में अवतरित हुआ। उसका नाम गायत्री हुआ। इस गायत्री स्त्री के ब्रह्म, विष्णु और महेश नामक तीन पुत्र हुए। ब्रह्मा ने मा से पूछा-तुम्हारा पुरुष कौन है ? तुम किसकी स्त्री हो " उस स्त्री ने उत्तर दिया-तुम और हम, हम और तुम दूसरे नही है। तुम्ही मेरे पुरुष हो और मै ही तुम्हारी पतली हूँ। $ पिता पुत्र की स्त्री एक है। दोनो एक ही माँ से जन्मे है। ऐसा सपूत पुत्र नहीं देखा जो पिता से दौड़कर उसका परिचय पूछे। टिप्पणी-'एक' का अर्थ है वह मूल या सनातन शक्ति जो सृष्टि और प्रछुय सभी अवस्थाओ मे एक रूप रहती है। विस्तार और सकोच दोनो ही उसकी इच्छा से होते है। यह एक ही (स्वेच्छया स्वभित्ती विश्व उन्मीलियति-प्रत्यभिज्नाहदय) अपनी इच्छा से विश्व उन्मीलन करता है। उपनिषदो, पुराणो आदि मे इस एक की चर्चा बार-बार आई है। कठोपनिषद् (३,२, १२-१३) मे कहा गया है कि जो एक, सबको अपने अधीन रखनेवाला और सपूर्ण भूतो का अतरात्मा अपने एक रूप को ही अनेक प्रकार का कर लेता है (एको वशी सर्व भूतान्तरात्मा, एक रूप बहुधा य करोति)। श्वेताश्वरोपनिषद् मे एक ही देव को सर्वभूतो में गूढ़, सर्वव्यापी और | भूतो की आत्मा कहा गया है (एको देव सर्वभूतेषु गूढ सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ६।११) | गायत्री यहाँ प्रकृति, प्रधान या माहामाया के लिये आया है। गायत्री सपूर्ण वेदों का मूल है। अत त्रिगुणात्तक है। इसीलिये इसके तीन गुणों वाले तीन पुत्र हुए। देवी भागवत मे गायत्री को ब्रह्मदि का भी कारण कहा गया है। यह महायिद्या, महामाया, पूर्ण एवं अव्यय प्रकृति भी है (एषा भगवती देवी सर्वेषा कारण हि न। महाविद्या महामाया पूर्णा प्रकृतिरख्यया)। इसे ही पराशक्ति भी कहा गया है (श्वेता०६॥८)। जीव रूप मे अतर मे निवास करने वाला स्वय ईश्वर है। गीता मे कहा गया है कि हे अर्जुन, ईश्वर सभी जीवो के भीतर स्थित है। वही यत्रवत् सबका सचालन करता है-ईश्वर सर्वभूताना हहेशेडर्जुन तिप्ठति। ६ भ्रामयन्सर्वभूतानि यत्रारुढ़नि मायया १ ८।६१ |) गीता में ही श्रीकृष्ण ने कहा है कि महद् ब्रह्म मेरी योनि है जिसमे मै गर्भ स्थापन करता (८११)

८१२ कबीर समग्र हूँ। तभी सभी भूतो की उत्पत्ति होती है। सभी योनियो मे मूर्तियाँ उत्पन्न होती है,वीज डाढनेवाल पिता मै ही हूँमम योनिर्महद्व्ह्म तस्मिन्तर्भ दधाम्यहम । सभव सर्वभूताना ततो भवति भारत ॥१४।३ ॥ सर्वयोनिषु कीन्तेय मूर्तय सभवन्ति य | तासा ब्रह्म महद्योनिरह वीज प्रद पिता ||१४।४ || लोगो ने महद् ब्रह्म का अर्थ प्रकृति किया है। कितु ब्रह्म की योनि होने के कारण वह भी ब्रह्म रूप ही है। (२) अन्तर जोति सब्द यक नारी, हरि ब्रह्मा ताके मिपुरारी। ते तिरिये भग लिग अनन्ता, तेऊ न जाने आदिउ अंता। बाखरि एक विधाते कीन्हा, चौदह टहर पाट सो लीन्हा। हरिहर ब्रह्मा महतो नाऊँ, तिन्ह पुनि तीनि बसावल गाऊँ। तिन्ह पुनि रचल पिड ब्रह्मंठा, छव दरसन छानवे पाषंडा। पेटे न काहू वेद पढ़ाया, सुनति कराय तुरुक नहि आया। नारी मोघित गर्भ प्रसूती, स्वॉग धरे बहुते करतूती। तहिया हम तुम एके लोहू, एके प्रान वियापै मोहू। एके जनी जना संसारा, कोन ग्यान ते भयो निनारा। भी बालक भग द्वारे आया, भग भोगे ते पुरुष कहाया। अविगत की गति कहु न जानी, एक जीमि कत कहएठें बखानी।| जौ मुख होय जीमभि दस लाखा, तौ कोह आय मंहतो भाद्ा॥ साखी-कहहि कबीर पुकारि के, ई लूयऊ व्यौहार। राम नाम जाने बिना, भव बूड़ि मुबा संसार॥ शब्दार्थ-अन्तर जोति सब्द 5 हृदय मे प्रकाशित सृष्टि शब्द। एक नारी 5 महामाया। प्रकृति। तिरिये ८ स्त्री। महामाया। बाखरि ८ ससार। घर। ब्रह्माण्ड। टहर 5 ठहर। पाट ८ भाग। छानवे पाषड 5 योगी १२, जगम १८, शेवड़ा २४, सन्यासी १०, दरवेश १४, ब्राह्मण १८ | स्वॉग धरे 5 वेश बनाना। सृष्टि रचना की विविधता। निनारा 5 न्यारा। अलग अढग। भी 5 भव। ससार। भग > योनि। ऐश्वर्य। महतो 5 महत्ता | अर्व-हृदय या अतरात्मा शब्द सृष्टि प्रकाश हुआ। उस शब्द का स्कुरण हुआ जो सृधि का मूल है। यह शब्द सृष्टि एक स्त्री जैसा है। इसे प्रकृति या महामावा कहना चाहिए। इससे ब्रह्मा, विष्णु, महेश पैदा हुए। इसी महामाया स्त्री के अनत भगलिग वाले अनत स्त्री-पुरुष पैदा हुए। मतलब की पूरी सृष्टि मायामयी है। जिसने पैदा किया है वह महामाया भी इस सृष्टि का आदि अत (रहस्य) नही जानती । इसलिये कि वह स्वय चैतन्य नही है। विधाता ने ब्रह्माण्ड रूप । एक घर बनाया है। इस १४ भुवनो के ठहराव वाले भाग है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव महात्माओ ने . तीन लोको का गाँव बसाया है। उन्होने ही व्यष्टि और समषि ब्रह्माण्ड की रचना की है। उसी मे छ दर्शन (न्याय, वैशेषिक, वेदात, मीमासा, साख्य, योग) एवं छयानवे पाषडो की रचना की है। (यहा छ दर्शन और ९६ पाषड निदा सूचक हैं)। कोई भी व्यक्ति मॉँ के पेट मे ही वेद नही पढ़ता है। (अत वेद पढ़ने की सुविधा सबको होनी चाहिए)। कोई मुसलमान सुन्नत | कराकर पैदा नही होता है। (अत सुन्नत कराने मात्र से कोई मुसलमान नही हो जाता है । वे ६ » कृत नही, कृत्रिम प्रक्रियाएँ हैं)। प्रसूती स्त्री गर्भ मोचन द्वारा अनेक प्रकार की सृष्टि करती है।

-रमैनी ८१३ प्रकार के जीव गर्भ से पैदा होते है। ् सिृ के पूर्व पुरुष और प्रकृति, स्त्री और पुरुष मे अभेद था। दोनो एक थे। एक ही रक्त, एक ही प्राण था। एक ही मोह व्याप्त था। स्त्री-पुरुष के मोह भिन्त नही थे। अत कोई किसी को देखकर मोहित नहीं होता था। एक ही प्रकृति ने सबको पैदा किया है। यह भेद भाव पता नहीं किस ज्ञान का फल है? सभी बालक इस संसार में भग के रास्ते ही आते है। भग को भोगनेवाला पुरुष कहा जाता हे। उस पुरुष यी सृष्टि रचना विधान को कोई नही जानत | एक जीभ से उसका बखान भी सभव नहीं। दस छाख जीभ हो तो उसकी महत्ता का वर्णन हो सकता हैं। कबीर पुकारकर कहते है यह, वह ये सब सासारिक व्यवहार है। परमार्थत तो सब एक है। राम नाम के ज्ञान के विना सारे ससार के छोग इस भव सागर मे नष्ट हो रहे है। (३) हे प्रथम अरंभ कौन को भैऊ, दूसर प्रगट कीन्ह सो ठेऊ। प्रगटे ब्रह्म विष्नु सिब सक्ती, प्रथमहि भक्ति कीन्ह जिउ उक्ती। प्रगटे पदन पानी औ छाया, बहु विस्तार के प्रगटी माया। प्रगटे अण्ड पिण्ड ब्रह्मण्डा, प्रिथिमी प्रगट कीन्ह नौ खण्डा। प्रगटे सिध साधक संन््यासी, ई सब लागि रहे अविनासी। प्रगदे सुर नर मुनि सब झारी, ताही खोज परे सब हारी॥ साखी-जीव सीब सब प्रगठे, वे ठाकुर सब दास। कबीर और जाने नही, यक राम नाम की आस॥ अर्थ-इस सृष्टि का आरभ किससे हुआ ? दूसरा किसने इसे स्थिर किया ? ब्रह्मा, विष्णु शिव और शक्ति पहले पैदा हुए। उन्होंने अपने को जीव मानकर भक्ति की। अथवा उन्हीं जीव ने शब्द (उक्ति) द्वारा प्रथथ आराधना (भक्ति) की। उसके बाद पानी, पवन, छाया (तिज) और बहु विस्तार वाली माया प्रगट हुई। अड (व्यक्टि) और ब्रह्माड के साथ ही पृथ्वी प्रगट हुई। इस पृथ्वी के नव खड (भारत, इलावृत, किपुरुष, भद्र,, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रमय, कुश) पैदा हुए। अविनाशी सिद्ध, साधक और सन्यासी, सुर, नर, मुनि समूह (झारी) पैदा हुए। ये उस ब्रह्म को खोजकर हार गये (शायद इन्होने ब्रह्म को भीतर नही बाहर खोजा)। जीव और शिव या कल्याण जीव सब प्रगट हुए। ब्रह्म स्वामी है और सभी जीव दास है। कबीरदास और कुछ नही जानते। उन्हे एक राम नाम की आशा है। (४) (रमणादि निरूपण) प्रथम चरन गुरु कीन्ह बिचारा, करता गावै सिरजनहारा। करमै के के जय बीराया, सक्ति भक्ति है बाँघिनि भाया। अदुबुद रूप जाति की बानी, उपजी प्रीति रमेनी ठानी। गुनी अनगुनी अर्थ नहि आया, दहुतक जने चीन्हि नहिं पाया। जो दीन्हे तेहि निर्मल अंगा, अनचीन्हे नर भए पतंगा॥ साखी-चीन्ह चीन्ह का गावहु दौरे, बानी परी न घीन्ह। आदि अंत उतपति प्रले, आपुष्ठि के के लीन्ह ॥ अर्व--चना के प्रथम चरण अर्थात् आरभ मे ही गुरुदेव ने विचार किया। सृष्टि रचने-वाले कर्ता पुरुष का गान होना चाहिए। सारा ससार फल की आशा मे कर्म (कर्मकाड) कर-करके

८१४ कवीर समग्र पागल हो रहा है। शाक्तो और भक्तो को भी माया बॉधघे है। वे भी माया के बधन मे है। बानी अर्थात् शब्द की जाति अद्भुत है। शब्द के प्रभाव को देखकर ही प्रभु के प्रति प्रेम उत्लन्न हुआ। इससे रमैनी की रचना का निश्चय किया है। गुणी-अगुणी अर्थात् विद्वान, अविद्वानू, किसी को इसका आर्थ समझ मे नहीं आया। बहुत तो इसे पहचान भी न सके। जो सभी प्रकार से शुद्ध और स्वच्छ थे वे ही इसे पहचान सके। अर्थात् जो बाहर भीतर से स्वच्छ है वही रमैनी के त्तत्व को समझ सकता है। जिन्होंने नही पहचाना वे पतिगे के समान विषयो पर गिरकर प्राण दे रहे है। कबीरदास जी कहते है रमैनी के तत्त्व को पहचानो। बिना पहचान के क्या गाते हो ? अब तक तुम वाणी को नही पहचान पाए हो। आदि, अत, उत्पत्ति और प्रढय सब मे स्वय को लिया अर्थात् नष्ट किया। ५ कहाँ ले कही जुगन की बाता, भूला ब्रह्म न चीन्हे बाटा। हरिहर ब्रह्मा के मन भाई, विदि अच्छर ले जुक्ति बनाई। विबि अक्षर का कीन्ह बंधाना, अनहद सब्द जोति परमाना। अच्छर पढ़ि गुनि राह चलाई, सनक सनंदन के मन भाई। वेद कितेब कीन्ह विस्तारा, फैलि गेल मन अगम अपारा। चहुँ जुग भक्तन बाँँधल बाटी, समुझि न परी मोटरी फाटी। भे भे प्रिथिमी दहुँ दिसि घावे, अत्थिर होय न औषध पावै। होय भिस्त जो चित न डोलावै, खसमहि छोड़े दोजख को घावे। पूरव दिसा हंस गति होई, है समीप सँघि बूसे कोई । भगता भगतनि कीन्ह सिगारा, बूड़ि गैल सब मॉहि धारा। साखी-बिनु गुरु ज्ञान दुंदि भई, खसम कही मिलि बात। जुग जुग सो कहवैया, कहु न मानी बात। शब्दार्व-विबि ८ दो। परमाना - प्रमाण। बाटी 5 रास्ता। भै भै 5 भयवश। प्रिथिमी ८ पृथ्वी | भिस्त + विहिश्त | स्वर्ग। दोजख 5 नरक । दुदि ८ दन्द्र। हस 5 सूर्य | मुक्तात्मा। सँघि * रहस्य। मिलन तत्त्व | अर्थ-युगो की वाने कहाँ तक की जायें ? काल परिवर्त्तन तथा ससार ऐसा है जिसमे लोग सही रास्ते को नही पहचानते है। ब्रह्म को भूले है। या यो कि ब्रह्म भी रास्ता भूछा है। भूल जाता है। जव लोग रास्ता भूल गये तो ब्रह्मा, विष्णु, महादेव ने कृपा कर रास्ता दिखाने वाले ज्योतिस्वरूप दो अच्छरो का बधान बॉधा। एक युक्ति बनाई जो प्राणियों का उद्धार कर सके। ये अक्षर राम, हरि या ओम है। अक्षर को पढ़ गुण कर जो रास्ता बना वह सनक, सनदन, सनत्कुमार आदि को बड़ा अच्छा ढगा। उन्होने ही वेदादि का विस्तार किया। (क्योकि वे ब्रह्मा के निकट और सृष्टि के आदि पुरुष थे)। कितु अगम अपार वेदो मे मन फैल या उलझ गया। फिर चारो युगो के भक्तों ने राह बॉधी अर्थात् भक्ति पद्धति का निर्माण किया। कितु अपने अपूर्ण व्यक्तित्व (मोटरी फाटी) के कारण यह भक्ति पथ भी लोगो की समझ मे नही आया। माया के भय से सभी-लोग पृथ्वी पर चारो ओर दौड़ते है। कितु अस्थिर मन रहने के कारण असली औषधि को नही पाते है। स्थिर चित्तवाले को ही स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है। हा पा हे कि प्रभु (सम) की उपासना छोड़कर नरक की ओर हे जाने वाले भूत-प्रेतो की । करते है।

रमैनी ८१५ शा मे जैसे सूर्य है वैसे ही) मुक्तात्मा परमहस प्रभु का निवास है। वह परमहस / प्रभु ये है। कत इस रहस्य को कोई बिरठा ही समझ सकता है। भक्त और भक्तिन भी शरुगार में गे है। जगत-प्रवाह की मध्य धारा में डूब रहे है। व ों बिना सदगुरु के सरे ज्ञान इन्द्र हो गए। यह बात सदगुरु या स्वय पम्नु ने बतायी। युगयुग से गुरुदेव कह रहे है। कितु कोई भी बात मानने के लिये तैयार नही है। है हिप्पणी--सन, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, सुजात ये छ ब्रह्मा के पुत्र माने जाते है। कोई सन और सुजात को छोड़कर ब्रह्मा के चार ही पुत्र मानते है। (६) (मोक्षावस्था) बरनहूँ कौन रूप औ रेखा, दोसर कौन आहि जो देखा। औ ओंकार आदि नहि बेदा, ताकर कहहु कौन कुल भेदा। नहि तारागन नहि रबि चन्दा, नहि कछु होत पिता के विदा। नहि जल नहि थल नहि थिर पौना, को घरे नाम हुकुम को बरना। नहि कछु होत दिवस औ राती, ताकर कहहु कौन कुल जाती ॥ साखी-सुन्न सहज मन सुमिरत, प्रगट भई एक जोती। बलिहारी ता पुरुष की, निरालम्ब जो होती॥ शब्दार्थ-आहि 5 है। ओ 5 वह। बिदा विदु। वीर्य। पौना 5 पवन। थिर # स्थिर। सुन 5 शून्य | अर्थ-उस परमतत्त्व की रूप रेखा का क्या वर्णन करूँ ? जहाँ वह है वहाँ और कौन है जिसने उसे देखा हो। वह ओकार सर्वप्रथम प्रगट हुआ। जब वेद भी अस्तित्व मे नही थे। इसलिये कुल के भेदो से मुक्त है अर्थात् उस परमैतत्त्व का कोई कुल भेद नही है। वहाँ न तारे है, न सूर्य और चद्रमा है। वह पिता के वीर्य के विना उत्मनन है। वहाँ जल, स्थल और हवः जैसे प्राकृत पदार्थों का भी अभाव है। मतलूव कि परमतत्त्व प्राकृत पदार्थों से ऊपर है। भिनल है। इसलिये वह नाम रहित और किसी भी प्रकार की आज्ञा से रहित है। वहाँ रात दिन भी नही होते। ऐसे निराकार की कुल, जाति भी नहीं है। वह शून्य है। इस सहज भून्य के स्मरण से एक ज्योति प्रगट हुई। उस पुरुष की दलिहारी है। वह बिना किसी सहारे के स्वशक्ति से टिका है। टिप्पणी-परमतत्त्व शून्य मे स्थित है। वहाँ प्रकोश के सारे साधन नहीं हैन तत्र सूर्यो भाति न चद्रतारकम्, नेमा विद्युतो भाति कुतो5यमग्नि | तमेव भान्त मनु भाति सर्व, तस्य भासा सर्वमिद विभाति | कठ० २(२।१५ इसे सहज शून्य स्थिति कहते है। यहाँ केवल परमतत्त्व है। किसी भी प्रकार के भौतिक पदार्थों से शून्य है यह स्थान। कुछ नही होने के कारण शून्य है। परमतत्त्व भी शून्य है। साधक समाधि द्वारा यहाँ पहुँच सकता है। इस स्थिति को प्राप्त कर सकता है। जब साधक का मन निर्विषय हो जाता है तब इस स्थिति की प्राप्ति होती है। इसे ही असम्रज्ञात निर्विकल्प समाधि भी कहते है। ' इसे ही असम्पज्ञात समाधि दशा या

८१६ कठीर समग्र (७) (महावाक्योपदेशादि) तत्तुमसी इन्हके उपदेसा, ई उपनिषद कहै संदेसा। . ई निसस्‍्वे इन्हके बड़ भारी, वाहि करे वर्णन अधिकारी | परम तत्तु का निज परमाना, सनकादिक नारद सुक जाना। जागबलिक औ जनक संवादा, दत्तानेय उड़े रस स्वादा | उहे राम वसिष्ठ मिलि गाई, उहे क्रिस्स ऊधी समुझाई। उहै बात जो जनक दिठाई, देह घरे विदेह कहाई॥ साखी-छुल अभिमाना खोड के, जियत मुवा नहि होय। देखत जो नाह देखिया, अदिष्टि कहाये सोय ॥ अर्थ-तत् त्वम् असि। तुम (जीव) वही (ब्रह्म) हो।"यह उनका अर्थात् उपनिषदो का संदेश और उपदेश है। जीवो व्रहैव ना पर । जीव ओर ब्रह्म एक है। कोई दूसरा नही है। उपनिषद्कार क्रूपियो का यही निश्चय है। यही इसके वर्णन के अधिकारी है। परमतत्त्व स्वत प्रमाण है। यह उन ऋषि का स्वानुभूत प्रमाण है। इसके लिये अनुमानादि प्रमाण की जरूरत नहीं है। सनकादि, नारद, शुकदेव ने इस तत्त्व को जाना है। याज्ञवत्क्य और जनक [बृहदारण्बोपनिषद् में) सवाद मे भी इसी तत्त्व का चितन हुआ है। दत्तात्रेय मुनि ने महाभारत, भागवत आदि मे भी इसी तत्त्व का चितन किया है। उसी रस स्वाद मे निमग्न थ। योगवासिष्ठ मे राम और वसिष्ठ ने भी इसी का सयुक्त गान किया है। भागवत पुराण मे श्रीकृष्ण ने उद्धव को यही समझाया है। इसी को दृढ़तापूर्वक ध्यान मे रखने के कारण देह धारणकर भी राजा जनक विदेह कहे गये। कुलाभिमान छोड़कर कोई भी जीवित रहकर नही मरा। मतलब कि तत्तत्त्वमति के साधक की कभी मृत्यु नही होती। वह मृत्यु को पार कर जाता है। बृहदारण्यकोपनिषद् (४॥४॥१९) के अनुसार जो एक को न देखकर नानात्व को देखता है वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त करता है। ईशावास्योपनिषद् के अनुसार जो विद्या और अविद्या दोनो को जानता है वह अविद्या से मृत्यु को पार कर विद्या से अमृत ग्राप्त करता हैविद्या चा विद्या च यस्तद्वेदो भय सह। अविद्यया मृत्यु तीर्वा विद्ययामृतमशनुतै ।१ १| जो सब कुछ देखकर भी नही देखता है अर्थात् वाह्य दृष्टि से मुक्त होकर, विषयों का सेवन न कर, विषयो से परे देखता है उसे ही दृष्टि रहित या अदृष्ट कहते है। अदृष्ट का अर्थ यह भी है कि जो दृध्यो के परे है उस अदृष्ट को देखने वाला। (८) बांधे अड'कंष नो सूता, जम बाघे अंजनी के पूता। जम के गाहन दाँधे जनी, बॉधे द्रिष्टि कहों लौ गनी। बॉँघे देव तेतीस करोरी, सुमिरत बंदि लोह गै तोरी। राज सँवरे तुरिया चढ़ी, पवी सेव नाम ले बट़ी। अर्थ बिहूा सेंवरे नारी, परजी सँदरे पुहमी झारी।॥ साउी-बंदि भनाबै फल मिले, बंदि देय सो देव । कहै कबीर ते ऊबरे, निसिदिन नामहि लेए ॥ है शब्दार्व-अष्ट न शरीर के आठ अग जिनसे अति नग्न अभिवादन किया जाता है। आठ दिशाएँ। आठ प्रकार के योग। अणिमादि आठ सिद्धियाँ। नौ 5 नव ग्रह। नव निधि। भक्ति | $

रमैनी ८१७ अजनी 5 माया। जनी ८ उत्नन। छोग। जम के बाहन ₹ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर,मान। इन्हे पड्रिपु भी सा | तुरिया ८ घोड़ा। तुरीयावस्था। अर्थ 5 धन। पुरुषार्थ - पथ्वी। झारी - समूह। सँवर - स्मरण करना | मा सिद्धियो एवं नवो निधियो की प्राप्ति माया पुत्र यम का बधन है। जो सिद्धियो और निधियो के चक्कर मे रहते है उन्हे यम के बधन मे पड़ना होता है। उनकी मृत्यु होती है। काम, क्रोधादि यम के सवारी है जिन्होने सारी सृष्टि को बाँध लिया है। इनके बारे मे कहाँ तक कहा जाय ? इन्होने तैतीस कोटि देवो को भी बॉध रखाहै। जिन देवो के स्मरण से लोहे के बंधन भी टट जाते है। राजा घोड़े पर चढ़कर स्मरण करते है (या राजयोग के उपासक तुरीयावस्था मे स्मरण करते हैं)। पथी अर्थात् साधक नाम ड्वारा स्मरण करते है। स्त्रियों पुरुषार्थ रहित होकर स्मरण करती है। प्रजा समूह पृथ्वी का स्मरण करता है। मतलब कि प्रजा साधन रहित है। उसके स्मरण के लिये केवल यह पृथ्वी है। हे वदना से फल मिलता है। वदना से देनेवाला ही देव है। जो नित्य नाम स्मरण करता है वही मुक्त होता है। यही श्री कबीर कहते है । (९) राही लै पिपराही यही, करगी आवत कछु न कही। आई करगी भी अजगूता, जन्म-जन्म जम पहिरे बूता | दूता पहिरि जम करै सुमाना, तीनि लोक मैँह करे पयाना। बांधे ब्रह्मा बिस्नु महेसू, सुरनर मुनि औ बॉधु गनेसू। बाँधे पौन पावक नभ नीरू चाँद सुरुज बाँघे दोउ बीरू। साँच मंत्र बॉधिनि सब झारी, अमृत वस्तु न जाने नारी॥ साखी-अमृत वस्तु जाने नही, मगन भये सब लोय। कहहि कबीर कामो नही, जीवहि मरन न होय ॥ शब्दार्थ-राही 5 राह। पिपराही 5 पानी। करगी 5 ओढा। बूता 5 ताबूत। पयाना प्रयाण। नारी > अज्ञानी साधक। अर्थ-जल रास्तो को डुबाकर बह गए। विषय जल ने सभी रास्ते बर्बाद कर दिये। वासना के ओलो के गिरने की बात किसी ने नही कही। वासना के ओलो के गिरने से अजूबा हुआ। जन्म-जन्मान्तर के लिये यम का ताबूत पहनना पड़ा। ताबूत पहनने पर यम ने मान किया। फिर तो तीनो लोको मे भ्रमण चक्र प्रारभ हो गया। वासना के प्रभाव से यम के ताबूत मे ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सुर, नर, मुनि और गणेश सभी बँधे अर्थात् सभी मरणधर्मा हो गए। हवा, आग, ' आकाश, पानी एवं चाँद, सूर्य दोनो भाई भी बॉधे गए। सच्चे मत्र से सबको बॉध लिया। : ज्ञानी साधक अमृत तत्त्व को नही जानता है। .. अमृत कस (ब्रह्म) को जाने बिना ही सभी लोग प्रसन्न हो रहे है। कबीरदास कहते हैं . जिसने काम को छोड़ दिया है उसका जन्म-मरण नही होता है। (१०) हल (मनोमाया महिमा) ऑँधरि गुष्टि स्धिष्टि भी बोरी, तीनि लोक मँह लागि ठगौरी। ब्रह्महि ठग्यो नाग कहें जारी, देवन सहित ठग्यो त्रिपुरारी । - राजठगौरी बिस्ुनुहि परी, बोदह भुवन केर चौधरी। आदि अंत जाकि जनक न जानी, ताकर डर तुम काहे न मानी | थे उत्तंग तुम जाति पतंगर, जम घर कियहु जीव को संगा। ३

८१८ कबीर समग्र नीम कीट जस नीम पियारा, विष को अम्रत कहै गँबारा। विष अमृत गो एकहि सानी, जिन जानी तिनि विधि के मानी। विष के संग कौन गुन होई, किचित लाभ मूल गो खोई। कहा भये नर सुध बेसूधा, बिनु परचे जग बूड न बूझा | मति के हीन कौन गुन कहई, लालच लागे आसा रहई॥ साखी-मुवा है मरि जहुगे, मुए की बाजी ठोल। सपन सनेही जग भया, सहिदानी रहि बोल॥ शब्दार्थ-गुष्टि गोष्ठी | ठगौरी 5 माया। नाग कहँ जारी 5 जनमेजय के नाग यज्ञ की ओर सकेत है। त्रिपुरारी > शिव। राजठगीरी 5 प्रधान माया। चौधरी 5 मालिक। सहिदानी « चिह्न । प्रमाण | अर्थ-सारी सृष्टि वासना-विकल पागल हो रही है। यह ससार वासना-विकल पागलो की गोष्ठी है। तीनो लोको को माया ने प्रभावित कर रखा है। माया ने सर्वप्रथम ब्रह्मा को ठग कर उनसे सृष्टि करवाई। जनमेजय को नाग-यज्ञ की प्रेरणा दी। देवो सहित शिव को ठग कर रति को वरदान दिया एव पार्वती से पुत्र पैदा किया। चौदह भुवन के स्वामी विष्णु को भी प्रधान माया ने ठग लिया। वे भी लक्ष्मी के चक्कर मे पड़ गए। जिसके आदि-अत को जनक भी नहीं जानते है उसके डर को हे लोगो तुम क्यो नही मानते ? माया ऊँची है। उसके सामने मनुष्य पतिगे-सा है। जीव का साथ कर अर्थात् अपने को जीव समझकर यह चैतन्यात्ता भी यम के वश मे हो जाती है। लोग वासना या माया मे वैसे ही फेंसे है जैसे नीम के कीड़े को नीम से प्यार होता है। मूर्ख (कीड़े) विष को अमृत कहते है। विष (विषय) के साथ कोई गुण नही है। थोड़े से छाभ के चक्कर मे मूल ही नष्ट हो जायगा। मनुष्य समझदार होकर भी मूर्ख बना है। प्रभु या आत्मतत्त्व के ज्ञान के बिना सब व्यर्थ हो रहा है, सारे छोग माया मे डूब रहे है। जिसे बुद्धि नही है वह क्या कर सकता है ? बस आशा-लालच मे रहता है। सभी लोग पहले मरे है। तुम भी मरोगे। मरने का ही ढोल बजता है। उसे लोग ढोल बजाकर हे जाते है। या मरे के चमड़े से ही ढोल बनता है। बजता है। तात्पर्य यह कि विषयों में पड़ा व्यक्ति मृत्यु ग्रस्त है। वह शाति नही पा सकता है। ससार के लोग स्वप्न मे मिलनेवाले प्रेमियों के समान है। मेरी बोली ही प्रमाण है। मै ठीक कहता हूँ। (११) माटिक कोट पषानक ताला, सोई बन सोई रखवाला। सो बन देखत जीव डेराना, ब्राह्मन वैष्णव एके जाना। जौ रे किसान किसानी करई, उपजै खेत बीज नहि परई। छोड़ि देहु नर ब्लेलिक झेला, बूड़े दोऊ गुरु औ चेला। तीसर बूड़े पारथि भाई, जिन बन डाहो दावा लाई। भूंकि भूंकि कूकुर मरि गयऊ, काज न एक सियार से भयऊ॥ साखी-मूस बिलाई एक संग, कहु कैसे रहि जाय। अचरज एक देखहु हो संतो, हस्ती सिघहि खाय ॥।। शब्दार्थ-माटिक 5 मिट्टी का। कोट 5 भवन। शरीर। ससार। पषानक ताला 5 जड़ता। बन 5 शरीर। ससार। रखवाला 5 रक्षा करनेवाला। सो बन 5 मायामय वन। झेलिक झेला * खीचतान | लोभ मोहादि। पारथि > शिकारी। साधक। डाहो > दावाग्नि। कूकुर 5 अन्जानी जीव। सियार 5 नकली गुरु। मूस बिलाई ८ विषयासक्त जीव और माया। हस्ती - मावा। सिघहि + जीव | अहकारी जीव।

रमैनी ८१९ अर्थ-यह शरीर या ससार मिट्टी का बना नाशवान है। इसकी रक्षा करनेवाले तत्त्व मजबूत दीखते है। कितु वे भी नाशवान् है। क्योकि रक्षक पाषण स्वय जड़ है। इसमे चैतन्य ज्ञान का अभाव है। इस शरीर या ससार की रक्षा भी माया या वासनाओ द्वारा करना चाहते है। ये दोनो (क्षित और रक्षक) एक ही समान नाशवान् है। ससार या शरीर एक जगल है जिसमे प्रवत्तियों, वासनाओ के विषैले जीवजतु भरे है। इन्हे देखकर डर लगता है। ब्राह्मण और वैष्णव दोनो एक ही प्रकार के है। ये ससार की इस स्थिति को नही समझते है। सृष्टि रचना ऐसी वस्तु है जिसमे जीव रूपी किसान खेती करता है। इस खेत (ससार) की उपज तो लेता है-। कितु इसमे साधना का बीज नही डालता है। हे जीव, सासारिक खीचतान, लोभ, मोहादि छोड़ दो। सासारिकता, शिष्य और गुरु दोनो को नष्ट कर देती है। उन शिकारियो का भी नाश हो जाता है जो ससार से कुछ प्राप्त करना चाहते है। जिन्होने स्वार्थपूर्ति हेतु ससार-बन मे प्रवृत्तियो की आग लगायी है, सासारिक होशियारी में पड़े लोग सियार के समान है। लोग विषय के चक्कर मे पड़कर कुत्ते-सा भूँक-भूँककर मर जाते है। कभी तृप्ति नही होती है। माया और जीव एक साथ है। भल्रा इन दोनो भक्ष्य और भक्षक का साथ कैसे रह सकता है ? आश्चर्य तो यह है कि माया रूपी हाथी सिह रूपी विषयासक्त जीव को खा रहा है। १२ (माया से सावधानी) नहि परतीत जो यहि संसारा, दरब की थोट कठिन के मारा। तासे सेषहु जाइ लुकाई, काहू के परतीति न आई। चले लोग सब मूल गँवाई, जम की बाढ़ि काटि नहि जाई। आजु काज है काल्हि अकाजा, चलेउ लादि दिगन्तर राजा) सहज विधारत मूल गँवाई, लाभ ते हानि होय रे भाई। वोछी मति चंदा गो अबई, ज़िकुटी संगम स्वामी बसई। तबही बिस्नु कहा समुझ्नाई, मिथुन आठ तुम जीतहु जाई। तब सनकाविक ततु विधारा, ज्यो धन पावहि रंक अपारा। भी मरजाद बहुत सुख लागा, यहि लेखे सब संसय भागा। देखिनि उतपति लागु न बारा, एक मरे एक करे विचारा। मुए गुए की कोई न कहई, झूठी आस छागि जग रहई॥ साखी-जरत जरत से बाँधिहो, काहे न करहु गोहारि। दल लकी | ३ कम ४५ 2४388 मिलि झारि॥ >दरब < धन | बाढ़ि > वृद्धि। # छुंद्र। छोटी। गो > गया। अथई कक 720 भौहो के पा का स्थान जहाँ इला, पिगला, सुषुम्ना नाड़ियो का मी -।परमतत्त्व। मिथुन आठ > माला, सुगध बज गज वा थुः / सुगध, स्त्री, वस्त्र, भूषण, गीत, सग्गधो वनिता वस्त्र गीत ताम्बूल भोजनम्। भूषण वाहन चेति भोगस्वष्ट विध स्पृत्त ॥ (काम दर्पण) कि विलब | गुहार > पुकार। अहम जर्व-इस ससार का विश्वास नही करना चाहिए। क्योकि इस ससार की नहीं व्यावहारिक है। इसके सुखादि प्रातिभासिक है। धन-दौलत की सत्ता का 30308

८२० कबीर समग्र है। इसलिये इसके द्वारा उत्पन्न दुख भी कठिन है। यही सब सोचकर शेषनाग पाताहु चले गये। यह ससार मिथ्या है। इसका सुख प्रातिभासिक है। इसका किसी को विश्वास नहीं होता है। फलत लोग मूल तत्त्व आत्म तत्त्व को न प्राप्त कर या ससार जन्म का हेतु नष्ट कर चछे जाते है। वे यमराज की वृद्धि मृत्यु को नष्ट नही कर पाते है। सभी लोग आज कल मे हगे है। आज काम है। कल काम की हानि होगी इसे लादे बड़े-वड़े राजा चले जाते है। इस सतार से दिशान्तर कर जाते है। लाभ की आशा मे हानि हो जाती है। छोटी बुद्धि वालो-का भाग्य-चद्र नष्ट हो जाता है। स्वय चद्रमा गुरुपलीगामी होने से क्षयग्रस्त हो गया। नष्ट हो गया। लोग नही जानते कि सबका स्वामी परमतत्त्व त्रिकुटी मे निवास करता है। मतलूव कि सबको त्रिकुटी का ध्यान करना चाहिए। इस ध्यान से परमतत्त्व का साक्षात्कार होता है। भगवान् विष्णु का उपदेश है कि मैथुन के आठो रूपो को जीतना चाहिए। विष्णु द्वारा प्राप्त ज्ञान से सनकादि को तत्त्ववोध हुआ। जैसे गरीब को अपार धन की प्राप्ति हो गई हो। सारे सशय दूर हो गये और मर्यादित सुख की प्राप्ति हुई। उन्हे ससार मे सृष्टि को देखने मे देर नही लगी। उन्होने देखा कि ससार मरणशील है। सभी मर रहे है। ससार मे-सभी आशाएँ नश्वर है। झूठी है। मरनेवालो के बारे मे कोई कुछ नही कहता है। विषयो मे दिन-रात जलने की अपेक्षा इस जलन से मुक्त होना चाहिए। ईश्वर को पुकारना चाहिए। वही सबका रक्षक है। बे १३ वड़ सो पापी आहि गुमानी, पाषंड रूप छलो नर जानी। बावन रूप छलो दलि राजा, ब्राह्मम कीन कौन को काजा। ब्राह्मन ही सब कीन्हो चोरी, ब्राह्मन ही को लागल खोरी | ब्राह्मन कीन्हों ग्रंथ पुराना, कैसहु के मोहि मानुष जाना। एक सै ब्रह्म पंथ चलाया, एक से हंस गोपालि गाया। एक से सिभू पंथ चलाया, एक से भूत प्रेत मन लाया। एक से पूजा जैनि विधारा, एक से निहुरि निमाज गुजारा। कोउ क्ठु को हटा न माना, झूठा खसम कबीर न जाना | तन मन भजि रहु भोरे भक्ता, सत्त कबीर सत्त है वक्ता! आपुष्टि देवा आपुष्टि पाती, आपुष्दि कुल आपुष्टि है जाती। सर्वभूत संसार निवासी, आपुष्ि खसम आपु सुखरासी। कहते मोहि भये जुग चारी, काके आगे कहो पघुकारी॥ साखी-साँचहि कोई न मानई, झ्ूठहि के संग जाय। झूठहि झूठा मिलि रहा, अहमक खेहा खाय॥ शब्दार्थ-गुमानी न घमडी। अहकारी। पाषड & छल। धोखा। खोरी 5 दोष। वदनामी। * हटा 5 रोकना | अर्थ-वह वड़ा अहकारी और पापी है जो सबको छलता है। पाषड का अर्थ है नकली धर्म वाला। जो नकली धर्म के आधार पर सबको धोखा देता है। विष्णु ने वामन ब्राह्मण का रूप धारणकर बलि (असुरराज) को छला। ब्राह्मण ने किसी का भला नही किया है। ब्राह्मणो द्वारा यह भी चारी है।| सारे शास्त्र अपने लिये सुरक्षित कर लिये। इसी से उनकी वदनामी हुई। ब्राह्मण ने ही ग्रंथों और पुराणो की रचना की || जिससे लोग उन्हे मनुष्यों मे श्रेष्ठ माने। उन्होने ब्रह्यमघ चलाया। एक कृष्ण के हस स्वरूप का पथ

चलाया। एक पथ शिव (शैव) का चलाया। एक से भूत-प्रेतो की उपासना की। एक जैनो की पूजा है। 58 चना 5 22 सी कलक नल न सनातन ता 77 जह

रमैनी ८२१ एक झुककर नमाज पढ़ता है। कोई किसी के रोकने पर नही मानता। कबीर झूठे परमात्मा को नहीं मानते है। मेरे भक्तो, तन-मन से सत्य वक्ता संत्य कबीर का भजन करो । सभी स्वयदेव हे। खब प्रकाश है। सारी सृष्टि अपना कुढ है। अपनी जाति है। सभी भूत समुदाय जो ससार के निवासी है स्वय स्वयसाधक, आराध्य और सुख के भडार है। इस बात को सत्य कबीर चार युगो सतयुग, द्वापर, त्रेता और कलियुग) से कह रहे है। कोई सुनता नहीं। किसके आगे पुकारकर कहेँ ? सभी झूठ की ओर जाते है। सत्य को मानने के लिये कोई भी तैयार नहीं है। सभी असत्य आचरण से असत्य ज्ञान को प्राप्त करते है। फलत मूर्ख बनकर धूछ फॉकते है। १४ (भव पन्थ खेद प्रकरण) उनई बदरिया परिगौ संझा, अगुआ भूले बनऊंड मंज्ा। पिया अनते धनि अनते रहई, घोपरि कामरि माथे गहई। साखी- फुलवा भार न है सके, कहै सखिन सो रोय। ज्यौी ज्यों भीजे कामरी, त्यो त्यो भारी होय | अर्थ-होभ, काम, क्रोध, आदि के उमड़ने के कारण सत्य पथ पर जअज्ञान का उँधरा छा गया है। जीवन का अत भी आ गया है। अगुआ गुरु भी विषय वन में भटक गये है। परमपुरुष प्रिय और साधक जीवरूपी धन्ञ्या अलग-अलग दूर है। धन्या के माथे पर वासना की 30 हुई कमली है या शरीर कम्बल, बाल, किशोर, युवा एवं वृद्ध इन चार अवस्थांओ से राहै। हु साधिका रोकर कहती है जिसका मन इतना कोमल है कि फूठ का भार भी नहीं सह सकती है। वह वासना जल की वर्षा से भीगे कम्बल (शरीर) के बोझ को कैसे उठायेगी ? वासना बढ़ रही है और मन तथा शरीर सा भार को सहने मे असमर्थ हो रहे है। १५ (अविवेकादि) जस जिव आपु मिले अस कोई, बहुत घर्म सुख हृदया होई। जासों बात राम की कही, प्रीति न काहू सो निरबही। एकहि भाव सकल जग देखी, याहर परे सो होय विवेकी। विषय मोह के फंद छोड़ाई, तहँई जाय जँह काट कसाई। आहि कसाई छूरी हाथा, कैसहु आबे कांटे माथा। मानुस बड़े बड़े द आए, एके पंडित सबै पढ़ाए। पढ़ना पद्हु धरहु जनि गोई, नहि तौ निश्चय जहु बियोई !॥ साखी-सुमिरन करहु राम के, छाड़हु दुख के आस। कक 833 गा ध्ै हक जस कोलु कोटि पचास ॥ अप गे मिलते है तभी धर्म का हार्दिक सुख होता है। अधार्मिक व्यक्ति से राम की बात कही तो वह प्रीति का निर्वाह नही करता है। सभी एक ही विषय भाव में लिप्त है। बाहर देखनेवाले को ही विवेकी समझते है। छोग उस पशु के समान है जो वक्षनमुक्त होते ही कस्ताई के पास चला जाता है+- वैसे ही मनुष्य विषयो के मोह से छूटकर भी नकली गुरु के पास पहुँच जाते हैं। कसताई हाथ-छुरी लिये है। कैसे भी आए और उसका माथा काट दे। ऐसी ही स्थिति नकती गुरु की है। बड़े-बड़े मनुष्यों को भी पडितो ने एक ही बात ६ | असली तत्त्व का ज्ञान नहीं कराया। आलज्ञान - से दूर रखा। पढ़ना हो तो'आत्म तत्त्व

८२२ कबीर समग्र जो सबके भीतर है पढ़ो। वरना सारी पढ़ाइयाँ नष्ट करनेवाली है। दुखद आशा छोड़कर राम का स्मरण करो। अन्यथा स्वर्ग और ससार दोनो की प्राप्ति पचास करोड़ कोल्हू के समान भारी है। व्यर्थ है। अनहद अनुभव की करि आसा, देखहु यह विपरीत तमासा। इहै तमासा देखहु भाई, जहवोँ सुंन तहाँ चलि जाई। सुनहि बांछा सुंनहि गैऊ, हाथा छाड़ि बेहाया भैऊ। संस सावज सब संसारा, काल अहेरी सांन्न सकारा ॥ साखी-सुमिरन करहू राम के, काल गहे है केस। ना जानहु कब मारिहै, का घर का परदेस॥ शब्दार्थ-सुन 5 शून्य। आकाश। अनहद & अनाहत नाद। बाछा 5 इच्छा। सावज जानवर | अहेरी > आखेटक। शिकारी। सकारा 5 सवेरा। अर्थ-यह उल्टी वात है कि लोग अनाहत नाद को ही सब कुछ समझ लेते है। उसी को परमतत्त्व मान बैठते है। शून्य मे पहुँचना या आकाश तत्त्व को प्राप्त करना भी परमतत्त्व को प्राप्त करना नही है। अनाहत नाद और आकाश तो तमाशा मात्र है। इन्हे कभी सिद्धि नहीं मानना चरहिए। शून्य के प्रति इच्छा रखनेवाला शून्य मे ही जाता है। जो कुछ हाथ मे आनेवाला है उससे भी वेहाथ का हो जाता है। सारा ससार सशय पशु-सा है। साँझ-सवेरे का काल परिवर्तन शिकारी है। यह काल परिवर्तन का शिकारी सभी को नष्ट करता है। काल सबके केश पकड़े है। इसलिये सबको राम का स्मरण करना चाहिए। कोई नहीं जानता कि काल घर मे मारेगा या परदेश मे ? क्योकि काल घर और परदेश सर्वत्र है। (१७) ! (दुःखमय यातना) अब गहु सत्यनाम अविनासी, हरि तजि जियरा कतहुँ न जासी। जहाँ जए़ु तहाँ होहु पतंगा, अब जनि जरहु समुझि विषसंगा। रामनाम लौ लाय सो लीन्हा, भृंगी कीट समुझि मन दीन्हा। भव अस गरुआ डुःख अति भारी, करु जिन जतन जे देसु विधारी। मन की बात है लहरि विकारा, ते नहि सूचे वार न पारा ॥ साखी-इच्छा करि भी सागरे, बोहित नाम अघार। कहै कबीर हरि सरन गहु, गो बछ झुर विस्तार॥ अर्थ-अविनाशी सनातन सत्यनाम (राम) को ग्रहण करो। यह हृदय, हरि को छोड़कर कही नही जायगा। विषयों के सग के दुष्परिणाम को समझकर अब विषयो मे मत जलो। विषयो मे भटकने से पतग के समान जलना होगा। राम-नाम से प्रेम करो। जैसे कीट भ्रमर का साथ कर भ्रमर हो जाता है। उसी प्रकार राम-नाम स्मरण से जीव भी राम बन जाता है। ससार भारी है। इसका दुख गभीर है। अच्छी प्रकार से विचार करो। जो मन की बातो की विकार- लहर मे ' दौड़ते है उन्हे भवसागर का आरपार नही दीखता है। राम-नाम रूपी जहाज द्वारा भवसागर को पार करने की इच्छा करो। हरि की शरण मे । जाने पर भवसागर को पार करना गोखुर 0, जैसा सरल हो जाता है। १८ बहुत दुख है दुख के खानी, तब बचिहुहु जब रामहि जानी। रामहि जानि जुक्ति जी चलई, जुक्तिहिं ते फंदा नि परई।

प्मैनी ८२३ जुक्तिहि जुक्ति चला संसारा, निश्चय कहा न मानु हमारा। कनक कामिनी घोर पटोरा, संपति बहुत रहे दिन थोरा। धोरहि संपत्ति गौ दोराई, धर्मराज के खबरे न पाई। देखि त्रास मुख गौ कुम्हिलाई, अपृत धोखे गो विष खाई॥ साखी-मै सिरजो मे मारो, मै जारी मै खाउें। जल थल नभ मेंह रमि रहो, मोर निरंजन नाउँ॥ अर्थ-बहुत दुख है। दुख की खान है। पूरा ससार ही दुख है। राम को जानने पर ही दुख से वण जा सकता है। राम को जानकर जो युक्ति चलती है उस युक्ति से वधन नही होता है। सोना, स्त्री, रेशमी वस्त्रादि सपत्ति थोड़े दिनो की मेहमान है। थोड़े धन में पागल हो गए। यमराज का डर नहीं हुआ। यम के डर से मुँह कुम्हला गया। अमृत के धोखे से विष खा लिया। | मैं ही पैदा करता हूँ। मै ही मारता हूँ। मै ही खाता हूँ। मेरा नाम निरजन है। मै ही जल, थल, नभ मे रमा हूँ। (१९) अलख निरंजन लखै न कोई, जेहि बंधे बंधा सब कोई | जेहि झूठे बंधाय अयाना, झूठी बात सांच के जाना। धंधा बंधा किन्ह बेवहारा, करम विवरजित बसे निआरा। घट आश्रम घद दरसन कीन्हा, पटरस वास घट वस्तुषहि चीन्हा। चारि बु़क्ष एव साख बदाने, विद्या अगनित गने न जाने। अवरो आगम करे विधारा, ते नहि सूच वार न पारा। जप तीरय ब्रत कीजे पूजा, दान पुन्य कीजै बहु दूजा॥ साखी-मंदिर तो है नेह का, मति कोइ पैठे धाय। जो कोइ पैठे घायके, झिनु सिर सेतिहि जाय॥ शब्दार्थ-निरजन > ब्रह्म । अयाना अज्ञान। निआरा 5 अलग। विवरजित - वर्जित। पट आश्रम - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सनन््यास, हस, परमहस। षट दरसन न्याय, वैशेषिक, मीमासा, वेदात, साख्य, योग। षटरस 5 अम्ल, कट, कषाय, तिक्त, लवण, कदु। पट वस्तु 5 गोमाता से प्राप्त छ शुभ वस्तुएँ-गोमृत्र, गोमय, दूध, घी, दही, रोचन (गोमूत्र गोमय क्षीर, सर्पिर्दिधि च रोचना। षडगमेतन्मागल्य पठित सदा गवाम्) | चारि वृक्ष 5 चार वेद | छव साख - शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छद, ज्योतिष, व्याकरण ये छ वेदाग। आगम < परपरागत शास्त्र। नेह 5 स्नेह । धाय 5 दौड़कर। सेतिह > मुफ्त मे। अर्व-ब्रह्म अलक्ष्य है। उसे कोई देख नही पाता है। इसी ब्रह्म की माया के बधन मे सभी वेंधे है। इसने ही अज्ञानियो को झूठे वधन मे बॉध रखा है। लोग झूठी बात को भी सच मान लिये है। सभी ससार धथे मे बंधकर व्यवहार करते है। कितु कर्मरहित योगी सबसे अलग रहता हैं। छ आश्रम, छ दर्शन, छ रस, छ वस्तु की व्यवस्था की। वेद (चार) वृक्ष और छ वेदाग उसकी शाखाएँ है। अनगिनत विद्याएँ है। और भी शास्त्र है। उन्हे भी ब्रह्म का आदिअत नही दीखता है। जप, तीर्थ, व्रत, पूजा, दान, पुण्य आदि कितना भी करो। ब्रह्म को जानना असभव है। परमात्मा का मदिर सह का है। बिना प्रेम के कोई भी दौड़कर मत जाय। जो प्रेम होकर दौड़ता है उसका जीवन मुफ्त मे वर्बाद हो जाता है। मे रहित

) ८२४ कवीर समग्र ५, (२०) (संसार की असारता) अलप सुख दुख आदि औ अंता, मन भुलान मैगर मैमंता। सुख विसराय मुक्ति कहँ पावै, परिह्नरि साँच झूठ कहें थावे। अनल जोति डाहे एक संगा, नेन नेह जस जरे पतंगा। करहु विचार जे सब दुख जाई, परिहर झूठा केरि सगाई। लालथ लागे जनम सिराई, जरा मरन नियरायल आई ॥ साखी-भर्म के बाधल ई जग, यहिविधि आवे जाय। मानुष जन्महि पाय नर, काहे के जहँडाय ॥ शब्दार्थ-मैगर 5 (< स० मदकछ) मैमता (< स० मदोन््मत्त) 5 मतवाला हाधी। जरा « वृद्धावस्था | अर्थ-इस ससार के आरभ मे अल्प सुख दीखता है। कितु अत मे दुख। मतचाले हाथी-सा मन इस बात को नही समझकर उसी सुख-दुख में भूला रहता है। गीता के अनुसार सभी इद्रिय सुख, दुख के कारण हैये हि सस्पर्श जा भोगा दु ख योनय एवं ते ॥५॥२२। छादोग्य (७।२३।७) के अनुसार सुख भूमा (ब्रह्म) की प्राप्ति मे और अल्प में सुख नहीं है यो वै भूमा तत्सुख नाल्पे सुखमस्ति ! अल्प या विषय-सुख जलानेवाला है। जैसे पतग आँखो के प्रेम के कारण जलता है। प्रेम का, विशेषकर युवा स्त्री-पुरुष का प्रेम सर्वप्रथण ओंखो से होता है। नेन नेह के द्वारा यह इसी प्रेम का सकेत है। क्योकि प्रेम का आधार रूप है। रूप मूलत ऑखो का विषय है। इसलिये झूठे प्रेम को छोड़कर विचार करो जिससे सारे दुख दूर हो जायेँ। विष्य-लोभ मे सारा जीवन बर्वाद हो गया। वुढ़ापा और मरणकाल नजदीक आ गया। सारा ससार भ्रम में बँधा आता-जाता (जन्म-मरण) है। हे मनुष्य, मनुष्य-जन्म पाकर क्योंधोखे मे रहते हो? ज्ञान प्राप्त करो। यही इस जन्म का लाभ है। (२१) चंद चकोर की ऐसीजात ज़नाई, मानुस बुद्धि दीन्ह पलठाई। चारि अवस्था सपने कहई, झूठी फुरों जानत रहई। मिथ्या दात न जाने कोई, यहि विधि सब गैल बिगोई। आगे दे दे सभन्हि गँवाया, मानुस बुद्धि न सपनेड्ड पाया। चोतिस अक्षर से निकलै जोई, पाप पुन्य जानैगः सोई || साखी-सोई कहंते सोई होहुगे, निकरि न बाहर आव | ही हजूर ठाहो कही, धोखे न जन्म गवाँव ॥ शब्धार्थ-विगोई > नष्ट। चौतिस अक्षर 5 कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तदर्ग, पवर्ग के २५ अक्षर, चार अर्ध स्वर (य, र, ल, व), तीन सकार (श, ष, स),ह। अर्थ-मनुष्य की बुद्धि को उलट कर सदगुरु ने उसे चद्रमा और चकोर जैसा प्रेम करना सिखलाया | जैसे चकोर एकमात्र चद्रमा का ध्यान करता है, वैसे ही तुम भी परमतत्त्व का ध्यान करो। चारो अवस्थाएँ स्वप्न के समान भ्रम भरी है। इस झूठ को जानते रहो। ससार के मिथ्यात्व को कोई नही जानता। बिना जाने सारा जीवन व्यर्थ हो गया। मनुष्य ने सदा अपने आगे विषयो को महत्त्व|दिया। इसलिये तात्त्विक बुद्धि कभी नहीं प्राप्त हो सकी। जो अक्षरों (अब्द ज्ञान, वाक्य ज्ञान, शास्त्र ज्ञान) के भ्रमजाल से निकलता है, वही पाप-पुण्य के भेद को

रमैनी ८२५ सकता है। कि आल गान के चक्कर से बाहर आओ। तब ब्रह्म का ध्यान करते-करते ब्रह्म हो जाओगे। मै स्वामी खड़ा हूँ। मेरी बात मानो। शास्त्र धोखा है। इस धोखे मे जन्म मत बर्बाद करो। दिप्पणी-शकराचार्य ने शब्द-जाल को महारण्य कहा है जिसमे चित्त भटकता है। तुलसीदास वाक्य-ज्ञान को अपूर्ण मानते है। हे मे गम का महत्त्व न होकर गुरु की महत्ता है। २२ चोतिस अधष्छर का इहे विशेखा, सहसो नाम इहै मेंह देखा। भूलि भटकि नर फिरि घट आया, हो अजान सो सभनि गेंवाया। खोजहि ब्रह्मा विस्नु सिब सक्ती, अमित लोक खोजहि बहु भक्ती। खोजहि गन गंधर्द मुनि देवा, अभित लोक खोजहि यहु भेदा॥ साखी-जती सती सभ खोजहि, मनहि ने माने हार। बड़-बड़ जीव न बांचिह, कहहि कबीर घुकारि॥ अर्थ-चौतीस अक्षर से मतलब है शास्त्र या पुस्तकी ज्ञान से। शास्त्र उपासना के एक नहीं हजारो नाम बताते है (विष्णु सहस्नाम, गोपाल सहस्त्रनाम आदि)। मनुष्य शास्त्रों मे भटककर फिर इसी शरीर में साधना कं लिये आता है। अज्ञानी होने के कारण जो भी सहज साधना की बुद्धि थी उसे भी नष्ट कर देता है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति आदि अनेक छोको मे भक्ति की खोज करते है। गधर्व, देव और मुनि आदि यती, सती भी अनेक प्रकार से खोजते है। कभी हार नही मानते। कबीर पुकारकर कहते है कि चाहे कितना ही खोजो। परमतत्त्व बाहर नही 8 | 3008 द्वारा नही मिलेगा। काल द्वारा कोई बच न सकेगा। अज्ञानमूलक खोज से सभी नथ् हो जायेंगे। (२३) ब्रह्मा को दीन्हों ज्रमग्डा, सात दीप पुहमी नव खण्डा। सत्त सत्त के बिस्ु दिठाई, तीनि लोक मेंह राखि निजाई। लिग रूप तब संकर कीन्हा, धरती कीलि रसातल दीन्हा। तब अष्टंगी रची कुमारी, तीनि लोक मोहिनि सभ ज्ञारी। दुतिया नाम पारवती भैऊ, तप करते संकर कह देऊ। एके पुरुष एक है नारी, ताते रचेउ खानि भी चारी। सर्मन बर्मन देव औ दासा, रज सत तमगून घरति अकासा। साखी-एक अंड ओकार ते, सब जग भयो पसार। कहहि कबीर सब नारि के, अविधल पुरुष भतार॥ शब्दार्थ-सात दीप - सप्तद्वीप (कुश, जम्बू, क्रौच, प्छक्ष, शक, पुष्कर, शारामलि)। पुहमी ₹ पृथ्वी। नव ख़ड > भारत, किपुरुष, इलावृत, भद्र, केतुमाल, कुश, रम्य,हरि, हिरण्य, दिठाई > देखकर | सत्त 5 सत्य सत्त 5 शक्ति | सत्ता। निजाई 5 प्रभुल | कीलि > गाड़कर | अष्टगी + अध्भुजी शक्ति | देवी। अष्ट प्रकृति ७ भूमि, जल, आग, हवा, आकाश, मन, बुद्धि और अहकार। झारी 5 समूह। चारी ख़ानि & अडज, पिडज, स्वेदज, उद्धिज। सर्मन > शर्मा। ३ # वर्मा| क्षत्रिय | देव 5 गुप्त। दासा ८ शूद्र। अड > बीज। नारि जीव। भतार « भर्ता। अर्थ-आदिपुरुष ब्रह्म ने सृष्टिन्चना के समय ब्रह्म को सात द्वीप एव नौ खडो वाले पृथ्वी तथा ब्रह्माड का स्वामी बनाया। सत्य की सत्ता या शक्ति वाले विष्णु को तीनो लोको (भु भुव स्वुया पृथ्वी, स्वर्ग, पाताठ) का अधिकार दिया। शकर को लिग रूप बनाकर उन्हे धरती से

८२६ कबीर समग्र पाताढ तक गाड़ दिया। अष्टभुजी कुमारीदेवी या आठ अपरा प्रकृति ने तीनो छोको को मोह लिया है। इसी अध्भुजी देवी का दूसरा नाम पार्वती हुआ। इसे तप करते हुए भगवान् शकर को दिया। एक ही पुरुष और एक ही नारी से चारो प्रकार के जीव की उत्तत्ति हुई। सत्त्व, रज, तम गुणों वाली धरती और आकाश मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हुए। पुराणो मे कहा गया है कि आरभ मे पृथ्वी का रूप अडाकार था। या सर्वप्रथम प्रढ़य समुद्र मे अडाकार ही दिखाई पड़ा। ओकार ही सृध्टि का वीज है। इसी से ससार फैला। कबीर दास कहते है कि ससार मे सभी जीव स्त्री के समान है। केवल अविचल सनातन परमात्मा ही सबका भर्तता पुरुष है। (१४) अस जोलहा का मरम न जाना, जिन जग आय पसारिन्हि ताना। महि अकास दुट्ट गाड़ खँदाया, चांद सुरुज ठुइ नरी बनाया। सहस तार है पूरिन पूरी, अजहुँ बिनव कठिन है दूरी। कहहि कबीर करम सो जोरी, सूत-कुसूत बिने भल कोरी । अर्थ-यह ससार वस्त्र-सा है। इस वस्त्र को बुननेवाला जुलाहा स्वयं ईश्वर है। इस परमात्मा जुलाहे के मर्म को कोई नही जानता है। जिसने ससार के ताने को पसारा है। धरती (महि) और आकाश ये दोनो ही उसके गड्ढे (गाड़) खोदे गए है। चद्रमा और सूर्य उसकी नली है। हजारो तारो को लेकर इस वस्त्र को पूरा किया। यद्यपि यह कार्य बहुत दिनो से चला आया । कितु आज भी इस वस्त्र को बुनना कठिन है। कवीरदास जी कहते है कि ससार कर्मो से जुड़ा कमधीन है। सभी अपने कर्मो के अनुसार फल पाते है। ईश्वर अच्छे-बुरे दोनो का निर्माण करता है। ; टिप्पणी-इसका अर्थ शरीर पर भी घटित होता है। चाँद सुरुज का अर्थ इड़ा एवं पिगला नाड़ियाँ है। सहस तार का अर्थ है शरीर की हजारो नस-नाड़ियाँ। सूत-कुसूत का अर्थ है व्यक्ति के अच्छे-बुरे कर्म। जोलहा और कोरी शब्द सृश्टि-निर्माता परमात्मा के लिये प्रयुक्त हुआ है। इससे पता लगता है कि कबीर जब अपने को जुलाह्ाम या कोरी जाति का कहते है तो वे उसी परमात्मा की ओर सकेत करते है। इसमे ताना, गाड़, नरी, पूरी, शब्द जुलाहो के वस्त्र-निर्माण से सम्बद्ध विशिष्ट शब्द है| (२५) बज़हूं ते त्रिन खिन मे होई, त्रिन ते बज़ करे पुनि सोई। निश्चरहि नीरु जानि परिहरिया, करम क दौधल लालच करिया। कर्म धर्म मति बुधि परिह्रिया, झूठा नाम साँच लै घरिया। रज गति ब्रिविध कीन्ह परगासा, कर्म धर्म बुधि केर बिनासा। रवि के उदे त्तार भौ छीना, चर बीहर दोनो मेंह लीना। विध के खाए विष नहिं जावे, गारुड़ि सो जो मरत जियाबे। साखी-अलख जो लागी पलक मे, पलकहि मैह डसि जाय। विधहर मंत्र न माने, तौ गारुड़ि काह कराय॥ शब्दार्थ-खिन 5 क्षण। निझरुहि 5 बहना। नीरु 5 जरू। परिहरिया 5 छोड़ देता है। रजगति > रजोगुणी। त्रिविध > त्रिगुण (सत्त्व, रज,,तम) | तीन लोक। रवि # ज्ञान। तार अज्ञान | बीहर 5 बीहड़। कठिन। चर का उल्टा अचर।| मैँह 5 मे। विष - गा | विष ८ वासना। गारुड़ि > सर्प का विष उतारनेवाला मात्रिक। (गरुड़ पक्षी सर्प विरोधी माने जाते है। इसी से गारुड़ि

सर्प-विष उतारनेवाले मत्री को कहते हैं) विषहर 5 विषधर (माया)। अल्ख सल-मेकन) पक हगपि

रमैनी ८२७ अलुख का यहाँ विशिष्ट अर्थ माया से है जो स्पष्ट नही दिखाई पड़ती है। तार * तारा। अर्थ-लोग परमात्मा के रहस्य को नही जानते है। यह अत्यत शक्तिशाली है। एक क्षण मे वज्र को तृण और पुन तृण को वज् बना देता है। (सृष्टि और प्रत्य उसी के खेल है। सृष्टि तृण के समान है। वज्र प्रठय है। प्रभु हर क्षण सृष्टि एव प्रढय का खेल करता रहता है। सृष्टि को प्रढय और प्रलय को सृष्टि मे बदलता रहता हैं। मनुष्य की दृष्टि से सृष्टि और प्रढय छाखोकरोड़ो वर्षो का चक्र है। कितु ईश्वर के लिये वह एक क्षण जैसा है)। ईश्वर की सृष्टि कभी बद नही होती है। प्रढय भी उसकी सृष्टि-ठीला का ही एक रूप है। जैसे झरना सदा झरा करता है। जल को नार कहते है। इसीलिये प्रभु नारायण (नार+अयण) है। कर्मो की रस्सी मे बँधे छालची मनुष्य सदा बहनेवाले जल (सनातन सृध्टि और उसके कारण ब्रह्म) की उपेक्षा करते है। वे कर्म, धर्म, मति, बुद्धि के सात्त्विक पक्ष को छोड़कर झूठे नामो (नाशवान् या असत् देवी-देवताओ की पूजा-उपासना) को सत्य मानकर उन्हे पकड़ना चाहते है। परमात्मा की यह सृष्टि रजोगुणी है। यह रजोगुणी सृष्टि तीनो गुणो वाली है। इस रजीगुणी सृष्टि में विश्वास करने से कर्म, धर्म एव बुद्धि का नाश हो जाता है। रजोगुणी ससार से ऊपर उठना चाहिए। जैसे सूर्योदय से तारे मलिन हो जाते है, उसी प्रकार ज्ञान के उत्पन्न होने पर चर-अचर में रहनेवाला मायाधकार नष्ट हो जाता है। यहाँ तार माया के विभिन्न रूपो' के लिये भी है। ज्ञानोदय से माया के विभिन्न रूपो का नाश हो जाता है। विषयो के सेवन से वासना कभी रा नही होती है। अच्छा मत्रवेत्ता (सदगुरु) वह है जो विषयासक्त जीवन की मुक्त करा सके | जिनकी आँखो को माया ने आकर्षित कर रखा है, जिन्हे माया सर्पिणी डेंसे है अर्थात् जो , माया के चक्कर में है। ऐसे विषधर (मायालिप्त) पर अगर गुरु-मत्रो का प्रभाव नही पड़ता है तो इसमे गुरु का क्या दोष है ? टिप्पणी-"विष के खाए विष नहि जाए" इस सदर्भ मे दो मत है--एक मत मे विष विष से ही नष्ट होता है। दूसरे मत से काम का विष काम-सेवन से कभी शात नही होता है। जैसे वैर से वैर का शमन नही होता है। इस सदर्भ मे मनु की प्रसिद्ध उक्ति प्रचलित हैन जातु काम कामानामुभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते (२९४) ऐसी ही बात कामायनी मे काम कहता हैप्यासा हूँ मै अब भी प्यासा, सतुष्ट ओध से मै न हुआ। आया फिर भी वह चला गया, तृष्णा को तनिक न चैन हुआ। (२६) अंध सो दरपन वेद पुराना, दरबी कहा महारस जाना। जत खर चंदन लादे भारा, परिमल बास न जान गँवारा। कहहि कबीर खोजे असमाना, सो न मिला जिहि जाय गुमाना॥ अर्थ-वेद पुराण आदि शास्त्रो का ज्ञान अधे के लिये दर्पण के समान व्यर्थ है। जैसे अधे के लिये दर्पण का कोई उपयोग नही है। उसी प्रकार अनुभूतिरहित ज्ञान के बिना शास्त्रज्ञान व्यर्थ है। जैसे कलछुठ (दरबी) सब्जी का स्वाद नहीं जान सकती है उसी प्रकार हृदयहीन अनुभूतिरहित व्यक्ति के हिये शास्त्र व्यर्थ

है। शास्त्रज्ञान गधे पर ढदे भार-सा है। मूर्ख परिमल की गध नहीं जानता है। छोग सातवे आसमान मे ईश्वर को खोजते है। किंतु इससे हृदय का

८२८ कवीर समग्र अभिमान नही समाप्त हो सकता है| टिप्पणी-१ यस्य नास्ति निजा प्रज्ञा केवल तु वहुश्रुत न स जानाति शास्त्रार्थ दर्वी पाकरस यथा। यही वचन महाभारत मे है। इसे धम्मपद मे भी दुहराया गया है। २ ्लोचनाभ्याम् विहीनस्य दर्पण कि करिष्यति-नीति। (२७) वेद की पुत्री सुप्रिति भाई, सो जेंवरि कर लेतहि आई। आपुषि दरी आए गर बंधा, झूठा मोह काल को फंदा। बॉधत बंधन छोरि न जाई, विदे रूप भूली दुनियाई। हमरे लखत सकल जग लूटा, दात कबीर राव कहि छूटा। साखी-रामहि राम पुकारते, जिध्या परिगी रोस। सूधा जल पीषे नही, खोदि पियन की होस |) अर्थ-स्पृति आदि शास्त्रो को वेद्र का उपबृह्ण अर्थात् विस्तार कहा जाता है। यहाँ सत कवीर ने स्मृतियों को वेद की पुत्री कहा है। स्पृतियाँ सामाजिक धर्म कानून का ग्रथ हैं। इसलिये वे मनुष्य को दोधती है। कर्म के अनियत्रित फैलाव को रोकती है। सभी मोहकाल के झूठे फदे में स्वय बँधे है। सारी दुनिया विष्यों मे भूली है। इसलिये न छूटनेवाठे बधन मे बँधी है। मै देख रहा हूँ, माया-मोह द्वारा सभी लोग टूटे जा रहे हे। किंतु कबीरदास राम का स्मरण कर बच गये। राम राम पुकारते जीभ में घट्टे (रस) पड़ गय। भक्त शास्त्रों द्वारा उपलब्ध करावा गया सीधा ज्ञान न प्राप्त कर अनुभूतिशील ज्ञान को प्राप्त करना चाहता है। यह अनुभूनिशील ज्ञान ही कुओं खोद (परिश्रम) कर जल पीने जैसा है। (२८) (मोक्ष स्थानाभावादि) पढ़ि-पढ़ि पंडित करु घतुराई, निज मुक्ती मोहि कड्ठु समुझाई। कहें यस पुरुष कहाँ सो गाऊँ, पंडित मोहिं सुनाबहु नारऊं। चारि चेद ब्रह्मे निज ठाना, मुक्तिक मर्म उनहुँ नहि जाना। दान-पुन्य उन बहुत बखाना, अपने मरन की खबरि न जाना। एक नाम है अगम गेंभीरा, तहवों स्थिर दास कबीरा॥ साखी-चिएंटी जहाँ न चढ़ि सके, राई ना ठहराय। आवागमन की गम नही, तहें सकलो जग जाय ॥ अर्थ-हे पडितो, पढ़ने से चतुराई तो आती है, किंतु मुक्ति नहीं हो सकती। इसलिये शास्त्र पढ़कर तुम्हे बुद्धिमानी तो हो गई है, किंतु अपनी मुक्ति के बारे मे भी कभी सोचा है क्या? वह परम पुरुष कहाँ रहता है? वह स्थान कहाँ है जहाँ एव जिसके द्वारा मुक्ति होती है? यह मुझे समझाकर कहो! समझाना और सुनाना से सकेत है कि मुक्ति तत्त्व न तो समझाया जा सकता है न सुनाया जा सकता है। वह तो अनुभूति का विषय है। चारो वेदो के निर्माता ब्रह्मा को भी मुक्ति का पता नही है। (फिर वेद को मुक्ति का पता कैसे हो सकता है। (अर्थात् वेद मुक्ति के साधन नही हैं)। जिन पडिती ने दान-पुण्य के महत्त्व की बहुत चर्चा की है उन्हे भी नही पता कि उनकी मृत्यु कब होगी? मृत्यु के वाद उनका क्या होगा 2 भगवन्नाम एक अगम्य और गभीर तत्त्व है। कबीरदास उस नाम के स्थान पर स्थित है।

रमैनी ८२५ पर स्थिर है| है जहाँ चीटी नही चढ़ सकती है। राई भी ठहर नहीं सकती है। जहाँ आवागमन की स्थिति भी नहीं है। उस शून्य स्थछ पर लोग जाना चाहते है। कवीरदास जी कहते है कि यहाँ सभी नही। विरला ही जा सकता है। (२९) एक सयान सयान न होई, दोसर सयान न जाने कोई। तीसर सयान सयानहि खाई, चौथ सयान तहाँ है जाई। पँचये सयान न जाने कोई, छठवे मा सभ गैल बिगोई। सतये सयान जो जानहु भाई, लोक बेद मा देहु देखाई। साखी-बीजक बतावद बित्त को, जो बित गुप्ता होय। सब्द बताबै जीव को, बूचे बिरला कोय॥ भूमिका-इसमे सख्यावाचक शब्दों के अनुसार अर्थ लगाने मे कठिनाई होती है। कबीर को दर्शन के प्रयोजन से हीन या अज्ञानी बताना हो तो कबीर का पठन-पाठन करना ही नहीं चाहिए। कितु वहुत से जहाँ रुकते है वहाँ कबीर को अज्ञानी कहकर निकल जाना चाहते है। वे लोग भी ऐसा करते है जो कबीर के साधारण अर्थो को भी शास्त्र के भार से भारी बना देते है। योगवासिष्ठ मे योग की सात भूमियो का उल्लेख हैज्ञानभूमि शुभैच्छाख्या प्रथमा समुदाहुता। विचारणा द्वितीया स्वात्ृतीया तनु मानसा। सत्त्वाणत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततो5सवितनामिका | पदार्थाभाविनी षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्पृता। कुछ इस आधार पर ज्ञान की सात भूमियाँ मानकर अर्थ करते है। दूसरे छोग-इसका अर्थ ढग से करते हैएक - उद्धितवादी दोसर 5 मायावादी तीसर > जीववादी चौथ - तटस्थ ईश्वरवादी पेंचये - इन्द्रियात्मवादी छठये > आत्मवादी सतये - देहात्मवादी अर्थ-सत कबीर कहते हैं कि योग की प्रथम भूमि शुभैक्षा है। शुभेक्षा आरभिक भूमि है। इसे प्राप्त करने से कोई सयाना नही होता है। दूसरी भूमि विचारणा की है। इसमे भी आत्मतत्त्व का बोध नही हो पाता है। तीसरी भूमि तनुमानसा की है। इस भूमि पर पहुँच विषयासक्त मन की समाप्ति हो जाती है। इसे ही सयान को खान कहा है। चौथी भूमि सत्त्वापत्ति की है। इसमे योगी अपने रक्ष्य की ओर बढ़ता है। आल्मतत्त्व के पास पहुँचता है। पॉचवी भूमि अससक्ति नाम्नी है। यहाँ समाधि की अवस्था का प्रारभ होता है। यह समाधि असम्प्रज्ञात समाधि की स्थिति है । छठी परार्थाभाविनी है। इसमे सारे अपरातत्त्वविढीन हो जाते है। पर तत्त्व का बोध रहता है। सव से मतलब यहाँ सासारिक उपादानो से है। छठी मे सासारिकता का बोध बिल्कुछ समाप्त हो जाता है। सातवी तुर्यगा भूमि है। इसमे साधक को स्वरूप की प्राप्ति होती है। इस

८३० कबीर समग्र भूमि को निर्विकल्प समाधि की स्थिति भी कहते है। यह ज्ञान छोक-वेद का विषय नही है। यह तो साधना का विषय है। हे यह आतज्ञान का तत्र गुप्त धन जैंसा है। बीजक (गुप्त धन बताऩेवाली बंही) से जैसे गुप्त धन का पता चलता है उसी प्रकार सदगुरु के शब्द-बीजक जीवो को आत्मतत्त्व बताते है| कितु इसे कोई विरला ही समझ पाता है। (३० यहि विधि कही कहा नहि माना, मारग माँहि पसारिन ताना। राति दिवस मिलि जोरिन तागा, ओठत कातत भरम न भागा। भरमे सभ जग रहा समाई, भरम छोड़े कतहूँ नहि जाई। परे न पूरि दिनहु दिन छीना, तैंहई जाय जहैं अंग बिहीना। जो मत आदि अंत चलि आबा, सो मत सभ उन प्रगद सुनावा॥ साखी-यह संदेस फुर मानिके, लीन्हेउ सीस चढ़ाय। संतों है संतोष सुख, रहहु तो हिरदय जुड़ाय ॥ अर्य- ईश्वर भी जुलाहा है। जीव भी जुलाहा है। किसी भी व्यक्ति को कितना ही समझाओ वह समझने के लिये तैयार नहीं है। मार्ग मे ही छोगो ने ताना फैला दिया। कूटुम्ब, स्वार्थ एव विषयो का जाल फैला रखा है। या झूठी साधना को पसार दिया है। जैसे जुछाहा - कपड़ा बीनने के लिये सूत तानता है। रात-दिन परिश्रम कर गृहस्थी या साधना के धागो को जोड़ता है। कपास ओटता है। सूत कातता है। अर्थ यह कि नाना प्रकार के कर्म करता है, कितु भ्रम नही भागता है। भागना तो दूर सभी लोग भ्रमो मे पड़े है। क्या भ्रम है? विषयो से आनद का भ्रम। झूठी साधना से आत्मतत्त्व के वोध का भ्रम। लोग ऐसे ही भ्रमो मे पड़े रहते है। भ्रमो को छोड़कर कही नही जाते है। कितना भी परिश्रम या साधना करो पूर्ण होना तो दूर दिन व दिन क्षीणता बढ़ती जाती है। अत मे वहाँ पहुँच जाते हैं जब इद्रियाँ शिथिर हो जाती है। आदि अत के सभी सिद्धात-विचार उन्हे प्रत्यक्षत सुनाने पर भी कोई लाभ नही होता। सत कबीर कहते है कि मैने इस सदेश को सत्य (फुर) मानकर सिर पर चढ़ा लिया, स्वीकार कर लिया कि केवल सतोष ही सुख है। सतोषी का हृदय ही शाति- (जुड़ाय) पाता है। (दिवादि मोह विद) ह अंबु कि रासि समुद्र कि खाई, रवि ससि कोटि तैतिसो भाई। भौर जाल मैंह आसन माँड़ा, चाहत सुख, दुख संग न छौंड़ा। दुख के मर्म न काहू पाया, बहुत भाँति के जग भरमाया। आपुष्टि बाउर आपु सयाना, हिरदय बसे सो राम न जाना॥ साखी-तेई हरि तेह ठाकुर, तेई हरि के दास। ना जम भवा न जामिनी, भामिनि चली निरास॥ अर्थ-यह ससार जल से भरे समुद्र की खाई जैसा है। इसमे सूर्य, चद्रमा, तैतीस करोड़ देवता भी आसन जमाये चक्कर खा रहे है। चाहते है कि इस ससार से सुख प्राप्त हो कितु दुख मिलता है। कभी दुख का सग नही छूटता है। दुख क्या और क्यो है इस का रहस्य आज तक किसी को ज्ञात नही हुआ। अनेक शास्त्रों ने ससार के लोगो को भ्रम मे रखा कि वे इस रहस्य को जानते है। मनुष्य स्वय पागल है। अपनी साधना से वह चैतन्य भी बन सकता है। कितु साधना है कर वह अपने को होशियार माने बैठा है। फलस्वरूप हृदय मे रहनेवाले राम को नहीं जानता है।

रमैनी ८३३ आत्म और परमात्म तत्त्व, उपास्य और उपासक स्वामी और दास दोनो एक ही है। भाव यह है कि जीव और ब्रह्म में अभेद है, (जीवों ब्रहव नाउपर) | इस ज्ञान के बाद मृत्यु का भय दूर हो जाता है। असान का अधकार् दूर हो जाता है | माया (भामिनी) निराश हो जाती है और ऐसे व्यक्ति का कुछ नुकसान नहीं कर पाती है। (३२) जब हम रहल रहल नहि कोई, हमरे मोह रहल सब कोई। कहहु राम कौन तोर सेवा, सो समुझ्नाय कही मोहि देवा। फुर-फुर कहत मार सब कोई, झूठहिं झूठा संग्रति होई। आपर कहे सदै हम देखा, तहूँ दिठियार बैठि मुख पेखा। यहि विधि कही मानु जौ कोई, जस मुख तस जो हृदया होई। कहहि कबीर हंस मुसुकाई, हमरहि कहै छूटिहो भाई।। अर्थ-सृष्टि रचना के पूर्व भी परमात्मा था। केवल वही (हम) था। इसी वात को आतलतत्त्वदर्श, परमात्मवोध पूर्ण साधक कहता है कि जब केवल मै परमात्मा था। तब और सब कुछ नही था। तब सारा विराट मेरे भीतर था। सारा प्रसार व्यष्ि से विराट होने की प्रक्रिया है। सृष्टि-पूर्व केवल व्यष्टि था। विराट् उसके भीतर था। (इसी व्यध्टि बालक रूप में अश्वत्य वृक्ष पर छेटा था। मार्कडेय ज्रूषि इसके उदर मे चले गये। वहाँ उन्होने पूरी सृष्टि की स्थिति देखी। उदर से बाहर आने पर फिर बालक को यधावतू देखा)। जब आत्मा परमात्मा, उपास्य उगसक एक ही है तो हे राम बताओ कि तुम्हारी सेवा कौन करे ? मतलब कि राम की सेवा अपनी सेवा है। अपनी सेवा राम की सेवा है। सत्य-सत्य कहने से मार होने गती है। सभी झूठे है और सभी झूठे की सगति पसद करते है। अधा (अज्ञानी) अपने को समझदार समझता है। उसकी इस समझदारी को देखकर सचमुच के ज्ञानी उस पर तरस खाते है। इस प्रकार जो कहता हूँ उसे कोई माने तो। हृदय मे जो भाव होगा वही मुँह पर प्रतिबिम्बित होता है। हस (परम साधक) कबीर हँसकर कहते है-हे भाई, मेरे कथनानुसार ही भवबधन से मुक्त हो सकोगे | (३३) (सत्संगादि बिना दुःखादि) कबहुँ न भयउ संग अरु साथा, ऐसो जनम गवाँयउ हाथा। बहुरि न पशउ ऐसो थाना, साधु संग तुम नहिं पहिचाना। अब तोर होय नरक महें बासा, निसु दिन बसेठ लबार के पासा॥ साखी-जात सर्भेन्हि कहें देखिया, कहहि, कबीर पुकार। चेतवा है ती चेतहु नहि दिवसु परतु है धार॥ अर्थ- कभी सतो का साथ नही हुआ। ऐसा जन्म हाथ से व्यर्थ चछा गया। पुन मानव तन का यह स्थान प्राप्त नही होगा। क्योकि तुमने सदूसगति की पहचान नही की। हे जीव, अब तुम्हारा नरक मे निवास होगा। क्योकि तुमने सदा झूठे (बार) की सगति की है। सभी प्राणियों को मरते (जात) देखकर सत कबीर पुकारकर कहते है चेतना हो तो चेतो वरना दिन मे ही डाका पड़नेवाला है। दिन मे डाका पड़ने का अर्थ है माया सबको छूट रही है। नष्ट कर रही है। , (४) हिरनाछुस राजन गौ कंसा, कृस्त गए सुर नर मुनि बंसा। ब्रह्म गए धर्म नहिं जाना, बड़ सब गयल जो रहल सयाना। समुन्नि परी नहिं राम कहानी, निरवक दूध कि सरबक पानी।

८३२ कवीर समग्र रहिगो पंथ घकित भौ पीना, दसो दिसा उजारि भी गौना। भीन जाल भी ई संसारा, लोह क नाव पवान के भारा। खेवे सभे मर्म नहि जानी, तहियो कहै रहे उतरानी ॥ साखी-मछरी मुख जस केचुवा, मुसवन मुख गिरदान। सर्पन मुख गहेजुआ, जात सभन की जान ॥ अर्थ- ससार अनित्य ओर नाशवान् है। यहाँ जो भी आया, चाहे कितना भी प्रताणी हो सबकी मृत्यु हुई। हिरण्यकश्यपु, रावण, कस, कृष्ण, सुर, नर, मुनि-वश सभी इस ससार से विदा हो गये। इस सृष्टि का रहस्य समझे विना ब्रह्मा चले गये। वे सभी बड़े चले गये जो बहुत होशियार थे। कितु किसी को सृष्टि की रामकहानी समझ में नहीं आयी। यह सृष्टि बिल्कुल (निरवक) दूध जैसी उज्ज्वल और सत्त्व-तत्त्व वाली है या णनी के समान सब (सरवक) व्यर्थ है। तत्त्वहीन है। अत समय आने पर सारे प्राण (पोना) स्थगित हो जातें है। रास्ता चलना कठिन हो जाता हे। ससार मे बहुत कुछ करने की इच्छा से चलते है। कितु बीच मार्ग मे ही मृत्यु आ जाती है। दसो दिशाओं को छोड़कर (उजारि) जाना होता है। दस इड्रियाँ है। ये इंढ्ियाँ जीव के रहते आनद करती है। कितु जीव के जाते ही उजड़ जाती है। व्यर्थ हो जाती है। ससार जाल है। जीव मछली है। प्रत्येक जीवन इस जाल में फंस जाता है। यह ससार एक दुस्तर नदी है। कितु इसे पार करने के साधन लोहे की नाव है। अर्थात् वासनामूलक साधन या अनुचित साधनाएँ है। उस पर विषयो ओर अनेक प्रकार की कामनाओ के पत्थर लदे हैं। इस जीवन-नौका को चलानैवाले इसे चलाने का रहस्य नहीं जानत है। न थानते हुए भी कहता हे कि नाव ऊपर-ऊपर चल रहीं है। सभी जीव मृत्यु के मुख में पड़े है। जेसे मछली के मुँह मे केचुआ, चूहे के मुख में गिरगिट, सॉपो के मुँह मे छछूदर है, चेसी ही स्थिति मे लोग लोभवश नष्ट हो रहे है। (३५ (मायाकृत बिनाश) बिनसे नाग, गरुड़ गलि जाई, बिनसे कपठी, औ सत भाई। बिनसे पाप पुन्य जिन्ह कीन्ह्हा, बिनसे गुन निरयुन जिन चौन्हा। बिनसे अगिनि पौन ओ पानी, दिनसे सिष्टि कहाँ लौ गानी। दिस्नु छोक बिनसे छिन माही, हो देखा परलै की छोही ॥ साखी-मच्छ रूप माया भई, जबरहि खेले अहेर। विधि हरि हर नहि ऊबरे, सुर नर मुनि केहि केर ॥ अर्थ-चाहे कोई कितना भी महत्त्वपूर्ण हो | कितु काल सबको नष्ट कर देता है। शेषनाग पूरी धग्ती को उठाये है। क्रितु वे भी नष्ट हो गये। सर्पो को खानेवाले गरुड़ भी नष्ट हो गए (भक्ष्य और भक्षक दोनो का नाश)। छली और सत्यव्रती, पाप-पुण्य करनेवाले, सगुण-निर्गुण साधक, पवन, पानी, आग आदि जहाँ तक सृष्टि है सब नष्ट हो गए। विष्णुलोक क्षणभर में विठीन हो गया। मैने प्रछ्य क्री छाया देखी 8। अर्थ कि सभी प्रठ्य से नथ्ट हो गए। नष्ट होना ही प्रय की छाया है। माया मगरमच्छ है। बड़ो मछली है। यह सबको खा जाती है। सभी इसके शिकार बन गा है। यह ब्रह्मा, विष्णु, शिव को खा जाती है, देवता, मनुष्य और मुनि की कया गिनती 7 टिप्पणी-यह माया को मछली कहने का सकेत है कि प्रलयकाल मे केवल मछली

ही बचती है। मछली का प्रठय मे नाश नहीं होता। शायद इसलिये भी कि एक तो वह पानी का

रमैनी ८३३ है। दूसरी यह कि उसकी ऊर्ध्वगामी प्रवृत्ति हैं। योगी की साधना भी मल्य-सी ब 80 है। परढे की छाँही का प्रयोग 'प्रसाद' ने 'प्रढलय की छाया'' शीर्षक मे किया है। (३६) जरासिधु सिसुपाल संहारा, सहंस अरजुन छल ते मारा। बड़ छली राबन सो गौ बीती, लंका रहल कंचन की भीती। दुरजोधन अभिमानहि गैऊ, पंडब केर भेद नहि पैऊ। माया के डिभ गैल सभ राजा, उत्तम मद्धिम बाजन बाजा। सब चकवे बित धरनि समाना, एको जीव परतीत न माना। कहँ लगि कहो अधेतहि गैऊ, चेत अचेत झगर एक भैऊ। साखी-ई माया जग मोहनी, मोहिसि सब जग घाय। हरीचन्द सत कारने, घर घर गये बिकाय।। अर्थ-जरासध (मगधराज), शिशुपाल का नाश हो गया। सहस्रार्जुन को धोखे से मारा गया। बड़ा भारी छली रावण भी मारा गया। जिस रावण की लका सोने की दीवार वाली थी, वह भी नष्ट हो गयी। दुर्योधन अपने अभिमान से चलो गया। अभिमान मे वह पाडवो की शक्ति का रहस्य नही समझ सका। सभी राजा मायादभ (डिभ) में चले गये। उत्तम, मध्यम बाजे वाढे सभी राजाओं का नाश हो गया। सारे चक्रवर्ती (चकवे) नष्ट (वित) होकर पृथ्वी मे समा गये। इतना होने पर भी एक भी व्यक्ति माया की शक्ति मे विश्वास नही करता है या एक भी व्यक्ति रहेगा इसका विश्वास नही है। चेतन-अचेतन सभी झगड़ते हुए अचेतावस्था को प्राप्त हुए। माया मोहनी है। दौड़कर सपूर्ण ससार को मोह छेती है। सत्य का पक्ष अत्यत कठिन है। सत्य के कारण ही राजा हरिश्चद्र को घर-घर बिकना पड़ा। अर्थात् जो सत्य पर रहेगा उसे कठिनाई होगी ही। सूफ़ियों (३७) (सूफ़ियों की बाह्याचार) मानिकपुरहि कबीर बसेरी, मददति सुनी सेख तकी केरी। ऊ जे सुनी जौनपुर धामा, झूँसी सुनि पीरन को नामा। इकइस पीर लिखे तेहि ठामा, खतमा पढ़ें पैगम्बर नामा। सुनत बोल मोहि रहा न जाई, देखि मुकरबा रहा भुलाई। नबी हवीबी के जो कामा, जहँ लै अमल सो सबे हरामा॥ साखी-सेख अकरदी सेख सकरदी, मानहु बचन हमार। | आदि अंत उतपति प्रलय, देखहु दिष्टि पसार॥ शब्दार्थ-मंद्दति 5 प्रशसा। केरी > की। सेख तकी 5 एक सूफी फकीर। पीर « उस्ताद। गुरु। खतमा - प्रार्थना। मुकरबा 5 कब्र। नवी > पैगम्बर। देवदूत। हबीबी -+ हजरत मुहम्मद | अमल + लोकाचार। हरामा > अपवित्र। दिष्टि > दृष्टि। पसार 5 फैलाकर | खोलकर | अर्थ-कबीर कभी मानिकपुर (इलाहाबाद के पास की एक जगह) मे ठहरे थे। वहाँ उन्होने सूफी सत शेख तकी की प्रशसा सुनी। वही सुना कि जौनपुर तथा झूँसी (इलाहाबाद) पीरो के स्थान है। वहों २१ पीरो की कब्रे है। जहाँ पैगम्बर की प्रार्थना पढ़ी जाती है। ये बाते सुनकर मुझसे रहा नहीं गया। मकबरो को देखने लगा। मकबरो को देखकर मन भूल गया। हजरत मुहम्मद ने सपूर्ण ससार को हराम (यहाँ नाशवान्) कहा है।

८३४ कदीर समग्र इसलिये हे शेख अकरदी, सकरदी मेरी वाने मानों। आँखे खोलकर देखो-सभी कुछ का आदि-अत है। उत्पन्न होनेवाला प्रठयरीन होता है। (३८) दर की बात कही दरबेसा, पातसाह है कौन भेसा। कहाँ कूच कहें करे मुकामा, कवन सुरति के करहु सलामा। मैं तोहि पूछी मूसलमाना, लाल जरद की नाना बाना। काजी काज करहु तुम कैसा, घर-घर जबह करावहु भैसा। बकरी मुरगा किन फरमाया, किसके हुकुम तुम छुरी चलाया। दरद न जानहु पीर कहावहु, वैता पढ़ि-पढ़ि जग भरमावहु। कहहि कबीर एक सैयद कहावे, आपु सरीखे जग कबुलाव ॥ साखी-दिन को रोजा रहतु हो, राति हनत हो गाय। यह तो खून वह बंदगी, क्यो कर खुसी खोदाय ॥ शब्दार्थ-दर द्वार। स्थान। दरवेसा 5 फकीर। पातशाह 5 वादशाह। परमात्मा। खुदा। कूच +> प्रस्थान। मुकामा 5 गनव्य। सुरति 5 रूप। जरद 5 पीला। की 5 या। अथा। नाना अनेक। ब्ाना वर्ण। काजी 5 न्यायाधीश। जवह 5 काटना। फरमाया 5 आदेश दिया। पीर < (१) धर्मगुरु (२) पीड़ा जाननेवाला। बैता ७ कविता। सैयद ८ हजरत इमाम हुसेन के वशज। हनत 5 मारना। खून 5 हत्या। बदगी > प्रार्थना। खोदाय 5 खुदा। जो स्वयभू है। खुद पैदा हुआ है। अर्थ-कवीरदास इस्लाम की जबह प्रथा की आलोचना करते हुए कहते है-बादशाह का क्या भेस है? अर्थात् ईश्वर कैसा है? जो उसके दरवाजे या स्थान की वात्त कहता है वह दरवेश है। उस प्रभु का स्थान कहाँ है? कहाँ से तुम उसे प्राप्त करने के लिये प्रस्थान करते हो? क्या तुम जानते हो कि उस प्रभु का रग लाल है, पीला या अनेक वर्ण का है? ऐ काजी, क्या तुम्हारा काम यही है कि तुम घर-घर भैसा काटवाओ ? किसके आदेश से तुम बकरी और मुर्गा काटने का फरमान जारी करते हो? तुम पीर कहलाकर भी इन जीवो का दर्द नही समझते हो। प्रार्थनाएँ पढ़-पढ़कर लोगो को धोखा देते हो। सैयद कहलानेवाले भी हिसा मे विश्वास करते है और सारे ससार को हिसा की प्रेरणा देते है। दिन मे खुदा को प्रसन्न करने के लिये रोजा रखते है। खाना नही -खाते। और रात को गाय मारकर खाते हो। एक तरफ प्रार्थना करते हो। दूसरी ओर हत्वाएँ करते हो। क्या ईश्वर इससे कभी ग्रसन्न हो सकता है ? कभी नही। + (३९) (विषय संग से ज्ञान दुर्लभ) कहडइत मोहि भयल जुग चारी, समुझत नाहि मोह सुत नारी । बंस आगि लगि बंसे जरिया, भर्म भूलि नर घंधे परिया | हस्तिनि फंदे हस्ती रहई, मृगी के फंदे मृगा परई। लौहे लोह जस काटि सयाना, त्रिया के तत्तु त्रिये पे जाना॥ साखी-नारि रचंते पुरुषा, पुरुष रचंते नार। पुर्षहि पुर्षा जो रचै, सो बिरला संसार॥ अर्व-सत कवीर कहते है कि मै चार युग से कह रहा हूँ कितु स्त्री-पुत्र की ममता मे पढ़ें लोग समझ नही रहे है। बॉस वॉस की रगड़ की आग से जलकर नष्ट हो जाता है। वैसे भ्रम और भूलकर पारिवारिक धघे मे पड़े लोग नष्ट हो जाते है। हाथी-हथिनी और मृग-मृगी के छोभ 5

रमैनी ८३५ जाल मे फेस जाते है। लोहा छोहे को काटता है। स्त्री के तत्त्व को स्त्री ही समझती है। नारी पुरुष मे अनुरक्त होती है। पुरुष स्त्री मे अनुरक्त रहता है। किंतु पुरुष का पुरुष मे अनुरक्त रहने की बात विरले को ही समझ मे आ सकती है। (४०) (धारणारहस्य) जाकर नाम अकहुआ रे भाई, ताकर काह रमैनी गाई | 8 2 कही तातपर्ज एक ऐसा, जस पंथी बोहित च़ि बैसां। ' है कछु रहनि गहनि की बाता, बैसा रहे चला पुनि जाता। / रहै बदन नहि स्वॉग सुभाऊ, मन अस्थिर नहि बोले काऊ॥ साखी-तन रहित मन जात है, मन रहित तन जाय। तन मन एके होय रहै, हंस कबीर कहाय ॥ शब्दार्थ-अकहुआ 5 अकथधनी। अनिर्वचनी। रमैनी 5 रामकथा |-गुणानुवाद | बोहित ८ जहाज | + अर्थ-जिसका नाम भी अकथनी है उसके गुणो का वर्णन कैसे हो सकता है ? एक तात्पर्य की बात कहता हूँ। जैसे जहाज पर चढ़ा यात्री गन्तव्य को पहुँच जाता है वैसे ही जो सदगुरु की पद्धति (रहनि) को पकड़ता है। उनके अनुसार साधना करता वह ससार को वैसे ही पार करता है जैसे जहाज का यात्री। साधक को किसी प्रकार की बनावट (स्वॉग) नही करनी चाहिए। उसे अपने शरीर के भीतर ही रहना चाहिए।. अर्थात् मन को मन मे ही देखे। चचल चित्त (मन) से कुछ न बोले। जो भी बोले शात एवं समाहित मन से बोले। _ नन और मन का समन्वय आवश्यक है। तन का मन और मन का तन से समन्वय सबंध होना चाहिए। यही बात महात्मा कबीर कहते. है। (४१) जेहि कारन सिव अजहूँ वियोगी, अंग विभूति लाय भी जोगी। सेस सहस मुख पार न पावा, सो अब खसम सही समुझावा। ऐसी विधि जो मो कहे ध्यावै, छठये माह दरस सो पाबे। कवनेहु भाव दिखाई देऊँ, गुप्ते रहि सुभाउ सब लेऊँ॥ साखी-कहहि कबीर पुकारि के, सभ का इहे हवाल। | कहा हमार माने नही, कैसे छूटे भ्रम जाल ॥ - अर्थ-परमान्मा की प्राप्ति के अभाव मे शिव आज भी वियोगी (साधक) बनकर शरीर मे भस्म लगाकर योग की ली जलाए बैठे है। परमान्म तत्त्व अवर्णनी है। शेष सहस्न मुख से भी उसका वर्णन नहीं कर सकते है। उसी परमतत्त्व खसम शब्द द्वारा समझाने मे आसानी हो गयी। मतलब कि परमतत्त्व शास्त्र और शब्द नही साधना से समझा-समझाया जा सकता है। ऐसी विधि अर्थात् खसम (पति) मानकर जो परमात्म का ध्यान करता है वह उसका छ मास मे ही दर्शन कर लेना है। परमात्म किसी भी भाव से (भाव कुभाव अनख आलसहू, नाम जपत मगल दिसि दसहू- तुलसी) साधना करने पर गोचर हो सकता है। गुप्त रहकर ही वह सब स्वभाव का अनुभव करता है। कवीर पुकारकर कहते है कि सभी का यही हाल है। हमारी बात मानता नहीं है। फिर भ्रम-जाल से कैसे छूट सकता है ? ,... (४२) महादेव मुनि अंत न पाया, उमा सहित उन्ह जन्म गँवाया।

 उनते सिध साधक नहि कोई, मन निश्चय कहु कैसे होई। जौ लगि तन मैं आह सोई, तब लगि चेति न देखे कोई। तब चेतिही जब तजिहहु प्राना, भया अंत तब मन पछिताना। इतना सुनत निकट चलि आई, मन विकार नहि छूटी भाई॥ साखी-तीनि लोक यो आय के, छूटि न कहु कि आस। , इक ऑँधरे जग खाइया, सबका भया बिनास ॥| अर्थ-शकर जी उमा सहित जीवन बिता दिए कितु परमतत्त्व को न जान सके। उनसे बड़ा साधक सिद्ध कोई नही है। फिर मन मे निश्चय कैसे हो सकता है कि वह तत्त्व क्या है ? जब तक परमात्म तत्त्व शरीर मे है तव तक कोई चेतकर उसे नही देखता। शरीर के न रहने पर यह सभव नही है। चेत तब होता है जब प्राण जाने का समय हो जाता है। अत समय मे मन पछताता है। यह सब सुनते-सुनते अत समय निकट चला आता है। फिर भी मन से विकार नही छूट पाता है। मु तीनो लोको मे आकर किसी की आशा नही छूटी। सभी विषयो से तृप्ति की आशा मे है। एक अधकार (माया > हक्ष्यहीन) ने ससार को नष्ट कर दिया। सबका नाश हो गया। (४३) मरि गये ब्रह्मा कासी के वासी, सीव सहित्त मुए अविनासी। मथुरा मरिगो कृस्न गुवारा, मरि मरि गए दसी अवतारा। मरि मरि गए भगति जिन ठानी, सरयुन महँ जिन निरयुन आनी॥ साखी-नाथ मछंदर बॉँचे नही, गोरख दत्त औ व्यास। कहहि कबीर पुकारिके, सभ परे काल की फॉँस॥ हि अर्थ-काशी-निवासी ब्रह्मा (ब्राह्मण) विना परमतत्त्व का ज्ञान प्राप्त किये मर गये। अमर कहलानेवाले देवताओं के साथ शिव भी मर गए। मधथुरावासी गोपाल कृष्ण भी मर गए। दसो आवतारो की मृत्यु हो गयी। सगुण शरीर या मूर्तियों में जिन्होने निर्गुण निराकार की साधना की वे भी मर गए। गोरखनाथ, दत्तात्रेय, व्यास, मल्येद्रनाथ कोई नहीं बचे। कबीर पुकारकर कहते है कि सभी काल के जाल मे पड़ गये। ् (४४) गये राम ओ गये लछमना, संग न गई सीता अस घना। जात कौरवहि लागु न बारा, गये भोज जिन साजल धारा। गये पंडु कुन्ती सी रानी, सहदेवहु जिन बुधि मति ठानी। सर्व सोन की लंक उठाई, चलत बार कछु संग न लाई। जाकी पुरी अंतरिछठ छाई, सो हरिचन्द देखल नहि जाई। मुरुख मानुस बहुत सेंजोबे, अपने मरे अबर लगि रोवै। ना जाने अपनी मरि जैबे, टका दस बढ़े अबर लै खैबे॥ साखी-अपनी अपनी करि गये, लागि न कु के साथ। अपनी करि गो राबणा, अपनी दसारथ नाव॥ अर्थ-राम और लक्ष्मण गए। उनके साथ सीता जैसी पतिव्रता स्त्री नही गयी। सब अलगअलग गए। कौरवो को जाने में देर नही लगी। धारा नगरी को सजानेवाले राजा भोज भी चठे गए। पाड्ु एव कुती रानी, बुद्धिमान सहदेव भी चले गए। सोने की लका का निर्माता रावण चलते समय कुछ न हे जा सका। जिस हरिश्चद्र का नगर अतरिक्ष तक शोभा पाता है वे भी |

रमैनी ८३७ अब देखे नही जाते है। मूर्ख मनुष्य बहुत सजोते (इकट्ठा करते) है। स्वय तो मरणशील है और दूसरो के लिये रोते है। यह नही जानता कि स्वय मर जायगा। उसके बढ़ाए धन (दस टका) से लोग आरभ करेगे। सभी ने अपने-अपने ढग से धन इकट्ठा किया। कितु धन किसी के साथ नही ढुगा। सब खाली हाथ गए। रावण ने भी अपने ढग से किया। दशरथ भी अपने ढग से धन सँजो गए। (४५) (ममत्व फल) दिन दिन जरे जलन के पाऊँ, डाढ़े जाय न उमेंगे काऊ। कंध न देह मसखरी करई, कहु धो कौनि भाँति निस्तरई। अकरम करे करम को धावै, पढ़ि गुनि वेद जगत समुझावै। छूँछा परे अकारथ जाई, कहहि कबीर चित चेतडु भाई ॥ शब्दार्थ-डाढ़े + दग्ध। जलना। उमेंगे - उन्मुक्त। मुक्त | काऊ 5 किसी| पाऊं > प्राप्त करता हूँ। पैर। निस्तरई 5 मुक्ति। अकरम - बुरा कर्म। अर्थ-दिनोदिन दुख और बढ़ता जा रहा है या दुख ने पैर जकड़ लिये है। जल रहा हूँ। किसी भी प्रकार से मुक्ति नही है। कोई सहारा नही देता है (कध न देइ)। सभी मजाक उड़ाते है। समझ मे नही आता कि मुक्ति कैसे होगी ? व्यक्ति दिन-रात कर्म के पीछे दौड़ता है। बुरा कर्म करता है। वेद पढ़कर ससार को कर्मकाड सिखलाता है। कितु कर्मकाड से कुछ होनेवाढा नही है। वेद और तज्जनित कर्मकाड व्यर्थ होते है। कबीरदास कहते है कि हे भाई चेतकर देखो। (४६) क्रितिया सूत्र लोक एक अहई, लाख पचास के आयू कहई। विद्या बेद पढ़े पुनि सोई, बचन कहत परतछै होई॥ पहुँची बात विद्या के पेटा, बाहू के भर्म भया संकेता॥ साखी-खग के खोजन तुम परे, पीछे अगम अपार। बिनु परचे कस जानिही, झूठा है हंकार॥ न शब्दार्थ-क्रितिया 5 (स कृतक या कृत्रिम) निर्मित। काल्पनिक | सूत्र - सूक्ष्म। बाहू « उन्हे अर्थ-एक सूक्ष्म लोक है जिसके निवासियो की आयु पचास लाख वर्षो की कही जाती है। (कितु वे भी मरणधर्मा हैं)। वेद विद्या पढ़नेवाले छोग ऐसे बोलते है जैसे वह छोक उनके हे प्रत्यक्ष है। यह बात विद्या (सरस्वती) या विद्वानों के पेट मे पहुँची। कितु उन्हे भी भ्रम गया। आत्मतत्त्व पक्षी जैसा शून्य (आकाश) मे है। उसका पीछा करना अगम, अपार काम है| बिना साधना के परिचय द्वारा उसे कैसे जान सकते हो ? सारे अहकार झूठे है। (४७) (गुरुभक्ति का महत्व) सुत 82 के सेवा, के देहहों देवा। गम दु हट उँ छुड़ाई, औरी बात सुन्हु कछु आई। उतपति परले देउँ देखाई, करहु राज सुख बिलसहु जाई। एकी बार न होहहै बॉको, बहुरि जन्म नि होइडै ताको।

८३८ कबीर समग्र जाई पाप सुख मिले निधाना, निस्थे बचन कबीर के माना॥ साखी-साधु संत तेई जना, जो मानहि बचन हमार | आदि अंत उत्तपति प्रलय, देखहु दिष्टि पसार॥ अर्थ-गुरु कहते है कि हे शिष्य तुम मेरी सेवा अथवा उपदेश मानो, इससे तुम्हे देवराज्य की प्राप्ति होगी | जन्म-कर्म का जो अगम्ब दुर्गम गढ़ है उससे तुम्हे मुक्ति मिल जायगी। और भी कुछ ज्ञान हो जायगा। उत्पत्ति-प्रलय के तत्त्व बना दूँगा। इससे राज करो। विलास करो। तुम्हारा एक वाल भी बाँका नहीं होगा। (बाल बॉका न होना 5 कोई नुकसान न होना)। तुम्हारा पुनर्जन्म नही होगा। पाप नष्ट होक़र सुख मिछेगा। यह कवीर की निश्चित बात है। वही व्यक्ति साधु सत है जिसने हमारी (कवीर की) बात मानी। मेरी बात मानकर जन्म, मृत्यु, सृष्टि, प्रलरय सव आँख खोलकर देख सकते हो। ववराग्पीपदेश) चढ़त चढ़ावत्त भँड़हर फोरी, मन नहि जाने केकर चोरी। चोर एक मूसे संसारा, बिरला जन कोइ बूझनि हारा। सरग पताल भूमि लै बारी, एके राम सकल रखबारी॥ साखी-पाहन होयके सब गये, बिनु भितियन को चित्र जासो कियहु मिताई सो धन भया न हित्तं शब्दार्थ-चढ़त चढ़ावत 5 हठयोग करने से। भेंड़हर 5 शरीर। चोर 5 माया। वारी « वाटिका या समुद्र | भितियन - दीवाल। अर्थ-हठयोग की साधना द्वारा श्वासों और चक्रो को चढ़ाते-चढ़ाते शरीर नष्ट हो गया। मृत्यु आ गयी। मन नही जानता कि चोर कौन है ? माया चोर ससार को मूस रहा है। इस बात को विरला व्यक्ति ही समझ पाता है। स्वर्ग, पाताल, पृथ्वी, समुद्र, आदि सव के एक रखवाले राम है। सभी पत्थर होकर गये। बिना दीवाल के चित्र सभव नही है। कितु ईश्वर ने ससार चित्र को विना किसी आधार के बनाया है। नो मनुष्य उसी चित्र का एक भाग है। वह शून्य भी है . और निर्जीव चित्र भी है। जिस धन को मित्र समझकर इकट्ठा किया वह धन अत समय मे हितू न हो सका। (४९) खॉड़्डहु पति छाँडहु लबराई, मन अभिमान छूटि तब जाई। जन जो चोरी भिच्छा खाही, सो बिरवा पलुहावन जाहीं। पुनि सम्पति औ पति कँह घाव, सो बिरवा संसार लै आबै॥ साखी-ग्ूठ-झूढ के डारहु, मिथ्या यह संसार। तेहि कारन मैं कहत हो,, जाते होव उबार॥ शब्दार्थ-पति - स्वामीत्व। परिग्रह। छबराई 5 झूठपना। विरवा 5 आरभिक पेड़। भिच्छा * उदर निमित्त मॉगी जानेवाली वस्तु। पलुहावन 5 पल्लवित होना। वृद्धि को प्राप्त करना ससार लै आवै ८ मोह बढ़ानेवाला। उबार ₹ मुक्ति अर्ग-ऐ लोगो, स्वामीत्व और झूठपना दोनो एक है। इसलिये दोनो छोड़ो। तभी मन का अभिमान दूर होगा। (मुक्नि के लिये अभिमानरहित होना आवश्यक है)। जो लोग चोगी या भिक्षा का धन खाते है उसका ,आरभिक वृक्ष ससार मे बढ़कर मोह पैदा करता है। ऐसे ढोग पुन्धन और स्वामीन्व के लिये दौड़ने हैं। यह दौड़ वधन का कारण वेनती है। इससे संसार

रमैनी ८३५९ वासना नही छूटती और बार-बार आवागमन होता है| ससार की वासना झूठी है। जगत मिथ्या है। इसलिये इस मिथ्या (झूठ) को छोड़ दो। मै (सी कारण से कह रहा हूँ।'जिससे मुक्ति मिल सके। टिप्पणी-पेट भरने से अधिक रखनेवाले को भागवत में चोर कहा गया है' यावत भ्रियते जठर तावत् स्वत्व हि देहिनाम्। अधिक यो5भिमन्येत् स स्तेनो दडम्हति |७।१४।८ | ५० (तत्वज्ञान बिना परवश्चनादि प्रकरण) धर्म कथा जो कहते रहई, लबरी नित उठि प्राते कहई। छाबरि बिहने लाबरि संझ्ा, इक लागरे बस हिरदया मंझा। रामहुँ केर मरघु नहि जाना, लै मति टानिन्हि वेद पुराना। बेदहु केर कहल नहि करई, जरतहि रहै सुस्त नहि परई।॥ साखी-गुनातीत के गावते, आपुर्ष्ि गये भ्रमाय। मादिक तन माटी मिले, पव्नहि पवन समाय॥ अर्थ-जो नित्य धर्म की कथा कहते है, फिर भी नित्य झूठ का व्यवहार करते है। उनके हृदय में झूंठ है। वे सुबह-शाम झूठ का व्यवहार करते है। वे राम का रहस्य नही जानते। झूठ मूठ मे वेद-पुराण की बात करते है। वे झूठे छोग वेद का कहा भी नही करते है। वे सदा तृष्णा की आग मे जला करते है। कभी ठडे नही होते। गुणातीत परमतत्त्व का गान करते हुए भी भ्रम से मुक्त नही होते है। मिट्टी का शरीर मिट्टी मे मिल जाता है। पवन पवन-मे मिल जाता है। अर्थात् मृत्यु के बाद भी वे अज्ञानी ही बने रहते है। जीवन मरण सब अज्ञान मे होता है। ५१ जौ तोहि करता बरन दिचारा, जन्मत तीनि दण्ड अनुसारा। जन्मत सूद्र मुए पुनि सूद्रा, कृतम जनेउ डारि जग मुद्रा। जौ तुह ब्राह्मन ब्रह्मनी के जाया, और राह ते काहे न आया। जी तुह तुरुक तुरुकिनी जाया, पेटे राहे न सुनति कराया। कारी पियरी दुहड्टू गाई, ताकर दूध देहु बिलगाई। छाड कपट नर अधिक सयानी, कहहि कबीर भजु सारंगपानी॥ शब्दार्थ-तीनि दड - त्रैताप। दैहिक, दैविक, भौतिक ताप। कृतम - कृत्रिम। बनावटी। सारगपानी - विष्णु। सुनति - खतना। बिलगाई ८ अलगाना। अर्थ-जो तुम कर्त्ता के वर्ण का विचार करते हो तो याद रखो कि सभी का जन्म से ही तीन दुख प्राप्त है। सभी छोग जन्म से मृत्यु तक शूद्र होते है। जनेऊ डालकर ब्राह्मण बनना कृत्रिम काम है। ऐ ब्राह्मण, यदि तुम ब्राह्मणी की सतान हो तो तुम्हारे जन्म का मार्ग भी दूसरा होना चाहिए। अर्थ यह कि जन्म से कोई ब्राह्मण या शूद्र नही है। हे मुसलमान, यदि तुम मुसलमानी से पैदा हो तो भीतर ही (मॉ के पेट मे ही) खतना क्यो नही हुआ ? गाय काही या पीली हो सबका दूध समान रूप से एक रग का होता है। गाय के रगो के आधार पर दूध को अलगाया नही जा सकता है। इसी प्रकार रग के आधार पर भी मनुष्य-मनुष्य मे भेद नहीं किया जा सकता है। ऐ मनुष्य, ज्यादा होशियार मत बनो, सभी एक होकर भगवान् का भजन करो। क्योकि भगवान भेदभावरहित है।

जिरजा ५ फाउलज (५२) नाना रूप बरन यक कीन्हा, चारि बरन उन्हे काहु न चीन्हा। नष्ट गए करता नहि चीन्हा नष्ट गये औरहि मन दीन्हा। नष्ट गए जिन्ह वेद बखाना, बेद पढ़े पे भेद न जाना। विमलख करे नैन नहि सूझा, भया अयान तब कछुवी न बूझा॥ साखी-नाना नाच नथाय के, नाचै नट के भेख | घट घट अविनासी बसे, सुनहु तकी तुम सेख ॥ अर्थ-परमात्मा एक है। उस एक ने एक ही प्रकार के मनुष्यो का निर्माण किया। कितु उसी एक मे अनेक वर्ण और रूप पैदा हुए। चार वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) बनाए। सभी नष्ट होते गए कितु उस निर्माता की पहचान नहीं की। इसलिये भी नष्ट हुए कि उस एक निर्माता को न पहचानकर दूसरो पर ध्यान रखा। वे भी नष्ट हो गए जिन्होने वेद का बखान किया। वेद की रचना की। वेद तो पढ़ा, कितु जीव, जगत और ब्रह्म का भेद समझने की कोशिश नहीं की। अपने को शुद्ध, साफ आँखों वाला मानकर भी उन्हे तत्त्व दर्शन नहीं हुआ। वे मायाजन्य अज्ञान मे डूबे रहे। कुछ भी दिखाई नहीं दिया। कुछ भी समझ मे नहीं आया । सभी लोग नट के समान अनेक प्रकार के नाच नाचते है। हे शेख तकी, सुनो। छोग शरीर (घट-घट) मे अविनाशी परमतत्त्व को नही समझ पाते है। ' हु ३) घ फल) काया कंचन जतन कराया, बहुत भांति के मन पलटाया। जौ सौ बार कहो समुन्नाई, तैयो धरा छोरि नहीं जाई। जन के कहे जने रहि जाई, नवो निद्धि सिद्धि तिन पाई। सदा धर्म जाके हिय बसई, राम कसौटी कसते रहई। जो रे कसावै अनते जाई, सो बाउर अपने बौराई ॥ साखी-ताते फाँसी काल की, करहु आपनो सोच | संत सिधाये संत जहँ, मिलि रहा पोचहि पोच॥ अर्थ-लोग शरीर को सोने-सा सुदर बनाते है। अनेक कोशिशों से मन को विषयों से विमुख करते है। फिर भी चाहे कितना ही समझाओ कितु छोगो का मन सासारिक वना रहता है। वे सासारिकता से मुक्त नही हो पाते है। अज्ञानियो की बात मानकर अज्ञानी ही रह जाते है। ऐसे अज्ञानी नवो निधियां, आठो सिद्धियाँ तो प्राप्त कर छेते है। अर्थात् उन्हे ससार की सारी सपत्ति मिल जाती है। कितु परमात्मतत्त्व नही .प्राम होता है। जो महान् धार्मिक है, महान् धर्म जिनके हृदय मे है। उन्हे भी अपने को राम की कसौटी पर कसते रहना चाहिए। आतलतत्त्व की प्राप्ति की कसौटी गम को छोड़कर जो दूसरे देवी-देवताओ के पास जायेंगे वे पायल है। पागल ही बने रहते है। काल भयकर है। वह सबके लिये फॉसी है। मृत्यु है। इसलिये सबको अपनी सोच करनी चाहिए। सत के पास जाने पर व्यक्ति सत बनेगा। छोटे (पोच) लोगो का साथ करने पर छोटा होगा | (५४ (सदगुरु राय सोई हित बंधु मोहि मन भाव, जात कुमारग मारग लावै।

रमैनी ८359 सो सयान मारग रहि जाई, करे खोज कबहूँ न भुलाई। : सो झूठा जो सत कहैं तजई, गुर की दया राम को भजई। किचित है यह जगत भुलाना, घन सुत देखि भया अभिमाना॥ साखी-दिया खताना किया पयाना, मन्दिर भया उजार। मरि गये ते मरि गये, बाँधे बाँचनिहार | अर्थ-वही मुझे हितकर भाई जान पड़ता है जो मनुष्य को बुरे रास्ते से हटाकर सद्मार्ग पर हे जाय। वही बुद्धिमान है जो मार्ग पर रहकर सदा प्रभु की खोज करता है। ईश्वर के अन्वेषण मे कभी भूल नही करता। सत्य को छोड़नेवाला झूठा है। ऐसे ही छोग गुरुदेव की कृपा से राम का भजन करते है। यह ससार धन, पुत्र आदि जागतिक अभिमान मे भूला हुआ है। जीव का सासारिक कार्य (ख़ताना, खतियाना) था सासारिक लेखा जोखा पूरा हुआ। प्राण प्रयाण कर गये। घर या शरीर (मदिर) उजड़ गये। मरनेवाले मर गए। कितु जो राम की शरण में गये हुए है। वे बच गये। ! 'दिया खताना' का अर्थ प्राणदीपक का बुझ जाना भी हो सकता है। (५५) बोलना कासो बोलिय (रै) भाई, बोलत ही सब तत्तु नसाई। बोलत बोलत बाढ़ विकारा, सो बोलिये जो परे बिचारा। मिले जु संत बचन ठुइ कहिए, मिले असंत् मौन होय रहिए। पण्डित सो बोलिये हितकारी, मूरुख ते रहिये झख मारी। कहहि कबीर अर्ध घट डोलै, पूरा होय विधार लै बोले ॥ अर्थ-परमतत्त्व की बात किससे की जाय ? परमतत्त्व को समझना-समझाना मुश्किल है। समझाने की चेथ्व मे परमतत्त्व की अनुभूति समाप्त हो जाती है। बोलने से विकार बढ़ता है। उतना ही बोलना चाहिए जिस पर लोग विचार कर सके या जो उन्हे समझ मे आ सकता हो। सत मिले तो दो बात कहिए। असत मिले तो मौन रहिए। पडित से बात करना लाभदायक है। मूर्ख मिले तो व्यर्थ समय मत नष्ट कीजिए। सत कबीर कहते है कि जैसे आधा भरे घड़े का पानी छलकता है उसी प्रकार अर्ध ज्ञानी हर न है। पूर्ण ज्ञानी विचार कर बोलता है। ५६ सोग बधावा सम के माना, ताकि बात इन्द्रहु नहि जाना। जटा तोरि पहिराबै सेली, जोग जुक्ति के गर्व दुहेली। आसन उड़ये कौन बड़ाई, जैसे काग चील्ह मंडराई। जैसी भित्ति तैसि है नारी, राजपाट सब गने उजारी। जस नरक तस चंदन जाना, जस वाउर तस रहै सयाना। लपसी लौग गने एक सारा, परिहरि खाँड़ मुख फौंके छारा॥ साखी-हहै विचार विचारते, गये बुद्धि बल चेत | दुइ मिलि एके होय रहा, (में) काहि लगावी हेत ॥ शब्दार्थ-सोग 5 शोक। बधावा - बधाई। मगलाचार। सेली - ऊन या बालो को बॉटकर बनायी गई माला जैसी पहनने की चीज। खाँड़ - चीनी। छारा < धूल। लपसी > थोड़े घी मे बना हि | लीक 80: | हे ₹ केठिन | दु साध्य | अ-सत कबीर कहते है कि कुछ लोग विचार मे सुख-दुख को एक मानते है। ऐसा चरित्र बनाते है जिसे इद्र भी नही जान सकते है। बाल कटाकर योगी जैसी सेली पहनते है| उन्हे योग-युक्ति का कठिन गर्व भी होता है। वे योग-साधना द्वारा आसन से उड़ जाते है।

ध्ठेर् नबा३१९ राभश्र कितु यह कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नही है। यह कौए, चील्ह जैसे मेंडगना है। उड़ना है। वे कहते है कि स्त्री भित्तिचित्र के समान अनुत्तेजक हैं। राजपाठ सब उजाड़ स्थान के समान व्यर्थ है। चदन का लगाना या नरक का वास दोनो समान है। पागल और ज्ञानी दोनो का एक समान आचरण है। वे हहलुआ और लोग को समान मानते है। मीठी चीनी छोड़कर धूल फॉकत्े है, कितु इससे कुछ नहीं होता है। इन्ही वातों घर विचार करते-करते मनुष्य की बुद्धि, बल और चेतना चली जाती है। नकली ज्ञान एव तत्त्वपूर्ण ज्ञान म इतनी एकता हो गयी है कि समझ नही आता कि किससे प्रेम किया जाय। भ्रामक स्थिति है। हि (५७) हि (माया का वर्णन) नारि एक संसारहि आई, माय न बाके बाप न जाई। गोड न मूड न प्रान अधारा, तामँह भरमि रहा संसारा। दिना सात लौ बाकी सही, बुध अदबुध अचरज का कही | बाकी बंदन करु सब कोई, बुध अदबुध अचरज बड़ होई॥ साखी-मूस बिलाई एक संग, कहु कैसे रहि जाय। संतो अचरज देखहू, हस्ती सिघहि खाय ॥ शब्दार्थ-नारि > माया। जाई 5 उत्पन्न | गोड़ 5 पैर | मूड़ 5 सिर। तामँह 5 उसमे। मूस + जीव | बिलाई > माया। हस्ती 5 माया। सिघहि 5 जीव को। अर्थ-मसृष्टि में माया आई है। यह माया माता-पिता से रहित है। इसे किसी ने उत्पन्न नहीं किया है। वह पैर सिर, प्राण आदि से रहित है। कितु उसी माया मे सारा ससार भ्रमण कर रहा है। भूला है। लोग पूरे हप्ते अर्थात् सदा ही उसे सत्य मानते है। बुद्धिमान और मूर्ख दोनो ही माया के चक्कर मे है। इस आश्चर्य के बारे मे क्या कहे ? सभी उसकी (माया की) वदना करने है। आश्चर्य तो यह है कि इसमे ज्ञानी और अज्ञानी दोनो प्रकार के लोग है। अब कवीर प्रतीक म कहते है कि जीव रूप चूहा और माया बिल्ली एक साथ कैसे रह सकते है ? है सतो, आश्चर्य देखो, माया का रा सिंह को खा रहा है। ५८ चली जात देखी एक नारी, त्तर गागरि ऊपर पनिहारी। चली जात बह बाटहि बाटा, सोवनहार के ऊपर खादा। जाड़न भरे सपेदी सौरी, खसम न चीन्हे घरनि भौ बौरी। साँझ सकार दिया लै वारै, खसम छोडि सुमिरे लगवारै। बाही के संग निसु दिन राची, पिय से बात कहै नहि सौँची। सोबत छॉँडि चली पिय अपना, ई दु.ख अब दहुँ कहब कैसना ॥ साखी-अपनी जाँघ उघारि के, अपनी कही न जाय। की चित जाने आपना, की मेरो जन गाय ॥ शब्दार्थ-नारी 5 नाड़ी। सुघुम्ना। (सुषुम्ना मेरूदड मे से जाती है। वह नाभि प्रदेश से उत्पन्न होकर मेरुदड से होनी हुई ब्रह्मचक्र पे प्रवेश करती है-कवीर का रह०, पृ० १०३)। तर गागरि € सुपुम्ना नाड़ी के निम्न मुख में कुडइलिनी निवास करती है। , वह सुषुम्ना के सहारे आगे बढ़ती है। (वही पृ १०३) कुडलिनी का शरार सर्प के समान साढ़े तीन बार मड़ा है। कुडलिनी सबसे नीचे के चक्र मूलाधार चक्र मे स्थित है। इसे जाग्रत किया जाता है। इस दृष्टि से कुडलिनी गागरि और सुषुस्ना नारी पनिहारी है। बाटहि बाटा 5 सुषुम्ना के जाने के मार्ग छ

रमैनी के ८४३ चक्र। सोवनहार सुप्त कुडलिनी | खाटा + ब्रह्मरश्र। कुडलिनी जाग्रत होकर 2० हक जाड़न < विषय-सुख। सपेदी सौरी 5 सफेद चादर। खसम र परमालतत्त्व रे घर 2007 न घर में बावठी। लगवारै 5 जार। विषय। दिया > ज्ञान | बारे 5 जलाना । अपनी जॉघ उ कै 5 अपना ही भेद बताना । हे अर्थ-साधक कवीर ने सुषुम्ना नाड़ी स्त्री) को जाते देखा। वह ब्रह्मरश्र की ओर जा रहीं है। (उसकी गागर) सोयी सर्पाकार कुडलिनी का मुख गागर नीचे मूलाधार के पास है और वह द्रह्मश (पनिहारी) के पास पहुँचनी है। 'जो योगी नहीं है, उनके ब्रह्मरक्ष से अमृत प्रवाहित होता है, उसका शोषण मूलाधार चक्र में स्थित सूर्य द्वारा हो जाता है (वहीं पृ ११५)। योगी इस प्रवाह को रोक अमृत को शोषण से बचाना है। सुपुम्ना जाग्रत कुडलिनी के साथ पडचक्रो के रास्ते से होती द्रह्मरक्न में पहुँचती है। ब्रह्मश्न ही खाट है। सोने वाढी कुडलिनी है। जो मूलाधार में सोयी थी। कितु जागकर ब्रह्मरक्ष खाट को प्राप्त करती है। जागरणहीन कुडलिनी के कारण जीव विषय में पड्ठा दुख भोगता है। इसलिये भी कि जीव अपने भरीरं में ही परमतत्त्व के रहने विषयो के वावलेण्न में उस तत्त्व (परमतत्त्वो को नहीं पहचानता है। लगता तो ऐसा है कि जीव सदा (साँझ्र-सकारे) ज्ञान (दिया) प्राप्त करना चाहता है। कितु उसका मन परमात्मतत्व मे न लगकर विष्यी में उलझा रहता है। सदा विपयो में रहता है। कभी प्रिय की सच्ची बात नही करता हे। विष्य (अज्ञान) प्रिय जीव जो सदा सोता है और कुडलिनी भी सोती रहती है| जब विषय को छोड़कर चलता हैं तव उसका (जीव का) कल्याण होता 'है। सामान्यत विषयों को छोड़ते समय भी एक प्रकार का दुख होता है) यह ऐसा दुख है जिसे कहना कठिन ड्लै जेसे अपना भद कहना कठिन ह# वेसे ही विषय को छोड़ने का दुख और परमान्म-प्राप्ति के आनंद का या तो अपन' चित्त जानता है या जो मेरे जैसा साधक है या मेरा भक्त है| - (५९) दिह के साझीदार और अपराध) मानुष जन्म चूके जग मॉँझी, एहि तन केर बहुत है सौंझी। तात जननी कहै पुत्र हमारा, स्वारथ लागि कीन्ह प्रतिपाला। कामिनि कहै मोर पिय आही, बाघिनि रूप गरासन चाही। पुन्न कलन्न रहे ली लाए, जम्बुक नित्य रहैं मुँह बाए। काय गीध दोउ मरन विचारे, सूकर स्वान दोठ पंथ निहारे। अगिनि कहै मे ई तन जारी, पानि कहै मे जरत उबारे। धरती कहै मोहि मिलि जाई, पौन कहै संग छेहुँ उड़ाई। जेहि घर को घर कहै गैँवारा, सो बैरी है गले तुम्हारा। सो तन तुप आपन करि जानी, विषय रूप भूले अग्यानी। साखी-एत्तने तनके साझिया, जन्मौ भरे दुख पाव। ” चेतत नाही बावरा, मोर मोर गोहराव ॥ ह अर्थ-भारती शस्त्रो मे कह गया है कि मनुष्य-जन्म दुर्लभ है। इसलिये मनुष्य जन्म पाकर भूल नहीं करनी चाहिए। इस शरीर के बहुन से हिस्सेदार है। पिता-मात्ता केहते है कि यह हमाए पुत्र है। स्वार्थ के लिये ही हमने इसका पालन-पोषण किया है। स्त्री कहती है कि यह हमारा प्रिय है। कितु वाधिन के समान पड़ती है। पृत्र-स्ि्री सभी ध्यान लगाए रहते है। सियार सोचता है मरे तो इसका मास खाएँ। इसी प्रकार कौए, गीध, सूअर,

कुत्ते मरने का रास्ता देखते रहते है। आग जछाना चाहती है। पानी जलने से मुक्त कर अपने ये डुबोना चाहता है। धरती चाहती है कि मनुष्य मिट्टी मे मिल जाय। हचा उडाना चाहती है| मूर्ख मनुष्य जिस घर ग, हर

८ड४ कबीर समग्र को घर कहता है वह घर उसके दुश्मन-सा उसका गला पकड़े है। मनुष्य का असली घर तो अन्यत्र है। है अज्ञानी, विषयो मे पड़कर तुमने शरीर को अनावश्यक महत्त्व दे रखा है। ऐ मूर्ख मनुष्य, ज्ञान प्राप्त करो। शरीर के इतने हिस्सेदारों के बीच तुमने जन्मभर दुख पाया। व्यर्थ में तुम सबको मेरा कहते हो। कोई भी तुम्हारा नही है। ६0० (विषय वासना) बठवत बढ़ी घटावत छोटी, परखत खर परखाबत खोटी | केतिक कही कहाँ लगि कही, औरी कही परे जो सही। कहल बिना मोहि रहल न जाई, बेढ़ई लै ले कूकुर खाई॥ साखी-खाते खाते जुग गया, अजहूँ न चेते आय। कहह्ठि कबीर पुकारिके, ई जिव जरतहि जाय॥ अर्थ-विषय की ओर मन को बढ़ाने से वह और भी बढ़ता जाता है। मन को विषयो से हटा लेने पर विषय अत्यत क्षुद्र जान पड़ते है। विषय देखने मे अच्छे (खर) लगते है। कितु जॉच करने पर पता लगता है विषय सुख बुरा है। कितना कहा जाय ? पुन जो अच्छा ढगता है कहता हूँ। कहे बिना रहा भी तो नहीं जाता है। ऐ मनुष्य, कचौड़ी (बेढ़ई) जैसा सुदर मनुष्य-जन्म अज्ञान का कुत्ता नष्ट कर रहा है। अज्ञान कुत्ता अनेक युगो से मनुष्य को खा रहा है या मनुष्य विषय का भोग कचौड़ी खाने वाले कुत्ते के समान तन््मय होकर कर रहा है। अब भी उसे समझ मे नहीं आया है। सत कवीर पुकारकर कहते है कि यह मनुष्य वासना की आग मे जलता हुआ नष्ट हो जायगा। ६१ (आशाजन्य दुख) बहुतक साहस करु जिय अपना, तेहि साहब सो भेंट न सपना। खरा खोट जिन नहि परखाया, चहत लाभ तिन्ह मूल गमाया। समुझ्ि न परे पातरी मोटी, ओछी गाँठि सबै भी खोटी। कहै कबीर केहि देहो खोरी, जब चलिही स्लिन आसा तोरी ॥ साखी-्नी झी आसा मैँह लगे, ज्ञानी पण्डित दास। पार न पावहि बापुरे, भरमत फिरंहि उदास ॥ अर्थ-साहसिक कार्यों से परमात्म की प्राप्ति नही होती है। इसलिए लोगो, कितना भी साहसिक (तीर्थ, व्रत, यज्ञ, दानादि) कार्य करोगे, प्रभु से भेट सभव नही है। जिन्होने अच्छे-बुरे की पहचान नही की। ऐसे लोग चाहते है लाभ। कितु मूलधन भी गायब हो जाता है। उन्हे सूक्ष्म और स्थूल का भेद भी समझ मे नहीं आता है। छोटे मन से अपनाये गए सारे कर्म-धर्म छोटे हो जाते है। कवीर साहब कहते है कि किसको दोष दिया जाय ? चलते समय इच्छा-पूर्ति की छीन आशा भी समाप्त हो जाती है। फिर छोग है कि इच्छा के वश मे रहते है। ज्ञानी, पडित और दास भी झीकते हुए प्राप्ति या तृष्णापूर्ति की आशा में रहते है। या छीन ३००8 है। कोई भी विषयो को पूर्णत पार नही पाता है। सभी दुखी होकर ससार चक्र घूमते है। (६२) (काम प्रभाव) देव चरित्र सुनहु रे भाई, सो तो ब्रह्मा घिया नसाई। ऊ जे सुनी मन्दोदरि तारा, तिन घर जेठ सदा लगवारा |

रमैनी ८४५ सुरपति जाय अहीलहि छरी, सुरगुरु घरनिं चन्द्रमे हरी | कहे कबीर हरिके गुन गाया, कुन्तीकरन छुँवारहि जाया॥ अर्थ-ऐ लोगो, देवताओ का चरित्र सुनो। ब्रह्मा ने अपनी ही' पुत्री सरस्वती के साथ समागम किया। मदोदरी और तारा ने अपने जेठ से सबध किया। इद्र ने अहल्या का पातिव्रत भग किया। बृहस्पति की पतली के साथ चद्रमा ने समागम किया। कुती ने कर्ण को कुमारावस्था में ही पैदा किया था। इसलिये देवताओ के चक्कर मे न पड़कर हरि स्मरण करो। ६३ (माया का आवरण) सुख क बिर्छ एक जगत उपाया, समुझि न परे विष कछु माया। छव छन्नी पत्नी जुग चारी, फल दुइ पाप पुन्य अधिकारी । स्वाद अमित कछु बरनि न जाई, के चरित्र सो ताहि समाई। नटवर' सारे साज साजिया, जो खेले सो देख बाजिया | मोहा बपुरा जुक्ति न देखा, सिव सक्ति बिरंधि नहि पेखा॥ साखी-परदे परदे चलि गए, समुझि परी नहि बानि। जो जानहि सो बांचिहै, होत सकलकी हानि॥ अर्थ-माया का विषय कुछ समझ मे नही आता है। उसने सुख का एक जगत रूपी वृक्ष तैयार किया। मन सहित पॉच इद्रियाँ उस वृक्ष की शाखाएँ (छत्री) है। सुख-दुख दो पत्ते है। पाप-पुण्य करनेवाले अधिकार-भेद से उसके चार फलो (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को प्राप्त करते है। इन फलो मे बहुत अधिक स्वाद है। लोग इन्हे अपने चरित्र के अनुसार प्राप्त करते है। सभी लोग नट जैसी सज्जा सजाकर जो खेलते है। वे ही देखते है (जीव और ब्रह्म एक है)। सभी इसी मे मोहग्रस्त है। इससे मुक्ति का कोई उपाय नही है। शिव, शक्ति, ब्रह्मा को भी मुक्ति का कोई उपाय नही दीखता है।.. सभी माया के पर्दे मे ही चले गये। माया का स्वभाव (बानि) किसी की समझ मे नहीं पा । जो माया के स्वभाव को समझ लेगा वही बच सकता है। वरना सब कुछ नष्ट हो रहा ॥ ; (६४) (राग सूही) तूं सकल गहगरा, सफ सफा दिलदार दीदार॥ है तेरी कुदरति किनहूं न जानी, पीर मुरीद काजी मुसलमांनी ॥ देवी देव सुर नर गण गंप्रप, ब्रह्मा देव महेसुर॥ तेरी छुदरति तिनहूं न जांनी ॥ टेक॥ काजी सो जो काया बिचारे, तेल दीप मे बाती जारे॥ तेल दीप मै बाती रहे, जोति चीड़ि जे काजी कहै || मुलनां बंग देह सुर जांनीं, आप मुसला बैठा तांनीं॥ आप न मै जे करै निवाजा, सो मुलनां सरबत्तरि गाजा॥ सेष सहज मै महल उठावा, चंद सूर बिचि तारी लावा॥ अर्थ उर्ध बिचि आंनि उतारा, सोई सेष तिहूं लोक पियारा॥ जेंगम जोग बिचारै जहूंबां, जीव सीब करे एके ठऊबां॥ चित चेतनि करि पूजा लावा, तेतौ जंगम नांउं कहावा॥ जोगी भसम करै भी मारी, सहज गहे विचार बिचारी॥

 अनभै.घट परचा सूं बोडै, सो जोगी निह्चल/कदे न.डोलै॥ जैन जीव का करहु उबारा, कौंण जीव का करहु-उधारा॥ कहां बसे चौरासी का देव, लही मुकति जे जांनी भेव॥ ., भगता तिरण मतै संसारी, तिरण तत ते लेहु बिचारी॥ प्रीति जांनि राम जे कहै, दास नांउ सो भगता लहै॥ ५ पंडित चारि बेद गुण गावा, आदि अंति करि पूतःकहाया। _ उतपति परलै कही विचारी, संसा घालौ संये निवारी ॥ अरधक उरधक ये संन्यासी, ते सब लागि रहें अबिनासी॥ अजराबर की डिढ करि गहै, सो-संन्‍्यांसी उन्मन रहे ॥ जिहि धर चाल रची ब्रह्मंडा,-पृथमी मारि करी नव खंडा॥ अबिगत पुरिस की गति लखो न जाइ, दास कबीर अगह रहे ल्यो लाई ॥१॥ शब्दार्थ-गहगरा > उत्फुल्लख। गभीर| सफ सफ़ा" स्पष्ट । स्वच्छ |-गध्नप 5 गधर्व। कुदरति ₹ स्वभाव। मुलना मुसलमान। सरवत्तरि 5 सर्वत्र| गाजा,> गर्जन। सीव शिव। जगम« एक प्रकार के साधक। लिगायत शैव। भी 5 भव। सहज >'सहजे साधना। अजरावर & अजर . अमर | डिढ दृढ़। उनन्‍्मन 5 विषयरहित मन। अगह >> अग्रह,या ,अगृह | मुसछा & नमाज ' पढ़ने की चटाई | चादरी | पूतत 5 पवित्र। , डे अर्थ-हे प्रभु, तुम सबमे एवं सपूर्ण रूप से आनंद हो-। तुम स्वच्छ, ,दिल्दार और दृश्यमान हो। तुम्हारी प्रकृति कोई नही जानता है| चाहे वे पीर हो, मुरीदया:काजी हो।-देवता- , देवी, मनुष्य, गधर्व, ब्रह्मा, महादेव आदि कोई भी तुम्हारे स्वभाव को,नही-जानते है।. « काजी वह है जो आररीर के सबध मे विचार करता,है। शरीर-क्या:है ? जैसे दीपक मे. तेल और वत्ती जलती हो। उसके प्रकाश मे अर्थात्‌ जीवन रहने पर-ही काजी कुछ पहचान सकता है। जीवन के बाद उसका कोई बस नही है। मुसठमान देवता समझकर बाग देते है। स्वय दरी तानकर बैठते है। जो अपने भीतर नमाज पढ़ता है-वह' सर्वत्र गरजता है ।[,उसे केवल मस्जिद मे गर्जन नही करनी पड़ती है। जो सहज साधना द्वारा' शेषनाग अर्थात्‌-कुडलिनी मे>महठ उठता है, कुंडलिनी जाग्रत करता है नथा चद्र सूर्य, इला-पिगला) नाड़ियो की एकता स्थापित करता है। कुडलिनी को नीचे से जाग्रत कर ऊपर हे जाता है। वही कुडलिनी-साधक तीनी लोक का , प्यारा होता है। लिगायत साधक जीव और ,शिव के अद्दैत की' साधना करते है। चित्त को चैतन्य पूजा करते हे। इसी से उनका नाम,जगम है।-योगी/ससार, को नष्ट कर भस्म लगाते है। विचारकर सहज साधना को ग्रहण करते है। शरीर के भीतर अनुभव और परिचय कर बोलते है। ऐसे योगी कभी विचलित नही होते है। हे जैन, किस.जीव का उद्धार करते हो' यह स्पष्ट करो। चौरासी योनियो का देव 'कहाँ रहता है > -जो-मुक्ति प्राप्त-करता, है 'वही इस भेद को समझ सकता है। भक्तों के मतानुसार ससार त्तरना ही-महत्त्वपूर्ण है। कितु तरन-तत्त्व क्या है इस पर विचार करो। जो प्रेम से. राम कहता है वह भक्त दास कहलोता.हैं। पडित चार वेदों के गुण गाते है। वेद को आदि से अत तक पवित्र.कहते है।. हे. पृडित, /सारे भ्रमो को दूर-कर उत्पत्ति और प्रढय की बात कहो जो नीचेन्ऊपर -या बाहर-भीतर- से सन्यासी है वह

अविनाशीहै। अजर अमर को दृढ़ता से पकड़ता है। वह. मन्यासी.,विषयो ,सें अंग रहता है। जिसने ब्रह्मड घर की रचना की है। पृथ्वी को, मारकर-नौ- खड किया. है।“उस्-अविगत पुरुष की चाल कोई देख नहीं सकता है। कबीरदास-ने उंस, अगेह,तत्व मे ध्यान-छगा,रखा है। राग- सूहो।

रपैनी ८४७ (६५) (सतपदी रमैणी) लीं कहन सुनन कौ जिहि जग कीन्हा, जग भुलांन सो किनहूं न चीन्ह्रों ॥ सत रज तम ये कीन्ही माया, आपण मांझे आप छिपाया॥ ते तौ आहि अनंद सरूपा, गुन पल्वव बिस्तार अनूपा। | साखा तत ये कुसम गियानां, फल सो आएा रांम का नांमा॥ सदा अचेत चेत जीव पंखी, हरि तरवर करि बास। झूठे जगि जिनि भूलसि जियरे, कहन सुनन की आस॥ सूक बिरख यहु जगत उपाया, समझि न परे बिखम तेरी माया॥ साखा तीनि,पत्र जुग चारी, फल दोड़ पाप पुंनि अधिकारी॥ . स्वाद अनेक कथ्या नहीं जांही, किया चरित सो इन मै नांही ॥ तेती आहि निनार निरंजनां, आदि अनादि न आंन। कहने सुनन कौ कीन्ह जग, आपै आप भुलांन॥ जिनि नट्ये नटसारी साजी, जो खेले सो दीसे बाजी ॥ मो बपरा थे जोगति ढाठी, सिव बिरंचि नारद नही दीठी॥ आदि अंति जो लीन भये है, सहजै जांनि संतोखि रहे है ॥ सहजै रांम नांम ल्यो लाई, राम नांम कहि भगति दिठाई॥ रांम नांप जाका मन मांनां, तिनि त्तौ निज सरूप पहिचांनां ॥ निज सरूप निरंजनां, निराकार अपरंपार अपार। राम नांम लो छाइस जियरे, जिनि भूले विस्तार ॥ करि बिसतार जग धंधै लाया, अंध काया थे पुरिष उपाया॥ जिहि जैसी मनसा तिहि तैसा भावा, तादूं तैसा कीन्ह उपावा ॥। तेती माया मोह भुलांनां, खसम राम सो किनहूं न जांनां ॥ जिनि जांन्यां ते निरमल अंगा, नही जांन्याँ ते भये भुजंगा॥ ता मुखि बिष आबै बिष जाई, ते बिष ही बिष मै रहे समाई॥ माता जगत भूत सुधि नांही, भ्रँमि भूले नर आदै जांही॥ जानि बूझ्ि चेते नही अंधा, करम जठर करम के फंधा॥ करंप का बांध्या जीयरा, अह निसि आवबै जाइ। मनसा देही पाइ करि, हरि बिसरे तौ फिर पीछे पछिताइ॥ तो करि त्राहि चेति जा अंधा, तजि परकीरति भजि चरन गोब्यंदा॥ उदर कूप तजी ग्रभ वासा, रे जीव रांम नांम अभ्यासा॥ जगि जीवन जैसे लहरि तरंगा, खिन सुख कूं भूलसि बहु संगा॥ भगति कौ हीन जीवन कछू नांही, उत्तपति परले बहुरि समांहीं ॥ भगति हीन अस जीवनां, जन्म मरन बहु काल। आश्रम अनेक करसि रे जियरा, रांम बिनां कोइ न करे प्रतिपाला॥ सोई उपाब करि यहु दुख जाई, ए सब परहरि बिसे सगाई ॥ माया मोह जरे जय आगी, ता संगि जरसि कवन रस लागी॥ त्राहि ज्ञाहि करि हरी घुकारा, साध संगति मिलि करहु बिघारा॥ रैरे जीवन नही विश्वांमां, सब दुख खंडन रांम को नांमां॥ राम नाम संसार में सारा, रांम नाम भी तारनहारा ||

सुप्रित बेद सबै सुने, नही आबे कृत काज | नही जैसे कुंडिल बनित मुख, मुख सोभित बिन राज ॥ अब गहीं रांम नांम अबिनासी, हरि तजि जिनि कतहूं के जासी ॥। जहां जाइ तहां तंहाँ पतंगा, अब जिनि जरसि समझि बिप संगा॥ चोखा रांम नांम मनि लीन्हां प्रिगी कीट भ्यंन नही कीन्ह्हां॥| भौसागर अति वार न पारा, ता तिरबे का करहु बियारा॥ मनि भाव अति लहरि बिकारा, नहीं गमि सूचे वार न पारा॥ भोसागर अथाह जल, तामे बोहिब रांम अधार। कहै कबीर हम हरि सरन, तब गोपद खुर बिस्तार ॥२॥ शब्दार्थ-जिहि 5 जिसने। सूक 5 सूखा। उपाया 5 उत्पन्न किया। निनार 5 न्यारा। अलग। नटवै 5 नटवर। नटसारी 5 नाट्यशाला। दीसे - दृश्य । थे 5 से। जोगति 5 इतजार। भुजगा 5 सर्प। माता 5 मत्त। जठर 5 पेट। परकीरति - प्रकृति। आश्रम 5 चार आश्रम (व्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्‍्यास) | सारा 5 सार। मूल। भी - भव। सुम्रितर स्पृति। कृतकाज पूर्ण कार्य | बोहिथ 5 जहाज | मनसा > मनुष्य | अर्थ-यह ससार तात्त्विक नही है। केवल कहने-सुनने छायक है। सभी इसमे भूले है। कोई इसको पहचान नही रहा है। सत्त्व, रज, तम गुणों से माया रची गयी है। माया भी ब्रह्म का एक रूप है। इसी से ब्रह्म अपनी माया से ही अपने को छिपाए रहता है। ब्रह्म तो आनद स्वरूप है। गुण रूप पत्ते उस विचित्र के विस्तार है। तत्त्व शाखा से ज्ञान-फूल का विकास हुआ है। इसमे राम नाम ही सबसे अच्छा फल है। ओ अचैतन्य जीव-पक्षी, चेतो। हरि (हरा) अर्थात्‌ भगवान्‌ पेड़ पर वास करो। भगवान्‌ हरि ही हरे वृक्ष है। अन्य पेड़ हरे नही सूखे अर्थात्‌ नाशवान्‌ है (यह अर्थ श्लेष से निकलता है)। मिथ्या ससार मे कुछ कहने-सुनने से कुछ होनेवाला नही है। इसमे व्यर्थ मत भूलो। यह संसार सूखे वृक्ष जैसा है। भगवान्‌ की माया , विषम है। इस पेड़ के तीन काल (वर्तमान, भूत, भविष्य) शाखा और चार युग (सत, द्वापर, त्रेता, कलि) पत्र है। पांप और पुण्य इसके दो फल है। इसमे अनेक अकथनी स्वाद है। जिसने यह सब चरित किया है वह इनमे नहीं है। इनसे ऊपर है। वह ,निरजनआदि-अत रहित एव निराला है। उसी नटवर ने जगत नाट्यूशाला की रचना की है। वही दृश्य भी है। द्रष्ट भी है। मुझ, बेचारा से केवल प्रतीक्षा हो सकती है। क्योकि वह तो शिव, ब्रह्मा और नारद की दृष्टि से भी परे है। जिन्होने सहज सतोष किया है। उनके जन्म-मरण नष्ट हो गये है। रामनाम का ध्यान करते है। रामनाम कहकर भक्ति दृढ़ करते है। जिसके मन में रामनाम है वही अपने सच्चे " स्वरूप को पहचनता है। निरजन अपरपार एवं निराकार है। उसका स्वरूप केवल उसका है। है मन, ससार के विस्तार मे न भूलकर रामनाम का ध्यान करो। यह विस्तार जगत धधा है। इससे अज्ञानी (अधे) पुरुष का जन्म हुआ है। मतलब कि ससार धधा में पुरुष अधा है। अधा ही उत्तन होता है। जिसका मन जैसा है उसका भाव भी वैसा है। उसका उपाय भी वैसा ही है। तुम तो माया मोह मे भूले हो। स्वामी राम को कोई नही जानता है। जिन्होंने जाना उनके अग पवित्र है। जो नहीं जानते वे सर्प के समान है। उनके मुख मे विष ही विष रहता है। वे

विषय मे ही लिपटे रहते है (भुजग का अर्थ पट भी है। विष विषय है। इस दृष्टि से अर्थ होगा कि लपट व्यक्ति विषयो मे ही लिप्त रहते है। ऐसे मे यहाँ श्लेष होगा)। सभी भूत जगत मे मत्त है। किसी को अपने स्वरूप का बोध नही है। भ्रम मे भूले लोगो। का ही ससार मे आवागमन होता है। जान बूझकर नहीं समझता है। फलत कर्म के फदे मे पड़कर बार-बार *

रमैनी ८४९ गर्भवास होता है। मनुष्य देह को प्राप्तकर जो भगवान् को भूल जाता है वह बाद मे अफसोस करता है। | ऐ विषयाध मनुष्य, रक्षा का भाव मन मे छाओ और प्रकृति को छोड़कर भगवान् का भजन करो। राम नाम के अभ्यास से उदर कूप (कुओँ) से तुम्हे मुक्ति मिल जायगी। विषयो का बहुसग पानी मे उठनेवाली लहर के समान क्षणिक है। भक्तिरहित जीवन बार-बार जन्मपृद्यु के चक्र मे पड़ा करता है। अनेक आश्रमो में जाने पर भी राम के बिना कोई प्रतिपाल नही कर सकता है। विषय विष का साथ छोड़ो और ऐसा उपाय करो जिससे दुख दूर हो जाय। ससार माया-मोह की आग में जल रहा है। तुम उसके साथ किस रस के लिये जल रहे हो ? साधु सगति मे बैठकर विचार करो और भगवान् की शरण में जाओ। उन्हे रक्षार्थ पुकारो | जीवन मे आराम नही है। राम नाम ही दुख भजन है। राम नाम ही सार तत्त्व है। ससार-सागर पार करनेवाला है। वेद, स्मृति आदि सुनने से कार्य पूर्ण नही होता है। जैसे राज्य के बिना खाली कुडल पहनने से मुख की शोभा नही होती है। अब राम नाम को पकड़ो। अविनाशी राम नाम को छोड़ अन्यत्र मत जाओ। अब विषयों मे मत जलो। जहॉ-जहाँ जाओगे वहॉ-वहाँ पतग जैसी स्थिति होगी। मन मे सच्चे राम नाम को लाओ। कीट भूग के समान राम से एक हो जाओ। भवसागर का आरपार नही है। इसे पार करने का विचार करो। मन में विकारों की छहरे उठ रही है। इसलिये आरपार नहीं दिखाई देता है। भवसागर का जल अथाह है। इसमे राम नाम ही जहाज है। सत कबीर कहते है कि हरि-शरण मे जाने से ससार-सागर गौ के पद के खुर से बने गड्ढे के समान पार करना सरल हो जाता है। 5 ६ सैंणी (बड़ी अप) एक बिनांनी रच्या बिनांन, सब अयांन जो आप जांन॥ सत रज तम थे कीन्ही माया, चारि खांनि बिस्तार उपाया॥ पंच तत ले कीन्ह दंधानं, पाप पुंनि मांन अभिमानं॥ अहंकार कीन्हे माया मोहू, संपति बिपति दीन्ही सब काहू॥ भले रे पोच अकुल कुलवंतां, गुणी निरगुणी धंन नीधनवंतां ॥ भूख पियास अनहित हित कीन्हां, हेत मोर तोर करि लीन्हां ॥ पंच स्वाद ले कीन्हां बंधू, बंधे करम ओ आहि अबंघू॥ अवर जीव जंत जे आही, संकुट सोच बियापै ताही॥ निद्या अस्तुति मांन अभिमांना, इनि झूठे जीव हत्या गियांनां ॥ बहु विधि करि संसार भुलावा, झूठे दोजगि साथ लुकावा॥ माया मोह धन जोबनां, इनि बंधे सब लोइ ॥ झूठे झूठ बियापिया कबीर, अलख न लखई कोइ ॥ झूठनि झूठ साथ करि जांनां, झूठनि मैं सब साथ लुकांनां ॥ धंध बंध कीन्ह बहुतेरा, क्रम बिबर्जित रहै न नेरा ॥ घट दरसंन आश्रम षट कीन्हां, घट रस खाटि कांम रस लीन्हां॥ चारि बेद छह सास्त्र बखाने, विद्या अनंत कथे को जाने ॥ तप तीरथ कीन्ह ब्रत पूजा, धरम नेम दांन पुन्य दूजा॥

८५० कबीर समग्र ओर अगम कीन्हे ब्योहारा, नहीं गमि सूझे वार न पारा॥। लीला करि करि भेख फिरावा, ओट बहुत कछू कहत न आवा॥ गहन ब्यंद कछू नही सूझे, आपन योप भयी आगम बूसझे॥ भूलि पर्ची जीव अधिक डराई, रजनी अंपकूप द्वै आई॥ माया मोह उनवे भरपूरी, दद्धुर दामिनि पवनां पूरी॥ तरिषि बरिषे अखंड घारा, रेनि भांमनीं भया अँधियारा॥ तिहि बिवोग तजि भये अनाथा, परे निकुंज न पांव पंथा॥ बेद न आहि कहूं को माने, जानि बूझि मैं भया अयाने॥ नट बहु रूप खेलै सब जांने, कला केर गुन ठाकुर मांने॥ ओ खेले सब ही घट मांही, दूसर के लेख कछु नाहीं॥ जाके गुन सोई पै जांने, और को जांने पार अयाने ॥ भले रे पोच औसर जब आवा, करि सनमांन पूरि जम पावा॥ दांन पुन्य हम दिहूं निरासा, कब लग रहूं नटारंभ काछा॥ फिरत फिरत सब चरन तुरांने, हरि चरित अगम कै को जांने॥ गण गंप्रप मुनि अंत न पावा, रह्मौ अलख जग घंधे लावा।॥ इहि बाजी सिव बिरंधि भुलांनां, और बपुरा को क्यंधित जांनां॥ न्राहि न्राहि इम कीन्ह पुकारा, राखि राखि साईं इहि बारा॥ कोटि ब्रह्मंड गहि दीन्ह फिराई, फल कर कीट जनम बहुताई॥ इस्वर जोग खरा जब लीन्हां, टरघौ ध्यांन तप खंड न कीन्हां॥ सिध साधिक उनये कहु कोई, मन चित अस्थिर कहु कैसे होई॥ लीला अगम कथै को पारा, बस्हु समीप कि रही निनारा॥ ' खग खोज पीछे नही, तूं तत अपरंपार। बिन परथे का जानिये, सब झूठे अहंकार ॥ अलख निरंजन लखे न कोई, निरभे निराकार है सोई॥ छुंनि असथूल रूप नही रेखा, द्रिष्टि अद्रिष्टि छिप्पी नही पेखा॥ ब्रन अबरन कथ्यो नहीं जाई, सकल अतीत घट रह्ौ समाई॥ आदि अंति ताहि नही मधे, कथ्यो न जाई आहि अकचे॥ अपरंपार उपजै नही बिनसे, जुगति न जांनियै कविये कैसे ॥ जस कथिये तस होत नही, जस है तैसा सोह। कहत सुनत सुख उपजे, अरु परमारथ होड़ ॥ जांनसि नहीं कस कथसि अयांनां, हम निरयुन तुम्ह सरयुन जांनां॥ मति करि हीन कवन गुन आंही, लालचि छागि आसिरे रहाई॥ डक गुंन अरु ग्यांन दोऊ हम हीनां, जैसी कुछ बुधि बिचार तस कीन्हां॥ हम मसकीन कछू जुगति न आबै, जे तुम्ह दरवो तौ पूरि जन पाबै॥ तुम्हारे चरन कबल मन राता, गुन निरयुन के तुम्ह निज दाता॥ जहुवां प्रगटि बजावहु जैसा, जस अनभे कथिया तिनि तैसा॥ बाजै तंत्र नाद घुनि होई, जे बजाबे सो औरे कोई ॥ बाजी नाचे कौतिग देखा, जो नचाबै सो किनहूं न पेखा ॥ आप आप ये जानिये, है पर नाही सोइ | कबीर सुपिने केर धंन ज्यूं, जागत हाथि न होड़ ॥

रमैनी व जिनि यहु सुपिनां फुर करि जांनां, और सबै दुखयादि न आंनां॥ ग्यांन हीन चेते नही सूता, मे जाग्या विष हर भे भू । पारधी बांन रहै सर सांधें, विषम बांन मारे विष जांधें॥ काल अहेड़ी संझ सकारा, सावज ससा सकल संसारा॥ दावानल अति जरे बिकारा, माया मोह रोकि ले जारा॥ पवन सहाह लोभ अति भटद्दया, जम चरचा चहुं दिसि फिरि गइया॥ जम के चर चहुं दिसि फिरि लागे, हंस पंखेरुवा अब कहां जाइबे॥ केस गहे कर निस दिन रहई, जब घधरि ऐचे तब धरि चहई॥ कठिन पासि कछू चले न उपाई, जंम ठुवारि सीझे सब जाई॥ सोई ज्नास सुनि राम न गावै, मृगन्रिष्णों झूठी दिन धावे॥ मृत काल किनहूं नही देखा, दुख कौ सुख करे सबही लेखा॥ सुख करि मूल न चीन्हसि अभागी, चीन्े्हे बिनां रहे दुख लागी॥ नीब काट रस नीब पियारा, यूं बिष कूं अंमृत कहे संसारा॥ बिष अंमत एके करि सांनां, जिनि चीन्हयां तिनही सुख मांनां॥ अछित राज दिन दिनहि सिराई, अंम्रत परहरि करि बिष खाई ॥ जांनि अजांनि जिन्हे बिष खावा, परे लहरि पुकारे धावा || बिष के खांये का गुंन होई, जा बेद न जांने परि सोई॥ भुरछि मुरछि जीव जरिहे आसा, कांजी अलप बहु खीर बिनासा॥ तिल सुख कारनि दुख अस मेरू, चोरासी लख लीया फेरू॥ अलप सुख दुख आहि अनंता, मन मैगल भूल्यो मैमंता॥ दीपक जोति रहै इक संगा, नैन नेह मांनूं परै पतंगा॥ सुख बिश्रांम किनहूं नहीं पावा, परहरि साथ झूठ दिन धावा॥ लालच लागे जनम सिरावा, अंति काल दिन आइ तुरावा॥ जब लग है यहु निज तन सोई, तब लग चेति न देखे कोई ॥ जब निज चलि करि किया पयांनां, भयो अकाज तब फिरि पछितांनां॥ मृगश्रिष्णां दिन दिन ऐसी, अब मोहि कछू न सुहाह। अनेक जतन करि टारिये, करम पासि नही जाह॥ रे रे मन बुधिवंत् भंडारा, आप आप ही करहु बिधारा॥ कवन सयांन कौन बोराई, किहि दुख पहये किह्टि दुज जाई॥ कवन हरिख कौ विष में जांनां, को अनहित को हित क्ररि मांनां॥ कबन सार को आहि असारा, को अनहित को आहि पियारा॥ कबन साथ कवन है यूठा, कवन करूं को लागै मीठा॥ किहि जरिये किहि करिये अनंदा, कबन मुकति को मल के फंदा॥ 3 मन मोहि व्यौरि कहि, हों तत पूछो तोहि। ले सूल सबे भई, समझाई कहि मोहि॥ सुंनि हंसा मै कहूं बियारी, व्रिजुग जोनि सदै अंधियारी || मनिषा जन्म उत्तिम जौ पादा, जांनूं राम तौ स्यांन कहादा॥ नही चेते तौ जनम गंमावा, परदौ बिहांन तथ फिरि पछतादा॥ सुख करि मूल भगति जो जांने, और सबे दुख या दिन आंने॥ अमृत केवल रांम पियार, ओर सबै बिप के भंडारा॥

८ग्र कवीर समग्र हरिख आहि जौ रमिये रांमां, और सबै बिसपां के कांमां॥ सार आहि संगति निरवानां, और सबै असार करि जांनां॥ अनहित आहि सकल संसारा, हित करि जांनिये राम पियारा॥ साध सोई जे घिरह रहाई, उपजै बिनसे झूठ द्ै जाई॥ मीठा सो जो सहज पावा, अति कलेस ये करू कहावा॥ नां जरिये नां कीजै मे मेरा, तहां अनंद जहां राम निहोरा।। मुकति सोज आपा पर जांने, सो पद कहा जु भरमि भुलांने ॥ प्राननाथ जग जीवनां, दुरलूभ राम पियार। सुत सरीर घन प्रग्रह कबीर, जीये रे तर्वर पंख बसियार॥ रे रे जीय अपनां दुख न संभारा, जिहि दुख व्याप्या सब संसारा॥ भाया मोह भूले सब लोई क्यंचित लाभ मांनिक दीयो खोई॥ में मेरी करि बहुत बियूता, जननी उदर जन्म का सूता॥ बहुते रूप भेष बहु कीन्हां, जुरा मरन क्रोध तन खीनां॥ उपजै बिनसे जोनि फिराई, सुख कर मूल न पावे चाही |॥ दुख संताप कलेस बहु पावै, सो न मिले जे जरत बुझावे॥ जिहि हित जीव राखिहे भाई, सो अनहित दै जाइ बिलाई ॥ मोर तोर करि जरे अपारा, म्ृग त्रिष्णां झूठी संसारा॥ माया मोह झूठ रह्ौ लागी, का भयौी इहाँ का हरहै आगी॥ कछु कछु चेति देखि जीव अबही, मनिषा जनम न पावै कबही || सार आहि जे संग पियारा, जब चेते तब ही उजियारा ॥ त्रिजुग जोनि जे आहि अचेता, मनिषा जनम भयौ चित चेता॥ आतमां मुरछि मुरछि जरि जाई, पिछले दुख कहता न लिराई॥ सोई चास जे जांने हंसा, तो अजहूं न जीव करे संतोसा॥ भीसार अति वार न पारा, ता तिरबे का करहु बिधारा॥ जा जल की आदि अंति नही जांनिये, ताकौ डर काहे न मानिये ॥। को बोहिथ को खेवट आही, जिहि तिरिये सो लीजै चाही॥ समझ्ि बिचारि जीव जब देखा, यहु संसार सुपन करि लेखा।॥ भई बुधि कछू ग्यांन निहारा, आप आप ही किया बिचारा॥ आपण मै जे रह्मौ समाई, नेड़ै दूरि कथ्यी नहीं जाई ॥ ताके चीन्हे परथो पावा, भई समझ्लि तासूं मन लावा ॥ भाव भगति हित बोहिया, सतगुर खेवनहार। अलप उदिक तब जांणिये, जब गोपदखुर बिस्तार॥३॥ शब्दार्थ-विनानी > विज्ञानी। विनान 5 विज्ञान। अयान 5 अज्ञान। आप > आत्म। स्वय। चारि खानि 5 स्वेदज, अडज, उद्भिज, जरायुज। उपाया 5 उत्पन्न किया। पचतत आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी। पोच - क्षुद्र। नीधनवता - निर्धनवानू। हेत - ग्रेम। पच स्वाद 5 पाँच इद्रियो का स्वाद। आहि 5 है। अवर 5 अपर | और। दोजगि 5 दोजख। नरक। लछोइ 5 लोग। नेरा 5 न्यारा। षट दरसन 5 साख्य, योग, न्याय, मीमासा, वेदात वैशेषिक। आश्रम षट > ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सनन््यास, हस, परमहस। षट रस 5 मधुर, द्धवण, तिक्त, अम्ल, कटु, काषाय। छह सास्त्र 5 व्याकरण, ज्योतिष, निरुक््त, कल्प, शिक्षा, छद। व्यद > विदु। मूल तत्त्व। उनवै 5 उमड़ना। तरिण 5 तड़पै। भामनी 5 स्त्री। नटारभ ८

रमैनी ह ८५३ नाट्यारभ। काछा 5 सँवारना | तुरानै ल टूट गये। क्यचित 5 किचितू। आगम 5 १ अगम्य। २ शास्त्र। बाजी 5 खेल। सरगुन 5 सगुण। आसिरे 5 आसरे। मसकीन - बेचारा। साथु। दरवौ > द्रवी। पूरि 5 पूर्ण। फुर 5 संत्य। जहुवा 5 जहाँ। अनभे 5 अनुभव। बाजी ८ जादूगर। बिघहर 5 विषधर। पारधी 5 शिकारी | अहेड़ी 5 शिकारी। सकारा 5 सवेरा। सावज < मृग। जगली पशु। शिकार। भइया # भया। हुआ। चर ८ सेवक। सिपाही। पख्ेरूवा ८ पक्षी | ऐचे > खीचे। पासि 5 पाश। सीझे 5 सीधे। अछित - रहते हुए। सिराई 5 समाप्त होना। काजी > खट्टा। खीर 5 दूध। मैगल 5 हाथी। मैमता 5 मदोन्मत्त। सिरावा ८ समाप्त हुआ। तुरावा 5 समाप्त होना। पयाना प्रयाण। करूँ 5 कड्डुवा। ब्यौरि > व्यौरेवार। थिरह + स्थिर। सोज ८ वस्तु। प्रग्रह 5 पगहा। रस्सी। तर्वर 5 तरुवर। बसियार 5 बसने योग्य । बिगता ८ नध् होना। जुदा « जरा। बुढ़ापा। खीना 5 क्षीण। आगी 5 आगे। भौसार ८ भवसागर। खेवट 5 नाविक। बोहित 5 जहाज। नेडै 5 नजदीक | हसा > जीवात्मा | अर्थ-विज्ञानात्मा ईश्वर ने विज्ञानात्मा जीव की सृध्टि की। यह ईश्वर सारे अज्ञानो को भी जानता है। अर्थ यह कि विज्ञान और अज्ञान दोनो उसी के है। उसने त्रिगुणात्मक माया के द्वार चार प्रकार के जीवो की सृष्टि की। ये जीव पॉच तत्त्वोसे इस शरीर-बधन मे बॉघे गये है। इसी मे पाप-पुण्य एव मान-अभिमान भी है। अहकार से ही माया-मोह हुए। सपत्ति-विपत्ति भी मिली। अच्छे-बुरे, कुलबत। नीच कुलवाले, गुणवान्, गुणरहित, धनी, निर्धन, भूख, प्यास, हित, अनहित तथा हमारे-तुम्हारे का प्रेम बनाया। पॉच इद्रियो के पाँच स्वाद (रूप, रस, गध, स्पर्श, शब्द) बनाया। सबको कर्मसूत्र मे बॉधा। कितु वह स्वय बधनरहित है। दूसरे भी जो जीव है, जिन्हे सकट एवं चिता होती है। निदा एवं प्रशसा, मान एवं अभिमान ये सभी जीव हत्या करने के झूठे ज्ञान है। अनेक प्रकार से ससार मे भुछावा दिया जाता है। सत्य को छिपा झूठा नरक दिखाया जाता है। सभी लोग माया, मोह, धन और यौवन मे भूले है। सर्वत्र झूठ ही झूठ व्याप्त है। अलख (ईश्वर) को कोई देख नही रहा है। ' लोग झूठ को ही सत्य समझ रहे है। सारा सत्य झूठ मे छिप गया है, अनेक प्रकार बधनकारक धधा किया। कितु कभी कर्मरहित के पास नही गए। छ दर्शन, छ आश्रम, छ रस तथा खट्टे कामरस को लिया। चार वेद, छ शास्त्र कहते है। विद्या अनत कही गयी है। कितनी है कोई नही जानता है। तप, तीर्थ, व्रत, पूजा, नियम, धर्म, दान, पुण्य आदि भी किया। दूसरे प्रकार का अगम्य व्यवहार किया। कितु आरपार कुछ नही दीखता है। मनुष्य अनेक वेश बनाता है। अनेक प्रकार की लीलाएँ करता है। अनेक प्रकार विचारों और साधनाओ की आड़ लेता है। कितु मूल तत्त्व नही दीखता है। आत्म तत्त्व तो गोप्य है। कितु उसे जानने का प्रयल न कर अगम्य की ओर ध्यान लगाता है या आत्तत्त्व को शास्त्र द्वारा जानना चाहता है। जीव ससार मे भटक गया है। ससार-कूप अत्यत अज्ञान अँधकार से भरा है। उसी कुएँ मे मनुष्य पड़ा है। इस पर माया-मोह के बादल उमड़ आये है। मेढ़क बोठते है।

बिजली चमकती है। हवा तेज बह रही है। बिजली तड़कती है। मूसलाधार वर्षा हो रही है। हे स्त्री (साधक), माया की रात घनी हो गयी है। सारी सृष्टि 58 न्न हो गयी है। जीव ईश्वर को छोड़कर अनाथ हो गया है। ससारकुज मे उसे रास्ता नही मिल रहा है। वेद मे भी कुछ नही है। कोई क्या माने ? जीव जानडूझकर ज्ञानी बना है। सभी नट बने खेलते है। कितु कछा का गुण तो ईश्वर ही जानता है। चह ईश्वर सभी जीव शरीर मे खेल रहा है। नासमझ (दूसर) के लिये उसका कुछ भी महत्त्व नरी है। जिसका यह गुण है वही जानता है। अज्ञान के परे रहनेवाले को और कौन जानता

८प्ड कबीर समग्र है? अच्छे-बुरे अवसर आते है। कितु इनमे यम ही सम्मानित होते है। दान-पुण्य से भी निराशा ही होती है। यह नाट्यारभ का वेश कब तक रखा जाय ? ससार मे आवागमन करते-करते पैर टूट गये। थक गये। अगम्य हरि चरित को कौन कह सकता है ? गधर्वगण और मुनियो ने भी उसका अत नही पाया है। वह अलक्षित रहकर भी ससार का धधा चलाता है। उसके खेल मे शिव, ब्रह्मा सभी भूले है। दूसरा वेचारा तो कुछ भी नहीं जान सकता है। त्राहि-ब्राहि अर्थात् रक्षा करो, रक्षा करो, इस प्रकार पुकार करने पर है स्वामी इस बार रख छो। उबार लो। उसने जीव को करोड़ो ब्रह्माड मे पकड़कर घुमाया है (या करोड़ो ब्रह्मा को पकड़कर घुमाता है) । जीव फल के कीड़े के समान घूमता है। यहाँ जीव कीड़ा है और ब्रह्माड फल है। ईश्वर ने जब खरा सही) योग लिया। ध्यान टलने पर भी योग खडित नहीं हुआ। सिद्ध-साधक सव उसी प्रभु से उत्तनन है। मुख्य समस्या है कि मन और चित्त अस्थिर है। विना स्थिर हुए कुछ कैसे हो सकता है ? उस प्रभु की छीछा अगम है। इसे कोई कैसे कह सकता है ? चाहे उससे दूर रहो या नजदीक रहो । ७७:२० :०२२८. हे प्रभु, तुम्हारा तत्त्व अपरपार है। आकाश मे उड़ते पक्षी को पकड़ने-सा तुम्हारे तत्त्त को. पाना कठिन है। विना परिचय के कुछ नही जाना जा सकता है। जानने की बात झूठा अहकार है। वह निरजन अलक्ष्य है। उसे कोई देख नहीं सकता है। वह निर्भर (नि.भव पैदा न होने वाला भी) और निराकार है। वह शून्य है। सूक्ष्म है। उसकी कोई रूपरेखा नहीं है। वह दृष्टि अदृष्टि से परे है। उसे देखा नहीं जा सकता है। वह वर्ण-अवर्ण से परे सभी शरीरों मे मौजूद है। उसका आदि, अत और मध्य नही है। वह अकथनी है। वह जैसा है वैसा कहा नही जा सकता है। कहने-सुनने से आनद मिलता है एवं परमार्थ होता है| जानता हैँ | किस बात के लिये बुद्धि को छोटी बना रहे हो ? ढाल्च मे पड़कर भगवद्याप्ति का अवसर खो रहे हो। हम तो गुण और ज्ञान दोनो से हीन है। जैसी बुद्धि है वैसा विचार करते है। मै बेचारा कोई युक्ति नहीं जानता। तुम्हारी कृपा हो तो यह जन पूर्ण को प्राप्त कर सकता हे। मेरा मन तुम्हारे चरण-कमलो में रुगा है। तुम्ही गुण-निर्गुण के दाता हो। ससार तुम्हारे द्वारा प्रगट होकर वजाये जानेवाले वाजा-सा है। ध्वनि ही मूल है। जिसके जो अनुभव में आता है वह वैसा कहता है। जीवन-यत्र बजता है। उसमे ध्वनि होती है। कितु बज़ानेवाला कोई अन्य है। जादूगर नाचता है, वही देखता भी है। जो नाचता है उसे कोई नही देखता है। जीव को अपने मे ही जानना चाहिए। वह जीव से परे नहीं है। वह स्वप्न-सपत्ति के समान है। जागरण पर हाथ नही आता है। जिन्होने इस स्वप्न के सत्य को जान लिया है वे सब दुखो से छूट गये! विषयो मे सोये अज्ञानी चैतन्य नही होते। मै जागा हूँ तो यह भूत जगत मेरे ढिये विषधर हो गया है। शिकारी (गुरु) बाण साधता है। विष का विषम बाण मारता है। सारा ससार जगली पशु है और काढ शिकारी है। जीव विकारों के दावानल मे जल रहा है। अपने को माया-मोह मे जलने से रोको। इस आग में श्वास सहायक है। लोभ भी भयकर है। चारो

और यम की चर्चा है। यम के सेवक चारो ओर घूम रहे हे। हस पक्षी अब कहाँ जायेंगे ? यम सेवक नित्य केश पकड़े है। जब चाहते है तब धरकर खीच लेते है। बधन कठिन है। कोई उपाय नही लगता है। यम ने ऐ अज्ञानी, जब जानते नही तो क्यों कहते हो ? तुम उसे सगुण कहते हो, मै उसे निर्गुण

रमैनी ८ द्वार रोक रखा है। उस डर को सुनकर भी राम नही कहा जा रहा है। विषयो की मृगतृष्णा मे भ्रटक रहे हो। सभी छोग दुख को सुख मान रहे है। मृत्यु-काल की चिता किसी को नही है। अभागे सुख के मूठ को नही पृहचानते है। बिना पहचान के दुखी रहते है। छोग विष (माया) को अमृत कहते है। माया नीम द्वारा उसका रस पीकर प्रसन्न होते,है। लोगो को विष-अमृत के भेद का ज्ञान नहीं है। जो जानते है वही सुखी है। समय रहते सब ठीक कर लो। अमृत छोड़कर विष मत खाओ। जान-अनजान मे जिन्होंने माया-विष का सेवन किया। वे लहर मे पड़ गये। अब दौड़ते है। विष के खाने से क्या फल होता है। यह वेद वाला नही जानता है। जीव आशा मे मुर्छित होकर जलेगा। थीड़ा भी खट्टा बहुत दूध को नष्ट कर डालता है। मनुष्य तिलसुख अर्थात् छोटे से सुख के लिये मेरु पर्वत-सा दुख सहता है। चौरासी छाख योनियो मे भटकता है। सुख अल्प है। दुख अनत है। मन मतवाला हाथी-सा भूला है। दीपक और प्रकाश के समान माया और जीव साथ रहते है। कितु जीव पतग-सा नयन-लोभ के कारण विषयदीपक पर गिरकर नष्ट होता है। छालूच मे पड़कर मानव-जन्म समाप्त करते है। अतकाल का दिन आकर समाप्त हो गया। जब तक यह शरीर है तव तक चेतकर और किसी को मत देखी। जब जीवन की निजी चाल पूरी हो जायगी, प्रयाण का समय आ जायगा त्तब अकाज होगा। तब पछताना होगा। ससार मृगतृष्णा-सा है। मुझे कोई भी विषय अच्छा नही लगता है। अनेक कोशिश करने पर भी कर्म का बधन समाप्त नही होता है। ऐ बुद्धि का भडार मन स्वय विचार करो। कौन बुद्धिमान है, कौन पागल है ? दुख कैसे प्राप्त होता और दुख कैसे जाता है ? कौन हर्ष है ? कौन विष जैसा दुख है ?कौन अहित है? कौन हित है ? असार सार क्या है ? कौन अहित और कौन प्यारा है ? सच्चा-झूठा, कटुमीठा, जलन, आनद, मुक्ति और मल का फदा कौन है ? इस पर विचार करो। ओ मन, मुझे व्यौरेवार कहो। मै तुमसे पूछता हूँ। सशय का कॉटा चुभा है। मुझे समझाओ। ओ जीवात्मा, मैं विचारकर कहता हूँ। तीनो युगो की सारी योनियाँ (जन्म) अधकार से भरी है। मनुष्य-जन्म तभी उत्तम है यदि राम को जान ढूँ। यह बुद्धिमानी है। चेतना नहीं हुई तो जन्म व्यर्थ है। सवेरा होने पर पछताना होगा। भक्ति को सुख का मूल समझो। और जितने दिन है सभी दुख के है। प्रिय राम ही अमृत है। और सभी विष के भडार है। राम मे रमण हर्ष और सभी विषम काम है। निर्वाणों (साधुओं) की सगति सारतत्त्व है। अन्य सभी असार है। सारा ससार अहित है। प्रिय राम ही हित है। सत्य वह है जो स्थिर रहे। नष्ट न हो | जीने-मरनेवाला झूठा है। मीठा वह है जो सहज साधना से प्राप्त होता है। वही क्लिष्ट साधना से कटु हो जाता है। न तो विषयो की आग मे जलो, न मै, मेरा करो। राम की प्रार्थना मे ही आनद है। आल और पर को जानना ही मुक्ति है। वह पद व्यर्थ है। जो भ्रम मे भटकता हो। जग जीवन प्राण नाथ प्यारे राम दुर्लभ है। पुत्र, शरीर, धन बधन है। जीवन पेड़ के पक्षी का बसेरा जैसा है। नाशवान् है। अरे जीव, अपना दुख दूर नहीं

किया। इसी दुख से सारा ससार व्याप्त है। सभी लीग माया-मोह मे भूले है। थोड़े लोभ के लिये माणिक्य जैसा मानव जन्म व्यर्थ गँवा दिया। मै, मेरी करते हुए बहुत नष्ट हुए। माता के उदर मे अनेक जन्मों से सोए। बहुत से रूप वेश किया। जरा, मरण, क्रोध, से शरीर क्षीण हुआ। लोग जन्मते मरते है। योनियो मे भटकते है। किंतु सुख का मूल पाना नही चाहते है। बहुत जा पाते है। किंतु उसे नहीं जो विषयाग्नि की जलन से रक्षा करे। है भाई, जिस हित के लिये जीव को रखना चाहते हो वही अहित होकर नष्ट कर देगा। मोर तोर कर अपार बार जले। ससार मृग तृष्णा के समान झूत है। झूठे. माया मोह मे

८५६ कवीर समग्र रहे। यहाँ क्या हुआ और आगे क्या होगा ? कुछ कुछ चेतो। अभी देखो। मनुष्य जन्म फिर कभी नही मिलेगा। जो प्रिय मूल तत्त्व हे वह चेतने पर ही प्रकाशित होगा। तीन युग से योनियो मे अचेत पड़े हो। मनुष्य जन्म हुआ है। चित मे चेतो। आत्मा मूर्छित होकर जल जायगा। पीछे दुख कहते भी समाप्त न होगा। उस भय को जीवात्मा जान ले तो आज भी जीव सतोप न कर सकता है। ससार सागर का अत नहीं है। इसको पार करने का विचार करो। जिस जल का आदि अत नही जानते है उसका डर क्यो नहीं मानते हो ? ससार सागर के जहाज का खेवेया कौन है, जो तार सके उसे चाहो। विचार कर देखा तो ससार स्वप्न-सा लगा। वुद्धि हुई। ज्ञान से देख अपनी आत्मा मे विचार किया। जो अपने में रहता है उसे नजदीक और दूर कहने की जरूरत नहीं होती है। है भाई, उस तत्त्व को समझो। समझ होने पर उससे मन लगता है। भाव, भक्ति भगवद्यमेम जहाज है। गुरुदेव नाविक है| जव भवजल अल्प समझ में आता है नो ससार-सागर गोपद खुर के फेलाव-सा पार करना आसान हो जाता हे। (दुपदी सम) भया दयाल विषहर जरि जागा, गहगहान प्रेम एहु लागा॥ भया अनंद जीव भये उत्हासा, मिले राम मनि पूगी आसा॥ मास असाट रवि धरनि जरावे, जरत जरत जल आइए बुझावे॥ रुति सुभाइ जिमी सब जागी, अंमृत घार होड्ट झर लागी॥ जिमी भांहि उठी हरियाई, विरहनि पीव मिले जन जाई॥ मनिकां मनि के भये उछाहा, कारनि कौन बिसारी नाहा॥ खेल तुम्हारा मरन भया मोरा, चोरासी लख कीन्हां फेरा॥ सेवग सुत जे होइ अनिआई, गुन औगुन सब तुम्हि समाई॥ अपने औगुन कहूं न पारा, है अभाग जे तुम्ह न संभारा॥ दरबो नहीं कांड तुम्ह नाहा, तुम्ह बिछुरे मैं बहु दुख चाहा | मेघ न दरिखे जांहि उदासा, तऊ न सारंग सागर आसा॥ जलहर भस्पी ताहि नही भावे, के मरि जाह के उहै पियादे ॥ मिलहु राम मनि पुरवहु आसा, तुम्ह बिछुर्थां मे सकल निरासा॥ में रनिरासी जब निध्य पाई, राम नांम जीव जाग्या जाई॥ नलनी के ज्यूं नीर अधारा, जिन बिछुरयां यें रवि प्रजारा॥ रांम विनां जीव दहुत दुख पावे, मन पतंग जगि अधिक जराबै॥ माघ मास रुति कवलि तुसारा, भयी बसंत तब बाग संभारा ॥| अपने रंगि सब कोड राता, मधुकर बासं लेहि मैमंता॥ बन कोकिला नाद गहगहांनां, रुति बसंत सब के मनि मांनां॥ विरहन्य रजनी जुग प्रति भट्टया, बिन पीव मिले कलप टति गहया॥ आतमां घेति समझि जीव जाई, बाजी झूठ राम निधि पाई ॥ भया दयाल निति बाजहि बाजा, सहणे राम नांम मन राजा ॥ जरत जरत जल पाइया, सुख सागर कर मूल। गुर प्रसादि कबीर कहि, भागी संसे सूल ॥ राम नांम निज पाया सारा, अविरधा झूठ सकल संसारा॥ हरि उतंग मै जाति पतंगा, जंबकु केहरि के ज्यूं संगा॥ क्यचिति ढ्ै सुपिने निधि पाई, नहीं सोभा कौ धरो लुकाई॥

रमैनी ८५७ हिरदे न समाइ जांनिये नही पारा, लागे लोभ न और हकारा॥ ; सुमिरत हूँ अपने उनमानां, क्यंचित जोग रांम मे जांनां ॥ मुखां साध का जांनिये असाधा, क्यंधित जोग रांम मैं लाधा॥ कुबिज होइ अंमृत फल बंछया, पहुँचा तब मनि पूरी इंछधां ॥ नियर थे दूरि दूरि यें नियरा, राम चरित न जांनिये जियरा॥ सीत ये अगिन फुनि होई, रबि ये ससि ससि यें रबि सोई।॥ सीत ये अगनि परजरई, जल ये निधि निधि ये थल करई॥ बज्र वै तिण खिण भीतरि होई, तिण यै कुलिस करै फुनि सोई॥ गिरवर छार छार गिरि होई, अबिगति गति जांनें नही कोई ॥ जिहि दुरमति डोल्यो संसारा, परे असूझि बार नहीं पारा॥ हर बिख अमृत एके करि लीन््हां, जिनि चीन सुख तिहकूं हरि दीन्हां॥ सुख दुख जिनि चीन्हां, नही जांनां, ग्रासे काल सोग रुति मांनां ॥ होइ पतंग दीपक मैं परई, झूठे स्वादि लागि जीव जरई॥ कर गहि दीपक परहि जु कूपा, यहु अधिरज हम देखि अनूपा || ग्यांनहीन ओछी मति बाधा, मुखां साध करतूति असाधा॥ दरसन समि कछू साध न होई, गुर समांन पूजिये सिध सोई॥ भेष कहा जे बुधि बिसूधा, बिन परचे जग बूडनि बूठा ॥। जदपि रबि कहिये सुर आही, झूठे रबि लीन्हां सुर चाही॥ कबहूं हुतासन होह जरावै, कबहूं अखंड धार यरिषावे॥ कबहूं सीत काल करि राखा, तिहूं प्रकार बहुत दुख देखा |) ताकूं सेवि मूढ़ सुख पावै, दौरे लाभ कूं मूल गवावै।। अऐछित राज दिने दिन होई, दिवस सिराइ जनम गये खोई॥ मृत काल किनहूं नहीं देखा, माया मोह घन अगम अलेखा॥ झूठे झूठ रहपी उरझ्ाई, साचा अलख जग लख्या न जाई ॥। साथै नियरे झूठे दूरी, बिष कूं कहै सजीवनि मूरी॥ कथ्यो न जाइ नियरे अरु दूरी, सकल अतीत रह्या घट पूरी ॥ जहां देखो तहां राम समांनां, तुम्ह बिन ठौर और नहीं आनां॥ जदपि रह्या सकल घट पूरी, भाव बिनां अभि-अंतरि दूरी॥ लोभ पाप दोऊ जरे निरासा, झूठे झूढि लागि रही आसा॥ जहुवां डै निज प्रगट बजावा, सुख संतोष तहां हम पावा।) नित उठि जस कीन्ह परकासा, पावक रहे जैसे काष्ट निवासा॥| बिनां जुगति कैसे मधिया जाई, काप/्टे पावक रहा समाह॥ कष्टे कष्ट अग्नि परजरई, जारै दार अग्नि समि करई॥ ज्यूं राम कहे ते रामे होई, दुख कलेस घाले सब खोई।॥। जन्म के कलि बिच जांहि बिलाई, भरम करम का कछु न बसाई॥ भरम करम दोऊ बरते लोई, इनका चरित न जांने कोई॥ इन दोऊ संसार भुलावा, इनके लागे ग्यांन गंवावा ॥ है इनकी मरम पै सोई बिचारी, सदा अनंद लै लीन मुरारी॥ ग्यांन द्रिष्टि निज पेखे जोई, इनका चरित जांने ये सोई॥ ज्यूं रजनी रज देखत अंधियारी, उसे भुवंगम बिन उजियारी ॥

 तारे अगिनत ग्ुनहि अपारा, त्तऊज कछू नहीं होत अपारा ॥ झूठ देखि जीव अधिक डराई, बिनां, भुवंगम डसी दुनियांई॥ झूठे झूठ लागि रही आसा, जेठ मास जैसे कुरंग पियासा।॥ इक प्रिषावंत दह दिसि फिर आबे, झूठे छागा नीर न पावे॥ इक त्रिपांत अरु जाह जराई, झूठी आस लागि भरि जाई॥ नीझर नीर जांनि परहरिया, करम के बांधे लालच करिया॥ कहै मोर कछू आहि न बाही, भरम करम दोऊ मति गवाई॥ भरम करम दोऊ मति परहरिया, झूठे नांऊ साथ ले धरिया॥ रजनीं गत भई रपि परकासा, भरम करम धूं केर बिनासा॥ रवि प्रकास तारे गुन खीनां, आधार ब्यीषह्ठार सब भये मलीनां॥ बिष के दाधे बिय नहीं भावै, जरत जरत सुझसागर पावै॥ अनिल घूठ दिन धावे आसा, अंय दुरगंध सहै दुख घ्रासा॥ इक त्रिषादंत दुसरें रबि तपई, दह दिसि ज्याला घहुं दिसि जरई॥ करि सनमुखि जब ग्यांन बिचारी, सनमुखि परिया अगनि मंद्वारी॥ गछत गछत जब आगे आवबा, बित उनमांन दिजुया इक पादा॥ सीतल सरीर तन रह्मा समाई, तहां छाड़ि कत दाझई/ जाई ॥ यूं भन बारूनि भया हमारा, दाधा दुख कलेस संरगरा॥ जरत फिरे चौरासी लेखा, सुख कर मूल किनहैं नही देखा।॥ जाके छाड़े भये अनाया, भूलि परे नही पाब पंथा॥ अछे अभि-अंतरि नियर दूरी, बिन दीन्द्रां क्यूं पाइये मूरी॥ जा बिन हँस बहुत दुख पावा, जरत जरत गुरि रॉम मिलाबा ॥ मिल्या राम रहा सहजि समाई, खिन बिछुरथां जीव उरझै जाई।। जा मिलियां ते कीजै बधाई, परमांनंद रेनि दिन गाई॥ सखी सहेली लीन्ह बुलाई, रुति परमानंद भेटिये जाई।॥ सखी सहेली करहि अनंदू, हित करि भेटे परमानंदू॥ चली सखी जहुँवां निज रांमां, भये उछाह छाड़े सब कांमां॥ जांनूं कि मोरे सरस बसंता, में बलि जांऊ तोरि भगमंता॥ भगति हेत गावे लैलीनां, ज्यूं बत नाद कोकिला कीडां।। बाजै संख सबद धृनि बेनां, तन मन चित हरि गोनिंद छीनां॥ चल अचल पांइन पंगुरनी, मघुकरि म्यूं लेहि अपरनी॥ सावज सीह रहे सब मांची, चंद अरु सूर रहे रद खांधी) गण गंप्रप मुनि जोदें देवा, आरति करि करि बिनदें सेबा।। बाति गयंद्र ब्रह्मा करें आसा, हंम क्यूं चित दुर्लभ राम दासा॥ भगति हेत राम गुन गांबें, सुर सर मुनि हुरठभ पद पांगे॥ पुनिम बिमल ससि मास बसंता, दरसन जोति मिले भगवंता ॥ चंदन बिलनी दिरहति धारा, यूं पूजिये प्रांनपति राम पियारा॥ भाव भगति पूजा अरु पाती, आतमरांम मिले बहु भांती।॥ राम राम राम रुचि मांगे, सदा अनंद रांम सयो जानें॥ पाया सुख सागर कर मूला, सो सुख नहीं कहूं सम तूला।

रमैनी ८५5 समाधि सुख भया हमारा, मिल्या न बेगर होह। लिहि लाधा सो जांनि है, राम कबीरा और न जानि कोइ॥ ४॥ शब्दार्थ-भया 5 हुआ। दयाल 5 दया। जरि > जड़ी। गहगहान - घना। घनघोर आनददायक। उल्हासा 5 उल्लास। मनि 5 मन मे। पूगी - पूर्ण हुई। आसा 5 आशा। 308 नल ऋतु। सुभाइ 5 स्वभाव। जिमी 5 जमीन। मनिका मनि 5 मन का मन मे। उछाहा 5 उत्साह। नाहा 5 नाथ। बिसारी ८ भूल गये। सेवग 5 सेवक। अनिआई < अन्यायी। औगुन अवगुण | दरबो > द्रवना। काइ 5 क्यो) सारग 5 चातक पक्षी। जलहर 5 जलूधर। तालाब | नहनी ,+ कमलिनी। प्रजारा > जलाया। कव्लि - कमछ। तुसारा # तुषार। पाढा। राता + अनुरक्त | मधुकर - भ्रमर। मैमता 5 मतवाला। भइया < हुआ। प्रति - जैसा। टलि गइया बीत गया। कलछप 5 कल्प। बाजी > खेल। अबिरथा 5 वृथा। उतग 5 ऊपर। जबुक सियार। केहरि 5 सिह। हकारा 5 अहकार।| लाधा 5 रुब्ध| कुबिज 5 कब्ज। बछया 5 वाछित। परजरई - प्रज्वलित। तिण 5 तृण। खिण + कण। कुलिस 5 वज़ | फुनि 5 पुन । ग्रासे कौर। सोग 5 शोक। असाधा 5 असाध्य। साधा 5 साध्य। निधि > समुद्र । साध साधु। असाधा 5 असाधु। विसूधा 5 विशुद्ध। दार 5 दारु। लकड़ी | कष्ट ८ काठ। रज 5 रजोगुण। कुरग 5 हिरण। ब्िषावत 5 प्यासा। दह 5 दश। नीझर निर्झर। खीनां 5 क्षीण। गछत - चलते हुए। ढिबुवा 5 पैसा। बित > वित्त। बेना 5 वेणु। अरघनी 5 सुगध। सावज चर हा | बिलनी > एक प्रकार की भ्रमरी। हुतासन 5 आग। अछित - इच्छित। अर्थ-भगवान की कृपा से विष उतारने वाली जड़ी का जागरण हो गया। कुडलिनी जाग्रत हो गयी। यह सर्पिणी जो जड़ (मूलाधार) मे रहती थी जग गयी है। अब भगवपस्मेम का घोर आनद छा गया है। जीव में उल्लास है। राम मिलन से मन की आशा पूरी हुई। जैसे अषाढ़ मास मे धरती जलती है और जलछते-जलते जल बरसकर जलन को बुझा. जाता है, उसी प्रकार वियोग का दुख प्रभु-मिलन से दूर हो जाता है। ऋतु स्वभाव से धरती जागी है। क्योकि अमृत वर्षा की झड़ी लग गई है। धरती हरी हो गयी। विरहिन अपने प्रिय जन से मिल गयी। मन का उत्साह मन मे हुआ | हे प्रिय पता नही तुम मुझे किस कारण से भूले हो। तुम्हारा तो खेल है और मेरे लिये मृत्यु है। मै चौरासी छाख योनियो मे चक्कर लगा रहा हूँ। सेवक और पुत्र जो अन्यायी होते है उनके गुण-अवगुण सब तुममे ही समाए रहते है। मै अपने अवगुणों को कहने में पार नही पा सकता हूँ। तुम न सम्हालो तो मेरा अभाग्य है। हे नाथ, तुम द्रवित क्यो नहीं होते हो ? तुमसे अलग होकर मै बहुत दुखी हूँ। मेघ बरसता नही, उदास चला जाता है। तब भी चातक पक्षी समुद्र की आशा नहीं करता है। भरा तालाब भी उसे अच्छा नही लगता है। या तो मरता है या स्वाति नक्षत्र का जल ही पीता है। मै निराश हूँ। अब भगवद्प्रेम निधि पा गया। राम नाम ही जीव के जागरण का आधार है। जैसे कमलिनी का आधार पानी है। अहूग होते ही सूर्य उसे जला देता है, वैसे ही राम बिना जीव बहुत दुख पाता है। ससार मे मन-पतग अधिक जलता है। माघ मास मे कमल पर

पाले का प्रभाव पड़ता है। बसत मे बाग सम्हल जाते है। सभी अपने रग मे रँगे है। मतवाले भ्रमर सर्वत्र गध लेते है। वन मे कोकिल की आवाज गूँजती है। ऋतु बसत सबको अच्छी लगती है। बिरहिन के लिये रात युग के समान हो गयी है। बिना प्रिय के मिले कल्प बीत गया। ऐ आत्मा, समझो। राम निधि को पाकर सासारिक खेल झूठा लगता है। दयाढ की दया हुई। नित्य बाजा बज रहा है। अनाहत नाद हो रहा है। मन सहज ही राम नाम मे लग गया है| ससार के विषयो मे जलते-जलते सुख सागर का मूल ईश्वर मे कप, सु मूल ईश्वर मे जल पाया। गुरु कृपा से

८६० कबीर समग्र राम नाम का मूल तत्त्व के रूप मे प्राप्त किया। ससार व्यर्थ और झूठा है। हरि उतग (ऊपर) है। आकाश-सा है। मै उसमे घूमनेवाला पतग की तरह हूँ। हरि सिह और मै सियार हूँ। स्वप्न मे जिस निधि को पाया है उस शोभा को छिपाया नहीं जा सकता है। सारा व्यक्तित उससे प्रभावित है। वह तत्त्वहदय मे समा नही सकता। उसका पार पाना कठिन है। इसमे लोभ और अहकार का वश नही चलता है। स्मरण करने से उन्मनी अवस्था प्राप्त होती है। कुछ योग द्वारा राम को जाना जा सकता है। असाध्य की साधना मुख से नही हो सकती है। कुछ योग से राम की प्राप्ति होती है। उस वाछित अमृत-फल की प्राप्ति से कब्ज होता है। भाषण का कब्ज। उसके पास पहुँचने एर मन की इच्छा पूरी होती है। जो नजदीक रहकर भी दूर और दूर रहकर भी नजदीक है। उस रामचरित को मन से जानना चाहिए। पानी से आग होती है। सूर्य से चद्रमा और चद्रमा से सूर्य होता है। पानी से आग जलती है। जल से समुद्र और समुद्र से जल होता है। उसी से स्थल होता है। (वेदात में पृथ्वी जल से निकली है)। वज् से तृण कण के भीतर रहता है। तृण से पुन वज्र होता है। पहाड़ को क्षार, क्षार को पहाड़ करता है। अविगत की गति कोई नही जान सकता है। दुर्मति ससार मे डोलते है। उन्हे वारपार नही सूझना है। वह विष और अमृत को एक करता है। जिन्होंने उसे पहचाना ईश्वर उन्हे सुख देता है। जिन्होने इस सुख-दुख को नही पहचाना। वे काठग्रसित एवं शोकयुक्त होते है। वे पतग होकर कालदीपक पर गिरकर नष्ट हो जाते है। जीव झूठे स्वाद के लिये जलता है। हाथ में दीपक रखकर भी ये कुएँ मे गिरते है। हमने यह विचित्र आश्चर्य देखा है। ज्ञानीन को ओछी दुद्धि वाधक है। उसकं मुख मे साधुता और कर्म असाधुता का है। देखने मात्र से कोई साधु नहीं होता है। जो गुरु के समान हो उसी सिद्ध की पूजा करनी चाहिए। जिसकी बुद्धि विशुद्ध है उसके लिये वेश महत्त्वहीन हैं। बिना भगवान् से परिचय के ससार मे केवल डूबना ही डूबना है। यद्यपि सूर्य को देवता कहा जाता है। कितु उन्हे देवता झूठ ही कहा जाता है। कभी वह आग बन जाता है। कभी अखड वर्षा करता है। कभी जाड़ा करके तीनो प्रकार दुख ही देता है। इसकी सेवा से मूर्ख को ही सुख प्राप्त होता है। दौड़कर लाभ क्या मूल भी नष्ट हो जाता है। इच्छित कार्य दिन दिन मे ही होता है। फिर तो दिन डूबता है। जीवन समाप्त हो जाता है। मरते समय माया, मोह, अगम धन का छेखा किसी ने नही देखा है। झूठ से झूठ जुड़ा है। सत्य तो अलक्ष्य है। यह ससार मे देखा नहीं जा सकता है। सत्य नजदीक है। झूठ दूर है। विषय-विष को सजीवनी कहा जाता है। नजदीक और दूर कुछ नही कहा जा सकता है। सबसे अतीत प्रभु शरीर के भीतर बैठा है (ईश्वर सर्वभूताना हद्देशे अर्जुन तिथ्ठति-गी०)। जहाँ ,देखता हूँ। राम समान देखता हूँ (सिया राममय सब जंग जानी-तुलसी) | हे प्रभु, तुम्हेरे बिना कही आधार नही है। सहारा नही है। यद्यपि प्रभु सभी शरीर में है। कितु भाव (भक्ति) के बिना भीतर मे भी वह दूर है। लोभ पाप दोनो ही निराशा मे जलाते है। लोगो को झूठी-झूठी आशा लगी है।

जहाँ स्वय प्रगट होकर बजाता है। वही सुखसतोष की प्राप्ति होती है। नित्य उठकर जिस प्रकार प्रकाश करते है। आग जछती है और काठ का नाश होता है। विषयाग्नि मे जीव नष्ट हो रहा है। काष्ठ मे आग है। हृदय में भगवान है। कितु बिना मथे (साधना) न आग पैदा होगी। न भगवान प्राप्त होगे। काठ मे काठ घिसने से आग जलती है। जैसे छकड़ी आग बन जाती है वैसे ही साधक साधना से भगवान बन जाता है। राम कहने से राम बनता है। उसके सारे दुख दूर हो जाते है। जन्म के कलि-विष दूर हो जाते है। कर्म के भ्रम का कुछ भी वश नही चल्ता"है। छोग भ्रम कर्म दोनो चलाते है। इनके चरित्र को कोई नही जानता है। इन दोनो ने ससार को भुठा रखा है। इनके कारण ज्ञान नष्ट ! है। इनके मर्म का विचार वही कर सकता है जो मुरारी मे लीन और सदानदित है। जो ज्ञान

रमैनी ८६१ रे से देखता है, इनका चरित्र वही जान सकता है। जैसे रात के रजोगुण मे अधकार और ढ़ जाता है। बिना प्रकाश के सॉप डैंस लेता है। अनगिनत तारे है। गिनना कठिन। तो भी कुछ आधार नहीं बनता है। झूठ देखकर जीव धिक डरता है। बिना सर्प के सारे ससार को काट रहा हैं। जैसे जेठ मे हिरण झूठी आशा में ग़से मर जाते है वही स्थिति ससारी की है। प्यासा दशो दिशाओं मे दौड़ता है। कितु कही तोष-जल प्राप्त नही हुआ। निर्झर नीर को छोड़ो। ससार जल को छोड़ों। कर्मवश लोग लालच रे है। कहते मेरा कुछ यह-वह नही है। भ्रम कर्म ने मति नष्ट कर दी है। व - भ्रम कर्म बुद्धि को छोड़ो। यह झूठे को सच्चा नाम रखता है। रात बीती। सूर्य उगा। भ्रम र्म का नाश हो गया। ज्ञान हो गया। सूर्योदय से तारो (विषयों) के प्रकाश क्षीण हो गये। ग्रे सासारिक आचार-व्यवहार व्यर्थ छगने लगे है| विषय विष से जलो को विषय विष अच्छे हही लगते है। जल्ते-जलते सुख-सागर की प्राप्ति हो जाती है। आशा की झूठी आशा मे दौड़ता | अधी दुर्गंध का दुख त्रास सहते है। एक प्यासा दूसरे सूर्य का ताप, दशों दिशाओं में ज्वालामुखी जलती है। विचार का सामने कर ज्ञान करने पर आग सामने आती है। चढलतेचलते जब आगे आये तब वित्त के अनुमान मे एक पैसा पाया। शीतलुता शरीर मे समाए रही। यहाँ छोड़कर और कहॉ जला सकती है ? मेरा मन वारुणि से मतवाला है। ससार के दुख से दुखी है। चौरासी प्रकार से जलते फिरे। कितु कही सुख का मूल नही मिला। भीतर रहकर भी प्रभु दूर है। बिना परिचय के उस मूल की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? जिसके बिना जीवात्मा बहुत दुखी होता है। साधना करते-करते गुरुदेव राम से मिला देते है। राम के मिलने से सहज में समाहित हो गये। क्षण के लिये अठगाव भी उलझन बन जाता है। जिससे मिलकर तुम आनद करते हो उस परमानद को रात-दिन गाइए। सखी-सहेली (साधक) को बुला लिया। परमानद को भेटना है। सभी साधक आनद करते है। साधक सखी राम के पास चली। सब काम छोड़कर उत्साह हुआ। मै सरस बसत को क्या जानूँ ? हे भगवान मै तुम्हारे पर बलि जाता हूँ। प्रेम-भक्ति मे लवलीन होकर गाता है। जैसे वन-कोकिल आवाज करता हो। शख-ध्वनि और वेणु बजते हैं। तन, मन, चित्त हरि ने ले लिया है। चचलता अचल, पॉव, पगु हो गये। जैसे भ्रमरी गध हेने के लिये स्थिर हो जाती है। वन-पशु एवं सिह सब एक मच पर है। चद्रमा और सूर्य दोनो ही रथ खीच रहे है। गधर्व, मुनि, देवता आशा देखते है। आरती करके प्रार्थना करते है। उसकी गध की आशा गजेद्र एव ब्रह्मा करते है। हमारे चित्त मे दुर्लभ राम दास का भाव है। भक्ति के लिये राम गुण गाते है। सुर, नर, मुनि-दुर्लभ पद प्राप्त करते है। जैसे बसत मास की पूर्णिमा विमल होती है। उसी प्रकार ज्योति रूप में भगवान् के रूप का दर्शन मिलता है। जैसे भ्रमरी चदन मे घर बनाती है उसी प्रकार प्यारे प्राणणति राम की पूजा करनी चाहिए। भाव, भक्ति, पूजा, पाती सब आत्मराम के बहुविध खेल है। जो राम भजने मे आनद मानते है। राम-प्रेम मे सदा प्रसन्न रहते है। सुख का मूल पा गये। यह अतुलनी सुख

है। हमारा सुख समाधि सुख है। कोई अलग नही मिला। राम को जिसने लब्ध किया है वही जान सकता है और कोई नही जान सकता है। (६८) णी (अष्टपदी रमैंणी) केऊ केऊ तीरथ ब्रत लपटांनां, केऊ केऊ केबल रांम निज जांनां॥ अजरा अमर एक अस्थांनां, ताका मरम काहू दिरले जांना॥ अवरन जोति सकल उजियारा, द्रिष्टि समांन दास निस्तारा॥

८६२ कबीर समग्र जे नहीं उपज्या धरनि सरीरा, ताके पिन सीच्या नीरा॥ जा नही लागे सूरजि के बांनां, सो मोहि आंनि देहु को दांनां॥ जब नही होते पवन नही पानी, जब नही होती सिष्टि उपांनी ॥ जब नहीं होते प्यंड न बासा, तब नही होते घरनि अकासा॥ जब नही होते गरभ न मूला, तब नही होते कली न फूला॥ जब नही होते सबद न स्वार्द, तब नही होते ब्यिा न बाद ॥ जब नही होते गुरू न चेला, गम अगमें पंथ अकेला ॥ अबगति की गति कया कहूँ, जस कर गांव न नांव। गुन बिहूंन का पेखिये, काकर धरिये नांव॥ आदम आदि सुधि नही पाई, मां मां हवा कहां थे आई॥ जब नही होते राम खुदाई, साखा मूल आदि नही भाई ॥ जब नही होते तुरक न हिंदू, माका उदर पिता का ब्यंदू॥ जब नहीं होते गाई कसाई, तब बिसमला किनि फुरमाई॥ भूले फिरे दीन दे धांवे, ता साहिब का पंथ न पावे॥ संजोगे करि गुंण धरया, बिजौगें गुंण जाइ। जिभ्या स्वारवि आपणै, कीजै बहुत उपाह॥ जिनि कलमां कलि मांहि पढावा, कुदरति खोजि तिन्हूं नहीं पावा॥ कर्म करीम भये कर्तूता, वेद कुरान भये दोऊ रीता॥ कृतम सोजु गरभ अवतरिया, कृतम सो जु नाव जस धरिया॥ कृतम सुनित्य और जनेऊ, हिंदू तुरक न जाने भेऊ॥ मन मुसले की जुगति न जांनै, मति भूले दे दीन बखांनें॥ पांणी पवन संजोग करि, कीया है उतपाति | सुनि मै सदद समाइगा, तब कासनि कहिये जाति॥ तुरकी धरम बहुत हम खोजा, बहु बजगार करे ए योधा॥ गाफिल गरब करे अधिकाई, स्वार्थ अरधि बच्चे ए गाई॥ जाकी दूध धाई करि पीजै, ता माता की बध क्यूं कीजै || लहरे थक दुहि पीया खीरो, ताका अहमक भकी सरीरो॥ बेअकली अकलि न जानही, भूले फिरे ए लोइ। दिल दरिया दीदार बिन, भिस्त कहां ये होड़ ॥ पंडित भूले पढ़ि गुन्य बेदा, आप न पांबे नांनां भेदा ॥ संश्या तरपन अरु घट करमां, लागि रहे इनके आशरमां॥ गायत्री जुग चारि पढ़ाई, पूछो जाह झुमति किनि पाई॥ सब मै राम रहे ल्यो सीछ!, इन ये और कही को नीचा॥ अति गुन गरब करे अधिकाई, अधिके गरबि न होह भलाई॥ जाकी ठाकुर गरब प्रहारी, सो क्यूं सकई गरब सहारी ॥ कुल अभिमांन दिद्ार तजि, खोजो पद निरबांन॥ अंकुर बीजे नसाइगा, तब मिल बिदेही धांन॥ सन्नी करे खत्रिया धरमो, तिनकूं होय सवाया करमो | जीवहि मारि जीव प्रतिपरे, देखत जनम आपनी हारे ।॥ पंच सुभाव जु मेंटे काया, सब तजि करम भर्ज रांम राया॥

रमैनी ८६३ खत्री सों जु कुदुंब सूं सूचे, पंचूं मेटि एक कं चूत ॥ जो आवध गुर ग्यांन लखावा, गहि करवाल धूप धरि धावा॥ हेला करे निसांने घाऊ, झूझ परे तहां मनमथ राऊ॥ मनमथ मरे ने जीवई, जीवण मरण न होइ। सुनि सनेही रांम बिन, गये अपनपी खोड़॥ अरु भूले षद दरसन भाई, पाखंड भेस रहे लपटाई॥ जैन योध अरु साकत सैंनां, चारबाक चतुरंग बिहँनां |) जैंन जीव की सुधि न जांने, पाती तोरि देहरे आंने॥ दोनां मबरा चंपक फूला, तामे जीव बसें कर तूला॥ अरु प्रिथमी का रोम उपारें, देखत जीव कोटि संघारे॥ मनमथ करम करे असरारा, कलपत बिद धसे तिहि द्वारा॥ ताकी हत्या होइ अदभूता, षट दरसन मै जैन बियूता ॥ । ग्यान अमर पद बाहिरा, नेड़ा ही ते दूरि। जिनि जान्यां तिनि निकटि है, रांम रह्मा सकल भरपूरि।) आपन करता भये कुलाला, बहु बिधि सिष्टि रची दर हाला॥ बिधनां कुंभ किये दे थांनां, प्रतिबिबता मांहि समांनां ॥ बहुत जतन करि बांनक बांना, सौज मिलाय जीव तहां ढांनां॥ जठर अगनि दी कीं परजाली, ता मैं आप करे प्रतिपाली॥ भीतर ये जब बाहिर आवा, सिव सकती दे नांव घरावा॥ भूले भरमि परे जिनि कोई, हिंदू तुरक झूठ कुल दोई॥ घर का सुत जे होइ अयांनां, ताके संगि क्यूं जाइ सबांनां ॥ साची बात कहै जे बासूं सो फिरि कहे दिवानां तासूँ॥ गोप भिन है एके दूधा, कासूं कहिये बाम्हन सूदा | जिनि यहु घित्र बनाइया, सो साथा सुतघार। कहे कबीर ते जन भले, जे चित्रवत लेहि विचार ॥५॥ शब्दार्थ-केऊ + कोई। निस्तारा 5 कल्याण। बाना & बाण जैसी किरणे। को & कोई। उपानी 5 उत्पन्त। प्यड # पिड। शरीर। कछी न फूछा € गर्भ कमह। बाद 5 सिद्धात। विवाद| गम # गमग्य। मा 5 मै। थे > से। ब्यदू 5 वीर्य। फुरमाई ७ फरमाना। दीन « 9 धर्म। २ गरीब। रीता 5 खाली। कृतम 5 कर्तता। सुनि 5 शून्य । बजगर > दुष्ट । गाफिल > गफ़लत। असावधानी। अहमक > मूर्ख्व। भके > भक्षण करना। दीदार 5 दर्शन। भिस्त « स्वर्ग। थक 5 से। लहुरे 5 बचपन। आशरमा 5 आश्रम मे। गरब > गर्व। सहारी सहना। बिदेही + देहरहित। आबध > अवधि। करवाल < तलवार। हेला + खिलवाड़। निसानै « इका। धाऊ 5 घाता। चोट। मनमथ > कामदेव। राऊ 5 राजा। पाखड > विधर्मी। वेद विरोधी। देहुरै > मदिर। दोना > एक प्रकार का पौधा। इसकी पत्तियो मे तेज गध होती है। हि? अल कर हम असरार & हठ। बिगूता - नष्ट हुआ। कुलाला > ब्रह्मा। दरहाला + भीतर। गोप - गोपष्य। छिपा हुआ। सुतधार « सूत्रधार - युद्ध नल वीवाना ; है हुआ। सुतधार सूत्रधार। झूझ मु] सीज - सामान।| जर्प-कोई-कोई तीर्थ व्रत मे लिपटे है। कोई-कोई केवल अपने राम को जानते है। एक स्थान अजर अमर है। उसके मर्म को कोई विरछा ही जानता है। वह अवर्ण है। 22% प्रकाश सर्वत्र फैल है। उसकी समता दृष्टि से दास (भक्त) का निस्तार (कल्याण) होता है। जिसका

८६४ कबीर समग्र शरीर धरती पर ऐदा नहीं हुआ, उसका रास्ता पानी से सिचित नही है। उसे सूर्य किरणो के बाण नही लगते है। उसे मुझे दान मे लाकर दो। जब ससार शून्य था, सृष्टि नही हुई थी, हवा, पानी, नहीं थे, शरीर नहीं था, गध, धरती, आकाश, गर्भमूछ, गर्भकमल भी नहीं थे, शब्द, स्वाद, विद्या, विवाद नही थे, गुरु शिष्य नही थे, गम्य, अगम्य का अकेला ग़स्ता धा। अवगति की चाल को क्या कहे ? जिसका कोई गाँव, नाम नहीं है, उस निर्गुण को केसे देखा जाय? उसका नाम कैसे रखा जाय ? आदम आदि ने भी उसकी सुधि नही पाई है। फिर मै मैं की हवा कहाँ से आई ? अथवा मैं का हीआ कहाँ से आया ? जब राम ओर खुदा भी नहीं थे, शाखा और मूल भी नहीं थे, हिंदू, तुर्क (मुसलमान) भी नहीं थे, माँ का उदर ओर पिता का वीर्य नही थे, न गाय थी, न कसाई थे, तब किसने विस्मिल्छा का स्फुरण किया ? लोग धर्म मे भटक रहे है। उस मूठ साहब (परमात्मा) का रास्ता नही पाते है। सयोग मे गुण है। वियोग में गुण नष्ट हो जाता है। जीभ के स्वादवश लोग अनेक उपाय करते है। कलियुग मे जिसने कलमा पढ़ाया, परमात्मा को उन्होने भी खोज नही'पाया। करीम के कर्म ही कर्त्ता बन गये। वेद-कुरान दोनो रिक्त हो गये। समझ न सके। वही कर्ता गर्भ मे अवतरित हुआ। उसी ने नाम धारण किया। वह निन्‍्य है। वही जनेऊ है या उसी ने जना है। पैदा किया है। हिंदू मुसलमान कोई उसके भेद को नहीं जानता है। मन मे रहनेवाले सपूर्ण का तत्त्व नही जानता। भूलकर दो धर्मो की बात करता है। उसी परमात्मा ने पानी और हवा के सयोग से सद बनाया है। जब शब्द शून्य व्रह्म मे समा जायगा तब जाति की बात किससे कही जायगी। हमने मुसलमान धर्म मे बहुत खोजा। कितु दुष्‌ का बोध न हो सका। असावधानीवश बहुत अहकार करता है। स्वार्थथश गाय का वध करता है। जिसका दूध दोड़कर या धाई मानकर पीते हे उस माता की हत्या कैसे की जा सकती है। दचपन से ही दूध पिया। मूर्ख उसके शरीर का भक्षण करता है। बेअक्ल अक्ल नही जानते। लोग भूल मे घूमते है। दिल की गहराई मे दृष्टि के बिना स्वर्ग की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? पडित वेद पढ़कर भूले है। नाना भेद मे स्वय को नही पा रहे है। सध्या, तर्पण और पढकर्म आदि इनके आश्रम मे ठंगे है (पट्कर्म-स्नान, सध्या, पूजा, तर्पण, जप, होम या यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह)। चारो युग मे गायत्री पढ़ाई। पूछो कि फिर भी कुमति क्यो मिली ? सबमे राम ध्यान मे है। फिर इनसे कोई नीच नही है। गुण के अधिक गर्व के कारण ही इनसे कोई भला नही हो रहा है। जो परमात्मा कि गर्वहता है वह गर्व का सहारा कैसे हो सकता है ? कूछ का अहकार छोड़कर निर्वाणणद की खोज करो। जब भवचक्र का बीजाकुर नष्ट होगा तब विदेह स्थान मिलेगा। खत्री (क्षत्रिय) खत्री धर्म करता है। उनका कर्म सवाया होता है। जीव को मारकर जीव का पालन करता है। देखते-देखते अपने जन्म का नाश करता है। पच स्वभाव (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद) को शरीर से समाप्त कर दे तब कर्म तजकर राजा राम के बनोगे। खत्री वह है जो काम, क्रोधादि

कूटुव से लड़ता है। पाँचो को समाप्त कर केवल परमात्मा को समझता है। जो समयावधि मे गुरु ज्ञन को लक्ष्य करता है। तलवार पकड़कर बाह्य ज्ञान को समाप्त कर देता है। खेल खेल मे डके पर चोट मारता है। कामदेव से युद्ध करता है।

रमैनी ८६५ कामदेव न भरता है, न जीता है। उसका जीवन-मरण नही होता है। राम से प्रेम किये आह्मतत्व समाप्त हो जाता है। सा घट्दर्शन और पाषड वेश मे लिपटे है। जैन, बौद्ध और शाक्त, चार्वाक ये सेना रहित है। इनके पास कामदेव से लड़ने की सैना नहीं है। जैन जीव के बारे में कुछ नही जानता है| प्ती तोड़कर घर छाता है। फूलों के अनेक प्रकार छाता है। इन फूलो मे भी जीव का निवास है। इन्हे जीव के समान ही मानो। शरीर का रोम उखाड़ता है। देखते हुए करोड़ो जीवो का नाश करता है। कामदेव को हठपूर्वक रोकता है। वीर्य को कठिनाई से गिरने देता है| यह उत्के द्वारा की गयी अद्भुत हत्या है। जैन भी षट्दर्शन (योगी, जगम, सेवड़ा, सन्यासी, दखेश, ब्राह्मण) मे नध् हो रहा है| अमरपद ज्ञान से बाहर है। नजदीक से दूर है। जिसने जाना उसके निकट है। सबमे राम भरे है। कर्ता परमात्मा स्वय ब्रह्मा बने। उन्होंने अनेक प्रकार की सृध्टि रची है। विधाता ने दिम्ब-प्रतिबिम्ब दो स्थान बनाए है। ब्रह्म बिम्ब और जीव या जगत उसका प्रतिबिम्ब है। बहुत यल करके वेश बनाया। सामान इकट्ठा कर मनुष्य ने स्थान बनाया। जठराग्नि में जला। उसी मे अपना पालन करता है। उदर के भीतर से जब बाहर आता है तब शिव और भक्ति नाम होता है। कोई भ्रम मे न रहे, हिंदू-मुसलमान दो कुछ नहीं है। घर का पुत्र अज्ञानी हो तो उसके साथ कोई बुद्धिमान क्यो जायगा ? अगर उससे कोई सच्ची बात कहता है तो उसे दीवाना (पागल) कहा जाता है। ग्वो अलग-अलग है कितु सबका दूध एक ही है। इसी से ब्राह्मण और शूद्र मे भेद नही है। प जिसने यह जगत-चित्र बनाया है वह सच्चा सूत्रधार,हैं। कबीरदास कहते है कि वे लोग भहे है जो ससार*को चित्र जैसा मानते है ५॥ हे (२९) 3233 रमैणी) पहली मन मै सुझ्दि सोई, ता सम तुलि अबर नही कोई ॥ कोई न पूजै ह्यम प्रांनां, आदि अंति वो किनहूं न जांनां॥ रूप सरझुए न आबे बोला, हरू गरू कछू जाइ न तोला॥ भूख-< त्रिया धूप नहीं छांही, सुख दुख रहित रहै सब मांही ॥ “अबिगत अपरंपार ब्रह्म, ग्यांन रूप सद ठांम | बहु बिथार करि देखिया, कोई न सारिख रांम॥ जो व्िभुवन पति ओहै ऐसा, ताका रूप कही धो कैसा ॥ सेवग जन सेवा के त्तांई, रहुत भांति करि संबि गुर्साई॥ तैसी सेवा चाही छाई, जा सेवा बिन रह्या न जाई॥ सेव करंतां जो दुख भाई, सो दुख सुख बरि गिनहुं सबाई॥ सेव करंतां सो सुद्ध पावा, तिन्‍्य सुख दुख दोऊ बिसरावा॥ सेवग सेव भुलांनियां, पंथ कुपंच न जाच। सेवक सो सेवा करै, जिहि सेवा भल मांन ॥ जिहि जग की तस की तस के ही, आप आप आधिहै एही। कोई न लखई वाका भेऊ, भेऊ होइ तो पावै भेऊ। बानें न दांहिने आगे है पीछू, अरध न उरघ रूए नहीं कीछू॥ माय न दाप आब नहीं जादा, ना यह जण्यां न को रहि जाया। दो है तैसा दोही जाने, ओही आह आहि नहीं आने ॥ ह

नेनां बैन अगोचरी, श्रवनां करनी सार। बोलन के सुख कारने, कहिये सिरजनहार॥ सिरजनहार नांउ घूं तेरा, भीसागर तिरिबे कं भेरा॥ जे यहु भेरा राम न करता, तो आप आप आबंटि जग मरता॥ रांम गुसांईं मिहर जु कीन्हां, भेरा साजि संत की दीन्हां ॥ दुख खंडण मही मंडणां, भगति घुकति विश्राम । विधि करि भेरा साजिया, धरया रांम का नांम ॥ जिनि यहु भेरा दिढ़ करि गहिया, गये पार तिन्ीं सुख लहिया॥ दुमनां द्ै जिनि चित्त डुलावा, कर छिटके ये थाह न पावा ॥ इक डूबे अरु रहे उरवारा, ते जगि जरे न राखणहारा ॥ राखन की कछु जुगति न कीन्ही, राखणहार न पाया चीन्ही॥ जिनि चीन्हां ते निर्मल अंगा, जे अचीन्ह ते भये पतंगा॥ रांम नांम ल्यो लाइ करि, चित चेतनि ह्वै जागि। कहे कबीर ते ऊबरे, जे रहे राम ल्यो लागि॥ अरचित अबिगत है निरघारा, जांण्यां जाइ न वार न पारा ॥ लोक बेद ये अछै नियारा, छाड़ि रह्मी सबही संसारा॥ जसकर गांउ न ठांउ न खेरा, कैसे गुन बरनूं मैं तेरा॥ नहीं तहां रूप रेख गुन बांनां, ऐसा साहिब है अकुलांनां॥ नही सो ज्वांन न बिरध नही बारा, आप आप आपनपी तारा॥ कहै कबीर बिधारि करि, जिनि को लावे भंग। सेवी तन मन लाइ करि, राम रह्मा सरबंग || नही सो दूरि नहीं सो नियरा, नहीं सो तात नही सो सियरा॥ पुरिष न नारि करे नही क्रीरा, घांम न घांम न च्यापै पीरा॥ नदी न नाव घरनि नही धीरा, नहीं सो कांच नहीं सो हीरा ॥ कहे कबीर बिचारि करि, तासूं लावो हेत। बरन बिबरजत है रहा, नां सो स्यांम न सेत ॥ नाँ वो बारा ब्याह बराता, पीत पितंबर स्यांम न राता॥ तीरथ ब्रत न आवबे जाता, मन नहीं मोनि बचन नही बाता।। नाद न बिद गरय नही गाया, पवन न पांणी संग न सावा॥ कहै कबीर बिचारि करि, ताके हाथि न नाहि। सो साहिब किनि सेविये, जाके धूप न छांह ॥ ता साहिब के लागी साथा, दुख सुख मेटि रहो अनाथा॥ नां जसरव घरि औतरि आवा, नां लंका का राव संताबा॥ देव कूख न औतरि आवा, नां जसबै ले गोद खिलावा॥ ना वो ग्वालन के संग फिरिया, गोबरधन ले न कर घरिया ॥| बांवन होय नहीं बलि छलिया, घरनी बेद लेन उधरिया ॥ गंडक सालिगरांम न कोला, मछ कछ ड्ै जलहि न डोला॥ बट्री बैस्य ध्यांन नही लावा, परसरांम डै खत्री न संतावा ॥ द्वारामती सरीर न छाड़ा, जगननाथ हे प्यंड न गाड़ा ॥ कहै कबीर बिचारि करि, ये ऊले ब्योहार।

रमैनी हे ८६७ याही ये जे अगम है, सो बरति रह्या संसारि॥ नां तिस सबद न स्वाद न सोहा, नां तिहि मात पिता नही मोहा ॥ नां तिहि सास ससुर नही सारा, नां तिहि रोज न रोवनहारा ॥ नां तिहि सूतिग पातिग जातिग, नां तिहि माइ न देव कथा पिक॥ नां तिहि ब्रिध बधावा बाजै, नां तिहि गीत नाद नही साजै ॥ नां तिहि जाति पांत्य कुल लीका, नां तिहि छोति पविन्न नही सीचा ॥ कहै कबीर दिचारि करि, वो है पद निरबांन। सति ले मन मे राखिये, जहां न दूजी आंन॥ नां सो आवे नां सो जाई, ताके बंध पिता नही माई ॥ चार बियार कछू नही वाके, उनमनि लागि रहो जे ताके॥ को है आदि कवन का कहिये, कवन रहनि बाका है रहिये।॥ कहै कबीर बिचारि करि, जिनि को खोजो दूरि। , ध्यांन धरी मन सुध करि, राम रहा भरपूरि॥ नाद बिंद रंक इक खेला, आप गुरू आप ही चेला॥ आपे मंत्र आपै मंत्रेला, आपै पूजे आप पूजेला॥ "आप गावै आप बजाबै, अपनां कीया आप ही पावे॥ आप धूप दीप आरती, अपनी आप लगादें जाती॥ कहै कबीर दिचारि करि, झूठा लोही चांम। जो या देही रहित है, सो है रमिता रांम ॥ शब्दार्थ-अवर 5 और | ता 5 उस। तुलि > तुलनी। पूजे 5 पूरा। वासूँ 5 उसके समान। हरू गुरू - हलका भारी। सारिख 5 सरीखा। ओ > वह। भेउ ८ भेद | जण्या ८ जन्म दिया। अगोचरी > अतीद्रिय | श्रवना कान। भेरा 5 नाव। आवटि 5 आवर्त। आना-जाना। पिहर ६ + दया। दुमना 5 द्वैत मन। खेरा & खेड़ा | अकुलाना 5 कुलरहित। भग > कुटिलता। सरबग ' 5 सर्वअग। सियरा 5 ठडा। क्रीरा 5 कीड़ा। काच 5 शीशा। हेत 5 प्रेम। बारा ५ बालक। , * मौनि 5 मौन। देवै 5 देवकी। कूख < कोख। जसवै 5 यशोदा। कोला 5 सूकर | द्वारामती : द्वारावती। बैस्थ 5 बसकर। बद्री 5 बदरिकाश्रम | ऊले 5 फालतू। बरति 5 बरतना। रोज . रोग। सूतिग 5 सूतक। ब्रिध 5 वृद्ध। सति 5 सत्य। आन 5 अन्य। वध < बधु। चार आचार। उनमनि > उन्मनीभाव। मत्रेला 5 मत्रदाता | जाती & जाति। जन्म। लोही > रक्‍त। (वोषवी रपेणी) ऊंकार आदि है मूला, राजा परजा एकहि सूला॥ हम तुम्ह मांहे एके लोहू, एके प्रान जीवन है मोहू॥ एक ही बास रहे दस मासा, सूतग पातग एके आसा॥ एक ही जननी जन्‍्यों संसारा, कौन ग्यांन थे भये निनारा ॥।। ग्यॉन न पायो बावरे, धरी अविद्या भैड | सतगुर मिल्या न मुक्ति फल, ताथे खाई बैड ॥ बालक है भग द्वारे आया, भग भुगतान छूँ पुरिष कहावा॥ ग्यॉन न सुमिस्यों निरयुण सारा, पिथे बिरदि न किया दियारां।। साधन मिटी जनम की, मरन तुराना आइ। मन क्रप बचने न हरि भज्या, अंकुर बीज नस्तः ॥

८६८ कबीर समग्र तिण चरि सुरही उदिक जु पीया, दारे वछ कूँ दीया। बछा चूंखत उपजी न दया, बछा वॉजि बिछोहा मया॥ ताका दूध आप डुहि पीया, ग्यांन बिधार कछू नहीं कीया॥ जे कुछ लोगनि सोई कीया, माला मंत्र बादि ही लीया॥ पीया दूध रध्र दै आया, मुई गाई तब दोष लगाया।॥ बाकस ले चमरा कूँ दीन्ही, तुचा रैंगाइ करोती कीन्ही॥ ले रुकरीती बैठे संगा, ये देखो पीडे के रंगा।॥ तिहि रुकरौती पाँणी पीया, बहु कुछ पांडे अधिरज कीया॥ अधिरज कीया लोक मे, पीया सुहागल नीर। इंद्री स्वारधि सब किया, बंध्या भरम सरीर॥ एके पवन एक ही पॉणी, करी रसोई न्यारी जॉनी | माटी सूँ माटी ले पोती, लःगी कही कहाँ घपूँ छोती॥ धरती लीपि पबित्र कीन्ही, छोति उपाय लोक बिधि दीन्ही॥ याका हम सूँ कही विचारा, क्यूँ भव तिरिहो इहि आचारा॥ ए पाखंड जीव के भरमों, मॉनि अमॉनि जीव के करमाँ॥ करि आधार जु ब्रह्म संतावा, नाव बिना संतोष न पावा॥ सालिगरांम सिला करि पूजा, तुलसी तोड़ि भया नर दूजा॥ ठाकुर ले पाटे पौढ़ावा, भोग लगाइ अरु आपै खावा ॥ साथ सील का चौका दीजै, भाव भगति की सेवा कीजै॥ भाव भगति की सेवा माने, सतगुर प्रगट कहै नही छाने॥ अनभे उपजि न मन ठहराई, परकीरति मिलि मन न समाई॥ जब लग भाव भगति नही करि हो, तब लग भवसार क्यूँ तिरिहौ ॥ भाव भगति बिसवास बिनु, कटे न संसी सूल। कहे कबीर हरि भगति बिन, मुकति नही रे मूल ||

| ह रू | + गे अंझुर अंग अंगना, आँगना अंगार प्रतीकात्मक एवं पारिभाषिक शब्दावली १, सासारिकता की इच्छा। कर्म सस्कार। वासना। अहकार। २ उच्च ज्ञान | स्वभाव। लक्षण । १ अतस्। हदय। २ शरीर। ३ आत्मकमल। १ ज्ञान। २. जीवनी शक्ति। भौतिक ससार। शरीर | ब्रह्माड। मूलःचैतन्य | अतर्ज्ञन वाला। जिसने इद्रियो को बाहर देखने की अपेक्षा भीतर कर लिया है। १ माया। २ अज्ञानी। अज्ञान मार्ग आकाश। अंत करण। आल्मा। ब्रह्म'रप्र। ऊँची दशा। परमात्मा की दिशा । वासना। प्रवृत्तियाँ। तन्मात्राएँ | अम्बार। १ सात्तिक वाणी। २ राम नाम। भगवरस। ३ संहस्रार मे स्थित त्रिकोणाकार शक्ति केद्र है। यहाँ चद्रमा का स्थान माना जाता है। शक्ति स्रोत होने के कारण इसे योनि (सृध्ि स्थान) भी कहते है। इसी स्थान से स्रवित रस। इसे ही सोम रस भी कहते है। अकास, आकासा, अकासि दे० अबर। अगम अगमपुर अगिनि अगुना अधदि अजनी अजपा अनल अतीत अपर निर्गुण-निराकार ब्रह्म या ब्राह्मी चेतना | इद्रियातीत स्थान | इद्रियातीत। 2 १ वासना। २ ज्ञान। ३ कुंडलिनी। ४ विरहाग्नि। शास्नज्ञ विद्वान्। उत्नया। 'त्रिगुणात्रिका वृत्ति। आच्च शक्ति। माया। प्रकृति) प्रत्येक प्राणी अजपा गायत्री का जप करता है। यह जप एक दिन (२४ घटे) मे २१६०० बार होता है। नि श्वास (सॉस निकालना) में ह'-कार का तथा आश्वास (सॉस लेना) मे 'स'-कार का उच्चारण होता है। (-डा० नागेद्रनाथ उपाध्याय) । इसे कभी-कभी अगम जप भी कहते है। 'सोह'' का अजपा जाप होने लगता है तब अनाहत नाद का स्वत. उदय होता है (नाथ और सतत साहित्य पृ० ३६६) | ध्वनि रहित आतरिक जप। एक प्रकार का पक्षी। यह आकाश उड़ता हुआ डा वही फूटकर बच्चा निकलता है। अपनी माँ से ना है।। मल एक प्रकार के साधु। शून्य | ब्रह्मरंघप्र | (८६९)

८७० कबीर समग्र आधारी लकड़ी का एक टेकन। इसका प्रयोग योगी टेकन, सहारे के लिये करते है।अनहदनाद (अनाहतनाद) १ मन. के सिद्ध होने पर यह आतरिक नाद होता हैं। २ आहत रहित ध्वनि। ३ असीम | अमृत दे० अग्रित। अप्रितबेली ” सहसार। अमहल नश्वर घर। अरध उरध इडा-पिगला नाड़ियाँ। अरध या अध मूलाधार चक्र को भी कहते है। अरहर माल वासना सस्कार| अलख १ माया। २ निराकार परमात्मा। अलेख साधना की उच्चभूमि। परमात्मा। अवधू (अवधूत) साधक। सिद्ध। प्रकृति विकारों का नाशक। अत्याश्रमी। यो विलध्याश्रमान् वर्णान् आल्न्येव स्थित प्रमाण। अति वर्णाश्रमी योगी अवधूत स उच्यते। -कवबीर का रह० पृ० ७५ अविगत अनज्ञेय। चैतन्यात्मा। इद्रियातीत। अहरनि शरीर। अहेड़ी १ गुरु। २ कामनाएँ। इकताई सनातन | अपरिवर्त | अहेरी यम। ऑजन १ देह। २ अत करण। आदिमाया प्रकृति। उद्भव स्थिति सहार कारिणी बीज शक्ति। आदि शक्ति। आप १ अहता। अस्मिता। २ आत्मन् | आसन योग मुद्राएँ। ये चौरासी प्रकार की है। इक पुरुष ब्रह्म। इच्छा सृसिका। सृष्टि करने की कामना। ईंट 9 हाड़ मॉस | शरीराग। २ ससार। उंदरी चुहिया। रागात्मिका वृत्ति | उत्तपात ससार। शरीर उदधि १ आनद की अधिकता। ज्ञान प्रसार! २ शरीर। ३ अत करण। उदय अस्त जन्म मरण। उनमन, उनमनि, उन्मनी, उनमन्न मन की शात अवस्था | जब मन विषयों की ओर जाना छोड़ कर परमात्मलीन हो जाता है। ऐसे मे उसकी स्वाभाविक चचलता समाप्त हो जाती है और कोई भी विषय उसे उन्मयथित नहीं कर पाता। हर वक्त भागवत स्थिति बनी रहती है। मन मन में ही समाहित रहता है। इसे तुरीयावस्था, सहजावस्था, भागवत्ती चेतन, अमनीभवन भी कहते है। उलदीगंग.. कुडलिनी जागरण। उलटबॉसी १ विषयो से उलट कर परमात्मा मे लगे साधक का कथन। २ उलठा कधन।

- प्रतीका्मक एवं पारिभाषिक शब्दावली ८७१ न फुट मन | ऊपर, ऊरध सहसार | एकबूंद. राम रस। एश्माह. ब्रह्म जौषा झुआ. गगन मडल (शून्य अथवा ब्रह्मरप्र) मे एक अमृतरसब्नावी स्थान है। इसे ही औधा कुँआ कहते है। आँधाषड़् १ विषयासक्त व्यक्तिष। साधनाहीन। २ मूलाधार। अधोमुख कुडलिनी। आतोती. १. इंद्रियों। २ मन। ३ मेरुदड | बंका सांसारिक विषय। 5 कंचन तमो गुण रहित। दंत १ शरीर। जीव। २ परमात्मा। कंषा शरीर। कंद आनद। कंदति (कदली) काया। कंदपूल यौगिक चेथएऐँ | कैँदत, कमल १ परमात्मा के चरण कमल। २ नाभि। हृदय। अतरात्मा। प्रत्यगात्मा। ३ सहस्ार। कउबा तृष्णा। कामना। कपुआ मन | वासना। कठबत ससार। कली , सुषुम्ना। मेरुदड | कनक कलस सहस्रार | कन्या माया। कपूर भक्ति। परमात चितन | कमोदनी . मूलाधार स्थित कुंडलिनी। करगी मृत्यु। करहा मन | जीवात्मा। करिगह १. शरीर। २ ससार। करिया नविक का कर्म। कलस, कनक कलस १ आत्मा। २. सहस्नार | कला पॉच ज्ञानेद्रिया, पॉच कर्मेद्रियाँ, पाँच प्राण, एक मन | कलाल गुरु। कती वासना | कस्ट अस्मिता, अविद्या, राग, अभिनिवेश, द्वेष कसाई अज्ञानी गुरु।

८७२ कहरा कहार कांदी, काई कांसा काइय काग काजल कूकुर काट कापड कामधेनु कामिनी कायय कारा कालबूत कालाकंबल काह्हि काशी किसान कीगरी कीटी कीर [4 कुजर कुंडलिनी कुंभ कुंभरा कुंभरेया ऋुअदा दुआ झुबजा कबीर समग्र एक प्रकार का नृत्य गीत। १ पॉच ज्ञानेद्रियाँ। २ वृत्तियाँ। विषय वासना। 9१ भक्ति। २ राजसी वस्तुएऐँ। १ मन। कर्म सस्कार। २ चित्रगुप्त। १ मन।२ अविवेक। कुबुद्धि। ३ तृष्णा। ४ पापकर्मी। विषयासक्ति | १ दुष्ट स्‍वभाव। २ २ थोथा ज्ञानी। विषयोपदेश | ह शरीर | मनोवृत्ति | माया। १ माया। वासना। २ साधक। चित्रगुप्त | अज्ञान। वासनावाला। नकली या कच्चा भराव जिस पर महराव बनाई जाती है। नाशवान। मिथ्या। अशुद्धशरीर या मन। मृत्यु के वाद। आज्ञाचक्र के समीप इडा (गगा वरुणा) और पिगला (जमुना या असी) का मध्यस्थान वाराणसी। साधक देह। पचेद्रियाँ | शरीर। साधक मन। १ जीव। २ मृत्यु। ज्ञान| कक मूलाधार मे कुडलाकार, सर्पाकार एक नाड़ी। यह अपने मुख से सुषुम्ना नाड़ी के ब्रह्म द्वार के प्रवेश द्वार को बद किये रहती है। प्राणायाम विधि या विशिष्ट मत्रोचार की सहायता से जाग्रत कुंडलिनी ब्रह्म नाड़ी से होती हुई, अत मे सहस्रार मे स्रवित होने वाले कुलामृत का पान करती है। बाद मे आनंद मग्न हो मूलाधार स्थित कुल स्थान को परावृत होती है। १ शरीर। २ अत करण। 9 मन। २ विधाता। ३ ईश्वर । आशा। आसक्ति। सहस्तार | १ सहस्रदल कमल। २ शरीर। माया। दे० कन्या।

| श् 49443 85%“ है 4 9444 984 8 4 8 / 4 944 8 ६ 4 खेबनहार खोटा शंग रशहया, गाह प्रतीकामक एवं पारिभाषिक शब्दावली .. ८७३ सृध्कर्त्ता। अज्ञानी। विषयासक्त जीव। अज्ञानी। ईश्वर। 9 यमराज। २. गुरुदेव। वासनातमक जीवन। ब्रह्म ज्ञानी। जे कविलास, औघधा कुँआ, काशी, केदार, त्रिकुटी, दशम द्वार, पश्चिम द्वार, पलका, ब्रह्मकुड,' भैंवर गुफा, ब्रह्माड, ब्रह्मसागर, ब्रह्मग्रथि, विषयी, शिवपुरी, सरोवर, शून्यद्वार, कपाट, धरती, पताल, मानसरोवर, सप्तग्रथि। _ शरीर। शरीर। लौकिक सुख। 9१ जीव। २ ईश्वर। रचयिता। ३ कबीर | १ कर्म चक्र २ कुडलिनी। विषय-विलास | कुरान। १ जीवात्मा। २ शुद्धात्मा। सहसार। १ शरीर। भोग काया। २ अज्ञान भरा मस्तिष्क। ख़ट राग! ब्रह्म | चैतन्यात्मा। परमात्मा । 9 विषय युक्त खोपड़ी। २ शरीर। सुषुम्ना। बधिया। १ जीवन। २ शरीर। १ गुरु।२ भगवान। १ अज्ञानी गुरु। २ साधनाहीन मन। दे० खेवट। असत् कर्म। १ कुंडलिनी। २ भक्ति। ३ भव समुद्र। ४ इड़ा नाड़ी। 9. मन। २ अविद्या। ३ सत।४ इद्रियाँ। गगन, गगन गुफा, गगननगर गगन सेंडल आत्म कमल। अत करण । ब्रह्म स्थान। दसवाँ द्वार] गड़री मस्तक में स्थित एक छिद्र। चद्रमा जैसा है। आकाश। सहस्रार। पशु प्रवृत्ति।

८७४ गढ़ गदपति ग्म्म गरजि गरुड़ गाहइन्ह गारड़ि गांऊँ, गोद गोडि गागरि गादह गाय गायनहारा भीध गुजरी ५ 449 ५ गीसम घट घन घरनि कबीर सम्ग्र १ शरीर। २. कर्म संस्कार । जीव | विषय | इद्रियो द्वारा प्राप्त करने योग्य | अनाहतनाद | ज्ञान। गान वाले। सत, जो प्रभु गुण गाते है। सदुगुरु | १ ससार। ब्रह्माड। २. शरीर। कं ग्रथि। कर्म भोग | शरीर | अज्ञानी जीव। तृष्णा। १ उपदेशक। २ वाह्म साधना मे रत व्यक्ति। ३, आत्मा | लोभ | जीवात्मा | लोभ | शरीर। शरीर | १. साधना। भक्ति। २ मैत्री, मुदिता, करुणा, अहिसा, आर्जव, संतोष, क्षमा, सद् विवेकादि। १ सूक्ष्म शरीर। २ परमात्मा। १, शरीर। २. आकाश। सहसार। मन | १ मन। २ शरीर। ससार। श्वास | विलास। काम्य कर्म वासना । कुंडलिनी । -अहंकार। वृद्धावस्था | दे० घर। अनाहत नाद। १ शरीर। २ हृदय। सहसार | १ शरीर। २ सासारिक जीवन। ३. आत्म तत्त्व। ४ हृदय | सुरति।

जे अं हे. कह टली: । प्रतीकामक एव पारिभाषिक शब्दावली ८७५ एइरहाई माया। पूंत चूहा। मन। पैल तृष्णा। घोरे इद्रियाँ। संचल मन की संचारवृत्ति। चंच, चंचु. इईद्रियों। चंद, चांद. १ इहीं नाड़ी। यह नाड़ी बॉयी नासिका की ओर होती है। इसे गगा भी कहते है। २ मन। चुकवा अंत करण। जीवात्मा | चुकोर साधक। चदारा गुरु। चुदृत-चढ्ावत प्राणायाम करते। चुप्रत चमड़े का टुकड़ा जिसमें से तकुआ घृप्तता है। चम्रा गाँव. शरीर। चरता, चरखुला १ चित्त। २ शरीर। ३ ससार। चहले विषय। चौँचर (चर्चरी) १) वसत में गाया जाने वाला गान। फाग। २ होली की धूमधाम। ३ एक वर्ण वृत्त। चाक जीव। चड्डुक सयम। दिंठटी, चीटी १ सामान्य जीव। २ सुरति। ३ मन! वाणी। ४ साधक जीव। छैतामणि... १ इच्छा पूर्ण करने वाली कल्पित मणि। २ परमात्म साक्षात्कार | वासना। चित्त १ ससार। सृधि रगारग जगत। २ शरीर। चित्रबंतहि.. सृश्िकर्त्ता | दिरिगट (चिरकुट) शरीर। चीता सतोष। चीर शरीर। चूनरी 9 शरीर। ससार। २ भक्ति। चूल्हे अत-करण। चूहा काल। चेरी साधक। चेला साधक। चोर काम, क्रोधादि विकार। चोल, चोलनां १ विषयासक्ति। काम, क्रोधादि। २ शरीर।

८७६ कबीर समग्र चौधापद ब्रह्मतत्त्व | चौहटे इड़ा, पिगला, सुषुम्ना का सगम स्थान। इसे त्रिकुटी भी कहते है। यह भौहों के बीच स्थित है। छतीसौ राग मूल राग छ और प्रत्येक की छ छ रागिनिया। छांछरी मछली। चित्तवृत्ति। छाग, छागर १ अज्ञानी जीव। २ माया। छिपिया १ भक्त। २ ब्रह्म छींके ब्रह्मरप्र | उर्ध्व मनस्थिति | छेरी दे० छागर। जंगम दक्षिण के शैव। लिगायत। जंगल ससार। संच्र शरीर । जंत्नी चेतन जीव। ौ जंबुक अज्ञानी जीव | जतइत (यत्र) पारलौकिक सुख। जना १ तीन गुण। २ इद्रियाँ। ३ इद्रियों के विषय। जमुन पिगला नाड़ी । जरी भक्ति। साधना मार्ग । जल १ सहस्रार, शून्य शिखर मे स्थित अमृत। इसे मानसरोवर भी कहते है। २. ब्रह्म) ३ आत्म चैतन्य। विषय रहित। ४ विषयासक्त मन। विषयो का ससार। जलहल आनद। ब्रह्म तत्त्व। जोधिग जीव | जाइन अज्ञान। जड़ता। जामिनी अज्ञान। तमस। जिटनी। कुबुद्धि। वासना। माया। जीवतमूवा. अहकार का नाश। सासारिक दृष्टि से मृतक जैसा। मन को विषयों से उलट कर सनातन परमात्मा मे सनातन प्रेम । जुलाहा भगवान | जेंबरी। सकाम कर्म। माया। जेठ १ मन। २ काम। जोड़ माया। जोगनी कुडलिनी | जोगी, जोगिया १. जीवात्मा। २ साधक। जोति ब्रह्मानद | ट जोलहा, जोलहिन 9 जीव । २. ईश्वर ३. आत्मा।

प्रतीकामक एवं पारिभाषिक शब्दावली ८७७ ज्ञान दौतीसा इसमे ओकार सहित ३४ वर्ण होते है। क से ह तक तैतीस वर्ण एवं 3४। झल ज्ञान| विरह की अग्नि। ऐे झोली 3 संचित कर्म। कर्म सस्कार। २ मन। ३ शरीर। ठ्ग जीव | ठाकुर १. मन। २ यम। ३ परमात्ा। डाइसि माया। डाली बाहयाचार | डोरी ध्यान देता कीट पतगादि निम्न योनियाँ। तंत जीवात्मा | तन शरीर से सबद्ध सुख-दुख, तृष्णादि। तर, तल पाताल। मूलाधार चक्र। तरबर 9 सुषुम्ना। नाड़ी। मेरूुदड। २ माया। प्रकृति। ३. शरीर। ४ ब्रह्म। ईश्वर। ५, ससार। द तरू दे० तरवर। तरुनि इद्रियाँ। तलिहारी. मूलाधार चक्र। ताऊ काम | ताय शरीर ततु। माया। मोह। ताना १ शरीर। २. माया। त्तार १ नाड़ी मडल। ज्षानेद्रियाँ, कर्मेद्रियोँ। २. मिथ्या ज्ञान। त्ताल शरीर। तिन सासारिक सुख। तिलक नाशवानू सुख | त्तीर 9. आपूर्ण ज्ञान। माया वस्तु। २. माया से पार। मुक्ति तुमरी वासना वाला मन। तुरी मन | तेल १ जीवनी शक्ति। २ स्नेह। भक्ति तेल के कपि विषयी जीव | गुरुदेव का शब्द | बिकुटी (संगम), त्रिवेनी, त्रीखड भीहो का मध्य संधि स्थल है। आज्ञा चक्र | पिपल १ ज्ञाननेत्र। २. गिकुटी। दरपद हृदय। अत करण | दरिया 9 संसार। भव सागर। २. ब्रह्म ज्ञान। ध्य स्थान जो इड़ा पिगला एवं सुषुम्ना नाड़ियो का

८७८ कबीर समग्र दवा, दव १ वासना की आग। २ ज्ञानाग्नि। दसवैद्ार सहसाार द्वार। गगन गुफा जहाँ से एक प्रकार का रस टपकता रहता है। दह विषय । दाता प्रभु । दामिनी क्षणिक ज्ञान। दादुर १ शास्त्रों के उपदेशक गुरु। २ भ्रम। ३ अविद्या। ४ अल्पसतोषी। ५. स्थू बुद्धि का। दिनि गुरु का सामीष्य | दिया, दीपक, दीवा १. ज्ञान| २ शरीर। जीव । वासना | कामादि विकार। ब्रह्म | १ कुडलिनी। २ जीव। साधक। दिरानी दुंदर दुक्का दुलहिन दुहुमिलि साधु असाधु। दूध देवर देवल देवहरा देस दीं, दो आनंद | राग। शरीर | १ शरीर। २ ससारा १ शरीर। २ ससार/ दे० दव | शौहड़े १ मानव शरीर। २. स्वर्ग। ३ गोरख के देवद्वार शब्द का प्रयोग ब्रह्मरप्र या दक्षम द्वार के लिये किया है। घंघा सकाम कर्म। ० घ्जा नाम। पहचान | घन आनद।| घ्नि जीव। भक्त । घ्नी ब्रह्म | परमात्मा | घनुष ब्रिकुटी घमार १. उछलकूद। २. नाच युक्त सगीत। इरती, भरनि 9१. मूलाधार चक्र। २ बुद्धि। घरणि श्वास-प्रश्वास | घरनीघर शेषनाग। घ्घ्ना आशा। िये दुर्दुद्धि। थूरि् 9 विषय वासना। २ निराशा।

प्रतीकामक एवं पारिभाषिक शब्दावली ८७९ भौत मोह। भगर १, शरीर। २. परमात्मा का स्थान। नंइनियों... इद्रियाँ। मटर परमात्मा | ण़दी १, इद्रियासक्ति। २. कुडलिनी। ३. हृदय । नंद मोह | अविद्या। माया | गनद के बीर . ब्रह्म | नहिती जीव। नली शरीर। नबल (निवल) साधक। नोंब, नाव (नौका)) शरीर। २ विषय। नाइडु (नायक) ब्रह्म | नागफाँस. विषय बंधन। नापिन कुंडलिनी | नाद् १, गोरक्ष सिद्धात सग्रह के अनुसार नाद रूपा सृष्टि सूक्ष्मा सृष्टि है और बिदु रूपा सृष्टि स्थूल सृष्टि है। २. वायु के यथेष्ट धारण से नाद की अभिव्यक्ति होती है। ३. नाद शून्य से सभूत होता है। ४. शब्द। ५, आकाश। ६ शिष्य। ७ माता का उदर। गारि, नीरी 9. अविद्या। माया। कुबुद्धि। २ भक्ति। ३ प्राण। ४. कुडलिनी | सुरति। ५, जीव। नालि १, डठल। २ निकट। पास। नाहर जीव। निर्रुंज विषय वन। निप्चरुहि ब्रह्म निधि परमानंद | निरंजन १ निर्गुण ब्रह्म। अजन रहिते ब्रह्म! २ माया के ससर्ग से मायात्तक पिड का निर्माता। २. नाद रूपा सृष्टि का लय स्थान ३. कहीं-कही महाठग भी+ निर्रति १. सहजावस्था। २. बाहरी प्रवृत्ति की निवृत्ति। वैराग्य। -ह प्र,द्धि। निरातंद निर्विकल्पिक। शून्य। निराश विषयमुक्ति। निर्म नी भक्ति रस। ज्ञान। निस अज्ञान| नीघ्नर सहस्न दल से झरने वाला अमृत। भीर १ ज्ञान] आनंद | २ मन। इृदय। चित्तवृत्तियाँ। ३. अमृत । नीवी आत्मा। भौका टे० नौंव |

८८० कबीर समग्र नौया (नाविक) जीवात्मा | पंखि, पंखी, परेरू) जीव। जीवात्मा। २ मन। इद्रियाँ। पंडुर कामी जीव | यंवी जीव । पखान अज्ञानी | पछिम दिसा 9 सुषुम्ना। २ मूलाधार चक्र। पछेवरा शरीर। ड पटवारी १ धर्म गुरु। २ चित्रगुप्त। पतंग विषय। अल्प ज्ञानी। पाल मूलाधार चक्र। यन्नी (पक्षी) जीव | पदारव भक्ति | पचिओं ससार। विषय | पनिहारी १ कुडलिनी। सुरति। प्राण शक्ति। २. जीभ। ३ रूप, रस, शब्द, स्पर्श, गध | परथया साक्षात्कार । परमस्थिति। अनत का एक मे समाहित होना। परदत १ विषय। २ जीव। मन।| परम पुरुष भगवान्। परमात्मा। | परीसिन १ विषयासक्ति। २ इद्रियाँ। पलानियों. एकाग्रचित्तता | पललव विषय | पवन १ प्राण शक्ति। २ प्राणायाम | पदनपति जीवन के स्वामी। परमात्मा | पश्चिम, पश्चिम द्वार 9 सहस्नार। २ सुषुम्ना। ३ मूलाधार। पषान सकाम कर्म। जड़ता। ४ पसेरी पॉच इद्रियाँ। पढरू ज्ञानेद्रिय | आत्मा | पहाड़ी शून्य शिखर। पुर अज्ञान। पांची, पादी, १ भक्ति। २. विषयी मन। विषय। ३. वीर्य | पाद 9. वासना। कामना। २. शरीर। ३ वीर्य। ४ आनद। पातल मूलाधार चक्र। पान विषय। परदि प्रत्यभिज्ञान। परिचित परमात्मा का पुन. ज्ञान। पारथ १ जीव। मन। २ सदगुरु।

प्रतीकामक एवं पारिभाषिक शब्दावली ८८१ पारमी दे० पारथ | जानी प्रेमानद | पर्स 9 ब्रह्म। २ गुरु। पावक १ कुइलिनी। २ परमात्म ज्ञान। पासंग भक्ति या साधना के सहायक तत्त्व! पहन १ विषयासक्त अत.करण। २ नाश। पु दे० पाहुना | पहुना जीव। प््जिर शरीर। पिछौरा १ प्रकृति। २ शरीर। पति ब्रह्म । पिपराही , कामना। वासना। पिया परमात्मा। पियादे प्रवृत्तियाँ । पीपल . स्थिरता | युत्र मन। पुरइन विषय मुक्त व्यक्तित्व पुरता शरीर। पुरविला भरताए ब्रहम। पुरिख ब्रह्म! पुरिया १ जुलाहे का एक यत्र। २ शरीर। सुठ्ष ब्रह्म | _पुहुप' १ वासना। २ शून्य स्थान। कमल | पूंजी... ज्ञान| पूछद मूलाधार। ष््त साधक। जीव | प्रब १ सहस्रार। २ चतुर्मुख ब्रह्म का एक मुख। पूरदलिखा. सचित कर्म। पेड़ मूल तत्त्व। प्प््ला शरीर। प्यास कामेच्छा | मकेद साकार। प्रणले भक्ति। फ्त १. परमात्म तत्त्व। ब्रह्म। २. मोक्ष। फंत् फूल. विषय सुख।

८८२ कबीर समग्र फागुन वृद्धावस्था | फील (हाथी) मन। फुलवा, फूल १ कामना। आसक्ति। कर्म। २. ज्ञान। ३. जन्म । ४. अत्प ज्ञानी | फुलवारी सृष्टि। ससार। बंकनालि कुडलिनी। नागिनी। बंघ कर्म बधन। भव चक्र। विषय | बकुला, बग, बगों, बयुल) मन। अज्ञानी जीव। २. कपटी गुरु। ३ श्वेत केश ज्ञान। बगुया कर्म सस्कार। बगुली माया। बछरा, बछा १ आत्म बोध। २ जीवात्मा। बजावनहार जीव । बज़ केवा नवघर। बजाऊ सासारिक लोग। बढुआ शरीर। बटेर अज्ञान। बद्ह मृत्यु। बदरिया मोह। अज्ञान। बन १ हृदय। २ घर। ३ जीव। ४. विषय सुख। ५ शरीर। ६ सहज शून्य। बन खंड १ शब्द जाल। शास्र वचन। २. विषय। बनराह अत करण। बनसपती . ससार। बनकदली शरीर। बनिज गुरु शिष्य सबंध। बनौरी १ विवाह गीत। २ बनाना। उपहास कथन। बरखा उपदेश | बसंत १ आनद। २ युवावस्था। बस्तु आत्मतत्त्व। बहुरिया जीव | बाखरि १ ब्रह्माड। २ शरीर। बाग परलोक। बाघ जीव | बाघिनी माया। बाज ज्ञान। बाजी ससार। बाजीगर ब्रह्म।

44 व 4 $ 5 है 4 है, ह बासन बासी भात बिदि बिख विखहर विहिया दिखा दिरव बिरुली प्रतीकात्मक एवं पारिभाषिक शब्दावली ८८३ चक्र षट्। 9१ प्राण। ३ ध्यान ३. चेतना का प्रकाश। १ शून्य। २ अज्ञानी मनुष्य। ३ भक्ति। , माया। कामनाएँ। वृत्तियों | माया | १ अज्ञान। २ परमात्म ज्ञान। ब्रह्म। ३. जीव | १. सदगुरु। २ ब्रह्मा। बाल। अज्ञानी। शरीर। शरीर। १, विषय | २. घिसी पिटी साधना। १ प्राण वायु। २. कुडलिनी के जागरण से आज्ञा चक्र मैं स्थित प्रकाश। ३ वीर्य। ४ रूप। ५ इच्छा। ज्ञान। क्रिया। ६. परम सत्ता। प्रत्येक वस्तु मे सूक्ष्म रूप में समाया। विषय | वासनात्मक मन। अविद्या माया। १ ससार। २ वासना। १ सुषुम्ना। २ सासारिकता। शरीर। ३ ब्रह्म । १ सासारी जीव। ३ कहरा, हिडोला आदि एक प्रकार का राग या गीत। ३ शायद इसका सबंध बिहुला देवी से है | बिहुला का सबध सर्प विष झाड़ने से है। बिलाई, बिल्ली 9 प्रज्ञा।२ माया। अविद्या। कुबुद्धि | ढ्स्नु बिहंगम सदगुरु। जीव भन। जीव | १ वासना। सकाम कर्म | २ परमात्मा। गड़े धन से सबद्ध वह पत्रक जिसमे उसका विवरण रहता है। कबीर की वाणियो का प्रामाणिक सग्रह। परमात्मा रूपी गुप्त धन का पता बताने वाली रचनाएँ | सुमति | एक शैव सप्रदाय ।और उसका साधु। माया | तृष्णा। व्यष्टि। ? तृष्णा। आशा। माया। २ भावभक्ति | ब्रह्म । अनत।

८८४ बैल बोकला बोहरे जद्मरंप्र भडुहर भँवर, भेवरा भैवर गुफा भेवरी भट्ट या भतार भलुद्या भवन भसुर भोड़ा भात भान भामिनि भारती भीटि भील भुअंग भेड़ भेदी भैंस भौर, भौरा भौज मंछ मंजार मंडल मंदला मंदिर मगहर मच्छ कबीर समग्र लोभ | अविवेक | माया। परमात्मा | शून्य, आकाश | शरीर। कपाल। १ भकत। २ भ्रम। ३. मन। जीव। ४ काले केश। ५ युवावस्था। ब्रह्मरप्र | ५ विवेक । वासना | १ ईश्वर। २ पति। लोभी गुरु। शरीर | अविवेक | १ साधना। २ शरीर। ३ जीव। जीवात्मा | आत्म प्रकाश | माया। सन्यासियो का एक सप्रदाय, जातिं। उपाधि | विषय । मोह। काम | कुडलिनी | जीव । गुरु | न 9 शम। २ निम्न सस्कार। तमोवृत्ति। ३ छली गुरु। ४ इंद्रियाँ। १ आवागमन। २ विषयो मे भ्रमण | अविद्या माया। मन। आत्मा। बुद्धि। आकाश । सहस्रार। अनाहत नाद | शरीर। साधनाहीन शरीर! १ माया। २ साधक! ३ कुडलिनी। ४ मन। दे० मच्छ| इन्द्वो के बीच |

भांध दीप मारी माल शानसरोवर घासु ॥ [साई गाखी भाछ, माछली भादी भदरिया मड़ी मानसरोबर माणिक मान्यक माय मालिन माहों मिनकी मिनी मियां मिरग (मृग) मीन प्रतीकात्मक एव पारिभाषिक शब्दावली ८८५ विषय त्याग | १ माया। २ मृत्यु। साधना स्थल। माया। प्रवृत्तियाँ। हृदय | १ अमृत। २. भक्ति का आनद। दुष्ट । धूर्त। सुषुम्ना | पचभूत | शरीर | १ मानस | अमृत कुड। २ शून्य शिखर। विषय। १ ममता। माया। २ साधना। दे० मच्छ। दे० मच्छ। १ प्रकृति। २ शरीर। मन। १ पच महाभूत। २ प्राणी मात्र। चैतन्य। सहस्रार। चैतन्य | जीव। भक्ति। भगवद्येम। माया। साधिका | माया। वासना। कामना | मृत्यु जीव | 4 जीव। २ पशु प्रवृत्ति। ३ तृष्णा। ४. कामदेव। विषय सुख। या 2 साथना। इस साधनामे बहिरग, इद्रियो की वृत्तियो को भीतर करते है। विषय से उलट का भगवान की ओर ले जाते है। इसे मीन मार्ग इसलिये कहते ४8033 मछली प्रवाह के हि चलती है। उसी प्रकार साधक विषय प्रवाह कर साधना करता हैं। इससे किसी कर्म का निशान यह अरूप, अदृश्य साधना है। 35% एक श्रकार का साधु, जोर सिर मुड़ाए रहता है।

८८६ मुंड़िया म्ुक्ताहल मुद्रा मोट मुर्गी मूँड मेदक मूल भूस मेर कवचीर समग्र १, जीव। २. माया। ३ मुदडित साधु । आनद | १. मुद्रा के अलग-अलग रांप्रदायों में भिन्न-भिन्न के हि] गीरदनाय के नाय पंथ मे मुद्रा कान में पानने का एक आभूषण है। २ हठयोंग में एच मुद्रा मानी जाती #-पभूचरी, खेचरी, घाचरी, गोचरी एवं उन्मनी। ३. साथना में बैठने का ठग। ४. पंचमकार-मांस, मीन, मैथुन, मदिश, मुद्रा मे कहींकहीं मुद्रा को मदिरा पीते समय का टाना भी कहा गया ह#ै। ५ साधिका। जिसका प्रयोग साधक साधना के लिये करता है| कर्म संग्रह | साधक १. युवा। २ वासनासकत जीव | मोह युक्त 9१ झसार यात्रा का कारण। भगवर्कम। २, मुताथर इक 3, द्रह्म। 9 जीव [२ मन। मम ममतय। अद 35 मेर डंड, मेसदंड १. कमर और पीठ के दीद वी #इडी। २ सुप्रस्ता। मैंगत मैवासा भोटरी मोती भौर भ्यत यंत्र रंग रंडा रउरा रन र्मता रमैनी रसरिया रतिक रजनी रस संड राई उहफार | उहकार। विकारों भग मन या गिर | १ मम। २ सुख आनंद। दृह्ममंद | सहसार | मै शरीर । भाव। झानी प्ररयापन | 93, साधना | २. विषय बन | आत्मा या परमात्मा | १, कदीर की एक प्रकार की रचना। इसमें सासारिक जींदो का दर्णन है। २ र्मण करने योग्य | कर्म सत्कार की रस्सी। १. भगवान् । २. माया जज्ञानावस्या। एकात | १ वियय युकत। २. माया। १ मत २ छोदा से छोटा विषय भाव। _________ .... >«० “१०-०० “०

[84475 24844 ६4 739 ४77४ १३ 4 ३ ३३ ' संगम सैंजोग संध्ना सांध्न-सकारा प्रतीकात्मक एवं पारिभाषिक शब्दावली ८८७१, देह। विषय महल। २ अत करण | जुलाहो का एक औजार। ह १, साधक। २. परमात्मा। परमात्मा का कर्म। सृष्टि की रचनादि। जीव। माया। विषय । सहस्रार। नाशवान।| युवावस्था | जीव। जीवात्मा | मुसलमानों का एक व्रत। वृत्तियों। विवेक | १ अविवैक। २ परमाचार्य। जीवात्मा। भक्ति। सकाम कर्म | १ जीवात्मा। २ यम। मेरुदंड। कुडलिनी ध्यान। मोक्ष | अज्ञान| गुणो से सबद्ध वस्तुऐँ। दे० काशी । ससार। है बत्तीस पक्तियो वाला एक काव्य रूप। तीस चौपाइया और एक दोहा | १ त्रिवेणी। २ त्रिकुटी। ३ प्रयाग। १ कवच। २ साधना। मृत्यु काल। वृद्धावस्था। जन्म-मृत्यु सकति (शक्ति) १ कुंडलिनी। २ इड़ा नाड़ी। ३ ख्री। सखी (सहेली) १ जीव। २ वासनाएँ। सत्ती सगोती साधक। भक्त। अर १ गुरु वचन। २ अनाहतनाद। ब्रह्म मे होने वाला स्पंदन | यु |

पनेल्ूनलरक कक ८८८ कबीर समग्र समुद्र १, ससार। जीवन। २. ब्रह्म नाड़ी। ३ विवेक। ४ विषय। प्रकृति। ५, ब्रह्म। सयान ज्ञानी। मन जीव | सर १ अनाहतनाद। २ अस्थियाँ। ३ ब्राह्मी चेतना। ४ सत् गुरु के शब्द। सरगुन प्राणायाम | सरवर १, आनद। २ भरीर। सरवर मीत. शरीर के मित्र | सरिता १ इद्रियाँ। २, वासना। सर्प ज्ञान। सलि कठिन साधना | ससा १ बासना। २ साधक। ३ मन। ससि दे० चद्र। ससुर १ देवी देवता। २ भोग। सहंस सो5ह। सहज 9 एक साधना मार्ग। २ परम तत्त्व। सहज समाधि १. साधना ओर समाधि का प्रयल और परिश्रम से बढ़कर स्वभाव दन जाना। २ चित्त वृत्तियो का परम सत्ता मे लीन होना। सहज भाव सहज समाधि | सहजशून्य | सहजसुंनि. 9 सहस्रार। २ साधना की चरमावस्था। सहस्नार तालु मूल मे सहस्नदल कमल। वहीं सुपुम्ना का छिद्र है। यही द्रह्मर्‌द्न कहा जाता है। यह विदु रूप है। सहनां आत्म तत्त्व। सहेली मनोवृत्तियाँ। सॉपिनि १ एक नाड़ी। २ विपय। सांतीपाठ. ओ शाति शात्ति शाति | सार्वेत सामत। दे० ठाकुर। साउज वासना | वृत्तियाँ साखा नाड़ी सरथान | साखा पत्र कामनाएँ। साखी दोहो मे कथित सत्तो द्वारा परमात्मा से साक्षात्कार की वाणी! सायर (सागर) १9. शरीर। २ ससार। ३. हृदय। मानस। ४ माया। सायर बारे. आत्मानद। सर्दुल १ मन। २. वासना। सावज मन | साजीभूत तुरीयावस्था। परमात्मा से साक्षात्कार की अवस्था | सास १ बुद्धि। वृत्ति। २ अस्पिता। मै भाव। ३ अविद्या। माया।

प्रतीकामक एवं पारिभाषिक शब्दावली. 7 ८८९ .प्जापुर ससार | . साहब १ परमात्मा। २ गुरु। सह प्रभु | सिंध, सिह. जीव। अहकार। सियार १ भ्रम। २ अल्पज्ञानी गुरु। ३ मन। ४ भगोड़ा। सिब १ पिगला नाड़ी। २ शिव का स्थान सहस्रार मे है। ३ पुरुष। पर ब्रह्मरक्ष । सीकर १ एक मुदखोर जानवर | २. माया | सीकस ससार। सीतलछाया गुरु कृपा। सीस अह। निजता। सुनिमंडल.. दे० सुन्नि सिखर। सुंदरि, सुंदी भक्‍त। सुआतिनि प्रवृत्तियाँ। चुत मन | सुनहौं मन। मुल (शून्य १ आकाश। २ सहजावस्था। समरसावस्था। ३ इद्रियो से भिन्न शीश के ऊपरी हिस्से मे स्थित छिद्र। सुषुम्ना के भीतर से होता हुआ यह मूलाधार तक फैला है। सहस्न दल कमल इसी के ऊपर है। ब्रह्मरप्र वह छिद्र जो ० बिदु रूप होता है| सुन्ि शिखर सहसार। सुरति १ ध्यानावस्थित चित्त। इस स्थिति मे अनाहतनाद सुनाई पड़ता है। सतत सुमिरन के कारण भगवतबोध बना रहता है एव आनद रस स्रवित होता है। इसमे चित्त की चचलता दूर होकर चित्त भगवत्ध्यान मे रत रहता है। सुरत कमल। २ नाथ वाणी के अनुसार सुरति श्रुति, स्मृति दोनो से व्युत्पन्न जान पड़ता है। , २. अंतर्मुखी प्रवृत्ति प्रेम। -हप्रद्धि। सुरभी भनच्छन गो का अर्थ इद्रियाँ। जीभ को उलट कर तालु में प्रवेश कराना गोमास भक्षण अर्थात् सुरभी भक्षण है। सुरभी > गो। खेचरी मुद्रा। सुरही भक्ति। सुरुज, सूर्य, सूर दाहिनी नासिका नाड़ी। पिगला। ज्ञान। सुबदा १ ज्ञनेद्रियों।२ जीव। सुषुन्ना, सुखमन ईड़ा और पिगला नाड़ी के बीच मे मेरुदड मे सामानातर नाड़ी। इसकी छ स्थितियों है। सुहागिन माया। सूत-कूसूत. शुभ-अशुभ कर्म। सूनाधर १०निर्गुण ससार। २ नाशवानू देह, ससार।

८९० सूर्प सेज सेमर सोनहा, स्दान सोबनहार सौदा सौरी स्पंम दार स्यार स्बान स्वामी स्वासन स्वेत कबीर समग्र मूलाधार चक्र मे चार दलो के बीच मे एक गोलाकार स्थान। हृदय । मिथ्या आशा | १, अज्ञानी। अज्ञान। २. काल। कूडलिनी | सक्कर्म ! १. शरीर। २. आतज्ञान। ब्रह्मरभ्र | 9. तृष्णा। वासना। २. साधना। स्वभाव न बदलने वाला। १ जीव। २. ब्रह्म। कुत्ता! सत्त्व। हँस, हंसा, हंसिनी नव द्वार के पिजड़े मे स्थित आत्मा | मुक्तात्मा। विवेकशील | हजारी का सूत कर्म वैविध्य। हजूर हटूद, हाट डर हरा हरिजल हरियरबन 'इहरीअंगरी हस्ती हाकिस ' हाड्डी हार हीगै हीरा १ गुरु। २ परमात्ता। संसार। कर्म। वासना सुख। आनद | अंत करण की प्रसन्नता। सद्वृत्तियाँ | 9. मन। जीव। २ परमात्म साधना। ३ माया। जीवात्मा। विषय | सक्कर्म। अहकार जताना। १ सत्कर्म। कल्पना। परमात्मतत्त्व। ज्ञान। आत्म तत्त्व। ३ भक्ति। संख्यावाची ब्रह्म। माया या प्रकृति एवं जीव की एकता। प्राणमय कोष | ज्ञान भक्ति । अहकार और भक्ति। इहलोक, परलोक |

दोह ठूँबड़ा जुग दोसर सेआन तीन सनेही तीसर सेआन चउथ सेआन जारि अवस्था चारि खूँटी चारि जन चरदिंग चर पदार्व चार फल चार यर्ण प्रतीकात्मक एवं पारिभाषिक शब्दावली ८९१ सूर्य एव चंद्र नाड़ी । ब्रह्म और जीव | स्वाधिष्ठान चक्र। सुविचारण | जन्म-मरण | राम | हरि | राग-देष | १ लोक परलोक। २. इड़ा पिगला। ज्ञान-वैराग्य | सुख-दुख। राम। इड़ा, पिगला, सुषुम्ना। सतू, रज, तम। . पलास (ब्राह्मण के लिये), पीपल वट (क्षत्रिय के लिये), गूलर (वैश्य के लिये)॥। सतू, रज, तम। ब्रह्मा, विष्णु, महेश । बाल, युवा, वृद्धावस्थाएँ। आधि दैविक, आधि भौतिक, अध्यात्मिक। त्रिताप। धर्म, अर्थ, काम | १ ब्रह्म लोक, विष्णु लोक, शिव लोक। २. त्रि लोक। ३. भू-, भुवः, स्वः। १. भविति, ज्ञान, वैराग्य। २. संत, रज, तम। १ बाल, किशोर, युवा। २ वित्तेषण, सुतेषण, लोकेषण। ब्रह्मा, विष्णु, महेश | आधि भौतिक, आधि दैविक, अध्यात्तिक। अन्नमय कोष, प्राणामय कोष, मनोमय कोष | दे० तीन गाँव। पृथ्वी, अंतक्षि, स्वर्ग। सुत, वित्त, लोक, ईषणाएँ। मणि पूरक चक्र। तनुमानसा | अनाहतचक्र। सत्त्वापत्ति। बाल। किशोर। युवा। वृद्ध। मन, चित्त, बुद्धि, अहकार। अतकरण। * दे० चारि खूँटी। नाभि, कंठ, हृदय, त्रिकुटी। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। दे० चार पदार्थ । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र

८९२ कबीर समग्र चार वृक्ष ऋक, यजु, साम, अथर्व वेद। चारदिन बात, किशोर, युवा, वृद्ध। चार खानि अडज, पिडज, ऊष्मज, उद्भिज। चौया पद ब्रह्म तत्त्व चौमात वर्षा ऋतु। आषाढ, सावन, भाद्र, आश्विन | चार युग सत्य, नेता, द्वापर, कलि। फ चौपरि कामरि दे० चार अवस्था। चार खूँटी। ़ यंच १ पंच ज्ञानेंद्रियों। २ पाँच विषय। ३. काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्तर विकार। पंछ दूत पॉच जानेद्रियाँ। पंघ किसान आँख, कान, नाक, जीभ, लचा। पंच घातु पच महाभूत | क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर । पंच कुसंगी. ढे० पच। पंच कुटुंद.. दे० पच। पंच थोर दे० पंच | यंव पियांदे. दे० पंच। 'भंच संती दे० पंच। पंच गदहा. पाँच इद्रियाँ। पंच तत्त्व, पंच धात पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश | “पंच दारा दे० पचपियरियाँ। पंच पियरियौँ प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान। 'पाँध पनिहारी दे० पंचपियरियाँ। 'पंच जना दे० पच तत्त्व। पाँच ठोटा.. दे० पच। पाँच भुवंग. ज्ञानेंद्रियों पॉच। पाँच पवन दे० पचपयरियाँ। । पाँच दनिजारे पच तत्त्व | पाँच पहरावा दे० पच ज्ञानेंद्रियाँ। पंच सिस्े. ज्ञानेद्रियौँ। पंचू भाइया ज्ञानेद्रियों। पाँच लदनुबा पच तत्त्व | पंच कोट अन्नमय, प्राणामय, मनोमय, विज्ञानमय, आनद मय कोश। पाँच नारद १. पाँच इद्रियाँ। २. पॉच विषय। पाँचो अमृत पाँच विषय । पाँच सैल यम के अहिसा, सत्य, व्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह |

प्रतीकामक एवं पारिभाषिक शब्दावली ८९३ पाँच हाथ. पच तत्त्व। पाँचवे सेआन विशुद्ध चक्र । असन शक्ति | पद वाना. ज्ञानेद्रियों पाँच। पातीपंच .. जानेंद्रियोँ। ऐंद सली, रच सहेली ज़ानेंद्रियों पॉच। हब दरसन. 9. न्याय, वैशेषिक, मीमासा, साख्य, योग। २. योगी, जगम, सेवड़ा, सन्यासी, दरवेश, ब्राह्मण । छसाता दे० छव दरसन।| घद आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास, हंस, परम हस। घद कर्म 9 स्नान, सध्या, तर्पण, पूजा, तप, होम। ये नित्य कर्म है। « २ नेती, धोती, बस्ति, न्योली, त्राटक, कपालभाती। ये यौगिक कर्म हैं। ३ यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह। ये ब्राह्मण कर्म है। छचकवे १ बेनु, बलि, कस, दुर्योधन, पृथु, विक्रम। २ हरिश्चद्र, मनु, मान्धाता, हरिद्धुग्न, जरासघ, त्रिविक्रम। घट चक्र ये सभी कमलाकार होते है। फ हे १. चक्र स्वान आकार (दल) १. मूलाधार जननेद्रिय के नीचे चार भुवर्ल्रोक मेरुदड का प्रदेश तमस् अग्नि २ स्वाधिष्ठान जननेंद्रिय के ऊपर. छ स्वर्लोक मेरुदड प्रदेश ३. मणिपूर नाभि प्रदेश द्स महलोंक रजस सूर्य ४. अनाहत हृदय प्रदेश बारह जनलोक ५ विशुद्ध कठ प्रदेश के नीचे सोलह तपोलोक सत्व चद्र ६. आज्ञा त्रिकुटी, भीहो के बीच दो सत्यलोक २ जन्म, रहना, बढ़ना, बदलना, घटना, नष्ट होना। ये शरीर के भव चक्र है। ३. भूख, प्यास, शोक, मोह, जन्म-मृत्यु। घड़रस लवण, तिक्त, अम्ल, कटु, कषाय, मधुर। हक 2२४ सिद्ध सन, सनक, सनदन, सनातन, सनत कुमार, सनातन (द्वतीय) | छठ्यें सेआन आज्ञा चक्र। पदार्थभाविनी। सतये सेआन सहसार। तुरीय। सातद्वीप जम्बू, कुश, प्लक्ष, क्रौच, शक, पुष्कर, शाल्मलि | सात सुंदर दुग्ध, दि, पृत, क्षार, इश्लुसस, मध्य, जल। सक्तयूत् रस, रक्त, मांस, वसा, मज्जा, अस्थि, शुक्र |

८९४ कबीर समग्र सात, सात शब्द सगीत के सात स्वर-सा, रे, ग, म, प, ध, नी। सात (पोषक) दे० सात सूत। सात बीज सात विरही अष्ट सिद्धि अष्ठ कुमारी अष्टांग योग अष्ट गयन अष्ट कमल अष्ट मिथुन नव घर नव निधि नौ द्वार नव खंड नव गज नव ग्रह नब व्याकरण नदधा भक्त नौ नारी (डी) नौ बहिया दस गज १ रूप, रस, गध, स्पर्श, श्रवण, बुद्धि, अहकार | २ पाँच महाभूत एवं बुद्धि, अहकार। भगवद्प्रेम की ओर उन्मुख सात साधना भूमियाँ-शुभेच्छा, विचारण, तनुमानसा, मर अससक्ति, परार्थभाविनी, तुर्यगा। ये घटस्थ योग के. सात साधन भी | १ अणिमा, गरिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व | २ अजन, पादुका, गुटका, धातुभेद, बोतल, बज्र, रसायन, योगिनी। ३ तार, सुतार, तारतार, रम्यक, आधि भौतिक, आधि दैविक, अध्यालिक (साख्य) भूमि, जल, आग, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहकार। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समांधि। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहकार। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा, सहस्रदल, सुरत्ति। १. पॉच ज्ञानेद्रिया (उनके विषय रूप, रस, गध, स्पर्श, शब्द), मन, बुद्धि, अहकार। २ सिह, वृष, हाथी, कमल, पखा, बैजयती, भेरी, दीपक। इन्हे अष्ट मगल भी कहते है। ३ स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुहयभाषण, सकलल्प, अध्यवसाय, क्रिया निष्पत्ति| ४ गध, स्त्री, वस्त्र, गीत, पान, भोजन, अलकार, वाहन। मन, चित्त, बुद्धि, अहकार, प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान। पद्म, महापद्मय, शख, मकर, कच्छप, मुकुद, कुद, नील, खर्व। दो नेत्र, दो कर्ण, दो नासिका, मुख, गुदा, जननेद्रिय | भारत, इलावृत, किपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य, कुश | दे० नी द्वार | सूर्य, चद्र, मगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु। इद्र, चद्र, काश कृह्न, शाकटायन, पिशालि, पाणिनि, अमर, जैनेद्र, सरस्वती। अवन, स्मरण, कीर्तन, पाद सेवन, अर्चन, वदन, सख्य, दास्य, आत्मनिवेदन। 9, इड़ा (चद्र), २ पिगला (सूर्य), सुषुम्ना (मध्य), ४ गाधारी (दक्षिणनेत्र), ५ हस्ति जिह्मा (वायों नेत्र), ६ पृषा (दक्षिण कर्ण), ७ पयस्विनी (वाम कर्ण), ८ लृकुहा (गुदा), ९ अलबुषा (लिग)। * दे० नवघर | नौ इद्रियाँ। १ दे० दस गोनि। २ दस नाड़ियाँ।

दस गोनि दत्त द्वार दस बंद दत दिशा दस अवतार दइत घुन्सफ बारह प्रतीकात्मक एवं पारिभाषिक शब्दावली ८९५ आँख, कान, नाक, रसना, त्वचा, हाथ, पॉव, गुदा, लिग, मुख। नव द्वार तथा एक ब्रह्मरप्र | दस इद्रियाँ। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, वायव्य, ईशान, नैर्रत, आग्नेय, आकाश, पाताल। मल्य, कच्छप, शूकर, नृसिह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि। दीवानी का न्यायाधीश | १, अनाहत चक्र। इसमें बारह दल होते है। प्रत्येक दल मे एक-एक अक्षर होते है। क से ठ के अक्षर । २ दस इंद्रियों, मन, बुद्धि। द्वादस गम को अंतरा सहस्नार, जो हृदय से बारह अंगुल पर स्थित है। इसी में चित्त की स्थिति दादस दल बौदह चौदह चंदा चौदह ठहर चौदह भुवन चौदह विया सोलह सोदह सिगार सोरह पत्र अठारह अदारह भार उनइस गज है। इसे ही 'शिव द्वादशांत' भी कहते है। दे० बारह | १, ब्रह्म ज्ञान, २. रस ज्ञान, ३ कर्म काड, ४ सगीत, ५. व्याकरण, ६. ज्योतिष, ७. धनुर्विद्या, ८ जलतरन, ९ न्याय, १० कोक, ११ अश्वारोहण, १२ नाट्य, १३ कृषि, १४ वैद्यक। दे० चौदह विद्या। भू भुव स्व. जन, तप, मह, सत्य, अतल, वितल, तल, सुतल,-महातत्त, रसातल, पाताल | दे० चौदह ठहर। चार वेद, छ वेदाग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छद, ज्योतिष), मीमासा, न्याय, धर्मशासत्र, पुराण। दे० कला। उबटन, स्नान, वस्त्र धारण, बाल सँवारना, अजन, सिदूर लगाना, महावर, भात पर तिलक, ठोढी पर तिलक, मेहदी, सुगंधित पदार्थों का प्रयोग, आभूषण, पुष्पहार, पान, ओठ रगना, मिस्सी का प्रयोग। विशुद्धाख्य चक्र। अठारह पुराण-विष्णु, वामन, पद्म, वाराह, शिव, अग्नि, ब्रह्म, ब्रह्म वैवर्त, ब्रह्मांड, भविष्य; भागवत, मार्कडेय, मत्य, नारद, लिग, स्कद, कर्म, गरुड़ | १२ करोड़, ३० लाख, एक हजार छ सौ साठ वृक्ष। २. चार फल वाली, चार लताएँ, छ. फूलो वाली, चार काँटो वाली। १ पॉँच प्राण। २. पाँच विषय (तन्मात्राएँ)। ३ पाँच इद्रियाँ। ४ अंत करण (मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार) । चौदह भुवन एवं सात द्वीप। १. आकाश के पाँच तत्त्व (काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय)। २ वायु के पाँच तत्त्व (चलन, वलन, धावन, प्रसारण, संकोचन)। ३ अग्नि के पाँच (्षुधा तृषा, आलस्य, छवि, मैथुन)। ४ जल के पाँच (लार, रक्त, पसीना मूत्र, वीर्य)। ५. पृथ्वी के पॉच (हाड़, मास, नाड़ी, रोम, त्वचा) | 9

८९६ चौतीस अक्षर छत्तीस राग साठ सूत चींसठ दीवा कबीर समग्र २. पाँच महाभूत, पॉच कमेद्रिय, पॉच- ज्ञानेद्रिय, पॉच विषय, मन, बुद्धि, अहकार, प्रधान (प्रकृति) एवं पुरुष | १ नाथ पथ मे शिष्य के बत्तीस लक्षण१. ग्यान पारछया-निरलोभी, निहचल, निरबासीक (निवासी), नि शब्द | २ बिचार पारछया निरमोही, निबध, निसक, निरवान। ३ बमेक (विवेक) पारछूया सरवगी, सावधान, सति, सारग्राही। ४ सतोष पारछ्या अजाचीक, अवाछीक, अमानीक, अस्थिर। ५ निरबता (निरालब) पारछया निहितरग, निहिपरपच, निरदुरी, निरलोप। ६ सहज पारछया सुमती, सुहदी, सीतल, सुषदाई। ७ सील पारछूया सुचि, सजम, सति (?), श्रोता | ८ मुनि पारछया ल्यो, लषि, (लक्ष्यम्), ध्यान, समाधि | ना औरस सा ना ना उप्र २ प्रधान योगासन भी बत्तीस है। कवर्ग से पवर्ग तक पच्चीस वर्ण। य, र, ल, व, श, ष, स, ह एव &। सगीत मे छ राग और उनकी क्रमश छ छ रागिनियाँ है। १ श्री राग-माल श्री, त्रिवेणी, गौरी, केदारी, मधु माधवी, पहाड़ी। २ बसत राग्र-देशी, देवगिरि, वैराठी, टौरीका, ललित, हिडोल | ३ पचम राग-विभास, भूपाली, कर्णाठी, पटहसिका, मालवी, पट मजरी। ४ भैरव राग-भैरवी, बगाली, सेधवी, रामकली, गुर्जरी, गुणकरी। ५ मेद्य राग-मल्लारी, सैरिटी, सावेरी, कैशिकी, गाधारी, हर श्रृगार | ६ नट नारायण राग-कामोदी, कल्याणी, आभीरी, नाटिका, सारगी, हम्मीरी। १ पष्टि तत्र (साख्य) ६० पदार्थों पर विचार। २ षष्टि सवत्सर। चौसठ कला १. गीत। २ वाद्य। ३ नृत्य। ४ चित्रकारी। ५ भूर्ज पत्र को तिलकाकृति मे काटना। ६ पूजार्थ चावल एवं अनेक अग के फूलो,से सजाना। ७ पुष्पो से ग्रह सज्जा। ८. शरीर एव दातो को रगना। ९ फर्श पर मणि बिछाना। १० शय्या रचना। ११ जल वाद्य। १२ जल घात। १३. मत्र-तत्र प्रयोग। १४. माला गूँघना। १५ सिर पर आभूषण धारणकरना। १६. व्ालालकार। १७ हाथी दाँत, शख के अलकरण। १८ सुगध निर्माण। १९ मणियो के आभूषण। २० इन्द्रजाल क्रीड़ा। २१ वाजीकरण। २२ हाथ की सफाई। २३ भोजन निर्माण कला। २४ पेय निर्माण। २५ सिलाई। २६ सूत से चित्र निर्माण। २७ वाद्य वादन। २८ प्रहेलिका प्रयोग! २९ अल्क्षरी। ३० क्लिष्ट श्लोक वाचन। ३१ पुस्तक वाचन। ३२ नाटकादि ज्ञान| ३३ समस्यापूर्ति। ३४ बेत एवं सरकंडो से वस्तु निर्माण/ ३५ मीनाकायी एव पच्चीकारी। ३६ बढ़ईगिरी। ३७ गृह निर्माण। ३८ मणि एवं रल परीक्षा।

प्रतीकात्मक एवं पारिभाषिक शब्दावली ८९७ ३९ धातू शोधन। ४० मणि रगना। ४१ वृक्षार्यवेद। ४२ भैड-न्मुर्गादि लड़ाना। ४३ तोता-मैना पढ़ाना। ४४ शरीर मे मालिश। ४५ सकेताक्षर ज्ञान। ४६ गुप्त भाषा ज्ञान। ४७ विभिन्न देशो की भाषा का ज्ञान। ४८ फूलों से रथादि बनाना। ४९ शकुन विचार। ५० स्वचालित यत्र बनाना। ५१ स्मरण शक्ति वर्धन की कला। ५२ श्लोको का पुनरास्मरण। ५३ क्षिप्त अक्षरों से श्लोक निर्माण। ५४ कोश निर्माण। ५५ छद ज्ञान। ५६ अलकार ज्ञान। ५७ बहुरूपियापन। ५८ वस्राधारण कला। ५९ दूत कला ज्ञान। ६० पासा की क्रीड़ा। ६१ बच्चों के खेल का ज्ञान | ६२ आचार शाखस्र का ज्ञान | ६३ विजय विद्या ज्ञान। ६४ व्यायाम विद्या ज्ञान। अठसठि अड़सठ तीर्थ। कोठ बहत्तर शरीर की बहत्तर ग्रथियाँ। पुरुष बहत्तर ग्रंथियों १६ कडराएँ, १६ जाल, ४ रज्जु, ७ सेवना, १४ अस्थि सघात, १५ सीमत, १ त्वचा। चौरासी ८४ योनियॉ। चोरासी तिद्र सरहपा, कण्हपा आदि। छानबे पांड १२ योगी, १८ जगम, २४ शेवड़ा, १० सन्यासी, १४ दरवेश, १८ ब्राह्मण। ये छयानवे सप्रदाय। समाप्त

The text on this page is estimated to be only 48.24% accurate

४५] ए> भो नि पथ 0 अप जजर थे बीज बी से अककर बह 2 जम जम न्येश बोस अल्प ८००७०. गम पथ को मन गया न ६३... जेगम पथ मन स्थिर रहे हि मल हु:६.. आम हता सो सुगम किया अटा पाल काट ४६३. ममहुने अमर है कम ४२६. जैंगर तितक स्रि सोहई अप कंदल प्रजास्मिः ०8४०. अंगवानी नो आइया अपर गति अनि अनि बई ० नि कक नाई ग्र्लज हर 22 72४2] हर ऊःऊ अग्नि न दे पवन नहीं अतजोय एक ४६८. जधट भया खटपट मिटे उत्प चाहि उिचारिय, ३६५. उचर चरे चर पर रहे अमर ने पर्स २३१. अचिरज एक सुहहुरे अचनार सुर कर्वा। न ग्मेर्ड ६६२ अच्छा दिन पाछे गया अच्यत च्यत ए माधी 2१ है लक न हि! कप श्् ब्ज्य्प हि ४ ५ हक] प्श् दर हि ।| हे (5 अच हरि बिन को तेरा ६३२ अँजपा सुमिरन घट विषय न पानी का अहाए है ४६५. जजिर धान्य अतीत का अबर छजो करलिया २३०. अजहू तेरा सव मिंट अबर घगान छाइया ८१३. अजहैं न सकया गई तुम्हारी अब कि गरि ममुद्र कि राई ८३०. अजहूँ मीच केसे दरसन तोरा अश्य बरिस हीरा निपजे २४५ जड़सठि तीरथ निन्दक का अपाडया ज्ञाव पड़ २३३. आणरता सुद्दा सीवणा अपड़ियां प्रेम कमाया 33. अणी सहेली सेत की अतिका भत्रा न बोलना अधिक रुनेही माछरी अर कर जा न बसओ कक मना श जाऊध कया थे. मर्नाह दी #< ७८ 4२३ ले हो (| शा जऊध काणी प्र वी आकल अर्थ म्गें ऊतरी ४०३ अनगाढ़िया देवा भे मन चेरना अमथरा ४०३. अनजाने का कूकना जिस विषना उगंददी ४०३. अनवावे लुनता नहीं जको विटना गिह ज्या ४०३... अनमाँगा मिले अति भत्तः सदी पुरुष एड पड़े है 4६५... अनग्गग्या उत्तम क्यो अनल पे आंच नहीं #| 58 प्र हर ॥ई ह#॥ कि. श्र न री अप बचे ड् हि । दा ्ड रा. इस सा ई+ 5. रूपए _8॥7 डूज. के १० का 5

पद सूची अनव्याही आकाश है अनभौ कि नैन देखिया अनल अकॉसों घर किया अनल पक्ष कै चीतवै अनहद अनुभव की करि आसा अनहद धुनि बाजा बजै अनहद बाजै नीझर झरै अन्तर जोति सब्द यक नारी अन्न नही जहाँ तप करू अन्य कथा अन्तर परे अपनी-अपनी सबकहै अपनी कहे मेरी सुने अपने अपने चोर को अपने अपने सिर पर अपने पहरै जागिये अपने विचारि असगरी कीजै अबकी घरी मेरी घर करसी अबकी जो साई मिलै अब कै जे सॉई मिल्ै अब क्या कीजै ग्यान बिचारा अब क्या सोचे आइ बनी अब गहु सत्यनाम अविनासी अब घटि प्रगट गये राम राई अव तो ऐसी हवै परी अब तो ऐसी ह्वे पडी अव तो ऐसी ह्वे पडी अब तौ ऐसी हवे परी अब तो मै ऐसा भया अब तो हम कचन भये अब तोहि जान न देहूँ राम पियारे अब तौ झूझयाँ ही वर्णी डदद ६६३ ३०६ ४ए८ प्रेरे ८0४ रष्द ८१२ ४११ ३६८ ४६० ३५९३ ४२५ ४एद ४०० ५३६ ६१७ ब्ध८ ३४६ अब न बसूँ इहि गॉह गुर्सोई अब मै जॉणिबी रे केवल अब मै पाइबो ब्रह्म गियान अब मै पायो राजा राम सनेही अब मै राम सकल सिधि पाई अब मै राम सकल सिधि पाई अब मोहि जरत राम जल पाइया अब मोंहि राम भरोसा तेरा अब मोहि ले चल नणद के बीर अब मौकी भाये राजा राम सहाई | अबरन कौ का बरनिये अबरह कौ उपदेस ते अब हम चले अमरापुरी अब हम जगत गौंहन तै भागे अब हम सकल कुसल करि अव हरि अपनी करि लीनीं अबहूँ मिल्ला तो तबहूँ मिलेगा अबिहड अखडित पीब है अविगति की गति कहा कहूँ अमर लोकते आइया अमल अहारी आतमा अमल माहि औगुन कहा अमल सिरानो लेखा देना अमृत की मोटरी सिर अरिहें तजी खसमहुँ तजी अरे दिल, प्रेमनगर का अत अरे परदेशी पीब पिछाति अरे भाई दोई कहा सो मोहि अरे मन धीरज काहेन धरै अर्व खर्व ली द्रव्य है अलख अलख सब कोउ कहै न 899 ६१५ ४६० ५२६ ६४० ए७द ६६३ ५६८ ५३१ ६६३ ३१७ ५१३ ४२७ ६९५६ ५३१ ६६१ ४६६ ४१३ ४२८ ४ए७ ६६३ ३५३ ३५४ प्र ६५२ ५९४७ 9७५ ३५३ ४६२

ब् ५ + 9: द्त्ण5 अं)३९ उहूं.कपकर, 70 द्श्द्रा अ्यतऋ छू. कन्का चयः 8 ता हीए2 34 परी ड जलट कफ अशजिओन पधटएन »अपुकडन रद न्द्त्त 30 02% है ्ा अनार आन निग्जन टेद काश उाल, चरजन ८८ जदस रगंम दस हमारा उपध मा नागा गुर मग ध्य् अवबधू गा दे व्यय गगन गाज ४ हा दल थू माया पेज ने जाए ५ ४ 775 पा गय कया सांग &, ४५ है ,-र कि अबदाह रण उपर ८ आकर ++कक टी | चंगद प्पे सीता भू च्ड (६ कर सभा कल #र७ >जयल अस-ज पः 2 अं हे अव्वत अत्तह नूर उपाया अष्ट सिद्धि नी सिद्धि लौं अस जोलहा का मरमन जाना अस्थावर जगर कीट पर्तेंगा असर रोग उत्तति भया असून्‍्य तखत आसन अडिग अह अगनि हृदये दहे अह भई जो स्त्री अहद लोक वहाँ है भाई अहार कर मन भावता अहि निसि नाम एक जो जागे अहिरन मारे कोंख में अहिरहु त्तजी ससमहुँ तजी अहो गोच्यद तुम्हारा जोर आऊंगा न जाऊंगा आझड़िया रतनालिया आंखों देखा घी भला आंगणि वेलि अकासि णत्र आगन वैलि अलख है आधरि गुष्टि स्त्रिष्टि भी वीरी आधी आई ज्ञान की आइ न सको तुझ पे आकार दशरथ घर डोले आकास गगन पाताल गगन है आकासे मुखि ओंधा कुर्वा आयी केरे मादुके जआगा पीछा दिल करे आगि आच सहना सुगम हि भर 432] जल दादी नः प आगे कए दार्भ ना॥। फपषरस्मयग ४४४८ घ्एए ६६४8 सं४२

पद सूची आगि कहयों दाझी नही आगि जलावै अन दहै आगि जु लागि समुद्ध मे आगि जु लागि समुन्द्र महे आगि जु लागि समुन्द्र महै आगि लागि आकाश मे आगे खोजी पची मुआ आगे दरपन ऊजला आगे पीछे हरि खड़ा आगे सीढ़ी सॉकरी आगे आगे ही बरे आगे आगै दीं जले आगे आगै दी बरे आचारी सब जग मिला आज कहै हर काल्हि भाजींगा आज काल की पॉच दिन आज काल के लोग है आजा को घर अमर है आज काल्हिक निस हमे आज दिन के मै जाऊँ बलिहारी आजि के काल्हि कि पचे दिन आजुकाल दिन कइक मे आजु काल दिन कइक मे आटा तजि भूँसा गहै आठ गाठ कोपीन के आठ जाम चौसठि घरी आठ पहर चौबीस घड़ी आठ पहर यों ही गया आठ वाट बक री गई आठलटू पहर मतवाल लागी रहै आत्मा अनदी जोगी ३०८ ४६४ ३५४ ३५४ ३५४ ४१० ४५६ ४७३ ४८६ ७६१ द्०८ आदि अत सबको नही आदि अत और मध्य लीं आदि अंत नहि होत विरहुली आदि मधि अरु अत ली आदि हती सब आपमे आधी अरु रूखी भल्री आधी साखी सिर खेंड़े आधी साखी सिर खेंड़े आधी साखी सिर कटे आन भजे सौ आधरा आप सवारथ मेदनी आप साधु करि देखिये आपण यींीं न सराहिये आपन यींीं न सराहिए आपन को न सराहिये आपन पौ न सराहिये आपनि आपनि शीर की आपने मै रागि आपनयों जानूँ आपा तजे हरि भजे आपा मेटे हरि मिले आपा मेल्या हरि मिलै आपा राखि प्रमोधिये आपे पावक आपे पवना आब गया आदर गया आया अण आया भया आया था ससार मै आया प्रेम कहा गया आये है तो जायेगे आयी दिन गौने कौ हो आरत सौं हरि भक्ति कर आवत गारी एक है 90] ३६२ ४६६ ८०८ ३५३ ३६२ ४६४ ३५५ ३५५ ३०८ ४१८ ३३३ ४५५ ५११ ३४६ ४52 ४६२ ३९५ ५३६ ३५५ ४८९ ३२२ ४३५ ६६५ ४४१ २६० २४३ ४०६ ४२२ ००7 व्य ४०९ ३६७

The text on this page is estimated to be only 18.87% accurate

है जि ह ञ ऊ हू ० 72% | का जहर हि + 8 ने कल $)(] है। [१ ४ मा दा था ह£ $ ८ हि बडे ६ उग बडे पक. 39 के +#,+ हि फ्रक... ४ क्र भा को ि कक $ & + हुक आर जअख क्र बन ये ० # कै... कर फ् है हट के क्र 0 लह अ्् थ् कल भरत ञ्क भ्क है के ऊ गु ब् ५ नि ७... ५ ली रत + जा हि कं हर हि दल पड लक के 3 कक 9 5 ८ कक न ट्प हु धर बात कक कब < ध् हि चैरी... ७ 5. कक श्र जज के हॉ थे पक + ञ हि बह !७ डा ल्‍ कं ्बशक ञ्न कर बन न्् ग 5 जब ्् श शक भा है * ट मर ४ ४; कहा 'श 5 कर्ज जज करों ध् ू मै र्‌ री े क्र कक ह डे पक हू 5 ज्र # पी ; उस श् ल् ते है। के न] हु है जि बह 5 का के हक १४ मी हु ड़ ऋ 4 ह रः 5 हे ध का के. ० न अ कक चल्ल डक ञ हु कर पु न जे ० है] हक कह ३ रो 55 क्र रॉ न ५. ८ कही ख् इ्रछी ज्ड ् पक हे डे कस 5 छे $ घ की रु ड कं ल्‍ के नर शत न ऊ के ० कु हू बच +े था हक द # की *> श्र ग] 9) री नः फ्क कर ं + ९ 4५ ऊ 7: ६ न्क ्: हु ल्‍ * के] ह्न त्तः न ञ ञ कि हे ञ क्र के ऊ दे हु के ० नि रे हे + करन हे बॉ न चर हि > न जे ी. श्े डा ड़ डक 3 जज कु ऊँ बह कक हु का के के हु भर जो ड़ पक हि दा ्ू: च्क फल क्ड म हे । है सर के 9 मे) रद हा शः के ह अत श्छ ऊःश रू रे 5 रच म्् ल्‍ हक ल्‍ ३5 २ 3 हा पु + ५ ह्च | के: स्व हर अं डा हट ड डे न कु + ० ला नह क ््ड हू पा दर ३० का जज» सी ५ ्र्म्जै जड़ 2१ा+ हि आन हि कर झ ३ जय है 2 ्ड् ञ कक कक कक क्ष्च्: कर $क् अत भा बा क जा लड़ पी हे. पलक... कुंड न्क्षगर मान ४. >> ्म्ड 3 5, चज कफननजांकाप्टनयतवकननकु. ५०३११म४ आड़े फनरा ककया पउकपय ३ कथ,७

पद पूची उज्ज्त वून्द अकाश की उड्डुगन मीन सुधाकरा उतते सतगुर आइया उतीवब कोई न आवई उत्तम भीख जो अजगरी उत्तर दक्षिन पूरव पश्चिम उथले रहहु परहु जनि गहिरे उदक सुभद सलल की साख्या उदर समाता अन्न ले उदर समाता माँगिले उनई बदरिया परि गौ सझा उनपुनि चढ़ी अकासकें उनपमुनि लागी शून्य मे उपजै निपजै निपजिस भाई उलटत पवन चक्रषट भेद उत्नय ज्ञान विचारिके उलेटि जात कुल दोऊ बिसारी उलटि समाना आप मे उस सम्रथ का दास हीं उस्तुति निदा दोऊ बिवजित ऊकार आदि है मूला ऊँच भवन कनक कामिनी ऊँचा कुल के कारणे ऊँचा कुल के कारणै ऊँचा कुल नीचा मता ऊँचा चढ़ि असमान कू ऊँचा चड़ि असमान कें ऊँचा तरुचर गगनफल ऊँचा तरुवर गगन फल ऊँचा दीस धोलहरा ऊँचा मदर धौलहर ४४ष्८ 3२७ २७१ इध८ ४६१ ७६१ ६६७ ३६७ रे६७ ८२१ ४१० * ४१० द्द७ ६६७ ४६० ६६७ २५९ छध्८ ८५७ ५१३ ४३२ ३४८ ३४१ ४१० ४७६ ४८४ ४१६ ३३६ ऊँचा मदिर मैरिया ऊँचा महल चिणॉइया ऊंचामहल चिनाइया ऊँचा विरष अकासि फल ऊँची जाति पपीहरा ऊँचे कुल कहा जनमिया ऊँचे कुल की कामिनी ऊँचे कुल कहा (क्या) जनमियाँ २६७, ऊँचे पानी ना टिके ऊँडा चित्त रु सम दशा ऊँनमि विआई बादली ऊजड़ खेड़े टेकरी ऊजड़ खेड़े ठीकरी ऊने आई वादरी ऊपर की दोऊ गई ऊपरि की दोऊ गई ऋद्धि सिद्धि जाको फुरी ऋद्धि सिद्धि मागू नही एक अचभा ऐसा भया एक अचभा देखा रे भाई एक अचभा देखिया एक अचमभो देखिया एक अनुपम हम किया एक एक निरुवारिये एक ओर सुन नर मनि ठाड़े एक कनक और कामिनी एक कनक अरु कॉमिनी एक कनक उरु कॉमिनी एक कनक अरु कॉमिनी एक कनक अरु कॉमिनी एक कनक अरु कॉमिनी 903 ४१६ ए०६ ४१६ 3२६ ४१७ ४३३ ४५७ ३४२ ४१६ ५०२ ४६३ ३५६ ३९६ द्ध्द ६६० ५२६ ३३६ ४८८ ४६३ ३५६ ८०५ ४३८ रश्पप रेप८प ४३८ 43८ ४३८

The text on this page is estimated to be only 22.13% accurate

48$4 र् ही -0 2 ्ढ हि री को न हक अ्क हे हछ रे पजरउ्त रे गई + 82) है है | रु । १६ « रे] ३] से नौ और हे हर रै३ 2 (4 है (5 एज है (5 जा] डर (2 हक हे २४४ तप ४7, +, * के घ है हैं के ६८११ धक *॥ | हे ईर् 4ह३४ ५० है| हर डा जब 52 82 है केक: अं की हर हे हर $ ५, $ २5 | ग््: रद रॉ ३४ 308 ३ कक $+ 9 63 न पं, जा डे दे ४६ २ छह हि 7 + ह ह५५ डर का 2 कड़क हरेक ९ई बु |, मेड़ए न ूर ॥४ १५ * ८ $ रे ५ ॥ श्र 3 १॥9 अं (6४73 8/ +* * ह/ ६ कह 20 एव ६. $ / अक2/2 स्का अर ज #ह 44% है डर एड ६४ डर है; कैट ब/ की हो; है है है ॥ &६ है, 4व ४ #& बे हर हम रस जिक के डे + 2 2 4 72 /| ० है 7५ # न हक ॥ट्र:१ $, ्: है, कं डर डाक» 2 २ # 48 $% ६5 टू > डै शक गहीहदि आय हिआाई पडा दान क छा हा दूर बा ऑल हुँ + 7 2 रे पर डे ७ ककिनाए ल शा ्3 हज ये शव मा) * के हैंड 0 7५६ «८ १६ 3] कट 8 >+ जे हस्कपनफलटीमीलननकार रत एक मसन्ल न» 5, रे & हे ड़ कछ 38 कक 2 78 / हर] ३ 4घ2 ४ 5 मु डू४ गडं ह्ल्ह् अर हट 0 2 नत हि ल्ब हैं 5६ ४ ई 9 वीफ ६ ६5 हजरत फढछ पिंक की. बज) क्री ४५८ * ई » ++ ० ् 2 कि 435 हप् है. ४ है डी पं पुन ड़ के कली 24 + > है हे हे | हु के क्च्छ के आड़ है ह्ढ द्यु रद ̄ है द््खई पल ्| ६७ डे वाल आज हे पे + छा की डा 3] है ५१५ आ १6+ आह ५ इज कड़े |»> $ ० » ह्ड्ेड ई क्र पर बद हल अंक कि । भ् बन्रे ७ ध््ु हैँ हा दर $+ छह ह >ऊअ5ह $ ईल है कही" हे 34920: द हद आज ले कह» बह थे ््के च् हे ँ लत + कक शत हे: हज अपर ख हू । रैक + हलक, हज जी. 0 07 62 डर इ +. जे 3४ _* १ 42% ्प है 4 है ३) कै ४१३ कट ७ ५ ८+. के ४१% 08 2074 280 पु #, भ हृत१ ७१ ४४ अाईड #2 श्र ्: ज्चा कर 7 न + | 8 ७) रह प/५ « ४/०) ४८६ पु हे कर आऑ है अप २ के के आफ प् # ६ ४ श० + 7 जे, टम्तिद्वा ३ पहु | से हि कटे डे $ पा दि ० 7 न हा हा व धो है 95 के चछड 92 पक 0 0 4 पद ४0७ ५ $ है भू हे हक ४४४ गए धर $ के ४ मे ४5 २४ हे क "327 230 टप मिली सर गन क्र है. शक हर ला कर किया: हट हह« १९३ 0४ कर्ख रे ध न >>, ३७४ हि कर रेप उस कि है एक: + षट हु ३5, शा डर हि की. क्ड > 308 आई हा ॥ मं १४ श्र 5 बकरे » रूह छ है हैक दुशर रा अ हे * ५५ र कक कक मन नहा... + ५2८43 १; + जद के कद भू ज्भ्थू खा 4० ० न भू ्ड ला कप कै. ही 5 के श्ऊ ञ २७. न जी की +, "032 जन कक की अर > 33 गा डा बाप हा का छा इक. 3, कब बढ. #*% ऊंसकि. उड़ क्त्ो ७68. >च्य. ३.8. 35% अटं अचक हि र् आओ 2 है ड्से डर य्सै जा हर 2 ओम न ल्पी अं न ख््शक डक ज$, थे १ .] ह्न्श चुद हू ख

पद सूची ऐसी ब्याई सो तुई ऐसी भॉति जो सती है ऐसी रे अवधू की वाणी ऐसे देखि चरित मन मोह्यौ मोर ऐसे महेँगे मोल का ऐसे लोगन सूँ का कहिए ऐसे साच न मानई ऐसे मन लाई ते राम रसनों ऐसो अचरज देख्यौ कबीर ऐसे दुर्लभ जात शरीर ऐसी इहु ससार पेखना ओकार सबै कोई सिरजै ओई जू दीसहि अबरि तारे ओढ़न मेरा राम नाम औगुन कहु शराब का औगुन किया तो बहु किया आंगुन को तो ना गहै औगुन मेरा बापजी ऑऔंगुनहारा गुन नही और देव नहि चित्त बसे और धरम सब करम है औरनि समुझावते और पतित तो कूप है और सुरति बिसरी सकल और दारुसब करी जऔसर बीता अल्पतन जऔसर बीता अलपतन कचन के कुडल बने कचन केवल हरि भजन कचन दीया करणने "कचन स्यों पाइये नही तोलि ३६५ ६०७ छद्प३ ४०३ ७८ ४७४ ६८६ द्द ८०्२ ६६६ ७६४ द्द ७9६४ ४८७ ४६७ ४६१ ४६७ ४६५ ३६५ ४४६ ३५७ ४द८ ४१५ ४द८ ३४६ ४द८ ४४४ ४९६ द्६६ कई बार नहि करि सकै कछु करनी कछु करम गति कठिन कमान कबीर की कत नही ठौर मूल कत लावी कथणी कथी तौ क्या भया कथणी बदणी सब जजाल कथत कथत युग थाकिया कथता बकता सुरता सोई कथते है करते नही कथते है करते सही कथनी कथि फूला फिरै कथनी काची हो गई कथनी कूँ धीजू नही कथनी को तो भानि कै कथनी धोथी जगत्त मे कथनी बदनी छाड़ि दे कथनी मीठी खाड सी कथा करो करतार की कथा करो करतार की कथा कीरतन कलि विषै कथा कीरतन कलि विषै कथा कीरतन छोड़ि के कथा कीरतन करन की कथा कौरतन रात दिन कथा कीरतन सुनन को कनक कामिनी देखिके कनफुक्का गुरु हद्द का कपट कुटिलता छॉड़िके कपटी का गुरु चातुरी कब देखूँ मेरे राम सनेही कबद्ुँक मन गगनहि चढ़ै कबहूँ न भयउ सग अरु साथा 905 ४९५९ ४१० ध्परे रेप८३ ६०७ ४६२ ४३६ ४३६ ४3३५ ४३५ ४३६ ४३६ 3३५ ४३९ ४३५ रेधद ३६८ ३६८ ३६८ ३६८ इ्दद रेदद रद्द २३५७ ३६५ ४श्षद्द ६१६ ४२३ ८३१

The text on this page is estimated to be only 21.00% accurate

3६ ड़] दे नव

पद सूची कविश पढिवा दूरि करि कबिरा पाँच पखेरुआ कबिरा पाँच बलघिया कविरा पानी हो का कविरा पाहन पूजि के कबिर पूछे राम सं कबिरा पूणे शालिग्राम कौ कंबिरा बहुत भटकिया कविर ब्राह्मण की कथा कबिस ब्राह्मण बूडिया कबिरा बेटी को भाटी लेगई कविरा बैद बुलाइया कबिस बैद वुलाइया कबिरा बैरी सवल है कंविरा भत्रि विगारिया कंविरा भूल्रा दगा में कबिरा भूलि बिगारिया कबिरा भेदी भगत सों कविरा भेरे बैठ के कबिरा भेरे बैठि के कबिरा मदिर आपने कविरा मन का माहिला कबिरा मन तीखा किया कविरा मन तो एक है कबिरा मने दीया नही कबिरा मन पक्षी भया कबिरा मन मरकट भया कबिरा मन मेवासी भया कविरा मन हि गयद है कबिरा माया जात है कविस माया पापिनी २८४ ४७२ ४५३ ४२० ४४५ श्छद्द् ४४५ डद्दद८६ ४३९ ४३५९ ४्दद ४७५ ४७५ ४२३ ४६७ ४६७ ४१४ ४१७ ४६४ ४७२ ४२५ ४७५ ४२४ ४१८ ४५९० ४२४ ४२४ ४२४ ४३9 ४३० कबिरा माया बेसवा कबिरा माया रुखड़ा कबिरा माया सूम की कबिरा माला काठ की कबिरा माला काठ की कबिरा माला काठ की कबिरा मूढ़क प्रानिया कबिरा मेरे साधु की कबिरा मै तो तबहि उरी कबिरा मोतिन की लरी कबिरा यह गति अटपटी कबिरा यह चितामनी कबिरा यह तन जात है कविरा यह तन बन भया कबिरा यह मन मसखरा कबिरि यह मन लालची कबिरा या ससार को कबिरा थे जग आधरा कबिरा योगी बन बसा कविरा रसरी पॉव मे कबिरा लज्जा लोक की कबिरा लहरि समुन्द्र की कबिरा लौंग इलायची कबिरा वन वन मे फिरा कबिरा वह तो एक है कबिरा वा दिन यादकर कबिरा शीतलता भई कबिरा शीतल जल नही कबिरा सगति साधु की कबिरा सगति साधु की कबिरा सगति साधु की कबिरा सगति साधु की 907 ४३० ४३१ ४०२ ४४७ ४४७ ४६७ ४६१ ४द्चद ४१० ४२६ ४२० 3२० ४२० ४२५ ४२५ ४४६८६ ब्पद ४७५९ ४२२ ४४४ ४२५ ४५६ ४४६ ४४८ ४२० ४६६ ४९७ ४४६ ह्४६द ४४६ ४४६

. पृदसूची .. कबीर करत है बीनती कबीर कलिजुग आइ करि) कबीर कलि खोटी भई कबीर कबल प्रकासिया कबीर कप्तीटी राम की कबीर कसौटी राम की कवीर कस्तूरी भया कबीर कहता जात हूँ कबीर कहता जात ही कबीर कहा गरबियो कवीर कहा गरबियौ कबीर कहा गरबियौ कबीर कहा गरबियी कबीर कहा गरबियौ कबीर कहा गरबियौ कबीर कहै पीर कूँ कबीर कहै मैकथि गया कबीर काजी स्वादि बसि कबीर का घर शिखर पर कबीर का तूँ चितवै कवीर काया समुन्द्र है कबीर कारन सो भयो कवीर काहे को डरे कबीर किया कछु न होत कबीर कुल तो सो भया कबीर कूकरु भींकता कबीर कूता राम की कबीर केवल राम कहि कबीर केवल राम की कबीर केसौ की दया कबीर कोठी काठ की २८० ३६६ कबीर खेती किसाण का कबीर कोहने क्या बणै कबीर क्षुधा है कूकरी कबीर खाई कोट की कबीर खालिक जागिया कबीर खोजी राम का कबीर गरबु न कीजिये कबीर गरबु न कीजिये कबीर गरबु न कीजिये कवीर गरबु न कीजिये कबीर गागर जल भरी कबीर गुड़ कौ गमि नही कवीर गुण की बादली कबीर गुदड़ी बीषरी कबीर गुरु गरवा मिल्या कबीर गुरु बसे वारानसी कबीर गाफिल क्या फिरे कबीर घाणी पीड़ते कबीर घास न नीदिये कबीर घोड़ा प्रेम का कबीर चदन का बिड़ा कबीर चदन के निड़ै कबीर चलया जाइ था कबीर चावल कारने कवीर चित्त चमकिया कबीर चित्त चमकिया कबीर चित्त चचल किया कवीर चिनगी बिरह की कबीर चेरा सत का कबीर जत्र न बाजई कबीर जग की को कहै ५१५ ४०६ २७७ ३३६ श्२६ ५१० ५१५ २४८६ ३३१ ३ 0० ३४८ ५१५ २१६ रे८द ४०१ ४०६ २२३ ३३६ २७६

The text on this page is estimated to be only 19.71% accurate

हे १5 3 भ बर् +$

पद सूची कबीर प्रेम न चाषिया ' कबीर फल लागे फलनि कबीर बहुत दिवस/ भिटकत रहया कबीर बादल प्रेम का कबीर बिगरया राम दुहाई कबीर बेड़ा जरजरा कबीर भग की प्रीत्तड़ी कबीर भया है केतकी कबीर भर्म न भाजिया कबीर भलत्री मधूकरी कवीर भाठी कलाल की कवीर भूला दग मे कबीर भूलि बिगाड़िया कबीर भेष अतीत का कबीर मंदिर आपणे कबीर मदिर लाष का कबीर मंधि झुग जेको रहै कबीर मन का वाहुला कबीर मन गाफिल भया कबीर मन तीषा किया कबीर मन निर्मल भया कबीर मन पखी भयो कबीर मन परी भया कबीर मन फूल्या फिरै कवीर मन बिकरे पड़या कबीर मन मधुकर भया कबीर मन मूड़या नही कवीर मन मृधा भया कबीर मन मृतक भया कवीर मन्दिर ढहि पड़या कबीर मनमाना तौलिए कबीर मरीं 0 मॉगो नही ६३७ र्८द८ २७० प्र्र रद्द २४० ५१८ ५०४ २५८ ५१० ए०छ कबीर महवी करि घालिया कबीर महल बनाइया कबीर माया चौरटी कबीर माया डौलनी कबीर माया डालनौ कबीर माया पापनी कबीर माया पापणी कबीर माया पापणी कबीर माया मोहनी कबीर माया मोहनी कबीर माया मोहनी कबीर माया माया मोहनी कबीर माया जिनि मिले कबीर माया ढाकणी कबीर माया मोह की कबीर मारग अगम है कबीर मारग कठिन है कबीर मरि मड़हट रहा कबीर मारूँ मन कूँ कवीर माला काठ की कवीर माला काठ की कवीर माला मन की कबीर मुख सोही भत्रा कवीर मूँडठ करमियौँ कबीर मेरी जाति की कवीर मेरी बुद्धि को कवीर मेरी सुमिरनी कबीर मेरे ससा को नही कबीर यह चेतानी मत कबीर यह तन जात है कबीर यह मन कत गया कबीर यहु घर प्रेम का ४०१ 9॥ ५१८ २२५९ ५१८ ५१८ ५१८ २७३ २७३ २७४ २७४ २७४ २७४ २७८ २७८ र७घ् २७७ २७२ र७र ३२१ २६७ २६३ ४०६ २६४ ४०२ ३४७ ९१८ ए१८ ५१८ इरशप८ रद्र २७० ३२३०

The text on this page is estimated to be only 40.60% accurate

-- ३ * +++ जला

पद सूची कवीर सूषिम सुरति का कबीर सेरी सॉकड़ी कवीर सेवा की दुड कबीर सोइ मारिये कबीर सोइ मुख धन्नि है कबीर सोई कुल भल्रो कबीर सोई दिन भला कबीर सोचि बिचारिया कबीर सो धन सचिए कबीर हदके जीव सूँ कबीर हरणी दूवली कबीर हरदी पियरी कबीर हरि का डर्पता कबीर हरि का भाँवता कबीर हरि का भावता कबीर हरि की भगति कर कबीर हरि की भक्ति का कबीर हरि की भगति का कबीर हरि की भगति बिन कबीर हरि के नॉव सूँ कबीर हरि के नाम मे कबीर हरि के नाम मे कबीर हरि के मिलन की कबीर हरि चरणीं चल्या कबीर हरि रस यौं पिया कबीर हरिसवकूँ भजै कबीर हरि सूँ हेत करि. कबीर हीरा वणजिया कबीर हीरा वणजिया कबीर हरि रस बरषिया कबीर हरि सबको भजै कबीर हसणणों दूरि करि २७३ २६६ ५२१ ५२१ ५२१ ठे 00० ३०८ २७५ २६४ ५१० ३०७ ५११ ३०१ ३०१ ४०५ २६६ २६० ३१० ४०१ ४०१ ४०२ ३३८ २४८ ३३३ ३३७ ५९०१ ३३१ ३४७ ३६४, ३३३ २३३ कबीरा उलटा तान क कबीर तुही कबीर तू कबीरा धूर सकेल के कबीरा प्रेम कूल ढरे कबीरा सत नदी गयो बाहि रै कबीरा हमरा कोइ नही कबीरा हरि के स्रूते.. ५ कबीरा हीरा बनीजिया कबीरा हरि रस जिन पिया कबीरा हरिहरि सुमिरत्रे कमल पत्र है साधु जन कमोदनी जलहरि बसे कया कमडल भरि लिया कर कमाण सर साँधि करि करगडण दुर्जन बचन करता करै बहुत गुण करता की गति अगम है करता था तौ क्यूँ रह्या करता दीसे कीरतन करनी कारज मानही करनी करनी सब कहै कर पकारै अगुरी गिने कर पललौ के बल खेले नारि कर बदगी विवेक की करम करीमों लिखि रह्या करवतु भल्रा न करवट तेरी कर सेती माला जपै करिये तो करि जानिये करी बाहुबल आपनी करीम कबीर जु बिह लिख्या करै सुहाली लापसी कर्म करीमॉ लिखि रहा २२४, 93 ४६० ५२१ ६१२ प्८० २६३ ८०२ ३९८ ३१२ २६३ ४९७ ५०७ ४१८

9]4 कर्म हमारे काटि है कलयुग काल पठाइया कलह काल औ कल्पना कलि काठी काले घुना कलिका ब्राह्मण मसखग कलि का स्वॉमी लोभिया कलि खोटा जग आधरा कतियुज केरा व्राह्ममा कलि को ब्राह्मण मसकरा कली काल ततकात है कस्तूरी कुडलि वर्स कस्तूरी कूडलि बसे कहइत मोहि भयत जुग चारी कहकवीर चित चेतहू कहते सुनत जग जात है कहत सुनत जग जात है कहत सुनत संव दिन गए कहत सुनत सब दिन गए कहता तो बहु मिता कहता हूँ कह जात हूं कहता हूँ कह जात हूँ कहता हूँ कह जात है. कहते को कह जान दे कहन सुनन को जिहि जग कीन्हा कहना था सो कहि दिया कहहि कबीर पुकारि के कहाँ ते जीवहि आइया कहाँते तुम जो आइवा कहाँ बुन्द सायर मिती कहाँ ले कहीं जुगन की बाता कहा आकास का फेर है कहा करों कैसे तिरीं ये ४१३ ८१२ शंर२८ ४र्‌८ ३६३ पद कहा कियी #म आई करे काग्म चुनाव मेड़िया कहा नर गरवसि थोरी बात कहा बतावे वाहिरे छहां भयो तन चीछुरे काम भयी तिनक गरे जपणाला कड़ा भर्यी रचि स्वाग बनाथी कहा भरोरों दे; के कहां स्वान की सिृत्ति सुनाये फहिए ती ररि जाँणिये का कबीर खोजी अममान कु पड़े फेरे रुचि कीजे कहु पीछे सुचि कपन टॉव का रे जे कशिये की हो कप 2, करे कवर तहें रैन-दिन आरती के कदीर सुनो हे रापु को कबीर मुख कहा ने जाई कहे कीर विचारिक को कबीर कठोर # कह कबीर पुऊारिक की कबीर देइतू कहे कनीर पुदयरिके कहे कबीर लूटि तै कहे दरवारी बातरी कह पात वा पार सो कहीं भदया अम्बर कौर तागा कॉए चिणाये मातिया काकर पायर जोरि के काँची कारी जिनि करे कौंमणि अँग विरकत भया कौंमणी काती नागणी कबीर समग्र श्‌६० ४१६ ध्द्द ४७५

पद सूची कॉमणी मीनी षॉणी की कासे ऊपर बिजुरी काइथि कागद काढ़िया काइर हुँवा न छूटिये कागज केरी ओबरी कागज केरी नाव री कागा करक ढेंढोरिया कागा कर ककन चूथिरे काचा सेती मति मिले काची काया मन अधिर काची कारी मति करो काज कनागत कारटा काजल केरी कोठड़ी काजलकेरी कोठड़ी काजलकेरी कोठड़ी काजल की ही कोठरी काजी का बेटा मुआ काजी कौन कतेव वर्षोनि काजी मुल्ता भरमिया काजी मुल्ला भ्रमियाँ काटी कूटि माछली काटे बधन विपति मे का नॉगे का बॉधे चाम काटि कूटि जबह करे कान लगी सुनहा कहे काबा फिर कासी भया काम कथा सुनिये नही काम कहर असरवार है काम काम सबको कहै काम काम सब कोई कहै कम क्रोध तृष्णा के लीने र्८४ श्दद र्पदि ४०६ ४७५ रद्द २६१ ३५६ ४८६ ५४८ ४८७ २६० २७० ४६३ ५७४ ४८६ ४७१ ३०७ ३६८ ७00 काम क्रोध मद लोभ की काम क्रोध सूतक सदा काम क्रोध सूतक सदा काम परे हरि सिमिरये काम मिलावे राम कूँ काम हरक्कत बल घटत का मॉगूँ कुछ धिर न रहाई कॉमी लज्जा ना करै कामी अर्मी न भावई कामी कदै न हरि भजै कामी कबहुँ न हरि भजे कामी कर्म की काचली कामी का गुरु कामिनी कामीकूँ तो तीस दिन कामी क्रोधी लालची कामी क्रोधी लालची कामी तरै क्रोधी तरे कामी तो निर्भय भया कामी थे कुत्तौ भत्नी कामी से कुत्ता भला कायर का घर फूस का कायर को कौतुक भला कायर बहुत पमॉवही कायर भागा पीठि दै कायर सेरी ताकवै काया कचन जतन कराया काया कजरीवन अहै काया कजली बन भया काया कफ चित चकमकै काया कलालनि लादनि मेलौ काया करूँ कमॉण ज्यूँ काया काची कारबी 9]5 ४३६ ४३६ ४३६

96 काया काटी काल घुन काया देवल मन धजा काया मजन क्या करे काया मजसि कौन गुनों काया सीप ससार मे कारन वपुरा क्या करे कारनि कौन सँवारे देहा काल कसे कर्म कसावै काल काल तत्काल है काल खड़ा सिर ऊपरे काल जीव कौ ग्रासई काल सिहाणै खड़ा काल हमारे सैंग रहे काल बूत की हस्तनी मन बौरा रे काला मुँह करि करदका काला मुख कर मान का काला सर्प शरीर मे कालि करता अवहि करु काल्हि करै सो आज करु काशी काबा एक है का सिधि साधि करौ कुछ नाही कासी कॉठे घर करै कासी गति ससार की कासूँ कहिये सुनि रामा काह कूँ माया दुख करि जोरी काह बड़े कुल ऊपजे काहूकों नहि निन्दिये काहूकों नहि निन्दिये काहू दीने पाट पटबर काहे कूँ भीति बनाऊँ टाटी काहे को कलपत फिरै ४७४ २७० २६४ ६३८ ४१० ५१४ ६४५ ४७५ ३६५ ४७३ ३३४ ४७३ ७9०१ ४८७ ४३२ ३४६ ५१४ ४७१ ४७० ५७३ रपर ५३७ ५5३ ३५६ ४६२ ४५५ 9०१ ६७२ ४४३ काहे री नलनी तू कुम्हिलॉनी काहे रे मनदह दिस धावै काहे वीहो मेरे साथी काहे हरिणी दूबली कितेक सिव सकर गए अठि किनही वनज्या कॉसा ताँवा कियो सिगार मिलन के ताईं कीचड़ आटा गिरि परया कीड़े काठ जु खाइया कीर्तनीया सौं कोस विस कुटिल वचन सवते बुरा कुदरत पाई खरीसों कुबुधि कमाना चढ़ि रह.» कुमति कीच चेला भरा कुमति हती सो मिटि गई कुरु क्षेत्र सब मेदिनी कुरु बहियाँ वल आपनी कुल करनी के कारने कुल करनी के कारने कुल खोयों कुल ऊबरे कुल टूटे काची परी कुशल जो पूछे असल की कुशलहि कुशल जो पूछता कुसल खेम अरु सही सलॉमति कूकरा बहु जुरिमुआ कूकस कूटे कन बिना कूटन सोइ जु मन को कूंटै कूप पराया आपना कृष्ण करीमा एक है कृष्ण समीपे पाडवा केउ केउ तीरथ व्रत लपटाना केता बहाया बहि गया कवीर समग्र ५५० प्प्द ६३१ ३४६ ५४० ७०१ ५9०१ ५१४ ४०८ ४६१ ४६६ २२५९ ४६६ र्ट८ ४७५ ४४२ ३९८ ४२१ ४२१ २६३ ४७१ ४७१ ६७४ ध्पर ४३९ ४३६ ४७० ३६० ४३६

पद सूची 97 केतिक दिन एहि गए ३६० कोटि सायने पचि मुये ४९६ केती लहरि समद की ३०० कोटि सूर जाके परगास ७०२ केला तबहिन न चेतिया ३६०, ४४८. कोठी तो यह काठ की ३६० केशे कहा बिगारिया ४४७. कोठे ऊपर दौरना ४२१ केसू भैंवर न बैठई ४७७ कोठे मडप हेतु करि ५१४ कैसी कहा बिगाड़िया २६४ को बीने प्रेम लागी री ५३४ केसौ कहि कहि कूकिये २१५ कोयला भी होय ऊजला ४४८ कै कुशल अनजान के ४७१ क्रोध अग्नि घर घर बढ़ी ४४१ के खाना कै सोबना ४३३ कौंण कौंण गया राम कौण कौण न कै तू लोरे मुकदमी ४६६ जासी ६२५ कै रत्ती भर सुरति है ४६०... कौंण देस कहाँ आइया २७७ के विरहिन कूँ मीच दे २३५ कोटि सूर जाके परगास ७०२ . कैसे तू हरि कौ दास कहायों ६३८ कोठी तो यह काठ की ३६० कैसे नगरि करों कुटवारी ५५६ कोठे ऊपर दौरना ४२१ कैसे होइगा मिलाबा हरि सनों ५३७. कोठे मडप हेतु करि ५१४ कोइ एक देसे सतजन ३४४ को बीने प्रेम लागी री ५३४ कोइ एक राख सावधान ३११ कोयला भी होय उजला ४४८ कोई आवै भाव ले ४६६ क्रोध अग्नि घर घर बढ़ी ४४१ कोई प्रेम की पेग झुलावै ७८७ कौंण कौंण गया राम कौंण कौण न कोई पीवै रे रस राम नाम का ५९२ जासी ६२५ कोई लरका बेचई ५२१ कौंण देस कहॉ आइया २७१ कोई सुनता है ज्ञानी राग गगन मे... ७८४. फीतिग दीठा देह बिन २३६ कोउ हरि समान नही राजा ७०२ फीन कसे कौन कसावै ४७४ कोटिक चन्दा अगवै ३६१ कौडी कौड़ी जोरि कै ५१४ कोटि करम केर पलक मे ४२३ कौन कॉज सिरजे जग भीतरि ७०३ कोटि कर्म पल मे करे २६६ कौन तुम्हारी जाति है ४२८ कोटि कर्म फिरे पलक मे ४०१ कौन को पूत पिता की काकौी ७०३ कोटि कर्म लागे रहै ४४१. कौन पवन घर सचरे ४२६ कोटि क्रम पेले पलक मे २१६ कौन पवन धरती बसे ४२७ कोटि कोटि तीरथ करे ४५७ कौन पवन लै आवही ४२७ कोटिन भानु-चद्र-तारागन छत्र की कौन बिचार करत हौ पूजा (७५ छोहरहाई ७८४ कौन मरे कहू पडित जनों ५४४

9]8 कौन मरै कौन जनमै आई कौन मुरली शब्द सुन आनन्द भयी कौन राम दशरथ घर डोले कौन शब्द की नाव री कौन सरोवर पानि विन कैन साधु का खेल है कौन सुरति ले आवई क्या जप क्या तप क्या व्रत पूजा क्या पढ़िये क्या गुनिये क्या मुख ले विनती करूँ क्या है तेरे न्हाई धोई क्यूँ नृप नारी नीदये क्यूँ लीजे गढ़ बका आई क्रिया करे अगुली गिने क्रितिया सूत्र लोक एक अहई क्षण और पत्र्क की आरती कौन सी क्षमा क्रोध को क्षय करे क्षमा बड़न को चाहिये क्षमा साधु का खेल है क्षीर रूप हरि नाम है खभा एकहि गयद दो खरी कसौटी राम की खलक मित्रा खाती रहा खसम कहावै वैणव खसम न चीन्हे बावरी खसम मरे तौ नारी न रोवै खाडा तिसको बाहिये खाटा मीठा चरफरा खाटा मीठा देखिके खान खरच बहुअतरा खाय पकाय लुटायले (कमी 5 ५४३ ७७३ ४६८ ४७४ ढंर्द ७०३ ७०३ ४६७ ६६६ ३०५४ ६७१ ४४७ ४६३ ७७४ ७०३ ४८० ४६४ ४६४ ३६६ खालिक हरि कही दरहाल खाली साधुन विदा करु खिथा जलि कोयला भई खुलि खेलो ससार मे खूदन नी धरती सहै खूब खाड है खीचड़ी खूब खाना खीचरी खेत न छोडे सूरिवॉं खेत भल्रा वीज भला खेलजु माडा खिलाड़िसी खेलति माया मोहिनी खेह भई तो क्या भया खेह भई तो क्या भया खेचू ती आवै नही खोज पकरि विश्वास गहु खोजी हूवा भद का गग के सग सलिता विगरी गग गुसाइन गहिर गभीर गग जमुन उर अतरे गगा तीर जु घर ऊरहि गउ जो विष्ठा भक्षई गगन कमण्डल के बीच मे गगन घटा घहरानी साधो गगन नगरि इक बूँद न वर्षे गगन मडल के वीच मे गगन मडल् के वीच मे गगन मडल के बीच मे गगन गरजि अमृत वर्षै गगन गरजे वरषै अमी गगन दमॉमा वाजिया गगन दमामा बाजिया कवीर समग्र ६३० ४५९६ ५१४ ४७४ ३१६ २६० ५१४ ३२८ 3६० ४८२ ८0४ ५०८ ४८९ ४२२ ४६३ ४६६ ७०४ 80०४ २५३ ५१४ ४८७ ४११ छए८४ ७०४ ४७६

पद सूची गगन दमामा बाजिया गगन दमामा बाजिया गगन छुवारे मन गया गगन बुन्द सायर मिली गगन मठ गैब निसान गड़े गगन मडल के बीच मे गगन रसाल चुए मेरी माठी गज वन गज दस इक्कीस गज सादे ते तै धौतिया गये राम औ गये लक्ष्मना गर्भ योगेश्वर गुरु बिना गर्भवास महि गला काटि कलमा भरे * गला गुसा को काटिये गली तुम्हारे नॉँव पर गहगच परयीं कुटुब के गही टेक नहि छोड़ई भही टेक छाड़े नही गॉठि होय सो हाथ कर गाठी दाम न बाधहा गावनीया कै मुख बरसौं गागर ऊपर गागरी गाय भैस घोड़ी गधी गाय सेय हँसि खेलिके गाया तिति पाया तही गारि जेंगारा क्रोध जलन गारी मोटज्ञान गारीहीसों ऊपजे गावणही मै रोज है गावे कंथे विचारे नाही गिरवर धारयो कृष्ण जी ३६० ढ्फट ३६८६ ४६१ ४२७ ४३८ ४३८ ३१४ ४४२ ३६७ ३६७ ३६० ४६३ गिरही सेवे साधु को गिरिये पर्वत शिखरते गीरही तो चिता घनी गुड़ करि ज्ञान ध्यान करि गुण गाये गुण ना कटे गुणिया तो गुण ही कहे गुन इंद्री सहजे गई गुन गाये गुन ना कटै गुर दाधा चेल्या जल्या गुरुआतो ससता भया गुरु किया है देह का गुरु की आज्ञा आबई गुरु की कीजे दण्डवतत गुरु की भेली जीव डरे गुरु को तो गम्य नही गुरु को मानुष जो गिने गुरु गुरु मे भेद है गुरु गोविद तो एक है गुरु गोविद कर जानिये गुरु गोविद दोनो खड़े गुरु चरण लागि हम बिनवत गुरु जहाज हम पावना गुरु तुम्हारा कहाँ है गुरु धोबी शिष्य कापड़ा गुरु नही चेल्ा नही गुरु नाम है गग्य का गुरु पशु कुल पशु नारि पशु गुरु पारस गुरु परस है गुरु पारस को अतरा गुरु बतावै साधु. को गुरु बिन अहि निस नाम ले 99 ४५४ ४४८ ३६७ छ०९ २१८ २६१ २१६ ७०५ ४७४ ३६१ ४२३ ४९८ र्७ ४६० २२१ २२१ २२६ ३६१

The text on this page is estimated to be only 44.33% accurate

| स्

पद सूची घाटहि पानी सब भरे घायल ऊपरि घावले धायल की गति और है घुघचवी भर के बोये चचल मनवा चेत रे चद चकोर की ऐसी बात जनाई चद सूरज दुई जोति सरूप चदन काटा जड़ खनी चदन की कुटकी भल्री चदन की चुटकी भत्री चदन गया विदेसड़ै चदन जैसा सन्त है चदन भागा गुण करे चदन रूस बदेस गयौ चदन रोया रात भरि चदन वास निवारहु चंदन सर्प लपेटिया चदा झलकै यहि घटमाही चद्र-तपन कोटि दीप बरत है चद्र सूर्य घर पवन लीं चकई जौ निसि बिछुरै चकवची बिछुटी रैणि की चकौर भरौसे चद चकौर भरौसें चद कै चक्र के बीच मे कवल अति फूलिया चढ़त चढ़ावत मड़हर फोरी चढ़ी अखरै सुदरी चतुर विवेकी धीरमत चतुराई क्या कीजिए चतुराई चूल्हे परी चतुराई नहि अति घनी ४२८ ४४० ४७६ ३६२ ४२२ पर२४ ७छ6द ष्प८ ३०४ ४५५ ४्पप८ ४५९० ३१९ ४८८ ३६२ ३६२ ७५५ ६० ष्ज्ध् ् ५१५ ३६२ डर छ६० पर३८ ४६५ ३६५ ४३४ ४३६ ६१५ चतुराई सूबे पढ़ी चतुराई हरि ना मिलै चतुराई हरि ना मिले चत्र भुजा कै ध्यान मे चदन डर लहसुन करै चदन परसा बावना चरखा चले सुरत विरहिन का चरखा जिनि जरे चरन कमल की मौज को चरन कमल जाके रिदे बसे चारिउ बेद पढ़ाइ करि चारि खानि मे भरमता चलत कत टेढ़ौ टेढ़ौ रे चलत मनसा अचल कीन्ही चलती चककी हो देखा चलती चाकी देखिके चलता चलता पग थकै चलते चलते पगु थका चलन चलन सब को कहत है चला हसवा देस जहँ पिया बसे चितचोर चल चत्ि रे भेवरा कवल के पास चली मेरी सखी हो चली जात देखी एक नारी चलूँ चलूँ सब कोई कहै चलूँ चलूँ सब कौई कहै चलौ चलौ सबको कहै चलौ बिचारी रहौ सँभारी चलो सखी जाइये तहाँ चहुँ दिशि को योधा खड़े चहुँ दिशि पाका कोट था चाँव नही सूरज नहीं 92 २८१ श्दपू ४४८ ५०७ ४९० ४६७ ५३० ५१५ २८० २२० ६५१ ७७२ ३६२ ४७४ ४२८ ३६३ ५३६ ८० द्८४ ६५६ ८४२ ४२७ ४३८ २७१ ७४ ६४८ ४७३ ४७३ ४११

पद सूची जकलागी जोगी हुआ जग काजल की कोठरी जग का ठेगा बुरा है जग जहदा मे राचिया जग जीवन ऐसा सूपने जगत गुर अनहद कीगरी बाजे जगत जहदम राचिया जगधधा रे जगधधा जग बॉध्यों जिह जेवरी जग माही धोखा घना जग मे चारों राम है जग मे डोडी कामिनी जग मे बैरी कोइ नही जग मे भक्त कहावई जग मै चेत्यो जानि कै जग सूँ प्रीति न कीजिए जगसों आपा राखिके जग हटवाड़ा स्वाद ठग जतन बिन मृगनि खेत उजारे जदि का माइ जनमियाँ जदि विष पियारी प्रीति सूँ जन कवीर का सिषर घर जन कबीर बदन करी जन कबीर बदन करै जन की पीर हो राजाराम भल जेनि जनम मरन विचारि के जनम मरन बीच देख जन्म मरन का भ्रम गया जन्म मरन से रहित है जप जप दीखै धोथरा जप तप दीसे थोधरा ४१० ५१५ ५१६ ४२० ७०७ ५८१ २६५ ए्द६५ ५१५ ४४२ ४६२ जप तप सयम साधना जपि जपि रे जियरा गोव्यदो जबका माई जनमिया जब गुण कूँ गाहक मिलै जब गुन को गाहक मिले जब घर मोह समाइया जब जरिये तब होइ भसम जब थै आतम तत्त बिचारा जब दिल मिला दयालसों जब मन लागै लोभ सों जब मै झूला रे भाई जब मै था तब हरि नही जब रग था तब ना रगा जब लग तेल दीवे मुख जब लग घर पर सीस है जब लग नाता जातिका जब लग पीव परचा नही जब लग भगति सकॉमता जबलग मेरी करै ५ जब लगि आस शरीर की जब लगि कथनी हम कथी जब लगि ढोला तब लगि बोला जब लगि तारा जगमगे जब लगि नाहि विवेक मन जब लगि प्रिय परिचय नही जब हम एकी एक करि जानिया जब हम रहल रहल नहि कोई जबही नाम हृदया धरयो जबही मा्र्या खैचिकै जबहूँ मारया खैचि करि जम ते उलटि भये है राम 923 ३६६ छप्प ४६६ ३४० ४८६ ४४२ ठट ए्दद ४१२ ४४१ 9७9६ २४५, ४१० ४3७१ ७छ०द ४८१ ४०४ श्धद २५४ छ०0८ ४८४ ४१५ ३६३ ३६४ ४४३ ४१२ छठ ८३१ ४०१ २२४ 9२१

पद सूची जाके चलते खदे परा जाके निगम दूध के ठाटा जाके बोली बंध नही जाके मन विश्वास है जाके मुनिवर तप करे जाके सद्गुरु नहि मिला जाके हिरदय हरि नही जाके मुह माथा नही जाकै हरि सा ठाकुरभाई जाको राख सॉइया जाकौ चेता निरमया जाग पियारी अब का सो जागहु रे नर सोबहु कहा जागिरे जीव जागिरे जा गुरु ते भ्रम ना मिटे जागृत रूपी जीव है जाग्या रे नर नींद नसाई जा घट प्रेम न संचरे जा घट मे साईं बसे. जा घर साध न सोवियहि जा घर हरि कीभक्ति नही जाणी जेहरि की भर्जो जाणों ईधू क्या नही जा तन मेंहै मन धरे जा तन वेदन जानैगा जन सोई जाता है जिस जान दे जाता है सो जॉण दै जाति जाति के पाहुने जाति जुलाहा क्या करे जाति न पूछी साधु की जाति बरन कुल खोयकै ३६५ ७०६ ४४४ डदद३ ३६५ ३६५ ४३४ ३१५ ७१० श्७द् ३१२ छ७च्चछ द््द््८ द्र्ध्प ३२६५ छद्द्द ४०७9 ४६४३ ह ५१७ ४५९० २७४ प््०्८ ५९०५ ६४१ 3७9४ ३१६ ४८३ ५१५ ४५५ 8०० ५ जाति हमारी ओआतमा जा दिन कृत मनों ना हुत जा नरि राम भगति नही साधी जानि के अनजान हुआ जानि बूझि जड़ होय रहै जानि बूझि जड़ होय रहो जानि बूझ्ि साची तजै जानीता जब बूझिया जानीता जब बूझा नही जापर किरपाकरिंह साई जा पल दर्शन साधु का जा पाथर को कहिवे देव जाय मिला परिवार मे जाया जाया सब कहै जारि बारि मिस्सा करे जारो जग को नेहरा मन बौरा जाली इहै बड़पणों जा सुख को मुनिवर रंटे जासों दिल नहि मिलिया जाहि खोजत कल्पे बीते जाहि जात नॉव न लीया जाहि रोग उत्पन्न भया जिनके नौबति बाजती जिनके हाथ निशान है जिनको सॉई रग दिया जिन खाया सोही मुआ जिन गढ़ कोठि किए कचन के जिन ढूँढ़या तिन पाइयाँ जिन नर सॉच पहुँचानियोँ जिन पोरऊँ सै कतरी जिन पायन भू बहुफिरा 925 ४२८ २४४ ५७१ ४१९ ४१५ ३६५ ४४८ ररद श्रद छ८० ४९० 99३ ४ए८ ४७३ ४७४ ८०५ ३४८ ४९४७ ३६९ ३६५ ६२४ ४६३ २५६ ४७४ ४३७ ७१० ३६३ 8४४ ५०७ ४१३

The text on this page is estimated to be only 21.54% accurate

926 लिन माता भू बह फिा हफाय जन इक नौट (न्िाह/ छह रह लिति घराधा विनिय गा शेर रब है हुक कक न््क्ािजिग | पर 4 ए मरा! है « मन ३ जिंदा शव ट] पीजी 7 हए ४ 4 ४४ मर है ३०३९ १8“ 28 0 लेबल हें हि न श्; हे | $ मो 5,004 हरा हो पड + ५ *.. 3३] $५॥९ प्म दि हू रह 7 पर है $ हे ०# कह हे हर बल हु ३ 2208 रैक 7 « थुड ४ के हा सह के हो हि हॉहो हुई ३ दुल हज हा । हद सुचक लक अब आह] # # ४» / € ४ $ «२६५ 5 बुँ% ४ न + कप 220 कक 3. हु रू ३ व न्ल्ह हर डर ० ड डर हलक न तर हे $(पर अं न ह्ल्ि 5३३) ० आ न शा. # वह 2 7 ही नेक + कट >न्थर> करे >मके- अकाल! डा डर ड़ हू २७ का लहर इई हैलो ड् ् दर्द जो डक डे रह 35% ५ 3] न ४ पच्झ्ूर 28. ७ हा: | ध् बी ता ॥.] ५ (नल _औड्व ह 6 भौतरा >> हुं! + «४8 भू ईर बे बडे न हडीई कॉ आई +5 छः के 9 $ "क्र ४४८६ रन न * बता | इक रही रा बज ५ न हू भें बह थॉ र्म ईह्ड जे र्ज की रे टू का कर डे 77% ४ हि २० + ३१ /+कन डडं हिल कई है «ने ऋज जडुए हक लभत्रः कक #क #/ 9३ ्(यु शेड [कान री ३ रद दा ध्ज हा # लय | कई व कर ॥ऋ ४» ।् $। >> णे _ 8 3६६. 7 के के हे दो (० कक दा न हर] क्र कक 6 रक हर न र ४ कह ्डै न] ++«# रब कब 2 22 * बी 8 ५ शाप ही ६ 66 57 ४४ कर क ४ न ० अप न ही $ हा ज # उड़े जु8: ज * बैक >"प २२७ + स्रक पट हि परम / रह हु है जा # क्ष्ऊ बस “कफ जरर्ख * ः ७ नि के ४४७४४ 7. कड़ी 2»१# के के ही 5 का है. + मे कि हक १४ » 485 ई ' 2 जब. ऊन बा | के अब अबकी अजीत 23 ९ हैंड 5230 00000, हे ड्रे $बा इ्चे श तक का कि क्र हर 8 हा कि कक ऊ क्नर ञह्प के क्र $, ६२, आजतक... हा कह ७ ली ऊँ ब्लो कीच हि कब हक हट] पक जे | के हर कटा हा ब्.. $ हि जो चर अब तक की जि का करन कक _ २०० १" ंण

पद सूची जुरा कूती जोवन ससा जूजैंगे तब कहैगे जूना चोरी मुखबिरी जे हारया ती हरि स्वां जे करे गॉठि समर कछु नाही जे कार्ट ती डहडही जे को नीदे साध कूँ जे को मरै मरन है जैता घट तेता मता जेता घट तेता मता जेता मीठा बोलणों जेती देषी आत्मा जेती लहरी समुद्र की जेते जतन करत ते डूबे जेते तारे रैणि के जेते पत्र वनस्पति जे मन लागै एक सूँ जे वो एके न जॉणियोँ जेह बाझु न जीया जाई जेहि कारन सिव अजहेँ वियोगी जेहिगए पडित ताते जेहि मारग सनकादि जेहि रग दुलह निपाहन आए जेहि वन सायर मुझते जेहि वन सिध न सचरै जे पै करता वरण बिचारै जैसा अन्न जल खाइये जैसा दूँढत मे फिरूँ जैसी उपजै पेड़ सूँ जैसी कहे करे जो तैसी जैसी गोली गुमज की ३३१ ३६७ ३६६ २५४ २९४ ७१२ ८३९ ३६६ रे६६ छधघर ३६७ ३६७ ५४२ ३६७ ३६२ ३१० र६७ ३६७ जैसी प्रीति कुट्ुम्ब सों जैसी लकड़ी ढाक की जैसो उपजी पेड़ ते जैसी मुख तै नीकसे जैसी मुखते नीकसे जैसी मुष तै नीकसे जैसी लागी पेड़ की तैसी जैसी लौ प्रथमहि लगै जैसे तिलक उनहार है जैसे मदर महि बाल हरना जैसे माया मन रमे जैसे माया मन रमे जैसे सूती रग रहा जोइ खसम है जाया जो आवै तो जाय नही जो ऊग्या सो आधवै जो ओंकार निश्चय किया जो कछु आवै सहज मे जो कुछ किया सो तुम किया जो कछु होय तो कुछ जो कबहूँ कै देखिये जो करनी अत्तर बसे जो कलपै तो दूरि है जो कामिनी परदा रहै जो कोइ सुमिरन अग को जो कोई करै सो स्वारथी जो कोई निन्दे साधु को जो खोदाय मसजीद बसतु है जोग की मूल जग जुगुति पाई जोग ते जीहर भला जोगिया तन की जत्न बनाइ रथ । ७७७

928 जोगी कहहि जोग भत्र जोगी जती तपी सन्यासी जो घर रहे सर्प का ता घर जो जन झीने राम रस जो जम परमिति परमनु जो जन बिरही नामके जो जन भाव भगति कछु जो जन लेहि खसम का नाउ जो जाचों तो केवल राम जो जानहु जगजीवना जो जानहु जिव आपना जो जैसा उन मानका जो तू चाहे मुझ्ञहिको जो तू प्यासा प्रेमका जो तू सॉचा बानिया जे ते सॉचा वानिया जो तोको कॉटा बुचे जो दीसे सो विनसि है जो दीसे सो तो नाही जो निगुरा सुमिरन करे जोनि छाड़ि जौ जग महि जो देखे सो कहै नही जो पकरै सो चले नही जो पहरा सो फाटिया जो पहर्या सो फाटिसी जो पाथर को कहिते देव जो बोले तो राम कहु जो भजी तो भय नही जो मन मे तो ब्रह्म मे जो मन समुझे ज्ञान मे जो मिला सो गुरु मिला ७३१ ७३१ ३६७ ३६७ ७१२ ७७२ जो मै चितवों ना करे जो मै बौरा तो राम तोरा जो मै रूप किये बहुतेरे जो यह मन चलै तो जो यहि भाँति करहु मतवाली जो या घाटी लघही जोर किया जुलुम है जोर किया सो जुलुम है जोरी करि जवह करे जोरी किये जुलम है जोरी कलिर जिहै करे जोरी कीयों जुलम है जोरू जूठणि जगत की जोवन सिकदारी तजी जो विभूति साधुन तजी जो हसा मोती चुगै जो हम जत्र वजावते जो है जाका भावता जो है जाका भावता जौन चाल ससार की जौन भाव ऊपर रहे जी गृह कर हित धर्मकरु जौ तुम मौकौ दूरि करत जी तुहि साध पिरम्म जी तुहि साध पिरम्म की जो तै रसना राम न कहियो जौं तोहि करता बरन बिचारा जी पै पियके मति नाही आये जौं पै वीज रूप भगवाना जौ मै ग्यॉन विचार न पाया जौ रोऊँ तो बल घंटे कवीर समग्र ५१६ ६६५ ७१३ ४२५ 9६० ४३८ ४८७ ५१६ ४८७ ५२१ २६० २६० सर्प ४७१ ४६४ ४४६० ५१६ ३२७ ४७८ ४५२ ४५२ ५१६ ७१४ ५१६ ९१८६ ९७३ पर३5 ९७६ ५०४१ ६२० २३४

पद सूची ज्ञान कथे बकि बकि भरे ज्ञान कामना लौ गुना ज्ञान रल की कोठरी ज्ञान सपूरन ना बिधा ज्ञानी अभिमानी नही ज्ञानी जन है जौहरी ज्ञानी ध्यानी सयमी ज्यूँ कोली पेतौँ बुनौ ज्यूँ ज्यूँ हरिगुण सॉभलूँ ज्यूँ ज्यूँ हरिगुण सॉमलीं ज्यूँ मन मेरा तुझ सौं ज्यो आबै त्योंही कहै ज्यों कपि के कर ज्यों कोरी रेजा बुत ज्यों जल छोड़ि बाहर भयो ज्योंतिल्न माही तेल है ज्यों दर्पण प्रतिबिम्ब देखिए ज्यों पय मध्ये घीव है ज्यों मुदराद समशान ज्योति की जाति की ज्योती ज्यों मेरा मन तुझझसों झगरा एक नवेरो राम झल ऊठा झोली झल बॉवै झल दॉहिने झूल्रा सो झूला बहुरि शूठा को झूठा मिल्रै झालि परे दिन आथये झिरक्षिरि झिरमिरि बरसिया जझिलिमिलि झगरा झूलते झी झी अतर बाजै झूँठि बात नहि बोलिये श्ददद डप२ रे६८ ४५७ ३६५ ४६० ४४० ३२० ३२० ३५० ४६० ७१४ ७१४ ४८३ ३६८ ४५४ रे६८ ७१४ श्छ८ ५३२६ २३७ ३१८ ३६६ ४४४ ३६८ ३४६ रेद्८ ७८३ ४४३ झूठा लोग कहै घर मेरा झूठे को झूठा मिले झूठे गुरु के पक्ष को झूठे त्तन कीं कहा रखइये झूठे सुख को सुख कहै टालै टीले दिन गया टीकलीका नमना कहा टीला टीली ढाहिके टूटा माहि टूक दे टूटी बरत अकास ये टूटे तागे निखुटी पानि टेक न कीजै बावरे टेढ़ी पाग टेढ़े चले टोटा माही हरि भजे ठाकुर पूजहि मोल ले टढ़े लोग कुटुम सभ देखे डडा मुद्रा खिधा आधारी डगमग छाड़ि दे मन बौरा डागल उपरि दौड़णों डारी खॉड़ पटकि करि डाल जो ढूँढ़े मूल को डुबकी मारी समुद्र मे डूबहिगो रे बापुरे डूबा था पै उब्बरयौ डौरि लागी भय मिटा ढाढस देखहु मरजीवा् ढाल दूत दिन गया ढिग बूडे उछले नही इहै दूँढत डोले अध गति ढोल दमामा गडगडी ढोल दमामा दड़बडी श्षद्द ४७१

930 ढोल दमामा वाजिया ढोल दमामा वाजिया तकत तकावत्त रहि गया तख्त तरेकी सो कहै ततद निनक लू शाक + तत पाया ग़न वीसरया तत्व तिलक को खानि है तत्व तिलक तिहैँ लोक मे तत्त्व तिलक माथे दिया तत्तुमस इन्हके उपदेसा तनका इड्री मैल है तनका मजन नीर है तन की जोगी सब करे तन खोजौ नर करो बड़ाई तन तुरग असवर मन तन दिखलावे आपना तनना बुनना तज्या कवीर तन भीतरी मन मानियाँ तन मद मनमद मायामद तन मन जोबन जारिके तन मन जोवन यों जला तन मन त्ताको दीजिये तन मन दिया तो कया हुआ तन मन दिया तो भत्र किया तन मन दीया आपना तन माही जो मन धरे तन राखन हारा को नही तन मे शीतल शब्द है तन रैनी मन पुनरपि करिहौ तन सशय मन सुनहा तन सदूक मन रतन है तन समुद्र मन मर्जिवा तन सराय मन पाहरू तबकहे भूलौं बनजारे वनजारे तय एक अनन्त डार साखा “4 ए० मूल विन ठाढ़ा तरवर तास विलाबिए तरवर रूपी राम है तरुवर परतमा ये कहे तरुवर सरवर सत जन तहाँँ जौ राम नाम ल्यौ लागे तहॉँ मुझ गरीब की को गुदरावे तहिया कृत्रिम न होता ताकी पूरी का परे तॉकू रे कहा कीजै भाई ताथै सेविये नारॉयणों प्रभु ताये कहिये लोकोचार ताथे सेविये नाराइणों प्रभु ताथये मोहे नचवो न आवै तामध अधरसिहासन गाजै ता मन कौ खोजहु रे भाई तामस केरे त्तीन गुण ता मैं थे मन लागीं राम तोही तारा मडल वैसि करि ताहि न कहिए पारखू तिविर सॉझ का गहिरा आवै तिणके आल्है राम है तिनका कबहु न निन्दिये तिलभर मछली खाय के तिलसमान तो गाय है तीजी छूटा सहरते तीन गुनन को बादली कवीर समग्र ४ंप३ ४२२ ६४३ ७१५ ७७१ ३३१८ ५१६ ४७२ 2०६ ६५६ ६६३ ३६६ ३६६ ६३६ ६२५ ६७४० ६१५ ६३६ ७9६ ५३६ ३६६ ६१९ रपर ३७० ७६३ ३४४ श्र ४८५ ४३१ ४७३ ४३०

। पद सूची तीन गुन की भक्ति मे तीर तुपक वरछी बहै तीन देव को सब कोइ ध्यावे तीन लोक उनमान मे तीन लोक चोरी भई तीन लोक चोरी भया तीनि लोक टीड़ी भया तीन लोक पिजरा भया तीनि लोक भो पींजरा तीर तुपक बरछी बह तीन लोक सब राम जपत है तीनि सनेही बहु मिले तीरथ करि करि जग मुवा तीरथ नहाये एक फल तीरथ मे तो सब पानी है तीरथ त सब बेलड़ी तीर तुबक सों जो लड़ै तीरथ गए ते बहि मुए तीरथ गए द जना तीर्थ भई विष वेलरी तुझ बिन सुरति करे को ' तुझ मे औगुन तुझहि गुन तुम तीौ समरथ साइया तुम वूझहु पडित कवनि नारि तुम्ह गारडू मै विष का माता तुम्ह घरि जाहू हँमारी बहनों तुम्ठ बिन राम कवन सौं कहिये तुम्हे ब्रिसारे क्यों बने तुरक मसीते देहरे हिन्दू तूँ दूँ करता तूँ भया तूँतू करता तूँ भया ४२ ४८१ ४६१ ४५१ _४२४ ३७० ३७० ४७३ ३७४० ४६१ ४६२ ३२५ पर्र ४५५ २६२ ध्रे ३७० ३७० ७१६ ४६७ ४द्द ५५७ ६३९ ६४१ ड्द्छ छ४५ २१४ ४१४ तूँ तूँ करता तूँ हुआ तूँ मति जाने बीसरो तूँ सकल गहगरा तू करी डर क्यूँ न करे गुहारि तू पाक परमानदे तू तू करता तू भया तू मति जाने बावरे तू माया रघुनाथ की तू मेरी मेरू परबत सुवामी तू सूरत नैन निहार वह अड मे सारा है ते दिन गये अकारथी ते हरि आवेहि किहि कॉमों तेरा तुझमे कुछ नही तेरा सगी कोई नही तेरा सॉई तुझी मे तेरा जन एक आध है कोई तेरा हरि नामै जुलाहा तेरे अन्दर सॉंच जो तेरे तन मन लागी चोट सठौरी तै सुत मानु हमारी सेवा तो तो करै त बाहुड़ों तोर हीरा हिराइल बा किचड़े मे तोहि पीर जो प्रेम तोहि मोरि लगन लगाये रे फकिरिबा त्रिकुटीही निज मूल है त्रिष्णों सीची नॉ बुझे त्रीया त्रिष्णों पापणी धूनि पाई थिति भई धिर न रहै चित धिर नर है धिति पाई मन धिर भया थापणि पाई थिति भई ४०६

932 थाके नयन स्रवण थाके धली जो जरता मिरगला थली चरते मिप्र ले धरथर कॉपे वाला जीउ थोड़ा सुमिरन वहुत सुख थोरे ही सो छाकिया दडवत गोविद गुरु दया कौन पर कीजिये दया कौन पर कीजिये दया दया भाव जाने नही दयावत धरम के ध्वजा दर की वात कही दरवेसा दरसन को तो साधु है दरिया पारि हिडोलना दरियाव की लहर दरियाव है जी दर्पण के गुफामहैँ दर्शन कीजे साधु का दसो दिशा सो क्रोध की दाग जु लाग नील का दाठी मूछ मुडाय के दाता के तो धन घना दाता तरवर दया फल दाता नरक सम वैकुठ दाध कलापी सव दुखी दाध वलीता सव दुखी दाघ वलीता सब दुखी दाबै दाझन होत है दाबै दाझन होत है दाया दिल मे राखिये दारुका मै पावक वसे दाल कबीर काढ़ी भली ७१६ ४२१ ५०४ ७१६ ३६६ ४१४ २१६ ध्य्द्ध ४६३ ४६३ ३६५ ८३४ ३४३ ७५८ ३७४० ४५५ ४४१ ४४६ ४४७ डट0० ३३८ ४४० ४६३ ३४३ ४१४ ३१६ ४६३ ३६१ ४९८ कवीर समग्र दास दुखी तो हरि दुखी ३६४ दास रामहि जनिहै रे ५३७ दासातन हृदय वसे ३६४ दासातन हृदये नही ३६४ दिन को रोजा रहत है ४८७ दिन ते पहर पहनते घरिया ७१६ दिन दिन जरै जलन के पाऊँ ८३७ दिन दिन दहूँ चहूँ के कारणे ६०१ दिल पर दिल जो मिले ४७६ दिलमाही जो दिल रहे ४७८ दिल ही मे दीदार है २२४ दीठा है तो कस कहूँ २५१ दीन गवॉया दुनी सौं २६३ दीन गरीबी दीन को ४३३ दीन गरीबी दीन को ३२३ दीन गरीबी वबदगी ४३३ दीन गरीबी वदगी ४३३ दीन विसारये रे दीवाने दीन विसारयो ७१७ दीन लखे मुख सवन को ४३३ दीपक जोया ज्ञान का ४१२ दीपक झोला पवन का ४४० दीपक दीया तेल भरि २०६ दीपक पावक ऑठिया २३७ दीपक सुदरता देखिकरि ४३७ दुआदैऊँतीदीजख जाऊँ ४५८ दुइ दुइ लोचन पेखा ७१७ दुख मे सुमिरन सब करे ३६६ दुख सुख एक समान है ३६४ दुखिया मूवा दुख कीं ३०६ दुनिया के धौखे मुआ ४२१ दुनिया के मै कुछ नही ४२० 30.22०4८०६०६-+

पद सूची दुनिया के मै कुछ नही दुनिया सेती दोसती दुनिया के धोखे मुवा दुनिया भाँडादुख का दुनिया बधन परिगई दुनिया हुसियार बेदार जागत दुविधा जाके दिल बसे दुर्बल को न सताइए दुर्मति दुर्मीति दूर करि दुलहनि गावहु मगलाचार दूजे ऋषि मुनिवर फन्दे दूजे दिन नही करि सके दूध काढ़ि घृत कहा गयो दूध त्यागि रक्त गहै दूध फाटि घृत दूधे मिला दूभर पनियाँ भरया न जाई दूर भया तो क्या भया दूरि भया तो का भया दृहरा तो नूतन भया देख वोजद मै अजब बिसराम है देखत ही दह मे परे देखन ही की बात है देखहु यह तन जरता है देखा देखी पकरिया देखा देखी पाकड़ै देखा देखी भक्ति का देखा देखी भगति है देखा देखी सब कहै देखि दखि जन ढूँढिया देखो भाई ज्ञानकी ऑधी आई देखो कर्म कबीर का देव चरित्र सुनहु रे भाई देवल माह देहुरी देवी देव ठाढ़े भए देवी देव माने सवै देषण के सबको भले देश विदेश मे हम फिरे देह धरे का गुण यही देह धरे को दड है देह मुहर लगाम पाहिरावी देही गावा जीउ धर्म हत दोख पराये देखि करि दोजग तो हम अगिया दोय बखत नहि करि सके दोष पराया देखिके दोहरा कतर कहहि कबीर दीं ल्‍्‍ागी साइर जल्या दी की दाधी लाकड़ी दौरत दौरत दौरिया द्वादश तिलक बनावही द्वार धनी के परि रहै द्वारे तेरे राम जी चौंकी दाधी लाकरी धनि धरी महूरत्य दिनॉ धन धधा व्यौहार सब धनि धनि साई तू बड़ा धन्न गुपाल धन्न गुरुदेव धरति समानी अधर मे धरती अम्बर जायेगे धरती अम्बर न हतो धरती अरु असमान बिचि धरती करते एक पग धरती गगन पवन नही होता >>
४१६ ४१६ पेर ३७१ ४६६ ७१८ ७१८ ३४५ ४५६ ४६२ ३७१ र३ेट ३३५ ४२६ ४४६ ३६४ - ३७१ ४७२ ६८७ ६४५ ४६५ १८ ४५२ ४३९ ३०७ ४७३ २४४

934 धरती जानति आप गुण धरती तो रोटी भई धरती फाटे मध मिले धरती हती पग धरो धर सों शशी उतारिके धरिया कू धीजू नही धरी मेरे मनवा तोहि धरि टागी धर्म कधा जो कहते रहई धर्म किये धन न घंटे धव की डाढ़ी लाकरी धागा ज्यूँ टूटे त्यूँ जोरि धारा तो दोही भली धीरज तो रोटी भई धीर पवन धरती बसे धीरा हवे धमका सहे धीरे धीरे खाइवी अनत न जाइवो धीरे धीरे रे मना धूम धाम में दिन गया धूम धाम सहता रह घ्वजा फरक्े शून्य में न कछु रे न कछु राम विना नगन फिरत जो पाइये जोग नग पषाण जग सकल है नगर चेन तब जानिये ननदी गे तै विषम सोहागिन नम निनवा तो क्या हुआ नयन के आगे मत वसे नरक स्वर्ग ते मैं रहा नर जाँण अमर मेरी काया नरदेही बहुरि न पाईये नरनारी सव नरक है नरनारी सब नरक्क है नर पछताहुगे अधा नर मरे नर काम न आधे नर मूरदाते खर भला नरहरि सहजे ही जिनि जाना नलनी ग्गयर घर किया नवणि नवी ती का भया नव मन दूध वटोरिक नवसत साजे कौंमनी नवरुत साजे सुदरी नष्ट का ई राज है नहाय खोरि उत्तिम हपे आये नहि कागद नहि लेसनी नहिं परतीत जो यहि ससारा नहि हीरा की बोरिया नहीं दीन नध्टि दीनता नहीं हाट नहि बाट है माँ कुछ किया न करि सकया नो गुर मिल्या न स्तिप भया नंगे आवन नंगि जाना नागिन के तो दोय न नाव घरावे दास सो नाव न जणी गाँव का माइक एक वनजारे पचि ना इहु मानुष ना इहु देव ना कछु किया न करि सका. नाचु रे मेरे मन मत्त हो नाये गावे पद कहे ना जाने साहब कैसा है नाद नहीं था विन्दु नही था नादी वादी बहु मिते कबीर ममग्र श्८५ ध्प्द छ१८ ४३२ ५२७ “57 वा लक, बफसललाज जन्नकनकीलाफकट 3० १

पद सूची नाना न जाने ग्राम को नाना भोजन स्वाद सुख नाना रग तरग है नाना रूप बरन एक कीन्हा नान्ह्रों काती चित दे नान्ह्रा करि तू चित्त दै नाभि कमलते उठत है नाम अनन्त जो ब्रह्म का नाम जपत कन्या भली नाम जो रत्ती एक है नाम न जाने गॉव का ना मै जोग ध्यान चित लाया ना मै धर्मी नाही अधर्मी ना मोहि छानि न छापरी नारद, प्यार सो अतर नाही नारि एक ससारहि आई नारि कहावै पीव की नारि पराई आपणी भुगत्या नरकहि जाइ नारि पराई आपनी नारि पुरुष की स्त्री नारि पुरुष जो कौन है नारि रचते पुरुष है नारी कहूँकि नाहरी नारी कुड नरक का नारी कूडी नरक की नारी केरे राचने नारी निरखि न देखिये नारी तौ हम भी करी नारी नदिया सारखी नारी नदिया सारखी नारी नदी अथाह जल ३७२ २८५ ३७२ ८४० २६५९ ४२१ ४६८ ४७० ४०१ ४०१ ४६५ ७१६ ७८१ ५१७ दर ८४२ ४१८ ऐछ ४३६ ४४० ४३७ ४३७ ४३७ २८६ ४३८ ४३७ ४३७ ४३६ ४४० ४३८ ४३८ नारी नसावै तीनि सुख नारी नाही नाहरी नारी नाही नाहरी नारी नाही यम अहै नारी सेती नेह नारी सेती नेह नारी से नजर न जोरिये नाव न जाने गॉव का ना वहाँ आवागमन था नाही आवा गमन था नाही छाड़ीं बाबा राम नाम निदकते कुत्ता भला निदक तौ नॉकी निदक नेड़ा राखिये निगुसाँवों वहि जायगा निज आसन सतोष मे निजमन तो नीचा किया निजमन माना नाम सों निजसुख आतम राम है नित उठि कोरी गागरिया नित खरसान लोह धन फूटे निधड़क बैठा राम बिनु निन्दक एकहु मति मिलै निन्दक नियरै राखिये निन्दक तो है नाक बिन निन्द्दक दूरि न कीजिये निन्दक हमरा जनि मरौ निन्दक न्हाय गहन कुरुखेत निबरक सुत्त लयो कोरा राम निबल सबल जो जानिके निरगुन आगे सरगुन नाचै 935 २८९ ५०६ ४३८ ४३८ ४३७ २८५ ४२७ ४२८ ४२८ द्प० ४६१ ५११ ३४५ ३२३ ४४१ २२२ २२२ ३६६ ७१६ ३७२ ३३९ ४६१ ४६१ ४६१ ४६९ ४६१ ४६१ द्ण्८ ४६२ ७६९५

पद सूची ध्थित सेती कहि रहे डित सेती कहि रहा 'डित होइ सु पदहि बिचारै डिया कौन कुमति तुम लागे थ निहारै कामनी ध बिना सतराग उचारै थी ऊभा पथ सिरि धी पथ पूछि नहि लीन्ही द्रह् तिधि सात बार (षि उडाणी गगन कूँ (षिउडाणी गगन कूँ कड़ समसेर सम्राम मै पैसिये क्ष-पक्ष नहि करि सके क्षापक्षी कारणे ढ़ना गुनना चातुरी ढ़ि-पढ़ि औरन समुझावई ट्ि-पढ़ि तो पत्थर भया पढ़ि-पढ़ि तो पत्थर भया पढ़ि ले काजी बग निवाजा पढ़ि-पढ़ि पडित करु चतुराई पढ़े गुने सीखे सुने पढ़े पढ़ाये कछु नही पण्डित मूल विनासिया पतिव्रता ऐसे रहै पतिव्रता कही एक तू पतिव्रता कै एक है पतिव्रता को सुख घना पतिव्रता तब जानिये पतिव्रता पति को भजै पतित्रता मैली भत्ती पतिव्रता मैली भत्ती २५२ २८१ प्र्८प ७२० छ२० छट० ३३५८ ज्द३ ७२१ २४३ ज्द्द८ ४५६ ३७३ ४३४ ४३६ ४३४ ४३४ पड प्रे८ ४३५ ४३५ ४ २५ ४१६ ४१७ ४१८ ४१६ ४१६ ४१६ ४१६ ४१६ पतिव्रता व्यभिचारिणी पद गाये लैलीन है पतिव्रता मैली भल्ती पतिव्रता मैली भली पतिव्रता व्यभिचारिणी पद गाये लैलीन है पद गोऐँ मन हरषियाँ पद जोरे साखी कहै पद निरबान है अनन्त अपारा पन छूटे छूटा फिरै पपिहाय का प्रण देखता पपिहा का प्रण देखता पपिहा प्रण कबहूँ न तजै पपपासों परिचय नही परदा रहती पद्मिनी परदे पाणी दाधिया परदेसी के घाघरे पर नारी के राचणै परनारी के राचने पर नारी कौ राचणी पर नारी पर सुदरी परनारी पर सुदरी परनारी पैनी छुरी परनारी पैनी छुरी परनारी राता फिरै परबति-परबति मै फिर्या परब्रह्म देख्या हो तत बाड़ी फूली परभाते तारे खि्साहि परम गुरु देखो रिंदे बिचरी प्रमातम गुरु निकट बिराजे परमारथ के कारने 937 ४१६ ३१४ ४१६ ४१६ ४१६ ३१४ रद३ ड३५ छछद १७ ४3१७ ४१७ ४८६ 39२ ३७३ ५१७ र्८९ ४३७ प्र्र स्पप ४३७ ४३७ ४३७ २८९ २३६ ६१२ ५९१७ ६४४ ध्च्दर ४०६

938 परमेश्वर ते सत बड़े परा पपिहरा सुरसरी परोसनि मॉगै कत हमारा पर्वत ऊपर हर बसे पर्वत-पर्वत मै फिरा पल मे परले बीतिया पवन नही पानी नही पष ले बूड़ी पृथमी पषा-पणी के पोषण पसुवा सौं पानौ पडो पसुवा सौं पानी पर्‌यी पहली बुरा कमाई करि पहली मन मै सुमिरी सोई पहले दाता शिष्य भया पहले प्रेम न चाखिया पहले प्रेम न चाखिया पहले बूडी पृथ्वी पहले यह मन काग था पहले शब्द पहचानिये पहले फटकै छाज कै पहिला पूत पछौरी माई पहिली कुरुप कुजाति कुलक्खनी पहुँचेगे तब कहेगे पहुँचेगे तब कहेगे पॉच की प्यास तहेँ देख पूरी भई पॉच तत्त्व का पूतला पाँच तत्त्व गुन तीनि कै पाँच पचीसूँ मारिया पाँच पहर धघ गया पॉच सहाई जीव के पाँचो बैरी जीव के ४५५ ४१७ ६७७ ३७३ ४५७ ३७३ २६५९ प्द्दर ५१२ ४६७ २१६ प्द९ ईूर२ ४०७ ४०७ ४४८ ४२६ ४ंपद ४६१ ७२१ घरर ४२६ २५१ ७६० ४४८६ ४८५ ४१६ ४२३ ४२३२ कवीर समग्र पॉड़े न कंरसि वाद-विवाद पॉडल पजर मन भेंवर पोंडे कौन कुमति तोहि लागी पॉणी केरा बुदबुदा पॉणी थे प्रकट भई चतुराई पॉणी माँहि ला मॉछली पॉणी मोहि घर किया पॉणी ही तै पातला पाँणी ही ते हिम भया पॉय पदारथ पेलिया पॉवहि पहुमी नापते पाषि उड़ानी गगन को पाहण केरा पूतला पॉहण टॉकि न तोलिए पाइ पदारथ पेलि करि पाई जोरि वात इक कीनि पाकी को मन पानरै पाकी खेत्ती देखि के पाकी ते डाकी भला पाटन ते ऊजर भत्रा पाडोसी सू रुसणाँ पाणि पियावत का फिरो पाणी केरा पूतला पाणी भया तो कया भया पाणी भीतर घर किया पाणी मेहि प्रजली पात जो तरुवर सौं कहै पात झरता यों कहे पात पड़ता यौ कहै पाती तोरै मालिनी पाती-पाती जीउ पाथर पानी पूजि के ६२६ ३१३ ५४१ ३३४ ६६६ ५०६ ३७३ ३७४ २३८ ४७२ ४७२ ५०६ ७२२ ४४५

पंद सूची पाथर ले देवल चुना पाधथरहीका देहरा पाधर ही का देहरा पानी ज्यौर तालाब का पानी ते अति पातला पानी मेंहकी मछली पानी पिरथी के हत्ते पानी बिच मीन पियासी पानी भया तो क्या भया पानी मैला माटी गोरी पाप पुतन्नि के हाथहि पासा पाप पुन्य दोउ बैल बिसाहे पापी को दोजख नही पापी पुण्य न भावई पापी पूजा बैठि कै पापी भगति न पावई पाया कहै ते बावरे पाया था सो गहि रहा पायो पर पायो नही पारख कीजै साधु की पापी पूजा बैसि करि पार ब्रह्म के तेज का पार ब्रह्म बूठा मोतिया पार ब्रह्म बूडो मोतिया पारब्रह्म सुभर भरा पारस परसि ताम्र भो पारस रूपी जीव है पारस रूपी राम है पारा कचन कादिलै पालि समुद सरबर भरा पावक कहाँ पाव जे दाझे ४४५ ४8४९ ५०६ ५०३ ३७४ ४७२ ४८८ ७9० ४८९ ७२२ णछेदद छरर ४८५ ड्८पद६ ५१७ ४५८ ४१० ४८प८ ४६० २६० २३६ ३४७ ४६६ ४८३ ३७४ ३७४ श्जद्द ४६१ ५१७ ५४२ पावक रूपी राम है पावक रूपी राम है पाव पलक की गमि नही पाव पलक की सुधि नही पाव पलक जो दूर है पासा पकड़्या प्रेम का पासि बिनठा कपड़ा पाहन पानी पूजि के पाहन पूजे हरि मिले पाहिन कूँ का पूजिए पिजर प्रेम प्रकासिया पिड मुए जिउ किहि घर जाता पिय परिचय तब जानिये पिया पियाला प्रेम का पीछे लागा जाइ था पीपर एक महागभान पीपर रूना फूल बिन पीपल पान झरतिया पीपल रूनी फूल बिन पीया चाहै प्रेम रस पीर सबन को एक-सी पीलके दौरी सॉड्या पीलक दौड़ी सॉइयों पीले प्यारा हो मतवाला पुर पट्टन काया पुरी पुर पाटण सुबस बसे पुहुप बासते पातला पुहुपन केरी बास ज्यों पूति पियारो पिता कीं पूरन बानी वेद की पूरा सतगुरु ना मित्रा 939 ४८३ ३७४ ४७१ ४७१ २१२ ३१५ ४४५ ४४४ र६२ २४१ छरर ४१२ ४१३ २०६ ३७४ ४२२ ४७२ ५०३ ४०७ ४८८६ ४९३ ३०२ छ७7४ ४२२ ४२६ ३६२ ४३४ श्श्द

940 पूरा सहजे गुण करे रूद्ध पूरे को पूरा मिल 38 पूरे सतगुरु के विना २२६ पूरे सूँ परचा भया २१३ पूरे सो परचा भया ४१२ पूर्व उगे पश्चिम विश्वे ३७४ पेवक दै दिन चारि है साहुडै जाना. ७२३ पैडा माही परि रहो ४८४ पैडे मोत्ती बिखरा ३३६, ४८६ पैठा है घर भीतरे ३७४ पैठा है घर भीतरे ३७५ पैठा है घर भीतरे ३७५ पै पानी की प्रीतरी ४२३ पोधी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ २८४ पौ फाटी पगरा हुआ ४६३ प्यजर प्रेम प्रकासिया २४१ प्यारे राम मनही मनों (४६ प्रगट कह'ुँ तो मारिया ३६२ प्रगट कहीं तो मारिया ३७५ प्रगट गुप्त की सधि मे ४५८ प्रगे प्रेम विवेक दल ४४२ प्रथम अरभ कौन को भैऊ ८१३ प्रथम एक जो आप आप ७दर प्रथम एक जो हीं किया ३७५ प्रथम चरन गुरु कीन्ह विचारा ८१३ प्रथम फदे सब देवता ४४२ प्रभुता को सब कोउ भजे ४३२ प्रध्लाद पठाये पठन साल ७२३ प्रॉगी काहै कै लोभ लागि ६२२ प्राण पड की तजि चले २७३ प्राण पिड को तजि चलें ४२६८ प्राण पूज्य किरिया ते न्यारा प्राणी तो जिभ्या डिगो प्राणी लाल औसर चल्यी रे वजाइ प्रातकाल के जाल मे प्रीतम को पतिया लिखूँ प्रीतम वाके दोजना प्रीति बहुत ससार में प्रीति रीति दया करो प्रेत कनक मुख अतर वासा प्रेम छिपाया ना छिपे प्रेम न खेती नीपजे प्रेम पाँवरी पहरि के प्रेम पाट का चोलना प्रेम पियारे लालासो प्रेम पियाला भरिपिया प्रेम पियाला भरिपिया प्रेम पियाला सो पिये प्रेम प्रीति का चोलना प्रेम - प्रेम सव कोइ कहै प्रेम-प्रेम सव कोई कहे प्रेम वनिज नहि करि सके प्रेम विकाता मैं सुना प्रेम विना जो भक्ति है प्रेम विना धीरज नही प्रेम बिना नहि भेष कछु प्रेम भक्ति को है घर प्रेम भक्ति मे रुचि रहै प्रेम भाव इक चारिये प्रेमी ढूँढ़त में फिरी प्रेमी दूँढ़त मै फिरा फल कारन सेवा करे कवीर समग्र ७७४ ३७५ ६५९३ ४४३ ४१४ ष्प्ट ४७८ ४१६ छपप ४०७ ३३० ४०७ ३७५ ४०७ ४१४ ४०६ ४०६ ४४४ ४०६ ४०७ ४०७ ४०७ ४०४ ४०७ छ०६ ४०७ ४०७ 5२६ ४०७ 3६३

रबर ++ ३4०० रत 34४ ७७०७० मकरणफछनयककिट“फुब८४४ + पका. 22८7 हद. ७७२-३३३३७ 2० “हाल फैन नानक 3 पद सूची फहम आगे फहम पीछे ३७५ फागन आवत देखिके ४७२ फागुण आवत देखि करि ५०६ फाटे कानों बाधिनी ४३८ फाटे दीदे मै फिरी ३०३ फाड़ि फुटोला धज करों २३६ फिरतकत फूल्यो फूल्यौ ६२२ फील रबाबी बलुद प्वावज कौआ ताल बजावै ७२३ फुरमान तेरा सिरे ऊपर फिरि न करत विचार ७२३ फूटी आँख विवेक की ४४३ बदे तू कर बदगी इदद बधा को बधा मिल ४८५ बधा पानी निर्मला ४५२ बइचित्रा का मेल नही ७६५ बकरी पाती खात है ४्पद बगुला हस मनाइले ५१०, ४८८ बटुआ एक बहत्तरि ७२४ बड़ सो पापी आहिगुमानी ८२० बड़ा तो बड़पने गए ३७६ बड़ा बड़ाई ना तजै ४६५ बड़ा हुआ तो क्या हुआ ४३२ बड़ी बढ़ाई ऊटकी ४३२ बढ़ई आवत्त पेखि के ४७२ बढ़बत बढ़ी घटावत छोटी ८४४ बनजारी विनती करै ४६७ बनजरे के बैल ज्यों ३६८ बनजारे को बैल ज्यों ३६६ बनते भागा बिछुड़े ३७५ बनमाली जॉन बन की आदि ६८१ बनहि बसे क्यों पाइये छ२४ बना बनाया मानवा बरनहुँ कौन रूप और रेखा बरस बरस नहि करि सके बरियाँ बीती बल गया बरियों बीती बल गया बरियाँ बीती बल गया बलिहारि गुरु आपणै बलिहारी तेहि दूध की बलिहारी तेहि पुरुष की बसही साथ कलतरो बसुधा बन बहु भॉति है बसुधा बन बहु भांति बसे अपिडी पिड मे बहता पानी निर्मला बहते को न बहन दे बहत्ते को बह जान दे बहन बहता स्थिर करे बहा है बहि जात है बहुतक साहस करू जिय अपना बहुत दान जो देत है बहुत दिन ऐसे गया बहुत दिनन की जोवती बहुत दिनन थे मै प्रीतम पाये बहुत दिवस ते हीडया बहुत दुख है दुख के खानी .'! बहुत पसारा जनि करै बहु प्रपच करि परधन स्यावै बहुत यतन करि कीजिये बहुबधन के बधिया बहु बिधि चित्र बनायके हरि रच्यो क्रोड़ा रास बहुरि हम काहै के आवहिगे 947 ३७५ ८१९ ४५६ ३३६ ५१२ ३३७ ३७५ श७६ ४८१ ३०७ ४६१ २५४२ ४५२ ३े६८ ३६८ ४६५ छ८द ८४४ ४४६ ४७६ २३० ५२३ ३७६ प्र२ ७२४ ४४१ ३७६ प्८०

पद सूची बिमल वस्त्र केतेहे पहिरे क्या बन मध्ये वासा बिरह अग्नि तन मन जला विरह कमडल भरि लिया बिरह कुहारि तन बहै बिरह जलाई मै जलूँ बिरह जलाई मै जलीं बिरह बिथा बैराग की बिरह भुवगम तन बसे बिरह भुवग पैसि करि विरह राम पठाइया बिरह आया दरदसो बिरहा कहै कबीर को बरहा कहै कबीर कौ बिरहा पूत लुहार का बिरहा बिरहा“जिनि कहौ बिरहा सैती मति अड्ै बिरहिन उठे भी पड़े बिरहनि उभी पथ सिरि बिरहनि जलती देखि कै बिरहनि बिरह जलाइया बिरहिनी फिरे है नाम अधीरा बिरही प्रानी बिरह की बिरहु भुअगम मन बसे बिषया व्याप्या सकल ससारू बीजक बित्त बताय दै बीनती एक राम सुन मोरी बुगली नीर बिटालिया बुगली नीर बिटालिया बुढ़िया हँसि बोले मै नतहि बारि बुत पूजि पूजि हिदू मुये बुन्द समाना समुद्र मे ४१० ४६७ पर रद रद छरप८ ३६३ बुरा जो देखन मै चला बुरा बुरा सबको कहै बूँद खिरी नर नारि की बूटी बाटी पान करि बूड़ा बस कबीर का बूढ़े थे परि उबरे बेकॉमी को सर जिनि बाहै बेकामी को सिरजि निवाबै बेचूने जग रॉचिया बेझा मारे स्थिर रहै बेटा जायातौ का भया बेटा जाये क्या हुआ बेटा बेटी इस्तिरी बेटा दीहन हो खेत का बेद कतैब इफतरा भाई बेद कतेब कहहु मत झूठे बेद कहे सरगुन के आगे बेद की पुत्री स्मृति भाई बेद पुरान सबै मत सुनि के बेलि कुढगी फल निफरो बेहद बिचारी हद तजी बेहद अगाधी जीव है बैठा रहे सो बनिया बैद जाहु घर आपने बैद मुवा रोगी मुवा बेदु कहै हीं ही भला बैरागी तो विरक्त भला बैरागी बिरकत भला बैरागी बिरकत भला बैरागी हवै तजि बैरागी हवै गृह तजि ४६७ ४७० ५१० ४७३ 8४५६ ३७७ ७३५ ७७६ ३६७

The text on this page is estimated to be only 30.32% accurate

944 चैसनों भगा को का भया वैसन्दर जाई बोलता बहा गगे दा! बोलता मगगे में बरी बील तो अनमो। ६ मॉलिना था किये १ मोसनः काशों वौलिय (१) भाई बोलना ह बह भाँति का बीजी तो जनभा 4 है बोली हम्गरी पहटिय: प्रौध्मण गुर जगत ४, ब्रह्म गुर जदते छा प्रा्यग गंदा बयते का भ्रा्याए ते ग१ह द्राधिण दे है दापूर ॥ पतद्ए ३ ता दुकचो || हि कैगर जाओ नेम आई कान 5 भरा; भरोसे एम के, भक्ति कदिय अधि दुदभ भक्ति का मार्ग क्षीना २ 0 < च्तु भक्ति तो प्रण सो फ ते है प्यून हर बे हक सकते दुबारा माकनी भक्ति दुवास सकड़ा ४त (५, *+] 2 क्र 3 अं. ब्र ३५४. 4>»6 + ९३ $7/४ ॥७ शक +चू 8५ ९७. जे अमर. का. कई 6प. बा. हर है... #१3.. ३8 का... दा * कही डे कर क पल | पता थे जिले नी गा 4#7; ६५ क्षति एटहिह ये ८ 32'४$ ३+३ >+% क $*७५ 4% १8 4:73 लि के हऔक के जडप 5 ह4बा १ ह करके बढ है. ३5 न तक 54 छः कह | इह०४४ ॥ मिल मी आर कद पु | 3७ ० $ » 9 6६७०३ घर च्क कर, ई. | $ 4६ व्रत दे +० ४ ४ ४ हा है के 9३ डर आप यू प ्र रे, ४2 ह-अब८रे कण कह जिवोशई बलिदान कर जैज कु ० कल ६ ऋण के ॥] अं न क ई हः ३ कक इक का स्क् $ आग इक हा ज है (जजाऊ ल३ध्धओ न अदा 550, 4 पाए ऊध आरा। न्् हक के इबतज हक ही डिजन म डे शा भनेदप/ £ | ना 4 ईक «४ उबर भर प्रहार: | हि चुरार ज्रन्स का इमेलेभममाजाएफा अपई हिशएयन हज मर जप झा जा भाई गा तिए े दोफ ध फर्म जप जल. ह#* औक 2 अकक ॥क॥१ै औ ४3 $#च्दे बा इज हरे #ध बडे आउे अलड कमी. 3६4. ह#*.. #ऋ हल की कस डर्टी आरड कई है... ढक ड.झ. एुके। आये. कब कब. बड़ अब 3.3 ७४... ६५४. ६४ हर] 40 #औऔ ३० डे 3 कोइ हक. €१ ख््े लग. कब हगकि ०५१ कआह॥े.. ओह हक. कक स्, 5०.9 लक 4,.8

पद सूची भ्रम का ताला लगा महल रे भला सुहेला उतरया भला सुहेला उतरा भल सुमिति जहहायहु हो रमैया राम भलीभई जो गुर मिल्या भली भई जो गुरु मिला भली भई भु नने मरुमा भल्ी भई जो पिव मुआ भली भल्नी सब कोउ कहै भली भई जु भे पड़्या भली भई जो भय मिटा भली भई हरिजन मिले भली भई जौ भे परया भलै नीदी भले नीदौ भलै नीदी लोग भवसागर जल विष भरा भवसागरते यों रहों भवसागर भारी भया भाग तमाखू छतरा भॉग भखतरै वल बुद्धि को भाग माछली सुरापान मागता सो जूझिया भाई रे बिरले दोसत्त कबीर के भाई रे चूँन बिलूँटा खाई भाई रे सकहु त तनि बुनि लेहु रे भाग बिना नहि पाइये भागा भत्रा न होयगी भागा भल्ी न होयगी भाजि कहाँ लौं जाइये भार पराई सिर धरे भारी कहीं त बहु हरी भाव बिना नहि भक्ति जग छद्द ३४२ ४६६ ८०८ २०६ २२० ३४३ ४०६ ४४२ २४२ ४९४ ४५९७ ५१७ ६६५ ४६६ ४७५ ४द८ ड्ए७ ४८७ ५१८ ४७६ ५४० ६४२ ४०४ ढंएप0० ४८0० ४८१ ५९१८ ४०९ भाव भलका सुरति शर भावै जाओ बादरी भीख तीन प्रकार की भीखहि गदहा की कहेँ भुक्ति मुक्ति मॉगू नही भुजा बॉधि मिला करि डारयी भूखा भूखा क्या करे भूखे भगति न कीजे भूष दुखी अवधूत दुखि भूला भसम लगाय के भूला भूला क्या फिरै भूला मालनी है गोब्यद जागतौ जगदेव भूले थे ससार में भेद ज्ञान तौलो भलों भेद ज्ञान साबुन भया भेदी जाने सर्वगुण भेदी लीन्हा साथकरि भेला पाया सरप का भेष भभूत जटाधरी भोरे भूली खसम के भोलै भूली खसम के भौति विसारी बाबरे भी समद विष जल भर्या भ्रम का ताला लगा मछ बिकता देखिया मैँछी हुआ न छूटिए मझ महल की गुरुकहै मेंडि रहना मैदान मे मदिर मॉहि झबूकती मकरतार-सों नेहरा मच्छ बिकाने सब गए 945 ४८० ४६३ ३६७ ३षि८ ३६४ रद ३११ छरद्र ४६६ ४४७ ६०५ ४३० ४१४ ४१४ ४१४ ३६२ २३६ ४१७ ३१५ ५०२ ३४२ ७६६ ५०६ ५०६ ३६२ ४५९८ ३३९ ४१३ ३७८

पद सूची मन मानिक जब ऊचटे मन माया एक है मन माया की कोठरी मन माला तन मेखला मन माला तन सुमिरनी मन मुरीद ससार है मन मेरी रहटा रसनो पुरइया मन मेवासी मूँडिये मन मैवासी मूड़ि ले मन मोटा मन दूबला मन मारया ममिता मुई मन राजा नायक भयो मन रे अहरषि बाद न कीजै मन रे आइर कहाँ गयौ मन रे कागद पीर पराया मन रे छाड़हुभमर्म प्रगट मन रे जब तै राम कहयी मन रे जागत रहिये भाई मन रे तन कागद का पुतला मन रे मन ही उलटि समॉना मन रे राम नामहि जॉनि मनरे रामसुमिरि.' मन रे सरयौ न एकौ काजा मन रे हरि भजि हरि भजि मन लागा उनमन सौ मन लागा उनमन सौं मनवा तौ अधर बस्या मनवा भया दिसतरी मन सायर मनसा लहरि मन सों मन मिलता नही मन स्वारथी आपुरस डद५ ३८१ रेएप२ ४४६ ४४६ ४२५ ६१७ ४४७ २६४ ३२२ ३६८ ६४४ ५६५ छरद ६३३ ५३५ ९६० ६५२ ६५५ ६३३ ५७० २४२ २४२ र्द्८ ४७५ ३८१ ४२६ ३७६ मनह मनोर्थ छाड़ि दे मन हीं फूला फिर मनही को परबौधितले मनिषा जनम दुलभ है मनुष्य जन्म दुर्लभ है ममिता मेरा क्या करै 'मया तजी तौ क्या भया मरतों मरतोाँ जग मुवाँ मरती बिरियाँ दानदे मरन जीवन की सका नासी मरना भलो विदेश का मरि गये ब्रह्मा कासी के बासी मरिये तो मरि जाइये मरहिगे मरि जाहिगे मरूँ पर मॉर्गों नही मरोगे मरिजावोगे मलमल खासा पहरते मलयागिरि की बास मे मलयागिरि के पेड़ सौं मलयागिरि के बास मे मलयागिरि के वास मे मलयागिरि के बास महैँ महलन माही पौढते महादेव मुनि अत पाया मॉइ बिड़णों बाप बिड़ माइ मसानी सेढि सीतला मॉगण मरण समान है मॉगन मरने समान मॉनि महातम प्रेम रस मास अहारी मानई मास खाये ते ढेड़ सब 947 २७१ ४४५ ४०३ ३७६ २४७ ५१८ ३२२ ४४६ ७२६ ८३६ ४र६ ३८२ रेप२ ८3५ ४८५९ ४८५९

पद सूची माया मेरे राम की माया मुई न मन मुवा माया मोहि - मोहि हित कीन्हों माया सच सग्रहै भाया सेती मति मिलो माया हमसीीं यों कहया मारग चलता जो गिरे मारग तो अति कठिन है मार मोती बीथरे मारी मर्से कुसग की मारी मरे कुसग की मारी मरी कुसग की मारे बहुत पुकारिया मारया है जो मरैगा मालन आवत देखि करि मात्रा जपूँ न कर जपूँ माला तिलक पहीरिके माला तौ करमे फिरे माला पहरयों कुछ नही माला पहऱ्याँ कुछ नही, काली मनके साथि माला पहर याँ कुछ नही, भगति न आई साथि माला पहर यो कुछ नही, गॉठि हिरदा की खोइ माला पहिरे मनमुषी माला पहरे मनमुषी, बहते फिरे अचेत माता पहरयों कुछ नही माला फेरत युग गया ४४७, माला फेरे कछु नही माला फेरे मन मुखी माला स्वॉस उस्वॉस की ४3३१ २७५ ६२४ ४३१ ४३30० रफ्द ४०२ ३८० (२२ २६७ ४४८ ९१८ ५१८ २३७ प्प्प ४०२ ४४७ ४०२ २६४ २६४ २६४ २६४ रददउ २६३ ४० ४०८ ४४७ ४४७ ३६६ माली आवत देखिके माषी गुड़ मे गड़ि रही मास मास नहि करि सके मिलि गया नीर कबीर सों मीठा सब कोई खात है मीठी-मीठी माया तजी न जाई मीया तुम्ह सौं बोल्यों बणि मीठा खॉड़ मधुकरी मुद्रा मौनि दया करि झोली मुकति दुआरा सकुरा मुकुति की डोरि गाढ़ि जनि मुक्ख बानी तिको मुक्ता पैडा जब भया मुक्ता बॉबे दाहिने मुख की मीठी जो कहै मुफ्त दान जो देत है मुझमे इतनी शक्ति कया मुझमे गुन एकी नही मुरगी मुल्ला्सों कहै मुरली बजत अखड सदाये मुलों करि ल्यी न्न्याव खदाई मुला कहाँ पुकारे दूरि मुल्ला चढ़ि किलकारिया मुल्ला तुझी करीमका मुल्ला मुनारे क्या चढ़हि मुसलमान मारै करदसों मुसि-मुसि रोव कबीर की माई मुहि मरने का चाव है मूँड मुडाया मुक्ति को मूँड मुँड़ावत दिन गए मूँड मुड़ावत दिन गया 949 ४७२ २६७ ४५८६ ४१३ ४३० ६१६ ६२८ ३१३ छ३० ५१८ ० ७६१ ४८५ ४८५ ३८० ४४६ ४६६ ४द८ ४८द ७9७२ ए४६ ५४८ ४४५ ष्८प् ८9८ ४८७ ७३० ५९१८ ४६४ २६५ ४४७

The text on this page is estimated to be only 28.37% accurate

०50 ६. छह का जे मुँड मे हाये हरि मिले 23 है है ३ + 2५ छजा प्रर ३) 3, 2६ पद कार्निया नाते शिया ॥7९॥ की साई दा पूरा वो समझावत् मरा सो का कहिए 2 हे रह कक है 06 पं ग॥6 ध्य रच, भूविध से गे। दर्ध प् कप परत वो थे वि. 5५ #*ँ 3 ४क पक +$ ६ (३१ ९३) मेंझ भीए लए पिया मरा मन मकरद दा परनमो लि ल हि पमि चुतयज कक का मेरा मन पामर सम कू का रु मेरा मन हस रर मेरा झशहे छठ मह । ईद हुआ + डर पु रा सर्म 7६४ 23: मेरा सभी थाई नई 3स संग कोई नह ञ ही श्ज ल््ख्ो श्ब्ट भू हद $) हर] रा कट राज कि] हक छू हक 7075 कैश 27३ कै रो दर ८ बी या विरने मैन नाप 2४ क्त्ता ड् वन नकल भूई रे हा बट ज पला! « भ अं के यह कक च्क् ३ 3८४. +« मे डर... ६३ ६] हर कर १ डा | ब्रा 78५ हर श्दो रे 4 झा... अर ४! को 4 ५ क्र श्् है

पद रूची मैं बड़ मे बड़ मै बड़ मॉटी मै वन भूला तूँ समझाई मैं वुनि करि सिरॉना हो राम मैं भारन सव ज्ञानिया मैमता अविगत रता मैमता तिण नॉ चरे प्रैमता मन मरि रे मैंमता मन मारि रे मै मरजीवा समुद्र का मै मै बड़ी वलाइ है मैं मैं मेरी जिनि करे मैं मेरी सब जायगी मै रोवो एहि जगत को मैवासा मोई किया मै सबनि मै औरनि मै हूँ सब मैं सासरे पीव गींहति आई मैं सेवक समरत्य का मैला ब्रह्म मैला इदु मोंहि तोहि लागि कैसे छूटे मों को कहाँ ढूँढे बन्दे मोहि मूढहु तिहि गुरु मो चित तिलॉ न बीसरी मोचित पतलहैं न बीसरूँ मोटी माया सब तजै मोती उपजै सीप मे मोती निपजै सीप मे मोती पीवत वीगस्या मोती भाँगा बीघतों मोती भाग्यो वेधतों मोती है बिन सीप का मो बिरहनि का पीउ मुआ मोमे तोमे सरव मे ६३१ ६५० ४ध्८दद६ ष्र्ध र्ष्ट २६६ २६६ २६५ २६५ घ्दर ३८१ रद्द ५४५ ६१६ ४१७ ७३० जद ७५३ ५९१८ ५०१ ४१६८६ 8३० ४३० ४८३ ५०८६ ५०७ ४६५ ४६० ४०६ ४ए८ मोर तोर की जेबड़ी मोर तोर की जेवरी मोर तोर की जिवड़ी मोर तोर की रासड़ी मोर फकिरवा मॉगि जाय मोह फद फदिया मोह मगन संसार है मोह मता अविगत रता मोह मता नहि सचरे मोहर रुपया पईसा मोहि मरने का चाव है मौत बिसारी बाबरी मौति बिसारी बावरे मौलो धरती मैला अकास यक बानी जो दीनता यम जोरा तो है नही यह औषधि अगहि लगी यह कूकर को भक्ष है यह जग कोठी काठ की यह तन काचा कुभ है. २६२, ४२०, यह तन तो सब वन भया यह मन ताको दीजिए यह मन तो पर्वत हता यह मन नीचा मूल है यह मन पटकि पछाड़िलै यह मन साधु लै मिलो यह सव लक्षण चित धरे यहि विधि कहीं कहा नहि माना यही प्रेम निरवाहिये यही बड़ाई सत की यहु ऐसा ससार है यहु जीव आया दूर थै 95] रप्२ ४२१ ५0०४ ७८३ ४४२ ४४२ ४१४ ४५९६ ४८४ ४२० ५०२ ७३० ४३३ ष््जद्द ४७५९ ४८६ ४४१ ५०३ २६३ ४५७ ४२६ ४२५ ३३८ ४२५९ ३६९ ८३० ४०६ ४५५ २५८ ३३६

पद सूची राम ऐसी ही जॉनि जपी नरहरी राम कबिरा एक है राम कबिरा एक है राम कहता जे खिज्ें राम कहन महि भेदु है राम कहा जिन कहि लिया राम कहेते खिज मरे राम कहो तो मरि रहो रा कही न अजहुँ केते दिना राम कह्या तिनि कहि लिया राम कृष्ण को जिन किया राम कृष्ण अवतार है राम के नाइ नीसॉन बागा राम गति पार न पावै कोई राम गुन बेलड़ी रे राम चरन जाकै रिदे बसत है राम चरन मनि भाए रे राम जपत कोढ़ी भला राम जपत दरिद्री भला राम जपत दालिद भला राम जपौ जिय ऐसे ऐसे राम झरोखे बैठि के राम थोरे दिन कौ का धन करना राम धनी जाचै नही राम धनी सिर पर खड़ा राम न जपहु कहा भयी राम न जपहु कवन भ्रम लागै राम नाम करि बहु डरो राम नाम कड्आ लगै राम नाम कै पटतरे राम नाम को सेचहु बीरा राम नाम को छाड़िके दर ४७० ४७० ५०६ ५१६ ४७१ ४८४ प्द्८ ३३६ ४६२ ६१४ ६५३ एप ६७७ ५५४ ४०१ ४०१ ३०५ ७३२ ४८२ दर ३६३ ३६४ ७२ ७६३ ४१८ राम नाम को छाड़ि के राम नाम को छाड़ि कै राम नाम को छाड़ि कै राम नाम को सुमिरतै राम नाम को सुमिरता राम नाम को सुमिरता राम नाम छॉडू नही राम नाम जाण्यों नही राम नाम जाण्यों नही राम नाम जाण्यौ नही रामनाम जाण्या नही राम नाम जान नही राम नाम जाना नही राम नाम जाना नही राम नाम जिन चीन्हिया राम नाम तिहूँ लोक मैं राम नाम तिहपूँ लोक मैं राम नाम निजु औषधी राम नाम निजु औषधी राम नाम बिनु राम नाम बिनु राम नाम भजु राम नाम भजु राम नाम लाण्या नही राम नाम रंग लागी राम नाम रटिबौ करे राम नाम सब कोइ कहे राम नाम सब को कहै राम नाम सब कोइ कहै राम नाम हल जौतिये राम नाम हिरदै धरि राम निरजन न्यारा रे राम पदारथ पाइ कै राम पियारा छाड़ि करि 953 ४१८ ४१८ ४१८ ४०१ ४०१ ४०२ २२९ ५०३ २६१ २६१ २६१ ४२० ४२० ४२० ३८३ ३४५ ४६६ ४७५ ४७५९ ७६५ ७६४ ५०३ ६१२ ४१८ रे०८ ४४३ ४०४ ६५४ दर ५२२ २१७

पद सूची राम ऐसी ही जॉनि जपी नरहरी राम कबिरा एक है राम कबिरा एक है राम कहता जे खिर्जे राम कहन महि भेद है राम कहा जिन कहि लिया राम कहेते खिज मरे राम कहो तो मरि रहो रा कहौ न अजहूँ केते दिना राम कह्ला तिनि कहि लिया राम कृष्ण को जिन किया राम कृष्ण अवतार है राम कै नाइ नीसॉन बागा राम गति पार न पावै कोई राम गुन बेलड़ी रे राम चरन जाके रिंदे बसत है राम चरन मनि भाए रे राम जपत कोढ़ी भत्रा राम जपत दरिद्री भला राम जपत दालिद भत्रा राम जपौ जिय ऐसे ऐसे ग़म झरोखे बैठि के राम थोरे दिन कौ का धन करना राम धनी जाचै नही राम धनी सिर पर खड़ा राम न जपहु कहा भयौ राम न जपहु कवन भ्रम लागै राम नाम करि बहु डरो राम नाम कडआ लगे राम नाम कै पटतरे राम नाम को सेवहु बीरा राम नाम को छाड़िकै द्ष्द ४७० ४४० ५०६ ५9६ ४७१ ४८४ ५६८ ३३६ ४६३ ६१४ ६५३ दर ६७७ ५५४ ४०१ 3०१ ३०५ ७३२ ब्पर श्द्र रे६३ राम नाम को छाड़ि के राम नाम को छाड़ि के राम नाम को छाड़ि कै राम नाम को सुमिरते राम नाम को सुमिरता राम नाम को सुमिरता राम नाम छॉडू नही राम नाम जाण्यौं नही राम नाम जाण्यौं नही राम नाम जाण्यी नही रामनाम जाण्या नही राम नाम जान नही राम नाम जाना नही राम नाम जाना नही राम नाम जिन चीन्हिया राम नाम तिहूँ लोक मैं राम नाम तिहूँ लोक मैं राम नाम निजु औषधी राम नाम निजु औषधी राम नाम बिनु राम नाम बिनु राम नाम भजु राम नाम भजु राम नाम लाण्या नही राम नाम रँग लागौ राम नाम रटिबौ करे राम नाम सब कोइ कहे राम नाम सब को कहै राम नाम सब कोइ कहै राम नाम हल जौतियै राम नाम हिरदै धरि राम निरजन न्यारा रे राम पदारथ पाइ के राम पियारा छाड़ि करि 953 ४१८ ११८ ३४५ ४६६ ४७५ ४७५ छद९ ७६४ ५०३ ६१२ ४१८ ४५६ ३०८ ४४३ ४०४ ६५५ दर एरर २१७

954 राम बान अन्ययाले तीर राम बिन जन्म मरन भयौ भारी राम बिन तन की ताप न जाई राम बिनौँ ससार धध कुहेरा राम बिना धिग-धिग नर नारी राम बिना बेकाम है राम बुलाया भेजिया राम भजै सो जॉनिये राम भजो मन बसि करो राम भणि राम भणि राम चितामणि राम मरे ती हम मरे राम मोही तारि काहॉ ले जैहो राम मोहि सतगुरु मिले अनेक कलानिधि राम रतन घट को थल्ी राम रतन धन पाइकै राम रतन धन मुक्ति मे राम रतन मुख कोथरी राम रमत अस्थिर भया राम रस पाइया रे रामरसाइन प्रेमरस राम रसायन प्रेम रस राम रहीमा एक है राम राइ अबिगत बिगति न जाने राम राइ इहि सेवा भल्र मॉनि राम राइ कासनि करों पुकारा राम राइ तेरी गति जॉणी न जाई राम राइ तूँ ऐसा अनभूत अनूपम राम राइ भई निकल मति मोरी राम राई भई बिगूचन भारी राम राई सो गति भई हमारी राम राम जिन उच्चरयौ श्द्द दर प्द्द श्चर ४६५ कबीर समग्र राम राम रटिवौ करे राम राम राम रमि रहिए राम राम सु दिल मिली राम वियोगी तन विकल राम वियोगी विकल तन राम सिमरि राम सिमरि भाई रासि पराई राषताँ राह विचरी क्या करे राही लै पिपराही बही रितु फागुन नियरानी _ री कलवारि गवारि मूढ़ मति खूखा सूखा खाई के रूप सरूप कछु वहैं नाही रे चित्त चेति च्यति ले ताहि रे जम नॉहि नवै व्यापारी रे जिय निलज्ज ताज तोहि नाही रे दिल खोजि दिलहर खोजि रे मन जाहि जहाँ तोह भाव रे मन तेरो कोई नही रे मन बैठि किते जिनि जासी रे यामे क्या मेरा क्या तेरा रे सुख इब मोहि विष भरि लाग रैणा दूर बिछोहिया रैन समाना भानु मे रैनि गई मति दिन भी जाइ रैनि पुरे वासर घंटे रोजा धरे मनावै अल्लहु रोड़ा हवै रहो वाट का रोड़ा भया तो क्या भया ४८५, रोवण हारे भी मुए लका सा कोट समुद-सी खाई लवा मारग दूरिघर ४४६ ६१४ ३१२ ३०२ ३८३ ७३२ २८१ ३८रे ८१७ ७9८६ ७३३ छ ८9 ६४६ ६२८ ६२६ ५७६ ७३३ ५६४ ६३६ २३६ ४ंद८ ६७१

पृद सूची लकरी जरि कीइला भई लक्ष कोस जो गुरु वसै लख चौरासी जी अ जोनि लखने हारे लखलिया लाइ लावनहार की लाइ लावन हार की लाखन जाति जगत माँ लागी लागी क्या करे तागी प्रीति सुजाना स्यो ताधा है कछू लाधा है लालच लोभ न मोह मद ताली मेरे लाल की लावों बाबा आत्रि लाला सुक्ख अनन्त वहाँ लूटि सके तौ लूटियौ लूटि सके तो लूटिले जून गला पानी मिला णेऊ तो महा प्रतिग्रह लेखा देणों सोहरा लेखा देना सोहरा लेना होय सो लेइले लेने को हरिनाम है ले पाऊँ तौ ले रही लोका तुम्ह ज कहत हौ लोका मति के मोरा रे लोग कहै गोवरधन धारी लोग भरोसे कवन के लोग बिचारा निन्दही लोग बिचारा नींद ई लोगा जानि न भूलौ भाई लोभ मोह के खभा दोऊ ल्ोभे जान गमाइया ४ड्ण्द २२१ ७३४ रेदरे ४१० ७९३ ४६७ ५१६ ५६१ ४८० ४६१ प४५ ८१० श्८५ लोहा केरा नाबरी लौ लागी अत्तर कसा लौ लागी तब जानिये लौ लागी लौना परे वज़हुँ ते त्रिन खिन में होई वस्तु कहूँ ढूँढ़े कही वह मारग कितको गया वॉबी कूटे बावरे वाजन दे वाजतरी वारी हरि के नाम पर वास सुरति धरि आवई विद्या न पढ़ो बाद नही जानों विन शर और कमान बिन विरछा पूछे बीज कों विरह की ओदी लाकरी विरह जलाई मै जलीं विरह तेज इनमे तपै विरहणि थी तौ क्यूँ रही विरह बाण जेहि लागिया विरहिनि साजी आरती विरहिन देय सदेसरा विरहिन देय सदेहरा विश्वासी होय हरि भजै विष के वन मै घर किया विष के विखहि घर किये विषय त्याग बैराग्य है विषय प्यारी प्रीति सों विषिया अजहू सुख आसा विषै कर्म की कचुली विषय विलबी आत्मा विष्ठा का चौका दिया विष्णु ध्यान सनान करि रे ३७७ ४०९ ४४१ ए्छ रेए७ ४८६ ६८६

956 विष्णु भक्ति है दुर्लभ बूँद जो परा समुन्द्र मे वृक्ष कबहुँ ना फल भखे वेढा दीह्नहो खेत का वेद कहै मै कछु न जानों विद कहे सरगुन के आगे वेद की पुत्री सुमित्री भाई वे मोती मति जानियो वेरा बॉधिनि सर्प का वै क्यूँ कासी तजै मुरारी वै दिन कब आवेगे माई वैष्णव की कूकरी मत्रि वैष्णव भया सो क्या वैष्णव हुआ त क्या भया बोलो भाई राम की दुहाई व्यभिचारिणी के बस नहीं व्याभिचारिणी व्याभिचार मे व्यापिक एक सकल की जोती शकरहूते सबल है शब्द कहाते आइया शब्द कहाते उठत है शब्द कहै सो कीजिये शब्द का गुरु शब्द है शब्द दुराया ना दुरै शब्द ना करे मुलाहिजा शब्द पाय सुरति राखे शब्द बरावर धन नही शब्द ब्रह्माण्डते आइया शब्द बिना श्रुति आधरी शब्द बिना सुरति आधरी शब्द भेद तव जानिये शब्द मारा गिर पड़ा ४०५ ३७७ ४०६ ३७७ ४३४ छछद् प्श्प ४६० ३७७ ६४३ द४्६ ५१६ ४७७ ५१६ ५९३ ४१८ ४१८ छ८६ ४३० ४६८ ४्घ्च्८ ४६७ ४्धद 8द्८ ४६७ ४्द्द ४६७ ब्ध्८ ३८४ ब्द्र ४६६ ३८५६४ कवीर समग्र शब्द हमार हम शब्द के ४६७ शब्द हमारा एक है ४७ शब्द हमारा तू शब्द का ३८५ शब्द हमारा हम शब्द के ४्द्द शब्द-शब्द बहु अतरा ३८५, ४६६, ४६८ शब्द शब्द सब कोइ कहै ४६८ शब्द शब्द सब कोइ कहै ध्द्द८ शब्द शब्द सब कोइ कहै ४््द६ शब्द हमारा आदि का ३८४ शब्द हमारा आदि का ३८४ शब्दे मारा मरि गया ४६७ शब्दोपदेश जो मै कहूँ ४६८ शर सनाह न पहरई ४८० शरा थोराही भत्ना ४८१ शशा सिह के धनुष की ४६६ शिर दिये जो पाइये ४१३ शिर राखे शिर जात हे ४८० शिष्य को ऐसा चाहिए ३६३ शिष्य खॉड़ा गुरु मसकला २२३ शिष्या खासा ससार गति ४३४ शिष्य शाखा बहुतहि किया ४३४ शीतल जल पाताल का ४४७ शीतलता तब जानिये ४६६ शीतल शब्द उचारिये ४्द्द शीतलता सजोग लै ४८० शील क्षमा जब ऊपजै ४४० शील गहे कोइ सावधान ४४० शील मिलावै राम को ४४० शील राखि बिरक्त भये 8४० शीलवत निर्मल दशा ४४० शीलवत शूर ज्ञान मत ३६५ शीलवत सबसो बड़ा ४४०

पद सूची शीश उतारे भुई धरे शीश खिसे साई लखे शून्य मण्डल मे घर किया शून्य शहर मे पाइया * शून्य सरोवर मीन मन श्रचला सग्राम को शूरन सेरी ताकई शूर सनाह न पहरई शूरा का मैदान मे शूरा के तो शिर नही शूरा के मैदान मे शूरा के मैदान मे शूरा तौं साचै मतै शूरा नाम धराय के शूरा लरे कमद हवै. ८ शूरा सन्मुख बाहता शूरा सोई सराहिये शेष तकी मै वदा तेरा शेष नाग के सहस्र फन श्रम नृकथे दुर रह्मा श्रोता तो घर मे नही षट दर्शन को प्रेम करि षट नेम कर कोठड़ी बॉधी षटहि विकार शरीर के घीर रूप हरि नॉव है एँूगे पड़या न छुटिये सकल ही ते सबल है सगत करिये साध की सगति कीजे सत की सगति के सुख ऊपजै सगति भई तो क्या भया सगति सो सुख ऊपजै ४०६ ४८० ४१२ ४८४ ४८१ ४८१ ४८० ४८० ४८१ ४८१ ४८१ ४८२ ४८१ ४८० ४एपर ३८५ ४२२ ३०६ ३८५ ३६५ ७३५ ३६५ ३०७ ३२७ २७७ ५१६ ४४६ ३८९ ध्दद्् ४४६ सगति सोई बिगुचई सत की गैल न छॉड़िये सतन की शुरिया भली सत मिलता जनि बीछरो सत न छोड़े सत्तई सत न बॉ गौठड़ी सतनि एक अहेरा लाधा सत मिलै कछु सुनिये कहिये सतमूये क्या रोइये सता मन पव ने सुख बनिया सता मानौ दूता डानी सतोषहि सहिदान है सतोषी सुखदायक रू सतो सो अनभे पद गहिये सतौ धोखा का्सूँ कहिए सतौ भाई आई ग्यान की ऑधीरे सतौ धागा टूटा गगन बिनसि गा सध्या प्रात स्नान कराही सपटि माही समाइया सशय काल शरीर मे सशै करूँ न मै डरूँ सशय नहि साधू मिले ससकिरत भाषा पढ़ि लीन्हा ससय सब जग खद्दिया ससारी समय विचारी ससारी साकट भला ससारी साषत भला ससे खायासकल जगु सस्कृताहि पण्डित कहै सकल जगत मे सतकी नगरी सकल पसारा पवन का सकल पसारा पवन का ४६३ ५२० ४५७ ३०१ ६६६ ७३६ ७३६ ७३१६ ४४१ ३६५ ५८४ ५६७ जरद

958 सकल वरण इकत्र हवै सकल वरन इकत्र हवै सखियो हमहुँ भई बलमासी सचु पाया सुख ऊपनों सज्जन तो दुर्ज्जन भयो संत गठी कोपीन है सतगुरु ऐसा चाहिए सतगुरु की महिमा अनन्त सतगुरु के सदके करूँ सतगुरु मार्या वाण भरि सतगुरु मिल्या त का भया सतगुरु लई कमॉण करि सतगुरु सवॉन को सगा सतगुरु साँचों सूरिवाँ सतगुरु सॉँचाँ सूरिवाँ सतगुर हम सूँ रीझि करि सतगुरु कहै सौ शिष्य करे सतगुरु का यक देश है सतगुरु का सारा नही संतगुरु के उपदेश का सतगुरु के परताप ते सतगुरु दीन दयाल है संतगुरु ने तो गम कही सतगुरु बड़े जहाज है सतगुरु बड़े सराफ है सतगुरु बड़े दयाल है सतगुरु बपुरा क्या करे सतगुरु बरजे शिष्य करै सतगुरु मारा तानिके सतगुरु मारा बान मारि सतगुरु मारा बान मरि सतगुस मारी प्रेम को २६१ ४ध्पद् ७७२ २४४ ३८९ ३१६ ३२० २०४ २०५ २०५ २१० २०५ २०४ २०९ २११ २१२ ३६३ ४४६ र्६द २२० २१६ ४२७ २२७ २२५ २२५ डंद८ २१० ३६३ श्र३ २२४ २२४ २२४ सतगुरु मिलि निरभय भया सतगुरु मेरा सूरमा सतगुरु शब्द उलधि करि सतगुरु साँचा सूरमा सतगुरु हमर्सी रीक्ि कै सत सग़ति है सूप ज्यों सत से सत्त सुन्न कहलाई सतही मे सत वॉटई सति राम सतगुर की सेवा सती को कौन सिखवाता है सती जलन कूँ नीकली सती जलन कूँ नीकली सती जो डरपै अगिनते सती डिगै तो नीच घर सती न पीस पीसना सती विचारी सत किया सती पुकारे सालि चढ़ि सती सतोषी सावधान सती सूरातन साहि करि सत्त नाम है सबते न्यारा सत्तरि से इसलारू है जाके सत्य शब्द की नावरी सदगुरु सोई दया करि दीन्हा सद पॉणी पाताल की सदपानी पाताल का स़दा आनन्द दुख-द्वद्व पै नही सदा कपाल दुख परहरन सदा रहै सतोष मे सदगुरु वचन सुनहु सतो -सनक सनद अत नहीं पाया सनक सनद महोस समाना सन कागद छूतो नही कवीर समग्र २२७ २२३ ३६३ २११, २२३ ३६१ ४६१ छद० ३६६ ६६६ ७७५ ३३२ ३३२ ४७६ ४७६ ४८३ ३३२ ३३२ ३२० ३३२ छचपर ७३६ ४द्८ ७६९ 3४१ ४६५ उधर 3६४ ३६५९ ३८६ छ३७ छ३७छ ३८५६

960 सर्पनी ते ऊपर नही बलिया सर्यहि दूध पिलाइये सर्व सोना की सुन्दरी सलिल मोह की धार मे सहकामी दीपक दशा सहकामी सुमिरन करे सहज तराजू आणि करि सहज तराजू आनिके सहज ध्यान रहु सहज ध्यान रहु सहज पवन ले आवही सहज मिले सी दूध सम साथ कोई न मानी सहज सहज सबको कहे सहज सहज सबकी कहै सहज सहज सबकी कहै सहजै सहजै सब गए सही हेत है तास का सहजेही पुनु लगि रही सहज सहज सब गया साई इतना दीजिये साई केरा बहुत गुन साई के सग सासुर आई साई को सुमिरन करै साई तेरे जोर जुलम है साई दीया सहज मे साई मेरा सावधान साई मेरा एक तू साई मेरा बॉणियाँ साई मेरा सुलछना साई मेरे साजि दई एक डोली साई मै तुझ बोहरा साई यो मत जानियो ७9३७ ३६२ ४३७ ४४२ ४३७ ३६६ 709 ४६७ छदद ४२७ ४४३ ४५६ र्८द श्पप८ श्ए८ र्एप८ ४७८ ४०२ ४४३ ४६३ थ्दद८ ७८६ ३६६ ढ्६द्छ ४४३६४ ड्ध८ ४१६ ३१८ ४१६ ४६५ ३६६ साई सुमिर मति ढील कर साई सूँ सब होत है साई सू मिसि मछीला के साई सेती चोरिया साई सेती सॉच चलि साई सेवत जरिगई साई सेतन पाइये साई से लगन कठिन है भाई साच कहूँ तो मारि है साच कहूँ तो मारि है साच कहै तो मारि है साच कोई न मानई साच न कोइ पतीजई साच बराबर तप नही साच विना सुमिरन नही साच शब्द हृदये गहा साचा शब्द कवीर का साचा सतिगुरु क्या करे साचा सतिगुरु मै साचे गुरु के पक्ष मे साचे शाप न लाइई साचौ कोई न पत्तीजई साचथे सीदा कीजिये साझ परी दिन अधिया सातू सायर मे फिरा सॉप विछी मत्र है साई विन दरद करेजे होय साकट कहा न कहि चले साकट का मुख बिव है साकट ते सत होत है साकट नारी छाड़िये साकट ब्राह्मण मत मिली कंवीर समग्र ३६६ ३१८ ५१० २६० २६४ ४०८ ४८० ७७५ ४४४ ४४४ ४४३ ४५६ ४४४ ४४३ ४४४ ४४४ ३ए७ ५२० ५२० २२६ ४४४ ४४३ ४४४ ४७३ ४६१ ३८७ ७७२ ४६२ ४६२ ४६३ ४६३ ध्धर

The text on this page is estimated to be only 27.57% accurate

878 6१8 8758 248 ०ट्रेग 6938 888 68 ४६१8४ ६१8 388 898 ५ ।।०७ ।। गड्डे (९ 8 है | 920 (00 80 4४0 ।।08 के , हश & ९९ (७ मरे २8: १।।०४ (५४ 89 78।।२ 0 वि 08२ ।४0 वि 3शर९ ७४0 ५९ 808 2029 49 ५ 808 श०।।9 40 ५६ ६३ ४०।।४ $।।0 ए30७ ।।१0७ ७ -।।७९।।& ७8 ३ 480।।% ।0।।।।०8 ३।। ४99 ४७३७ ४(छ हि 90७ ५१ । ५ 800] ६।।७ (६।।।।8 3० हि +& 20।। (8 (४ हि रेड 908 (छछे हि।।9 7 208 (9४ 5।।9 वह ०।।9 90 हि ।शुड़े (७९४ हि ४४ 208 (| 8 शि।।।। ।।४ ह0 ।।29 ७।।>ऐ|३ 2 0 #है।।ऐ 8७] ह।।0 90।9% है 49 के ७ 20 (9७० हि 8।।7४ [9५९ ४४ 2७ ०३% ।।९० ४9 00: [।।0 ।0।।2 ।। [220९ 2 0/99 4! प्ट्ग ९३४ ८३४ ६868 ६६8 मह8 धीजेट्टे 68% 8 328 ०८% ८३8 ८३8 ८३8 ३8 ८३8 टे38 ६38 ६898 ६80० (४७ (७० 4ऐ है ।९|५ 00/9% हि है ४९५० |०४५ 59 है £९२|५ ७28% हि है ४ 909 08 8 2! 39 805 | [82 ४02|।। 2।।२-।३।। ४४९ ७ ४३ [2५ ।।३।।७ रेप (28 24१] [९ 2 (82 ।।809 ६ ।।(२ 208 ।।९४ 2५९ ह(४ १४ ।।४ ०७७४ 9 9४७४ ।।9४ (४ 0५ (३२ 20२ 220 8 80009 0७ रहिरि 43४ ६ 2/00 ।।% #६ !8909 2७/: ०५ 8३४ ४०४ (0।।७ (8+% £26 (2 (१४: (98 242 (३2६ १9१ 48 0।। 20 ।20/ (0 2।।० है।। ३५४२ (99 62 ।।.।।5 ।।9)(8 ।। १ (9 28 7808 0 ।।9]92 ५ ९ 240 0 08२ हि 2920 ।।2७ 2%४ 2५0 १%फ १५४ 2%ऐ 298 ।।%७४ 2५0 ६९६ ५ ७४ 2%ऐ ६९६ ४ ४ 290७ 28।।।।8 ५ ।। 29% ।00छ ।।098 2999 ।।[34 .)/|

962 साधू सोई जानिये साधू भूखा भाव का साधू भौंरा जग कली साधू मेरे सब बड़े साधो, को है कहाँ से आयो साधो, ब्रह्म अलख लखाया साधो यह तन ठाठ तबूरे का साधो, शब्द साधना कीजे साधो, सहज काया सोधो साधो सो सतगुरु मोहि भावे सायर नाही सीप बिन सायर बुद्धि मान बाए सायर माही शर गया सार बहै लोहा झरै सार बहै लोहा झरै सार शब्द की यही बड़ाई सार सम्रह सूप ज्यूँ सार सुख पाइये रे सारहि शब्दहि बिचारिये सारा बहुत पुकारिया सारा लश्कर ढढिया सारा सूरा बहु मिले सारी सिरजन हार की सावधान और शीलता सावन केरा सेहरा सावन छूटा मेघ ज्यों साषत पे सूकर भला साषत बॉभण मति मिले साषत ब्राह्म जिनि मिलै साषित सण का जेवड़ा सासु की दुखी ससुर की प्यारी सासु ननद दोउ देतु उल्ाहन ४५२ ४५३ ४४३ ७७१ ७५५९ छद्दद ७७४ ७७१ ७६३ २४० ३८७ ४६७ ४८१ ४८१ ४६६ ५०६ ६४७ ४६६ ३२० ४६७ ३२६ ३६९ २८७ ३६१ ५०९ २३०५ ५०५ २८१ ७६१ साहब कै दरवार मे साहब तुम जनि बीसरी साहव सों सव होत है साहिव को भाव नही साहिब मेरा एक है साहु चोर चीन्हे नही साहू से भे चोखा साहेब साहेब सब कहे साहेब हममे साहेव तुममे सिधि जु सहजै फुकि गई सिह अकेला वन रवे सिह साधु का एक मत सिहन के लेहड़ा नही सिखि खासा वहुते किये सिद्ध भई तौ क्या हुआ सिद्ध सहजहि खिर पड़ी सिरजन हारै सिरजिया सिर साटे हरि सेविए सिव कासी कैसे भई तोहारि सिव की पुरी वैस बुधि सारु सिव सन ब्रह्मा दौरि के सीध भइ तब का भया सीक भई ससार थे सीख भई ससार सो सीतलता के कारणै सील सन्तोष सदा समदृष्टि सिव सकती दिसि कौण जु जाबै सीस काटि पासग दिया सुदरिते सूली भरी सुदरी तो साई भजै सुदरी थै सूली भली सुकृत वचन माने नही व कवीर समग्र 368 ब्दछ ४६९ ३६४ ४६२ ३८७ ३२८७ 3८८ ७८६ ५९१२ ३८८ ४५१ ४५१ ५२० ष्द्र 46६८ | ४६३ ३३२ ८०३ ७३८ ८० 8 ३४१ डे दर ३४८ ७७9७9 २४७ ३३० ४३८ ४६५ रपद ३८घ

पद सूची सुकृत लागै साधु की सुख के विर्छ एक जगत उपाया सुख का सागर शील है सुख के माथे सिल परौ सुख के सगे है स्वारथी सुख देना दुख मेटना सुख मॉगत दुख आगै आवै सुखसागर मे आयके मत जारे प्यासा सुखसिध की सैर का स्वाद तब पाइ है सुखिया सब ससार है मुगना सेमर बेगि तजि सुगना सेमर सेइया सुणत सुणावत दिन गए सुत अपराध करत है जेते सुनता नही धुन की खबर सुनहु सभन्हि मिलि विप्रमतीसी सुनिये पार ते पाइया -सुनु सखी पिउ महि जिउ बसे मुन्न सध्या तेरी देव देवा सुबटा डरपट रहु मेरे भाई सुमिरन मारग सहज का सुमिरन का सशय रहा सुमिरन की सुधि यों करो सुमिरन की सुधि यों करो सुमिरन की सुधि यों करो सुमिरन मन लागै नही सुमिरन मॉहि लगाय दै सुमिरन सुरति लगाय के सुमिरन सों मन लाइये सुमिरन सों मन लाइये सुमिरन सो मन लाइये सुमिरन सों मन लाइये रे ४३१ ८४९ ४१७ ४०६ ४५४ ३८ ७७५९ ७७५ र्३द ३८८ ३८८ ५०५ ७३८ ७७३ छपप८ ४५८६ ५२२ ७३८ ५६२ ३६६ ४७१ ३६६ ३६६ ४०० ४०० ४०० ४०० ४०० ४०० ४०० सुमिरन सों सुख होत है सुमिरन सों मन जब लगै सुरति उड़ानी गगन को सुरति करो मम साइयाँ सुरति ठीक लीने जलौ सुरति ढीकुली ले जल्यी सुरनर थाके मुनि जनों सुर नर धाके मुनिजना * सुर नर मुनिजन औलिया सुर नर मुनिजन देवता सुरह की जैसी तेरी चाल सुरग नरक ते मै रह्या सुरति निरति दोउ तूबरी सुरति सममॉण निरति मै सुरति समॉणी निरति मै सुरति समानी नाम मे सुरति सिमृति दुई कन्नी सूक्ष्म सुरति का मरम है सूखन लागे केवरा सूता साधु जगाइये सूपने हू बरड़ाइ कै सूम सदाही उद्धरे सूकण लागा केवड़ा सूर परकास, तहैँ रैन कहैँ पाइये सूर सग्राम का देख भागै नही सूर सामॉर्णों चद मे सूर सीस उतारिया सूरा सीस उतारिया सूरा झूझे गिरद सूँ सूरा तबही के परषिये सूरै सार सँबहिया सूरा सो पहचानिये 963 रद्द ध्ध्८ ४७३ ४६३ ५२० ४४० ५१० ण्द्८ दर २४१ २३३० ३३० ३२८ ३२८ ५२२

964 सूली ऊपर घर करे सेडइ मन समझि समर्थ सरणॉगता सेख सबूरी बाहरा क्या सेज बिछावै सदरी सेमर का सुगना सेवक अपना करि लिया सेवक मुखे कहावई सेवक सेवा मे रहै सेवक सेवा मे रहे सेवक सेवा मे रहे सेवक स्वामी एक मत सेवै सालिग्राम कूँ सेवै सालिग्राम कूँ सेष सबूरी वाहिरा सोई अक्षर सोई भने सोई अक्षर सोई वैयन सोई ऑसू सजणों सोई शब्द निजसार है सोई हित बधु मोहि मन भावै सोऊँ तो सपुने मिले सो कहु विचारहु पडित लोई सोग बधावा सम कै माना सो जोगी जाके मन मै मुद्रा सो जोगी जाकै सहज भाइ सो धन मेरे हरि का जॉउ सो ट्रिन कैसा होयगा सोना सज्जन साधु जन सो मुल्ला जो मन स्यौ लरे सो सॉई तन मै बसे सोया सो निष्फल गया सो-सो सोगा हू तको सो मेरा राम कबै घरि आवै ४२७ ६१६ सोलह रत्ती सुरति है सोह हंसा एक समान सौ कोसौ साजन वसे सौदा कीजे राम सों सौ पापन को मूल है सौ वरसा भक्ति करै स्वर्ग वास न वाछिये स्वॉग पहरि सोरहा भया स्वॉगी सवससारहै._ स्वॉस सुफल सो जानिये स्वामी हूवा सीत का स्वामी हूँणों सोहरा स्वादि पतग जरै जरि जाइ स्वामी सेवक एक मत स्वारथ का सब कोई सगा स्वारथ को सवको सगा हमारे कौन सहै सिरि भारा हँमारै राम रहीम करीमा केसो हस उड़यौ तमु गाड़ियो हस काग की पारिखा हस बक दिखिये एक रग हस वर्गों कै पाहुँगा हसड़ौ तौ महाराण कौ हस बुगा के पावना हसा करो पुरातन वात हसा तू तो सबल था हसा ते घट भीतेर हसा ते सुवरण हसा तो महाराण का हसा देश सुदेश का हसा बगला एक-सा हसा मोती बिकानिया कवीर समग्र ४६० ५४६ ४७८ ४६४ ४३१ ४१८ छ३६ २६५९ ४५१ ४०२ २७६ २७६ ६७६ ३२७ ३८६ ३८६ ४ंपप८ ४६० ४६१ ३८६

पद सूची हसा सरवरि तजि चले हसा सरवर सरीर मे हो रमैया राम हँसि हँसि कत न पाइये हँस न बोले उनमनी हज काबे हीं जाइया हज काबै ट्वै-ह्वै गया हज्ज हमारी गोमती तीर हड्डी मारि हीरा लहा हड़ हड़ हड़ हड़ हसती है हद चले त्तो मानवा हद छाड़ि बेहद गया हद बँधा बेहद रमे हद बेहद दोनी तजी हद मे बैठा कथन है हद मे पीव न पाइए हद मे रहे सो मानवी हदिया सेतो हद रहो हदे छॉड़ड़ि बेहदि गया हद छाड़ि बेहद गया हद छाड़ि बेहद गया हद छाड़ि बेहद गया हद छाड़ि बेहद गया हृद्द माहि हृदका घना हन्या सोही हन्नसी हम घर जाल्या आपणा हम घर सूत तनहि नित हम जाने थे खाहिगे हम जाये ते भी मुआ हम तुम्हरो सुमिरन करै हम तो लखा तिहुँ लोक मे हम तो एक-एक करि जॉनों हम तो योगी मनहि के ३८६ ८०६ २३४ २०६ ५२१ ३५० छढ० डद0० ५६५ ३८६ (00 ध्ददद ५0०0 ५०0 डदद ५९०० २४० ब्ददद ध्दद २४१ ५०० ब्द्द ध्८प र२६ ७४० ४७३ ड७४ डए७एद ४६२ पढ्घ् ४४७ हम देखत जग जात है हम न मरे मरि है ससारा हम भी पाहन पूजते हम मसकीन खुदाई बदे तुम राचसु मन भाव) हमरा कइल के नहि पतियार हम रोवै ससार को हम वासी उस देश के हम वासी उस देश के हम वासी वास देश को हम वासी उस देश को हम वासी उस देश को हम वासी वास देश के हमसों रहा न जाय मुरलिया कै धुन सुन के हम है जग मे जौहरी हरदी पीर तनु हरे हरष बड़ाई पेखिके हरा होय सूखे सही हरिका बना स्वरूप सब हरि का सिमरन हरि का सिमरन छोड़ि के हरि का सिमरन जो करै हरि के नॉइ गहर जिनि करूँ हरि के षारे बड़े पकाये हरि को नाम न लेइ गेंवारा हरि को विलोवनो विलोई मेरी माई हरि कौ न नाऊँ तत त्रिलोक सार हरि गुन सुमरि रे नर प्राणी हरि घोड़ा ब्रह्मा कड़ी हरिजन ऐसा चाहिए हरिजन को ऊँचा नवै 965 ३२५ ५४३ रदर 9४० ८०३ ड्द४ ७७७ ४६० ५२१ ४०४ ४६२ ४७० ५९२१ ५२१ ५२१ ५६५ ९३० ६३१ ६६६ ६८१ द्््प्८ ४७६ ४४३ ४३२

966 हरिजन तो हारा भल्रा हरि जननी मै बालक तेरा हरिजन सनहि न हरि गुन गावहि हरिजन सेती रूसणों हरिजन सोई जानिये हरिजन हस दसा लिये डोलै हरि जी यहै बिचारिया हरि ठग जग कौन ठगौरी लाई हरि दरबारी साधु है हरि दरिया सुभर भरा हरि दरिया सुभर भरा हरि दरिया सुभर झरिया हरि ने अपना आप छिपाया हरि न रटा तौ क्या हुआ हरि नॉमे दिन जाइ रे जाकी हरि बिन कौन सहाईमन का हरि बिन झूठे सब प्यौहार हरि बिन भरमि बिगते गदा हरि बोलि सूना बार बार हरि भया तो क्या मया हम सब मॉहि सकल हम मॉही हरि मेरा पीव माई हरि मोतियन की माल है हरि मोत्याँ की माल है हरिया जॉणै झुँषड़ा हरिया जाने रूखड़ा हरि रस जे जन बेधिया हरि रस पीया जॉणिये हरि रस महेंगा जन पिये हरि रस महँगा पीविये हरि सगति सीतल भया हरि सा समरथ कोइ नही , ३६७ ५६७ ७४० र६७छ ४६६ ६६९ ३०६ ५५९६ ४५४ ४५५ ४८४ ५११ ७६४ ४१६ एदद ७४० ६२७ ५७४ ६८१ ए०८ प्द्८ ४६० ३०६ ३४६ ४६६ ३२० २४८ ४१३ ४१३ २४४ ड्६५ हरि समिरन सॉची कथा हरि सेती हरिजन बड़े हरि सो तू जनि हेतु कर हरि हिरदे रे अनत कत चाही हरि हीरा क्यों पाइहै हरि हीराजन जौहरी हरि हीरा जन जौहरी हरि हीरा जन जौहरी हरि हीरामन मे हटा हरि है खॉडू रे तुमहि हसती चढ़िया ज्ञान कै हसती चढ़ि के जो फिरे हसूँ तो दुःख न वीसरूँ हासी खेल हराम है हॉसी खेलौं हरि मिले हाड़ जरत जैसे लाकरी हाड़ जरे ज्यों लाकरी हाड़ जलै ज्यूँ लाकड़ी-हाड़ बड़ा हरि भजन कर हाथ कटोरा खोबा भरा, हाथ पॉव मुख शीश धरि हाथ पॉव मुख शीश धरि हाथी अटक्यो कीच मे हाथी घोड़ा गाय भैस हाथो परबत फाड़ते हारी तो हरि मान है हावड़ि धावड़ि जनम गवाव हिन्दू कहूँ तौ मै नही हिन्दू तुरक कहाँ ते आये हिन्दू तुरक कू बूठो वार हिन्दू तुरक के बीच मे हिन्दू ध्यावै देहरा कबीर समग्र ४३३ ४५५ ४७७ दर ४८४ ३४० ३८६ 8८६ 8४६० ५२२ ५०७ ४३२ ध्ण्द , ४५१ २३४ ३८६ ५२१ २९८ ३६६ ३६० ४६० ४६० ४६९ ४९६ ४७३ ४्पर ६२२ ४५६ ७४१ ७८६ ४ए८ ४ए८

पद सूची हिन्दू मूपे राम कहि हिडोलनों तहाँ झूले आतम राम हिन्दू के दाया नही हिरदा भीतरि आरसी हिरदा भीतरि दी बले हिरदे हीरा ऊपजे हिरनाकुस रावन गौ कसा हिलगी भाल शरीर महें हिल मिल खेला ब्रह्मसों हीरा क कछु न घटा हीरा तहें न खोलिए हीरा तहाँ न खोलिए हीरा परख जौहरी हीरा पाया परखि कै हीरा सोई सराहिये हीरा हरि को नाम है हीरे हीरा बेधि पवन सहजे रह्या समाई हुसल पवन घर सचरे हूँ रोक ससार कौ हृदय कपट मुख ज्ञानी हृदय भीतर आरसी हदये मे है आरसी हेत प्रीति सों जो मिल हेत माहि परदो नही हे मतिहीनी माछली हे मतिहीनी माचली हे मतिहीनी माचत्ती हेरत हैरत हेरिया हेरत हेरत हे सखी हेरत हेरत हे सखी है हरिजन ये चूक परी है हरिजन सूँ जगत लरत है ३०६ ५३३ ४८७ २६७ २३७ ८३१ ३६० ४१२ ३६० ४60 ४६० ४६० ३६० ४एप८ ७४१ ४२६ ५११ ७9४१ ३६० ध्द्द ४७६ ४७८ ४७२ 3७२ ४७२ ३६३ २५० २५० 4०8 प्र है कोई जगत गुर ग्यॉनी है कोई राम नाम बतावे है कोई सतसहज सुख उपज है गै गैवर सघन घन है गै बाहन सघन धन है गै बाहन सघन धन है हजूरि कया दूर बतावे है हरि भजन को प्रवात हो बलिया कब देखेगी तहि ही मन सोनो सो विषय ही जाना कुलहस हो ही तो सब ही की कही ही तो सब ही की कही हो तहि पूछी हे सखी हो बिरहा की लाकड़ी हो सभहिन मे हौंना हो मोंहि ही साधु के सग हीं 967 ५८५ ६१३